Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सचित्र

योगवासिष्ठ

महारामायण

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

❀ श्री परमात्मने नमः ❀

महर्षि वाल्मीकिजी रचित

सम्पूर्ण योगवासिष्ठ भाषा

सचित्र

प्रथम खण्ड
वैराग्य प्रकरण
मुमुक्षु प्रकरण
उत्पत्ति प्रकरण
स्थिति प्रकरण
उपशम प्रकरण

द्वितीय खण्ड
निर्वाण प्रकरण
-पूर्वार्द्ध
निर्वाण प्रकरण
-उत्तरार्द्ध

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान श्रीरामचन्द्र और परम पूज्य ज्ञानस्वरूप महर्षि वशिष्ठ के सम्वाद के रूप में इस महान् ग्रन्थ में आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत, बंधन-मोक्ष आदि दुरूह विषयों का बहुत ही सुन्दर स्पष्टीकरण किया गया है।

आत्म-बोध के लिए सर्वोत्तम ग्रन्थ

सम्पादक
अनेक धार्मिक ग्रन्थों के रचयिता 'श्री गिरधरजी'

मुद्रक-प्रकाशक
काशी पुस्तकालय, मथुरा

सर्वाधिकार स्वरक्षित है।

दोनों खण्ड मूल्य 250/-
वसना सहित २६०/- मात्र

सन् 1995

प्रथम बार २०००

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशकीय निवेदन

Modern Jammu (1 F 3) Jammu Collection

देवराज इन्द्र द्वारा महर्षि वाल्मीकि के पास राजा अरिष्टनेमि के भेजे जाने के प्रसंग से योगवासिष्ठ महारामायण का प्रारम्भ होता है। महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्य भरद्वाज के साथ हुए सम्वाद का वर्णन करते हुए भगवान राम के प्राकट्य तथा महर्षि विश्वामित्र के दशरथजी के समक्ष आकर यज्ञरक्षार्थ राम को मांगने के प्रसंग सुनाकर तथा राम-वसिष्ठ संवाद के रूप में छः प्रकरणों के योगवासिष्ठ नामक विशाल ग्रन्थ का श्रवण कराते हैं।

लीला पुरुषोत्तम राम के वैराग्य भाव को दूर करने के लिए महान् तत्वज्ञानी महर्षि वसिष्ठजी उनको तत्व ज्ञान का उपदेश देते हैं- यही योगवासिष्ठ का सार है। योगवासिष्ठ ब्रह्मवाद का ग्रन्थ है। इसके सिद्धान्तानुसार एकमात्र चेतन तत्व परब्रह्म के अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं है। अहंकार का नाश होने से एक ब्रह्म-चैतन्य ही रह जाता है। इसी तत्व का विभिन्न आख्यानों, इतिहासों एवं कथाओं द्वारा इस विशाल ग्रन्थ में प्रतिपादन किया गया है।

इस ग्रन्थ में कहीं भी शास्त्रनिषिद्ध व्यवहार, राग-द्वेष, काम-क्रोधादि, दुष्ट-संग आदि का समर्थन नहीं किया गया है। वरं सदाचार परायणता एवं त्यागमय जीवन की आवश्यकता बताई गई है। इन्द्रिय भोगों में फँसे मनुष्यों की घोर दुर्दशा का वर्णन करते हुए वैराग्य की प्रयोजनीयता का प्रतिपादन किया गया है। साधक पुरुष को अहं भावना रूप ग्रन्थि का यथार्थ ब्रह्मज्ञान के द्वारा भेदन करके सच्चे ज्ञानी बनने का उपदेश दिया गया है।

जो महानुभाव सांसारिक कार्यों से निवृत हो चुके हैं उनके मनन करने एवं उच्चादर्श प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ सर्वोत्तम है। इस ग्रन्थ का प्रत्येक सर्ग 'नाविक के तीर' की भाँति हृदय को भेदने वाला है- केवल ग्राह्य करने की बात है। यदि आप परमात्मा विषयक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं- तथा आपके पास यथेष्ठ समय है तो आइये इस ज्ञानगंगा में स्नान करके पवित्र होने के साथ-साथ निर्मल मन होकर ब्रह्म को पहिचानिये।

अधिक क्या लिखा जाय- योगवासिष्ठ महारामायण के साधक को-

द्वेष, क्रोध, शोक, भय, चिन्ता, ईर्ष्या, मत्सर, हर्षामर्ष।
छू सकते ना कभी उसको सब, हो अपकर्ष भले उत्कर्ष।।

इस महान् ग्रन्थ का प्रकाशन महर्षि वसिष्ठजी के समान हमारे परम पूज्यनीय गुरूजी के आशीर्वाद एवं अनुग्रह का ही परिणाम है अतः उनका धन्यवाद ज्ञापन बिना हमारा वक्तव्य अधूरा है।

प्रत्येक पृष्ठ पर एकश्लोकी योगवासिष्ठ प्रत्येक पंक्ति में दो बार मुद्रित किया गया है जिससे इस पावन ग्रन्थ का रसास्वादन प्रेमीजन प्रत्येक पृष्ठ पर कर सकें।

इस महान् ग्रन्थ से साधक लाभ उठाकर अपना जीवन सफल करेंगे ऐसी हमारी श्री राघवेन्द्र भगवान से प्रार्थना है।

बोलो परब्रह्म श्रीराघवेन्द्र भगवान की जय!

प्रकाशक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	प्रथम खण्ड	
१	वैराग्य प्रकरण	५
२	मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण	७९
३	उत्पत्ति प्रकरण	१२५
४	स्थिति प्रकरण	३०७
५	उपशम प्रकरण	३५९
	द्वितीय खण्ड	
६	निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध	५२८
७	निर्वाण प्रकरण उत्तरार्ध	७६३

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

योगवासिष्ठ के पाठक से नम्र निवेदन

यह महान् आदरणीय ग्रन्थ आपके समक्ष है। हमारी नम्र प्रार्थना है कि इसका दुरुपयोग कदापि नहीं होना चाहिए। कुछ महानुभाव पन्ना पलटने में मुख में उंगली लगाकर प्रयोग करते हैं, यह सर्वथा वर्जनीय है। हमने ग्रन्थ में पृष्ठ चिन्ह के लिए डोरी लगाई हुई है उसी का प्रयोग करना चाहिए।

धर्मविमुख महानुभावों को यह ग्रन्थ नहीं लेना चाहिए। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक स्वयं परमात्मा भगवान श्रीराघवेन्द्र में पूर्ण आस्था रखते हुए इस ग्रन्थ के मनन करने पर साधक को अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होना अवश्यम्भावी है।

साधक को पूर्णतया शुद्ध होकर इस धर्मग्रन्थ का पाठ करना चाहिए। यह ग्रन्थ साधारण आख्यानों की तरह पढ़ने की वस्तु न होकर परमात्मा के चिन्तन की ओर अग्रसर करने वाला ग्रन्थ है।

ग्रन्थ को सुरक्षित एवं शुद्ध रखने के लिए रेशम का वसना अतिरिक्त १०/- मात्र अधिक देकर प्राप्त कर सकते हैं।

जैसे स्वप्न में दीखने वाले दृश्य, बालक को दीखने वाला बेताल, रज्जु में दीखने वाला सर्प, स्वर्ण में दीखने वाले कड़े-बाजूबन्द, प्रशान्त महासागर में उठने वाली तरंगें और आवर्त, मिट्टी में दीखने वाले घड़े-सिकोरे और आकाश में दीखने वाले नगर-घर आदि सब उपाधिमात्र हैं, भ्रममात्र हैं, वैसे ही ब्रह्म में दीखने वाला यह सम्पूर्ण जगत् भ्रममात्र है। वस्तुतः उसकी कोई भिन्न सत्ता है ही नहीं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

श्रीपरमात्मने नमः

सम्पूर्ण योगवासिष्ठ भाषा

वैराग्य-प्रकरण

प्रथम सर्ग

कथा का आरम्भ

सृष्टि के आरम्भ में सम्पूर्ण भूत जिनसे प्रकट होकर प्रतीति के विषय होते हैं और प्रलयकाल आने पर जिनमें ही लीन हो जाते हैं, उन सत्यस्वरूप परमात्मा को नमस्कार है।

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तथा कर्ता, कारण और क्रिया-इन सबका जिनसे ही अविर्भाव होता है, उन ज्ञानस्वरूप परमात्मा को नमस्कार है।

जिनसे स्वर्ग और भूतल आदि सभी लोकों में आनन्दरूपी जल के कण स्फुरित होते हैं-प्राणियों के अनुभव में आते हैं तथा जो समस्त जीवों के जीवनाधार हैं, उन पूर्ण चिन्मय आनन्द के महासागर रूप परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है।

पूर्वकाल में सुतीक्ष्ण नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे, जिनके मन में संशय छा गया था; अतः उन्होंने महर्षि अगस्त्य के आश्रम में जाकर उन महामुनि से आदरपूर्वक पूछा-'भगवन्! आप धर्म के तत्व को जानते हैं, आपको सम्पूर्ण शास्त्रों के सिद्धान्त का सुनिश्चित ज्ञान है। मेरे हृदय में एक महान् संदेह है, आप कृपापूर्वक इसका समाधान कीजिये। मोक्ष का साधन कर्म है या ज्ञान है अथवा दोनों ही हैं। इन तीनों पक्षों से किसी एक का निश्चय करके जो वास्तव में मोक्ष का कारण हो, उसका प्रतिपादन कीजिये।'

अगस्त्य ने कहा- ब्रह्मन्! जैसे दोनों ही पंखों से पक्षियों का आकाश में उड़ना सम्भव होता है, उसी प्रकार ज्ञान और निष्काम कर्म दोनों से ही परमपद

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

की प्राप्ति होती है। इस विषय में एक प्राचीन इतिहास है, जिसका मैं तुम्हारे समक्ष वर्णन करता हूँ। एक समय की बात है, कारुण्य नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण थे, जो अग्निवेश्य के पुत्र थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन किया था तथा वे वेद-वेदांगों के पारंगत विद्वान थे। गुरू के यहाँ से विद्या पढ़कर अपने घर लौटने के बाद वे संध्या-वन्दन आदि कोई भी कर्म न करते हुए चुपचाप बैठे रहने लगे। उनके मन में संशय भरा हुआ था। पिता अग्निवेश्य ने देखा कि मेरा पुत्र शास्त्रोक्त कर्मों का परित्याग करके निन्दनीय हो गया है, तब वे उसके हित के लिये इस प्रकार बोले 'बेटा! यह क्या बात है ? तुम अपने कर्तव्य-कर्मों का पालन क्यों नहीं करते ? बताओ तो सही। यदि सत्कर्मों के अनुष्ठान में नहीं लगोगे तो तुम्हें परम सिद्धि कैसे प्राप्त होगी ? तुम जो इस कर्तव्य-कर्म से निवृत्त हो रहे हो, इसमें क्या कारण है ?

कारुण्य बोले-पिताजी! आजीवन अग्निहोत्र और प्रतिदिन संध्योपासना करे- इस प्रवृत्तिरूप धर्म का श्रुति और स्मृति ने विधान अथवा प्रतिपादन किया है। साथ ही एक दूसरी श्रुति भी है, जिसके अनुसार न धन से, न कर्म से और न संतान के उत्पादन से ही मोक्ष प्राप्त होता है। मुख्य-मुख्य यतियों ने एकमात्र त्याग से ही अमृतस्वरूप मोक्ष-सुख का अनुभव किया है। पूज्य पिताजी! इन दो प्रकार की श्रुतियों में से मुझे किसके आदेश का पालन करना चाहिये ? इस संशय में पड़कर मैं कर्म की ओर से उदासीन हो गया हूँ।

अगस्त्य कहते हैं- तात सुतीक्ष्ण! पिता से यों कहकर वे ब्राह्मण कारुण्य चुप हो गये। पुत्र को इस प्रकार कर्म से उदासीन हुआ देख पिता ने पुनः उससे कहा कि बेटा! मैं तुमसे एक कथा कहता हूँ, उसे सुनो और उसके सम्पूर्ण तात्पर्य का अपने हृदय में निश्चय कर लेने के पश्चात् तुम्हारी जैसी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इच्छा हो, वैसा करो।

सुरुचि नाम से प्रसिद्ध कोई देवलोक की स्त्री थी जो अप्सराओं में श्रेष्ठ समझी जाती थी। एक दिन वह मयूरों के झुंड से घिरे हुए हिमालय के एक शिखर पर बैठी थी। उसी समय उसने अन्तरिक्ष में इन्द्र के एक दूत को कहीं जाते देखा। अप्सरा ने उससे पूछा- 'महाभाग देवदूत! आप कहाँ से आ रहे हैं और इस समय कहाँ जायँगे यह सब कृपा करके मुझे बताइये।'

देवदूत ने कहा- भद्रे! सुनो; जो वृत्तान्त जैसे घटित हुआ है, वह सब मैं तुम्हें विस्तार से बता रहा हूँ। धर्मात्मा राजा अरिष्टनेमि अपने पुत्र को राज्य देकर स्वयं वीतराग हो तपस्या के लिये वन में चले गये और अब गन्धमादन पर्वत पर वे तपस्या कर रहे हैं। वहाँ वन में ज्यों ही उन्होंने दुस्तर तपस्या आरम्भ की, त्यों ही देवराज इन्द्र ने मुझे आदेश दिया- 'दूत! तुम यह विमान लेकर शीघ्र वहाँ जाओ। इस विमान में अप्सराओं के समुदाय को भी साथ ले लो। नाना प्रकार के वाद्य इसकी शोभा बढ़ाते रहें। गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष और किंनर आदि से भी यह सुशोभित होना चाहिये। इसमें ताल, वेणु और मृदंग आदि भी रख लो। इस प्रकार भाँति-भाँति के वृक्षों से भरे हुए सुन्दर गन्धमादन पर्वत पर पहुँचकर तुम राजा अरिष्टनेमि को इस विमान पर चढ़ा लो और उन्हें स्वर्ग का सुख भोगने के लिये अमरावती नगरी में ले जाओ।'

देवराज इन्द्र की यह आज्ञा पाकर मैं सामग्रियों से संयुक्त विमान ले उस पर्वत पर गया। वहाँ पहुँचकर राजा अरिष्टनेमि के आश्रम पर गया; फिर मैंने देवराज इन्द्र की सारी आज्ञा राजा से कह सुनायी। शुभे! वे मेरी बात सुनकर संदेह में पड़ गये और इस प्रकार बोले- 'देवदूत! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ, आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें। स्वर्ग में कौन-कौन से गुण हैं और कौन-कौन से दोष ? स्वर्गलोक में रहने के गुण-दोष को जानने के पश्चात् मेरी जैसी रुचि होगी, वैसा करूँगा।'

मैंने कहा- 'राजन्! स्वर्गलोक में जीव अपने पुण्य की सामग्री के अनुसार उत्तम सुख का उपभोग करता है। उत्तम पुण्य से उत्तम सुख का उपभोग करता है। उत्तम पुण्य से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, मध्यम पुण्य से मध्यम स्वर्ग मिलता है और इनकी अपेक्षा निम्न श्रेणी के पुण्य से उसके अनुरूप स्वर्ग सुलभ होता है। इसके विपरीत कुछ नहीं होता। स्वर्ग में भी दूसरों को अपने से ऊँची

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

स्थिति में देखकर लोगों के लिये उनका उत्कर्ष असह्य हो उठता है। जो लोग समान स्थिति में होते हैं, वे भी अपने बराबर वालों के साथ स्पर्धा रखते हैं तथा जो स्वर्गवासी अपने से हीन स्थिति में होते हैं, उनको अपनी अपेक्षा अल्पसुखी देखकर अधिक सुखवालों को संतोष होता है। इस प्रकार असहिष्णुता, स्पर्धा और संतोष का अनुभव करते हुए पुण्यात्मा पुरुष तभी तक स्वर्ग में रहते हैं, जब तक उनके पुण्यों का भोग समाप्त नहीं हो जाता। पुण्यों का क्षय हो जाने पर वे जीव पुनः इस मर्त्यलोक में प्रवेश करते हैं और पार्थिव-शरीर धारण करते हैं। राजन्! स्वर्ग में इसी तरह के गुण और दोष विद्यमान हैं।'

भद्रे! मेरी यह बात सुनकर राजा ने इस प्रकार उत्तर दिया– 'देवदूत! जहाँ ऐसा फल प्राप्त होता है, उस स्वर्गलोक में मैं नहीं जाना चाहता। आप इस विमान को लेकर जैसे आये थे, वैसे ही देवराज इन्द्र के पास चले जाइये। आपको नमस्कार है।'

भद्रे! जब राजा ने मुझसे ऐसी बात कही, तब मैं इन्द्र के समक्ष यह वृतान्त निवेदन करने के लिये लौट गया। वहाँ जब मैंने सब बातें ज्यों की त्यों कह सुनायीं, तब देवराज इन्द्र को महान् आश्चर्य हुआ और वे मुझसे पुनः बोले– दूत! तुम फिर वहाँ जाओ और उस विरक्त राजा को आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये तत्त्वज्ञ महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में ले जाओ। वहाँ महर्षि वाल्मीकि से मेरा यह संदेश कह देना– 'महामुने! इन विनयशील, वीतराग तथा स्वर्ग की भी इच्छा न रखने वाले नरेश को आप तत्त्वज्ञान का उपदेश दीजिये। ये जन्म-मरणरूप संसार-दुःख से पीड़ित हैं; अतः आपके दिये हुए तत्त्वज्ञान के उपदेश से उन्हें मोक्ष प्राप्त होगा।'

यों कहकर देवराज ने मुझे राजा अरिष्टनेमि के पास भेजा। तब मैंने पुनः वहाँ जाकर राजा को वाल्मीकिजी के पास पहुँचाया, उनसे देवराज इन्द्र का संदेश कहा तथा राजा ने उन महर्षि से मोक्ष का साधन पूछा। तदनन्तर वाल्मीकिजी ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कुशल प्रश्न की बात आरम्भ करते हुए राजा से उनके आरोग्य का समाचार पूछा। तत्पश्चात् श्री वाल्मीकिजी ने कहा– राजन्! सुनो; मैं तुमसे अखण्ड रामायण की कथा कहूँगा। उसे सुनकर यत्नपूर्वक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हृदय में धारण कर लेने पर तुम जीवनमुक्त हो जाओगे।

राजा ने पूछा- हे श्रेष्ठ महामुने! श्रीराम कौन हैं ? उनका स्वरूप कैसा है ? वे किसके वंशज थे ? वे बद्ध थे या मुक्त ? पहले आप मुझे इन्हीं बातों का निश्चित ज्ञान प्रदान कीजिये।

श्रीवाल्मीकिजी ने कहा- स्वयं भगवान् श्रीहरि ही शाप के पालन के बहाने राजा श्रीराम के रूप में अवतीर्ण हुए थे। वे प्रभु सर्वज्ञ होने पर भी आरोपित अथवा स्वेच्छा से गृहीत अज्ञान से युक्त हो साधारण मनुष्यों की भाँति अल्पज्ञ से हो गये।

राजा ने पूछा- महर्षे! श्रीराम तो सच्चिदानन्दस्वरूप चैतन्यघनविग्रह थे। उन्हें शाप प्राप्त होने का क्या कारण था?

श्री वाल्मीकिजी ने कहा- राजन्! सनत्कुमार, जो सर्वथा निष्काम थे, ब्रह्मलोक में निवास करते थे। एक दिन त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णु वैकुण्ठलोक से वहाँ पधारे। उस समय ब्रह्माजी ने वहाँ उनका पूजन किया। सत्यलोक में निवास करने वाले दूसरे महात्माओं ने भी उनका स्वागत-सत्कार किया। केवल सनत्कुमार ने उनके आदर-सत्कार में कोई भाग नहीं लिया-वे चुपचाप बैठे ही रह गये। तब उनकी ओर देखकर भगवान् श्रीहरि ने कहा- 'सनत्कुमार! तुम अपने को निष्काम समझकर अहंकारी हो गये हो, इसीलिये जड़वत् स्तब्ध बने बैठे हो। इस गर्वयुक्त चेष्टा के कारण तुम शाप या दण्ड पाने के योग्य हो, अतः शरजन्मा कुमार के नाम से विख्यात हो दूसरा शरीर धारण करो।' यह सुनकर सनत्कुमार ने भी भगवान् विष्णु को शाप दिया-'देवेश्वर! आप भी अपनी सर्वज्ञता को कुछ काल के लिये छोड़कर अज्ञानी जीव के समान हो जायँगे।' एक समय अपनी पत्नी को श्रीहरि के चक्र से मारी गयी देख महर्षि भृगु का क्रोध बहुत बढ़ गया। वे उन्हें शाप देते हुए बोले- 'विष्णो! आपको भी कुछ काल के लिये अपनी पत्नी से वियोग का कष्ट सहना पड़ेगा।' इस प्रकार सनत्कुमार और भृगु के शाप देने पर (उनकी वाणी सत्य करने के लिये)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भगवान् विष्णु उस शाप से मनुष्य रूप में अवतीर्ण हुए। राजन्! भगवान् विष्णु को शाप का बहाना क्यों लेना पड़ा, इसका सब कारण मैंने तुम्हें बता दिया, अब तुम्हारे प्रश्न के अनुसार अन्य सारी बातें बता रहा हूँ। तुम सावधान होकर सुनो।

प्रथम सर्ग समाप्त

द्वितीय सर्ग

वाल्मीकि का भरद्वाज को उपदेश

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं– राजन्! मैं संसार रूपी बन्धन में बँधा हुआ हूँ, किंतु इससे मुक्त हो सकता हूँ–ऐसा जिसका निश्चय है तथा जो न तो अत्यन्त अज्ञानी है और न तत्त्वज्ञानी ही है, वही इस शास्त्र को सुनने अथवा पढ़ने का अधिकारी है। जो पहले कथारूपी उपाय से युक्त रामायण के बाल, अयोध्या आदि सभी काण्डों का विचार (परिशीलन) करके मोक्ष के उपायभूत इन वैराग्य आदि छः प्रकरणों का विचार (अनुशीलन) करता है, वह विद्वान् पुरुष यहाँ के जन्म आदि दुःखों से सदा के लिये छुटकारा पा जाता है। शत्रुओं का मर्दन करने वाले नरेश! यह रामायण पूर्व और उत्तर–दो खण्डों से युक्त है। इसमें राग–द्वेष आदि दोषों को दूर करने के लिये रामकथा रूपी प्रबल उपाय बताये गये हैं। पहले इन बाल आदि सात काण्डों की रचना करके मैंने एकाग्रचित्त हो अपने बुद्धिमान् एवं विनयशील शिष्य भरद्वाज को इसका ज्ञान प्रदान किया; ठीक उसी तरह, जैसे समुद्र मणि या रत्न की इच्छा रखनेवाले याचक को मणि प्रदान करता है। बुद्धिमान् भरद्वाज ने मुझसे कथारूपी उपाय वाले इन सात काण्डों का अध्ययन करने के पश्चात् मेरुपर्वत के किसी गहन वन में ब्रह्माजी के सामने इनका वर्णन किया। इससे महान् आशय वाले लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा भरद्वाज के ऊपर बहुत संतुष्ट हुए और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उनसे बोले- 'बेटा! तुम मुझसे कोई वर माँग लो।'

भरद्वाज ने कहा- भगवन्! भूत, भविष्य और वर्तमान के स्वामी पितामह! जिस उपाय से यह समस्त मानव-समुदाय सम्पूर्ण दुःख से छुटकारा पा जाय, वह मुझे बताइये। आज मुझे यही वर अच्छा लगता है।

श्रीब्रह्माजी ने कहा- वत्स! तुम इस विषय में शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक अपने गुरु वाल्मीकिजी से प्रार्थना करो। उन्होंने जिस निर्दोष रामायण की रचना आरम्भ की है, उसका श्रवण कर लेने पर मनुष्य सम्पूर्ण मोह से पार हो जायँगे।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं- भरद्वाज से यों कहकर सम्पूर्ण भूतों के स्रष्टा भगवान् ब्रह्मा उनके साथ ही मेरे आश्रम पर आये। उस समय मैंने शीघ्र ही अर्घ्य, पाद्य आदि के द्वारा उन भगवान् ब्रह्माजी का पूजन किया। तत्पश्चात् समस्त प्राणियों के हित में तत्पर रहने वाले ब्रह्माजी ने मुझसे कहा-'श्रेष्ठ महर्षे! श्रीरामचन्द्रजी के स्वभाव एवं स्वरूप का वर्णन करने वाले इस निर्दोष रामायण का आरम्भ करके जब तक इसकी समाप्ति न हो जाय, तब तक कितना ही उद्वेग क्यों न हो तुम इसका परित्याग न करना। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से यह जगत् इस संसाररूपी क्लेश से उसी प्रकार शीघ्र पार हो जायगा, जैसे जहाज के द्वारा लोग अविलम्ब समुद्र से पार हो जाते हैं। तुम लोकहित के लिये इस रामायण नामक शास्त्र की रचना करो। इसी बात को कहने के लिये मैं स्वयं यहाँ तक आया हूँ।' तत्पश्चात् वे मेरे उस पवित्र आश्रम से उसी क्षण अदृश्य हो गये। तब भरद्वाज ने कहा- 'भगवन्! महामना श्रीरामचन्द्रजी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघन, यशस्विनी सीतादेवी तथा श्रीरामचन्द्रजी का अनुसरण करने वाले परम बुद्धिमान् मन्त्रिपुत्र-इन सबने इस संसार रूपी संकट में पड़कर कैसा व्यवहार किया था, यह बात मुझे बताइये। इसे सुनकर अन्य लोगों के साथ मैं भी वैसा ही बर्ताव करूँगा।'

राजेन्द्र! जब भरद्वाज ने आदर पूर्वक मुझसे पूर्वोक्त विषय का प्रतिपादन करने के लिये अनुरोध किया, तब मैं भगवान् ब्रह्माजी की आज्ञा का पालन करने के लिये उक्त विषय के वर्णन में प्रवृत्त हुआ और बोला- 'वत्स भरद्वाज! सुनो; तुमने जैसा पूछा है, उसके अनुसार तुम्हें सब कुछ बताता हूँ। मेरे उपदेश को सुनने से तुम अपना सारा मोह दूर कर सकोगे। बुद्धिमान् भरद्वाज! तुम वैसा ही व्यवहार करो, जैसा कि आनन्द स्वरूप कमलनयन भगवान् श्रीराम ने समस्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

संसार में अनासक्त भाव से रह कर किया था।'

महामना भरत, लक्ष्मण, शत्रुघन, कौशल्या, सुमित्रा, सीता, राजा दशरथ, श्रीरामसखा कृतास्त्र और अविरोध, पुरोहित वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्यान्य आठ मन्त्री-ये सभी ज्ञान में पारंगत थे। धृष्टि, जयन्त, भास, सत्यवादी विजय, विभीषण, सुषेण, हनुमान् और इन्द्रजित्-ये श्रीराम के आठ मन्त्री बताये गये हैं। ये सब-के-सब समदर्शी थे। इनका चित्त विषयों में आसक्त नहीं था। ये सभी जीवन्मुक्त महात्मा थे और प्रारब्धवश जो कुछ प्राप्त होता, उसी में संतुष्ट रहकर तदनुकूल व्यवहार करते थे। बेटा! इन लोगों ने जिस प्रकार होम, दान और आदान-प्रदान किया था, इन्होंने जगत् में जिस प्रकार निवास किया था और जिस प्रकार स्मरण-चिन्तन अथवा श्रौत-स्मार्त कर्मों का पालन किया था, उसी प्रकार यदि तुम भी बर्ताव करते हो तो संसार रूपी संकट से छूटे हुए ही हो। उदार एवं सत्त्वगुण से सम्पन्न पुरुष अपार संसार-समुद्र में गिरने पर भी यदि उपर्युक्त उत्कृष्ट साधन को अपना ले तो उसे न तो शोक प्राप्त होता है और न वह दीनता अथवा दुःख में ही पड़ता है। सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो वह परमानन्द सुधा का पान करके सदा के लिये परम तृप्त है।

द्वितीय सर्ग समाप्त

तृतीय सर्ग

श्रीराम की तीर्थ यात्रा का वर्णन

भरद्वाज बोले- ब्रह्मन्! आप श्रीरामचन्द्र जी की कथा से आरम्भ करके क्रमशः जीवन्मुक्त की स्थिति का मुझ से वर्णन कीजिये।

श्री वाल्मीकिजी ने कहा-साधु भरद्वाज! जैसे रूप रहित आकाश में नील-पीत आदि वर्णों का भ्रम होता है, उसी प्रकार निर्गुण-निराकार ब्रह्म में अज्ञानवश जगत् की सत्ता का भ्रम होता है। यह जो जगत्सम्बन्धी भ्रम उत्पन्न हो गया है, इसे इस तरह भुला दिया जाय कि फिर कभी इसका स्मरण ही न हो-इसी को मैं उत्तम ज्ञान मानता हूँ। इस दृश्य प्रपञ्च का अत्यन्त अभाव है-यह बिना हुए ही भासित हो रहा है, जब तक ऐसा बोध नहीं होता, तब तक कोई कभी भी उस उत्कृष्ट आत्मज्ञान का अनुभव नहीं कर सकता; इसलिये आत्मज्ञान का अन्वेषण-उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इस (योगवासिष्ठरूप) शास्त्र का ज्ञान होने पर इसी जीवन में उस आत्मतत्त्व का बोध हो जाय-यह सर्वथा सम्भव ही है- वह होकर ही रहेगा। इसी उद्देश्य से इस शास्त्र का विस्तार किया जाता है। यदि तुम इस शास्त्र का श्रवण करोगे तो निश्चय ही तुम्हें उस आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो जायेगा: अन्यथा उसकी प्राप्ति असम्भव है।

निष्पाप भरद्वाज! यह जगत्‌रूपी भ्रम यद्यपि प्रत्यक्ष दिखायी देता है, तो भी इस शास्त्र के विचार से अनायास ही ऐसा अनुभव हो जाता है कि 'यह है ही नहीं'-ठीक उसी तरह जैसे आकाश में नील आदि वर्ण प्रत्यक्ष दीखने पर भी विचार करने से बिना परिश्रम के ही यह समझ में आ जाता है कि इसका अस्तित्व नहीं है। यह दृश्य जगत् वास्तव में है ही नहीं, ऐसा बोध होने पर जब मन से दृश्य-प्रपञ्च का निवारण या अभाव हो जाय, तब परमनिर्वाण रूप शान्ति का स्वतः अनुभव होने लगता है। ब्रह्मन्! सम्पूर्ण रूप से वासनाओं का जो परित्याग (अत्यन्त अभाव) है, वही उत्तम मोक्ष कहलाता है। उसे अविद्यारूपी मल से रहित ज्ञानी ही प्राप्त कर सकते हैं। विप्रवर! जैसे शीत के नष्ट होने पर हिमकण तुरंत गल जाते हैं, उसी प्रकार वासनाओं के क्षीण हो जाने पर (वासना-पुञ्जरूप) चित्त भी शीघ्र ही गल जाता है (उसका अभाव-सा हो जाता है)।

वासना दो प्रकार की बतायी गयी है-एक शुद्ध वासना और दूसरी मलिन वासना। मलिन वासना जन्म की हेतुभूत है-उसके द्वारा जीव जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ता है और शुद्ध वासना जन्म का नाश करने वाली (अर्थात् मोक्ष की साधिका) है। विद्वानों ने मलिन वासना को पुनर्जन्म की प्राप्ति कराने वाली बताया है। अज्ञान ही उसकी घनीभूत आकृति है तथा वह बढ़े हुए अहंकार से सुशोभित होती है। जो भुने हुए बीज के समान पुनर्जन्मरूपी अंकुर को उत्पन्न करने की शक्ति को त्यागकर केवल शरीर धारण मात्र के लिये स्थित रहती है, वह वासना 'शुद्ध' कही गयी है। जो लोग शुद्ध वासना से युक्त हैं, वे फिर जन्मरूप अनर्थ के भाजन नहीं होते। जानने योग्य परमात्मा के तत्त्व को जानने वाले वे परम बुद्धिमान् पुरुष 'जीवन्मुक्त' कहलाते हैं।

महामते भरद्वाज! अब तुम श्रीरामचन्द्रजी की जीवनचर्या से सम्बन्ध रखने वाली इस मंगलकारिणी कथा का क्रमशः श्रवण करो। मैं उसका वर्णन करूँगा,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

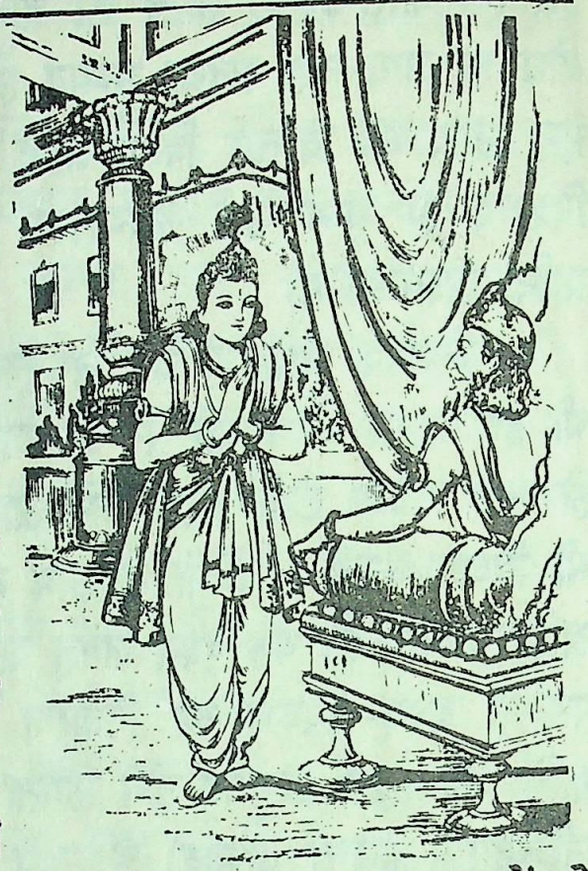

उसी के द्वारा तुम सदा के लिये सम्पूर्ण तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लोगे। वत्स! जिन्हें कहीं से भी कोई भय नहीं है, वे कमल नयन भगवान् श्रीराम जब अध्ययन के पश्चात् विद्यालय से निकलकर घर को लौटे, तब भाँति-भाँति की लीलाएँ करते हुए उन्होंने राजभवन में कुछ दिन व्यतीत किये। तदनन्तर कुछ समय बीतने पर, जब कि राजा दशरथ भूमण्डल के पालन में लगे थे और प्रजा वर्ग के लोग रोग-शोक से रहित हो बड़े सुख से दिन बिता रहे थे एक दिन अनन्त कल्याणमय गुणों से सुशोभित होने वाले श्रीरामचन्द्रजी के मन में तीर्थों तथा पुण्यमय आश्रमों के दर्शन की अत्यन्त उत्कण्ठा जाग उठी। तब श्रीराम ने पिता के पास जाकर उनके चरण-कमलों में प्रणाम किया और इस प्रकार कहा।

श्रीराम बोले-पिताजी! मेरे मन में तीर्थों, देवमन्दिरों, वनों तथा आश्रमों का दर्शन करने की बड़ी उत्कण्ठा हो रही है। आपके समक्ष मेरी यह पहली याचना है, आप इसे सफल करने योग्य हैं। नाथ! संसार में ऐसा कोई याचक नहीं है, जिसे अभीष्ट वस्तु देकर आपने उसका आदर न किया हो।

श्रीराम पहली बार प्रार्थी होकर राजा के समक्ष उपस्थित हुए थे। उनके इस प्रकार प्रार्थना पर राजा दशरथ ने वसिष्ठजी के साथ विचार करके उन्हें तीर्थ-दर्शन के लिये आज्ञा दे दी। उस समय शुभ नक्षत्र और शुभ दिन में ब्राह्मणों ने आकर उनके लिये स्वस्तिवाचन किया। उनके शरीर को मांगलिक वेष-भूषा से अलंकृत किया गया। माताओं ने उन्हें हृदय से लगा-लगाकर अशीर्वाद दिये और आभूषण पहनाये। फिर वे रघुनाथजी तीर्थ-यात्रा के लिये उद्यत हो लक्ष्मण और शत्रुघन-इन दो भाइयों, वसिष्ठजी के भेजे हुए शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों तथा अपने ऊपर स्नेह रखने वाले कुछ इने-गिने राजकुमारों के साथ अपने उस राजभवन से बाहर निकले। श्रीरामचन्द्रजी दान-मान आदि से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ब्राह्मणों को अपने अनुकूल बनाते, सब ओर से प्रजाओं के अशीर्वाद सुनते और सम्पूर्ण दिशाओं के दृश्यों पर दृष्टिपात करते वन्य-प्रदेशों में भ्रमण करने लगे। उन्होंने अपने निवास स्थान उस कोसल जनपद से आरम्भ करके स्नान, दान, तप और ध्यानपूर्वक क्रमशः समस्त तीर्थ-स्थानों का दर्शन किया। नदियों के पवित्र तट, पुण्य वन, पावन आश्रम, जंगल, जनपदों की सीमाओं में स्थित समुद्र और पर्वतों के तट, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल आभावाली गंगा, नील कमल की सी कान्तिवाली निर्मल कलिन्दनन्दिनी यमुना, सरस्वती, शतद्रू (सतलज), चन्द्रभागा (चिनाब), इरावती (रावी), वेणी, कृष्णवेणी, निर्विन्ध्या, सरयू, चर्मण्वती (चम्बल), वितस्ता (झेलम), विपाशा (व्यास), बाहुदा, प्रयाग, नैमिषारण्य, धर्मारण्य, गया, वाराणसी (काशीपुरी), श्रीशैल, केदारनाथ, पुष्कर, क्रमप्राप्त मानस सरोवर, उत्तरमानस, वड़वामुख, अन्य तीर्थ समुदाय, अग्नि तीर्थ, महा तीर्थ, सरोवर, सरिताएँ, नद, तालाब या कुण्ड-इन सबका उन्होंने आदरपूर्वक दर्शन किया।

स्वामी कार्तिकेय, शालग्राम स्वरूप श्रीविष्णु, भगवान् विष्णु और शिव के चौसठ स्थान, नाना प्रकार के आश्चर्यजनक दृश्यों से विचित्र शोभा धारण करने वाले चारों समुद्रों के तट, विन्ध्य पर्वत और मन्दराचल के कुञ्ज, हिमालय आदि सात कुल-पर्वतों के स्थान तथा बड़े-बड़े राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, देवताओं और ब्राह्मणों के मंगलकारी पावन आश्रमों का भी श्रीरामचन्द्र ने दर्शन किया। दूसरों को मान देने वाले श्रीरघुनाथजी अपने भाइयों के साथ बारंबार चारों दिशाओं के प्रान्तभागों तथा भूमण्डल के सभी छोरों में घूमते फिरे। जैसे देवता आदि से सम्मानित भगवान् शंकर सम्पूर्ण दिशाओं में बिहार करके पुनः शिवलोक में लौट आते हैं, उसी प्रकार रघुनन्दन श्रीराम देवताओं, किंनरों तथा मनुष्यों से सम्मानित हो इस सम्पूर्ण भूमण्डल का अवलोकन करके फिर अपने घर लौट आये।

तृतीय सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modi Jijnasa Prakashan Trust Jammu Collection

चतुर्थ सर्ग

विश्वामित्र का आगमन

श्रीवाल्मीकिजी बोले भरद्वाज! जब श्रीराम नगर को लौटे, उस समय (उनका स्वागत करते हुए) पुरवासीजन उनके ऊपर पुष्प बिखेरने लगे। वहाँ पहुँचकर रघुनाथजी ने पहले पिता को प्रणाम किया, फिर क्रमशः कुलगुरु वसिष्ठजी को, बड़े बन्धु-बान्धवों को, ब्रह्मणों को तथा कुल के बड़े बूढ़े लोगों को मस्तक झुकाया। फिर सुहृदों, बन्धुओं, पिता तथा ब्राह्मण समुदाय ने श्रीराम को बारंबार हृदय से लगाया और श्रीराम ने भी उनके प्रति अभिवादन एवं प्रिय भाषण आदि यथोचित आचार-व्यवहार का निर्वाह किया। उस समय श्रीरघुनाथजी आनन्दोल्लास से फूले नहीं समाते थे। अयोध्या में श्रीरामचन्द्रजी के शुभागमन के उपलक्ष्य में लगातार आठ दिनों तक आनन्दोत्सव मनाया गया। उस समय हर्ष से मतवाली जनता के द्वारा सुख पूर्वक किये गये गीत-वाद्य आदि का मधुर कोलाहल सब ओर व्याप्त हो गया था। तबसे श्रीरघुनाथजी विभिन्न देशों में प्रचलित नाना प्रकार के रहन-सहन का जहाँ-तहाँ वर्णन करते हुए घर में ही सुख पूर्वक रहने लगे।

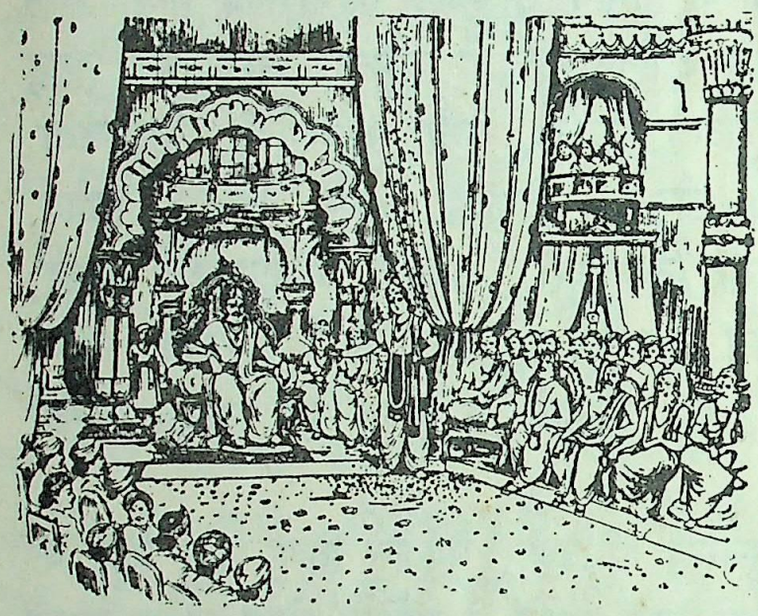

श्रीरामचन्द्रजी प्रतिदिन सबेरे उठकर विधिपूर्वक संध्या-वन्दन करके राजसभा में बैठे हुए अपने इन्द्रतुल्य तेजस्वी पिता महाराज दशरथ का दर्शन किया करते थे। वहाँ एक पहर तक वसिष्ठ आदि के साथ बैठकर आदरपूर्वक ज्ञानभरी कथा-वार्ता सुना करते थे। भाईयों के साथ तीर्थयात्रा से लौटने पर श्रीरघुनाथजी प्रायः ऐसी ही दिनचर्या को अपनाकर पिता के घर में सुख पूर्वक रहते थे। निष्पाप भरद्वाज! श्रीरामचन्द्रजी की प्रत्येक चेष्टा राजोचित व्यवहार के कारण बड़ी मनोहर प्रतीत होती थी; वह सत्पुरुषों के चित्त में चन्द्रमा की चाँदनी के समान आल्हाद उत्पन्न करती थी। सभी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करते थे तथा वह अमृतरस के समान मधुर, सुन्दर एवं कोमल होती थी। ऐसी ही चेष्टा के द्वारा वे दिन व्यतीत करते थे।

भरद्वाज! तदनन्तर जब श्रीरघुनाथजी की अवस्था सोलह वर्ष से कुछ ही कम थी, शत्रुघन और लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजी का निरन्तर अनुसरण करते थे, भरत सुख पूर्वक अपने नाना के यहाँ विराज रहे थे, महाराज दशरथ इस सारी पृथ्वी का यथोचित रूप से पालन कर रहे थे तथा वे महाप्राज्ञ नरेश प्रतिदिन मन्त्रियों के साथ बैठकर अपने पुत्रों के विवाह के लिये भी परामर्श करने लगे थे, उन्हीं दिनों तीर्थयात्रा पूरी करके अपने घर में रहते हुए श्रीराम दिन-पर-दिन कृश होने लगे।

भरद्वाज! महाराज दशरथ श्रीराम से बारंबार स्नेह युक्त मधुरवाणी में पूछते-'बेटा! तुम्हारे मन में कैसी बड़ी भारी चिन्ता पैदा हो गयी है ?' वे उत्तर देते-'पिताजी! मुझे कोई कष्ट नहीं है।' इतना ही कहकर कमलनयन श्रीराम पिताजी की गोद में चुपचाप बैठ जाते थे।

तदनन्तर एक दिन राजा दशरथ ने समस्त कार्यों का ज्ञान रखने वाले, वक्ताओं में श्रेष्ठ वसिष्ठजी से पूछा-'गुरुदेव! श्रीराम क्यों खिन्न हैं ?' उनके इस प्रकार पूछने पर वसिष्ठ मुनि ने कुछ सोचकर राजा से कहा-'श्रीमान्! महाराज! इसमें कुछ कारण है; किंतु इसके लिये आपके मन में दुःख नहीं होना चाहिये।'

इसी समय महर्षि विश्वामित्र अयोध्या नरेश दशरथ से मिलने के लिये वहाँ आये। उन दिनों धर्म कार्य में तत्पर रहने वाले उन बुद्धिमान् महर्षि के यहाँ एक यज्ञ हो रहा था। माया, बल और वीर्य से उन्मत्त रहने वाले राक्षसों ने एक साथ आक्रमण करके उनके उस यज्ञ का विध्वंस कर डाला। उस यज्ञ की रक्षा के लिये ही उन्होंने महाराज दशरथ से मिलने की इच्छा की थी; क्योंकि राक्षसों के उत्पात के कारण वे मुनि अपने उस यज्ञ को बिना किसी विघ्न-बाधा के पूर्ण नहीं कर पाते थे। तब उन निशाचरों के विनाश के लिये उद्यत हो वे तपोनिधि महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि अयोध्यापुरी में आये। वहाँ पहुँचकर राजा से मिलने की अभिलाषा लिये वे द्वारपालों से बोले-'तुम लोग शीघ्र जाकर महाराज को मेरे आने की सूचना दो। उनसे कहना-गाधि के पुत्र कुशिकवंशी विश्वामित्र आये हैं।'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Library Collection, Jammu

मुनि का यह वचन सुनकर राजद्वार पर रहने वाले पहरेदारों ने राजमहल में जाकर अपने स्वामी छड़ीदार से बताया-प्रभो! महर्षि विश्वामित्र पधारे हैं। तब उस छड़ीदार ने सभा मण्डप में राजाओं की मण्डली से घिरे बैठे हुए महाराज के पास तुरंत जाकर सूचना दी-'देव! राजद्वार पर नवोदित सूर्य के समान महा तेजस्वी तथा अग्नि की ज्वाला के सदृश अरुण जटाजूटधारी एक दीप्तिमान् पुरुष आकर खड़े हैं। वे महामुनि विश्वामित्र हैं।' राजा की ओर देखकर छड़ीदार ने नम्रतापूर्ण वचनों में ज्यों ही यह बात कही, उसकी उस बात को सुनते ही मन्त्री और सामन्तों सहित वे राजशिरोमणि दशरथ तत्काल सोने के सिंहासन से उठकर खड़े हो गये।

राजाओं के समुदाय से घिरे तथा सामन्तों से प्रशंसित होते हुए वे नरेश वसिष्ठ और वामदेवजी के साथ सहसा पैदल ही उस स्थान की ओर चल दिये, जहाँ महामुनि विश्वामित्र खड़े थे। राजा ने ड्योढ़ी पर खड़े हुए उन मुनिश्रेष्ठ को देखा। वे ब्राह्मणोचित तेज तथा महान् क्षात्रबल से भी सम्पन्न थे। वृद्धावस्था के कारण अधिक पकी हुई और तपस्या में ही लगे रहने से रूखी जटावल्लरी के द्वारा उनके कंधे ढके हुए थे। उन्होंने शान्त कान्तिमान्, उद्दीप्त, तेजस्वी शरीर धारण कर रक्खा था। उनका तेज सुन्दर होने के साथ ही अत्यन्त भयंकर था, प्रसाद गुण से युक्त तथा दूर तक फैला हुआ था, गम्भीर एवं अतिशय पूर्णता को प्राप्त था। उस तेज से ऋषि की अंग कान्ति अनुरञ्जित थी। उन्होंने अपने हाथ में एक कमण्डल ले रक्खी थी, जो चिकनी, निर्दोष एवं उत्तम थी। वह उनके कल्पान्त स्थायी जीवनकाल की सभी अवस्थाओं में सहचरी की भाँति उनका साथ देती थी। मुनि का अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल था। उनके चित्त में करुणा भरी थी, इसलिये उनकी वाणी बड़ी मधुर एवं प्रसन्नता सूचक होती थी। वे अपनी स्नेहपूर्ण दृष्टि से इस प्रकार देखते थे,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मानो सामने खड़ी हुई जनता को अमृत से सींच रहे हों। उनके अंग में सुन्दर यज्ञोपवीत शोभा पा रहा था। वे दर्शकों के मन में अत्यन्त आश्चर्य का संचार-सा कर रहे थे। उन महर्षि को दूर से ही देखकर राजा का शरीर विनय से झुक गया और उन्होंने मुकुट मण्डित मस्तक से उनके चरणों में प्रणाम किया। मुनि ने भी, जैसे सूर्यदेव इन्द्र का प्रत्याभिवादन करते हैं, उसी प्रकार मधुर एवं उदारतापूर्ण वचनों द्वारा आशीर्वाद देकर पृथ्वीनाथ दशरथ का प्रत्याभिवादन किया। तत्पश्चात् वसिष्ठ आदि सभी ब्राह्मणों ने स्वागत आदि के क्रम से विश्वामित्रजी का सत्कार किया।

दशरथ ने कहा-महात्मन्! जैसे भगवान् सूर्य अपने तेजस्वी स्वरूप का दर्शन देकर कमलों से भरे हुए सरोवरों पर अनुग्रह करते हैं, उसी प्रकार आज आपका जो यह असम्भावित तेजोमय दर्शन प्राप्त हुआ है, इससे हम सब लोग अत्यन्त अनुगृहीत हैं।

मुनि के प्रति ऐसी ही बातें कहते हुए अन्य राजा तथा महर्षि, सब लोग राजसभा में आकर यथायोग्य आसनों पर बैठ गये। राजा दशरथ ने स्वयं ही मुनि को अर्घ्य निवेदन किया।

राजा के अर्घ्य को स्वीकार करके महर्षि ने शास्त्रोक्त विधि से प्रदक्षिणा करते हुए नरेश की भूरि-भूरि प्रशंसा की। राजा दशरथ द्वारा पूजित हो विश्वामित्र बड़े प्रसन्न हुए। उनका मुखारविन्द खिल उठा। उन्होंने राजा से उनकी कुशल पूछी। तदनन्तर मुनिवर विश्वामित्र हँसकर वसिष्ठजी से मिले और यथायोग्य सत्कार करके उनके आरोग्य का समाचार पूछने लगे। क्षण भर में एक दूसरे से मिलकर यथायोग्य आदर-सत्कार करके वे सब लोग प्रसन्न चित्त हो महाराज के महल में यथायोग्य आसनों पर बैठ गये। एक दूसरे के सम्पर्क में आने से उन सबके तेज बढ़ गये थे। वे सब आदर पूर्वक आपस में एक दूसरे की कुशल पूछने लगे। तदनन्तर प्रसन्नचित्त एवं पवित्र राजा दशरथ ने हाथ जोड़कर मुनि से कहा-

"विप्रवर! आप परम धर्मात्मा तथा दान के उत्तम पात्र हैं और सौभाग्यवश यहाँ पधार गये हैं। बताइये, आपकी सर्वोत्तम अभिलाषा क्या है ? मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ ? भगवन्! पहले आप 'राजर्षि' कहे जाते थे, किंतु तपस्या ने आपके ब्राह्मतेज को प्रकाशित कर दिया। आपने 'ब्रह्मर्षि' का पद

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerjisharma (I.E.S) Jammu Collection

प्राप्त कर लिया, अतः आप मेरे द्वारा सर्वथा पूजनीय हैं। जैसे गंगाजी के जल में स्नान करने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार आपके दर्शन से भी हो रही है। वह प्रसन्नता मेरे ही तन को शीतल-सा किये देती है। ब्रह्मन्! आपके अन्तःकरण से इच्छा, भय और क्रोध निकल गये हैं, राग द्वेष दूर हो गये हैं, आप सर्वथा रोग रहित हैं; तो भी मेरे पास आये, यह अत्यन्त अदभुत बात है। यहाँ पधारे हुए आप का दर्शन, पूजन और वन्दन करके मैं अपने में ही फूला नहीं समाता-वैसे ही जैसे समुद्र अपने में नहीं समाता, तट की सीमा को लाँघ कर आगे बढ़ जाता है। मुनिवर! आपका जो कार्य हो जिस प्रयोजन से आप यहाँ पधारे हों उसे आप सिद्ध हुआ ही समझिये; क्योंकि आप सर्वदा मेरे माननीय हैं। कुशिक-कुलनन्दन। आप कोई विचार न कीजिये। भगवन्! आपके लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है; क्योंकि दी हुई वस्तु आप-जैसे सत्पात्र को प्राप्त होकर ही सार्थक होती है। मैं आपका सारा कार्य पूर्ण करूँगा। आप मेरे परम देवता हैं।'

आत्मज्ञानी महाराज दशरथ के द्वारा विनय पूर्वक कहे हुए इस अत्यन्त मधुर, श्रवण सुखद एवं गुणविशिष्ट वचन को सुनकर विख्यात गुण और प्रख्यात यशवाले मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र को बड़ी प्रसन्नता हुई।

चौथा सर्ग समाप्त

पाँचवा सर्ग

विश्वामित्र का श्रीराम को माँगना

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज! तदनन्तर महातेजस्वी विश्वामित्रजी ने प्रसन्न होकर कहा-'नृपश्रेष्ठ! आप महान् कुल में उत्पन्न हुए हैं और महर्षि वसिष्ठजी की आज्ञा के अधीन रहते हैं; अतः आपके मुख से जो बात निकली है, वह इस भूतल पर आप के ही योग्य है। महाराज! अब मैं अपना हार्दिक अभिप्राय आपसे निवेदन करता हूँ। जब-जब मैं यज्ञ के द्वारा देवसमूहों का पूजन करता हूँ, तब-तब कुछ निशाचर आकर मेरे उस यज्ञ को नष्ट कर देते हैं। मैंने अनेक बार यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया, किन्तु राक्षस नायकों ने उस यज्ञ-मण्डप की भूमि में रक्त और माँस बिखेर दिये। मैं यज्ञ के लिये परिश्रम करके भी उसमें सफल नहीं हो रहा हूँ इसलिये विघ्न-निवारण के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उद्देश्य को लेकर मैं उस स्थान से यहाँ आपके पास आया हूँ। पृथ्वीनाथ! मेरे मन में यह विचार नहीं होता कि मैं क्रोध करके उन्हें शाप दे दूँ। मैं चाहता हूँ, आपके प्रसाद से उस यज्ञ को बिना किसी विघ्न-बाधा के पूर्ण करके उसके महान् पुण्य-फल का भागी होऊँ। अतः आर्त होकर शरण पाने की इच्छा से आपके पास आया हूँ, आप (उस यज्ञ की रक्षा द्वारा) मेरा संकट से उद्धार करने के योग्य हैं। आपके पुत्र श्रीराम अत्यंत पराक्रमी हैं। वे उन राक्षसों को विदीर्ण करने में पूर्ण समर्थ हैं। अतः राजसिंह! आपके जो ज्येष्ठ पुत्र काक पक्षधारी सत्य पराक्रमी, शूरवीर श्रीराम हैं, उनको मुझे सौंप दीजिये। ये मुझसे सुरक्षित रहकर अपने दिव्य तेज से उन यज्ञ विध्वंसक एवं समस्त संसार का अपकार करने वाले राक्षसों का मस्तक काटने में समर्थ होंगे। मैं इन श्रीराम को (अस्त्र-विद्या प्रदान करके) अनेक प्रकार से अनन्त कल्याण का भागी बनाऊँगा, जिससे ये तीनों लोकों के पूजनीय होंगे। वे पापी राक्षस युद्ध में कालकूट के समान भयानक हैं, उन्हें अपने बल और पराक्रम पर बड़ा गर्व है, वे खर और दूषण के भृत्य हैं तथा कुपित होने पर यमराज के समान जान पड़ते हैं। किंतु राजसिंह! वे श्रीराम के सायकों को उसी प्रकार नहीं सह सकेंगे, जैसे धूलिकण निरन्तर गिरती हुई मेघ की जलधारा को नहीं सह सकते। महाराज! मैं अपनी तपःशक्ति से इस बात को निश्चित रूप से जानता हूँ, आप भी मेरे कथनानुसार उन राक्षसों को मरा हुआ ही समझिये; क्योंकि हम तथा हमारे-जैसे दूसरे विज्ञ पुरुष संदिग्ध विषय में नहीं प्रवृत्त होते। कमलनयन श्रीराम कोई साधारण पुरुष नहीं, साक्षात् परमात्मा हैं; इन्हें मैं जानता हूँ, महा तेजस्वी वसिष्ठजी जानते हैं तथा दूसरे-दूसरे दीर्घदर्शी महर्षि भी जानते हैं। यदि आपके हृदय में धर्म, महत्ता और यश के लिये विशेष स्थान है तो अपने प्रिय पुत्र श्रीराम को आप मुझे दे दीजिये। मेरा वह यज्ञ, जिसमें श्रीराम को यज्ञद्रोही, विघ्नकर्ता राक्षसों का वध करना है, दस दिनों में पूरा हो जायगा। काकुत्स्थ! इसके लिये भी आपके वसिष्ठ आदि सभी मन्त्री आपको अवश्य अनुमति दे देंगे, अतः आप श्रीराम को मेरे साथ भेज दीजिये। ठीक समय पर किया हुआ थोड़ा सा भी कार्य बहुत उपकारी होता है और समय बीतने पर किया हुआ महान् उपकार भी व्यर्थ हो जाता है।'

इस प्रकार धर्म और अर्थ से युक्त बात कहकर धर्मात्मा, महातेजस्वी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.F.S.) Jammu Collection

मुनीश्वर विश्वामित्र चुप हो गये। मुनिवर विश्वामित्र का वचन सुनकर उन्हें युक्तियुक्त उत्तर देने के लिये कुछ सोचते हुए महानुभाव राजा दशरथ थोड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे; क्योंकि जिसका मनोरथ पूर्ण न किया गया हो, वह बुद्धिमान् पुरुष युक्तिसंगत उत्तर पाये बिना संतुष्ट नहीं होता है।

भरद्वाज! विश्वामित्रजी का यह भाषण सुनकर (वात्सल्य भावापन्न) नृपश्रेष्ठ दशरथ दो घड़ी तक निश्चेष्ट बैठे रहे, फिर इस प्रकार दीनतापूर्ण वचन बोले- 'मुनीश्वर! कमलनयन श्रीराम की अवस्था अभी सोलह वर्ष से भी कम है। ये राक्षसों के साथ युद्ध कर सकें, ऐसी योग्यता मैं इनमें नहीं देखता। प्रभो! मेरे पास यह पूरी एक अक्षौहिणी सेना है, जिसका मैं ही स्वामी हूँ। इस सेना के साथ चलकर मैं ही उन पिशाचों के साथ युद्ध करूँगा। ये सभी सैनिक मेरे भृत्य हैं-मेरे द्वारा पोषित हुए हैं। ये शूरवीर, पराक्रमी और उचित सलाह देने में भी चतुर हैं। मैं युद्ध के मुहाने पर हाथ में धनुष लेकर इन सबकी रक्षा करूँगा। इनके साथ रहकर मैं महेन्द्र से भी बढ़े-चढ़े वीरों को उसी तरह युद्ध का अवसर दूँगा, जैसे सिंह मतवाले हाथियों को देता है। श्रीराम अभी बालक हैं। इन्हें न तो उत्तम शस्त्रों का ज्ञान है और न ये युद्ध की कला में ही निपुण हुए हैं। समरांगण में कोटि-कोटि शूरवीरों के साथ अस्त्रों द्वारा कैसे युद्ध किया जाता है, इसका भी इनको ज्ञान नहीं है। केवल फुलवाड़ियों में, नगर के उपवनों में तथा उद्यानवर्ती वनकुन्जों में इनका घूमना-फिरना होता है। ये राजकुमारों के साथ आँगन की उस भूमि में विचरण करना जानते हैं, जिस पर फूल बिछे होते हैं।

'ब्रह्मन्! आजकल तो मेरे भाग्य के उलट-फेर से ये उसी तरह अत्यन्त कृश और पाण्डु वर्ण के हो गये हैं, जैसे पाला पड़ने से कमल पीला पड़कर गलने लगता है। अपने चारों पुत्रों में मेरा सबसे अधिक प्रेम इन श्रीराम पर ही है। अतः मेरे धर्मात्मा ज्येष्ठ पुत्र श्री राम को आप यहाँ से न ले जायँ। मुने! यदि आपको निशाचर-सेना का नाश ही अभीष्ट है तो मेरे साथ मेरी चतुरंगिणी सेना को लेकर चलिये। सुना जाता है कि रावण नाम से प्रसिद्ध एक महापराक्रमी राक्षस है, जो साक्षात् कुबेर का भाई और विश्रवा मुनि का पुत्र है। यदि वही दुर्बुद्धि राक्षस आपके यज्ञ में विघ्न डालता है, तब तो हम लोग उस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दुरात्मा के साथ युद्ध करने में असमर्थ हैं।'

छठा सर्ग समाप्त

सातवां सर्ग

विश्वामित्र का रोष

श्री वाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! स्नेहवश नेत्रों में आँसू भरकर राजा के द्वारा कही गयी इस बात को सुनकर विश्वामित्र कुपित हो उठे और उन भूपाल से इस प्रकार बोले- 'राजन्! मैं आपकी माँग पूरी करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके आप उसे तोड़ रहे हैं। इसका मतलब यह हुआ कि आप सिंह होकर अब सियार बनना चाहते हैं! रघुवंशियों के लिये यह व्यवहार अनुचित है। इससे तो इस कुल की मर्यादा ही उलट जायेगी। शीतरश्मि चन्द्रमा से कभी उष्ण किरणें नहीं प्रकट होतीं (आपसे ऐसे व्यवहार की कदापि आशा नहीं की जाती थी)। राजन्! यदि आप अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति करने में असमर्थ हैं तो मैं जैसे आया था, उसी तरह लौट जाऊँगा। ककुत्स्थवंशी नरेश! आप अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होकर बन्धु-बान्धवों के साथ सुखी होइये।"

महामुनि विश्वामित्र को क्रोध से आक्रान्त जान उत्तम व्रत का पालन करने वाले धैर्यवान् वशिष्ठजी बोले- "राजन्!

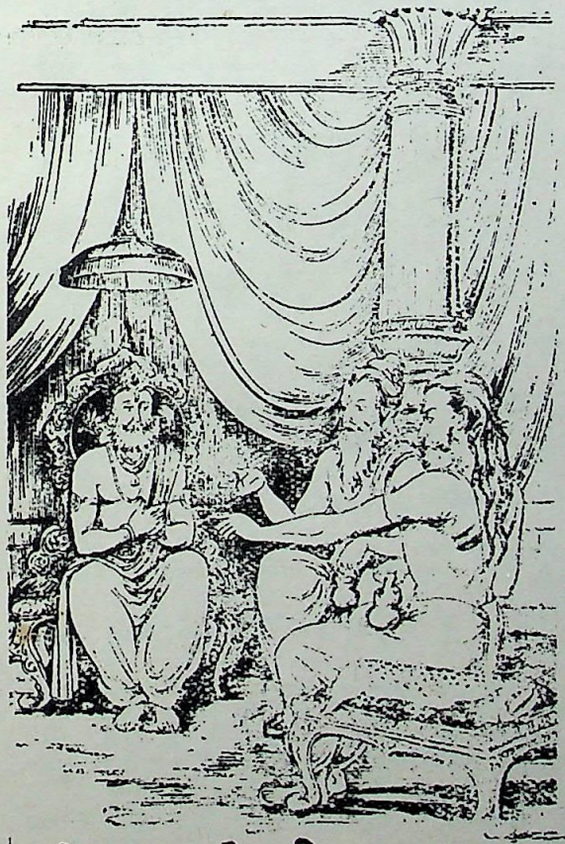

आप इक्ष्वाकुकुल में साक्षात् दूसरे धर्म के समान उत्पन्न हुए हैं। आप श्रीमान् दशरथ तीनों लोकों में सज्जनोचित सदगुणों से विभूषित हैं। धैर्यवान् तथा उत्तम व्रत के पालक हैं। आपको धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। आप धर्म और यश से सम्पन्न होकर ही तीनों लोकों में विख्यात हुए हैं। अपने धर्म को समझिये। उसका परित्याग न कीजिये। ये मुनि तीनों लोकों का शासन करने में समर्थ हैं, आपको इनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। राजन्! 'करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके यदि आप उसका पालन नहीं करते तो यह मिथ्याभाषण आपके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma Trust Jammu Collection

इष्ट और आपूर्त (यज्ञ-यागादि तथा वापी, कूप आदि के निर्माण से होने वाले पुण्य) को हर लेगा। इसलिये श्रीराम को विश्वामित्र जी के हाथ में सौंप दीजिये। आप इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए हैं और स्वयं विख्यात राजा दशरथ हैं। यदि आप अपने वचन का पालन नहीं करते तो दूसरा कौन करेगा ? ये विश्वामित्रजी धर्म के मूर्तिमान् स्वरूप हैं। ये बल और पराक्रम से सम्पन्न वीर पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। संसार में सबसे अधिक बुद्धिमान् हैं तथा तपस्या के परम आश्रय हैं। चराचर प्राणियों सहित त्रिलोकी में यह प्रसिद्ध है कि ये विश्वामित्रजी नाना प्रकार के अस्त्रों को जानते हैं। जिन अस्त्रों का इन्हें ज्ञान है, उन्हें दूसरा कोई पुरुष न तो जानता है और न भविष्य में जान सकेगा। देवता, ऋषि, असुर, राक्षस, नाग, यक्ष और गन्धर्व-ये सब एक साथ मिलकर आ जायँ तो भी वे विश्वामित्र मुनि की समानता नहीं कर सकते। जिन दिनों ये विश्वामित्रजी राज्य करते थे, उन दिनों इन्हें इनकी तपस्या से संतुष्ट हुए रुद्रदेव ने कृशाश्व द्वारा उत्पन्न किये गये अस्त्रों का दान किया था। वे अस्त्र दूसरों के लिये अत्यन्त दुर्जय हैं। उन अस्त्रों के अभिमानी देवता कृशाश्व के पुत्र हैं और संहार करने में प्रजापति के पुत्र रुद्रदेव की समानता करते हैं। उन कान्तिमान् महातेजस्वी और बल-विक्रमशाली अस्त्र-देवताओं ने सदा इनका अनुसरण किया है (क्योंकि इन्होंने अपनी तपस्या के प्रभाव से उन्हें सदा के लिये वश में कर लिया है)। ये विश्वविख्यात महातेजस्वी विश्वामित्र ऐसे महान् शक्तिशाली हैं, अतः श्रीराम को इनके साथ भेजने में आप अपने हृदय को व्याकुल न होने दें। ये महामुनीश्वर महान् प्रभावशाली हैं। साधु स्वभाव वाले नरेश! ये जिस पुरुष के समीप खड़े हों, वह मृत्यु के आ जाने पर भी अमरत्व को प्राप्त होगा। अतः आप मूढ़ मनुष्य की भाँति अपने मन में दीनता को स्थान न दीजिये।"

भरद्वाज ! जब वसिष्ठजी ऐसी बातें कहकर समझाने लगे, तब राजा दशरथ का चित्त प्रसन्न हो गया और उन्होंने अपने पुत्र श्रीराम तथा लक्ष्मण को बुलाने के लिये द्वारपाल को पुकारा-'प्रतीहार! तुम सत्य-पराक्रमी महाबाहु श्रीराम और लक्ष्मण को विश्वामित्रजी के पुण्यमय यज्ञ की निर्विघ्न सिद्धि के लिये शीघ्र यहाँ बुला ले आओ।'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

महाराज के इस प्रकार आज्ञा देने पर वह द्वारपाल अन्तःपुर के श्रीराम-मन्दिर में गया और दो ही घड़ी में वहाँ से लौटकर उन भूपाल से बोला-'देव! अपने बाहुबल से समस्त शत्रुदल का दर्प दलन करने वाले महाराज! जैसे भ्रमर रात को कमल में बंद होकर उदास बैठा रहता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी भी अपने भवन में अनमने होकर बैठे हैं।'

सातवां सर्ग समाप्त

आठवां सर्ग

श्रीराम का वैराग्य

द्वारपाल के यह कहने पर उसके साथ आये हुए श्रीराम के समस्त सेवकों को महाराज ने आश्वासन दिया और क्रमशः उनका समाचार पूछा-'राम कैसे हैं ? उनकी ऐसी अवस्था कैसे हो गयी है ? भूपाल के इस तरह पूछने पर श्रीराम के सेवकों ने दुखी होकर उनसे कहा-''देव! आपके पुत्र श्रीराम का शरीर अत्यन्त कृश हो गया है। उनके खेद से हम लोग भी इतने खिन्न हो गये हैं कि हम लोगों का शरीर भी गलकर छड़ी के समान पतला हो गया है और हम किसी तरह इसे ढोये जा रहे हैं। कमलनयन श्रीराम जब से तीर्थयात्रा से लौटकर आये हैं, तभी से उनका मन बहुत उदास रहता है। जो वस्तु उपयोग में लाने के योग्य, स्वादिष्ट, सुन्दर और मनोहर है, उसी से वे इस तरह खिन्न हो उठते हैं, मानो उन के नेत्रों में आँसू भर आये हों। भोजन, शय्या, सवारी, विलास, स्नान, आसन आदि उत्तम कार्य या वस्तु के प्रस्तुत होने पर भी वे उसका अभिनन्दन नहीं करते (उसकी ओर से विरक्त हो जाते हैं)। 'सम्पत्ति से, विपत्ति से, घर से अथवा विभिन्न चेष्टाओं से क्या होने-जाने वाला है ? क्योंकि सब कुछ मिथ्या है।' यह कहकर वे चुप हो जाते हैं और अकेले बैठे रहते हैं। परिहास होने पर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

वे प्रसन्न नहीं होते। भोगों में उनकी आसक्ति नहीं है। किसी प्रकार के कार्यों में उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। वे सदा मौनभाव का ही अवलम्बन किये रहते हैं। एकान्त में, विभिन्न दिशाओं में, नदियों के तटों पर, जंगलों में तथा गहन वनों में उन्हें सुख मिलता है-वहीं उनका मन लगता है। भूपाल ! वे पहनने के वस्त्र तथा खाने-पीने की वस्तुएँ न लेकर सदा उनकी ओर से विमुख ही रहते हैं तथा उस विमुखता या विरक्ति के द्वारा सन्यासी या तपस्वी के आचार का अनुसरण करते हैं। जनेश्वर! श्रीरामचन्द्रजी निर्जन स्थान में अकेले ही रहकर न कभी हँसते हैं, न गाते हैं और न रोते ही हैं। सदा पद्मासन लगाये शून्यचित्त (संकल्परहित) हो केवल बैठे रहते हैं। न किसी बात का अभिमान करते हैं न राजा होने की अभिलाषा रखते हैं, न सुख प्राप्त होने पर प्रसन्न होते हैं और न दुःख मिलने पर विषाद ही करते हैं। हम नहीं समझ पाते कि वे कहाँ जाते हैं, क्या करते हैं, क्या चाहते हैं, किसका अनुसरण करते हैं। वे प्रतिदिन दुबले हो रहे हैं। रोज-रोज पीले पड़ते चले जा रहे हैं और नित्यप्रति उनका वैराग्य बढ़ता ही जाता है। राजन्! सदा श्रीरामचन्द्रजी का अनुसरण करने वाले ये शत्रुघन और लक्ष्मणजी भी उन्हीं के समान दुर्बल होते जा रहे हैं। श्रीराम अपने पास रहने वाले सुहृज्जनों-मित्रों को यह उपदेश देते हैं कि 'ये भोग ऊपर-ऊपर से मनोरम दिखायी देते हैं, वास्तव में नश्वर हैं। अतः इनमें तुम लोग अपना मन न लगाओ। हम लोगों ने आयासरहित परम पद की प्राप्ति से दूर हटाने वाली चेष्टाओं द्वारा ही अपनी सारी आयु व्यर्थ बिता दी।' इस प्रकार मधुर और स्फुट वाणी द्वारा वे बारंबार गुनगुनाते रहते हैं। यदि पास बैठा हुआ कोई सेवक उनका अभिनन्दन करते हुए यह कहे कि 'आप सम्राट हों' तो वे उसके इस कथन को उन्मत्त प्रलाप-सा समझकर अन्यमनस्क हो हँसने लगते हैं। न तो किसी की कही हुई बात को सुनते हैं और न सामने पड़ी हुई वस्तु की ओर दृष्टिपात ही करते हैं। सुन्दर से सुन्दर वस्तु प्राप्त होने पर भी सर्वत्र उसकी अवहेलना ही करते हैं। जैसे मेघ द्वारा बरसाये गये जल की धाराएँ किसी बड़े भारी दुर्भेद्य पत्थर का भेदन नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार कामदेव के बाण कान्तिमती वनिताओं के बीच में रहते हुए भी श्रीरामचन्द्रजी के मन का भेदन नहीं कर पाते। 'धन आपत्तियों का एकमात्र स्थान है। तू

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इसकी इच्छा क्यों करता है ? श्रीरामचन्द्रजी सबको ऐसी ही शिक्षा देते हैं और अपना सारा धन उसकी इच्छा रखने वाले दीन याचकों को बाँट देते हैं। 'यह आपत्ति है, यह सम्पत्ति है-इस प्रकार की कल्पनाओं के रूप में केवल मन का मोह (अज्ञान) ही प्रकट होता है। 'हाय ! मैं मारा गया, मैं अनाथ हो गया- इस प्रकार सब लोग चीखते चिल्लाते रहते हैं, तो भी किसी को इस संसार से वैराग्य नहीं होता-यह कितने आश्चर्य की बात है!' श्रीराम प्रायः ऐसी ही बातें कहा करते हैं।'

आठवां सर्ग समाप्त

नवां सर्ग

वैराग्य का कारण बताना

तब विश्वामित्र जी ने कहा-परम बुद्धिमान् सत्पुरुषो ! यदि ऐसी बात है तो जैसे मृगों का झुंड अपने यूथपति को ले आता है, उसी प्रकार आप लोग भी रघुकुलनन्दन श्रीराम को शीघ्र यहाँ बुला लाइये। श्रीरामचन्द्रजी को यह मोह न तो किसी आपत्ति से हुआ है और न आसक्ति से ही। वे विवेक और वैराग्य से सम्पन्न हैं। अतः उन्हें मोह नहीं, बोध ही प्राप्त हुआ है, जो महान् अभ्युदयकारक है। इस विचारमूलक मोह का युक्तिद्वारा निवारण कर देने पर रघुकुलनन्दन श्रीराम हम लोगों की ही भाँति परम पद में प्रतिष्ठित हो जायँगे। हमारे उपदेश से वास्तविक बोध का उदय हो जाने पर श्रीरामचन्द्रजी अमृत पीये हुए पुरुष की भाँति सत्यता (त्रिकालाबाधित ब्रह्मरूपता), मुदिता (परमानन्दस्वरूपता), प्रज्ञा (अपरिच्छिन्न ज्ञानरूपता) को प्राप्त होकर विश्रान्ति-सुख से सम्पन्न, संतापशून्य, शरीर से हष्ट-पुष्ट और उत्तम कान्ति से युक्त हो जायँगे। फिर तो मन में अपनी पूर्णता का अनुभव करते हुए माननीय श्रीरामचन्द्रजी अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार प्राप्त होने वाली व्यवहार-परम्परा का निर्बाध रूप से पालन करने लगेंगे। वे महान् सत्वगुण से युक्त तथा लोकव्यापी निर्गुण-सगुणरूप परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान से सम्पन्न हो जायँगे। उन्हें सुख-दुःख की दशाएँ नहीं प्राप्त होंगी। वे मिट्टी के ढेले, पत्थर और सुवर्ण में कोई अन्तर नहीं देखेंगे- इन सबको समान समझने लगेंगे।

मुनीश्वर विश्वामित्र के यों कहने पर राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए, मानो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

उनका सारा मनोरथ पूर्ण हो गया। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को बुला लाने के लिये बारंबार दूत पर दूत भेजना आरम्भ किया। जब राजा और मुनि का संवाद हो रहा था, उसी समय श्रीरामचन्द्रजी अपने थोड़े-से सेवकों और दोनों भाई लक्ष्मण तथा शत्रुघन के साथ अपने पिता के पवित्र स्थान-राजसभा में गये। श्रीराम ने दूर से ही महाराज दशरथ को देखा। जैसे इन्द्र देवसमूह से घिरकर बैठते हैं, उसी प्रकार वे भी राजाओं की मण्डली से घिरे हुए बैठे थे। उनके दोनों ओर महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्र जी विराजमान थे। सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ का ज्ञान रखने वाले मन्त्रीगण माला की भाँति उन्हें सब ओर से घेरकर बैठे थे। इधर वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषियों तथा दशरथ आदि राजाओं ने भी कुमार कार्तिकेय के समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी को दूर से ही अपने पास आते देखा। वे सौम्य और समदर्शी थे। उनकी आकृति मंगलमय थी। उनका हृदय विनीतभाव से युक्त और उदार था। शरीर कान्तिमान् और शान्त (सौम्य) दिखायी देता था तथा वे परम पुरुषार्थ के भाजन (परमार्थस्वरूप) थे। पवित्र गुणवाले पुरुषों के आश्रय थे। समस्त सद्गणों ने मानो एकमात्र महान् सत्वगुण के लोभ से उनका आश्रय ले रक्खा था।

मुनीश्वर विश्वामित्र जब राजा से पूर्वोक्त बात-चीत करते हुए श्रीराम को बुलाने का अनुरोध कर रहे थे, उसी समय कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी पिता के चरणों में प्रणाम करने के लिये उनके सामने आये। सबके सुहृद् श्रीराम ने पहले पिता के चरणों में मस्तक झुकाया। तदनन्तर माननीय पुरुषों द्वारा भी मुख्यरूप से सम्मानित होने वाले दोनों मुनि वसिष्ठ और विश्वामित्र जी को प्रणाम किया। इसके बाद अन्य ब्राह्मणों, बन्धु-बान्धवों तथा गुरुजनों का अभिवादन किया। तत्पश्चात् राजाओं के समूह द्वारा की जाने वाली प्रणाम-परम्परा को उन्होंने प्रसन्न दृष्टि से उनकी ओर देखकर अपने मस्तक को किंचित् झुकाकर तथा मधुर वाणी के द्वारा कुछ बोलकर स्वीकार किया।

इसके बाद दोनों महर्षियों ने श्रीरामचन्द्रजी को आशीर्वाद दिया। तदनन्तर जिनके हृदय में अत्यन्त समता का भाव भरा हुआ था, वे देवोपम सुन्दर श्रीराम अपने पिता की पवित्र सन्निधि में आये। उस समय भूपाल दशरथ ने अपनी चरण-वन्दना करने वाले पुत्र को हृदय से लगाकर उनका मस्तक सूँघा।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इसी तरह शत्रुवीरों का संहार करने वाले राजा दशरथ ने स्नेह से युक्त हो लक्ष्मण और शत्रुघन को भी हृदय से लगाया (और उनके मस्तक सूँघे)। फिर श्रीरामचन्द्रजी पृथ्वी पर ही परिजनों द्वारा बिछाये गये वस्त्र के ऊपर बैठ गये।

तत्पश्चात् राजा बोले-बेटा! तुम्हें विवेक प्राप्त हो गया है। तुम विविध कल्याणमय गुणों के भाजन हो। तुम्हारे-जैसे पुरुष बड़े-बूढ़े लोगों, ब्राह्मणों तथा गुरुजनों की आज्ञा का पालन करते हुए ही पवित्र परमपद प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग मोह का अनुसरण करते हैं, उन्हें वह पद नहीं प्राप्त होता। वत्स! तभी तक आपत्तियाँ दुर्बल एवं तुच्छ होकर दूर ही रहती हैं (पास नहीं फटकने पातीं) जब तक कि मोह को फैलने का अवसर नहीं दिया जाता।

इसके बाद श्रीवसिष्ठजी ने कहा-महाबाहु राजकुमार! तुम बड़े शूरवीर हो। तुमने उन विषयरूपी शत्रुओं पर भी विजय पा ली है, जो दुःख की परम्परा के

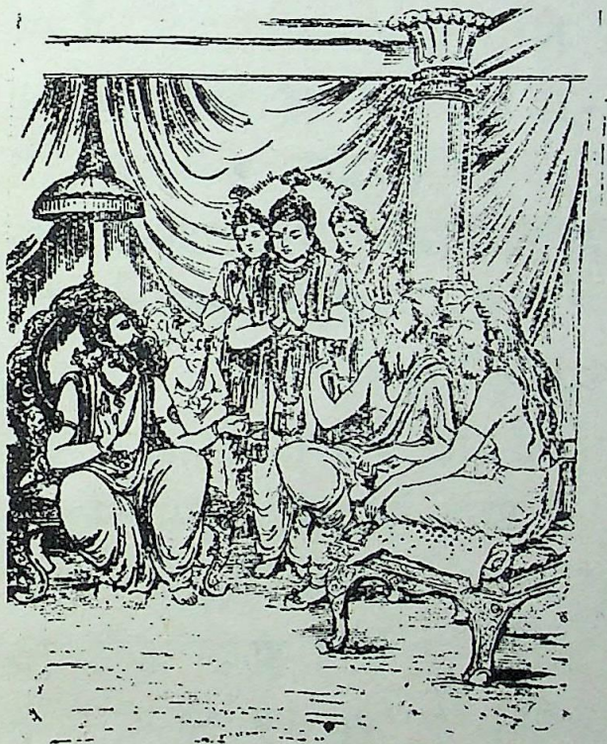

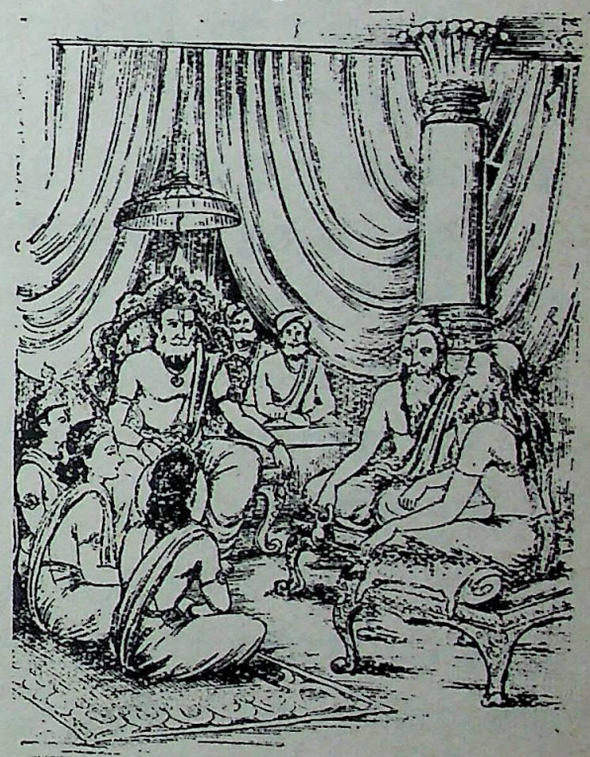

उत्पादक तथा बड़ी कठिनाई से नष्ट होने वाले हैं। ऐसे प्रभावशाली होने पर भी तुम अज्ञानी मनुष्यों के योग्य विक्षेपरूपी अगणित तरंगमालाओं से युक्त तथा आवरणरूपी जड़ता (जलरूपता) से सुशोभित होने वाले व्यामोह के समुद्र में आत्मज्ञानशून्य पुरुष की भाँति क्यों डूबे जा रहे हो ?

श्रीविश्वामित्रजी ने कहा-राजकुमार! हिलते हुए नील कमलों के समूह की भाँति जो तुम्हारे नेत्र चंचल हो रहे हैं, इसमें तुम्हारे चित्त की व्यग्रता ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

कारण है। इस व्यग्रताजनित नेत्रों की चंचलता को त्यागकर बताओ, क्यों मोहित हो रहे हो ? तुम्हारे इस मोह अथवा भ्रम का क्या कारण है ? निष्पाप श्रीराम! तुम्हारे मन में जो अभिलाषा हो, उसे शीघ्र बताओ। तुम्हें वह सब मनोरथ प्राप्त होगा, जिससे मानसिक व्यथाएँ फिर तुम्हें कष्ट नहीं पहुँचायेंगी।

उत्तम बुद्धि वाले विश्वामित्रजी का यह वचन, जिसके भीतर अपनी अभिलाषा के अनुरूप अर्थ का प्रकाश निहित था, सुनकर रघुकुलकेतु श्रीराम ने खेद त्याग दिया।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज! मुनीश्वर विश्वामित्र के इस प्रकार पूछने पर श्रीरामचन्द्रजी ने धैर्य धारण करके परिपूर्ण अर्थ के गौरव से दबी हुई-सी मन्द-मन्द मनोहर वाणी में कहा-

श्रीराम बोले-मुनीश्वर ! मैं अपने पिताजी के इस महल में उत्पन्न हुआ, क्रमशः बढ़ा और फिर मैंने विद्या भी प्राप्त की। तत्पश्चात सदाचार के पालन में तत्पर रहकर तीर्थयात्रा के उद्देश्य से समुद्रों द्वारा घिरी हुई सारी पृथ्वी पर भ्रमण किया। इतने समय में मेरे मन में जो विचार उत्पन्न हुआ, वह इस संसारविषयक आस्था को उठा देने वाला है। तीर्थयात्रा करने के अनन्तर मेरा मन विवेक से पूर्ण हो गया, जिससे मेरी बुद्धि भोगों की ओर से नीरस (विरक्त) हो गयी और उसके द्वारा मैंने इस प्रकार विचारना आरम्भ किया-

यह जो संसार का विस्तार है, इसमें क्या सुख है ? (कुछ भी तो नहीं है।) चर और अचर प्राणियों की चेष्टाओं के विषय तथा केवल वैभवकाल में ही रहने वाले ये जितने भोग के साधनभूत पदार्थ हैं, सब-के-सब अस्थिर (क्षणभंगुर), आपत्तियों के स्वामी (अर्थात् केवल विपत्ति में ही डालने वाले) तथा पापस्वरूप हैं। जैसे मरीचिका में जल न होने पर भी भ्रम से उसे जल समझकर उसके द्वारा मोहित हुए मृग वन में बड़ी दूरतक खिंचे चले जाते हैं, उसी प्रकार मूढ़बुद्धि हुए लोग संसार के पदार्थों में सुख न होने पर भी उनमें सुख मानते हैं और उसी के लोभ से आकृष्ट होकर इधर-उधर भटकते रहते हैं। यद्यपि यहाँ लोग किसी के द्वारा बेचे नहीं गये हैं तथापि बिके हुए के समान परवश हो रहे हैं। इस बात को जानते हुए भी कि यह सब कुछ माया का खेल है, हम सब लोग मूढ़ बने बैठे हैं (इस माया से मुक्त होने का प्रयत्न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

नहीं करते), यह कितने खेद की बात है।

संसार के इस प्रपन्चों में जो अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण भोग दिखायी देते हैं, ये क्या हैं-इस पर विचार करना चाहिये। सब लोग व्यर्थ ही उनके मोह में पड़कर भ्रान्तिवश अपने को बद्ध मानकर बैठे हुए हैं। जैसे वन में किसी गड्ढे के भीतर गिरे हुए मूढ़ मृग दीर्घकाल के पश्चात यह जान पाते हैं कि हम गड्ढे में पड़े हैं, उसी प्रकार लोगों ने बहुत समय के बाद यह जाना है कि हम मूढ़ जीव व्यर्थ ही मोह में पड़े हुए हैं। मुझे राज्य से क्या लेना है और भोगों से क्या प्रयोजन है ? मैं कौन हूँ ? यह दृश्य प्रपन्च क्या है और किस लिये सामने आया है ? जो मिथ्या है, वह मिथ्या ही रहे। उसके मिथ्या होने से किसकी क्या हानि होने वाली है। ब्रह्मन् ! जैसे यत्र-तत्र भ्रमण करने वाले पथिक को मरूभूमि से विरक्ति हो जाती है, वैसे ही इस प्रकार विचार करते-करते सभी भोग्य पदार्थों से मेरी अरुचि हो गयी है।

मुनीश्वर ! देखिये, भिन्न-भिन्न रूपों में उपलब्ध होने वाले उन तुच्छ भोगों ने हमको उसी प्रकार जर्जर बना दिया है, जैसे प्रचण्ड वायु पर्वतीय वृक्षों को जर्जर कर देती है। सब लोग अचेतन-से होकर प्राणनामधारी पवन से प्रेरित हो व्यर्थ ही शब्दोच्चारण कर रहे हैं, जैसे कीचक नामक बाँस अपने छेदों में हवा भर जाने से बाँसुरी की सी ध्वनि करने लगते हैं। संसार की सम्पदाएँ सदा सबकी वंचना करती रहती हैं। ये मनुष्यों की मनोवृत्ति को मोह लेती हैं, उनकी सदगुणराशिका नाश कर देती हैं और तरह-तरह के दुःख दिया करती हैं। दुःखों का जाल-सा बिछाती रहती हैं। ये धन-वैभव चिन्ताओं के चक्कर में डालने वाले हैं, इसलिये मुझे आनन्द नहीं देते तथा बच्चोंवाली स्त्रियों से भरे हुए घर भी भयानक विपत्तियों के आवास-स्थान की भाँति मुझे दुःख ही प्रदान करते हैं, सुख नहीं। मुने! जैसे बाँस और तिनकों से आच्छादित गर्त में गिरने के कारण प्राप्त होने वाले क्षुधा, पिपासा आदि दोषों का तथा बन्धन आदि दुर्दशाओं का विचार करते रहने से बँधे हुए हाथी को कभी सुख नहीं मिलता, उसी प्रकार देह आदि पदार्थों की क्षणभंगुरता के कारण उनमें अनेक प्रकार के दोषों और दुर्दशाओं का स्मरण करके मेरे मन को भी शान्ति नहीं मिल रही है। अज्ञानरूपी रात्रि में तीव्र मोहरूपी कुहरे से लोगों की ज्ञान रूपी ज्योति के नष्ट हो जाने पर दूसरों को दुःख देने में परम चतुर विषयरूपी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

सैकड़ों चोर हर समय और प्रत्येक दशा में विवेकरूपी श्रेष्ठ रत्न का अपहरण करने के लिये जी-जान से लगे हुए हैं। युद्ध में उन्हें मार भगाने के लिये तत्वज्ञानी पुरुषों को छोड़कर दूसरे कौन-से सुभट समर्थ हो सकते हैं (तत्वज्ञानी ही उनको नष्ट करने में समर्थ हैं, दूसरे नहीं)

नवाँ सर्ग समाप्त

दसवां सर्ग

धन सम्पत्ति तथा आयु की निस्सारता

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं-मुने! यह लक्ष्मी, यह धन-सम्पत्ति संसार में यदि स्थिर होकर रहे तो बहुत से सुखों की साधनभूत होने के कारण वह सबसे उत्कृष्ट वस्तु है- यह मूढ़ मनुष्यों की ही कल्पना है। वास्तव में न तो वह कभी स्थिर रहती है और उत्कृष्ट ही कहलाने योग्य है; क्योंकि वह सबको व्यामोह में ही डालती रहती है। अतः (विषयों की भाँति) वह भी निश्चय ही अनर्थ की प्राप्ति कराने वाली है। जैसे नदी से असंख्य चंचल तरगें प्रकट होती और वायु की सहायता से बढ़ती रहतीं हैं, उसी प्रकार इस श्री अथवा सम्पत्ति से बहुत सी चिन्तारूपिणी पुत्रियाँ उत्पन्न होती हैं और विविध दुश्चेष्टाओं द्वारा वृद्धि को प्राप्त होती रहती हैं। यह सम्पत्ति शास्त्रोक्त सदाचार से रहित पुरुष को पाकर इधर-उधर दौड़ती रहती है, कहीं एक जगह पैर जमाकर स्थिर नहीं रहती। यह मूढ़ सम्पत्ति किसी गुणवान् पुरुष के द्वारा बड़े दुःख से उपार्जित होने पर भी प्रायः उसके उपभोग में नहीं आती और राजाओं की प्रकृति के समान (श्रेष्ठ पुरुष की उपेक्षा करके भी) गुण अवगुण का विचार किये बिना ही जो कोई भी अपने पास रहता है, उसी का अवलम्बन कर लेती है। लोग तभी तक अपने और पराये जनों के प्रति शीतल-मृदुल (दया, उदारता और स्नेह आदि से सम्पन्न) बने रहते हैं जब तक कि वे प्रबल वायु के वेग से बर्फ की भाँति धन-सम्पत्ति के द्वारा कठोर एवं दुस्सह नहीं बना दिये जाते। जैसे मुट्ठी भर धूल मणियों को मलिन कर देती है, उसी प्रकार धन-सम्पत्ति ने बड़े-बड़े विद्वान, शूरवीर, कृतज्ञ, सुन्दर और कोमल स्वाभाव वाले पुरुषों को भी मलिन (कलंकित) कर दिया है। भगवन्! धन-सम्पत्ति सुख देने के लिये नहीं, दुःख देने के लिये ही बढ़ती हैं; जैसे विष की बेल सुरक्षित रक्खी जाय तो वह मौत

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (Prof.) Jammu Collection

ही देती है, उसी प्रकार धन-सम्पत्ति की रक्षा करने पर भी वह विनाश का ही कारण होती हैं।

जो धन-सम्पत्ति से युक्त होकर भी जनता की निन्दा का पात्र न हो, शूरवीर होकर भी अपने ही मुँह से अपनी बढा-चढ़ा कर प्रशंसा न करे तथा स्वामी होकर भी समस्त सेवकों अथवा प्रजा-जनों पर समान दृष्टि रखता हो-ये तीन तरह के पुरुष संसार में दुर्लभ हैं। यह धन-सम्पत्ति दुःखरूपी सर्पों के रहने के लिये विषम (भयंकर) और गहन (दुर्गम) गुफा है तथा महान् मोहरूपी गजराजों के निवास के लिये विन्ध्याचल की विशाल तटभूमि है। अर्थात् यह महान् दुःख देने वाली और महान् मोह से आवृत करने वाली है। सत्कर्मरूपी कमलों को संकुचित करने के लिये यह रात्रि के समान है। दुःखरूपी कुमुदों के विकास के लिये चाँदनी का काम करने वाली है तथा उत्तम दृष्टि (श्रेष्ठ बुद्धि) रूपी दीपक को बुझाने के लिये वायु के तुल्य है। धन-सम्पत्ति भय और भ्रान्तिरूपी बादलों की उत्पत्ति तथा वृद्धि करने वाली है, विषाद रूपी विष को बढ़ाने वाली है, विकल्प (संशय) रूपी खेती की उपज के लिये क्यारी के समान है तथा खेद या कष्ट प्रदान करने के लिये भयंकर सर्पिणी के तुल्य है। वैराग्यरूपी लताओं को नष्ट करने के लिये ओले के समान है। काम आदि मनोविकाररूपी उल्लुओं को सबल बनाने के लिये अँधेरी रात्रि के तुल्य है। विवेकरूपी चन्द्रमा को ग्रस लेने के लिये राहु की दाढ़ है और सौजन्यरूपी कमल को संकुचित कर देने के लिये चन्द्रमा की चाँदनी है। इतना ही नहीं, यह इन्द्र-धनुष के समान क्षणस्थायी विविध रंगों (रागों) के कारण मनोहर जान पड़ती है तथा बिजली के समान चपल तथा उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाने वाली है। प्रायः जड़ ही इसके आश्रय हैं। यह एक रूप से कहीं क्षणभर भी नहीं ठहरती। पानी की लहर और दीपक की लौ के समान चंचल है तथा जिन्हें जानना अत्यन्त कठिन है, ऐसी असंख्य दुर्दशाओं की प्राप्ति कराने वाली है। यह धन सम्पत्ति मनोरम होने के कारण चित्त-वृत्ति को अपनी ओर खींच लेती है। प्रायः अनर्थकारी कर्मों से इसकी प्राप्ति होती है और प्राप्त होकर भी यह क्षणभर में नष्ट हो जाने वाली है।

मुने ! जीव की आयु पत्ते के सिरे पर लटकते हुए जल-बिन्दु के समान अस्थिर है। वह उन्मत्त के समान असमय में ही इस कुत्सित शरीर को छोड़कर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

चल देती है। जिनका चित्त विषयरूपी विषधर सर्पों के संसर्ग से सर्वथा जर्जर हो गया है और जिनमें प्रौढ़ आत्म-विवेक का अभाव है, उन लोगों की आयु उन्हें क्लेश देने वाली ही है। जो जानने योग्य वस्तु (परब्रह्म परमात्मा) को जान चुके हैं और उस अपरिच्छिन्न ब्रह्मपद में प्रतिष्ठित हैं ऐसे महापुरुषों की आयु लाभ-हानि एवं सुख-दुख में चित्त को समानभाव से सुस्थिर रखने वाली होने के कारण सुखदायिनी है। महर्षे ! हमलोग नपे-तुले आकारवाले शरीर में ही 'यह आत्मा है' ऐसा निश्चय किये बैठे हैं। अतः संसाररूपी मेघ में बिजली के समान चमककर विलुप्त हो जाने वाली इस क्षणभंगुर आयु में हम सुखी नहीं हैं। शरदऋतु के छिटपुट बादल, तेलरहित दीपक तथा जल की तरंग के समान चंचल आयु गयी हुई ही देखी जाती है। तरंग को, जल आदि में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को, विद्युत-पुंज को और आकाशकमल को हाथ से पकड़ने का तो मैं विश्वास रख सकता हूँ; परंतु इस अस्थिर आयु पर मेरा कोई भरोसा नहीं है (असम्भव है)। जैसे खच्चरी दुःख भोगने के लिये ही गर्भ धारण की इच्छा करती है, उसी प्रकार जिसका मन विश्रान्त (तृष्णाओं से अत्यन्त उपरत) नहीं है, ऐसा मूर्ख मनुष्य कष्ट उठाने के लिये ही व्यर्थ आयु का विस्तार (अधिक काल तक जीना) चाहता है। ब्रह्मन ! इस संसार-चक्र में जो देहरूपी लता है, यह सृष्टिरूपी समुद्र के जल का विकारभूत फेन ही है (क्योंकि उसी के समान अत्यन्त अस्थिर है)। अतः इसमें अधिक कालतक जीवित रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। वास्तव में वही जीवन उत्तम कहलाता है, जिससे अवश्य पाने योग्य वस्तु (परमात्म-ज्ञान) की प्राप्ति होती है, जिससे फिर शोक नहीं करना पड़ता तथा जो परम निर्वाणरूप सुख का स्थान है। यों तो वृक्ष भी जीते हैं, पशु और पक्षी भी जीवित रहते हैं; परंतु वास्तव में उसी पुरुष का जीवन सफल है, जिसका मन मनन के द्वारा जीवित न रहे-अमनीभाव को प्राप्त हो जाय। संसार में उन्हीं जीवों का जन्म लेना सफल है और उन्हीं का जीवन श्रेष्ठ है, जो फिर यहाँ जन्म नहीं लेते। शेष प्राणी तो बूढ़े गदहों के समान हैं (जैसे गदहे अधिक काल तक जीने पर भी उत्तम जीवन नहीं बिताते, उसी प्रकार उन प्राणियों का भी जीवन है, जो इस अपवित्र देह को ही आत्मा माने बैठे हैं)।

अविवेकी मनुष्य के लिये शास्त्रों का अध्ययन भाररूप है। रागी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

(विषयासक्त) पुरुष के लिये तत्वज्ञान भार है। अशान्त मनुष्य के लिये मन भार है तथा जो आत्मज्ञान से शून्य है, उसके लिये शरीर भार है। जिसकी बुद्धि दूषित है, उस पुरुष के लिये रूप, आयु, मन बुद्धि, अहंकार तथा चेष्टा-ये सब के सब उसी प्रकार दुःखदायक हैं, जैसे बोझ ढोने वाले मनुष्य के लिये उसके सिर का बोझ कष्टदायक होता है। आयु कठोर परिश्रम एवं सुदृढ़ कष्ट को ही देने वाली है। इसमें श्रम की निवृत्ति कभी नहीं होती, कामनाओं की पूर्ति का भी अभाव ही रहता है। यह आपत्तियों का परम आश्रय और रोग रूपी पक्षियों का घोंसला है। जैसे बिल में विश्राम करने वाले तथा विष के द्वारा संताप देने वाले भयंकर सर्प बन की वायु का पान करते हैं, उसी प्रकार शरीर रूपी बिल में रहकर विषतुल्य दाह पैदा करने वाले भीषण रोगरूपी सर्प जीव की आयु का पान करते हैं। जैसे काठ के छोटे-छोटे कीड़े उसके भीतर रहकर पुराने पेड़ को सदा काटते और उससे धूल सी गिराते रहते हैं, उसी प्रकार सदा पीब, रक्त और मल बहाने वाले तथा देह के भीतर निवास करने वाले दुष्ट रोग आदि दुःख निरन्तर आयु का उच्छेद करते रहते हैं। जैसे बिल्ली चूहे को शीघ्र निगल जाने के लिये उत्कट अभिलाषा के साथ निरन्तर उसकी ओर ताकती रहती है, उसी प्रकार मृत्यु भी आयु को अपना ग्रास बनाने के लिये ही सदा उसकी ताक में बैठी रहती है। इस संसार में यह आयु जिस प्रकार स्थिरता और सुख के द्वारा सदा के लिये परित्यक्त, अत्यन्त तुच्छ, गुणहीन तथा मृत्यु की भाजन है, वैसी दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

दसवां सर्ग समाप्त

ग्यारहवां सर्ग

अहंकार और चित्त के दोष

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं-मुनिश्रेष्ठ! यह अनेक रूप वाला संसार दीपों से दीन विषयलम्पट लोगों को अहंकार के वशीभूत होने के कारण ही निरन्तर राग-द्वेष आदि दोषों के कोशरूप अनर्थ की प्राप्ति कराता रहता है। अहंकार के वश में होने से ही मनुष्य पर आपत्ति आती है-उसे शारीरिक कष्ट भोगने पड़ते हैं। अहंकार से ही अनेक दुःखद मानसिक व्यथाएँ होती हैं तथा अहंकार से ही राग अथवा दुश्चेष्टाएँ होती हैं। जैसे बहेलिये के द्वारा मृगों को पकड़ने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Collection
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

के लिये बहुत बड़ा जाल बिछाया जाता है, उसी प्रकार अहंकाररूपी दोष के कारण संसाररूपी अँधेरी रात में जीवों के मन को मोहित करने वाली विशाल माया बिछी हुई है। अहंकार शान्तिरूपी चन्द्रमा को निगलने के लिये राहु का मुख है, पुण्यरूपी कमलों का विनाश करने के लिये हिमरूप वज्र है और सब भूतों में समदर्शितारूपी मेघ का विध्वंस करने के लिये शरद ऋतु है। ऐसे अहंकार का मैं त्याग करता हूँ। न मैं अमुक नाम वाला हूँ, न विषयों में मेरी रुचि है और न मन ही मेरा है। मैं शान्त होकर मन को जीतने वाले महात्मा पुरुष की भाँति अपने-आप में ही स्थित रहना चाहता हूँ। ब्रह्मन् ! यदि अहंकार रहता है तो आपत्तिकाल में मुझे दुःख होता है और यदि नहीं रहता तो मैं निरन्तर सुख का अनुभव करता हूँ। इसलिये अहंकार रहित होना ही श्रेष्ठ है।

मुने! मैं अहंकार का त्याग करके शान्तचित्त हो उद्वेगशून्य होकर बैठा रहता हूँ; क्योंकि भोगों के समूह का आधार ही क्षणभंगुर है। इस देहरूपी विशाल वन में जो घनीभूत अहंकाररूपी मोटा-ताजा सिंह है, उसी ने इस जगत् का विस्तार किया है (इसे अपनी क्रीड़ास्थली बनाया है)। मुने! जैसे शत्रु किसी को मारने के लिये मन्त्र-तन्त्र के द्वारा मारण-उच्चाटन आदि का जाल फैलाता है, उसी प्रकार इस अहंकाररूपी महान् शत्रु ने संसार में जीव का पतन करने के लिये बिना मन्त्र-तन्त्र के ही स्त्री, पुत्र, मित्र आदि के जाल फैला रक्खे हैं। इस अहंकार का मूलोच्छेदपूर्वक निराकरण कर देने पर ये सभी मानसिक दुश्चिन्ताएँ तुरंत अपने-आप विलीन हो जाती हैं। अहंकाररूपी बादल के फट जाने पर शान्ति का विनाश करने वाला एवं हृदयाकाश में छाया हुआ महान् मोहरूपी कुहासा धीरे-धीरे न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। महानुभाव मुनीश्वर! जो सम्पूर्ण आपत्तियों का घर, शान्ति आदि उत्तम गुणों से रहित तथा हृदय के भीतर निवास करने वाला है, उस अनित्य अहंकार का मैं आश्रय लेना नहीं चाहता (उसके अधीन होना नहीं चाहता)। अपने सुदृढ़ विवेक के द्वारा मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ कि यह अहंकार नामक वस्तु सब ओर से अतिशय दुःखरूप ही है। अतः अब मेरे लिये जो कुछ भी कर्तव्य शेष रह गया हो, उसे बताते हुए आप मुझे अध्यात्मविषयक उपदेश दीजिये।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मुनीश्वर! जैसे वायु के प्रवाह में पड़कर मोरपंख का अग्रभाग वेग से हिलता रहता है, उसी प्रकार यह चंचल चित्त भी अत्यन्त व्यग्र होकर व्यर्थ ही इधर-उधर दौड़ता रहता है। जैसे कुत्ता अपना पेट भरने के लिये व्याकुल हो गाँव में दूर दूर तक के घरों या स्थानों का चक्कर लगाया करता है, वही दशा इस चंचल मन की है। इसे कहीं भी कोई अनुकूल वस्तु नहीं प्राप्त होती। इसलिये यह दीन बना रहता है। यदि इसे कभी विशाल धन का भंडार प्राप्त हो जाय, तो भी यह भीतर से तृप्त नहीं होता। जैसे बाँस या बेंत की बनी हुई पिटारी कभी जल से नहीं भरती, उसी प्रकार धन से मनुष्य का जी नहीं भरता। मुने! जैसे अपने झुंड से बिछुड़कर जाल में जकड़े हुए मृग को कभी सुख नहीं मिलता, उसी प्रकार समस्त साधनों से शून्य (एवं सत्संगरहित) मन सदा दुर्वासनाओं के जाल में जकड़ा रहता है। इसलिये उसे कभी सुख और संतोष नहीं प्राप्त होता। मुने! तरंगों के समान चंचल वृत्ति को धारण करने वाला यह मन अपने स्थूल-सूक्ष्म अवयव विभाग को छोड़कर एक क्षण के लिये भी हृदय में स्थिर नहीं रहता। विषयों के चिन्तन से क्षोभ को प्राप्त हुआ यह मन मन्दराचल के आघात से उछलती हुई क्षीरसागर की दुग्धराशि के समान दसों दिशाओं में दौड़ता या भटकता फिरता है, किंतु कहीं भी शान्ति को नहीं पाता।

ब्रह्मन्! जैसे मृग गड्ढे में गिरने की कोई चिन्ता न करके हरी-हरी दूब चरने की इच्छा से प्रेरित हो बहुत दूर तक दौड़ लगाता रहता है, उसी प्रकार यह मन नरक के गर्त में गिरने की परवाह न करके भोग-लाभ की आशा से बड़ी दूर तक चक्कर लगाता रहता है (भाँति-भाँति के मनसूबे बाँधता रहता है)। जैसे पिंजड़े में बंद किया हुआ सिंह चिन्ता के कारण एक जगह स्थिर होकर नहीं रहता, उसी तरह नाना प्रकार की चिन्ताओं से अत्यन्त चपल हुआ मन अपनी चंचल वृत्ति के कारण कहीं स्थिर नहीं रह पाता। जैसे हंस जल से दूध को निकाल लेता है, वैसे ही मोहरूपी रथपर आरूढ़ हुआ यह मन भी इस शरीर से उद्वेगशून्य समता के सुख का अपहरण कर लेता है। ब्रह्मन्! मन रूपी ग्रह अग्नि से भी अधिक उष्ण है। उसके ऊपर चढ़ना पर्वत पर चढ़ने से भी अधिक कठिन है तथा वह वज्र से भी बढ़कर कठोर है। जैसे मांसभक्षी पक्षी मांस पर टूट पड़ता है, उसी प्रकार मन भी इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध होने वाले विषयों की ओर दौड़ पड़ता है। परंतु जैसे बालक पहले तो खिलौने की ओर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama (LPS) Jammu Collection

ललकता है, फिर उसे पाकर थोड़ी ही देर में उससे मुँह मोड़ लेता है, उसी तरह यह मन प्राप्त हुए विषय से क्षणभर में ही विरत हो जाता है (और नये-नये विषय की खोज करने लगता है)।

समुद्र को पी जाना, सुमेरू पर्वत को जड़ से उखाड़ फेंकना तथा अग्नि का ही आहार करना-ये महान् एवं दुस्साध्य कार्य हैं। परंतु चंचल चित्त को वश में कर लेना इनसे भी महान् एवं कठिन कार्य है। सम्पूर्ण पदार्थों का कारण चित्त ही है। जब तक चित्त है, तभी तक तीनों लोकों की सत्ता है, उसके क्षीण होते ही जगत् क्षीण हो जाता है। इसलिये इस चित्तरूपी रोग की यत्नपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये। मुने! जैसे महान् पर्वत से अनेकानेक वनों एवं कानों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मन से ये सैकड़ों सुख-दुख पैदा हुए हैं-इसमें संशय नहीं है। अध्यात्मविषयक विवेक से जब यह मन दुर्बल हो जाता है, तब ये सारे सुख-दुःख निश्चय ही पूर्णरूप से गल जाते हैं-ऐसा मेरा विश्वास है। महान् मुमुक्षु पुरुष जिसके जीते जाने पर शम्, दम, क्षमा, दया, समता, शान्ति, संतोष, सरलता आदि समस्त सदगुणों के स्वाधीन होने की आशा करते रहे हैं, उस शत्रुरूप चित्त को जीतने के लिये मैं सब प्रकार से उद्यत हुआ हूँ। अतएव जैसे चन्द्रमा मेघमाला अभिनन्दन नहीं करता, उसी प्रकार मैं तीव्र वैराग्य-सम्पत्ति से युक्त होने के कारण जड़ और मलिन विलासवाली लक्ष्मी का अभिनन्दन नहीं करता।

ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त

बारहवाँ सर्ग

तृष्णा की निन्दा

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं-मुनीश्वर! चेतन जीवरूपी आकाश में हृदय के अज्ञानान्धकार से परिपूर्ण दुस्तर तृष्णारूपिणी रात्रि का सहारा पाकर नाना प्रकार के दोषरूपी उल्लुओं की जमातें क्रियाशील हो उठती हैं। जैसे रात में ओस के कणों से अभिषिक्त तथा आसपास के उपवनों में खिले हुए कांचन पुष्प (धतूरे के फूल) की उज्जवल शोभा से सुशोभित चने की फलियाँ निश्चय ही अधिक विकास को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार अनेक तरह के दुःखमय विलापों से प्रकट हुए अश्रुविन्दुओं से आर्द्र तथा निकटवर्ती सुवर्ण आदि की अभिलाषा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उज्ज्वल हुई चिन्ता या तृष्णा अवश्य अधिकाधिक बढ़ने लगती है। जैसे समुद्र के भीतर भँवर एवं हलचल उत्पन्न करने के लिये ही तरंगे उठा करती हैं, उसी तरह हृदय को चंचल बना देने वाली तृष्णा अन्तःकरण में भ्रम एवं आकुलता पैदा करने के लिये ही उस सीमातक आ पहुँचती हैं, जहाँ वह धनादिकी प्राप्ति के लिये कष्टप्रद उत्साह को बढ़ावा देती है। यद्यपि तृष्णा के वेग को रोकने के लिये न जाने कहाँ-कहाँ से उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार कलंकिनी तृष्णा ने इसे न जाने कहाँ-किस अयोग्य अवस्था में पहुँचा दिया। जैसे जाल में फँसे हुए पक्षी अपने घोंसले में जाने की शक्ति से वंचित हो वहीं शोक-दुःख से मोहित हो जाते हैं, वैसे ही हमलोग चिन्ता या तृष्णा के जाल में फँसकर अपने पारमार्थिक स्वरूप को प्राप्त करने में असमर्थ हो मोह में डूबे रहते हैं।

तृष्णा एक पागल घोड़ी के समान है, जो यहाँ से दूर-दूर जाकर बारंबार लौट आती और फिर तुरंत ही सम्पूर्ण दिशाओं में चक्कर काटने लगती है। जैसे घटीयन्त्र (रहट) के ऊपर लगी हुई रस्सी घट के साथ सदा ऊपर-नीचे आती रहती है, जड़ या जल से सम्बन्ध रखती है, अपने भीतर गाँठें रखती है और चंचल बनी रहती है, उसी तरह यह तृष्णा धर्म और अधर्म के अनुसार सदा स्वर्ग और नरक में गमनागमन कराती, चेतन और जड़ की ग्रन्थि से जुड़ी रहती, जड़ पदार्थों से सम्बन्ध रखती और सदा विक्षुब्ध बनी रहती है। जो देह के भीतर मन में गुँथी हुई है, जिसका छेदन करना प्रायः सभी के लिये अत्यन्त कठिन है, उस तृष्णा के द्वारा मनुष्य उसी प्रकार शीघ्र भारवाही बना लिया जाता है, जैसे रासकी रस्सी बैल को तत्काल भार ढोने के लिये विवश कर देती है। जैसे बहेलिये की स्त्री पक्षियों को फँसाने के लिये जाल बनाती है, उसी प्रकार सदा आकर्षणशील स्वभाव वाली तृष्णा लोगों को फँसाने के लिये स्त्री, पुत्र और मित्र आदि की परम्परा रचती रहती है। यद्यपि मैं धीर हूँ, तथापि भयानक काली रात के समान तृष्णा मुझे भयभीत सा कर देती है। विवेकरूपी नेत्र से सम्पन्न हूँ, तो भी वह मुझे अंधा-सा बना देती है और सच्चिदानन्द होने पर भी मुझे वह मानो खेद में डाल देती है।

तृष्णा को काली नागिन के समान समझना चाहिये। वह सहस्त्रों कुटिलताओं से भरी हुई है। विषयभोग सुख ही उसका कोमल स्पर्श है। वह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

विषमतारूपी विष को ही उगलती है और तनिक सा स्पर्श हो जाने पर भी डँस लेती है (अपने सम्पर्क में आये हुए प्राणी का नाश कर देती है)। इतना ही नहीं, तृष्णा काली-कलूटी राक्षसी के समान भी बतायी गयी है। वह पुरुषों के हृदय का भेदन करने वाली तथा दीनता की प्रतिमूर्ति है। पर्वत की गुफा में एक प्रकार की लता होती है, जो सूर्य-किरणों के न मिलने से सदा अत्यन्त मलिन रहती है। वह खाने में कड़वी और परिणाम में उन्माद का रोग पैदा करने वाली है। उसकी बेल बहुत लंबी होती है और उसमें रस की मात्रा अधिक रहती है। यह तृष्णा भी उसी लता के समान निरन्तर अत्यन्त मलिन, परिणाम में दुःख से पागल बना देने वाली, वासनारूपी विशाल ताँतों से युक्त तथा विषयों में गहरा स्नेह पैदा करने वाली है। जैस ऊँचे वृक्षों की शाखा के अग्रभाग में स्थित सूखी हुई मञ्जरी पुष्पशून्य, निष्फल तथा कण्टकाकीर्ण होने के कारण आनन्ददायिनी नहीं होती, उसी प्रकार तृष्णा सर्वथा सूनी, निष्फल, व्यर्थ विस्तार को प्राप्त होने वाली, अमंगलकारिणी और क्रूर है। यह कभी सुखदायिनी नहीं होती। संसाररूपी विशाल वन में तृष्णारूपिणी विष की बेल फैली हुई है। जरा मृत्यु आदि ही इसके फूल तथा विनिपात और उत्पात (अधःपतन और उपद्रव) ही फल हैं।

मुने ! चिन्ता (तृष्णा) चंचल मोरनी के समान है। मोरनी वर्षा की बूँदें पड़ने पर बारंबार नृत्य करती है, शरद् ऋतु का प्रकाश आ जाने पर शान्त हो जाती है और दुर्गम स्थानों में भी पैर रखती है, इसी तरह तृष्णा भी कुहरे के समान मोह के आवरण में स्फुरित होती है-नाच उठती है, विवेक का प्रकाश छा जाने पर शान्त हो जाती है और असाध्य वस्तुओं में भी पाँव रख देती है। केवल वर्षा काल में इतराकर बहने वाली छोटी नदी वर्षा के अतिरिक्त समय में चिरकाल तक जलशून्य पड़ी रहती है। वर्षा ऋतुओं में भी बीच-बीच में जब वृष्टि रुक जाती है, वह जल से खाली हो जाती है परंतु पानी बरसने पर उसमें क्षणभर में बाढ़ आ जाती है और जल की बहुत सी उत्ताल तरंगें उड़ने लगती हैं। इसी प्रकार तृष्णा भी चिरकाल तक फल शून्य हो जाती है। जड़ पदार्थों में ही इसे अधिक आनन्द मिलता है और क्षण भर में ही यह उल्लसित हो उठती है। चारे के लोभ से चंचल हुई चिड़िया जैसे फलशून्य खड़े हुए वृक्ष

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

को छोड़कर दूसरे-दूसरे फलयुक्त वृक्ष पर चली जाती है, उसी प्रकार तृष्णा भी विवेकी एवं विरक्त पुरुष को छोड़कर विषयासक्त पुरुष के पास चली जाती है।

तृष्णा और चंचल बंदरिया दोनों का स्वभाव एक जैसा है। वे अलंघ्यस्थान में भी पैर रख देती हैं, तृप्त हो जाने पर भी नये-नये फल की इच्छा करती हैं और विषयरूप एक स्थान पर अधिक काल तक नहीं ठहरतीं। तृष्णा हृदयरूपी कमल में निवास करनेवाली भ्रमरी है। यह क्षण भर में पाताल को चली जाती है, फिर दूसरे ही क्षण आकाश की सैर करने लगती है और क्षण-भर में ही दिगन्तरूपी निकुंज में मड़राती दिखायी देती है। संसार में जितने दोष हैं, उन सबमें एकमात्र तृष्णा ही ऐसी है, जो दीर्घकाल तक दुःख देती रहती है। वह अन्तःपुर में रहने वाले मनुष्य को भी भीषण संकट में डाल देती है। तृष्णारूपिणी मेघमाला मोहरूपी नीहार-पुंज से घनीभूत होकर परम ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश को ढँक देती है और जगत् को केवल जड़ता (जल अथवा अज्ञान) ही प्रदान करती है। तृष्णा सांसारिक व्यवहार में फँसे हुए समस्त प्राणियों को बाँधने के लिये एक मजबूत रस्सी के समान है। उस ने सबके मन को बाँध रक्खा है। इन्द्रधनुष जिन लक्षणों अथवा धर्मों से युक्त दिखायी देता है, वे ही तृष्णा के भी लक्षण अथवा धर्म हैं। वह इन्द्र-धनुष की ही भाँति बहुरंगी, गुणहीन, विशाल, मलिन (मेघ अथवा अशुद्ध अन्तःकरण वाले प्राणी के) आधार पर स्थित, शून्य रूप और शून्य में ही पैर रखने वाली है। तृष्णा गुणरूपी हरी-भरी खेती को नष्ट करने के लिये वज्रपात के समान है। आपत्तियों को बढ़ाने के लिये उस शरद्-ऋतु के तुल्य है, जिसके आने पर धान आदि की खेती पकी हुई बालों से सम्पन्न हो जाती है। तत्व-ज्ञानरूपी कमलों का विध्वंस करने के लिये ओले के सदृश और अज्ञानरूपी अन्धकार की वृद्धि के लिये वह हेमन्त की लंबी रात के समान है।

तृष्णा इस संसार रूपी नाटक की नटी है, प्रवृत्तिरूप नीड़ में निवास करने वाली पक्षिणी है, मनोरथरूपी महान् वन में चरनेवाली हरिणी है और कामरूपी संगीत को उद्बुद्ध करने वाली वीणा है। वह व्यवहाररूपी समुद्र की लहर है। मोहरूपी मतवाले गजराज को बाँधे रखने के लिये साँकल है, सृष्टि रूपी वटवृक्ष की सुन्दर बरोह है और दुःखरूपी कुमुदों को विकसित करने वाली

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Branch Library, Jammu. Digitized by eGangotri

चाँदनी है। इतना ही नहीं, तृष्णा जरा-मृत्युरूप दुःखमय रत्नों का संग्रह करने के लिये एकमात्र रत्न-पेटिका है तथा आधि-व्याधिरूप विलासों का नित्य विस्तार करने वाली मदमत्त विलासिनी है। तृष्णा को व्योमवीथी (आकाश) के समान समझना चाहिये। जैसे आकाश कभी सूर्य के प्रकाश से निर्मल हो जाता है, कभी मेघों की घटा घिर आने से वहाँ कुछ क्षणों के लिये कुछ-कुछ अँधेरा छा जाता है और कभी वह कुहरे से ढक जाता है, उसी प्रकार तृष्णा भी कभी किंचित् विवेक का प्रकाश पाकर निर्मल हो जाती है, विवेक न होने पर अज्ञान से मलिन रहती है और कभी कुहरे के समान मोह से आवृत हो जाती है। जब तक विष-विशेष उद्भव से प्रकट होने वाले विसूचिका (हैजा) नामक रोग के समान मृत्यु की हेतुभूता तृष्णा पीछे लगी रहती है, तभी तक यह चंचल-चित्त मूढ़ जन-समुदाय मोह को प्राप्त होता रहता है।

लोग विषयों का चिन्तन त्याग देने से ही अपने सम्पूर्ण दुःख को दूर कर सकते हैं। विषय चिन्तन का त्याग ही तृष्णारूपिणी विसूचिका के निवारण का मन्त्र कहा गया है। तृष्णा वेणुलता (बाँस) बतायी जाती है। जैसे बाँस भीतर से खोखला, बीच-बीच में गाँठों से युक्त और कोंपलरूपी बड़े-बड़े काँटों से भरा होता है तथा उसमें सबको प्रिय लगने वाले मोती उपलब्ध होते हैं, उसी प्रकार तृष्णा भी भीतर से खोखली, कपट-दुराग्रह आदि गाँठों से भरी, चिन्ता और दुःखरूपी कण्टकों से परिपूर्ण तथा मोती-मणि आदिधन-सम्पत्ति में अधिक प्रेम रखने वाली है। फिर भी यह बड़े आश्चर्य की बात है कि परम बुद्धिमान ज्ञानीजन विवेक की चमचमाती हुई तलवार से उस दुश्छेद्य चिन्ता को भी काट डालते हैं। ब्रह्मन! जीवों के हृदय में रहने वाली यह तृष्णा जैसी तीखी है, वैसी तीखी न तो तलवार की धार है, न वज्राग्नि की लपटें हैं। और न आग में तपाये हुये लोहकणों की चिनगारियाँ ही हैं। तृष्णा दीप-शिखा के समान कही गयी है। जैसे दीपक की शिखा बीच में उज्ज्वल, अन्त में काली होती है, उसका अग्रभाग तीखा होता है, उसमें तेल और लंबी-सी बत्ती रहती है, वह प्रकाशमान होती है और दाह के कारण उसका स्पर्श दुस्सह होता है, उसी प्रकार तृष्णा भी बीच में भोग-वैभव से उज्ज्वल और अन्त में दुःख एवं मृत्यु देने वाली होने के कारण काली होती है, उसका अग्रभाग या आरम्भ भी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

असह्य होता है। वह स्त्री-पुत्र आदि के स्नेह से पूर्ण तथा बाल्य, यौवन, बुढ़ापा नामक अवस्था-विशेषरूपी बत्तियों से युक्त होती है, इसका सबको प्रत्यक्ष अनुभव होता है तथा इष्ट वस्तु के वियोग-जनित अन्तर्दाह उत्पन्न करने के कारण यह सबके लिये असह्य हो उठती है। महर्षे ! मेरू पर्वत के समान परम उन्नत, विद्वान, शूरवीर, सुस्थिर और श्रेष्ठ मनुष्य को भी यह एकमात्र तृष्णा ही पल भर में याचक बनाकर तिनके के समान हल्का कर देती है।

बारहवाँ सर्ग समाप्त

तेरहवाँ सर्ग

शरीर निन्दा

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं- महामुने! गीली आँतों (मल-मूत्र आदि की थैलियों) और नाड़ियों से भरा हुआ, नाना प्रकार के विकारों से युक्त तथा अन्त में पतनशील (मरणधर्मा) जो शरीर संसार में सबके सामने प्रकाशित हो रहा है, वह भी केवल दुःख भोगने के लिये ही है। यह थोड़े से खान-पान आदि के द्वारा ही आनन्दित हो उठता है और थोड़े से ही शीत, धाम आदि से खिन्न हो जाता है; अतः इस शरीर के समान गुणहीन, शोचनीय और अधम दूसरा कोई नहीं है। यह शरीर वृक्ष के तुल्य है। दोनों भुजाएँ इसकी दो शाखाएँ हैं, परिपुष्ट कंधा तना है। दो नेत्र इसके बिल या खोडर हैं। मस्तक का स्थान इसका बड़ा भारी फल है। यह दाँत रूपी श्रेणीबद्ध पक्षियों के बैठने के लिये स्तम्भ के समान सुन्दर आधार है। दोनों कान शब्द रूपी कठफोरवा पक्षियों के प्रवेश करने के लिये खोंखले हैं। हाथ और पैरों की अंगुलियाँ इसके सुन्दर पल्लव हैं। गुल्म नामक (पेट का) रोग ही इस पर फैली हुई लताएँ अथवा झाड़ियाँ हैं। यह कर्म करने के लिये पञ्चभूतों के समूह से संगठित हुआ है। जीव तथा ईश्वर रूप पक्षियों ने इस पर अपने घोंसले बना रक्खे हैं। दाँत रूपी केसरों से सुशोभित, उत्पत्ति विनाशशील तथा मन्द हासमय विकास से युक्त हर्षरूपी फूलों द्वारा यह शरीर-वृक्ष सदा अलंकृत होता रहता है। सुन्दर कान्ति ही इसकी छाया है। यह देहरूपी वृक्ष जी रूपी पथिकों का विश्राम स्थान है। इसे किसका आत्मीय कहा जाय और किसका पराया ? इसके ऊपर आस्था और अनास्था ही क्या हो सकती है ? तात! भवसागर तथा नदी आदि को पार करने के लिये बारंबार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अपनायी गयी देहलता एवं नौका में कौन आत्मीयता की भावना कर सकता है? जहाँ रोम रूपी असंख्य वृक्ष उगे हुए हैं, जो इन्द्रिय रूपी बहुसंख्य गड्ढों से भरा हुआ है,उस देहरूपी निर्जन वन में कौन विश्वरत (निर्भय) होकर रह सकता है?

जो संसार रूपी वन में उगा और बढ़ा है, जिस पर चित्तरूपी चंचल वानर उछलता-कूदता रहता है, जिसका प्रत्येक अवयव विषय-चिन्तन रूपी मञ्जरी से अलंकृत है, महान् दुःख रूपी घुनों के लग जाने से जिसमें सब ओर छेद या घाव हो गये हैं, जो तृष्णा रूपिणी सर्पिणी का घर है, जिसपर कोपरूपी कौए ने घोंसला बना रक्खा है, जिसमें मन्द मुसकान रूपी पुष्प प्रकट होते और खिलते हैं, इसीलिये जिसकी बड़ी शोभा होती है, शुभ और अशुभ (सुख और दुःख) जिसके महान् फल हैं, सुन्दर कंधे और बाँहें जिसकी शाखाएँ हैं, अंगुलियों से युक्त हाथ रूपी पुष्प-गुच्छों के कारण जो बड़ा सुन्दर जान पड़ता है, प्राणवायु रूपी पवन के स्पन्दन से जिसके सम्पूर्ण अवयव रूपी पल्लव हिलते रहते हैं, जो समस्त इन्द्रिय रूपी पक्षियों का आधार है, सुन्दर घुटनों से युक्त शरीर का निचला भाग जिसका तना है, जो बहुत ऊँचा है, यौवन की कान्ति रूपी छाया से युक्त होने के कारण जो सरस प्रतीत होता है, काम रूपी पथिक जिसका सेवन करता है, मस्तक पर उगे हुए बड़े-बड़े केश-कलाप जिस पर जमे हुए तिनकों के समुदाय हैं, अहंकार रूपी गीध जिस पर घोंसला बनाकर रहता है, जो भीतर से खोखला (छिद्रयुक्त) है, नाना प्रकार की वासना रूपिणी जटाओं के जाल का उद्गम-स्थान होने के कारण जिसे काटना अत्यन्त कठिन है तथा परिश्रम रूपी शाखा-विस्तार के कारण जो विरस (रूखा) दिखायी देता है, वह शरीर रूपी वृक्ष सुखद नहीं प्रतीत होता है।

मुने! शरीर अहंकार रूपी गृहस्थ का विशाल गृह है। यह गिरकर सदा के लिये धरती पर लोट जाय अथवा चिरकाल तक स्थिर बना रहे, इससे मेरा क्या प्रयोजन है ? जहाँ इन्द्रिय रूपी पशु कतार बाँधकर खड़े रहते हैं, तृष्णा रूपिणी गृहस्वामिनी बारंबार (घर-आँगन में) डोलती-फिरती है तथा जिसके समस्त अवयवों को आसक्ति रूपी गेरु आदि के रंग से रँगा गया है, वह शरीर रूपी गृह मुझे अभीष्ट नहीं है। पीठ की हड्डी (रीढ़) रूपी शहतीरों के परस्पर मिलने से जिसके भीतर खाली स्थान बहुत थोड़ा रह गया है तथा जो आँत की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama (I.F.S) Jammu Collection

रस्सियों से बाँधकर खड़ा किया गया है, वह देहरूपी घर मुझे प्रिय नहीं है। जिसमें सब ओर नस-नाड़ी और आँतों की रस्सियाँ फैली हुई हैं, जिसे रक्त रूपी जल से बनाये गारे के द्वारा लीपा गया है तथा बुढ़ापा रूपी चूने से जिस पर सफेदी की गयी है, वह देहरूपी घर मुझे अभीष्ट नहीं है। चित्तरूपी भृत्य ने नाना प्रकार की अनन्त चेष्टाओं द्वारा जिसकी स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ कर दी है तथा मिथ्या और मोह (असत्य, सुदृढ़ अज्ञान) ये दो जिसके बड़े-बड़े खंभे हैं, वह देहरूपी गृह मुझे प्रिय नहीं है। दुःख रूपी छोटे-छोटे बच्चों ने जहाँ रो-रोकर कोलाहल मचा रक्खा है, गाढ़ निद्रारूपी सुख शय्या के कारण जो मनोरम प्रतीत होता है तथा जिसमें दुश्चेष्टारूपिणी दग्ध दासी निवास करती है, वह देहरूपी घर मुझे प्रिय नहीं है। मुनीश्वर! जो मल आदि दोषों से युक्त विषय-समूहरूपी बर्तनों तथा अन्यान्य उपकरणों से ठसाठस भरा हुआ है तथा जिसमें अज्ञानरूपी नोनछा लगा हुआ है, वह देहरूपी गेह मुझे अभीष्ट नहीं है। गुल्फरूपी आधारकाष्ठ पर स्थित जो पिंडलियाँ हैं, वे मानो खंभे हैं। घुटना उनका मस्तक है, वह जिसके ऊरु स्तम्भ का आधार है तथा दोनों बड़ी-बड़ी भुजाएँ दो आड़ी लकड़ियों के समान जिसे दृढ़ता पूर्वक धारण करती हैं, वह देहरूपी घर मुझे इष्ट नहीं है।

तेरहवां सर्ग समाप्त

चौदहवां सर्ग

इन्द्रिय निग्रह

ब्रह्मन्! जहाँ ज्ञानेन्द्रियरूपी झरोखों के भीतर प्रज्ञारूपिणी गृहस्वामिनी क्रीड़ा कर रही है तथा चिन्तारूपिणी पुत्रियाँ खेल रही हैं, वह देह-गेह मुझे प्रिय नहीं है। जो सिर के केशरूपी छाजन से छाया हुआ है, कानरूपी शोभाशाली चन्द्र शालाओं से सुशोभित है तथा कुछ लंबी अंगुलिरूप काष्ठ-चित्रों से सुसज्जित है, वह शरीररूपी गृह मुझे प्रिय नहीं है। जिसके समस्त अंगरूपी भित्तियों के समूह में रोमरूपी घने जौ के अंकुर उगे हैं और जहाँ पेट का गड्ढा कभी भरता नहीं, ऐसा देहरूपी गेह मुझे नहीं चाहिये। जिसमें नखरूपी मकड़ियों का निवास है, जहाँ भूखरूपी कुतिया निरन्तर शोर मचाये रहती है तथा जिसमें भयानक शब्द करने वाली प्राणवायु सदा चलती रहती है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Library Collection

ऐसे देह-गेह की प्राप्ति मुझे प्रिय नहीं है। जहाँ श्वास-प्रवास के रूप में वायु के वेग का निरन्तर भीतर-बाहर आना-जाना लगा रहता है और जिसकी इन्द्रियरूपी खिड़कियाँ सदा खुली रहती हैं, वह देहरूपी घर मुझे कभी इष्ट नहीं है। जिसके मुखरूपी दरवाजे पर जिव्हारूपिणी वानरी सदा डटी रहती है, अतएव जो भयंकर दिखायी देता है तथा जिसके दाँतरूपी हड्डियों के टुकड़े स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं, वह शरीररूपी घर मुझे नहीं चाहिये। यह देह-गेह त्वचारूपी चूने के लेप (या पलस्तर) से चिकना किया हुआ है। नाड़ीरूप यन्त्रों के संचार से यह चंचल बना रहता है और मनरूपी सुन्दर चूहे ने इसमें सब ओर बिल खोद रक्खे हैं; इसलिये यह मुझे प्रिय नहीं है। जो मन्द मुस्कानरूपी दीपक की प्रभा से क्षण भर के लिये उद्भासित हो उठता है, एक ही क्षण में आनन्दोल्लास से सुन्दर दिखायी देता है और फिर क्षणमात्र में ही अज्ञानान्धकार से व्याप्त हो जाता है, वह शरीररूपी घर मुझे प्रिय नहीं है। जो समस्त रोगों का घर है, झुर्रियों तथा पके बालों का नगर है और समस्त मानसिक चिन्ताओं का दुर्गम वन है, वह देह-गेह मुझे प्रिय नहीं है।

यह शरीर एक भयानक वन है। इन्द्रियाँ ही इस जंगल के भालू हैं, जो अपने रोष के कारण इसे दुर्गम बनाये हुए हैं। यह भीतर से सूना है तथा अनेकानेक निस्सार खोडरों से युक्त है। इसकी दिशारूपी कुंजें घोर अज्ञानान्धकार से व्याप्त होने के कारण गहन जान पड़ती हैं; अतः यह मुझे कदापि प्रिय नहीं है। यहाँ धन-सम्पत्ति, राज्य, शरीर, नाना प्रकार की चेष्टाओं और मनोरथों से क्या लेना देना है; क्योंकि काल कुछ ही दिनों में इन सबको अपना ग्रास बना लेता है। मुने! यह शरीर केवल रक्त और मांस का ही बना हुआ है। इसका एक ही धर्म है-विनाश। फिर इसके बाहरी और भीतरी स्वरूप पर विचार करके बताइये, इसमें कौन-सी रमणीयता है ?

तात! जो शरीर मरने के समय जीव का अनुसरण नहीं करते-उसका साथ छोड़ देते हैं, वे कितने बड़े कृतघ्न हैं। फिर आप ही कहिये, उन पर बुद्धिमान् पुरुषों की क्या आस्था हो सकती है ? यह शरीर उस कोमल पल्लव के समान है, तनिक-सी वायु का संचार होते ही जोर-जोर से हिलने लगता है, यह आधिव्याधिरूपी सैकड़ों कण्टकों से क्षत-विक्षत होने के कारण जर्जर हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

जाता है। इसका स्वभाव क्षुद्र है तथा यह कड़वा और नीरस है; अतएव मुझे प्रिय नहीं है। चिरकाल तक यत्न पूर्वक खा-पी लेने के बाद भी नूतन पल्लवों के समान कोमल कृशता को प्राप्त हो यह बारंबार विनाश की ओर ही दौड़ता है। दीर्घकाल तक लोगों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करके धन-सम्पत्ति का सेवन करने के बाद भी न तो यह ऊँचे उठता है और न स्थिरता को ही प्राप्त होता है, फिर इस शरीर का किसलिये पालन किया जाता है ? कोई भोग-वैभव से सम्पन्न हो या दरिद्र-दोनों का शरीर समान ही होता है, बुढ़ापे के समय बूढ़ा होता और मृत्युकाल में मर जाता है। उसे अपने में किसी विशेषता का अनुभव नहीं होता। जो लोग इन नाशवान् शरीरों में आस्था रखते हैं-इन्हें नित्य स्थिर रहने वाला मानते हैं तथा जो संसार की स्थिरता पर भी विश्वास करते हैं, वे मोहरूपी मदिरा का पान करके उन्मत्त हो गये हैं। उन्हें बारंबार धिक्कार है।

मुने! 'मैं न तो इस शरीर का कोई सम्बन्धी हूँ और न शरीर हूँ। न यह शरीर मेरा है और न मैं ही यह शरीर हूँ।' ऐसा विचार करके जिनका चित्त परमात्मा में विश्राम ले रहा है, वे ही लोग पुरुषों में उत्तम हैं। जो मान और अपमान से वृद्धि को प्राप्त हुई हैं और प्रचुर लाभ से मनोरम प्रतीत होती हैं, वे दोषपूर्ण दृष्टियाँ केवल शरीर में नित्यत्व का विश्वास रखने वाले मनुष्य को नष्ट कर देती हैं। जो शरीररूपी गड्ढे में सोती है और अहंकार का चमत्कार पूर्ण कार्य है, उस मनोहर अंगवाली (भोगतृष्णामयी दोषदृष्टिरूपिणी) पिशाची ने छल से हमारा सर्वस्व हर लिया है। शरीर में ही नित्यता का विश्वास रखनेवाली इस मिथ्या-ज्ञानरूपिणी दुष्ट राक्षसी ने अकेली (असहाय) दीन-हीन प्रज्ञा (सुबुद्धि) को पूर्णरूप से ठग लिया, यह कितने दुःख की बात है।

कुछ ही दिनों में जीर्णता को प्राप्त होकर यह शरीररूपी पल्लव झरने के जल की बूँदों के समान बिना किसी यत्न के अपने आप गिर पड़ता है। समुद्र में उत्पन्न हुए पानी के बुलबुलों की तरह इस शरीर का बहुत शीघ्र विनाश हो जाता है। ब्रह्मन्! यह शरीर मिथ्याभूत अज्ञान का विकार है और स्वप्नरूपी भ्रान्तियों का भंडार है। इसका विनाश बहुत स्पष्ट दिखायी देता है। इसलिये इसमें मेरा क्षणभर के लिये भी विश्वास नहीं है। जिस पुरुष ने बिजली, शरद् ऋतु के बादल और गन्धर्व नगर के चिरस्थायी होने का निर्णय कर लिया है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Dr. Vidyadhar Shastri (R.R.S) Jammu Collection

वही इस शरीर की नित्यता पर विश्वास करे (मैं तो नहीं कर सकता)। शीघ्रतापूर्वक नष्ट हो जाने में हठपूर्वक अपना उत्कर्ष जताने के लिये जो होड़ लगाकर प्रवृत्त हुए हैं, उन सतत् विनाशशील पदार्थों की अपेक्षा भी अधिक क्षणभंगुर है, उस प्रबल दोषयुक्त शरीर की तिनके के समान उपेक्षा करके मैं सुखी हो गया हूँ।

चौदहवां सर्ग समाप्त

पन्द्रहवां सर्ग

बाल्यावस्था के दोष

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं–मुनीश्वर! असमर्थता, आपत्तियाँ, तृष्णा, मूकता (बोल न सकना), मूढ़ बुद्धिता (बुद्धि द्वारा कुछ जान न पाना), खिलौने आदिकी अभिलाषा, चंचलता और दीनता आदि सारे दोष बाल्यावस्था में ही प्रकट होते हैं। बाल्यावस्था में पशु–पक्षियों की सी चेष्टाएँ होती हैं। बालक सभी लोगों के द्वारा तिरस्कृत होता है। बालकों की चपल चेष्टा मृत्यु से भी बढ़कर दुःख देनेवाली होती है। बाल्यावस्था में अज्ञानवश जल, अग्नि और वायु से निरन्तर उत्पन्न होने वाले भय के कारण पग–पग पर जो दुःख प्राप्त होता है, वह आपत्तिकाल में भी किसको होता होगा ? बालक भाँति–भाँति लीलाओं, दुर्विलासों, दुश्चेष्टाओं तथा दूषित अभिप्राय में हठात् प्रवृत्त होकर बड़े भारी मोह में पड़ जाता है। बाल्यावस्था में बालक जिस किसी के भी कहने से निष्फल कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं, अनेक प्रकार की दुश्चेष्टाएँ करते हैं तथा किसी प्रकार भी प्रतिष्ठा की प्राप्ति उनके लिये दुर्लभ है इसी तरह मनुष्य का शैशवकाल केवल गुरुजनों का शासन स्वीकार करने के लिये ही है, सुख और शान्ति प्रदान करने के लिये नहीं। जैसे उल्लू दिन में अन्धकार से भरे हुए दूषित गड्ढों में छिपे रहते हैं, उसी प्रकार जो–जो दोष, जितने दुराचार तथा जो–जो दुर्लंघ्य दुश्चिन्ताएँ हैं, वे सब–के–सब बाल्यावस्था में ही जीव के हृदय में छिपकर बैठे रहते हैं।

ब्रह्मन्! जो लोग 'बाल्यावस्था बड़ी रमणीय है' ऐसी कल्पना करते हैं, उन सब की बुद्धि व्यर्थ है। उन हतचित्त मूढ़बुद्धि लोगों को बारंबार धिक्कार है। जहाँ झूले के समान चंचल मन विविध विषयों के आकार को प्राप्त होता है

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तथा जो तीनों लोकों में अमंगलरूप है, वह बाल्यावस्था कैसे संतोषदायक हो सकती है ? मुने! सभी प्राणियों का मन अन्य सब अवस्थाओं की अपेक्षा बाल्यावस्था में ही दस गुना चंचल हो उठता है। मन स्वभाव से ही चंचल है और बाल्यावस्था सम्पूर्ण चंचल पदार्थों में सबसे बढ़कर है। जहाँ उन दोनों का संयोग हो, वहाँ अन्तःकरण में चपलताजनित अनर्थ से बचाने वाला कौन है! बचपन और मन-ये दोनों सभी वृत्त्यों (व्यवहारों) में सदा दो सहोदर भाइयों के समान दृष्टिगोचर होते हैं। इन दोनों की स्थिति क्षणभंगुर है। बालक कुत्ते के समान थोड़ा सा ही खाना देने या पुचकारने से वश में हो जाता है और थोड़ा-सा ही घुड़कने या छड़ी आदि दिखाने से बिगड़ जाता या डर जाता है। वह सदा अपवित्र स्थान में ही रमता या खेलता है।

बाल्यावस्था में प्राणी केवल दूसरों से डरता और खाता-पीता रहता है। वह सदा दीन रहता है, देखी और बिना देखी सभी वस्तुओं की इच्छा करता है। उसकी बुद्धि और शरीर दोनों चंचल होते हैं। ऐसी बाल्यावस्था को मनुष्य केवल दुःख भोगने के लिये धारण करता है। निर्बल बालक अपने मानसिक संकल्प से जिन पदार्थों को पाने की इच्छा करता है, उन्हें न पाकर उसकी बुद्धि सदा संतप्त होती रहती है और उसे इतना दुःख होता है मानो किसी ने उसके हृदय में घाव कर दिया है। जब तक बाल्यावस्था रहती है, तब तक असत्य पदार्थों में ही सत्यता की बुद्धि बनी रहती है, हृदय में नाना प्रकार के मनोरथ उदित होते रहते हैं तथा अन्तःकरण बड़ा कोमल होता है। अतः बाल्यकाल अत्यन्त दीर्घ दुःख प्रदान करने के लिये ही होता है, सुख देने के लिये नहीं। परम बुद्धिमान् मुनीश्वर! जिसके अन्तःकरण में सर्दी, गरमी का अनुभव तो होता है, परंतु जो उनका निवारण करने में समर्थ नहीं होता, उस बालक और वृक्ष में क्या अन्तर है ? बाल्यकाल में गुरु से, माता-पिता से, अन्य लोगों से तथा अपनी अपेक्षा बड़े बालकों से भी भय प्राप्त होता है। अतः बाल्यावस्था भय का मन्दिर ही है। महामुने! बाल्यावस्था में समस्त दोषपूर्ण दशाओं द्वारा अन्तःकरण दूषित होता है और बाल्यकाल अविवेक-नामधारी विलासी का विलास भवन है। इसलिये इस जगत् में यह बाल्यावस्था किसी के लिये भी पूर्ण संतोषदायक नहीं है।

पंद्रहवा सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सोलहवां सर्ग

युवावस्था के दोष

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं–महर्षे! बचपन के बाद मनुष्य बाल्यावस्था के अनर्थों का त्याग कर भोगने के उत्साह, भ्रान्ति अथवा कामरूप पिशाच से दूषित चित्त होकर नकर में गिरने के लिये ही यौवनारूढ़ होता है। यौवनावस्था में मूर्ख मनुष्य अनन्त विलास (चेष्टा) वाले अपने चंचल चित्त की राग–द्वेषादि वृत्तियों का अनुभव करता हुआ एक दुःख से दूसरे दुःख को प्राप्त होता है। अपने चित्तरूपी बिल में स्थित हो नाना प्रकार की भ्रान्ति पैदा करने वाला कामरूपी पिशाच अपने वश में हुए पुरुष का बलपूर्वक तिरस्कार करता है। मुने! युवावस्था में स्त्री, द्यूत और कलह आदि दुर्व्यसनों को उत्पन्न करने वाले वे राग–लोभ आदि प्रसिद्ध एवं दुष्ट दोष जैसे (काम, चिन्ता आदि के वशीभूत) अन्तःकरण वाले पुरुष को, जो काम आदि में तन्मय हो रहा है, यौवन के ही सहारे नष्ट कर डालते हैं। जो महान् नरक का बीज है और सदा भ्रान्ति पैदा करने वाला है, उस यौवन के द्वारा जिनका नाश नहीं हुआ, वे मनुष्य दूसरे किसी से नष्ट नहीं हो सकते। श्रृंगारआदि नाना प्रकार के रसों से पूर्ण और अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक वृत्तान्तों से युक्त भीषण यौवनरूपा भूमि को जिसने पार कर लिया, वही पुरुष धीर कहलाता है। जो क्षणभर के लिये प्रकाशमान, चंचल मेघों की गंभीर गर्जना (अभिमान पूर्ण वचन) से व्याप्त और बिजली की तरह चमककर लुप्त हो जानेवाला है, वह अमंगलमय यौवन मुझे अच्छा नहीं लगता। जो भोग के समय मधुर अतएव स्वादिष्ट (मनोरम) और अन्त में दुःखदायी होने के कारण तिक्त प्रतीत होता है, जिसमें दोष–ही–दोष भरे हैं, जो सब दोषों का आभूषण तथा मदिरा के मद–विलास के समान मोहक है, वह यौवन मुझे कदापि अच्छा नहीं लगता। जो असत्य होकर भी सत्य सा प्रतीत होता है, शीघ्र ही धोखा देनेवाला है तथा स्वप्नावस्था में किये गये स्त्री–सहवास के समान है, वह यौवन मुझे अच्छा नहीं लगता। यह क्षणभर के लिये सुन्दर प्रतीत होने वाली सम्पूर्ण वस्तुओं में अग्रगण्य है। सारी आयु बीत जाने पर दिखायी देने वाले गन्धर्व नगर के समान है। यह सब लोगों को क्षण मात्र के लिये मनोहर प्रतीत होता है। अतः यह मुझे अच्छा नहीं लगता।

यह यौवन ऊपर से तो रमणीय प्रतीत होता है, किंतु भीतर से सद्भाव

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

शून्य है। अतः वेश्या स्त्री के समागम के समान घृणित होने के कारण मुझे रुचिकर नहीं जान पड़ता। जैसे प्रलयकाल में सबको दुःख देनेवाले बड़े-बड़े उत्पात सब ओर से उमड़ उठते हैं, उसी प्रकार युवावस्था में सबको कष्ट प्रदान करने वाले जो कोई भी आयोजन हैं, वे सब निकट आ जाते हैं। युवावस्था का मोह मंगलमय आचार को भुला देनेवाले और बुद्धि को कुण्ठित कर देनेवाले भ्रम का अतिशय मात्रा में उत्पादन करता है। जैसे दावाग्नि वृक्ष को जला देती है, उसी प्रकार युवावस्था में जीव प्रियतमा के वियोगजनित दुस्सह शोकाग्नि से मन-ही-मन जलता रहता है। जैसे अत्यन्त निर्मल, विस्तृत एवं पवित्र नदी भी वर्षा ऋतु में मलिन हो जाती है, उसी प्रकार परम निर्मल, विशाल एवं शुद्धबुद्धि भी युवावस्था में कलुषित हो जाती है। बहुत-सी उत्ताल तरंगों से युक्त भयानक नदी लाँघी जा सकती है, परंतु भोगतृष्णा की चपलता से युक्त युवावस्था नहीं लाँघी जा सकती। 'वह प्राणवल्लभा, उसके वे मोटे-मोटे स्तन, वे मनोहर विलास और वह सुन्दर मुख कितना मनोरम है!' युवावस्था में इसी तरह की चिन्ताओं से मनुष्य जर्जर हो जाता है। रजोगुण और सदगुण-समुदायक मूलोच्छेद करता है। अतएव उसे पाप-वैभव का विलास कहा गया है। शरीररूपी उपवन में उत्पन्न हुई यौवन की बेल बड़ी रमणीय है। वह ज्यों-ज्यों बढ़ती या ऊँचे चढ़ती है, त्यों-ही-त्यों अपने से सटे हुए मनरूपी भ्रमर को उन्मत्त बना देती है। शरीररूपी मरुभूमि में कामरूपी घाम के ताप से प्रकट हो भ्रान्तिरूप में प्रतीत होनेवाली जो यौवनरूपिणी मृगतृष्णा है, उसी ओर दौड़ते हुए मनरूपी मृग विषयों के गड्ढे में गिर जाते हैं। यह युवावस्था देहरूपी जंगल में कुछ दिनों के लिये प्रकाशित होनेवाली शरद् ऋतु के समान है। लोगो! तुम इस पर विश्वास न करो।

जब-जब यौवन अपनी चरम सीमा पर आरूढ़ हो जाता है, तब-तब संतापयुक्त कामनाएँ केवल विनाश के लिये ही बढ़ने या नृत्य करने लगती हैं। ये राग-द्वेषरूपी पिशाच तभी तक विशेष रूप से नाचते फिरते हैं, जब तक कि यह यौवनरूपिणी रात्रि पूर्णरूप से नष्ट नहीं हो जाती। जो महामुग्ध पुरुष मोहवश क्षणभंगुर यौवन से हर्ष को प्राप्त होता है, वह मनुष्य होता हुआ भी निरा पशु ही माना गया है। जो मनुष्य अभिमान या अज्ञान के कारण मदोन्मत्त यौवनावस्था की अभिलाषा करता है, उस दुर्बुद्धि को शीघ्र ही पश्चाताप का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भागी होना पड़ता है। साधो! इस भूतल पर वे ही पुरुष पूजनीय और महात्मा हैं जो यौवनरूपी संकट से सुखपूर्वक पार हो गये हैं। बड़े-बड़े मगरों से भरे हुए महासागर को सुखपूर्वक पार किया जा सकता है, किंतु विषय-चिन्तन आदि महातरंगों के कारण उमड़े हुए और दुर्गुण दुराचाररूप अनेक दोषों से भरे हुए इस निन्दनीय यौवन के पारजाना बहुत ही कठिन है। ब्रह्मन्! विनय से अलंकृत, श्रेष्ठ पुरुषों को आश्रय देनेवाला, करुणा से प्रकाशित तथा शम, दम, क्षमा, दया, शान्ति, संतोष, सरलता आदि विविध गुणों से युक्त उत्तम यौवन इस संसार में उसी तरह दुर्लभ है, जैसे आकाश में वन।

सोलहवां सर्ग समाप्त

सत्रहवां सर्ग

नारी शरीर की रमणीयता निराकरण

श्रीरामचन्द्रजी बोले-मुनीश्वर! इधर केश हैं, इधर रक्त और मांस है, यही तो युवती स्त्री का शरीर है। जिसका हृदय विवेक से विशाल हो गया है, उस ज्ञानी पुरुष को इस निन्दित नारी-शरीर से क्या काम ? आदरणीय मुने! बहुमूल्य वस्त्र और केसर-कस्तूरी आदिके लेप से जिन्हें बारंबार सजाकर दुलराया गया था समस्त देहधारियों के उन्हीं अंगों को किसी समय गीध और सियार आदि मांसाहारी जीव नोंचते और घसीटते हैं। जिस स्तन मण्डल पर मेरु पर्वत के शिखर प्रान्त से सोल्लास प्रवाहित होने वाली गंगाजी के जल की धारा के समान मोतियों के हार की शोभा देखी गयी थी, मृत्यु के पश्चात् सम्पूर्ण दिशाओं की श्मशान भूमियों में नारी के उसी स्तन का कुत्ते अन्न के छोटे-से-पिण्ड की भाँति आस्वादन करते हैं। जैसे वन में चरने वाले गदहे या ऊँट के अंग रक्त-माँस और हड्डियों से सम्पन्न हैं, उसी प्रकार कामिनियों के अंग भी उन्हीं उपकरणों से युक्त हैं। फिर नारी के प्रति ही लोगों का इतना आग्रह या आकर्षण क्यों है ?

मुने! लोग केवल स्त्री के शरीर में जिस आपात रमणीयता की कल्पना करते हैं, मेरी मान्यता के अनुसार वह भी उसमें है नहीं। उसमें जो रमणीयता की प्रतीति होती है, उसका एकमात्र कारण मोह ही है। मन में विकार उत्पन्न करने वाली मदिरा में और युवती स्त्री में क्या अन्तर है ? एक जहाँ मद (नशे)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Collection

के द्वारा मनुष्य को प्रचुर उल्लास प्रदान करती है, वहाँ दूसरी काम का भाव जगाकर पुरुष के लिये आनन्ददायिनी बनती है (अतः अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष के लिये दोनों ही सामान्य रूप से त्याज्य हैं)। जैसे विष की लता सुन्दर फूलों से मनोहर लगती, नये-नये पल्लवों से सुशोभित होती, भ्रमरों की क्रीड़ास्थली बनती पुष्प-गुच्छ धारण करती, फूलों के केसर से पीले रंग की प्रतीत होती, अपना सेवन करने वाले मनुष्य को मार डालती या पागल बना देती है, उसी प्रकार कमनीया कामिनी फूलों का श्रृंगार धारण करने के कारण मनोहारिणी लगती, करपल्लवों से सुशोभित होती, भ्रमरों के समान चंचल नेत्रों के कटाक्ष-विलास का प्रदर्शन करती, पुष्प-गुच्छों के समान स्तनों को वक्ष पर धारण करती, फूलों के केसर की भाँति सुनहरी गौर-कान्ति से प्रकाशित होती, मनुष्यों के विनाश के लिये तत्पर रहती और कामभाव से अपना सेवन करने वालों को उन्माद एवं मृत्यु आदि के अधीन कर देती है। मुनिश्रेष्ठ! कामरूपी किरात (बहेलिये) ने मूढ़ चित्त मानवरूपी पक्षियों को फँसाने के लिये स्त्रीरूपी जाल को फैला रक्खा है। जन्म-स्थान-रूपी छोटे-छोटे जलाशयों में उत्पन्न हो धनरूपी पंख में विचरने वाले पुरुषरूपी मत्स्यों को फँसाने के लिये नारी बंसी के काँटे में लगी हुई आटे की गोली के समान है और दुर्वासना ही उस बंसी की डोर है। नारी के स्तन से, नेत्र से, नितम्ब से अथवा भौंह से, जिसमें सार वस्तु के नाम पर केवल मांस है, अतएव जो किसी काम की वस्तु नहीं है, मेरा क्या प्रयोजन है ? मैं वह सब लेकर क्या करूँगा ? ब्रह्मन्! इधर मांस, इधर रक्त और इधर हड्डियाँ हैं; यही नारी का शरीर है, जो कुछ ही दिनों में जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। संसार के मनुष्यो! नारी के अंग का थोड़े ही समय में होनेवाला यह परिणाम मैंने तुम्हें बताया है, फिर तुम क्यों भ्रम के पीछे दौड़ रहे हो ? पाँच भूतों के सम्मिश्रण से बना हुआ अंगों का संगठन ही नारी नाम से प्रसिद्ध हो रहा है; अतः विवेक बुद्धि से सम्पन्न कोई भी पुरुष आसक्ति से प्रेरित होकर क्यों उसकी ओर टूट पड़ेगा ? जैसे हथिनी के लिये चंचल हुआ हाथी विन्ध्याचल पर्वत पर उसे फँसाने के लिये बनाये हुए गड्ढे में गिरकर बँध जाता और परम शोचनीय अवस्था को पहुँच जाता है, यही दशा तरुणी स्त्री के मोह में फँसे हुए तरुण पुरुष की होती है।

सत्रहवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu Collection

अठारहवां सर्ग

वृद्धावस्था दुःखरूपता

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं- महर्षे! जैसे हिमरूपी वज्र कमल को, आँधी ओसकण को और नदी तटवर्ती वृक्ष को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार वृद्धावस्था शरीर का नाश कर डालती है। जैसे लेशमात्र विष का भक्षण शरीर को शीघ्र ही कुरूप बना देता है, उसी प्रकार बुढ़िया जरावस्था मनुष्य के सारे अंगों को जर्जर करके शीघ्र ही कुरूप कर देती है। जिनके सारे अंग शिथिल होकर झुर्रियों से भर गये हैं और जरावस्था ने जिनके सारे अंगों को जर्जर बना दिया है, उन समस्त पुरुषों को कामिनियाँ ऊँट के समान समझती हैं। वृद्धावस्था के कारण जिसके अंग काँपते रहते हैं, ऐसे मनुष्य को नौकर-चाकर, स्त्री-पुरुष, बन्धु-बान्धव तथा सुहृद्गण भी उन्मत्त के समान समझकर उसकी हँसी उड़ाते हैं। जो दीनतारूपी दोष से परिपूर्ण, हृदय में संताप पहुँचाने वाली तथा समस्त आपत्तियों की एकमात्र सहचरी है, वह विशाल तृष्णा वृद्धावस्था में बढ़ती ही जाती है। 'हाय! बड़े खेद की बात है, मैं परलोक में क्या करूँगा ?' इस प्रकार का अत्यन्त दारुण भय, जो प्रतिकार के योग्य नहीं है, वृद्धावस्था में बढ़ता जाता है। बुढ़ापे में 'मैं बेचारा कौन हूँ ? मेरी हस्ती ही क्या है ? मैं किस प्रकार क्या करूँ ? अच्छा, मैं चुप ही रहता हूँ।' इस प्रकार की दीनता का उदय होता है। मुझे किसी स्वजन से कब, क्या और किस प्रकार का स्वादिष्ट भोजन प्राप्त हो सकता है ?' इस प्रकार चिन्तारूपिणी दूसरी जरावस्था बुढ़ापे में निरन्तर चित्त को जलाती रहती है। वृद्धावस्था में मनुष्य अपनी शक्ति का संतुलन खो बैठता है-कभी खाने की शक्ति होने पर पचाने की शक्ति नहीं रहती और कभी पचाने की शक्ति होने पर खाने की शक्ति नहीं रहती। इस प्रकार शक्तिह्रास के कारण भोग की इच्छा तो बड़ी प्रबल हो उठती है, परंतु उपभोग किया नहीं जा सकता। उस दशा में निश्चय ही हृदय जलता रहता है। मुने! शरीररूपी वृक्ष के सिरे पर बैठी हुई जरावस्थारूपिणी वृद्धा बगुली, जो नाना प्रकार के क्लेशों से शरीर का अपकार करने वाली है, रोगरूपी सर्पों से आक्रान्त होकर ज्यों ही चें-चें करने लगती है, त्यों ही मूर्छारूपी गहरे अन्धकार की इच्छा रखने वाला मृत्युरूपी उल्लू कहीं से झटपट आया हुआ ही दिखायी देता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जैसे सायंकाल की संध्या के प्रकट होते ही अन्धकार दौड़ पड़ता है, उसी प्रकार शरीर में जरावस्था को देखते ही मृत्यु दौड़ी चली आती है। सूना नगर, जिसकी लताएँ कट गयी हों वह वृक्ष तथा जहाँ वर्षा न हुई हो वह देश भी कुछ-कुछ शोभित होता है। किंतु जरा से जर्जर हुए शरीर की तनिक भी शोभा नहीं होती। वृद्धावस्था की मार खाकर जर्जर हुआ शरीर हिम समूह से आक्रान्त हो मुरझाये हुए कमल की-सी शोभा को धारण करता है।

मस्तकरूपी पर्वत के शिखर पर उगी हुई यह वृद्धावस्थारूपिणी चाँदनी बात रोग और खाँसीरूपिणी कुमुदिनी को यत्न पूर्वक विकसित कर देती है। यह बुढ़ापारूपिणी बेगवती गंगा आयु के समाप्त होने पर शरीररूपी तटवर्ती वृक्ष की जड़ को तुरंत ही काट गिराती है। तात! जैसे श्वेत पत्रवाली और फूलों से लदी हुई पतली लता कुछ टेढ़ी हो जाती है, उसी प्रकार जिसके सारे अवयव सफेद हो गये हैं, मनुष्यों का वह दुबला-पतला शरीर वृद्धावस्था से टेढ़ा हो जाता है-कमान की तरह झुक जाता है। मुने! जैसे कपूर से सफेद हुए केले के पेड़ को हाथी क्षणभर में उखाड़ फेंकता है, उसी प्रकार मृत्युरूपी गजराज वृद्धावस्था से कपूर की भाँति सफेद हुई देह को निश्चय ही क्षणभर में उखाड़ फेंकता है। तात! जो वृद्धावस्था को प्राप्त होकर भी जीता है, उस दुष्ट जीवन के लिये दुराग्रह रखने से क्या लाभ ? भूतल पर किसी से पराजित न होने वाली यह जरावस्था मनुष्यों की समस्त एषणाओं का तिरस्कार कर देती है-उनकी किसी भी इच्छा को सफल नहीं होने देती

अठारहवां सर्ग समाप्त

उन्नीसवां सर्ग

काल के स्वरूप का विवेचन

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं-मुनीश्वर! 'यह मेरी भोग्य वस्तु है। मैं इसका भोक्ता हूँ। ये भोग के साधन हैं। इस साधन से इस तरह भोग्य वस्तु को प्राप्त करके मैं चिरकाल तक इसका उपभोग करूँगा। आज यह वस्तु मैंने प्राप्त कर ली और अब इस मनोरथ को प्राप्त करूँगा' इत्यादि असंख्य मानसिक संकल्प विकल्पों द्वारा जो अनन्त व्यावहारिक वचनों का प्रयोग करते हैं तथा अल्प (तुच्छ) शरीर में महत्त्व बुद्धि (आत्मभाव) रखते हैं, उन मूढ़ जनों ने हेयोपादेय,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

शत्रु-मित्र तथा राग द्वेषादि भेदों द्वारा इस संसार रूपी गुफा में भ्रम को अत्यन्त गौरवपूर्ण (दुश्छेद्य) बना दिया है। जैसे बड़वाग्नि उमड़े हुए समुद्र को सोखती है, उसी प्रकार यह सर्वभक्षी काल भी उत्पन्न हुए जगत् को ग्रास बना लेता है। भयंकर कालरूपी महेश्वर इस सम्पूर्ण दृश्य-प्रपंच को निगल जाने के लिये सदा उद्यत रहते हैं; क्योंकि सारी वस्तुएँ उनके लिये सामान्यरूप से ग्रास बना लेने के योग्य हैं। युग, वर्ष और कल्प के रूप में काल ही प्रकट है। इसका वास्तविक रूप कोई देख नहीं सकता। वह सब संसार को अपने वश में करके बैठा है। संसार में जो रमणीय, शुभ कर्म करने वाले तथा उच्चता या गौरव में सुमेरु पर्वत के भी गुरू थे, उन सबको काल ने उसी तरह निगल लिया है, जैसे गरुड़ सर्पों को निगल जाते हैं। यह काल बड़ा निर्दय, कठोर, क्रूर, कर्कश, कृपण और अधम है। संसार में अब तक ऐसी कोई वस्तु नहीं हुई, जिसे यह काल उदरस्थ न कर ले। इस काल का विचार सदा सबको निगल जाने का ही रहता है। यह एक को निगलता हुआ भी दूसरे को चबा जाता है। अब तक असंख्य लोग इसकी उदरदरी में प्रवेश कर चुके हैं, तो भी यह महाखाऊ काल तृप्त नहीं होता। यह रात्रिरूपी भौंरों भरी हुई और दिनरूपी मंजरियों से सुशोभित वर्ष, कल्प और कलारूपिणी लताओं की निरन्तर सृष्टि करता रहता है, किंतु कभी थकता नहीं।

मुने! यह काल धूर्तों का शिरोमणि है। इसे कितना ही तोड़ा जाए, टूटता नहीं। जलाने पर भी जलता नहीं और दृश्य होने पर भी दीखता नहीं। मनोराज्य की भाँति फैला हुआ है। एक ही निमेष में किसी वस्तु को उत्पन्न कर देता है और पलभर में किसी भी वस्तु का पूर्णतः विनाश कर डालता है। काल केवल अपना ही पेट भरने में संलग्न रहने के कारण तिनका, धूल, इन्द्र, सुमेरू, पत्ता और समुद्र-सबको अपने अधीन करने-निगल जाने के लिये उद्यत रहता है। केवल इस काल में ही पर्याप्त क्रूरता भरी है, लोभ भी इसी के भीतर डेरा डाले हुए है। सारा-का-सारा दुर्भाग्य भी इसी में उपलब्ध होता है। यह काल महाकल्प नामक वृक्षों से देवता, मनुष्य और असुर आदि प्राणिसमूहरूपी फलों के भारों को गिराता हुआ-सा खड़ा है। सैकड़ों महाकल्प बीत जाने पर भी यह काल न तो खिन्न होता है न किसी के द्वारा समादृत

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

होता है और न इसका उदय ही होता है। यौवनरूपी कमलिनी को संकुचित करने के लिये यह चन्द्रमा के समान है, आयुरूपी गजराज का मस्तक विदीर्ण करने के लिये सिंह के सदृश है। इस संसार में तुच्छ या महान् कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे यह कालरूपी चोर चुरा न ले जाता हो; यह काल ही व्यावहारिक अवस्था में संसार का कर्ता, भोक्ता, संहार करने वाला और स्मरण कर्ता आदि सभी पदों पर प्रतिष्ठित होता है। किसी ने भी बुद्धि कौशल द्वारा इस काल के रहस्य का निश्चय नहीं किया है। पुण्य और पाप के फलभोग के अनुसार सुन्दर और कुरूप रूप धारण करने वाले समस्त शरीरों को काल ही उत्पन्न करता, काल ही उनकी रक्षा करता और काल ही सहसा उनका संहार कर देता है।

इस प्रकार इस जगत् में सर्वत्र काल का विलास देखा जाता है। मनुष्यों में तो काल का बल प्रसिद्ध ही है। इस काल की पत्नी है-चण्डी (अत्यन्त कोपवती कालरात्रि), जो बड़ी चतुराई से चलती है। इसे काल ने संसाररूपी वन में विहार करने के लिये नियुक्त किया है, इसके साथ सारी मात्रिकाएँ (डाकिनी, शाकिनी आदि) रहती हैं। यह कालरात्रि बाघिन के समान प्राणिसमूह का विनाश करने वाली है। काल के धनुष का नाम है-अभाव या संहार। वह निरन्तर टंकार करता रहता है, उससे दुःखरूपी बाणों की झड़ी लगी ही रहती है। वह कालरूपी राजकुमार संसार में दौड़ते हुए प्राणियों के पीछे दौड़ता है और उनको बाणों से विदीर्ण करता रहता है। इस काल से बढ़कर शक्तिशाली दूसरा कोई नहीं है। यही सबसे अधिक विलास करने में प्रवीण है और समस्त लक्ष्य भेदियों से ऊपर उठकर अनुपम शोभा पाता है।

यह जो कुछ भी विस्तृत जगन्मण्डल दिखायी देता है, वह उस काल की नृत्यशाला है। इसमें वह खूब जी भरकर नृत्य करता है। जैसे बालक गीली मिट्टी को लेकर नाना प्रकार के खिलौने बनाते हैं, उसी प्रकार काल भी बारंबार चौदह भुवन, विभिन्न वन, लोक-लोकान्तर, जीव-समुदाय तथा उनके नाना प्रकार के आचार-विचारों की सृष्टि करता है। उन आचार-विचारों की प्रवृत्ति सत्ययुग और त्रेता में अचल तथा द्वापर और कलि में चल होती है। इन सबकी सृष्टि करने में काल कभी थकता नहीं।

उन्नीसवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

बीसवां सर्ग

मानव जीवन की अनित्यता

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं- महामुने! जब जगत् में काल आदि के चरित्र ऐसे हैं, तब आप ही बताइये इस संसार-नामधारी प्रपंच में मेरे-जैसे लोगों की क्या आस्था हो सकती है। मुने! इन दैव (प्रारब्धकर्म) आदि के द्वारा की हुई सुख-दुःख आदि रूप प्रपंच-रचनाओं से मोहित हुए हम लोग किसी के हाथ बिके हुए दासों तथा वन के मृगों की भाँति पराधीन हो रहे हैं। जैसे सर्प वायु को पीता है, उसी प्रकार यह क्रूर आचरण करने वाला काल तरुण शरीर को बुढ़ापे में पहुँचा कर समस्त प्राणि समुदाय को निरन्तर अपना ग्रास बनाता रहता है। काल निर्दयों का राजा है। वह किसी भी आर्त प्राणी के ऊपर दया नहीं करता। सम्पूर्ण भूतों पर दया करने वाला उदार पुरुष तो इस संसार में दुर्लभ हो गया है। मुने! जगत् में जितनी भी प्राणियों की जातियाँ हैं, उन सबका वैभव अल्प एवं तुच्छ है तथा जितने भी भोग के स्थान हैं, वे सभी भयंकर और परिणाम में दुरन्त दुःख की ही प्राप्ति कराने वाले हैं। प्राणियों की आयु अत्यन्त चपल (अस्थिर) है, मृत्यु बहुत ही निर्दय है। जवानी भी अधिक चंचल होती है और बाल्यावस्था मोह में ही बीत जाती है। संसारी मनुष्य गाने बजाने की कला के रस (अथवा विषयानुसंधान) से कलंकित हैं। बन्धु-बान्धव संसार में बाँधने के लिये रस्सी के समान हैं। भोग महान रोग के समान हैं। बिना जीती हुई इन्द्रियाँ ही शत्रु हैं। सत्यस्वरूप आत्मा असत्य सा हो गया अर्थात् जीवात्मा अज्ञान के कारण देह को ही अपना स्वरूप मानने लग गया। बिना जीता हुआ मन बन्धन का हेतु होने से आत्मा का शत्रु है एवं अज्ञानवश यह जीवात्मा स्वयं ही अपने-आप पर उस मन के द्वारा प्रहार करता है। बुद्धियाँ अत्यन्त कोमल (आत्मनिष्ठा से रहित) हैं। क्रियाएँ शास्त्र विरुद्ध होने से दुःखरूप फल देने वाली हैं और लीलाएँ (शरीर और मन की चेष्टाएँ) स्त्री की प्राप्ति में ही केन्द्रित हैं, केवल स्त्रियाँ ही उनका विषय हो गयी हैं। इच्छाएँ विषयों में ही शोभा पाती हैं-वे भोगों की ओर ही दौड़ती हैं। परमात्म स्फूर्तिरूप चमत्कार नष्ट हो गये हैं। स्त्रियाँ दोषों की सेनाएँ हैं तथा सम्पूर्ण विषय-रस वास्तव में नीरस हैं।

महात्मन्! दूषित बुद्धि ने सबके अन्तःकरण को व्याकुल कर रक्खा है। अज्ञान के कारण सभी संतप्त हो रहे हैं। रागरूपी रोग दिनों दिन बढ़ रहा है

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और वैराग्य दुर्लभ हो रहा है। आत्मदर्शन की शक्ति रजोगुण से नष्ट हो गयी है। अतः सत्त्वगुण नहीं प्राप्त होता, केवल तमोगुण बढ़ रहा है। इसलिये तत्त्व (सच्चिदानन्दधन परमात्मा) अत्यन्त दूर है। जीवन अस्थिर हो गया है। मृत्यु जल्दी ही आने के लिये उत्सुक है। धैर्य शिथिल हो गया है और तुच्छ विषय-भोगों के प्रति लोगों की आसक्ति प्रतिदिन बढ़ रही है। बुद्धि मूढ़ता से मलिन हो गयी है। शरीर का अन्तिम परिणाम एकमात्र पतन (विनाश) ही है। देह में जरावस्था प्रज्वलित हो उठी है और पाप की ही बारंबार स्फुरणा होती है। जवानी यत्नपूर्वक भागी जा रही है। सत्संग दुर्लभ हो गया है। कभी कोई उत्तम आश्रय नहीं मिलता और सत्भाव का उदय तो हो ही नहीं रहा है। मन मोह से आच्छन्न सा हो रहा है। दूसरे को सुखी देखकर होने वाला आत्मसंतोष मानो दूर चला गया है। उज्ज्वल करुणा का उदय नहीं हो रहा है और नीचता दूर से निकट चली आ रही है। धीरता अधीरता में परिणत हो रही है। जीवों का काम केवल आवागमन-जन्मना-मरना रह गया है। दुष्टों का संग पग-पग पर सुलभ है; परन्तु सत्पुरुषों का संग अत्यन्त दुर्लभ हो गया है। सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं। वासना संसार में बाँधनेवाली है और काल प्राणियों की परम्परा को नित्य कहीं अज्ञात स्थान में लिये जाता है। दिशाएँ भी नहीं दिखायी देतीं। देश भी विदेश-सा हो जाता है और पर्वत भी बिखर कर ढह जाते हैं; फिर मेरे-जैसे मनुष्य की स्थिरता में क्या विश्वास है। सत्तामात्र ही जिसका स्वरूप है, वह काल आकाश को भी खा जाता है। चौदहों भुवनों को भी अपना भोजन बना लेता है। पृथ्वी भी विनाश को प्राप्त हो जाती है। फिर मेरे-जैसे मनुष्य की स्थिरता पर क्या विश्वास किया जा सकता है। कालवश समुद्र भी सूख जाते हैं, तारे भी टूटकर बिखर जाते हैं, सिद्ध भी नष्ट हो जाते हैं; फिर मेरे-जैसे मनुष्य की स्थिरता पर क्या आस्था हो सकती है ? बड़े-बड़े दानव भी विदीर्ण हो जाते हैं। ध्रुव भी अध्रुवजीवी बन जाते हैं और अमर भी मरण को प्राप्त होते हैं; फिर मेरे-जैसे मनुष्य की स्थिरता पर क्या विश्वास हो सकता है ? काल अपने अगणित मुखों से इन्द्र को भी चबा जाता है, यमराज को भी वश में कर लेता है और उसी के प्रभाव से वायु भी अवायु हो जाती है-अपना अस्तित्व खो बैठता है; फिर मुझ-जैसे मनुष्य की स्थिरता पर क्या विश्वास हो सकता है ?

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma(L.S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

सोम (चन्द्रमा) भी कालवश व्योम (आकाश) में विलीन हो जाता है। मार्तण्ड (सूर्य) के भी खण्ड-खण्ड हो जाते हैं और अग्नि भी भग्नता (विनाश) को प्राप्त हो जाती है; फिर मुझ-जैसे मनुष्य की स्थिरता पर क्या आस्था की जा सकती है ? जो काल (मृत्यु) को भी कवलित कर लेता है, नियति को भी टाल देता है और अनन्त आकाश को भी अपने आप में विलीन कर लेता है, उस महाकाल के होते हुए मुझ-जैसे मनुष्य की स्थिरता पर क्या विश्वास किया जा सकता है ? जिसका कानों से श्रवण, वाणी से वर्णन और नेत्रों से दर्शन नहीं होता, ऐसे अज्ञातस्वरूप एवं माया के उत्पादक किसी सूक्ष्म तत्त्व के द्वारा चौदहों भुवन अपने-आप में ही माया द्वारा दिखाये जा रहे हैं वह तत्त्व निर्गुण-निराकार सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही है। समष्टि अहंकाररूप कला को प्राप्त होकर सबके भीतर निवास करने वाला वह काल का भी कालरूप परमात्मतत्त्व सबसे महान् है। तीनों लोकों में ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जो उसके द्वारा नष्ट न किया जा सके। स्वर्ग में देवता, भूतल पर मनुष्य और पाताल में सर्पों की सृष्टि उसी ने की है। वही अपने संकल्प मात्र से इन सबको जर्जर दशा में पहुँचा देता है। अनुरागयुक्त कामिनियों ने अपने चंचल लोचनों द्वारा कटाक्षपूर्वक जिसकी ओर देखा है, उस पुरुष के मन को महान् विवेक भी स्वस्थ नहीं कर पाता। जो दूसरों का उपकार करने वाली है और दूसरों की पीड़ा देखकर संतप्त हो उठती है, अपनी आत्मा को शान्ति प्रदान करने वाली उस शीतल बुद्धि से युक्त ज्ञानी महात्मा ही सुखी है-ऐसा मेरा विश्वास है। जैसे समुद्र में उत्पन्न हो बडवाग्नि के मुँह में गिरकर नष्ट होने वाली असंख्य लहरों को कोई गिन नहीं सकता, उसी तरह संसार में उत्पन्न हो काल के मुँह में पड़ने वाले अनन्त प्राणियों की गणना कौन कर सकता है। जैसे झाड़ियों में बैठे हुए मृग या पक्षी अपनी जिव्हा की लोलुपता के कारण मोहवश जाल में पड़कर नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह दुराशा-पाश में बँधे हुए सभी मनुष्य दोषरूपी झाड़ियों के मृग बने हुए हैं। वे सब-के-सब मोह-जाल में फँसकर पुनर्जन्मरूपी जंगल में नष्ट हो जाते हैं इस संसार में लोगों की आयु विभिन्न जन्मों में किये गये कुकर्मों से नष्ट हो रही है। यदि आकाश में वृक्ष हो, उस वृक्ष में लता हो और लता से गले में फाँसी लगाकर मनुष्य को लटका दिया जाय तो उससे जो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दुःख होगा, वैसा ही दुःखमय फल उन कुकर्मों का भी बताया गया है। उस दुःख की निवृत्ति के लिये उपाय करना तो दूर की बात है, उस उपाय का विचार करने वाले लोग भी यहाँ हैं या नहीं, हमें इसी का पता नहीं है। मुनीश्वर! इस संसार में लोगों की बुद्धि चंचल और मृदु है। उसी बुद्धि से युक्त मनुष्य व्यर्थ ही अनेक संकल्प-विकल्पों का जाल रचते हुए कहते हैं-'आज उत्सव है।' यह बड़ी सुहावनी ऋतु है, इसमें यात्रा करनी चाहिये, वे लोग हमारे भाई-बन्धु हैं और यह सुख विशिष्ट भोगों से युक्त है, इन्हीं संकल्पों में पड़े-पड़े वे सब लोग एक दिन काल के गाल में चले जाते हैं।

बीसवां सर्ग समाप्त

इक्कीसवां सर्ग

सांसारिक वस्तुओं की निस्सारता

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं-तात! मुनीश्वर! इस जगत् का स्वरूप अत्यन्त अरमणीय (अभद्र) है, तो भी यह ऊपर से मनोरम प्रतीत होता है। इसमें कोई ऐसा पदार्थ मेरी दृष्टि में नहीं आता, जिसके प्राप्त होने से चित्त को अत्यन्त विश्राम (परम सुख) मिल सके। बाल्यावस्था विविध प्रकार से कल्पित क्रीड़ा-कौतुक में ही चपलता-पूर्वक बीत जाती है। युवावस्था आने पर मनरूपी मृग स्त्रीरूपिणी गुफाओं में रमता हुआ जीर्ण हो जाता है; फिर वृद्धावस्था प्राप्त होने पर जब यह शरीर जर्जर हो जाता है, उस समय जन समुदाय केवल दुःख ही दुःख भोगता रहता है (उसे कहीं कभी भी सुख-शान्ति का लेश भी प्राप्त नहीं होता)। बुढ़ापारूपी हिम की वर्षा से जब देहरूपिणी कमलिनी नष्ट हो जाती है, उस समय प्राणरूपी भ्रमर इसे छोड़कर दूर, बहुत दूर चला जाता है। उस दशा में उस मनुष्य के लिये यह संसार में तृष्णा नाम की नदी निरन्तर बहती रहती है, जिसने अपने प्रबल प्रवाह के वेग से यहाँ के समस्त अनन्त पदार्थों को ग्रस लिया है (नष्ट कर दिया है)। यह संतोषरूपी तटवर्ती वृक्ष की जड़ खोदने में बड़ी दक्ष है। संसाररूपी समुद्र में चमड़े से मढ़ी हुई शरीररूपिणी नौका क्षुधा, पिपासा आदि विविध तरंगों से आहत हो हिलती-डोलती हुई इधर-उधर घूम रही है। पाँच इन्द्रिय नामक ग्राह इसे टक्कर मारकर डुबाने के लिये उद्यत रहते हैं। इस तरह यह नौका क्रमशः नीचे जा रही है-डूबना चाहती

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

है। इसमें धैर्य और वैराग्य से सुशोभित होने वाले विवेकी जीव नहीं बैठे हैं। जहाँ तृष्णारूपिणी लताओं का ही प्राधान्य है, ऐसे संसाररूपी वनों में विचरने वाले ये मनरूपी बंदर कामरूपी वृक्षों की सैकड़ों शाखाओं पर भटकते हुए अपनी आयु नष्ट करते हैं, परंतु कभी मनोवाञ्छित फल नहीं पाते। महर्षे! आपत्तियों की प्राप्ति होने पर भी दुःख और मोह जिनसे दूर ही रहते हैं, स्वास्थ्य और सम्पत्ति में जो अहंकार शून्य मन से सुशोभित होते हैं तथा सुन्दरी रमणियाँ जिनके अन्तःकरण में चोट नहीं पहुँचातीं (विकार नहीं उत्पन्न करतीं), ऐसे महात्मा पुरुष इस समय अत्यन्त दुर्लभ हैं। जो हाथियों की सेनारूपी तरंगों से उद्वेलित होने वाले समर-सागर को अपने बल-विक्रम के द्वारा पार कर जाते हैं, मेरी दृष्टि में वे शूरवीर नहीं हैं। मैं तो उन्हीं को शूरवीर मानता हूँ, जो मनरूपी उत्ताल तरंगों से पूर्ण इस देह और इन्द्रियरूपी समुद्र को विवेक, वैराग्य आदि के द्वारा लाँघ जाते हैं।

जो कीर्ति से जगत् को, प्रताप से सम्पूर्ण दिशाओं के प्रदेशों को, सम्पत्ति से याचकों के घरों को और सात्त्विक बल (क्षमा, विनय, उदारता आदि) से लक्ष्मी को परिपूर्ण करते हैं तथा जिनके धैर्य का बन्धन कभी टूटता नहीं, वे महापुरुष इस पृथ्वी पर सुलभ नहीं हैं (परम दुर्लभ हैं) कोई पर्वत की प्रस्तरमयी दीवार के भीतर (गहन गुफा में) निवास करता हो या वज्रनिर्मित अभेद्य दुर्ग में रहता हो, सभी मनुष्यों के पास प्रारब्ध के अनुसार पुण्य के फलस्वरूप सम्पत्तियाँ अणिमा आदि सिद्धियों को साथ लिये सदा वेग पूर्वक चली आती हैं और पाप के फलस्वरूप आपत्तियाँ भी निरन्तर अपने-आप आ जाती हैं। तात! पुत्र, स्त्री और धन-इन सबको मनुष्य भ्रमवश अपनी बुद्धि के द्वारा रसायन के समान सुखद मान लेता है; परंतु मृत्युकाल आने पर वे सब के सब कोई उपकार नहीं करते, किंतु अत्यन्त रमणीय भोग भी उस समय विषपान करने से होने वाली मूर्छा के समान दुःखदायी ही सिद्ध होते हैं। शरीर की बाल्य और युवावस्थाओं के अन्त में बुढ़ापे की विषम अवस्था को पहुँचा हुआ जराजीर्ण शरीर वाला जीव विषादमग्न हो इस लोक में अपने संचित किये हुए धर्म शून्य (पाप पूर्ण) भावों (कर्मों एवं विचारों) का स्मरण करके दुस्सह अन्तर्ज्वाला से जलता रहता है। जीवन के प्रारम्भ में केवल काम, अर्थ और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सकाम धर्म की प्राप्ति के लिये ही जिन्होंने हृदय में स्थान बना रक्खा है, उन क्रियाओं द्वारा ही अपने दिन बिताकर वृद्धावस्था को पहुँचे हुए उन मनुष्यों का हिलते हुए मोर पंख के समान चंचल चित्त किस उपाय से विश्राम (सुख-शान्ति) लाभ करे ? (अर्थात् निष्काम धर्म या परमार्थ-साधन के बिना सुख-शान्ति का मिलना कठिन है)। इनको अभी करना है और उन्हें बाद में-इस प्रकार जिनके लिये चिन्ता की जाती है, वे आपात रमणीय एवं परिणाम में अनर्थरूप सिद्ध होने वाले कार्य स्त्रियों तथा अन्य लोगों के चित्त को वेगपूर्वक जीर्ण-शीर्ण (विवेक भ्रष्ट) करते रहते हैं। जैसे वृक्षों के पत्ते उत्पन्न होकर थोड़े ही दिनों में पीले पड़कर झड़ जाते या नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार आत्म विवेक से रहित मनुष्य इस लोक में जन्म ले एक दूसरे से मिलकर कुछ ही दिनों में साथ छोड़कर चल देते हैं।

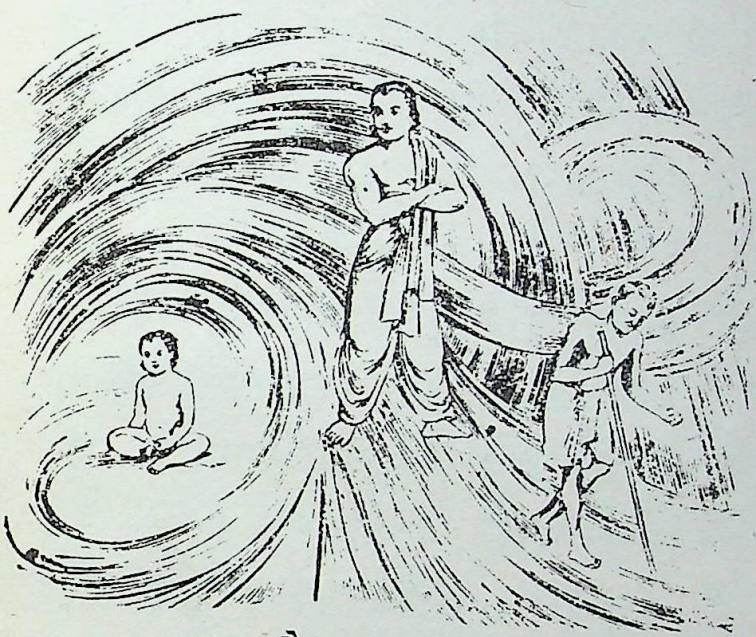

भला, कौन समझदार मनुष्य दिन में दूर-दूर तक व्यर्थ इधर-उधर घूमता हुआ ज्ञानी महापुरुषों का संग एवं सत्कर्म का अनुष्ठान न करके सायंकाल घर में लौटने पर रात में सुख की नींद सो सकेगा ? समस्त शत्रुओं को मार भगाने पर जब चारों ओर से धन सम्पत्ति प्राप्त होने लगती है, उस समय पुरुष, जब तक इन विषयसुखों के सेवन में लगता है, जब तक ही मृत्यु कहीं से सहसा आ धमकती है। जो किसी कारण से वृद्धि को प्राप्त होकर भी क्षण भर में ही नष्ट होते देखे गये हैं, उन अत्यन्त तुच्छ विषय भोगों द्वारा इधर-उधर भटकायी जाती हुई जनता इस भूतल पर अपने निकट आयी हुई मृत्यु को नहीं जान पाती, यह कितने आश्चर्य की बात है। समुद्र की क्षणभंगुर लहरों के समान यह चपल जनता इस भूतल पर निरन्तर कहीं से वेगपूर्वक आती और फिर सदा वेग से ही चली जाती है। जैसे चंचल भ्रमररूपी नेत्रों और लाल पल्लवरूपी अधरोंवाली तथा विष-वृक्ष पर चढ़कर फैली हुई चंचल विष-लताएँ देखने में अति सुन्दर होने के कारण पहले मन को हर लेती हैं,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

पीछे सेवन करने पर प्राणों का नाश कर देती हैं, उसी प्रकार लाल अधरों और भ्रमर तुल्य चंचल नेत्रों से सुशोभित होनेवाली सुन्दरी स्त्रियाँ मनोहारिणी होने के कारण पहले तो मनुष्यों के चित्त को चुराती हैं, फिर सर्वथा उनके प्राणों का अपहरण करने वाली बन जाती हैं। जैसे तीर्थयात्रा अथवा देवोत्सव में बहुत से मनुष्यों का मेला जुट जाता है, उसी प्रकार इस लोक और परलोक से व्यर्थ ही आये हुए और अमुक स्थान पर हम लोगों की भेंट होगी, इस तरह आपस के संकेत युक्त अभिप्राय से एकत्र हुए लोगों का जो स्त्री, पुत्र और मित्र आदिके रूप में यहाँ मिलन होता है, यह व्यवहार मायामय ही है। यह संसार वेगपूर्वक घूमने वाले कुलालचक्र के समान है। यद्यपि यह वर्षा ऋतु के पानी के बुलबुलों के समान क्षणभंगुर है, तथापि असावधान मनुष्यों की बुद्धि में अपनी चिरस्थायिता की ही प्रतीति कराता है।

जहाँ दैववश बारंबार जन्म लेकर अपने शरीर को धारण करके छाया, पत्र और पुष्प आदि के द्वारा निरन्तर प्राणियों का उपकार करने वाला वृक्ष भी कुल्हाड़ी से काट दिया जाता है, उस संसार में मनुष्य जैसा अपराधी और उपकार शून्य प्राणी सदा जीवित ही रहेगा, ऐसा विश्वास करने के लिये कौन-सा कारण है ? विष का वृक्ष और विषयासक्त मनुष्य दोनों ऊपर से बड़े मनोहर लगते हैं, किंतु उनके भीतर बड़ाभारी दोष भरा रहता है। एक (विषवृक्ष) हृदयस्थित प्राणों के विनाश के लिये खड़ा है तो दूसरा (विषयासक्त मनुष्य) आन्तरिक शान्ति के विघात के लिये तैयार रहता है। इनके संग से तत्काल मूर्छा या मूढ़ता ही प्राप्त होती है। संसार में ऐसी कौन-सी दृष्टियाँ हैं, जिनमें दोष नहीं है ? वे कौन सी दिशाएँ हैं, जहाँ दुःख और दाह नहीं है ? वे कौन से जीव शरीर हैं, जो क्षणभंगुर नहीं हैं ? और कौन-सी लौकिक क्रियाएँ हैं, जिनमें छल-कपट नहीं है ? बीते हुए और आने वाले अनन्त कल्पों की संख्या का परिज्ञान नहीं होता। इसलिये जैसे क्षण अनन्त हैं, उसी प्रकार कल्प भी अनन्त हैं। भगवान् विष्णु और रुद्र आदि की दृष्टि में कल्प भी क्षण ही हैं। अतः ब्रह्मलोक के निवासी भी कलाओं (विभिन्न अंशों) से सुशोभित होने वाले काल समूह में लघुत्व और दीर्घत्व-चिरजीवन और क्षणजीवन की बुद्धि भी द्रष्टा की कल्पना के अधीन होने के कारण असत्य ही है। सर्वत्र पत्थर के ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पहाड़ हैं-उनमें पत्थर के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इसी तरह सब जगह मिट्टी की ही पृथ्वी है, काष्ट के ही वृक्ष हैं और हाड़-मांस के ही मनुष्य हैं। लोगों के बनाये हुए संकेत के अनुसार ही उनके विशेष नाम आदि भाव नियत हो गये हैं। इस भोग्य वर्ग में कोई भी वस्तु विकार से हीन अथवा अपूर्व नहीं है। सब कुछ विकाररूप होने के कारण ही असत्य है। जल, अग्नि, वायु, आकाश और पृथ्वी-ये पाँच महाभूत ही परस्पर मिलकर घट-पट आदि नाना पदार्थों के रूप में अविवेकी पुरुषों को प्रतीत होते हैं। चेतन के सानिध्य से ही उन्हें पदार्थों की प्रतीति होती है। विवेक-दृष्टि से पृथक्-पृथक् विभागपूर्वक अलोचना करने पर यह जगत् पाँच भूतों से अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं सिद्ध होता।

महात्मन्! मिथ्या होने पर भी इस पदार्थ समूह के विषय में व्यवहार-कुशलता के कारण विद्वान् पुरुषों के भी मन में भोग सम्बन्धी चमत्कार (चेष्टा) को उत्पन्न करने वाली जो व्यवहार चमत्कृति या प्रवृत्ति देखी जाती है वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि कभी-कभी स्वप्न में मिथ्याभूत विषय को लक्ष्य करके भी किन्हीं लोगों की उस प्रकार की चमत्कार पूर्ण प्रवृत्ति होती देखी जाती है।

जैसे पशु किसी हरी-हरी लता के फल को पाने की इच्छा से ही आगे बढ़ने पर निस्संदेह पर्वत शिखर से गिर जाता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों के पद (स्थान या धन-वैभव आदि) को हठात् लेने की इच्छा रखने वाला पुरुष राग-लोभ आदि दोषों से दूषित हुए अपने चित्त के द्वारा ही मारा जाकर अवश्य पतन के गर्त में गिर जाता है।

इक्कीसवां सर्ग समाप्त

बाईसवां सर्ग

जगत की परिवर्तनशीलता एवं अस्थिरताका वर्णन

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं- ब्रह्मन्! यह जो कुछ भी स्थावर-जंगमरूप दृश्य जगत् दिखायी देता है, वह सब सपने में लगे हुए मेले के समान अस्थिर है- चिरकाल तक टिकने वाला नहीं। आज जिस शरीर को रेशमी वस्त्र, फूलों के हार तथा भाँति-भाँति के अनुलेपनों से सजाया गया है, वहीं कल नंगा होकर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ग्राम या नगर से बहुत दूर किसी गड्डे में पड़ा-पड़ा सड़ जायगा। जिस स्थान में आज विचित्र आहार-व्यवहार और चहल-पहल से भरा हुआ चंचल सा नगर देखा गया है, वहीं कुछ ही दिनों में सूने वन के धर्म का उदय हो जायगा-वह भूमि गहन वन के समान निर्जन एवं अगम्य हो जायगी। जो पुरुष आज तेजस्वी है और अनेक मण्डलों पर शासन करता है, वहीं कुछ दिनों के अनन्तर राख का ढेर बन जाता है। आज जो आकाश मण्डल के समान नीला और महाभयंकर वन है, वही कुछ काल के पश्चात् ध्वजा-पताकाओं से आकाश को ढक देने वाला विशाल नगर बन जाता है। आज जो लता-वल्लरियों से आवेष्टित भयंकर वन श्रेणी दृष्टिगोचर होती है, वही कतिपय दिनों में मरुभूमि (रेगिस्तान) का स्थान ग्रहण कर लेती है। जल स्थल हो जाता है और स्थल जल। काठ, जल और तिनकों सहित सारा जगत् ही विपरीत अवस्था को प्राप्त होता रहता है। जवानी, बचपन, शरीर और द्रव्य संग्रह-ये सब के सब अनित्य हैं और तरंग की भाँति निरन्तर एक भाव से दूसरे भाव को प्राप्त होते रहते हैं। इस संसार में प्राणियों का जीवन हवा से भरे स्थान में रखे हुए दीपक की लौ के समान चंचल (शीघ्र ही बुझ जाने वाला) है और तीनों लोकों के सम्पूर्णपदार्थों की शोभा (चमक-दमक) बिजली की चमक के समान क्षणिक है।

महर्षे! वे उत्सव और वैभव से सुशोभित होने वाले दिन, वे महाप्रतापी पुरुष, वे प्रचुर सम्पत्तियाँ तथा वे बड़े-बड़े कर्म-सब के सब दृष्टिपथ से दूर हो केवल स्मरण के विषय रह गये हैं। इसी तरह हम भी क्षणभर में अज्ञात स्थान को चले जायँगे और लोगों के लिये केवल स्मरणीय बनकर रहे जायँगे। यह संसार प्रतिदिन नष्ट होता है और प्रतिदिन पुनः उत्पन्न हो जाता है। अतः आज तक इस नष्टप्रायः जले हुए संसार का अन्त नहीं हुआ। प्रभो! मनुष्य पशु-पक्षियों की योनि को प्राप्त होते हैं। पशु-पक्षी मानव जन्म धारण करते हैं तथा देवता भी देवेतर योनियों में जन्म लेते हैं ? स्वर्ग, पृथ्वी, वायु, आकाश, पर्वत, नदियाँ और दिशाएँ-ये सब के सब विनाशरूपी वड़वानल के लिये सूखे ईधन के समान हैं। धन, भाई-बन्धु, भृत्यवर्ग, मित्र तथा वैभव-ये सब के सब विनाश के भय से डरे हुए पुरुष के लिये नीरस ही हैं। मुनीश्वर! जगत् में मनुष्य क्षणभर में ऐश्वर्य (धन वैभव) प्राप्त कर लेता है और क्षणभर में दरिद्र

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

हो जाता है। वह क्षणभर में ही रोगी और क्षणभर में नीरोग हो जाता है। इस प्रकार प्रतिक्षण विपरीत अवस्था प्रदान करने वाले इस नश्वर जगत्‌रूपी भ्रम से कौन बुद्धिमान मनुष्य मोहित नहीं हुए हैं ? (इस भ्रम ने सभी लोगों को मोह में डाल रक्खा है।)

आकाशमण्डल क्षणभर में ही अन्धकाररूपी कीचड़ से ढक जाता है, फिर क्षणभर में ही सुवर्ण द्रव के समान शीतल मृदुल चाँदनी आदि के उज्ज्वल प्रकाश से उद्‌भासित हो परम सुन्दर दिखायी देने लगता है। दूसरे ही क्षण मेघरूपी नील कमलों की माला से उसका अन्तःप्रदेश (वृक्ष एवं उदर) ढक जाता है। क्षणभर में ही वहाँ उच्च स्वर से मेघों की गम्भीर गर्जना होने लगती है और क्षण में ही वह मूक की भाँति नीरव हो जाता है। क्षण में ही ताराओं की हारावली से अलंकृत और क्षण में ही सूर्यरूपी मणि से विभूषित हो जाता है। क्षण में ही वहाँ चन्द्रमा की चटकीली चाँदनी से आल्हाद छा जाता है और क्षणभर में ही वह सबसे सूना हो जाता है। इस तरह जैसे आकाश की स्थिति क्षण-क्षण बदलती रहती है, उसी प्रकार संसार के सभी पदार्थ प्रतिक्षण परिवर्तनशील हैं। महर्षे! संसार में कौन ऐसा पुरुष है, जो धीर होता हुआ भी क्षणभर में स्थित और क्षणभर में नष्ट होने वाली, आवागमन की परम्परा से युक्त इस सांसारिक स्थिति से भयभीत नहीं होता ? मुने! यहाँ क्षणभर में आपत्तियाँ आती हैं और क्षणभर में सम्पत्तियाँ। क्षण में ही जन्म होता है और क्षण में ही मृत्यु। इस जगत् में कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो क्षणिक न हो ? भगवन्! यहाँ उत्पन्न हुआ मनुष्य पहले कुछ और ही था और थोड़े दिनों बाद अन्य प्रकार का हो जाता है। यहाँ सदा एकरूप रहने वाली सुस्थिर वस्तु कोई नहीं है। यहाँ कायर के द्वारा शूरवीर मारा जाता है। एक ही व्यक्ति के हाथ से सैकड़ों मनुष्य मारे जाते हैं और साधारण लोग भी राजा बन बैठते हैं। इस प्रकार यह सारा जगत् विपरीत अवस्था में परिवर्तित होता रहता है। बाल्यावस्था थोड़े ही दिनों में चली जाती है, फिर यौवन की शोभा छा जाती है और कुछ ही दिनों में वह भी समाप्त हो जाती है। तत्पश्चात् वृद्धावस्था का पदार्पण होता है। जब हमारे शरीर में भी एकरूपता (स्थिरता) नहीं है, तब बाह्य वस्तुओं में एकरूपता का विश्वास क्या हो सकता है ? उत्पन्न और विनष्ट होने वाले संसारी पुरुषों की न तो आपत्तियाँ स्थिर रहती हैं और न सम्पत्तियाँ ही। यह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

काल चतुर मनुष्यों को भी अवहेलना पूर्वक विपरीत स्थितियों में परिवर्तित करने के कार्य में अत्यन्त कुशल है। प्रायः सब लोगों को आपत्ति में ढकेल कर यह क्रीड़ा करता है।

बाइसवां सर्ग समाप्त

तेईसवां सर्ग

तत्त्व ज्ञान के उपदेश के लिये प्रार्थना

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं–मुनीश्वर! विषयभोग दुःख रूप और अनित्य हैं, इस प्रकार विषयों में दोष-दर्शन रूपी दावानल के द्वारा मेरा चित्त दग्ध हो निर्मूल एवं महान् हो गया है। अतः जैसे जलाशयों में मृगतृष्णा का उदय नहीं होता, उसी तरह मेरे उस चित्त में भोगों की आशा अंकुरित नहीं होती। जैसे नीम के वृक्षपर फैली हुई रसहीन गिलोय काल पाकर उत्तरोत्तर कड़वी होती जाती है, उसी प्रकार यह सांसारिक स्थिति भी दिन-प्रतिदिन तीव्र वैराग्य के कारण मेरे लिये अधिकाधिक कटुता को प्राप्त हो रही है। मुनीश्वर! विविध चिन्ताओं से परिपूर्ण भोग-समूहों एवं राज्यों की अपेक्षा चिन्तारहित महात्मा पुरुषों द्वारा स्वीकृत एकान्त-सेवन ही मुझे अच्छा लगता है। सुन्दर उद्यान मुझे आनन्द नहीं देता, स्त्रियों से मुझे सुख नहीं मिलता और धन की आशा पूर्ति से मुझे हर्ष नहीं होता। मन के साथ-साथ शान्ति पाना चाहता हूँ। मैं न तो मृत्यु का अभिनन्दन और न जीवन का ही स्वागत करता हूँ। जिस तरह संतापरहित होकर स्थित हूँ, उसी तरह रह रहा हूँ, मुझे राज्य से, भोगों से, धन से और नाना प्रकार की चेष्टाओं से भी क्या प्रयोजन है ? अहंकारवश ही मनुष्य इन राज्य आदि से सम्बन्ध रखता है, किंतु मेरा वह अहंकार ही गल गया है (अतः मेरे लिये इनकी आवश्यकता नहीं रह गयी है)। जैसे हाथी अपने खुरों के प्रहार से कोमल कमल को कुचल डालता है, उसी प्रकार कामदेव ने मानवती कामिनियों के द्वारा मनुष्यों के मन को मथ डाला है। मुनीन्द्र! यदि अभी निर्मल बुद्धि के द्वारा इस चित्त की चिकित्सा नहीं की जाती तो फिर इसकी चिकित्सा का अवसर ही कहाँ रह जायगा ? (क्योंकि रोग बढ़ जाने पर उसकी चिकित्सा कठिन हो जाती है।) विषयों की विषमता ही विष है। लोकप्रसिद्ध विष को वास्तव में विष नहीं कहा जाता; क्योंकि विष एक ही शरीर का (जिसके द्वारा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

उसका सेवन किया जाता है, उसी का) नाश करता है, परंतु विषय (विष) जन्म-जन्मान्तरों तक जीवन को मौत के मुँह में डालते रहते हैं। सुख-दुःख, मित्र, भाई-बन्धु, जीवन और मरण-ये सब (बन्धन के कारण होते हुए भी) ज्ञानी पुरुष के चित्त को नहीं बाँधते (अज्ञानी का ही मन इससे बँधता है)।

ब्रह्मन्! आप प्राचीन और अर्वाचीन बातों के जानने वाले महात्माओं में श्रेष्ठ हैं। इसलिये जिस प्रकार मैं शोक, भय और खेद से मुक्त हो यथार्थ ज्ञान से सम्पन्न हो जाऊँ, वैसा उपदेश मुझे शीघ्र प्रदान कीजिये। अज्ञान एक भयंकर वन के समान है। जैसे वन में मृगों को फँसाने के लिये जाल बिछे होते हैं, काँटेदार झाड़ झँखाड़ फैले रहते हैं तथा जगह-जगह बहुत से ऊँचे-नीचे स्थान रहते हैं, उसी प्रकार अज्ञानरूपी वन भी विषय वासना के जाल से आवेष्टित, दुःखरूपी कण्टकों से व्याप्त तथा सम्पत्ति-विपत्तिरूपी ऊँचे-नीचे स्थानों से युक्त है। महात्मन्! जैसे रात में ऐसी अन्धकार राशि नहीं होती, जो चन्द्रमा की चाँदनी से नष्ट न हो जाती हो, उसी प्रकार संसार में ऐसी दुश्चिन्ताएँ नहीं हैं, जो उत्तम अन्तःकरण वाले महात्मा पुरुषों के संग से क्षीण न हो जायँ। आयु वायु से टकरायी हुई मेघों की घटा से झरते हुए जल-बिन्दुओं के समान क्षणभंगुर है। भोग मेघमाला के बीच में चमकती हुई बिजली के समान चंचल हैं तथा युवावस्था के मनोरंजन जल के वेग के समान चपल हैं-ऐसा विचार कर मैंने इन सबको त्याग दिया और तुरंत ही चिरकाल तक बनी रहने वाली शान्ति को आज से अपने चित्त पर शासन करने के लिये सुदृढ़ अधिकार मुद्रा समर्पित कर दी है।

जैसे मृग तुच्छ तृणों के लोभ से ठगे जाकर गड्डों में गिर पड़ते हैं, उसी प्रकार अन्तःकरण की वृत्तियाँ निस्सार विषयों द्वारा ठगी जाती और विक्षेपरूपी दुःखों को भोगने के लिये उनके गहरे गर्त में गिर जाती हैं। जैसे देवता विधि भोग-सामग्रियों से परिपूर्ण तथा चतुर्दश भुवनों के भीतर विचरण करने वाले अपने शीघ्रगामी विमान का परित्याग नहीं करते, उसी प्रकार विविध भोगवासनाओं से विस्तार को प्राप्त हुआ और समस्त लोकों में बेरोक-टोक विचरने वाला मनुष्यों का यह चंचल चित्त भी कभी चपलता को नहीं छोड़ता।

अतः महात्मन्! जन्म-मरण आदि दुःखों से रहित, देह आदि उपाधियों से शून्य तथा भ्रान्तिरहित वह महान् विश्रान्तिदायक परमपद कौन सा है, जहाँ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पहुँच जाने से शोक का अभाव हो जाता है ? समस्त कर्मों का सुचारु रूप से अनुष्ठान करने वाले तथा सदा लौकिक व्यवहार में ही तत्पर रहने वाले जनक आदि महापुरुष कैसे उत्तम पद को प्राप्त हुए ? दूसरों को अधिक मान देने वाले महामुने! वह कौन-सा उपाय है, जिससे संसाररूपी पंख का अनेक अंगों से सम्पर्क हो जाने पर भी मनुष्य उससे लिप्त नहीं होता ? किस दृष्टि (बुद्धि) का आश्रय लेकर आप-जैसे पाप रहित महामना महापुरुष इस जगत् में जीवन्मुक्त होकर विचरते हैं ? जिसे मोहरूपी मतवाले हाथी ने मथ डाला है, जिसके भीतर काम आदि दोषों की कीचड़ भरी पड़ी है, वह प्रज्ञारूपी महान् सरोवर किस उपाय से अत्यन्त निर्मल हो जाता है ? जैसे कमल के पत्ते से जल का लगाव नहीं होता, उसी प्रकार प्रवाहरूप से बने रहने वाले इस संसार में समस्त व्यवहारों का निर्वाह करता हुआ भी मनुष्य बन्धन में न पड़े-इसका क्या उपाय है ? सम्पूर्ण प्राणियों को आत्मा के समान तथा इस समस्त भोग प्रपंच को तिनके के समान समझने वाला और मन की कामादि वृत्तियों का स्पर्श न करने वाला मनुष्य कैसे श्रेष्ठ पद को प्राप्त हो सकता है ? जिसने संसाररूपी महासागर को पार कर लिया हो, ऐसा कौन-सा महापुरुष है, जिसके चरित्र का अनुसरण करके मनुष्य कभी दुखी नहीं होता ? वह प्राप्त करने योग्य कल्याण और फल क्या है ? इस विषय संसार में (इसे पार करने के लिये) कैसे व्यवहार करना चाहिए ? प्रभो! मुझे तत्त्व का कुछ उपदेश दीजिये, जिससे मैं ब्रह्मरचित इस अव्यवस्थित जगत् का पूर्वापर (आदि-अन्त) समझ सकूँ। इस संसार में ग्रहण करने योग्य वस्तु क्या है ? त्याज्य वस्तु क्या है ? तथा इन दोनों से भिन्न अग्राह्य एवं अत्याज्य वस्तु क्या है ? मनुष्यों का यह चंचल चित्त किस प्रकार पर्वत के समान स्थिरता एवं शान्ति को प्राप्त करे ? किस पावन मंत्र से सैंकड़ों क्लेषों की सृष्टि करने वाला यह दोषयुक्त संसाररूपी विसूचिका (हैजा) का रोग अनायास शान्त हो सकता है ? महात्मन्! जैसे वन में कुत्ते विभिन्न जन्तुओं के अधमरे शरीर को पीड़ित करते रहते हैं, उसी तरह नाना प्रकार के संशय सर्वोत्कृष्ट आनन्दमय ब्रह्मपद में आत्यन्तिक निष्ठा से रहित पुरुष को सदा कष्ट देते रहते हैं।

मुनीश्वर! ऐसा कौन-सा उपाय है, क्या गति है, कौन-सा चिन्तन है, क्या आश्रय है तथा कौन-सा साधन है, जिसका अवलम्बन करने से यह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जीवनरूपी वन भविष्य में अमंगलकारी न हो ? भगवन्! इस पृथ्वी पर, स्वर्ग में अथवा देव-समाज में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे तुच्छ होने पर भी आप-जैसे परम बुद्धिमान महात्मा रमणीय न बना दें। यह नश्वर संसार निरन्तर दुःखों से परिपूर्ण और नीरस है। कृपया यह बताइये कि यह किस उपाय से अज्ञान के निवारण पूर्वक परमानन्दरूप उत्तम स्वाद से युक्त हो जाता है। मुने! यह मनरूपी चन्द्रमा काम से कलंकित हो रहा है। इसे किस साधन एवं विधि से धोया जाये कि उससे अत्यन्त निर्मल एवं परम आल्हादमयी दिव्य चाँदनी का उदय हो। जिसे संसार की गति का अनुभव है और जिसने निष्काम भाव के द्वारा दृष्ट एवं अदृष्ट कर्मफलों का विनाश कर दिया है, ऐसे किस महापुरुष की भाँति हमें इस संसाररूपी वन की गलियों में विचरते समय व्यवहार करना चाहिये ? प्रभो! किस उपाय का आश्रय लिया जाये, जिससे संसाररूपी वन में विचरने वाले जीव को राग-द्वेषरूपी बड़े-बड़े दोष तथा भोग समूह एवं ऐश्वर्यरूपी हिंसक जन्तु कष्ट न दे सकें ? मुनिश्रेष्ठ! तीनों लोकों में मन की जो मननशालिनी सत्ता (विषय-चिन्तनरूप अस्तित्व) है, उसे किसी साधनरूप युक्ति के बिना नष्ट नहीं किया जा सकता। अतः आप उस उत्तम युक्ति का पूर्णरूप से उपदेश कीजिये अथवा जिसका अवलम्बन करने से लोक व्यवहार में तत्पर रहने पर भी मुझे दुःख प्राप्त न होसके, उस व्यवहार-सम्बन्धिनी उत्तम युक्ति का प्रतिपादन कीजिये। किस उत्तम चित्तवाले महापुरुष ने पहले युक्ति के द्वारा मोह का निवारण किया ? उसने किस प्रकार और क्या किया था, जिससे उसका मन परम पवित्र होकर शान्ति को प्राप्त हो गया ? भगवन्! मोह की निवृत्ति के लिये आप-जैसा, जो कुछ भी जानते हैं, उसका उसी रूप में मुझे उपदेश कीजिये। वह कौन-सा साधन है, जिसका आश्रय लेने से अनेक श्रेष्ठ पुरुष दुःख रहित स्थिति (कल्याण) को प्राप्त हो गये हैं ?

श्रीवाल्मीकि जी कहते हैं भरद्वाज! जैसे मोर महान् मेघों की घटाओं के सम्मुख केकारव करके थक जाने के कारण चुप हो जाता है, उसीप्रकार निर्मल चन्द्रमा के समान मनोहर एवं महान् तत्त्व विचार से विकसित चित्तवाले श्रीरामचन्द्र जी वसिष्ठ आदि महान् गुरुजनों के समक्ष उपर्युक्त बातें कहकर चुप हो गये।

तेईसवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चौबीसवां सर्ग

महर्षियों का आगमन

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं–भरद्वाज! कमलनयन राजकुमार श्रीराम जब इस प्रकार मन के मोह का निवारण करने वाली बात कहने लगे, तब वहाँ बैठे हुए सब लोगों के नेत्र आश्चर्य से खिल उठे। उनकी समस्त सांसारिक वासनाएँ वैराग्य की वासना से नष्ट हो गयीं और वे सब लोग दो घड़ी के लिये मानो अमृतमय समुद्र की तरंगों में डूबने-उतराने लगे। श्रीरामचन्द्रजी की वे बातें जिन लोगों ने सुनीं, वे निश्चलता के कारण चित्रलिखित से प्रतीत होते थे। उनका हृदय आनन्द से भर गया था। सभा में बैठकर जिन श्रवण समर्थ पुरुषों ने श्रीराम की बातें सुनीं, उनके नाम इस प्रकार हैं–वसिष्ठ–विश्वामित्र आदि मुनि, मन्त्रणा कुशल जयन्त और धृष्टि आदि मन्त्री, दशरथ आदि नरेश, पुरवासी पारशव आदि संकर जाति के लोग, विभिन्न सामन्त, लक्ष्मण आदि राजकुमार, वेदवेत्ता ब्राह्मण, भृत्य और अमात्य। अपने महल की खिड़कियों में बैठी हुई महारानी कौसल्या आदि वनिताएँ भी निश्चल होकर श्रीराम की बातें सुन रही थीं। उस समय उनके आभूषणों की खनखनाहट तक नहीं होती थी। आकाशचारी सिद्ध, गन्धर्व, किंनर, नारद, व्यास और पुलह आदि श्रेष्ठ महान् दिव्य नागों ने भी श्रीरामचन्द्रजी की वे विचित्र अर्थ से परिपूर्ण और परम उदार बातें सुनी थीं।

रघुकुलरूपी आकाश के चन्द्रमा तथा शशि से भी सुन्दर कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी सब उपर्युक्त बातें कहकर चुप हो गये, तब 'साधुवाद' के गम्भीर घोष के साथ आकाश से सिद्ध समूहों द्वारा ऐसी पुष्पवृष्टि की गयी, जिससे वहाँ चँदोवा-सा तन गया। फूलों की उस वर्षा में ढेर-के-ढेर केवड़े के फूल चक्कर काट रहे थे। कमलों के गुच्छ अपनी अद्भुत छटा दिखा रहे थे। कुन्द पुष्पों की राशि झड़ रही थी तथा हवा में उड़ते हुए नील कमलों के पुंज बिखर रहे थे। उस महल के आँगन की भूमि पट गयी। घर, छत और चबूतरे आच्छादित हो गये तथा नगर के सभी स्त्री-पुरुष अपनी गर्दन ऊँची करके उस पुष्प वर्षा की शोभा निहारने लगे। आकाश में खड़े हुए अदृश्य सिद्ध-समूहों द्वारा की गयी वह पुष्प वृष्टि आधी घड़ी तक लगातार होती रही। सभा और उसमें बैठे हुए लोगों को आच्छादित-सा करके जब वह पुष्प वर्षा बंद हुई, तब

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सभासदों ने सिद्धसमूहों का यह वार्तालाप अपने कानों से सुना-"सृष्टि के आरम्भ से लेकर अबतक सिद्धों के समुदाय में रहकर स्वर्ग के सारे प्रदेशों में घूमते हुए हम लोगों ने आज ही वेदों का सारभूत एवं कानों के लिये अमृत के समान सुखद यह अपूर्व प्रवचन सुना है। वीतराग होने के कारण इन रघुकुलचन्द्र श्रीरामने जो उदार बातें कहीं हैं, उन्हें सम्भवतः बृहस्पतिजी भी नहीं जानते होंगे। अहो! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आज हम लोगों ने श्रीरामचन्द्रजी के मुखारविन्द से प्रकट हुआ यह परम पुण्यमय प्रवचन सुना है, जो अन्तःकरण को परम आल्हाद प्रदान करने वाला है। इन रघुनन्दन ने इस समय आदरपूर्वक जो उचित भाषण किया है, वह शान्तिरूपी अमृत से भरा होने के कारण परम मनोहर है। इस भाषण ने श्रेष्ठता का पद प्राप्त कर लिया है-यह प्रवचन सर्वोत्तम सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा हमें भी तत्काल यह ज्ञान हो गया कि स्वर्ग आदि के सुख भी निस्सार हैं।

रघुकुल तिलक श्रीराम द्वारा उठाये गये इन पावन प्रश्नवाक्यों का महर्षि लोग जो निर्णय करेंगे, उसे भी सुनना उचित होगा। नारद, व्यास और पुलह आदि मुनीश्वरो! आप सभी महर्षि उस निर्णय को निर्विघ्नरूप से सुनने के लिये शीघ्र यहाँ पधारें। जैसे केसर की शोभा से परिपूर्ण हो सुवर्ण की भाँति उद्दीप्त होने वाली कमलिनी पर भ्रमर चारों ओर से टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार हम भी धन-वैभव से पूर्ण तथा सुवर्णमयी सामग्रियों से प्रकाशित होनेवाली राजा दशरथ की इस पुण्यमयी सभा में सब ओर से प्रवेश करें।"

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज! सिद्धों के ऐसा कहने पर विमानों में निवास करने वाले दिव्य महर्षियों की वह सारी मण्डली उस राजसभा में उतरी। उस मण्डली में सबसे आगे मुनीश्वर नारद थे, जो अपनी बजती हुई वीणा को उस समय भी छोड़ न सके थे और सबसे पीछे सजल जलधर के समान श्याम कान्ति वाले महर्षि व्यास थे। इन दोनों के बीच में शेष ऋषियों की मण्डली थी। भृगु, अंगिरा और पुलस्त्य आदि मुनीश्वर उस मण्डली की शोभा बढ़ाते थे। च्यवन, उद्दालक, उशीर तथा शरलोम आदि महर्षियों ने उसे सब ओर से घेर रक्खा था।

एक दूसरे के शरीर की रगड़ से उन सबके मृगचर्म अपने स्थान से खिसककर अस्त-व्यस्त हो गये थे। उन महर्षियों के हाथों में बल पाकर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रुद्राक्षमाला हिल रही थी तथा उन सबने सुन्दर कमण्डलु धारण कर रक्खे थे। आकाश में अपने तेजःपुन्ज के प्रसार से श्वेत एवं रक्त प्रभा धारण करने वाली वह मुनिमण्डली तारों की पंक्ति के समान प्रकाशित हो रही थी। परस्पर के तेज से उन सबके मुखमण्डल ऐसे उद्भासित हो रहे थे, मानो तारों के समुदाय में श्याम मेघ घिर आया हो और देवर्षि नारद तारिकाओं के समूह में शीतरश्मि चन्द्रमा की-सी शोभा धारण करते थे। महर्षि पुलस्त्य देवमण्डली के बीच देवराज इन्द्र के समान विराज रहे थे। महर्षि अंगिरा ऐसे प्रकाशित होते थे, मानों देवताओं के समूह में साक्षात् सूर्य उपस्थित हों। आकाशमण्डल से वह सिद्ध-सेना ज्यों ही भूतलपर उतरी त्यों ही मुनियों से भरी हुई दशरथ-सभा के सभी लोग उठकर खड़े हो गये। वसिष्ठ और विश्वामित्र ने अर्घ्य-पाद्य तथा मधुर वचनों द्वारा क्रमशः उन सभी आकाशचारी सिद्धों तथा महर्षियों की पूजा की। आकाशचारी सिद्ध आदि के उस महान् समुदाय ने भी अर्घ्य-पाद्य एवं मधुर वचनों द्वारा वसिष्ठ और विश्वामित्र का आदरपूर्वक पूजन किया। तत्पश्चात् भूपाल दशरथ ने सम्पूर्ण आदरभाव के साथ उस सिद्ध-समुदाय का पूजन किया। फिर उस सिद्ध समुदाय ने भी कुशल-प्रश्न-सम्बन्धी वार्तालाप द्वारा महाराज दशरथ का सत्कार किया। उस समय प्रेमोचित दान, मान आदि क्रियाओं द्वारा एक दूसरे से सत्कार पाकर सभी आकाशचारी तथा भूमण्डल में विचरने वाले महर्षि यथायोग्य आसनों पर बैठे। उन लोगों ने सामने नत-मस्तक होकर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी का चारों ओर से मधुर भाषण, फूलों की वर्षा और साधुवाद के द्वारा पूर्ण सत्कार किया।

श्रीरामचन्द्र जी राज्यलक्ष्मी से सुशोभित होते हुए वहीं बैठे तथा विश्वामित्र, वसिष्ठ, वामदेव, राजमन्त्रीगण, ब्रह्मा के पुत्र नारदजी, मुनिवर व्यास, मरीचि, दुर्वासा, अंगिरा और उनके पुत्र आंगिरस मुनि, क्रतु, पुलस्त्य, पुलह, मुनीश्वर शरलोमा, वात्स्यायन, भरद्वाज, मुनिवर वाल्मीकि, उद्दालक, ऋचीक, शर्याति और च्यवन-ये तथा और भी बहुत से वेद-वेदांग के पारंगत विद्वान् तत्वज्ञानी महात्मा, जो उन सबमें प्रधान थे, वहाँ विराजमान हुए। तत्पश्चात् वसिष्ठ और विश्वामित्रजी के साथ नारद आदि, जो सांगवेदों का अध्ययन कर चुके थे, मस्तक झुकाये हुए श्रीरामचन्द्रजी को लक्ष्य करके इस प्रकार बोले-'अहो! बड़े आश्चर्य की बात है कि राजकुमार श्रीराम ने इस प्रकार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अनेक कल्याणमय गुणों से सुशोभित वैराग्य रस से पूर्ण तथा परम उदारता से युक्त बातें कही हैं। श्री राम के भाषण में वक्तव्य अर्थ 'इदमित्थम्' रूप से व्यवस्थापूर्वक निहित है। उसे ऐसी सुबोध भाषा में कहा गया है, जिसे सुनते ही श्रोता वास्तविक अभिप्राय को समझ ले। जो बात कही गयी है, वह सर्वथा उचित और स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित है। श्रीराम की यह वाणी उदार है-इसके भीतर बहुत से उत्कृष्ट अभिप्राय छिपे हुए हैं। यह सुनने में प्रिय और श्रेष्ठ पुरुषों के योग्य है। इसमें जो कुछ कहा गया है, वह चंचल चित्त से नहीं, स्थिरबुद्धि से विचारकर व्यक्त किया गया है। इसका भाव स्पष्ट रूप से समझ में आ जाता है। इस भाषण का प्रत्येक पद अभिव्यक्त (व्याकरण-विशुद्ध) तथा सुस्पष्ट-ग्रस्त आदि दोषों से रहित है। यह वाणी इष्ट (प्रिय एवं हितकर) तथा आन्तरिक संतोष की सूचक है। श्रीरघुनाथजी के मुख से निकला हुआ यह वचन किसको आश्चर्य में नहीं डाल देता ? सैकड़ों में किसी एक पुरुष की वाणी सम्पूर्णतः उत्कृष्ट, चमत्कारपूर्ण और अभीष्ट अर्थ को प्रकट करने में समर्थ होती है।

'राजकुमार! आपके सिवा दूसरा कौन है, जिसकी बाण के समान सूक्ष्म अर्थ का भेदन करने वाली कुशाग्र बुद्धिरूपिणी लता विवेकरूपी फल से सुशोभित हो विचार-वैराग्यरूपी उत्तम विकास को प्राप्त हो रही हो। श्रीराम की भाँति जिसके हृदय में अनुपम प्रकाश फैलाने वाली प्रज्ञारूपिणी दीप-शिखा प्रज्वलित हो रही हो, वही श्रेष्ठपुरुष कहा जाता है। जिनमें ऐसी प्रज्ञा नहीं है, वे मनुष्य रक्त, मांस और हड्डियों के यन्त्ररूपी देह में आत्मबुद्धि रखने के कारण रक्त-मांसादिरूप ही बहुत-से शब्द-स्पर्शादि पदार्थों का उपभोग करते रहते हैं। ऐसा लगता है, उनके भीतर कोई चेतन पदार्थ है ही नहीं-वे जड़ के तुल्य हो गये हैं। जो लोग सर्वथा मोहाच्छन्न होने के कारण संसार का विचार नहीं करते, वे निरे पशु हैं। वे ही बारंबार जन्म, मृत्यु और जरा आदि रूपों को प्राप्त होते हैं। जैसे लोक में सर्वोत्तम मधुर फल और सुन्दर आकृतिवाले आम के वृक्ष बिरले ही होते हैं, उसी प्रकार उत्कृष्ट चमत्कार से पूर्ण तत्व-साक्षात्कार रूप फल से सम्पन्न एवं सुन्दर शरीरवाले भव्य पुरुष इने-गिने ही होते हैं। इन आदरणीय बुद्धिवाले श्रीराम में अभी इसी अवस्था में अपने ही विवेक के कारण उस तत्वदर्शन रूप चमत्कार का उदय देखा जाता है, जिसके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

द्वारा जगत के व्यवहार का सम्यक्रूप से समीक्षण हुआ है। जो देखने में सुन्दर हों, ऐसे वृक्ष प्रायः सभी देशों में उत्पन्न होते हैं; परंतु चन्दन के वृक्ष सर्वत्र नहीं होते (इसी तरह श्रीराम जैसे पुरुष सर्वत्र दुर्लभ हैं)। फल और पल्लवों से भरे-पूरे वृक्ष प्रत्येक वन में सदा सुलभ होते हैं। परंतु अपूर्व चमत्कार से युक्त लौंग का वृक्ष सदा और सर्वत्र सुलभ नहीं है (इसी तरह श्रीराम जैसे पुरुष सर्वत्र दुर्लभ हैं)। जैसे चन्द्रमा से शीतल चाँदनी उत्पन्न होती है, सुन्दर वृक्ष से मंजरी प्रकट होती है और फूल से सुगन्ध का प्रवाह प्रादुर्भूत होता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी से यह तत्वदर्शनरूपी चमत्कार का आविर्भाव देखा गया है। जो लोग सदा तत्वचिन्तन में तत्पर हो विवेक द्वारा आत्मज्ञान या परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति सार पदार्थ के लिये प्रयत्नशील रहते हैं, वे ही सुयश के भंडार, सत्पुरुषों में अग्रगण्य, धन्य एवं समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। तीनों लोकों में श्रीरामचन्द्रजी के समान विवेकशील और उदारचित्त पुरुष न तो अब तक कोई देखा गया है और न भविष्य में ही कोई होगा, ऐसी हमारी मान्यता है।'

चौबीसवां सर्ग समाप्त

वैराग्य प्रकरण सम्पूर्ण

ऐसा परम तत्त्व को प्राप्त–परमात्मा में अभिन्न भाव से स्थित पुरुष जगत की क्षणभंगुर अवस्था को अपनी प्रशान्त ब्राह्मी स्थिति के अंदर हँसता हुआ देखता है। उसके लिये न कुछ पाना शेष रह जाता है, न कुछ करना रह जाता है। वह सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मास्वरूप ही बन जाता है। यही योगवासिष्ठ की शिक्षा है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सचित्र
योगवासिष्ठ महारामायण

प्रथम खण्ड

मुमुक्षु-व्यवहार प्रकरण

यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान्।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पञ्जरादिव।।

(मुमुक्षु प्रकरण से)

"जो पुरुष उदार-स्वभाव तथा सत्कर्म के सम्पादन में कुशल है, सदाचार ही जिसका विहार है, वह जगत के मोह-पाश से वैसे ही निकल जाता है, जैसे पिंजरे से सिंह।

•••

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जब एक ब्रह्म के अतिरिक्त कोई सत्ता ही नहीं रह जाती, तब भिन्न अहंकार कहाँ रहेगा और अहंकार का अभाव होते ही राग-द्वेष, ममता-मोह, मेरा-तेरा आदि सब मिथ्या विकार मिट जाते हैं जैसे स्वप्न से जागते ही स्वप्न का सारा संसार सर्वथा मिट जाता है। फिर जगत में रहता हुआ भी इस ज्ञान को प्राप्त जीवन्मुक्त पुरुष नित्य निरन्तर ब्रह्म में ही स्थित रहता है। वह जगत के आदि, मध्य, अन्त सभी अवस्थाओं में समचित्त रहता है; क्योंकि तब उसका चित्त ही नहीं रह जाता। अतएव वह न तो प्राप्त हुई प्रिय कहलाने वाली वस्तु का अभिनन्दन करता है, न अप्रिय से द्वेष करता है, न नष्ट हुई प्रिय वस्तु के लिये शोक करता है और न अप्राप्त वस्तु की इच्छा ही करता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

श्री योग वासिष्ठ महारामायण

मुमुक्षुव्यवहार-प्रकरण

प्रथम सर्ग

शुकदेवजी का तत्त्वज्ञान

श्रीवाल्मीकिजी बोले-भरद्वाज! इस प्रकार सभा में आये हुए सिद्ध पुरुषों ने जब श्रीराम के भाषण की भूरि-भूरि प्रशंसा की, तब विश्वामित्र जी ने अपने सामने बैठे हुए श्रीराम से कहा-'ज्ञानियों में श्रेष्ठ रघुनन्दन! तुम्हारे लिये

और कुछ जानना शेष नहीं है। तुम अपनी ही सूक्ष्म बुद्धि से सब कुछ जान चुके हो-सर्वस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा को तत्त्व से जानते हो। तुम्हारी बुद्धि भगवान् व्यास के पुत्र शुकदेवजी की सी है। उसे जानने योग्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त हो चुका है। श्रीराम! मैं तुमसे व्यासपुत्र शुकदेवजी का यह वृत्तान्त कह रहा हूँ, जो तुम्हारे अपने ही वृत्तान्त के समान है, इसे सुनो। यह सुनने वाले मनुष्यों के जन्म-मरणरूप संसार के अन्त (मोक्ष) का कारण है। वे जो तुम्हारे पिता के बगल में अञ्जनगिरि के समान श्याम तथा सूर्यतुल्य तेजस्वी भगवान् व्यास बैठे हैं, इनके शुकदेव नाम से प्रसिद्ध एक महाज्ञानी पुत्र हुआ, जिसका मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर था। शुकदेवजी सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता थे। वे एक दिन मन-ही-मन इस जागतिक व्यवहार पर विचार कर रहे थे। उस समय उनके हृदय में भी तुम्हारी ही तरह विवेक का उदय हुआ। उन महामना शुकदेव ने अपने विवेक से स्वयं ही चिरकाल तक विचार करके जो परम मनोहर परमार्थ सत्य वस्तु है, उसे प्राप्त कर लिया। उसे प्राप्त करके भी उनके हृदय में 'यही परमार्थ वस्तु है' ऐसा पूर्ण विश्वास नहीं हुआ; इसलिये उस परम वस्तु के स्वतः प्राप्त हो जाने पर भी उनके मन को शान्ति नहीं मिली। इतना अवश्य हुआ कि उनके चित्त की चंचलता दूर हो गयी और जैसे चातक वर्षा की जलधारा के अतिरिक्त अन्य जलधाराओं से मुँह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

Mookerji sharma (I.F.S.) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

मोड़ लेता है, उसी प्रकार उनका मन अत्यन्त क्षणभंगुर भोगों से विरत हो गया।

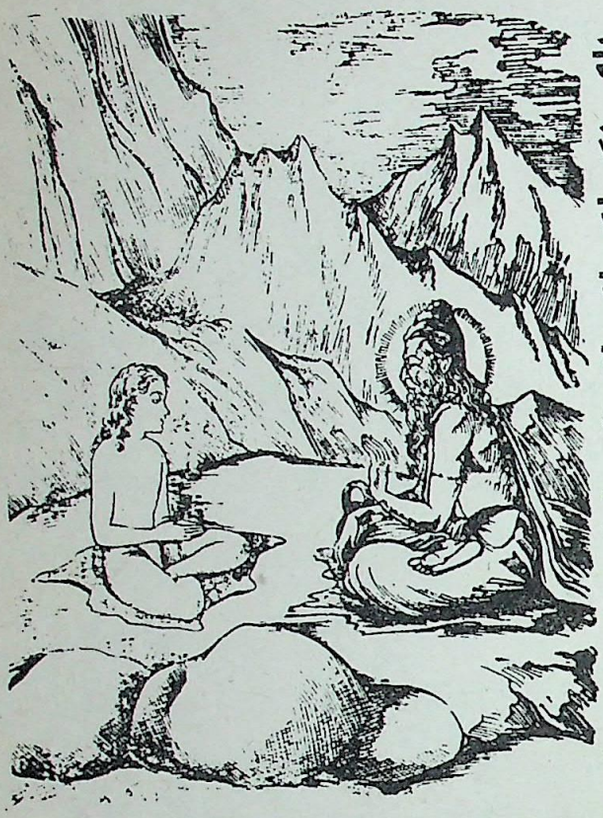

एक दिन निर्मल बुद्धि वाले शुकदेवजी ने मेरुगिरि पर एकान्त स्थान में बैठे हुए अपने पिता मुनिवर श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यास से भक्तिभाव के साथ पूछा-'मुने! यह संसाररूपी आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ ? कैसे इसकी शान्ति या नाश होता है ? यह कितना बड़ा है ? किसका है ? और कब तक रहेगा ?' पुत्र के इस प्रकार प्रश्न करने पर आत्मज्ञानी मुनिवर व्यास ने उन्हें जो कुछ बताने योग्य बात थी, वह सब यथावत् एवं विशुद्ध रूप से बता दी। उनका उपदेश सुनने के अनन्तर शुकदेवजी ने सोचा, यह तो मैं पहले ही जान गया था ऐसा विचार कर उन्होंने पिताजी के उस उपदेश-वाक्य का अपनी शुभबुद्धि के द्वारा अधिक आदर नहीं किया। भगवान् व्यास भी अपने पुत्र के इस अभिप्राय को समझकर उससे बोले-'बेटा! भूतल पर जनक नाम से प्रसिद्ध एक राजा हैं, जो जानने योग्य तत्त्व (सच्चिदानन्दघन परमात्मा को) यथार्थ रूप से जानते हैं। उनसे तुम्हें सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जायेगा।'

पिता के ऐसा कहने पर शुकदेवजी सुमेरु पर्वत से उतर कर पृथ्वी पर आये और महाराज जनक के द्वारा पालित विदेह पुरी में जा पहुँचे। वहाँ छड़ीदार द्वारपालों ने महात्मा जनक को यह सूचना दी-'राजन्! राजद्वार पर व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी खड़े हैं।' उन्होंने शुकदेवजी की परीक्षा लेने के लिये द्वारपालों से अवहेलना पूर्वक कहा-'शुकदेवजी आये हैं तो वहीं ठहरें।' ऐसा कहकर राजा सात दिनों तक चुपचाप बैठे रहे-उनकी कोई खोज-खबर नहीं ली। तत्पश्चात् राजा जनक ने शुकदेवजी को राजमहल के आँगन में बुलाया। वहाँ आने पर भी शुकदेवजी पूरे सात दिनों तक उसी प्रकार उपरत होकर बैठे रहे। इसके बाद जनक ने शुकदेवजी को अन्तःपुर में ले आने की आज्ञा दी, किन्तु वहाँ भी राजा ने सात दिनों तक उन्हें दर्शन नहीं दिया। वे चन्द्रमा के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

समान मुखवाले शुकदेवजी का अन्तःपुर में यौवन के मद से उन्मत्त कमनीय कान्ति वाली सुन्दरियों द्वारा भाँति-भाँति के भोजनों तथा भोग सामग्रियों से लालन-पालन कराते रहे। परंतु जैसे मन्द गति से बहने वाली वायु दृढ़मूल अविचल वृक्ष को नहीं उखाड़ सकती, उसी प्रकार वे भोग तथा अनादर एवं उपेक्षाजनित दुःख भी व्यास पुत्र के मन को अपनी ओर खींच न सके, उसमें विकार पैदा न कर सके। शुकदेव वहाँ पूर्ण चन्द्रमा के समान निर्विकार, भोग और अनादर में भी समान (हर्ष-विषाद से रहित), स्वस्थ मौन तथा प्रसन्न-चित्त बने रहे।

इस प्रकार परीक्षा द्वारा शुकदेवजी के स्वभाव को जानकर राजा जनक ने उन्हें सादर अपने पास बुलवाया और प्रसन्नचित देखकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् शीघ्रता पूर्वक उनका स्वागत करके राजा ने उनसे कहा-ब्रह्मन्! जगत् में परम पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये जो-जो आवश्यक कर्त्तव्य हैं, वे सब आपने पूर्ण कर लिये हैं। सारे मनोरथों को प्राप्त कर लिया है (इस तरह आप कृत कृत्य तथा आप्तकाम हो चुके हैं) अब आपको किस वस्तु की इच्छा है।'

श्रीशुकदेवजी ने कहा-महाराज! मैं जानना चाहता हूँ कि यह संसार रूपी आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ है और इसकी शान्ति या विनाश कैसे होता है। आप शीघ्र ही मुझसे इस विषय का यथावत् रूप से प्रतिपादन कीजिये।

श्रीविश्वामित्रजी कहते हैं-महाराज! इस प्रकार पूछे जाने पर राजा जनक ने शुकदेवजी को उस समय वही बात बतायी, जो पहले उनके महात्मा पिता व्यासजी के द्वारा बतायी गयी थी।

तब शुकदेवजी ने कहा-वक्ताओं में श्रेष्ठ महाराज! मैंने पहले विवेक से स्वयं ही यह बात जानली थी फिर जब पिताजी से इसके विषय में पूछा, तब उन्होंने भी मुझे यही बात बतायी और आज आपने भी यही बात कही है। शास्त्रों में भी महावाक्यों का यही अर्थ दृष्टिगोचर होता है। वह इस प्रकार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama (IIPS) Jammu Collection

है-'यह विनाशशील संसार अपने संकल्प से उत्पन्न हुआ है और संकल्प का आत्यन्तिक विनाश होने से नष्ट हो जाता है अतः सर्वथा निस्सार है। यही शास्त्रों का निश्चय है।' महाबाहो! क्या यही अविचल सत्य है ? यदि हाँ तो इसका इस तरह उपदेश कीजिये, जिससे यह मेरे हृदय में अचल-असंदिग्ध रूप से बैठ जाय। संसार के विषयों में भटकते हुए चित्त के द्वारा इधर-उधर भटकाया जाता हुआ मैं आज आपसे शान्ति लाभ करना चाहता हूँ।

राजा जनक ने कहा-मुने! इस ब्रह्माण्ड में एक अखण्ड चिन्मय परम पुरुष परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आपने स्वयं विवेक के द्वारा इस तत्त्व को जाना है और फिर गुरुस्वरूप पिता के मुख से इसको सुना है। इससे बढ़कर दूसरा कोई निश्चय (जानने योग्य तत्त्व) नहीं है। मुनिकुमार! आप बालक होते हुए भी विषय भोगों के त्याग में शूरवीर होने के कारण महान् वीर हैं। आपकी बुद्धि दीर्घ काल तक बने रहने वाले रोगरूपी भोगों से पूर्णतः विरक्त हो गयी है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? ब्रह्मन्! जो प्राप्त करने योग्य वस्तु है, उसे पूर्णरूप से आपने पा लिया है। आपका चित्त पूर्णकाम हो गया है। आप दृश्य वस्तु (बाह्य विषय) की ओर दृष्टिपात नहीं करते हैं, अतः मुक्त हैं। अभी और कुछ पाना या जानना शेष रह गया है, इस भ्रम को त्याग दीजिये।

विश्वामित्र जी कहते हैं-हे श्रीराम! महात्मा जनक के द्वारा इस प्रकार उपदेश पाकर शुकदेवजी अत्यन्त शुद्ध परम वस्तु परमात्मा में चुपचाप स्थित हो गये। उनके शोक, भय और श्रम-सभी नष्ट हो गये। वे सर्वथा निरीह एवं संशय रहित हो गये। तदनन्तर वे मेरुगिरि के प्रशस्त शिखर पर समाधि लगाने के लिये चले गये। वहाँ दस हजार वर्षों तक निर्विकल्प समाधि में स्थित रहे और जैसे तेल समाप्त होने पर दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार वे प्रारब्ध क्षीण हो जाने पर परमात्मा में लीन हो गये।

पहला सर्ग समाप्त

दूसरा सर्ग

विश्वामित्रजी का वसिष्ठजी से श्रीराम को उपदेश करने के लिये अनुरोध

श्रीविश्वामित्रजी कहते हैं-मुनीश्वरो! श्रीरामचन्द्रजी ने ज्ञातव्य वस्तु को

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पूर्णतः जान लिया है; क्योंकि इन शुद्ध बुद्धिवाले श्रीराम को भोग अच्छे नहीं लगते। वे इन्हें रोग के समान प्रतीत होते हैं। जिसने ज्ञेय वस्तु को जान लिया है, उसके मन का अवश्य ही यही लक्षण है कि उसे सारे भोग समूह फिर कभी रुचिकर नहीं जान पड़ते हैं। भोगों के चिन्तन से अज्ञान-जनित बन्धन दृढ़ होता है और भोग-वासना के शान्त हो जाने पर संसार-बन्धन क्षीण हो जाता है।

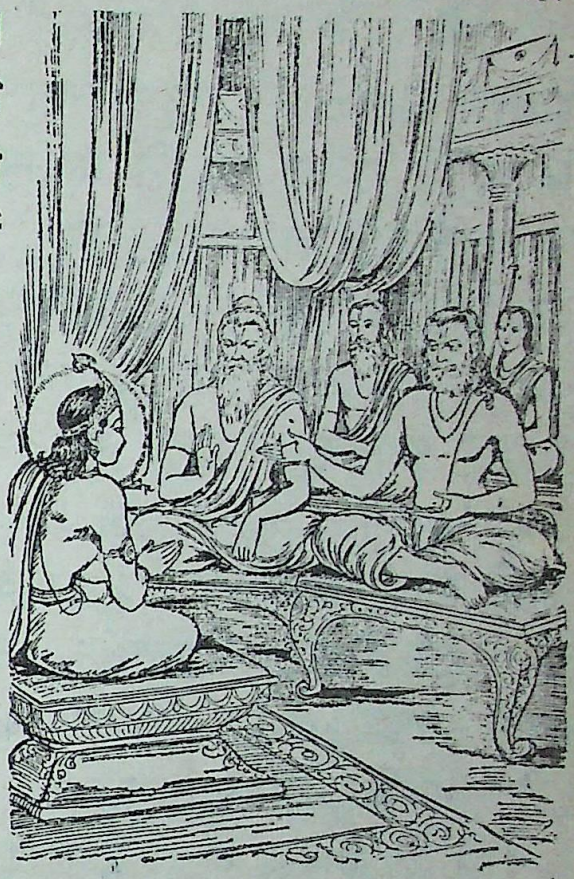

श्रीराम! विद्वान् लोग भोग वासना के क्षय को ही मोक्ष कहते हैं और विषयों में होने वाली सुदृढ़ वासना को ही बन्धन बताते हैं। जिसकी दृष्टि राग आदि दोषों से रहित है, वही तत्त्वज्ञ है। उसी ने जानने योग्य वस्तु को जाना है और वही विद्वान् है। उस महात्मा पुरुष को भोग हठात् अच्छे नहीं लगते। जैसे मरुभूमि में लता नहीं उगती, उसी प्रकार जब तक जानने योग्य तत्त्व का कुछ भी ज्ञान नहीं होता, तब तक मनुष्य के हृदय में विषयों की ओर से वैराग्य नहीं होता। अतः मुनिवृन्द! आप लोग यह निश्चितरूप से समझ लें कि रघुकुल तिलक श्रीराम को ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान हो गया है; क्योंकि इन्हें ये भोगों के रमणीय स्थान आनन्दित नहीं कर रहे हैं। मुनीश्वरो! श्रीरामचन्द्रजी जिस तत्त्व को बुद्धि के द्वारा जानते हैं, उसके विषय में जब सदगुरु के मुख से यह सुन लेंगे कि 'यही परमार्थ वस्तु है' तब इनके चित्त को अवश्य विश्राम प्राप्त होगा। जैसे शरत्काल की शोभा मेघरहित निर्मल आकाशमात्र की अपेक्षा रखती है, उसी तरह श्रीरामचन्द्रजी की बुद्धि को केवल अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परमात्मा के तत्व में विश्राम की अपेक्षा है। अतः श्रीरामचन्द्रजी के चित्त विश्राम के लिये ये पूज्यपाद श्रीवसिष्ठजी ही यहाँ युक्ति का प्रतिपादन करें; क्योंकि ये समस्त रघुवंशियों के ही नहीं, समूचे इक्ष्वाकुवंशियों के सदा से नियन्ता एवं शिक्षक और कुलगुरु हैं। इसके सिवा ये सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी तथा तीनों कालों में मोह आदि से रहित निर्मल दृष्टि वाले हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पूज्यपाद वसिष्ठजी! क्या वह पहले की बात आपको स्मरण है, जब कि हम दोनों के वैर की शान्ति तथा परम बुद्धिमान् मुनियों के कल्याण के लिये देवदारु के वृक्षों से आवृत निषद पर्वत के शिखर पर साक्षात् पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा ने महत्त्वपूर्ण ज्ञान का उपदेश दिया था ? ब्रह्मन्! उस युक्तियुक्त ज्ञान से यह सांसारिक वासना अवश्य उसी तरह नष्ट हो जाती है, जैसे भगवान् भास्कर के उदय से अँधेरी रात। विप्रवर! आप उसी युक्तियुक्त ज्ञेय वस्तु का अपने शिष्य श्रीराम को शीघ्र उपदेश दीजिये, जिससे ये विश्राम (शान्ति) को प्राप्त हों। इसमें आपको अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ेगा; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी सर्वथा निष्पाप हैं। अतः जैसे निर्मल दर्पण में बिना यत्न के ही मुँह का प्रतिबिम्ब दिखायी देने लगता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी को अनायास ही ज्ञेय वस्तु का बोध एवं विश्राम प्राप्त हो जायेगा। महात्मन्! वही ज्ञान, वही शास्त्रार्थ और वही पाण्डित्य सार्थक एवं प्रशंसित है, जिसका वैराग्य युक्त उत्तम शिष्य के लिये उपदेश दिया जाता है। जिसमें वैराग्य नहीं है तथा जो शिष्यभाव से रहित है, उसे जो कुछ भी उपदेश दिया जाता है, वह कुत्ते के चमड़े से बने हुए कुप्पे में रक्खे हुए गाय के दूध की भाँति अपवित्रता को प्राप्त हो जाता है। जहाँ आप-जैसे वीतराग, निर्भय, क्रोध शून्य, अभिमान रहित तथा निष्पाप महापुरुष तत्त्वज्ञान उपदेश देते हैं, वहाँ तत्काल बुद्धि को विश्राम प्राप्त होता है।

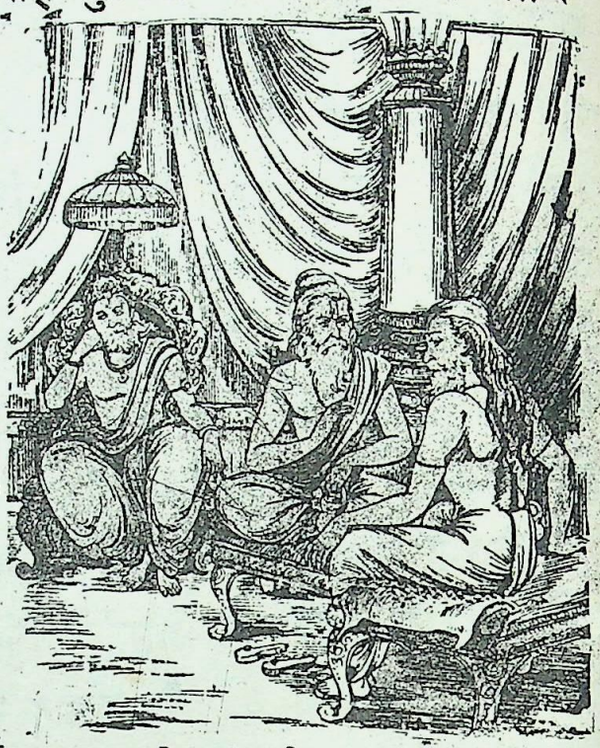

गाधिनन्दन विश्वामित्र के ऐसा कहने पर व्यास और नारद आदि उन सभी मुनियों ने साधु-साधु कहकर उनके उस कथन की भूरि-भूरि प्रशंसा की। तत्पश्चात् राजा दशरथ के बगल में बैठे हुए ब्रह्माजी के पुत्र महातेजस्वी भगवान् वसिष्ठ मुनि ने, जो ब्रह्माजी के समान ही ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न थे कहा।

श्रीवसिष्ठजी बोले-मुने! आप जिस कार्य के लिये मुझे आज्ञा दे रहे हैं, उसे मैं बिना किसी विघ्न-बाधा के आरम्भ कर रहा हूँ। शक्तिशाली होकर भी संतों की आज्ञा का उल्लंघन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? पूर्वकाल में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

निषद पर्वत पर पूजनीय पद्मयोनि ब्रह्माजी ने संसार रूपी भ्रम को दूर करने के लिये जिस ज्ञान का उपदेश किया था, वह सब अविकल रूप से मुझे याद है।

दूसरा सर्ग समाप्त

तीसरा सर्ग

जगत् की भ्रमरूपता एवं मिथ्यात्व का निरूपण

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-पूर्वकाल में सृष्टि के प्रारम्भ के समय भगवान् ब्रह्मा ने संसाररूपी भ्रम के निवारण के लिये जिस ज्ञान का उपदेश दिया था, उसीका मैं यहाँ वर्णन करता हूँ। यह जगत् संकल्प के निर्माण, मनोराज्य के विलास, इन्द्रजाल द्वारा रचित पुष्पहार, कथा-कहानी के अर्थ के प्रतिभास, वातरोग के कारण प्रतीत होने वाले भूकम्प, बालक को डराने के लिये कल्पित पिशाच, निर्मल आकाश में कल्पित मोतियों के ढेर, नाव के चलने से तथा प्रतीत होने वाली वृक्षों की गति, स्वप्न में देखे गये नगर, अन्यत्र देखे गये फूलों के स्मरण से आकाश में कल्पित हुए पुष्प की भाँति भ्रम द्वारा निर्मित हुआ है। मृत्युकाल में पुरुष स्वयं अपने हृदय में इसका अनुभव करता है।

इस प्रकार जगत् मिथ्या होने पर भी चिरकाल तक अत्यन्त परिचय में आने के कारण धनीभाव (दृढ़ता) को प्राप्त होकर जीव के हृदयाकाश में प्रकाशित हो बढ़ने लगता है। यही 'इहलोक' कहलाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक की चेष्टाओं तथा मरण आदि का अनुभव करने वाला जीव वहीं हृदयाकाश में ही इहलोक की कल्पना करता है, जैसा कि ऊपर कहा गया है। फिर मरने के अनन्तर वह वहीं परलोक की कल्पना करता है। वासना के भीतर अन्य अनेक शरीर और उनके भीतर भी दूसरे-दूसरे शरीर-ये इस संसार में केले के वृक्ष की त्वचा (छिलके वा वल्कल) के समान एक के पीछे एक प्रतीत होते हैं वस्तुतः इस संसार में कोई सार नहीं है। न तो पृथ्वी आदि पञ्च महाभूतों के समुदाय हैं और न जगत् की सृष्टि का कोई क्रम ही है। ये सब-के-सब मिथ्या हैं। तथापि मृत और जीविका जीवों को इनमें संसार का भ्रम होता है। यह अविद्या रूपिणी नदी ही है, जिसका कहीं अन्त नहीं है। यह विभिन्न धाराओं के रूप में फैलती हुई शोभा पाती है। मूढ़ पुरुषों के लिये यह इतनी विशाल है कि वे इसे पार नहीं कर सकते। सृष्टि रूपी चंचल तरंगों से ही यह तरंगवती

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

जान पड़ती है।

तीसरा सर्ग समाप्त

चौथा सर्ग

पौरुष की महत्ता का वर्णन

श्रीराम! परमार्थ सत्यरूपी विशाल महासागर में बारंबार वे पुरानी और नयी सृष्टि रूप असंख्य तरंगें उठती और विलीन होती रहती हैं। इस समय ब्रह्मकल्प का अवयव भूत बहत्तरवाँ त्रेतायुग चल रहा है। यह पहले भी अनेक बार हो चुका है और आगे भी होता रहेगा। यह वही पहले वाला त्रेतायुग है और उससे विलक्षण भी। ये जितने लोक हैं, वे भी पूर्ववत् हुए हैं और उनकी अपेक्षा नवीन भी हैं। इसी प्रकार तुम श्रीराम भी अनेक बार त्रेतायुग में अवतार ले चुके हो और भविष्य में भी लोगे। मैं भी कितनी ही बार वसिष्ठ रूप में उत्पन्न हो चुका हूँ और आगे भी होऊँगा। हमारे ये सभी रूप पूर्व के तुल्य होंगे और उनसे भिन्न भी। इस बात को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। सभी प्राणी कभी धन-वैभव, बन्धु-बान्धव, अवस्था, कर्म, विद्या विज्ञान और चेष्टाओं में पूर्वकल्पों के समान होते हैं और कभी नहीं भी होते। जो अविद्यारूपी आवरण से रहित है, जिसका अन्तःकरण एकाग्र होचुका है, जिसके सभी संकल्प-विकल्प शान्त हो चुके हैं तथा जो स्वरूप भूत सारतत्त्व (सच्चिदानन्दघन) मय हो गया है, वह विद्वान् पुरुष परम शान्तिरूपी अमृत से तृप्त रहता है।

सौम्य श्रीराम! समुद्र की जलराशि शान्त हो या उत्ताल तरंगों से युक्त, दोनों दशाओं में उसकी जल रूपता समान ही है-उसमें किसी प्रकार अन्तर नहीं है। उसी तरह देह के रहते हुए और उसके न रहने पर भी मुक्त महात्मा मुनि की स्थिति एक-सी ही होती है, उसमें कोई भेद नहीं होता है। संदेह मुक्ति हो या विदेह मुक्ति, उसका विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं है। जिसने सत्य मानकर भोगों का आस्वादन ही नहीं किया, उस पुरुष में भोगों की अनुभूति कहाँ से होगी ? जीवन्मुक्त और विदेह मुक्त दोनों ही प्रकार के महात्मा बोध स्वरूप हैं। उनमें क्या भेद है ? (इन दोनों में भेद कराने वाला है अज्ञान। उसके नष्ट हो जाने पर जब केवल ज्ञान ही अवशिष्ट रह जाता है, तब उन दोनों में भेद कौन हो सकता है ?) जैसे समुद्र की तरंगावस्था जो जल है, वही उसकी प्रशान्तावस्था में भी है उसमें कोई भेद नहीं है। पवन सस्पन्द (वेगवान्) हो या निष्पन्द (शान्त अथवा वेगहीन), दोनों ही दशाओं में वह वायु ही है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अतः अब मैं जिसका प्रकरण चल रहा है, उस उत्तम ज्ञान का ही उपदेश कर रहा हूँ, तुम इसका निरूपण सुनो। यह ज्ञान कानों का आभूषण है और अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करने वाला है। रघुनन्दन! इस संसार में सदा अच्छीतरह पुरुषार्थ (प्रयत्न) करने से सबको सब कुछ मिल जाता है। (जहाँ कहीं किसी को असफल देखा जाता है, वहाँ उसके सम्यक् प्रयत्न का अभाव ही कारण है।) साधन के परिपक्व होने पर हृदय में, जैसे चन्द्रमा से शीतलतायुक्त आल्हाद प्राप्त होता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा की प्राप्तिरूप अतिशय शीतल आनन्द का उदय होता है। यह आत्यन्तिक आनन्द पुरुष के प्रयत्न सेही प्राप्त हो सकता है, अन्य हेतु (प्रारब्ध) से नहीं। (इसलिये पुरुष को प्रयत्न पर ही निर्भर रहना चाहिये।) शास्त्रज्ञ सत्पुरुषों के बताये हुये मार्ग से चलकर अपने कल्याण के लिये जो मानसिक, वाचिक और कायिक चेष्टा की जाती है उससे भिन्न जो शास्त्र-विपरीत मनमाना आचरण है, वह पागलों की-सी चेष्टा है। जो मनुष्य जिस पदार्थ को पाना चाहता है, उसकी प्राप्ति के लिये यदि वह क्रमशः यत्न करता है और बीच में ही उससे मुँह नहीं मोड़ लेता तो अवश्य उसे प्राप्त कर लेता है। कोई एक विशेष प्राणी ही पुरुषोचित प्रयत्न के द्वारा तीनों लोकों के ऐश्वर्य से युक्त होने के कारण परम सुन्दर प्रतीत होने वाली इन्द्रपदवी को प्राप्त हो गया है। निरन्तर यत्न में लगे रहकर सुदृढ़ अभ्यास में तत्पर हुए बुद्धिमान् और साहसी पुरुष मेरु पर्वत को भी निगल जाने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। श्रुति-स्मृति आदि शास्त्र से नियन्त्रित पुरुषार्थ के सम्पादन में तत्पर जो पुरुष का पौरुष (उद्योग) है, वही मनोवाञ्छित फल की सिद्धि का कारण होता है। शास्त्र के विपरीत किया हुआ प्रयत्न अनर्थ की ही प्राप्ति कराने वाला होता है। कोई पुरुष जब शास्त्रीय प्रयत्न को शिथिल कर देता है, तब स्वयं दरिद्रता, रोग और बन्धन आदि अपनी दुर्दशा के कारण वह ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है, जहाँ उसके लिये पानी की एक बूँद भी बहुत समझी जाती है (दुर्लभ हो जाती है); परंतु किसी को शास्त्रानुसार आचरण के प्रभाव से ऐसी उत्तम अवस्था प्राप्त होती है, जहाँ समुद्र, पर्वत, नगर और द्वीपों से व्याप्त विशाल भूमण्डल का साम्राज्य भी अधिक नहीं समझा जाता (वह अनायास सुलभ हो जाता है)।

चौथा सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पांचवा सर्ग

प्रारब्धवाद का खण्डन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रघुनन्दन! जैसे नीले, पीले आदि भिन्न-भिन्न रंगों की अभिव्यक्ति में प्रकाश ही मुख्य कारण है, उसी प्रकार शास्त्र के अनुसार मन, वाणी और शरीर द्वारा व्यवहार करने वाले अधिकारी पुरुषों के समस्त पुरुषार्थों की सिद्धि में उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति ही प्रधान साधन है। मनुष्य केवल मन से किसी वस्तु की इच्छा करता है, शास्त्रानुसार कर्म से नहीं, वह पागलों की-सी चेष्टा करता है। उसकी वह चेष्टा केवल मोह में डालने वाली है, पुरुषार्थ को सिद्ध करने वाली नहीं। जो मनुष्य जैसा प्रयत्न (कर्म) करता है, वह वैसा ही फल भोगता है, (जो यह कहते हैं कि दैववश फल में विपरीतता भी आ जाती है तो उनका कथन ठीक नहीं; क्योंकि) अपना पूर्वकृत कर्म ही फल देने के लिये उन्मुख होने पर दैव कहलाता है। उससे अतिरिक्त दैव नाम की कोई वस्तु नहीं दिखायी देती। पुरुषार्थ दो प्रकार का है-एक शास्त्रानुमोदित (पुण्य-कर्म) और दूसरा शास्त्र विरुद्ध (पाप-कर्म)। इन दोनों में जो शास्त्र विरुद्ध पुरुषार्थ है, वह अनर्थ का कारण होता है और शास्त्रानुमोदित पौरुष परमार्थ वस्तु की प्राप्ति में कारण है इसलिये पुरुष को शास्त्रीय प्रयत्न से तथा साधु पुरुषों के संगसे ऐसा उद्योग करना चाहिये कि इस जन्म का पौरुष पूर्व जन्म के पौरुष (प्रारब्ध) को शीघ्र जीत ले। अपने उत्तम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर दाँतों से दाँतों को पीसते हुए (तत्परता-पूर्वक प्रयत्न में लगे हुए) पुरुष को अपने शुभ पौरुष को जीत लेना चाहिये। 'यह पूर्वजन्म का पुरुषार्थ (प्रारब्ध) मुझे प्रेरित करके विशेष परिस्थिति में डाल देता है' क्योंकि वह प्रत्यक्ष प्रयत्न से अधिक प्रबल नहीं है। तब तक प्रयत्नपूर्वक उत्तम पुरुषार्थ के लिये सचेष्ट रहना चाहिये, जब तक कि पूर्वजन्म का अशुभ पौरुष स्वयं पूर्णतः शान्त न हो जाय। अर्थात् जब तक पहले जन्मों का किया हुआ अशुभ कर्म समूल नष्ट न हो जाय, तब तक तत्परता से उत्साह पूर्वक साधन करते रहना चाहिये।

जैसे अपने द्वारा कल घटित हुए दोष का आज प्रायश्चित कर लेने पर नाश हो जाता है, उसी प्रकार इस जन्म के गुणों से (शुभ पौरुष से) पूर्वजन्म का दोष (अशुभ पौरुष) अवश्य नष्ट हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है। पूर्व जन्म के अशुभ या दुःखदायक प्रारब्ध को इस जन्मके शुभ कर्मों से विशुद्ध एवं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

पुष्ट हुई बुद्धि के द्वारा तिरस्कृत करके संसार-सागर से पार होने के उद्देश्य की सिद्धि के लिये अपने भीतर दैवी सम्पत्ति के संग्रह के निमित्त सदा यत्न करना चाहिये। उद्योगशून्य आलसी मनुष्य गदहों के समान गये-बीते हैं। अतः स्वयं भी उद्योग छोड़कर उन्हीं की श्रेणी या तुलना में नहीं जाना चाहिये। शास्त्र के अनुसार किया हुआ उद्योग इहलोक और परलोक दोनों की सिद्धि में कारण है। मनुष्य को पुरुषार्थरूपी प्रयत्न का आश्रय लेकर इस संसाररूपी गड्डे से स्वयं बलपूर्वक निकल जाना चाहिये। अपने शरीर को प्रतिदिन नाश होता हुआ समझे। पशुओं के समान आचरणका त्याग करे और सत्पुरुषों के योग्य आचार-व्यवहार का आश्रय ले। जैसे कीड़ा घाव में पीब आदि का आस्वादन करके ही अपना जीवन समाप्त कर देता है, उसी तरह मनुष्य को घर में स्त्री, अन्न, पान आदि द्रवयुक्त एवं कोमल तुच्छ पदार्थों का किंचित् आस्वाद लेकर सम्पूर्ण पुरुषार्थों के साधनभूत आयु को भस्म नहीं कर देना चाहिये (मानव-जीवन को व्यर्थ नहीं गवाँ देना चाहिये)। शुभ पुरुषार्थ से शीघ्र ही शुभफल की प्राप्ति होती है और अशुभ पुरुषार्थ से सदा अशुभ फल ही मिलता है। इन शुभ-अशुभ पुरुषार्थों के सिवा दैव नाम की दूसरी कोई वस्तु नहीं है (इन्हीं का नाम दैव या प्रारब्ध है)। इसलिये पहले पुरुषार्थ के द्वारा विवेक का आश्रय लेकर आत्मज्ञानरूपी महान् प्रयोजन वाले शास्त्रों का विचार करना चाहिये। जो शास्त्र के अनुसार अपनी श्रवण, मनन आदि चेष्टाओं द्वारा साधन नहीं करते और चित्त में विषयों का ही चिन्तन करते रहते हैं, उन मूढ़ पुरुषों की अत्यन्त दूषित भोगेच्छा को धिक्कार है। पूर्वोक्त पुरुषप्रयत्न यदि सत्शास्त्र के अनुकूल तथा सत्संग और सदाचार से युक्त होता है तो वह परमात्मसाक्षात्काररूप अपने फल को देता है। यह उसका स्वभाव है। अन्यथा (सत्-शास्त्र के प्रतिकूल तथा सत्संग और सदाचार से रहित होनेपर) उससे परमात्मसाक्षात्काररूप परमफल की सिद्धि नहीं होती। यही पौरुष का स्वरूप है। इस प्रकार व्यवहार करने वाले किसी भी पुरुष का प्रयत्न कभी विफल नहीं होता। बाल्यावस्था से लेकर भलीभाँति अभ्यास में लाये हुए सत्-शास्त्रानुशीलन और सत्पुरुषों के संग आदि सद्गुणों द्वारा पुरुषार्थ करने से परम स्वार्थरूप परमात्मसाक्षात्कार प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष देखी हुई, अनुभव में आयी हुई, सुनी हुई और साधनों द्वारा प्राप्त की हुई परमार्थ वस्तु को जो लोग दैव के अधीन मानते हैं, उनकी बुद्धि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कुत्सित है और वे साधन से नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। निरन्तर कल्पित क्रीड़ाओं (खेल-कूद) के कारण अत्यन्त चंचलतापूर्ण बाल्यावस्था के व्यतीत हो जाने पर जब (दुखी और गुरुजनों की सेवा में समर्थ) बाहुदण्ड से अलंकृत यौवन-अवस्था का आरम्भ हो जाय, तभी से मनुष्य को पद-पदार्थ के ज्ञान से विशुद्ध-बुद्धि होकर सत्पुरुषों के संग से अपने गुणों और दोषों का विचार करना चाहिये। तात्पर्य यह कि विचारपूर्वक दोषों को त्याग करके गुणों को ग्रहण करना चाहिये।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज! मुनिवर वसिष्ठजी के इस प्रकार प्रवचन करने पर वह दिन व्यतीत हो गया। सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये तथा उस सभा के लोग वसिष्ठजी को नमस्कार करके सायंकालिक कृत्य (संध्योपासना और अग्निहोत्र आदि) करने के लिये चले गये और रात्रि व्यतीत होने पर पुनः सूर्यदेव की किरणों के साथ ही उस सभा भवन में आ गये।

पांचवा सर्ग समाप्त

छठवां सर्ग

पुरुषार्थ की श्रेष्ठता और दैववाद का निराकरण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम! पूर्वजन्म के पौरुष से भिन्न दैव कोई वस्तु नहीं है। इसलिये 'मैं दैव के अधीन हूँ, कर्म करने में स्वतंत्र नहीं हूँ' ऐसी बुद्धि या विचारधारा को सत्संग तथा सत्-शास्त्र के अभ्यास द्वारा मन से दूर करके जीवात्मा का इस संसार-सागर से बल पूर्वक उद्धार करे (आलस्यवश सत्कर्म अथवा साधन कभी नहीं छोड़े)। जैसे-जैसे प्रयत्न होगा, वैसे-ही-वैसे शीघ्रतापूर्वक फल प्राप्त होगा। इसी का नाम पौरुष है। पूर्वजन्म के उस पौरुष को ही कोई दैव की संज्ञा देना चाहे तो दे सकता है। जो तुच्छ विषय, सुखों के क्षणिक लोभ में फँसकर उस पूर्वकृत पौरुष या दैव को वर्तमान जन्म के पुरुषार्थ द्वारा जीतने का प्रयत्न नहीं करते और सदा दैव के भरोसे बैठे रहते हैं, वे दीन, पामर और मूढ़ हैं (क्योंकि पुरुषार्थ के बिना आत्म-कल्याण सिद्ध नहीं होता)। पूर्वजन्म के तथा इस जन्म के पुरुषार्थ (कर्म) दो भेड़ों की तरह आपस में लड़ते हैं। उनमें जो भी बलवान् होता है, वही दूसरे को क्षणभर में पछाड़ देता है। जैसे पूर्व जन्म के किसी प्रतिबन्धक कर्म के कारण किसी मनुष्य को पुत्र की प्राप्ति नहीं होने वाली है; परन्तु यदि वह पुत्र प्राप्ति के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

लिये शास्त्रीय विधान के साथ पुत्रेष्टि-यज्ञ अथवा उसी कोटि के दूसरे किसी सत्कर्म का अनुष्ठान करता है तो उसे पुत्रप्राप्ति हो जाती है। यहाँ पूर्वजन्म के प्रतिबन्धक कर्म से इस जन्म का पुरुषार्थ अधिक बलवान् होने के कारण नवीन प्रारब्ध का निर्माण करके विजयी हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वजन्म के कर्मानुसार यदि किसी की मृत्यु अवश्यम्भावी है तो उसके प्रतिकार के लिये अनेकप्रकार के उपाय करने पर भी मनुष्य उसे टाल नहीं पाता। अतः यहाँ पूर्वकृत कर्म (दैव या प्रारब्ध) ही प्रबल होने के कारण विजयी होता है। इस जन्म में किया गया प्रबल पुरुषार्थ अपने बल से पूर्वजन्म के पौरुष या दैव को नष्ट कर देता है और पूर्वजन्म का प्रबल पौरुष इस जन्म के पुरुषार्थ को अपने बल से दबा देता है। पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप प्रारब्ध और वर्तमान जन्म के पुरुषार्थ-इन दोनों में वर्तमान जन्म का पुरुषार्थ ही प्रत्यक्षतः बलवान् है, इसलिये अधिकारी मनुष्य को पुरुषार्थ का सहारा लेकर सत्-शास्त्रों के अभ्यास और सत्संग द्वारा बुद्धि को निर्मल बनाकर संसार-सागर से अपना उद्धार कर लेना चाहिये। इस जन्म के और पूर्वजन्म के दोनों पुरुषार्थ पुरुषरूपी वन में उत्पन्न हुए फल देनेवाले वृक्ष हैं। उन दोनों में जो अधिक बलवान् होता है, वही विजयी होता है अर्थात् धर्माचरण और मुक्ति के विषय में तो इस जन्म का पुरुषार्थ बलवान् है और अर्थ एवं काम के विषय में पूर्वजन्म का फलदानोन्मुख कर्म या दैव प्रबल है।

जो पुरुष उदार स्वभाव से युक्त एवं सत्कर्म के लिये प्रयत्न करने में कुशल है, सदाचार ही जिसका लीलाविहार है, वह जगत् के मोहरूपी फंदे से उसी प्रकार निकल जाता है, जैसे सिंह पिंजड़े से। जो मनुष्य दृष्ट (पुरुषार्थ या परम कल्याण के लिये प्रयत्न) का त्याग करके 'मुझे तो कोई ऐसा करने के लिये प्रेरित कर रहा है' ऐसी अनर्थकारिणी कुत्सित कल्पना में स्थित है, उसे दूर से ही त्याग देना चाहिये; क्योंकि वह मनुष्यों में अधम है। संसार में सहस्त्रों व्यवहार हैं, जो आते-जाते रहते हैं। उनमें सुख और दुःख-बुद्धि (अनुकूलता तथा प्रतिकूलताजनित राग-द्वेष) का त्याग करके शास्त्र के अनुसार आचरण करना चाहिये। शास्त्र के अनुकूल और कभी उच्छिन्न न होने वाली अपनी मर्यादा का जो त्याग नहीं करता, उस पुरुष को सारी अभीष्ट वस्तुएँ उसी प्रकार प्राप्त होती हैं, जैसे सागर में गोता लगाने वाले को रत्न। सुख की प्राप्ति

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वाले जो आवश्यक कर्त्तव्य या साधन हैं, एकमात्र उन्हीं में तत्पर रहने को ही विद्वान् लोग पौरुष कहते हैं। वह तत्परता यदि शास्त्र से नियन्त्रित हो तो परम पुरुषार्थ की प्राप्ति कराने वाली होती है। कर्त्तव्य पालन के लिये जो शरीर आदि का संचालन होता है, वही जिसका धर्म है, उस क्रिया (श्रवण–मनन आदि साधन) से, सत्संग से और सत्–शास्त्रों के स्वाध्याय से शुद्ध एवं तेज की हुई अपनी बुद्धि के द्वारा जो स्वयं ही आत्मा का उद्धार किया जाता है, वही परम स्वार्थ की सिद्धि है। विद्वान् लोग अन्तरहित, समतारूप परमानन्द से पूर्ण परमार्थ वस्तु (परब्रह्म) को जानते हैं। जिन साधनों से उसकी प्राप्ति होती है, उनका नित्य–निरन्तर सेवन करना चाहिये। वे साधन हैं शास्त्रों का स्वाध्याय और सत्संग आदि। जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक आत्म–कल्याण के साधन में संलग्न होता है, उसे अपने पुरुषार्थ से ही हाथ पर रक्खे हुए आँवले की भाँति वह अभीष्ट फल प्रत्यक्ष दिखायी देता है। जो इस प्रत्यक्ष पुरुषार्थ को छोड़कर दैवरूपी मोह में निमग्न होता है, वह मूढ़ है।

अतः शुभाशय श्रीराम! अपनी कोरी कल्पना के बल से उत्पन्न, मिथ्याभूत सम्पूर्ण कारण और कार्य से रहित दैव की अपेक्षा न रखकर आत्म कल्याण के लिये अपने उत्तम पुरुषार्थ का आश्रय लो। शास्त्रों द्वारा तथा महापुरुषों के सदाचार से विस्तार को प्राप्त हुए विविध देश–धर्मों द्वारा समर्थित जो परमात्मा की प्राप्तिरूप अतिशय प्रसिद्ध फल है, उसके लिये हृदय में अत्यंत उत्कट अभिलाषा होने पर उसकी प्राप्ति के लिये चित्त में स्पन्दन या चेष्टा होती है। तत्पश्चात् इन्द्रियों और हाथ–पैर आदि अंगों में क्रिया होती है–इनके द्वारा श्रवण–मनन आदि एवं यम–नियमादि साधनों का आरम्भ होता है, इसी को उत्तम पुरुषार्थ कहते हैं। अधिकारी पुरुष का जन्म पुरुषार्थ के सिद्ध होने पर ही सफल होता है, अन्यथा नहीं–ऐसा जानकर सदा आत्म कल्याण के प्रयत्न में ही संलग्न रहना चाहिये। तत्पश्चात् साधन विषयक उस तत्परता को सत्–शास्त्रों के अभ्यास एवं संत महात्माओं तथा ज्ञानी पुरुषों के सेवन द्वारा आत्मज्ञानरूप फल की प्राप्ति से सफल बनाना चाहिये। आत्म कल्याण के विषय में यदि परम पुरुषार्थ का आश्रय लिया जाय तो यह अवश्य दैवको जीत लेता है, ऐसी धारणा रखकर दैव और पौरुष के बलाबल का विचार करने के कारण जो परम सुन्दर प्रतीत होते हैं तथा जिनमें शम, दम आदि साधन भी विद्यमान हैं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

एवं श्रेष्ठपुरुषों की सेवा से जिनका अन्तःकरण सदा भावित रहता है, ऐसे अधिकारी पुरुषों को तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिये अवश्य उद्यम करना चाहिये। इस जन्म में सम्पादन करने योग्य स्वाभाविक प्रयत्न ही परम पुरुषार्थ की सिद्धिका हेतु है, ऐसा निश्चित रूप से जानकर यह अधिकारी जीव नित्य संतुष्ट एवं उत्तम ज्ञानीजनों की सेवारूप अमोघ मधुर और उत्कृष्ट औषध से जन्म-मरण की परम्परारूप भवरोग को शान्त करे।

छठवां सर्ग समाप्त

सातवाँ सर्ग

पुरुषार्थ की प्रधानता का समर्थन

जो लोग उद्योग का त्याग करके केवल दैव के भरोसे बैठे रहते हैं, वे आलसी मनुष्य स्वयं ही अपने शत्रु हैं। वे अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-चारों पुरुषार्थों का नाश कर डालते हैं। बुद्धि, मन और कर्मेन्द्रियों के द्वारा की जाने वाली चेष्टाएँ पौरुष के रूप हैं। इन्हीं से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। साक्षी चेतन में पहले जैसी विषय अनुभूति होती है, मन वैसी ही चेष्टा करता है। मन के व्यापार के अनुसार शरीर चलता है-शारीरिक क्रिया होती है। लोक में जहाँ-तहाँ जैसे-जैसे पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है, वहाँ-वहाँ वैसे-ही-वैसे पौरुष के उपयोग से तदनुरूप लौकिक या वैदिक फल की सिद्धि होती है। पुरुषार्थ से ही बृहस्पति देवताओं के गुरु बने हुए हैं और पुरुषार्थ से शुक्राचार्य ने दैत्यराजों के गुरु का पद प्राप्त किया है। जो नाना प्रकार के आश्चर्यजनक वैभव के आश्रय (अधिपति) थे और वैभवभोग की दृष्टि से महान् समझे जाते थे, ऐसे पुरुष भी अपने दोष युक्त पौरुष (पापाचरण) से ही नरकों के अतिथि हुए हैं-उच्च पदवी से भ्रष्ट हो गये हैं। सहस्त्रों सम्पदाओं और हजारों विपत्तियों से पूर्ण नानाप्रकार की अनुकूल-प्रतिकूल दशाओं में पड़े हुए विभिन्न जातियों के प्राणी अपने पुरुषार्थ से ही उन्हें लाँघकर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होते हैं। शास्त्रों के अभ्यास, गुरु के उपदेश और अपने प्रयत्न-इन तीनों से ही सर्वत्र पुरुषार्थ की सिद्धि देखी जाती है। कल्याणकारी पुरुष अशुभ कर्मों में लगे हुए मन को वहाँ से हटाकर प्रयत्न-पूर्वक शुभ कर्मों में ही लगायें। यही सम्पूर्ण शास्त्रों के सारांश का संग्रह है। वत्स! जो वस्तु कल्याणकारी है, जो तुच्छ नहीं (सबसे उत्कृष्ट) है तथा जिसका कभी विनाश नहीं होता, उसी का यत्नपूर्वक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

आचरण करो। यही सब गुरुजन उपदेश देते हैं। पौरुष से ही अभीष्ट वस्तु की सिद्धि होती देखी जाती है। पौरुष से ही बुद्धिमानों की कल्याण मार्ग में प्रगति होती है। दैव तो दुःख-सागर में डूबे हुए कोमल एवं दुर्बल चित्त वाले लोगों के लिये आश्वासन मात्र है।

लोक प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों द्वारा पुरुष का प्रयत्न सदा सफल होता देखा जाता है। पुरुष अपने पौरुष से ही देशान्तर में आता-जाता है। उत्तम बुद्धि वाले मनुष्य पौरुष से ही उन भीषण संकटों से अनायास पार हो जाते हैं, जिनसे पार पाना अत्यन्त कठिन होता है। यह जो व्यर्थ दैव की कल्पना की गयी है, उसके भरोसे वे संकटों से पार नहीं होते। जो मनुष्य जैसा प्रयत्न करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। इस जगत् में चुपचाप बैठे रहने वाले किसी भी मनुष्य को अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती। श्रीराम! शुभ पुरुषार्थ से शुभफल प्राप्त होता है और अशुभ पुरुषार्थ से अशुभ। अतः तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो। अपने परम अभीष्ट वस्तु को प्राप्त कराने वाले एकमात्र कार्य के प्रयत्न में जो तत्पर हो जाना है उसी को विद्वान पुरुष पौरुष कहते हैं। उस तत्परता से ही सब कुछ प्राप्त किया जाता है। अपने पैरों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना, हाथ का किसी द्रव्य को धारण करना तथा दूसरे-दूसरे अंगों का तदनुकूल व्यापार में प्रवृत्त होना-यह सब पुरुषार्थ से ही सम्भव होता है, दैव से नहीं। अनर्थ की प्राप्ति कराने वाले एकमात्र कार्य के प्रयत्न में जो तत्पर होता है, उसे विद्वानों ने पागलों की-सी चेष्टा बतायी है। उससे कोई भी शुभ फल नहीं प्राप्त होता है (अशुभ फल की ही प्राप्ति होती है)। कर्त्तव्य-पालन के लिये जो शरीर आदि का संचालन होता है, वही जिसका धर्म है, उस क्रिया से, सत्संग से और सत्-शास्त्रों के स्वाध्याय से शुद्ध एवं तेज की हुई अपनी बुद्धि के द्वारा जो स्वयं ही आत्मा का उद्धार किया जाता है, वही परम स्वार्थ की सिद्धि है। विद्वान् लोग अनन्त, समतारूप परमानन्द से पूर्ण अपने परम प्राप्य अर्थ (परब्रह्म परमात्मा) को जानते हैं। जिन साधनों से उसकी प्राप्ति होती है, उन्हीं का नित्य-निरन्तर सेवन करना चाहिये। वे साधन हैं शास्त्रों के स्वाध्याय और सत्संग आदि। जैसे शरत्काल में सरोवर और कमल एक दूसरे की शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार सद्बुद्धि से सत्-शास्त्रों का अभ्यास और सत्संगरूपी गुण विकसित होता है तथा सत्-शास्त्रों के स्वाध्याय और सत्संगरूपी गुण से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सद्बुद्धि की वृद्धि होती है। चिरकाल के अभ्यास से ये दोनों एक दूसरे के वर्धक और पोषक होते हैं। बाल्यावस्था से ही पूर्णतः अभ्यास में लाये गये शास्त्र और सत्संग आदि गुणों से पौरुष द्वारा अपना हितकारी स्वार्थ सिद्ध होता है।

सातवाँ सर्ग समाप्त

आठवाँ सर्ग

सत्कर्म करने की प्रेरणा

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम! बताओ तो सही, इस लोक में जो शूरवीर, पराक्रमी, बुद्धिमान् और पण्डित हैं, वे किस दैव की प्रतीक्षा करते हैं ? इन महामुनि विश्वामित्रजी ने दैव को दूर से त्यागकर पौरुष से ही ब्राह्मणत्व प्राप्त किया है, और किसी साधन से नहीं। हमने तथा दूसरे-दूसरे पुरुषों ने, जो इस समय मुनि-पदवी को प्राप्त हैं, चिरकाल तक किये गये पौरुष से ही आकाश में विचरण करने की शक्ति प्राप्त की है। हिरण्यकशिपु आदि दानवेन्द्रों ने पुरुषोचित प्रयत्न से ही देव समुदाय को दूर भगाकर त्रिलोकी का साम्राज्य प्राप्त किया था। फिर इन्द्र आदि देवेश्वरों ने पुरुषोचित प्रयत्न से ही शत्रु सेना को छिन्न-भिन्न एवं जर्जर करके दानवों से बल पूर्वक इस विशाल जगत् का राज्य छीन लिया था।

श्रीराम ने पूछा-भगवन्! आप सब धर्मों के ज्ञाता हैं। ब्रह्मन्! लोक में जो बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है, वह दैव क्या है ? किसे दैव कहते हैं, यह बताइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! अवश्यम्भावी फल से सुशोभित होने वाले पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त हुए फल का जो शुभ और अशुभ भोग है, उसी को 'दैव' शब्द से कहा जाता है। अथवा पौरुषद्वारा इष्ट और अनिष्ट कर्म का जो प्रिय और अप्रियरूप फल प्राप्त होता है, उसी को 'दैव' नाम दिया गया है। एकमात्र पुरुषार्थ से सिद्ध होने वाला जो अवश्यम्भावी फल है, वही इस जन समुदाय में 'दैव' शब्द से प्रतिपादित होता है। सिद्ध पुरुषार्थ के शुभ और अशुभ फल का उदय होने पर जो यह कहा जाता है कि 'यह इसी रूप में मिलने वाला था-वही होनहार थी,' इसी को 'दैव' कहते हैं कर्म फल की प्राप्ति होने पर जो यह कहा जाता है कि 'ऐसी ही मेरी बुद्धि हुई थी, ऐसा ही मेरा निश्चय था,' इसी का नाम 'दैव' है। इष्ट और अनिष्ट फल के प्राप्त होने पर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (P.E.S) Jammu College

जो आश्वासन मात्र के लिये यह कहा जाता है कि 'मेरा पूर्व जन्म का कर्म ही ऐसा था' इस तरह की भावनाओं को व्यक्त करने वाला वचन ही 'दैव' कहलाता है।

श्रीराम! मनुष्यों के मन में पहले जो अनेक प्रकार की वासनाएँ थीं, वे ही इस समय कायिक, वाचिक, कर्मरूप में परिणत हुई हैं। जीव में जिस प्रकार की वासना होती है, वह शीघ्र वैसा ही कर्म करता है। मन में वासना और हो और वह कर्म किसी और ही प्रकार का करे, यह सम्भव नहीं। जो गाँव में जाने की इच्छा रखता है, वह गाँव में और जो नगर में जाना चाहता है, वह नगर में पहुँचता है। जो मनुष्य जिस वासना से युक्त होता है, वह उसी के लिये सदा प्रयत्न करता है। पूर्वजन्म में फल की उत्कट अभिलाषा होने से जो कर्म प्रबल प्रयत्न के द्वारा किया जाता है वही इस जन्म में 'दैव' शब्द से कहा जाता है। पूर्वजन्म के उस कर्म का पर्यायवाची शब्द 'दैव' है। कर्म करने वालों के सभी कर्म इसी रीति से होते हैं। अपनी प्रबल वासना ही कर्म है। वासना मन से भिन्न नहीं है और मन ही पुरुष है, अर्थात् पुरुष का संकल्प होने से वह पुरुषरूप ही है। मन आदि भाव को प्राप्त हुआ यह प्राणी ही अपने हित के लिये जो-जो प्रयत्न करता है, 'दैव' नाम से प्रसिद्ध अपने उस कर्म से ही वह तदनुरूप फल पाता है। श्रीराम! मन, चित्त, वासना कर्म, दैव और निश्चय-ये सब कठिनता से समझ में आने वाले मन की (मनोरूपता को प्राप्त हुए पुरुष की) संज्ञाएँ हैं, ऐसा सत्पुरुषों का कथन है।

श्रीराम! इस प्रकार पूर्वोक्त संज्ञाएँ धारण करने वाला पुरुष अपनी सुदृढ़ वासना के द्वारा प्रतिदिन जैसा प्रयत्न करता है, उसके अनुसार ही उसे पर्याप्त फल मिलता है। रघुनन्दन! इस प्रकार पौरुष से मनुष्य इस जगत् में सभी कुछ प्राप्त कर सकता है, दैव से नहीं। अतः वह पुरुषार्थ तुम्हारे लिये शुभफल देने वाला हो। तुम अपने प्रयत्न से प्राप्त परम पुरुषार्थ द्वारा ही सदा बने रहने वाले परम कल्याण को प्राप्त होओगे, अन्यथा नहीं। श्रुति में जो चैतन्यमात्र स्वरूप प्राज्ञ पुरुष बताया गया है, वही तुम हो, जड़ शरीर नहीं हो। तुम स्वयं प्रकाश रूप चेतन हो। अन्य चेतन से प्रकाशित होने की योग्यता तुममें कहाँ है ? यदि तुम्हें दूसरा कोई चेतन प्रकाशित करता है, ऐसा मान लिया जाय तो फिर उसे दूसरा कौन प्रकाशित करता है, यह प्रश्न खड़ा हो जायगा। यदि उसका भी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कोई अन्य चेतन प्रकाशक हो तो फिर इसको कौन प्रकाशित करेगा ? इस प्रकार अनवस्था-दोष प्राप्त होता है, जो वस्तु का साधक नहीं है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह शुभ और अशुभ मार्गों से बहती हुई वासनारूपिणी नदी को पुरुषोचित प्रयत्न के द्वारा अशुभ मार्ग से हटाकर शुभ मार्ग में ही लगाये।

मनुष्य का चित्त शिशु के समान चंचल होता है, उसे अशुभमार्ग (पाप) से हटा दिया जाय तो शुभमार्ग (पुण्य) में जाता है और यदि शुभमार्ग से हटाया जाय तो अशुभमार्ग में चला जाता है। इसलिये उसे बलपूर्वक पापमार्ग से हटा कर पुण्य के मार्ग में लगाना चाहिये। इस प्रकार मनुष्य के लिये उचित है कि वह पूर्वोक्त क्रम से चित्तरूपी बालक को शीघ्र ही समतारूप सान्त्वना देकर पुरुषोचित प्रयत्न के द्वारा धीरे-धीरे आत्मस्वरूप में लगाये, हठपूर्वक एकाएक उसका निरोध न करे। यही उसका लालन-पालन है। लोक में मनुष्य जिस-जिस विषय का अभ्यास करता है, निस्संदेह उसीमें तन्मय हो जाता है। यह बात बालकों से लेकर बड़े-बड़े विद्वानों तक में देखी गयी है। अतः श्रीराम! तुम परम कल्याण की प्राप्ति के लिये उत्तम पुरुषार्थ का आश्रय ले पाँचों इन्द्रियों को जीतकर यहाँ शुभवासना से युक्त हो जाओ। तुम श्रेष्ठतम पुरुषों द्वारा सेवित और अत्यन्त सुन्दर शुभवासना का अनुसरण करके मनोरम भावयुक्त बुद्धि से परम पुरुषार्थ द्वारा सदा शोक रहित पद को प्राप्त करो। तत्पश्चात् उस शुभ वासना का भी परित्याग करके परब्रह्म परमात्मा में भलीभाँति स्थित हो जाओ।

आठवाँ सर्ग समाप्त

नवाँ सर्ग

श्रीवसिष्ठजी द्वारा ब्रह्माजी के और अपने जन्म का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे श्रीराम! जो सर्वत्र नित्य समतारूप से स्थित सच्चिदानन्दमय ब्रह्मतत्त्व है, उससे सम्बन्ध रखने वाली सत्ता को नियति कहते हैं। वही नियन्ता की नियन्त्रण में रहने वाले पदार्थों में जो नियन्त्रित होने की योग्यता है, वह भी सत्ता ही है। अब मैं उस सारगर्भित संहिता का वर्णन करूँगा, रूपफल प्रदान करने वाली और मोक्ष के उपायभूत साधनों से सम्पन्न है। उसे तुम सावधानतया श्रवण करो।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्राचीन काल की बात है–सृष्टि के आदि में परमेष्ठी ब्रह्मा ने इस मोक्ष कथा का वर्णन किया था। यह सम्पूर्ण दुःखों का विनाश करने वाली है। सारे विवेकशील पुरुषों के साथ इस मोक्षकथा को सुनकर तुम उस दुःखरहित सच्चिदानन्दमय परम पद को प्राप्त कर लोगे जहाँ जाने पर पुनः विनाश का भय नहीं रह जाता।

श्रीराम ने पूछा–ब्रह्मन्! पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने किसलिये इस कथा का वर्णन किया था ? और आपको इसकी प्राप्ति कैसे हुई ? प्रभो! यह वृत्तान्त मुझे बताइये।

श्री वसिष्ठजी ने कहा–श्री राम! परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापक, सबका आश्रय-स्थान, नित्यचेतन, अविनाशी, समस्त प्राणियों में प्रकाशकरूप से वर्तमान और अनन्त विलासों का एकमात्र अधिष्ठान है। प्रकृति की साम्यावस्था तथा विषमावस्था में भी वह निर्विकाररूप से स्थित रहता है। उसी परमात्मासे विष्णु का प्राकट्य हुआ, ठीक उसी तरह जैसे प्रवहणशील जल से परिपूर्ण सागर से तरंग उत्पन्न होती है। उन विष्णु के हृदयकमल से ब्रह्मा प्रकट हुए जो वेद तथा वेदार्थ के तत्त्वज्ञ हैं। उन्होंने देवताओं और मुनियों के समुदायों से संयुक्त होकर अनेकविध विकल्पों की सृष्टि करने वाले मन की भाँति विभिन्नप्रकार की सृष्टि रचना की। जम्बूद्वीप के इस भाग में, जो भारतवर्ष नाम से प्रसिद्ध है, ब्रह्माजी द्वारा रचित सारा प्राणिसमुदाय आधि-व्याधि से संयुक्त, लाभ-हानि से पीड़ित और जन्म-मरणशील था। प्राणियों की इस सृष्टि में सारे जनसमुदाय को नाना प्रकार के व्यसनजन्य कष्टों से पीड़ित देख सर्वलोकस्रष्टा भगवान् ब्रह्मा का हृदय उसी प्रकार दयार्द्र हो गया, जैसे पुत्र को दुखी देखकर पिता को दया आ जाती है। फिर तो वे उनके कल्याण के लिये क्षणभर एकाग्रचित्त हो यों विचार करने लगे कि इन हताश तथा अल्पायु जीवों के दुःख का अन्त किस प्रकार होगा। ऐसा विचारकर सामर्थ्यशाली स्वयं भगवान् ब्रह्मा ने उनके कष्टापहरण के लिये तप, धर्म, दान, सत्य और तीर्थ-सेवन आदि साधनों का निर्माण किया। इन्हें उत्पन्न करके सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने पुनः स्वयं विचार किया कि इन साधनों से लोगों के सांसारिक दुःख का समूल विनाश नहीं हो सकता; बल्कि परम निर्वाणरूप मोक्ष ही परम सुख है, जिसकी प्राप्ति हो जाने पर जीव जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट जाता है। उस मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान से ही होती है। इसलिये

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जीव के लिये संसार-सागर पार होने का एकमात्र उपाय ज्ञान ही है। तप, दान और तीर्थसेवन आदि भव-तरण के लिये सीधे उपाय नहीं कहे गये हैं। अतः मैं इस हताश जनसमुदाय के दुःख की निवृत्ति के लिये संसार से उद्धार पाने का एक नूतन उपाय शीघ्र ही प्रकट करूँगा।

यों विचारकर कमल पर विराजमान भगवान् ब्रह्मा ने अपने मानसिक संकल्प द्वारा तुम्हारे सामने बैठे हुए मुझको उत्पन्न किया। निष्पाप श्रीराम! जैसे एक तरंग से शीघ्र ही दूसरी तरंग प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार मैं भी अनिर्वचनीय माया से उत्पन्न हुआ और फिर तुरंत ही अपने उन पितृदेव के समीप जा पहुँचा, जिनके हाथ में कमण्डल और रुद्राक्ष की माला शोभा पा रही थी। मैंने नम्रतापूर्वक उनको प्रणाम किया। उस समय मैं भी कमण्डलु और रुद्राक्ष की माला से संयुक्त था। तब 'बेटा! यहाँ आओ' मुझसे यों कहकर उन्होंने अपने आसनभूत कमल के ऊपरी पत्ते पर श्वेत बादल पर बैठे हुए चन्द्रमा की भाँति मुझे अपने हाथ से पकड़कर बैठा लिया। फिर मृगचर्म ही जिसका परिधान था, ऐसे मुझसे मृगचर्मधारी मेरे पितृदेव ब्रह्माजी ने कहा-'बेटा! जैसे चन्द्रमा में कलंक प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार वानर के समान चंचल अज्ञान दो घड़ी के लिये तुम्हारे चित्त में प्रवेश करे।'

यों पिता द्वारा अभिशप्त हुआ मैं उनके संकल्प के अनन्तर अपने सम्पूर्ण शुद्ध स्वरूप को भूल गया। फिर तो मेरी बुद्धि तत्वज्ञान से रहित हो गयी और मैं दुःखशोक से संतप्त हो दीनता को प्राप्त हो गया। उस समय मैं 'हाय! बड़े कष्ट की बात हुई। यह संसार नाम दोष मुझे कहाँ से प्राप्त हो गया ?' यों हृदय में विचार करके चुपचाप बैठा रहता था। मेरी यह दशा देखकर मेरे पिताजी ने मुझसे कहा-'बेटा! तुम क्यों दुखी हो रहे हो ? अपने इस दुःख के नाश का उपाय मुझसे पूछो। उसे जानकर तुम नित्य परमात्मा को प्राप्त हो जाओगे।' तब मैंने उनसे पूछा-'नाथ! यह महान् दुःखमय संसार मुझ प्राणी को कहाँ से प्राप्त हो गया ? और इसका विनाश किस प्रकार होता है ? मेरे यों प्रश्न करने पर उन्होंने मुझे ऐसे प्रचुर ज्ञान का उपदेश दिया, जिस परम पावन ज्ञान को प्राप्त कर मैं पिताजी के अभिप्राय के अनुरूप अधिक ज्ञानसम्पन्न हो गया। इस प्रकार जब मुझे ज्ञातव्य तत्व की जानकारी हो गयी और मैं अपनी प्रकृति में स्थित हो गया, तब जगत्-स्रष्टा तथा सबकी उत्पत्ति के कारणस्वरूप

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और उपदेष्टाब्रह्मा जी ने मुझसे कहा–'पुत्र! मैंने प्रथमतः तुम्हें शाप द्वारा ज्ञान-हीन करके पुनः समस्त अधिकारीजनों की ज्ञान-सिद्धि के लिये इस सारभूत ज्ञान का पिपासु बनाया है। अब तुम्हारा शाप शान्त हो गया है और तुम्हें परमोत्कृष्ट ज्ञानकी प्राप्ति हो गयी है, जिससे तुम मेरे ही सदृश अद्वितीय आत्मस्वरूप हो गये हो। साधो! अब तुम प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिये भूलोक में जम्बूद्वीप के मध्यभाग में स्थित भारतवर्ष में जाओ। परोपकारनिष्ट पुत्र! तुम तो बड़े बुद्धिमान हो; अतः वहाँ जो लोग कर्मकाण्डपरायण हों, उन्हें कर्मकाण्ड के क्रम से शिक्षा देना और जो लोग विवेकशील, विरक्तचित्त तथा महाबुद्धिमान हों, उन्हें परमानन्दायक ज्ञान का उपदेश करना।'

रघुकुल भूषण राम! इस प्रकार मैं अपने पिता ब्रह्माजी द्वारा नियुक्त होकर इस लोक में निवास कर रहा हूँ और जब तक यह सृष्टिपरम्परा रहेगी, तब तक यहाँ रहूँगा। जिस प्रकार भगवान् ब्रह्मा ने मुझे यहाँ आने का आदेश दिया, उसी प्रकार उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार तथा नारद आदि अन्यान्य बहुत-से महर्षियों को भी यह कहकर प्रेरित किया कि तुम लोग भारतवर्ष में जाकर पवित्र कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड के उपदेश द्वारा वहाँ के निवासियों का, जो अन्तःकरण के अज्ञानरूपी रोग के वशीभूत होकर महान् कष्ट भोग रहे हैं, उद्धार करो।

प्राचीन काल में सत्ययुग के समाप्त होने पर जब भूतल पर कालक्रम से पवित्र कर्मकाण्ड का ह्रास हो गया, तब उन महर्षियों ने कर्मकाण्ड की स्थापना तथा मर्यादा की रक्षा के लिये पृथक-पृथक देशों का विभाजन किया और उन देशों पर भूपालों की स्थापना की। तदनन्तर उन्होंने भूतल पर धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिये उन-उन कर्मों के उपयुक्त बहुत से स्मृति-ग्रन्थों तथा यज्ञविधायक शास्त्रों का निर्माण किया। तत्पश्चात् इस कालचक्र के चलते रहने पर जब उस क्रम का विनाश हो गया तथा लोग प्रतिदिन भोजनमात्रपरायण और खाद्य पदार्थों के उपार्जन में तत्पर हो गये, तब हमलोगों ने उनकी दीनता का विनाश करने तथा लोक में आत्मतत्वज्ञान के प्रचार के लिये बड़े-बड़े ज्ञानोत्पादक शास्त्रों का उपदेश किया। यह अध्यात्मविद्या प्रथमतः राजसमाज में उपदिष्ट हुई। तदनन्तर इसका प्रसार लोक में हुआ। इसी कारण इसे 'राजविद्या' कहा गया है। रघुनन्दन! राजविद्या एवं राजगुह्य के नाम से जिसकी प्रसिद्धि है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उस उत्तम अध्यात्मज्ञान को पाकर राजा लोग दुःखरहित हो परमानन्द को प्राप्त हो गये। श्रीराम! कालक्रमानुसार निर्मल कीर्तिवाले बहुसंख्यक राजाओं के स्वर्गवासी हो जाने पर इस समय तुम इस भूतल पर इन महाराज दशरथ के यहाँ प्रकट हुए हो। शत्रुओं का मर्दन करने वाले राम! तुम्हारा मन अत्यन्त निर्मल है, इसीलिये किसी निमित्त के बिना स्वाभाविक ही तुम्हारे मन में यह परम पावन तथा उत्तम वैराग्य जाग उठा है; क्योंकि समस्त विवेकशील पुरुषों में जिसकी ख्याति है, उस श्रेष्ठ पुरुष का भी वैराग्य किसी निमित्त को लेकर होता है, इसलिये वह राजा कहलाता है, परंतु तुम्हारे मन में उत्पन्न हुआ यह वैराग्य अपूर्व है। यह किसी निमित्त की अपेक्षा न रखकर स्वतः अपने विवेक से उत्पन्न हुआ है और सत्पुरुषों को आश्चर्य में डालने वाला है, अतः सात्त्विक है। जिन्हें निमित्त के बिना ही वैराग्य हो जाता है, वे ही महापुरुष तथा ज्ञानवान् हैं और उन्हीं का अन्तःकरण शुद्ध है। जो लोग ज्ञान द्वारा इस सृष्टिपरम्परा का विचार करके वैराग्य को प्राप्त होते हैं, वे ही उत्तम पुरुष हैं।

श्रीराम! जो लोग इस संसार की असारता एवं दुःखरूपता को देखकर अपनी सांसारिक बुद्धि का परित्याग कर देते हैं, वे साँकल से छूटे हुए गजराजों की भाँति संसार-बन्धन से मुक्त होकर परब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं। यह जगत्-परम्परा विषम और अनन्त है। इसमें पड़ा हुआ महान् जीव देहाध्यास से युक्त रहता है, अतएव ज्ञान के बिना उसे परमपद की प्राप्ति का मार्ग नहीं सूझता। परंतु रघुनन्दन! जिनकी बुद्धि अगाध है- ऐसे विवेकशील पुरुष इस दुस्तर भवसागर को ज्ञानरूपी नौका द्वारा क्षणमात्र में ही पार कर जाते हैं। संसार-सागर से उबारने वाले उस ज्ञानरूप उपाय को तुम अपनी बुद्धि से, जो नित्य विवेक-वैराग्य आदि से समन्वित है, एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो; क्योंकि इस निर्दोष ज्ञानयुक्ति के बिना अनन्त विक्षेपों से परिपूर्ण ये सांसारिक दुःख और भय चिरकाल तक हृदय को संतप्त करते रहते हैं। राघव! श्रेष्ठ पुरुषों में शीत, उष्ण, वात आदि द्वन्दजनित दुःखों को सहन करने की क्षमता ज्ञान के बल पर ही आती है, अन्यथा ज्ञानयुक्ति के अतिरिक्त वे किसी प्रकार सह्य नहीं हो सकते। दुःख की चिन्ताएँ अज्ञान मनुष्य को पद-पद पर आ घेरती हैं और समयानुसार उसे उसी प्रकार संतप्त करती रहती हैं, जैसे अग्नि की लपटें तृण को जलाकर भस्म कर डालती हैं; परंतु जिस प्रकार वर्षा के जल से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अभिषिक्त हुए वन पर उन अग्निज्वालाओं का प्रभाव नहीं पड़ता, उसी तरह जिसे जानने योग्य अध्यात्मशास्त्र का ज्ञान प्राप्त हो गया है तथा जिसने भलीभाँति ब्रह्म तत्व का साक्षात्कार कर लिया है, ऐसे ज्ञानी पुरुष को मानसिक व्यथाएँ संताप नहीं पहुँचा सकतीं। इस संसाररूपी मरुस्थल में बहने वाली वायु शारीरिक तथा मानसिक कष्टरूपी आवर्तों से परिपूर्ण है। यह क्षुब्ध होकर भी तत्वज्ञानी को वैसे ही पीड़ित नहीं कर सकती, जैसे प्रचण्ड आँधी कल्पवृक्ष का कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

इसलिये बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह तत्वज्ञान की प्राप्ति के लिये, जो श्रुति आदि का प्रमाण देने में कुशल और आत्मतत्व का यथार्थ ज्ञाता हो, ऐसे ज्ञानी पुरुष के पास जाकर प्रयत्नपूर्वक विनयभाव से प्रश्न करे। फिर जैसे केसर से रँगा हुआ वस्त्र उसके रंग को पकड़ लेता है उसी प्रकार जिससे प्रश्न किया गया है, उस प्रमाणकुशल तथा विशुद्ध चित्तवाले उपदेष्टा के वचन को प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। किंतु वाग्वेत्ताओं में श्रेष्ठ राम! जो तत्व का ज्ञाता नहीं है, अतएव जिसके वचन अग्राह्य हैं, ऐसे पुरुष से जो तत्वविषयक प्रश्न करता है, उससे बढ़कर मूर्ख दूसरा कोई नहीं है। इसी प्रकार जिससे पूछा गया है, उस प्रमाणकुशल तथा तत्वज्ञानी वक्ता के उपदेश का जो पुरुष यत्नपूर्वक अनुसरण नहीं करता, उससे बढ़कर दूसरा कोई नराधम नहीं है। अतः वक्ता के व्यवहार आदि कार्यों से उसकी अज्ञता तथा तत्वज्ञता का पहले निर्णय करके जो पुरुष उससे प्रश्न करता है, वह प्रश्नकर्ता उत्कृष्ट बुद्धिवाला माना जाता है; परंतु जो मूर्ख जिज्ञासु उत्तम वक्ता का निर्णय किये बिना ही उससे प्रश्न करता है, वह अधम कहलाता है और उसे तत्वज्ञानरूप महान् अर्थ की प्राप्ति भी नहीं होती। ज्ञानी को भी चाहिये कि पूर्वापर का विवेचन करके उसका निश्चय करने में जिसकी बुद्धि समर्थ हो और जो निन्दनीय न हो, ऐसे पुरुष को उसके पूछे हुए तत्व का उपदेश दे; परंतु जो आहार-निद्रा-भय-मैथुन आदि पशुधर्म से संयुक्त है, ऐसे अधम को तत्व का उपदेश न दे। क्योंकि प्रश्नकर्ता की श्रुति आदि प्रमाणों द्वारा निर्णीत पदार्थ के ग्रहण की योग्यता का विचार किये बिना ही जो वक्ता उसे उपदेश देता है, उस पुरुष को ज्ञानीजन इस लोक में महान् मूर्ख बतलाते हैं। रघुनन्दन! तुम प्रशंसनीय गुणों से युक्त अत्यन्त श्रेष्ठ प्रश्नकर्ता हो और मैं उपदेश देना जानता हूँ, अतः हम

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दोनों का यह समागम उचित ही है। शब्दार्थ के ज्ञाता राम! जनसमाज में तुम महापुरुष माने जाते हो। तुममें राग का लेशमात्र भी नहीं है। तुम तत्व के ज्ञाता हो। इसलिये तुम्हारे प्रति किया हुआ उपदेश तुम्हारे अन्तर्हृदय में चिपक जाता है, ठीक उसी तरह जैसे घोला हुआ रंग वस्त्र में लग जाता है। तुम्हारी तीक्ष्ण बुद्धि उक्त पदार्थ के ग्रहण करने में निपुण और परमार्थ का विवेचन करने वाली है। वह परमार्थ-विषय में उसी प्रकार प्रवेश करती है, जैसे सूर्य की किरणें जल के भीतर घुस जाती हैं। इसलिये मैं जिस पदार्थ का उपदेश करूँ, उसे तुम 'यह तत्व वस्तु है' यों निश्चय करके यत्नपूर्वक अपने हृदय में पूर्णतया धारण कर लो।

दसवाँ सर्ग समाप्त

ग्यारहवाँ सर्ग

राम की प्रशंसा

मनुष्य को चाहिये कि वह विवेकहीन, अज्ञानी और दुर्जनों से प्रेम करने वाले मनुष्य का दूर से ही परित्याग करके साधु-महात्माओं की सेवा करे; क्योंकि सदा सज्जनों के सम्पर्क में रहने से विवेक की उत्पत्ति होती है। यह विवेक एक वृक्ष के समान है और भोग तथा मोक्ष उसके फल कहे गये हैं। उस मोक्ष के द्वारा निवास करने वाले चार द्वारपाल बताये गये हैं, जिनके नाम हैं- शम, विचार, संतोष और साधुसंगम। मनुष्य को इन चारों का ही प्रयत्नपूर्वक सेवन करना चाहिये; क्योंकि इनका भलीभाँति सेवन होने पर ये मोक्षरूपी राजमहल के द्वार को खोल देते हैं। यदि चारों का सेवन न हो सके तो तीन का या दो का सेवन अवश्य करना चाहिये। दो का भी सेवन न हो सके तो सभी उपायों द्वारा प्राणों की बाजी लगाकर भी एक का आश्रय तो अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि जब एक वश में आ जाता है, तब शेष तीनों भी अधीन हो जाते हैं। विवेकी पुरुष तप, ज्ञान और शास्त्र के श्रवण-मनन आदि का उत्तम पात्र होता है। जैसे तेजस्वियों में सूर्य सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार वह लोगों में आभूषण के सामन आदरणीय होता है। जैसे शीत की अधिकता के कारण जल जमकर पत्थर के सदृश हो जाता है, उसी प्रकार अविवेकियों की बुद्धि मन्दता-घनता को प्राप्त होकर अत्यन्त जड़ हो जाती है। रघुकुलभूषण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

राम! तुम्हारा अन्तःकरण तो सूर्योदय होने पर खिले हुए कमल की भाँति सौजन्य आदि गुण एवं शास्त्रार्थ की दृष्टियों से विकसित हो गया है। मनुष्य को उचित है कि वह पहले आवागमन के चक्र से छूटने के लिये शास्त्राभ्यास और सत्संगतिपूर्वक तपस्या एवं इन्द्रियनिग्रह द्वारा अपनी बुद्धि का ही संवर्द्धन करे। यह संसार विषवृक्ष के समान है। यह विपत्तियोंका एकमात्र स्थान है, जो अज्ञानी मनुष्य को सदा मोहित करता रहता है; इसलिये यत्नद्वारा अज्ञान का विनाश कर डालना ही उचित है। जैसे मेघरहित आकाश में निर्मल एवं पूर्णमण्डल वाले चन्द्रमा को देखकर दृष्टि प्रसन्न होती है, उसीप्रकार यह पूर्वोक्त परमार्थ-वस्तुदृष्टि ज्ञानी में यथार्थ के साथ एकरसता को प्राप्त होकर प्रसन्न हो जाती है। जिसकी बुद्धि पूर्वापर के विचार से सूक्ष्मतम अर्थ को ग्रहण करने में निपुण और चतुरता से शोभित होकर पूर्ण विकसित हो गयी है, वही 'पुमान' अर्थात् पुरुष कहा जाता है। श्रीराम! तुम्हारा हृदय अज्ञान से रहित अतएव विशुद्ध शान्ति आदि गुणों से विकसित एवं उत्तम विचार की शीतल चाँदनी से प्रकाशित है। उस हृदय से युक्त होकर तुम उसी प्रकार सुशोभित हो रहे हो, जैसे निर्मल चन्द्रमा से आकाश की शोभा होती है।

ग्यारहवां सर्ग समाप्त

बारहवां सर्ग

संसार प्राप्ति की अनर्थरूपता

श्री वसिष्ठजी कहते हैं–राघव! तुम्हारा मन उत्तम गुणों से परिपूर्ण है। तुम हमारे योग्य शिष्य हो और प्रश्न करने का ढंग भी तुम्हें भलीभाँति ज्ञात है। तुम कही हुई बात को विशेषरूप से समझ लेते हो, इसीलिये मैं आदरपूर्वक तुम्हें उपदेश देने को उद्यत हुआ हूँ। अब तुम अपनी बुद्धि को, जो रजोगुण और तमोगुण से रहित और शुद्ध सत्वगुण का अनुसरण करने वाली है, आत्मा में स्थापित करके ज्ञानोपदेश श्रवण करने के लिये तैयार हो जाओ। प्रश्नकर्त्ता में जितने गुण होने चाहिये, वे सभी गुण तुममें विद्यमान हैं और जैसे समुद्र में रत्न आदि सम्पत्तियाँ भरी रहती हैं, उसी तरह वक्ता के सभी गुण मुझमें विद्यमान हैं। वत्स! जैसे चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क से चन्द्रकान्तमणि में आर्द्रता आ जाती है, उसी तरह तुम भी ज्ञान के संसर्ग से उत्पन्न हुए वैराग्य को प्राप्त हुए

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हो। तुम तो सर्वथा शुद्ध हो। तुम्हारा बाल्यावस्था से ही शुद्ध, विस्तृत तथा अविच्छिन्न सद्गुणों के साथ सम्बन्ध चला आ रहा है-ठीक उसी तरह जैसे कमल का अपने विस्तार वाले, निर्मल एवं दीर्घ तन्तुओं से लगाव रहता है। इसलिये तुम्हीं इस कथा को सुनने के योग्य अधिकारी हो। अब मैं इस मोक्ष कथा का वर्णन करूँगा, तुम सावधान होकर इसे सुनो। यह कथा उस परमपद से सम्बन्ध रखने वाली है, जिसका साक्षात्कार हो जाने पर जितने लौकिक कार्य तथा जितनी लौकिक दृष्टियाँ हैं, वे सब-के-सब पूर्णतया शान्त हो जाते हैं। श्रीराम! संसाररूपी विष के आवेश से उत्पन्न हुई विषूचिका बड़ी दुस्सह होती है। विषनिवारक गारुडमन्त्र से ही उसका समूल नाश होता है। जीव और ब्रह्म का एकात्मबोध ही वह गारुडमन्त्र है। वही परमार्थ ज्ञान का भी मूलमन्त्र है। सत्पुरुषों के साथ शास्त्रनुशीलन करने से निस्संदेह उस योग की प्राप्ति होती है।

शास्त्रचिन्तन करने पर इसी जन्म में अवश्य ही सम्पूर्ण दुःखों का समूल विनाश होता है-ऐसा मानना चाहिये; इसलिये उन विवेकशील सत्पुरुषों को अवहेलना की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। जिस विवेकी पुरुष को सम्यग्दृष्टि की उपलब्धि हो चुकी है, वह पुरानी केंचुल का त्याग करके संतापरहित हुए सर्प की भाँति मानसिक व्यथाओं से परिपूर्ण इस संसार के अनुराग का परित्याग करके संतापरहित हो जाता है। उसका अन्तःकरण शीतल हो जाता है। वह सम्पूर्ण जगत् को विनोदपूर्वक इन्द्रजाल की तरह सुखरूप देखता है; परंतु जो उस सम्यग्दृष्टि से रहित है, उसके लिये यह संसार परम दुःखदायी ही है। यह संसारानुराग बड़ा ही कष्टदायक है। यह अनर्थ की आशंका किये बिना ही मोहवश विषयों में फँसे हुए पुरुषों को सर्प की तरह डँस लेता है, खड़ग की भाँति काट डालता है, भाले के समान बेध देता है रस्सी की तरह आवेषित कर लेता है, आग के सदृश जला देता है, रात्रि की तरह अंधा बना देता है, सिर पर गिरे हुए पत्थर के समान मूर्च्छित कर देता है, विचारशक्ति को हर लेता है, मर्यादा का विनाश कर देता है और मोहरूपी अन्धकूप में गिरा देता है। तृष्णा उन्हें जर्जर कर देती है। अधिक क्या, संसार में ऐसा कोई दुःख नहीं है, जो संसारी मनुष्य को तृष्णा से न प्राप्त होता हो। यह विषयभोगरूपिणी विषूचिका दुष्परिणाम वाली है। यह नरक-नगररूप शरीर-समुदाय के साथ अनुराग उत्पन्न करने वाली है। यदि इसकी चिकित्सा न की जाय तो यह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

अवश्य ही उन-उन हजारों नारकीय दुर्गतियों को प्राप्त कराती है, जहाँ नरकों में पाषाणभक्षण, खड़ग द्वारा अंगों का छेदन, पर्वत शिखर से निपातन, पत्थर द्वारा उत्पीड़न और अग्निदाह को हिमाभिषेक की भाँति, अंगों के कुतरने को चन्दन के लेप की तरह, असिपत्रवाले वृक्षों के वन में दौड़ने, कीड़ों के द्वारा शरीर में छिद्र किये जाने और लोहे की गरम जंजीरों द्वारा देह के लपेटने को शरीर-संस्कार के समान, युद्ध में काम आनेवाले अग्नि-बुझे बाणों की धारावाहिक वृष्टि को ग्रीष्मऋतु में विनोद के लिये किये गये जलयन्त्रों के फव्वारों की बूँद-वर्षा के सदृश, सिर के काटे जाने को सुखनिद्रा के तुल्य, मुख बंद करके बलपूर्वक किये गये मूकीभाव को स्वाभाविक मुखमुद्रा के समान और अकिंचित्करता को महती सम्पद्वृद्धि की तरह सहन करना पड़ता है। राघव! इस प्रकार सहस्त्रों कष्टप्रद चेष्टाओं से परिपूर्ण इस दारुण संसारचक्र में उपर्युक्त उपदेश की अवहेलना नहीं करनी चाहिये; बल्कि ऐसा विचार और निश्चय अवश्य करना चाहिये कि शास्त्रानुशीलन से निश्चय ही कल्याण होता है। सत्पुरुषों के साथ शास्त्रचिन्तन करने से जिसका देहाभिमान नष्ट हो गया है, उसे तत्व का ज्ञान हो जाने से सर्वव्यापक आत्मा का स्वरूप विदित हो जाता है। वह शुद्धबुद्धि द्वारा परब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है और अज्ञानरूपी घने बादल के विलीन हो जाने पर उसके मोह का विनाश हो जाता है। फिर तो उसके लिये जगत् में विचरण करना रमणीय हो जाता है।

श्रीराम! जिन्हें आत्मस्वरूपता का ज्ञान हो गया है, ऐसे उत्तम बुद्धि सम्पन्न महापुरुष इस पूर्वोक्त दृष्टि का अवलम्बन करके इस संसार में विचरते हैं। उन्हें न शोक होता है, न कामना होती है और न वे शुभाशुभ की याचना ही करते हैं। वे इस संसार में सबकुछ करते हुए भी अकर्ता के समान रहते हैं। वे हेय और उपादेय के पक्षपात से रहित होकर अपने आत्मा में स्थित रहते हैं, पवित्रता से रहते हैं और सत्-शास्त्रों में प्रतिपादित स्वच्छ कर्म करते हुए सन्मार्ग पर चलते हैं। अन्य लोगों की दृष्टि से वे आते हैं, जाते हैं, कर्म करते हैं और बोलते हैं; परंतु वास्तव में वे न आते हैं न जाते हैं, न कर्म करते हैं और न बोलते ही हैं। क्योंकि परमानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त हुआ पुरुष न तो इन्द्रजालरूप मायिक कार्य करता है और न सांसारिक वासनाओं के पीछे ही दौड़ता है। वह बालकों की-सी भ्रममूलक चपलता का परित्याग करके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पूर्वकथित परमात्मा के स्वरूप में ही सदा विराजमान रहता है। इस प्रकार की स्थितियाँ आत्मतत्व के साक्षात्कार के अतिरिक्त अन्य उपाय से नहीं उपलब्ध होतीं। इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह जीवनपर्यन्त आत्मा की ही खोज करे, उसी की उपासना करे और उसी का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करे। इसके अतिरिक्त उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है।

जिस पुरुष को अनुभव, शास्त्रवचन और गुरु के उपदेश की एकवाक्यता का निश्चय हो गया है, वह निरन्तर किये गये उपर्युक्त अभ्यास के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है। चाहे भारी-से भारी आपत्ति क्यों न आ पड़े, परंतु जो शास्त्र और उसके अर्थ की अवहेलना करने वाले तथा तत्वज्ञानी महापुरुषों की अवज्ञा करने वाले हैं- ऐसे मूर्खों का अनुकरण कभी नहीं करना चाहिये, क्योंकि भूतल पर मनुष्यों को जितना कष्ट अपने शरीर में स्थित अकेली मूर्खता से प्राप्त होता है, उतना दुःख शारीरिक क्लेश, विष, आपत्ति और मानसिक व्यथाएँ नहीं दे सकतीं। जिनकी बुद्धि कुछ भी उत्तम संस्कारों से संस्कृत हो चुकी है, उनकी मूर्खता का विनाश करने में जैसा यह शास्त्र समर्थ है, वैसा अन्य कोई शास्त्र नहीं है। जैसे खैरसे काँटे उत्पन्न होते हैं, उसी तरह जितनी दुस्तर आपत्तियाँ और अधम कुत्सित योनियाँ हैं, वे सभी मूर्खता से पैदा होती हैं। जिस संसारी पुरुष को मोक्ष के उपायभूत इस शास्त्ररूप प्रकाश की प्राप्ति हो गयी है, वह मोहान्धकार भी पुनः अन्धता को नहीं प्राप्त होता। तृष्णा मानवरूपी कमल को तभी तक संकुचित करती है, जब तक विवेकरूपी सूर्य की निर्मल प्रभा का उदय नहीं होता। रघुनन्दन! जैसे इस संसार में भगवान् विष्णु एवं शंकर आदि तथा अन्यान्य महर्षिगण जीवन्मुक्त हो विचरते रहते हैं, उसी प्रकार तुम भी सांसारिक दुःख से छुटकारा पाने के लिये मेरे-जैसे आत्मीयजनों के साथ बैठकर गुरुपदेश एवं शास्त्रप्रमाण द्वारा अपने स्वरूप को जानकर जगत् में विहार करो। इस जगत् में सुख तो तुच्छ-से-तुच्छ तिनके के सदृश है, परंतु दुःखों का तो अन्त ही नहीं है; इसलिये जो दुःखरूप परिणाम से परिपूर्ण हैं, उन लौकिक सुखों में आस्था नहीं करनी चाहिये।

बारहवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तेरहवां सर्ग

वैराग्य आदि का निरूपण

वसिष्ठ जी बोले हे श्रीराम! ज्ञानी पुरुष को चाहिये कि वह परम पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये, जो अनन्त और आयासरहित है, उस परमपद को प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करे; क्योंकि जिनका मन संतापरहित होकर सर्वोत्कृष्ट परमपद रूप परमात्मा में लीन हो गया है, वे ही पुरुषों में श्रेष्ठ हैं और उन्हीं को परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है। जो दुरात्मा पुरुष राज्य आदि जागतिक सुखों के उपलब्ध होने पर उनके उत्तम भोगों के आस्वादनमात्र से ही तृप्त बने रहते हैं, उन्हें तो तुम अंधे मेंढक समझो। जिनकी बुद्धि अज्ञान के कारण मन्द पड़ गयी है, वे मूर्ख वंचकों, प्रबल दुराचारियों, लौकिक भोगों में रचे-पचे रहने वालों और मित्र का-सा व्यवहार करने वाले शत्रुओं में आसक्ति करने लगते हैं, जिससे उन्हें एक संकट से दूसरे संकट की, एक दुःख से दूसरे दुःख की, एक भय से दूसरे भय की और एक नरक से दूसरे नरक की प्राप्ति होती रहती है। इसलिये उत्तम विवेक का आश्रय लेकर अभ्यास और वैराग्य के सहयोग से दुःखरूपिणी इस भयंकर संसार-नदी को पार करना चाहिये। जिसे प्राप्त कर लेने पर पुनर्जन्म नहीं होता और जहाँ पहुँच जाने पर शोक का अस्तित्व मिट जाता है, वह परमपद ज्ञान द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है- इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। इस संसार में जब पुरुष की शीघ्र मोक्षप्राप्ति के उपाय के चिन्तन में प्रवृत्ति होती है, तब वह मोक्षप्राप्ति का पात्र कहा जाता है। उसप्रवृत्ति के प्राप्त हो जाने पर उत्तम कैवल्य-पद की प्राप्ति में कष्ट नहीं उठाना पड़ता। उस केवल रूप परमात्मा की प्राप्ति में धन-सम्पत्ति, मित्र, भाई-बन्धु, हाथ-पैर का संचालन, देशान्तरगमन, शारीरिक कष्ट-सहन और तीर्थसेवन आदि उपकारी नहीं हो सकते। वह तो एकमात्र पुरुषार्थ से साध्य केवल परमात्मा की प्राप्ति की वासना रूप कर्म से एवं मनोजय से प्राप्त किया जा सकता है। सुखपूर्वक सेवन करने योग्य आसन पर बैठकर उस परब्रह्म का चिन्तन करने वाले पुरुष को उपर्युक्त परम पद की प्राप्ति हो जाती है। फिर तो उसे न शोक करना पड़ता है और न संसार में उसका पुनर्जन्म ही होता है। जैसे मृगतृष्णा में जलभास दीखता है, वास्तव में वहाँ जल नहीं रहता, उसी तरह स्वर्गलोक और मनुष्य लोक के सम्पूर्ण भावों के विनाशी होने के कारण इन दोनों लोकों में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वास्तविक सुख नहीं है।

इसलिये जो शम और संतोष का साधन है, उस मनोजय की प्राप्ति के लिये उपाय सोचना चाहिये। उससे वह आनन्द उपलब्ध होता है, जो परमात्मा के साथ ऐकात्म्य-सम्बन्ध से मिलता है। अतः देवता, दानव, राक्षस और मनुष्य को बैठते, चलते, गिरते-पड़ते अथवा घूमते हुए सदा ही मनोजय-जनित उस परम सुख को अवश्य प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि वह शान्तिरूप विकसित पुष्पों से लदे हुए विवेकरूप महान् वृक्ष का फल है। पूर्णरूप से शान्त मन अत्यन्त निर्मल और भ्रमरहित हो जाता है। उस विश्रान्त मन में किसी प्रकार की स्पृहा नहीं रह जाती। उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। उस समय वह न तो किसी वस्तु की अभिलाषा करता है और न किसी का त्याग ही करता है।

राघव! अब मोक्षद्वार पर स्थित रहने वाले इन द्वारपालों को क्रमशः सुनो, जिनमें एक के प्रति भी प्रीति हो जाने से मोक्षद्वार में प्रविष्ट होने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। शम मंगलमय, शान्तिदायक तथा भ्रम का निराकरण करने वाला है। शम से परम कल्याण की प्राप्ति होती है और शम ही परमपद है। शम की प्राप्ति से पूर्णतया तृप्त हुए जिस पुरुष का चित्त शमविभूषित होने के कारण शीतल एवं निर्मल हो गया है, उसका शत्रु भी मित्र बन जाता है। जैसे चन्द्रोदय होने से क्षीरसागर की शुभ्रता बढ़ जाती है, उसीप्रकार जिनका चित्त शमरूपी चन्द्रमा से भलीभाँति शोभित हो गया है, उनकी परम शुद्धता की अभिवृद्धि होती है, वे अपने गुणरूप सौन्दर्य से दूसरे की इन्द्रियों को वश में कर लेते हैं तथा वे ही कुलीनशिरोमणि एवं वन्दनीय हैं। त्रिलोकी की राज्यलक्ष्मी भी वैसा आनन्द नहीं प्रदान कर सकती, जैसी आनन्ददायिनी साम्राज्य-सम्पत्ति के सदृश शम-विभूतियाँ होती हैं। लोक में जितने दुःख, जितनी दुस्सह तृष्णाएँ और जितनी दुःखदायिनी मानसिक व्यथाएँ हैं, वे सब शान्तचित्त वाले पुरुषों के निकट जाकर वैसे ही विलीन हो जाती हैं, जैसे सूर्य की किरणों के सम्पर्क से अन्धकार का विनाश हो जाता है। शमपरायण पुरुष के दर्शन से समस्त प्राणियों का मन जैसा आह्लादपूर्ण एवं प्रसन्न होता है, वैसा चन्द्रमा के दर्शन से नहीं होता। इस जगत् में जैसे अपनी माता पर सभी का विश्वास रहता है, उसी प्रकार शमयुक्त पुरुष पर दुरात्मा अथवा धर्मात्मा- सभी प्राणी विश्वास करते हैं। इसलिये रघुकुलभूषण राम! तुम भी अपने मन को, जो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

समस्त शारीरिक क्लेशों तथा मानसिक व्यथाओं से कम्पित और तृष्णारूपी रस्सी से आबद्ध है, शमरूपी अमृत के अभिषेक से प्रकृतिस्थ करो; क्योंकि जो शमनिष्ठ है, उस पुरुष से पिशाच, राक्षस, दैत्य, शत्रु, व्याघ्र अथवा सर्प- कोई भी द्वेष नहीं करते।

जिसके समस्त अंग उत्कृष्ट शमरूपी अमृत-कवच से भली-भाँति सुरक्षित हैं, उसे दुःख उसी प्रकार पीड़ा नहीं पहुँचा सकते, जैसे बाण हीरे को बेधने में असमर्थ होते हैं। निर्मल तथा शमविभूषित समबुद्धि से पुरुष की जैसी शोभा होती है, वह शोभा अन्तःपुर में विराजमान राजा को भी नसीब नहीं होती। शमयुक्त अन्तःकरण वाले पुरुष का दर्शन करने से मनुष्य को जो शान्ति प्राप्त होती है, वह प्राणों से भी अधिक प्रिय स्वजन के मिलने से भी नहीं उपलब्ध होती। इस लोक में जो शम से सुशोभित तथा लोगों द्वारा प्रशंसित समवृत्ति से सबके साथ उत्तम बर्ताव करता है, उसी का जीवन सार्थक है; इसके विपरीत का जीवन तो निरर्थक ही है। जिसका मन उद्दण्डतारहित हो गया है, ऐसा शमपरायण श्रेष्ठ पुरुष जो कर्म करता है, उसके उस कर्म की ये समस्त प्राणी प्रशंसा करते हैं।

जो पुरुष प्रिय और अप्रिय को सुनकर, स्पर्शकर, देखकर, खाकर और सूँघकर न तो हर्षित होता है और न खिन्न होता है, वह 'शान्त' कहा जाता है। जो प्रयत्नपूर्वक इन्द्रियों को अपने वश में करके समस्त प्राणियों के साथ समतापूर्ण व्यवहार करता है तथा न तो भविष्य की आकांक्षा करता है और प्राप्त का परित्याग करता है, वह 'शान्त' कहलाता है। जिसका मन मरण, उत्सव और युद्ध के अवसर पर भी व्याकुल न होकर चन्द्रमण्डल के समान निर्मल आभा से युक्त रहता है, वह 'शान्त' कहा जाता है। हर्ष और कोप का अवसर उपस्थित होने पर भी जो पुरुष वहाँ अनुपस्थित के समान न तो हर्ष को प्राप्त होता है और न क्रोध ही करता है, बल्कि उसका मन गाढ़निद्रा में सोये हुए पुरुष के मन के समान निर्विकार रहता है, वह 'शान्त' पद से व्यवहृत होता है। जिसकी अमृत-प्रवाह के सदृश सुखदायिनी तथा प्रेमपूर्ण दृष्टि सभी प्राणियों पर समानरूप से पड़ती है, उसकी 'शान्त' संज्ञा होती है। जिसका अन्तःकरण शीतल हो गया है एवं जिसकी बुद्धि मोहाच्छन्न नहीं है तथा जो लौकिक विषयों के साथ व्यवहार करता हुआ भी उनमें आसक्त नहीं होता, उसे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookesh sharma (I.F.S) Jammu Collection

लोग 'शान्त' कहते हैं। सम्यक् प्रकार से व्यवहार करते हुए भी जिस पुरुष की बुद्धि आकाश के सदृश निर्विकार रहती है, राग-द्वेष रूप कलंक से लिप्त नहीं होती, उसे 'शान्त' कहा जाता है।

तपस्वियों, विद्वानों, याजकों, नरेशों, बलवानों और गुणियों के समुदाय में शमयुक्त पुरुष की ही विशेष शोभा होती है। जिन गुणशाली महापुरुषों का मन शम में आसक्त हो गया है, उनके चित्त से निर्वृति का उदय होता है, ठीक उसी तरह जैसे चन्द्रमा से चाँदनी प्रकट होती है। जो गुणसमूहों की परमावधि है तथा जो पुरुषार्थ का मुख्य भूषण है, वह श्रीसम्पन्न शम संकटों तथा सम्पूर्ण स्थानों में भी अपने प्रभाव से सुशोभित होता रहता है। रघुनन्दन! जिसका अन्य पुरुष अपहरण नहीं कर सकते, जो पूज्यजनों द्वारा सावधानी के साथ सुरक्षित एवं अमृतस्वरूप है, उस शमरूप उत्कृष्ट साधन का आश्रय लेकर बहुत-से महानुभाव जिस क्रम से परमपद को प्राप्त हो चुके हैं, तुम भी परम पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये उसी क्रम का अनुसरण करो।

तेरहवां सर्ग समाप्त

चौदहवां सर्ग

सत्समागम से सद्गति का कथन

श्री वसिष्ठजी कहते हैं- राघव! (विषय, संदेह, पूर्वपक्ष, सिद्धान्त और प्रयोजनरूप) कारणों के ज्ञाता पुरुष को शास्त्रज्ञान से निर्मल हुई अतएव परम पवित्र बुद्धि द्वारा निरन्तर आत्मचिन्तन करना चाहिये; क्योंकि आत्मविषयक विचार करने से बुद्धि तीव्र होकर परमपद का साक्षात्कार कर लेती है। संसाररूपी महारोग के लिये विचार ही महौषध है। जो अनन्त कामनारूपी पल्लवों से सुशोभित है, ऐसा आपत्तिरूपी वन विचाररूपी आरे से काट दिये जाने पर पुनः अंकुरित नहीं होता। लौकिक दुःख से पार होने के लिये विद्वानों के पास विचार के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। सत्पुरुषों की बुद्धि विचार से अशुभ का परित्याग करके शुभ को प्राप्त होती है। बुद्धिमानों के बल, बुद्धि, सामर्थ्य, कर्तव्य का ज्ञान, क्रिया और उसका फल- ये सभी विचार से ही सफल होते हैं। अतः जो उचित-अनुचित के रहस्योद्घाटन के लिये महान् दीपक के समान है तथा अभीष्ट की सिद्धि करने वाला है, उस उत्कृष्ट विचार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

का आश्रय लेकर संसार-सागर को पार करना चाहिये क्योंकि विशुद्ध विचार रूपी सिंह हृदयस्थित विवेकरूपी कमलों को उखाड़ फेंकने वाले महामोहरूपी गजराजों को विदीर्ण कर डालता है। जो लोग विचार का अभ्युदय करने वाली बुद्धि द्वारा सबके साथ व्यवहार करते हैं, वे निश्चय ही अत्यन्त श्रेष्ठ फलों के भागी होते हैं। सद्विचारपरायण मनुष्य अत्यन्त विस्तृत महान् आपत्तियों से युक्त मोह की परिस्थितियों में उसीप्रकार निमग्न नहीं होता, जैसे सूर्य अन्धकार में नहीं डूबते। जितने क्रूर कर्म, निषिद्धाचरण और कुत्सित मानसिक कष्ट हैं, वे सभी विचारहीनता से ही आविर्भूत होते हैं। जिस अधिकारी पुरुष का मन आशा की परवशता से रहित और विचारयुक्त है, वह पूर्ण चन्द्रमा की भाँति अपने आत्मा में परमानन्द का अनुभव करता है। जब मन में विवेकशीलता का उदय होता है, तब वह सारे विश्व को शीतल एवं सुशोभित करने वाली चन्द्रमा की चाँदनी की भाँति सबको अत्यन्त शीतल और अलंकृत कर देती है। जगत् के सारे पदार्थ तभी तक सत्य की तरह रमणीय प्रतीत होते हैं, जब तक विचार नहीं किया जाता। वस्तुतः उनका कोई अस्तित्व नहीं है, अतः विचार करने पर वे नष्ट हो जाते हैं। जो समस्वरूप, आनन्दमय, अक्षय, अनन्त और अनन्याधीन है, उस कैवल्य पद को तुम विचाररूप महान् वृक्ष का फल समझो। जो चित्त में स्थित होकर उत्तम, अचल स्थिति प्रदान करने वाली है, उस आत्मविचाररूपी महौषधि से युक्त श्रेष्ठपुरुष न तो अप्राप्त की आकांक्षा करता है और न प्राप्त का परित्याग ही। विचारशील पुरुष गयी हुई वस्तु की उपेक्षा कर देता है और प्राप्त वस्तु का शास्त्रानुसार उपयोग करता है। वह मन की प्रतिकूलता में न तो क्षुब्ध होता है और न अनुकूलता में प्रसन्न ही। उस समय जल से परिपूर्ण सागर की तरह उसकी शोभा होती है। इसप्रकार जिन उदाराशय महात्मा योगियों का मन पूर्णकाम हो गया है, वे जीवन्मुक्त होकर इस जगत् में विचरण करते हैं। बुद्धिमान पुरुष को आपत्तिकाल में भी 'मैं कौन हूँ ? यह संसार किसका है?' यों उसके प्रतीकार के लिये प्रयत्नपूर्वक विचार करना चाहिये। जैसे रात्रि में भूतल पर पदार्थों का ज्ञान दीपक से होता है, उसी प्रकार परमात्मस्वरूप में स्थिति प्राप्त करने के लिये वेद-वेदान्त के सिद्धान्तों की स्थितियों का निर्णय विचार द्वारा होता है। विचाररूपी सुन्दर नेत्र अन्धकार में नष्ट नहीं होता, उग्र तेजस्वी सूर्य आदि की ओर देखने पर भी उसकी ज्योति प्रतिहत नहीं होती

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और वह व्यवधानयुक्त पदार्थों को भी देख लेता है। यह विचार-चमत्कृति परमात्ममयी, आदरणीया और परमानन्द की एकमात्र साधिका है; अतः एक क्षण के लिये भी इसका परित्याग नहीं करना चाहिये। जैसे पक जाने के कारण मधुर रस से परिपूर्ण आम का फल सबके लिये रुचिकर होता है, उसी तरह उत्तम विचार से युक्त पुरुष, सामान्य जनों की तो बात ही क्या, महापुरुषों के लिये भी आदरणीय हो जाता है। विचारद्वारा जिनकी बुद्धि विशुद्ध हो गयी है और विचार से ही जिन्हें ज्ञानमार्ग में जाने की युक्ति ज्ञात है, वे मनुष्य नाना प्रकार के दुःखरूप गड्डों में बार-बार नहीं गिरते अर्थात् आवागमन से मुक्त हो जाते हैं। सैकड़ों अनर्थों के संयोग से जिसका शरीर जर्जर हो गया है तथा जो रोगग्रस्त है, वह वैसा रुदन नहीं करता, जैसा वह मूर्ख विलाप करता है, जिसने विचारहीनता से अपने आत्मा का हनन कर दिया है। विचारहीनता सारे अनर्थों का निजी निवासस्थान है। सभी सत्पुरुष उसका तिरस्कार करते हैं और वह सारी दुर्गतियों की चरम सीमा है, अतः उसका परित्याग कर देना चाहिये। विचारपूर्वक स्वयं ही अपनी बुद्धि द्वारा अपने मन को वश में करके मोहमय संसारसागर से अपने मनरूपी मृग का उद्धार करना चाहिये। मैं कौन हूँ और यह संसार नामक दोष मेरे निकट कैसे आ गया-इस विषय में न्यायपूर्वक किया गया अनुसंधान 'विचार' कहलाता है। रघुनन्दन! इस जगत् में सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग की बुद्धि से सम्पन्न पुरुषों को विचार के बिना उत्तम तत्व का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। विचार से ही तत्व का ज्ञान होता है, तत्वज्ञान से मन की निश्चलता प्राप्त होती है और मन के शान्त हो जाने से सम्पूर्ण दुःखों का सर्वथा विनाश हो जाता है। भूतल पर सभी लोग स्पष्ट विचारदृष्टि से ही समस्त कर्मों की सफलता लाभ करते हैं तथा उत्तम परमात्म साक्षात्कारता भी विचार से ही उपलब्ध होती है, इसलिये श्रीराम! शमादि साधनसम्पन्न तुम्हें उपर्युक्त विचारशीलता रुचिकर होनी चाहिये।

परतप राम! संतोष ही परम श्रेय है और संतोष परमसुख भी कहा जाता है। संतोषयुक्त पुरुष परमविश्राम को प्राप्त होता है। जो संतोषरूपी ऐश्वर्य के सुख से सम्पन्न हैं तथा जिनका चित्त निरन्तर विश्रामपूर्ण रहता है ऐसे शान्त पुरुषों को विशाल साम्राज्य भी पुराने घास के टुकड़े के समान प्रतीत होता है। श्रीराम! संतोषयुक्त बुद्धि संसार की विषम परिस्थितियों में भी न तो उद्विग्न होती है

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

और न कभी उसका विनाश ही होता है। जो शान्त पुरुष संतोषामृत के पान से पूर्णतः तृप्त हो चुके हैं, उनके लिये यह अपरिमित भोग सम्पत्ति विष सी जान पड़ती है। रागादि दोषों का विनाशक तथा अत्यन्त मधुर आस्वाद से युक्त संतोष जैसा सुखद होता है, वैसा सुख ये अमृत रस की लहरियाँ नहीं दे सकतीं। जो अप्राप्त वस्तु की आकांक्षा का परित्याग करके प्राप्त हुई वस्तु में समभाव रखने वाला है तथा जिसमें हर्ष–शोक के विकार परिलक्षित नहीं होते, वह मनुष्य इस लोक में संतुष्ट कहा जाता है। जब तक मन आत्मा के द्वारा आत्मा में संतुष्ट नहीं हो जाता, तब तक उस मनरूपी गड्डे से उसी प्रकार आपत्तियाँ उद्धृत होती रहती हैं, जैसे गड्डे से लताएँ। संतोष से शीतल हुआ मन विशुद्ध विज्ञान की दृष्टियों से अत्यन्त विकास को प्राप्त होता है– ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य की किरणों के सम्पर्क से कमल विकसित हो जाता है। जैसे मलिन दर्पण में मुख की छाया नहीं दीखती, उसी प्रकार आशा की परवशता से व्याकुल एवं संतोषरहित चित्त में ज्ञान का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। जिसका मन शारीरिक तथा मानसिक क्लेशों से मुक्त एवं संतुष्ट है, वह प्राणी दरिद्र होते हुए भी सच्चे साम्राज्य सुख का उपभोग करता है। अपने आत्मा में आत्मा से ही स्वयं सम्यक् प्रकार से निरतिशय पूर्णानन्द का आश्रय लेकर पुरुषार्थ द्वारा प्रयत्नपूर्वक सभी विषयों में तृष्णा का परित्याग कर देना चाहिये। चन्द्रमा की भाँति संतोषामृत से परिपूर्ण मनुष्य का मन शान्त एवं शीतल बुद्धि द्वारा स्वयं ही शाश्वती स्थिरता को प्राप्त हो जाता है। जब संतोष से सम्पन्न पुरुष अपने आत्मा में आत्मा द्वारा स्वस्थरूप से स्थित हो जाता है, उस समय उसकी सारी मानसिक व्यथाएँ उसी प्रकार अपने–आप शीघ्र ही समूल विनष्ट हो जाती हैं, जैसे वर्षा–ऋतु में धूल शान्त हो जाती है। श्रीराम! जिसकी वृत्ति सदा शीतल और कलंक से सर्वथा रहित है, वह पुरुष अपनी उस शुद्ध वृत्ति द्वारा चन्द्रमा की भाँति पूर्णतया शोभित होता है। रघुनन्दन! इस जगत् में जो पुरुष श्रेष्ठ गुणी पुरुषों द्वारा अभिमत समता से सुशोभित है, उस विशुद्ध पुरुष को आकाशचारी देवता और महामुनि भी प्रणाम करते हैं।

महाबुद्धिमान् राम! इस संसार में श्रेष्ठ संत–समागम मनुष्यों का संसार–सागर से उबारने में सर्वत्र विशेष रूप से उपकार करता है। जो महात्मा पुरुष सत्संगतिरूपी वृक्ष से उत्पन्न हुए विवेक नामक निर्मल पुष्प की रक्षा करते

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हैं, वे मोक्ष-फलरूपी सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं। जो आपत्तिरूपी कमलिनी के लिये हिम और मोहरूपी कुहरे के लिये वायु के समान है, वह उत्तम संत-समागम ही इस जगत् में सर्वोत्कृष्ट है। श्रीराम! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि संत-समागम विशेषरूप से बुद्धिवर्धक, अज्ञानरूपी वृक्ष का उच्छेदक और मानसिक व्यथाओं को दूर भगाने वाला है। सत्संग से प्राप्त हुई दिव्य विभूतियाँ ऐसा परम उत्तम निर्वाण-सुख प्रदान करती हैं, जो सतत वर्धनशील, अविनाशी और बाधारहित होता है। अतएव अत्यन्त कष्टदायिनी दशा में पड़कर विवशता को प्राप्त हुए मनुष्यों को भी थोड़े समय के लिये भी सत्संगति का परित्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि लोक में सत्संगति सन्मार्ग को प्रकाशित करने वाली और हृदयान्धकार को दूर करने के लिये ज्ञानरूपी सूर्य की प्रभा है। जिसने सत्संगतिरूपी गंगा में, जो शीतल एवं निर्मल है, स्नान कर लिया, उसे दान, तीर्थ, तप और यज्ञों से क्या लेना है अर्थात् सत्संगति इन सबसे बढ़कर है। जो रागशून्य और संशय रहित हैं तथा जिनकी चिज्जंगग्रन्थियाँ विनष्ट हो चुकी हैं, ऐसे संत पुरुष यदि लोक में विद्यमान हैं तो तप एवं तीर्थों के संग्रह से क्या लाभ ? अर्थात् वह फल तो उन संतों की संगति से ही प्राप्त हो सकता है। इसलिये जिनकी चिज्जंगग्रन्थियों का विनाश हो गया है एवं जो ब्रह्मज्ञानी हैं, उन सर्वसम्मत संतों की सभी उपायों द्वारा भलीभाँति सेवा करनी चाहिये; क्योंकि वे भवसागर से पार होने के लिये मेघस्वरूप संतों को अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं, वे स्वयं उस नरकाग्नि की सूखी लकड़ी बन जाते हैं।

संतोष, सत्संगति, विचार और शम-ये ही चारों मनुष्यों के लिये भवसागर से तरने के साधन हैं। इनमें संतोष परम लाभ है। सत्संगति परम गति है। विचार उत्तम ज्ञान है और शम परमोत्कृष्ट सुख है। ये चारों संसार का समूल विनाश करने के लिये विशुद्ध उपाय हैं। जिन्होंने इनका भलीभाँति सेवन किया, वे मोह जल से परिपूर्ण भवसागर से पार हो गये। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राम! इन चारों साधनों में से विशुद्ध प्रकाश वाले एक ही साधन का अभ्यास हो जाने पर शेष तीनों भी अवश्य अभ्यस्त हो जाते हैं; क्योंकि इनमें से एक-एक भी क्रमशः इन चारों की जन्मभूमि है। अतः सबकी सिद्धि के लिये यत्नपूर्वक एक का तो पूर्णरूप से आश्रय लेना ही चाहिये। जैसे प्रशान्त सागर में जलयान स्वच्छन्द गति से चलते हैं, उसी प्रकार शम द्वारा निर्मल हुए हृदय में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सत्समागम, संतोष और विचार उत्तम धारणापूर्वक प्रवृत्त होते हैं। जो प्राणी विचार, संतोष, शम और सत्समागम से सम्पन्न है, उसे दिव्य ज्ञान सम्पत्तियाँ उपलब्ध हो जाती हैं- ठीक उसी तरह, जैसे कल्पवृक्ष का आश्रय लेने वाले पुरुष को लौकिक सम्पत्तियाँ सुलभ होती हैं। पूर्ण चन्द्रमा में परिलक्षित हुए सौन्दर्य आदि गुणों की तरह विचार, शम, सत्समागम और संतोषयुक्त मानव में प्रसाद आदि गुण प्रादुर्भूत हो जाते हैं। जैसे श्रेष्ठ मन्त्रिगणों से युक्त राजा के पास विजयलक्ष्मी उपस्थित होती है, उसी तरह जिस पुरुष की बुद्धि सत्संग, संतोष, शम और विचार से युक्त होने के कारण उत्तम हो गयी है, उसे दिव्य ज्ञान-सम्पत्ति सुलभ हो जाती है। इसलिये रघुनन्दन! मनुष्य को चाहिये कि वह पुरुषार्थ से मन को वश में करके इनमें से एक गुण का नित्य यत्नपूर्वक उपार्जन करे; क्योंकि जब तक मनुष्य परम पुरुषार्थ के आश्रय से अपने चित्तरूपी गजराज को जीतकर हृदय में एक गुण भी धारण नहीं कर लेता, तब तक उत्तम गति की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिसके चित्त में उत्तम फलदायक एक ही गुण सुदृण हो गया है, उसके सारे दोष शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि एक ही गुण की विशेष वृद्धि होने पर दोषों पर विजय प्रदान करने वाले अनेक गुणों की वृद्धि होती है और एक दोष के अधिक बढ़ जाने पर बहुत से गुण विनाशक दोष बढ़ जाते हैं।

चौदहवां सर्ग समाप्त

पन्द्रहवां सर्ग

सदाचार का वर्णन

श्री वसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! जिसका हृदय पूर्वोक्त प्रकार के विवेक से युक्त है, वही इस जगत में महान् है और वही ज्ञानोपदेश सुनने का योग्य अधिकारी है-ठीक उसी तरह जैसे राजा नीति-शास्त्र के श्रवण का उत्तम पात्र होता है। जैसे मेघजाल से रहित शरत्काल का आकाश चन्द्रमा के लिये योग्य होता है, उसी तरह जो मूर्खों के संग से रहित एवं महान् आशयवाला है, वह निर्मल पुरुष विशुद्ध विचार का योग्य भाजन है। श्रीराम! तुम इस समग्र गुणलक्ष्मी से सम्पन्न हो; अतः मैं आगे जिसका वर्णन करूँगा, उस मन के मोह को हरने वाले वाक्य को सुनो। जिसका पुण्यरूपी कल्पवृक्ष फलों के भार से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

अत्यन्त झुका हुआ खड़ा है, वही पुरुष मुक्ति प्राप्ति के निमित्त इसे श्रवण करने के लिये उद्योग करता है। अतः उपर्युक्त गुणसम्पन्न पुरुष ही कल्याण-प्राप्ति के लिये पवित्र, उदार तथा पराये को ज्ञान प्रदान करने वाले वचनों को सुनने का अधिकारी होता है।

यह संहिता मोक्ष-साधन की प्रतिपादिका, सारभूत अर्थों से परिपूर्ण और मोक्षदायिनी है। इसमें बत्तीस हजार श्लोक बतलाये जाते हैं। जैसे गाढ़ निद्रा के वशीभूत हुए पुरुष के सामने दीपक जला दिये जाने पर यद्यपि उसे प्रकाश की कामना नहीं रहती तो भी प्रकाश होता है, उसी प्रकार इस संहिता के परिशीलन से इच्छा न रहने पर भी निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है। यह संहिता स्वयं सम्यक् प्रकारसे परिशीलन करके जानी गयी हो अथवा अन्य द्वारा वर्णन किये जाते समय सुनी गयी हो, तो भी पाप-ताप की शान्ति द्वारा सुख की हेतु भूता देवनदी गंगा के समान यह अज्ञान के अपशम द्वारा तुरंत सुख प्रदान करती है। जैसे रस्सी का पूर्ण ज्ञान हो जाने से उसमें उत्पन्न हुई सर्पभ्रान्ति विनष्ट हो जाती है, उसी तरह इस संहिता के सम्यक् परिशीलन से संसार दुःख शान्त हो जाता है। इस संहिता में पृथक्-पृथक् रचे गये छः प्रकरण हैं, जो युक्तियुक्त अर्थवाले वाक्यों से युक्त और सार-सार दृष्टान्तों से भरी हुई सूक्तियों से समन्वित हैं। उनमें पहला प्रकरण 'वैराग्य' नाम से कहा गया है, जिसके अध्ययन से उसी प्रकार विराग की वृद्धि होती है जैसे मरुस्थल में भी जल के सिंचन से वृक्ष बढ़ता है। जैसे मणि के भलीभाँति मार्जित किये जाने के कारण उत्पन्न हुए प्रकाश से उसमें निर्मलता प्रकट हो जाती है, उसीतरह डेढ़ हजार श्लोकों से युक्त इस वैराग्यप्रकरण का विचार करनेसे विषयों के दोषों का परिज्ञान होने के कारण उत्पन्न हुए विवेक के प्रकाश से हृदय में शुद्धता का उदय हो जाता है। तदनन्तर 'मुमुक्षुव्यवहार' नामक प्रकरण की रचना की गयी है। इस प्रकरण में केवल एक हजार श्लोक हैं। युक्तियों से भरा होने के कारण यह अत्यन्त सुन्दर है और इसमें मुमुक्षु पुरुषों के स्वभाव का वर्णन किया गया है। इसके बाद तीसरा 'उत्पत्ति प्रकरण' आता है, जो दृष्टान्त और आख्यायिकाओं से परिपूर्ण तथा विज्ञान का प्रतिपादक है। उसमें सात हजार श्लोक हैं। इस प्रकरण में 'अहं' और 'त्वं' जिसका स्वरूप है एवं जो वास्तव में उत्पन्न न होकर भी प्रकट हुई सी प्रतीत होती है, द्रष्टा और दृश्य के भेद से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

समन्वित उस सांसारिक सम्पत्ति का वर्णन किया गया है। इस प्रकरण के सुनने पर श्रोता इस सम्पूर्ण जगत् को अपने हृदय में ऐसा समझता है कि यह 'त्वं' और 'अहं' के विस्तार से युक्त, लोक, पर्वत और आकाश से समन्वित, संकल्पमय नगर के तुल्य क्षणध्वंसी, स्वप्न में प्राप्त हुए पदार्थों के समान सत्तारहित, मनोराज्य की तरह विस्तार वाला, अर्थ शून्य होने के कारण गन्धर्व नगर के सदृश, दो चन्द्रमाओं की भ्रान्ति के समान मृगतृष्णा में जलभ्रान्ति की तरह, नौका के चलने से पर्वतादि के संचलनभ्रम की भाँति चंचल और यथार्थ लाभ से रहित है तथा जैसे सुवर्ण में कंकण, जल में तरंग और आकाश में नीलिमा असत् है, वस्तुतः ये क्रमशः अपने-अपने अधिष्ठान के ही अंग हैं, उसी तरह यह जगत्-असत् होकर भी सत्-रूप से उत्पन्न हुआ है। परमार्थ-दृष्टि से तो यह उस विज्ञानरूपी शरत्काल के आकाश के समान है, जिसका अज्ञानरूपी कुहरा पूर्णरूप से शान्त हो गया है।

तत्पश्चात् चौथे 'स्थितिप्रकरण' की अवतारणा की गयी है। इस प्रकरण में तीन हजार श्लोक हैं और यह व्याख्यान और आख्यायिकाओं से भरा हुआ है। ब्रह्म ही द्रष्टा और दृश्य भाव को स्वीकार करके इस प्रकार जगत्-रूप एवं अहरूप से स्थिति को प्राप्त हुआ है-ऐसा इस प्रकरण में कहा गया है। इसी तरह यह जगद्भ्रम जो दसों दिशाओं के मण्डल की विशालता से देदीप्यमानहै और चिरकाल से वृद्धि को प्राप्त होता आया है, यह विषय भी उस प्रकरण में समझाया गया है।

तदुपरान्त पाँचवाँ 'उपशान्ति' प्रकरण कहा गया है। इसमें पाँच हजार श्लोक हैं। यह परम पावन तथा विविध युक्तियों सेयुक्त होने के कारण अत्यन्त सुन्दर है। इस प्रकरण में 'यह जगत् है, यह मैं हूँ, यह तुम हो और यह वह है-यों उत्पन्न हुई भ्रान्ति किसप्रकार पूर्णरूप से शान्त होती है' यह विषय बहुत से श्लोकों द्वारा बतलाया गया है। उपशम प्रकरण का श्रवण करने से यह संसार प्रायः शान्त हो जाता है; क्योंकि जिसका भ्रान्तस्वरूप सम्यक् प्रकरण से शान्त हो गया है-ऐसी संसृति का शतांशमात्र अवशिष्ट रह जाता है।

तदनन्तर 'निर्वाण' नामक छठे प्रकरण का वर्णन किया गया है। उसमें शेष साढ़े चौदह हजार श्लोक हैं। यह प्रकरण ज्ञानरूपी महान् पुरुषार्थ का देने वाला है। उसे जान लेने पर सारी कल्पनाएँ शान्त हो जाती हैं और परमात्मा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

की प्राप्तिरूप परम कल्याण हस्तगत हो जाता है। अधिक क्या, उक्त प्रकरण के ज्ञाता पुरुष के सम्पूर्ण सांसारिक भ्रम मिट जाते हैं। वह निर्विषय चैतन्य प्रकाशरूप, विज्ञानस्वरूप, आधि-व्याधियों से रहित और आकाशमण्डल के समान निर्विकार हो जाता है। उसकी सभी जगद्-यात्राएँ शान्त हो जाती हैं। और वह कृतकृत्य होने के कारण स्वस्थ हो जाता है। वह प्रकृति एवं प्रकृति के कार्यभूत सम्पूर्ण विषयों में कर्ता के अभिमान और ग्रहण-त्याग की दृष्टि से रहित हो जाता है, इसलिये वह देहधारी होते हुए विदेह सा एवं संसारी होने पर भी असंसारी-सा प्रतीत होता है। उसका अहंकाररूप पिशाच नष्ट हो जाता है और वह देहयुक्त होते हुए भी शरीर रहित सा रहता है। चैतन्यघन परमात्मा अपने अंदर कल्पित आकाश में प्रत्येक परमाणु में सहस्त्रों लोकों की रचना करके उन्हें धारण करता है और स्वयं उन्हें देखता है।

श्रीराम! जैसे उपजाऊ खेत में उचित समय पर बोये गये उत्तम बीज से अवश्य ही श्रेष्ठफल प्राप्त होता है, उसी तरह इस संहिता को हृदयंगम कर लेने से परमार्थविषयक ज्ञान सुलभ हो जाता है। जैसे प्रातःकाल होने पर प्रकाश का होना अवश्यम्भावी है, वैसे ही इस संहिता को चित्त में धारण कर लेने मात्र से निश्चय ही उत्तम विवेक की उपलब्धि होगी। विद्वानों के मुख से इसका श्रवण करके अथवा स्वयं ही समझकर धीरे-धीरे विचार करने से जब बुद्धि सुदृढ़ रूप से संस्कृत हो जाती है, तब पहले हृदय में सभास्थान को विभूषित करने वाली ऊँची लता के समान संस्कारयुक्त विशुद्ध वाणी का उदय होता है। फिर महान् गुणों से सुशोभित वह श्रेष्ठ चतुरता प्रकट होती है, जिससे राजा तथा देवगण भी प्रसन्न होते हैं। जैसे सुन्दर नेत्रों से युक्त पुरुष रात्रि के समय दीपक हाथ में लेकर सभी पदार्थों को देख लेता है, उसी तरह बुद्धिमान् मनुष्य सर्वत्र पूर्वापर का ज्ञाता हो जाता है। इस ग्रन्थ के अभ्यास से जिसका अज्ञानान्धकाररूप आवरण फट गया है अतएव जो पदार्थों के प्रविभाजन में समर्थ हो गयी है, ऐसी प्रज्ञा कालिमारहित रत्नदीपक की लौ के समान उत्कृष्ट प्रकाशवाली हो जाती है। प्रस्तुत ग्रन्थ का ज्ञाता पुरुष चाहे भय हेतुओं के सम्मुख ही क्यों न खड़ा हो, फिर भी जैसे बाण बड़ी-बड़ी चट्टानों को विदीर्ण नहीं कर सकते, उसी तरह भयंकर सांसारिक भय उसके हृदय को पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। इस ग्रन्थ के अध्ययन से जन्म में प्रारब्ध की और कर्म में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (LPS) Jammu Collection

पुरुषार्थ की कारणत कैसे होगी ? इस प्रकार के संशय-समुदाय दिन में अन्धकार की भाँति विलीन हो जाते हैं। इस ग्रन्थ का विचार करने वाले पुरुष के हृदय में समुद्र की-सी गम्भीरता का, सुमेरुगिरि की सी धीरता का और चन्द्रमा की-सी शीतलता का उदय हो जाता है। जब हृदयाकाश में शमा के आलोक से विभूषित विवेकरूपी निर्मल सूर्य का उदय हो जाता है, तब निश्चय ही अनर्थसूचक कामादि धूमकेतु अपना उदय नहीं ले पाते। धैर्य की पराकाष्ठा को प्राप्त हुई जो बुद्धि धर्मरूपी दीवाल में गाढ़रूप से संलग्न हो गयी है, उसे मानसिक चिन्ताएँ विचलित नहीं कर सकतीं, जैसे वायु चित्रलिखित लता को नहीं कँपा सकती। तत्त्वज्ञ पुरुष विषयासक्तिरूप गड्डे में नहीं गिरता; क्योंकि जिसे उत्तममार्ग का ज्ञान है, वह भला गड्डे की ओर क्यों दौड़ेगा। सत्-शास्त्रों के परिशीलन से जिनका चरित्र उत्तम हो गया है, उनकी बुद्धि यथायोग्य प्राप्त शास्त्रानुकूल कर्म में ही रमण करती है-ठीक उसी तरह, जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अन्तःपुर के आँगन में ही प्रसन्न रहती है। जिस पुरुष का अन्तःकरण मोक्षसाधन के अनुभव से शुद्ध हो गया है, उसे भोग समुदाय न तो कभी पीड़ित ही करते हैं और न आनन्द ही देते हैं। वह अनिष्ट कार्यों के प्राप्त होने पर न तो द्वेष करता है और न इष्टकार्यों के नष्ट हो जाने पर उनकी आकांक्षा ही करता है, बल्कि वह कार्य फलादि के स्वरूप का ज्ञाता होकर भी जड़वृक्ष की भाँति अनभिज्ञ का-सा आचरण करता है। वह साधारण जन की तरह समयानुकूल प्राप्त हुए पदार्थों से ही निर्वाह करता हुआ देखा जाता है-यहाँतक कि अथवा अनिष्ट फल के प्राप्त होने पर भी उसके हृदय में स्वल्पमात्र भी विकार नहीं होता। राघव! इस सम्पूर्ण शास्त्र को बँचवाकर और समझकर फिर इस पर विचार करो। यह कथनमात्र नहीं है, बल्कि देवों के वरदान शाप की भाँति इसका फल अवश्य प्राप्त होता है। यह सुन्दर शास्त्र उत्तम ज्ञान से युक्त, अलंकार से विभूषित, काव्यस्वरूप और सरस है। इसमें दृष्टान्तों द्वारा विषय का प्रतिपादन किया गया है। जिसे थोड़ा भी पद-पदार्थ का ज्ञान है, वह स्वयं ही उसे समझ लेता है; किंतु जो स्वयं इसे जानने में असमर्थ है, उसे पण्डित के मुख से सुनना चाहिये। जैसे संकल्प द्वारा निर्मित नगरमें पुरुष को हर्ष-विषाद बाधा नहीं पहुँचाते, उसीतरह संसार-भ्रम का परिज्ञान हो जानेपर यह भी कष्टदायक नहीं होता। जैसे यह चित्रलिखित सर्प है, वास्तविक सर्प नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है-ऐसा जान लेने पर वह सर्पजनित भय का दाता नहीं होता, उसी तरह इस दृश्य संसाररूपी सर्प का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर यह भी सुख अथवा दुःख नहीं देता। जैसे चित्रलिखित सर्प का पूर्ण ज्ञान हो जाने पर उसका सर्पत्व ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार संसार का वास्तविक स्वरूप ज्ञात हो जाने पर यह स्थित रहते हुए भी शान्त हो जाता है अर्थात् इसका प्रभाव नहीं पड़ता।

रघुनन्दन! यह शास्त्र ज्ञान का विस्तार करने वाला और बुद्धि द्वारा ग्रहण किये जाने वाले सारभूत पदार्थों की परमावधि है। अब मैं इसका वर्णन करता हूँ, सुनो। पहले जिस विधि से यह शास्त्र श्रवण किया जाता है तथा जिस परिभाषा से इसका यथार्थ रूप से विचार करनेका विधान है, वह अवतरणि का श्रवण करो। जिस देखे हुए पदार्थ के सादृश्य से अनुभव में न आये हुए पदार्थ का ज्ञान कराया जाता है, बोधोपकार रूप फल प्रदान करने वाले उस सादृश्य को विद्वान् लोग दृष्टान्त कहते हैं। श्रीराम! जैसे रात्रि में दीपक के बिना घर में रखे हुए बर्तन आदि सामग्रियों का ज्ञान नहीं हो सकता, उसी तरह दृष्टान्त के बिना अपूर्वअर्थ का बोध होना असम्भव है। उपमान और उपमेय के जिस कार्य-कारणभाव का प्रतिपादन किया गया है, वह परब्रह्म को छोड़कर शेष सभी पदार्थों के साथ लागू होता है। मैं यहाँ ब्रह्मोपदेश के प्रसंग में तुम से जो दृष्टान्त कह रहा हूँ, उसमें एक देश के साधर्म्य से प्रकृतार्थ का परिग्रहण किया जाता है। यहाँ ब्रह्मतत्त्व का बोध कराने के लिये जो-जो दृष्टान्त दिया जाता है, वह स्वप्न में प्रतीत होने वाले पदार्थों की तरह मिथ्याभूत जगत् के अन्तर्गत ही है-ऐसा समझना चाहिये। उत्पत्ति के पूर्व और विनाश के उत्तरकाल में जैसे यह जगत् अभावग्रस्त था, उसी तरह वर्तमान काल में भी विचार करने पर अवस्तु भूत ही है; अतः मिथ्यात्व के कारण जाग्रत् और स्वप्न-इन दोनों की समानता है। यह प्रसिद्ध बात बालकों तक की समझ में आ सकती है। मोक्षसाधनों के निर्माता ग्रन्थकर्ता महर्षि वाल्मीकि ने दूसरे भी जिन ग्रन्थों की रचना की है, उनमें भी ज्ञातव्य वस्तु का ज्ञान कराने के लिये केवल यही व्यवस्था रक्खी है कि दृष्टान्तों के जिस अंश में समता सम्भव हो, उसी अंश के साथ समता रक्खी जाय। चूँकि यह जगत् स्वप्न, संकल्प और ध्यान से कल्पित नगर के समान मिथ्या है, इसी कारण यहाँ वे ही दृष्टान्त दिये गये हैं, दूसरे नहीं। ज्ञान प्राप्ति के लिये कारण रहित ब्रह्म में जो कारणता की उपमा दी जाती है, वहाँ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उपमाप्रयुक्त पदार्थों के साथ सर्वांश में साधर्म्य सम्भव नहीं हो सकता। अतः विवाद रहित बुद्धिमान् पुरुष को ज्ञान प्राप्ति के लिये उपमान से उपमेय का एक अंश में ही साधर्म्य स्वीकार करना चाहिये। पदार्थों के अवलोकन में दीपक के प्रकाशमात्र के अतिरिक्त उसके पात्र, तेल और बत्ती आदि किसी का भी उपयोग नहीं होता। केवल एक देश के सादृश्य से उपमान उपमेय का ज्ञान करा देता है। जैसे 'मणिर्दीप इव' इस दृष्टान्त में उपमान दीपक केवल प्रकाश से उपमेय मणि का बोधक होता है। दृष्टान्त के अंशमात्र से ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान हो जाने पर 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के अर्थ का निश्चय उपादेयरूप से ग्रहण करना चाहिये। कुतार्किकता का आश्रय लेकर अनुभव विरुद्ध अपवित्र विकल्पों द्वारा प्रबुद्धता का नाश नहीं करना चाहिये।

श्रीराम! दृष्टान्त द्वारा अद्वितीय आत्मज्ञान स्वरूप शास्त्रार्थ के ज्ञान से महावाक्यार्थ भूत ब्रह्मस्वरूप से सम्यक् प्रकार से सिद्ध हुई शान्ति को ही निर्वाण कहा जाता है। इसलिये दृष्टान्त और दार्ष्टान्त के विविध विकल्पों के पचड़े से कोई प्रयोजन नहीं है। किंतु जिस किसी भी युक्ति से महावाक्यार्थ का भलीभाँति आश्रय लेना चाहिये। राघव! तुम शान्ति को ही परम श्रेय जानो, अतः उसकी प्राप्ति के लिये यत्नशील हो जाओ; क्योंकि शान्ति और शास्त्रज्ञान से विभूषित विचारपरायण पुरुष को दृष्टान्त एवं शास्त्रोपदेश, सौजन्य, उत्तम बुद्धि और शास्त्रज्ञ पुरुषों के समागम द्वारा यत्न का आश्रय लेकर उत्तम परमपद को प्राप्त करना चाहिये। विद्वान् पुरुष को तब तक विचार करते रहना चाहिये, जब तक पुनः नष्ट न होने वाली तुर्यपद नामक शान्तिमयी आत्मविश्रान्ति प्राप्त न हो जाय। जो पुरुष तुर्यपद नामक शान्ति से युक्त होकर भवसागर से पार हो गया है, वह गृहस्थ हो या संन्यासी, उसका जीने या न जीने से अथवा कर्म करने या न करने से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। जैसे सम्पूर्ण जलों का अधिष्ठान समुद्र है, उसी तरह सारे प्रमाणों की सत्ता का प्रमाण एकमात्र प्रत्यक्ष ही है; अतः अब तुम उसके विषय में श्रवण करो। श्रेष्ठ पुरुष सारी इन्द्रियों के सारभूत ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं। जिस इन्द्रिय के प्रति जो ज्ञान सिद्ध होता है, वही प्रत्यक्ष कहा जाता है। अनुभूति, वेदन और प्रतिपत्ति के नामानुसार इस शास्त्र में उसी का प्रत्यक्ष नाम रक्खा गया है। वही हमलोगों का जीव है, वही संवित् है, वही 'अहंता' की प्रतीति का विषय भूत साक्षी पुरुष है। वह जब संवित् के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सहयोग से उदित होता है, तब उसे पदार्थ कहा जाता है। जैसे जल तरंग आदि के रूप में दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार वह परमात्मा संकल्प-विकल्प आदि नाना प्रकार के भ्रमों के कारण जगद्रूप से प्रकाशित होता है। सृष्टि के पूर्व जो कारणरहित था, वही सृष्टि के आरम्भ में सृष्टि लीला वश स्वयं ही अपने में स्फुरित होकर प्रत्यक्ष कारण हुआ। जीव का अज्ञानजनित कारण यद्यपि असत् है, तथापि वह सत् सा प्रतीत होता है। वही इस प्रकृति में जगद्रूप से व्यक्त हुआ है। विचार तो स्वयं ही स्वकर्मानुसार प्राप्त हुए अपने शरीर का नाश करके शीघ्र ही महान् परमपद को प्रकट कर देता है। विचारवान् पुरुष जब परमात्मा को प्राप्त कर लेता है, तब उसका विचार भी उसी में विलीन हो जाता है,उस समय वर्णनातीत केवल परमात्मा ही अवशिष्ट रह जाता है।

इस प्रकार प्रपंच का अभाव हो जाने के कारण अपने बुद्धि, इन्द्रिय और कर्मों द्वारा मन के इच्छारहित अतएव शान्त हो जाने पर उसका न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न न करने से ही। फिर तो जैसे संचालक के द्वारा बिना चलाया हुआ यंत्र काम नहीं देता, उसी तरह इच्छारहित मन के शान्त हो जाने पर कर्मेन्द्रियाँ कर्म आदि में प्रवृत्त ही नहीं होतीं। बाह्य इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण एवं मन द्वारा विषयानुसंधानरूप पदार्थों से समाकुल यह जगत् विचार के अन्तर्गत विद्यमान है-ठीक उसी तरह, जैसे स्पन्दन वायु के भीतर ही होता है। शुद्ध सर्वात्मविषयक विचार जिस प्रकार कर्मानुसार भोग के लिये प्रकट होता है, तदनुरूप ही वह दिशा, काल तथा बाह्य एवं आन्तर पदार्थों के रूप में विस्तृतरूप से शोभित होता है। वह विचार शरीर आदि में दृश्यताभास को देखकर 'यही मेरा स्वरूप है' यों मोहवश धारणा करके स्थित है। उसको अपना रूप जहाँ, जैसे और जिस प्रकार का प्रतीत होता है, वह वैसा ही हो जाता है। वह सर्वात्मा जहाँ जिस प्रकार अविर्भूत होता है, वहाँ वैसे ही तत्काल स्थिर हो जाता है और उसे अपना ही स्वरूप मानकर सुशोभित होता है। सर्वात्मकता के कारण द्रष्टा में दृश्यत्व का आरोप होता है। वह दृश्यत्व द्रष्टा की उपस्थिति में ही सम्भव है, अन्यथा दृश्यता भी वास्तविक नहीं है। अतः प्रत्यक्ष ही कारण रहित अद्वितीय ब्रह्मरूप से सिद्ध हुआ स्थित है। वही सभी प्रमाणों का निर्माता हैं; क्योंकि अनुमान आदि प्रमाण प्रत्यक्षपूर्वक होने के कारण उसी के अंश हैं। साधु स्वभाव राम! अपने कर्म मात्र को दैव-प्रारब्ध मानकर उसकी उपासना

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करने वाला इन्द्रियजयी पुरुष उस दैव शब्दार्थ अर्थात् प्रारब्ध को दूर हटाकर अपने पुरुषार्थ द्वारा उस परम पद को अपने भीतर ही प्राप्त करता है।

रघुनन्दन! पहले संत-समागमरूपी युक्ति के द्वारा बलपूर्वक अपनी बुद्धि को बढ़ाना उचित है। तत्पश्चात् महापुरुषों के लक्षणों के अनुकरण से अपने में महापुरुषता लानी चाहिये। इस जगत् में जो-जो पुरुष जिस-जिस गुण से विशेष रूप से सम्पन्न है, वह उसी गुण के द्वारा विशिष्ट समझा जाता है; अतः शीघ्र ही उस पुरुष से वह गुण प्राप्त करके अपनी बुद्धि की वृद्धि करनी चाहिये। जैसे कमल से सरोवर और सरोवर से कमल परस्पर उन्नति लाभ करते हैं, उसीतरह ज्ञान से शमआदि गुण और शमआदि गुणों से ज्ञान-ये परस्पर वृद्धिगत होते रहते हैं। सत्पुरुषों के सदाचरण से ज्ञान की और ज्ञान से सत्पुरुषों के आचरण की वृद्धि होती है। यों ज्ञान और सत्पुरुषों के आचरण परस्पर एक-दूसरे के सहयोग से बढ़ते रहते हैं। तात! जब तक इस संसार में ज्ञान और सदाचार का समरूप से अभ्यास नहीं किया जाता, तब तक पुरुष को इन दोनों में से एक की भी सिद्धि नहीं होती। रघुनन्दन! जिसप्रकार मैंने सदाचार के क्रम का वर्णन किया है, उसीतरह आगे ज्ञानक्रम का भलीभाँति उपदेश करूँगा। यह सत्-शास्त्र कीर्ति कारक, आयुवर्धक और परम पुरुषार्थरूप फल प्रदान करने वाला है; अतः बुद्धिमान् पुरुष को इस शास्त्र के ज्ञान से सम्पन्न आप्त पुरुष से इसका श्रवण करना चाहिये।

पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त

मुमुक्षु व्यवहार-प्रकरण सम्पूर्ण

अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत्।
प्रयत्नाच्चित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थसंग्रहः।।

(मुमुक्षु प्रकरण से)

'अशुभ कर्मों में लगे हुए मन को वहाँ से हटाकर प्रयत्नपूर्वक शुभ कर्मों में लगाना चाहिये। यह सब शास्त्रों के सार का संग्रह है।'

•••

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सचित्र
योगवासिष्ठ महारामायण

प्रथम खण्ड

उत्पत्ति प्रकरण

यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च।
अस्तं गतं स्थितं व्योम जीवन्मुक्तः स उच्यते।।

(उत्पत्ति प्रकरण से)

'यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी जिस पुरुष की दृष्टि में यह जगत ज्यों-का-त्यों बना हुआ ही विलीन हो जाता है और आकाश के समान शून्य प्रतीत होने लगता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है।'

•••

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

यह समस्त जगत वस्तुतः भ्रान्ति से ही जगद्रूप दीखता है। यथार्थ तत्त्व का ज्ञान होने पर यह जगद्भ्रम वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे रस्सी का ज्ञान होने पर सर्प की भ्रान्ति नष्ट हो जाती है अथवा आकार तथा नाम की व्यावहारिक विभिन्नता प्रतीत होते हुए भी जैसे स्वर्ण का ज्ञान होने पर स्वर्ण-भूषणों के नाम-रूप के कारण होने वाली विभिन्नता तथा भिन्नरूपता नष्ट हो जाती है-एकमात्र स्वर्ण ही दीखने लगता है, वैसे ही ब्रह्म का ज्ञान होने पर विभिन्न नामरूपात्मक यह विशाल विश्व ब्रह्मरूप ही दीखने लगता है, कहीं भी कोई भिन्न सत्ता रहती ही नहीं। वास्तव में तो सच्चिदानन्दघन परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उत्पत्ति-प्रकरण

पहला सर्ग

दृश्य जगत् के मिथ्यात्व का निरूपण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम! जिसमें मुमुक्षुओं के व्यवहारों का ही प्रधानरूप से वर्णन है, उस मुमुक्षु व्यवहार-प्रकरण के बाद अब मैं इस उत्पत्ति-प्रकरण का वर्णन करता हूँ। जबतक दृश्य जगत् की सत्ता है, तभी तक यह जन्म-मत्युरूप संसार का बन्धन है। दृश्य का अभाव हो जाने से बन्धन कदापि नहीं रह सकता। यह दृश्य जगत् जिसप्रकार उत्पन्न होता है, वह बता रहा हूँ। तुम क्रमशः ध्यान देकर सुनो। संसार में जो उत्पन्न होता है, वही वृद्धि एवं क्षय को प्राप्त होता है। वही बँधता और मोक्ष को प्राप्त होता है तथा वही स्वर्ग या नरक में पड़ता है। अपने स्वरूप का बोध न होने से ही बन्धन है। इसलिये स्वरूप के बोध के लिये ही मैं आगे की बात बता रहा हूँ (इससे तुम्हें यह ज्ञात होगा कि यह दृश्यप्रपंच कभी हुआ ही नहीं)। उत्पत्ति आदि का सम्बन्ध इस दृश्यजगत से ही है (आत्मा से नहीं)। आत्मा तो दृश्य की उत्पत्ति से पहले जैसा रहा है, वैसा ही उसकी उत्पत्ति के बाद भी है (वह सदा ही एकरस रहता है)। जैसे सुषुप्ति में स्वप्न के संसार का अभाव हो जाता है, उसी तरह यह जो समस्त चराचर जगत् दिखायी देता है, इसका कल्प के अन्त में विनाश (अभाव) हो जाता है। तत्पश्चात् निष्क्रिय, गम्भीर (अपरिच्छिन्न), नाम-रूप से रहित और अव्यक्त कोई अनिर्वचनीय सद् वस्तु ही शेष रह जाती है। वह तेजस्तत्त्व नहीं है, क्योंकि उसके रूप नहीं होता तथा वह तमोमय भी नहीं है, क्योंकि वह स्वयं प्रकाशस्वरूप है। विद्वानों ने व्यवहार-निर्वाह के लिये उस सत्-स्वरूप परमात्मा के ऋत, आत्मा, परब्रह्म तथा सत्य इत्यादि नाम रख छोड़े हैं।

सोने का बना हुआ कड़ा सोना ही है। उस सोने से 'कटक' शब्द का अर्थ (कड़ा) जैसे पृथक् नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार 'जगत्' शब्द का जो अर्थ है, वह परब्रह्म पर ही आधारित है, अतः उससे पृथक् नहीं है। जैसे कड़े का स्वरूप सुवर्ण के स्वभाव के ही अन्तर्गत है, कड़े के स्वभाव के अन्तर्गत नहीं, उसीप्रकार यह दृश्यमान जगत् भी अपने परिच्छिन्न स्वभाव को त्याग देने पर ब्रह्मभाव में ही प्रतिष्ठित है, 'जगत्' शब्द के अर्थ में नहीं। (तात्पर्य यह कि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

सोने में ही कड़े की कल्पना हुई है, कड़े में नहीं। इसी तरह ब्रह्म में ही जगत् की कल्पना हुई है, जगत् में नहीं; अतः वह ब्रह्म से भिन्न नहीं है।) जैसे मरु-मरीचिका में प्रतीत होनेवाली नदी अपने भीतर न होने पर भी चंचल तरंगों का विस्तार करती है और वे तरंगें सच्ची सी जान पड़ती हैं, उसी प्रकार मन ही इस जगत्-रूपी इन्द्रजाल की सम्पत्ति का विस्तार करता है और वह सम्पत्ति असत् होने पर भी सत्य सी प्रतीत होती है। जिसके कारण असत् वस्तु भी सत् सी प्रतीत होती है, वह माया है। सर्वज्ञ विद्वानों ने उसके अविद्या, संसृति, बन्ध, माया, मोह, महत् और तम आदि अनेक नामों की कल्पना की है।

प्रिय श्रीराम! दृश्य प्रपंच का अस्तित्व ही द्रष्टा का बन्धन कहा गया है। दृश्य के बल से ही दृष्टा बन्धन में पड़ा है। दृश्य का निवारण हो जाने पर वह उस बन्धन से मुक्त हो जाता है। 'त्वम्' (तू), 'अहम्' (मैं) और 'इदम्' (यह) इत्यादि रूपों में कल्पित जो मिथ्या जगत् है, उसी को दृश्य कहते हैं। जब तक वह दृश्य बना रहता है, तब तक मोक्ष नहीं होता। यदि यह दृश्य जगत् वास्तव में है, तब तो किसी के लिये उसका निवारण नहीं हो सकता; क्योंकि जो असत् वस्तु है, उसका अस्तित्व नहीं है और जो सत् वस्तु है, उसका कभी अभाव नहीं होता। चित्-स्वरूप आत्मा का जिसे बोध नहीं है, वह द्रष्टा जहाँ कहीं भी रहता है, वहीं उसकी दृष्टि के समक्ष इस दृश्य जगत् का वैभव प्रकट हो जाता है। इस दृश्य-प्रपंच के रहते हुए निर्विकल्प समाधि कैसे हो सकती है? निर्विकल्प समाधि होने पर ही चेतनता और तुरीय पद की उपपत्ति होती है। जैसे सुषुप्ति (प्रगाढ़ निद्रा) के पश्चात् यह सारा सांसारिकदुःख अनुभव में आने लगता है, उसी प्रकार समाधि से उठने पर यह सम्पूर्ण दुःखमय जगत् जैसे का तैसा प्रतीत होने लगता है। इस मनरूप दृश्य के रहते हुए कोई समाधि के लिये कितना ही प्रयत्नशील क्यों न हो, क्या उसे दृश्य प्राप्त नहीं होता ? (अवश्य होता है); क्योंकि जहाँ-जहाँ इसकी चित्तवृत्ति जाती है, वहाँ-वहाँ उससे सम्बन्ध रखने वाले जगत्रूपी भ्रम का निवारण नहीं किया जा सकता। जैसे कमलगट्टे के भीतर कमलिनी का वह बीज विद्यमान है, जिसमें उसका मृणालमय रूप छिपा हुआ है, उसी प्रकार अज्ञानी द्रष्टा में वह बुद्धि रहती है, जिसमें दृश्य जगत् अन्तर्हित होता है। जैसे पदार्थों में रस, तिल आदि में तेल और फूलों में सुगंध रहती है, उसी प्रकार उपद्रष्टा में दृश्य बुद्धि रहती

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama Prasad Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥ तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥

ही है। कपूर या कस्तूरी आदि जहाँ कहीं भी हों, उनकी सुगंध प्रकट हो ही जाती है, उसी प्रकार द्रष्टा कहीं भी हो उसके उदर में दृश्य जगत का प्रादुर्भाव होता ही है। जैसे तुम्हारे हृदय में स्थित स्वप्न एवं संकल्प तुम्हारे द्वारा अनुभव से ही देखे जाते हैं, उसी प्रकार यह दृश्य जगत तुम्हारे हृदय में ही स्थित है और अपने अनुभव से ही दृष्टिगोचर होता है।

पहला सर्ग समाप्त

दूसरा सर्ग

जगत की असत्ता

श्रीवसिष्ठजी बोले-हे श्रीराम! मन्वन्तर आरम्भ होने पर जब सम्पूर्ण प्राणियों को अपना ग्रास बनाने वाली मृत्यु प्रजा का संहार करती हुई सबल हो उठी, तब उसने स्वयं ही ब्रह्माजी पर आक्रमण करने का उद्योग आरम्भ किया। उस समय धर्मराज यम ने उसे शीघ्र ही इस प्रकार शिक्षा दी-'मृत्यो! ब्रह्मा परम (चिन्मय) व्योमस्वरूप है। उनकी आकृति पृथ्वी आदि पाँचों भूतों से रहित है। वे मनोमय और संकल्परूप हैं। भला, उन पर कैसे आक्रमण किया जा सकता है? जो चेतन आकाश के समान चमत्कारपूर्ण और चिन्मय आकाश के समान अनुभवरूप हैं, वे ब्रह्मा चिन्मय आकाश ही हैं। उनमें कार्य-कारण-भाव नहीं है। जैसे आकाश में इन्द्रनीलमणि से बने हुए तथा औंधे रक्खे हुए महान् कड़ाह का-सा आकार पृथ्वी आदिसे रहित प्रतीत होता है और जैसे संकल्पनिर्मित पुरुष भी पृथ्वी आदि से रहित ही ज्ञात होता है, उसी प्रकार स्वयम्भू ब्रह्मा भी पृथ्वी, जल आदि तत्त्वों से रहित ही भासित होते हैं। केवल (अद्वितीय) परमात्मा में न दृश्य है और न द्रष्टा ही है। यह स्वयं चिन्मात्र स्वरूप ही है। तथापि 'स्वयम्भू' नाम से प्रकाशित होता है। आदि, मध्य और अन्त से रहित चिदाकाशरूप अद्वितीय ब्रह्म ही अपने संकल्प के कारण स्वयम्भू ब्रह्मा के नाम से पुरुष अथवा देहधारी-सा भासित होता है।'

श्रीराम! जिसका पूर्वजन्मों में उपार्जित कर्मों से युक्त पूर्व-शरीर रहा है, उसी को इस जन्म में संसार स्थिति की कारण भूत स्मृति का होना सम्भव है। जब ब्रह्मा का कोई प्राक्तन कर्म है ही नहीं, तब उन्हें पूर्व-जन्म की स्मृति का उदय कहाँ से और कैसे होगा ? इसलिये ब्रह्मा का शरीर पृथ्वी आदि कारणों से

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookanji Sharma (IAS) Jammu Collection

रहित है। ब्रह्मा अपने कारणभूत परब्रह्म परमात्मा से अभिन्न एवं स्वयं आत्मस्वरूप हैं। श्रीराम! स्वयम्भू ब्रह्मा का वह शरीर आतिवाहिक ही है। जो अजन्मा है, उसे आधिभौतिक शरीर की प्राप्ति हो ही नहीं सकती।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-गुरुदेव! सभी प्राणियों के एक 'आतिवाहिक' शरीर होता है और दूसरा 'आधिभौतिक', किन्तु ब्रह्मा के केवल आतिवाहिक ही शरीर क्यों है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम! सभी भूत कारणात्मा हैं-पंचीकृत भूतों से उत्पन्न देह आदि से युक्त हैं; इसलिये उनके दो-दो शरीर होते हैं; परंतु अजन्मा ब्रह्मा के लिये ऐसा कोई कारण नहीं है, इसलिये उनके एक ही आतिवाहिक शरीर है। एकमात्र अजन्मा ब्रह्मा ही सभी जाति के प्राणियों के परम कारण हैं। उनका दूसरा कोई कारण नहीं है, इसलिये भी उनके एक ही शरीर है। संकल्परूप ही उनका शरीर है। पृथ्वी आदि भूतों के क्रमशः सम्मिश्रण से उनके शरीर का निर्माण नहीं हुआ है। वे चिदाकाशस्वरूप आदिप्रजापति ब्रह्मा ही विविध जीवों की सृष्टि करके उनका विस्तार करते हैं। वे जीव ब्रह्मा के संकल्प के सिवा अन्य कारणों से उत्पन्न नहीं हुए हैं। अतः वे भी चिदाकाश स्वरूप ही हैं। जिस उपादान से जिसकी उत्पत्ति होती है, वह तद्रूप ही होता है (जैसे मृत्तिका से निर्मित हुआ घट मृत्तिकारूप ही है)। स्वर्ण के कटक-कुण्डल आदि दृष्टान्तों के द्वारा इस बात का सभी को अनुभव होता है। संसार में व्यवहार करने वाले समस्त प्राणियों में ब्रह्मा ही सबसे प्रथम चेष्टाशील चेतन भूत हैं। अन्तःकरण ही उनका स्वरूप है। उन्हीं से अहंकार का उदय होता है। जैसे वायु से हिलना-डुलना आदि चेष्टाएँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार उन प्रथम प्रतिस्पन्द (पहले प्रकट हुए चेष्टाशील चेतन भूत) ब्रह्मा से अभिन्न रूपवाली यह सृष्टि प्रकट हुई और फैली है। प्रतिभास ही जिनकी आकृति है, उन ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण यह दृश्यमान सृष्टि भी प्रतिभासरूप ही है। फिरभी लोगों की दृष्टि में यह सत्य सी प्रतीत होती है। इस विषय में दृष्टान्त है-स्वप्न में दीखने वाले स्वप्नान्तर में प्राप्त होने वाला स्त्री का समागम। जैसे स्वप्न में स्त्री समागम का स्वप्न देखा जाय तो उससे भी वीर्यपात होता है, उसी प्रकार व्यवहार और प्रयोजन की सिद्धि की दृष्टि से असत वस्तु भी सत्य वस्तु के समान व्यवहार का प्रकाश करती है। तात्पर्य यह कि स्वप्न में स्त्री का समागम

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जाग्रत काल में सर्वथा असत्य सिद्ध होता है, तो भी उससे सत्य के समान कार्य होता देखा जाता है। इसी प्रकार प्रतिभासमात्र शरीरवाले ब्रह्मा से उत्पन्न यह सृष्टि भी यद्यपि प्रतिभास रूपा ही है, तथापि सत्य के समान प्रयोजन को सिद्ध करती है।

दूसरा सर्ग समाप्त

तीसरा सर्ग

मोक्ष का प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी बोले-हे श्रीराम! जिनका शरीर पृथ्वी आदि तत्त्वों से नहीं बना है, जो चिदाकाश स्वरूप और निराकार हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के अधिपति स्वयम्भू ब्रह्मा सशरीर पुरुष की भाँति प्रतीत होते हैं। पृथ्वी आदि तत्त्वों से शून्य आकार वाले संकल्पपुरुष ब्रह्मा का शरीर चित्तमात्र है। वे ही तीनों लोकों की स्थिति के कारण हैं। स्वयम्भू ब्रह्मा का यह संकल्प प्राणियों के कर्मों के अनुसार जिस प्रकार से विकास को प्राप्त होता है, चिदाकाश स्वरूप आत्मा उसी प्रकार से प्रतीत होता है। ब्रह्मा मनोमय ही हैं, पृथ्वी-आदि निर्मित नहीं हैं। इसलिये उनसे उत्पन्न हुआ यह विश्व भी मनोमय ही है; क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है, वह तद्रूप ही होता है। (जैसे सोने का बना हुआ कटक-कुण्डल आदि सुवर्णरूप ही होता है।) अजन्मा ब्रह्मा के कोई सहकारी कारण नहीं हैं। सुतरां उनसे उत्पन्न हुए जगत के भी कोई सहकारी कारण नहीं है। अतः यहाँ कारण से कार्य में कोई विचित्रता या विलक्षणता नहीं है। इसलिये जैसे कारण शुद्ध है, वैसे कार्य भी शुद्ध ब्रह्म ही है-यह सिद्धान्त स्थिर हुआ। इस जगत के विषय में कार्य-कारण-भाव की किंचिन्मात्र भी संगति नहीं है। जैसा परब्रह्म है, वैसे ही तीनों लोक हैं। । जल द्रवत्व से अभिन्न ही है। उस अभिन्नरूप जल से जिस तरह द्रवत्व का विस्तार होता है, उसी प्रकार मनोरूपता को प्राप्त हुए ब्रह्मा अपने शुद्धआत्मा (स्वरूप) से ही जगत का विस्तार करते हैं। वह जगत उनके विशुद्ध आत्मस्वरूप से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार जगत में आधिभौतिक देह में कैसे रह सकते हैं।

मन ही ब्रह्मा के स्वरूप को प्राप्त हुआ है। वह मन संकल्परूप है। मन अपने ही स्वरूप को विकसित करके इस जगत का निर्माण एवं विस्तार करता

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

है। मन का रूप ब्रह्मा है और ब्रह्मा का रूप मन। इसमें पृथ्वी आदि का प्रवेश नहीं है। मन ने ही परमात्मा में पृथ्वी आदि की कल्पना की है। जैसे कमल गट्टे के अंदर कमलिनी (भावी कमल-नाल) विद्यमान है, उसी प्रकार मन के भीतर सम्पूर्ण दृश्यवर्ग स्थित है। मन, दृश्यवर्ग और इन दोनों का द्रष्टा-इनका कभी किसी ने विवेक नहीं किया। जब तक द्रष्टा और दृश्य का विवेक न किया जाय, तब तक अज्ञान का उच्छेद न होने से मन में दृश्यरूप दुःख सत हो तो उसकी कभी शान्ति नहीं हो सकती और दृश्य की शान्ति होने पर ज्ञाता में कैवल्य (मोक्ष) की सिद्धि नहीं हो सकती। दृश्य का अभाव हो जाने पर ज्ञाता में ज्ञातृभाव स्थित हो, तो भी वह शान्त या निवृत्त हो जाता है। वही (ज्ञाता का कैवल्य ही) उसका मोक्ष कहा गया है।

तीसरा सर्ग समाप्त

चौथा सर्ग

मन के स्वरूप का विवेचन

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-भगवन्! मन का स्वरूप कैसा है, यह मुझे स्पष्ट रूप से बताइये; क्योंकि मन ही इस सम्पूर्ण लोकमंजरी का विस्तार करता है।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम! जैसे शून्य तथा जड़ आकारवाले आकाश का नाम मात्र के अतिरिक्त दूसरा कोई रूप दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी प्रकार शून्य एवं जड़रूप इस संकल्पात्मक मन का नाम के सिवा कोई भी वास्तविक रूप नहीं दिखायी देता। यह जगत क्षणिक संकल्परूपी मन से उत्पन्न हुआ है। मृगतृष्णा में प्रतीत होने वाले जल तथा चन्द्रमा में भ्रम से दीखने वाले द्वितीय चन्द्रमा के समान ही इस मनःकल्पित जगत का स्वरूप है। रघुनन्दन! संकल्प को ही मन समझो। जैसे द्रवत्व (द्रवरूपता) से जल का भेद नहीं है और जैसे वायु से स्पन्दन (चेष्टा या गतिशीलता) भिन्न नहीं है। प्रियवर श्रीराम! जिस विषय के लिये संकल्प होता है, उसमें मन संकल्परूप से स्थित रहता है। तात्पर्य यह कि जो संकल्प है वही मन है। संकल्प और मन को कभी कोई पृथक् नहीं कर पाया है (इन दोनों के पार्थक्य का अनुभव किसी को नहीं हुआ है)। मन को संकल्प मात्र समझो।

वह समष्टिगत मन ही पितामह ब्रह्मा है। आतिवाहिक देह (संकल्पमय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तत्रोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तत्रोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

शरीर) रूपी ब्रह्मा को लोक में समष्टिगत मन कहा गया है। अविद्या, संसार, चित्त, मन, बन्धन, मल और तम-इन्हें श्रेष्ठ विद्वानों ने दृश्य के पर्यायवाची नाम माना है। संकल्परूप दृश्य से अतिरिक्त मन का कुछ भी स्वरूप नहीं है। यह दृश्य-प्रपंच वास्तव में उत्पन्न ही नहीं हुआ है, यह बात मैं आगे चलकर फिर बताऊँगा। जैसे प्रकाश का आलोक स्वभाव है, जैसे चपलता वायु का स्वभाव है और जिस प्रकार द्रवीभूत होना जल का स्वभाव है, उसी प्रकार द्रष्टा में दृश्यत्व स्वभाव से ही विद्यमान है (अर्थात द्रष्टा से दृश्य भिन्न नहीं है), जैसे सुवर्ण में बाजूबंद और कटक-कुण्डल आदि की स्थिति है, जैसे मृगतृष्णा की नदी में जल की स्थिति है और जैसे सपने की नगरी में उठायी गयी दीवार की स्थिति है, उसी प्रकार द्रष्टा में दृश्य की स्थिति मानी गयी है। अर्थात जैसे उपर्युक्त वस्तुएँ अपने अधिष्ठान से भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार द्रष्टा से दृश्य की पृथक् सत्ता नहीं है।

द्रष्टा दृश्य की पृथक् सत्ता न होने के कारण दृश्य का अभाव हो जाने पर जो द्रष्टा में बलात द्रष्टापन का अभाव प्राप्त होता है, उसी को तुम असत (मिथ्या दृश्य) के बाधित होने से सन्मात्र चिन्मयरूप में अवशिष्ट हुए आत्मा का केवली भाव (या कैवल्य) समझो। जब चित्त आत्मा के कैवल्य (अद्वितीय चिन्मात्र स्वरूपता) के बोध से तदाकार (कैवल्यभाव को प्राप्त) हो जाता है, तब उसकी राग-द्वेष आदि वासनाएँ उसी तरह शान्त हो जाती हैं, जैसे हवा के न चलने पर वृक्षों में कम्पन और जलाशय आदि में लहरों का उठना बंद हो जाता है। दिशा, भूमि और आकाशरूपी सभी प्रकाशनीय पदार्थों के न रहने पर जिस तरह प्रकाश का शुद्धरूप ही अवशिष्ट रहता है, उसी प्रकार तीनों लोक, तू और मैं इत्यादि दृश्य-प्रपंच की सत्ता न होने पर शुद्ध रूप से अवशिष्ट चिन्मय द्रष्टा का केवलीभाव (कैवल्य) ही रह जाता है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन्! यदि दृश्य सत है, तब तो यह शान्त या निवृत्त नहीं हो सकता; क्योंकि सत का कभी अभाव नहीं होता और यदि यह दोष प्रदान करने वाला दृश्य असत है, तब यह बात हमारी समझ में आती नहीं। इसलिये यह दृश्यरूपिणी विषूचिका (हैजा), जो मन से जन्म आदि के भ्रम को उत्पन्न करने वाली और दुःख की परम्परा को देने वाली है, कैसे शान्त होगी ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! जिस वस्तु की सत्ता है, उसका कभी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

नाश नहीं होता। यह जो कुछ आकाश आदिभूत और अहंकार के रूपमें लक्षित होता है, वह सब व्यवहारदशा में जगत है, किंतु परमार्थ दशा में ब्रह्म है। ब्रह्म के सिवा 'जगत' शब्द का दूसरा कोई वास्तविक अर्थ है ही नहीं। हमारे सामने यह जोकुछ दृश्य-प्रपंच दृष्टिगोचर होता है, वह सब अजर, अमर एवं अव्यय परब्रह्म ही है। सर्वत्र पूर्ण का प्रसार हो रहा है। शान्त परब्रह्म में शान्त जगत स्थित है। आकाश में ही आकाश का उदय हुआ है तथा ब्रह्म में ही ब्रह्म प्रतिष्ठित है। परब्रह्म परमात्मा के साथ जीवात्मा की एकता का जो बोध है, वही पूर्ण में पूर्ण का प्रसार या प्रवेश है। परब्रह्म परमात्मा सर्वत्र व्यापक होने के कारण पूर्ण है। जीवात्मा भी उससे अभिन्न होने के कारण पूर्ण ही है। इनमें जो भेद का भ्रम था, उसका मिट जाना ही उनकी एकता है। इस एकता की अनुभूति ही पूर्ण में पूर्ण का प्रवेश है। वास्तव में जीवात्मा न तो कभी ब्रह्म से पृथक् होता है और न वह कहीं अन्यत्र से आकर ब्रह्म में प्रविष्ट ही होता है। ये प्रवेश और निर्गम औपचारिक हैं। वह (जीवात्मा) ब्रह्मरूप होकर ही ब्रह्म में प्रतिष्ठित होता है, जैसा कि श्रुति का कथन है-'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।' मूल ग्रन्थ में जो 'शान्ते शान्तं व्यवस्थितम्' कहा गया है, इसमें प्रथम 'शान्त' शब्द ब्रह्म के लिये प्रयुक्त हुआ है और दूसरा 'शान्त' शब्द जगत् के लिये। जहाँ तीनों अवस्थाओं तथा सब प्रकार की भेद-भ्रान्तियों का सदा के लिये शमन हो गया है, वह ब्रह्म शान्तस्वरूप कहा गया है। ब्रह्मदृष्टि प्राप्त होने पर जगत दृष्टि शान्त हो जाती है, इसलिये जगत को भी शान्त कहा गया है। मृत्तिका में घट की भाँति ब्रह्म में ही जगत की कल्पना हुई है; इसलिये वह उसी में स्थित है। घट आदि उपाधियों के नष्ट होने पर घटाकाश, मठाकाश आदि की जो महाकाश में प्रतिष्ठा होती है, यही आकाश में आकाश का उदय है। इसी तरह जगद्-दृष्टि का निवारण होकर जो ब्रह्मभाव का साक्षात्कार होता है, वही ब्रह्म में ब्रह्म की प्रतिष्ठा है। वास्तव में न तो दृश्य सत-रूप है, न द्रष्टा, न दर्शन, न शून्य न जड़ और न चित् ही सद्रूप है। केवल शान्त स्वरूप ब्रह्म ही सद्रूप है, जो सर्वत्र व्याप्त है।

यह जगत सृष्टि के आदि में उत्पन्न नहीं हुआ था, इसलिये इसका अस्तित्व सर्वथा नहीं है। जैसे स्वप्न आदि में मन से ही नगर की प्रतीति होती है, उसी प्रकार यह जगत भी मन से ही उत्पन्न होकर प्रतीति का विषय हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रहा है। स्वयं मन ही सृष्टि के आदि में उत्पन्न न होने के कारण भी यह जगत असत ही है। फिर जिस प्रकार इसका अनुभव होता है, वह बता रहा हूँ, सुनो। मन निरन्तर क्षीण होनेवाले इस दृश्यरूपी दोष का विस्तार करता है। वह स्वयं असत रूप ही है, तो भी सत-सा प्रतीत होने वाले जगत की सृष्टि करता है--ठीक उसी तरह, जैसे स्वप्न असत होता हुआ भी सत सा प्रतीत होने वाले स्वप्नान्तर की सृष्टि करता है। मन ही अपनी इच्छा के अनुसार स्वयं शीघ्र ही शरीर की कल्पना कर लेता है। वही चिरकाल की भावना से विस्तार को प्राप्त होकर इस ऐन्द्रजालिक वैभवरूप दृश्य जगत का विस्तार करता है। चंचल शक्ति होने के कारण केवल यह मन ही स्वयं स्फुरितहोता, उछलता, कूदता, जाता, आता, याचना करता, घूमता, गोते लगाता, संहार करता और अपकर्ष को प्राप्त होता है।

श्रीराम! महाप्रलय होने पर जब जगत् अति सूक्ष्मरूप से स्थित होने के कारण अपने कार्य में असमर्थ हो जाता है, उस समय वह सम्पूर्ण भावी दृश्यवर्ग की सृष्टि से पहले विक्षेपरहित शान्तावस्था में ही शेष रहता है। उस प्रलयकाल में केवल कभी अस्त न होने वाले सूर्यदेव-स्वयं ज्योति, अजन्मा, रोग-शोक से रहित, सदा सर्वशक्तिमान् सर्वस्वरूप, परमात्मा महेश्वर ही विराजमान होते हैं। जहाँ से वाणी उन्हें न पाकर लौट आती है अर्थात जहाँ वाणी की पहुँच नहीं हो पाती, जो जीवन्मुक्त महात्माओं के द्वारा जाने जाते हैं, सांख्यदर्शन के अनुयायी जिन्हें पुरुष कहते हैं, वेदान्तवादी 'ब्रह्म' नामसे जिनका चिन्तन करते हैं, विज्ञानवेत्ताओं की दृष्टि में जो परम निर्मल विज्ञानमात्र हैं, जिन्हें शून्यवादी शून्य कहते हैं, जो सूर्य के प्रकाश के भी प्रकाशक हैं; जैसे नदी-नाले आदि के जल अन्ततोगत्वा महासागर में ही गिरते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण दृश्यसमूह महाप्रलयकाल में जिनमें ही विलीन होते हैं; जो आकाश में, विभिन्न शरीरों में, प्रस्तरों में, जल में, लताओं में, धूलिकणों में, पर्वतों में, वायु में और पाताल आदि सभी देश, काल एवं वस्तुओं में समान भाव से स्थित हैं; जिन्होंने आकाश को शून्य, पर्वतों को घनीभूत और जल को द्रवीभूत बनाया है, जगत को दीपक की भाँति प्रकाशित करने वाले सूर्य जिनके अधीन हैं; जैसे मरुभूमि में सूर्य की तपती हुई किरणों के भीतर जलराशि लहराती दिखायी देती है, उसी प्रकार जिन अत्यन्त व्यापक परमात्मारूपी महासागर में अविर्भाव और तिरोभाव (उत्पत्ति

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और प्रलय) से युक्त त्रिलोकरूपिणी तरंगें उठती रहती हैं, जो सम्पूर्ण व्यावहारिक सत्ताओं से ऊँचे उठे हुए-सर्वविलक्षण पारमार्थिक सत्ता से सम्पन्न हैं; जिनसे ही नियति, देश, काल, चलन, चेष्टा और क्रिया आदि समस्त भावों को कार्य-निर्वाह की क्षमता प्राप्त हुई है-वे एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर ही उक्त महाप्रलय के समय शेष रहते हैं। वे परमात्मा उत्पत्ति-स्थिति आदि से रहित, कभी अस्त न होने वाले, नित्य प्रकाशमान ज्ञान से परिपूर्ण एवं विकार शून्य अपने स्वरूप में ही स्थित हैं। वे एकमात्र अद्वितीय ही हैं। अतएव वे माया से अनेक विशाल संसारों-अगणित ब्रह्माण्डों की रचना करते हुए भी वास्तव में न कोई कार्य करते हैं और न उनसे कोई चेष्टाएँ ही बनती हैं।

चौथा सर्ग समाप्त

पाँचवाँ सर्ग

ज्ञान से ही परासिद्धि या परमात्मा की प्राप्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! परब्रह्म परमात्मा देवताओं के भी देवता हैं। उनके ज्ञान से ही परम सिद्धि (मोक्ष) की प्राप्ति होती है, क्लेशयुक्त सकाम कर्मों के अनुष्ठान से नहीं। संसार बन्धन की निवृत्ति या मोक्ष की प्राप्ति के लिये ज्ञान ही साधन है, ज्ञान के अतिरिक्त सकाम कर्म आदि का इसमें कोई भी उपयोग नहीं है; क्योंकि मृग तृष्णा में होने वाले जल के भ्रम का निवारण करने के लिये ज्ञान का ही उपयोग देखा गया है-ज्ञान से ही उस भ्रम की निवृत्ति होती है, किसी कर्म से नहीं। सत्संग तथा सत-शास्त्रों के स्वाध्याय में तत्पर होना ही ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हेतु है। वह परमात्मा सत्स्वरूप ही है। ऐसे ज्ञानमात्र से ही जीव के दुःख का निवारण होता है तथा वह जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त होता है।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-गुरुदेव! सब के आत्मस्वरूप इन परमात्मा के ज्ञान मात्र से कष्टप्रद जन्म-मरण आदि फिर कभी बाधा नहीं देते। अतः बताइये, ये महान् देवाधिदेव परब्रह्म परमात्मा किस उपाय से शीघ्र प्राप्त होते हैं ? किस तीव्र तपस्या से अथवा कितने महान् क्लेश उठाने से इनके ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम! अपने पौरुषजनित प्रयत्न से विकास को प्राप्त हुए विवेक के द्वारा उन परमात्मदेव का यथार्थज्ञान होता है। इसलिये पुरुषोचित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्रयत्न के द्वारा भवरोग के निवारण के लिये मुख्य औषधों का संग्रह करना चाहिये। सत-शास्त्रों का अभ्यास और सत्पुरुषों का संग ये दो प्रधान औषधें संसाररूपी रोग का नाश करने वाली हैं। इस जगत में सम्पूर्ण दुःखों के विनाश की सिद्धि के लिये एकमात्र पुरुष प्रयत्न ही प्रधान साधन है। उसे छोड़कर दूसरी कोई गति या उपाय काम दे सके, यह सम्भव नहीं। रघुनन्दन! आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये अपेक्षित उस पुरुषप्रयत्न का स्वरूप कैसा है, जिसका पूर्णतया पालन करने से राग द्वेषमयी महामारी शान्त हो जाती है-यह बताता हूँ, सुनो। मुमुक्षु पुरुष को चाहिये कि वह यथासम्भव ऐसी वृत्ति के द्वारा जो लोक और शास्त्र के विरुद्ध न हो, निष्कामभाव से जीवन-निर्वाह करता हुआ संतुष्ट-चित्त हो भोगवासना का परित्याग करे। अपनी अनुद्विग्नता (उद्वेगशून्यता अथवा शान्तवृत्ति) के द्वारा यथासम्भव उद्योग करके सत्संग और सत-शास्त्रों का अभ्यास-इन दो साधनों की सबसे पहले शरण लेनी चाहिये। जो पुरुष प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ भी मिल जाय, उसी से संतुष्ट रहता है, सत्पुरुषों अथवा शास्त्रों द्वारा निन्दित वस्तु की ओर आँख उठाकर नहीं देखता और सत्संग एवं सत-शास्त्रों के अभ्यास में तत्पर रहता है, वह शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। देश में प्रायः सज्जन (शास्त्रोक्त सदाचार में प्रतिष्ठित) पुरुष जिसे श्रेष्ठमहात्मा कहते हैं, वह यदि ज्ञान-वैराग्य आदि उत्तम गुणों से युक्त हो तो अवश्य ही श्रेष्ठ महात्मा है। ऐसे महात्मा की प्रयत्नपूर्वक शरण लेनी चाहिये। सम्पूर्ण विद्याओं में अध्यात्म विद्या प्रधान है। उस अध्यात्मतत्त्व की चर्चा से युक्त जो उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं गीता आदि सद्ग्रन्थ हैं, उन्हीं को सत्शास्त्र कहते हैं। उनका विवेक पूर्वक विचार करने से मनुष्य मुक्त हो जाता है। जैसे निर्मली के चूर्ण के संसर्ग से जल की मैल साफ हो जाती है तथा जिस प्रकार योग के अभ्यास से लोगों की बुद्धि शुद्ध हो जाती है, उसी प्रकार सत-शास्त्र और सत्संग से प्राप्त हुए विवेक के द्वारा अज्ञान का बल पूर्वक निवारण हो जाता है।

पाँचवाँ सर्ग समाप्त

छठवाँ सर्ग

परमात्मा के ज्ञान की महिमा

श्री वसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! जिन परमात्म-देवकी चर्चा की गयी है, ये कहीं दूर नहीं रहते, सदा शरीर में ही स्थित हैं और चिन्मय (चेतन) रूप से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

विख्यात हैं। ये ही चिन्मय चन्द्रशेखर शिव हैं। ये ही चिन्मय गरुड़वाहन विष्णु हैं। ये ही चिन्मय सूर्य हैं तथा ये ही चिन्मय ब्रह्मा हैं। कार्य-कारण स्वरूप इन परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार होजाने पर इस साधनपरायण के हृदय की गाँठ (चिज्जड ग्रन्थि) खुल जाती है, सम्पूर्ण संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

श्रीराम! जब परमात्माका ज्ञान हो जाता है, तब विष के वेग के शान्त होने पर जैसे विषूचिका मिट जाती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण दुःखों की परम्परा नष्ट हो जाती है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन्! जिनका ज्ञान या साक्षातकार होने पर मन सम्पूर्ण मोह-महासागर के पार हो जायेगा, उन परब्रह्म परमात्मा का यथार्थ स्वरूप कैसा है ? इसका मेरे समक्ष वर्णन कीजिये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! जिस ज्ञानरूपी महा सागर में नाश आदि विकार के बिना ही ज्यों-के-त्यों स्थित हुए इस संसार का अत्यन्त अभाव ही सिद्ध होता है, वही परमात्मा का स्वरूप है। जो परम चिन्मय होने के कारण अत्यन्त सूक्ष्म होकर भी अज्ञानी जनों की दृष्टि में विशाल पाषाण की भाँति स्थूल रूप से स्थित प्रतीत होता है तथा अजड़ (चिन्मय) होता हुआ भी मूढ़ मनुष्यों के अन्तःकरण में जड़ के तुल्य ही जान पड़ता है, वह परमात्माका स्वरूप है।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-मुने! परमात्मा सत है, यह कैसे जाना जाता है ? तथा इतने बड़े जगत नामक दृश्य को असत कैसे समझा जाता है ? आप कहते हैं इसकी उत्पत्ति हुई ही नहीं, यह बिना हुए ही प्रतीत हो रहा है; यह बात कैसे समझ में आये ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! जैसे रूपहीन आकाश में भ्रमवश नील, पीत आदि वर्णों की प्रतीति होती है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दमय ब्रह्म में यह जगत सम्बन्धी भ्रम उत्पन्न हुआ है। इस भ्रम के अत्यन्ताभाव का निश्चय हो जाने पर जो शेष रह जाता है, उसी परमार्थ वस्तु का बोध होता है। जिसका बोध होता है, वह परमात्मा उस जानने वाले पुरुष का आत्मा ही हो जाता है। जब तक इस जगत नामक दृश्य की अपनी सत्ता का अत्यन्ताभाव अथवा मिथ्यात्व सिद्ध नहीं हो जाता, तब तक परम तत्त्वरूप परमात्मा को कभी कोई जान नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सकता। असत पदार्थ की सत्ता नहीं होती और सत वस्तु का कभी अभाव नहीं होता। जो वस्तु स्वभाव से है ही नहीं, उसके निवारण में-उसे मिथ्या समझकर त्याग देने में कौन सी कठिनाई है ? यह जो विस्तृत जगत दिखायी देता है, पहले उत्पन्न नहीं हुआ था। यह चिन्मात्र होने के कारण निर्मल आत्मा में ही कल्पित है, अतः ब्रह्मरूप ही है। उससे अतिरिक्त इसकी कोई सत्ता नहीं है। जगत नाम से न यह कभी उत्पन्न हुआ, न है और न दिखायी ही देता है। जैसे सुवर्ण में कल्पित कटक-कुण्डल आदि का सुवर्ण-दृष्टि से अभाव ही है, उसी प्रकार ब्रह्म में कल्पित जगत का ब्रह्म दृष्टि से अभाव ही सिद्ध होता है। अतः इसके परिमार्जन में-इसे असत समझ लेने में क्या परिश्रम है ?

अब मैं बहुत-सी युक्तियों द्वारा इस विषय का कुछ विस्तार के साथ इस तरह प्रतिपादन करूँगा, जिससे अबाधित (परमार्थ) तत्त्व का स्वयं ही अनुभव हो जाता है। जो पहले (सृष्टि के आरम्भ में) ही उत्पन्न नहीं हुआ, उसका यहाँ अस्तित्व कैसे हो सकता है। मरुभूमि में जलपूर्ण नदी की सत्ता कैसे सम्भव है। भ्रम से प्रतीत होने वाले द्वितीय चन्द्रमा में ग्रहभाव कैसे हो सकता है। जैसे वन्ध्या का पुत्र नहीं होता, जैसे मरुभूमि में जल की सरिता नहीं बहती और जैसे आकाश में वृक्ष नहीं होता, उसी तरह जगत-रूप भ्रम की भी कहीं सत्ता नहीं है। श्रीराम! यह जो कुछ दिखायी देता है, वह सब रोग-शोकसे रहित ब्रह्म ही है। इस विषय का मैं आगे चलकर केवल वाणी द्वारा ही नहीं, युक्तियों से भी प्रतिपादन करूँगा। उदारबुद्धि रघुनन्दन! तत्त्वज्ञ पुरुष जिस विषय का युक्तियों द्वारा वर्णन करते हैं, उसकी अवहेलना करना कदापि उचित नहीं है। जो मूढ़बुद्धि मानव युक्तियुक्त वस्तु का अनादर करके कष्टसाध्य (युक्ति शून्य) वस्तु में आग्रह रखता है, उसे विद्वान् लोग अज्ञानी ही समझते हैं।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-भगवन्! यह किस युक्ति से जाना जाता है कि यह दृश्यमान जगत ब्रह्म ही है ? यह बात कैसे सिद्ध होती है ? यदि युक्तियों द्वारा इस विषय का अनुभव हो जाय, तब तो फिर जानने योग्य कुछ भी शेष नहीं रह जाता

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! यह मिथ्या ज्ञानरूपिणी विषूचिका चिरकाल से दृढ़मूल हो गयी है। इसी का नाम जगत है और इसी को अविचार कहते हैं। यह ज्ञान के बिना निवृत्त नहीं होती। जो जिस पदार्थ को पाना चाहता है और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उसके लिये पूरा प्रयत्न करता है, वह उस पदार्थ को अवश्य प्राप्त कर लेता है। परंतु यह बात तभी सम्भव होती है, जब वह बीच में ही थक कर या ऊबकर प्रयत्न से मुँह न मोड़ ले।

श्रीरामजी ने पूछा–शास्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ गुरुदेव आत्मज्ञान की प्राप्ति कराने के लिये कौन-सा शास्त्र मुख्य है, जिसका ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मनुष्य को फिर कभी शोक नहीं होता ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–महामते! जिन शास्त्रों में मुख्यतः आत्मज्ञान का ही प्रतिपादन हुआ है, उनमें यह महारामायण नामक शास्त्र ही सबसे श्रेष्ठ और शुभ है। इस उत्तम इतिहास का श्रवण करने से बोध प्राप्त हो जाता है। इसे समस्त इतिहासों का सार कहा गया है। इस वाङ्मय (शास्त्र) का श्रवण कर लेने पर कभी क्षीण न होने वाली जीवन्मुक्ति स्वयं ही प्रकट हो जाती है। इसलिये यही सबकी अपेक्षा अत्यन्त पावन है। जैसे स्वप्न आदि के रहते हुए ही यह स्वप्न है, ऐसा ज्ञान हो जाने पर उस स्वप्न के सच्चे होने की भावना नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार इस शास्त्र का विचार करने से जब यह समझ में आ जाता है कि सारा जगत स्वप्न के समान मिथ्या है, तब यह दृश्य जगत ज्यों-का-त्यों स्थित रहकर भी ज्ञानी की दृष्टि में असत को प्राप्त हो जाता है। आत्मज्ञान के लिये अपेक्षित जो-जो युक्तियाँ इस शास्त्र में हैं, वे ही दूसरे ग्रन्थों में भी उपलब्ध होती हैं। इसीलिये विद्वान् पुरुष इस महारामायण को सम्पूर्ण विज्ञान-शास्त्ररूपी धन का कोष (खजाना) मानते हैं। जो पुरुष प्रतिदिन इस महा रामायण का श्रवण करता है, उसमें उत्कृष्ट चमत्कार आ जाता है। उसकी बुद्धि अन्य ग्रन्थों के स्वाध्याय से उत्पन्न हुए बोध की अपेक्षा उत्तम बोध को प्राप्त कर लेती है, इसमें संशय नहीं। किसी दुष्कर्म के फल का उदय होने के कारण जिसकी इस ग्रन्थ के प्रति रुचि अथवा श्रद्धा नहीं है, जिसे यह शास्त्र नहीं रुचता, वह दूसरे किसी ज्ञान प्रधान सत-शास्त्र का विचार करे (उससे हमारा कोई द्वेष नहीं है)। जैसे उत्तम औषध का पान करने पर स्वयं ही नीरोगता प्राप्त हो जाती है, उसी तरह इस योगवसिष्ठ महारामायण का श्रवण कर लेने पर जीवन्मुक्ति का स्वयं अनुभव होने लगता है।

छठवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सातवां सर्ग

परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! जिनके चित्त परमात्मा चिन्तन में लगे हुए हैं, जिनके प्राण उन्हीं में रम रहे हैं, जो परस्पर परमात्म तत्त्व का बोध कराते हुए सदा परमात्मा की ही चर्चा करते हैं, उसी से ही संतुष्ट होते हैं और उसी में निरन्तर रत रहते हैं, एकमात्र ज्ञान में ही जिनकी निष्ठा है तथा जो सदा परमात्म ज्ञान का ही विचार करते हैं, उन पुरुषों को ही वह जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है, जो देह-त्याग के अनन्तर विशुद्ध मुक्ति ही है।

शास्त्रानुकूल व्यवहार करते हुए भी जिस पुरुष की दृष्टि में ज्यों का त्यों स्थित हुआ यह जगत विलीन हो जाता है और आकाश के समान शून्य प्रतीत होने लगता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जो व्यवहार में लगा हुआ ही एक मात्र बोधनिष्ठा को प्राप्त हो, जाग्रत्-अवस्था में भी सुषुप्त-पुरुष की भाँति राग द्वेष एवं हर्ष-शोकादि से शून्य हो जाता है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं। जिसके मुख की कान्ति सुख में उदित (अथवा वृद्धि को प्राप्त) नहीं होती तथा दुःख में अस्त नहीं हो जाती और प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाय, उसी से जो संतोषपूर्वक जीवन निर्वाह करता रहता है, वही जीवन्मुक्त कहा जाता है। जो निर्विकार आत्मा में सुषुप्त की भाँति स्थित रहता हुआ भी अविद्यारूपिणी निद्रा का निवारण हो जाने से सदा जागता रहता है, जिसकी जाग्रत् अवस्था नहीं है (अर्थात् देह, इन्द्रिय आदि का बोध हो जाने से जो इन्द्रियों द्वारा पदार्थों का उपभोग नहीं करता) और जिसका ज्ञान सर्वथा वासनारहित है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जिसमें अहंकार का भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि कर्म करते समय कर्तृत्व के और न करते समय अकर्तृत्व के अभिमान से लिप्त नहीं होती, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जो ज्ञान स्वरूप परमात्मा के किंचित् उन्मेष और निमेष से ही तीनों लोकों की प्रलय और उत्पत्ति देखता है तथा जिसका सबके प्रति अपने समान ही भाव है अर्थात जो सबके प्रति आत्मभाव रखता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जिससे लोगों को उद्वेग नहीं होता और जिसको लोगों से उद्वेग नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष और भय से रहित है, वह पुरुष जीवन्मुक्त कहा जाता है। जिसकी संसार के प्रति सत्यता बुद्धि नष्ट हो गयी है, जो दूसरों की दृष्टि में अवयवों से युक्त होने पर भी वास्तव में अवयव रहित है तथा जो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चित्तयुक्त होकर भी वस्तुतः चित्त से शून्य है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

श्रीराम! विदेहमुक्ति ही मुक्ति कहलाती है। इसी को ब्रह्म कहा गया है और इसी को निर्वाण कहते हैं। इसकी प्राप्ति कैसे होती है, यह बता रहा हूँ; सुनो। मैं, तुम, यह, वह इत्यादि रूप से जो यह दृश्य-प्रपंच दिखायी देता है, यह यद्यपि सतरूप से प्रतीत होता है, तथापि वन्ध्या पुत्र के समान इसकी कभी उत्पत्ति हुई ही नहीं-ऐसा निश्चय हो जाने पर यह मुक्ति प्राप्त होती है। जो अद्वितीय, शान्त, चिन्मय और आकाश के समान निर्मल है, वह ब्रह्म ही यह सम्पूर्ण जगत है; क्योंकि सब में सत्तामात्र का ही तो बोध होता है। रघुनन्दन! मैंने सोने के कड़े में बहुत विचार करने पर भी विशुद्ध सुवर्ण के सिवा कहीं कोई कड़ा नाम की वस्तु नहीं देखी। जल की तरंग में मैं जल के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं देखता; क्योंकि जहाँ वैसी तरंग नहीं दिखायी देती, वहाँ भी जल के अतिरिक्त कुछ नहीं है। वायु के अतिरिक्त कभी कहीं भी स्पन्दन सदा वायुरूप ही है। अतः इन दृष्टान्तों के अनुसार यह जगत भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जैसे आकाश में शून्यता है, मरुभूमि में ताप ही जल है और प्रकाश में सदा तेज स्थित है, उसी प्रकार ये तीनों लोक परब्रह्म परमात्मा ही हैं।

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-मुने! जिस युक्ति से इस दृश्य-जगत् के अत्यन्ताभाव का बोध होकर मुक्ति का उदय हो, उस उत्तम युक्ति का आप मुझे उपदेश कीजिये। द्वैत का अभाव होने पर ही निर्वाण सुलभ होता है, इसलिये जिस प्रकार इस दृश्य जगत की अत्यन्त असत्ता सिद्ध हो और इसके रूप में स्वभावनिष्ठ ब्रह्म ही विराजमान है-यह बोध हो जाय, वैसा ही उपदेश मुझे दीजिये। महर्षे! किस युक्ति से इस बात का ज्ञान होता है और कैसे यह बात सिद्ध होती है ? इस ज्ञान के सिद्ध हो जाने पर तो फिर कुछ साध्य (कर्तव्य) शेष नहीं रह जायगा।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! यह मिथ्या ज्ञानरूपिणी विषूचिका चिरकाल से दृढ़मूल हो गयी है। निश्चय ही विचाररूपी मन्त्र से इसका समूल नाश हो जाता है। सब प्रकार की वस्तुओं से युक्त तथा देवता, असुर और किंनर आदि सहित यह जो कुछ भी स्थावर जंगमरूप सारा जगत दिखायी देता है, वह महाप्रलय काल में असत एवं अदृश्य रूप होकर न जाने कहाँ चला जाता और नष्ट हो जाता है। तदनन्तर नाम और रूप से रहित, शान्त, गम्भीर एवं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (LF S) Jammu Collection

अनिर्वचनीय 'सत' अवशिष्ट रहता है। वह न तो तेज है न फैला हुआ अन्धकार है; न शून्य है, न आकारवान् है; न दृश्य है, न दर्शन है और न भूतों तथा भौतिक पदार्थों का समूह ही है। वह विलक्षण सद्वस्तु अनन्तरूप से स्थित है। नाम, रूप से रहित होने के कारण ही उसके स्वरूप का विशेषरूप से वर्णन नहीं किया जा सकता। उसका स्वरूप पूर्ण से भी पूर्णतर है। वह दृश्य-शून्य, चिन्मात्र, असीम, अजर, शिव, आदि मध्य से रहित है। उसके न कान हैं न जीभ, न नासिका है, न त्वचा है और न नेत्र ही हैं; तथापि वह सदा सभी जगह सुनता है, रस का आस्वादन करता है, सूँघता है, स्पर्श करता है और देखता है। जिस प्रकाश से पूर्वोक्त सदसत-स्वरूप प्रपंच दिखायी देता है, वह चैतन्यमय प्रकाश भी वही है। विविध सृष्टियों से विचित्र रूप धारण करने वाला भी वही है। आदि-अन्त से शून्य स्वरूप को पाकर सर्वत्र प्रकाशित होने वाला नित्य चेतन ब्रह्म भी वही है।

जो सामान्यतः तो सर्वत्र प्रकाशित होते हैं, परंतु अन्तःकरण में विशेषरूप से निरन्तर प्रकाशित होते हुए विद्यमान रहते हैं, जो चिन्मय दीप हैं तथा जिनके ही प्रकाश से तीनों लोक प्रकाशित होते हैं, जिनके बिना ये सूर्य आदि सारे प्रकाश अन्धकार के तुल्य हैं, जिनके रहने पर ही त्रिभुवनरूपी मृग-तृष्णा की प्रवृत्ति होती है (अर्थात जैसे सूर्य की किरणों के प्रकाशित होने पर ही उनमें मृग-तृष्णा के जल की प्रतीति होती है, उसी प्रकार जिन चिन्मय परमात्मा में ही त्रिलोकीरूपी भ्रम का उदय होता है), जगत की सृष्टि और संहार जिनके विलास हैं, जो सबसे महान् व्यापक हैं, स्पन्द और अस्पन्द (चल और अचल) जिनके स्वरूप हैं, जिनका स्वभाव निर्मल और अविनाशी है, वायु के समान जिनकी गतिशील और गतिहीन सर्वव्यापिनी सत्ता व्यवहारवश केवल नाम से ही भिन्न है, वास्तव में भिन्न नहीं है, वही चिन्मय परमात्मा हैं।

जो सदा ही जगा हुआ है, सर्वदा ही सोया हुआ है तथा जो सर्वत्र और सदा ही न तो सोया है और न जागा ही हुआ है, जिसका स्पन्द रहित (निश्चल) रूप कल्याणस्वरूप और शान्त है, जिसका स्पन्दनशील स्वरूप ही तीनों लोकों की स्थिति है, स्पन्द और अस्पन्द का विलास ही जिसका स्वरूप है; जो अद्वितीय एवं परिपूर्ण स्वरूप है, फूलों में सुगन्ध की भाँति सब पदार्थों में साररूप से स्थित है, विनाशशील वस्तुओं में भी अविनाशी रूप से विद्यमान है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.A.S) Jammu Collection

सम्पूर्ण वस्तुओं का प्रत्यक्ष करने वाली वृत्तियों में प्रकाशरूप से स्थित होकर भी जो श्वेत वस्त्र में स्थित श्वेतता की भाँति अग्राह्य है, जो वाग् आदि इन्द्रियों से रहित होने के कारण गूँगे के समान होता हुआ भी सब की वाणी की प्रवृत्ति में कारण होने से गूँगा नहीं है; जो मननरूप विकार से रहित होने के कारण पाषाण के समान होता हुआ भी मननशील है, नित्य तृप्त होता हुआ भी भोक्ता है और अकिंचन (क्रिया आदि से रहित) होता हुआ भी कर्ता है; जो अंगरहित है तथापि सम्पूर्ण लोकों के अंग जिसके अपने ही अंग हैं; जो सहस्त्रों भुजाओं और नेत्रों से युक्त है, अकिंचन रूप से स्थित होने पर भी जिसने सम्पूर्ण जगत को व्याप्त कर रक्खा है; जो इन्द्रिय-बल से हीन है तो भी जिससे सम्पूर्ण इन्द्रियों के व्यापार होते रहते हैं; जो मनन शून्य है तथापि जिससे ये मनोनिर्माण की रीतियाँ प्रकट होती हैं जिसका साक्षात्कार न होने से भ्रान्तिजनित संसार रूपी सर्प का भय बना रहता है तथा जिसका दर्शन (ज्ञान) हो जाने पर सारी आशाएँ और सम्पूर्ण भय सब ओर भाग जाते हैं; जैसे समुद्र से छोटी-छोटी लहरों के समूह से युक्त चंचल, उत्ताल तरंगें प्रकट होती रहती हैं, उसी तरह जिससे घट-पट आदि के रूप में सैकड़ों पदार्थों की श्रेणियाँ प्रादुर्भूत होती हैं; जैसे कड़े बाजूबंद, बहूँटा और नूपुर आदि के रूप में सुवर्ण ही अन्य-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार शत-शत घटादि पदार्थों के भ्रम से जो अन्य-सा भासित होता है; जैसे जल में प्रतिक्षण नष्ट होने वाली तरंग माला प्रकट होती रहती है, उसीप्रकार जिससे अन्य-सी, अतिरिक्त सी, पहले जैसी और नूतन-सी क्षणभंगुर दृश्य परम्परा स्फुरित होती है, उसे चिन्मयपरमात्मा ही समझो।

रघुनन्दन! तुम जिस रूप में स्थित होकर क्रिया, रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श और चेतन को जानते हो, वह प्रमाता चेतन भी वही है और जिससे जानते हो, वह भी परमात्म देव ही है। साधो! द्रष्टा, दर्शन और दृश्य के मध्य में साक्षीरूप से जिसका दर्शन होता है, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर अपना आत्मा ही समझो। श्रीराम! वह परब्रह्मपरमात्मा अजन्मा, अजर, अनादि, सनातन, नित्य, कल्याणमय, निर्मल, अमोघ, सबका परम वन्दनीय, अनित्य, समस्त कलनाओं से शून्य, कारणों का भी कारण, अनुभवरूप अवेद्य, ज्ञानस्वरूप, विश्वरूप तथा अन्तर्यामी है।

सातवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

आठवां सर्ग

परमार्थ-तत्त्व का लक्षण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! यह जगत न तो कभी परब्रह्म से उत्पन्न होता है और न उसमें लीन ही होता है। इसप्रकार केवल यह सद्ब्रह्म ही सदा अपने आप में प्रतिष्ठित है। ब्रह्म में जो शून्य शब्दार्थ की कल्पना की गयी है अर्थात उसे जो शून्य कहा गया है, वह अशून्य की अपेक्षा से है। वास्तव में वह अशून्यरूप (सत) है। उसमें शून्यता और अशून्यता की कल्पनाएँ कैसे सम्भव हैं। चेतन आकाशरूप इस ब्रह्म का प्रकाश केवल अपने अनुभव का ही विषय है। जो बुद्धि आदि के भीतर अन्तर्यामीरूप से स्थित है, उसका वही अनुभव करता है, दूसरा नहीं (क्योंकि वह स्वानुभवैकवेद्य है)। निश्चल होने के कारण सौम्य (शान्त) आकार वाले महासागर के जल में जिसप्रकार बड़ी-बड़ी लहरें विद्यमान रहती हैं, निराकार ब्रह्म में उसीके समान यह विश्व स्थित है। पूर्ण से पूर्ण का ही प्रसार होता है; जो पूर्ण में स्थित है, वह पूर्ण ही है। अतः विश्व कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ और जो उत्पन्न हुआ है, वह तत्स्वरूप (ब्रह्मरूप) ही है। वह परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म, अत्यन्त अणु से भी अधिक अणु, परम शुद्ध, सूक्ष्म, शान्त और आकाश के मध्य भाग से भी बढ़कर निर्मल है। दिशा, काल और परिमाण से उसका स्वरूप सीमित नहीं है; अतएव वह अत्यन्त विस्तृत (सर्व व्यापक) है। उसका आदि अन्त नहीं है। वह स्वयं प्रकाशस्वरूप है, दूसरे किसी प्रकाश से प्रकाशित होने योग्य नहीं है।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन्! अनन्त चेतनस्वरूप उस परमात्म तत्त्व का कैसा रूप है-इस विषय को आप फिर मुझ से कहिये, जिससे उसका भली-भाँति बोध हो जाय।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! महाप्रलय होने पर सम्पूर्ण कारणों का भी कारण परब्रह्म परमात्मा ही शेष रहता है। उसका वर्णन किया जाता है, सुनो। समाधि में निरोध के द्वारा जब मन की वृत्तियों का क्षय हो जाता है, तब मन के अपने स्वरूप का नाश करके जो अनिर्वचनीय स्वप्रकाश सद्रूप अवशिष्ट रहता है, वही उस अनन्त चिन्मय परमार्थ वस्तु का रूप है। जब दृश्य जगत नहीं रहता और दृश्य के अभाव से द्रष्टा भी विलीन हुआ-सा प्रतीत होता है, उस समय जो द्रष्टा, दृश्य और दर्शन-इस त्रिपुटी के लय का प्रकाशक साक्षी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रूप से अवशिष्ट रहता है, वह चिन्मय ब्रह्म ही उस परमार्थ वस्तु का स्वरूप है। जीवस्वरूपा चित-सत्ता का जो अचिन्तनीय चिन्मय निर्मल एवं शान्तस्वरूप है, वही उस परमार्थ वस्तु या परमात्मा का रूप है। आकाश का जो रहस्य (व्यापकत्व) है, शिला का जो तात्त्विकरूप घनत्व है तथा वायु का जो गूढ़ रूप अन्तर-बाहर में परिपूर्ण होना है, वही उस चेत्य-भिन्न (दृश्यरहित) चेतन आकाशस्वरूप परमात्मा का स्वरूप है। वेदन (बुद्धि-वृत्ति) का, प्रकाश (पदार्थों की स्फुरणा) का, दृश्य (विषय) का और तम (अज्ञान) का साक्षभूत जो अनादि-अनन्त वेदन (ज्ञान) है, वही उस परमात्मा का रूप है। ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञात-सामने प्रतीत होने वाली यह त्रिपुटी जहाँ उदित होती है, जिसमें स्थित रहती है और जिसमें ही लीन हो जाती है, वही उस परमात्मा का परम दुर्लभ रूप है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन्! जो 'इदम्' रूप से प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है और जिसका आप ब्रह्म में अभाव कहते हैं, वह यह दृश्य-जगत महाप्रलय होने पर कहाँ स्थित होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! जैसे वन्ध्या के पुत्र और आकाश में वन कभी नहीं होते, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण दृश्य जगत तीनों कालों में कभी अस्तित्व में नहीं आता। जगत न कभी उत्पन्न हुआ है और न उसका कभी नाश ही होता है। जिसकी पहले सत्ता ही नहीं है, उसकी उत्पत्ति कैसी, और उसके विनाश की चर्चा कैसी ?

श्रीरामजी ने पूछा-वन्ध्यापुत्र और आकाश-वृक्ष की कल्पना तो की ही जाती है। वह कल्पना जैसे उत्पत्ति और विनाश से युक्त है, उसी प्रकार यह जगत भी जन्म और नाश से युक्त क्यों नहीं होगा ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-जैसे सोने के कड़े में सुस्पष्ट दिखायी देने वाला यह कटकत्व वास्तव में है नहीं, सुवर्ण ही उसके रूप में भासित होता है, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा में जगत नाम की कोई वस्तु नहीं है (जिसे हम जगत कहते हैं, वह ब्रह्म ही है)। जैसे आकाश में जो शून्यता है, वह आकाश से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्म में प्रत्यक्ष उपलब्ध होने पर भी यह जगत उससे भिन्न नहीं है। जैसे कालिमा काजल से भिन्न नहीं है और जैसे शीतलता बर्फ से पृथक् नहीं है, उसी तरह परमपद-परमात्मा में पृथक् प्रतीत होने वाला जगत

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

नहीं है। जैसे शीतलता चन्द्रमा से और हिम से अलग नहीं होती, उसी प्रकार यह सृष्टि भी ब्रह्म से पृथक् नहीं है। जैसे मरु भूमि में प्रतीत होने वाली मृग-तृष्णा के नदी में जल नहीं है तथा जैसे नेत्रदोष से प्रतीत होने वाले द्वितीय चन्द्रमा में चन्द्रत्व नहीं है, उसी प्रकार निर्मल परमात्मा में प्रत्यक्ष दीखने पर भी जगत नाम की कोई वस्तु नहीं है। स्वप्न में-स्वप्न देखने वाले पुरुष के अन्तःकरण में जो स्वप्न जगत की भ्रान्ति होती है, वह जैसे संवित (ज्ञान) का विकास मात्र है, उसी तरह सृष्टि के प्रारम्भिक काल में ब्रह्म में ही इस जगत का विकास हुआ है। अतः यह उससे भिन्न नहीं है। जैसे द्रवत्व (तरलता) जल रूप ही है, स्पन्दन (कम्पन) वायु रूप ही है और जैसे आभास प्रकाशरूप ही है, उसी प्रकार भूत, भविष्य और वर्तमान-तीनों कालों में प्रतीत होने वाला जगत ब्रह्म रूप ही है। जिस प्रकार स्वप्न देखने वाले पुरुष के भीतर का चैतन्य ही ग्राम-नगर आदि-जैसा प्रतीत होता है, उसी प्रकार परमात्मा में उसका अपना चिन्मय स्वरूप ही जगत-सा भासित होता है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन्! यदि यह दृश्य रूपी विष उत्पन्न होकर भी स्वप्नगत जगत के समान मिथ्या ही है, तो इसकी इतनी सुदृढ़ प्रतीति कैसे हो रही है-यह बताइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम! यह जगत सर्वात्मक (ब्रह्ममय) ही है, ब्रह्म से भिन्न कदापि नहीं। जगत रूप में जो इसकी प्रतीति होती है, वह सर्वथा असत है। रघुनन्दन! यह प्रसिद्ध परमात्मा एक ही है। उसके विषय में द्वितीय होने की कोई कल्पना नहीं है। उस अद्वितीय परमात्मा में यह जगत जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है, वह तुम्हें आगे चलकर बताऊँगा। प्रिय श्रीराम! उसी से ये सारे दृश्य पदार्थ विस्तार को प्राप्त हुए हैं। यह परमात्मा ही यह व्यष्टि और समष्टि रूप जगत है। दृश्य वस्तुओं के दर्शन और मननीय वस्तु के मनन के जो-जो प्रकार हैं, उनके रूप में वह स्वयं ही उदित हो विलीन होता रहता है-उसी के आविर्भाव और तिरोभाव होते रहते हैं।

आठवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

नवाँ सर्ग

ब्रह्म की ही अखण्ड सत्ता का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं--रघुनन्दन! जैसे सुषुप्ति ही स्वप्नवत प्रतीत होती है, उसी प्रकार ब्रह्म ही इस सृष्टि के रूप में प्रतीति का विषय हो रहा है। एक पुरुष की वासनामात्र का कार्य होने से स्वप्न की घनी (सुदृढ़) प्रतीति नहीं होती; परंतु यह प्रपंच समष्टि की वासना का कार्य होने के कारण इसकी सुदृढ़ एवं क्रमबद्ध प्रतीति होती है। सर्वात्मक ब्रह्म ही इस प्रपंच का अधिष्ठान है। असीम प्रकाश स्वरूप जो अनन्त चैतन्यमणि (ब्रह्म) है, उसका सत्ता मात्र रूप ही यह सम्पूर्ण विश्व है।

पंचभूतों की जो तन्मात्राएँ हैं, वे ही जगत का बीज हैं। पंचतन्मात्राओं का बीज आदिमाया शक्ति है, जिसका परमात्मा से व्यवधान-रहित (साक्षात) सम्बन्ध है तथा वही जगत की स्थिति में हेतु है। इस प्रकार वह चिन्मय, अजन्मा एवं सबका आदिभूत परमात्मा ही माया द्वारा जगत का बीज होता है। माया के हट जाने पर वही अपने विशुद्ध रूप से सदा अनुभव में आता है। इसलिये यह जगद्-वैभव चिन्मय परमात्मरूप ही है।

जैसे स्वप्न में बिना बनाये ही नगर बन जाता है उसी प्रकार महाकाश रूपी महान् वन में जगद्रूपी वृक्ष बारंबार उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। जैसे स्वप्न देखने वाला पुरुष अपने लिये नगर का निर्माण-सा कर लेता है, उसी प्रकार यह चेतन आत्मा भी पृथ्वी आदि की सृष्टि कर लेता है। वास्तव में उस समय भी वह असंग चेतन आत्मा ही रहता है। जगत का बीज हैं पंचतन्मात्राएँ और उनका बीज है अविनाशी चेतन आत्मा। जो बीज है, उसी को फल समझो (क्योंकि उपादानकारण और कार्य में भेद नहीं है)। इसलिये सारा जगत ब्रह्ममय ही है। जो स्वरूप कल्पित है, वह सत्य कैसे हो सकता है। यदि पंचभूतों की तन्मात्राएँ ब्रह्मस्वरूपा हैं तो उनके कार्यरूप स्थूल पाँच महाभूतों को भी ब्रह्म ही समझो। इससे यह सिद्ध हुआ कि सदा से दृढ़मूल यह त्रिलोकी ब्रह्म ही है।

इस प्रकार यह जगत न कभी उत्पन्न होता है न उत्पन्न हुआ दिखायी देता है। जैसे स्वप्न एवं मनोरथ द्वारा निर्मित पुर असत होता हुआ भी सत-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार ब्रह्माकाशरूपी परम व्योममय चिन्मय आत्मा में जीवाकाशत्व असत होता हुआ भी सत-सा प्रतीत होता है, अर्थात उस ब्रह्ममय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥ तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥

महाकाश से अविभक्त होने पर भी विभक्त सा दीखता है। चिदात्मापरमेश्वर में कल्पित समष्टि-जीवाकाश अत्यन्त विस्तृत होता हुआ भी 'मैं चिनगारी की भाँति अत्यन्त सूक्ष्म तेज का कण हूँ' ऐसी भावना करने से वह अपने को वैसा ही (अणुरूप ही) अनुभव करने लगता है। आकाश में आत्मरूप से जिस स्थूलता का चिन्तन करता है, भावना द्वारा अपने को वैसा ही स्थूल समझने लगता है। जैसे संकल्प से कल्पित चन्द्रमा सत नहीं है, वैसे ही भावना द्वारा भावित वह रूप भी सत नहीं है, तथापि सत-सा प्रतीत होता है। जैसे स्वप्न देखने वाला मनुष्य सपने में अपने को पथिक के रूप में देखता है, उसी प्रकार वह चित्त की कल्पना से अपने में लिंग देह और भावी स्थूल शरीर की प्रतीति को भी धारण करता है। जैसे पर्वत बाहर स्थित होने पर भी दर्पण के भीतर स्थित हुआ-सा प्रतीत होता है, जैसे कुएँ के जल में प्रतिबिम्बित हुआ शरीर वही व्यवहारकर्ता-सा जान पड़ता है, जैसे दूर तक सुनायी देने योग्य शब्द भी सम्पुट (गुफा आदि) में अवरुद्ध होकर उसके भीतर ही रह जाता है, बाहर नहीं फैलने पाता तथा जैसे स्वप्न और मनोरथविषयक संवित देह के भीतर ही स्वप्न आदि देखती है-वे विषय बाहर होने पर भी अपने बाह्य रूप को त्याग कर ही शरीर के भीतर अन्तःकरण में भासित होते हैं, उसी प्रकार आग की चिनगारी के समान अणु उपाधि में स्वरूपतः कल्पित जो सूक्ष्म शरीर है, उसके भीतर स्थित हुआ यह जीवात्मा वासनामय देहादि-व्यवहार का अनुभव करता है।

मनोमय शरीर वाला जीव अपने मनोमय देहाकाश में ही स्थूलता की भावना करके स्थूल देहधारी हो गया है। वह अपनी कल्पना के भीतर ही स्थित हुए ब्रह्माण्ड का दर्शन करता है। मनोमय शरीरधारी जीव मन को ही आत्मा समझता है। उस आत्मभूत चित्त से अपने संकल्प के अनुसार अपने ही लिये गर्भरूपी गृह, देश, काल, कर्म तथा द्रव्य आदि की कल्पनाओं की भावना करता हुआ नाम आदि का निर्माता बनकर वह आतिवाहिक देहधारी जीव अपने द्वारा कल्पित विभिन्न नामों से उन-उन पदार्थों को और अपने को भी असत्य जगत-रूपी भ्रम में बाँधता है। जैसे मिथ्याभूत स्वप्न में झूठे ही अपना उड़ना प्रतीत होता है, उसी प्रकार असत्य जगत-रूपी भ्रम में ही यह जीवात्मा मिथ्या विकास को प्राप्त होता जान पड़ता है। वह कभी उत्पन्न नहीं हुआ है। इस ब्रह्माण्डरूपी भ्रम के उदित होने पर भी इसमें कभी कुछ उत्पन्न नहीं हुआ।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

उत्पन्न हुई कोई वस्तु दिखायी नहीं देती; केवल अनन्त, निर्मल ब्रह्माकाश ही सर्वत्र विद्यमान है। संकल्प द्वारा निर्मित नगर के समान यह दृश्य–प्रपंच सत–सा प्रतीत होने पर भी सत नहीं है। स्वयं उदित हुआ यह प्रपंच उस चित्र के समान है, जिसका किसी चित्रकार ने न तो निर्माण किया है और न उसमें रंग ही भरा है। यह बिना बनाये ही बनकर अनुभव में आ रहा है और सत्य न होकर भी सत्य–सा स्थित है। महाकल्प के अन्त में ब्रह्मा आदि के मुक्त हो जाने के कारण निश्चय ही वर्तमान कल्प के ब्रह्मा को कोई पूर्व जन्म की स्मृति नहीं रह जाती, अतः वह स्मृति इस जगत की उत्पत्ति में कारण नहीं हो सकती। इसलिये वर्तमान कल्प में जैसे ब्रह्मा संकल्पमय हैं, वैसे ही उनसे उत्पन्न हुआ यह जगत भी संकल्पजन्य ही माना गया है। इस पृथ्वी आदि की सृष्टि के विषय में जो इस तरह साक्षी का अनादि काल का अनुभव है, उसी को यदि कारण माना जाय तो साक्षिवेद्य स्वप्नदृष्ट पृथ्वी आदि पदार्थ जैसे जागरण अवस्था में मिथ्या सिद्ध होते हैं, उसी प्रकार अनादि साक्षी के संस्कार से उत्पन्न जगत भी मिथ्या ही सिद्ध होगा।

जैसे जिस किसी भी देश या काल में द्रवत्व जल से भिन्न नहीं होता, उसी प्रकार किसी भी देश या काल में यह सृष्टि परमात्मा से भिन्न नहीं है। इस प्रकार यह सृष्टि भ्रम से ही प्रौढ़ (सुदृढ़ या घनीभूत) प्रतीत होती है। वास्तव में यह विषमता रहित परमात्मा ही इसके रूप में स्थित है। जो ब्रह्माण्ड प्रतीत होता है, वह अत्यन्त निर्मल चिन्मय ब्रह्म ही है (उससे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है) इसी तरह यह दृश्य–जगत, जो आत्मा में सर्वथा कल्पित भ्रम रूप है, शान्त, आधार रहित, आधेय–शून्य, अद्वैत तथा एकत्व के व्यवहार से भी शून्य ब्रह्मरूप ही है। यद्यपि इस जगत–रूपी भ्रम की प्रतीति होती है, तथापि उसके रूप में कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हुई है। चारों ओर से शून्य जो निर्मल चेतनाकाश (ब्रह्म) प्रतिष्ठित है, वही सदा सर्वत्र अपने स्वरूप से स्थित है। उसमें न सम्पूर्ण संसार है, न उसका कोई आधार है, न आधेय है; न दृश्य है न उसमें द्रष्टापन है; न ब्रह्माण्ड है न ब्रह्मा है और न कहीं कोई वितण्डावाद ही है। न जगत है न पृथ्वी है। यह सम्पूर्ण दृश्य शान्तस्वरूप निर्मल ब्रह्म ही है। इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा ही अपने में अपने से विकास को प्राप्त होता है।

जैसे तरल होने के कारण जल ही अपने में आवर्तरूप से प्रतीत होता

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है, उसी प्रकार चित-रूप होने के कारण आत्मा ही अपने में जगत-सा प्रतीत होता है। जगत इससे कोई भिन्न पदार्थ नहीं है। असत होता हुआ ही यह प्रतीति का विषय होता और यहाँ सत-सा अनुभव में आता है। अन्त में (महाप्रलय के समय) यह असत होता हुआ ही नष्ट होता है। जैसे स्वप्न में जो अपना मरण दिखायी देता है वह जाग्रत काल में असत ही सिद्ध होता है, उसी प्रकार अज्ञान अवस्था में प्रतीत होने वाला यह दृश्य-प्रपंच ज्ञान होने पर असत ही सिद्ध होता है। (अथवा प्रलय काल में जो इसका संहार होता है, वह स्वप्नावस्था में प्रतीत होने वाले अपने ही मरण के समान मिथ्या है।) अथवा ब्रह्म का अपना ही स्वरूप होने के कारण यह दृश्य-प्रपंच सन्मात्र, अनामय, अखण्डित (परिपूर्ण), अनादि, अनन्त तथा चेतन आकाशरूप ब्रह्म ही है। (उससे अतिरिक्त इसकी सत्ता ही नहीं है।)

नवाँ सर्ग समाप्त

दसवाँ सर्ग

जगत की प्रथम सत्ता का खण्डन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे श्रीरामजी! इस प्रकार अहंता आदि दृश्य समूह भूत जगत वास्तव में कोई वस्तु नहीं है। कभी उत्पन्न न होने के कारण इसका अस्तित्व है ही नहीं और जिसका अस्तित्व है, वह तो परब्रह्म परमात्मा ही है। यदि स्वप्न में दिखायी देने वाला पर्वत अविनाशी हो, तो यह जगत उसी के समान अविनाशी है। यदि स्वप्न में प्रतीत होने वाला नगर स्थिर हो तो उसी तरह यह जगत भी स्थिर है। (तात्पर्य यह कि जैसे वे अविनाशी और स्थिर नहीं हैं, वही दशा इस जगत की भी है।) यदि चित्रकार का चित्त स्थिर हो और उसमें वासनामय स्थिर चित्र बने तो उस चित्र में कल्पना द्वारा अंकित सेना के समान ही इस जगत की आकृति है अर्थात जैसे उस चित्र में अंकित सेना अस्थिर एवं असत्य है, उसी तरह यह जगत भी है। आदि-प्रजापति का भी, जो स्वयम्भू नाम से पहले-पहल विख्यात हुआ, कोई कारण नहीं है; क्योंकि उसके पूर्वजन्म के कर्म शेष नहीं हैं। महाप्रलय होने पर पूर्व काल के सभी प्रजापति मुक्त हो जाते हैं, अतः उनमें पूर्वजन्म का कर्म कैसे रह सकता है। ब्रह्म ही सबसे प्रथम होने वाला हिरण्य गर्भ है। वही विराट् है और विराट् ही सृष्टि स्वरूप है। इस तरह वह चिन्मय परमात्मा ही जीवाकाश रूप से स्थित है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Scientific Publication Collection
तत्वोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तत्वोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

जिससे पृथ्वी आदि असत प्रपंच की उत्पत्ति होती है। (तात्पर्य यह कि समस्त जगत ब्रह्म ही है, ब्रह्म से भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं।)

केवल एकमात्र शुद्ध चिद्घन निर्मल एवं सर्वव्यापक ब्रह्म ही सदा सर्वत्र विराजमान है। वह सर्वशक्तिमान् होने से जिन-जिन कौशलपूर्ण कल्पनाओं की भावना करता है, उन्हें स्वयं ही प्राप्त करता है-स्वयं तद्रूप हो जाता है। जैसे हाथ में दीपक लेकर ढूँढ़ा जाय या देखा जाय तो अन्धकार अदृश्य हो जाता है, उसका कहीं पता नहीं लगता, उसी प्रकार ज्ञान का प्रकाश छा जाने पर अज्ञानरूपी अन्धकार का तत्त्व ज्ञात नहीं होता-उसका पता ही नहीं चलता। इसी प्रकार अखण्ड, व्यवधानशून्य, अनादि, अनन्त तथा सर्वशक्तिमान् जीवात्मा, जो कभी बाधित न होने वाले महाचैतन्यरूपी सारभूत अंश से रूपवान् प्रतीत होता है, ब्रह्म ही है-उससे भिन्न नहीं है। वह ब्रह्म सब प्रकार से महान् है-देश, काल और परिणाम से परिच्छिन्न नहीं है इसलिये कहीं उसमें भेद की कल्पना नहीं है और जो भेद की कल्पना होती है, वह भी ब्रह्म ही है, उससे भिन्न नहीं; क्योंकि सर्वत्र ऐसा ही अनुभव होता है। चेतना की जो यह आकाश से भी सूक्ष्म शक्ति सब ओर फैली है, वह स्वभाव से ही पहले इस अहंता (अहंकार) का दर्शन (अनुसंधान) करती है। जैसे जल अपने आप में स्वयं ही बुद्बुद और तरंग आदि के रूप में स्फुरित होता है, उसी प्रकार जब आत्मा अपने आप में स्वयं ही स्फुरणशील होता है, तब उस चेतन आत्मा की यह चिच्छक्ति उस सूक्ष्म अहंता का दर्शन (अनुसंधान) करती है, जो उत्तरोत्तर स्थूलता को प्राप्त होती हुई अन्त में ब्रह्माण्ड का आकार धारण कर लेती है। चेतन की चमत्कारकारिणी जो चितिशक्ति है, वह स्वयं अपने आप में जिस सुन्दर चमत्कार की सृष्टि करती है, उसी का नाम जगत रख दिया गया है। रघुनन्दन! चेत्य (दृश्य) भूत जो अहंकार है, उसकी कल्पना चैतन्य के अधीन है अर्थात चैतन्य की ही वह कल्पना है तथा तन्मात्रा आदि जो जगत है, उसकी कल्पना अहंकार के अधीन है, इस प्रकार अहंकार और जगत चैतन्य रूप ही हैं। फिर उस चैतन्य में द्वैत और अद्वैत कहाँ रहे।

ईहा अर्थात मन की चेष्टा (संकल्प) रूप जो सारा सूक्ष्म जगत है, वह शून्य ही है तथा इन्द्रिय और उनके अधिष्ठाता देवताओं का निवासभूत जो साकार एवं स्थूल विश्व है, वह भी शून्य ही है; क्योंकि दोनों ही चैतन्य के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LF S) Jammu Collection

चमत्कार रूप (चैतन्य ही) हैं। इसलिये वे चैतन्य से भिन्न नहीं हैं। जो वस्तु जिस वस्तु का विलास होती है, वह उससे कभी भी भिन्न नहीं होती। अवयव युक्त जल आदि के विलास भूत तरंग आदि में भी ऐसा देखा गया है। फिर अवयवरहित चेतन के विलास में अभिन्नता हो, इसके लिये तो कहना ही क्या है। सदा अचेत्य (अदृश्य अथवा रूप से रहित), नामरहित और सर्वव्यापक चैतन्य शक्ति का जो रूप है, उससे स्फूर्ति प्राप्त करने वाले जगत का भी वही रूप है। (चैतन्य की ही जो भिन्न-भिन्न आकार में स्फुरणाएँ होती हैं, वे ही जगत कही गयी हैं; अतः यह जगत उस चैतन्य शक्ति या चेतन आत्मा से भिन्न नहीं है।) श्री राम! चेतनआत्मा का जो चैतन्य है, उसी को जगत समझो। वह चैतन्य जगत से पृथक् नहीं है। यदि चैतन्य को जगद्भाव से रहित या भिन्न माना जाय तो चित चित नहीं रह जायगा-चेतन को चेतन नहीं कहा जा सकेगा। (क्योंकि अपने धर्म या स्वरूप भूत जगत को चेतित-प्रकाशित करने के कारण ही उसको 'चित' या 'चेतन' कहते हैं) अतः चेतन से जगत का प्रतीति मात्र से ही भेद है, वास्तव में भेद नहीं है। ऐसी परिस्थिति में जगत की पृथक् सत्ता कैसे सिद्ध हो सकती है।

चैतन्य प्रधान अहंकार कर्ता है और स्पन्दप्रधान (हिलना-चलना आदि चेष्टामय) प्राण कर्म (क्रिया) है। इन दोनों में कोई भेद नहीं है; क्योंकि कर्ता का अपनी क्रिया से भेद नहीं देखा जाता। चित का स्पन्दनमात्र ही क्रिया (प्राण) है, उससे संयुक्त पुरुष ही 'जीव' कहा गया है। (इस प्रकार जीव और जगत में भी भेद नहीं है।) कार्य-कारण आदि भावरूप जगत चेतन आत्मा से भिन्न नहीं है। वह चैतन्य प्रकाश की एक झलक मात्र है। अतः जहाँ सब भेदों का लय हो गया है, वह परमात्मा ही जगत है, यह सिद्ध हुआ। इस प्रकार तत्त्व ज्ञान हो जाने पर यह निश्चय हो जाता है कि मैं अच्छेद्य हूँ (कोई शस्त्र मुझे काट नहीं सकता), मैं अदाह्य हूँ (मुझे आग जला नहीं सकती), मैं अशोष्य हूँ (हवा मुझे सुखा नहीं सकती) तथा मैं नित्य सर्वव्यापी, सुस्थिर और अचल हूँ। जैसे अपने भ्रम से औरों को भ्रम में डालते हुए विवादशील मनुष्य परस्पर विवाद करते हैं, उसी प्रकार जो अज्ञानी हैं, वे ही इस परमात्मतत्त्व के विषय में वाद-विवाद करते हैं। हम लोग तो भ्रमरहित हो गये हैं। अतः हमारे लिये विवाद का अवसर ही नहीं है। अज्ञानी लोगों ने जिसकी सत्ता को दृढ़तापूर्वक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modkerji sharma (I F S) Jammu Collection

मान रक्खा है, वह दृश्य जगत उनकी दृष्टि में मूर्त एवं सत्य है; अतः उन्हीं की भावना के अनुसार उसमें पृथक् विकार आदि हो सकते हैं। परंतु आत्मज्ञानी की दृष्टि से जो निराकार, असत्य एवं चिन्मय आकाश रूप है, उसमें आत्मा से पृथक् विकार आदि की प्रतीति कैसे सम्भव है। चेतन आत्मा स्वयं अपने स्वरूप में किसी प्रकार का विकार न आने देकर विचित्र आकाश के रूप में आविर्भूत होता है। तत्पश्चात वह चेतन स्वयं ही आकाशजनित वायु होकर विलक्षण स्पन्दन (कम्पन) के साथ प्रकट होता है। इसके बाद (जिसकी उत्पत्ति की चर्चा अभी की जायगी, उस तेजस्तत्त्व के रूप में प्रादुर्भूत हुआ) चेतन स्वयं जल तत्त्व बनकर विचित्र विकास को प्राप्त होता है। वह जल धरती खोद कर निकाले गये कूप, तड़ाग आदि के जलसे भिन्न होता है (क्योंकि पृथ्वी की सृष्टि से पहले उसका उस कूप आदि से सम्बन्ध होना सम्भव नहीं है)। जलतत्त्व की सृष्टि के बाद वह चेतन स्वयंही सुवर्ण, रजत आदि विचित्रधातुओं से पूर्ण पृथ्वी तत्त्व को–देवता, असुर एवं मनुष्य आदि के शरीर भाव को भी प्राप्त हुआ।

सदा उदित रहने वाला चेतनरूपी चन्द्रमा स्वयं ही अपने विचित्र रसोल्लास से युक्त चाँदनी और महान् चिन्मय प्रकाश बनकर प्रकट हुआ। अपने चैतन्यस्वरूप के ज्ञान के आलोक से दृश्य–प्रपंच रूपी अज्ञानान्धकार के नष्ट हो जाने पर वह चेतनआत्मा रूपी चन्द्रमा स्वयं ही पूर्णता को प्राप्त होकर उदित एवं प्रकाशित होता है और स्वयं ही जड़तावश स्थावर आदि पदार्थों में अहंभाव करने से सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है। चिन्मय महाकाशरूप ब्रह्म स्वयं ही अविचार–दशा में स्पन्दनशील प्राण आदि में आत्म–भाव की कल्पना करने पर स्पन्दी अर्थात् संसारी हो जाता है। फिर विचार करने से 'मैं चेतन ही हूँ' इस प्रकार जब चैतन्य ज्ञान का उदय होता है, तब वह पुनः पूर्ववत अपने स्वरूप भूत चैतन्य में ही प्रतिष्ठित होता है। यह जगत चेतनरूपी तेज का प्रकाश है। अतः ब्रह्मदृष्टि से तो यह ब्रह्मस्वरूप है, किंतु जगत–दृष्टि से यह सर्वथा अस्तित्व शून्य है। जगत चेतनरूपी एकमात्र आकाश की शून्यता है। ब्रह्मरूप से यह सत है और जगत–रूप से असत। जगत चेतनरूपी आलोक का महान् रूप है। ब्रह्म दृष्टि से वह सत है और उससे भिन्न रूप में उसकी सत्ता का सर्वथा अभाव है। जगत चेतनरूपी वायु का स्पन्दन मात्र है। यह जगन्मयी रेखा चेतनरूपी अग्नि की उष्णता है (जैसे अग्नि का उष्णता से भेद नहीं है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसीप्रकार चेतन का जगत से)। यह जगत चेतनरूपी जल का द्रवत्व (तरलता) है, चिन्मय इक्षुदण्ड का माधुर्य है, चैतन्यरूप हिम की शीतलता है, चेतनरूपी ज्वाला की लपट है, चैतन्यमयी सरिता की तरंग है और चेतनरूपी सुवर्ण का बना हुआ कंकण है, चेतन की सत्ता ही इस जगत की सत्ता है। जैसे आकाश में मल नहीं है-वह सर्वथा निर्मल है, उसीप्रकार चेतन परमात्मा में भेद और विकार आदि नहीं हैं-वह सर्वथा अखण्ड एवं निर्विकार है। इसप्रकार ये तीनों लोक सतआत्मा का स्वरूपभूत होने से सत है, अन्यथा इनका कोई अस्तित्व नहीं है।

चिन्मय परमात्मा में अवयव और अवयवी-इन दोनों शब्दों के अर्थ खरगोश के सींग की भाँति असत हैं। सम्पूर्ण पदार्थ-समूहों के अधिष्ठानभूत चेतन आकाशमय परमात्मा में इस भूताकाशजनित वायु आदि जगतरूपी मल की प्रतीति होती है; परंतु जब असंग भूताकाश से ही उसके कार्यभूत वायु आदि का सम्बन्ध नहीं है, तब चेतन महाकाशस्वरूप परमात्मा में इस प्रपंच की सत्ता असत्ता तथा तू, मैं आदि भावों के सम्बन्ध कैसे हो सकते हैं ? संसार में जितने कार्य हैं, उन सबके समस्त कारण-समूहों का आदि कारण ब्रह्मा है। चित्त से उत्पन्न मनोरथजनित सारे संकल्प-विकल्प असत होते हैं, अतः चित्त स्वभाव से ही किसी का कारण नहीं है। वह अकारणरूप ही है और वही ब्रह्मा है। यदि हम कहें कि 'चेत्य जगत के असत होने पर चेतन भी असत हो जायगा; क्योंकि वह अपने स्वरूप भूत चेत्य से पृथक् नहीं है', तो यह ठीक नहीं। चेतन की असत्ता तो वाणीमात्र से भी सिद्ध नहीं की जा सकती; क्योंकि चेतन आत्मा अनुभव से सिद्ध है। जो है, उसका अवश्य उदय होता है, जैसे बीज से अंकुर का। यह बात प्रत्यक्ष देखी गयी है। (अतः यह सिद्धान्त स्थिर हुआ कि परमात्मा की सत्ता से ही जगत की सत्ता है, स्वतन्त्र नहीं।)

महर्षि वसिष्ठ जब इतनी बात कह चुके, तब दिन बीत गया। सूर्य अस्ताचल को चले गये। मुनियों की वह सभा सायंकालिक नित्यकर्म करने के लिये स्नान करने के उद्देश्य से महर्षि को नमस्कार करके उठ गयी। फिर जब रात बीती, तब प्रातःकाल के सूर्य की किरणों के साथ-साथ वह मुनिमण्डली पुनः सभा भवन में आकर बैठ गई।

दसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

ग्यारहवाँ सर्ग

राजा पद्म तथा रानी लीला

जैसे समुद्र के भीतर जल के स्पन्द (हलन-चलन आदि) जल के स्वभाव से च्युत हुए बिना ही लहरों के वेग के रूप में प्रकट होते हैं, उसीप्रकार चेतन परमात्मा में दृश्य जगत् की प्रतीतियाँ होती रहती हैं। जैसे स्वप्न और संकल्प (मनोरथ) में प्रतीत होने वाले घट-पट आदि पदार्थ अनुभव में आने पर भी वास्तव में हैं नहीं, उसी प्रकार चेतनाकाशरूपी परब्रह्म परमात्मा में दृष्टिगोचर होने वाले ये पृथ्वी आदि जगत इन्द्रियों के अनुभव में आने पर भी वास्तव में हैं नहीं। जैसे मरुभूमि में सूर्य की किरणों के अन्तर्गत दीखने वाली जल की नदी (मृगतृष्णा) में कहीं भी जल का होना सम्भव नहीं है, उसीप्रकार इस विज्ञानाकाश स्वरूप जगत में मूर्तरूप का होना कदापि सम्भव नहीं है। जिसमें मूर्तरूप का ग्रहण नहीं होता तथा जो संकल्प कल्पित नगर के समान मिथ्या है, उस जगत में जो दृश्यता की प्रतीति होती है, वह मरुमरीचिका में दृष्टिगोचर होने वाली नदी के समान भ्रान्तिरूप ही है। इस जगत का जो दर्शनीय-सा दृश्य वैभव है, उसे साक्षिभूत चैतन्यमयी तराजू के एक पलड़े में रक्खा जाय और दूसरी ओर स्वप्न को रखकर सार और असार का विवेचन करने वाली बुद्धिरूप काँटे से यदि तौला जाय तो वह दृश्य वैभव स्वप्न की भाँति कल्पनारहित (असत्य) होकर आकाश की भाँति शून्यरूप अथवा चेतनाकाशमय ब्रह्मरूप में ही स्थित होता है।

अज्ञानियों की जो समझ है, उसी में 'जगत' शब्द का ब्रह्म से भिन्न अर्थ भासित होता है। वास्तव में जगत, ब्रह्म और ख (आत्मा)-इन शब्दों के अर्थ में कोई भेद है ही नहीं। इसलिये यहाँ जगत आदि कोई भी दृश्य उत्पन्न नहीं हुआ है। नाम और रूप से रहित चेतन ब्रह्म ही ज्यों-का-त्यों (निर्विकार भाव से) विराजमान है। इस रीति से मायामय महाकाश में स्थित यह जगत आवरण शून्य चेतन आकाशरूप परमात्मा ही है। इस विषय में मण्डपाख्यान सुनाया जाता है, जो कानों के लिये आभूषण रूप है। तुम ध्यान देकर इसे सुनो।

पूर्व काल में इस भूतल पर पद्म नाम से प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, वे राजलक्ष्मी से सम्पन्न और अनेक पुत्रों से युक्त होते हुए भी विवेकशील थे। ये मर्यादा का पालन करने में समुद्र और दोषरूपी तिनकों को जला डालने के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

लिये अग्नि के समान थे। जैसे मेरुपर्वत देवताओं का आश्रय है, वैसे ही वे विद्वानों के समुदाय को आश्रय देने वाले थे। जैसे पूर्ण चन्द्रमा के उदय से

महासागर उल्लसित हो उठता है, उसीप्रकार उनके सुयश के विस्तार से संसार का आनन्द-वर्धन होता था। वे सद्गुणरूपी हंसों के लिये मान-सरोवर थे। संग्राम-भूमि में शत्रुरूपी झाड़ियों को कम्पित कर देने के लिये प्रचण्ड पवन थे। मनरूपी मतवाले हाथी को वश में करने के लिये सिंह थे। समस्त विद्यारूपी वनिताओं के प्राणवल्लभ और सम्पूर्ण आश्चर्यमय गुणों की खान थे। देवद्रोही दैत्यों के सैन्य-समुद्र को मथ डालने के लिये शोभाशाली मन्दराचल थे। भगवान् विष्णु के समान साहस और उत्साह से सम्पन्न थे। सौजन्यरूपी कुमुदिनी के विकास के लिये शीत रश्मि चन्द्रमा थे तथा दुराचाररूपी विष की बेलों को भस्म करने के लिये धधकती हुई आग थे। राजा पद्म की पत्नी का नाम था लीला। वह बड़ी सुन्दरी तथा सब प्रकार के सौभाग्य से सम्पन्न थी। लीला इस भूतल पर प्रकट हुई लक्ष्मी के समान शोभा पाती थी। पति-सेवा के जितने प्रकार हो सकते हैं, उन सबमें निपुण होने के कारण उसकी मनोरमता बढ़ गयी थी। सबके अनुकूल बर्ताव करने के कारण वह सभी को प्रिय एवं मनोहर जान पड़ती थी। वह सदा मीठे वचन बोला करती थी और आनन्द-मग्न होकर मन्द-मन्द गति से चलती थी। जब वह मुस्कुराती, उस समय ऐसा लगता, मानो दूसरे चन्द्रमा का उदय हो गया है। उसके अंग गौरवर्ण के थे। पति की प्राण-वल्लभा लीला राजा के खिन्न होने पर खिन्न हो उठती थी, उनके प्रसन्न होने पर आनन्दमग्न हो जाती थी और जब वे किसी चिन्ता से व्याकुल होते, तब वह भी चिन्ता के कारण घबरा उठती थी। इस प्रकार सारी बातों में तो वह पति के प्रतिबिम्ब की भाँति उनका अनुकरण एवं अनुसरण करती थी; परंतु उनके कुपित होने पर वह केवल भयभीत होती थी (क्रोध नहीं करती थी)।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रघुनन्दन! लीला अपने पति की अनन्यप्रिय–एकमात्र वल्लभा थी अथवा उसका अपने पति में अनन्य अनुराग था। ऐसी भार्या के पति महाराज पद्म ने

भूतल की अप्सरा–सी मनोहर अपनी उस प्रेयसी के साथ स्वाभाविक प्रेमरस का आस्वादन करते हुए विहार किया। इस प्रकार सुख में पली हुई राजा की प्रणयिनी और प्रियतमा, सुन्दर भौंहों और शुभ संकल्प से सुशोभित होने वाली लीला ने एक दिन मन–ही–मन विचार किया कि 'ये मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय पतिदेव पृथ्वीनाथ महाराज, जो जवानी के उल्लास से परिपूर्ण और परम कान्तिमान् हैं, किस उपाय से अजर–अमर हो सकते हैं ? मैं तप, जप और यम–नियम आदि चेष्टाओं से ऐसा प्रयत्न करूँ, जिससे ये चन्द्रमा के समान मनोहर मुख वाले राजा अजर–अमर हो जायँ। पहले मैं ज्ञान, तपस्या और विद्या में बढ़े–चढ़े ब्राह्मणों से पूछती हूँ कि कौन–सा ऐसा उपाय है, जिससे मनुष्यों की मृत्यु न हो।' ऐसा विचार करके उसने पूर्वोक्त गुण वाले ब्राह्मणों को बुलवाया और उनकी पूजा करके नतमस्तक हो बारंबार पूछा–'विप्रगण! मुझे और मेरे पति को अमरत्व कैसे प्राप्त हो सकता है ?'

ब्राह्मण बोले–देवि! तप, जप और यम–नियमों का पालन करने से सिद्धों की समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं; परंतु उनसे अमरत्व कदापि नहीं मिल सकता।

ब्राह्मणों के मुख से यह बात सुनकर अपने प्रियतम के भावी वियोग से भयभीत हो लीला ने अपनी बुद्धि से ही फिर तत्काल इस प्रकार सोचना आरम्भ किया–'यदि दैववश पति के सामने मेरी मृत्यु हो गयी, तब तो मैं सम्पूर्ण दुःखों से छूटकर परमात्मा में सुखपूर्वक स्थित हो जाऊँगी; किंतु यदि एक सहस्त्र वर्ष के बाद पहले मेरे पति ही चल बसे तो मैं ऐसा यत्न करूँगी, जिससे उनका जीव घर से बाहर न जा सकेगा। फिर तो मैं अपने अन्तःपुर के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मण्डप में, जहाँ मेरे पतिदेव का जीव विचर रहा होगा, पति के दृष्टिपथ में रहकर सदा सुखपूर्वक निवास करूँगी। अपने संकल्प की सिद्धि के लिये मैं आज से ही जप, उपवास और नियमों द्वारा ज्ञानमयी सरस्वती देवी की तब तक आराधना करती रहूँगी, जब तक कि वे पूर्णरूप से संतुष्ट न हो जायँ।'

ऐसा निश्चय करके उस श्रेष्ठ नारी ने अपने स्वामी को बताये बिना ही नियमपरायण हो शास्त्रीय विधि के अनुसार उग्र तपस्या आरम्भ कर दी।

तीन-तीन रात बीत जाने पर वह भोजन करती और देवता, ब्राह्मण, गुरु, ज्ञानी एवं विद्वानों की पूजा में तत्पर रहती थी। वह अपने शरीर को सदा स्नान, दान, तप और ध्यान में लगाये रखती थी। सम्पूर्ण शास्त्रीय कर्मों का फल अवश्य मिलता है, ऐसी आस्तिकतापूर्ण बुद्धि से युक्त हो वह सदाचार का पालन करती और पति के क्लेशों का निवारण करने में दत्तचित्त रहती थी। उन दिनों भी वह पहले की ही भाँति ठीक समय पर पूरी चेष्टा और लगन के साथ शास्त्रोक्त रीति से क्रमशः पति की सेवा-शुश्रूषा करके उन्हें संतुष्ट रखती थी। अतः अपनी वर्तमान स्थिति का उसने पति को पता नहीं लगने दिया। इस तरह नियम-पालन से सुशोभित होने वाली उस भोली-भाली लीला ने लगातार तीन सौ रातों तक कष्टप्रद चेष्टाओं के द्वारा तपस्या का निर्वाह किया। सौ त्रिरात्र व्रतों की पूर्ति हो जाने पर उसके द्वारा पूजित और सम्मानित हो गौरवर्णा भगवती वागीश्वरी सरस्वती संतुष्ट हो उसके सामने प्रकट हुईं और बोलीं।

श्रीसरस्वतीजी ने कहा-बेटी! तुमने जो निरन्तर तपस्या की है, वह तुम्हारी पति-भक्ति के कारण अधिक उत्कर्ष-शालिनी हो गयी है। उससे मैं तुम पर बहुत संतुष्ट हुई हूँ। अतः तुम मुझसे कोई मनोवाञ्छित वर ग्रहण करो।

रानी बोली-देवि! आप जन्म और जरारूपी अग्नि की ज्वालाओं से उत्पन्न दाहरूपी दोष का शमन करने के लिये चन्द्रमा की प्रभा के समान हैं, आपकी जय हो। आप हृदय की अज्ञानान्धकार-राशि का निवारण करने के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

लिये सूर्यदेव की प्रभा के तुल्य हैं, आपकी जय हो। अम्बा! मातः! जगदम्बिके! इस दीन सेविका का आप संकट से उद्धार करें। शुभे! मैं आपसे जो दो वर माँगती हूँ, उन्हें मुझे देने की कृपा कीजिये। उनमें पहला वर तो यह है कि जब मेरे पतिदेव का शरीर छूट जाय, तब उनका जीव मेरे इस अन्तःपुर के मण्डप से बाहर न जाय। और महादेवि! मैं दूसरा वर यह माँगती हूँ कि जब-जब मैं आपसे वर पाने के उद्देश्य से दर्शन देने की प्रार्थना करूँ, तब-तब आप मुझे अवश्य दर्शन दें।

लीला की यह बात सुनकर जगन्माता सरस्वती ने कहा-'बेटी! तुम्हारी यह अभिलाषा पूर्ण हो।' यह कहकर वे स्वयं वहाँ से अदृश्य हो गयीं-ठीक वैसे ही जैसे महासागर में लहर उठकर स्वयं ही शान्त हो जाती है। तदनन्तर जिसकी इष्टदेवी संतुष्ट हो गयी थीं, वह राजरानी लीला संगीत सुनकर मस्त हुई मृगी के समान आनन्द में मग्न हो गयी। इसके बाद पक्ष जिसके नेमिगोलक, मास जिसके मध्यगोलक तथा ऋतु जिसके नाभिगोलक हैं, दिन जिसके अरे हैं, वर्ष जिसका अक्षदण्ड (धुरा) है और क्षण जिसके नाभि का छेद है, ऐसे गतिशील कालचक्र के चलते रहने से लीला के पति की चेतना सूखे पत्ते के रस की भाँति देखते-ही-देखते शरीर में सहसा अदृश्य हो गयी।

बात यह हुई कि किसी शत्रु ने आक्रमण किया और युद्ध में घायल होकर उनका शरीर धराशायी हो गया। वे अन्तःपुर में लाये गये और वहीं मर गये। इस प्रकार राजा की मृत्यु हो जाने पर लीला अन्तःपुर के मण्डप में जल शून्य कमलिनी की भाँति मुरझा गयी-उसका मुख मलिन हो गया। विषतुल्य उस निःश्वास से उसका सारा अधर-पल्लव सूख गया। वह बेचारी बाण से बिंधी हुई हरिणी के समान छटपटाती हुई मृत्यु-तुल्य अवस्था को पहुँच गयी। तत्पश्चात् जलाशय के सूख जाने से व्याकुल हुई मछली के ऊपर जैसे आषाढ़ की पहली वर्षा अनुकम्पा करती है, उसीप्रकार पति के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वियोग से अत्यन्त विह्वल हुई लीला के ऊपर दयामयी सरस्वती ने आकाशवाणी के रूप में कृपा की।

ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त

बारहवाँ सर्ग

लीला का राजवैभव को देखना

श्रीसरस्वतीजी ने कहा-बेटी! अपने पति के शव को तुम फूलों के ढेर में छिपाकर रक्खो। ऐसा करने से तुम फिर अपने इस पति को प्राप्त कर लोगी। न तो ये फूल मुरझायेंगे और न तुम्हारे पति का यह शव ही सड़ गल कर नष्ट होने पायेगा। फिर थोड़े ही दिनों में यह शव पुनः जीवित होकर तुम्हारे पति का उत्तरदायित्व सँभालेगा। इसका जीव जो आकाश के समान निर्मल है, तुम्हारे इस अन्तःपुर के मण्डप से शीघ्र बाहर नहीं निकल सकेगा।

तब अपने पति को वहीं अन्तःपुर में फूलों के ढेर में छिपाकर रखने के पश्चात् रानी को कुछ आश्वासन मिला; परंतु घर में निधि (खजाने) को रखकर भी उसके उपयोग से वंचित होने के कारण दरिद्रतापूर्ण जीवन बिताने वाली स्त्री के समान लीला भी पति की सेवा के सुख से वंचित होने के कारण उस विषय में दरिद्र ही बनी रही। फिर उसीदिन आधी रात के समय जब सभी परिजन (सेवकगण) निद्रा से अचेत हो गये, लीला ने अन्तःपुर के उस मण्डप में विशुद्ध ध्यान से युक्त अन्तःकरण के द्वारा ज्ञानमयी भगवती सरस्वतीदेवी का बड़े दुःख से आवाहन किया। देवी उसके पास आ गयीं और बोलीं-'बेटी! तुमने क्यों मेरा स्मरण किया है ? तुम क्यों अपने मन में शोक को स्थान देती हो ? जैसे मृगतृष्णा में झूठे ही जल की प्रतीति होती है, उसी प्रकार ये संसाररूपी भ्रम मिथ्या ही प्रतीत होते हैं।'

लीला ने कहा-देवि! मेरे पति कहाँ हैं ? क्या करते हैं और कैसे हैं ?

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

मुझे उनके पास ले चलिये। मैं उनके बिना अकेली नहीं जी सकती।

श्रीसरस्वतीजी बोलीं–सुमुखि! एक शुद्ध चेतन परमात्मरूप आकाश है, दूसरा मनरूप आकाश है और तीसरा यह सुप्रसिद्ध भूताकाश है। चित्ताकाश और भूताकाश–इन दोनों से जो सर्वथा शून्य है, उसी को तुम चिन्मय आकाश समझो। तुमने जो अपने पति के रहने आदि का स्थान पूछा है, वह चेतन आकाशमय कोश ही है (उससे अतिरिक्त नहीं है); अतः चेतन आकाश का एकाग्रमन से जब चिन्तन किया जाता है, तब पृथक विद्यमान न होने पर भी वह शीघ्र दिखायी देता और अनुभव में आता है। भद्रे! यदि तुम सम्पूर्ण संकल्पों को त्यागकर उस चेतनाकाशरूप परब्रह्म में स्थित हो जाओ–उसी में मन को एकाग्र कर दो तो तुम उस सर्वात्मपद को, जो परम तत्वरूप है, अवश्य प्राप्त कर लोगी–इसमें संशय नहीं है। सुन्दरि! उक्त तत्व यद्यपि इस जगत के अत्यन्ताभाव का बोध होने पर ही सुलभ होता है, दूसरे किसी उपाय से नहीं, तथापि तुम मेरे वरदान के प्रभाव से उसे शीघ्र ही प्राप्त कर लोगी।

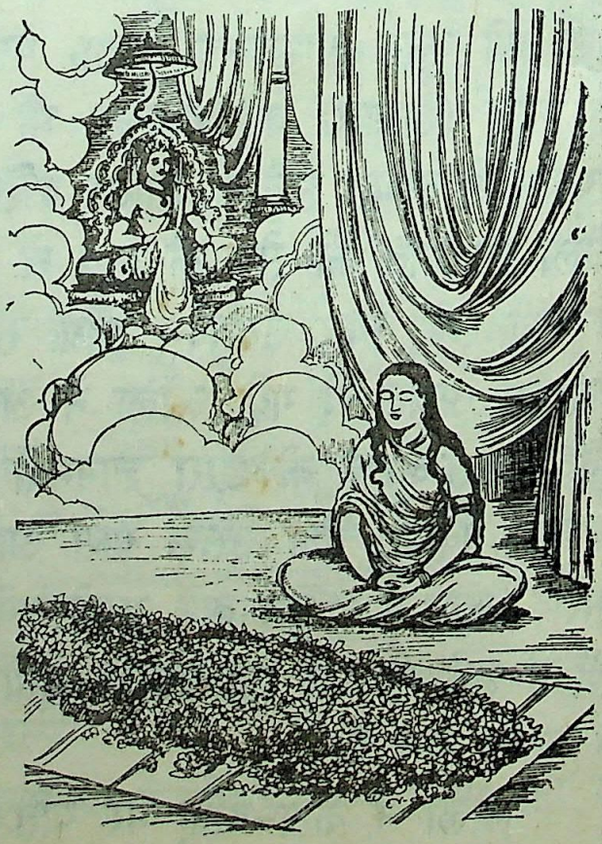

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन! यह कहकर देवी सरस्वती अपने दिव्य धाम को चली गयीं और लीला लीलापूर्वक (अनायास) ही निर्विकल्प समाधि में स्थित हो गयी।

रानी ने निर्विकल्प समाधि के द्वारा चेतनाकाश में स्थित होकर अपने उसी राजप्रासाद के आकाश में राजा पद्म को सिंहासन पर विराजमान देखा। (वे अपनी वासना और कर्मों के अनुसार देह–गेह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

एवं वैभव से सम्पन्न थे।) अनेक राजाओं से घिरे हुए सभामण्डप में सिंहासन पर बैठे हुए राजा की वन्दीजन 'महाराज की जय हो, हमारे राजाधिराज चिरजीवी हों' इत्यादि कहकर स्तुति करते थे। वे अपने अधीनस्थ जनपद तथा सेना के कार्य की देख-भाल करने में सादर जुटे हुए थे। पताकारूपिणी मंजरियों से व्याप्त राजधानी के जिस सुन्दर सभाभवन में राजा बैठे थे, उसके पूर्व दरवाजे पर असंख्य मुनियों और ब्रह्मर्षियों की मण्डली विराज रही थी। दक्षिण द्वार पर असंख्य राजे-महाराजे विद्यमान थे। पश्चिमद्वार पर अगणित सुन्दरी ललनाओं का समूह शोभा पाता था और उत्तर द्वार पर असंख्य रथ, हाथी एवं घोड़ों की भीड़ लगी थी। राजा ने गुप्तचर की बातें सुनकर दक्षिण देश के युद्ध की गतिविधि का निर्णय किया। पंक्तिबद्ध खड़े हुए अगणित भूपालों की प्रभा से उस राजभवन का सारा आँगन जगमगा रहा था। यज्ञमण्डप में वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए ब्राह्मणों की वेदध्वनि से श्रेष्ठवाद्यों का मधुर घोष दब गया था। अनेक सामन्त नरेश आरम्भ में मन्द गति से चलने वाले उत्तम कार्यों में संलग्न थे। अनेक शिल्पियों के सरदार वहाँ नाना नगरों के निर्माण की तैयारी में लगे हुए थे। उस समय आकाशस्वरूपा लीला उस आकाशरूपिणी राजसभा में प्रविष्ट हुई। जैसे दूसरे के संकल्प से निर्मित हुई नगरी को दूसरा नहीं देखता, उसी प्रकार अपने आगे-आगे विचरती हुई लीला को उस सभा में रहने वाले लोगों में से किसी ने नहीं देखा। वहाँ उसने अपने उन्हीं सब लोगों को सभा में बैठे देखा, जो पहले देखे गये थे, मानो वे सब-के-सब राजा के साथ ही एक नगर से दूसरे नगर में चले आये हों। जो पहले जहाँ पर बैठते थे, वे वहीं बैठे थे। वैसा ही उनका आचरण था। लीला जिन्हें पहले देख चुकी थी, उन्हीं बालकों, उन्हीं मन्त्रियों, उन्हीं सामन्त-नरेशों, उन्हीं विद्वानों, उन्हीं विदूषकों तथा उन्हीं पहले वाले सेवकों से मिलते-जुलते भृत्यों को भी देखा।

तदनन्तर उसने कुछ दूसरे पण्डितों और सुहृदों को भी देखा, जो सर्वथा नये थे-पहले कभी देखने में नहीं आये थे; कुछ व्यवहार भी पहले से भिन्न दिखायी दिये। बहुत-से पुरवासी तथा अन्य लोग भी अपरिचित दृष्टिगोचर हुए। पहले की सारी जनता और समस्त पुरवासियों को भी वहाँ देखकर सुन्दरी लीला चिन्ता के वशीभूत हो गयी। वह सोचने लगी-'क्या उस नगर में रहने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

वाले सब-के-सब मर गये।' फिर सरस्वतीदेवी की कृपा से बोध प्राप्त हुआ। उसकी समाधि टूट गयी और वह क्षणभर में पहले के अन्तःपुर में अवस्थित हो गयी। उसने वहाँ आधी रात के समय सब लोगों को पूर्ववत् सोते देखा। फिर उसने नींद में पड़ी हुई सखियों को उठाया और कहा–'मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, अतः तुम लोग सभाभवन में मुझे स्थान दो। यदि मैं पतिदेव के सिंहासन के पास बैठूँ और समस्त सभासदों को वहाँ पूर्ववत् उपस्थित देखूँ, तभी जीवित रह सकती हूँ, अन्यथा नहीं।'

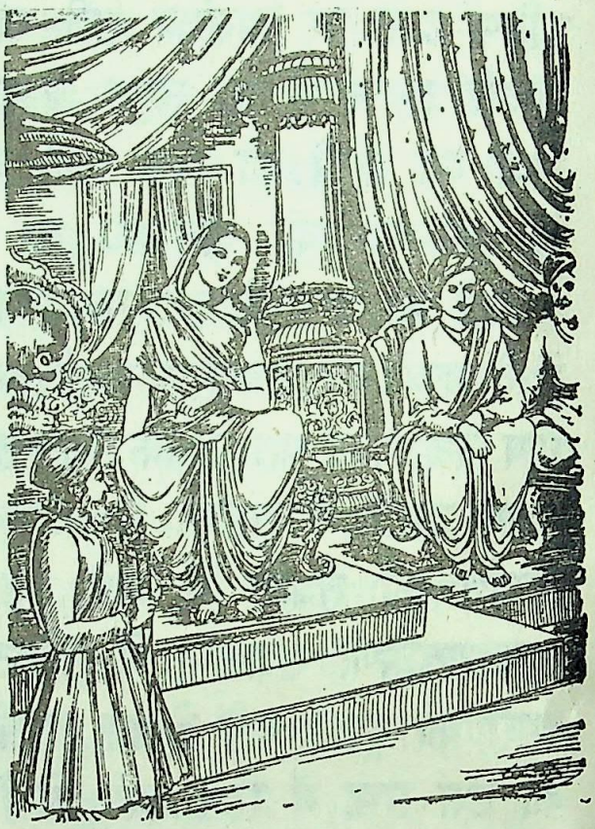

रानी के यों कहने पर सारा-का-सारा राजपरिवार जाग उठा और क्रमशः सब लोग अपने-अपने सर्वस्वभूत कार्य-कलाप में जुट गये। जैसे सूर्य की किरणें लोगों को अपने-अपने व्यवहार में लगाने के लिये पृथ्वी पर आती हैं, वैसे ही समूह-के-समूह छड़ीदार राजसेवक पुरवासी सभासदों को बुलाने के लिये चारों ओर चल दिये। दूसरे-दूसरे सेवक आदरपूर्वक सभाभवन की उसी तरह सफाई करने लगे, जैसे शरद्-ऋतु के दिन मेघों से मलिन हुए आकाश को स्वच्छ कर देते हैं। जैसे महाप्रलय के बाद जब त्रिलोकी की पुनः सृष्टि होती है, तब सारे लोकपाल अपनी-अपनी दिशाओं में अधिष्ठित हो जाते हैं, उसी तरह निर्दोष मन्त्री और सामन्तगण उस सभाभवन में अपने-अपने स्थान पर आ बैठे। राजा के सिंहासन के पास ही रानी लीला एक नूतन सुवर्णमय विचित्र आसन पर विराजमान हुई। उसने पहले की ही भाँति यथास्थान बैठे हुए पूर्व परिचित समस्त नरेशों, गुरुजनों, श्रेष्ठ पुरुषों, मित्रों, सदस्यों, सुहृदों, सम्बन्धियों और बन्धु-बान्धवों को देखा। राजा के राष्ट्र में निवास करने वाले सभी लोगों को वहाँ पूर्ववत् ही देखकर रानी को बड़ी प्रसन्नता हुई।

बारहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तेरहवाँ सर्ग

ब्राह्मण-दम्पति के जीवन का वृत्तान्त

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! तदनन्तर रानी लीला सभाभवन से उठ गयी और अन्तःपुर में प्रवेश करके रनवास के पूर्वोक्त मण्डप में फूलों से ढके हुए पति के पास जा पहुँची तथा मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगी- 'अहो! यह तो बड़ी विचित्र माया है। ये हमारे पुरवासी मनुष्य इस बाह्य प्रदेश में और उस अन्तरदेश में भी विद्यमान हैं। ताल, तमाल और हिंताल आदि वृक्षों से घिरे हुए ये पर्वत जैसे वहाँ हैं, उसी तरह यहाँ भी हैं। यह बड़ी ही आश्चर्यजनक माया फैली हुई है। जैसे दर्पण में पर्वत उसके भीतर और बाहर भी स्थित प्रतीत होता है, उसी प्रकार चेतन-आकाशरूपी दर्पण में भीतर और बाहर भी यह सृष्टि प्रतीत हो रही है। उनमें से कौन सृष्टि भ्रान्तिमयी है और कौन वास्तविक, इस संदेह को मैं वागीश्वरी देवी की पूजा करके उन्हीं से पूछती हूँ, जिससे उनके उपदेश से संशय का निवारण हो जाय।' ऐसा निश्चय करके रानी ने उस समय देवी का पूजन किया और देखा-देवी सरस्वती कुमारीरूप धारण करके सामने आ गयी हैं। तब लीला परमार्थ महाशक्तिस्वरूपा देवी को सिंहासन पर विराजमान करके स्वयं उनके सामने पृथ्वी पर खड़ी हो गयी और इस प्रकार पूछने लगी।

लीला ने कहा-परमेश्वर! मैं आपके सामने विनम्र होकर जो कुछ पूछ रही हूँ, उसे बताइये। यह त्रिलोकी का प्रतिबिम्ब-वैभव बाहर भी स्थित है और भीतर भी। इनमें से कौन कृत्रिम (झूठा) है और कौन अकृत्रिम (सच्चा) ? देवि अम्बिके! जैसे मैं यहाँ खड़ी हूँ और आप यहाँ बैठी हैं, देवेश्वरि! इसी को मैं सच्ची सृष्टि समझती हूँ। परंतु जहाँ इस समय मेरे पतिदेव विराजमान हैं, उस सृष्टि को मैं कृत्रिम समझती हूँ; क्योंकि वह सूना है। उससे देश, काल और व्यवहार की पूर्ति (सिद्धि) नहीं होती।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

देवी ने कहा-बेटी! अकृत्रिम सृष्टि से कदापि कृत्रिम सृष्टि नहीं उत्पन्न होती। कहीं भी कारण से विलक्षण (सर्वथा भिन्न) कार्य का उदय नहीं होता।

लीला ने कहा-माताजी! मुझे तो कारण से कार्य सर्वथा विलक्षण दिखायी देता है। मिट्टी का लोंदा जल धारण करने में असमर्थ है; किंतु उसी से उत्पन्न हुआ घड़ा जल का आधार बन जाता है।

देवी ने कहा-सुमुखि! बताओ तो सही-इस सृष्टि के अन्तर्गत जो पृथ्वी आदि तत्व हैं, उनमें से कौन सा तत्व तुम्हारे पति की सृष्टि का कारण है ?

लीला बोली-देवि! मेरे पति की वह स्मृति ही उस रूप में वृद्धि को प्राप्त हुई है, अतः मैं स्मृति को ही उस सृष्टि का कारण समझती हूँ। उसी से यह सृष्टि हुई है, ऐसा मेरा निश्चय है।

देवी ने कहा-अबले! स्मृति तो आकाश की भाँति शून्यरूप है। जैसे स्मृति शून्य है, उसी प्रकार उससे उत्पन्न तुम्हारे पति की सृष्टि भी शून्य ही है। वह उस रूप में अनुभव में आने पर भी शून्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

लीला ने कहा-देवि! जैसे आपने मेरे पति की सृष्टि को स्मृतिमात्र शून्य रूप बताया है, उसीतरह मैं इस सृष्टि को भी स्मृतिमात्र एवं शून्यरूप ही समझती हूँ। समाधि में देखी गयी वह सृष्टि ही मेरी ऐसी मान्यता में उदाहरण है।

देवी ने कहा-बेटी! ठीक ऐसी ही बात है। वह सृष्टि असत् होने पर भी (उसका आश्रयभूत चेतन आत्मा ही) तुम्हारे पति के उन-उन भावों से उस रूप में प्रकाशित होता है। इसी तरह यहाँ यह सृष्टि भी मिथ्या ही है (तथापि उसका आश्रयभूत चेतन आत्मा) जीव के विभिन्न भावों के अनुसार इस रूप में भासित होता है।

लीला बोली-देवि! जैसे इस सृष्टि से मेरे पति की भ्रमरूप अमूर्त सृष्टि हुई, वह प्रकार मुझे बताइये; जिससे मेरा यह जगतरूपी भ्रम दूर हो जाय।

देवी ने कहा-जिस प्रकार पूर्वसृष्टि की स्मृति से उत्पन्न हुई यह भ्रम रूपिणी सृष्टि स्वप्न-भ्रम के तुल्य प्रतीत होती है, उस प्रकार मैं तुमसे इस विषय का प्रतिपादन करती हूँ, सुनो। चिन्मय आकाश में कहीं (अज्ञान से आवृत भाग में और उसके भी) किसी एक देश में (विधाता के अन्तःकरण के एक अंश) संसाररूपी मण्डप है, उस मण्डप के किसी एक आकाशरूपी कमरे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के भीतर एक कोने में पर्वतरूपी मिट्टी के ढेले के नीचे एक छोटा-सा गड्डा है, जो पर्वत सम्बन्धी छोटा-सा गाँव है। नदी, पर्वत और वनों से घिरे हुए उस ग्राम के भीतर एक धर्मपरायण नीरोग अग्निहोत्री ब्राह्मण अपने स्त्री-पुत्रों के साथ रहते थे। उन्हें वहाँ गाय का दूध सुलभ था। वे ही राजा के भय से सर्वथा मुक्त थे तथा वहाँ आने वाले सभी प्राणियों का वे आतिथ्य-सत्कार करते थे।

बेटी! वे ब्राह्मण धन-सम्पत्ति, वेश-भूषा, अवस्था, कर्म, विद्या, विभव और चेष्टाओं की दृष्टि से साक्षात वसिष्ठ मुनि के समान थे। उनका नाम भी वसिष्ठ ही था। उन्हें चाँद जैसी भार्या प्राप्त थी, जिसका नाम अरुन्धती था। एक दिन उन ब्रह्मर्षि ने, जो उस पर्वत के शिखर पर हरी-हरी घासों से ढकी हुई समतल भूमि पर बैठे हुए थे, नीचे एक राजा को देखा, जो अपने सारे परिवार के साथ शिकार खेलने की इच्छा से जा रहे थे। वे अपनी उस विशाल सेना के महान् घोष से मानो मेरू पर्वत को भी विदीर्ण कर देना चाहते थे। उस सेना के महान् कोलाहल से दिग्भ्रम-सा हो जाने के कारण सभी दिशाओं के प्राणियों के समुदाय भाग रहे थे-जल के भँवर के समान एक-एक स्थान

पर चक्कर काट रहे थे। उन भूपाल को देखकर ब्राह्मण ने मन-ही मन यह विचार किया-'अहो! राजा का पद बड़ा ही रमणीय है। उस पर पर प्रतिष्ठित मनुष्य सम्पूर्ण सौभाग्यों से उद्भासित हो उठता है। कब ऐसा समय आयेगा जब कि मैं भी पैदल, रथ, हाथी और घोड़ों से संकुल चतुरंगिणी सेना, पताका, छत्र और चँवर से सम्पन्न हो दस दिशारूपी कुंजों को परिपूर्ण करने वाला राजा होऊँगा।' उसी दिन से ब्राह्मण के मन में इस तरह का संकल्प होने लगा। वे जब तक जीवित रहे, प्रतिदिन आलस्य छोड़कर स्वधर्म-पालन में लगे रहे। तत्पश्चात् उनके शरीर को जर्जर बना देने के लिये जर्जरित अंगवाली जरावस्था बड़े आदर के साथ उन ब्राह्मण देवता के पास आयी। जब वे मृत्यु के निकट

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (N.S.) Jammu Collection

पहुँच गये, तब उनकी पत्नी को बड़ी चिन्ता हुई। उस कल्याणमयी ब्राह्मण पत्नी ने तुम्हारी ही भाँति मेरी आराधना की। अमरत्व को अत्यन्त दुर्लभ मानकर उसने मुझसे यह वर माँगा-'देवि! मरने पर मेरे पति का जीव अपने मण्डप से बाहर न जाय।' अतः मैंने उसके उसी वर को स्वीकार कर लिया। तदनन्तर कालवश ब्राह्मण का शरीर छूट गया। फिर उसी घर के आकाश में वह ब्राह्मण जीवात्मा स्थित रहा। पूर्वजन्म के सुदृढ़ एवं महान् संकल्प से वह ब्राह्मणी का पति स्वयं सर्वशक्ति-शाली राजा बन गया। उसने अपने प्रभाव से भूमण्डल पर विजय प्राप्त कर ली। उसका प्रताप स्वर्गलोक तक फैल गया

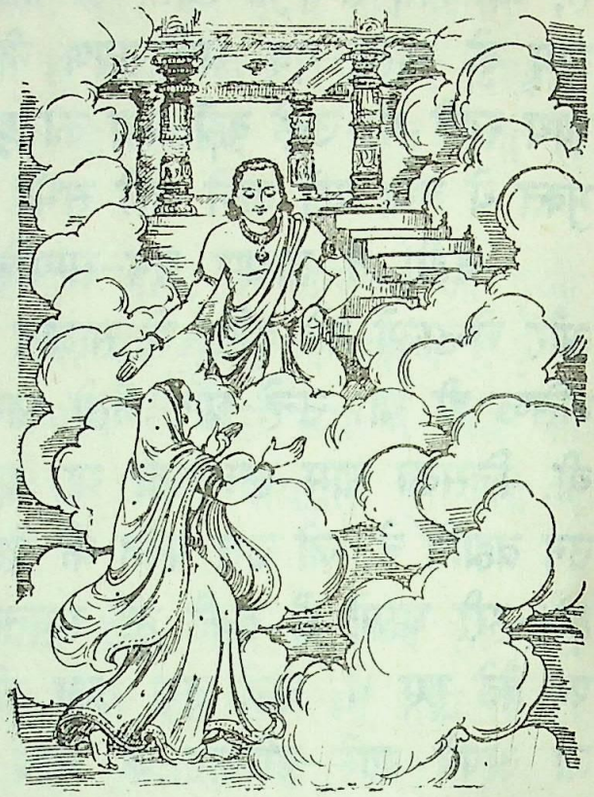

और उसने कृपा करके पाताललोक का भी पालन किया। इस प्रकार वह त्रिलोक विजयी नरेश हो गया। वह याचकों को मुँहमाँगा दान करने के लिये कल्पवृक्ष के समान था, धर्मरूपी चन्द्रमा के पूर्ण विकास के लिये पूर्णिमा की रात्रि के सदृश था। उधर उस ब्राह्मण के मृत्यु मुख में पहुँच जाने पर उसकी पत्नी ब्राह्मणी शोक से अत्यन्त कृश हो गयी। उड़द की सूखी छीमी के समान उसके हृदय के दो टुकड़े हो गये। पति के साथ ही मरकर अपने शरीर को दूर छोड़ वह आतिवाहिक देह (मानस शरीर) के द्वारा पति के पास जा पहुँची। जैसे नदी गर्त में गिरती है, उसी प्रकार पति का अनुसरण करके उनके पास जा वह वासंती लता के समान शोकरहित हो गयी। उस पर्वत-ग्राम में मरे हुए इस ब्राह्मण के घर हैं, भूमि-वृक्ष आदि स्थावर सम्पत्तियाँ हैं तथा मृत्यु के बाद से उसका जीव उस पर्वतीय ग्राम के गृह-मण्डप में विद्यमान है।

तेरहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चौदहवाँ सर्ग

जगत् की असत्ता एवं अजातवाद की स्थापना

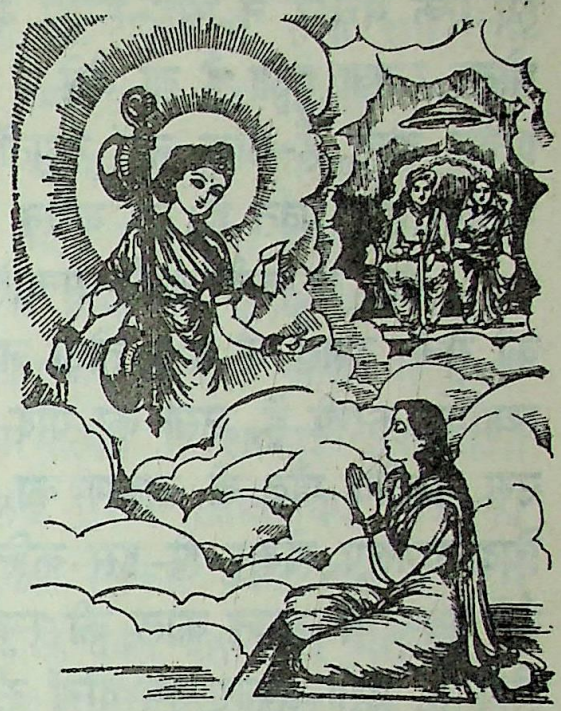

देवी सरस्वती ने कहा-कल्याणि! वही ब्राह्मण अब राजा होकर तुम्हारा पति हुआ है और जो अरुन्धती नामवाली ब्राह्मणी थी, वह तुम हो। तुम्हीं दोनों सुन्दर दम्पति यहाँ पर राज्य करते हो। तुम्हारे पूर्व जन्म का यही सारा सृष्टिक्रम है, जिसे मैंने कह सुनाया। ब्रह्मरूप आकाश में जीवभाव की भ्रान्ति होने से ही यह सब कुछ प्रतीत होता है। इसलिये कौन सृष्टि भ्रमरूप है और कौन भ्रम से रहित है ? सुतरां सारी सृष्टि ही अनर्गल अनर्थ-बोध के सिवा दूसरा कुछ नहीं है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! देवी सरस्वती का यह वचन सुनकर लीला के सुन्दर नेत्र आश्चर्य से खिल उठे। वह इस प्रकार बोली।

लीला ने कहा-देवि! आपकी बात तो सत्य ही होगी। मैं उसे मिथ्या कहने का साहस नहीं कर सकती; परंतु ऐसी विरुद्ध बात कैसे सम्भव हो सकती है ? कहाँ ब्राह्मण जीव अपने घर में है और कहाँ इतने बड़े विशाल प्रदेश में हमलोग स्थित हैं। फिर वे ब्राह्मण दम्पति और हम लोग एक कैसे हो सकते हैं ? मेरे स्वामी जहाँ स्थित हैं वैसा वह दूसरा लोक, वह विस्तृत भूमि, वे विशाल पर्वत और वे दसों दिशाएँ एक घर के भीतर कैसे प्रतीत हो सकती हैं ?

सर्वेश्वरेश्वरि! यदि कोई कहे कि एक सरसों के दाने के भीतर मतवाला ऐरावत हाथी बँधा हुआ है, परमाणु के भीतर बैठे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Library Collection

हुए एक मच्छर ने सिंह-समूहों के साथ युद्ध किया, सुमेरू पर्वत कमलगट्टे के भीतर रक्खा हुआ है तो जैसे ये सारी बातें असम्भव होने के कारण असमंजस प्रतीत होती हैं-ठीक नहीं लगतीं, उसी प्रकार उस घर के अंदर ये विशाल भूलोक और पर्वत हैं, यह कथन भी असम्भव एवं असंगत ही जान पड़ता है।

देवी सरस्वती बोलीं-सुन्दरि! तुम ध्यान देकर यथावत रूप से इस विषय को सुनो। दूसरों के द्वारा तोड़ी जाने वाली धर्म की जिस मर्यादा को मैं स्वयं ही स्थापित करती हूँ, उसी का यदि मैं भेदन करूँ तो दूसरा कौन पालन करेगा ? उस पर्वतीय गाँव के ब्राह्मण का वह जीवात्मा अपने उसी घर के आकाश में चिदाकाशरूप होकर ही इस कल्पित महान् राष्ट्रों को देख रहा है। कल्याणि! जैसे स्वप्न में जाग्रत काल की स्मृति लुप्त हो जाती है और दूसरी स्मृति उदित होती है, उसी प्रकार तुम दोनों की पूर्वजन्म की स्मृति उदित हुई है। यही उस शरीर का मरण है। जैसे स्वप्न में तीनों लोकों का दीखना, संकल्प में त्रिलोकी का उदय होना तथा मरूमरीचिका में जल का होना असत्य है, फिर भी ब्राह्मण के घर के भीतर पर्वत, वन और नगरों सहित भूमिका होना यद्यपि असत है तो भी वहाँ इन सबकी प्रतीति होती है। जो असत्य से उत्पन्न हुआ है, वह असत है, जो स्मृति से उत्पन्न हुआ है, वह भी असत है-जैसे मृग-तृष्णा की नदी में जल का होना मिथ्या है; फिर उस जल में जो तरंग की प्रतीति होती है, वह सत कैसे हो सकती है ?

बेटी! उस पर्वतीय गृह के आकाशरूपी कोश में स्थित तुम्हारा जो यह घर है तथा जो मैं हूँ और तुम हो-यह सब कुछ तुम केवल चिन्मय आकाशरूप ब्रह्म ही समझो। इस विषय को स्पष्टरूप से समझने और समझाने के लिये स्वप्न, भ्रम, संकल्प और अपने-अपने अनुभव की परम्पराएँ ही मुख्य प्रमाण (उदाहरण) हैं। ब्राह्मण के उस पर्वतीय घर के भीतर उस ब्राह्मण का जीव है। उस जीवाकाश में (अर्थात उस जीवात्मा के संकल्प में) समुद्र और वनों से परिपूर्ण यह पृथ्वी है। कृशांगि! उस ब्राह्मण के घर के भीतर इस नूतन सृष्टि में जो यह नगर निर्मित हुआ है, यह यद्यपि मन में बैठ गया है, तथापि ब्राह्मण का वह पहला घर आज भी मौजूद ही है-नष्ट नहीं हुआ। जैसे इस जगत-सृष्टि की प्रतीति आभास मात्र है, उसी प्रकार क्षण, कल्प आदि की प्रतीति भी आभास मात्र ही है, वास्तविक नहीं। परमात्मा में जो तू-मैं इत्यादि भावों का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अध्यास है, उसके अधीन जो अपने जन्म का भ्रम होता है, ऐसा भ्रम जिन लोगों को है, उन्हींपुरुषों को क्षण, कल्प आदि सम्पूर्णजगत की प्रतीति होती है।

उत्तम व्रत का पालन करने वाली लीले! मरणकाल की मिथ्याभूत मूर्च्छा का अनुभव करके जब जीव पूर्वजन्म के सभी भावों को भुला देता और दूसरे नूतन भाव को देखने या अनुभव करने लगता है, तभी वह पलक मारते-मारते मन में यह स्मरण करने लगता है, कि मैं आधेय हूँ और इस आधार में स्थित हूँ। यद्यपि वह उससमय (चेतन) आकाश (परमात्मा) में आकाश (चिदाकाश जीवात्मा) रूप से ही स्थित होता है (इसलिये उसमें आधाराधेय भाव की कल्पना मिथ्या ही है), तथापि उसके चित्त में वैसा संस्कार प्रकट होता है। उसे यह भान होता है कि हाथ, पैर आदि अवयवों से युक्त यह शरीर मेरा ही है। उसके मन में जो शरीर स्थित होता है अर्थात उसमें जैसे शरीर का संस्कार रहता है, उसी या वैसे ही इस शरीर को वह आत्मीय भाव से देखता है। उसे जान पड़ता है कि 'मैं इस पिता का पुत्र हूँ। इतने वर्षों की मेरी अवस्था हो गयी। ये मेरे मनोरम भाई-बन्धु हैं। यह मेरा रमणीय घर है। जब मेरा जन्म हुआ, तब मैं बालक था और अब बढ़कर ऐसा हो गया हूँ।'

स्वप्न में द्रष्टा और दृश्य रूप से जो चेतन स्थित होता है, वही उन स्वप्नगत पदार्थों का बोध होने पर एक-रस चेतन रूप से पुनः दृष्टिगोचर (अनुभव का विषय) होता है। अतः कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ था-बिना उत्पन्न हुए ही स्वप्नावस्था में उन वस्तुओं के दर्शन हुए थे। इस तरह जैसे स्वप्न में वह चेतन ही द्रष्टा, दृश्य आदि के रूप में उदित होता है, उसीप्रकार परलोक में भी उदित होता है और जैसे परलोक में उदित होता है, उसीतरह इस लोक में भी वह चेतन ही द्रष्टा, दृश्य आदि के रूप में आविर्भूत होता है। इसलिये स्वप्न,परलोक और इहलोक-इनमें थोड़ा-सा भी भेद नहीं है। ये सब-के-सब असत होते हुए भी भ्रमवश सत-से प्रतीत होते हैं-ठीक उसी तरह जैसे जल में उठने वाली तरंगों का एक दूसरे से भेद नहीं होता और वे सब असत होती हुई भी सत-सी प्रतीत होती हैं। चूँकि जल में लहरों समान चेतना में ही यह जगत भ्रमवश प्रतीत हो रहा है, अतः यह कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ-यह सिद्धान्त स्थिर हुआ।

चौदहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LF S) Jammu Collection

पन्द्रहवाँ सर्ग

सब कुछ चिन्मात्र ब्रह्म ही है

श्रीसरस्वतीजी ने कहा–जैसे आँख खोलने पर प्राणी को सारे रूप अच्छी तरह दिखायी देने लगते हैं, उसी प्रकार मृत्युरूपी मूर्च्छा के दूर होने पर जीव को शीघ्र ही सम्पूर्ण लोकों का पूर्णतः भान होने लगता है। जैसे स्वप्न में अपने को अपने ही मरण की प्रतीति होती है, उसीप्रकार जीव को, संसार में जिसका अनुभव या दर्शन नहीं हुआ है, ऐसा कार्य भी इस तरह तत्काल याद आने लगता है कि इसे मैंने किया है। चिन्मय आकाशरूप परमात्मा के भीतर माया रूपी आकाश में इस तरह की अनन्त भ्रान्तियाँ भासित होती हैं। यह जगत नाम की नगरी जो बिना दीवाल के ही प्रतीत होती है, वास्तव में कल्पनामात्र है (सत्य नहीं)। यह जगत, यह सृष्टि इत्यादि रूप से स्मृति (वासना) ही विस्तार को प्राप्त हो रही है। कृशांगी लीले! यह त्रिभुवन आदि दृश्य–प्रपंच कुछ लोगों के अनुभव में आकर उनकी स्मृति में स्थित है और कुछ लोगों के अनुभव में आये बिना ही उनकी स्मृति में विद्यमान है। विश्व का अत्यन्त विस्मृत हो जाना ही मोक्ष कहलाता है। उस अवस्था में किसी के लिये भी कोई प्रिय और अप्रिय नहीं रह जाते। अहंता और जगत् की आधारभूत अविद्या का अत्यन्त अभाव हुए बिना मोक्ष स्वाभाविक रूप से विद्यमान होता हुआ भी उदित नहीं होता। जैसे रज्जु में जो सर्प का भ्रम होता है, वह वास्तविक नहीं है; तो भी जब तक उसमें 'सर्प' शब्द और उसके अर्थ की सम्भावना का पूर्णरूप से बोध नहीं हो जाता, तबतक वह शान्त होने पर भी शान्त नहीं होता। यह जो विशाल संसार है, परब्रह्म ही है–यह निश्चित सिद्धान्त है। अविद्या का अभाव हो जाने पर भी यदि अनुवृत्तिवश इसकी प्रतीति होती है तो उसे प्रतीतिमात्र ही समझना चाहिये। वह वास्तव में नहीं है (जैसे स्वप्न से जागने पर स्वप्न के संसार की आकृति प्रतीत हो तो भी वह मिथ्या ही है, वास्तविक नहीं)। इसी प्रकार जगत के उदित होने पर भी कहीं कभी कुछ भी उदित नहीं हुआ, केवल चिन्मय आकाशरूप परमात्मा ही स्थित है।

इस तरह विचार करने से यह सिद्ध हुआ कि कभी कुछ उत्पन्न नहीं हुआ। जो कुछ जगत आदि दृश्य रूप से प्रतीत होता है, वह भी चिन्मय परमात्मा ही है। केवल चेतन आकशरूप ब्रह्म ही अपने आप में स्थित है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

लीला बोली-देवि! जैसे प्रातःकाल की प्रभा से जगत की रूप-सम्पत्ति सुस्पष्ट दिखायी देने लगती है, उसीप्रकार आपने मुझे यह बहुत ही उत्तम और अद्भुत दृष्टि प्रदान की है। इससमय जबतक मैं तीव्र अभ्यास न होने के कारण इस दृष्टि में सुदृढ़ स्थिति नहीं प्राप्त कर लेती, तबतक आप अपने उपदेश द्वारा इस दृश्यकौतुक का-इस संसार का बोध कराती रहें। देवि! वह ब्राह्मण अपनी ब्राह्मणी के साथ पूर्वसृष्टि के जिस गाँव और घर में रहता था, उस सृष्टि के उसी पर्वतीय ग्राम में आप मुझे ले चलिये। मैं उसे देखना चाहती हूँ।

श्रीसरस्वतीजी ने कहा-लीले! चेत्यरहित चिन्मय परमात्मरूप जो परम पावन दृष्टि है, उसका अवलम्बन करके तुम इस आकार का-इस देह के अभिमान का त्यागकर निर्मल हो जाओ। (तात्पर्य यह कि पूर्व सृष्टि की उस वस्तु को देखने के लिये इस शरीर को भूल जाना आवश्यक है।) इसप्रकार जब तुम देहाभिमान-रूप मल से रहित हो जाओगी, तब हम दोनों साथ-साथ रहकर बिना किसी रुकावट के उस सृष्टि को देखेंगे। यह शरीर उस सृष्टि के दर्शनरूपी गृहद्वार के लिये एक सुदृढ़ अर्गला (रुकावट) के रूप में स्थित है।

बेटी! ये तीनों लोक मायामय होने के कारण अमूर्त हैं। मिथ्या आग्रह या अज्ञान के कारण ये तुम्हें मूर्तिमान् प्रतीत होते हैं, जैसे सुवर्ण को लोग अँगूठी के रूप में देखते हैं। जैसे अँगूठी का रूप धारण करने वाले सुवर्ण में अँगूठीपना नहीं है, उसी प्रकार जगत का रूप धारण किये हुए ब्रह्म में जगत नहीं है। यह जगत आकाश की भाँति शून्य ही है; इसके रूप में यहाँ जो कुछ दिखायी देता है, वह ब्रह्म ही है। ब्रह्म में भ्रमवश माया दृष्टिगोचर होती है। यह सारा प्रपंच झूठा ही है। केवल अद्वितीय ब्रह्म ही, जिसका अहं (आत्मा) रूप से अनुभव होता है, परमार्थ सत्य है। इस विषय में उपनिषदों के वाक्य, गुरुजनों के उपदेश और अपना अनुभव प्रमाण है। जो ब्रह्म है, वही ब्रह्म को देखता है। जो ब्रह्म नहीं है, वह कदापि ब्रह्म को नहीं देख सकता। ब्रह्म का ही जो ऐसा स्वभाव है (जो उसकी आवृत्त सत्ता है), वही सृष्टि आदि के नाम से प्रसिद्ध है। जब तक अभ्यास योग के द्वारा तुम्हारी भेदबुद्धि शान्त नहीं हो जाती, तब तक अब्रह्म रूप होने के कारण निश्चय ही तुम ब्रह्म को नहीं देख सकती। ब्रह्मज्ञान का बारंबार अभ्यास करने के कारण ब्रह्म में अद्वैत भाव से जिनकी दृढ़ स्थिति हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.S.) Jammu Collection

गयी है, ऐसे हम लोग ही उस परमपद का साक्षात्कार करते हैं। जब अपने संकल्प (मनोरथ) से निर्मित हुआ नगर भी अपने इस शरीर से प्राप्त नहीं हो सकता, तब दूसरे के संकल्प से निर्मित नगर को दूसरा शरीर कैसे प्राप्त करेगा। अतः कार्य को समझने वाली स्त्रियों में श्रेष्ठ लीले! तुम इस देहाध्यास से रहित होकर चेतन ब्रह्ममय आकाशरूपिणी हो जाओ। तब तत्काल ही उस ग्राम का दर्शन करोगी। अतः शीघ्र वही कार्य करो।

लीला ने कहा-देवि! आपने कहा है कि ब्राह्मण और ब्राह्मणी के जगत् में हम दोनों साथ-साथ चलेंगी; परंतु माताजी! मैं यह पूछती हूँ कि हम दोनों का साथ-साथ चलना कैसे हो सकता है। मैं तो इस शरीर को यहीं स्थापित करके शुद्ध सत्त्व का अनुसरण करने वाले चित्त के द्वारा उस उत्तम आकाशमय लोक में चली जाऊँगी। परंतु आप अपने इसी शरीर से वहाँ कैसे जायँगी ?

देवी सरस्वती ने कहा-बेटी! जैसे तुम्हारा संकल्पमय आकाश, वृक्ष आदि सांकल्पिक सत्ता से सत होता हुआ भी वास्तव में शून्यरूप ही है, उसीतरह शुद्ध सत्त्वगुण का कार्यभूत जो मेरा शरीर है, यह चेतन परमात्मा का ही प्रकाश है- इसके रूप में चेतन परमात्मा की ही प्रतीति होती है। अतः इसका उससे भेद नहीं है। ऐसा जो मेरा यह दिव्य शरीर है, इसका त्याग करके मैं नहीं जाऊँगी। जैसे वायु गन्ध को प्राप्त होती है, उसी तरह मैं इसी शरीर से ब्राह्मण-ब्राह्मणी के उस देश में पहुँच सकती हूँ। भद्रे! ये देह आदि परब्रह्म से परिपूर्ण होकर ही स्थित हैं, अतः अपनी उत्कृष्ट महिमा में स्थित परब्रह्म ही हैं। इस सत्य को हम लोग बिना किसी विघ्न-बाधा के देखते हैं, किंतु तुम ऐसा नहीं देखती क्योंकि तुम्हें अभी दृढ़ तत्त्वज्ञान नहीं हुआ है।

जैसे सुवर्ण में कटकत्व, जल में तरंगत्व और स्वप्न के नगर एवं संकल्प कल्पित पुर आदि में सत्यत्व नहीं है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म में कल्पनातीत अनामय आत्मस्वभाव से पृथक् कोई वस्तु नहीं है। जो कुछ भी यह दृश्य-प्रपंच भासित हो रहा है, वह सब ब्रह्म का ही निर्मल विकास है। जैसे परम उत्तम चन्द्रकान्तमणि की भ्रमवश काँच के समान प्रतीति होती है, वैसे ही ब्रह्म के विशुद्ध विकास की भ्रान्तिवश दृश्यरूप से प्रतीति हो रही है।

लीला ने पूछा-देवि! कृपया यह बताइये कि इतने दीर्घकाल से किसने हम लोगों को द्वैत और अद्वैत के द्विविध विकल्पों द्वारा भ्रम में डाल रक्खा है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

श्रीसरस्वतीजी ने कहा-चंचले! तुम चिरकाल से अविचार द्वारा व्याकुल होकर भटक रही हो। अविचार स्वभाव से उत्पन्न होता है और विचार से उसका नाश हो जाता है। विचार द्वारा अविचार का पलक मारते-मारते नाश हो जाता है। यह अविचाररूप अविद्या विचार या विवेक से बाधित होकर ब्रह्मसत्ता हो जाती है-ब्रह्म के सत-स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है। इसलिये अविद्या का अस्तित्व नहीं है। अतः न तो कहीं अविचार है न अविद्या है, न बन्धन है और न मोक्ष ही है। यह जगत शुद्ध बोधस्वरूप (चिन्मय ब्रह्म) ही है। चूँकि इतने समय तक तुमने इसका विचार नहीं किया, इसीलिये तुम्हें बोध नहीं हुआ। तुम भ्रान्त एवं व्याकुल ही बनी रह गयीं। आज से तुम्हारे चित्त में वासना का क्षय रूप बीज पड़ गया है। इसलिये अब तुम विवेकशालिनी, प्रबुद्ध एवं विमुक्त हो। एकमात्र ब्रह्म के चिन्तनरूप उत्तम निर्विकल्प समाधि के मन में आरूढ़ होने पर जब द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि का अत्यन्ताभाव हो जायेगा तथा हृदय में यह वासना-क्षयरूप बीज कुछ अंकुरित हो जायेगा, तब राग-द्वेष आदि दृष्टियाँ क्रमशः उदित नहीं होंगी, संसार की उत्पत्ति भी निर्मूल हो जायगी और निर्विकल्प समाधि पूर्णतः स्थिरता को प्राप्त होगी। इस तरह निर्विकल्प समाधि के स्थिर होने पर कुछ काल के अनन्तर मायाकाश और उसके कार्यों के अधिष्ठान-स्वरूप निर्मल आत्मा के साक्षात्कार से तुम भ्रान्ति-ज्ञानरूप कालिमा के कलंक से शून्य होकर सम्पूर्ण प्राणियों की भ्रान्तियों का, उनकी कार्यभूत वासनाओं का और उनकी कारणभूत अविद्या का जहाँ अन्त हो जाता है, उस मोक्षरूप परम पुरुषार्थ में प्रतिष्ठित हो जाओगी।

पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त

सोलहवाँ सर्ग

वासनाओं के क्षय का उपाय और ब्रह्मचिन्तन के अभ्यास का निरूपण

श्रीसरस्वतीजी ने कहा-लीले! यद्यपि स्वप्नावस्था में स्वप्न के शरीर का अनुभव होता है, तथापि यह स्वप्न है-ऐसा ज्ञान होने से जैसे स्वप्न शरीर वास्तविक नहीं रहता, मिथ्या ठहरता है, उसी तरह यद्यपि इस स्थूल शरीर का पहले अनुभव होता है, तथापि इसे स्वप्नवत मान लेने पर वासनाओं का क्षय होने से यह भी 'असत' (बाधित) ही हो जाता है। जैसे स्वप्न के ज्ञान से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

स्वप्नावस्था का शरीर शान्त हो जाता है, उसी प्रकार जाग्रत–अवस्था के शरीर को भी स्वप्नवत समझ लेने पर वासनाओं के क्षीण होने से यह शान्त हो जाता है। जैसे स्वप्न–शरीर का और मनोरथ कल्पित कल्पनामय शरीर का अन्त होने पर इस जाग्रत शरीर का भान होता है, उसी प्रकार जगद्–भावना (स्थूल शरीर में अहं–भावना) का अन्त होने पर आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर का उदय (अनुभव) होता ही है। जैसे स्वप्नावस्था के वासनाबीज से रहित होने पर सुषुप्ति अवस्था उदित (प्राप्त) होती है, उसी तरह जाग्रद् अवस्था भी जब वासना बीज से रहित हो जाती है, तब जीवन्मुक्ति की प्राप्ति होती है। जिसमें वासनाएँ सुप्त अथवा विलीन हो जाती हैं, उस प्रगाढ़ निद्रा का नाम सुषुप्ति है। जिस अवस्था में वासनाओं का सर्वथा क्षय हो जाता है, उसे 'तुरीया' कहते हैं। जाग्रत–अवस्था में भी परम पद का अनुभव होने पर (वासनाओं का समूल नाश हो जाने के कारण) तुर्यावस्था होती ही है। जीवित पुरुषों के जीवन की वह अवस्था, जिसमें वासनाओं का सर्वथा क्षय हो जाता है, जीवन्मुक्ति कहलाती है। अज्ञानी बद्ध जीव इसका अनुभव नहीं कर पाते।

लीले! जब पूर्ण अभ्यास करने से तुम्हारा यह अहंभाव शान्त हो जायेगा, तब तुम्हारी स्वाभाविक चैतन्यरूपता, जो इस दृश्य–प्रपंच की चरम अवधिभूत है, उदित एवं विकसित हो जायगी। जब आतिवाहिकता (शरीर की सूक्ष्मता) का ज्ञान सदा के लिये स्थायी हो जायगा, तब तुम संकल्प दोष से रहित पावन लोकों का साक्षात्कार कर सकोगी। अतः सती–साध्वी लीले! तुम वासना को क्षीण करने का प्रयत्न करो। जब तुम्हारी वासना–शून्य स्थिति अत्यन्त दृढ़ हो जायगी, तब तुम जीवन्मुक्त हो जाओगी। जबतक तुम्हारा यह शीतल (शान्तिप्रद) ज्ञानरूपी चन्द्रमा पूर्णता को नहीं प्राप्त हो जाता, तबतक तुम इस शरीर को यहीं स्थापित करके लोकान्तरों के दर्शन करो। मैंने तुमसे जो बात कही है, यह बालकों से लेकर सिद्ध पुरुषों तक में प्रसिद्ध, सबके अनुभव से सिद्ध एवं यथार्थ है। यह शरीर न तो मरता है और न जीता ही है। स्वप्न और संकल्प सम्बन्धी भ्रम में मरण और जीवन की चर्चा ही क्या है ? बेटी! जैसे मनोरथ कल्पित पुरुष में जीवन और मरण असत्य ही प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार इस स्थूल शरीर में भी जीवन–मरण मिथ्या ही हैं।

लीला बोली–देवि! आपने मुझे यहाँ उस निर्मलज्ञान का उपदेश दिया है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जिसके श्रवण मात्र से ही दृश्यरूपी हैजे की बीमारी शान्त हो जाती है। अब इस विषय में मेरा एक उपकार और कीजिये। कृपया मुझे यह बताइये कि वह अभ्यास क्या है, कैसा है, अथवा कैसे वह पुष्ट होता है और उसके पुष्ट हो जाने पर क्या होता है।

श्रीसरस्वतीजी ने कहा-बेटी! जिस पुरुष के द्वारा जिस-जिस साधन से जब-जब जो भी कार्य किया जाता है, वह अभ्यास के बिना कभी सिद्ध नहीं होता। सच्चिदानन्दघन परमात्मा का चिन्तन करना, जिज्ञासुओं के प्रति उसका वर्णन करना, आपस में एक-दूसरे को ब्रह्म के तत्त्व का बोध कराते रहना तथा उस एकमात्र ब्रह्म के ही परायण हो जाना-इसे ही विद्वान् लोग ब्रह्मविषयक अभ्यास समझते हैं। जो विरक्त महात्मा पुरुष मुक्ति के लिये अपने अन्तःकरण में भोग-वासनाओं के क्षीण होने की भावना करते हैं, वे ही भव्य (कल्याण के भागी) पुरुष भूमण्डल में विजयी होते-उत्कृष्ट पद पाते हैं। जिनकी बुद्धि उदारता (परिग्रह-त्याग) रूपी सौन्दर्य और वैराग्य के रस से रंजित हो आनन्द का स्पन्दन करने वाली है, वे ही उत्तम अभ्यासी कहे गये हैं। जो लोग युक्ति तथा शास्त्रों के ज्ञाता के द्वारा जानने में आने वाली लौकिक ज्ञेय वस्तुओं के अत्यन्ताभाव की सिद्धि के लिये प्रयत्न करते हैं, वे ब्रह्माभ्यासी कहे गये हैं। यह दृश्य जगत् सृष्टि के आरम्भ में ही उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिये कभी भी इसका अस्तित्व है ही नहीं। जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह मैं ही हूँ-मुझ सच्चिदानन्द घन परब्रह्म परमात्मा से यह भिन्न नहीं है, ऐसे अभ्यास को बोध (ब्रह्मज्ञान) का अभ्यास कहा गया है। दृश्य की उत्पत्ति कभी हुई ही नहीं, इस बोध से राग-द्वेष आदि का क्षय हो जाने पर ब्रह्मचिन्तन के बल से उत्पन्न हुई जो परमात्मरति है, वह ब्रह्माभ्यास है। जैसे शरद् ऋतु में हिम के समान शीतल ओस-जल के अभिषेक से सब ओर फैला हुआ भारी कुहरा मिट जाता है, उसी प्रकार चित्त में पूर्वोक्त रीति से अभ्यास में लाये हुए विवेक-बोधरूपी जल के निरन्तर सिंचन से, जो सम्पूर्ण तापों का शान्त करने वाला होने के कारण हिम के समान शीतल है, संसाररूपी कृष्णपक्ष की अँधेरी रात में उत्पन्न हुई मोहमयी गाढ़निद्रा सर्वथा गल जाती (मिट जाती) है।

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं-जब मुनिवर वसिष्ठ इस प्रकार यह प्रसंग सुना चुके, तब दिन बीत गया, सूर्य अस्त हो गये, मुनियों की वह सभा वसिष्ठजी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

को नमस्कार करके सायंकालिक कृत्य करने के लिये चली गयी और रात बीतने पर सूर्य की किरणों के साथ ही फिर सभा-स्थान में आ गयी।

सोलहवाँ सर्ग समाप्त

सत्रहवाँ सर्ग

सरस्वती और लीला का ज्ञान देह के द्वारा आकाश में गमन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! वे दोनों श्रेष्ठ देवियाँ सरस्वती और लीला उस आधी रात के समय जब कि समस्त परिजन सो गये थे, पूर्वोक्त रूप से बातचीत करके अन्तःपुर के मण्डप में जो मुरझाये नहीं थे, ऐसे फूलों की मालारूपी वस्त्र के ढके हुए राजा के शव के पास ही एक आसन पर बैठ गयीं। वे समाधि में स्थित हो ऐसी निश्चल हो गयीं मानो रत्न के बने हुए खंभे में खुदी हुई दो मूर्तियाँ हों अथवा दीवाल में अंकित किये गये दो सुन्दर चित्र हों। निर्विकल्प समाधि लग जाने से वे बाह्य ज्ञान से शून्य हो गयीं। पहले उन दोनों को 'मैं जगत' इस भ्रमरूप दृश्य की अनुत्पत्ति का बोध हुआ, अर्थात उन्होंने भी अनुभव किया कि जगत की कभी उत्पत्ति हुई ही नहीं। जब ऐसा अनुभव हुआ, तब उन्हें इस दृश्य-प्रपंच के अत्यन्ताभाव का निश्चयात्मक ज्ञान हो गया। फिर तो उन दोनों की दृष्टि से यह दृश्य-रूपी पिशाच पूर्णतया ओझल हो गया-किसी आड़ में छिप गया हो, ऐसी बात नहीं। उसकी सत्ता है ही नहीं, इसलिये वह सर्वथा अदृश्य हो गया। निष्पाप रघुनन्दन! जैसे हम लोगों की दृष्टि में खरगोश के सींग नहीं हैं और न होने के कारण ही वे दीखते नहीं, उसी तरह यह दृश्य-पिशाच न होने के कारण ही उनके लिये सर्वथा तिरोहित हो गया। जो वस्तु पहले से ही नहीं है, वह वर्तमान में भी अस्तित्व शून्य ही है। इस जगत की यही स्थिति है। यह प्रतीत हो तो मृगतृष्णा में जल की प्रतीति के समान असत् है और यदि प्रतीत न हो तो खरगोश के सींग की भाँति असत् है। तात्पर्य यह कि किसी भी दशा में इसकी सत्ता नहीं है।

ज्ञान की देवी सरस्वती अपने उसी ज्ञानमय शरीर से विचरण करने लगीं। परंतु मानवी रानी लीला ने मानव-देह के अभिमान का त्याग करके ध्यान और ज्ञान के अनुरूप दिव्य शरीर का आश्रय ले उसी के द्वारा तीव्रगति से आकाश में विचरना आरम्भ किया। उन दोनों ने उद्बुद्ध हुए पूर्व संकल्प जनित संस्कार-ज्ञान से गृहाकाश में ही एक बित्ता ऊँचे उठकर आकाश-गमन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

में समर्थ चिन्मय आकृतियाँ धारण कर लीं। दोनों ही चेतन आकाश (ब्रह्म) रूपिणी हो गयीं। यद्यपि वे उसी घर में बैठी रहीं, तथापि चिन्मय चित्त के संकल्प से कोटि योजन विस्तृत दूर-से-दूर आकाश स्थल में उड़ने लगीं-उड़ने का अनुभव करने लगीं। यद्यपि ये दोनों सखियाँ वास्तव में चेतन आभासमय शरीरवाली थीं, तो भी पूर्व संकल्पित दृश्य के अनुसंधान में लगे रहने वाले चित्त के साथ अभिन्नता को प्राप्त हुए अपने स्वभाव के कारण वे एक दूसरे के शरीर को देखती और परस्पर स्नेहमग्न होती थीं।

तदनन्तर वे दोनों देवियाँ यथाशक्ति यत्र-तत्र विश्राम करती हुई धीमी चाल से आगे बढ़ने लगीं। उन्होंने शून्य में ही देखा, आकाश मण्डल बड़े-बड़े भुवनों और वहाँ के निवासियों के निर्माण कार्य से अत्यन्त भर गया है-अवकाश शून्य हो रहा है। ऊपर-ऊपर का आकाश भिन्न-भिन्न भुवनों से अलग-अलग घिरा हुआ था। वे सुन्दर विमानों से सुशोभित भुवन विचित्र आभूषणों के समान प्रतीत होते थे। उसमें कहीं पर वज्र, चक्र, शूल, खंड और शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्रों के अधिष्ठाता देवता मूर्तिमान् होकर विचर रहे थे। उनसे युक्त वह लोक बिना भीत के भवनों से विभूषित था और वहाँ नारद, तुम्बुरु आदि गन्धर्व गीत गाते थे। कहीं मेघों के मार्ग में (पुष्कर और आवर्तक आदि) महामेघों के वृष्टि-सम्बन्धी महान् आयोजन से वहाँ सब ओर हलचल मची थी और कहीं पर प्रलय काल के मेघ चित्रलिखित की भाँति निश्चेष्ट एवं नीरव दिखायी देते थे। कहीं उठते हुए कज्जलगिरि के समान सुन्दर मेघों की घटा घिरी आ रही थी। कहीं सुवर्ण-द्रव के समान मनोहर सूर्य के ताप को दूर करने वाले बादल छा रहे थे और कहीं दिशाओं के दाह से उत्पन्न हुई गरमी फैल रही थी। कहीं शून्यतारूपी जल से परिपूर्ण आकाश प्रशान्त महासागर के समान शोभा पाता था। कहीं विमानों पर बैठे हुए देवताओं की बहुरंगी प्रभा से आकाश की रूप-रेखा चितकबरी-सी जान पड़ती थी। कहीं वह शान्त, समाधिस्थ तथा परमपद में विश्रान्त मुनियों की मण्डली से घिरा हुआ था और कहीं जिन्होंने क्रोध को दूर से ही त्याग दिया है, उन साधु-महात्माओं के चित्त के समान वह सुन्दर एवं सम था। कहीं रुद्रपुर, कहीं ब्रह्मपुर और कहीं मायानिर्मित पुर वहाँ दृष्टिगोचर होते थे। कहीं सिद्धों के समुदाय विचर रहे थे। कहीं वह आकाशज्ञानी पुरुष के हृदय की भाँति दृश्य

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (J.K.S.) Jammu Collection

भ्रम से अत्यन्त शून्य, उज्ज्वल, आवरणरहित, आनन्दमय, कोमल, शान्त, स्वच्छ एवं विस्तृत था।

जहाँ गूलर के फल के भीतर रहने वाले छोटे-छोटे मच्छरों के समान त्रिभुवनवासी प्राणियों का समुदाय घूम रहा था, उस आकाश को बहुत ऊँचे तक लाँघकर वे दोनों ललनाएँ फिर भूतल पर जाने को उद्यत हुईं।

सत्रहवाँ सर्ग समाप्त

अठारहवाँ सर्ग

लीला का भूतल में प्रवेश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी! आकाश से किसी पर्वतीय ग्राम को जाती हुई उन दोनों स्त्रियों ने उसी भूतल को देखा, जो ज्ञान की देवी सरस्वती के मनमें था-जिसे वे लीला को दिखाना चाहती थीं। सागर, बड़े-बड़े पर्वत, लोकपाल, स्वर्ग, आकाश और भूतल से परिवेष्टित जगत् के मध्यभाग का अवलोकन करके मानव-कन्या रानी लीला ने तुरंत ही अपने मन्दिर के आधारभूत पर्वतीय ग्राम का वह स्थान देखा।

इस प्रकार वे दोनों सुन्दरियाँ, जहाँ राजा पद्म रहते थे, उस ब्रह्माण्ड मण्डल से निकलकर दूसरे ब्रह्माण्ड में जा पहुँचीं, जहाँ वसिष्ठ नामक ब्राह्मण का घर था। वे दोनों ही स्त्रियाँ सिद्ध थीं। उन्होंने दूसरे लोगों से अदृश्य रहकर ही ब्राह्मण के निवास भूत मण्डप को, जो उनका अपना ही घर था, देखा। वह घर गृहस्वामी के वियोग से हतप्रभ हो गया था। उसके मुख अर्थात् द्वार की कान्ति करुणा से व्याप्त थी और उसका विनाश निकट था।

रघुनन्दन! सुन्दरी लीला चिरकाल तक सुन्दर ज्ञान का अभ्यास करने के कारण देवता की भाँति सत्यसंकल्प और सत्यकाम हो गयी थी। (वह जो चाहती, वही हो जाता था।) उसने सोचा, ये मेरे बन्धुजन मुझको और इन देवी सरस्वती को साधारण स्त्री के रूप में देखें। उसके ऐसा संकल्प करते ही उस घर के लोगों ने वहाँ दो दिव्यागंनाओं को देखा, जो उस घर को अपनी प्रभा से उद्भासित कर रही थीं। वे दोनों लक्ष्मी और पार्वती की जोड़ी-सी जान पड़ती थीं। तदनन्तर ज्येष्ठ शर्मा ने घर के अन्य लोगों के साथ यह कहकर कि 'आप दोनों वन-देवियों को नमस्कार है' उन दोनों के लिये पुष्पांजलि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

छोड़ी।

उस समय ज्येष्ठ शर्मा आदि बोले-वनदेवियो! आप दोनों की जय हो। निश्चय ही आप हमारे दुःखों का नाश करने के लिये आयी हैं; क्योंकि प्रायः दूसरों का संकट से उद्धार करना ही सत्पुरुषों का अपना कार्य होता है।

ज्येष्ठ शर्मा आदि के ऐसा कहने के पश्चात् वे दोनों देवियाँ बड़े आदर से बोलीं-'तुम सब लोग अपना वह दुःख बताओ, जिससे यह सारा जनसमुदाय दुखी दिखायी देता है।' तब उन ज्येष्ठ शर्मा आदि ने उन दोनों देवियों से क्रमशः ब्राह्मण दम्पती के मरणरूप अपना सारा दुःख निवेदन किया।

ज्येष्ठ शर्मा आदि बोले-देवियो! यहाँ दो ब्राह्मण पति-पत्नी रहते थे, जिनका आपस में बड़ा स्नेह था। वे यहाँ पधारे हुए सभी लोगों का आतिथ्य-सत्कार करते थे। हमारी इस कुल-परम्परा के प्रवर्तक भी वे ही थे। द्विजातियों की मर्यादा के तो वे स्तम्भ ही थे। वे ही दोनों हमारे माता-पिता थे। इस समय पुत्रों, बन्धु-बान्धवों और पशुओं सहित इस घर को त्यागकर वे दोनों स्वर्ग लोक को चले गये हैं; इससे हमें तीनों लोक सूने दिखायी देते हैं। इसलिये देवियो! आप दोनों पहले हमारे इस शोक का निवारण करें; क्योंकि महात्माओं के दर्शन कभी निष्फल नहीं होते।

पुत्र ज्येष्ठ शर्मा जब ऐसा कह चुका, तब माता लीला ने अपने हाथ से उसके मस्तक का स्पर्श किया। उसके उस स्पर्श से ज्येष्ठ शर्मा के दुःख-दुर्भाग्यरूपी संकट का तत्काल निवारण हो गया। घर के सभी लोग उन दोनों देवियों के दर्शन से अमृत पीने वाले देवताओं के समान दुःख से मुक्त हो दिव्य शोभा से सम्पन्न हो गये।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन्! माता लीला ने अपने पुत्र ज्येष्ठ शर्मा को उसकी माता के रूप में ही उसे क्यों नहीं दर्शन दिया ? आप पहले मेरे इस मोह (संदेह) का ही निराकरण कीजिये।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.A.S) Jammu Collection

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! मनुष्य जैसी भावना करता है, उसके अनुसार ही इन पदार्थों का अभ्यासजनित स्वरूप दिखायी देता है, किसी भी पदार्थ का वास्तव में कोई एक रूप नहीं है। लीला ने तो यह यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि पृथ्वी आदि भूतों का अस्तित्व कदापि नहीं है। चेतन आकाशरूप जो ब्रह्म है, वही कल्पना द्वारा मिथ्या प्रपंचरूप से प्रकट हो भासित हो रहा है (उसका ज्येष्ठ शर्मा के प्रति पुत्र सम्बन्धी स्नेह नहीं रह गया था, इसलिये उसे अपनी माता के रूप में लीला का दर्शन नहीं हुआ) सर्वत्र सभी रूपों में केवल एक चेतनाकाश स्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही विराजमान है-जिसे ऐसा बोध प्राप्त हो गया है, उस मुनि के लिये कौन, किस प्रकार, कब और किस निमित्त से पुत्र, मित्र एवं कलत्र हो सकते हैं। दृश्य-प्रपंच तो सृष्टि के आदि में ही उत्पन्न नहीं हुआ। जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह अजन्मा ब्रह्म ही है। ऐसे यथार्थ ज्ञान वाले लोगों को राग-द्वेष से युक्त दृष्टि कैसे प्राप्त हो सकती है।

अठारहवाँ सर्ग समाप्त

उन्नीसवाँ सर्ग

परमात्मा की अनादि-अनन्त सत्ता का प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! उस पर्वत के तट प्रान्त में बसे हुए ग्राम के भीतर उस ब्राह्मण के गृहरूपी आकाश में ही खड़ी हुई वे दोनों स्त्रियाँ सहसा अदृश्य हो गयीं। उस घर के लोगों ने समझा कि दोनों वन देवियों ने हम पर बड़ी भारी कृपा की है; अतः उनका सारा दुःख मिट गया और वे अपने-अपने काम-धंधों में लग गये। तत्पश्चात् उस मण्डपाकाश में दूसरों की दृष्टि से तिरोहित हुई लीला से, जो वहाँ मुस्कराती हुई चुपचाप खड़ी थी, सरस्वती ने कहा-बेटी! तुमने ज्ञातव्य वस्तु को पूर्ण रूप से जान लिया है, द्रष्टव्य पदार्थों को देख लिया है।

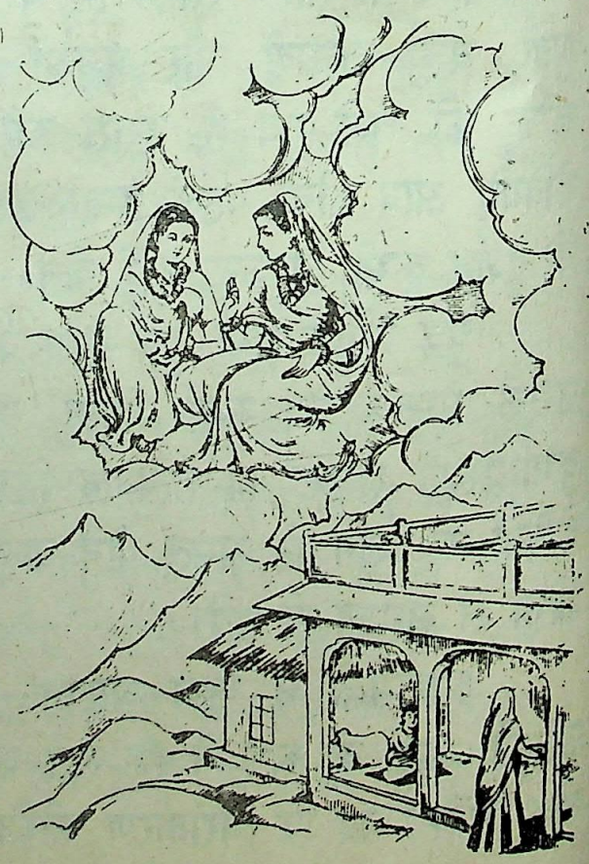

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इस प्रकार की यह ब्रह्मसत्ता है। बताओ, अब और क्या पूछती हो ?

लीला ने पूछा-देवि! मेरे मृत-पति का जीव जहाँ पर राज्य करता है, वहाँ पर मुझे उन लोगों ने क्यों नहीं देखा ? और यहाँ मेरे पुत्र ने कैसे देख लिया ?

श्रीसरस्वतीजी ने कहा-सुन्दरी! मैं लीला हूँ-ऐसा जो तुम्हारा दृढ़ संस्कार था, वह पहले नष्ट नहीं हुआ था; क्योंकि उस संस्कार को मिटाने के लिये तुमने वैसा अभ्यास नहीं किया। जब तक वह संस्कार बना था, तब तक तुम्हारी सत्य-संकल्पता प्रकट नहीं हुई थी। अब वह संस्कार मिट जाने से तुम सत्य-संकल्प हो गयी हो। इसलिये जब तुमने यह अभिलाषा की कि मेरा पुत्र मुझे देखे, तब तुम्हारा वह मनोरथ तत्काल सफल हुआ। इस समय यदि तुम अपने पति के समीप जाओ तो उसके साथ भी तुम्हारा सारा व्यवहार पहले की ही भाँति होने लगेगा।

लीला बोली-देवि! इसी मण्डप के आकाश में मेरे पतिदेव ब्राह्मण उत्पन्न हुए और इसी में मृत्यु को प्राप्त होकर राजा हो गये। अन्य भूमण्डलरूप उनका वह संसार भी यहीं है। इसमें जो उनकी राजधानी का नगर है, उसमें मैं उनकी राजमहिषी के रूप में स्थित हूँ। यहीं उस अन्तःपुर में मेरे पति राजा पद्म की मृत्यु हुई और इसी अन्तःपुर के आकाश में वह नगर है, जिसमें वे पुनः राजा हुए हैं। ब्रह्माजी से उत्पन्न होने के पश्चात् आज तक विभिन्न योनियों में जो मेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं, उनमें से आठ सौ जन्मों को तो मैं इस समय पुनः देख-सी रही हूँ, उनकी सारी बातों का स्पष्टरूप से स्मरण कर रही हूँ। देवि! पहले किसी दूसरे संसार मण्डल में मैं लोकान्तर रूपी कमल की भ्रमरी-विद्याधरराज की धर्मपत्नी हुई थी। उन दिनों मेरा हृदय दुर्वासनाओं से दूषित था। इसलिये उसके बाद मैं मनुष्य योनि में उत्पन्न हुई, तदनन्तर दूसरे संसार मण्डल में मैं नागराज की भार्या हुई। इसके बाद कदम्ब, कुन्द, जम्बीर और करंजों के वन में निवास करने वाली तथा वृक्षों के पत्तों को ही वस्त्र के रूप में धारण करने वाली काली-कलूटी भीलनी हुई।

तदनन्तर पुरुषत्वरूपी फल देने वाले कर्मों के परिणाम से मैं सौ वर्षों तक सौराष्ट्र देश में श्रीसम्पन्न राजा होकर रही। फिर राजा-शरीर से बने हुए दुष्कर्म-दोष के कारण ताड वृक्ष के नीचे किसी नदी के कछार में नौ वर्षों तक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma(I.E.S) Jammu Collection

नेवली की योनि में रही। उस समय मेरे सारे अंग कुष्ठ रोग से नष्टप्रायः हो गये थे। देवि! उसके बाद मैं सौराष्ट्र देश में आठ वर्षों तक गौ का शरीर धारण करके रही। उस योनि में दुर्जन, दुष्ट, अज्ञ और बालक ग्वालों की मारने-पीटने आदि क्रीड़ाओं का साधन बनी रही। फिर क्रमशः पक्षिणी, भ्रमरी, मनोहर नेत्रवाली हरिणी, मछली, पुलिन्द जाति की स्त्री, सारसी और राजहंसी हुई। इस प्रकार नानाप्रकार के शत-शत दुःखों से संकुल अनेकानेक योनियों में मैंने भ्रमण किया है। तराजू के पलड़े की भाँति कभी ऊँचे उठने और कभी नीचे गिरने से मेरे सारे अंग व्याकुल होते रहे हैं। मैं संसाररूपी विशाल सरिता की चंचल तरंग बनकर उठती और विलीन होती रही हूँ। जैसे वातप्रमी जाति की हरिणी की गति को रोकना कठिन है, उसी प्रकार मैं दुर्निवार्य आवागमन की परम्परा में पड़कर क्रमशः विभिन्न योनियों में भटकती आयी हूँ।

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करती हुई वे दोनों सुन्दरी ललनाएँ मनोहारिणी गति से उस घर के बाहर निकलीं। उस समय गाँव के लोग उन्हें नहीं देख पाते थे, परंतु वे दोनों अपने सामने के पर्वत को अच्छी तरह देख रही थीं।

लीला बोली–देवि! इस देश को देखकर मैं आपकी कृपा से अपने पूर्व जन्म की उन सभी विविध चेष्टाओं का स्मरण करती हूँ, जो यहाँ घटित हुई हैं; मैं यहीं बूढ़ी ब्राह्मणी के रूप में रहती थी। मेरे सारे अंग उभरी हुई नस-नाड़ियों से व्याप्त दिखायी देते थे। मैं बहुत दुबली-पतली थी। मेरा शरीर गौर और बाल सफेद थे। मेरी हथेली सूखे कुशों के अग्रभाग से छिन्न-भिन्न होती रहने के कारण रूखी हो गयी थी। मैं अपने पतिदेव के कुल की वृद्धि करने वाली भार्या थी। दूध और मथानी मेरी शोभा बढ़ाते थे। मैं सारे पुत्रों की अकेली माता और अतिथियों का सत्कार करने वाली गृहिणी थी। देवताओं, ब्राह्मणों और संत-महात्माओं के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्रति मेरे मन में बड़ी भक्ति थी। मैं भर्जनपात्र, चरुस्थाली तथा कलश आदि पात्रों एवं यज्ञ के अन्य उपकरणों को धो-पोंछकर साफ-सुथरा रखती थी। जमाई, बेटी, भाई, पिता और माता की सदा सेवा-शुश्रूषा करती थी। जब तक मेरा शरीर रहा, तब तक घर की ही सेवा-टहल में मेरे दिन-रात बीतते थे। 'ओह! इस काम में बहुत देर हो गयी, बड़ा विलम्ब हुआ' इत्यादि बातें कहती और निरन्तर कार्य में व्यस्त रहती थी। 'मैं कौन हूँ, यह संसार कैसा है ?' इस बात की चर्चा या इन प्रश्नों पर विचार कभी स्वप्न में भी मैंने नहीं किया। मेरे पति श्रोत्रिय होने के साथ ही तत्त्व-विचार में मूढ़ थे। मेरे ही समान उनकी भी घर में आसक्ति बनी हुई थी। उनकी बुद्धि शुद्ध नहीं थी। समिधा, साग, गोबर और ईंधन के संग्रह में ही मेरी एकमात्र निष्ठा थी। घर के पास खेतों में जो साग-सब्जी की क्यारियाँ थीं, उन्हें सींचने के लिये मैं जल्दी-जल्दी जल पात्र लेकर आने के निमित्त नौकरों को पुकारा करती थी। जल की लहरों के किनारे जो हरी-हरी घासें उगी होती थीं, उन्हें स्वयं लाकर मैं अपनी छोटी-सी बछिया को तृप्त किया करती थी। प्रतिक्षण घर के दरवाजे को लीपकर वहाँ चौक बनाती और उसमें भाँति-भाँति के रंग भरकर सजा देती थी। घर के नौकरों को शिक्षा देने के लिये मैं कुछ दीनता के साथ नम्रतापूर्वक समझाती कि 'लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे, इसलिये तुम्हें विनय और सदाचार से रहना चाहिये।' जैसे समुद्र अपनी तटभूमि का लंघन न करके निरन्तर मर्यादा में स्थित रहता है, उसी प्रकार मैं भी धर्म-मर्यादा के नियम से कभी च्युत नहीं होती थी।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! यों कहकर उस पर्वतीय ग्राम के भीतर भ्रमण करती हुई लीला ने अपने साथ विचरती हुई सरस्वती देवी को मन्द मुस्कान के साथ वहाँ की एक-एक वस्तु को दिखाया। फिर वह इस प्रकार बोली-'देवि! इस घर के आकाश में ही वह मेरे पति का जीव राजा के रूप में रह रहा है। यहीं अंगुष्ठमात्र गृहाकाशके भीतर ही स्थित परमार्थ वस्तु (परब्रह्म) को मैंने भ्रम से करोड़ों योजन विस्तृत पति का राज्य समझा था। जगदीश्वरि! हम दोनों चेतन-आकाश रूप परमात्मा ही हैं। मेरे पति देव का राज्य, जो सहस्त्रों पर्वतों से भरा हुआ है, आकाश में ही स्थित है। यह बहुत बड़ी माया फैली हुई है। इसलिये देवि! अपने पति के नगर में जाने की पुनः मेरी इच्छा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma Jammu Collection

हो रही है। अतः चलिये, हम दोनों वहाँ चलें। जिन्होंने कहीं जाने का निश्चय कर लिया हो, उनके लिये वह स्थान क्या दूर है ?'

यों कहकर लीला ने देवी को प्रणाम किया और शीघ्र ही गृह-मण्डप में प्रवेश कर सरस्वती देवी के साथ वह आकाश में उड़ चली। भगवान् विष्णु की अंगकान्ति के समान नीले मेघपथ को लाँघ कर वे प्रवह आदि सात वायुओं के लोक में जा पहुँचीं। फिर वहाँ से सौरमार्ग तथा चन्द्रमार्ग को लाँघती हुई वे ध्रुव मार्ग से भी ऊपर पहुँच गयीं। इसकेबाद साध्यों के मार्ग से ऊपर उठकर सिद्धों की भूमि को भी लाँघ गयीं और स्वर्ग मण्डल को भी लाँघ कर अत्यन्त दूर जाने पर लीला को कुछ बोध हुआ। फिर उसने पीछे फिरकर पार किये हुए आकाश-स्थल का अवलोकन किया। वहाँ से नीचे देखने पर चन्द्रमा, सूर्य और तारा आदि कुछ भी नहीं दिखायी देते थे। केवल अन्धकार-ही-अन्धकार था।

तब लीला ने पूछा-देवि! बताओ, सूर्य आदि का तेज नीचे कहाँ चला गया ? पत्थर के मध्य भाग की भाँति सुदृढ़ एवं घनीभूत होने के कारण मुट्ठी में लेने योग्य यह अन्धकार कहाँ से आ गया ?

श्रीसरस्वती देवी ने कहा-बेटी! तुम इतनी दूर आकाश-मार्ग में आ गयी हो कि यहाँ से सूर्य आदि तेज भी नहीं दिखायी देते।

लीला बोली-देवि! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। क्या हम दोनों आकाश-मार्ग में इतनी दूर आ गयीं, जहाँ से नीचे सूर्य देव भी परमाणु के कण की भाँति तनिक भी दिखायी नहीं देते ? माताजी! इससे आगे दूसरा मार्ग कौन और कैसा होगा और उसमें कैसे जाना होगा ? देवि! यह सब मुझे बताइये।

श्रीसरस्वती देवी ने कहा-बेटी! इसके बाद आगे तुम्हें ब्रह्माण्ड-सम्पुट के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ऊपरी कपाल में जाना है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! जैसे दो भ्रमरियाँ पर्वत की चट्टानों से बनी हुई घनीभूत मण्डप वाली दीवाल पर पहुँच जायँ, उसी प्रकार आपस में उपर्युक्त बातें करती हुई वे दोनों देवियाँ ब्रह्माण्ड-सम्पुट के ऊपर वाले कपाल तक पहुँच गयीं। साथ ही जैसे कोई आकाश से निकले, उसी तरह वे वहाँ से अनायास ही बाहर निकल गयीं। जो वस्तु सत्यता के दृढ़ निश्चय से युक्त होती है, वही वज्र के समान ठोस और भारी होती है और जो इससे भिन्न कल्पित दीवार आदि वस्तु है, वह मिथ्यात्व-बुद्धि से बाधित हो जाती है। लीला का विज्ञान आवरण शून्य था। इसलिये वह ब्रह्माण्ड-सम्पुट के ऊपर वाले कपाल को मिथ्यात्व-बुद्धि से बाधित करके उससे बाहर निकल गयी। ब्रह्माण्ड के पार जाने पर उसे अत्यन्त प्रकाशमान जल आदि का आवरण दिखायी दिया, जो सब ओर व्याप्त था। उस आवरण-समुदाय में जो जल का आवरण है, उसमें ब्रह्माण्ड की अपेक्षा दस गुना जल विद्यमान है। उसके बाद उससे भी दस गुना अग्निमय आवरण है। फिर उससे भी दस गुनी वायु और उससे भी दस गुने आकाश के आवरण हैं। तदनन्तर विशुद्ध चिन्मय आकाश है। उस परम व्योम (चेतनाकाश) रूप परब्रह्म परमात्मा में आदि, मध्य और अन्त की कोई कल्पनाएँ नहीं उदित होतीं वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण एवं अपरिच्छिन्न है। वह अद्वितीय, सर्वव्यापी, शान्त, आदि अथवा कारण से रहित, भ्रमशून्य, अनादि, अनन्त, मध्यरहित तथा अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित है। उस निर्मल चेतनाकाश स्वरूप परमात्मा में यदि एक कल्प तक बड़े भारी वेग से ऊपर से नीचे को पत्थर की शिला गिरती रहे और नीचे से पक्षिराज गरुड़ भी अपना सारा बल लगाकर ऊपर को उड़े तथा उनके बीच में सबको मापने में समर्थ वायु समान वेग से दोनों ओर बहे तो वह भी उन दोनों का संयोग नहीं पा सकती।

उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

बीसवाँ सर्ग

लीला द्वारा ब्रह्माण्डों का निरीक्षण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! तदनन्तर लीला ने उस अपरिमित चेतन आकाशस्वरूप परमात्मा में इस जगत् की ही भाँति फैले हुए अनन्त ब्रह्माण्डों को देखा। जैसे धूप निकलने पर जँगले के छेद से जो किरणें घर में आती हैं, उनके अन्तर्गत आकाश में असंख्य त्रसरेणु दृष्टिगोचर होते हैं, उसीप्रकार लीला ने उन सभी ब्रह्माण्डों में वैसे ही आवरणों से युक्त चराचर प्राणियों की करोड़ों सृष्टियों को देखा, जो स्वयम्प्रकाश अधिष्ठानभूत चैतन्य से भासित थीं। अविद्या रूपी जल से भरे हुए महाकाशरूपी महासागर में महाचैतन्य के स्फुरण रूप द्रवीभाव से प्रकट हुए असंख्य ब्रह्माण्डरूपी बुदबुदों को लीला ने लक्ष्य किया।

जिसकी दृष्टि अज्ञान से दूषित है, उसी पुरुष को असीम एवं महान् चेतन आकाशरूप परमात्मा में सम्पूर्ण आवरणों से युक्त ये ब्रह्माण्ड प्रतीत होते हैं। सारे ही पदार्थ परतन्त्र होने के कारण वेग पूर्वक इधर-उधर भाग रहे हैं (उनमें परस्पर आकर्षण होने के कारण वे गिरते नहीं।) ब्रह्माण्ड में जो महापृथ्वी रूप भाग है, वह उसका अधोभाग है और उससे भिन्न जो आकाश है, वह उसका ऊपरी भाग है। जैसे गोल मिट्टी के ढेले में दसों दिशाओं की ओर से सटी हुई चींटियों को जो पैर होते हैं, वे ही उनके लिये अधोभाग हैं और जिस ओर उनकी पीठ रहती है, वही ऊपर का भाग है, उसी प्रकार दसों दिशाओं में संलग्न जो पैर हैं, वे ही नीचे के भाग कहलाते हैं और आकाश की ओर जो पीठ या सिर होते हैं, उन्हें ऊर्ध्व भाग में स्थित बताया गया है-यह बड़े-बड़े विद्वानों का कथन है। किन्हीं-किन्हीं ब्रह्माण्डों के भीतर की भूमि वृक्षों और वाल्मीकों के समूह से व्याप्त है (उसमें मनुष्य नहीं है) और उन ब्रह्माण्डों का निर्मल आकाश देवता, किन्नर तथा दैत्यों से युक्त विभिन्न लोकों से वेष्टित है। जैसे पका हुआ अखरोट का फल छिलके से ढका रहता है, उसी प्रकार कुछ ब्रह्माण्ड तत्काल कल्पित जरायुज, उद्भिज्ज, अण्डज और स्वेदज-चार प्रकार के प्राणियों तथा ग्राम, नगर और पर्वतों से युक्त होकर उत्पन्न हुए हैं। स्थिति काल में सम्पूर्ण पदार्थ चेतन परब्रह्म परमात्मा में रहते हैं। सृष्टिकाल में उससे उत्पन्न होते हैं और प्रलयकाल में सब उसी में लीन हो जाते हैं। अतः सम्पूर्ण दिशाओं, कालों और वस्तुओं में वही है। उससे अतिरिक्त कोई नहीं है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वही नित्य, सर्वमय आत्मा है। उस परम प्रकाश के सागर शुद्ध बोधमय चेतन आकाशस्वरूप परब्रह्म परमात्मा में ब्रह्माण्ड नामक तरंगें निरन्तर उठती और विलीन होती रहती हैं। किन्हीं ब्रह्माण्डों में महाप्रलय की प्राप्ति होने पर जैसे सूर्य का ताप लगने से हिमकण गल जाते हैं, उसी प्रकार सूर्य, अग्नि, विद्युत और पर्वत भी गलने लगते हैं। कुछ ब्रह्माण्डों के आदि पुरुष (सृष्टिकर्ता) ब्रह्मा हैं। कुछ के आदिस्रष्टा और पालक भगवान् विष्णु हैं। कुछ ब्रह्माण्डों के प्रजापति दूसरे (रुद्र एवं दुर्गा आदि है) तथा कुछ ब्रह्माण्डों में जो जीव-जन्तु हैं, उनका कोई भी नाथ (रक्षक या नियन्त्रण करने वाला) नहीं होता। इसी तरह कुछ ब्रह्माण्डों की सृष्टि और प्रजापति विचित्र ही हैं। महामते! जगत् के वर्णन के विषय में हमारी बुद्धि का जो सम्पूर्ण वैभव था, उसे हम दिखला चुके। उसके बाद जो जगत् है, वह हमारी बुद्धि का विषय नहीं है। अतः उसका वर्णन करने में हम असमर्थ हैं।

अपने पूर्वजन्म के संसार से निकल कर पूर्वोक्त रीति से अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की विचित्रता को देखती हुई उन दोनों स्त्रियों ने किसी ब्रह्माण्ड में प्रवेश करके वहाँ के अन्तःपुर को देखा और फिर वहाँ से वे शीघ्र ही बाहर निकल आयीं। उस अन्तःपुर में पुष्पराशि से आच्छादित महाराज पद्म का महान् शव रक्खा था। उस शव के पास ही बैठी हुई लीला का स्थूल शरीर था, जिसका चित्त समाधि-अवस्था में आरूढ़ था। शोक के कारण रात्रि बड़ी प्रतीत होने से वहाँ के लोग कुछ-कुछ प्रगाढ़ निद्रा से युक्त थे। वह अन्तःपुर धूप, चन्दन, कपूर और केसर की सुगन्ध से भरा था। उसे देखकर लीला को पति के दूसरे संसार में जाने की इच्छा हुई (अर्थात् राजा पद्म मृत्यु के पश्चात् जहाँ उत्पन्न हुए थे, वहाँ जाने के लिये वह उत्कण्ठित हुई)। तब वे दोनों देवियाँ विभिन्न लोकों, पर्वतों और आकाश को लाँघकर भूतल पर पहुँची, जो पर्वत

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मालाओं तथा समुद्रों से घिरा हुआ था। तत्पश्चात् मेरु पर्वत से अलंकृत जम्बू द्वीप में गयीं, जिसका भीतरी भाग नौ खण्डों में विभक्त है। जम्बू द्वीप के भीतर भारतवर्ष में लीला के पति का राज्य था। वहीं वे दोनों जा पहुँची। इसी समय जो भूमण्डल का मण्डन था, उस राज्य में किसी राजा ने आक्रमण किया। अपने सहायभूत सामन्तों के कारण उस आक्रमणकारी भूपाल की शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। उस राजा के साथ संग्राम छिड़ने पर उसे देखने के लिये आये हुए तीनों लोकों के प्राणियों से वहाँ का आकाश ठसाठस भर गया। उक्त दोनों देवियाँ निश्शंक होकर वहाँ आ गयीं। उन्होंने उस आकाश को आकाशचारी प्राणियों के समुदाय से इस तरह आक्रान्त देखा, मानो वहाँ मेघों की घटा घिर आयी हो। स्वर्ग लोक में स्थान पाने योग्य शूरवीरों को लाने के लिये व्यग्र हुए इन्द्र के भट वहाँ के आकाश को उद्भासित कर रहे थे।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन्! 'शूर' शब्द से किस तरह के योद्धा का प्रतिपादन किया जाता है ? कौन स्वर्ग का अलंकार है अथवा कौन डिम्भाहव (बच्चों का युद्ध) कहलाता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! जो शास्त्रोक्त सदाचार से युक्त स्वामी के लिये रणभूमि में युद्ध करता है, वह चाहे मरे या विजयी हो, दोनों अवस्थाओं में शूर कहा गया है। वही स्वर्गलोक का भागी होता है। पूर्वोक्त विधि से विपरीत, अत्याचारी स्वामी के लिये युद्ध करके जो रणभूमि में किसी प्राणी के द्वारा अंगों के कट जाने से मृत्यु को प्राप्त होता है, वह डिम्भाहव में मारा गया कहलाता है। ऐसा मनुष्य नरकगामी होता है। जिसका आचरण शास्त्र के अनुकूल नहीं है, उसके लिये जो मनुष्य युद्ध करता है, वह यदि संग्राम में मारा जाय तो उसे सदा बने रहने वाले नरक की प्राप्ति होती है। यथासम्भव शास्त्र की आज्ञा और लोकाचार का पालन करने वाला जो व्यक्ति रणभूमि में (धर्म) युद्ध करता है तथा वैसे ही सदाचारी स्वामी का भक्त होता है, वह शूर कहलाता है। शुद्ध-बुद्धि वाले रघुनन्दन! जो गौ, ब्राह्मण तथा मित्र की रक्षा के लिये प्राण देता है अथवा शरणागत की रक्षा के लिये यत्न करते हुए मारा जाता है, वह शूरवीर स्वर्ग लोक का अलंकार है। राजा के लिये अपना देश सदा ही रक्षणीय होता है। जो राजा एकमात्र उसी की रक्षा में लगा रहता है, उसके लिये जो युद्ध में मारे जाते हैं, वे ही वीर हैं और उन्हीं को वीरलोक की प्राप्ति

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

होती है। जो प्रजा के प्रति उपद्रव करने में ही लगा रहता है, वह राजा हो या न हो, वैसे स्वामी के लिये जो युद्ध में प्राण देते हैं, वे निश्चय ही नरकगामी होते हैं। जो शास्त्र के प्रतिकूल आचरण करने वाले हैं, वे राजा हों या न हों, उनके लिये जो युद्ध में अपने अंगों को कटाकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे निस्सदेह नरक में गिरते हैं। जो सदाचारी पुरुषों के लिये तलवार की धार को सहते हैं, वे शूरवीर कहे जाते हैं। शेष सभी लोग डिम्भाहव में मारे गये कहलाते हैं।

बीसवाँ सर्ग समाप्त

इक्कीसवाँ सर्ग

लीला और सरस्वती का युद्ध का दृश्य देखना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! तदनन्तर आकाश में स्थित हुई सरस्वती देवी सहित लीला ने भूतल पर पति देव के द्वारा सुरक्षित, सैन्य बल से सम्पन्न राष्ट्रमण्डल में आमने-सामने दो सेनाएँ देखीं, जो एक दूसरे के प्रति क्षोभ से भरी हुई थीं। दोनों ही मतवाली दिखायी देती थीं। दोनों महान् आयोजन में संलग्न एवं घनी थीं। उनमें उभय पक्षों के दो राजा विद्यमान थे। दोनों सेनाएँ युद्ध के लिये सुसज्जित थीं, कवच और शिरस्त्राण आदि से संनद्ध थीं तथा प्रज्वलित अग्नि के समान अद्भुत दिखायी देती थीं। पहले कौन प्रहार अथवा अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करता है, यह देखने के लिये क्षुब्ध हुए असंख्य नेत्र उन्हें एकटक दृष्टि से देख रहे थे। ऊपर उठी हुई चमचमाती तलवारों की धारें ही मानो धारावाहिक वृष्टि थीं, जिसे दोनों सेनाओं के सैनिक अपने अंगों पर वहन करते थे। फरसे, भाले, भिन्दिपाल, ऋष्टि और मुगदर आदि अस्त्र-शस्त्र वहाँ चमक रहे थे।

जिन्हें रोकना असम्भव था, ऐसी उन दोनों विशाल सेनाओं के तुमुल नाद से लोगों को आपस की बातचीत तक नहीं सुनायी देती थी। राजा की आज्ञा के बिना कोई पहले प्रहार न कर बैठे, इस आशंका से बहुत देर तक दोनों सेनाओं में रणदुन्दुभि न बज सकी। अपने-अपने स्थान में श्रेणीबद्ध होकर खड़े हुए सैनिक ही जिनके अंग थे, उन सम्पूर्ण टुकड़ियों से भरी-पूरी होने के कारण वे दोनों सेनाएँ मन्थरगति से आगे बढ़ रही थीं। उनमें असंख्य सैनिक अपने प्राणरूपी सर्वस्व को लुटा देने के लिये उद्यत थे। सभी धनुर्धर वीर कान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (HE S) Jammu Collection

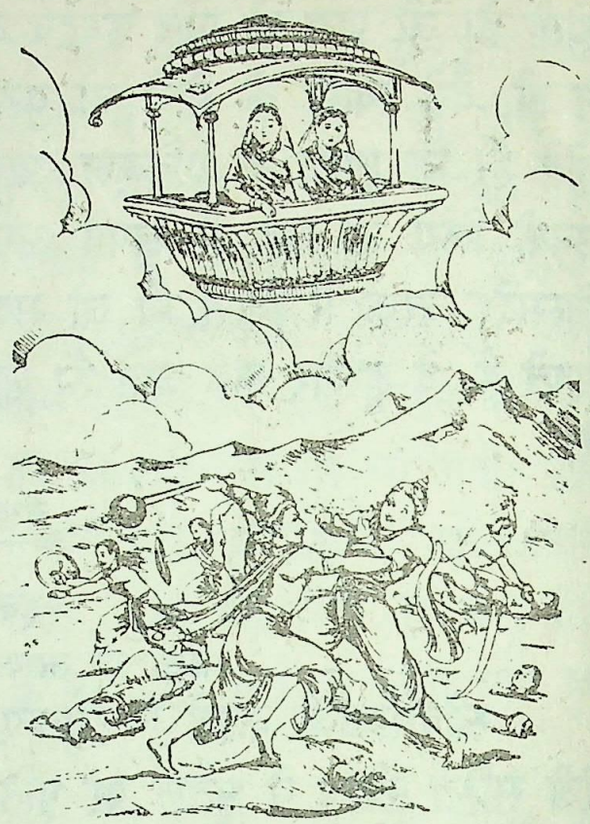

तक खींचे गये बाण समूहों की धारावाहिक वृष्टि करने के लिये उत्सुक थे। प्रहार करने के आदेश की प्रतीक्षा में अगणित योद्धा निश्चल खड़े थे। तदनन्तर लीला और सरस्वती दोनों देवियाँ उस युद्ध को देखने के लिये वहीं रुके हुए एक सुन्दर, सुस्थिर एवं मनःकल्पित विमान पर आरूढ़ हुईं। इतने में ही दोनों सेनाओं में आमने-सामने संघर्ष आरम्भ होने पर शत्रुपक्ष की सेना से प्रलय कालिक समुद्र से उठी हुई एक तरंग की भाँति कोई निर्भय योद्धा निकला और आगे बढ़ा। वह प्रहार करना ही चाहता था कि लीला के पति ने, जो पूर्वजन्म में पद्म था और वर्तमान जन्म में विदूरथ के नाम से विख्यात था, उसके आक्रमण को सहने में असमर्थ होकर पर्वत के शिखर पर गिरायी हुई शिला की भाँति उस विपक्षी योद्धा की छाती पर मुग्दर प्रहार किया। फिर तो दोनों सेनाओं में प्रलयकालीन समुद्र के समान वेग से बलपूर्वक अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार आरम्भ हुआ। अग्नि-तुल्य तेजस्वी आयुधों की प्रभा चपला की चमक के समान सब ओर चकाचौंध पैदा करने लगी। चंचल अस्त्र-शस्त्रों की धार के अग्रभाग से आकाश रेखांकित सा प्रतीत होने लगा। घरघराते हुए रथों के वेग से जो लीकें बन गयी थीं, वे ही योद्धाओं के शरीर से निकलकर बहने वाली खून की नदी के लिये मार्ग थीं। सैनिकों की दौड़-धूप से इतनी धूल उड़ी कि वहाँ सब ओर कुहरा-सा छा गया। धारावाहिक रूप से बरसते हुए अस्त्र-शस्त्र चमचमाहट पैदा करते थे। उस सेनारूपी समुद्र का कोलाहल एकत्र हुए सम्पूर्ण मेघों की क्षोभपूर्ण गर्जना के समान प्रतीत होता था। क्षेपणास्त्रों द्वारा फेंके गये पत्थरों और चक्रसमूहों से भयभीत हो आकाशचारी पक्षी दूर भाग गये थे। कुठारों के आघात से योद्धाओं के मस्तक विदीर्ण हो गये थे। पूरी शक्ति लगाकर चलायी गयी शक्तियों के समूह से छिन्न-भिन्न होकर गिरे हुए हाथियों की लाशों से धरती पट गयी थी।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

बड़े-बड़े ताड़ वृक्षों के समान ऊँचे पुरुषों ने हाथ में कुदाल ले वन भूमि खोदकर उसे समतल कर दिया था। जहाँ तक बाण फेंका जा सकता है, उससे दूने प्रदेश में सब ओर से लोगों को हटा दिया गया था और पत्थरों की चट्टानें भी काट-छाँटकर वहाँ से दूर फेंक दी गयी थीं। नाराच रूपी श्रेष्ठ जल की वर्षा करने वाले वीर समूह रूपी मतवाले मेघों के घिर आने से जहाँ कबन्ध रूपी मोर नाचने लगे थे तथा वेग से चक्कर काटते हुए मदमत्त गजराज रूपी पर्वतों से जो आवेष्टित था, वह वेग पूर्वक चलता हुआ युद्ध वहाँ प्रलय काल का सा दृश्य उपस्थित कर रहा था।

तदनन्तर युद्ध की इच्छा रखने वाले राजाओं, योद्धाओं, मन्त्रियों तथा आकाश से संग्राम का दृश्य देखने वाले देव, गन्धर्व आदि के मुख से वहाँ इस तरह की बातें निकलने लगीं-'देखो, तुरंत के कटे हुए मस्तकों के मुखरूपी गड्ढे में गोते लगाती हुई सफेद चीलों से व्याप्त हुए ये कबन्ध (धड़) समरांगण में बजते हुए वाद्यों के ताल पर उछल-उछल कर नाच रहे हैं।' देवताओं की गोष्ठियों में परस्पर यह चर्चा चल रही थी कि 'कौन धीर पुरुष कब, कैसे और क्यों स्वर्ग आदि लोकों में जायँगे ?' कुछ लोग ऐसी बातें कह रहे थे- 'मूढ़ो! आगे बढ़कर युद्ध करो। अधमरे मनुष्यों को उठा ले जाओ। नराधमो! इन अपने ही लोगों को पैरों के प्रहार से कुचल न डालो।'

जैसे सोया हुआ मनुष्य थोड़ी देर में स्वप्न-देह को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार युद्ध में मारा गया योद्धा मरण-कालिक मूर्छा के पश्चात एक ही निमेष में अपने कर्मरूपी शिल्पी (स्रष्टा) द्वारा रचित देवशरीर को प्राप्त कर लेता था। उस युद्धस्थल में परस्पर छेदन-भेदन के लिये उठे हुए हस्त-समूहों से भुशुण्डि, शक्ति, शूल, खंग, मुसल और प्रास नामक अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा हो रही थी। परस्पर चलाये गये युद्ध हेतुक अस्त्र-शस्त्र आपस में टकराकर चूर-चूर हो जाते थे। उन भयंकर आयुधों के चूर्ण से भरा हुआ वह संग्राम रूपी समुद्र बालुका-राशि से परिपूर्ण-सा जान पड़ता था। कटकर गिरे हुए छत्र उस रणसिन्धु में उठती हुई तरंग के समान प्रतीत होते थे।

युद्ध में थका हुआ कोई सैनिक अपने दूसरे साथी से कह रहा था- 'मित्र! संग्राम में थक जाने के कारण मेरी ही तरह तुम्हारी भी लड़ने की इच्छा शान्त हो गयी होगी: अतः मैं एक अच्छी बात बता रहा हूँ, सुनो। जलती हुई

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.P.S) Jammu Collection

। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

आग के समान उज्ज्वल बाण जब तक हम लोगों के अंगों के टुकड़े-टुकड़े नहीं कर डालते, तभी तक हमारे लिये निकल भागने का अवसर है। इसलिये आओ, हम लोग शीघ्र ही यहाँ से भाग चलें; क्योंकि यह जो चौथा पहर बीत रहा है, यमराज का ही दिन है (अतः इस समय यहाँ रहने से प्राणों की रक्षा असम्भव हो जायगी)।'

रघुनन्दन! तदनन्तर वह समर-सागर उद्धत ताण्डव नृत्य करने वाले उन्मत्त के समान प्रतीत होने लगा। उड़ जाने के लिये उद्यत हुए अश्व ही उसमें उत्ताल तरंग के समान जान पड़ते थे। बाणरूपी जल की धारा से घनीभूत हुए सैन्यरूपी मेघों ने वहाँ के भूतल और आकाश को आच्छादित करके एक-सा कर दिया था। दोनों विशाल सेनारूपी महासागरों की क्षोभजनित टक्कर से वहाँ लोगों में भाग-दौड़ मच गयी। जैसे समुद्र के गर्भ में स्थित पर्वत जलीय सर्पों से व्याप्त होता है, उसी प्रकार एक दूसरे दल का दलन करने में लगे हुए और प्रलय काल में उठे हुए-से अस्त्र-शस्त्रों द्वारा वह समरांगण व्याप्त हो रहा था। शूल, खंग, चक्र, बाण, शक्ति, गदा, भुशुण्डि और प्रास आदि सैकड़ों चमकीले आयुध परस्पर टकराते, काटते और अद्भुत ध्वनि उत्पन्न करते हुए दसों दिशाओं में घूम-घूमकर प्रलयकालीन प्रचण्ड वायु के झोंके से टूटकर आकाश में चक्कर काटते हुए वृक्ष आदि पदार्थों की लीला धारण करते थे।

इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त

बाईसवाँ सर्ग

युद्ध का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! दोनों सेनाओं में जो महान् धर्मनिष्ठ, सुशील, ओजस्वी, धैर्यशाली, शुद्ध, कुलकमल और युद्ध में कभी पीठ न दिखाने वाले शूरवीर थे, उनमें परस्पर द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। वे मेघों के समान गर्जना करते हुए एक दूसरे को निगल जाने के लिये उत्सुक हो दो नदियों के वेग युक्त प्रवाहों के समान एक दूसरे से भिड़ते और टकराते थे। चक्रधारी योद्धा चक्रधारियों से उलझ गये। धनुर्धर वीर धनुर्धरों से भिड़ गये। खंग से युद्ध करने वाले सैनिक खंगधारियों से जूझने लगे। भाले वाले भाले वालों से, मुग्दरधारी मुग्दर धारियों से, गदाधारी गदाधारियों से, शक्ति से युद्ध करने वाले शक्तिधारी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

योद्धाओं से, छुरे वाले छुरे वालों से, त्रिशूलधारी त्रिशूल धारियों से और लोहे की जंजीरों का जालीदार कोट पहनने वाले योद्धा अपने जैसे ही विपक्षी योद्धाओं से इस तरह वेगपूर्वक युद्ध करने लगे, मानो प्रलयकाल के विक्षुब्ध महा सागरों की तरगें आपस में टकरा रही हों। वह युद्धाकाशरूपी महासागर वहाँ अद्भुत शोभा पा रहा था। क्षोभपूर्वक चलाये गये चक्रसमूह उसमें भँवर के समान जान पड़ते थे। वहाँ बहने वाली वायु में बाणरूपी जल के कण व्याप्त हो रहे थे और आयुधरूपी मगर उसमें सब ओर विचर रहे थे। विद्या, बुद्धि, बल, शौर्य, अस्त्र-शस्त्र, अश्व, रथ और धनुष-ये युद्ध के दिव्य आठ साधन जिनके पास मौजूद थे, ऐसे सैन्यसमूह दो पक्ष होने के कारण आधे-आधे भाग से दोनों पक्षों में बँटकर क्रोधपूर्वक युद्ध के लिये खड़े थे। वे दोनों नरेश विदूरथ और सिन्धुराज भी तदनुसार ही स्थित थे।

रघुनन्दन! मध्यदेश को आदि (मुख्य) स्थान मानकर वहीं से दिशा की गणना करने पर लीला के पति महाराज पद्म (जो वर्तमान जन्म में विदूरथ थे) के पक्ष में उनकी सहायता के लिये पूर्व दिशा से जिस-जिस जनपद के लोग आये थे, उन सबके नाम बताता हूँ; सुनो! पूर्व दिशा में स्थित जो कोसल, काशि, मगध, मिथिला, उत्कल, मेखल, कर्कर, मुद्र, संग्राम-शौण्डक, मुख्य, हिम, रुद्रमुख्य, ताम्रलिप्त, प्राग्ज्योतिष, अश्वमुख, अम्बष्ठ, पुरुषादक, वर्णकोष्ठ, सविश्वोत्र, आममीनाशन, व्याघ्रवक्त्र, किरात, सौवीर और एकपादक-ये चौबीस जनपद हैं। इनके निवासी योद्धा राजा की सहायता के लिये आये थे। इनके सिवा पूर्वदिशा में जो माल्यवान्, शिबि, आजंन, वृषल, ध्वज, पद्म तथा उदयगिरि नामक सात पर्वत हैं, वहाँ के निवासी भी राजा पद्म के पक्ष में पधारे थे।

पूर्व-दक्षिण दिशा में जो ये विन्ध्य आदि के निवासी हैं, वे भी आये थे। इनके अतिरिक्त चेदि, वत्स, दशार्ण, अंग, बंग, उपबंग, कलिंग, पुण्ड्र, जठर, विदर्भ, मेखल, शबराननवर्ण, कर्ण, त्रिपुर, पूरक, कण्टकस्थल, पृथग् दीपक, कोमल, कर्णान्ध्र, चौलिक, चार्मण्यवत (चर्मण्वती नदी के तटवर्ती), काकक, हेमकुण्ड, शमश्रुधर, बलिग्रीव, महाग्रीव, किष्किन्ध और नालिकेरी- इन देशों के निवासी वीर भी लीला-पति की सहायता में आये थे।

रघुनन्दन! जो लोग लीला-पति के विपक्ष में आये थे, उनके इन जनपदों का वर्णन सुनो। पश्चिम दिशा में जो ये ऊँचे और बड़े-बड़े पर्वत हैं, पहले

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उनके नाम बताये जाते हैं–गिरिराज मणिमान्, मुरार्पणगिरि, वन, अर्कह, मेघभव, चक्रवान् और अस्ताचल–इन सबके निवासी उक्त नरेश के विपक्ष में आये थे। इनके अतिरिक्त जो काश नामक गणों और ब्राह्मण समूहों का अन्त करने वाले हैं, वे पंचजन नामक गणतन्त्र राज्य के सैनिक भी युद्ध के लिये आये थे। इसी प्रकार भारक्षतथ, पारक, शान्तिक, शैब्य, आरमरकाय, अच्छ, अगुहुत्व, अनियम, हैहय, सुह्मगाय, ताजिक, हूणक, दक्षिण कतक और उत्तर कतक देशों के पार्श्व भाग में स्थित कर्क देश, गिरिपर्ण और अवम–इन सब देशों के निवासी म्लेच्छ जाति के अन्तर्गत हैं; क्योंकि इन्होंने धर्म की मर्यादा का सर्वथा त्याग कर दिया है। (ये सभी राजा विदूरथ के विपक्ष में आये थे।) तदनन्तर दो सौ योजन तक की भूमि जनपदों से रहित है। तत्पश्चात् महेन्द्र पर्वत है, जिसकी भूमि में मोती और मणियों की अधिकता है। उसके बाद अश्वगिरि है, जो सैकड़ों पर्वतों से युक्त है। उससे आगे भयंकर महासागर है, जिसके तट पर पारियात्र नामक पर्वत है। (इन सब स्थानों के निवासी सिन्धुराज की ओर से युद्ध करने आये थे।)

पश्चिमोत्तर दिशा में पर्वतीय प्रदेश के भीतर वेणुपति और नरपति नामक देश हैं, जहाँ अनेक प्रकार के उत्सव होते रहते हैं। इनके सिवा जो फल्गुणक, माण्डव्य, अनेक नेत्रक, पुरुकुन्द, पार, भानुमण्डल, भावन, वन्मिल, नलिन, दीर्घ–जहाँ के निवासियों के केश, अंग और भुजाएँ दीर्घ (बड़ी) होती हैं, रंग, स्तनिक, गुरुह और लुह नाम वाले देश हैं (उनके निवासी भी सिन्धुराज की ओर से आये थे)। तदनन्तर अनुपम स्त्री राष्ट्र है, जहाँ के लोग गाय–बैल और अपनी संतान तक को खा जाते हैं। (इन सब स्थानों के निवासी उस युद्ध में सम्मिलित हुए थे।)

उत्तर दिशा में जो हिमवान्, क्रौञ्च, मधुमान्, कैलास, वसुमान् और मेरु पर्वत हैं तथा इन सबके आस–पास जो शाखा पर्वत हैं, उन पर जो लोग निवास करते हैं (वे सब योद्धा सिन्धुराज की ओर से युद्ध करने के लिये आये थे)। इनके सिवा मद्र, वारेव, यौधेय, मालव, शूरसेनिक, राजन्य, अर्जुनातन्य, त्रिगर्त, एकपात्, क्षुद्र, आमबल, स्वस्तवासी, अबल, प्रखल, शाक, क्षेमधूर्ति, दशधान, गावसन्य, दंड, हन्यसन, धनद, सरक, वटधान, अन्तरद्वीप, गन्धार, अवन्ति, सुर, तक्षशिला, वीलव, गोधनी, पुष्करावर्त देश के अन्तर्गत यशोवती,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Jammu (E-S) Jammu Collection

नाभिमती, तिक्षा, कालवर, काहकनगर, सुरभूतिपुर, रतिकादर्श, अन्तरादर्श, पिंगल, पाण्डव्य, यामुन, यातुधानक, मानव, नांगन, हेमताल, स्वस्वमुख-इन देशों के निवासी भी उस युद्ध में सिन्धुराज की ओर से आये थे। (उपर्युक्त देश पर्वत से नीचे हैं। इनसे ऊपर की ओर) पूर्वोक्त हिमवान्, वसुमान्, क्रौञ्च और कैलास नामक पर्वत हैं। उनसे आगे बढ़ने पर आठ हजार योजन तक की भूमि जनपदों से रहित है।

पूर्वोत्तर दिशा में जो जनपद हैं, क्रमशः उनके नाम सुनो-कालुत, ब्रह्मपुत्र, कुणिद, खदिन, मालव, रन्ध्रराज्य, वन, राष्ट्र, केडवस्त, सिंहपुत्र, वामन, सावाकत्, चापलवह, कामिर, दरद, अभिसासद, जार्वाक, पलोल, कुवि, कौतुक, किरात, यामुपात और दीन नाम जनपद हैं (इन सबके निवासी युद्ध के लिये आये थे)। इससे आगे ईशान कोण में सुवर्णमयी भूमि है। उससे आगे अत्यन्त शोभाशाली देवस्थलीय उपवन की भूमि है। तत्पश्चात् गन्धर्वराज विश्वावसु का उत्तम मन्दिर है। उससे आगे कैलास भूमि है। उससे भी आगे मञ्जुवन नामक पर्वत है, जहाँ की भूमि विद्याधरों और देवताओं के विमान के समान है।

बाईसवाँ सर्ग समाप्त

तेईसवाँ सर्ग

युद्ध का उपसंहार

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम! कितना कहा जाय, शेषनाग भी अपनी दो हजार जिव्हाओं से यदि शीघ्रता से बताना चाहें, तो वे भी इस श्रेष्ठ संग्राम का पूर्णतया वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सकते।

इस प्रकार वहाँ बड़ा घमासान युद्ध हो रहा था। विजयी वीर भुजाओं पर ताल ठोक रहे थे और पराजित योद्धा भय से हाहाकार कर रहे थे। इन दोनों प्रकार के शब्दों से वह युद्धस्थल गूँज उठा था। धूलरूपी अन्धकार से आच्छादित हुए सूर्यदेव वृद्ध (मन्दगामी या अस्तोन्मुख) से प्रतीत होने लगे। योद्धाओं के रुधिर के प्रवाह को रोकने या ढकने वाले कठोर कवच के भीतर से खून टपक रहा था।

तदनन्तर उभय पक्ष के सेनापतियों ने मन्त्रियों के साथ विचार करके एक-दूसरे के पास दूत भेजे और यह संदेश कहलाया कि अब युद्ध बंद किया जाय। उस युद्ध स्थल में विशेष परिश्रम के कारण सभी के यन्त्र, शस्त्रास्त्र और

CC-O: Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Collection

पराक्रम मन्द पड़ गये थे। अतः उस समय सब लोगों ने युद्ध बंद करने की बात हृदय से स्वीकार की। तत्पश्चात् विशाल रथ के ऊँचे ध्वज के पास ही स्थापित हुए लंबे बाँस के खंभे पर दोनों सेनाओं का एक-एक योद्धा उसी प्रकार चढ़ा, जैसे ध्रुव उच्चतम स्थान को आरूढ़ हुए हों। ऊँचे चढ़े हुए उन योद्धाओं ने सम्पूर्ण दिशाओं में उसी प्रकार श्वेत वस्त्र हिलाया, जैसे रात्रि शुभ्र किरणों से सुशोभित पूर्ण चन्द्रमा को समस्त दिशाओं में घुमाती है। वस्त्र हिलाकर उन्होंने यह सूचना दी कि 'अब युद्ध बंद करो।'

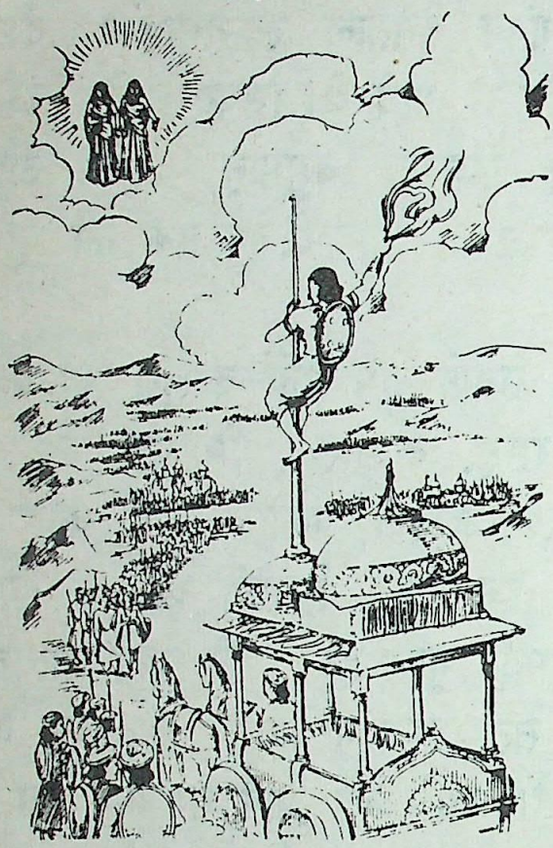

इसके बाद जैसे प्रलय के अन्त में तत्कालीन एकार्णव से जल का प्रवाह चारों दिशाओं में निकलने लगता है, उसी प्रकार उस युद्ध स्थल से दोनों सेनाएँ बाहर जाने लगीं। सारी रणभूमि मुर्दों के ढेर से पट गयी थी। जहाँ-तहाँ खून की नदियाँ बह रही थीं और सब ओर घायल योद्धाओं के चीत्कार सुनायी पड़ते थे। वह रणभूमि मृत्यु के उद्यान की भाँति जान पड़ती थी। वहाँ मरकर गिरे हुए असंख्य घोड़ों, हाथियों, मनुष्यों, राजाओं, सारथि सहित रथों और कटी हुई ऊँटों की गर्दनों से जो रक्त का प्रवाह सब ओर फैल रहा था, उससे एक सुन्दर नदी प्रवाहित हो चली थी। खून से भीगे हुए अस्त्र-शस्त्र ही वहाँ जल से सींची हुई हरी-भरी लताओं के समान जान पड़ते थे। वह रणोद्यान प्रलयकाल में पर्वतों सहित विध्वस्त हुए सम्पूर्ण जगत् की भाँति दृष्टिगोचर हो रहा था।

(सूर्यास्त के पश्चात) आकाश, पर्वत, उसके निकुंज और उसकी गुफा के भीतर फैलकर पिण्ड के समान एकत्र हुए घने अन्धकार का समूह काले मेघों की घटा के समान वहाँ सब ओर छा गया था। चंचल भूतों के वेग से व्याकुल हुआ वह रणक्षेत्र प्रलयकाल की वायु से कम्पित लोकों और उनके उपकरणों से युक्त ब्रह्माण्ड के समान जान पड़ता था।

तदनन्तर जब सर्वत्र नीरवता छा गयी, अन्धकार का संचार हो गया,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookesh sharma (I F S) Jammu Collection

सम्पूर्ण दिशाओं के लोगों की आँखें निद्रा से बंद हो गयीं, उस समय उदार हृदय लीला-पति कुछ खिन्नचित्त से होकर चन्द्रमा के मध्य भाग के सदृश मनोहर तथा शीतल कमरों वाले अपने सुन्दर महल में पूर्ण चन्द्रमा के समान आकार वाली और बर्फ के समान शीतल श्वेत शय्या पर अपने नेत्र-कमलों को बंद करके सो गये और दो ही घड़ी में उन्हें गहरी नींद आ गयी।

तत्पश्चात् वे दोनों ललनाएँ उस युद्ध स्थल के आकाश को छोड़कर उस राज-महल में खिड़कियों के छेदों से उसी प्रकार घुस गयीं, जैसे वायु की दो रेखाएँ इसी छोटे रन्ध्र मार्ग से अधखिले कमल के भीतर प्रविष्ट हुई हों।

तेईसवाँ सर्ग समाप्त

चौबीसवाँ सर्ग

शरीर की सर्वत्र गमन शक्ति

श्रीरामजी ने पूछा-विद्वान् वक्ताओं में श्रेष्ठ प्रभो! यह इतना बड़ा स्थूल शरीर तन्तु के समान सूक्ष्मछेद की राह से किसप्रकार उस घर में प्रविष्ट हुआ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! जिस पुरुष ने पहले दीर्घकाल से यह अनुभव किया हो कि 'मैं स्थूल शरीर नहीं हूँ, शुद्ध चिन्मय आत्मा हूँ, अतः सभी स्थानों में जा सकता हूँ', वह पीछे चलकर स्थूल देह की अवरोध आदि क्रियाओं से कैसे युक्त हो सकता है ? क्योंकि वह उसी चेतन का अंश है, जो सर्वत्र जाने में समर्थ है। जिसकी आकृति स्वप्नगत पुरुष या संकल्प कल्पित पुरुष के समान है, आकाशमात्र ही जिसका आकार है अर्थात् जो वास्तव में स्थूलआकार से रहित है, उसे कौन कैसे रोक सकता है। जीव जहाँ मरता है, उसी स्थान को शीघ्र देखता है और वहीं उसे अनेक भुवनों से युक्त यह विस्तृत प्रपंच इसी रूप में स्थित सा दिखायी देता है। आगन्तुक गेह आदि से आत्मवान् हुआ सा यह चेतन आकाशरूपी जीव देह आदि को ही आत्मा समझ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कर निर्मल चिन्मय आकाश में ही 'यह मैं हूँ, यह जगत है' इस आकाशरूप (शून्य) भ्रम का अनुभव करता है। इस जगतरूपी भ्रम में देवताओं, अमरावती आदि श्रेष्ठनगरों, मेरु आदि पर्वतों, सूर्य, चन्द्रमा और तारा समूह के कारण अपूर्व सौन्दर्य प्रतीत होता है। इस भ्रमरूपी वृक्ष के खोखले में जरा, मृत्यु, व्याकुलता तथा नाना प्रकार की आधि-व्याधियाँ ठूँस-ठूँसकर भरी हुई हैं। इसमें अपने अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति और अनिष्ट वस्तु के निवारण के लिये स्थूल-सूक्ष्म, चर-अचर सभी प्राणी उद्योगशील हैं तथा यह भ्रमरूपी प्रपंच समुद्र, पर्वत, नदी, उनके अधिपति, दिन, रात, कल्प, क्षण और प्रलय-इन सबसे युक्त है। इस प्रकार यद्यपि यह विश्व दीवाल की तरह स्थूल एवं स्थिर दिखायी देता है, तथापि मनन-मन के संकल्प के सिवा और कुछ नहीं है। मनन करने पर यह चल (अस्थिर) ही सिद्ध होता है। तुम इस समय मन में अपने अनुभव के अनुसार इसके स्वरूप पर विचार करो। जो ही चेतन आकाशरूप परमात्मा है, वही मननरूप कहा गया है और जो ही चेतन आकाशरूप परमात्मा है, वही परमपद है। चेतन आकाशस्वरूप परमात्मा का अभूत (असत्य अथवा अनादि) मायाकाश में या सूक्ष्म भूतों के कार्यरूप चित्ताकाश में जो स्फुरण है, वही नाम और रूप से नाना भाव को प्राप्त होने वाला जगत कहा जाता है। लीला और सरस्वती दोनों निष्पाप देवियाँ परमात्मा के तुल्य विशुद्ध एवं चिदाकाशमय शरीर से युक्त थीं; इसलिये वे सर्वत्र जा सकती थीं। उनके लिये कहीं भी प्रवेश करने में कोई बाधा नहीं थी। वे चिदाकाश में जहाँ-जहाँ अपने को प्रकट करने की इच्छा करती थीं, वहाँ-वहाँ सदा ही अपनी रुचि और अभिलाषा के अनुसार प्रकट हो जाती थीं। इसलिये राजा विदूरथ के घर में उन दोनों का जाना सम्भव हुआ। चिन्मय आकाश सर्वत्र विद्यमान है, उसमें जिसे आतिवाहिक कहते हैं, वह चिदाकाशमय सूक्ष्म शरीर सर्वत्र विचरण कर सकता है; क्योंकि वह यथार्थ ज्ञान स्वरूप, धारणात्मक एवं मननरूप है। तुम्हीं बताओ, उस सूक्ष्म देह को कौन, कैसे और किस लिये रोक सकता है ?

चौबीसवाँ सर्ग समाप्त

पच्चीसवाँ सर्ग

राजा पद्म के भवन में सरस्वती और लीला का प्रवेश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम! उन दोनों देवियों के प्रवेश करने पर राजा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पद्म के भवन का भीतरी भाग उज्ज्वल छटा से सुशोभित हो गया, मानो वहाँ दो चन्द्रमा उदय हो गये हों। उसमें मन्दार पुष्प का स्पर्श करके आयी हुई शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलने लगी। उन देवियों के प्रभाव से राजा के अतिरिक्त अन्य स्त्री-पुरुष निद्रा के वशीभूत हो गये, परंतु चन्द्रद्रव के समान शीतल उन दोनों के शरीर के प्रभा-पुंज से आल्हादित होकर राजा पद्म की निद्रा भंग हो गयी, मानो उस पर अमृत छिड़क दिया गया हो। उठते ही उसने दो दिव्य नारियों को देखा, जो दो आसनों पर विराजमान थीं। उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि मानो मेरु पर्वत के दो शिखरों पर दो चन्द्रमण्डल उदित हो गये हों। यह देखकर राजा का मन विस्मयाविष्ट हो गया, फिर क्षण भर मन-ही-मन विचार करके वह अपनी शय्या से उठ पड़ा-ठीक उसी तरह, जैसे चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु शेष शय्या से उठते हैं। तत्पश्चात् उसने सोते समय अस्त-व्यस्त हुए अपने माला, हार और अधोवस्त्र को यथास्थान ठीक किया। फिर सिरहाने रक्खी हुई फूलों की डलिया में से माली की तरह स्वयं ही अत्यन्त खिले हुए पुष्पों से अपनी अंजलि भर ली और भूमि पर ही पद्मासन लगाकर वह नम्रतापूर्वक देवियों से कहने लगा-'देवियो! आप दोनों जन्म, दुःखमय जीवन और त्रिविध तापरूपी दोष का शमन करने के लिये चाँदनी के समान तथा बाह्य और आन्तरिक अज्ञानान्धकार का विनाश करने के लिये सूर्य की प्रभा के तुल्य हैं। आपकी जय हो।' यों कहकर राजा ने उन देवियों के चरणों पर पुष्पांजलि समर्पित की। तदनन्तर देवी सरस्वती ने लीला से राजा का जन्म-वृत्तान्त वर्णन करने के लिये पार्श्व में ही पड़े हुए मन्त्री को अपने संकल्प से जगाया। जागने पर मन्त्री ने उन दोनों दिव्य नारियों को देखकर उन्हें प्रणाम किया और उनके चरणों में पुष्पांजलि समर्पित करके विनय पूर्वक वह उनके आगे खड़ा हो गया। तब देवी ने राजा से पूछा-'राजन्! तुम कौन हो ? किसके पुत्र हो ? और यहाँ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modi Shri Jammu Collection

कब पैदा हुए हो ?' ऐसा प्रश्न सुनकर मन्त्री ने उत्तर देना आरम्भ किया-

'देवियो! यह आप लोगों का ही कृपा-प्रसाद है, जो मैं आपके समक्ष भी बोलने में समर्थ हो सका हूँ; अतः अब आप मेरे स्वामी का जन्मवृत्तान्त सुनिये। प्राचीन काल में एक कुन्दरथ नाम के राजा हो गये हैं, जो इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए थे। वे परम शोभाशाली थे। उनके नेत्र कमल के समान सुन्दर थे। उन्होंने अपनी भुजाओं की छाया से सारे भूमण्डल को आच्छादित कर लिया था। उन्हीं नरेश के भद्ररथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके मुख की कान्ति चन्द्रमा के समान थी। उन भद्ररथ के विश्वरथ, विश्वरथ के बृहद्रथ, बृहद्रथ के सिन्धुरथ, सिन्धुरथ के शैलरथ, शैलरथ के कामरथ, कामरथ के महारथ, महारथ के विष्णुरथ और विष्णुरथ के पुत्र नभोरथ हुए। ये हमारे राजा उन्हीं महाराज नभोरथ के पुत्र हैं। ये अपने पिता के महान् पुण्यपुंजों के फलस्वरूप क्षीर-सागर से उत्पन्न हुए चन्द्रमा की भाँति प्रकट हुए हैं। जैसे पार्वती जी से गुह की उत्पत्ति हुई थी, उसी प्रकार ये अपनी माता सुमित्रा के गर्भ से दूसरे स्कन्द की भाँति पैदा हुए हैं। इनकी आकृति पूर्ण चन्द्रमा के समान निर्मल है। इन्होंने अपने अमृत-तुल्य गुणों से जनता को भलीभाँति तृप्त कर दिया है। ये विदूरथ नाम से विख्यात हैं। जब इनकी अवस्था दस ही वर्ष की थी, तभी इनके पिता इन्हें राज्यभार सौंपकर वनवासी हो गये थे। ये तभी से इस भूमण्डल का धर्मपूर्वक पालन कर रहे हैं। आज पुण्यरूपी वृक्ष के फलित होने पर आप दोनों देवियों का यहाँ शुभागमन हुआ है; क्योंकि दीर्घ तप आदि सैकड़ों क्लेश उठाने पर भी आपका दर्शन मिलना कठिन है। इस प्रकार विदूरथ नाम से प्रसिद्ध ये महीपाल आज आपके दर्शन प्रदानरूप प्रसाद से परम पवित्र हो गये।'

यों कहकर जब मन्त्री चुप हो गया तथा भूपाल भूतल पर पद्मासन लगाकर हाथ जोड़े सिर नीचा किये बैठे रहे, उसी समय सरस्वती देवी ने 'राजन्! तुम विवेक द्वारा स्वयं ही अपने पूर्व जन्म का स्मरण करो' यों कहकर उनके मस्तक पर अपना हाथ फेरा। देवी सरस्वती के कर स्पर्श से राजा पद्म (विदूरथ) का हृदयान्धकार एवं माया-सब-के-सब नष्ट हो गये। उनका हृदय अत्यन्त विकसित हो गया। उन्हें अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त इस प्रकार स्मरण हो आया, जैसे वह उनके अन्तः करण में स्फुरित होता हुआ सा स्थित था।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Charitable (R.F.S) Jammu Collection

फिर लीला के कर्तव्य के साथ-साथ शरीर और एकच्छत्र राज्य के त्याग, सरस्वती के वृत्तान्त, लीला की विशेष उन्नति और आत्मकथा को जानकर राजा समुद्र में गोते लगाते हुए की तरह विस्मय में पड़ गया। वह मन-ही-मन कहने लगा-'खेद है, सारे संसार में यह माया ही व्याप्त है। इस समय इन देवियों की कृपा से मुझे इसका पूर्ण ज्ञान हुआ है।'

राजा ने पूछा-देवियो! मुझे जो अपने अनेक कार्यों का, परदादा का तथा अपनी बचपन एवं युवावस्था का और मित्र तथा बन्धु-बान्धवों का स्मरण हो रहा है, इसका क्या कारण है ?

श्रीसरस्वती देवी ने कहा-राजन्! मृत्युरूपी महा-मोहमयी मूर्च्छा अनन्तर उसी मुहूर्त में गिरि ग्राम निवासी उस ब्राह्मण के घर के भीतर आकाश में ही स्थित गृह के मध्य भाग में जो मण्डप है, उसी के अंदर तुम्हारा यह जन्मादि दृश्य-प्रपंच आभासित हो रहा है। वहीं निर्मल आकाश की भाँति स्वच्छ तुम्हारे चित्त में यह विस्तृत व्यवहार-भ्रम स्फुरित हुआ है। 'यह मेरा जन्म हुआ। इक्ष्वाकुवंश ही मेरा कुल है। पूर्व काल में मेरे ये पितामह आदि इस नाम वाले हुए थे। मैं पैदा हुआ। जब मैं दस वर्ष का बालक था, तभी मेरे पिता इस राज्य पर मेरा अभिषेक करके स्वयं पारिव्राजक होकर वन को चले गये। तदनन्तर मैंने दिग्विजय करके अपने राज्य को निष्कण्टक बनाया। फिर इन मन्त्रियों तथा पुरवासियों के साथ पृथ्वी का पालन करता रहा हूँ। यज्ञ कर्मों का अनुष्ठान तथा धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करते मेरी आयु के सत्तर वर्ष व्यतीत हो चुके। इस समय इस शत्रु सेना ने मुझ पर आक्रमण किया और उसके साथ मेरा भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध करके मैं अपने घर लौट आया हूँ और यहाँ पूर्ववत् स्थित हूँ। ये दोनों देवियाँ मेरे घर पधारी हैं और मैं इनका पूजन कर रहा हूँ; क्योंकि पूजित होने पर देवता मनोऽभिलाषित पदार्थ प्रदान करते हैं। जैसे सूर्य की प्रभा मुकुलित कमल को विकसित कर देती है, उसी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Sharma Art Gallery Collection

तरह इन दोनों में से इस एक देवी ने मुझे यहाँ ऐसा ज्ञान प्रदान किया है, जो पूर्व जन्म की स्मृति को जगाने वाला है। अब मैं कृतकृत्य हो गया हूँ और मेरे सभी संशय नष्ट हो गये हैं। मैं शान्ति लाभ करूँगा, परम निर्वाण को प्राप्त होऊँगा और केवल सुखरूप होकर स्थित होऊँगा'-इस प्रकार तुम्हारी यह भ्रान्ति, जो बहुसंख्यक संदेहों से युक्त, नानाप्रकार के आचार-विचारों से सम्पन्न और लोकान्तर में गमन करने वाली है, विस्तार को प्राप्त हुई है। पहले जिस मुहूर्त में तुम मृत्यु को प्राप्त हुए थे, उसी समय यह प्रतिभा अपने-आप तुम्हारे हृदय में आविर्भूत हुई थी। जैसे नदी का प्रवाह उठे हुए एक आवर्त को त्याग कर तुरंत ही दूसरा धारण कर लेता है, उसी प्रकार चित्त-प्रवाह भी एक कल्पना-सृष्टि का त्याग करके दूसरी कल्पना-सृष्टि करता रहता है। जैसे आवर्त कभी दूसरे आवर्त से संयुक्त होकर और कभी पृथक् ही प्रवृत्त होता है, उसी तरह यह सृष्टि भी कभी दूसरी से सम्बन्धित और कभी स्वतन्त्र ही बढ़ती रहती है। उस मृत्युक्षण में चिद्भानुस्वरूप तुम्हारी प्रतिभा में प्रतिभासित असत्-रूप यह जगज्जाल उसी तरह उपस्थित हुआ है, जैसे स्वप्न के एक ही मुहूर्त के अंदर सैकड़ों वर्षों का भ्रम होता है। वास्तव में तो न तुम कभी पैदा हुए हो और न कभी तुम्हारी मृत्यु ही हुई है। तुम तो शुद्ध विज्ञानस्वरूप हो और अपने शान्त आत्मा में स्थित हो। यह सारा प्रपंच तुम्हें दृश्य-सा प्रतीत हो रहा है। वस्तुतः तुम कुछ नहीं देख रहे हो, बल्कि निर्मल महामणि तथा भासमान सूर्य आदि के समान तुम अपने आत्मा में अपने आप नित्य सर्वात्मभाव से प्रदीप्त हो रहे हो। वस्तुतः न यह भूतल सत् है, न प्रत्यक्ष दिखायी देने वाला यह विदूरथ-देह ही सत् है और न ये पर्वत, ग्राम, तुम्हारे शत्रु-मित्र तथा हम लोग ही सत हैं।

राजन्! जिन्हें ज्ञातव्य वस्तुओं का ज्ञान हो चुका है तथा जो एकमात्र शुद्ध बोधस्वरूप हैं, ऐसे पुरुषों के मन में यह कोई भी सांसारिक पदार्थ सत् नहीं है। भला, जिसका आत्मा शुद्ध ज्ञान से सम्पन्न है, उसे जगत् की भ्रान्ति कहाँ से हो सकती है। जैसे रस्सी का ज्ञान हो जाने पर जब उसमें सर्प का भ्रम मिट जाता है, तब पुनः उसमें सर्प की भ्रान्ति नहीं होती, उसी तरह जगत्-भ्रम के असद् भाव का पूर्ण ज्ञान हो जाने पर फिर उसकी सत्ता कहाँ से टिक सकेगी। मृग-मरीचिका का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर पुनः उसमें-जल बुद्धि कैसे हो सकती

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है। उसी तरह स्वप्नावस्था में घटित हुआ अपना मरण जाग्रद्वस्था में अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर कैसे सत्य हो सकता है ? शरत्कालीन निर्मल आकाश की शोभा के समान जिसका हृदय स्वच्छ, निर्मल और अत्यन्त विस्तृत है, उस शुद्ध तत्त्ववेत्ता पुरुष की बुद्धि में 'अहम्' और 'जगत्' की प्रतीति तुच्छ शब्दार्थ की द्योतक है। यह वास्तविक नहीं है, केवल वाचिक व्यवहारमात्र है।

महर्षि के यों कथा कहते-कहते दिन समाप्त हो गया। भगवान् भास्कर अस्ताचल की ओर प्रस्थित हो गये और मुनि-मण्डली महर्षि को नमस्कार करके सायंकालिक विधि सम्पन्न करने के लिये स्नानार्थ चली गयी। रात्रि बीतने पर सूर्योदय होते-होते पुनः मुनिमण्डली एक साथ सभा में उपस्थित हुई।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-राघव! जिसकी बुद्धि में ज्ञान का उदय नहीं हुआ है तथा जिसकी परमात्म तत्त्व में दृढ़ स्थिति नहीं है, अतएव जो मोहग्रस्त है, उसके लिये यह जगत् असत् होते हुए भी सत्-सा प्रतीत होता है। जैसे मरुस्थल में सूर्य का ताप ही मृगों के लिये जल की भ्रान्ति का कारण होता है, उसी तरह मूढ़ बुद्धि पुरुष के लिये यह असत्य जगत् सत्य सा भासित होता है। जैसे प्राणी की स्वप्न मृत्यु जो बिल्कुल असत्य है, फिर भी सत्य-सी प्रतीत होकर शोक-रुदन आदि कार्य करा देती है, उसी तरह जिनकी बुद्धि मोहाच्छन्न है, उन पुरुषों के लिये यह जगत् शोकप्रद होता है। जो कटक-कुण्डल आदि में व्याप्त सुवर्ण के ज्ञान से अनभिज्ञ है, उसको जैसे स्वर्ण-निर्मित कड़े में कड़े का ही ज्ञान होता है, उसमें उसकी थोड़ी भी स्वर्ण बुद्धि नहीं होती, उसी प्रकार अज्ञानी की यह नगर, गृह, पर्वत, गजराज आदि से प्रकाशित होने वाली दृश्य-दृष्टि ही है, दूसरी-परमार्थ-दृष्टि नहीं है।

पच्चीसवाँ सर्ग समाप्त

छब्बीसवाँ सर्ग

स्वप्न की सत्यता वर्णन

श्रीरामजी ने पूछा-मुने! यदि केवल मायास्वरूप स्वप्न में कल्पित स्वप्न पुरुष सत्य न भी हों तो क्या दोष होगा ? यह बतलाइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-राघव! स्वप्न में देखे गये नगर निवासी वस्तुतः सत्य नहीं हैं-इस विषय में मैं तुम्हें प्रत्यक्ष प्रमाण बतलाता हूँ, सुनो; अन्य प्रमाणों के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जानने की आवश्यकता नहीं है। सृष्टि के आदि में स्वयंम्भू ब्रह्मा स्वयं ही स्वप्न-तुल्य अनुभव से सम्पन्न दिखायी देते हैं, अतः उनके संकल्प से उत्पन्न हुआ यह विश्व भी स्वप्न-सदृश ही है। इस प्रकार यह विश्व भी स्वप्न है। उसमें जैसे मेरी दृष्टि में तुम सत्य हो, उसी तरह अन्य लोग भी तुम्हारी और मेरी दृष्टि से सत्य हैं एवं अन्य मनुष्यों की भी अपने-अपने अनुभव के अनुसार स्वप्न के विषय में सत्यता सिद्ध है। यदि ये नगर निवासी स्वप्न में सत्य न हों तो इस स्वप्नाकार जाग्रद्वस्था में भी वे मेरे लिये थोड़ा भी सत्य न सिद्ध होंगे। इसलिये तुम्हारी दृष्टि में जैसे मैं सत्यात्मा हूँ, उसी तरह मेरी दृष्टि में सब सत्य है; क्योंकि स्वप्न-तुल्य संसार में पदार्थों की परस्पर सिद्धि के लिये ऐसी नीति है। इस महान् स्वप्नरूपी संसार में जैसे तुम्हारी दृष्टि में मैं सत्य हूँ और मेरी दृष्टि में तुम सत्य हो, उसी तरह सभी सत्य है-यही सारे स्वप्नों में न्याय है। इस प्रकार यह सब स्वप्न और जाग्रद्रूप प्रपंच वास्तव में सत्य नहीं है, परंतु सत्य-सा प्रतीत होता है और स्वप्न स्त्री-प्रसंग की भाँति मिथ्या ही जीव को मोहित करता है। सभी वस्तुएँ देह के बाहर तथा भीतर सर्वत्र विद्यमान हैं। ज्ञानवृत्ति जिसे जैसा जानती है, उसे उसी तरह स्वयं ही देखती है। जैसे कोश में जो धन मौजूद रहता है, उसे उसका द्रष्टा प्राप्त करता है, उसी तरह चेतनाकाशरूप परमात्मा में सब कुछ स्थित है और वही परमात्मा उसका अनुभव करता है। अस्तु,

तदनन्तर देवी सरस्वती ने विदूरथ को ज्ञानामृत के सिंचन से विवेक रूपी सुन्दर अंकुर से संयुक्त करके उनसे इस प्रकार कहा-'राजन्! यह पूर्वोक्त तत्त्व ज्ञान मैंने लीला की प्रसन्नता के लिये तुमसे वर्णन किया है। लीला ने भी जगन्मिथ्यात्व की दृष्टान्तभूत तुम्हारी दृष्टियाँ देख ली हैं; अतः तुम्हारा कल्याण हो, अब हम दोनों जाना चाहती हैं।'

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! मधुर अक्षरों से युक्त वाणी द्वारा सरस्वती के यों कहने पर बुद्धिमान् राजा विदूरथ ने इस प्रकार कहा।

विदूरथ बोले-देवि! मुझ साधारण मनुष्य का भी यदि किसी याचक को दर्शन हो जाय तो वह निष्फल नहीं जाता; फिर आप तो महान् फल प्रदान करने वाली हैं, आपका दर्शन व्यर्थ कैसे हो सकता है। देवि! जैसे स्वप्न देखता हुआ मनुष्य उस स्वप्न को छोड़कर दूसरा स्वप्न देखने लगता है, उसी तरह मैं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अपनी इस देह का परित्याग करके यहाँ से दूसरे लोक को जाऊँगा। माता! मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझ शरणागत को करुणा पूर्ण दृष्टि से देखिये और शीघ्र ही मेरी प्रार्थित वस्तु प्रदान कीजिये! माँ! मुझ पर ऐसी कृपा कीजिये कि मैं जिस लोक में जाऊँ, वही लोक मेरे इस मन्त्री और इस कुमारी कन्या को भी प्राप्त हो।

श्रीसरस्वतीजी ने कहा-पूर्वजन्म के चक्रवर्ती सम्राट्! तुम्हें विदित होना चाहिये कि हम लोगों ने कभी भी याचकों की कामना का निराकरण कर दिया हो-ऐसा नहीं देखा गया। अतः आओ और लीला की भक्ति और भाग्य के अनुरूप पदार्थों की समृद्धि से सुन्दर इस राज्य का निर्भय होकर उपभोग करो।

राजन्! इस समय इस भीषण संग्राम में तुम्हारी मृत्यु निश्चित है और तुम्हारा प्रचीन राज्य प्राप्त होगा। यह सब प्रत्यक्ष तुम्हारी आँखों के सामने ही होगा। कुमारी कन्या को, मन्त्री को और तुमको शवस्वरूप शरीर प्राप्त करके उस प्राचीन नगर में आना होगा। अब हम दोनों जैसे आयी थीं, वैसे ही लौट जा रही हैं; परंतु कुमारी कन्या को, मन्त्री को और तुम्हें मृत्यु को प्राप्त होकर वायुरूप से अर्थात् सूक्ष्म देह से उस प्रदेश में आना चाहिये।

देवी सरस्वती और राजा दोनों मधुरभाषी थे। उनमें परस्पर वार्तालाप हो ही रहा था, तब तक राजमहल के ऊर्ध्वभाग में बैठकर नगर की देखभाल करने वाला मनुष्य भयभीत हो राजा के पास आकर कहने लगा-'देव! ज्वार-भाटा से संयुक्त महासागर की भाँति बाण, चक्र, खंग, गदा और परिघ की वर्षा करने वाली एक विशाल शत्रु-सेना आ पहुँची है। वह अत्यन्त उत्साह से सम्पन्न है और प्रलयकाल की वायु से उड़ाये गये कुल-पर्वतों की शिलाओं के समान भयंकर गदा, शक्ति और भुशुण्डियों की वर्षा कर रही है। साथ ही इस पर्वताकार नगर में आग लग गयी है, जिसने चारों दिशाओं को व्याप्त कर लिया है। वह चट-चट शब्द के साथ इस उत्तम नगरी को जलाती हुई नष्ट-भ्रष्ट कर रही है।'

छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Copyright Jammu Collection

सत्ताईसवाँ सर्ग

शत्रु का आक्रमण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुकुल भूषण राम! वह पुरुष सभीत होकर राजा से यों कह ही रहा था, तब तक बाहर कठोर शब्दों से युक्त महान् कोलाहल होने लगा, जो अपने भीषण शब्द से सारी दिशाओं में व्याप्त हो रहा था। वह कोलाहल बलपूर्वक कान तक खींचकर बाणों की वर्षा करने वाले धनुषों की टंकार से तथा जिनकी स्त्री और बच्चे जल गये थे, उन पुरवासियों के महान् हाहाकार से, जलती हुई लपटों के परिस्पंदन से उत्पन्न चट-पट एवं टूटकर गिरते हुए अंगारों के शब्द से व्याप्त था। तब सरस्वती और लीला-दोनों देवियों ने एवं मन्त्री और राजा विदूरथ ने उस घोर रात्रि के समय राजमहल के झरोखे से झाँककर उस विशाल नगर की ओर दृष्टिपात किया, जो तुमुल नाद से गूँज रहा था। उस समय वह नगर प्रलयाग्नि से विक्षुब्ध हुए महासागर के सदृश वेग वाले तथा भयंकर अस्त्ररूपी तरंगों से व्याप्त शत्रुसैन्य से खचाखच भरा था और प्रलयकालीन अग्नि की ज्वाला से पिघलते हुए मेरुपर्वत के सदृश कान्तिमान् एवं गगनचुम्बी महान् ज्वाला-समूहों से भस्म हो रहा था। उस नगर को लूटते समय लुटेरे दूसरों को डराने-धमकाने के लिये महान् मेघ की गर्जना के समान डाँट बता रहे थे। उनके उस भीषण कोलाहल से वह नगर भयानक लग रहा था। तदनन्तर राजा विदूरथ ने अपने योद्धाओं का तथा उन लोगों का, जिनका देखते-देखते ही स्त्री-पुत्र आदि सर्वस्व स्वाहा हो गया था, इसलिये वे इधर-उधर दौड़ लगा रहे थे, करुण-क्रन्दन सुना। अहो! यह तो सदाचार से हीन महान् अनुचित कार्य हो रहा है, जो शस्त्रधारी शत्रु सैनिक राजरानियों को भी पकड़ रहे हैं।

इसी बीच में जैसे लक्ष्मी कमलकोश में प्रविष्ट होती हैं, उसी तरह राजमहिषी ने, जो यौवन के मद से उन्मत्त हो रही थी, राजा आदि द्वारा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अधिष्ठित उस गृह में प्रवेश किया। उस समय वह हार के छिन्न-भिन्न हो जाने से व्याकुल एवं भय से घबरायी हुई थी। उसके पुष्पहार और वस्त्र जोर-जोर से हिल रहे थे तथा सखियाँ और दासियाँ उसके पीछे-पीछे चल रही थीं। वहाँ पहुँचकर जैसे कोई अप्सरा संग्राम में संलग्न हुए देवराज इन्द्र से निवेदन करे, उसी तरह उसकी एक सखी राजा विदूरथ से निवेदन करने लगी-'देव! महारानी हम लोगों के साथ अन्तःपुर से भागकर आपकी शरण में आयी हैं-ठीक उसी तरह, जैसे झंझावात से पीड़ित लता वृक्ष का आश्रय ग्रहण करती है। राजन्! जैसे महासागर की लहरियाँ तटवर्ती वृक्षों पर लिपटी हुई लताओं को अपने साथ समेट ले जाती हैं, उसी तरह अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित उन बलवान् शत्रुओं ने आपकी अन्यान्य रानियों का अपहरण कर लिया है। अचानक आ धमके हुए उन उद्दण्ड शत्रुओं ने आँधी द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किये गये बड़े-बड़े वृक्षों की भाँति अन्तःपुर के सभी संरक्षकों को चकनाचूर कर दिया है। इस प्रकार हम लोगों को जो यह विविध प्रकार की विपत्ति ने आ घेरा है, उसका सर्वथा निवारण करने के लिये आपकी ही सामर्थ्य है।' यह सुनकर राजा ने दोनों देवियों की ओर देखकर कहा-'देवियो! मैं युद्ध के लिये जाता हूँ, अतः आप मुझे क्षमा करें। अब मेरी यह भार्या आपके चरणों की सेवा करेगी।' यों कहकर राजा विदूरथ, जिसके नेत्र क्रोधवश लाल हो गये थे, उसी प्रकार राज भवन से बाहर निकला, जैसे मदमत्त गजराज द्वारा वन के छिन्न-भिन्न कर दिये जाने पर सिंह अपनी गुहा से बाहर निकला हो। तदनन्तर प्रबुद्ध लीला ने अपनी ही रूप-रेखा के तुल्य आकृति वाली सुन्दरी लीला को दर्पण में प्रतिबिम्बित हुई-सी देखा और कहा।

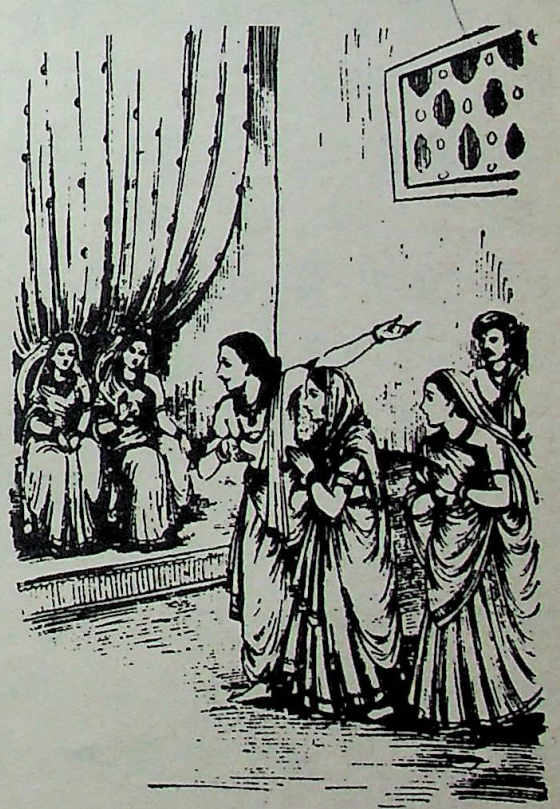

प्रबुद्ध लीला ने पूछा-देवि! किस कारण से मैं यह हो गयी ? पहले मैं जो थी, वही मैं इस रूप में कैसे स्थित हूँ ? इसका क्या रहस्य है ? यह मुझे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma Jammu Collection

बतलाने की कृपा कीजिये। ये सभी मन्त्री आदि पुरवासी तथा सेना और सवारियों सहित शूरवीर पूर्ववत् ही हैं। ये जैसे जहाँ स्थित हैं, वैसे ही वहाँ भी हैं। देवि! जैसे दर्पण में प्रतिबिम्बित वस्तु बाहर और भीतर दोनों ओर दीखती है, उसी तरह ये सभी यहाँ और वहाँ स्थित हैं-इसका क्या कारण है ? क्या वे सचेतन हैं ?

श्रीदेवीजी ने कहा-लीले! भीतर जैसा ज्ञान उद्भूत होता है, वैसा ही बाहर क्षणमात्र में अनुभव होने लगता है। जैसे मन चित्तार्थता-स्वप्न आदि में चित्त द्वारा अनुभूत जाग्रत् की स्वरूपता को प्राप्त हो जाता है, उसी तरह चेतन दृश्याकारता को प्राप्त हो जाता है। हृदय के अंदर उद्भूत पदार्थ बाह्य से प्रतीत होते हैं। इस विषय में स्वप्न दृष्ट पदार्थ ही प्रमाण है; क्योंकि हृदय के भीतर जो स्वप्न में संकल्प-नगर का स्फुरण होता है वह चेतन का विकास है। इस राजा के जिन मन्त्री आदि का जो अविरोध तथा सर्वार्थ रूप से अनुभव हो रहा है, इसका कारण यह है कि वे स्वप्न में संकल्पित सैन्य की भाँति चेतन सत्तात्मक होने से सद्रूप ही हैं। अथवा यदि यों कहें कि उत्तरकाल अर्थात जाग्रद्वस्था में स्वप्न के विनाशी होने के कारण वह असत है तो ऐसा तो यह सारा जाग्रत-जगत् ही है; क्योंकि स्वप्न में जाग्रत् असत् है और जाग्रत-काल में स्वप्न असत् है। फिर जाग्रत् कौन-सी विशेष सत्यता सिद्ध हुई ? अनघे! इस प्रकार यह स्वप्न और जाग्रत्-जगत् न सत् है और न असत् ही। ये केवल भ्रान्तिरूप से ही प्रतीत होते हैं; क्योंकि महाकल्प के अन्त में, आज और अगले युग में अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान आदि तीनों कालों में भी जो कभी उस स्वरूप से नहीं था, वही ब्रह्म है, अतः वही जगत् है। उस ब्रह्म स्वरूप जगत् में ये सृष्टि नामवाली भ्रान्तियाँ विकसित होती हैं। पर वास्तव में विकसित-सी नहीं दीखतीं; क्योंकि जैसे महासागर में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार ये सृष्टियाँ परब्रह्म में उत्पन्न हो-होकर पुनः आँधी में घुले-मिले हुए धूलिकणों की भाँति उसी परब्रह्म में विलीन हो जाती हैं। इसलिये जिसमें 'त्वम्' और 'अहम्' आदि का विभाग मिथ्या ही है तथा जो मृगतृष्णा के जल समूह की भाँति भ्रान्तिमय आभासित हो रहा है, उस जले हुए वस्त्र के भस्म के समान प्रपंच में कौन-सी आस्था है ? इस सारे प्रपंच के शान्त होने पर जो अवशिष्ट रहता है, वही ब्रह्म है। उस ब्रह्म से पृथक् होने पर यह दृश्य जगत्

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कभी भी सत्य नहीं है और ब्रह्मस्वरूप होने के कारण असत्य भी नहीं है। तत्पश्चात् उसी तरह का अनुभव होने के कारण यह स्पष्टरूप से जीव भाव को प्राप्त होता है। यह जगत् सत्य हो या असत्य, पर यह चिदाकाश में विभासित हो रहा है।

श्री सरस्वतीजी ने पुनः कहा-जैसे राजारूप चिदाकाश में सन्मयी प्रतिभा उदित होती है, उसी तरह उससे पूर्व होने वाली सत्यसंकल्परूपा प्रतिभा अव्याकृत आकाशरूप ईश्वर में उत्पन्न होती है। इसी तरह प्रतिभा के प्रतिबिम्ब से उत्पन्न हुई यह लीला तुम्हारे-सरीखे शील, आचार, कुल और शरीर से युक्त दीख रही है। सर्व-व्यापक ज्ञानवृत्तिरूपी दर्पण में जैसी प्रतिभा प्रतिबिम्बित होती है, वह जहाँ जिस रूप में उत्पन्न होती है, वहाँ निरन्तर उसी रूप में प्रकट होती है। अन्तर्यामी ईश्वर की जो प्रतिभा भीतर वर्तमान है, वही स्वयं बाहर भी कार्य करती है; इसलिये चिन्मय दर्पण में प्रतिबिम्बित होने के कारण यह तुम्हारे ही समान स्थित है। लीले! इस विषय में तुम ऐसा समझो कि यह आकाश, उसके भीतर भुवन, उसके अन्तर्गत पृथ्वी, उस पर यह तुम, मैं और राजा-यों जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह सब-का-सब ब्रह्मरूप से मैं ही हूँ, इस कारण तुम स्वरूप में स्थित होकर पूर्णरूप से शान्त हो जाओ। तुम्हारा पति यह विदूरथ रणागंण में शरीर का त्याग करके उसी अन्तःपुर में पहुँचकर राजा पद्म के रूप में उत्पन्न होगा।

सत्ताइसवाँ सर्ग समाप्त

अट्ठाइसवाँ सर्ग

लीला को दूसरे वररूप में राजा पद्म की प्राप्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! देवी की बात सुनकर उस नगर में रहने वाली लीला हाथ जोड़कर देवी के आगे खड़ी हो गयी और भक्ति विनम्र होकर बोली।

द्वितीय लीला ने कहा-देवेशि! मैंने नित्य ही भगवती सरस्वती देवी की अर्चना-पूजा की है और वे देवी रात्रि के समय स्वप्न में मुझे दर्शन दिया करती हैं। अम्बिके! उन देवी का जैसा आकार-प्रकार है, वैसी ही आप भी हैं। सुमुखि! आप दीनों पर करुणा करने वाली हैं, अतः मुझे वर प्रदान कीजिये।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम! लीला के ऐसा कहने पर भगवती

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

सरस्वती उस समय उसके भक्ति पूर्वक किये गये ध्यान–पूजन का स्मरण करके प्रसन्न हो गयीं और उस नगर निवासिनी लीला से यों बोलीं।

श्रीदेवीजी ने कहा–वत्से! जीवन पर्यन्त की गयी तुम्हारी अनन्य भक्ति से, जो कभी भी शिथिल नहीं हुई, मैं परम संतुष्ट हूँ; अतः तुम मुझसे अपना मनोऽभिलाषित वरदान ग्रहण करो।

तब वह नगर निवासिनी लीला बोली–देवि! मेरे पतिदेव रणभूमि में शरीर का परित्याग करके जहाँ स्थित होंगे, मैं भी इसी शरीर से वहाँ उनकी पत्नी होऊँ।

श्रीदेवीजी ने कहा–पुत्रि! तुमने चिर-काल तक अनन्य भक्ति भाव से पुष्प, धूप आदि प्रचुर पूजन–सामग्री द्वारा मेरी निर्विघ्न पूजा की है, इसलिये 'एवमस्तु'–तुम्हारी कामना पूर्ण हो।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–राघव! तदनन्तर जब उस वर–प्राप्ति से तद्देशवासिनी लीला हर्षोत्फुल्ल हो रही थी, उसी समय पूर्व लीला ने, जिसका हृदय संदेह के दोले में झूल रहा था, देवी से कहा।

पूर्व लीला बोली–ऐश्वर्य शालिनी देवि! जो आपके सदृश सत्य कामना एवं सत्य संकल्प वाले हैं, अतएव जो ब्रह्मस्वरूप हो गये हैं, उनका सारा मनोरथ जब शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है, तब यह बतलाइये कि आपने मुझे किसलिये इसी शरीर से गिरिग्रामक नाम वाले उस लोकान्तर में नहीं पहुँचाया ?

श्रीदेवीजी ने कहा–सुन्दरि! मैं किसी का कुछ नहीं करती, बल्कि जीव स्वयं ही अपनी समस्त अभिलाषाओं का शीघ्र ही सम्पादन कर लेता है; क्योंकि प्रत्येक जीव में जीवशक्ति स्वरूप चेतन शक्ति वर्तमान है। इसलिये जिस–जिस जीव की जो शक्ति जिस–जिस रूप में प्रकट होती है, वह उसी–उसी रूप में उस–उस जीव को सदा तदनुरूप फल प्रदान करती हुई–सी प्रतीत होती है। जिस समय तुम मेरी सम्यक् प्रकार से आराधना कर रही थी, उस समय चिरकाल तक तुम्हारे मन में जो जीव–शक्ति उत्पन्न हुई थी, उसकी कामना थी कि यदि इसी जन्म में मैं मुक्त हो जाती तो अच्छा होता। अतः उत्तम रूप–रंग

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वाली लीले! उसी-उसी प्रकार से मैंने तुम्हें भलीभाँति समझाया है और उसी युक्ति द्वारा तुम इस निर्मल भाव को प्राप्त हुई हो। जब चिरकाल तक मैंने तुम्हें इसी भावना से ज्ञानोपदेश किया है, तभी तुम अपनी चेतन शक्ति के प्रभाव से सदा के लिये उसी अर्थ को प्राप्त हुई हो; क्योंकि जिस-जिसका चिरकाल तक जैसा अपनी चेतनशक्ति का प्रयत्न होता है, वह समयानुसार उस-उसको वैसा ही फल प्रदान करता है। अपनी चेतनशक्ति ही तपस्या अथवा देवता का रूप धारण करके स्वच्छन्दरूप से आकाश से फल गिरने की भाँति फल देती है। अपनी ज्ञानशक्ति प्रयत्न के बिना कभी कुछ भी फल नहीं देती; इस कारण तुम्हारी जैसी अभिलाषा हो, शीघ्र ही तदनुरूप कार्य आरम्भ कर दो। तुम ऐसी धारणा कर लो कि चित्सत्ता ही सबमें अन्तरात्मारूप से व्याप्त है। वही विहित अथवा निषिद्ध जिस कर्म का विचार करती है और उसके लिये प्रयत्न करने लग जाती है, उसी की फलश्री प्राप्त होती है। इसलिये जो पावन पद है, उसे जानकर तुम उसी में स्थित हो जाओ।

अट्ठाइसवाँ सर्ग समाप्त

उन्तीसवाँ सर्ग

राजा विदूरथ का कथन

श्री रामजी ने पूछा-मुने! जब वे तीनों देवियाँ उस राजमहल के भीतर यों परस्पर वार्तालाप कर रही थीं, उस समय विदूरथ ने क्रोधावेश में महल से निकल कर क्या किया ?

श्री वशिष्ठजी ने कहा-वत्स राम! जिस समय राजा विदूरथ अपने भवन से बाहर निकला, उस समय वह नक्षत्र समूह से घिरे हुए चन्द्रमा की भाँति विशाल सैन्य दल से परिवेष्टित था। हार आदि आभूषण उसके शरीर की शोभा बढ़ा रहे थे। वह जय-जयकार की तुमुल ध्वनि के साथ देवराज इन्द्र के समान बाहर निकला। उस समय वह योद्धाओं को आदेश देरहा था। मन्त्री व्यूह-रचना एवं जनपद-व्यवस्था-सम्बन्धी व्यवस्था उसे सुना रहे थे। वह वीरगणों का निरीक्षण करता हुआ एक ऐसे रथ पर आरूढ़ हुआ, जिसमें आठ घोड़े जुते थे। उत्तम जाति वाले उन अश्वों की गर्दन बड़ी सुहावनी थी। वे शुभ लक्षणों से युक्त, फुर्तीले और एकहरे बदन के थे तथा अपनी हिनहिनाहट से सारी दिशाओं को निनादित कर रहे थे। उस समय जिन्हें सरस्वती देवी ने दिव्यदृष्टि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्रदान की थी, वे दोनों लीला नामवाली देवियाँ और वह राजकुमारी उस महायुद्ध को देख रही थीं। उसे देखकर उनका हृदय विदीर्ण-सा हो रहा था। राजा विदूरथ की युद्ध-यात्रा के पश्चात् शत्रु सैनिकों के बाणों एवं आयुधों से निकलता हुआ कटकट शब्द पूर्ण रूप से शान्त हो गया-ठीक उसी तरह, जैसे एकार्णव के जल प्रवाहों से बड़वानल शान्त हो जाता है। उस समय राजा विदूरथ अपनी सेना को धीरे-धीरे आगे बढ़ा रहे थे। उन्हें अपने तथा शत्रुपक्ष के बलाबल का ज्ञान नहीं हो पाया था-इसी दशा में उन्होंने शत्रु-सेना में प्रवेश किया।

जिस समय समर भूमि में दोनों सेनाओं की भीषण मुठभेड़ हो रही थी। उसी समय दोनों लीलाओं ने भगवती सरस्वती से पुनः प्रश्न किया।

दोनों लीलाओं ने पूछा-देवि! यह बतलाइये कि आपके संतुष्ट होने पर भी मेरे पतिदेव इस युद्ध में, जिसमें से गजराज भागे जा रहे हैं। अकस्मात् विजय क्यों नहीं प्राप्त कर रहे हैं ?

श्री सरस्वती जी ने कहा-पुत्रि! राजा विदूरथ के शत्रु इस राजा सिन्धु ने विजयप्राप्ति की कामना से चिरकाल तक मेरी आराधना की थी, परंतु भूपाल विदूरथ की आराधना विजयार्थ नहीं थी; इसलिये यह राजा सिन्धु ही विजयी होगा और विदूरथ पराजित हो जायगा। क्योंकि समस्त प्राणियों के हृदयान्तर्गत ज्ञानवृत्तिरूप से मैं ही स्थित हूँ, अतः जो मुझको जिस समय जिस रूप से प्रेरित करता है, मैं शीघ्र ही उसके लिये उस समय वैसे ही फल का सम्पादन करती हूँ। बाले! इस राजा विदूरथ ने 'मैं मुक्त हो जाऊँ' इस भावना से मुझ प्रतिभारूपिणी का ध्यान किया था, इस कारण यह मुक्त हो जायगा। और इसके शत्रु राजा सिन्धु ने 'मैं स्वयं संग्राम में विजयी होऊँ' इस कामना से मेरी पूजा की थी; इसलिये बाले! विदूरथ भार्यारूपिणी तुम्हारे और इस लीला के साथ समयानुसार उस शवस्वरूप देह को प्राप्त होकर मुक्त हो जायगा तथा इसका शत्रु राजा सिन्धु स्वयं उसे मारकर विजयश्री से सुशोभित हो भूतल पर राज्य करेगा।

उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तीसवाँ सर्ग

राजा विदूरथ एवं राजा सिन्धु का युद्ध

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-राघव! देवी सरस्वती यों कह ही रही थीं, तब तक भगवान् सूर्य उदयाचल पर आ पहुँचे, मानो वे जूझती हुई दोनों सेनाओं का आश्चर्यमय युद्ध देखना चाहते थे। उस समय जैसे द्युलोक में आकाश के चिन्हभूत सूर्य और चन्द्रमा दिखायी देते हैं, उसी तरह जनसंहार हो जाने के कारण उस शून्य संग्राम भूमि में राजा पद्म (विदूरथ) और राजा सिन्धु के प्रकाशमान रथ चलते हुए दीख रहे थे। उन दोनों रथों में चक्र, शूल, भुशुण्डी, ऋष्टि और प्रास आदि आयुध खचाखच भरे थे। उन रथों के पीछे बहुसंख्यक शूरवीर योद्धा, जिनके सैनिक भयभीत हो गये थे, रणभूमि में भालों, बाणों, धनुषों, शक्तियों, प्रासों, शंकुओं और चमकते हुए चक्रों की भयंकर वृष्टि करते हुए चल रहे थे। इतने में ही प्रलयकालीन वायु द्वारा गिराये गये शिला खण्डों की तरह दोनों सेनाओं पर बाण गिरने लगे। उस समय राजा विदूरथ और राजा सिन्धु की परस्पर ऐसी भयंकर मुठभेड़ हुई, जिसे देखकर लोगों को ऐसी आशंका होने लगी मानो प्रलय के लिये विशेषरूप से बढ़े हुए दो महासागर परस्पर टकरा रहे हों।

राजा विदूरथ अपने विपक्षी राजा सिन्धु को, जिसके कंधे ऊँचे थे, सामने उपस्थित पाकर मध्यान्हकालिक सूर्य के दुस्सह आतप की भाँति प्रचण्ड कोप से भर गया। फिर तो उसने अपने धनुष को, जिसकी टंकार ध्वनि चिरकाल के लिये सारी दिशाओं को निनादित कर देती थी, कान तक खींचा। उस समय ऐसा भयंकर शब्द हुआ, जैसे कल्पान्त-काल में उठी हुई वायु मेरुगिरि के तट प्रान्त से टकरा रही हो। राजा विदूरथ का हस्तलाघव सराहनीय था; क्यों लोक देखते थे कि उसकी प्रत्यञ्चा से एक ही बाण छूटता है, परंतु वह आकाश में पहुँचते-पहुँचते हजार हो जाता है और विपक्षियों पर एक लाख होकर गिरता है। राजा सिन्धु की शक्ति और फुर्ती विदूरथ के ही समान थी। उन दोनों को ऐसी धनुर्युद्ध-कुशलता वरदायक भगवान् विष्णु के वर प्रसाद से उपलब्ध हुई थी। तदनन्तर उन दोनों के छोड़े हुए मुसल नामक बाणों से, जिनकी आकृति मूसल की-सी थी, आकाश आच्छादित हो गया। उन बाणों से प्रलयकालीन वज्रों की गड़गड़ाहट के समान भीषण शब्द हो रहा था। युद्धस्थल में राजा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

विदूरथ के बाण समूह वेगपूर्वक घर घर शब्द करते हुए राजा सिन्धु के सम्मुख उसी प्रकार बढ़ रहे थे मानो आकाश मार्ग से गिरते हुए गंगा के प्रवाह कलकल नाद करते हुए महासागर की ओर जा रहे हों। परंतु राजा सिन्धुरूपी बडवानल ने अपने अगस्त्य-तुल्य बाणों की ऊष्मा से विदूरथ के उस बाण-महासागर को पी लिया-ठीक उसी तरह, जैसे महर्षि जन्हु गंगाजी को पी गये थे। तत्पश्चात् राजा सिन्धु ने बाणों की उस वृष्टि को छिन्न-भिन्न करके स्वयं बाणों की इतनी झड़ी लगायी कि आकाश में सायकों का ही मेघमण्डल घिर आया। तब बिदूरथ ने भी जैसे प्रलयकालीन वायु उमड़े हुए साधरण मेघ को उड़ा देती है, उसी तरह अपने उत्तम सायकों से शीघ्र ही उस बाणरूपी मेघ मण्डल को विध्वंस कर डाला। इस प्रकार वे दोनों भूपाल परस्पर बदला लेने की भावना से एक-दूसरे को लक्ष्य बनाकर बाणों की वर्षा करते थे और एक-दूसरे के प्रहार को व्यर्थ कर देते थे।

तदनन्तर राजा सिन्धु ने मोहनास्त्र का संधान किया। यह अस्त्र उसे किसी गन्धर्व के साथ मित्रता होने के कारण प्राप्त हुआ था। उस मोहनास्त्र के प्रयोग से विदूरथ के अतिरिक्त शेष सभी सैनिक मूर्च्छित हो गये। उनके शस्त्रास्त्र और वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये, मुख और नेत्रों में उदासी छा गयी। उनकी बोलती बंद हो गयी और वे मृतक-तुल्य अथवा चित्रलिखित से प्रतीत होने लगे। तब राजा विदूरथ ने प्रबोधास्त्र हाथ में लिया। फिर तो प्रातःकाल सूर्योदय होने पर जैसे कमलिनी विकसित हो जाती है, उसी तरह उस अस्त्र के प्रयोग से सभी योधाओं की मूर्च्छा जाती रही और वे उठ बैठे। तत्पश्चात् राजा सिन्धु ने भयंकर नागास्त्र को, जो नागप्राश-बन्धन द्वारा महान् कष्टदायक था, धनुष पर चढ़ाया। उसके संधान से आकाश पर्वत सरीखे विशालकाय नागों से व्याप्त हो गया। मृणालों द्वारा सुशोभित हुई पोखरी की तरह पृथ्वी श्वेत वर्ण के सर्पों से विभूषित हो गयी। सारे पर्वत काले नागरूपी कम्बलों से सम्पन्न हो गये। ये सभी पदार्थ विष की ऊष्मा से मलिन हो गये और वन तथा पर्वतों की विशालता से युक्त पृथ्वी व्याकुल हो गयी। तब महान् अस्त्रों के मर्मज्ञ विदूरथ ने भी गारुड़ास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र से पर्वत-सदृश विशालकाय इतने गरुड़ प्रकट हुए, जिनसे सारी दिशाएँ भर गयीं। उनके सुनहरे पंखों की चमक से सभी दिशाएँ स्वर्णमय प्रतीत होने लगीं। उड़ते हुए उन गरुड़ों के पंख से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पक्षधारी पर्वतों की उड़ान से उत्पन्न हुए प्रलयकालीन वायु की भाँति भयंकर आँधी प्रकट हो गयी। वे अपने श्वास वेग से फुफकारते हुए नाग-समूहों को अपनी ओर खींच लेते थे। उनकी घुरघुराहट की तीव्र आवाज समुद्रपर्यन्त व्याप्त हो गयी। तत्पश्चात् राजा सिन्धु ने तमोऽस्त्र प्रकट किया, जो अंधा बना देने वाले अन्धकार का उत्पादक था। उससे भूगर्भ का सा घना अन्धकार फैल गया। उस समय सारी प्रजाएँ अन्धकूप में गिरे हुए की भाँति प्रतीत होने लगीं और कल्पान्त की तरह सभी दिशाओं के व्यवहार एकदम बंद हो गये। तब मन्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ विदूरथ ने किसी गुप्त मन्त्रणा की अपेक्षा किये बिना ही ब्रह्माण्ड मण्डप में दीपक की तरह प्रकाश फैलाने वाले सूर्यास्त्र की सृष्टि करके सबको सचेष्ट कर दिया। उस समय सूर्यरूपी अगस्त्य ने अपनी किरणों से उस प्रकट हुए अन्धकार के महासागर को पी लिया-ठीक उसी तरह, जैसे निर्मल शरद्-ऋतु काले बादलों को पी जाती है। यह देखकर राजा सिन्धु क्रोध से भर गया। फिर तो उसने उसी क्षण अत्यन्त भीषण राक्षसास्त्र प्रकट किया, जिससे मन्त्रोच्चारण करते ही बाण निकलने लगते थे। उस राक्षसास्त्र का प्रयोग करते ही पाताल निवासी दिग्गजों के फूत्कार से विक्षुब्ध हुए महासागर की भाँति बहुत से भयंकर एवं क्रूर स्वभाव वाले वनराक्षस सभी दिशाओं से प्रकट हो गये। इसी बीच में लीला के स्वामी राजा विदूरथ ने उस युद्ध स्थल में नारायणास्त्र का प्रयोग किया, जो दुष्ट प्राणियों के निवारण करने में सिद्धहस्त है। उस अस्त्रराज के प्रकट होते ही राक्षसों के अस्त्र समूह पूर्णरूप से शान्त हो गये, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार विलीन हो जाता है। तदनन्तर राजा सिन्धु ने वायव्यास्त्र की सृष्टि की, जिसने आकाश मण्डल को प्रचण्ड वायु से भर दिया। तब महान् अस्त्रवेत्ता विदूरथ ने पार्वतास्त्र चलाया, जो मानो मेघ-जल सहित आकाश को भी आत्मसात् कर लेने के लिये उद्यत था। तदुपरान्त राजा सिन्धु ने उद्दीप्त वज्रास्त्र प्रकट किया, जिससे झुंड-के-झुंड वज्र निकलकर रणभूमि में विचरने लगे। वे ईंधन को भस्मसात् कर लेने वाली आग की भाँति विशाल पर्वतरूपी अन्धकार को पी जाते थे तथा अपने करोड़ों चोंचों से पर्वतों के शिखरों को काट-काट कर उसी प्रकार भूतल पर गिरा देते थे, जैसे प्रचण्ड वायु फलों को गिराकर पृथ्वी पर बिछा देती है। तब विदूरथ ने वज्रास्त्र को शान्त करने के लिये ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। फिर तो ब्रह्मास्त्र और वज्रास्त्र दोनों एक साथ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ही शान्त हो गये।

इस प्रकार जब वह भयंकर संग्राम चल ही रहा था, उसी समय प्रतिभा शालियों में सर्वश्रेष्ठ, महान् उदार एवं उत्कृष्ट धैर्यशाली राजा सिन्धु ने विपक्षियों की सारी सेना का विनाश और अपनी सेना की पीड़ा शान्ति के लिये एकमात्र वैष्णवास्त्र का स्मरण किया, जो दिव्यास्त्रों का राजा, परम ऐश्वर्यशाली एवं कालरुद्र के समान संहारकारी था। उस वैष्णवास्त्र से अभिमन्त्रित करके राजा सिन्धु ने जो बाण चलाया, उसके फल के अग्रभाग से उल्मुक आदि निकलने लगे। उससे निकली हुई प्रकाशमान चक्रों की पंक्तियों ने दिशाओं को सैकड़ों सूर्यों से युक्त सा बना दिया। पंक्तिरूप में सन्मुख दौड़ती हुई गदाएँ आकाश में सैकड़ों बाँसों की भाँति प्रतीत होती थीं। सौ धार वाले वज्र समूहों ने आकाश को तृणराशि से आच्छादित सा कर दिया। पद्माकार पट्टिशों की कतारें आकाश में कटे हुए वृक्षों सी दीख रही थीं। तीक्ष्ण धार वाले बाणों की पंक्तियाँ ऐसी जान पड़ती थीं, जैसे आकाश में पुष्पजाल बिछा हो। काली आकृतिवाले खड़गों की कतारें नभोमण्डल को पत्र समूहों से व्याप्त सा कर रही थीं। तब विपक्षी राजा विदूरथ ने भी उस वैष्णवास्त्र की शान्ति के लिये वैष्णवास्त्र का ही प्रयोग किया, जो शत्रु के पराक्रम के अनुरूप ही था। उससे भी बाण, शक्ति, गदा, प्रास, पट्टिश आदि आयुधरूपी जल से परिपूर्ण बहुत सी शस्त्रास्त्रों की सरिताएँ प्रकट हुईं, जिन्होंने पूर्वप्रयुक्त वैष्णवास्त्र से उद्भुत हथियारों को नष्ट कर दिया। उन शस्त्रास्त्रपूर्ण नदियों का आकाश में ही ऐसा भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ, जो द्युलोक और पृथ्वी के अवकाश का विनाश करने वाला तथा बड़े-बड़े कुल पर्वतों को विदीर्ण कर देने वाला था। जैसे मेरे आयुधों ने विश्वामित्र के अस्त्रों का निवारण किया था, उसी तरह परस्पर जूझते हुए उन दोनों वैष्णवास्त्रों की धारावाहिक बाण-वृष्टि ने शस्त्र-समूहों को काट डाला और उन अस्त्रों से प्रकट हुए वज्रों ने अकाट्य पर्वतों को भी जर्जर कर दिया। इस प्रकार दोनों राजाओं के वे अस्त्र पराक्रमशाली दो सुभटों की भाँति क्षण भर तक परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध करके शान्त हो गये।

तत्पश्चात् राजा सिन्धु अपने रथ को छोड़कर पृथ्वी पर उतर पड़ा और ढाल-तलवार से लैस हो गया। फिर तो उसने पलक मारते-मारते बड़ी फुर्ती से अपने शत्रु राजा विदूरथ के रथ के घोड़ों के खुरों को मृणाल की भाँति

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तलवार से काट गिराया। अब तो राजा विदूरथ भी रथहीन हो गये, अतः उन्होंने भी ढाल-तलवार उठा ली। उस समय उन दोनों के आयुध एकसे थे और दोनों का उत्साह भी समान था; अतः वे परस्पर वार करने के लिये पैंतरे बदलने लगे। परस्पर प्रहार करते हुए उन दोनों के खड़ग आरे के समान हो गये थे। इसी बीचा राजा विदूरथ ने खड़ग छोड़कर एक शक्ति हाथ में ली और उसे शत्रु पर चला दिया। वह शक्ति मथे जाते हुए समद्र के जल की तरह घर्घर शब्द से युक्त अतएव महान् उत्पात की सूचना देने वाले वज्र के सदृश थी। वह अविच्छन्न रूप से आयी और राजा सिन्धु के वक्षःस्थल पर गिरी; परंतु उस शक्ति के आघात से राजा सिन्धु की मृत्यु नहीं हुई।

तब उस देश की लीला ने पूर्व लीला से कहा-'देवि! बड़े कष्ट की बात है; क्योंकि जैसे देवराज इन्द्र शत्रु का विनाश करने के लिये वज्र का सहारा लेते हैं, उसी तरह यह राजा सिन्धु प्रहार करने के लिये मुसलास्त्र की ओर देख रहा है; परंतु मेरे पतिदेव मुसलधारी राजा सिन्धु को चकमा देकर बड़ी फुर्ती से सकुशल दूसरे रथ पर चढ़ गये और वेगपूर्वक दूर हट गये हैं। फिर भी हाय! धिक्कार है, महान् कष्ट आ पड़ा, इस राजा सिन्धु ने अत्यन्त वेग से बाण बरसाकर मेरे स्वामी के रथ को तहस-नहस करके उन्हें भी व्यथित कर दिया और अब यह अपने वज्रसरीखे बाणों द्वारा उनके स्थूल मस्तक को विदीर्ण करके उन्हें भूतल पर गिराना ही चाहता है। देखो न, बड़ी कठिनाई से होश में आने पर जब मेरे पतिदेव सारथि द्वारा लाये गये दूसरे रथ पर चढ़ रहे थे, उसी समय इसने उनके कंधे को काट दिया, जिससे वे रक्त के फौवारे छोड़ रहे हैं। हाय! हाय! अब तो और भी कष्ट की बात हुई, इस राजा सिन्धु ने अपने खड़ग की तीखी धार से मेरे पतिदेव की दोनों पिंडलियों को उसी प्रकार फाड़ डाला, जैसे आरे से वृक्ष चीरा जाता है। हाय! अब तो मैं बुरी तरह मारी गयी; क्योंकि मेरे पति के दोनों घुटने भी मृणाल की तरह काट डाले गये।' यों कहकर और पति की उस अवस्था पर दृष्टिपात करके पति-प्रेम और भय से आतुर हुई वह लीला फरसे से कटी हुई लता की भाँति मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। विदूरथ यद्यपि जानुरहित हो गये थे, तथापि वे शत्रु पर प्रहार कर ही रहे थे। उसी अवस्था में वे जड़ से कटे हुए वृक्ष की तरह रथ से नीचे गिरना ही चाहते थे, तब तक सारथि उन्हें रथ द्वारा संग्राम भूमि से दूर हटा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ले गया। जब ये भागे जा रहे थे, उस समय क्रूर-हृदय राजा सिन्धु ने इनके गले पर अस्त्र प्रहार किया, जिससे इनका आधा गला कट गया। फिर भी राजा सिन्धु इनका पीछा कर ही रहा था। तब तक राजा विदूरथ जैसे सूर्य की किरणें कमलकोश में घुस जाती हैं, उसी तरह रथ द्वारा भागकर अपने महल में जा पहुँचे; किंतु राजा सिन्धु उस राजभवन में प्रविष्ट न हो सका, क्योंकि वह महल सरस्वती देवी के प्रभाव से सुरक्षित था। वहाँ पहुँचकर सारथि ने राजा विदूरथ को, जिसके वस्त्र, कवच और शरीर खड़ग से काटे गये गले के छिद्र से बुदबुद ध्वनि के साथ निकलती हुई रक्त धाराओं से सन गये थे, महल के भीतर ले जाकर भगवती सरस्वती के समक्ष मरणशय्या पर लिटा दिया। इधर विपक्षी राजा सिन्धु महल में प्रवेश न कर सकने के कारण लौट गया।

तीसवाँ सर्ग समाप्त

इकत्तीसवाँ सर्ग

विदूरथ पराजय

मुनिवर वशिष्ठ जी बोले–हे रघुनन्दन! राजा विदूरथ के मृत्य-तुल्य हो जाने पर जब 'रणभूमि में प्रतिद्वन्द्वी राजा के हाथ से राजा विदूरथ मार डाले गये, राजा मारे गये' ऐसी खबर फैल गयी, तब सारा राष्ट्र भयभीत हो गया। उस समय विदूरथ के राष्ट्र की ऐसी दशा हो गयी थी कि वह शत्रुराष्ट्र की साधारण एवं सैनिक जनता के विजयोल्लास के शब्द से मुखरित हो रहा था। उसमें स्वामियों से रहित हो जाने के कारण हाथी, घोड़े और वीर सैनिक टकराकर साधारण जनता को धराशायी कर रहे थे। कोष गृह के किवाड़ों के तोड़े जाने के कारण उठा हुआ घर्घर शब्द चारों ओर गूँज रहा था। शत्रुपक्ष का मन्त्रिमण्डल राजा सिन्धु के पुत्र का अभिषेक कार्य सम्पन्न करने के लिये आदेश देने में तत्पर था। राजा सिन्धु की रानियाँ नगर की शोभा देखने के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

लिये झरोखों एवं अन्य बनाये गये छिद्रों पर बैठ रही थीं। अभिषिक्त हुए राजा सिन्धु के पुत्र का जय-जयकार सैकड़ों उच्च घोषों के साथ-साथ प्रबल प्रभाव फैला हुआ था। स्वपक्षीय असंख्य नरेशों ने राजा सिन्धु द्वारा बनायी गयी राष्ट्र मर्यादा को नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया था।

तदनन्तर 'भूमण्डल के एकच्छत्र सम्राट राजा सिन्धु की जय हो!' यों घोषणा करते हुए लोग प्रत्येक नगर में भेरियाँ बजाने लगे। पुत्र के राज्याभिषेक के पश्चात् राजा सिन्धु ने, जो विजयी होने के कारण उन्नत-मस्तक था, युगान्त के समय जगत् की सृष्टि करने के लिये प्रकट हुए दूसरे मनु की भाँति प्रजा की नयी व्यवस्था हेतु राजधानी में प्रवेश किया। तत्पश्चात् राजा सिन्धु के नगर में दसों दिशाओं से हाथी-घोड़ों के रूप में भेंट आने लगी। मन्त्रियों ने तत्काल ही प्रत्येक दिशाओं के सामन्त राजाओं के पास राजकीय नियम, चिन्ह और आदेश भेज दिये। फिर तो जैसे मन्थन-काल में आवर्तों के कारण क्षुब्ध हुआ क्षीरसागर मन्दराचल के निकाल लिये जाने पर तुरंत ही प्रकृतिस्थ हो गया था, उसी तरह अराजकता के कारण विक्षुब्ध हुआ सारा राष्ट्र दसों दिशाओं सहित शीघ्र ही शान्त हो गया।

इकतीसवाँ सर्ग समाप्त

बत्तीसवाँ सर्ग

संसार की असत्यता

श्री वशिष्ठजी कहते हैं-हे श्रीराम! इसी बीच में मूर्च्छित होकर सामने पड़े हुए अपने स्वामी को, जिनका श्वास मात्र ही अवशेष रह गया था, देखकर लीला ने सरस्वती से कहा-'अम्बिके! ये मेरे पतिदेव अब यहाँ अपनी देह का उत्सर्ग करने के लिये उद्यत हैं।'

श्री सरस्वती जी ने कहा-लीले! इस प्रकार महान् उद्योग से परिपूर्ण, राष्ट्र-विप्लवकारी और परम विचित्र व्यवसायों से युक्त इस संग्राम के आरम्भ होने, चलने और समाप्त होने पर यह राष्ट्र अथवा भूतल न तो कहीं कुछ भी उत्पन्न हुआ है और न नष्ट ही हुआ है; क्योंकि यह जगत तो स्वप्नात्मक है। अनघे! पूर्वोक्त गिरिग्राम निवासी ब्राह्मणघर के भीतर स्थित राजा पद्म के शव के निकटवर्ती आकाश में वर्तमान अन्तःपुर के भीतर तुम्हारे पति का यह भूतल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रूप राष्ट्र प्रतीत हो रहा है। पुनः विन्ध्याद्रि के ग्राम में वसिष्ठ नामक ब्राह्मण के घर के अंदर यह राष्ट्र सहित ब्रह्माण्ड स्थित है। उसी ब्राह्मण के घर में शवयुक्त गेह-जगत् वर्तमान है। उस शवयुक्त गेह-जगत् के मध्य में इस गेह-जगत का अस्तित्व है। यों यह त्रिजगत्, जो महान् व्यवसायों से युक्त है, भ्रमरूप ही है तथा गिरिग्रामरूपी देह के मध्य भाग में स्थित आकाशकोश में यह सागर सहित पृथ्वी दृष्टिगोचर हो रही है और तुमसे, मुझसे, इस लीला से एवं इस विदूरथ से संयुक्त यह चेतन परमात्मा ही विकसित हो रहा है। इसलिए तुम उत्पत्ति विनाश रहित उस परमपदरूप परमात्मा को जानो। वह स्वयम्प्रकाश, परम शान्त और निर्विकार है तथा मण्डप गृह के भीतर अपने चिन्मात्र स्वभाव के कारण उदित हुए अपने आत्मा में जगत्रूप से आभासित हो रहा है। यह भ्रम का द्रष्टा ही न रहे तो भ्रम में भ्रमता कैसे होगी। अतः भ्रम की सत्ता है ही नहीं। जो कुछ है, वह अविनाशी परमपदरूप परमात्मा ही है। उस परमात्मा को तुम ऐसे समझो कि वह उत्पत्ति विनाश रहित, स्वयम्प्रकाश, शान्त, आदि स्वरूप और निर्विकार होते हुए भी जगत्रूप से प्रतीत हो रहा है। स्वप्नावस्था में देह के अंदर देखे गये महापुर की भाँति मेरु आदि पर्वत समुदाय द्वारा उपलक्षित यह सारा दृश्य वर्ग शून्यात्मस्वरूप ज्ञानमात्र ही है, इसमें स्थूलरूपता कुछ भी नहीं है। शुभे! यह राजा पद्म जिस लोक में शवरूप से वर्तमान है, तुम्हारी यह सपत्नी लीला वहाँ पहले ही पहुँच गयी है। यह लीला तुम्हारे समक्ष ज्यों ही मूर्च्छित हुई त्यों ही तुम्हारे पति राजा पद्म के शव के निकट जा पहुँची है।

लीला ने पूछा–देवि! यह पहले ही वहाँ पहुँचकर देहधारिणी कैसे हो गयी ? इसके मेरे सत्पनीभाव को प्राप्त होने में क्या कारण है ? तथा राजा पद्म के उस उत्तम राजमहल के जो निवासी हैं, वे इसे किस रूप में देखते हैं और इसे क्या कहते हैं ?–यह सब मुझे संक्षेप से बतलाइये।

श्री देवी जी ने कहा–लीले! तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया है, तदनुसार मैं सारी घटना तुमसे संक्षेप में वर्णन करती हूँ; सुनो। यह दूसरी लीला के रूप में वर्तमान तुम्हारा ही वृत्तान्त है, जो तुम्हारी शंकाओं का निर्णायक है। इससे मरण परलोक गमन आदि भी, जिनका प्रत्यक्षीकरण होना कठिन है, तुम्हारे दृष्टिगोचर हो जायँगे। यह जो नगरादिरूप से दृष्टिगोचर होने वाला जगन्मय भ्रम

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है, उस अत्यन्त विस्तृत भ्रम को तुम्हारा पति यह राजा पद्म उसी शवयुक्त गृह में देखता है। यहाँ तक कि यह सामने घटित हुआ युद्ध भ्रमयुद्ध है। यह लीला भी भ्रान्तिस्वरूप ही है। यह जन-समुदाय जन्मादिरहित आत्मा है। यहाँ की मृत्यु भी भ्रान्ति से ही दीख पड़ती है। इस प्रकार यह संसार भ्रमात्मक है। इसी भ्रमक्रम से लीला इस राजा पद्म की प्रेयसी भार्या हुई है। वरारोहे! तुम और यह दोनों सुन्दरियाँ भी स्वप्नमात्र ही हो। जिस प्रकार इस राजा की तुम दोनों सुन्दरी प्रियतमाएँ स्वप्नमात्र हो, उसी तरह तुम दोनों का पति यह राजा और स्वयं मैं भी स्वप्नमात्र ही हूँ। इसी तरह जगत की यह सारी शोभा भी भ्रमपूर्ण ही है और यहाँ का दृश्य वर्ग भ्रममात्र कहा जाता है। इसी तरह यह लीला, तुम, यह संसार स्थिति, यह राजा पद्म और मैं-ये सबके सब परमात्मा के सर्वव्यापक होने के कारण उसी परमात्मा में सत्यरूप से स्थित हैं। अतः महाचिद्घन की स्थिति के सर्वात्मक होने के कारण ये राजा आदि और हम लोग यहाँ परस्पर एक दूसरे के द्वारा प्रेरित होने के कारण इस रूप में परिणत हो गये हैं। जब इस लीला के लिये पद्म की मनोवासना जागृत् हुई, उसी समय यह तुम्हारे-सरीखे आकार-प्रकार धारण करके चैतन्यरूप चमत्कार में प्रकट हो गयी तथा तुम्हारे पतिदेव ने अपनी मृत्यु के अनन्तर शीघ्र ही इसे अपने सामने उपस्थित देखा; क्योंकि जिस समय चित्त वासनाभ्यासवश आधिभौतिक पदार्थों का स्वयं अनुभव करता है, उस समय उस अनुभव के कारण उसे यह दृश्य वर्ग सत्य सा प्रतीत होता है; वस्तुतः यह है मिथ्या कल्पनामात्र ही; परंतु जब चित्त इस भौतिक जगत् के पदार्थों का सत्यरूप से अनुभव नहीं करता अर्थात् असत् समझता है, उस समय तदनुरूप दृढ़ वासनावश उसके मिथ्यात्व का निर्णय हो जाता है।

ये दोनों स्त्री-पुरुष जब स्वमरणानुकूल मूर्छावस्था को प्राप्त हुए, उसी समय इन्होंने पूर्व वासना के जाग्रत हो जाने के कारण अपने हृदय में ऐसा अनुभव किया कि 'ये हमारे पिता हैं। ये हमारी माताएँ हैं। यह हमारा देश है। यह धन-सम्पत्ति है। यह हमारा कर्म है। पूर्वजन्म में हमने ऐसा ही कर्म किया था। इस प्रकार हम दोनों का विवाह हुआ और इस रूप में हम दोनों एकता को प्राप्त हुए।' इनका वह कल्पित जनसमूह भी उसी अवस्था में सत्यता को प्राप्त हुआ। जैसे स्वप्नावस्था में देखा हुआ पदार्थ सत्य सा प्रतीत होता है, उसी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरह यहाँ भी यह दृष्टान्त है। लीले! इस लीला ने 'मैं विधवा न होऊँ' ऐसी भावना से भावित होकर मेरी आराधना की थी तथा मैंने भी उसे मनोऽनुकूल वर प्रदान किया था। इसी कारण निश्चय ही यह बालिका यहाँ पहले ही मृत्यु को प्राप्त हुई है। तुम लोग व्यष्टि चेतन हो और मैं तुम लोगों की समष्टि चेतनस्वरूपा कुलदेवी हूँ, अतः सदा पूजनीय हूँ। मैं अपने आप ही सब कुछ करती हूँ। जब इस लीला के जीव ने इसके शरीर से उत्क्रमण करना चाहा, उसी क्षण उसने प्राणवायु के रूप में सूक्ष्म शरीर धारण कर लिया और मन द्वारा चलायमान हो मुखछिद्र से निकलकर इस देह का परित्याग कर दिया। तदनन्तर मरणानुकूल मूर्च्छा के उपरान्त जीवात्मारूप से स्थित इस लीला ने इस घर के आकाश में बुद्धि में संकल्पित पदार्थों को देखा। फिर यह भावनावश पूर्व देह की स्मृति हो जाने से स्वप्न की तरह ब्रह्माण्ड मण्डल के भीतर जाकर अपने पति से संयुक्त हो गयी।

बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त

तेतीसवाँ सर्ग

लीला को राजा पद्म की प्राप्ति

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं–हे राघव! तदनन्तर यह लीला, जिसे सरस्वती द्वारा वर उपलब्ध हो चुका था, इसी वासनामय शरीर से अपने पति राजा पद्म से मिलने के लिये आकाशमार्ग से ऊपर के लोकों में जाने को उद्यत हुई; उस समय पतिमिलन के सुख का विचार करके यह प्रबल प्रेमभाव से संयुक्त हो आनन्दपूर्वक उड़ चली। वहाँ पहुँचकर इसे इसकी प्यारी कुमारी कन्या, जिसे सरस्वती देवी ने ही वहाँ भेजा था, प्राप्त हुई, मानो वह लीला के संकल्परूपी महान् दर्पण से निकलकर आगे खड़ी हो गयी हो।

कुमारी ने कहा–सरस्वती देवी की सहेली! तुम्हारा स्वागत है। मैं तुम्हारी कन्या

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हूँ। सुन्दरि! तुम्हारी ही प्रतीक्षा करती हुई मैं यहाँ आकाशमार्ग में खड़ी हूँ।

तब लीला ने कहा-कमलनयनी देवि! तुम मुझे स्वामी के समीप ले चलो।

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-हे रघुनन्दन! तब वह कुमारी 'मातः! आओ, हम दोनों वहीं चल रही हैं'-यों कहकर लीला के आगे होकर आकाश में मार्ग प्रदर्शन करने लगी। तत्पश्चात् वह लीला उसके पीछे-पीछे प्रस्थित हुई। आगे बढ़ने पर वह मेघमार्ग को लाँघकर वायु मार्ग में प्रविष्ट हुई। फिर वहाँ से चलकर सूर्यमार्ग से निकलती हुई नक्षत्रमार्ग में गयी। उसे भी पार करके ब्रह्माण्ड-कपाल में जा पहुँची। वहाँ जाने पर, अपना चित्तमात्र ही जिसका शरीर है, वह लीला अपने हृदय में यों अनुभव करने लगी कि निश्चय ही यह सारा दृश्य अपनी कल्पना के स्वभाव से उत्पन्न हुआ भ्रम ही है। तदनन्तर ब्रह्माण्ड के उस पार पहुँचकर वह जलादि आवरणों को लाँघती हुई आगे बढ़ने पर महान् चेतनाकाश के मध्य में प्रविष्ट हुई। वह चेतनाकाश इतना विस्तृत है कि यदि अत्यन्त वेगशाली गरुड़ भी उसके चारों ओर चक्कर लगायें तो सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी उसके ओर-छोर का पता नहीं लगा सकते, उसी तरह उस चेतनाकाश में लाखों क्या, असंख्य ब्रह्माण्ड हैं, जो परस्पर एक-दूसरे से अलक्षित हैं। उन्हीं में से एक ब्रह्माण्ड को, जो सामने उपस्थित एवं विस्तृत आवरण से आवेष्टित था, वेधकर वह लीला उसके भीतर प्रविष्ट हुई-ठीक उसी तरह, जैसे कीड़ा बेर के फल में छेद करके उसके भीतर घुस जाता है। तदनन्तर भूमण्डल में राजा पद्म के राज्यान्तर्गत उसके नगर में पहुँचकर उस मण्डप में प्रवेश करके वह राजा के शव के निकट स्थित हुई। इतने में ही वह कुमारी सुन्दरी लीला की आँखों से ओझल हो गयी। जैसे पूर्णज्ञान हो जाने पर माया विनष्ट हो जाती है, उसी तरह वह भी कहीं चली गयी। तदुपरान्त लीला शवरूपी अपने पति के मुख को देखकर अपनी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्रतिभा के प्रभाव से इस सत्य को समझ गयी कि 'ये मेरे पतिदेव संग्राम में राजा सिन्धु के हाथों मारे गये और अब इन वीर-लोकों को प्राप्त होकर सुखपूर्वक सो रहे हैं। मैं भी इस प्रकार श्रीदेवी की कृपा से सशरीर यहाँ आ पहुँची हूँ, अतः मेरे समान धन्य दूसरी कोई स्त्री नहीं है।' यों भलीभाँति विचार कर लीला अपने हाथ में एक सुन्दर चँवर लेकर डुलाने लगी।

श्री देवी जी ने कहा–लीले! वह राजा, वह वासनामयी लीला और उसके वे सभी भृत्य परस्पर पति-पत्नी एवं स्वामी-सेवक के भाव के अनुकूल ही एक-दूसरे को देखते हैं-जैसे 'यह मेरी स्वाभाविक भार्या है। यह मेरी स्वाभाविक सखी है। यह मेरी स्वाभाविक रानी है और यह मेरा स्वाभाविक नौकर है।' परंतु इस आश्चर्यमय वृत्तान्त को पूर्णरूप से केवल तुम, मैं और यह लीला-ये तीन ही जान सकेंगे। अन्य किसी के लिये भी इसका जानना असम्भव है। इसलिये जो ज्ञातव्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं अथवा जिन्होंने परम धर्म का आश्रय ग्रहण कर लिया है, वे ही आतिवाहिक अर्थात् ब्रह्मादि लोकों को प्राप्त होते हैं। दूसरों के लिये वह दुर्लभ है। महाप्रलय के अवसर पर जब सभी पदार्थों का विनाश हो जाता है, उस समय केवल अनन्त चेतनाकाशस्वरूप शान्त सद्ब्रह्म ही शेष रहता है और जीवात्मा चेतनरूप होने के कारण 'मैं तेजःस्वरूप सद्ब्रह्म का अंश हूँ, यों अनुभव करता है, जैसे तुम स्वप्नावस्था में आकाश गमन आदि का अनुभव करती हो। तदनन्तर तेजोंऽशरूप वह जीवात्मा स्वयं ही अपने में स्थूलत्व लाभ करता है। फिर वह स्थूलत्व ही यह ब्रह्माण्ड कहा जाता है, जो असत्य होते हुए भी सत्य सा प्रतीत होता है। उस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत स्थित वह ब्रह्म यों समझता है कि 'यह ब्रह्मा मैं ही हूँ।' तब फिर वह अपने आप मनोराज्य की सृष्टि करता है। वही मनोराज्य यह जगत् है। उस प्रथम सृष्टि में जो संकल्पवृत्तियाँ जहाँ जिस रूप में विकसित हुईं, वे वहाँ उसी रूप में आज भी निश्चल भाव से स्थित हैं। प्रलयकाल में भी विश्वरूप परमात्मा को सम्पूर्ण वस्तुओं से शून्य कहना युक्त नहीं। भला, सुवर्ण कटक-कुण्डल आदि स्थानों को छोड़कर कैसे रह सकता है। अर्थात् जैसे सुवर्ण कटकादि में ओतप्रोत है, उसी तरह परमात्मा समस्त पदार्थों में व्याप्त है।

यद्यपि पृथ्वी आदि दृश्यप्रपञ्च आकाशरूप है, तथापि सृष्टि के प्रारम्भ में जो जहाँ जिस रूप में विकसित हुआ, वह आज तक भी वहाँ उसी रूप में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वर्तमान है। अपनी स्थिति से विचलित होने में समर्थ न हो सका। वस्तुतः तो सृष्टि के आदि में यह जगत् उत्पन्न ही नहीं हुआ था। यह जो कुछ अनुभव हो रहा है वह तो चिदाकाशरूप जीवात्मा के संकल्प का विकास है। इसे स्वप्नकाल में घटित हुए स्त्री प्रसंग की भाँति कल्पित ही समझना चाहिये। सृष्टि के आदि में चिदाकाशस्वरूप जीवात्मा आकाश का संकल्प करने के कारण आकाशरूपता को और काल का संकल्प करने के कारण कालरूपता को प्राप्त होता है। जैसे स्वप्न में पुरुष अपने में ही जलता का दर्शन करता है, उसी तरह जीवात्मा जल का संकल्प करने के कारण जलवत् स्थित होता है। स्वप्न की भाँति जीवात्मा उस-उस रूप को प्राप्त होता है और जैसा होता है, वैसा ही वह ज्यों-का-त्यों स्थित रहता है; क्योंकि चेतन के चमत्कार अर्थात् माया की चतुरता से यह प्रपञ्च असत होते हुए भी सत् सा दीख पड़ता है। जैसे स्वप्न, कल्पना और ध्यान में आयी हुई वस्तुएँ असत् होती हैं, उसी तरह आकाशत्व, जलत्व, पृथिवीत्व, अग्नित्व और वायुत्व-ये सभी असत् हैं-ऐसा चेतन स्वयं अपने अंदर अनुभव करता है। अब मृत्यु के पश्चात् कर्मफल के अनुभव करने का जो क्रम है, उसे सम्पूर्ण संशयों की शान्ति के लिये सुनो। वह मरने पर कल्याणकारी होता है। जगत् में अपने कर्मों की देश, काल, क्रिया और द्रव्यजनित शुद्धि और अशुद्धि ही मनुष्यों की आयु के अधिक और न्यून होने में कारण होती हैं। अपने कर्मरूप धर्म का ह्रास होने पर मनुष्यों की आयु क्षीण हो जाती है और उस धर्म के बढ़ने पर आयु की वृद्धि होती है। बाल्यावस्था में मृत्यु प्रदान करने वाले कर्मों को करने से बालक, युवावस्था में मृत्युदायक कर्मों से नौजवान और बुढ़ापे में मृत्युप्रद कर्मों के करने से वृद्ध मृत्यु को प्राप्त होता है। जो अपने धर्म का शास्त्रानुकूल आरम्भ करके पीछे उसका अनुष्ठान करता रहता है, वह श्रीमान् पुरुष शास्त्रवर्णित आयु का भागी होता है। यों अपने कर्मों के अनुसार ही जीव को अन्तिम दशा प्राप्त होती है और उस मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हुआ जीव मर्मघातिनी वेदनाओं का प्रत्यक्ष अनुभव करता है।

प्रबुद्ध लीला ने पूछा-चन्द्रवदनी देवी! मरण सुखरूप है अथवा दुःखरूप? और मरने के बाद फिर क्या होता है ? इस प्रकार मरण का वृत्तान्त मुझसे संक्षेप में कहिये।

तेतीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चौतीसवाँ सर्ग

पदार्थों की नियति

वसिष्ठजी बोले हे राम! श्री देवी जी ने कहा--लीले! शरीरान्त के समय मुमूर्षु पुरुष तीन प्रकार के होते हैं-मूर्ख, धारणाभ्यासी और युक्तिमान्। इनमें धारणाभ्यासी दृढ़तापूर्वक धारणा का अभ्यास करके शरीर को छोड़कर सुखपूर्वक प्रयाण करता है। उसी प्रकार युक्तिमान् भी सुखपूर्वक ही गमन करता है, परन्तु जिसने न तो धारणा का अभ्यास किया है और न युक्ति ही प्राप्त की है, वह मूर्ख पुरुष अपने मृत्यु समय में विवश होकर दुःख को प्राप्त होता है। वह विषयी पुरुष वासना के आवेश से विवशता का अनुभव करता हुआ जड़ से कटे हुए कमल की तरह अत्यन्त दीनता को प्राप्त हो जाता है। जिसकी बुद्धि शास्त्राभ्यास द्वारा संस्कृत नहीं है एवं जो दुष्टों की संगति का सेवन करता है, वह मरने पर अग्नि में गिरे जीव की भाँति अन्तर्दाह का अनुभव करता है। जब उस अज्ञानी पुरुष के कण्ठ से घुरघुराहट की आवाज निकलने लगती है, आँखों की पुतलियाँ उलट जाती हैं, शरीर का रंग विकृत हो जाता है, उस समय उसकी बड़ी दयनीय दशा हो जाती है। उसकी आँखों के सामने घना अन्धकार छा जाता है, जिससे उसे कुछ सूझ नहीं पड़ता। बोलने में असमर्थ होने के कारण वह स्वयं जड़वत् हो जाता है। जैसे सूर्य के अस्ताचल का आश्रय लेने पर क्रमशः प्रकाश की मन्दता के कारण दिशाएँ धुँधली हो जाती हैं, उसी तरह उसकी सारी इन्द्रियों की शक्तियाँ क्षीण हो जाने के कारण वे अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाती हैं। विशेषरूप से मोह के वशीभूत हो जाने से उसके मन की कल्पनाशक्ति नष्ट हो जाती है, जिससे वह अविवेकवश मोह के अगाध सागर में डूबता उतराता रहता है। ज्यों ही उसे थोड़ी-सी मूर्च्छा हुई, त्यों ही प्राणवायु की गति बंद हो जाती है और जब सभी प्राणों की क्रिया रुक जाती है, तब उसे घोर मूर्च्छा आ घेरती है। इस प्रकार परस्पर एक-दूसरे के सहयोग से पुष्टता को प्राप्त हुए मोह, संवेदन और भ्रम से जीव पाषाणवत् जड़ता को प्राप्त हो जाता है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही यह नियम चला आ रहा है।

प्रबुद्ध लीला ने पूछा-देवि! यद्यपि यह शरीर आठ अंगों (सिर, दो हाथ, दो चरण, गुह्यस्थान, नाभि और हृदय) से सम्पन्न है तो भी इसे व्यथा, विमोह,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मूर्च्छा, भ्रम व्याधि और अचेतना-ये सब कष्ट प्राप्त होते हैं। इसका क्या कारण है ?

श्री देवीजी ने कहा-भद्रे! स्पन्दनशक्ति-सम्पन्न ईश्वर ने सृष्टि के आदि में ही सुख-दुःखादि-प्रारब्धभोगरूप कर्म का इस रूप में विधान कर दिया है कि मदंशभूत जीव को उसकी आयु के इस इस समय में उसके कर्मानुसार इतने काल तक भोगने योग्य इस प्रकार का सुख-दुःख प्राप्त होगा। जिस समय नाड़ियों में प्रविष्ट हुई वायु बाहर नहीं निकलती और निकली हुई उनमें प्रवेश नहीं करती, उस समय उनका स्पन्दन रुक जाता है। तब नाड़ीशून्य हो जाने के कारण प्राणी की मृत्यु हो जाती है। जब वायु न प्रवेश करती है और न बाहर ही निकलती, तब शरीर से नाड़ियों के वियुक्त हो जाने के कारण लोग यों कहने लगते हैं कि 'यह मर गया।'

ज्ञानवृत्ति का वेदनरूप स्वभाव बाधारहित है, इसलिये जन्म-मरण उस स्वाभाविक ज्ञानवृति से पृथक नहीं हैं। (अर्थात जब तक मनुष्य में अविद्या रहेगी, तब तक उसे जन्म-मरण से छुटकारा नहीं मिल सकता, क्योंकि ये उसके लिये स्वाभाविक ही हैं। केवल मुक्ति होने पर ही उनसे छुटकारा मिलता है।) जैसे लंबी लता के बीच-बीच में गाँठें होती हैं, उसी तरह चेतन सत्ता के भी मध्य-मध्य में जन्म-मरण होते हैं। वस्तुतः तो चेतन पुरुष न कभी जन्मता है और न कभी मरता है। पुरुष स्वप्नकाल के सम्भ्रम की भाँति केवल भ्रम से ही इन जन्म-मरणादि को देखता है, क्योंकि चेतनामात्र ही तो पुरुष है, फिर वह कब और कहाँ नष्ट हो सकता है। यदि पुरुष (जीवात्मा) को चेतन से अतिरिक्त मानें तो बताओ, दूसरा कौन पुरुष हो सकता है ? अतः चेतनामात्र ही पुरुष है-यही बात ठीक है। भला, बताओ तो सही-क्या आज तक इस संसार में किसी ने किसी के चेतन को किसी प्रकार मरा हुआ देखा है ? अरे! यह तो सरासर असम्भव है, क्योंकि लाखों शरीर मरते देखे जाते हैं और चेतन अविनाशी ही बना रहता है। यों वास्तव में न तो कोई मरता है और न कोई जन्म ही लेता है। केवल जीव वासनारूपी आवर्त के गड्डों में गोते लगाता रहता है। जगदभ्य से भीत होकर जीव जब अभ्यास द्वारा भ्रमवश प्रतीत होते हुए जगत-प्रपञ्च को 'यह वास्तव में हुआ ही नहीं है'-यों सम्यक्रूप से समझ लेता है, तब पूर्णतया वासनाओं से रहित होकर विमुक्त हो जाता है। इस प्रकार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

विमुक्त आत्मस्वरूप ही यहाँ सत्य वस्तु है। इसके अतिरिक्त सब असत् है।

प्रबुद्ध लीला ने पूछा–देवेशि! प्राणी जिस प्रकार मरता है और फिर वह जैसे पैदा होता है, उस प्रसंग को ज्ञान की वृद्धि के लिये आप पुनः मुझसे विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

श्री देवी जी ने कहा–लीले! नाड़ियों की गति रुक जाने पर जब प्राणी प्राण वायुओं की विपरीत स्थिति को प्राप्त होता है, तब उसकी चेतना शान्त सी हो जाती है। इसी को मरण कहते हैं। वास्तव में चेतन सर्वथा शुद्ध और नित्य है। उसकी न तो उत्पत्ति होती है और न उसका विनाश ही होता है। वह स्थावर, जंगम, आकाश, पर्वत, अग्नि और वायु–सभी में स्थित है। केवल प्राण वायु की गति अवरुद्ध हो जाने से जब शरीर की चेष्टा पूर्णरूप से शान्त हो जाती है, तब यह शरीर, जिसका दूसरा नाम 'जड़' है, 'मृत' कहा जाता है। जब यह शरीर शवरूप में परिवर्तित हो जाता है और प्राण वायु अपने कारणरूप महावायु में विलीन हो जाती है, तब वासनारहित चेतन अपने आत्मतत्त्व में स्थित हो जाता है। फिर पुनर्जन्म की बीजभूत वासना से युक्त एवं सूक्ष्म शरीर वाला वह व्यष्टिचेतन 'जीव' नाम से पुकारा जाता है। शरीर के मरने के बाद लौकिक व्यवहार करने वाले लोग उस जीव को 'प्रेत' शब्द से पुकारते हैं और चेतन गन्ध मिली हुई वायु के समान वासनाओं से संयुक्त हो जाता है। जब वह जीव इस शरीरादि दृश्य का परित्याग करके देहान्त का दर्शन करने के लिये उत्सुक होता है, उस समय उसकी स्वप्न एवं मनोराज्य की भाँति नाना आकृतियाँ हो जाती हैं। फिर उसी प्रदेश के अंदर वह पूर्वजन्म की तरह स्मरण शक्ति से युक्त हो जाता है और तभी मरणकाल की मूर्च्छा के पश्चात् वह अन्य शरीर को देखने लगता है।

लीले! मरने के बाद जीव को जो प्रेत कहा जाता है, वे प्रेत छः प्रकार के होते हैं। उनके इस भेद को सुनो–साधारण पापी, मध्यम पापी, स्थूल पापी, सामान्य धर्म वाले, मध्यम धर्म वाले और उत्तम धर्मात्मा। इनमें से किसी के दो भेद और किसी के तीन भेद भी होते हैं। कोई पाषाणतुल्य हृदय वाला एवं अत्यन्त मूढ़ महापातकी अपने अन्तःकरण में एक वर्ष तक स्मृति–मूर्च्छा का अनुभव करता है। तत्पश्चात् समयानुसार चेतना को प्राप्त होकर वासनारूपी स्त्री के उदर से उत्पन्न हुए अक्षय नारकीय दुःखों का चिरकाल तक अनुभव करके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

एक महान् दुःख से दूसरे दुःख को प्राप्त होता हुआ सैकड़ों योनियों का भोग करता है। तब कभी स्वप्न सम्भ्रमरूपी संसार में शान्ति को प्राप्त होता है अर्थात् उसके कर्मफल भोगों की निवृत्ति होती है। अथवा मरण-मूर्च्छा के अन्त में उसी क्षण वे हृदय स्थित वृक्षादि स्थावर योनियों का ही, जो सैकड़ों जड़ दुःखों से व्याप्त हैं, अनुभव करते हैं और फिर चिरकाल तक नरक में अपनी-अपनी वासनाओं के अनुरूप दुःखों का भोग करके भूतल पर नाना योनियों में जन्म धारण करते हैं। (यह महापातकी की गति का वर्णन है।) अब जो मध्यम पापी है, उसकी गति का वर्णन करते हैं। वह मृत्युकालिक मूर्च्छा के अनन्तर कुछ काल तक पाषाण-तुल्य जड़ता का अनुभव करता है। तत्पश्चात् जब उसे चेतना प्राप्त होती है, तब वह कुछ काल के बाद अथवा उसी समय तिर्यगादि क्रम से नाना योनियों का भोग करके संसार को प्राप्त होता है। जो कोई साधारण पापी होता है, वह मरते ही अपनी वासनाओं के अनुसार प्राप्त हुए अविकल मानव देह का अनुभव करता है। उसी क्षण पूर्वसंस्कार के अनुसार उसकी स्मृति का उदय होता है और स्वप्न एवं मनोराज्य की भाँति उसके अनुभव में वैसी ही वस्तुएँ आने लगती हैं। जो सर्वश्रेष्ठ महान् पुण्यात्मा हैं, वे मृत्युजनित मूर्च्छा के पश्चात् पूर्व वासना की स्मृति से स्वर्गलोक तथा विद्याधर लोक के सुख का भली भाँति उपभोग करते हैं। फिर पुण्यफल भोग के अनन्तर अपने कर्मान्तर अर्थात् पापकर्म के अनुसार प्राप्त हुए फल को अन्यत्र भोगकर मनुष्यलोक में धनी सत्पुरुषों के घर में जन्म धारण करते हैं। जो मध्यम धर्मात्मा होते हैं, वे मरणमूर्च्छा के बाद आकाशवायु से आन्दोलित होकर उत्तम वृक्षों और पल्लवों से सुशोभित उपवन में जाते हैं और वहाँ अपने पुण्य कर्मों का फल भोग लेने के बाद मनुष्यों के हृदय में प्रविष्ट होते हैं। फिर रेतः सिञ्चन के समय जन्म क्रमानुकूल स्त्रियों के गर्भ में स्थित होते हैं।

इस प्रकार प्रेत मृत्युजनित मूर्च्छा के अनन्तर अपनी वासना के अनुसार अपने हृदय में इस व्यवस्था का क्रमशः अथवा क्रमरहित ही अनुभव करते हैं। वे यह जानते हैं कि 'हम लोग पहले मृत्यु को प्राप्त हुए। तदनन्तर बन्धुओं द्वारा क्रमशः पिण्डादि दान करने से हम पुनः आतिवाहिक-शरीरधारी होकर उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् हाथों में कालपाश लिए हुए ये यमदूत आ पहुँचे। अब इन यमदूतों द्वारा ले जाया जाता हुआ मैं क्रमशः यम-पुरी को जाऊँगा।' उन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्रेतों में जो उत्तम पुण्यात्मा होता है, वह यों समझता है कि 'ये दिव्य एवं मनोहर विमान और उपवन मुझे बारंबार अपने शुभ कर्मों से ही प्राप्त हुए हैं।' इसके विपरीत पापी पुरुष यों अनुभव करता है कि 'ये जो बरफ की चट्टानें, काँटे, गड्ढे और तलवार की धार के समान तीखे पत्तों से पूर्ण वन मुझे प्राप्त हुए हैं, ये मेरे अपने ही दुष्कर्मों के फलरूप से उत्पन्न हुए हैं।' मध्यम पुण्यात्मा जानता है कि, यह मार्ग, जो मेरे सामने उपस्थित है, इसमें आनन्द पूर्वक पैदल चला जाता है। शीतल और हरी घास उगी हुई है। वह घनी छाया से आच्छादित है और स्थान-स्थान पर बावलियों से युक्त है।' मध्यम पापी यों अनुभव करता है कि 'यह मैं यमपुरी में पहुँच गया। ये प्राणियों के राजा यमराज हैं और यहाँ मेरे कर्मों के विषय में यह विचार किया गया।' इस प्रकार संसार का विशाल अंश, जो सत्य से प्रतीत होने वाले सम्पूर्ण पदार्थों और उनकी क्रियाओं से प्रकाशमान है, प्रत्येक को प्राप्त होता है। आकाश की तरह स्वरूप रहित वह प्रपञ्च देश, काल और क्रिया के विस्तार से देदीप्यमान होते हुए भी कुछ नहीं है, किंतु सर्वारोपशून्य एवं विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न आत्मा ही सब कुछ है।

(यमपुरी में पहुँचने पर जीव कहता है-) अब मुझे यमराज का आदेश प्राप्त हो गया है, अतः मैं अपने कर्मों का फल भोगने के लिये शीघ्र ही यहाँ से उत्तम स्वर्गलोक अथवा नरक में जाता हूँ। यमराज ने मेरे लिये जिस स्वर्ग अथवा नरक का निर्देश किया था, मैंने उसका भोग कर लिया तथा यमनिर्दिष्ट उन-उन योनियों में भी भटक चुका। अब मैं पुनः संसार में जन्म ग्रहण करूँगा। यह मैं धान का अंकुर होकर उत्पन्न हुआ। फिर क्रमशः बढ़कर फलरूप में स्थित हुआ।' इस प्रकार शरीराभाव के कारण जब उसकी सारी इन्द्रियाँ भली-भाँति सोयी रहती हैं, उसी अवस्था में वह भुक्तान्नादि द्वारा पुरुष के शरीर में प्रवेश करके वीर्यरूप में परिणत हो जाता है। वही वीर्य जब माता की योनि में पड़ता है, तब वह गर्भ का रूप धारण करता है। वही गर्भ अपने पूर्व जन्म के कर्मानुसार उत्तम अथवा निकृष्ट प्रारब्ध से युक्त हो संसार में मनोहर आकृति वाले बालक के रूप में जन्म लेता है। कुछ काल के बाद वह चन्द्रमा के समान मनोहर तथा कामोन्मुख जवानी का अनुभव करता है। तत्पश्चात् विकसित कमल पर गिरे हुए तुषाररूपी वज्र की तरह उसे वृद्धावस्था आ घेरती

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Jammu Trust Study Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

है। उस बुढ़ापे में भी किसी न किसी व्याधि के निमित्त से ही उसका मरण होता है। पुनः उसे मृत्युजनित मूर्च्छा प्राप्त होती है। पुनः स्वप्न की भाँति बन्धुओं द्वारा दिये गये पिण्डादि द्वारा सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति होती है और फिर वह यमलोक को जाता है। वहाँ से पुनः नाना योनियों की प्राप्ति होने पर उनमें वह भ्रमण क्रम का ही बारंबार अनुभव करता है। इस प्रकार इस वेगशाली परिवर्तन का वह तब तक पुनः पुनः अनुभव करता रहता है, जब तक उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो जाती।

प्राणियों के शरीरों में जो छिद्र स्थान हैं, उनमें प्रविष्ट हुई वायु जब अंगों में चेष्टा उत्पन्न करती है, तब लोग कहते हैं कि यह जीवित है। परंतु ऐसी स्थिति सृष्टि के आदि में केवल जंगम प्राणियों में ही उत्पन्न हुई थी, इसी कारण ये वृक्ष आदि स्थावर प्राणी सचेतन होते हुए भी चेष्टाहीन हैं। जब जीवात्मा मनुष्यादि शरीररूप दूसरे नगर में पहुँचता है, तब वहाँ बुद्धि को चक्षु आदि इन्द्रिय गोलकों में ले जाकर उनके द्वारा बाह्य पदार्थों का अनुभव करता है-जैसे आकाश शून्यता से, पृथ्वी धारण शक्ति से और जल आप्यायन शक्ति से युक्त है। तात्पर्य यह कि जीवात्मा स्वेच्छा से जिसके लिये जैसा कल्पना करता है, वह वैसा ही अपने शरीर को जानता है। इस प्रकार सर्वव्यापी परमात्मा जंगमरूप से जंगम की और स्थावररूप से स्थावर की कल्पना करता हुआ सबके शरीररूप से स्थित है। इसलिये जो जंगम जगत् है, उसे उसने अपनी कल्पना के अनुसार जैसा समझा था, वह आज भी उसी रूप में वर्तमान है। जैसे जिन वृक्ष, शिला, पेड़-पौधों और तृण आदि को स्थावर होने के कारण जड़ समझा गया था, वे आज भी वैसे ही स्थित हैं; क्योंकि न तो जड़ता ही कोई पृथक् वस्तु है और न चेतन ही। इन पदार्थों की सृष्टि, स्थिति और विनाश में कोई भेद नहीं है और न सत्ता सामान्य में ही कोई अन्त है अर्थात् सबमें सत्ता समान है। यथार्थ बात तो यह है कि वृक्षों और पर्वतों के अंदर जो उनकी जड़ता एवं नाम-रूप आदि भेद परिलक्षित होते हैं, वे जीवात्मा की बुद्धि द्वारा विहित हैं, वस्तुतः नहीं हैं। वही जीवात्मा स्थावरादि के भीतर 'मैं स्थावर हूँ' ऐसी बुद्धि से स्थित होने के कारण जंगम से भिन्न नाम और अभिमान का विषयभूत होकर वृक्षादि अन्य स्वरूपों से स्थित है। कृमि, कीट और पंतगों के अंदर संवित्-रूप से वर्तमान जीवात्मा ही उनकी बुद्धि का रूप धारण करता है

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और वही अनेकविध नाम-रूपों से व्यवहृत होता है। सभी स्थावर-जंगम अपने-अपने अनुभव में ही लीन हैं; परंतु जब वे एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, तब उनमें 'यह स्थावर है और यह जंगम है' यों संकेत की आवश्यकता पड़ती है। चेतन तो परमार्थरूप से स्थावर जंगम सभी में वर्तमान है, परंतु जंगम प्राणियों में वायु के प्रवेश करने से चेष्टाएँ होती हैं और स्थावरों में नहीं होतीं। जिस प्रकार विश्व के समग्र पदार्थों के स्वभाव का विकास होता है और जैसे वे असत्य होते हुए भी सत्य से प्रतीत होते हैं, वह सब वृत्तान्त मैंने तुम्हें बता दिया। अब उधर देखो, ज्ञात होता है, यह राजा विदूरथ मृत्यु को प्राप्त होकर तुम्हारे पति राजा पद्म के, जो पुष्पमालाओं से आच्छादित शव के रूप में स्थित हैं, हृदयान्तर्गत पद्मकोश में प्रवेश करने की इच्छा से जाना चाहता है।

प्रबुद्ध लीला ने पूछा-देवेश्वरि! बताइये, यह राजा विदूरथ किस मार्ग से उस शव मण्डप में जाने का इच्छुक है ? जिससे हम दोनों भी उसे देखती हुई ही उस उत्तम मण्डप में शीघ्र ही जाएँ।

श्री देवी जी ने कहा-लीले! 'मैं दूरवर्ती दूसरे लोक को जाता हूँ' इस भावना से यह चिन्मय जीवात्मा मनुष्य वासना के अंदर स्थित मार्ग का अवलम्बन करके जाता है। यों तुम्हें जिस मार्ग से जाना अभीष्ट हो, उसी मार्ग से हम दोनों जाती हैं; क्योंकि एक दूसरे की इच्छा का विघातन प्रेम-बन्धन का हेतु नहीं होता।

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-राघव! इस प्रकार श्रेष्ठ राजा की कन्या लीला के विशुद्ध मन में जब परमार्थ दृष्टिरूप पूर्वोक्त कथा के श्रवण से सारे संताप मिट गये तथा ज्ञानरूपी सूर्य का प्रसार हो गया, तब राजा विदूरथ चित्त के विलीन हो जाने के कारण जड़ अर्थात मृत्युकालिक मूर्च्छा के वशीभूत हो गया।

चौतीसवाँ सर्ग समाप्त

पैंतीसवाँ सर्ग

राजा विदूरथ का वासनामय यमपुरी में गमन

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-रघुनन्दन! इसी बीच राजा विदूरथ की आँखों की पुतलियाँ उलट गयीं। होंठ सूखकर श्वेत हो गये। उसके शरीर की सभी इन्द्रियों के मूर्च्छित हो जाने पर केवल सूक्ष्म प्राण ही शेष रह गया। मुख की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

छवि पुराने पीले पत्ते की कान्ति के समान क्षीण एवं पीली हो गयी। भौंरे के गुंजार के सदृश श्वासवायु की ध्वनि होने लगी। उसका मन महाप्रयाणकालिक मूर्च्छा के अन्धकूप में डूब गया। नेत्र आदि सारी इन्द्रियों की वृत्तियाँ अन्तर्लीन हो गयीं। इस प्रकार वह चेतनाशून्य हो गया। चित्रलिखित पुरुष सरीखे उसका आकारमात्र ही दीख पड़ता था। शिला पर खुदे हुए की भाँति उसके शरीर के सम्पूर्ण अवयव निश्चेष्ट हो गये थे। इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ ? जैसे आकाशचारी पक्षी गिरने के सनिकट पहुँचे हुए अपने निवासभूत वृक्ष को छोड़ देता है, उसी प्रकार प्राण ने स्वाधिष्ठित थोड़े से शरीरांश से चलकर राजा के शरीर का परित्याग कर दिया।

उस समय जैसे प्राणमयी ज्ञानवृत्ति वायु में स्थित सूक्ष्म गन्ध का अनुभव करती है, उसी प्रकार उन दोनों देवियों ने, जिन्हें दिव्यदृष्टि प्राप्त थी, आकाश मार्ग से जाते हुए उस जीव को देखा। फिर तो वे दोनों नारियाँ उसी जीवात्मा का अनुसरण करने लगीं-ठीक उसी तरह, जैसे दो भ्रमरियाँ वायु में मिली हुई गन्धकला का अनुगमन करती हैं। तदनन्तर दो घड़ी के पश्चात् जब मरण-मूर्च्छा शान्त हुई, तब जीवात्मा आकाश में सुगन्धयुक्त वायु के स्पर्श से प्रबुद्ध हो गया। उस समय उसने यमदूतों को, उनके द्वारा ले जाये जाते हुए अपने वासनामय शरीर को तथा बन्धुओं द्वारा किये गये पिण्डदान आदि से उत्पन्न हुए अपने स्थूल शरीर को भी देखा। फिर उसी मार्ग से बहुत दूर तक आगे जाने पर वह यमराज की नगरी में जा पहुँचा, जो प्राणिसमुदाय से घिरी हुई थी और जहाँ उनके कर्मफलों पर विचार किया जा रहा था। वहाँ पहुँचने पर यमराज ने इसके कर्मों पर विचार करके यह आदेश दिया कि 'यह सदा निर्मल पुण्य कर्मों का ही अनुष्ठान करता रहा है। इसने कभी भी पापकर्म नहीं किया है। साथ ही सरस्वती देवी के वरदान से इसके पुण्यों की विशेषरूप से वृद्धि हुई है। इस उपर्युक्त बात को समझकर तुम लोग इसे छोड़ दो और यह अपने पूर्वजन्म के शरीर में, जो शवरूप में पुष्पों से आच्छादित मण्डपाकाश में वर्तमान है, वहाँ जाकर प्रवेश करे।' यों आदेश पाने पर यमदूतों ने उसे आकाशमार्ग में लाकर छोड़ दिया। तदनन्तर वह जीवात्मा, लीला और सरस्वती-ये तीनों एक साथ आकाशमार्ग से उड़ते हुए आगे बढ़े। उस समय यद्यपि सरस्वती और लीला मूर्तिमती थीं, तथापि वह जीवात्मा उन्हें देख नहीं रहा था, जबकि वे उसे देख

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रही थीं। इस प्रकार वे दोनों उस जीवात्मा का अनुसरण करती हुई आकाश मण्डल को लाँघकर लोकान्तरों को पार करती हुई दूसरे ब्रह्माण्ड में जा पहुँचीं। पुनः शीघ्र ही वहाँ से निकलकर दूसरे ब्रह्माण्ड में गयीं। फिर उस भूमण्डल से चलकर वे दोनों संकल्परूपिणी देवियाँ उस जीवात्मा के साथ राजा पद्म के नगर में आयीं और वहाँ तुरंत ही स्वच्छन्दता पूर्वक लीला के अन्तःपुर के मण्डप में प्रविष्ट हुईं।

पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त

छत्तीसवाँ सर्ग

शरीर की असत्यता का कथन

श्री राम जी ने पूछा–ब्रह्मन्! जिसका शरीर मर चुका था, उस जीवात्मा को मार्ग का परिज्ञान कैसे हुआ ? और वह शव के निकटवर्ती मण्डप में कैसे पहुँचा।

श्री वसिष्ठ जी ने कहा–हे राघव ! उस जीव की अपनी वासना के अन्तर्गत शव की भावना विद्यमान थी, जिससे उसके हृदय में वह मार्ग आदि सब कुछ स्फुरित हो गया; फिर उसे उस गृह की प्राप्ति कैसे न हो। क्योंकि जैसे किसी अन्य स्थान में स्थित पुरुष दूर देशान्तर में रखे हुए अपने खजाने को अनवरत उसकी मानसिक भावना के कारण सदा सम्यक्रूप से देखता रहा है, उसी प्रकार सैकड़ों जन्मों के चक्कर में पड़ा हुआ भी जीव अपनी वासना के अंदर स्थित अपने अभीष्ट को देखता है।

श्री राम जी ने पूछा–भगवन् ! जिसके लिये पिण्डदान दिया ही नहीं जाता, उसमें पिण्डदानादि वासना का कारण तो है नहीं; फिर उस वासना से रहित स्वरूप वाला जीवन किस प्रकार शरीर को प्राप्त होता है ?

श्री वसिष्ठ जी ने कहा–रघुनन्दन ! बन्धुओं द्वारा पिण्ड दिया गया हो अथवा न दिया गया हो; परंतु यदि 'मैंने पिण्डदान किया है' ऐसी वासना हृदय में भली भाँति उत्पन्न हो जाय तो वह पुरुष पिण्डफल का भागी हो जाता है; क्योंकि अनुभूतियाँ बतलाती हैं कि जैसा चित्त होता है, वैसा ही वह प्राणी होता है। यह नियम जीवित अथवा मृत–किसी भी प्राणी में कहीं भी अन्यथा नहीं होता। पदार्थों की सत्यता उनकी भावना–वासना के अनुसार ही होती है और वह भावना कारण भूत पदार्थों से उत्पन्न होती है; क्योंकि जो स्वयं नित्य प्रकाश

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

स्वरूप है, एकमात्र उस ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरे किसी कार्य की उत्पत्ति कारण के बिना हुई हो, ऐसा तो महाप्रलय पर्यन्त न तो कहीं देखा गया और न इस विषय में कुछ सुना ही गया। जैसे स्वप्न में जीव विविध पदार्थों के रूप में कल्पित हुआ दीख पड़ता है, उसी तरह चेतन जीवात्मा ही उस वासना का रूप धारण करता है। वही कार्य-कारण भाव को प्राप्त होता है और वही निश्चल सा होकर स्थित है। देश, काल, क्रिया और द्रव्य के संयोग से भावना अर्थात् वासना का उदय होता है। वह वासना जिस (सत्य एवं असत्य) फलरूप विषय में उत्पन्न होती है, वही विषय दोनों में अधिक जयशील होता है। यदि धर्मदाता की वासना प्रवृत्त हुई हो तो उससे क्रमशः प्रेत की बुद्धि पूर्ण हो जाती है अर्थात् दाता की वासना के अनुसार प्रेत को अवश्य फल मिलता है। यों परस्पर की विजय के कारण इस विषय में जो अत्यन्त वीर्यशाली होता है, वही विजयी होता है; इसलिये उत्तम यत्न द्वारा शुभकर्मों का अभ्यास करना चाहिये।

पूर्व वर्णन के अनुसार लीला और सरस्वती देवी राजा पद्म के उस राज महल में जा पहुँची, जिसका भीतरी भाग अत्यन्त मनोरम था। चारों ओर पुष्पोपहार से व्याप्त होने के कारण वह वसन्त सा शीतल लगता था। वह उन नगर-निवासियों से युक्त था, जिनकी राजकार्य करने की तत्परता पूर्णरूप से शान्त हो गयी थी। वहाँ उन दोनों ने एक कमरे में रखे हुए शव को देखा, जो मन्दार और कुन्द पुष्प की मालाओं से आच्छादित था। उस शव के सिरहाने जल से पूर्ण उत्तम कलश आदि मांगलिक पदार्थ रखे थे। उस कमरे के दरवाजे और खिड़कियों की साँकलें बंद थीं और उसकी निर्मल दीवालें दीपक के प्रकाश के प्रशान्त हो जाने के कारण मलिन दीख पड़ती थीं। वह एक ओर सोये हुए लोगों के मुख से निकली हुई श्वास वायु से व्याप्त था।

तदनन्तर उन दोनों ने उस शव मण्डप में विदूरथ की शवशय्या के पार्श्व भाग में स्थित लीला को देखा, जो पहले मृत्यु को प्राप्त हो चुकी थी और पहले ही वहाँ आ गयी थी। उसके वेष, आचरण, शरीर और वासनाएँ-सभी पहले के ही सदृश थे। उसकी आकृति पूर्वजन्म की सी थी। नख से शिखा तक उसके सारे अंग सुन्दर थे। उसका रूप और अंगों की चेष्टाएँ पूर्ववत् थीं। जैसे वस्त्र वह पूर्वजन्म में पहनती थी, वैसे ही वस्त्रों से उसका शरीर आच्छादित था और पहले के से आभूषणों से भी वह विभूषित थी। केवल इतना ही अन्तर था

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कि वह राजा पद्म के महल में स्थित थी। उस समय उसके हाथ में चँवर सुशोभित था, जिसे वह सुन्दर ढंग से राजा के ऊपर डुला रही थी। इस प्रकार उन दोनों (सरस्वती और प्रबुद्ध लीला) ने तो उस लीला को देखा, परंतु वह उन दोनों को न देख सकी। इसका कारण यह था कि वे दोनों सत्य संकल्प स्वरूपा थीं और वह उनकी भाँति सत्य संकल्प से आविर्भूत नहीं हुई थी।

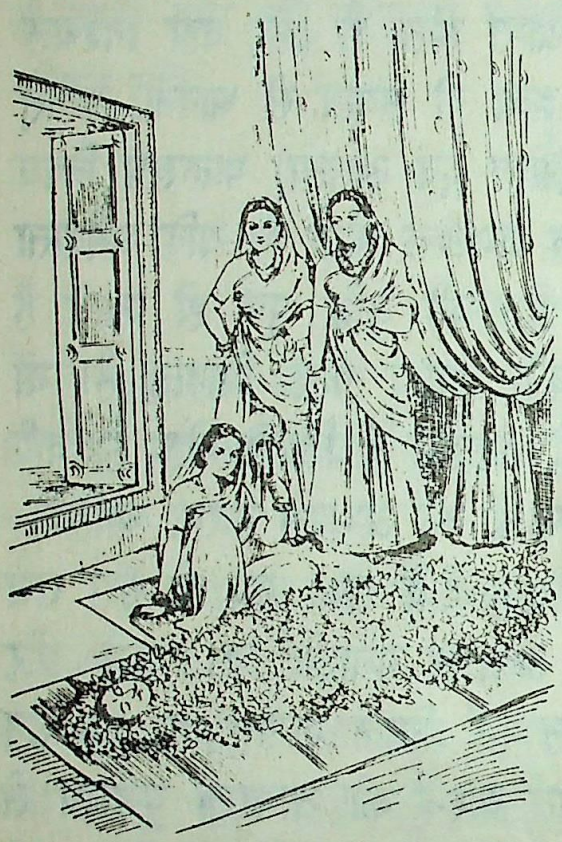

वत्स राम ! यह सारा जगत् आत्मा ही है। ऐसी दशा में देहादिकी कल्पना कहाँ से हो सकती है। तुम जो कुछ देख रहे हो, वह आनन्दरूप सद्ब्रह्म ही है और वही चेतन है। जिस पुरुष को स्वप्नकाल में 'मैं हरिन हूँ', ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई हो, वह क्या जागने पर अपने मृगस्वरूप का अभाव हो जाने पर स्वप्नकालिक मृग को खोजता है ? नहीं। जो अज्ञानी होता है, उसकी दृष्टि में सत्य का तिरोधान और असत्य का आविर्भाव शीघ्र होता है, परंतु रस्सी में उत्पन्न हुई सर्पभ्रान्ति के मिट जाने पर क्या पुनः उसमें सर्पभ्रम हो सकता है ? कदापि नहीं। इस प्रकार जो जन्म-मरणशील शरीर को ही आत्मा मानने वाले हैं, वे सभी अज्ञानी स्वप्न-तुल्य इस मिथ्या सृष्टि का चिरकाल तक सत्य की तरह अनुभव करते रहते हैं। किंतु आत्मतत्त्व का यथार्थ ज्ञान होने से 'देह में आत्मबुद्धि करना भ्रममात्र ही है, यों उनकी उस भ्रान्ति का उपशम हो जाता है-ठीक उसी तरह, जैसे रस्सी का ज्ञान होने से उसमें उत्पन्न हुई सर्प बुद्धि नष्ट हो जाती है। वस्तुतः तो शरीर क्या था ? किसी की सत्ता थी ? कहाँ और किस तरह किसका विनाश हुआ ? परमार्थतः जो वस्तु थी, वही रह गयी, केवल अज्ञान मिट गया। जब रस्सी में उत्पन्न हुई सर्प बुद्धि की भाँति यह सारी प्रतीति भ्रान्तिमात्र ही है, तब उसके उत्पन्न होने पर क्या बढ़ गया और नष्ट होने पर क्या नष्ट हुआ ? अर्थात् उसके आने-जाने में कोई हर्ष-विषाद नहीं है।

श्री राम जी ने पूछा-प्रभावशाली गुरुदेव ! पद्म के राजमहल में पूर्व

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

लीला और नूतन लीला का समागम होने के पश्चात जो उस भवन के निवासी थे, वे लीला की सत्य संकल्पता के कारण यदि उसे देखते हैं तो उसके बाद उसे क्या समझते हैं ?

श्री वसिष्ठ जी ने कहा-राघव ! उस समय वे लोग ऐसा जानते हैं कि यहाँ ये दुखिया महारानी खड़ी हैं और उनकी यह कोई दूसरी सखी भी कहीं से आ गयी है। जैसे जाग जाने पर ज्ञान हो जाने से स्वप्नदृष्ट शरीर न जाने कहाँ विलीन सा हो जाता है, इसलिये वह असत्य ही है, वही दशा यहाँ इस पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर की भी है। (अर्थात् ज्ञान होने पर इसका भी विनाश होता है, अतः यह भी असत्य ही है।) स्वप्नभ्रान्ति अथवा मन की कल्पना में जो पर्वत आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं, वे सभी बुद्धिवृत्ति के अंदर उसी प्रकार विलीन हो जाते हैं। बुद्धिवृत्ति ही स्वप्न आदि पदार्थों की प्रतीति द्वारा पर्याप्त रूप से स्फुरित होती है, परंतु वही स्फुरित न होने पर उस स्वप्न के साथ एकता को प्राप्त होकर तद्रूप हो जाती है। जैसे जल और उसका द्रवत्व अथवा वायु और उसकी गति दो नहीं हैं, उसी प्रकार बुद्धिवृत्ति और स्वाप्निक पदार्थों में कभी भेद नहीं पाया जाता। उनमें जो भेद सा प्रतीत होता है, वही सबसे बढ़कर अज्ञान है। वही 'संसार' कहा गया है और वह संसार मिथ्या ज्ञान रूप ही है। सहकारी कारणों का अभाव होने पर भी स्वप्नकाल में बुद्धिवृत्ति और स्वप्नदृष्ट पदार्थों का भेद निरर्थक ही है। स्वप्न में जैसे असत् नगर की प्रतीति होती है, उसी तरह सृष्टि के आदि में असत् जगत् का भान होता है; जैसे स्वप्न असत् है, वैसे ही जाग्रत् भी असत् है; इसमें संशय नहीं है। जैसे जाग जाने पर स्वप्नदृष्ट पर्वत का तत्काल ही अभाव हो जाता है, उसी प्रकार तत्त्वज्ञान होने पर इस पाञ्चभौतिक संसार का श्रवण-मनन-निदिध्यासनादि क्रम से अथवा ईश्वरानुकम्पा से अभाव हो जाता है। ये सृष्टियाँ मिथ्या दृष्टियाँ ही हैं; क्योंकि ये मोहदृष्टियाँ हैं अर्थात् अज्ञान से इनका दर्शन होता है। जो माया रूप से प्रतीत होने वाले केवल संसार की भ्रान्ति है और जो स्वप्न की अनुभूतियाँ हैं, वे सभी अर्थशून्य हैं। भ्रम से जड़ संसार का दर्शन करने वाले पुरुष के मरणान्तकाल में स्वप्नानुभूति-सदृश जो ये सृष्टि की प्रत्यक्ष प्रतीतियाँ हैं, वे सब की सब यद्यपि आतिवाहिक शरीर में प्रवृष्ट हो चुकी हैं, तथापि भ्रमवश मृगतृष्णा की नदी के प्रवाह की भाँति मिथ्या प्रकट हुई सी प्रतीत होती

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हैं। वास्तव में तो वे मन के अंदर ही हैं।

इसी बीच में सरस्वती देवी ने मन की चेष्टा के समान विदूरथ के जीवात्मा को अपने सत्यसंकलप से पुनः शीघ्र ही अवरुद्ध कर दिया।

तब श्री सरस्वती देवी लीला से बोलीं–वत्से ! तुम अपने सत्यसंकल्पवश अत्यन्त निर्मल सूक्ष्म शरीर से युक्त दिखायी देती हो, इसलिये तुम्हारे ऊपर लोगों को आश्चर्य हो रहा है। बाले ! अपने शरीर के प्रति तुम्हारी जैसा वासना थी, तदनुरूप ही तुम्हें शरीर मिला है। इसी कारण पूर्वजन्म के रूप के समान ही तुम्हारा रूप प्रकट हुआ है; क्योंकि सब लोग अपनी वासना के अनुसार ही सब पदार्थों को देखते हैं। सिद्धसुन्दरि ! तुम सूक्ष्म शरीर से सम्पन्न हो, अतः तुम्हारा वह पूर्वजन्म का शरीर तुम्हें भूल गया है, इसी कारण उस पर तुम्हारी वासना नहीं रह गयी है। जिस ज्ञानी पुरुष की सूक्ष्म दृष्टि दृढ़मूल हो जाती है, उसका पाञ्चभौतिक शरीर दूसरों द्वारा देखा जाता हुआ भी सूक्ष्म ही है। आज हम लोग इस मण्डपाकाश में प्राप्त हुई हैं। इस समय प्रभातकाल होने पर मैंने इन दोनों दासियों को निद्रा से मोहित कर दिया है; अतः लीले ! आओ, तब तक हम दोनों अपने सत्यसंकल्प के विलास द्वारा इस लीला को अपना स्वरूप दिखलायें। अब हम लोगों का कार्य आरम्भ होना चाहिये।

छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त

सैंतीसवाँ सर्ग

राजा पद्म को पुनर्जीवन

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं–रघुनन्दन ! देवी सरस्वती ने ज्यों ही ऐसा विचार किया कि 'यह लीला तब तक हम दोनों को देखे', त्यों ही वे दोनों दीप्तिमती देवियाँ (सरस्वती और प्रबुद्ध लीला) वहाँ प्रकट हो गयीं। उनके प्रत्यक्ष होते ही विदूरथ पत्नी लीला की आँखें चोंधिया गयीं। उसने देखा कि वह घर उन देवियों के तेजःपुञ्ज से देदीप्यमान हो गया है। इस प्रकार उस प्रदीप्त गृह और अपने समक्ष लीला और सरस्वती–उन दोनों देवियों को उपस्थित देखकर वह बड़ी उतावली के साथ उठ खड़ी हुई और फिर उनके चरणों में पड़कर यों कहने लगी–'देवियो! आप जीवन प्रदान करने वाली हैं, आपकी जय हो। आप लोगों की सेविका मैं यहाँ पहले ही आ पहुँची हूँ। अब मेरे कल्याणोत्कर्ष के लिये आप दोनों का शुभागमन हुआ है।' उसके यों कहने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

पर यौवन के मद से मतवाली वे तीनों मानिनियाँ वहाँ आसनों पर विराजमान हुईं।

तब श्री सरस्वती देवी बोलीं-वत्से ! तुम इस देश में कैसे आयीं ? तथा मार्ग में अथवा कहाँ पर तुमने कौन सी आश्चर्यजनक घटना देखी ? तुम आदि से लेकर यह सारा वृत्तान्त वर्णन करो।

विदूरथ पत्नी लीला ने कहा-देवि ! उस समय विदूरथ के गृह प्रदेश में जब मैं मूर्च्छित हो गयी, तब परमेश्वरि ! उस मरण-मूर्च्छा के पश्चात् मैं क्या देखती हूँ कि मैं होश में आकर उठ बैठी हूँ और फिर शीघ्र ही आकाश मण्डल में उड़ चली हूँ। तत्पश्चात् उस भूताकाश में मैं वायुरूपी रथ पर सवार हो गयी हूँ। वही रथ मुझे इस घर तक ले आया है। देवि ! तब मैंने इस भवन को देखा, जो शवरूप राजा पद्म से सुशोभित था। उसके भीतर दीपक का प्रकाश फैल रहा था। यह अत्यन्त स्वच्छ और बहुमूल्य शय्या से युक्त था। तदनन्तर जब मैं अपने इन पतिदेव का अवलोकन करने चली, तब क्या देखती हूँ कि जिनका सारा अंग पुष्पों से आच्छादित है, वे राजा विदूरथ यहाँ उसी प्रकार सो रहे हैं, मानो पुष्पवन में वसन्त शयन कर रहा हो। देवेश्वरि ! तब मैंने यह सोचा कि 'ये संग्रामरूपी कार्य के अधिक परिश्रम से थक गये हैं, इसीलिये गाढ़ निद्रा में सो रहे हैं।' अतः मैंने इनकी यह निद्रा भंग नहीं की। इसके बाद ही आप दोनों देवियाँ इस स्थान पर पधारी हैं। मुझ पर अनुग्रह करने वाली देवि ! इस प्रकार मुझे जैसा अनुभव हुआ था, वह सब आपसे कह सुनाया।

तब श्री सरस्वती देवी बोलीं-लीले ! तुम दोनों के नेत्र बड़े सुन्दर हैं और चलने का ढंग हंस की चाल के समान मनोहर है। अच्छा, अब हम इस राजा को शवशय्या से उठाती हैं। यों कहकर सरस्वती देवी ने कमलिनी द्वारा बिखेरी गयी सुगन्ध की भाँति राजा के जीवात्मा को छोड़ दिया। तब वायु रूपधारी वह जीव राजा की नासिका के निकट गया और उसके नासारन्ध्र में प्रविष्ट हो गया-ठीक उसी तरह, जैसे वायु बाँस के छिद्र में प्रवेश करती है। उस समय वह अनन्त वासनाओं से युक्त था। फिर तो जैसे अनावृष्टि के कारण मुरझाया हुआ कमल अच्छी जलवृष्टि होने से पुनः विकसित हो जाता है, उसी तरह जीव के अंदर प्रवेश करने पर राजा पद्म का विवर्ण हुआ मुख पुनः पूर्ववत्

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कान्तिमान् हो गया। तदनन्तर उसके सारे अंग क्रमशः चेष्टाशील होकर सुशोभित होने लगे, जैसे पर्वत की लताएँ वसन्त को पाकर प्रफुल्लित हो जाती हैं। तब उसने अपने उन नेत्रों को, जिनकी पुतलियाँ निर्मल और चंचल थीं, खोल दिया। तत्पश्चात् वह बढ़ते हुए विन्ध्यपर्वत के समान अपने शरीर को शय्या से ऊपर उठाते हुए उठ बैठा और मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोला–'यहाँ कौन है ?' तब तक दोनों लीलाएँ उसके आगे उपस्थित होकर बोलीं–'महाराज ! आज्ञा दीजिये।' जब उसने दो लीलाओं को, जिनके आचार, आकार, रूप, मर्यादा, वचन, उद्योग, आनन्द और अभ्युदय सभी एक से थे, नम्रतापूर्वक अपने सामने खड़ी देखा, तब उनकी ओर ध्यान पूर्वक देखते हुए पूछा–'तुम कौन हो ? और यह कौन है तथा यह कहाँ से आयी है ?' यह सुनकर पूर्व लीला ने उससे कहा–'देव! मैं जो कुछ कहती हूँ, उसे सुनिये। मैं आपकी पूर्वजन्म की सहधर्मिणी रानी हूँ। मेरा नाम लीला है। अर्थसंयुक्त वाणी की तरह मैं सदा आपके सम्बन्ध से सुशोभित हूँ। यह दूसरी लीला भी आपकी रानी है। इसे मैं क्रीड़ावश आपके उपभोग के लिये ले आयी हूँ। आप इसकी रक्षा करें। स्वामिन् ! सिरहाने की ओर स्वर्ण सिंहासनपर बैठी हुई ये कल्याण-कारिणी सरस्वती देवी हैं। ये तीनों लोकों की जननी हैं। भूपाल ! हम लोगों के पुण्य बाहुल्य से ये साक्षात् यहाँ पधारी हैं। ये ही हम दोनों को परलोक से यहाँ लायी हैं।'

लीला की यह बात सुनकर राजा, जिसके नेत्र कमल के समान सुन्दर थे और शरीर पर लटकती हुई माला और वस्त्र सुशोभित थे, शय्या से उठ गया और सरस्वती के चरणों में पड़कर कहने लगा–'देवी सरस्वति ! आप सबको कल्याण प्रदान करने वाली हैं, आपको नमस्कार है। वरदायिनि ! मुझे मेधा, दीर्घायु और धन प्रदान कीजिये।' यों कहते हुए राजा के सिर पर सरस्वती देवी ने हाथ फेरते हुए कहा–'पुत्र ! तुम अपने अभीष्ट

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पदार्थों तथा राजमहल से पूर्णतया सम्पन्न हो जाओ एवं तुम्हारी सारी आपत्तियाँ और समस्त पाप बुद्धियाँ विनष्ट हो जायँ और तुम्हें प्रचुर मात्रा में अनन्त सुख की प्राप्ति हो। तुम्हारे राज्य में प्रजा सदा आनन्दित रहे तथा सम्पत्तियाँ स्थिर होकर सदा विकसित होती रहें।'

सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त

अड़तीसवाँ अध्याय

लीलोपाख्यान का प्रयोजन

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-रघुकुल भूषण राम ! सरस्वती देवी यों कहकर उस राजमहल में ही अन्तर्ध्यान हो गयीं। प्रातःकाल होने पर कमलों के विकसित होने के साथ ही सभी लोग निद्रा त्यागकर जाग पड़े। तदनन्तर क्रमशः राजा ने लीला का और लीला ने मृत्यु को प्राप्त होकर पुनरुज्जीवित हुए अपने प्रियतम राजा का महान् आनन्द के साथ बारंबार आलिंगन किया। उस समय उस राजसदन की विचित्र ही शोभा थी। उसके सभी निवासी आनन्द में निमग्न थे। वह जयध्वनि और मांगलिक पुण्याहवाचन के उच्च स्वर से निनादित हो रहा था। उसका आँगन राजपुरुषों से ठसाठस भरा था। प्रजाजनों द्वारा लाये जाते हुए उपहार परस्पर टकरा जाने से गिर जाते थे, जिससे उसकी समतल भूमि ऊँची-नीची हो गयी थी। उस उत्सव के अवसर पर मस्तक पर पुष्पमाला धारण किये हुए लोगों के आने-जाने से उसकी विशेष शोभा हो रही थी। वह मन्त्रियों, सामन्त राजाओं और नगरवासियों द्वारा बिखेरे गये मांगलिक पदार्थों से आच्छन्न था। उस समय 'पूर्व लीला दूसरी लीला रानी को एवं अपने पति महाराज पद्म को परलोक से ले आयी है' यों अनेकविध गाथाओं के रूप में लोग देश-देशान्तर में इसका गान करते थे। राजा पद्म ने अपने मरण आदि के वृत्तान्त को, जो संक्षेप में वर्णन किया गया था, सुनकर भृत्यों द्वारा लाये गये चारों सागरों के जल से स्नान किया। तत्पश्चात् ब्राह्मणों, मन्त्रियों और भूपालों ने उसका अभिषेक किया। उस समय पूर्व लीला, द्वितीय लीला और राजा पद्म-ये तीनों जीवन्मुक्त और महान् ज्ञान सम्पन्न हो गये थे। इस प्रकार पृथ्वी पति पद्म को अपने पुरुषार्थ के बल से तथा भगवती सरस्वती के प्रसाद से त्रिलोकी का वह श्रेय प्राप्त हुआ। तदनन्तर सराहनीय गुणों से युक्त राजा पद्म,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जिसे सरस्वती द्वारा उपदिष्ट ज्ञान के प्रभाव से भलीभाँति आत्मतत्त्व का बोध हो चुका था, दोनों लीलाओं के साथ वहाँ राज्य शासन करने लगा। अपने उस उत्तम राज्य का, जो प्रजाओं के नित्य अभ्युदय से निर्दोष, शास्त्रानुकूल होने से विद्वानों को भी मुग्ध करने वाला, समुचित, आत्महितकारी और सारी जनता के लिये संतोषप्रद था, चिरकाल तक पालन करके अन्त में वे श्रेष्ठ दम्पति (लीला और राजा पद्म) विमुक्त हो गये।

वत्स राम ! मैंने इस पवित्र लीलोपाख्यान का दृश्यरूप दोष की निवृत्ति के लिये तुमसे वर्णन किया। वस्तुतस्तु दृश्य सत्ता शान्त ही है। जब वह है ही नहीं, तब उसके लिये 'शमन' का प्रयोग करना उपयुक्त नहीं है; क्योंकि सत् अर्थात् विद्यमान के मार्जन के लिये ही प्रयास किया जाता है, असत् के लिये कभी नहीं। तत्त्वज्ञ पुरुष आकाश-सरीखे निर्मल ज्ञान से ज्ञेयस्वरूप दृश्य को ब्रह्म में विलीन समझकर आकाश के समान निर्मल बना रहता है। यदि कहो कि पृथ्वी आदि से रहित स्वतः सिद्ध स्वयम्भू सच्चिदानन्द ब्रह्म ने ही इस दृश्य की कल्पना की है तो उसने उसे अपने में ही सिद्ध किया है। चेतनाकाशरूप परमात्मा का अवभास ही 'जगत्' नाम से समझा जाता है। यह उस विशुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा के किसी एक अंश में स्थित है। यह सब कुछ जिस रूप में देखा गया था, वह ज्यों का त्यों अखण्डरूप से स्थित है। यह अनन्त सृष्टि माया से उत्पन्न होने के कारण माया ही है और माया कोई सत्यवस्तु नहीं।

निष्पाप राम ! जिस-जिस पुरुष को जिस समय जिस रूप से जिस-जिस पदार्थ की प्रतीति होती है, वह-वह पुरुष उसी समय उसी प्रकार उस-उस पदार्थ का पूर्णरूप से अनुभव करता है। जैसे विष को सदा अमृत ही समझते रहने से वह अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है, उसी तरह शत्रु के प्रति सदा मित्रभाव रखने से वह मित्र बन जाता है। इन पदार्थों के निजी स्वरूप की जैसी भावना की गयी, वह भावितस्वरूप ही चिरकाल के अभ्यास से स्वभाव बन गया। चेतन परमात्मा का स्वभाव ही विकासशील है। वह जैसे और जिस रूप में विकसित होता है, शीघ्र ही वैसा हो जाता है। इसमें उसका स्वभाव ही एकमात्र कारण है। इसी कारण दुखी पुरुष के लिये जो रात्रि कल्प के समान लंबी प्रतीत होती है, वही सुखी के लिये एक क्षण-सदृश लगती है-जैसे स्वप्न में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥ तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥

एक क्षण कल्प सा हो जाता है। उस क्षण भर के स्वप्न में मनुष्य यों देखता है कि अभी-अभी मेरी मृत्यु हो गयी, पुनः मैं पैदा हुआ और तरुण होकर युवावस्था में स्थित हूँ। फिर सौ योजन दूर चला गया हूँ। परंतु ध्यान द्वारा जिसका चित्त प्रक्षीण हो गया है अर्थात् जो निर्विकल्पसमाधि में स्थित है, उसके लिये न दिन है न रात्रि। परमात्मा के ध्यान में मग्न योगी की दृष्टि में न जगत् सत्य है न जगत् के पदार्थ ही। महाबाहो ! यह जगत्, जैसी उसके सम्बन्ध में भावना होती है, तदनुकूल ही प्रतीत होने लगता है-जैसे मधुर में निरन्तर कटुता की भावना करने से वह कटु सा लगने लगता है और कटु में मधुर की भावना करने से वह माधुर्य से युक्त सा अनुभूत होता है तथा शत्रु में मित्रबुद्धि रखने से वह मित्र एवं मित्र में शत्रुबुद्धि करने से वह शत्रु हो जाता है। जो शास्त्राध्ययन और जप आदि पदार्थ हैं, जिनका पहले अभ्यास नहीं किया गया है, उनकी भावना का अभ्यास करने से निश्चय ही समता प्राप्त होती है। नौकारोही अतएव भ्रमपीड़ित लोगों की भावना से पृथ्वी चलती हुई सी प्रतीत होती है; परंतु जो उस प्रकार के भावनाभ्रम से रहित हैं अर्थात् तट पर ही स्थित हैं, उन्हें वैसा अनुभव नहीं होता। जैसे स्वप्नद्रष्टा की भावना से स्वप्न में शून्य स्थान भी जनाकीर्ण प्रतीत होने लगता है, उसी तरह अज्ञानवश भावना से ही सर्वथा नीला आकाश कभी पीत और कभी शुक्ल सा अनुभूत होने लगता है तथा उत्सव आपत्ति-सरीखा विषाद जनक हो जाता है।

जैसे सुवर्ण के भीतर द्रवत्व वर्तमान है, परंतु वह दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी तरह परब्रह्म के अंदर यह सृष्टि स्थित है। जैसे स्वप्न में एक मनुष्य का दूसरे के साथ युद्ध हुआ, वह स्वप्नकाल में सत्य होते हुये भी जागने पर असत्य ही है, उसी तरह मायाकाश में स्थित यह स्वात्मारूप जगत् भी मायिक दृष्टि से सत् होते हुए भी तात्त्विक दृष्टि से असत् ही है; महाकल्प के अन्त और सृष्टि के आदि में यह जगत् सच्चिदानन्द स्वरूप ही है। पीछे यह असत् जगत् कारणत्व अर्थात परमात्मा को प्राप्त हो जाता है, परंतु वास्तविक परमात्मा किसी में लीन नहीं होता। इस ब्रह्मा के मुक्त हो जाने पर यदि उस परमात्मा की स्मृति से उत्पन्न दूसरे ब्रह्मा हों तो उनकी स्मृतिरूप ज्ञान से प्रकट हुई सृष्टि में ज्ञानमात्र ही स्थित है। जो जीवात्मा अभ्यास-वैराग्य आदि तीव्र साधनों से युक्त है, अतएव विषय भोगों से विचलित न होता हुआ मोक्षपर्यन्त एकाकार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

वृत्ति से रहता है, वही परमस्थिरता–मोक्ष को प्राप्त होता है। इस प्रकार सहस्त्रों सृष्टियों के बारंबार उत्पन्न होने, स्थित होने और नष्ट होने पर जीव समूहों में से किसी को न तो कोई वस्तु प्राप्त है और न अप्राप्त ही; क्योंकि जब पदार्थों की सत्ता है ही नहीं, तब फिर उन्हें प्राप्त–अप्राप्त कैसे कहा जा सकता है। अतः यह सब कुछ आवरणरहित शान्तस्वरूप सच्चिदानन्द परमात्मा ही है।

जैसे पत्र, पुष्प, फल और शाखा आदि अंशों से युक्त वृक्ष एकरूप से भली भाँति स्थित है, उसी तरह अनन्त एवं सर्वशक्तिमान् परमात्मा एकरूप से ही लोगों में व्याप्त है। जब अनादि परमपदस्वरूप परमात्मा का ज्ञान हो जाता है, तब प्रमाता, प्रमेय और प्रमाण आदि मायिकरूप वाले जगत् का विस्मरण हो जाता है। फिर किसी को कभी उसकी स्मृति नहीं होती। जैसे स्वच्छ जल चाहे निश्चल हो अथवा लहरियों के थपेड़े खा रहा हो–दोनों अवस्थाओं में जल के स्वरूप में भेद न होने से वह एकरूप ही है, उसी प्रकार दिशा और कालरूप में व्यक्त होने पर भी परमात्मा सदा एकरस, अनादि और विशुद्ध है। वह सम्पूर्ण विकारों के उदय और नाश से रहित होने के कारण अज्ञान का प्रकाशक, आदि, मध्य और अन्त से परे तथा एकरूप से स्थित है। केवल विशुद्ध ज्ञानरूप ब्रह्म की स्वरूपभूता विभा द्वैत और ऐक्यविषयक संकल्प–विकल्प करने के कारण 'अहम्, त्वम्' इत्यादि जगत् के रूप से प्रतीत होती है–ठीक उसी तरह, जैसे आकाशमण्डल में उसकी अपनी शून्यता परिलक्षित होती है।

अड़तीसवां सर्ग समाप्त

उन्तालीसवाँ सर्ग

सृष्टि की असत्यता

श्री वसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! ज्ञानवान् पुरुष सब प्रकार की सारी भ्रान्तियों को सच्चिदानन्दघन परमात्मा के ही अंदर सदा स्थित जानता है, इसलिए वास्तव में सब सर्वस्वरूप अजन्मा परमात्मा ही है। इस तरह परब्रह्म परमात्मा की सर्वरूपता ही उसकी समता है। शब्दों और अर्थों का सारा ज्ञान ब्रह्म ही है, ब्रह्म से भिन्न नहीं। जैसे कंगन का रूप सुवर्ण से और तरंग की सत्ता जल से कभी पृथक् नहीं हो सकती, उसी प्रकार जगत् परमेश्वर से भिन्न नहीं है। यह ईश्वर ही जगत् रूप है। ईश्वर में उससे पृथक् सत्ता नहीं है। जैसे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

स्फटिकशिला के भीतर भेद न होने पर भी उसमें प्रतिबिम्बित वन-पंक्तियों का भेदपूर्वक समावेश प्रतीत होता है (प्रतिबिम्बित वस्तुएँ अपनी आधारभूत शिला से भिन्न न होने पर भी जैसे भिन्न-सी प्रतीत होती हैं), उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन परब्रह्म में अभिन्न रूप से स्थित जगत् और अहं की अज्ञान के कारण भेदयुक्त प्रतीति होती है। अथवा जैसे शिल्पी शिला को खोदकर उसमें विभिन्न मूर्तियों का निर्माण करता है, वे मूर्तियाँ उस शिला से भिन्न न होने पर भी भ्रमवश भिन्न-सी जान पड़ती है, उसी प्रकार मनरूपी शिल्पी ने चिद्घन परमात्मा में जिस जगत् और अहं की कल्पना की है, वह उससे भिन्न नहीं है, तथापि अज्ञानवश भेद की प्रतीति होती है। वास्तव में वह चिद्घनरूप ही है। जैसे तरंगशून्य जल के भीतर तरंगें स्थित हैं, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा में सृष्टि-शब्दार्थ से शून्य सृष्टियाँ स्थित हैं। वास्तव में न तो सृष्टि में परब्रह्म है और न परब्रह्म में सृष्टि ही है।

जैसे वायु अपने में ही स्पन्द की कल्पना करती है, उसी प्रकार परमार्थ चिन्मय ब्रह्म अपनी ज्ञानवृत्ति से अपने ही गूढ़ स्वरूप को प्रपञ्च के रूप में अभिव्यक्त कर देता है। वास्तव में वह उसका अपना चिन्मय स्वरूप ही होता है। शब्द-तन्मात्रा, जो पहले अपने कारण में लीन थी, सर्वशक्तिमयी माया के चमत्कार से युक्तरूप को धारण कर चित्त से अन्तःकरण में उठने वाले संकल्प की भाँति जब चिन्मय आकाश के समान स्फुरित होती है, तब उसी को आकाश का आविर्भाव कहते हैं। वही (आकाश भाव को प्राप्त हुआ ब्रह्म ही) स्वयं अपने में अपनी ही सत्तारूप वायुभाव का अनुभव करता है, जिसके भीतर स्पर्श तन्मात्रा का संस्कार उद्बुद्ध होता है। उसकी अनुभूति वैसी ही है, जैसे पवन अपने में स्पन्दन का अनुभव करता है। वायुभाव को प्राप्त हुआ ब्रह्म ही स्वयं अपने में अपनी ही सत्तारूप प्रकाशभाव अनुभव करता है, जिसके भीतर रूपतन्मात्रा का संस्कार उद्बुद्ध होता है। उसकी यह अनुभूति वैसी ही है, जैसे तेज प्राकट्य का अनुभव करता है। वह तेजोमय ब्रह्म ही स्वयं अपने में अपनी सत्तारूप जलभाव का अनुभव करता है, जिसके भीतर रसतन्मात्रा का संस्कार उद्बुद्ध होता है। उसकी यह अनुभूति वैसी ही है, जैसे जल अपनी द्रवता का अनुभव करता है। वह जलरूपता को प्राप्त हुआ ब्रह्म ही अपने चित्त से अभिन्नरूप पृथ्वी भाव का अनुभव करता है, जिसके भीतर गन्धतन्मात्रा स्थित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

होती है। उसकी यह अनुभूति भी वैसी ही है, जैसे पृथ्वी अपने में स्थैर्य–कला का अनुभव करती है।

जो नित्य एकरस प्रकाश से युक्त है, सृष्टि और प्रलय जिसके भीतर हैं, जो जन्म और विनाश से रहित, रोग–शोक से शून्य तथा शुद्ध है, वह ब्रह्म बिना किसी आधार के अपने आप में ही स्थित है। उस परमार्थ सत्य वस्तु (परब्रह्म परमात्मा) का यथार्थ ज्ञान होने पर परम गतिरूप मोक्ष प्राप्त हो जाता है। उक्त परमार्थ–वस्तु सृष्टियुक्त होने पर भी सर्वथा सम (विषमता से रहित) ही है।

जैसे अग्नि में जो प्रकाश है, वह उससे भिन्न न होने पर भी भिन्न सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में जो यह जगत्‌रूपी प्रकाश है, वह उनसे भिन्न न होकर भी भिन्न सा जान पड़ता है। भिन्नरूप से दिखायी देना ही उसका असत्यरूप है और अभिन्नरूप से दीखना ही उसके सत्यरूप का दर्शन है।

जैसे गीली मिट्टी में अव्यक्तरूप से खिलौने मौजूद हैं, जैसे काष्ठ में खुदाई करके प्रकट न की हुई कठपुतली मौजूद है और जैसे स्याही के चूर्ण में अक्षर स्थित हैं, उसी तरह परब्रह्म परमात्मा में नाना प्रकार की सृष्टियाँ विद्यमान हैं। यद्यपि ब्रह्म–तत्वरूपी मरुभूमि में त्रिलोकरूपिणी मृगतृष्णा असत्य ही है, तथापि मायावश सत्य सी प्रतीत होती है। वह ब्रह्म से अभिन्न होती हुई भी भिन्न सी भासित होती है। जैसे दूध का मिठास, मिर्च का तीखापन, जल की तरलता और पवन का स्पन्दन उससे भिन्न नहीं है, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा में यह सर्ग अनन्यभाव से स्थित है। उससे भिन्नरूप में उसका कोई अस्तित्व नहीं है। परमात्मा में लीन होकर वह चिन्मात्रस्वरूप से स्थित होता है, परमात्मा का अपना ही स्वरूप धारण करता है। कोई भी वस्तु कहीं और कभी भी न तो प्रकट होती है और न लय को ही प्राप्त होती है। सब कुछ सुन्दर शिला के घनीभूत स्वरूप की भाँति शान्त, अनादि, निराकार, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है। जैसे जल के भीतर गुप्त और प्रकटरूप से तरंग आदि रहते हैं, उसी तरह जीव में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि शक्तियाँ गुप्त और प्रकट रूप से विद्यमान रहती हैं। 'पुरुष जिस–जिस वस्तु की ओर से विरक्त होता है, उस उससे मुक्त होता जाता है। (जो सब ओर से निवृत हो जाता है, उसे अणुमात्र दुःख का अनुभव नहीं होता है।)' इस स्तुति वाक्य के अनुसार जो देह आदि में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अहंभाव का अनुभव नहीं करता, ऐसा कौन मनुष्य जन्म-मरणरूपी भ्रम को प्राप्त होगा। परब्रह्म में व्यष्टि जीव-रूप से प्रकट हुई जो अद्वितीय चित्त-सत्ता है, वह जल की तरलता के भीतर व्यक्त हुई आवर्त (भँवर) की रेखा के समान है। वही अहंभाव से युक्त होकर इन तीनों लोकों को धारण करती है। वास्तव में तो परमात्मा के भीतर न सद्रूप जगत् है और न असद्रूप ।

उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त

चालीसवाँ सर्ग

जगत की असत्ता या भ्रमरूपता

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रघुनन्दन ! ये वर्तमान, भविष्य और भूतकाल की सृष्टि-परम्पराएँ अपनी सत्ता को उसी प्रकार धारण करती हैं, जैसे जल की तरलता अपने भीतर स्पष्टरूप से आवर्तों की परम्परा धारण करती है। जैसी महती मरूभूमि में तटवर्ती वृक्षों और लताओं से झड़ती हुई पुष्प-राशि से परिपूर्ण लहराती नदी मिथ्या ही प्रतीत होती है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन परमात्मा में यह सृष्टि-सुषमा सर्वथा मिथ्या ही है। जैसे स्वप्न का संसार इन्द्रजाल का नगर और संकल्प या मनोरथ द्वारा कल्पित जगत्-ये सब सत्य न होने पर भी प्रतीति के विषय होते हैं, उसी प्रकार सृष्टियों के अनुभव की भूमि असत्य होने पर भी प्रतीतिगोचर हो रही है।

श्री रामचन्द्रजी ने पूछा-ज्ञानवानों में श्रेष्ठ गुरुदेव ! पूर्वोक्त प्रकार से भलीभाँति विवेक-विचार करने पर जब एकमात्र अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा के साथ अपनी एकता का पूर्ण निश्चय हो जाने से उत्कृट एवं संशयरहित आत्मविज्ञान प्रकाशित हो जाता है, तब तत्वज्ञानियों के भी शरीर यहाँ किसलिये टिके रहते हैं ? यदि कहें वे दैव के ही अधीन होकर रहते हैं तो ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि उन तत्वज्ञानियों पर दैव का प्रभाव कैसे रह सकता है।

श्री वसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! ब्रह्म आदि तत्वज्ञानियों ने अज्ञानियों के बोध के लिये यह बताया है कि जो ब्रह्म है, वही नियति है और वही यह सर्ग है। स्फटिक-शिला के भीतर प्रतिबिम्बित चित्रसमूह की भाँति परमात्मा में स्थित हुए ब्रह्मा ने नियति (जीवों के अदृष्ट)-रूपी भावी सृष्टि को उसी तरह देखा है, जैसे सोया हुआ पुरुष अपने में स्वप्न-जगत की कल्पना के आधारभूत आकाश को देखता है। जैसे चेतन-स्वभाव होने के कारण अंगी (देहधारी पुरुष)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

को शरीर में अंग आदि दिखायी देते हैं, उसी तरह 'कमलोद्भव' रूप से प्रसिद्ध चिन्मय ब्रह्मा को भी नियति आदि अंगों के दर्शन होते हैं। यह नियति (प्रारब्ध) ही दैव नाम से कही गयी है, जो शुद्ध चेतन परमात्मा की शक्तिरूप है। यही भूत, भविष्यत् एवं वर्तमानकाल में सम्पूर्ण पदार्थों को अपने अधीन करके जगत् की व्यवथारूप से स्थित है। 'भविष्य में अमुक पदार्थ में इस प्रकार की स्फूर्ति होनी चाहिये, अमुक को भोक्ता का पद प्राप्त होना चाहिये, इसके द्वारा इस प्रकार और उसके द्वारा इस प्रकार अवश्य होना चाहिये' ऐसा विचार दैव ही करता है। यह दैव या नियति ही सम्पूर्ण भूत आदि अथवा काल-क्रिया आदि जगत् है। इस नियति या प्रारब्ध से ही पुरुषार्थ की सत्ता लक्षित होती है और पुरुषार्थ से ही इस प्रारब्ध की सत्ता सूचित होती है। जब तक तीनों भुवन हैं, तबतक प्रारब्ध और पुरुषार्थ-ये दोनों सत्ताएँ परस्पर अभिन्नरूप से स्थित हैं। मनुष्य को अपने पौरुष से ही दैव और पुरुषार्थ दोनों को बनाना चाहिये। प्रारब्ध के अनुसार अवश्य होने वाला भोग होकर ही रहेगा-ऐसा निश्चय करके बुद्धिमान पुरुष कभी पौरुष का त्याग न करे, क्योंकि प्रारब्ध पौरुषरूप से ही नियामक होता है अर्थात् पूर्वजन्मों में किया गया पुरुषार्थ ही वर्तमान जन्म में प्रारब्ध होकर यह नियम करता है कि अमुक को ऐसा ही होना चाहिये।

जो प्रारब्ध के भरोसे मूक बनकर पौरुषशून्य एवं अकर्मण्य हो जाता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। जो अकर्मण्य होकर बैठेगा, उसकी प्राण-वायु की चेष्टा कहाँ चली जायगी। यदि निर्विकल्प समाधि में चित्त को शान्ति प्रदान करने वाला प्राणनिरोध करके पुरुष साधु होकर मुक्ति पा ही गया तो वह भी उसके पुरुषार्थ का ही फल है। बिना पुरुषार्थ के किस फल की प्राप्ति बतायी जा सकती है ? एकमात्र शास्त्रीय पुरुषार्थ में तत्पर होना कल्याणकारी श्रेष्ठ साधन है और कर्तृत्व का अत्यन्त अभावरूप मोक्ष सर्वश्रेष्ठ कल्याणमय फल है।

इन साधन और फलों की अपेक्षा ज्ञानियों का पक्ष सबल है, क्योंकि उन ज्ञानी महात्माओं का प्रारब्ध-भोग दुःखरहित है। जो दुःखरहित प्रारब्ध-भोग है, वह यदि ब्रह्मसत्ता के प्रकाश में स्थिर हो जाय तो निश्चय समझना चाहिये कि वह परम शुद्ध ब्रह्म, जिसे परम गति कहते हैं, प्राप्त हो ही गया।

चालीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इकतालीसवाँ सर्ग

ब्रह्म की सर्वरूपता

श्री वसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! यह जो ब्रह्मतत्व है, वह सर्वथा, सर्वदा, सब ओर से सर्वशक्तिमान्, सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी और सर्वमय ही है। वह जब, जहाँ, जिसकी, जिस प्रकार से भावना करता है, तब वहाँ उसी को प्रत्यक्ष देखता है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा से जो-जो शक्ति जैसे उदित होती है, वह उसी प्रकार रहती है। ऐसी स्थिति में वह शक्ति स्वभाव से ही नाना प्रकार के रूपवाली है। परमार्थ-दृष्टि से ये सारी शक्तियाँ यह आत्मा ही है अर्थात शक्ति और शक्तिमान् परमात्मा में कोई भेद नहीं है। बुद्धिमानों ने लौकिक व्यवहार की सिद्धि के लिये इस प्रकार भेदरूप संसारजाल की कल्पना की है। वस्तुतः परमात्मा में भेद नहीं है। जैसे समुद्र में छोटी-बड़ी लहरों का और समुद्र का, कंगन, बाजूबंद और केयूर के साथ सोने का तथा अवयव और अवयवी का भेद वास्तविक नहीं है, उसी प्रकार आत्मा में द्वैत अथवा भेद वास्तविक नहीं है, कल्पना करने वाले पुरुष की बुद्धि से कल्पित है। परमार्थ-दृष्टि से देखा जाये तो यह सम्पूर्ण आकारों से युक्त विस्तृत प्रपञ्च सर्वव्यापी ब्रह्म ही है। मिथ्या ज्ञानवाले लोगों ने ही शक्ति और शक्तिमान् के तथा अवयव और अवयवी के भेद की कल्पना कर रक्खी है। यह भेद यथार्थ नहीं है। सत् हो या असत्, सच्चिदानन्दघन परमात्मा जिस सदसद्-वस्तु का संकल्प अथवा अभिनिवेश करता है, उसी-उसी को देखता है। वास्तव में सब वस्तुओं के रूप में वह सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही भासित हो रहा है।

श्री राम ! यह जो सर्वव्यापी, स्वयम्प्रकाश, आदि-अन्त से रहित, सबका महान् ईश्वर, स्वानुभवानन्दस्वरूप, शुद्ध, सच्चिदानन्दघन परमात्मा है, इसी से पहले जीव उत्पन्न हुआ है। वही उपाधि की प्रधानता से चित्त कहलाता है और चित्त से यह जगत् उत्पन्न हुआ है।

रघुनन्दन ! जिसमें प्रतीत होने वाला दृश्य-प्रपञ्च असत् है, वह शुद्धस्वरूप ब्रह्म यहाँ सर्वत्र व्यापक है। वह बृहद् ब्रह्म अनात्मयोगी पुरुषों के लिये भीषण है और आत्मवेत्ताओं के लिये अविनाशी सच्चिदानन्दघन है। उसका जो सर्वत्र सम, परिपूर्ण, शुद्ध, चिन्हरहित सत्स्वरूप है, वही शान्त परमपद है। ज्ञानी भी उसके स्वरूप का इदमित्थं रूप से निर्देश नहीं कर सकते। उसी का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चेतन अंश, जो स्वभावतः स्पन्दनशील (प्राण धारण करने वाला) है, जीव कहलाता है। उत्तम दर्पणरूपी उस चेतन आकाश में ये असंख्य जगत् जाल की परम्पराएँ प्रतिबिम्बित होती रहती हैं। जैसे चलना या गतिशील होना वायु का स्वभाव है, उष्णता अग्नि का स्वभाव है अथवा शीतलता हिम का स्वभाव है, उसी प्रकार जीवत्व आत्मा (व्यष्टि-चेतन) का स्वभाव है। व्यष्टिचेतनघन जो आत्मतत्त्व है, उसकी स्वयं अपने स्वरूप के अज्ञान के कारण जो अल्पज्ञता है, उसी को जीव कहा गया है। कोई पुण्यात्मा पुरुष दिव्य देह आदि की भावना करने से शीघ्र ही देवता आदि के शरीर को प्राप्त होता है। उस देह में रहकर वह गन्धर्वों या अन्य देवताओं से सुरक्षित नगर (अमरावती आदि) में निवास करता है। अपने संकल्प के अनुसार कोई पुरुष वृक्ष आदि स्थावर योनि को प्राप्त होता है, कोई जंगम योनि में जन्म ग्रहण करता है तथा कोई पक्षी आदि खेचर प्राणियों का रूप धारण करता है। इस प्रकार जन्म और मृत्यु के कारण बने हुए अपने कर्मों से जीव ऊपर या नीचे जाते हैं (ऊँच-नीच योनियों में जन्म ग्रहण करते हैं)।

श्रीराम ! परम कारणरूप परमात्मा से ही पहले मन उत्पन्न हुआ है। मनन ही उसका स्वरूप है। भोगों से भरा हुआ जो यह विस्तृत जगत् है, वह मन में ही है। वह मन भी उस परम कारणरूप परमात्मा में ही स्थित है। वह भाव और अभाव के झूले में झूलता रहता है। जैसे पहले अनुभव में आयी हुई सुगन्ध याद करने पर मनोरथ के द्वारा देखी जाती है, उसी प्रकार उस मन के द्वारा सत् और असत् रूप से प्रतीत होने वाली यह सृष्टि देखी जाती है। परमात्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर ब्रह्म, जीव, मन, माया, कर्ता, कर्म और जगत् की प्रतीतियों का कोई भेद नहीं रह जाता। सब द्वैतों के एकमात्र आश्रय परमात्मा ही स्थित रहते हैं। जिसके विस्तार का कहीं आर-पार नहीं है, उस संवितरूपी जल के असीम प्रसारों से चिन्मय एकार्णवरूप यह आत्मा स्वयं विस्तार को प्राप्त होता है। क्षणिक होने के कारण असत्य तथा प्रतीत होने के कारण सत्य यह मनोमय जगत् स्वप्न के समान सदसद्रूप है। वास्तव में यह जगत् न तो सत् है, न असत् है और न उत्पन्न ही हुआ है। यह तो केवल चित्त का भ्रम है। जैसे अच्छी तरह न देखने के कारण ठूँठे काठ में झूठे ही पुरुष की प्रतीति होती है, उसी प्रकार अविद्यायुक्त मन के प्रभाव से यह संसार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

नाम दीर्घकालीन स्वप्न अज्ञानियों को स्थिर सा प्रतीत होता है। जैसे चेतन परमात्मा और जीव में भेद नहीं है, उसी तरह जीव और चित्त में भी भेद नहीं है और जैसे जीव तथा चित्त में भेद नहीं है, उसी तरह देह और कर्म में भी भेद नहीं है। वस्तुतः कर्म ही देह है; क्योंकि देह से ही कर्म होते हैं। देह ही चित्त है, चित्त ही अहंकार विशिष्ट जीव है। वह जीव ही चेतन परमात्मा है तथा वह परमात्मा सर्वस्वरूप एवं कल्याणमय है। यह शास्त्र का सारा सिद्धान्त एक पद्य में ही कह दिया गया है।

इकतालीसवाँ सर्ग समाप्त

बयालीसवाँ सर्ग

चित्त का विलास ही द्वैत है

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-श्रीराम ! जैसे एक दीपक से सैकड़ों दीपक जल जाते हैं, उसी तरह एक ही परमवस्तु चेतन आत्मा अपने संकल्प से मानो नानात्व को प्राप्त हुआ है। मनुष्य चित्तमात्र ही है। चित्त के हट जाने पर यह जगत् शान्त हो जाता है। जिस पुरुष के पैर जूते से ढके होते हैं, उसके लिये मानो सारी पृथ्वी पर ही चमड़ा बिछा हुआ है; इसी प्रकार जिसका चित्त शान्त है, उसके लिये सारा जगत् ही शान्त हो गया। जैसे केले के वृक्ष में पत्तों को छोड़कर और कुछ भी सार नहीं रहता, उसी प्रकार जगत् में भ्रम के सिवा और कुछ भी सार तत्त्व नहीं है। जीव जन्म लेता है; फिर क्रमशः बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था तथा मृत्यु को प्राप्त होता है। तत्पश्चात् वह शुभाशुभ कर्मों के अनुसार स्वर्ग और नरक में पहुँचता है। यह सब भ्रमवश चित्त का नृत्य अर्थात् संकल्पमात्र है। जैसे मल दोष से मलिन नेत्र चन्द्रमा आदि में दो-दो आकृतियाँ देखता है, वैसे ही भ्रम से आक्रान्त हुआ जीवात्मा परमात्मा में द्वैत देखता है (जीव और ईश्वर में भेद का दर्शन करता है)। जैसे मदिरा पीकर मतवाला हुआ मनुष्य नशे के कारण वृक्षों को घूमते देखता है, उसी प्रकार जीवात्मा चित्त द्वारा कल्पित संसारों का दर्शन करता है। जैसे बालक खेल-कूद में वेग से घूमने के कारण सारे जगत् को कुम्हार के चाक की भाँति घूमता देखते हैं, उसी प्रकार जीव चित्त के भ्रम से ही इस दृश्य जगत् को देखते हैं-यों समझो। जिस पदार्थ का चेतन अनुभव करता है, वह चेतन से अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है। इस प्रकार दृश्य की शान्ति होने पर विषय न रहने से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ईंधन रहित अग्नि के समान चित्त स्वयं शान्त हो जाता है। जब पुरुष सच्चिदानन्दघन परमात्मा से एकता को प्राप्त होकर निश्चल स्थिति में स्थित हो जाता है, तब वह शान्त होकर बैठे या व्यवहार में लगा रहे–दोनों ही अवस्थाओं में भली भाँति शान्त कहा जाता है। व्यष्टिचेतन अज्ञानी जीव विषय का अनुभव करता है, परंतु सच्चिदानन्दघन में एकीभाव को प्राप्त ज्ञानी महात्मा विषय का आस्वादन नहीं करता।

परमपद में आरूढ़ और सच्चिदानन्दघन परब्रह्म में एकीभाव को प्राप्त हुए पुरुष का 'देह के भान से शून्य' और 'निर्विषय' आदि समानार्थक शब्दों द्वारा वर्णन होता है। जीवात्मा चित्त के संकल्प द्वारा ही स्थूलता को प्राप्त होता है और 'मैं उत्पन्न हूँ, जीवित हूँ, तथा (जन्म–मृत्युरूप) संसार को प्राप्त होता हूँ, इत्यादि रूप से मिथ्या–भ्रम का दर्शन करता है। चेतन के द्वारा जिस किसी का अनुभव होता है, वही स्थूल जगत् है। रज्जु में सर्प की भाँति प्रतीत होने वाले उस आभास को अविद्या–भ्रम कहते हैं। इस संसार नामक व्याधि की चिकित्सा एवं निवारण केवल ज्ञानमात्र से ही सम्भव है। यह संसार चित्त का एक संकल्पमात्र है। इसके बाद में किसी प्रकार का आयास नहीं है। जैसे अच्छी तरह देखभाल करने से रस्सी में साँप का भ्रम मिट जाता है, उसी प्रकार परमात्मा के यर्थाथ ज्ञान से यह संसाररूपी भ्रम अवश्य नष्ट हो जाता है।

बयालीसवाँ सर्ग समाप्त

तेतालीसवाँ सर्ग

भोक्ता जीव का स्वरूप

वसिष्ठ जी बोले–हे श्रीराम ! जिस वस्तु की अभिलाषा हो, उसी का निश्चितरूप से त्याग करके यदि रहा जा सके, तब तो मोक्ष प्राप्त ही है। इतना करने में कौन–सी कठिनाई है। परमात्मा की प्राप्तिरूप महान् उद्देश्य से सम्पन्न पुरुष जब इस संसार में अपने प्राणों का भी मोह तिनके के समान त्याग देते हैं, केवल उसी का त्याग करने में कंजूसी कैसे की जा सकती है। जैसे हाथ में रक्खा हुआ बेल का फल अथवा सामने खड़ा हुआ पर्वत प्रत्यक्ष ही दिखायी देता है, उसी प्रकार उस तत्त्वज्ञ महात्मा के लिये परमात्मा का जन्म आदि विकारों से रहित होना प्रत्यक्ष ही है। जैसे प्रलय काल का अनन्त अपार एकार्णव अपनी असंख्य तरंगों के कारण अनेक सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अप्रमेय परमात्मा ही अज्ञान के कारण जगत्‌रूप से प्रतीत हो रहा है। उसके स्वरूप का यथार्थ ..ान हो जाय तो वही मोक्षरूप सिद्धि प्रदान करता है; परंतु जो उसे तत्त्वतः जान नहीं लेता, उसका मन सदा बन्धन में ही पड़ा रहता है

रघुनन्दन ! ब्रह्म सदा सम्पूर्ण शक्तियों से सम्पन्न तथा सब कुछ करने में समर्थ है। वह जहाँ जिस शक्ति से स्फुरित होता है, वहाँ अपने में उसी शक्ति को प्राप्त हुई देखता है। सबका आत्मा ब्रह्म अनादिकाल से जिस व्यष्टिचेतन को स्वयं जानता है, वही यहाँ जीव नाम से कहा गया है और वह जीव ही संकल्प करने वाला है। जीव ईश्वर का अनादिकाल से स्वाभाविक भेद है, वही जीव के जन्म-मरण में कारण है। जैसे आकाश में क्रियाशील और अक्रिय वायु ही है, उससे अतिरिक्त कुछ नहीं है, उसी तरह यहाँ सर्वत्र क्रियाशील और अक्रिय सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है। उससे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उस ब्रह्म के क्रियाशील होने पर सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है और अक्रिय रहने पर सबका प्रलय हो जाता है। उस अवस्था में ब्रह्म ही शान्तभाव से स्थित रहता है। जिसने जीव-ईश्वर के भेद की कल्पना कर रक्खी है, ऐसे जीवात्मा को ही देह की प्राप्ति होती है। वह जीवात्मा ही संसार में संकल्प से नाना प्रकार के विषयों को प्राप्त होता है। यही नाना योनियों का प्राप्त जीवात्मा ज्ञान होने पर शीघ्र मुक्त हो जाता है। उनमें से कोई मन्द अभ्यासी तो साधन करते-करते हजारों जन्मों में मुक्ति प्राप्त करता है और कोई तीव्र अभ्यास करने वाला पुरुष एक ही जन्म में मुक्ति लाभ कर लेता है। स्वभाव के कारण ही जीवात्मा ब्रह्म और जीव के भेदभाव को प्राप्त हो रहा है। इसी से वह गुणों का संग पाकर कर्मानुसार स्वर्ग, मोक्ष, नरक और बन्धन आदि के हेतु भूत देहभाव को क्रमशः प्राप्त होता है। वास्तव में यह संसार न तो उत्पन्न हुआ है और न यह सत्तावान् होकर स्थित ही है, तथापि मन का भ्रम इसे देखता है। जैसे गोलाकार घूमने या नृत्य करने से भ्रमपीड़ित पुरुष नगर को भी घूमता हुआ सा देखता है, उसी तरह मन के भ्रम से युक्त जीवात्मा 'मैं उत्पन्न हुआ, स्थित रहा और मेरा' इत्यादि भावों का अनुभव करता है। परमार्थ वस्तु का दर्शन न होने के कारण आशा-तृष्णा के वशीभूत हुआ चित्त 'अहं-मम' इत्यादि रूप से अनुभव में आने वाले असत् संसार को ही देखता (और उसे सत् मानता) है।

श्रीराम ! जैसे जल तरंगरूप से स्फुरित होता है, उसी तरह केवल मन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

की भ्रान्ति के उल्लास (उत्कर्ष) से विस्तार को प्राप्त हुआ यह सभी दृश्य-प्रपञ्च जगत्‌रूप से भासित होता है। व्यष्टि-चेतन ही बुद्धि-वृत्ति के संयोग से जीव कहलता है। वह जीव ही संकल्प करने से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा माया के रूप में परिणत हो जाता है। जैसे स्वप्न में जो नगर आदि का भान होता है, वह मन का भ्रम ही है, उसी तरह यह संसार भी चित्त का भ्रम ही है। व्यष्टि-चेतन को जो संसार का ज्ञान है, वही जागरण कहा गया है। सूक्ष्म शरीर में जो उसका अहंभाव है, उसी को स्वप्न माना गया है। मन का जो प्रकृति में विलीन हो जाना है, वही सुषुप्ति है तथा केवल सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में जो एकीभाव से तन्मय हो जाना है, उसी को तुरीयावस्था कहते हैं। अत्यन्त शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा में जो अविचल स्थिति है, वही परिणाम में विकार रहित तुरीयातीत पद है। उस पद में स्थित पुरुष कभी शोक नहीं करता (वहाँ शोक का सर्वथा अभाव है)। उस परमात्मा में ही यह सब जगत् उत्पन्न होता है (उसी में स्थित रहता है) और उसी में लीन हो जाता है। वास्तव में न तो यह ब्रह्म जगत्‌रूप है और न उस ब्रह्म में जगत् ही है। जैसे नेत्र दोष के कारण आकाश में भ्रम से मोती के दाने से दीखते हैं, वैसे ही ब्रह्म में भ्रम से इस जगत् का दर्शन होता है। जैसे स्फटिक के भीतर प्रतिबिम्बित वन आदि उसके यथार्थ ज्ञान के बिना सत्य से दीखते हैं, उसी तरह यथार्थ ज्ञान न होने के कारण अद्वितीय ब्रह्मरूप होता हुआ भी यह जगत् शुद्ध ब्रह्म के भीतर नाना सा प्रतीत होता है। ब्रह्मा से लेकर कीट पतंग पर्यन्त बुद्धि वृत्ति का भ्रमरूप जगत् असत् ही है; क्योंकि परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होने पर इसका बोध हो जाता है। यह जगत् मिथ्या ही उत्पन्न हुआ है, मिथ्या ही बढ़ता है, मिथ्या ही रुचिकर प्रतीत होता है और मिथ्या ही लय को प्राप्त होता है; शुद्ध सर्वव्यापी ब्रह्म अनन्त और अद्वितीय है। अज्ञान से ही वह अशुद्ध सा, असत् सा, नाना सा और असर्वव्यापी सा (सीमित सा) ज्ञात होता है। जैसे जल भिन्न है और तरंग उससे भिन्न है-ऐसी जो बालकों अथवा मूर्खों की कल्पना है, उसी से जल और तरंग में मिथ्या भेद की प्रतीति होती है, उसी तरह जो यह जगत् का भेद प्रतीत होता है, वह भी वास्तविक नहीं है। केवल अज्ञानियों ने उसकी कल्पना कर रक्खी है। जैसे रस्सी में सर्प की स्थिति है, वैसे ही ब्रह्म में शत्रु और मित्र के समान विरुद्ध भेदाभेद शक्तियों की स्थिति सम्भव है।

तेतालीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चौवालीसवाँ सर्ग

परमात्मसत्ता का विवेचन

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-हे रघुनन्दन ! नाम रहित तथा मन और नेत्र आदि छः ज्ञानेन्द्रियों से अगम्य होने के कारण आकाश से भी सूक्ष्म चिन्मात्र परमात्मा ही 'अणु' शब्द से कहा गया है। अणु के भी अणु सच्चिदानन्दघन परमात्मा के अंदर अज्ञानियों की दृष्टि से सत्-सा और ज्ञानियों की दृष्टि से असत्-सा स्थित हुआ यह जगत् बीज के भीतर वृक्ष की सत्ता के समान स्फुरित होता है। सम्पूर्ण वस्तुओं की सत्ता के अधीन है; उसको यदि और किसी के अधीन मानें तो भूल होगी। अतः स्वतःसिद्ध वास्तविक सत्ता से ही सबकी सत्ता है। यह परम आकाशरूपी परमात्मा सूक्ष्म होने के कारण नेत्रेन्द्रिय का विषय नहीं है। सर्वात्मक होता हुआ भी वह मनसहित पाँचों इन्द्रियों से अतीत होकर स्थित है, अतः अणु का भी अणु है। सर्वात्मक होने के कारण ही वह कभी शून्य नहीं हो सकता। क्योंकि 'वह है, नहीं है'-ऐसा कहने और मनन करने वाला पुरुष आत्मा ही तो है; फिर उसकी असत्ता कैसे कही जा सकती है। किसी भी युक्ति से यहाँ सत् वस्तु की असत्ता नहीं सिद्ध की जा सकती। जैसे कपूर अपनी सुगन्ध से प्रतीत होता है, वैसे ही सर्वात्मा सर्वव्यापीरूप से अनुभव में आता है। अणु का भी अणु चेतन परमात्मा ही सब कुछ है। मन और इन्द्रियों की वृत्ति से नानात्व की प्रतीति होने के कारण मनःपरिच्छिन्नरूप से ही वह सर्वात्मक है और इन्द्रियातीत होने के कारण वह निर्मल परमात्मा नित्य सत्तावान् होकर भी कुछ प्रतीत नहीं होता-इन्द्रियों का विषय नहीं होता। वही एक है और सम्पूर्ण जीवों के अन्तःकरण में आत्मारूप से अनुभूत होने के कारण अनेक भी है। वही अपने संकल्प से इस सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है। अतः जगत्रूपी रत्नों का कोश भी वही है।

जैसे जिसका मुँह बंद है, ऐसे घड़े को अन्य देश में ले जाने पर उसमें स्थित आकाश का गमन और आगमन नहीं होता, उसी प्रकार देहरूपी उपाधि के गमनागमन से आत्मा का गमनागमन नहीं हो सकता। चिन्मय परमात्मा अपनी चेतना से सूर्य आदि के प्रकाश का भी प्रकाशक है और महाकल्प के प्रलय-कालीन मेघों से भी वह नष्ट नहीं होता; क्योंकि वह स्वयम्प्रकाशरूप एवं अविनाशी है। वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म नेत्रों से नहीं देखा जा सकता; क्योंकि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वह अनुभवरूप, हृदय मन्दिर को प्रकाशित करने वाला, सबको सत्ता देने वाला, अनन्त और परम प्रकाशस्वरूप बताया गया है। आकाश आदि देश, काल और क्रिया आदि की सत्ता एवं जगत् उसी ज्ञानस्वरूप परमात्मा में प्रतीत होते हैं। वही सबका स्वामी, कर्ता, पिता और भोक्ता है। वास्तव में परमात्मा होने के कारण उसका किसी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। न निमेष है न कल्प है, न सामीप्य है और न दूरी ही है। चेतन परमात्मा का संकल्प ही अन्यान्य वस्तुओं के रूप में स्थित है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस प्रकार जगत् के मिथ्यात्व का उपपादन करने वाले न्यायों (युक्तियों) की बारंबार भावनारूप अभ्यास के द्वारा निर्मल हुए मन से जिसने पारमार्थिक वस्तु ब्रह्म का दर्शन कर लिया है, उस पुरुष की अविद्या का नाश हो जाने के कारण चिदाकाश में उसे फिर संसार की प्रतीति नहीं होती। जैसे बीज के भीतर स्थित हुए वृक्ष की सत्ता अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण आकाश के तुल्य है। उसी तरह ब्रह्म के भीतर स्थित हुए जगत् का परमात्मा साक्षी है; इसलिये जगत् की साक्षी से पृथक् प्रतीति न होने के कारण सच्चिदानन्दरूप से ही उसकी स्थिति है। शान्त, सर्वात्मक, जन्मरहित, अद्वितीय, आदि और मध्य से शून्य, निर्द्वन्द्व, माया के कार्य से रहित, जगत्रूप में नाना सा प्रतीत होता हुआ भी वास्तव में एक, विशुद्ध, ज्ञानस्वरूप, अजन्मा, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है। उसमें किसी प्रकार की कोई कल्पना किसी तरह भी सम्भव नहीं है।

जगत् की प्रतीति का अभाव ही जिस (परमात्मा) के स्वरूप का परम अनुभव है, सम्पूर्ण संकल्पों का त्याग ही चित्त के द्वारा जिसका संग्रह (चिन्तन) है, जिसके संकोच से संसार का प्रलय और विकास से उसकी सृष्टि होती है, जो वेदान्त वाक्यों का परम तात्पर्य एवं वाणी का अविषय है, यह चराचर जगत् जिसकी चिन्मयी लीला है तथा विश्वरूप होने पर भी जिसकी अखण्डता कभी खण्डित नहीं होती, वही सन्मात्र शाश्वत ब्रह्म कहा गया है। वह अणु से भी अणु परमात्मा अपने संकल्प से वायु होता है। किंतु उसकी वह भ्रमरूपता भ्रान्त दृष्टिमूलक है, अतः वास्तव में वह वायु आदि कुछ भी नहीं है, केवल शुद्ध चेतन ही है। वही परमात्मा शब्द के संकल्प द्वारा शब्द बनता है; किंतु उसकी शब्दरूपता का दर्शन भ्रममूलक है। वास्तव में तो वह शब्द और शब्दार्थ की दृष्टि से बहुत दूर है। उस परमात्मा की प्राप्ति के सैकड़ों साधन हैं। उसके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्राप्त होने पर कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। वही परम प्राप्तव्य है। उसके सिवा कुछ भी नहीं है।

जो अणु का भी अणु, केवल चिन्मय और अत्यन्त सूक्ष्मतम है, उस परमात्मा से यह सम्पूर्ण विश्व सब ओर से परिपूर्ण है। अणुरूप होता हुआ भी यह परमात्मा सैकड़ों-अनन्त योजनों में नहीं समाता; क्योंकि वह सर्वव्यापी, अनादि और रूपरहित होने के कारण निराकार है। जैसे मेरु पर्वत की सरसों के साथ तुलना करना उचित नहीं, उसी तरह शुद्ध ज्ञानमय चेतनाकाशरूप परमात्मा की परमाणु के साथ तुलना करना शोभा नहीं देता। जैसे प्रतिबिम्ब दर्पण में ही पड़ता है, उसी प्रकार जल में जो कोई भी सम्पूर्ण रस है, वह परमात्मा का ही आश्रय लेकर स्थित है। परमात्मा के बिना स्वतः उसकी कोई सत्ता नहीं है। जिसने संकल्प रहित होने पर इस जगत् को त्याग दिया-इसका अभाव कर दिया है और अपने संकल्प से ही पुनः सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न किया है, जगत् का अभाव करने वाले उस अणु से भी अणु चिन्मय परमात्मा ने इस समस्त विश्व को व्याप्त कर रक्खा है। जैसे सपने में एक ही निमेष में बाल्यावस्था से लेकर बुढ़ापे तक का बोध होता है, उसी प्रकार उस सूक्ष्म चिन्मय परमात्मा में निमेषांश का ज्ञान ही सहस्त्रों कल्पों के समान प्रतीत होता है। इसलिये वह सूक्ष्म परमात्मा निमेषरूप होता हुआ ही शत कोटि कल्पों का समूह है। अणु से भी अणु सच्चिदानन्दघन परमात्मा में सम्पूर्ण जगत् स्थित हैं और उसी से जगत् की सारी प्रतीतियाँ होती हैं।

जैसे बीज में भावी वृक्ष रहते हैं, वैसे ही चिन्मय परमात्मा में भूत, वर्तमान और भविष्य-तीनों कालों के प्राणी सदा विद्यमान रहते हैं। यह परमात्मा सम्पूर्ण जगत् में उदासीन की भाँति स्थित है। कर्तापन और भोक्तापन से उसका थोड़ा सा भी स्पर्श या सम्बन्ध नहीं है। परमात्मा इस जगत् के बाहर भी स्थित है और भीतर भी-यह बात तीनों लोकों में अधिकारी प्राणियों के उपदेश के लिये कही जाती है। यह बाह्य और आन्तरिक स्थिति का भेद 'शब्द' तक ही सीमित है, वस्तु में नहीं है; क्योंकि वस्तु चेतनरूप है, अतः उसमें उक्त भेद का होना कदापि सम्भव नहीं। द्रष्टा परमात्मा दृश्यजगत् का रूप नहीं धारण कर सकता; क्योंकि दृश्यत्व असत् एवं वास्तविक है। जो कोई भी वस्तु परमात्मा में है ही नहीं, परमात्मा उसका स्वरूप कैसे धारण कर सकता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

व्यवहार दृष्टि से द्रष्टा ही दृश्य भाव को प्राप्त होता है। जैसे पिता के बिना पुत्र और भोक्ता के बिना भोग्य नहीं है, उसी प्रकार दृश्य के बिना द्रष्टापन नहीं है।

जैसे विशुद्ध सुवर्ण में यह सामर्थ्य है कि उसका कंगन आदि बन सके, उसी प्रकार चिन्मय होने के कारण द्रष्टा में यह शक्ति है कि वह दृश्य का निर्माण कर सके। जैसे सोने का कड़ा यह सामर्थ्य नहीं रखता कि वह सुवर्ण का निर्माण कर सके, उसी प्रकार जड़ होने के कारण दृश्य में यह शक्ति नहीं है कि वह द्रष्टा का निर्माण कर सके। जैसे सुवर्ण कंगन के भ्रम को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार चिन्मय परमात्मा दृश्य का निर्माण करता है। उक्त दृश्य असत् होता हुआ भी अज्ञानवश सत्–सा प्रतीत होता है। दृश्य अज्ञानमात्र से उत्पन्न है। जब तक कारणभूत अज्ञान रहता है तभी तक, उसकी स्थिति रहती है। जैसे कड़े और कंगन आदि की प्रतीति के समय सुवर्ण की सुवर्णता सत्य होने पर भी स्फुटरूप से स्फुरित नहीं होती, क्योंकि मूढ़ पुरुष की बुद्धि उक्त आभूषण के नाम–रूप में ही उलझी रहती है, उसी प्रकार द्रष्टा के दृश्यरूप में स्थित होने पर उसके वास्तविक स्वरूप की स्फूर्ति नहीं होती। जैसे कंगन के रूप में प्राप्त होने पर सुवर्ण अपनी पूर्व सिद्ध सुवर्णता को लक्ष्य कराता है, वैसे ही दृश्यरूप में स्थित हुआ द्रष्टा अपने द्रष्टापन को लक्षित कराता है। द्रष्टा जब अज्ञानवश अपने को दृश्यरूप में देखता है, तब अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं देख पाता। द्रष्टा में दृश्यत्व की प्राप्ति होने पर उसकी सत्ता भी असत्ता–सी भासित होने लगती है परंतु जब ज्ञान से दृश्य गलित हो जाता है, तब केवल द्रष्टा की ही सत्ता रह जाती है। जैसे कड़े और कंगन को गला देने पर जब उसके नामरूप की प्रतीति नहीं रहती, तब केवल सुवर्ण की सुवर्णता ही रह जाती है।

जैसे जल, भूमि आदि पाँच भूतों से भौतिक पदार्थ तनिक भी पृथक नहीं है, उसी प्रकार इस स्वभावसिद्ध परमात्मारूप अणु से कुछ भी पृथक् नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापी अनुभवरूप है तथा सबका अनुभव भी उसी का स्वरूप है; अतः एकत्व के यथार्थ अनुभव की युक्ति जब सुदृढ़ हो जाती है, तब इस परमात्मा की सबके साथ एकता समझ में आती है। परमात्मा दिशा, काल आदि से सीमित नहीं है। वह एकमात्र, अद्वितीय है। सबका आत्मा होने के कारण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सबसे अभिन्न है। स्वतः तो वह सर्वानुभव रूप ही है, जड़ नहीं है।

जैसे कड़े या कंगन की सत्ता सुवर्ण से पृथक नहीं है, उसी प्रकार द्वैत भी ब्रह्म से अलग नहीं है-जिसे भली-भाँति ऐसा ज्ञान हो चुका है, उसका वह ज्ञान ही द्वैत है और वह ज्ञानसत् नहीं है। जैसे जल की द्रवता जल से, वायु का स्पन्दन वायु से तथा आकाश की शून्यता आकाश से अलग नहीं है, वैसे ही द्वैत परमात्मा से पृथक नहीं है। द्वैत और अद्वैत की प्रतीति दुःख रूप प्रवृत्ति की सिद्धि के लिये ही है, निवृत्ति के लिये नहीं। वास्तव में जो इन दोनों की अनुपलब्धि या अप्रतीति है, वह यदि अच्छी तरह समझ में आ जाय तो ज्ञानी पुरुष उसी को परमपद मानते हैं। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेयरूप तथा द्रष्टा, दर्शन और दृश्यरूप जो यह सम्पूर्ण जगत् है, वह अणु से भी अणु चेतन परमात्मा के स्वरूप में ही स्थित है। जैसे वायु अपने शरीर में ही स्पन्दन को उत्पन्न करती और लीन भी कर लेती है, उसी प्रकार अणु से भी अणु परमात्मा ने अपने स्वरूप में इस जगत् रूपी अणु को अनेक बार उत्पन्न और विलीन किया है। जैसे बीज के भीतर फल और पल्लवों सहित समूचे वृक्ष का विस्तान निहित है और वह अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाता है, उसी तरह चेतन परमात्मा में अनेक शाखा-प्रशाखाओं से युक्त जगत् स्थित है और वह परमार्थ दृष्टि से उन्हीं में देखने में आता है (इसलिये जगत् वास्तव में परमात्मा से अभिन्न ही है)। जैसे बीज के भीतर अपने शाखा, फल, फूल आदि का त्याग न करता हुआ वृक्ष स्थित है, वैसे ही चेतन परमात्मा में यह शाखा-प्रशाखाओं सहित विशाल जगत् विद्यमान है। जैसे बीज के भीतर वृक्ष है, उसी प्रकार चेतन परमात्मा के भीतर स्थित हुए द्वैत रूप जगत् को जो अद्वैत देखता है, उसी का देखना तत्त्वदर्शन है। वास्तव में तो न द्वैत है न अद्वैत; न बीज है न अंकुर; न स्थूल है न सूक्ष्म; न जात है न अजात; न सत्ता है न असत्ता और न यह सौम्य है न क्षुब्ध। उस चेतन परमात्मा के भीतर तीनों लोक, आकाश और वायु आदि भी कुछ नहीं हैं। न जगत् है, न उसका अभाव। केवल एक सर्वोत्कृष्ट उत्तम चेतन परमात्मा ही है।

चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पैंतालीसवाँ सर्ग

जगत् की ब्रह्म से पृथक् सत्ता का खण्डन

श्री वसिष्ठजी कहते हैं–हे रघुनन्दन ! परम कारण भूत, आदि, अन्त और मध्य से रहित, एक परमपद से यद्यपि यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है, तथापि उत्पन्न हुआ सा प्रतीत होता है। जैसे जलराशि में उठती हुई तरगें जल से भिन्न न होकर भी भिन्न सी स्थित हैं, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा में सारी सृष्टियाँ अभिन्न होकर भी भिन्न सी जान पड़ती हैं। जो नित्य उदित एवं नित्य प्रतिष्ठित है, वह ब्रह्म ही कर्ता सा होकर इस जगत् का अनेक रूपों में निर्माण करता है। फिर भी वह अपनी समता और सौम्यता आदि का त्याग नहीं करता। जैसे बीज में वृक्ष एवं फल आदि अभिन्नरूप से ही स्थित हैं, तथापि वे उससे इस तरह प्रकट होते हैं मानो भिन्न हों, उसी तरह चेतन परमात्मा में यह चेत्य (स्थूलजगत) अनन्य भाव से स्थित होने पर भी अन्य सा प्रकट हुआ प्रतीत होता है। जैसे बीज से लेकर फलपर्यन्त जो एक ही द्रव्य-सत्ता है, उसका विच्छेद न होने के कारण फल और बीज में कोई भेद नहीं है, जैसे जल और तरंग में कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार चित् और चेत्य (ब्रह्म और जगत्) में कोई भेद नहीं है। अविचार (विवेक शून्यता) के कारण जो इनमें भेद की कल्पना की जाती है, उसकी सिद्धि नहीं हो सकती; क्योंकि जिस किसी कारण से भ्रान्तिवश उत्पन्न हुआ भेद विचार से नष्ट हो जाता है। सारा जगत् ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है और सब का सब ब्रह्म में ही लीन होता है।

श्री वसिष्ठ जी ने कहा–श्री राम ! उपदेश के लिये जो शास्त्रीय शब्द है अथवा लोक सिद्ध अर्थ जनित व्यावहारिक भेद का उपपादक जो लौकिक-शब्द है, वह प्रतियोगी, व्यवच्छेद (अभाव), संख्या, लक्षण और पक्ष से युक्त होता है। जो भेद दिखायी देता है, यह व्यवहार-दृष्टि से ही है, वास्तविक नहीं। अज्ञानियों को समझाने के लिये ही कार्य कारण भाव, सेवक-स्वामिभाव, हेतु-हेतुमद्भाव, अवयवावयविभाव, भेदाभेद अथवा अन्वयव्यतिरेक, परिणाम आदि का विभ्रम, भावों के विचित्र विलास, विद्या-अविद्या और सुख-दुःख इत्यादि रूप से मिथ्या संकल्पों की संकलना की गयी है। वास्तव में जो सत्य वस्तु है, उसमें कोई भेद नहीं है। यह भेदवाद परम तत्त्वको न समझने के कारण ही है। परमार्थ वस्तु के ज्ञात हो जाने पर द्वैत नहीं रह जाता। उस समय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सारी कल्पनाएँ अथवा संकलनाएँ शान्त हो जाती हैं। फिर तो मौन स्वरूप परमार्थ-तत्त्व ही शेष रहता है। वह परमतत्त्व परमात्मा आदि और अन्त से रहित, अविभक्त, एक, अखण्ड और सर्वस्वरूप है। जिन्हें तत्त्व का ज्ञान नहीं हुआ है, ऐसे अज्ञ पुरुष अपने विकल्पों से उत्पन्न हुए तर्कों द्वारा अद्वैत के विषय में विवाद करते हैं। उपदेश से तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाने पर यह वाद और द्वैत नहीं रह जाता। द्वैत के बिना वाच्य-वाचक का बोध नहीं सिद्ध होता। परंतु द्वैत किसी तरह भी सम्भव नहीं है। इसलिये मौनरूप परमात्मा ही पूर्णतया सिद्ध होता है।

रघुनन्दन ! 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के अर्थ में अपनी बुद्धि को प्रतिष्ठित करके वचन भेद की उपेक्षा कर दो और जो मैं कहता हूँ, इसे ध्यान देकर सुनो। चित्त ही विकास रूप से जगत् को प्राप्त हुआ है। जैसे बालू के भीतर तेल नहीं है, उसी तरह ब्रह्म में शरीर आदि की सत्ता नहीं है। राग-द्वेष आदि क्लेशों से कलुषित यह चित्त ही संसार है। उन राग आदि दोषों से तभी छुटकारा मिल जाता है, तभी इस संसार-बन्धन का नाश हो गया,-यह कहा जाता है। चित्त ही साधन, पालन, विचार, श्रेष्ठ पुरुष की भाँति कर्तव्य का अनुष्ठान, आहार-व्यवहार, संचरण और आदरपूर्वक धारण करने के योग्य है। तीनों लोकों की कल्पना का आकाश रूप चित्त सम्पूर्ण दृश्य को अपने भीतर धारण करता है। सृष्टि के आरम्भ में पृथ्वी आदि रूप यह सारा प्रपञ्च अविद्यमान-असत् ही था। अव्यक्तस्वरूप अजन्मा ब्रह्म स्वप्न के समान इसे देखता हुआ भी वास्तव में नहीं देखता। हृदयंगम दृष्टान्त और युक्ति से तथा मधुर एवं युक्तियुक्त पदार्थवाली वाणी से जो कुछ कहा जाता है, वह श्रोता के हृदय में उसकी शंका को दूर करके सब ओर व्याप्त हो जाता है-ठीक उसी तरह, जैसे जल में डाला हुआ तेल उसमें सब ओर फैल जाता है। जिसमें दृष्टान्त और मनोहर पद नहीं होते, जो दुर्बोध होता है, जिससे क्षोभ प्रकट होता है तथा जिसका प्रत्येक अक्षर अपने स्थान से च्युत होता है और जिसके कई वर्ण मुँह में ही रह जाते हैं-स्पष्टतः उच्चारित नहीं होते, ऐसा उपदेश वाक्य श्रोता के हृदय तक नहीं पहुँच पाता। वह राख में आहुति के रूप में डाले गये घी के समान व्यर्थ हो जाता है। साधो ! इस भूतल पर जो-जो महाभारत आदि आख्यान तथा छोटी-छोटी कथाएँ हैं, जो-जो प्रमाणों द्वारा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

जानने योग्य प्रमेय ग्रन्थ हैं, जो औचित्य से युक्त तथा शब्द और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से मधुर एवं कोमल हैं, वे सभी लोक प्रसिद्ध दृष्टान्तों तथा प्रमाण युक्त दर्शनों के प्रतिपादन पूर्वक वर्णित होने पर उसी प्रकार श्रोता के हृदय में शीघ्र प्रकाशित हो जाते हैं, जैसे श्वेत किरण वाले चन्द्रमा के प्रकाश से सारा विश्व प्रकाशित हो उठता है।

पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त

छियालीसवाँ सर्ग

दृश्य-प्रपञ्च मन का विलास मात्र है

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं–निष्पाप रघुनन्दन ! पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने मुझे जो उपदेश दिया था, वह सब उनकी कही हुई कथा के साथ मैं तुम्हें बता रहा हूँ। पहले की बात है, मैंने कमलयोनि भगवान् ब्रह्माजी से पूछा–'ब्रह्मन् ! ये सृष्टि के समुदाय (ब्रह्माण्ड) कैसे प्रकट होते हैं ?' मेरे इस प्रश्न को सुनकर लोक पितामह भगवान् ब्रह्मा ने मुझसे यह महत्त्वपूर्ण बात कही।

ब्रह्माजी बोले–वत्स ! यह मन जगत्भाव को धारण करने की शक्ति से सम्पन्न है, अतः यही इस तरह सब पदार्थों के रूप में स्फुरित होता है, जैसे जल ही जलाशय में फैले हुए विचित्र आवर्तों के रूप में स्फुरित (भासित) होता है। पहले के किसी कल्प की बात है। मैं अपने दिन के आरम्भ में जब सोकर उठा और संसार की सृष्टि की इच्छा करने लगा, उस समय कैसी घटना घटित हुई, यह बताता हूँ; सुनो। एक दिन संध्या के समय (कल्प के अन्त में) सारी सृष्टि का संहार करके मैंने एकाग्र एवं स्वस्थचित्त हो अकेले ही वह रात बितायी। रात्रि के अन्त में मैं जाग उठा और विधिपूर्वक संध्या करके प्रजा की सृष्टि करने के लिये मैंने अपनी फैली हुई आँखें आकाश में लगायीं–मैं एकटक दृष्टि से आकाश की ओर देखने लगा। ज्यों ही दृष्टि डाली, त्यों ही मुझे आकाश अत्यन्त विस्तृत, अन्तरहित और शून्य दिखायी दिया। वह न तो अन्धकार से व्याप्त था और न तेज से ही।

'अब मैं सृष्टि के लिये संकल्प करूँ' ऐसा निश्चय करके मैंने सूक्ष्म चित्त से विशुद्ध भाव के साथ उस स्रष्टव्य (सृष्टि के योग्य) वस्तु की समीक्षा–पर्यालोचना आरम्भ की। अतने में ही उस विशाल आकाश के भीतर मैंने मन से अनेक बड़े–बड़े ब्रह्माण्ड देखे, जो पृथक्–पृथक् विद्यमान थे। उन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सबकी स्थिति व्यवस्थित थी। कहीं कोई प्रतिबन्ध नहीं था। उन ब्रह्माण्डों में दस पद्मयोनि ब्रह्मा विराजमान थे, जो मेरे ही प्रतिबिम्ब से प्रतीत होते थे। वे सभी कमल कोश के निवासी थे और राजहंसों पर चढ़े हुए थे। पृथक्-पृथक् स्थित हुए उन ब्रह्माण्डों में जरायुज आदिचार प्रकार के प्राणी उत्पन्न हो रहे थे। उन सभी ब्रह्माण्डों में जल देने वाले, विशुद्ध (अवग्रह आदि दोषों से रहित) मेघ-समुदाय छा रहे थे। बड़ी-बड़ी नदियाँ बहती थीं और समुद्रों के समाज गर्जना करती थीं। आकाश में अनेक सूर्य तपते थे तथा मरुद्गण इधर-उधर संचरण करते थे। स्वर्ग में देवता, भूतल पर मनुष्य तथा पातालों में रहकर दानव एवं नाग यथेष्ठ क्रीड़ाएँ करते थे। कालचक्र में गुँथी हुई तथा सर्दी, गरमी और वर्षा के स्वभाव वाली सब ऋतुएँ यथा समय प्रकट हो फल-फूलों से सम्पन्न होकर भूमण्डल की सब ओर से शोभा बढ़ाती थीं। प्रत्येक दिशा में स्वर्ग और नरक रूपी फल देने वाले शुभाशुभ आचार का प्रतिपादन करने वाली स्मृतियाँ सर्वत्र प्रौढ़ता को प्राप्त थीं-उनका सब ओर प्रचार और प्रसार था। भोग और मोक्षरूपी फल चाहने वाले विभिन्न जाति के समस्त प्राणी क्रमशः अपनी अभीष्ट वस्तु पाने के लिये यथा समय प्रयत्न करते थे। सात लोक, सात द्वीप, सातों समुद्र और सातों पर्वत, जो काल द्वारा नष्ट होने वाले हैं, बड़े कोलाहल से युक्त प्रतीत होते थे। उन ब्रह्माण्डों में अन्धकार कहीं (खुले स्थानों में) क्षीण हो गया था, कहीं (पर्वत की गुफा आदि में) अधिक स्थिर होकर छा रहा था और कहीं सब झाड़ियों एवं कुन्जों में लेशमात्र तेज से मिश्रित होकर विद्यमान था। नभरूपी नीलकमल के भीतर मेघरूपी भ्रमर मंडरा रहे थे तथा तारक-समूह रूपी केसरों से वह परिपूर्ण था। मेरुपर्वत के कुन्जों में कल्पान्त काल के मेघों की भाँति घनीभूत कुहासा छा रहा था, जो सेमल के फल के भीतर रहने वाली सफेद रूई के समान दिखायी देता था। लोकालोक पर्वत ही जिसकी करधनी है, गर्जते हुए समुद्र ही जिसके आभूषणों की झनकार हैं तथा जो अपने ही रत्नों से विभूषित है, वह पृथ्वी उन ब्रह्माण्डों में उसी प्रकार विराजमान थी जैसे कोई कुलांगना अपने अन्तःपुर में निवास करती हो।

भुवनरूपी गड्ढों में रहने वाले बहुत से प्राणी जिनमें बीज के समान जान पड़ते थे, वे पृथक्-पृथक् ब्रह्माण्ड गोलक अरुण तेज से प्रकाशित हो अनार के फलों के सामान दिखायी देते थे। चन्द्रमा की कला के समान निर्मल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कान्तिवाली, तीन प्रवाहवाली तथा ऊपर-नीचे एवं मध्य-तीन मार्गों पर विचरने वाली गंगा जगत्रूपी पुरुष के यज्ञोपवीत की भाँति सुशोभित हो रही थी। दिशारूपी लताओं में विद्युत्रूपी फूलों से युक्त मेघरूपी पल्लव वायु से टकराकर इधर-उधर झोंके खाते, बिखर जाते और फिर नये पैदा हो जाते थे। विभिन्न भुवनों के भीतर समूह-के-समूह बसे हुए देवता, असुर, मनुष्य और नाग गूलर के फलों में रहने वाले मच्छरों के समान जान पड़ते थे। उन लोकों में युग, कल्प, क्षण, लब, कला और काष्ठा आदि से युक्त एवं सबके अतर्कित विनाश की प्रतीक्षा करने वाला काल प्रवाहरूप से स्थित था। अपने शुद्ध एवं उत्तम चित्त के द्वारा ऐसा दृश्य देखकर मैं बड़े विस्मय में पड़ गया कि यह क्या है और कैसे प्रकट हुआ है। इस स्थूल नेत्र से जो मुझे कुछ भी नहीं दिखायी देता, उसी अनुपम माया जाल को मैं मन से आकाश में स्पष्ट देख रहा हूँ-यह कैसे सम्भव हुआ है ? उसके बाद देर तक उस मायाजाल को देखने के पश्चात् मैंने मन से ही उस ब्रह्माण्ड के आकाश से एक सूर्य को अपने समीप बुलाकर पूछा-

'देवदेवेश्वर ! महातेजस्वी सूर्य ! आओ, तुम्हारा स्वागत है' यों कहकर मैंने पहले तो उनका स्वागत किया। फिर उनके सामने अपना प्रश्न इस प्रकार रक्खा-भगवन् ! तुम कौन हो ? तुम्हारा यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ ? इसके अतिरिक्त जो और जगत दिखायी देते हैं, इनकी उत्पत्ति भी किस प्रकार हुई है ? निष्पाप देव ! यदि जानते हो तो यह सब बताओ।' मेरे इस प्रकार पूछने पर उन्होंने मेरी ओर देखा और पहचान लिया। फिर मुझे नमस्कार करके उत्तम पदों से युक्त वाणी द्वारा इस प्रकार कहा।

सूर्य बोले-जगदीश्वर ! आप इस दृश्य-प्रपञ्च के नित्य कारण हैं, फिर भी इसे जानते कैसे नहीं ? और यदि जानते हैं तो मुझसे पूछते क्यों हैं ? सर्वव्यापी देव ! यदि मेरी बातें सुनने के लिये आप के मन में कौतूहल हो तो सुनिये। महात्मन् ! आप परम महान् परमात्मा हैं (आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं है)। 'सत्-असत्' का बोध न होने से जो मोह में डालने वाली हैं तथा जिनसे अनवरत नाना प्रकार की सृष्टियाँ होती रहती हैं, उन सदसत् कलाओं (संकल्पों) से जो विस्तार को प्राप्त हुआ है, वह मन ही यहाँ विविध पदार्थों के रूप में विलसित हो रहा है। तात्पर्य यह कि यह सारा दृश्यप्रपञ्च मन का ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

विलास या संकल्प है।

छियालीसवां सर्ग समाप्त

सैंतालीसवां सर्ग

स्थूल शरीर की निन्दा

श्री वसिष्ठजी कहते है-रघुनन्दन ! इस संसार में ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सभी जाति के प्राणियों के सदा दो-दो शरीर होते हैं। एक तो मनोमय शरीर होता है, जो शीघ्रतापूर्वक सब कार्य करने वाला और सदा चंचल है। दूसरा मांस का बना हुआ स्थूल शरीर है, जो मन के बिना कुछ नहीं कर सकता। उक्त दोनों शरीर में से जो मांसमय स्थूल शरीर है, वह सभी लोगों को प्रत्यक्ष दिखायी देता है। उसी पर सब प्रकार के शापों, विद्याओं (आभिचारिक कृत्यों) तथा विष, शस्त्र आदि विनाश के साधन-समूहों का आक्रमण होता है। यह मांसमय शरीर असमर्थ, दीन, क्षणभंगुर, कमल के पत्ते पर पड़े हुए जल के समान चंचल तथा प्रारब्ध आदि के अधीन है। देहधारियों का जो यह मन नामक दूसरा शरीर है, वह तीनों लोकों में प्राणियों के अधीन होकर भी प्रायः अधीन नहीं रहता। वह यदि सदा बने रहने वाले धैर्य का अवलम्बन करके अपने पौरुष के सहारे स्थित होता है, तो दुःखों की पहुँच से बाहर हो जाता है-दुःख के हेतु भूत जो दोष हैं, वे उसे दूषित नहीं करते। प्राणियों का मनोमय शरीर जैसे-जैसे चेष्टा करता है, वैसे ही वैसे वह अपने निश्चय के एकमात्र फल का भागी होता है। मांसमय देह (पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर) का कोई भी पौरुष-क्रम सफल नहीं होता, परंतु मनोमय शरीर की प्रायः सभी चेष्टाएँ सफल होती हैं (क्योंकि मन ही प्रधान है)।

माण्डव्य ऋषि ने मानसिक पुरुषार्थ से मन को रागरहित और दुःखशून्य बना शूली पर चढ़कर भी सम्पूर्ण क्लेशों पर विजय प्राप्त कर ली थी। अन्धकारपूर्ण कुएँ में गिरे होने पर भी दीर्घतपा ऋषि ने मानसिक यज्ञों का ही अनुष्ठान करके देवताओं का पद (स्वर्गलोक) प्राप्त कर लिया था। दूसरे भी जो सावधान धीर देवता और महर्षि हैं, वे मन से की जाने वाली उपासना अथवा ध्यान का तनिक भी त्याग नहीं करते। संसार में सावधान चित्तवाला कोई भी पुरुष कभी स्वप्न अथवा जागरण में भी दोष-समूहों से थोड़ा-सा भी अभिभूत नहीं होता। इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह इस संसार में पुरुषार्थ के साथ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अपनी बुद्धि के द्वारा ही अपने मन को पवित्र मार्ग में लगाये। जैसे कुम्हार के घट-निर्माण-सम्बन्धी व्यापार के अनन्तर घड़ा अपने मृत्पिण्डावस्था को त्याग देता है, उसी प्रकार पुरुष उत्तर पदार्थ की वासना के पश्चात् पूर्व की स्थिति का त्याग कर देता है (तात्पर्य यह है कि आगे की दृढ़ वासना से पिछली वासना नष्ट हो जाती है)।

सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त

अड़तालीसवाँ सर्ग

जगत की मनोमयता

श्री वसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! भगवान् ब्रह्मा ने पूर्वकाल में मुझसे ये बातें कही थीं, उन्हीं का आज मैंने तुम्हारे समक्ष वर्णन किया है। नाम और रूप से रहित उस सर्वात्मा ब्रह्म से सम्पूर्ण प्रपञ्च उत्पन्न होता है। वह समय पाकर स्वयं ही घनता को प्राप्त हो संकल्प-विकल्परूप मन की सामर्थ्य से मनोरूप बन जाता है। इसलिये श्रीराम ! जो ये परमेष्ठी ब्रह्मा हैं, इन्हें तुम परमात्मा का समष्टि मन ही समझो। समष्टि मनरूप तत्त्व ही जिनका आकार है, वे भगवान् ब्रह्मा संकल्पमय होने के कारण जिस वस्तु का संकल्प करते हैं, उसी को देखते हैं। तदनन्तर उन्होंने इस अविद्या की कल्पना की। अनात्मा में आत्मा का अभिमान होना ही इस अविद्या का स्वरूप है। फिर उन ब्रह्मा ने क्रमशः पर्वत, तृण और समुद्र रूप इस जगत् की कल्पना की। इस प्रकार यद्यपि क्रमशः परब्रह्म-तत्त्व से यह सृष्टि आयी है, तथापि कुछ लोगों को यह और ही किसी से उत्पन्न हुई दिखायी देती है। अतः श्रीराम ! तीनों लोकों के भीतर वर्तमान सम्पूर्ण पदार्थों की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही हुई है–ठीक उसी तरह, जैसे तरंगों की उत्पत्ति समुद्र से होती है। जो अन्य व्यष्टि-चेतन शक्तियाँ अर्थात् प्राणी हैं, वे सब वास्तव में सर्वशक्तिमान् ब्रह्म से अभिन्न ही हैं–साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ही हैं। जब यह जगत् विस्तार को प्राप्त होता है, तब वे ही प्राणी समष्टि-मनरूप ब्रह्मा से पूर्वकर्मानुसार विकास को प्राप्त होते हैं। ये सब सहस्त्रों व्यष्टिचेतन संसरण शील जीव कहे जाते हैं। वे जीव सच्चिदानन्दघन परमात्मा से ही प्रकट होकर आकाश में तन्मात्राओं के साथ संयुक्त होते हैं। फिर आकाश स्थित वायुओं के मध्यवर्ती जो चौदह श्रेणियों में विभक्त जीव हैं, उनमें से जिस प्रकार की जीव-जाति में रहने से जो जीव जैसी वासना और कर्म के अभ्यास में प्रवृत्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

होते हैं, उसी जीव-जाति की प्राण शक्ति द्वारा वे स्थावर अथवा जंगम शरीर में प्रविष्ट हो रज-वीर्यरूपी बीज भाव को प्राप्त होते हैं। तत्पश्चात् योनि से जगत् में जन्म ग्रहण करते हैं। तदनन्तर वासना-प्रवाह के अनुसार अपने कर्म फल के भागी होते हैं। फिर शुभ और अशुभ वासनाओं से युक्त पुण्य-पाप कर्मरूपी रस्सियों से जिनका लिंग शरीर बँधा है, ऐसे वे जीव घूमते हुए कभी उत्तम लोकों में जाते हैं और कभी नरकों में गिरते हैं।

जीवों की ये सब जातियाँ वासनारूप ही हैं। कितने ही जीव हजारों जन्मों तक कर्म रूपी बंवडर में पड़कर चक्कर काटते हुये जंगल के पत्तों की भाँति झड़ जाते हैं और पर्वत के कुक्षि भाग में लुढ़कते फिरते हैं। कितने ही जीव जिन्हें सच्चिदानन्दघन परमात्मा का ज्ञान नहीं है। अतएव जो मोहित रहते हैं, वे असंख्य जन्म धारण करते हैं। चिरकाल से जन्म लेकर इस संसार में सैकड़ों कल्पों तक जन्म और मरण की परम्परा में बँधे रहते हैं। कतिपय जीव, जिनके कई असुन्दर जन्मान्तर व्यतीत हो चुके हैं, वर्तमान जन्म में शुभकर्म परायण हो इस जगत् में विचरण करते हैं। कई जाति के जीव तत्त्वज्ञान प्राप्त करके उसी तरह परमपद को प्राप्त हो गये हैं, जैसे वायु से उड़ाये हुये समुद्र के जल बिन्दु पुनः समुद्र के ही जल में प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकार यहाँ परमपदरूप ब्रह्म से सम्पूर्ण जीवों की गुण और कर्म के अनुसार उत्पत्ति (सृष्टि) हुई है। यह सृष्टि अविर्भाव और तिरोभाव के कारण क्षणभंगुर है तथा जन्म-मरण की परम्परा को प्रकट करने वाली है। वासनारूपी विष की विषमता से उत्पन्न हुए नाना प्रकार के दुःखरूपी ज्वर को धारण करती है। अनन्त संकटों से भरे हुए अनर्थकारी कार्यों का समादर करने वाली है। अनेक दिशाओं, देशों, कालों तथा विविध पर्वतों की कन्दराओं में घुमाने वाली-कर्मफल का भोग कराने वाली है। स्वयं निर्मित उत्तम विचित्रताओं से इसने चारों ओर भ्रम का जाल बिछा रक्खा है। परमार्थ दृष्टि से यह सृष्टि असत् ही है। वत्स रामभद्र ! विक्षुब्ध मन ही जिसका शरीर है, वह संसाररूपी जंगल की जीर्ण-शीर्ण लता यदि तत्त्वज्ञानरूपी कुल्हाड़ी से जड़ सहित काट दी जाय तो फरसे से काटी गयी बेल के समान यह फिर पनप नहीं सकती।

अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

उनन्चासवाँ सर्ग

जीवों की चौदह श्रेणियाँ

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं–श्रीराम ! सात्त्विक, राजस और तामस भेद से सभी पदार्थ उत्तम, मध्यम और अधम–इन तीन श्रेणियों में विभक्त होते हैं। इनकी जो इधर–उधर विभिन्न भुवनों में उत्पत्तियाँ बतायी गयी हैं, उनका विभाग इस प्रकार है–बताता हूँ, सुनो। जिस जीव को अपने पूर्वजन्म में शम, दम आदि समस्त साधन तथा गुण–सम्पत्ति प्राप्त होने पर भी ज्ञान नहीं हुआ, वह जीव इसी जन्म में ज्ञान–लाभ के योग्य बनकर उत्पन्न होता है; अतः यही उसका प्रथम जन्म है। उस श्रेणी के जीव का वह जन्म 'इदं प्रथम' नाम से विख्यात होता है। यह इदम्प्रथमता पूर्व–जन्म के शुभ अभ्यास से प्रकट होती है। वही इदम्प्रथमता यदि पूर्व जन्म में वैराग्य की कमी के कारण शुभ लोकों का आश्रय लेने वाली रही हो अर्थात् उत्तम लोकों की प्राप्ति के लिये किये गये शुभ कर्मों से संयुक्त हो और इसीलिये विचित्र संसार–वासना के कारण भोग–व्यवहार वाली हो तो भोगों से वासना का क्षय होने पर वह कुछ ही जन्मों से मोक्ष की प्राप्ति करा देती है। अतः शान्ति आदि गुणों से युक्त होने के कारण उसी दूसरी जीव–जाति को 'गुण–पीवरी' कहते हैं।

श्रीराम ! नाना प्रकार के सुख–दुःखरूपी फलों को देने में मुख्य कारण भूत पूर्वजन्म के पुण्य और पाप का अनुमान कराने वाली जो जीवों की श्रेणी है, उसे पुण्यात्मा पुरुषों ने 'ससत्त्वा' कहा है (क्योंकि वह सत्त्वगुण की वृद्धि के द्वारा मोक्ष की भागिनी होती है)। जो जीवश्रेणी विचित्र संसार की वासनाओं से युक्त होकर अत्यन्त कलुषित हो गयी हो अर्थात् पूर्वजन्म में संचित किये गये अधिक दुष्कर्मजनित दुर्वासनाओं से मलिन हो गयी हो और भाँति–भाँति के भले–बुरे फल प्रदान करने वाले मुख्य कारणभूत पूर्वजन्म के धर्म और अधर्म का अनुमान कराने वाली हो, वह सहस्त्रों जन्मों में ज्ञान की भागिनी होती है। इसलिये साधु पुरुष उसे 'अधमसत्वा' कहते हैं। वही जीवश्रेणी, यदि अध्यात्म–शास्त्र से विमुख होने के कारण असंख्य, अनन्त जन्मों के पश्चात् वर्तमान जन्म में भी उसके मोक्ष होने में संदेह ही रह जाय तो उसे 'अत्यन्त तामसी' कहते हैं। नृपश्रेष्ठ श्रीराम ! जीव की जो उत्पत्ति पूर्वजन्म की वासनाओं के अनुरूप एवं वैसे ही आचार व्यवहार वाली हो तथा दो–तीन जन्मों के अनन्तर जिसे मनुष्य–जन्म प्राप्त हुआ हो और वैसे ही कार्य कर रही हो, वह लोक में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

'राजसी' कही गयी है। जिसके लिये ज्ञान प्राप्ति के योग्य जन्म का मिलना दूर नहीं है, जब जीव को ऐसी उत्पत्ति सुलभ हो जाती है, तब उस जन्म में मृत्यु होने मात्र से उसमें मोक्ष-प्राप्ति की योग्यता आ जाती है। उस जन्म में उसके द्वारा वैसे ही कार्य होने से जो अनुमान होता है, उसके आधार पर ही मुमुक्षुओं ने उस अवस्था को 'राजस-सात्त्विकी' कहा है। वही उत्पत्ति यदि पूर्वोक्त मनुष्य-जन्मों से भिन्न, थोड़े से ही (देवता आदि) जन्मों में क्रमशः ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा मोक्ष की भागिनी हो तो वैसी उत्पत्ति को उसके ज्ञाता विद्वान 'राजस-राजसी' कहते हैं। वही यदि राजस-राजसी की अपेक्षा चिरकाल में मोक्ष की इच्छा से सम्पन्न होकर सैकड़ों जन्मों के पश्चात् मोक्ष-प्राप्ति की अधिकारिणी हो और ऐसे कार्यों का आरम्भ करे, जिनसे राजस एवं तामस कर्म जनित फलों की प्राप्ति हो तो वह जीव-जाति या जीव-श्रेणी सज्जन पुरुषों द्वारा 'राजस-तामसी' कही गयी है। यदि वही उत्पत्ति ऐसे कार्यों का आरम्भ करे, जिनसे सहस्त्रों जन्मों के पश्चात् भी मोक्ष मिलने में संदेह ही रहे, उसे 'राजसात्यन्ततामसी' कहा गया है।

सर्ग के आदि में हिरण्यगर्भ ब्रह्मा से मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है। तभी से सहस्त्रों जन्म भोग लेने के पश्चात् भी यदि बहुत जन्मों के बाद चिरकाल में मोक्ष मिलने की सम्भावना हो तो महर्षियों ने 'तामसी' उत्पत्ति कहा है। वह तामस उत्पत्ति यदि तामस योनि होने पर भी मोक्ष की सम्भावना से युक्त हो और वैसे ही कर्मों के आयोजन से सुशोभित होती हो तो उसे विद्वान् पुरुष 'तामससत्त्वा' कहते हैं। तामस-राजस गुणों से सम्पन्न कतिपय जन्मों में ही जहाँ मोक्ष-प्राप्ति की सम्भावना हो, उस उत्पत्ति को 'तमोराजसरूपिणी' कहा गया है तथा जो उत्पत्ति पहले के हजारों जन्मों से लेकर आगे होने वाले सैकड़ों जन्मों तक मोक्ष-प्राप्ति की योग्यता से रहित हो, उसे उत्पत्ति की श्रेणी का विभाजन करने और जानने वाले विद्वानों ने 'तामस-तामसी' कहा है। जिस उत्पत्ति में अतीतकाल के लाखों जन्मों से लेकर भविष्यकाल के लाखों जन्मों तक मोक्ष मिलने में संदेह ही रहे, उसे 'अत्यन्त तामसी' कहते हैं।

प्राणियों की ये सारी जातियाँ पूर्व कर्मानुसार ब्रह्म से उत्पन्न होती हैं- ठीक उसी तरह, जैसे कुछ चंचल हुए समुद्र से तरगें उठती रहती हैं। जीवों की ये सभी श्रेणियाँ उसी तरह ब्रह्म से उत्पन्न हुई हैं, जैसे प्रज्वलित अग्नि से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चिनगारियाँ प्रकट होती हैं। जैसे सुवर्ण से कड़े, बाजूबंद और केयूर आदि आभूषण प्रकट होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म से सारी जीव-श्रेणियाँ पूर्व-वासना और कर्मों के अनुसार उत्पन्न होती हैं। श्रीराम ! जैसे घटाकाश, स्थाल्यकाश और छिद्राकाश आदि आकाश के ही कल्पित रूप हैं, उसी तरह अजन्मा परब्रह्म की ही सम्पूर्ण प्राणिवर्ग के रूप में कल्पना हुई है। अतः वे सब प्राणी ब्रह्म के ही रूप हैं। जैसे जल से फुहारें, भँवरें, लहरें और बूँदें प्रकट होती हैं, अतः सब जलरूप ही हैं, उसी तरह सम्पूर्ण लोक-रचनाएँ परब्रह्म पद से ही प्रकट हुई हैं, अतः वे सब ब्रह्मस्वरूप ही हैं।

श्रीराम ! जैसे सूर्य के तेज से ही मृग-तृष्णारूपिणी सरिताओं की प्रतीति होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण दृश्य-दर्शन ब्रह्म के ही संकल्प से प्रकट हुए हैं। ये सारे दृश्य-दर्शन द्रष्टा ब्रह्म के स्वरूप से भिन्न नहीं हैं-ठीक वैसे ही, जैसे चाँदनी चन्द्रमा से और प्रकाश तेज से पृथक् नहीं है। इस तरह जो नाना प्रकार की जीवों की श्रेणियाँ हैं, ये जिस ब्रह्म से उत्पन्न होती हैं, उसी में लीन भी हो जाती हैं। रघुनन्दन ! इस प्रकार भगवान् परब्रह्म परमात्मा की इच्छा से व्यवहार में लगे हुए जो विचित्र आकार वाले रूप वैभव से सम्पन्न पूर्वोक्त प्राणिवर्ग हैं, वे आग से प्रकट होने वाली चिनगारियों के समान विभिन्न लोकों में आते, जाते और ऊँची-नीची योनियों में जन्म लेकर भ्रमण करते हैं।

उनन्चासवाँ सर्ग समाप्त

पचासवाँ सर्ग

कर्ता और कर्म की सहोत्पत्ति एवं अभिन्नता तथा चित्त और कर्म की एकता का प्रतिपादन

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-हे रघुनन्दन ! जैसे वृक्ष से फूल और उसकी गन्ध दोनों साथ ही उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सृष्टि के आदि में परम-पद रूप ब्रह्म से परस्पर अभिन्न कर्म और कर्ता दोनों स्वयं (स्वभाववश) ही एक साथ प्रकट हुए। जैसे अज्ञानी लोगों की दृष्टि में सर्वत्र फैले हुए निर्मल आकाश के भीतर नीलिमा प्रतीत होती है, उसी तरह समस्त संकल्पों से रहित सर्वव्यापी विशुद्ध ब्रह्म अज्ञ पुरुषों की दृष्टि से ही जीवों का प्राकट्य प्रतीत होता है। राघव ! जहाँ अज्ञानी लोगों का ही आचार-व्यवहार दिखायी देता है, वहीं पर 'जीव ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं' ऐसी उक्तियाँ टिक पाती हैं। किंतु जहाँ पर ज्ञानी पुरुषों का व्यवहार है, वहाँ यह कहना शोभा नहीं देता कि 'यह वस्तु

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तो ब्रह्म से उत्पन्न हुई है और यह नहीं हुई है।' अतः भेद दृष्टि से जो शोचनीय द्वैत-कल्पना की गयी है, उसे व्यवहार मात्र के लिये स्वीकार करके यह उपदेश दिया जाता है कि 'यह ब्रह्म है और ये जीव हैं।' वास्तव में यह कथन केवल वाणी का विलास मात्र है। ये सब जीव राशियाँ सदा उस परमात्मा में स्थित रहती हैं, उसी से उत्पन्न होती हैं और उसी में लीन हो जाती हैं। रघुनन्दन ! जैसे फूल और गन्ध एक दूसरे से अभिन्न हैं, उसी तरह पुरुष (कर्ता) और कर्म परस्पर अभिन्न हैं। ये परमात्मा से प्रकट होते और धीरे-धीरे उसी में लीन हो जाते हैं। ये दैत्य, नाग, मनुष्य और देवता इस जगत में वस्तुतः उत्पन्न हुए बिना ही वासनाओं के साथ उत्पन्न होते-से प्रतीत होते हैं और तुरंत गमन आदि क्रिया से युक्त हो जाते हैं। साधो ! उन दैत्य, नाग, मनुष्य और देवता आदि के संसार-भ्रमण में आत्मा के यथार्थ ज्ञान के अभाव के अतिरिक्त दूसरा कोई कारण नहीं दिखायी देता। वह आत्मविस्मरण ही जन्मान्तररूपी फल प्रदान करने वाला है।

श्री रामचन्द्र जी ने कहा-भगवन् ! श्रुति, स्मृति-रूप प्रामाणिक दृष्टि वाले, वीतराग ऋषियों द्वारा अर्थ में श्रुति से विरोध न रखने वाले जो-जो स्मृति, पुराण एवं इतिहास आदि ग्रन्थ सिद्धान्त-निर्णय पूर्वक रचे गये हैं, वे सब शास्त्र कहलाते हैं। जो महान् सत्त्वगुण से सम्पन्न, धीर (ज्ञानी) और समदर्शी हैं तथा जिन्हें अनिर्वचनीय ब्रह्म का साक्षात्कार हो चुका है, वे पुरुष साधु (श्रेष्ठ संत) कहे गये हैं। जिन्हें तत्त्वज्ञान नहीं हुआ है, उन पुरुषों के सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिये (उन्हें धर्म और ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार कराने के लिये) श्रेष्ठ पुरुषों का सदाचार और श्रुति-स्मृतिरूप शास्त्र-ये ही दो नेत्र हैं।

उनकी दृष्टि सदा इन (दोनों-सदाचार और शास्त्र) का ही अनुसरण करती है। जो पुरुष श्रेष्ठ व्यवहार के लिये शास्त्र का अनुसरण नहीं करता, उसका सभी शिष्टजन बहिष्कार कर देते हैं और वह दुःख में निमग्न हो जाता है। प्रभो ! इस लोक में और वेद में भी ऐसा सुना जाता है कि कर्म और कर्ता यहाँ क्रमशः एक के बाद एक उत्पन्न होकर कार्य-कारणभाव से परस्पर मिले हुए हैं। कर्म के द्वारा कर्ता का निर्माण होता है और कर्ता से कर्म का, जैसे बीज से अंकुर होता है और अंकुर से बीज। यह न्याय लोक और वेद में भी प्रसिद्ध है। जिस वासना के कारण जीव इस संसाररूपी पिंजड़े में डाला जाता है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उसी वासना के अनुसार उसे फल भी भोगना पड़ता है। भगवन् ! जानने योग्य तत्त्व के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ महर्षे ! मुझे ठीक-ठीक बताइये कि जीव का किया हुआ कर्म फलरूप में अवश्य परिणत होता है या नहीं। यदि कर्म का फल अवश्य मिलता है, तब प्राणियों के जन्म आदि में वही हेतु हुआ। फिर आपने उत्पत्ति को अकारण या अज्ञान कल्पित कैसे बताया ? मेरे इस महान् संशय का निवारण कीजिये।

श्री वसिष्ठ जी ने कहा-हे रघुनन्दन ! मैं तुम्हें साधुवाद देता हूँ, तुमने मेरे सामने यह बड़ा सुन्दर प्रश्न रक्खा है। सुनो, मैं तुम्हें इसका उत्तर देता हूँ, जिससे पूर्णतया ज्ञान का उदय हो जाता है। यह संकल्प-विकल्पात्मक मन का विकास ही कर्मों का कारण है-उसी के अनुसार फल प्राप्त होता है। मन के संयोग के बिना किये हुए कर्म फलदायक नहीं होते। सृष्टि के आरम्भ में परम-पदरूपी ब्रह्म से जब मनरूपी तत्त्व उत्पन्न हुआ, तभी उस मन के संकल्प के अनुसार जीवों का कर्म भी उत्पन्न हुआ और जीव पूर्व वासना के अनुसार देह वाला होने के कारण देह में अहंभाव से स्थित है। (मनसे ही कर्म की उत्पत्ति हुई; इसलिये बीज और वृक्ष की भाँति कारण-कार्यरूप मन और कर्म परस्पर अभिन्न हैं।) जैसे अभिन्नरूप से स्थित हुए पुष्प और सुगन्ध में यहाँ भेद नहीं है, उसी प्रकार परस्पर अभिन्न मन और कर्म में भी भेद नहीं है। इस जगत् में क्रिया का होना ही विद्वानों द्वारा कर्म बताया गया है। उस क्रिया का आश्रयभूत देह भी पहले मन ही था अर्थात् यह देह भी मन का ही संकल्प होने के कारण मनोरूप ही है। इसी प्रकार क्रिया भी मन का ही संकल्प होने से मन का ही स्वरूप है। न ऐसा कोई पर्वत है, न आकाश है, न समुद्र है और न ऐसा कोई लोक ही है, जहाँ किये हुए अपने कर्मों का फल नहीं प्राप्त होता। तात्पर्य यह कि कर्मों का पल अवश्यम्भावी है। ज्ञानपूर्वक किया हुआ कर्म चाहे पूर्व जन्म का हो या इस जन्म का, वह क्रियारूप पुरुषार्थ ही पुरुष का परम प्रयत्न है। वह कभी निष्फल नहीं होता। जो मुक्त पुरुष है, उसी के कर्म का नाश होने पर मन का नाश होता है मन का नाश ही कर्म का अभाव है। जो मुक्त नहीं है, उसके कर्म और मन का नाश कदापि नहीं होता। अग्नि और उष्णता की भाँति सदा परस्पर मिले हुए चित्त और कर्म-इन दोनों में से एक का अभाव होने पर दोनों का ही अभाव हो जाता है।

पचासवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इक्यावनवाँ सर्ग

मन का स्वरूप तथा उसकी विभिन्न संज्ञाओं पर विचार

श्री रामचन्द्र जी ने कहा-ब्रह्मन् ! जो जड़ होकर भी अजड़ (चेतन) के समान आकार धारण किये हुए है, उस मन के संकल्पारूढ़ स्वरूप का आप मेरे समक्ष विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

श्री वसिष्ठ जी ने कहा-रघुनन्दन ! सर्वशक्तिमान्, असीम, महान् विज्ञानानन्दघन परमात्मतत्त्व की शक्ति से रचित जो संकल्पमय रूप है, उसी को विद्वान् पुरुष मन समझते हैं। वह मन स्वयं भी संकल्प की सामर्थ्य से युक्त है। इस लोक में जैसे गुणी का गुण से हीन होना सम्भव नहीं, उसी प्रकार मनका कल्पनात्मक क्रिया शक्ति से रहित होना असम्भव है। एकमात्र संकल्प ही जिसका शरीर है तथा जो नाना प्रकार के विस्तार से सुशोभित होने वाला एवं फलधर्मी (फल का जनक) है, उस चित्तरूपी कर्म ने अपने ही स्वरूप से इस नानाविध विश्व का, जो मायामय, निष्कारण (हेतु एवं प्रयोजन से रहित), विन्यासशून्य तथा वासना की कल्पनाओं से व्याप्त है, विस्तार कर रक्खा है। जिसने जहाँ लता की भाँति जिस वासना को जिस प्रकार आरोपित किया है, वहाँ पर कर्मानुसार फल देने वाली वह वासना ही उसे तदनुरूप फलरूप में प्राप्त होती है। मन जिसका अनुसंधान करता है, उसी का सम्पूर्ण कर्मेन्द्रिय-वृत्तियाँ सम्पादन करती हैं; इसलिये मन को कर्म कहा गया है। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, कर्म, कल्पना, संसृति, वासना, अविद्या, प्रयत्न, स्मृति, इन्द्रिय, प्रकृति, माया, क्रिया तथा इनके सिवा और भी विचित्र शब्दोक्तियाँ संसार भ्रम की ही हेतु भूत हैं। चित्त भाव को प्राप्त हो प्रस्तुत संसार पदवी को पहुँचे हुए शुद्ध चेतन के अपने ही सैकड़ों संकल्पों द्वारा ये भिन्न-भिन्न नाम अत्यन्त रूढ़ि (प्रसिद्धि) को प्राप्त हुए हैं। वह शुद्ध चेतन परमात्मा ही लोक में जीव कहलाता है। मन, चित्त और बुद्धि भी उसी के नाम हैं।

जैसे नाटक में नट अनेक प्रकार के रूप धारण करता है, उसी प्रकार मन भी भिन्न-भिन्न कर्मों का आश्रय ले अनेक प्रकार के नाम धारण करता है। जैसे एक ही मनुष्य भोजन बनाने से पाचक और पढ़ाने से पाठक कहलता है-विभिन्न एवं विलक्षण अधिकारों के कारण विचित्र तथा विकृत (उन-उन कर्मों के प्रकाशक) नाम पाता है, उसी प्रकार मन भी कर्मवश उक्त नाम धारण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करता है। रघुनन्दन ! मैंने चित्त की जो ये अनेक संज्ञाएँ बतायी हैं, इन्हीं को अन्यान्यवादियों ने अपनी सैकड़ों कल्पनाओं द्वारा अन्य प्रकार से कहा है। अपने भावों के अनुरूप बुद्धि का मन में आरोप करके उन वादियों ने मन के द्वारा स्वेच्छा से मन, बुद्धि और इन्द्रिय आदि के विचित्र-विचित्र नाम भेद किये हैं। एक वादी के मत से मन जड़ है तो दूसरे के मत से वह जीव से भिन्न है। तीसरे के मत से वह अहं भावना का प्रतीक है तथा चौथे वादी के मतानुसार उसका नाम बुद्धि है।

रघुनन्दन ! अन्तःकरण के एकरूप होने के कारण उसकी संकल्प आदि भिन्न-भिन्न वृत्तियों के भेद से निर्मित जो अहंकार, मन और बुद्धि आदि नाम मैंने बताये हैं, उनकी नैयायिकों ने अन्य प्रकार से कल्पना की है। सांख्यों और चार्वाकों ने भी उनकी विभिन्न रूपों में कल्पना की है। मीमांसक, जैन, बौद्ध, वैशेषिक तथा पांचरात्र आदि अन्य विभिन्न वादियों ने भी अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार उन नामों की भिन्न-भिन्न प्रकार से कल्पना कर रक्खी है। जैसे बहुत से राहगीरों का एक ही नगर में जाना होता है, उसी प्रकार उन सभी वादियों का गन्तव्य स्थान एकमात्र पारमार्थिक पद ही है। परम पद में आरूढ़ होने की इच्छा वाले वे जिज्ञासुजन परमार्थ-वस्तु को न समझने तथा विपरीत बुद्धि को अपनाने के कारण अनेक प्रकार के विकल्पों द्वारा केवल विवाद या तर्क-वितर्क करते हैं। जैसे विचित्र देशकाल में उत्पन्न हुए पथिक अपनी विभिन्न दृष्टि के अनुसार अपने-अपने गन्तव्य मार्ग की प्रशंसा करते हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न देशों और कालों में पैदा हुए वे सभी वादी दृष्टि भेद के कारण अपने-अपने मार्ग (मत) का समर्थन करते हैं। यह सब कुछ चित्त ही है, ऐसा अनुभव प्रायः सभी लोगों को होता है; क्योंकि यदि चित्त का सहयोग न हो तो मनुष्य इस संसार को देखकर भी नहीं देख पाता। मनको साथ रखने पर ही पुरुष भली-बुरी वस्तु को सुनकर, छूकर, देखकर, आस्वादनकर और सूँघकर अपने भीतर हर्ष तथा विषाद का अनुभव करता है। जैसे विभिन्न रूपों के दर्शन में प्रकाश कारण है, उसी प्रकार विभिन्न विषयों के अनुभव में मन ही कारण है।

जिस पुरुष का चित्त विषयों में बँधा हुआ है, वह बन्धन में पड़ता है तथा जिसका चित्त कर्मवासना के बन्धन से रहित है, वह मुक्ति को प्राप्त होता

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है। मन के एकमात्र ब्रह्माकार होने पर संसार का लय हो जाता है। यदि चित्त से पृथक् जगत् की सत्ता होती तो जिसका चित्त लीन हो गया है, उस सम्पूर्ण प्राणि समुदाय की दृष्टि में सारे जगत् का लय क्यों हो जाता (अतः चित्त से अतिरिक्त जगत् नहीं है)। जैसे एक ही काल विभिन्न ऋतुओं के कारण नाना रूपों में प्रकट होता है, उसी तरह एक ही मन विभिन्न कर्मों के कारण विचित्र आकार धारण कर लेता और अनेक नामों से प्रतिपादित होता है। जैसे चेतन मकड़ी से जड़ तन्तु की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार नित्य-प्रबुद्ध पुरुष परब्रह्म परमात्मा के संकल्प से जड़ प्रकृति एवं प्राकृत पदार्थ प्रकट होते हैं।

इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त

बावनवाँ सर्ग

मन को परमात्म चिन्तन में लगाने की आवश्यकता

श्री रामचन्द्रजी ने कहा-ब्रह्मन् ! आपके पूर्वोक्त कथन से यह तात्पर्य प्रकट होता है कि यह जगत् रूपी आडम्बर मन से ही आविर्भूत हुआ है। अतः यह जगत् मन का ही कार्य है।

श्री वसिष्ठ जी ने कहा-जैसे मरुप्रदेश का प्रचण्ड धाम अपने में मृग-तृष्णारूपी जल का भ्रम ग्रहण करता है, उसी प्रकार दृढ़भावना से अनुरंजित हुए मन ने ही स्वयं प्रकाश आत्मा पर आवरण डालने वाले जड़ जगत् को स्वीकार किया है। मैं ऐसा मानता हूँ कि विविध प्रकार के आचार-आकाश-प्रदेश, ग्राम और नगर आदि का रूप धारण करने वाली विस्तृत आकृति के द्वारा मन ही अपने स्वरूप का विस्तार कर रहा है। ऐसी स्थिति में शरीरों के समुदाय तृण, काष्ठ और लता आदि के समान हैं। अतः उनके विचार से कौन सा प्रयोजन सिद्ध होगा। हमें तो इनके कूलभूत केवल मन का ही विचार करना चाहिये। मैं समझता हूँ कि यह सम्पूर्ण विस्तृत जगत् मन से ही व्याप्त है। मनसे भिन्न तो केवल परमात्मा ही शेष रहते हैं। परमात्मा सर्वातीत, सर्वव्यापी और सर्वाधार हैं, परमात्मा के ही प्रसाद से मन सम्पूर्ण संसार में दौड़ लगाता एवं नाचता-कूदता है। मेरे मत में मन ही क्रिया है और वही विभिन्न शरीरों का कारण है। मन ही जन्म लेता और मरता है; क्योंकि ऐसे गुण (भाव-विकार) आत्मा में नहीं हैं। मेरी राय में मन ही एक ऐसी वस्तु है, जिसका विचार करने से वह स्वयं विलीन हो जाता है। मन का विलय होने मात्र से परम श्रेय (मोक्ष) की प्राप्ति

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हो जाती है। भ्रम उत्पन्न करने वाली मन नाम की क्रिया का क्षय होने पर जीव मुक्त कहा जाता है। वह फिर इस संसार में जन्म नहीं लेता है।

श्रीराम ! जिनका भीतरी भाग अत्यन्त विस्तृत है, ऐसे तीन आकाश विद्यमान हैं। पहला चित्तकाश, दूसरा चिदाकाश और तीसरा भूताकाश। जो बाहर और भीतर परिपूर्ण है, जगत् की उत्पत्ति और विनाश का ज्ञाता है तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियों में व्यापक है, वह विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही चिदाकाश कहलाता है। जो इन्द्रियों और महाभूतों से श्रेष्ठ है, काल की कलना जिसका स्वभाव है और जिसने अपने संकल्प के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् का विस्तार किया है, वह समस्त प्राणियों का हितकारी संकल्पात्मक मन ही चित्ताकाश कहा जाता है। दसों दिशाओं के मण्डलाकार विस्तार से भी जिसका कलेवर सीमित नहीं होता तथा जो वायु और मेघ आदि का आश्रय है, वह भूतात्मक आकाश ही भूताकाश कहलाता है। भूताकाश और चित्ताकाश-ये दोनों परब्रह्म परमात्मरूप चिदाकाश की शक्ति से उत्पन्न हुए हैं। जैसे दिन अपनी संनिधि मात्र से समस्त कार्य समूहों के सम्पादन में कारण होता है, उसी प्रकार, चेतन परमात्मा भी अपने सकाशमात्र से सबके कारण हैं। जिसे आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं है, उसी के लिये तीन आकाशों की कल्पना हुई है। उसी को उपदेश देने के लिये त्रिविध आकाश की कल्पना की जाती है। जिसे आत्मतत्त्व का बोध हो गया है, उसके लिये यह कल्पना नहीं है। आत्मज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में तो सब प्रकार की कल्पनाओं से रहित सर्वव्यापी, सर्वस्वरूप एकमात्र परब्रह्म परमात्मा ही नित्य विराजमान हैं। अज्ञानी पुरुष को ही अनेक प्रकार की वाक्य रचना से युक्त द्वैत एवं अद्वैत के भेदों का निरूपण करते हुए तत्त्व ज्ञान का उपदेश दिया जाता है। ज्ञानी पुरुष को किसी तरह भी ऐसा उपदेश नहीं दिया जाता।

निष्पाप श्रीराम ! मन जिस किसी से भी उत्पन्न हुआ हो और जो कुछ भी उसका स्वरूप हो, उसकी उधेड़-बुन में न पड़कर बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि वह उसे नित्य प्रयत्नपूर्वक अपनी मुक्ति के लिये परमात्मा में लगाये। रघुकुल तिलक ! परमात्मा में लगाया हुआ चित्त वासना रहित एवं शुद्ध हो जाता है। तत्पश्चात् वह कल्पनाशून्य होकर परमात्मभाव को प्राप्त हो जाता है। श्रीराम ! यह सारा चराचर जगत् चित्त के अधीन है। इसलिये बन्धन और मोक्ष भी चित्त के ही अधीन हैं। (अतः मनुष्य को उचित है कि वह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मोक्ष-प्राप्ति के लिये चित्त को परमात्म चिन्तन में लगाये।)

चिरकाल तक चित्त के निरोध की रक्षा करने और दीर्घकाल तक परमात्मा का चिन्तन करने से अभ्यासवश शून्यता को प्राप्त होकर मन फिर शोक नहीं करता। मन के प्रमाद से नाना प्रकार के दुःख बढ़ते हैं और बढ़कर पर्वत-शिखर के समान हो जाते हैं तथा उसी को वश में कर लेने से ज्ञान का उदय होने के कारण वे सारे दुःख उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्य के सामने बर्फ का ढेर गल जाता है। यदि मन शास्त्रों के अर्थज्ञान से उत्पन्न हुई अनिन्द्य वासना से युक्त हो राग आदि के विषय में मौन (निरोध) का आश्रय ले जीवन पर्यन्त मुनि की तरह रमता है तो आगे चलकर पावन को भी पावन बनाने वाले, जन्म रहित, शीतल (शान्तिमय) परिपूर्ण ब्रह्मपद को प्राप्त करके उसी में स्थित हुआ जीवन्मुक्त पुरुष बड़ी-से-बड़ी आपत्तियों में पड़ने पर भी कभी शोक नहीं करता।

बावनवाँ सर्ग समाप्त

तिरेपनवाँ सर्ग

ब्रह्म की विविध शक्ति

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-श्रीराम ! जैसे जल-जाति का बोध रखने वाले पुरुषों की दृष्टि में तरंग समुद्र से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार इस लोक में जिन्हें परमात्मतत्त्व का ज्ञान हो गया है, उनकी दृष्टि में उनका मन भी परब्रह्म परमात्मा ही है, उनसे भिन्न नहीं। रघुनन्दन ! अज्ञानी पुरुषों का मन ही संसार रूपी भ्रम का कारण है (अथवा जन्म-मरण रूपी संसार में भटकाने का हेतु है) -जैसे जो लोग जल-सामान्य पर दृष्टि नहीं रखते, उन्हीं को समुद्र के जल और तरंग में भेद प्रतीत होता है। अज्ञानियों के पक्ष में उन्हें केवल ज्ञान का उपदेश देने के लिये ही वाच्य-वाचक-सम्बन्ध जनित भेद की कल्पना की जाती है। परब्रह्म परमात्मा सर्वशक्तिमान्, नित्य, परिपूर्ण एवं अविनाशी हैं, उन सर्वव्यापी परमात्मा में जो न हो, ऐसी किसी वस्तु की सत्ता ही नहीं है। भगवान् सम्पूर्ण शक्तियों से परिपूर्ण हैं। उन्हें जब जो शक्ति रुचती है, तब उसी अनन्त शक्ति को वे सर्वव्यापी परमात्मा प्रकाशित करते हैं (उपयोग में लाते हैं)। श्रीराम! प्राणियों के शरीर में ब्रह्म की चेतना शक्ति दिखायी देती है। इसी तरह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

प्रवह आदि वायुओं में ब्रह्म की स्पन्दशक्ति, प्रस्तर में जड़-शक्ति, जल में द्रव-शक्ति, अग्नि में तेजस् शक्ति, आकाश में शून्य-शक्ति और जगत की स्थिति में उनकी भाव (सत्ता) शक्ति विद्यमान है। ब्रह्म की सम्पूर्ण शक्ति दसों दिशाओं में व्याप्त दिखायी देती है। विनाशकाल में नाशशक्ति, शोकयुक्त प्राणियों में शोक-शक्ति, प्रसन्न जीवों में आनन्दशक्ति, योद्धा में वीर्यशक्ति, सृष्टिकाल में सर्ग शक्ति और प्रलयकाल में उनकी सर्वशक्ति सत्ता दृष्टिगोचर होती है। जैसे वृक्ष के बीज में फल, फूल, लता, पत्र, शाखा-प्रशाखा तथा जड़सहित वृक्ष अव्यक्तरूप से विद्यमान रहता है, उसी प्रकार ब्रह्म में यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है।

रघुनन्दन ! अब इस जगत् को और अहंतत्व (जीव) को तुम ब्रह्मरूप ही देखो। वह परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापी है। उसका महान् (अनन्त) स्वरूप नित्य प्रकाशमान है। वही ब्रह्म जब किंचित् मननशक्ति को धारण करता है, तब मन कहलाता है। जैसे आकाश में भ्रमवश मोर के पंखों की प्रतीति होती है। शत्रुसूदन श्री राम ! यह जो मन का मननात्मक रूप प्रकट हुआ है, वह ब्रह्म की शक्ति ही है, इसलिये वह ब्रह्म ही है। 'इदं' (यह) 'तत्' (वह) और 'अहं' (मैं) -यह सब भेद प्रतीतिमात्र ही है, वास्तविक नहीं। जैसे निश्चल और निर्मल जलराशि में अपने-आप स्पन्द (कम्पन्न) होता है, उसी तरह परमात्मा में यह जीव पूर्वकर्म और वासना के अनुसार प्रकट हुआ है। यही संसार का कारण है। श्रीराम ! जैसे समुद्र का जल ही कल्लोल, ऊर्मि और तरंग-समुदाय के रूप में सब ओर स्थित रहता है, उसी तरह ज्ञानी की दृष्टि में यह सारा प्रपञ्च ब्रह्मस्वरूप ही है। जैसे विविध तरंगों से व्याप्त विशाल महासागरों में जल के अतिरिक्त दूसरी कोई कल्पना या सत्ता नहीं है, उसी तरह परब्रह्म परमात्मा में नाम-रूप-क्रियात्मक संसार की ब्रह्म से अतिरिक्त सत्ता नहीं है। यह जो कुछ जगत् जन्म लेता, नष्ट होता, गमन करता अथवा स्थित रहता है, वह सब ब्रह्म के द्वारा ब्रह्म ही बर्तता है। करण, कर्म, कर्ता, जन्म, मरण और स्थिति- ये सब ब्रह्म ही हैं। उसके बिना दूसरी कोई कल्पना है ही नहीं। यह सारा जगत् परमात्मा ही है। जो कुछ यह संकल्प-क्रम है, वह सब भी परमात्मा ही है। जैसे सुवर्ण बाजूबंद के रूप में प्रकट होता है, उसी प्रकार परमात्मा मनरूप से प्रकट हुआ है, इसलिये मन भी परमात्मा ही है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

राघव ! बन्धन और मोक्ष आदि का कोई सम्मोह ज्ञानी को नहीं होता। मोहजनित बन्धन और मोक्ष आदि तो अज्ञानी को ही होते हैं।

निष्पाप श्री राम ! विकल्प-जाल से परिपूर्ण यह संसार रचना प्रतीतिमात्र ही है, जो बन्ध, मोक्ष आदि की कल्पनाओं के रूप में विस्तार को प्राप्त हो रही है। वास्तव में यहाँ संकल्पमात्र के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जो कुछ विकल्परूप प्रतीत होता है, वह संकल्प के कारण ही प्रतीति का विषय होता है। वह वास्तव में कुछ नहीं है, अथवा कुछ है अर्थात् परमात्मा का संकल्पमात्र है। स्वर्ग, पृथ्वी, वायु, आकाश, पर्वत, नदियाँ और दिशाएँ- ये सब अपने स्वप्न के समान मन के संकल्पमात्र से ही विकसित हुए हैं। जैसे केवल जलमय चंचल समुद्र अपने स्वरूपभूत जल में स्वयं ही स्फुरित होता है, उसी तरह परमात्मा में एकमात्र संकल्प ही सब ओर स्फुरित हो रहा है। पहले परमात्मा से एकमात्र संकल्प ही प्रकट हुआ । वही संकल्प सूर्य के व्यापारों से बढ़ने वाले दिन की भाँति लोगों के विविध व्यापारों से विस्तार को प्राप्त हुआ है।

वस्तुतः भेदरहित परमात्मा में अहंकार नहीं है। जैसे सूर्य की प्रचण्ड धूप में भ्रमवश मृग-तृष्णारूपिणी नदी की प्रतीति होती है, उसी प्रकार असम्यक्-दृष्टि (अज्ञान) के कारण ही परमात्मा में अहंकार का भान होता है। मनरूपी चिन्तामणि के द्वारा कल्पित जो महान् आरम्भ (कार्यसमूह की सृष्टि) है, वही संसाररूप में देखा जाता है। जैसे जल अपने स्वरूप का आश्रय लेकर स्वयं ही तरंग आदि के रूप में प्रतीत होता है, उसी प्रकार आत्मा का आश्रय लेकर मन स्वयं ही संसार के रूप में स्फुरित होता है। अद्वितीय परमात्मा में अज्ञान के कारण भेद और अभेद की भ्रान्ति हो रही है। इस भ्रम का बोध होने पर जब यह सब कुछ ब्रह्मतत्वरूप में ही अवशिष्ट रह जाता है, तब यहाँ कौन बद्ध है और कौन मुक्त होता है ? जब तक ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता, तभी तक देह आदि के पीड़ित होने पर यह पीड़ारहित जीव भी पीड़ा से युक्त-सा प्रतीत होता है। अच्छेद्य होने पर भी देह के किसी अंग के कट जाने पर तमतमा उठता है। परंतु जब परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है, तब ये बातें नहीं होतीं, क्योंकि परमात्मा में भेद, अभेद्य, विकार और पीड़ा-कुछ भी नहीं है।

यह शरीर गिर जाय या उठ खड़ा हो अथवा आकाश के भीतर चला

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जाय, उससे विलक्षण रूपवाले मुझ आत्मा की क्या हानि है? श्री राम ! मन ही सम्पूर्ण जगत् का शरीर है। मनकी कारणभूत आद्याशक्ति-रूप चिन्मय परमात्मा का कभी नाश नहीं होता। यह वासना इष्ट वस्तु में राग और अनिष्ट वस्तु में द्वेष के कारण बन्धन में डालने वाली मन की शक्ति है। इसी के द्वारा व्यर्थ भ्रम से स्वप्न की भाँति इस जगत् की कल्पना हुई है। यह वासना अविद्या है। ज्ञान के बिना इसका अन्त होना बड़ा कठिन है। यह केवल दुःख देने के लिये ही बढ़ती है। इसके स्वरूप का ज्ञान न होने से ही यह इस मिथ्या प्रपञ्च का विस्तार करती है। इस मानसी-शक्ति वासना ने ही इस विशाल जगत् को दीर्घकाल तक रहने वाले स्वप्न के समान रचा है। यह है तो असत्, किंतु सत्-सा प्रकट हुआ जान पड़ता है। आरम्भमात्र ही इसका फल है अर्थात् यह निस्सार एवं आपातरमणीय है। मनका नाश ही महान् अभ्युदय-परम पुरुषार्थ की प्राप्ति है और वही समस्त दुःखों के समूल नाश का उपाय है। निरन्तर सुख-दुख रूपी वृक्ष-समूहों से भरपूर और क्रूर कालरूपी विषैले सर्प के निवास स्थान इस समस्त संसाररूपी वन में यह विवेकहीन मन ही बड़ी-बड़ी विपत्तियों का एकमात्र कारण और प्रभु है।

महर्षि वसिष्ठ के इतना उपदेश दे लेने पर दिन बीत गया, सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये। उस राजसभा में बैठे हुए ऋषि-मुनि तथा अन्य सभासद् सायंकालिक कृत्य (संध्योपासना और अग्निहोत्र आदि) करने के लिये स्नान के उद्देश्य से उन महामुनि को नमस्कार करके चले गये तथा रात बीतने पर सूर्य की किरणों के साथ ही वे सब सभासद् फिर वहाँ आ गये।

तिरेपनवाँ सर्ग समाप्त

चौवनवाँ सर्ग

जगत् की चित्तरूपता, वासनायुक्त मन के दोष, मन का महान् वैभव तथा उसे वश में करने का उपाय

श्री वसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! जैसे सागर से उसकी बड़ी-बड़ी लहरें उठती हैं, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा से इस चित्तरूपी तरंग का उत्थान हुआ है। यही अपने संकल्प से विशालता को प्राप्त होकर चारों ओर इस भुवन का विस्तार करता है। सब प्रकार की वस्तुओं से सम्पन्न यह सब चित्त के संकल्प से ही प्रकट हुआ है। श्रीराम ! जैसे छोटा बच्चा घर में कीचड़ या गीली मिट्टी से विचित्र खिलौने बनाता है, वैसे ही मन अपने संकल्प से विकल्परूपी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥ तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥

जगत् सृष्टि करता है। जैसे ऋतुओं का निर्माण करने वाला काल विभिन्न ऋतुओं में वृक्ष कुछ और ही विलक्षण रूप कर देता है, उसी प्रकार चित्त भी इन सब पदार्थों को विलक्षण-सा बना देता है। जैसे वृक्ष से पल्लव प्रकट होते हैं, उसी प्रकार मन के संकल्प से व्यामोह, सम्भ्रम, अनर्थ, देश, काल, गमन और आगमन-ये सब-के सब उत्पन्न होते हैं। जैसे जल ही समुद्र है और उष्णता ही अग्नि है, उसी प्रकार चित्त ही विविध व्यापारों से पूर्ण संसार है (क्योंकि वह उसी के संकल्प से उत्पन्न हुआ है)। कर्ता, कर्म और करण के साथ जो यह द्रष्टा, दर्शन और दृश्य से सम्पन्न संसार प्राप्त हुआ है, वह सब-का-सब चित्त ही है। जैसे सुवर्ण-तत्व की परीक्षा करने वाला पुरुष बाजूबंद, मुकुट, कड़ा और हार आदि आकारों से सुशोभित उसके विविध रूपों को छोड़कर एकमात्र सुवर्ण में ही बुद्धि को लगाने पर वास्तविक सुवर्ण को देख पाता है, उसी प्रकार विवेकी पुरुष भी विभिन्न लोकों, उनके भीतर के भुवनों और उनके भी भीतर फैले हुए वनान्तर आदि समस्त वस्तुओं को त्यागकर जब यह समझ लेता है कि इन सबके रूप में अपने ही स्वरूप-भेद से अपने ही संकल्प विकल्पों से चित्त स्वयं ही प्रकट हुआ है, तब यह सारा जगत् उसे चित्तरूप ही दिखायी देता है, फिर चित्त के सिवा दूसरी कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती।

जैसे बालिका वेतालों का विस्तार करती है, उसी प्रकार अत्यन्त तुच्छ वासनारूपी सहस्त्रों दोषों से मलिन हुई मनोवृति, जो नहीं है उस दुःख का भी पूर्णरूप से विस्तार करती है, किन्तु जो वासनारूप कलंक से मलिन नहीं हुई है-निष्कलंक है, वह मनोवृत्ति महान् दुःख विद्यमान हो तो भी उसे उसी प्रकार क्षण भर में मिटा देती है, जैसे सूर्य की प्रभा अन्धकार को। वासनायुक्त अज्ञानी चित्त को जहाँ भय नहीं है, वहाँ भी भय दिखायी देता है। जैसे भ्रम में पड़े पथिक को ठूठा काठ दूर से पिशाच-जैसा जान पड़ता है। कलंक से मलिन हुआ मन मित्र में भी शत्रुभाव की आशंका करता है, जैसे नशे में चूर हुआ प्राणी इस पृथ्वी को घूमती हुई देखता है। मन के व्याकुल होने पर चन्द्रमा से भी वज्रपात होता जान पड़ता है। विष-बुद्धि से भक्षण किया गया अमृत भी विष का काम करता है। मन की उत्कट वासना ही जीव के लिये एकमात्र मोहका कारण है, अतः यत्नपूर्वक उसी की जड़ काटकर उसे उखाड़ फेंकना

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चाहिये। मनुष्यों का मनरूपी हिरन संसाररूपी वन की झाड़ी में वासनारूपी जाल से आकृष्ट हो बड़ी विवशता को प्राप्त हो जाता है। जिस विचार से जीव की ज्ञेय-पदार्थ सम्बन्धिनी वासना कट जाती है, उसका प्रकाश बादलों के आवरण से रहित सूर्य की प्रभा के समान प्रकाशित होता है। अतः तुम मन को ही मानव समझो, इस स्थूल देह को नहीं। देह जड़ है, किंतु इसके भीतर रहने वाले मन को न जड़ माना जाता है न अजड़। तात ! निष्पाप रघुनन्दन ! मन ने जो कर दिया, उसी को किया हुआ समझो और मन ने जिसे छोड़ दिया, उसी को छोड़ा हुआ मानो। यह सारा जगत् एकमात्र मन ही है। मन ही सम्पूर्ण भूमण्डल है। मन ही आकाश, मन ही भूमि, आदि पदार्थ में प्रकाश आदि रूप से अपने-आपको योजित न करे तो ये सूर्य आदि भी कभी प्रकाशित न हों। जिसका मन मोह को प्राप्त होता है, वही मूढ़ कहलाता है, यदि शरीर मोह को प्राप्त हो तो उसके शव को कोई मूढ़ नहीं कहता। मन जब देखता है तब नेत्र बन जाता है, सुनता है तब श्रवण या कान बन जाता है, स्पर्श का अनुभव करने से वही त्वगिन्द्रिय का रूप ग्रहण करता है, सूँघने से घ्राणेन्द्रिय और रसास्वादन करने से रसनेन्द्रिय हो जाता है। जैसे नाटक में एक ही नट अनेक भूमिकाओं (विविध रूपों) में देखा जाता है, उसी प्रकार देह के भीतर इन विचित्र इन्द्रिय वृतियों में केवल मन की ही अनुवृति होती है। मन छोटे को बड़ा बना देता, सत्य पदार्थ में असत्ता स्थापित कर देता, स्वादिष्ट को कड़ुआ बनाता और शत्रु को मित्र बना लेता है।

यदि भगवत्-स्मरण आदि मनोहर मनोवृत्ति का उदय हो तो रौरव नरक का दुःख भी सुख के रूप में परिणत हो जाता है। जिसे कल सबेरे राज्य मिलने का विश्वास है, वह यदि कारागार में अच्छी तरह बँधा हो तो भी उसका वह बन्धन दुःखद नहीं होता। मन के जीत लिये जाने पर सारी इन्द्रियाँ स्वतः वश में हो जाती हैं। श्रीराम ! सर्वत्र विद्यमान, स्वच्छ, निर्विकार, सम, सूक्ष्म, साक्षिस्वरूप, सम्पूर्ण पदार्थों में अनुगत, चेत्य पदार्थों से अभिन्न तथा चिन्मात्ररूप जो आत्मसत्ता है, उससे उपलक्षित जो बाग आदि सब क्रियाओं से रहित ब्रह्म है, उसे भी यह मन देह के तुल्य और जड़ बनाकर अन्तःकरण में काम-संकल्प-रूप भ्रान्ति से और बाहर पर्वत, नदी, समुद्र, आकाश, एवं नगर आदि की लीला से युक्त हो व्यर्थ घूमता रहता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जिसे चित्त ने देखा है, वही वस्तु देखी गयी मानी जाती है। यदि चित्त ने नहीं देखी तो सामने रक्खी हुई वस्तु भी नहीं दिखायी देती। जैसे अन्धकार में नील रूप की कल्पना की गयी है, उसी तरह मनने अपने में ही इन्द्रियों का निर्माण कर रक्खा है। इन्द्रियों से मन साकार होता है और मन से इन्द्रियाँ। इस प्रकार यद्यपि दोनों समान हैं, तथापि इनमें मन ही उत्कृष्ट है, क्योंकि मन से इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई हैं, इन्द्रियों से मन नहीं। इस तरह चित्त और शरीर एक-दूसरे से अत्यन्त भिन्न होने पर भी जिनकी दृष्टि में इन दोनों की एकता है अर्थात् जो चित्त और शरीर दोनों को जड़-कोटि में मानकर उन्हें एक सा समझते हैं, वे ज्ञेय आत्मा के ज्ञाता परम ज्ञानी महात्मा हम सबके लिए वन्दनीय हैं। जब मन अन्यत्र आसक्त होता है-किसी दूसरे काम में उलझा रहता है, तब बड़े यत्न से कही जाती हुई कथा का क्रम भी टूट जाता है। स्वप्न में जब मन उल्लास को प्राप्त होता है, तब हृदय के भीतर ही निर्मित हुए नगर एवं पर्वत आदि विस्तृत आकाश में निर्मित नगर और पर्वत आदि के समान अपने-अपने कार्य को करने में समर्थ दिखायी देते हैं। जैसे चंचल समुद्र अपने आप में ही तरंगमालाओं का विस्तार करता है, उसी तरह मन स्वप्नावस्था में अपने से विक्षिप्त हुए हृदय में ही पर्वत और नगरों की श्रेणी को फैला देता है। जैसे समुद्र के भीतर जल से तरंगमालाएँ और छोटी-छोटी लहरें प्रकट होती हैं, उसी तरह देह के भीतर मन से ही स्वप्नगत पर्वत और नगरों की पंक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। जैसे पत्र, लता, फूल और फल की शोभा अंकुर का ही स्वरूप है-उससे भिन्न नहीं, उसी प्रकार जाग्रत् और स्वप्न की विलास-भूमियाँ मन का ही विकास हैं, मनसे भिन्न नहीं। जैसे सुवर्ण की नारी-प्रतिमा सुवर्ण से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार जाग्रत् और स्वप्नावस्था की क्रिया-लक्ष्मी चित्त से पृथक नहीं है। जैसे जल का वैभव ही धारा, जलकण, तरंग और फेन आदि की शोभा के रूप में दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार जगत् के विविध पदार्थों के रूप में यह चित्त का ही विचित्र वैभवशाली नानात्व प्रकट हुआ है। जैसे नट श्रृंगार आदि रस के आवेश से विभिन्न भूमिका (वेश वैचित्र्य) को ग्रहण करता है, उसी प्रकार अपनी चित्तवृत्ति ही यहाँ राग के आवेश से जाग्रत् और स्वप्नगत दृश्य प्रपञ्च के रूप में उदित होती है।

सब ओर फैला हुआ वासनारूढ़ मन विषयों के मनन से अतिशय मोह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

को प्राप्त हो अपने संकल्प के अनुसार विभिन्न प्रकार की योनि (जन्मस्थान), सुख-दुख तथा भय-अभय को प्राप्त होता है। जैसे तिल में तेल रहता है, उसी तरह मन में सुख और दुख रहते हैं। वे ही देश और काल का प्रभाव पड़ने से कभी घनीभूत हो जाते हैं और कभी अत्यन्त सूक्ष्म। मनःशरीर के संकल्प के सफल होने पर ही स्थूल-शरीर शान्ति एवं उल्लास को प्राप्त होता है, आता-जाता है और उछलता-कूदता है। वह स्वतन्त्ररूप से कुछ नहीं करता। जैसे साध्वी स्त्री अन्तःपुर के आँगन में ही अपने संकल्प से उदित विविध एवं विस्तृत उल्लासों के साथ क्रीड़ा करती है, उसी प्रकार मन इस देह के भीतर अपने संकल्पों द्वारा कल्पित अनेक प्रकार के बढ़े हुए उल्लासजनक भावों से क्रीड़ा-विलास करता है। इसलिये जो पुरुष अन्तःकरण में मन को चपलता (विषय-चिन्तन) के लिये अधिक अवसर नहीं देता, उसका वह मन खंभे में बंधे हुए हाथी के समान स्थिर होकर लय को प्राप्त हो जाता है। निष्पाप रघुनन्दन ! जिसका मन एक लक्ष्य में स्थिर होकर अपनी चपलता का त्याग कर चुका है, वह ध्यान के द्वारा सर्वोत्तम पद (परब्रह्म परमात्मा) से संयुक्त हो जाता है। जैसे मन्दराचल के स्थिर हो जाने पर क्षीरसागर शान्त हो गया था, उसी प्रकार मन के संयम से संसाररूपी भ्रान्ति का शमन हो जाता है।

चौवनवाँ सर्ग समाप्त

पचपनवाँ सर्ग

मनोनिग्रह से लाभ

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्री राम ! यह चित्त एक महान् रोग है। इसकी चिकित्सा के लिये एक बहुत बड़ी औषध है, जो अभीष्टसाधक, निश्चितरूप से लाभ पहुँचाने वाली परम स्वादिष्ट और अपने ही अधीन है, उसे बताता हूँ, सुनो। राग के विषयभूत बाह्य विषयों का परित्याग करके परमात्मचिन्तनरूपी अपने ही पुरुषार्थमय प्रयत्न से चित्तरूपी वेताल पर शीघ्र विजय पायी जाती है। जो अभीष्ट वस्तु (बाह्य विषयभोग) को त्यागकर चित्त के राग आदि रोगों से रहित हो स्वस्थ रहता है, उसने अपने मन को उसी प्रकार जीत लिया है, जैसे मजबूत दाँतों वाला हाथी खराब और कमजोर दाँतवाले हाथी को जीत लेता है। स्वसंवेदन (आत्म या परमात्मा के निरन्तर चिन्तन) रूपी प्रयत्न से चित्तरूपी बालक का पालन किया जाता है। अर्थात् उक्त यत्न से उसके राग और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चपलता आदि रोगों की चिकित्सा करके उसे स्वस्थ बनाया जाता है। उसे अवस्तु (मिथ्या अथवा अनात्मवस्तु) से हटाकर वस्तु (सत्य अथवा आत्मतत्त्व) में लगाया जाता है तथा उसे बोध से सम्पन्न किया जाता है। जैसे बालक को प्यार या भय दिखाकर बिना प्रयत्न के ही इधर-उधर जहाँ चाहे लगाया जा सकता है, उसी प्रकार भावों से मन को भी अनायास ही अन्तरात्मा में लगाया जा सकता है। ऐसा करने में कठिनाई ही क्या है ?

भविष्य में अभ्युदयरूपी फलको देने वाले सत्कर्म (समाधि के अभ्यास) में लगे हुए मन को अपने पुरुषार्थ से ही चेतन परमात्मा के साथ संयुक्त करे। जो सर्वथा अपने अधीन और परम हितकर है, वह अभीष्ट वस्तु का त्यागरूपी वैराग्य जिसके लिये कठिन हो गया है, वह मनुष्य नहीं, विषयों का कीड़ा है। उसे धिक्कार है। जैसे कोई पहलवान किसी बालक को अनायास ही पछाड़ देता है, उसी प्रकार अपनी बुद्धि से अरम्य विष-समूह में परम रमणीय परब्रह्म परमात्मा की भावना करके मन को बिना यत्न के ही जीत लिया जा सकता है। पौरूषरूपी प्रयत्न से चित्त को शीघ्र ही जीत लिया जाता है। जो चित्त को जीतकर उसके प्रभाव से रहित हो गया है, वह बिना किसी प्रयास के परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। अपने चित्त पर आक्रमण करके उसे वश में कर लेना मात्र जो सहजसाध्य और स्वाधीन कार्य है, उसे ही जो लोग नहीं कर सकते, वे पुरुष नहीं, गीदड़ हैं। उन्हें धिक्कार है। एकमात्र अपने पौरुष से ही सिद्ध होने वाला जो अभीष्ट वस्तु का त्यागरूपी मनोनिग्रहकर्म है, उसके बिना शुभगति नहीं हो सकती। अभीष्ट बाह्य विषयों का स्मरण न करना अथवा मनोवाञ्छित मोक्ष-सुख की प्राप्ति कराना जिसका स्वरूप है, उस मुख्य साधन मनोनिग्रह के बिना गुरू का उपदेश, शास्त्र के अर्थ का चिन्तन और मन्त्र आदि सारे साधन या युक्तियाँ तिनकों के समान व्यर्थ हैं।

संकल्पों के परित्यागरूपी शस्त्र से जब चित्तरूपी वृक्ष का समूल उच्छेद हो जाता है, तब साधक सर्व-स्वरूप सर्वव्यापी शान्त ब्रह्मरूप हो जाता है। श्रीराम ! जैसे दिग्भ्रम होने पर पूर्व में पश्चिम की प्रतीति होने लगती है और वह अनुभव के विपरीत बुद्धि उस समय बिल्कुल स्थिर हो जाती है, परंतु विवेकरूपी पुरुष-प्रयत्न से उस भ्रान्त बुद्धि का भी शीघ्र ही निवारण किया जा सकता है, उसी तरह मनको भी वैराग्यरूपी पुरुष-प्रयत्न से शीघ्र ही जीता जा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सकता है। मन में उद्वेग का न होना राज्य आदि सम्पत्ति का मूल कारण है। उद्वेग या उकताहट न होने से ही जीव को अपने मन पर विजय प्राप्त होती है, जिससे तीनों लोकों पर विजय पाना तृण के समान सहज हो जाता है। जो नराधम अपने मन के निग्रह में भी समर्थ नहीं हैं, वे व्यवहार-दशाओं में व्यवहार का निर्वाह कैसे कर सकेंगे। मैं पुरुष हूँ, मरा हूँ, उत्पन्न हुआ हूँ और जी रहा हूँ इत्यादि कुदृष्टियाँ चंचल चित्त की वृत्तियाँ ही प्रतीत होती हैं, जो बिना हुए ही प्रकट हुई हैं। यहाँ न तो किसी की मृत्यु होती है और न कोई जन्म ही लेता है। मन स्वयं ही अपने मरण का तथा लोकान्तर गमन का संकल्पमात्र से अनुभव करता है। जो नित्य सत्, सबका हितकारी, मायामयी मलिनता से रहित और सर्वव्यापी परमात्मा हैं, उनमें चित्त का लय हुए बिना मुक्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस बात का ऊपर-नीचे तथा अगल-बगल के लोकों में रहनेवाले तत्त्वदर्शी विद्वानों ने बारंबार विचार किया है और सब-के सब इसी निश्चय पर पहुँचे हैं कि चित्त की शान्ति के सिवा मुक्ति का दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। ऋतु, सत्य, व्यापक और निर्मल ज्ञान का हृदय में उदय होने पर मन के लय होने मात्र से परमशान्ति प्राप्त हो जाती है। यदि आपातरमणीय विषयों को तुम जैसे विद्वान ने अरमणीय वस्तुओं की कोटि में समझ लिया है, तब तो मेरा विश्वास है कि तुमने चित्त के सारे अंग काट डाले हैं। यह सामने दिखायी देने वाला जो वह (पिता से उत्पन्न) शरीर है, वह मैं हूँ और यह जो घर, खेत आदि धन है, यह सब मेरा है ! यह 'मैं' और 'मेरा' ही मन है। यदि यह मैं और मेरेपन की भावना न की जाय तो उससे मन उसी तरह कट जाता है, जैसे हँसियासे तृण। जैसे शरद् ऋतु में आकाश में बिखरे हुए बादलों के टुकड़े वायु द्वारा उड़ा दिये जाते हैं, उसी प्रकार मैं और मेरे पन की कल्पना या भावना न करने से मन भी उड़ा दिया जाता है-नष्ट कर दिया जाता है। इसलिये कोई विज्ञ पुरुष जैसे अपने बालक पुत्र को अच्छे कर्म में लगाता है, उसी तरह विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह अपने मन को कल्याण में लगाये। जिसका नाश होना कठिन है तथा जो नूतन या बालक न होकर सयाना और दर्प से भरा हुआ है, उसी मन रूपी सिंह को, जो संसार का विस्तार करने वाला है, जो लोग मार डालते हैं, वे निर्वाण पद का उपदेश देने वाले महात्माजन इस संसार में धन्य हैं। उनकी सदा ही विजय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

होती है। भले ही प्रलयकाल के प्रचण्ड पवन प्रवाहित हों, चारों समुद्र एक में मिलकर एकार्णव हो जायँ और बारहों सूर्य एक साथ तपने लगें; परंतु जिसका मन शान्त हो गया है, उस पुरुष की कभी कोई हानि नहीं होती।

पचपनवाँ सर्ग समाप्त

छप्पनवाँ सर्ग

वासना-त्याग का उपदेश

श्री वसिष्ठ जी ने कहा-जैसे बर्फ का रूप शीतलता और काजल का रूप कालिमा है, उसी प्रकार मनका रूप अत्यन्त चंचलता है।

श्रीराम जी ने पूछा-ब्रह्मन् ! इस अत्यन्त चंचल मन के तीव्र वेग या चपलता का बलपर्वक निवारण कैसे हो सकता है ?

श्री वसिष्ठ जी ने कहा-श्रीराम ! इस जगत् में कहीं भी चपलता से रहित मन नहीं देखा जाता। जैसे उष्णता अग्नि का धर्म है, वैसे ही चंचलता मन का। चेतन तत्त्व जो यह चंचल क्रिया शक्ति विद्यमान है, उसी को तुम जगत् का आडम्बररूप मानसी शक्ति समझो। जैसे स्पन्दन और अस्पन्दन के बिना वायु के अस्तित्व का पता ही नहीं चलता, वैसे ही चंचल स्पन्दन (चेष्टा) के बिना चित्त का अस्तित्व ही नहीं है। जो मन चंचलता से रहित है, वही मरा हुआ कहलाता है। वही तप है और वही शास्त्र का सिद्धान्तभूत मोक्ष कहलाता है। मन के विनाश मात्र से सम्पूर्ण दुःखों की शान्ति हो जाती है और मन के संकल्पमात्र से परम दुःख की प्राप्ति होती है। श्रीराम ! मन की जो यह चलता है, वह अविद्या से उत्पन्न होने के कारण अविद्या कही जाती है। उस अविद्या का ही दूसरा नाम वासनापद है। उसका विचार के द्वारा नाश कर देना चाहिये। विषय-चिन्तन का त्याग कर देने से अविद्या और वासनामयी उस चित्त-सत्ता का अन्तः करण में लय हो जाता है और ऐसा होने से परम श्रेय (मोक्ष-सुख) की प्राप्ति होती है। पौरुष प्रयत्न के द्वारा मन को जिस वस्तु में भी लगाया जाता है, उसी को प्राप्त होकर वह अभ्यासवश तद्रूप हो जाता है।

जो संसार-सागर के वेग में पड़कर तृष्णारूपी ग्राह की दाढ़ों में फँस गये हैं और भ्रमरूपी आवर्तों द्वारा दूर बहाये जा रहे हैं, उनके वहाँ से पार जाने के लिये अपना जीता हुआ मन ही नौकारूप है। जिसने परम बन्धनकारी मनरूपी पाश के अपने (जीते हुए) मन के द्वारा ही काटकर आत्मा का उद्धार नहीं कर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

लिया, उसे दूसरा कोई बन्धन से नहीं छुड़ा सकता। विद्वान् पुरुष को चाहिये कि हृदय को वासित करने वाली जो-जो वासना, जिसका दूसरा नाम मन है, उदित होती है, उस-उस का परित्याग करे-उसे मिथ्या समझकर छोड़ दे। इससे (वासनात्मक मन के साथ ही) अविद्या का क्षय हो जाता है। भावना की भावना न करना ही वासना का क्षय है। इसी को मन का नाश एवं अविद्या का नाश भी कहते हैं।

रघुनन्दन ! भ्रम से दो चन्द्रमाओं की प्रतीति के समान यह वासना नित्य असत्य होती हुई ही सत्य के समान उठ खड़ी हुई है। इसलिये इसका त्याग कर देना ही उचित है। यहाँ पर तत्त्व (अद्वितीय परब्रह्म) के सिवा न कोई सद् वस्तु है न असद् वस्तु। जैसे तरंग मालाओं से परिपूर्ण विशाल महासागर में जलराशि के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है (उसी तरह संसार में ब्रह्म के सिवा दूसरा कोई भाव या अभाव रूप पदार्थ नहीं है)। यदि कर्म का फल सत्य हो तो कर्म उपादेय (ग्राह्य) होना चाहिये और यदि उसका फल मिथ्या हो तो वह कर्म सर्वथा हेय (त्याज्य) ही होना चाहिये; क्योंकि सब लोग एकमात्र उपादेय वस्तु में ही आसक्त होते हैं। चूँकि कर्म का फल मिथ्या है, अतः उसमें आसक्त न होना ही उचित है। इन्द्रजाल के समान यहाँ सब कुछ मायामय और अवास्तविक है; फिर उसमें क्या आस्था हो सकती है-कैसे हेय और उपादेय दृष्टियाँ हो सकती हैं। रघुकुलतिलक श्रीराम ! संसार-वृक्ष की बीज-कणिकारूप जो यह अविद्या है, इसका अस्तित्व नहीं है, तो भी यह सत्तायुक्त वस्तु की भाँति विस्तार को प्राप्त हुई है।

यह अविद्या मनोराज्य की भाँति केवल कल्पित आकृतिमात्र से भासित होती है। सत्यता का इसमें सर्वथा अभाव है। यद्यपि यह सैकड़ों, हजारों शाखाओं से युक्त जान पड़ती है, तथापि वास्तव में कुछ भी नहीं है। यह जंगल में प्रतीत होने वाली मृगतृष्णा की भाँति मिथ्या ही है। तो भी इसने व्यर्थ ही आडम्बर फैला रक्खा है। जैसे मृगतृष्णा उन भोले-भाले मृगों को ही धोखे में डालती है-मनुष्यों को नहीं, उसी प्रकार यह अविद्या अज्ञ पुरुषों को ही धोखा देती है, विज्ञ पुरुषों को नहीं। जैसे प्रलय काल की आँधी भीषण रूप धारणकर धूलराशि से व्याप्त हो बलपूर्वक तीनों लोकों को आक्रान्त कर लेती है, उसी प्रकार अविद्या भी भयंकर आकार धारण कर विचरती है। रजोगुण के आधिक्य

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

से वह धूसर जान पड़ती है और हठात् लोक-लोकान्तरों को पददलित कर देती है। जैसे आकाश में अकारण ही नीलिमा दिखायी देती है, उसी प्रकार यह अविद्या भी किसी कारण के बिना ही प्रतीति का विषय होती है। दो चन्द्रमाओं के भ्रम की भाँति इसकी उत्पत्ति हुई है। यह स्वप्न समान भ्रम उत्पन्न करती है और जैसे नौका द्वारा यात्रा करने वाले लोगों को तटवर्ती ठूँठे काठ में भी गतिशीलता की प्रतीति होती है, वैसे ही यहाँ इस अविद्या का उत्थान हुआ है। यह अविद्या जब चित्त को दूषित कर देती है, तब इससे व्याकुल हुए लोगों को दीर्घकाल तक संसाररूपी स्वप्न का भ्रम बना रहता है। विषयरूपी रथ पर आरूढ़ हुई यह उद्भुत वासनारूपिणी प्रबल अविद्या मन को उसी तरह शीघ्र आक्रान्त कर लेती है, जैसे जाल पक्षी को फाँस लेता है। जैसे विवेक-बुद्धि से विषय-बुद्धि का निरोध किया जाता है, उसी तरह प्रयत्नपूर्वक इस वासनारूपिणी अविद्या का भी शीघ्र निरोध करना चाहिये। जैसे स्रोतों को रोक देने से नदी सूख जाती है, उसी प्रकार अविद्या के निरोध से यह मनोमयी नदी भी सूखकर नष्ट हो जाती है।

श्रीराम जी बोले-ब्रह्मन् ! यह अविद्या अविद्यमान (असत्) है, अत्यन्त तुच्छ है और मिथ्या भावनारूप है, तो भी इसने कोमलांगी युवती की भाँति सारे जगत् को अंधा बना रक्खा है-यह बड़े आश्चर्य की बात है। इसका न कोई रूप है न आकार। यह सुन्दर चेतन से भी रहित है और असत् होकर भी नष्ट नहीं हो रही है। इसने सारे जगत् को अंधा बना रक्खा है, यह कैसा आश्चर्य है ! यह सदा अनन्त दुःखों से व्याप्त, मृतक के तुल्य और संज्ञाहीन है; तो भी इसने जगत् को अंधा बना रक्खा है, यह विचित्र बात है। काम और क्रोध ही इसके सुदृढ़ अंग हैं। तमोगुण की अधिकता से यह वक्र जान पड़ती है और ज्ञान का उदय होने पर यह शीघ्र ही शरीर रहित (नष्ट) हो जाती है; तो भी इसने जगत को अंधा बना रक्खा है, यह कैसी अद्भुत बात है। अपने आत्मस्वरूप परमात्मा के विषय में जो अंधे (मूढ़) हैं, वे ही इस अविद्या के आश्रय हैं। यह जड़ है, जड़ता से जीर्ण-शीर्ण है और दुःख से अत्यन्त प्रलाप करने वाली है; तो भी इसने जगत् को अंधा बना रक्खा है, यह कितने आश्चर्य की बात है ! प्रभो ! अनन्त दुश्चेष्टारूप विलास करने वाली तथा मनरूपी गुहागृह में बद्ध वासना वाली यह अविद्या, जिसकी कहीं समता नहीं है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

किस उपाय से नष्ट होती है ?

छप्पनवाँ सर्ग समाप्त

सत्तावनवाँ सर्ग

आत्मदर्शन

श्रीरामचन्द्र जी ने पूछा–ब्रह्मन् ! अविद्या के प्रभाव से उत्पन्न हुआ जो पुरुष का गहन एवं महान् अंधापन है, उसका निवारण कैसे होता है ?

श्री वसिष्ठ जी ने कहा–रघुनन्दन ! जैसे ओस या पाले की एक कणिका सूर्य का दर्शन होने से क्षण भर में नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार परमात्मा का साक्षात्कार होने से इस अविद्या का तत्काल नाश हो जाता है। यह अविद्या संसार रूपी पर्वत शिखरों के तटवर्ती स्थान में, जो गहन दुःखरूपी काँटों से सुशोभित होते हैं, अपने साथ देहाभिमानी जीव को तभी तक नीचे गिराने के लिये आन्दोलित करती रहती है, जब तक उसका विनाश करने वाली और मोह को क्षीण बना देने वाली परमात्म–साक्षात्कार की इच्छा स्वयं ही उत्पन्न नहीं हो जाती। जैसे सभी दिशाओं में बारह सूर्यों के एक साथ उदित होने पर छाया अपने–आप नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार ज्ञानस्वरूप सर्वव्यापी परमात्मा का साक्षात्कार होने पर यह अविद्या स्वयं ही विलीन हो जाती है। रघुनन्दन ! बाह्य विषयों की इच्छामात्र को यहाँ अविद्या कहा गया है (क्योंकि अविद्या से ही इच्छा उत्पन्न होती है)। इच्छामात्र का नाश ही मोक्ष कहलाता है। वह मोक्ष संकल्प के अभावमात्र से सिद्ध होता है। जैसे सूर्य का उदय होने पर रात न जाने कहाँ चली जाती है, उसी प्रकार परमात्मा के यर्थाथ ज्ञान का उदय होने पर अविद्या न जाने कहाँ विलीन हो जाती है।

श्री राम जी ने पूछा–ब्रह्मन् ! यह जो कुछ भी दृश्यप्रपञ्च है, वह (अविद्या से उत्पन्न होने के कारण) अविद्या ही है और वह अविद्या परमात्मा के चिन्तन से नष्ट हो जाती है। तब कृपापूर्वक यह बताइये कि वह परमात्मा कैसा है ?

श्री वसिष्ठ जी ने कहा–श्रीराम ! जो विषयों के संसर्ग से रहित, असाधारण और अनिर्वचनीय चेतनतत्त्व है, वह परमेश्वर ही आत्मा या परमात्मा का शब्द से कहा गया है। निष्पाप श्रीराम ! ब्रह्मा से लेकर कीट–पतंग एवं पेड़–पौधों तक जो यह तृण–आदिरूप जगत् है, वह सब सदा परमात्मा ही है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

यहाँ अविद्या कहीं नहीं है। यह सब नित्य चैतन्यघन अविनाशी एवं अखण्ड ब्रह्म ही है। यहाँ मन नाम की कोईदूसरी कल्पना है ही नहीं। यहाँ तीनों लोकों में न कोई जन्म लेता है और न करता ही है। जन्म-मरण आदि भाव-विकारों का कहीं अस्तित्व ही नहीं है। इस संसार में केवल-अद्वितीय एकमात्र ज्ञान-स्वरूप, समान भाव से सबमें व्यापक, अखण्ड और विषय संसर्ग से रहित सच्चिदानन्द घन परमात्मा ही है। उस नित्य, सर्वव्यापी, शुद्ध, चैतन्यघन, सब प्रकार के उपद्रवों से रहित, शान्त, सर्वत्र समभाव से स्थित, निर्विकार, विज्ञान-स्वरूप परमात्मा में जो यह आवरण सहित जीवात्मा चिन्मय स्वभाव से भिन्न-जड़ विषयरूप जगत् की स्वयं कल्पना करके दौड़ता है, वह अविद्यारूप आवरण से मलिन हुआ चेतन जीवात्मा ही मन के रूप में परिणत होने के कारण 'मन' नाम से कहा गया है। जो संसार वास्तव में कुछ नहीं है, वह एकमात्र-अद्वितीय, सर्वव्यापी, शान्तस्वरूप परमात्मा में संकल्पमात्र से ही उत्पन्न हुआ है। अतः जैसे अग्नि की ज्वाला जिससे उत्पन्न हुई, उसी वायु से शान्त हो जाती है, उसी तरह संकल्प से उत्पन्न हुई यह सृष्टि संकल्प से ही नष्ट हो जाती है। भोगाशारूपता को प्राप्त हुई वह अविद्या एकमात्र असंकल्परूप पुरुष-प्रयत्न द्वारा लय को प्राप्त होती है।

'मैं कृश हूँ, अत्यन्त दुखी हूँ, बँधा हुआ हूँ तथा हाथ-पैर आदि अवयवों से युक्त हूँ' इस भावना के अनुरूप व्यवहार से जीवात्मा बन्धन में पड़ता है। 'मेरा दुःख से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह शरीर भी मेरा नहीं है; भला, किस आत्मा को बन्धन प्राप्त हुआ है-किसी को भी नहीं, आत्मा नित्य-मुक्त स्वरूप है' इस भावना के अनुरूप व्यवहार से जीवात्मा की मुक्ति होती है। नेत्रों की ही अपनी दर्शन शक्ति का क्षय होने पर अर्थात् अत्यन्त दूरता के कारण दर्शन शक्ति के कुण्ठित हो जाने पर जो वस्तु स्वभाव से अदर्शन रूप अन्धकार उदित हुआ है। वही आकाश की नीलिमा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। यह जान लेने पर जैसे आकाश में कालिमा दीखने पर भी 'यह वास्तव में कालिमा नहीं है' ऐसी बुद्धि सुदृढ़ हो जाती है, वैसे ही अविद्यारूपी अन्धकार को भी समझना चाहिये।

जैसे स्वप्न में 'हाय ! मैं दुःख से नष्ट हो गया' इस संकल्प से मनुष्य दुःख से नष्ट सा होने लगता है और 'मैं जाग गया हूँ, इस संकल्प से वह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

स्वप्न के दुःख से छुटकारा पाकर सुखी हो जाता है, उसी प्रकार मन विषय के संकल्प से मूढ़ता को प्राप्त होता है और विज्ञानस्वरूप उदार परमात्मा के संकल्प या चिन्तन से वह विज्ञानमय ब्रह्मभाव की ओर अग्रसर होता है। 'मैं अज्ञानी हूँ' ऐसे संकल्प से यह अनादि अविद्या एक क्षण में प्रकट होती है और विस्मरण अर्थात् संकल्प-वासनाओं के मूलोच्छेद से यह विनाशशील अविद्या सर्वथा नष्ट हो जाती है।

जो दृश्य पहले ही नहीं था, वह आज भी नहीं है और जो यह भासित हो रहा है, वह शान्त, अद्वितीय, निर्विकार एवं निर्दोष ब्रह्म ही है। अतः कभी किसी के लिये किसी तरह और किसी भी कारण से ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरी कोई मननीय वस्तु नहीं है; इसलिये आदि-अन्त से रहित निर्विकार ब्रह्म में पूर्णतः स्थित हो जाना चाहिये। उत्तम बुद्धि के द्वारा परम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर प्रयत्न पूर्वक चित्त से भोगाशाभावना को जड़-मूल सहित उखाड़ फेंकना चाहिये। महान् मोह (अज्ञान) ही जरा और मरण आदि का कारण है। जो-जो वस्तु कार्य रूप से प्रकट होती है, वह सब सैकड़ों आशापाशों से उल्लसित होने वाली वासना का ही विस्तार है। 'ये मेरे पुत्र हैं, मेरा धन है, यह मैं हूँ, यह मेरा घर है' इस प्रकार के इन्द्र-जाल से यह वासना ही वृद्धि को प्राप्त होती है। तत्त्वज्ञ श्रीराम ! परमात्मतत्त्व के सिवा दूसरी कोई वस्तु कभी सत्य नहीं है। अतः वास्तव में 'मेरा' और 'मैं'-ये दोनों ही नहीं हैं। रघुनन्दन ! ज्ञानी की दृष्टि में अविद्या नहीं है। आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी और नदीरूप जो यह अविद्या है, वह अज्ञानी की ही दृष्टि में है। ज्ञानी की दृष्टि में तो आकाश आदि के रूप में ब्रह्म ही अपनी महिमा में स्थित है। अहो ! यह कितने आश्चर्य की बात है कि जो सत्य है, उस ब्रह्म को तो लोग भूल गये हैं और जो असत्य अविद्या नामक वस्तु है, उसी का निश्चित रूप से निरन्तर स्मरण हो रहा है !

सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त

अट्ठावनवाँ सर्ग

अज्ञान की सात भूमिकाओं का वर्णन

श्री वाल्मीकि जी कहते हैं-भरद्वाज ! पूज्यपाद महात्मा वसिष्ठ के यों कहने पर कमलनयन श्रीराम प्रफुल्ल पंकज के समान शोभा पाने लगे।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

श्रीरामजी बोले-मुनिवर ! जो अविद्या वास्तव में है ही नहीं, उसने सबको वश में कर लिया है-यह कैसी विचित्र बात है ?

श्री वसिष्ठ जी ने कहा-हे रघुनन्दन ! इस संसार में काठ और दीवाल के समान जड़ देह कुछ भी नहीं है-वास्तव में इसकी सत्ता नहीं है। इस चित्त ने ही स्वप्न के संसार की भाँति इसकी कल्पना कर ली है। श्रीराम ! अज्ञानी जीवात्मा को ये अनन्त शारीरिक सुख-दुःख होते हैं। किंतु ज्ञानी महात्मा पुरुष को ये बिल्कुल नहीं होते (क्योंकि वे परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को जान गये हैं)। देह जड़ है, अतएव वह दुःख का अनुभव नहीं कर सकता। देहाभिमानी जीवात्मा ही अविवेक के कारण दुखी होता है। यह अविवेक या अविचार अतिशय अज्ञान के कारण है। अज्ञान ही समस्त दुःखों का हेतु है। एक मात्र अविवेकरूपी दोष के कारण ही जीवात्मा शुभाशुभ कर्मों के सुख-दुःखादि फलों का भोक्ता बना है-ठीक उसी तरह, जैसे रेशम का कीड़ा अज्ञान-वश ही रेशम के कोष में बन्धन को प्राप्त होता है। अविवेकरूपी रोग से बँधा हुआ, विविध वृत्तियों से युक्त मन नाना आकृतियों में विचरण करता हुआ चक्र के समान घूमता रहता है। श्रीराम ! जैसे घर का मालिक घर में अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करता है, किंतु जड़ गृह स्वयं कुछ भी नहीं करता, उसी तरह शरीर में जीवात्मा ही विविध चेष्टाएँ करता है, शरीर नहीं।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन् ! आप सम्पूर्ण तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं। सिद्धि देने वाली ज्ञान की सात भूमिकाओं का स्वरूप कैसा है ? यह मुझे संक्षेप से बताइये।

श्री वसिष्ठ जी ने कहा-रघुनन्दन ! अज्ञान की सात भूमिकाएँ हैं और ज्ञान की भी सात ही भूमिकाएँ हैं फिर गुणों की विचित्रता से इन दोनों के दूसरे-दूसरे असंख्य भेद हो जाते हैं। आत्मस्वरूप में अनादि काल से अज्ञान का आरोप है। उस अज्ञान की ये सात भूमिकाएँ हैं, जिन्हें सुनो-१ बीज-जाग्रत्, २ जाग्रत्, ३ महा-जाग्रत्, ४ जाग्रत्-स्वप्न, ५ स्वप्न, ६ स्वप्नजाग्रत् और ७ सुषुप्ति। इस तरह अज्ञान के ये सात भेद हैं। ये सातों भेद फिर एक दूसरे से संयुक्त होकर अनेक नाम धारण करते हैं। अब तुम इस सप्तविध अज्ञान के लक्षण सुनो।

महासर्ग के आदि में चिन्मय परमात्मा से जो प्रथम, नाम-निर्देश से रहित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

एवं विशुद्ध व्यष्टि चेतन प्रकट होता है, वह भविष्य में होने वाले 'चित्त' और 'जीव' आदि संज्ञा-शब्दों तथा उनके अर्थों का भाजन होकर जाग्रत् अवस्था के बीज रूप में स्थित होता है; (क्योंकि वह महाप्रलय के समय भी परमात्मा में बीजरूप से ही था) इसलिये 'बीज-जाग्रत्' कहलाता है। यह अज्ञान की नूतन अवस्था है। अब तुम जाग्रत् संसार का वर्णन सुनो। नवजात बीज-जाग्रत् के पश्चात 'यह स्थूल देह मैं हूँ, यह देह, यह भोग्य-पदार्थ-समूह मेरा है' ऐसी जो अपने भीतर प्रतीति होती है, उसे 'जाग्रत' कहते हैं। 'यह देह मैं हूँ, 'यह भोग्य-समूह मेरा है' इस जाग्रत् प्रतीति के उत्पन्न होने के पश्चात् जन्मान्तर के अभ्यास से दृढ़ हुई जो प्रतीति स्फुरित होती है, उसे 'महाजाग्रत्' कहा गया है। जैसे ब्राह्मण आदि जातियों में उत्पन्न हुए लोगों में से किसी-किसी व्यक्ति का जन्मान्तर के अभ्यास से अपने वर्णोचित कर्मों में विशेष आग्रह और नैपुण्य देखा जाता है, सबमें ऐसी बात नहीं पायी जाती; अतः इस जन्म के या जन्मान्तर के दृढ़ अभ्यास से दृढ़ता को प्राप्त हुई जो पूर्वोक्त जाग्रत् प्रतीति है, उसी को महाजाग्रत् कहा गया है। (जाग्रत् के ही तुल्य,) मनोराज्य है, उसी को 'जाग्रत् स्वप्न' कहते हैं। दो चन्द्रमाओं का दर्शन, सीपी में चाँदी की प्रतीति और मृगतृष्णा (मरुस्थल में बिना हुए जल की प्रतीति) आदि भेद की तरह अभ्यासवश जाग्रत्भाव को प्राप्त स्वप्न-मनोराज्य अनेक प्रकार का होता है। 'उसे मैंने थोड़े ही समय तक देखा, वह सत्य भी नहीं है' नींद के समय (सुषुप्ति-काल के आदि या अन्त में) अनुभव में आयी हुई बातों के विषय में नींद के अन्त में जो ऐसी प्रतीति होती है, उसे 'स्वप्न' कहा गया है। वह स्वप्न अज्ञ पुरुष की महाजाग्रत् अवस्था में स्थित स्थूल शरीर के कण्ठ से लेकर हृदयपर्यन्त नाड़ी-प्रदेश में प्रकट होता है। चिरकाल तक दर्शन के अभाव से जो विकसित नहीं हुआ, वह महाशरीर वाला दृढ़ अभिमान ही स्वप्न है। सुदृढ़ अभिनिवेश से या चिरस्थायित्व की कल्पना से पुष्ट हो जाग्रत्भाव को प्राप्त हुआ स्वप्न महाजाग्रत् की समता प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था को प्राप्त हुआ स्वप्न 'स्वप्न-जाग्रत्' माना गया है। पूर्वोक्त छहों अवस्थाओं का परित्याग करने पर जो जीव की जड़ अवस्था है, वही भावी दुःखों का बोध कराने वाले बीजरूप अज्ञान से सम्पन्न 'सुषुप्ति' कही जाती है। रघुनन्दन ! इस प्रकार सात प्रकार की अज्ञान-भूमिका का मैंने वर्णन किया। यह नाना प्रकार के विकारों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तथा लोकान्तरों के भेदों से युक्त होने के कारण निन्द्य एवं त्याज्य बतायी गयी है।

अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त

उनसठवाँ सर्ग

ज्ञान की सात भूमिकाओं का विशद विवेचन

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-निष्पाप रघुनन्दन ! अब मैं सात प्रकार की ज्ञान भूमिका का वर्णन करता हूँ, इसे सुनो। पहली ज्ञान भूमिका शुभेच्छा बतायी गयी है, दूसरी विचारणा, तीसरी तनुमानसा, चौथी सत्त्वापत्ति, पाँचवीं असंसक्ति, छठी पदार्थाभावना और सातवीं तुर्यगा-इस प्रकार ये ज्ञान की सात भूमिकाएँ मानी गयी हैं।

स्थितः किं मूढ एवास्मि प्रेक्ष्येऽहं शास्त्रसज्जनैः ।
वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छेत्युच्यते बुधैः ।।

'मैं मूढ़ होकर ही क्यों स्थित रहूँ, मैं शास्त्रों और सत्पुरुषों के द्वारा जानकर तत्त्व का साक्षात्कार करूँगा-इस प्रकार वैराग्यपूर्वक केवल मोक्ष की इच्छा होने को ज्ञानीजनों ने 'शुभेच्छा' कहा है।' मैं देह नहीं हूँ, ब्रह्म हूँ-इन वेदान्त-वाक्यों का एकमात्र परमात्मा के तत्त्व-रहस्य-ज्ञान पूर्वक उनको प्राप्त करने की इच्छा से सत्-शास्त्रों में अध्ययन करना और सत्पुरुषों का संग करके उनसे इन महावाक्यों का श्रवण करना ही 'शुभेच्छा' नाम की प्रथम भूमिका है। इसलिये इस भूमिका को ' श्रवण' भूमिका भी कहा जा सकता है।

शास्त्र सज्जन सम्पर्क वैराग्याभ्यास पूर्वकम्।
सदाचार प्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा ।।

'शास्त्रों के अध्ययन, मनन और सत्पुरुषों के संग तथा विवेक-वैराग्य के अभ्यासपूर्वक सदाचार में प्रवृत्त होना-यह 'विचारणा' नाम की भूमिका कही जाती है।

इस नियम के अनुसार जो दृश्य जड़ पदार्थ हैं, वे उत्पत्ति-विनाशशील होने के कारण असत् हैं और परमात्मा ही एक सत् पदार्थ है। जीवात्मा भी उसका अंश होने के कारण सत् है। अद्वैत-सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा वस्तुतः एक ही हैं, माया की उपाधि के सम्बन्ध से उनका भेद प्रतीत होता है। जैसे महाकाश के एक होते हुए भी घड़े की उपाधि के सम्बन्ध से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

घटाकाश और महाकाश अलग-अलग प्रतीत होते हैं, वस्तुतः घटाकाश, महाकाश एक ही हैं, उसी प्रकार जीवात्मा, परमात्मा वास्तव में एक ही हैं-इस तत्त्व को समझ लेना 'विवेक' है।

उपर्युक्त विवेक के द्वारा जब सत्-असत् और नित्य-अनित्य का पृथक करण हो जाता है, तब असत और अनित्य से आसक्ति हट जाती है, एवं इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण पदार्थों में और कर्मों में कामना और आसक्ति का न रहना ही 'वैराग्य' है।

विचारणा शुभेच्छाभयामिन्द्रियार्थेष्वसक्त ता ।
यात्रा सा तनुताभावात् प्रोच्यते तनुमानसा ।।

'उपर्युक्त शुभेच्छा और विचारणा के द्वारा इन्द्रियों के विषय भोगों में आसक्ति का अभाव होना और अनासक्त हो संसार में विचरण करना-यह 'तनुमानसा' है। इसमें मन शुद्ध होकर सूक्ष्मता को प्राप्त हो जाता है, इसलिये इसे 'तनुमानसा' कहते हैं।'

अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त कामना, आसक्ति और ममता के अभाव से, सत्पुरुषों के संग और सत्शास्त्रों के अभ्यास से तथा विवेक-वैराग्य पूर्वक निदिध्यासन-ध्यान के साधन से साधक की बुद्धि तीक्ष्ण हो जाती है तथा उसका मन शुद्ध, निर्मल, सूक्ष्म और एकाग्र हो जाता है, जिससे उसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमात्मतत्त्व को ग्रहण करने की योग्यता अनायास ही प्राप्त हो जाती है। इसी को 'तनुमानसा' भूमिका कहा गया है।

इस तीसरी भूमिका में स्थितसाधक के अन्तःकरण में सम्पूर्ण अवगुणों का अभाव होकर स्वाभाविक ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनसूया (दोषदृष्टि का अभाव), अमानिता, निष्कपटता, पवित्रता, संतोष, शम, दम, समाधान, तेज, क्षमा, दया, धैर्य, अद्रोह, निर्भयता, निरहंकारता, शान्ति, समता आदि सद्गुणों का आविर्भाव हो जाता है। फिर उसके द्वारा जो भी चेष्टा होती है, वह सब सदाचाररूप ही होती है तथा उस साधक को 'संसार के सम्पूर्ण पदार्थ माया के कार्य होने से सर्वथा अनित्य हैं और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र समभाव से परिपूर्ण हैं' ऐसा दृढ़ निश्चय होकर शरीरसहित संसार के सम्पूर्ण पदार्थों और कर्मों में उसकी वासना का भी अभाव हो जाता है। भाव यह है कि उसके अन्तःकरण में उनके चित्र संस्कार रूप से भी नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रहते एवं शरीर में अहंभाव तथा मन, वाणी और शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का अभिमान नहीं रहता; क्योंकि वह परमवैराग्य को प्राप्त हो जाता है।

पूर्वोक्त दूसरी भूमिका में स्थित पुरुष की तो विषयों का विशेष संसर्ग होने से कदाचित् उनमें कुछ आसक्ति हो भी सकती है; परंतु इस तीसरी भूमिका में पहुँचे हुए पुरुष की तो विषयों के साथ संसर्ग होने पर भी उनमें आसक्ति नहीं होती; क्योंकि उसके निश्चय में एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के सिवा अन्य कोई वस्तु रहती ही नहीं। अतः परमवैराग्य हो जाने के कारण उसके अन्तःकरण की वृत्तियाँ सम्पूर्ण संसार से अत्यन्त उपरत हो जाती हैं। यदि किसी काल में कोई स्फुरणा हो भी जाती है, तो भी उसके संस्कार नहीं जमते; क्योंकि उसकी एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में ही निरन्तर गाढ़ स्थिति बनी रहती है, जिसके कारण उसे कभी-कभी तो शरीर और संसार का विस्मरण होकर समाधि सी हो जाती है। ये सब लक्षण परमात्मा की प्राप्ति के अत्यन्त निकट पहुँच जाने पर होते हैं। सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा का चिन्तन करते-करते उस परमात्मा में तन्मय हो जाना तथा अत्यन्त वैराग्य और उपरति के कारण परमात्मा के ध्यान में ही नित्य स्थित रहने से मनका विशुद्ध होकर सूक्ष्म हो जाना ही 'तनुमानसा' नाम की तीसरी भूमिका है। अतः इसे 'निदिध्यासन' भूमिका भी कह सकते हैं। ये तीनों भूमिकाएँ साधनरूपा हैं। इनमें संसार से कुछ सम्बन्ध रहता है, अतः यहाँ तक साधक की 'जाग्रत्-अवस्था' मानी गयी है।

भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेऽर्थे विरतेर्वशात् ।
सत्यात्मनि स्थितिः शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहृता ।।

'ऊपर बतायी हुई शुभेच्छा-श्रवण, विचारणा-मनन और तनुमानसा-निदिध्यासन भूमिकाओं के अभ्यास से चित्त के सांसरिक विषयों से अत्यन्त विरक्त हो जाने के अनन्तर उसके प्रभाव से आत्मा का शुद्ध तथा सत्यस्वरूप परमात्मा में तद्रूप हो जाना 'सत्त्वापत्ति' कहा गया है।'

दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसंगफलेन च ।
रूढसत्त्वचमत्कारात् प्रोक्तासंसक्तिनामिका।।

'शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति-इन चारों के सिद्ध हो जाने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पर स्वाभाविक अभ्यास से चित्त के बाह्याभ्यन्तर सभी विषय-संस्कारों से अत्यन्त असंग (सम्बन्ध-विच्छेद) हो जाने पर अन्तःकरण का समाधि में आरूढ-स्थित हो जाना ही 'असंसक्ति' नाम की पाँचवीं भूमिका कहा गया है।'

भूमिकापञ्चकाभ्यासात् स्वात्मारामतया दृढम्।
आभ्यन्तराणां बाह्यानां पदार्थानामभावनात् ।।
परप्रयुक्तेन चिरं प्रयत्नेनार्थभावनात् ।
पदार्थाभावनानाम्नी षष्टी संजायते गतिः ।।

'उपर्युक्त पाँचों भूमिकाओं के सिद्ध हो जाने पर स्वाभाविक अभ्यास से उस ज्ञानी महात्मा की आत्मारामता के प्रभाव से उसके अन्तःकरण में संसार के पदार्थों का अत्यन्त अभाव सा हो जाता है, जिससे उसे बाहर-भीतर के किसी भी पदार्थ का स्वयं भान नहीं होता, दूसरों के द्वारा प्रयत्न पूर्वक चिरकाल तक प्रेरणा करने पर ही कभी किसी पदार्थ का भान होता है; इसलिये उसके अन्तःकरण की 'पदार्थाभावना' नाम की छठी भूमिका हो जाती है।' पाँचवीं भूमिका के पश्चात् जब वह ब्रह्मप्राप्त पुरुष छठी भूमिका में प्रवेश करता है, तब उसकी नित्य समाधि रहती है; इसके कारण उसके द्वारा कोई भी क्रिया नहीं होती। उसके अन्तःकरण में शरीर और संसार के सम्पूर्ण पदार्थों का अत्यन्त अभाव सा हो जाता है। उसे संसार का और शरीर के बाहर-भीतर का बिल्कुल ज्ञान नहीं रहता, केवल श्वास आते-जाते हैं; इसलिये उस भूमिका को 'पदार्थभावना' कहते हैं। जैसे गाढ़सुषुप्ति में स्थित पुरुष को बाहर-भीतर के पदार्थों का ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता, वैसे ही इसको भी ज्ञान नहीं रहता। अतः उस पुरुष की इस अवस्था को 'गाढ़सुषुप्ति अवस्था' भी कहा जा सकता है। किंतु गाढ़सुषुप्ति में स्थित पुरुष के तो मन-बुद्धि अज्ञान के कारण अपने कारण माया में विलीन हो जाते हैं, अतः उसकी स्थिति तमोगुण- मयी है; पर इस ज्ञानी महापुरुष के मन-बुद्धि ब्रह्म में तद्रूप हो जाते हैं, अतः इसकी अवस्था गुणातीत है। इसलिये यह गाढ़ सुषुप्ति से अत्यन्त विलक्षण है।

गाढ़ सुषुप्ति में स्थित पुरुष तो निद्रा के परिपक्व हो जाने पर स्वतः ही जाग जाता है; किंतु इस समाधिस्थ ज्ञानी महात्मा पुरुष की व्युत्थानावस्था तो दूसरों के बारंबार प्रयत्न करने पर ही होती है, अपने-आप नहीं। उस व्युत्थानावस्था में वह जिज्ञासु के प्रश्न करने पर पूर्व के अभ्यास के कारण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ब्रह्मविषयक तत्त्व-रहस्य को बतला सकता है। इसी कारण ऐसे पुरुष को 'ब्रह्मविद्वरीयान्' कहते हैं।

श्री ऋषभदेव जी इस छठी भूमिका में स्थित माने जा सकते हैं।

भूमिषट्कचिराभ्यासाद् भेदस्यानुपलम्भतः ।
यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः ।।

'उपर्युक्त छहों भूमिकाओं के सिद्ध हो जाने पर स्वाभाविक चिरकाल तक अभ्यास होने से जिस अवस्था में दूसरों के द्वारा प्रयत्न पूर्वक प्रेरित करने पर भी भेदरूप संसार की सत्ता-स्फूर्ति की उपलब्धि नहीं होती, वरं अपने आत्मभाव में स्वाभाविक निष्ठा रहती है, उस स्थिति को उसके अन्तःकरण की 'तुर्यगा' भूमिका जानना चाहिये।' छठी भूमिका के पश्चात् सातवीं भूमिका स्वतः ही हो जाती है। उस ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी महात्मा पुरुष के हृदय में संसार का और शरीर के बाहर-भीतर के लौकिक ज्ञान का अत्यन्त अभाव हो जाता है। क्योंकि उसके मन-बुद्धि ब्रह्म में तद्रूप हो जाते हैं, इस कारण उसकी व्युत्थानावस्था तो न स्वतः होती है और न दूसरों के द्वारा प्रयत्न किये जाने पर ही होती है। जैसे मुर्दा जगाने पर भी नहीं जाग सकता, वैसे ही यह मुर्दे की भाँति हो जाता है; अन्तर इतना ही रहता है कि मुर्दे में प्राण नहीं रहते और इसमें प्राण रहते हैं तथा यह श्वास लेता रहता है। ऐसे पुरुष का संसार में जीवन-निर्वाह दूसरे लोगों के द्वारा केवल उसके प्रारब्ध के संस्कारों के कारण ही होता रहता है। वह प्रकृति और उसके कार्य सत्त्व, रज, तम-तीनों गुणों से और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति-तीनों अवस्थाओं से अतीत होकर ब्रह्म में विलीन रहता है; इसलिये यह उसके अन्तः करण की अवस्था 'तुर्यगा' भूमिका कही जाती है।

ब्रह्म की दृष्टि में संसार का अत्यन्त अभाव है। उपर्युक्त महात्मा पुरुष उस सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को नित्य ही प्राप्त है। अतः उसके मन-बुद्धि में भी शरीर और संसार का अत्यन्त अभाव है। इसलिये ऐसे पुरुष को ब्रह्मविद्वरिष्ठ कहते हैं। ऐसे ही ब्रह्मविद्वरिष्ठ महापुरुष से वार्तालाप न होने पर भी उसके दर्शन और चिन्तन से ही मनुष्य के चित्त में मल, विक्षेप और आवरण का नाश होने से उसकी वृत्ति परमात्मा की ओर आकृष्ट होने पर उसका कल्याण हो सकता है।

यह तुर्यावस्था जीवन्मुक्त पुरुषों में इस शरीर में रहते हुए ही विद्यमान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रहती है। इस देह का अन्त होने पर विदेह-मुक्ति का विषय साक्षात् तुर्यातीत ब्रह्म ही है (अतः भूमिकाओं में उसकी गणना नहीं है)। श्रीराम ! जो महाभाग सातवीं भूमिका में पहुँच गये हैं, वे आत्माराम महात्मा महत्पद (परब्रह्म) को प्राप्त हो चुके हैं। जीवन्मुक्त पुरुष सुख-दुःख में आसक्त नहीं होते। केवल देह यात्रा के लिये छठी भूमिका में कुछ कार्य करते हैं, अथवा सातवीं भूमिका में नहीं भी करते। पूर्वोक्त महात्मा पार्श्ववर्ती पुरुषों द्वारा बोधित होकर उन-उन आश्रमों में स्थित पुरुषों की आचार-परम्परा से प्राप्त सम्पूर्ण सदाचारों का ही सावधान की भाँति पालन करते हैं। उनका वह आचार फल की कामना और आसक्ति नामक दोषों से रहित होता है। वे अपने आत्मा में ही रमण करने के कारण बाह्य विषयों से विरत होते हैं। अतः उन्हें जगत् के व्यवहार उसी तरह सुख नहीं दे पाते, जैसे गाढ़ नींद में सोये हुए पुरुषों को दर्शनीय रूप सौन्दर्य से सुशोभित स्त्रियाँ नहीं सुख दे सकतीं। ज्ञान की ये सात भूमिकायें विवेकी पुरुषों को ही प्राप्त होती हैं। इस ज्ञानदशाह को प्राप्त हुए पशु (हनुमान् और नन्दी), अन्त्यज (मूक चाण्डाल, धर्मव्याध, गुह, भील और शबरी) आदि भी सदेह (जीवन्मुक्त) अथवा विदेहमुक्त ही हैं-इसमें संशय नहीं हैं। चेतन और जड़ की ग्रन्थि का विच्छेद ही ज्ञान है। उसके प्राप्त होने पर मुक्ति हो जाती है। क्योंकि मृगतृष्णा में जलबुद्धि अथवा रज्जु में सर्पबुद्धि आदि का बोध है, वैसा ही चेतन और जड़ की ग्रन्थि का विच्छेद भी है। कुछ लोग एक ही जन्म में क्रमशः ज्ञान की सारी भूमिकाओं को प्राप्त हो जाते हैं। कोई-कोई एक, दो या तीन भूमिकाओं तक ही पहुँच पाते हैं।

कोई छः भूमिकाओं को प्राप्त होते हैं। कोई एकमात्र सातवीं भूमिकाओं में ही स्थित रहते हैं। कोई तीन भूमिकाओं तक जाते हैं। कोई अन्तिम भूमिका में पहुँच जाते हैं। कोई चार भूमिकाओं में स्थित होते हैं। कोई साढ़े तीन, कोई साढ़े चार और कोई साढ़े छः भूमिकाओं तक पहुँच जाते हैं। जो उन भूमिकाओं में पहुँचकर उत्तरोत्तर उत्कृष्ट स्थानों पर विजय पाते जाते हैं, वे महात्मा निश्चय ही वन्दनीय हैं। उन्होंने इन्द्रियरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली है। उस चतुर्थ ज्ञानभूमिका (जीवन्मुक्तावस्था) में पहुँच जाने पर सम्राट (भूमण्डल का राजा) और विराट् (देवलोक का राजा) भी तिनके के समान तुच्छ प्रतीत होता है, क्योंकि वे ज्ञानी महात्मा उस अवस्था में परमपद

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

को प्राप्त हो जाते हैं।

उनसठवाँ सर्ग समाप्त

साठवाँ सर्ग

मायिकारूप का निराकरण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-राघव ! जैसे मृगतृष्णा के जल में, दो चन्द्रमाओं के भ्रम में और शरीर आदि की अहंता में माया से जो रूप परिलक्षित होता है, वह विचारपूर्वक देखने पर दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी प्रकार स्वर्ण में जो कड़े, कुण्डल, अँगूठी आदि का भाव है, वह केवल भ्रान्ति है। वह असत् स्वरूपवाली माया है, क्योंकि उसका वह रूप ही ऐसा है, जो ज्ञानदृष्टि से देखने पर कायम नहीं रहता। असद्वस्तु तो सीप में चाँदी और मरुस्थल में जल की भ्रान्ति के समान विचारहीनता के कारण ही सत्-सी प्रतीत होती है। असत् शरीर में जो अहंता की भावना है, वही परमा अविद्या है, वही माया है और वही संसृति है। जैसे सुवर्ण में अँगूठीपना आदि वास्तव में कल्पित हैं, उसी तरह आत्मा में अहंता आदि की भावना भी कल्पित है। इस प्रकार जो स्वच्छ, शान्त एवं निर्मल है, उस परमोत्कृष्ट आत्मा में अहंता की भावना असत् है। वह शुद्ध आत्मा मेरुता, असुरता, मनपना, देहता और महाभूतता से रहित है। उसमें तीनों कालों की कल्पना और भावाभाव वस्तु का अभाव है। त्वत्ता, अहंता, आत्मता, तत्ता, सत्ता, असत्ता, आदि से भी वह रहित है। उसमें न कहीं भेद की कल्पना है, न राग और रंजन ही है, क्योंकि ये सब मायामात्र हैं। वह तो सर्वाधिक, शान्त, आश्रयरहित, जगत का कारण, शाश्वत, कल्याणमय, निर्विकार, इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य तथा नाम एवं कारणरहित ब्रह्म है।

रघुनन्दन ! वासनायुक्त चित्त जिस वस्तु की पर्याप्त रूप में जैसी भावना करता है, वह वस्तु चाहे सत् हो अथवा असत्, उसको उसी समय उसी रूप में प्रतीत होने लगती है, क्योंकि अहंता आदि भावों से युक्त अविद्या का ज्यों ही अभ्युदय हुआ, त्यों ही आदि, मध्य और अन्त से रहित अनन्त भ्रमों का ताँता लग जाता है। जैसे बहुत-से व्यक्तियों के मनःकल्पित वचन बहुधा एक-से होते हैं, उसी तरह स्वप्न में भी देश, काल और क्रिया भी एक से दीख पड़ते हैं। परंतु उस व्यवहार की सत्ता अज्ञान से ही प्रतीत होती है। वास्तव में तो चेतन सत्ता के अतिरिक्त सम्पूर्ण पदार्थों की कोई अन्य सत्ता है ही नहीं। वह चेतन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सत्ता भूत, वर्तमान और भविष्य–तीनों कालों में मौजूद रहती है और वही भिन्न–सी प्रतीत होती है–ठीक उसी तरह, जैसे समुद्र बालू में तरंग और बीज में वृक्ष भिन्न से भासित होते हैं। और जैसे बालू में तेल आदि का होना असम्भव है, वैसे ही अविद्या कोई वस्तु नहीं है। भला, सोने के बने हुए कंगण में स्वर्णता के अतिरिक्त दूसरी कौन वस्तु हो सकती है ? अर्थात् कोई नहीं अतः अविद्या के साथ आत्मतत्व सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, क्योंकि यह तो अपने अनुभव से स्पष्ट है कि सभी का अपने समान के साथ ही सम्बन्ध होता है। जब जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ चिन्मात्रमय एवं सन्मात्रमय होते हैं, तब वे भाव परस्पर अपने अनुभव के बल पर प्रकाशित होते हैं। विषम पदार्थों का निरन्तर साक्षात् सम्बन्ध होना असम्भव है और परस्पर सम्बन्ध हुए बिना आपस में अनुभव भी नहीं हो सकता।

तत्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ राम ! वास्तव में जैसे मिट्टी की बनी हुई सेना मृद्बुद्धि से देखने पर विचित्र होने पर भी विचार दृष्टि से एकमात्र मिट्टी ही है, तरंग आदि एकमात्र जल ही हैं, काठ की बनी हुई पुतलियों में एकमात्र काष्ठ की व्याप्त है और घट आदि केवल मिट्टी ही हैं, उसी प्रकार यह भ्रम से प्रतीत होने वाला जगत् एकमात्र ब्रह्म ही है। द्रष्टा का दृश्य और दर्शन के साथ सम्बन्ध होने पर उसके मध्य में जो उसका द्रष्टा, दर्शन और दृश्य आदि से रहित शुद्धरूप है, वही वह परब्रह्म है।

श्रीराम ! जैसे शिला में जल और जल में अग्नि नहीं है, उसी प्रकार जीवात्मा में चित्त नहीं है, फिर वह परमात्मा में कहाँ से हो सकता है। विचार-पूर्वक देखने पर जो स्वयं ही कुछ नहीं है, उसके द्वारा जहाँ–कहीं जो कुछ किया जाता है, वह 'कृत' नहीं कहलाता। जो मूर्ख असत्य स्वरूपवाले चित्त का अनुवर्तन करते हैं, उन्हें धिक्कार है, क्योंकि वे केवल आकाश–ताड़नरूपी कर्म में व्यर्थ ही समय बिताने वाले हैं। इस प्रकार भूतल पर पैदा हुए पुरुष को बुद्धि के कुछ भी विकसित होने पर पहले सत्संगपरायण होना चाहिए, क्योंकि अनवरत प्रवाहित होते हुए इस अविद्यारूपी नदियों के समूह को शास्त्र एवं सज्जनों के सम्पर्क के अतिरिक्त और किसी उपाय से पार नहीं किया जा सकता। उस सत्संगद्वारा विवेक की प्राप्ति होने से पुरुष को 'यह त्याज्य है और यह ग्राह्य है' ऐसा विचार उत्पन्न होता है। तब वह शुभेच्छा नाम की ज्ञान भूमि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.F.S) Jammu Collection

में अवतीर्ण होता है। तदनन्तर विवेक वश विचारणा नाम की ज्ञान भूमि में आता है। वहाँ यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होने से मिथ्या वासना का परित्याग करने वाले पुरुष का मन सांसरिक वासनाओं से रहित हो तनुता (सूक्ष्मता) को प्राप्त होता है। इस कारण वह तनुमानसा नाम की ज्ञानभूमि में अवतीर्ण होता है। फिर ज्यों ही योगी यथार्थ ज्ञान का उदय होने से परमात्मा में तद्रूप हो जाता है, त्यों ही उसे सत्त्वापत्ति नाम की ज्ञानभूमि प्राप्त होती है। तब वासना का विनाश हो जाने के कारण वह 'असंसक्त' कहलाने लगता है और कर्मफल के बन्धन से मुक्त हो जाता है। तत्पश्चात् वासनाओं का विनाश हो जाने के कारण स्वाभाविक अभ्यास से जब वह कार्यों को करता हुआ अथवा उन से विरत हुआ या संसार की असत्य वस्तुओं में स्थित हुआ भी अपने आत्मा में ही मन के क्षीण हो जाने के कारण बाह्य वस्तुओं का व्यवहार करते हुए भी न तो उन्हें देखता है, न रुचिपूर्वक उनका सेवन करता है और न स्मरण ही करता है, बल्कि अर्ध-सुप्त एवं अर्ध-प्रबुद्ध पुरुष की भाँति केवल कर्त्तव्य-कर्मों को करता रहता है, तब वह योगी पदार्थ-भावना नाम की योगभूमि को प्राप्त होता है। इस प्रकार जिसका चित्त ब्रह्म में लीन हो गया है, वह योगी कुछ वर्षों तक ऐसे स्वाभाविक अभ्यास से बाह्य पदार्थों का व्यवहार करता हुआ भी जब उनकी भावना से रहित हो स्वयं तुर्यात्मा हो जाता है, तब 'जीवन्मुक्त' कहा जाता है। जीवन्मुक्त पुरुष न तो प्राप्त हुई वस्तु का अभिनन्दन करता है न अप्राप्त के लिए चिन्ता। वह जो कुछ सामने उपस्थित हो जाता है, उसी का निश्शंक होकर अनुवर्तन करता है। रघुनन्दन ! तुम सम्पूर्ण कार्यों की वासना से रहित हो, इसलिये तुम सबके अंदर वर्तमान जानने योग्य सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में स्थित हो। अतः तुम चाहे संसार के कल्याण के लिये शास्त्रविहित कर्म करते रहो, चाहे एकान्त में ध्यान-समाधि में स्थित रहो।

श्रीराम ! आत्मा न तो प्रकट होता है न विलीन ही। जैसे घड़े के फूटकर टुकड़े हो जाने पर घटाकाश का नाश नहीं होता, उसी प्रकार इस शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा का विनाश नहीं होता। अरे यह आत्मा तो अद्वितीय है। फिर दूसरी कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसकी वह अभिलाषा करेगा? राघव ! जगत् में श्रवण करने योग्य, स्पर्श करने योग्य, देखने योग्य, चखने योग्य, और सूँघने योग्य, कोई भी ऐसी वस्तु नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (Hi) Varanasi Collection

है, जो आत्मा से पृथक हो। वह आत्मा सर्वशक्तिमान्, विस्तृत और व्यक्त है। वासनाक्षयरूप मनोनाश हो जाने पर इस माया का, जिसमें संस्कार रूप से कर्म रहते हैं, अत्यन्त अभाव हो जाता है। जब तक इस माया का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता, तभी तक यह बड़े-बड़े मोहों में डालती रहती है, किंतु जब यह माया बिना हुए ही प्रतीत हो रही है-इस प्रकार का इसका वास्तविक ज्ञान हो जाता है, तब ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। यह ब्रह्म से ही उत्पन्न हुई है और संसार की लीला करके ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है।

रघुकुलभूषण राम ! जैसे तेज से सभी प्रकाश आविर्भूत होते हैं, उसी तरह कल्याणमय, रूपरहित, अप्रमेय और विशुद्ध ब्रह्म से सभी प्राणी उत्पन्न हुए हैं। जैसे पत्ते में उसकी नसें, जल में तरंगसमूह, सुवर्ण में कटक-कुण्डल आदि और अग्नि में उष्णता आदि व्याप्त हैं, उसी प्रकार यह त्रिलोकी उस ब्रह्म में ही स्थित है, उसी से उत्पन्न हुई है और उसी में विलीन हो जाती है। वही समस्त प्राणियों का आत्मा है और वही ब्रह्म कहा जाता है, उसका ज्ञान हो जाने पर इस मिथ्या जगत् का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। श्रीराम ! देह के नष्ट होने पर जीवात्मा का नाश नहीं होता। जो चिन्मय जीवात्मा मन से अतीत होने के कारण आकाश की भाँति अव्यक्त है, वह जड़ सुखों अथवा दुःखों से व्याप्त कैसे हो सकता है। उस चिदात्मा में, जो सबका साक्षी, सर्वत्र सम, निर्मल और निर्विकल्प है, ये सभी जगत् किसी प्रकार की इच्छा के बिना ही उसी प्रकार प्रतिबिम्बित होते हैं, जैसे दर्पण में पदार्थों का प्रतिबिम्ब। संकल्पों के पूर्णरूप से क्षय हो जाने के कारण जब चित्त विलीन हो जाता है, तब सांसारिक मोहरूपी तुषार नष्ट हो जाता है। उस समय शरद् ऋतु के आने पर स्वच्छ आकाश की तरह चिन्मय शुद्ध आत्मा ही अद्वितीय, अजन्मा, आद्य एवं अनन्त रूप से विभासित होता है। जैसे महासागर में जल-लहरियाँ उत्पन्न होती हैं, दीखती हैं और तुरंत ही विलीन हो जाती हैं, उसी तरह यह मिथ्या मन स्वयं अपने अधिष्ठानभूत चेतन की स्फुरणा से युक्त होकर सत् सा दिखायी देता है और साक्षीभूत चेतन में बारंबार उत्पन्न होकर विलीन होता रहता है।

साठवाँ सर्ग समाप्त

उत्पत्ति-प्रकरण सम्पूर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सचित्र
योगवासिष्ठ महारामायण

प्रथम खण्ड

स्थिति प्रकरण

येषां गुणष्वसंतोषो रागो येषां श्रुतं प्रति।
सत्यव्यसनिनो ये च ते नराः पशवोऽपरे।।

(स्थिति प्रकरण से)

'जिसका (इन शम-दमादि) गुणों के विषय में संतोष नहीं है (इनको जो बढ़ाना ही चाहते हैं), जिनका शास्त्र के प्रति अनुराग है तथा जिनको सत्य के आचरण का ही व्यसन है, वह ही वास्तव में मनुष्य हैं, दूसरे तो पशु ही हैं।'

•••

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मैं, तुम, यह, वह, सृष्टि, संहार आदि रूप से जो दृश्य प्रपंच दिखायी दे रहा है, वह एकमात्र अद्वितीय नित्य निर्मल शान्त चिन्मय ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। इन समस्त सत्-रूप से दीखने वाले असत् पदार्थों में एकमात्र सत् परमात्मा ही प्रकट है। वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही यह सम्पूर्ण जगत् है। उसके अतिरिक्त जगत नाम की कोई सत् वस्तु कभी न थी, न है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

श्री योगवासिष्ठ महारामायण

स्थिति-प्रकरण

पहला सर्ग

चित्ररूप से जगत् का वर्णन

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-श्री राम ! अब उत्पत्ति-प्रकरण के अनन्तर इस स्थिति-प्रकरण को श्रवण करो, जो जान लिये जाने पर निर्वाण प्रदान करने वाला है। इस प्रकार जगत्रूप से स्थित यह दृश्य-प्रपंच और अहंता आदि आकाररहित भ्रान्तिमात्र और असत्स्वरूप ही हैं। यह आकाश में उत्पन्न हुए चित्र के समान एक निराधार विलक्षण चित्र है। यह यद्यपि ब्रह्म से अभिन्न है, तथापि जल में उसके भँवर की भाँति ब्रह्म में अन्य सा स्थित लक्षित होता है। यह जगद्रूपी चित्र चित्रलिखित उद्यान की तरह फूला हुआ है। इसकी आकृति मकरन्द आदि रस से रहित होने पर भी सरस प्रतीत होती है। यद्यपि इसका रूप रोगयुक्त नेत्रों द्वारा देखे गये अन्धकार के चक्र के समान वास्तव में नहीं है, तथापि यह प्रत्यक्ष-सा दीखता है। यह रसात्मक होता हुआ भी परिणाम में अत्यन्त कटु है और उसके उत्पत्ति विनाश होते रहते हैं।

ज्ञानवानों में श्रेष्ठ राम ! जो समस्त कल्पनाओं से अतीत एवं निर्मल है, उस महान् अनन्त निराकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में यदि वास्तव में जगत् आदि अंकुर रूप में विद्यमान हैं तो बताओ कि वह प्रलय काल के पश्चात् किन सहकारी कारणों के सहयोग से उत्पन्न हो सकता है ? क्योंकि इस जगत् में किसी ने कभी भी वन्ध्या की कन्या के समान सहकारी कारणों के अभाव में अंकुर की उत्पत्ति नहीं देखी है। श्रीराम ! यदि कहो कि सहकारी कारणों के अभाव में भी (रज्जु में सर्प की तरह) जगद्रूपी अंकुर आविर्भूत हुआ है तो ऐसी दशा में मूल कारण ही जगत्स्वभावता को प्राप्त हो गया है; क्योंकि सृष्टि आदि में यथास्थिति निराकार ब्रह्म ही सृष्टि रूप से अपने स्वरूप में स्थित होता है, अतः वहाँ जन्य-जनक का क्रम कहाँ से घट सकता है। इसलिये श्रीराम ! यह जगत् न तो था, न है और न होगा ही। (अतः ब्रह्म में जगत् का तीनों कालों में अत्यन्त अभाव है।) सच्चिदानन्द परमात्मा ही अपने आप में इस प्रकार जगत् के रूप में विकसित हो जाता है। वत्स राम ! जब इस जगत् का अत्यन्ताभाव हो जाता है, तब केवल एक ब्रह्म ही शेष रहता है। किंतु यदि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

जगत् प्रतीत होता है तो वह ब्रह्म ही है, उससे अतिरिक्त कुछ नहीं है। जब काम-कर्म-वासना आदि भावों के साथ इस दृश्य-प्रपंच का उपशमन हो जाता है, तभी इस जगत् का अत्यन्ताभाव होता है; परंतु चित्त के मौजूद रहते दृश्य-जगत् का शमन होना सम्भव नहीं। इसलिये परमात्मा के यथार्थ ज्ञान के बिना दृश्यता की शान्ति नहीं हो सकती। अतः दृश्यस्वरूप जगत् का सर्वथा अत्यन्ताभाव ही दृश्यता की शान्ति का एकमात्र उपाय है। इसके अतिरिक्त पूर्ण रूप से अनर्थ के विनाश के लिये दूसरी कोई युक्ति नहीं है। परमात्मा स्वयं ही अपने संकल्प से अपने अंदर वर्तमान जिस चमत्कार को प्रकट करता है, वही सृष्टिरूप से प्रतीत होता है। उसका वास्तव में न तो कोई रूप है और न कोई आधार ही है। जैसे महाशिलाओं पर खुदे हुए लेखों के स्वरूप दीख पड़ते हैं, उसी तरह ये सृष्टियाँ न उत्पन्न होती हैं न नष्ट होती हैं तथा न आती हैं, न जाती हैं-केवल प्रतीत होती हैं। जैसे जल का द्रवत्व, वायु का स्पन्दन, समुद्र के आवर्त और गुणी के गुण अपने आधार स्थान से भिन्न नहीं हैं, उसी तरह उत्पत्ति-विनाशशील कार्यों वाला यह जगत् एकमात्र अनन्त, शान्त, विस्तृत, विज्ञानघन ब्रह्मरूप से ही स्थित है, उससे पृथक् नहीं।

श्री राम जी ने पूछा ! महाप्रलय के पश्चात् सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होने वाले ये प्रजापति स्मृतिरूप से ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये मैं ऐसा समझता हूँ कि उन स्मृत्यात्मा से प्रकट हुआ यह जगत् भी स्मृतिरूप ही है।

श्री वसिष्ठ जी ने कहा-रघूद्वह ! यह ऐसा ही है। महाप्रलय के अनन्तर सर्ग के आदि में सर्वप्रथम ये प्रजापति स्मृतिरूप से ही प्रकट होते हैं, अतः उनका संकल्प भूत यह जगत् भी स्मृति रूप ही है। उन प्रजापति का प्राथमिक संकल्प नगर ही जगत् रूप से प्रकाशित हो रहा है। ज्ञानी के लिये यह जगत् शान्त एवं अविनाशी केवल ब्रह्म ही है, परंतु वही अज्ञानी की बुद्धि से भासमान नाना लोकों से युक्त है। पर्वत पर स्थित परमाणु जैसे पर्वत से भिन्न नहीं हैं और न उनकी गणना ही की जा सकती है, उसी प्रकार ब्रह्म रूपी महान् मेरुगिरि पर स्थित त्रैलोक्यरूपी परमाणु ब्रह्म से अभिन्न तथा असंख्येय हैं। इस सृष्टि को यदि सृष्टि के रूप में ही समझा गया, तब तो यह अधोलोक में ले जाती है; परंतु इसी को यदि ब्रह्म से जान लिया गया तो यह परम मंगलमयी हो जाती है। यह सब जगत् विश्व के कारण विज्ञानस्वरूप सच्चिदानन्द परब्रह्म

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

परमात्मा ही है; क्योंकि जिससे जो उत्पन्न होता है उसे तद्रूप ही समझना चाहिये। इसलिये समस्त वेद्य दृश्य-प्रपंच आत्मज्ञान हो जाने पर ज्ञानी की दृष्टि में शुद्ध चिन्मात्र ही है।

श्रीराम ! साधक के द्वारा इन्द्रिय समुदाय पर विजय प्राप्तिरूपी पुल के आश्रय से ही इस भवसागर को पार किया जा सकता है, अन्य किसी भी कर्म से इससे पार पाना कठिन है। निरन्तर शास्त्राध्ययन और सत्संगति के अभ्यास से जो विवेकयुक्त हो गया है, वही इन्द्रियजयी होता है और उसी को इस दृश्य प्रपंच के अत्यन्ता भाव का ज्ञान भी प्राप्त होता है। सौन्दर्यशालियों में श्रेष्ठ राम ! संसार सागर की श्रेणियाँ जैसे आती हैं और पुनः जैसे चली जाती हैं, वह सारा स्वरूप मैंने तुमसे वर्णन कर दिया। अब इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ ? मन ही कर्मरूपी वृक्ष का अंकुर है। उस मन के नष्ट हो जाने पर कर्मरूपी शरीर वाला संसार वृक्ष भी नष्ट हो जाता है। श्रीराम ! यह सब कुछ मन ही है। इस मन की चिकित्सा हो जाने पर जगज्जालरूपी सारी व्याधियों की चिकित्सा हो जाती है। यह मन ही जब देहाकार का मनन करता है, तब लोक में कर्म करने में समर्थ देह उत्पन्न होती है। भला, कहीं मन से भिन्न भी देह देखी जाती है ? जैसे विशाल आकाश में असत्स्वरूप गन्धर्व नगर की प्रतीति होती है, उसी तरह विषयों के चिन्तन से वृद्धिगत हुए मन में यह सारा जगत् स्फुरित होता है। मन ही जगत् है तथा सम्पूर्ण जगत् ही मन है; ये दोनों एक साथ रहते हैं।

पहला सर्ग समाप्त

दूसरा सर्ग

जगत् की शून्यता का कथन

रघुनन्दन ! समस्त एषणाओं की शान्ति हो जाने पर विशुद्ध-चित्त पुरुष की जो स्थिति है, उसी को सत्य आत्मतत्त्व कहा गया है और उसी को निर्मल चैतन्य कहते हैं। निर्मल सत्त्वरूप मन जिस वस्तु के विषय में जैसी भावना करता है, वह वस्तु तत्काल वैसी ही हो जाती है। जैसे इस समय जाग्रत अवस्था में हम लोगों को संसार का स्वयं ही प्रत्यक्ष भान होता है, उसी प्रकार स्वप्न और भ्रम आदि अवस्थाओं में सहस्त्रों संसार भी मिथ्या दृष्टिगोचर होते

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

हैं। जैसे एक को दूसरे के स्वप्न और मनोरथ सम्बन्धी नगरों के व्यवहार पृथक् होने के कारण दिखायी नहीं देते, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के ये संसार रूपी भ्रम पृथक्-पृथक् होने के कारण एक दूसरे के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसी प्रकार संकल्प रूपी आकाश में अनेक संसार रूपी नगरों के समुदाय हैं; परंतु वे ज्ञानदृष्टि के बिना मिथ्या नहीं प्रतीत होते। जैसे एकमात्र वसन्त ऋतु का रस ही वन, लता और गुल्म आदि के रूप में प्रकट होता है, उसी तरह एकमात्र परब्रह्म परमात्मा ही प्रत्येक व्यक्ति के लिये मिथ्या जगतरूप से प्रकट हुआ है। अपना यह संकल्प ही जगत् के आकार में प्रतीत हो रहा है, यह बात अत्यन्त परमार्थ-दृष्टि से ही ज्ञात होती है।

अपने-अपने स्वभाव (अनादि अज्ञान) के भीतर स्थित चित्त ही प्रत्येक जीव में इदमित्थं रूप से प्रतीत होने वाला यह जगत है। इस प्रकार प्रतीति मात्र जगत् को असत्य समझने वाला चित्त स्वयं ही नष्ट हो जाता है; क्योंकि प्रतीति काल में ही इस जगत् की सत्ता है। परमार्थ वस्तु (अधिष्ठानरूप ब्रह्म) का साक्षात्कार होने पर उसकी सत्ता नहीं रहती। चित्त की सत्ता ही जगत् है और जगत की सत्ता ही चित्त है। एक के अभाव से दोनों का अभाव हो जाता है। यह इन दोनों का अभाव सत्यस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्म-विषयक विचार करने से ही सम्भव है। जैसे मलिन मणि को युक्ति से साफ करने पर उससे शुद्ध प्रकाश प्रकट होता है, उसी तरह शुद्ध चित्त का अनुभव सत्य होता है। चिरकाल तक एक परमात्मा के चिन्तनरूप दृढ़ अभ्यास से चित्त की शुद्धि होती है। जो संकल्पों से आक्रान्त नहीं है, ऐसे चित्त से ज्ञान का उदय होता है। जैसे मलिन वस्त्र में सुन्दर रंग नहीं टिकता, उसी तरह वासना से मलिन चित्त में ब्रह्माकार रूप एक दृष्टि स्थिर नहीं होती। वासना से रहित होना ही चित्त की शुद्धि है, जगत् के ज्ञान से शून्य और एक ब्रह्माकार होना ही उसका वासना से रहित होना है। चित्त की शुद्धि होने से पुरुष शीघ्र ही प्रबुद्ध (ज्ञान-सम्पन्न) हो जाता है। चित्त का चिन्मय परमात्मरूप में लय हो जाना ही उसकी वास्तविक शुद्धि है। इस शुद्धि का लाभ होते ही प्रबुद्ध पुरुष परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

दूसरा सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तीसरा सर्ग

स्वरूप की विस्मृति से ही भेद भ्रम की अनुभूति

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-रघुनन्दन ! जिस प्राणी का जिस तरह के कर्मों का भोगानुकूल फल जहाँ जैसे रहता है, वहाँ उतना ही वह अनुभव करता है, उससे अतिरिक्त नहीं। एक व्यक्ति हृदय में विद्यमान जो मनोराज्य है, उसे देखने या भोगने आदि में दूसरे व्यक्ति का मन सफल नहीं होता। यह जो असफलता को प्राप्त हुई मन की स्थिति है, वही उसके विच्छेद यानी नानात्व में हेतु है-यों जानना चाहिये। उस मन के भेद से ही जीवों के भेद होते हैं अर्थात् जैसे भिन्न-भिन्न मन हैं, उसी तरह भिन्न-भिन्न जीव भी हैं। जैसे सुवर्ण अपने ज्ञान के अभाव से कड़े-कंगन आदि के रूप को प्राप्त होता है, उसी प्रकार जिसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है, उस चेतन ने स्थूल देह को स्वीकार करके संसाररूपिणी अविद्या का मिथ्या ही अनुभव किया है।

सम्पूर्ण जीव-समूहों का आत्मा स्वयं ही अपने संकल्प से जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीन अवस्थाओं को प्राप्त हुआ है। इन अवस्थाओं में शरीर कारण नहीं है। इस प्रकार जाग्रत् आदि तीन अवस्थारूप आत्मा में ही जीवत्व है अर्थात् वह आत्मा ही जीवरूप से स्फुरित हो रहा है; इसमें शरीरत्व का विकास नहीं है। तात्पर्य यह कि जैसे जल ही लहर एवं भँवर आदि के रूप में विख्यात होता है-यह तात्त्विक दृष्टि प्राप्त होने पर जल में उससे पृथक् लहर आदि की सत्ता नहीं रहती, उसी प्रकार जीवात्मा ही जाग्रत् आदि अवस्था रूप है-यह विचार दृढ़ होते ही जीव से पृथक् देह की वास्तविक सत्ता शेष नहीं रह जाती।

इसी प्रकार तत्त्वज्ञ पुरुष सुषुप्ति अवस्था के अवसानभूत तुरीय पदरूप सच्चिदानन्दघन परमात्म पद को ज्ञान द्वारा प्राप्त करके संसार से निवृत्त हो जाता है; परंतु जो मूढ़ जीव है, वही सृष्टि में प्रवृत्त होता है। ज्ञानी और अज्ञानी दोनों की सुषुप्ति एक रूप ही है; क्योंकि अज्ञ को भी सुषुप्तावस्था में सुख की प्राप्ती होती है। किंतु अज्ञानी जीव तो सुषुप्तावस्था में पहुँचकर भी असम्बुद्ध (वास्तविक आत्म ज्ञान से रहित और देहात्मभाव की भ्रान्ति-वासना से वासित) होने के कारण सृष्टि को प्राप्त होता है, परंतु ज्ञानी नहीं। परब्रह्म परमात्मा निर्विशेष होने के कारण स्वभाव नहीं कहा जा सकता। निर्विकार, अद्वितीय और असंग होने के कारण जो वास्तव में किसी का कारण नहीं है, तथापि सम्पूर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्रपंच के आरोप का अधिष्ठानरूप से आदिकारण है, उस निर्विशेष परब्रह्म परमात्मा में वस्तुतः कारण एमं निमित्त आदि वस्तु की भी सम्भावना नहीं है। (अतः ब्रह्म में बिना किसी कारण के ही प्रतीत होने वाला यह जगत् मिथ्या ही है।)

सार वस्तु (ब्रह्म) का ही विचार करना उचित है। असार वस्तु (दृश्य संसार) के विचार से क्या लाभ। बीज अपने स्वरूप का त्याग करके अंकुर आदि के क्रम से फलरूप में परिणत होता देखा जाता है, परंतु ब्रह्म वैसा नहीं है। वह अपने स्वरूप का त्याग किये बिना ही जगत्रूप अध्यारोप का अधिष्ठान रूप से कारण होता है, बीज का अवयव आदि सब कुछ साकार है। अतः उससे निराकार परमपदरूप ब्रह्म की तुलना करना उचित नहीं। इसलिये कल्याणस्वरूप ब्रह्म के लिये कोई उपमा सम्मत ही नहीं हो सकती। अपने को दृश्य रूप में देखने वाला द्रष्टा अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा को नहीं देख सकता (इसलिये उसे अनर्थ की प्राप्ति होती है)। जिसकी बुद्धि प्रपंच से आक्रान्त हो, ऐसे किसी पुरुष को अपनी यर्थाथ स्थिति का ज्ञान नहीं होता।

तीसरा सर्ग समाप्त

चौथा सर्ग

वैराग्य से मोक्ष

वसिष्ठ जी बोले–हे श्रीराम ! जब तक भ्रान्ति से मृगतृष्णा में जल की प्रतीति हो रही है, तब तक किसी की समझदारी किस काम की; और जब यह ज्ञान हो गया कि यहाँ जल नहीं है, तब वहाँ मृगतृष्णा ही क्या रह गयी। जैसे नेत्र बहिर्मुख होने के कारण अपने–आपको नहीं देख पाता, उसी प्रकार आकाश की भाँति निर्मल होता हुआ भी द्रष्टा बहिर्मुख होने के कारण अपने स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर सकता। यह भ्रम की प्रबलता कैसी आश्चर्य-जनक है ! यदि–प्रपंच को दृश्यरूप से ही सच्चा समझा जाय तो आकाश के समान निर्मल ब्रह्म यत्न करने पर भी नहीं मिल सकता; फिर तो उसकी प्राप्ति बहुत दूर हो जाती है। श्रीराम ! इसीलिये उसको दृश्य ही दिखायी देता है, द्रष्टा का दर्शन नहीं होता। वास्तव में एकमात्र द्रष्टा ही सर्वत्र स्थित है, दृश्य नाम की कोई वस्तु यहाँ है ही नहीं (जो कुछ दिखायी देता है, वह केवल भ्रम है)। जब द्रष्टा और दृश्य में कोई अन्तर ही नहीं रहा, तब कौन द्रष्टा और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

कैसा दृश्य; क्योंकि वह द्रष्टा ही दृश्यरूप में प्रकट होता है।

जब चित्त सिद्धि को प्राप्त होता है, तब जीव जड़ संसर्ग से मुक्त हो केवल शुद्ध चिन्मय आत्म स्वरूप से स्थित होता है। वह चेतन आत्मा शुद्ध एवं सर्वव्यापी है; चेतन आत्मा जहाँ जिस वस्तु की भावना करता है, वहाँ वह तत्काल प्रकट हो जाती है। उसने स्वप्न में भी जो कुछ देखा है, वह स्वप्न के समय में सत्य ही है। जैसे बीज के अंदर सूक्ष्म रूप से पत्ते, लता, फूल और फल रूप अणु रहते हैं, उसी प्रकार चेतन रूप अणु के भीतर समस्त सूक्ष्म अनुभव विद्यमानहैं। जिस पुरुष के भीतर यह विचार नहीं उठता कि मैं कौन हूँ और यह जगत् क्या है, वह संसार के बन्धन से मुक्त नहीं हुआ। जिस विशुद्ध बुद्धि वाले पुरुष की भोगलिप्सा प्रतिदिन क्षीण होती जाती है, उस वैराग्यवान् का ही विवेक युक्त विचार सफल होता है। जैसे शरीर के द्वारा पथ्य-भोजन आदि नियमों के साथ सेवन किया हुआ औषध ही आरोग्य प्रदान करता है, उसी प्रकार जितेन्द्रियता का अभ्यास हो जाने पर ही विवेक सफल होता है। चित्र में अंकित प्रज्वलित अग्नि की भाँति जिसका विवेक केवल कथन मात्र ही है, कार्य में परिणत नहीं हुआ है, उसने अविवेक का त्याग नहीं किया है; अतः वह अविवेक उसे दुःख ही देने वाला होगा। जैसे स्पर्श से ही वायु की सत्ता का भान होता है, कथनमात्र से नहीं, उसी प्रकार भोगेच्छा के क्षीण होने से ही पुरुष का विवेक जाग्रत् होता है। चित्रलिखित अमृत अमृत नहीं है, चित्रलिखित अग्नि अग्नि नहीं है, चित्रलिखित नारी निश्चय ही नारी नहीं है; उसी तरह कथनमात्र का विवेक विवेक नहीं है, वास्तव में अविवेक ही है। विवेक से पहले राग और द्वेष का समूल नाश हो जाता है। तत्पश्चात् विषय भोगों के लिये प्रयत्न सर्वथा क्षीण हो जाता है। जिस पुरुष में विवेक जाग्रत् है, वही परमपवित्र है।

चौथा सर्ग समाप्त

पाँचवाँ सर्ग

उपासनाओं के अनुसार फल की प्राप्ति

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-श्रीराम ! वे जीव अपनी सिद्धि के लिये जैसे-जैसे प्रयत्न करते हैं, उन विविध उपासनाओं के क्रम से वे शीघ्र वैसे ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वैसे हो जाते हैं। देवताओं की पूजा करने वाले देवताओं को, यक्षों की आराधना करने वाले यक्षों को और ब्रह्म के उपासक ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। इनमें जो सर्वोत्तम है, उस परमात्मारूप इष्टदेव का आश्रय लेना चाहिये।

श्रीराम जी ने पूछा–भगवन् ! आप मुझे जाग्रत् तथा स्वप्न–अवस्थाओं का भेद बताइये।

श्री वसिष्ठ जी ने कहा–रघुनन्दन ! जिसकी प्रतीति स्थिर हो, उसे जाग्रत् कहते हैं और जिसकी प्रतीति स्थिर नहीं होती, उसे स्वप्न कहा गया है। यदि स्वप्न भी कालान्तर में स्थित हो तो प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर उसे जाग्रत् की श्रेणी में ही देखा जायगा; और यदि जाग्रत् भी कालान्तर में स्थित नहीं है तो वह स्वप्न ही है। इस प्रकार जाग्रत् स्वप्नभाव को और स्वप्न जाग्रत्–भाव को प्राप्त होता है। स्वप्न भी स्वप्न काल में स्थिर होने के कारण जाग्रत–भाव को प्राप्त होता है और जाग्रत् के मनोरथ भी जाग्रत् काल में अस्थिर होने से स्वप्न ही हैं; क्योंकि वैसा ही बोध होता है।

रघुनन्दन ! मैंने तुमसे यह जो कुछ कहा है–जाग्रत् आदि अवस्थाओं का वर्णन किया है, वह सब मन के स्वरूप का निरूपणमात्र है। और किसी हेतु या प्रयोजन से यह सब नहीं कहा गया है। जैसे अग्नि के सम्पर्क में आने से लोहे का गोला आग बन जाता है, उसी प्रकार दृढ़ निश्चय से युक्त चित्त जिस वस्तु की बारंबार भावना करता है, उसी के आकार को प्राप्त हो जाता है। भाव, अभाव, ग्रहण और त्याग आदि सारी प्रतीतियाँ चेतन में मन के द्वारा कल्पित हैं। ये प्रतीत होती हैं, इसलिये तो ये असत्य नहीं हैं और वास्तव में ये हैं नहीं, इसलिये सत्य नहीं हैं। चित्त की चपलता से ही इनका निर्माण हुआ है। मन मोह का जनक और जगत् की स्थिति का कारण है। मलिन मन ही व्यष्टि और समष्टिरूप से इस जगत् की कल्पना करता है। संसार की सारी विभूतियाँ एकमात्र मन को जीतने से ही प्राप्त होती हैं। चित्त जिसकी भावना में तन्मय होता है, उसे निस्संदेह प्राप्त कर लेता है। सौभाग्यशाली श्रीराम ! मन के द्वारा अभिलषित देश या विषय को शरीर प्राप्त होता है। परंतु शरीर के द्वारा आचरित देश या विषय को मन नियमतः प्राप्त नहीं होता।

जैसे सुगन्धित पुष्प के भीतर स्थित हुई वायु उसकी घनीभूत सुगन्ध को प्राप्त कर लेती है, उसी प्रकार मनन से चंचल हुआ मन जिस–जिस वस्तु की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भावना करता है अथवा जिस-जिस वासना से युक्त भाव को अपनाता है, उसी के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। श्रीराम ! जैसे गन्ध के भीतर स्थित हुई वायु गन्ध रूपता को प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार मन जिस भाव से युक्त होता है, उसके बाद उसका वशवर्ती शरीर भी उसी के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियों के अपने-अपने विषय में प्रवृत्त होने पर उनसे कर्मेन्द्रियस्वरूप स्वतः ही इस तरह स्फुरित होता है, जैसे धूल मिश्रित वायु में पृथ्वी अपने-आप धूलिकणों के रूप में स्फुरित होती है। कर्मेन्द्रियाँ क्षुब्ध होकर जब अपनी क्रिया शक्ति को प्रकट करती हैं, तब वायु में धूल समूह की भाँति मन में प्रचुर कर्म सम्पादित होता है। इस प्रकार मन से कर्म की उत्पत्ति हुई है और मन की उत्पत्ति में भी कर्म को ही बीज (कारण) बताया गया है। फूल और सुगन्ध की भाँति इन दोनों की सत्ता एक दूसरे से भिन्न नहीं है। दृढ़ अभ्यास के कारण मन जैसे भाव को ग्रहण करता है, वैसे ही स्पन्द और कर्म नाम की शाखाओं को वह प्रकट करता है तथा उसकी तरह की क्रिया रूप उसके फल को बड़े आदर से उत्पन्न करता है। तदनन्तर उसी के स्वाद का अनुभव करके शीघ्र बन्धन में पड़ता है। मन जिस-जिस भाव को अपनाता है, उसी-उसी को वस्तु रूप में पाता है। वही श्रेय है, दूसरा नहीं-ऐसा उसका निश्चय हो जाता है। अपनी-अपनी प्रतीति के द्वारा ही दृढ़ता पूर्वक भिन्नता को प्राप्त हुए (मनुष्य के) मन सदा ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिये प्रयत्न करते हैं।

पाँचवाँ सर्ग समाप्त

छटवाँ सर्ग

भावना का त्याग

वसिष्ठ जी बोले-हे श्रीराम ! जो अकृत्रिम अर्थात् नित्य-सिद्ध विज्ञान आनन्दघन परमात्मा है, उसके लिये प्रयत्न करने वाले मनुष्यों को चाहिये कि वे अपने मन को तन्मय बना दें, जिससे उसकी प्राप्ति हो सके। यह दृश्य माया है, अविद्या है और भय देने वाली भावना है। मन की जो दृश्यमयता है, विद्वान् लोग उसी को (बन्धन में डालने वाला) कर्म कहते हैं। स्वभाव में स्थित जो यह दृश्य-तन्मयता अनुभव में आती है, वही विद्वानों द्वारा मदिरा के समान संसार को उन्मत्त बना देने वाली अविद्या कही जाती है। जैसे पटलनामक रोग से अंधा हुआ पुरुष सूर्य के दीप्तिमान् प्रकाश को नहीं देखता, उसी प्रकार इस अविद्या

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

से उपहत हुए लोग कल्याण को नहीं प्राप्त होते। वह अविद्या संकल्प से स्वयं उत्पन्न होती है। महामते ! भावना के संकल्प को त्याग देने मात्र से जब वह क्षीण हो जाती है, उस समय रस स्वरूप आनन्दमय परमात्मा के ध्यान के अभ्यास की दृढ़ता से सुशोभित श्रवण–मननात्मक विचार के द्वारा सब पदार्थों में अनासक्ति स्थिर हो जाती है। फिर सत्य दृष्टि के प्राप्त होने पर असत्य दृष्टि का विनाश हो जाता है और वह निर्मल–स्वभाव, निर्विकल्प–स्वरूप सच्चिदानन्द परमात्मा प्राप्त हो जाता है, जो न सत् है न असत् है, न सुखी है न दुखी है तथा जिसका कैवल्यभाव अपने हृदय अनुभव से ही प्राप्त होता है। जैसे यह रस्सी है या सर्प है–ऐसा संदेह होने पर रस्सी में सर्पभाव आरोपित होता है, उसी प्रकार बन्धन–रहित चिन्मय आकाश स्वरूप जीवात्मा ने अपने में भ्रमवश बन्धन की कल्पना कर रक्खी है। जैसे एक ही आकाश रात और दिन की कल्पना से रात में और तरह का दिखायी देता है और दिन में अन्य प्रकार का, उसी तरह परमार्थ वस्तु ब्रह्म बारंबार उस प्रतिकूल कल्पना द्वारा और ही प्रकार का भासित होता है और अपने स्वरूप के विपरीत दूसरा ही रूप धारण कर लेता है। जो तुच्छ नहीं है, आयास–रहित है, उपाधिशून्य है, जिसमें कोई भ्रम नहीं है तथा जो नानाप्रकार की कल्पनाओं से परे है, वह परब्रह्म परमात्मा ही परम सुखस्वरूप होने से सबको सुख दे सकता है। जीव की अपनी कल्पना से ही भाव, अभाव, शुभ और अशुभ क्षण भर में उत्पन्न हो जाते हैं और क्षण भर में मिट जाते हैं। समस्त पदार्थ–समूह भाव के अनुसार ही फल देने वाले हैं, यह जानकर ज्ञानी पुरुष इस परिवर्तनशील जगत् के पदार्थों के विषय में किसी एक निश्चितरूप का प्रतिपादन नहीं करता। चित्त दृढ़ भावना के द्वारा जिस पदार्थ के विषय में जब तक जैसे निश्चित धारणा बनाये रखता है, तब तक उसके वैसे ही परिणाम को वह देखता या अनुभव करताहै। रघुनन्दन ! वह सत्य ब्रह्म ही है अथवा परमात्मा से अभिन्न है, ऐसा अपने मन में निश्चय करके तुम अपनी बुद्धि के द्वारा उस अनादि अनन्त परमात्मा का अपने आप में ही अनुभव करो–मैं ही वह परब्रह्म परमात्मा हूँ, ऐसा अनुभव करो।

छटवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

सातवाँ सर्ग

अन्तःकरण की शुद्धि

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-रघुनन्दन ! जो नित्यानित्य वस्तु के विवेक से सम्पन्न है, जिसके चित्त की वृत्तियाँ परमात्मा में विलीन होती जा रही हैं, जो ज्ञान प्राप्त करके संकल्पों का त्याग कर रहा है, जिसका मन परमात्मा के स्वरूप में परिणत हो गया है, जो इस हेय नाशवान् जड़ दृश्य का परित्याग कर रहा है तथा उपादेय सच्चिदानन्दघन ब्रह्म का ध्यान कर रहा है, अर्थात् जो द्रष्टा परमात्मा का अनुभव करता है तथा अद्रष्टारूप दृश्य का अनुभव नहीं करता, जागरण के योग्य परम तत्त्व में ही जाग रहा है और घनीभूत अज्ञान के विकाररूप संसार से सोया हुआ है, जो सम्पूर्ण तुच्छ सुखों से लेकर हिरण्यगर्भ ब्रह्मा तक के सुखों में अत्यन्त वैराग्य के कारण सरस और नीरस आपातरमणीय भोगों में आसक्त न होकर उनकी ओर से पूर्णतया विरक्त है, जिसके मन में किसी प्रकार की कामना नहीं है-ऐसे अधिकारी पुरुष का अनादि जड़ता (अज्ञान) रूपी आकाश आसक्ति शून्य हो जब परमात्मारूपी जल के साथ एकता को प्राप्त हो जाता है और धूप में बर्फ की भाँति पूर्णतया विगलित हो जाता है। वर्षाकाल बीत जाने पर जैसे तरंग युक्त जल से चंचल मध्य भाग वाली लहराती हुई नदियाँ धीरे-धीरे सूखने लगती हैं, उसी प्रकार जब विषयरूपी तरंगों से युक्त तृष्णाएँ शान्त हो जाती हैं तथा जैसे चूहे चिड़ियों के जाल काट देते हैं, उसी प्रकार जब तीव्र वैराग्य से संसार वासनारूपी जाल टूट जाता है और हृदय की गाँठें ढीली पड़ जाती हैं, तब जैसे निर्मली को पीसकर जल में डालने से जल स्वच्छ हो जाता है, उसी तरह विज्ञान के प्रभाव से अन्तःकरण विशुद्ध होकर प्रसन्न हो जाता है। जैसे वायु के शान्त होने पर समुद्र में (निश्चलता) रूप समता आ जाती है, उसी प्रकार मन के शान्त होने पर सब जगह सर्वोत्तम शान्ति पैदा करने वाली अज्ञान रूपी मल से रहित उन्नत समदर्शिता का उदय होता है। इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ-जिसने जानने योग्य परमात्मतत्त्व को जान लिया है, वह परम बुद्धिमान् पुरुष वायु आदि चारों भूतों से रहित आकाश कोश के समान न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है।

मैं कौन हूँ, यह दृश्य जगत् कैसे हुआ ?-इन सब बातों का जब तक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

विवेकपूर्वक विचार नहीं किया जाता, तभी तक यह अन्धकार के समान संसार का आडम्बर खड़ा है। मिथ्या भ्रमसमूह से उत्पन्न यह शरीर आपत्तियों का घर है। जो आत्मभावना के द्वारा इस दृश्य को नहीं देखता अर्थात् जो यह दृश्य नहीं है, सब कुछ आत्मा ही है–ऐसा देखता है, वही यथार्थरूप से देखने वाला है। जो देश और कालवश शरीर में उत्पन्न हुए सुख–दुःखों को भ्रमरहित दृष्टि से 'ये मेरे नहीं हैं' इस तरह देखता है, वही यथार्थ द्रष्टा है। जो असीम आकाश, दिशा और काल आदि हैं तथा उनमें वर्तमान जो परिच्छिन्न क्रियाओं से युक्त वस्तु है, वह सब 'मैं ही हूँ'–इस प्रकार जो सबमें अपने आत्मा को देखता है, वही वास्तव में देखने वाला है। सर्वशक्तिमान्, अनन्तात्मा, सम्पूर्ण पदार्थों में स्थित, एकमात्र अद्वितीय चेतन परमात्मा ही सर्वत्र विराजमान हैं–ऐसा जो अपने हृदय के भीतर देखता है, वही वास्तव में देखता है। जो विद्वान् आधि, व्याधि, जन्म, जरा और मृत्यु से युक्त इस देह को अपना स्वरूप नहीं मानता–मैं देह हूँ, ऐसा नहीं देखता, वही यथार्थदर्शी है। सूत में गुँथी हुई मणियों के समान यह सम्पूर्ण जगत् मुझमें ही ओतप्रोत है, परंतु मैं मन नहीं हूँ–इस तरह जो देखता है, वही आत्मा के यथार्थस्वरूप को देखता है। न मैं हूँ न दूसरी ही कोई वस्तु है; किंतु एकमात्र निरामय ब्रह्म ही सर्वत्र सब रूपों में विराजमान है–इस तरह जो देखता है, वही वास्तव में देखता है। जिस महात्मा के सांसारिक देह आदि के प्रति अपने–पराये और तेरे–मेरे के भेद मिट गये हैं, वही सुन्दर दृष्टि से सम्पन्न महापुरुष आत्मा का यथार्थरूप से अनुभव करता है। जो आकाश की भाँति एकात्मा है और सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त होता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं होता, ऐसा महात्मा पुरुष साक्षात् महेश्वर ही है। जो तम (सुषुप्ति), प्रकाश (जाग्रत्) और कलना (स्वप्न)–इन तीनों अवस्थाओं से मुक्त है, कालका भी परम प्रेमास्पद आत्मा बन गया है तथा जो सौम्य, समदर्शी और अपने आत्मस्वरूप में स्थित है, ऐसे उस परमात्म–पद को प्राप्त हुए पुरुष को मैं नमस्कार करता हूँ। सम्पूर्ण जगत् में एकमात्र ब्रह्म ही विराजमान है–जिसकी बुद्धि में ऐसा निश्चय हो गया है तथा जिसकी वृत्ति (ब्रह्माकार दृष्टि) जगत् की सृष्टि, प्रलय और स्थितिरूपिणी विचित्र एवं मनोहर वैभवयुक्त कलाओं में सदा ही एकरस है, उस परम बोधवान् शिवस्वरूप महापुरुष को नमस्कार है।

सातवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

आठवाँ सर्ग

ज्ञानी की रागरहित स्थिति का वर्णन

श्री वसिष्ठजी कहते हैं-रघुकुलनन्दन श्रीराम ! जैसे देवराज इन्द्र अपनी अमरावतीपुरी में निश्चिन्त होकर राज्य करते हैं, उसी प्रकार विवेकी पुरुष इस देहरूपिणी नगरी में राज्य करता हुआ सदा निश्चिन्त एवं अपने आत्मा में स्थित रहता है। वह अपने मनरूपी मतवाले घोड़े को कामभोग के भयानक गड्ढे की ओर नहीं जाने देता तथा अपनी प्रज्ञारूपिणी पुत्री को लोभ के वश में होकर नहीं बेचता। अज्ञानरूपी शत्रुराष्ट्र इसके छिद्र को नहीं देख सकता और यह संसाररूपी शत्रु के भय की जड़ों को ही काट देता है। तृष्णारूपिणी नदी के प्रवाह के भीतर उठने वाली बड़ी भारी भँवर में, जहाँ काम-भोगरूपी दुष्ट ग्राह निवास करते हैं, वह विवेकी पुरुष बहिर्मुख होकर डूबता नहीं। वह मन की ब्रह्माकार वृत्ति में आरूढ़ हो बाहर-भीतर परमात्मा के सिवा दूसरी किसी वस्तु को न देखता हुआ सदा समता-शान्तिरूप गंगा-यमुना के संगम में स्नान करता है। जिस पर सम्पूर्ण इन्द्रियरूपी जन-समुदाय की दृष्टि रहती है, उस विषय सुख के अवलोकन से पराङ्मुख हो वह ध्यान में सदा सुखपूर्वक बैठा रहता है।

सर्वव्यापक होकर भी इस शरीररूपी नगरी में स्थित आत्मारूपी पुरुष विश्व की कल्पना द्वारा निर्मित विविध भोगों का प्रारब्धानुसार उपभोग करके अपने स्वरूपभूत परम पुरुषार्थ को प्राप्त होता है। समस्त पदार्थों की क्रिया से विमुख रहने वाला वह विवेकी पुरुष व्यवहार दृष्टि से कर्म करता हुआ भी परमार्थ दृष्टि से कुछ नहीं करता; क्योंकि वह सम्पूर्ण व्यावहारिक कार्यों का कर्तापन के अभिमान से रहित होकर सम्यक्रूप से अनुष्ठान करता है। उस शरीर नगरी में रहकर हृदय-पुण्डरीक में आरूढ़ हो वह सदा शान्तिरूप शीतल शरीर वाली लोक सुन्दरी मैत्रीरूपिणी अपनी प्रिया के साथ नित्य रमण करता है। जैसे चन्द्रमा के अगल-बगल में चित्त को आल्हादित करने वाली विशाखा नामक दो ताराएँ स्थित होती हैं, इसी तरह विवेकी पुरुष के दोनों पार्श्वभागों में सत्यता और समता नाम की दो कान्ताएँ सम्यक्रूप से विराजमान होती हैं, जो चित्त को आल्हाद प्रदान करने वाली हैं। जैसे सम्पूर्ण कलाओं से युक्त और समस्त शोभा-सम्पत्ति से सुन्दर प्रतीत होने वाले पूर्णिमा के चन्द्रमा चिरकाल तक सम्पूर्ण दिशाओं को अपनी सुधामयी किरणों से पूर्ण करके प्रकाशित होते

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हैं, उसी प्रकार जिसके सारे मनोरथ चिरकाल के लिये परिपूर्ण हो गये हैं, जो सर्वात्मभावरूप सम्पत्ति से सुन्दर दिखायी देता है, वह आत्मकाम तत्त्ववेत्ता पुरुष निरन्तर अपने प्रकाश से प्रकाशित होता है। चन्द्रमा तो पुनः क्षीण होने के लिये प्रकाशित होते हैं, परंतु तत्त्वज्ञ फिर क्षीण नहीं होता। वह अखण्ड एकरस भाव से अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित रहने के लिये प्रकाशित होता है।

जैसे बिना किसी प्रयत्न के स्वतः प्राप्त हुए तथा व्यर्थ पदार्थों में मनुष्य की दृष्टि आसक्ति शून्य होकर ही पड़ती है, उसी प्रकार विवेकी पुरुष की बुद्धि सांसारिक कार्यों में भी राग शून्य ही रहती है। इन्द्रियों को प्रारब्धवश जो न्याय युक्त विषय प्राप्त होते हैं, उनका तो वह कभी निवारण नहीं करता और अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने का प्रयत्न भी नहीं करता (प्रारब्धवश जो कुछ मिल जाय, उसी में संतुष्ट रहता है)। इस प्रकार ज्ञानी अपने आप में परिपूर्ण रहता है। जैसे मोर-पंखों के आघात पर्वत को कम्पित नहीं कर सकते, उसी प्रकार ज्ञानी को अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिये होने वाली चिन्ताएँ और प्रतिकूल प्राप्त वस्तु के लिये पश्चाताप विचलित नहीं करते। जिसके सारे संदेह निवृत्त हो गये हैं, भोग सम्बन्धी सारी उत्सुकता विनष्ट हो गयी है तथा काल्पनिक शरीर क्षीण हो गया है, वह ज्ञानी पुरुष सम्राट् के समान विराजमान होता है। जैसे अपार अनन्त क्षीरसागर अपने आप में ही परिपूर्ण है, उसी प्रकार अपरिच्छिन्न आत्मज्ञानी अपने आप में ही नहीं समाता अर्थात् अपने आप में ही परिपूर्ण है और आत्मा से आत्मा में ही रमण करता है।

इतने बड़े भूमण्डल में वे ही पुरुष सौभाग्यशाली, शुद्धचित्त और पुरुषोचित कलाओं के ज्ञान में गणनीय हैं, जो अपने चित्त से पराजित नहीं हुए हैं। जिसके हृदय रूपी बिल में कुण्डलाकार मनरूपी महान् सर्प सर्वथा शान्त हो गया है, अपने स्वरूप में पूर्ण रूप से उदित हुए ऐसे उस अत्यन्त निर्मल तत्त्ववेत्ता को मैं प्रणाम करता हूँ।

आठवाँ सर्ग समाप्त

नवाँ सर्ग

मन और इन्द्रियों को जीतने से लाभ

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं–रघुनन्दन ! (मनसहित) इन्द्रियरूपी छः शत्रु बड़े ही दुर्जय हैं। वे तपन, अवीचि, महारौरव, रौरव, संघात और काल सूत्र नरक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के इन छः बड़े-बड़े साम्राज्यों पर प्रतिष्ठित हैं। पापरूपी मतवाले हाथी इनके वाहन हैं तथा तृष्णारूपी बाण-शलाकाओं से वे सदा सम्पन्न रहते हैं। वे इतने कृतघ्न हैं कि सबसे पहले अपने आश्रयभूत शरीर का ही नाश करते हैं। उनका महान कोशागार कुकर्मरूपी धन से ही भरा हुआ है। अपने इन इन्द्रियरूपी शत्रुओं पर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। जिसने विवेकरूपी सूत के जाल से उन इन्द्रियरूपी दुष्ट शत्रुओं को बाँध लिया है, उसके अंगों (शम, दम, समता, शान्ति आदि) का वे विनाश नहीं करते। जिसने इन्द्रियरूपी भृत्यों को काबू में कर लिया है तथा मनरूपी शत्रु को पूर्णतया बंदी बना लिया है, उस पुरुष की विशुद्ध बुद्धि उसी तरह बढ़ती है, जैसे वसन्त ऋतु में आम की मंजरी। जिसका चित्तरूपी गर्व नष्ट हो गया है और इन्द्रियरूपी शत्रु जिसकी कैद में आ गये हैं, उस पुरुष की भोग-वासनाएँ उसी तरह क्षीण हो जाती हैं, जैसे हेमन्त ऋतु में कमल विनष्ट हो जाते हैं। जब तक एकमात्र परमात्मतत्त्व के दृढ़ अभ्यास द्वारा मन पर विजय नहीं पा ली जाती, तभी तक मध्य रात्रि में नाचने वाले वेतालों की तरह हृदय में वासनाएँ उछल-कूद मचाये रहती हैं। मैं समझता हूँ कि विवेकी पुरुष का यही मन विवेक के द्वारा अभीष्ट कार्य करने से भृत्य, मन्त्रणा द्वारा उत्तम कार्य करवाने से मन्त्री और सब ओर से इन्द्रियों पर आक्रमण करने के कारण सामन्त बन जाता है। मनरूपी मन्त्री शास्त्र विहित शुभ कर्म में प्रवृत्त हुए पुरुष को उन निष्काम कर्मों के करने के लिये सलाह देता है, जो जन्म-मृत्युरूपी वृक्षों को काटने के लिये कुठार के समान हैं तथा भविष्य में होने वाले अभ्युदय (निरतिशय आनन्द की प्राप्ति) के कारण हैं।

किंतु जिसे जगत् की सत्यता का पूर्ण निश्चय है, वह अत्यन्त मूढ़ है। उस अत्यन्त मूढ़ पुरुष के प्रति यदि जगत् की असत्यता का प्रतिपादन किया जाय तो यह उपदेश वहाँ शोभा नहीं पाता-उसके मन को अच्छा नहीं लगता। परमात्मतत्त्व के विचार का अभ्यास किये बिना जगत् की सत्यता के अनुभव का अपलाप (निराकरण) नहीं हो सकता। इस संसार में किसी का भी जो निश्चय अन्तःकरण में जड़ जमाकर सुदृढ़ हो गया है, वह शास्त्रोक्त परमार्थ तत्त्व का अभ्यास किये बिना कदापि नष्ट नहीं होता। जो अनधिकारी के प्रति ऐसा उपदेश देता है कि यह जगत् मिथ्या है, केवल ब्रह्म सत्य है, उस पुरुष को उन्मत्त के समान समझकर इस जगत् के उन्मत्त और मूढ़ मनुष्य उसकी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पूरी हँसी उड़ाते हैं; किंतु जो मदिरा पीकर मतवाला हो गया है और जो मदिरा से दूर रहने के कारण मदमत्त नहीं हुआ है, उन दोनों की कहाँ एकता होती है। जैसे अन्धकार और प्रकाश को समझने में, छाया और धूप को पहचानने में कोई बाधा नहीं आती, उसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी के विषय में भी समझना चाहिये। बोध के विषय में ज्ञानी और अज्ञानी की कभी एकता नहीं हो सकती। अज्ञानी को कितने ही यत्न से क्यों न समझाया जाय, उसे बाहर–भीतर जो संसार की सत्यता का अनुभव हो रहा है, उसका वह सत्य अधिष्ठानरूप ब्रह्म में उसी प्रकार बाध नहीं कर सकता, जैसे शव अपने पैरों चल नहीं सकता (अध्यस्त वस्तु का बाध किये बिना अधिष्ठान–तत्त्व का बोध नहीं हो सकता; इसलिये उसे बोध का उपदेश देना व्यर्थ है।)

नवाँ सर्ग समाप्त

दसवाँ सर्ग

जगत् और ब्रह्म का स्वरूप

यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म है–ऐसा उपदेश उस मनुष्य के प्रति देना उचित नहीं, जो अत्यन्त अज्ञानी है; क्योंकि उस अज्ञानी ने तप और विद्या आदि के अनुभव से होने वाले संस्कार का अभाव होने के कारण सदा उस लोक प्रसिद्ध देहात्मभाव का ही अनुभव किया है। कभी भी असंसारी आत्मभाव का उसे अनुभव नहीं हुआ। श्रीराम ! जिसको थोड़ा–थोड़ा ज्ञान है, उस पुरुष के प्रति ही यह उपदेश–वाणी सुशोभित (सफल) होती है। जो पुरुष पूर्ण ज्ञानी है, उसको तो 'मैं हूँ' इस प्रकार अहंकारास्पदरूप से विचार करने के लिये कुछ भी नहीं है। (इसलिये वह भी उपदेश देने के योग्य नहीं है। तात्पर्य यह कि जो न तो अत्यन्त अज्ञानी है और न पूर्ण ज्ञानी ही, वही जिज्ञासु इस उपदेश का अधिकारी है।) जो शुद्ध बुद्धि से युक्त ज्ञानी पुरुष निरन्तर यह अनुभव करता है कि यह सब कुछ शान्त परब्रह्म ही है, उसके इस अनुभव का बोध कैसे हो सकता है। आत्मा में परब्रह्म के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं, सोने में अँगूठी आदि की तरह आत्मा में अन्य किसी की प्रातीति सत्ता भी नहीं है। मूढ़ पुरुष मिथ्या अहंकारमय है और सुन्दर बुद्धि से युक्त ज्ञानी एकमात्र सत्य आत्मास्वरूप है। इन दोनों के स्वभाव के अन्तर का निराकरण कहीं नहीं हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सकता है। जो सर्वत्र व्याप्त, शान्त, शुद्ध, चेतन, आकाशवत्, निर्विकार, निर्मल तथा उत्पत्ति-विनाश से रहित है, वह ज्ञानस्वरूप परब्रह्म ही परमार्थ सत्य है। जिसके नेत्र तिमिर-रोग से पीड़ित हैं, उसकी स्वाभाविक दृष्टियाँ ही आकाश में केशों के वर्तुलकार गोलों की तरह प्रतीत होती हैं। उसी तरह चिन्मय परमात्मा में से ये सृष्टियाँ प्रतिभासित होती हैं। वह चिदाकाशस्वरूप सत्यात्मा अपने आपको जैसा समझता है क्षणभर में वैसा ही अनुभव करने लगता है। उसके दृष्टिबल से असत्य वस्तु भी क्षणभर में सत्य-सी प्रतीत होने लगती है।

जैसे मरुभूमि में सूर्य की किरणों के ताप को ही मृगजल या मृगतृष्णा नाम दिया गया है, उसी प्रकार जो आकाश की ज्योति निराकार है, उस आकाश रूप चिन्मय परमात्मा के अपने स्वप्न तुल्य प्रतिभास का ही, जो वास्तव में शून्य है, जगत् नाम रक्खा गया है। जैसे स्फटिकशिला का मध्य भाग वास्तव में घनीभूत है, उसी प्रकार महाचेतन परमात्मा का यह जो शान्त और निर्मल अपना स्वरूप है वह वास्तव में सच्चिदानन्दघन है। स्फटिकशिला में प्रतिबिम्बित होने वाले वन, पर्वत और नदी आदि के स्वरूप की भाँति 'है और नहीं है' ये दो दृष्टियाँ चिदाकाश परमात्मा में कहीं नहीं हैं। और प्रतिभास मात्र से जो कुछ है, उस चेतन-आत्मा का स्वरूप ही उस रूप में भासित होता है-ऐसा समझना चाहिये।

दसवाँ सर्ग समाप्त

←→

ग्यारहवाँ सर्ग

शास्त्र चिन्तन

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-श्रीराम ! चिन्मय आकाशस्वरूप जो 'जीवात्मा' है, वही रजोगुण से रंजित होकर अपने स्वाभाविक स्वरूप-स्वप्रकाशरूपता का त्याग न करता हुआ ही अहंकार, प्राण, देह, और इन्द्रिय आदि के संघातरूप इस विरूप देह को भी अपना आत्मा समझता है। असत्य होकर भी सत्य सी प्रतीत होने वाली मृगतृष्णा में जल बुद्धि के समान अपनी ही अविद्या मूलक वासना की भ्रान्ति से जीव मानो अपने चिन्मय रूप से भिन्नता (जड़ देह रूपता) को प्राप्त होता है। जो लोग महावाक्यरूप शास्त्र से दृश्य-प्रपंच को आगन्तुक समझकर निर्वाण भाव में स्थित हैं, वे अन्तरात्मा की ओर उन्मुख हुई अपनी बुद्धि से ही भवसागर से पार हो जाते हैं। जो उदार चेता पुरुष त्रिलोकी के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वैभव को भी सदा तृण के तुल्य समझता है, उसे सारी आपत्तियाँ इस तरह छोड़ देती हैं, जैसे साँप अपनी केंचुल को। जिसके भीतर सदा सत्यस्वरूप ब्रह्म का चमत्कार स्फुरित होता है, उसी सारे लोकपाल अखण्ड ब्रह्माण्ड के समान रखा करते हैं। अपार विपत्ति में पड़ने पर भी कभी कुमार्ग में पैर नहीं रखना चाहिये; क्योंकि राहु अनुचित मार्ग से अमृत पीने का प्रयत्न करने के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। जो पुरुष उपनिषद् आदि उत्तम शास्त्र और उनके अनुसार चलने वाले श्रेष्ठ पुरुषों के सम्पर्करूपी सूर्य का, जो कि परमात्मा का साक्षात्काररूपी तीव्र प्रकाश देने वाला है, आश्रय लेते हैं, वे फिर कभी मोह रूपी अन्धकार के वशीभूत नहीं होते। जिसने शम-दम आदि गुणों के द्वारा यश प्राप्त किया है, वश में न आने वाले प्राणी भी उसके वशीभूत हो जाते हैं। उसकी सारी आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उसे अक्षय कल्याण की प्राप्ति होती है। जिनका गुणों के विषय में संतोष नहीं है, जिनका शास्त्रों के प्रति अनुराग है तथा जिन्हें सत्यपालन का स्वाभाविक अभ्यास है, वे ही वास्तव में मनुष्य हैं। उनके अतिरिक्त जो दूसरे लोग हैं, वे पशुओं की ही श्रेणी में हैं। जिनके यशरूपी चन्द्रमा की चाँदनी से प्राणियों का हृदयरूपी सरोवर प्रकाशित है, वे क्षीर सागर के समान हैं। उनके शरीर में निश्चय ही भगवान् श्रीहरि का निवास है।

परम पुरुषार्थरूपी प्रयत्न का आश्रय ले उत्तम उद्योग को अपना कर शास्त्र के अनुकूल उद्वेग शून्य आचरण करता हुआ कौन पुरुष सिद्धि का भागी नहीं होता। अर्थात् वह सिद्धि का भागी अवश्य होता है। शास्त्र के अनुसार कार्य करने वाले पुरुष को सिद्धियों के लिये उतावली नहीं करनी चाहिये; क्योंकि चिरकाल तक परिपक्व हुई सिद्धि ही पुष्ट एवं उत्तम फल को देने वाली होती है। शोक, क्लेश और भय का परित्याग करके घमंड और शीघ्रता के आग्रह को छोड़कर शास्त्र के अनुसार व्यवहार करना चाहिये। उसके विपरीत चलकर अपना विनाश नहीं करना चाहिये। परिणाम में दुर्भाग्य प्रदान करने वाली, दीन, शुभ फल से रहित जो धन, पुत्र आदि लौकिक वस्तुओं की चिन्ता है, वह दीर्घकाल तक बनी रहने वाली प्रगाढ़ महानिद्रा ही है। उसे त्यागकर सचेत हो जाना चाहिये-विशुद्ध ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कर लेना चाहिये। व्यवहार परायण पुरुषों के विचार से लोक मर्यादा के अनुसार तथा शास्त्र और सदाचार के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

अनुकूल कर्म करके उत्तम फल की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। जिसका चरित्र सदाचार से सुन्दर तथा बुद्धि विवेकशील है और संसार के सुख-फलरूपी दुःखद दशाओं में जिसकी आसक्ति नहीं है, उस पुरुष के यश, गुण और आयु-ये तीनों ही वसन्त ऋतु की लताओं के समान उत्तम फल देने के लिये शोभा के साथ विकास को प्राप्त होते हैं।

ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त

बारहवाँ सर्ग

शास्त्रीय शुभ उद्योग की सफलता

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-रघुनन्दन ! समस्त साधनों का अधिक अभ्यास ही सफल होता है। इसलिये सर्वत्र और सदा साधन करने से सब प्रकार के फलों की प्राप्ति सम्भव है; क्योंकि इष्ट, मित्र, स्वजन एवं बन्धु-बान्धवों को आनन्द देने वाले नन्दी ने तालाब के किनारे आराधना करके भगवान् शिव को पाकर मृत्यु पर भी विजय पा ली। दानव-सेना और धन-धान्य से सम्पन्न बलि आदि दानवों द्वारा देवता उसी तरह कुचल दिये गये, जैसे हाथियों के द्वारा कमलों से भरे हुए सरोवर मथ डाले जाते हैं; किंतु फिर अतिशय प्रयत्न करने के कारण देवताओं ने सबसे उत्कृष्ट ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया। राजा मरुत्त के यज्ञ में महर्षि संवर्तने ब्रह्माजी की तरह देवताओं और असुरों सहित दूसरी सृष्टि ही रच डाली थी। (अतिशय साधन और प्रयत्न से ही उन्हें ऐसी शक्ति प्राप्त हुई थी।) शास्त्रीय विधि से महान् साधनों के अनुष्ठान में अत्यन्त संलग्न रहने वाले विश्वामित्र ने बारंबार की गयी कठोर तपस्या द्वारा दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया। राजकुमारी सावित्री अपने पति-प्रेमरूप पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से यमराज को जीतकर उत्तम वाणी का प्रयोग करके संतुष्ट किये हुए यम देवता की अनुमति से अपने पति सत्यवान् को लौटा लायी। संसार में ऐसा कोई शास्त्रीय शुभ कर्म का अतिशय अनुष्ठान नहीं है, जिसका फल स्पष्टरूप से प्राप्त न होता हो। अपने मन में ऐसा विचार करके कल्याणकामी पुरुषों को सर्वोत्कृष्ट प्रयत्न से सुशोभित होना चाहिये। सम्पूर्ण सुख-दुःख आदि अवस्थाओं की भ्रम-दृष्टियों का मूलोच्छेद करने वाला परमात्मा का यथार्थ ज्ञान ही है। अतः परमात्मा के यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिये साधन का अतिशय अभ्यास

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

करना चाहिये। संसार-सागर को पार करने के लिये सत्पुरुषों के संग और सेवा के बिना तप, तीर्थ तथा शास्त्रभ्यास आदि कोई भी साधन सफल नहीं होते। जिसके सेवन से लोभ, मोह और क्रोध प्रतिदिन क्षीण होते हों और जो शास्त्र के अनुसार अपने कर्मों के अनुष्ठान में संलग्न रहता है, वही पुरुष श्रेष्ठ है।

जब तक अन्तःकरण के आकाश में चैतन्यरूपी चाँदनी अहंकाररूपी मेघमाला से आच्छादित है, तब तक वह परमार्थरूपिणी कुमुदिनी को विकसित नहीं कर सकती। जब तक हृदयाकाश में अहम्भाव का बादल उमड़-घुमड़ कर बढ़ता जाता है, तभी तक तृष्णारूपी कुटज-कुसुम की मंजरी विकास को प्राप्त होती है। वह मिथ्या कल्पित अहंकार दूषित अन्तःकरण में अनन्त संसार बन्धन में डालने वाले मोह को जन्म देता है। 'यह देह मैं हूँ' इस प्रबल मोह से बढ़कर अनर्थकारी दूसरा अज्ञान इस संसार में न कभी हुआ है और न होगा ही। इस संसार में यह जो कुछ भी सुख-दुःखरूपी विकार आता है, उसके रूप में अहंकार-चक्र का ही मुख्य विकार बढ़ रहा है। जिस पुरुष ने अज्ञान से आरोपित अहंकाररूपी वृक्ष के अंकुर को विवेकपूर्वक विचार से संस्कृत मनरूपी हल के द्वारा जोतकर उखाड़ फेंका है, उसके आत्मारूपी खेत में संसार-ताप का नाशक एवं सहस्त्रों शाखाओं से युक्त अच्छेद्य ज्ञानरूपी वृक्ष बढ़ता और फलता है। जिस नराधम को अहंकाररूपी पिशाच ने पकड़ लिया है, उसके उस पिशाच को मार भगाने के लिये विवेक के बिना न कोई शास्त्र समर्थ हैं न मन्त्र।

श्री राम जी ने पूछा-भगवन् ! ब्रह्मन् ! कौन सा ऐसा उपाय है, जिससे अहंकार नहीं बढ़ता ? आप संसाररूपी भय का शान्ति के लिये वह उपाय मुझे बताइये।

बारहवाँ सर्ग समाप्त

तेरहवाँ सर्ग

मोक्ष प्राप्ति का वर्णन

श्री वसिष्ठ जी ने कहा-रघुनन्दन ! आत्मा चैतन्यमय दर्पण के समान शुद्ध है। उसमें उसके पूर्वोक्त शुद्धस्वरूप का निरन्तर स्मरण करने से अहंकार नहीं बढ़ता। यह जगत् झूठे इन्द्रजाल की शोभा के समान है। असमें अनुराग या वैराग्य से मेरा क्या प्रयोजन है-ऐसा मन में विचार करते रहने से अहंकार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उत्पन्न ही नहीं होता। श्रीराम ! इस त्रिलोकी में तीन प्रकार के अहंकार होते हैं। उनमें दो प्रकार के अहंकार तो श्रेष्ठ हैं, किंतु तीसरा त्याज्य है। मैं उनका वर्णन करता हूँ, सुनो ! मैं ही यह सम्पूर्ण विश्व हूँ। मैं ही अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हूँ। मेरे सिवा दूसरा कुछ नहीं है-इस तरह का जो अहंकार है, उसे उत्तम समझना चाहिये। यह अहंकार जीवन्मुक्त पुरुष की मोक्ष-प्राप्ति के लिये है। यह बन्धन में डालने वाला नहीं होता। 'बाल के अग्र भाग के सौ टुकड़े करने पर जो सौवाँ हिस्सा होता है, उसी के समान मुझ जीवात्मा का सूक्ष्मस्वरूप है अर्थात् मैं अवयव से रहित हूँ, अतएव सबसे भिन्न हूँ।' इस प्रकार का जो अनुभव है, वही दूसरा शुभ अहंकार है। वह भी साधक के मोक्ष के लिये ही है, बन्धन के लिये नहीं। उपर्युक्त अहंकार के नाम से केवल कल्पना होती है। वास्तव में वह नहीं है। यह हाथ-पैर आदि से युक्त शरीर ही मैं हूँ, इस प्रकार का जो मिथ्या अभिमान है, वही तीसरा अहंकार है। वह लौकिक एवं तुच्छ ही है। उस दुष्ट अहंकार को त्याग ही देना चाहिये; क्योंकि वह सबसे बड़ा शत्रु माना गया है। पहले बताये गये जो दो अहंकार हैं, उनको स्वीकार करके 'मैं देह नहीं हूँ, ऐसा विचार से भी निश्चय कर लेने के पश्चात् उन दोनों को भी अन्तिम तीसरे अहंकार की भाँति ही लौकिक समझकर त्याग देना उचित है-ऐसा प्राचीन महापुरुषों का मत है। प्रथम दो अहंकार अलौकिक हैं। उन दोनों को अंगीकार करके तीसरे लौकिक अहंकार का, जो दुःख देने वाला है, त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि यह तीसरा अहंकार सर्वथा त्यागने ही योग्य है। इस दुःखदायी अहंकार को त्यागकर पुरुष जैसे-जैसे ज्ञान में स्थित होता जाता है, वैसे-ही-वैसे वह परमात्मभाव की ओर बढ़ता जाता है। निष्पाप रघुनन्दन ! यदि पुरुष पूर्वोक्त दो अहंकारों की भावना करता रहे तो उसे परमपद प्राप्त हो जाता है; और यदि उनका भी त्याग करके सम्पूर्ण अहंकारों से रहित हो जाय तो वह अत्यन्त उच्च पद (परमात्मभाव) में शीघ्र आरूढ़ हो जाता है। महामते ! जिस जीव का अहंकार शान्त हो गया है, उसे भोग रोग के समान जान पड़ते हैं। जैसे अच्छी तरह से तृप्त हुए पुरुष को विषमिश्रित रस स्वादिष्ट नहीं प्रतीत होते, उसी प्रकार उसे भोग अच्छे नहीं लगते। रघुनन्दन ! अहंकार की स्मृति का भी सर्वथा त्याग करके अतिशय पुरुषार्थरूप प्रयत्न के द्वारा भवसागर को पार किया जाता है। पहले 'सब मैं ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हूँ और ये सब मेरे हैं' ऐसा समझकर फिर 'यह देह आदि मैं नहीं हूँ और इस देह के सम्बन्धी भी मेरे कुछ नहीं हैं' ऐसा विचार करके उससे सब प्रतिबन्धकों का नाश होने से प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए स्तुत्य आत्म ज्ञान को अपने हृदय में उतारकर महात्मा पुरुष परम पद को प्राप्त कर लेता है।

तेरहवाँ सर्ग समाप्त

चौदहवाँ सर्ग

मनोनिग्रह के उपाय

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं–श्री राम ! जिन्होंने अविद्या के घनीभूत विलासों से विषयों की ओर उन्मुख हुए अपने मन को जीत लिया है, उन महाशूर श्रेष्ठ पुरुषों की ही सदा विजय होती है। सब प्रकार के उपद्रवों को प्राप्त कराने वाले इस संसार के दुःख को निवारण करने का एक मात्र उपाय यही है कि अपने मन को वश में किया जाय। ज्ञान का जो सारभूत सर्वस्व है, उसे बताता हूँ; उसे सुनकर हृदय में धारण करना चाहिये। भोग की इच्छा मात्र ही बन्धन है और उसका त्याग ही मोक्ष कहलाता है। जैसे जहाँ काँटों के बीज बिखेर दिये गये हैं। वह भूमि काँटों के समुदाय को ही उत्पन्न करती है, उसी प्रकार वासना से आवृत हुई बुद्धि केवल दोषों को ही जन्म देती है। जिसमें वासना–समूह का कोई लगाव नहीं है, अतएव जहाँ राग और द्वेष नहीं देखे गये हैं, वह चांचल्यरहित बुद्धि धीरे–धीरे परम शान्ति को प्राप्त हो जाती है। जैसे जहाँ उत्तम बीज बोया गया है, वह भूमि समय पर श्रेष्ठ फल देने वाले पौधों को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार शुभ बुद्धि दोष रहित, शुभ एवं उत्तम गुणों को ही सदा प्रकट करती है। जब शुभ भावों के अनुसंधान से मन प्रसन्न (शुद्ध) हो जाता है और धीरे–धीरे मिथ्या ज्ञानरूपी घने मेघ शान्त हो जाते हैं, सुजनतारूपी चन्द्रमा जब शुक्लपक्ष की भाँति उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होने लगता है और आकाश में सूर्य के तेज की भाँति पुण्यमय विवेक का प्रसार हो जाता हैं, अन्तःकरण रूपी बाँस के भीतर धैर्यरूपी मोती की वृद्धि होने लगती है, वसन्त ऋतु में चटकीली चाँदनी के प्रसाद से चरितार्थ होने वाले चन्द्रमा की भाँति जब अन्तःकरण की स्थिति आत्मज्ञानजनित परमानन्द की प्राप्ति से सर्वथा सफल हो जाती है, शीतल छाया वाले सत्संगरूपी फलवान् वृक्ष जब फलने लगते हैं तथा ध्यान–समाधिरूप सरल वृक्ष जब आनन्दमय सुन्दर रस टपकाने लगता है, उस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

समय मन निर्द्वन्द्व, निष्काम और उपद्रव शून्य हो जाता है। उसके चपलतारूपी अनर्थ तथा शोक, मोह और भयरूपी राग शान्त हो जाते हैं। शास्त्रों के अर्थ के विषय में उसका सारा संदेह दूर हो जाता है। उसमें सभी सांसारिक पदार्थों को देखने की उत्कण्ठा का अभाव हो जाता है। उसकी कल्पनाओं के जाल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। वह मोहरहित एवं वासनाशून्य हो जाता है। उसमें आकांक्षा, उपाक्रोश (परनिन्दा), अपेक्ष और दुश्चिन्ता का अभाव हो जाता है। वह शोकरूपी कुहरे से रहित और आसक्ति शून्य होता है तथा उसके हृदय की अज्ञान की गाँठें खुल जाती हैं।

विशुद्ध आत्मा न तो संसार पुरुष है, न शरीर है और न रुधिर ही है; शरीर आदि सब जड़ हैं, किंतु शरीरी (आत्मा) आकाश के समान निर्लेप है। जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही बन्धन के लिये रेशमी तन्तुओं का जाल रच लेता है, उसी प्रकार जीवात्मा मन में विकल्प वासनाओं का प्रसार करके अपने बन्धन के लिये सुदृढ़ जगत् रूप जाल की रचना कर लेता है। जीवात्मा इस वर्तमान देह भ्रम का त्याग करके फिर दूसरे देश और दूसरे काल में अन्य देह भाव को धारण करता है; जीवात्मा के मनमें जैसी वासना होती है, वैसा ही शरीर उत्पन्न होता है। जीवात्मा का चित्त जैसी वासना लेकर सोता है, रात को स्वप्न में वैसा ही बनकर रहता है। इमली का बीज यदि शहद के रस से सींचा जाय तो अंकुर आदि के क्रम से वृक्ष बनकर फलने के समय भी वह उस मधु से अनुरंजित होकर मधुर फल ही देता है और वही बीज यदि विष के प्रतिनिधि भूत धतूरे और करंज आदि लता के पीसे हुए चूर्ण के रस से सींचा जाय तो उसका फल कड़ुवा ही होता है। महती शुभ वासना से मनुष्य का चित्त महान् होता है। मनुष्य 'मैं इन्द्र हूँ' इस प्रकार का मनोरथ होने पर इन्द्र रूप में प्रतिष्ठित होने का स्वप्न देखता है। इसी तरह मनुष्य का क्षुद्र वासना से वासित हुआ चित्त तुच्छ क्षुद्रता को देखता है। पिशाच का भ्रम होने से मनुष्य रात को स्वप्न में पिशाचों को ही देखने लगता है। जैसे प्रतिदिन क्षीण होता हुआ चन्द्रमा अपने पूर्ण होने की आशा को कभी नहीं छोड़ता, उसी प्रकार दरिद्रता आदि से पीड़ित होने पर भी उद्योगशील श्रेष्ठ पुरुष उदार गति का परित्याग नहीं करता। वास्तव में तो न यहाँ बन्धन है और न मोक्ष है, न बन्धन का अभाव है न बन्धन की सत्ता ही है। इन्द्रजाल लता की भाँति यह झूठी माया ही प्रकट

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हुई है। बन्धन और मोक्ष की अवस्थाओं से तथा द्वैत और अद्वैत से रहित यह सम्पूर्ण विज्ञानानन्दमयी ब्रह्म-सत्ता ही है-ऐसा निश्चय ही परमार्थ है। यह जगत् परमात्मा का स्वरूप ही है, ऐसा ज्ञान हुए बिना यह दृश्य जगत् दुःख देने वाला ही होता है और यदि वैसा ज्ञान हो गया तो यह दृश्य मोक्ष प्रदान करने वाला होता है। जल भिन्न है और तरंग भिन्न, इस प्रकार अनेकता और भिन्नता का बोध अज्ञान है। जल ही तरंग है, इस प्रकार एकत्व बोध से यथार्थ ज्ञान सिद्ध होता है। जैसे स्नेहरहित बन्धु के मिलने और बिछुड़ने से मनुष्य को न सुख होता है न दुःख, उसी प्रकार परमात्मा का तात्त्विक ज्ञान हो जाने पर इस पांचभौतिक शरीर के रहने या बिछुड़ने से पुरुष सुख या दुःख से लिप्त नहीं होता। वासना रहित एवं शान्तचित्त हुआ अपने देह-नगर का स्वामी जीवात्मा आक्षेप (संकोच) शून्य, सर्वव्यापी और सबका अधिपति हो जाता है। चित्त के सर्वथा विगलित (शान्त) हो जाने पर अपने दोषों का त्याग करके धीर हुई बुद्धि से युक्त पुरुष मृत्यु और जन्म होने पर प्राप्त होने वाली पारलौकिक और ऐहलौकिक नीरस गतियों पर दृष्टिपात करके विवेक-विचार द्वारा परमात्मरूपी दीपक पाकर ताप रहित हो अपने देह रूपी नगर में आनन्द पूर्वक प्रतिष्ठित होता है।

चौदहवाँ सर्ग समाप्त

पन्द्रहवाँ सर्ग

सर्वत्र चेतन आत्मा की ही स्थिति का वर्णन

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं-रघुनन्दन ! जैसे जो तरंगें भविष्य में प्रकट होने वाली हैं और अभी व्यक्त नहीं हुई हैं, वे समुद्र के जल में अभिन्नरूप से स्थित हैं, उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा में भावी सृष्टियाँ उस सत्स्वरूप परमात्मा से पृथक् नहीं हैं; क्योंकि उनकी स्वतः सत्ता नहीं है, परमात्मा की सत्ता से ही उनकी सत्ता है। जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक होकर भी अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण दृष्टि में नहीं आता, उसी प्रकार निरवयव शुद्ध चेतन परमात्मा सर्वव्यापी होने पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता। जैसे जलमय समुद्र में जो नाना प्रकार की असंख्य तरंगें उठती हैं, उनका वह नानात्व जल से पृथक् भाव विकार वाला नहीं है, उसी प्रकार चैतन्य ब्रह्मस्वरूप चिन्मय समुद्र में 'तू', 'यह', 'वह' इत्यादि रूप से जो प्रचुर नानात्वरूप में जगत् भासित होता

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है, वह उस ब्रह्मरूप चैतन्य-सिन्धु से पृथक् नहीं है। वास्तव में चेतन परमात्मा न अस्त होता है न उदित, न उठता है न खड़ा होता या बैठता है, न आता है न जाता है, न यहीं है और न यहाँ नहीं है। रघुनन्दन ! वह निर्मल चेतन परमात्मा स्वयं अपने आप में ही स्थित है। वही भ्रम से प्रतीत होने वाले जगत् नामक प्रपंच के रूप में विस्तार को प्राप्त हुआ है। जैसे तेज ही तेजःपुंज (सूर्य आदि) के रूप में और जल ही जलराशि (समुद्र आदि) के रूप में स्फुरित होता है, उसी प्रकार चेतन परमात्मा ही अपने स्पन्दनभूत सृष्टि के रूप में स्फुरित हो रहा है।

चेतन परमात्मा ही आकाशरूप से अवकाश प्रदान करता है, जिससे अंकुर को बाहर निकलने या फैलने का अवसर मिलता है। स्पन्दात्मक वायु रूप से वह उसका आकर्षण करता है, जिससे अंकुर बाहर निकलता है। वही जलरूप होकर रसरूप से अंकुर को स्नेह युक्त बनाता है। वही सुदृढ़ पृथ्वीरूप से उस अंकुर को दृढ़ता प्रदान करता है और तेजरूप होकर उसे अपना रूप देता है, जिससे वह दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार वह परमात्मा स्थावर-जंगम जगत् पर अनुग्रह करता है। वही परमात्मा हेमन्त आदि कालरूप से प्रकट होकर जौ आदि अंकुरों के विरोधी तृण आदि की उत्पत्ति में बाधक बनता है और उन अंकुरों की उत्पत्ति के अनुकूल वातावरण तैयार करता है। वह चेतन तत्त्व परमात्मा ही फूलों में धीरे-धीरे केसर का संचय करके गन्धरूप में प्रकट होता है। मिट्टी के भीतर रसरूपता को प्राप्त हो वही वृक्ष की वृद्धि के द्वारा स्थाणुभाव (मूल और तने के रूप) को प्राप्त होता है। उस कूल में स्थित हुए सुन्दर रसलेश ही फल के रूप में प्रकट होते हैं तथा वे ही पल्लवों में प्रविष्ट हो रेखाएँ बनकर पत्र आदि के स्वरूप को प्राप्त होते हैं। वह चेतन तत्त्व परमात्मा ही वृक्षों में इन्द्रधनुष के समान नूतनता का सम्पादन करता हुआ उन पर अनुग्रह करता है। स्थिरतारूप चतुरता को प्रकट करने वाली नियतिरूप से वही स्थिति को प्राप्त होता है। उसी परमात्मा के अनुग्रह से धारण रूप धर्मवाली यह धीर वसुन्धरा प्रलय काल तक स्थित रहती है।

इस प्रकार सब ओर स्थित और सुस्थिर आकार वाली ये समस्त संसार-पंक्तियाँ, जो ब्रह्म की स्वभावभूत हैं, बारंबार आती-जाती रहती हैं। यह सारा जगत् एक दूसरे के प्रति कारण भाव को प्राप्त होकर अपने अधिष्ठान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भूत चैतन्य के सकाश से स्वयं ही उत्पन्न हुआ है और एक दूसरे के द्वारा नष्ट होता हुआ यह उस अधिष्ठान भूत चैतन्य में स्वयं ही लीन होता है। जैसे अगाध जल में होने वाला स्पन्दन भी स्वतः अस्पन्दन ही है; क्योंकि वहाँ जल से भिन्न कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार चेतन आत्मा में प्रकट हुआ सदसद् रूप जगत् भी वास्तव में अप्रकट ही है; क्योंकि वह सब ज्ञान से चेतन स्वरूप ही अनुभूत होता है।

पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त

सोलहवाँ सर्ग

ज्ञानी और अज्ञानी का अन्तर

श्री वसिष्ठ जी कहते हैं–रघुनन्दन ! ऐसी परिस्थिति में सुख–दुःख आदि भोग देने वाले कर्मों में या ध्यान समाधि में तत्त्व ज्ञानियों का जो यह कर्म या कर्तृत्व दिखायी देता है, वह वास्तव में असत् है; क्योंकि उसमें कर्तापन नहीं है। परंतु मूर्खों का वह कर्म (कर्तृत्वाभिमान होने के कारण) असत् नहीं है (यही ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर है)। पहले यह विचार करना चाहिये कि कर्तृत्व किसका नाम है। अन्तःकरण में स्थित जो मन की वृत्ति है, उसका निश्चय–अमुक वस्तु ग्रहण करने योग्य है, इसका विश्वास वासना कहलाता है। वह वासना ही 'कर्तृत्व' शब्द से प्रतिपादित होती है; क्योंकि वासना के अनुसार ही मनुष्य चेष्टा करता है और चेष्टा के अनुसार ही फल भोगता है। अतः कर्तृत्व से फल भोक्तृत्व होता है–यह सिद्धान्त है। कहा भी है–'पुरुष कर्म करे या न करे, वह स्वर्ग में या नरक में सर्वत्र उसी का अनुभव करता है जैसी उसके मन में वासना होती है। इसलिये जिन्हें तत्त्वज्ञान नहीं हुआ है, वे पुरुष कर्म करें या न करें, तो भी उनमें वासना होने के कारण कर्तृत्व अवश्य है। इसके विपरीत जिन्हें तत्त्वज्ञान हो गया है, वे कर्म करें तो भी उनमें कर्तृत्व नहीं है; क्योंकि वे वासना से सर्वथा शून्य हैं। तत्त्व ज्ञानी की वासना शिथिल हो जाती है, इसलिये वह कर्म करता हुआ भी उसके फल की इच्छा नहीं रखता। उसकी बुद्धि कर्तृत्वाभिमान और आसक्ति से रहित होती है, अतः वह अनासक्त भाव से केवल चेष्टा मात्र करता है। उसे जो कुछ भी प्रारब्ध के अनुसार कर्मों का फल प्राप्त होता है, वह उस सारे कर्म–फल को यह आत्मा ही है–ऐसा अनुभव करता है। परंतु जिसका मन फलासक्ति में डूबा हुआ है, वह कर्म न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करके भी कर्ता ही माना जाता है। मन जो कुछ करता है, वही किया हुआ होता है। मन जिसे नहीं करता, वह किया हुआ नहीं होता; अतः मन ही कर्ता है, शरीर नहीं। चित्त से ही यह संसार प्राप्त हुआ है, इसलिये यह चित्तमय ही है, केवल चित्त मात्र होकर चित्त में स्थित है-यह बात पहले विचारपूर्वक निर्णीत हो चुकी है। सम्पूर्ण विषय और विभिन्न प्रकार की चित्तवृत्तियाँ-ये सब शान्त होकर जब वासनारूप हो जाते हैं, तब उस वासनारूप उपाधि से युक्त जीवात्मा ही रहता है। उनमें से जो आत्मतत्त्व के ज्ञाता हैं, उनका मन वर्षाकाल में मृगतृष्णा के जल और प्रचण्ड धूप में हिमकण के समान गलकर जब परम शान्त हो जाता है, तब तुरीय दशा को प्राप्त हो, उसी परमात्मरूप में स्थित हो जाता है। विद्वान् लोग ज्ञानियों के मनको न तो आनन्दमय मानते हैं और न अनानन्दमय ही। उनका मन न चल है, न अचल है। न सत् है, न असत् है और न इनका मध्य ही है। बल्कि वह इन सबसे विलक्षण अनिर्वचनीय है। जैसे हाथी छोटी तलैया में नहीं डूबता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष वासनामय चेष्टारस में नहीं मग्न होता। मूर्ख का मन तो भोगों को ही देखता है, परमार्थ तत्त्व को नहीं। तत्त्व ज्ञानी की चित्तवृत्ति सांसारिक विपत्ति में भी प्रसन्न ही रहती है। वह चाँदनी की तरह भुवनमात्र को प्रकाशित करती है। चित्त के संयोग के बिना कर्म करता हुआ भी ज्ञानी अकर्ता ही है; क्योंकि वह कर्म मन को लिप्त नहीं करता। यह यत्नपूर्वक किये हुए हाथ-पैर आदि के संचालन रूप कर्म के फल को भी नहीं भोगता। बालक मन से ही नगर का निर्माण और उसकी सफाई एवं सजावट करता है तथा उस मनःकल्पित नगर को खेल-खेल में ही अकृत सा अनुभव करता है; उसको उपादेयरूप से नहीं ग्रहण करता। उसके सुख-दुःख को स्वभाविक सा देखता है। मन के द्वारा किये गये नगर के विध्वंस को वास्तविक विध्वंस समझकर खेल-खेल में दुःख का सा भी अनुभव करता है। साथ ही यह भी समझता रहता है कि यह वास्तविक दुःख नहीं है। उसी प्रकार ज्ञानी कर्म करता हुआ भी वास्तव में उससे लिप्त नहीं होता। जिनका मन पूर्ण आत्मा में ही संलग्न है, उन ज्ञानियों की दृष्टि से तो वस्तुतः संसार में मोक्ष नहीं है। जिनका मन आत्मा में संलग्न नहीं है, उन्हीं लोगों की दृष्टि यह बन्धन-मोक्ष आदि सब कुछ है।

किंतु वास्तव में तो न बन्धन है न मोक्ष है, न बन्धन का अभाव है और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

न बन्धन के कारण भूत वासना आदि ही हैं। परमात्मतत्त्व का ज्ञान होने से ही यह दुःख है। यथार्थ ज्ञान से उसका लय हो जाता है।

सोलहवाँ सर्ग समाप्त

सत्रहवाँ सर्ग

सर्वशक्तिमान् ब्रह्म से ही सृष्टि की उत्पत्ति

श्री रामचन्द्र जी ने पूछा–भगवन् ! ऐसी स्थिति में यदि वस्तुतः बन्धन और मोक्ष कल्पित ही हैं, एकमात्र परब्रह्म ही सर्वत्र विद्यमान हैं तो बिना दीवार के चित्र की भाँति इस निराधार सृष्टि का आगमन कहाँ से हुआ ? यह कृपा पूर्वक बताइये।

श्री वसिष्ठ जी ने कहा–राजकुमार ! ब्रह्मतत्त्व ही इस सारी सृष्टि के रूप में विद्यमान है; क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है। इसलिये उस ब्रह्म में सारी शक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। सत्त्व, असत्त्व, द्वित्व, एकत्व, अनेकत्व, आदित्व और अन्तत्व–ये परस्पर विरुद्ध से प्रतीत होने वाले सारे भाव परब्रह्म में हैं। परंतु वे उससे भिन्न नहीं हैं। जैसे समुद्र का जल–प्रवाह उल्लास एवं विकास को प्राप्त हो उत्तल तरंगों द्वारा अपनी नानाकारता का दर्शन कराता हुआ प्रकट होता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्म चित्त का तथा चित्त स्वरूप होने के कारण कर्ममयी, वासनामयी और मनोमयी सारी शक्तियों का संचय, प्रदर्शन, धारण, उत्पादन और संहार करता है। समस्त जीवों की सब ओर फैली हुई सारी दृष्टियों की और समस्त पदार्थों की परब्रह्म से ही निरन्तर उत्पत्ति होती है। जैसे लहरें समुद्र से ही उत्पन्न होती और उसी में लीन हो जाती हैं, इसलिये सदा समुद्ररूप ही हैं, उसी प्रकार सारे पदार्थ परमात्मा से उत्पन्न होकर उसी में लीन होते हैं। फलतः चिन्मय परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण वे परमात्म रूप ही हैं।

निष्पाप रघुनन्दन ! यह सब निर्मल ब्रह्म ही विराजमान है। यहाँ मल नामक कोई वस्तु नहीं है। समुद्र में तरंग समूहों के रूप से जल ही स्फुरित होता है, मिट्टी नहीं। रघुकुलतिलक ! यहाँ एकमात्र परब्रह्म के सिवा दूसरी किसी वस्तु की कल्पना ही नहीं है, जैसे अग्नि में उष्णता के सिवा और कोई कल्पना ही नहीं है। जिसकी बुद्धि पूर्णरूप से व्युत्पन्न नहीं हुई है–जिसमें आधी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

समझ और आधी मूढ़ता है, उसे 'यह सब ब्रह्म ही है' यह उपदेश अच्छा नहीं लगता। वह दृश्यों को उपस्थित करने वाली भोग दृष्टि से सदा दृश्य पदार्थों की ही भावना करता हुआ नष्ट (तत्त्वज्ञानरूप परमार्थ से भ्रष्ट) हो जाता है। किंतु जो तत्त्वज्ञानरूप परमार्थ-दृष्टि को प्राप्त है, उस पुरुष के भीतर विषय-भोग की इच्छा नहीं उत्पन्न होती। उसके लिये तो 'यह सब ब्रह्म ही है' ऐसा समयोचित उपदेश भी उपयुक्त होता है। जिसकी बुद्धि पूर्णतया व्युत्पन्न नहीं है, ऐसे शिष्य को उन सद्गुणों द्वारा शुद्ध करे, जिनमें शम (मनोनिग्रह) और दम (इन्द्रिय विग्रह) की प्रधानता हो। तत्पश्चात् यह उपदेश दे कि यह सब कुछ ब्रह्म है तथा तुम भी विशुद्ध ब्रह्म ही हो। जो अज्ञानी को अथवा आधी समझ वाले पुरुष को 'सर्वं ब्रह्म' (सब कुछ ब्रह्म है) यह उपदेश देता है, उसने मानो उस शिष्य को महान् नरकों के जाल में डाल दिया। जिसकी बुद्धि पूर्णतया व्युत्पन्न है, जिसकी भोगेच्छा नष्ट हो गयी है और कामना सर्वथा मिट गयी है, उस महात्मा में अविद्यारूपी मल नहीं है। अतः उसी के लिये 'सर्वं ब्रह्म' का उपदेश देना उचित है। जो शिष्य की परीक्षा लिये बिना ही उसे उपदेश देता है, वह अत्यन्त मूढ़बुद्धि वाला उपदेशक महाप्रलयपर्यन्त नरक को प्राप्त होता है।

सत्रहवाँ सर्ग समाप्त

अठारहवाँ सर्ग

जगत के मिथ्यात्व का वर्णन

ब्रह्म सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वगत और सर्वस्वरूप है। यह ब्रह्म मैं ही हूँ, यों समझना चाहिये। अपनी माया द्वारा विचित्र कार्य करने वाले ऐन्द्रजालिकों (बाजीगरों) को तो तुम देखते ही हो। वे माया के द्वारा सत् को असत् और असत् को सत् बना देते हैं। उसी प्रकार परमात्मा अमायामय होकर भी मायामय महान् ऐन्द्रजालिक की भाँति बनकर संकल्प के द्वारा घट को पट बनाता है और पट को घट। मेरु के सुवर्णमय तटप्रान्त में लहराते हुए नन्दनवन की भाँति पत्थर पर लता पैदा करता है और कल्प वृक्षों पर प्रकट हुए रत्न के गुच्छों की भाँति लता में प्रस्तर पैदा कर देता है तथा आकाश में सुन्दर वन लगा देता है। गन्धर्व नगर में दीखने वाले उद्यान की भाँति उस भावी जगत् में कल्पना द्वारा आकाश में ही नगर की रचना कर देता है-आकाश को ही नगर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma IIT S. Jammu Collection

रूप में दिखा देता है। व्योम की नीलिमा को नष्ट सी करके उसे भूतल बना देता है। गन्धर्व नगर के राज महल में बहुत सी महिलाओं की भाँति भूतल में आकाश की स्थापना कर देता है। पद्मरागमणि के बने हुए लाल फर्श में प्रतिबिम्बित हुआ आकाश जैसे आधार की लालिमा से ही लाल दिखायी देता है, उसी प्रकार जगत् में जो कुछ है, होगा या था, वह सब ब्रह्म की सत्ता से ही सत् सा प्रतीत होता है; क्योंकि ईश्वर संकल्प के द्वारा स्वयं व्यक्त रूप हो विचित्र वेश-भूषा को अपना कर स्वयं अपने आपको दिखलाता है। श्रीराम ! जब कि इस जगत् में एक ही वस्तु सब प्रकार से सर्वत्र सब रूपों में प्रकट होती है, सभी रूपों में एक ही सद्-वस्तु विद्यमान है, तब हर्ष, ईर्ष्या और आश्चर्य के लिये अवसर ही कहाँ है। अतः धैर्यशाली होकर सदा समभाव से ही स्थित रहना चाहिये। जो समता से युक्त है, वह तत्त्वज्ञानी पुरुष आश्चर्य, गर्व, मोह, हर्ष और अमर्ष आदि विकारों को कभी प्राप्त नहीं होता।

अठारहवाँ सर्ग समाप्त

उन्नीसवाँ सर्ग

माया के दोष तथा आत्मज्ञान से ही उसका निवारण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन! परब्रह्म परमात्मा की जो निर्मल चैतन्य-शक्ति है, वह सर्वशक्तिमती है। वह परमात्मा के सकाश से स्वाभाविक ही विभिन्न रूपों की कल्पना करती हुई भावी देह आदि आकृतियों की किंचित् स्फुरण के रूप में स्वयं ही दृश्य जगत् बन जाती है। उस चेतन शक्ति का संकल्परूप मन ही अपने संकल्पमात्र से क्षण भर में गन्धर्व नगर के समान इस असत् (मिथ्या) दृश्यप्रपंच का विस्तार कर देता है। सब ओर प्रकाशित होता हुआ वह स्वयम्प्रकाश सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही जब बाह्यदृष्टि से दृश्यमान आकाशरूप होकर स्थित होता है, वही यह सबकी दृष्टि (अनुभव) में आने वाला प्रसिद्ध आकाश है। वही परमात्मा कमलजन्मा ब्रह्मा का संकल्प करके उनके उस स्वरूप को देखता है। तदनन्तर दक्ष आदि प्रजापतियों की कल्पना करके जगत् की कल्पना करता है। श्रीराम ! इस प्रकार चौदह भुवनों में रहने के कारण चौदह प्रकार के अनन्त प्राणी समुदाय के कोलाहल से युक्त यह सृष्टि परमात्मा के चित्त से ही निर्मित हुई है। भूतल से सम्बन्ध रखने वाले सभी प्राणियों में जो ये मनुष्य-जाति के प्राणी हैं, ये ही आत्मज्ञान के उपदेश

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के पात्र हैं।

श्रीराम! यह जगत् अमुक निमित्त से और अमुक उपादान से उत्पन्न हुआ है, यह जो वाणी की रचना या कल्पना है, वह शास्त्रोक्त मर्यादा के निर्वाह के लिए है, वास्तव में कुछ नहीं है; क्योंकि परमात्मा में विकार, अवयव, विभिन्न दिशाओं की सत्ता तथा देश-काल आदि के क्रम सम्भव नहीं हैं। यद्यपि इनका आविर्भाव प्रत्यक्ष देखा जाता है, तथापि निराकार, निर्विकार और सर्वगत परमात्मा में इन सबका होना कदापि सम्भव नहीं। उस चिन्मय परमात्मा के बिना जगत् के किसी दूसरे मूलकारण की कल्पना हो ही नहीं सकती। दूसरी कोई कल्पना न है न होगी। क्रम, शब्द और अर्थ अन्यत्र कहाँ से आ सकते हैं तथा व्यवहारजनित उक्तियाँ भी उस परमात्मा के सिवा और कहाँ सम्भव हो सकती हैं। यहाँ जो-जो कल्पनाएँ हैं, जो-जो पदार्थ हैं, उनके वाचक जो-जो शब्द हैं और जो-जो वाक्य हैं, वे सब उस सत्-स्वरूप परमात्मा से उत्पन्न तथा सद्रूप होने के कारण 'सत्' ही समझे जाते हैं। 'यह जगत् भिन्न है और यह ब्रह्म भिन्न है-इस तरह के शब्दों और अर्थों का व्यवहार-श्रम केवल वाणी में है, परमात्मा में नहीं; क्योंकि परिच्छेद होने पर ही भिन्नता होती है। (ब्रह्म अपरिच्छिन्न है, इसलिए उसका किसी से भेद होना सम्भव नहीं।) अग्नि की एक शिखा की दूसरी शिखा जननी है, यह कथन उक्ति-वैचित्र्यमात्र है। इस वाक्य के अर्थ में वास्तविकता नहीं है। इसी प्रकार परमात्मा के विषय में जन्य-जनक आदि शब्दों का व्यवहार वास्तव में सम्भव नहीं है; क्योंकि अनन्त होने के कारण जब ब्रह्म एक ही है, तब वह किसको किस तरह उत्पन्न करेगा ? जैसे समुद्र में जो तरंगों का समूह दिखायी देता है, वह उससे भिन्न नहीं है, उसी प्रकार परब्रह्म में जो अर्थबोधक शब्द दृष्टिगोचर होता है, उसे विद्वान् पुरुष ब्रह्म ही मानते हैं। ब्रह्म की चेतन जीवात्मा है, ब्रह्म ही मन है, ब्रह्म ही बुद्धि है, ब्रह्म ही अर्थ है, ब्रह्म ही शब्द है और ब्रह्म ही धातु है। यह सारा विश्व ब्रह्म ही है। इस विश्व से परे भी ब्रह्मपद ही है। वास्तव में तो जगत् है ही नहीं। सब कुछ केवल ब्रह्म ही है। सर्वस्वरूप एवं सर्वव्यापी उस अनन्त ब्रह्मपद से दूसरी कोई वस्तु उत्पन्न हो, यह सम्भव नहीं। जो कुछ ब्रह्म से प्रकट हुआ है, वह ब्रह्मरूप ही है इस जगत् में ब्रह्मत्व के बिना कुछ भी होना सम्भव नहीं। निश्चय ही यह सब कुछ ब्रह्म ही है। यही परमार्थता-यथार्थ कथन है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रघुनन्दन! यह माया ऐसी है, जो अपने विनाश से ही हर्ष देने वाली होती है। इसके स्वभाव का पता नहीं लगता। ज्ञान की दृष्टि से जब इसको देखने का प्रयत्न किया जाता है, तब यह तत्काल नष्ट हो जाती है। अहो ! संसार को बाँधने वाली यह माया बड़ी ही विचित्र है। यद्यपि यह असत्य ही है, तथापि इसने अत्यन्त सत्य की भाँति अपना ज्ञान कराया है। जो पुरुष 'यह जगत् ब्रह्मरूप से सत्य ही है' अथवा 'मिथ्या होने के कारण असत्य ही है–इन दो बातों में से किसी एक को दृढ़ निश्चय के साथ अपना लेता है और मन में आसक्ति न रखकर जगत् को स्वप्न भूमि की भाँति भ्रान्तिमात्र ही देखता है, वह कभी दुःख में नहीं डूबता। जिसकी इन मिथ्याभूत देह–इन्द्रिय आदिरूप द्वैत भावनाओं में अहंबुद्धि है, वही दुःख के सागर में डूबता है। स्वरूप–ज्ञान से शून्य उस मिथ्यादर्शी पुरुष के लिये सब ओर केवल अविद्या ही विद्यमान है। जैसे जल में सूखी धूल नहीं होती, उसी प्रकार महान् पुरुष परमात्मा में विकार आदि कोई दोष नहीं होते। अविद्यारूपी नदी में बहता हुआ इस संसार में आत्मा के यथार्थ ज्ञान के बिना अनुभव में नहीं आता और वह आत्मज्ञान शास्त्र के तात्पर्य का यथार्थ बोध होने से ही प्राप्त होता है। श्रीराम ! परमात्मा की प्राप्ति के बिना अविद्यारूपी नदी का पार नहीं मिलता। वह परमात्मा की प्राप्ति ही अक्षयपद कहलाती है।

उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त

बीसवाँ सर्ग

जीवों के कर्मानुसार नाना योनियों में जन्मों का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–महाबाहु श्रीराम! विभिन्न कल्पनाओं द्वारा ही जिसने आकार ग्रहण कर रक्खा है तथा जो देश, काल और क्रिया के अधीन है, चैतन्य का वही रूप क्षेत्रज्ञ कहलाता है। क्षेत्र कहते हैं शरीर को। उसे बाहर और भीतर से वह पूर्णतया जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। क्षेत्रज्ञ ही वासना का संकलन करके अहंकार भाव को प्राप्त होता है। अहंकार ही निश्चयात्मकवृत्ति से युक्त होकर जब निर्णायक एवं विभिन्न कल्पनाओं से युक्त होता है, तब उसे बुद्धि कहते हैं। संकल्पयुक्त बुद्धि ही मन का स्थान ग्रहण करती है तथा घनीभूत विकल्पों से युक्त मन ही धीरे–धीरे इन्द्रियभाव को

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.F.S) Jammu Collection

प्राप्त होता है। विद्वान् पुरुष इन्द्रियों को ही हाथ-पैर आदि से युक्त शरीर मानते हैं। वह शरीर लोक में सभी के अनुभव में आता है, उत्पन्न होता है और जीवित रहता है। इस प्रकार संकल्प-वासनारूपी रस्सी से जकड़ा और दुःखों के जाल से व्याप्त हुआ वह जीव अज्ञान से चित्तता-दृश्यता को प्राप्त होता है। जैसे बेर आदि का फल परिपक्व अवस्था (रूप, रस आदि गुणों के परिवर्तन) से ही अन्यरूपता को प्राप्त होता है, उसकी आकृति (जाति) नहीं बदल जाती-वह बेर से भिन्न कोई दूसरा फल नहीं हो जाता, उसी प्रकार जीव-क्षेत्रज्ञ भी अविद्यारूप मल के परिणामवश अवस्था भेद से ही कुछ अन्य रूप-सा हो जाता है, आकृति (परिणाम रहित चेतन जाति) से नहीं। (तात्पर्य यह है कि अहंकार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर के संघातरूप अनात्म-वस्तु में वह आत्मभिमान कर लेता है; किंतु वास्तव में उसका स्वरूप चेतन ही है।) इस प्रकार जीव अहंकारभाव को प्राप्त होता है। अहंकार बुद्धि रूप में परिणत होता है और बुद्धि संकल्पों के समूह से व्याप्त मन का रूप धारण करती है। फिर संकल्पमय मन नाना प्रकार के शरीरों को धारण करने में संलग्न होता है। जैसे गौएँ मदमत्त साँड़ के पीछे दौड़ती हैं और जैसे नदियाँ समुद्र की ओर भागी जाती हैं, उसी प्रकार इच्छा आदि शक्तियाँ मन का अनुसरण करती हैं, जिससे काम-क्रोध-लोभ-मोहादि दोषों की ही वृद्धि होती है। इस प्रकार इच्छा द्वेष आदि शक्तियों के बाहुल्य से युक्त मन शाखा-प्रशाखारूप से अभिमान की वृद्धि होने के कारण घनीभूत अहंकार भाव को प्राप्त हो रेशम के कीड़े की भाँति स्वेच्छा से ही बन्धन को प्राप्त होता है। जैसे पक्षी स्वयं ही अपने शरीर को जाल आदि फंदों में फँसाकर कष्टकारी बन्धन में डालते और पछताते हैं, उसी तरह मन अपने संकल्पों के अनुसंधान से स्वयं ही दुःखदायी बन्धन में पड़कर इस लोक में संतप्त होता है।

जैसे पक्षी समुद्र में गिरा हो उसी तरह मन घोर दुःख के महासागर में पड़ा हुआ है, गन्धर्व नगर के समान शून्य जगत्-जाल में अपने बन्धन के हेतु रूप देह आदि पर आसक्ति रखता है, विषयों की ओर दौड़ जाता है और तत्त्व ज्ञान आदि के प्रति अविश्वास के समुद्र में निरन्तर बह रहा है।

जो अनन्त विषयों में अनन्त संकल्प-कल्पनाओं की उत्पत्ति में हेतु है, उस माया अथवा अविद्या के द्वारा इस जगत्रूपी विशाल इन्द्रजाल का विस्तार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करने वाले मूढ़ जीव जल में आवर्तों (भँवरों) के समान तब तक चक्कर काटते रहे हैं, जब तक उन्हें अपने अनिन्दित-विशुद्ध आत्मस्वरूप का साक्षात्कार नहीं हो जाता। किन्तु जब वे साधन करते-करते काल पाकर आत्मा का साक्षात्कार करके असत् को त्याग कर सत्य ज्ञान को अपनाते हैं, तब परम पद को प्राप्त होकर फिर इस संसार में जन्म नहीं लेते। कुछ अज्ञानी जीव सहस्त्रों जन्मों का कष्ट भोग कर विवेक को प्राप्त करके भी मूर्खता के कारण उस संसाररूपी संकट में ही गिर जाते हैं; कुछ लोग उच्च कुल में जन्म और साधन की शक्ति एवं सुविधा को पाकर भी अज्ञान और विषयासक्ति के कारण अपनी तुच्छ बुद्धि से ही पुनः तिर्यग्योनियों को प्राप्त होते हैं और तिर्यग्योनि से नरकों में भी गिरते हैं। कुछ महाबुद्धिमान् सत्पुरुष एक ही जन्म द्वारा मोक्षरूप ब्रह्मपद में शीघ्र ही प्रविष्ट हो जाते हैं। श्रीराम! कितने ही जीव समूह तिर्यग्योनियों में जन्म लेते हैं, कितने ही देवयोनियों को प्राप्त होते हैं, कितने ही नागयोनि को प्राप्त होते हैं। जैसे यह जगत् विशाल दिखायी देता है, वैसे ही अन्यान्य जगत् भी हैं, थे और भविष्य में भी बहुत से होंगे। इस ब्रह्माण्ड में लोग जिस व्यवहार से रहते हैं, उसी व्यवहार से अन्य ब्रह्माण्डों में भी रहते हैं। केवल उनकी आकृतियों में अन्तर या विलक्षणता होती है। जैसे नदी की लहरें परस्पर टकराने से परिवर्तित होती रहती हैं, उसी प्रकार विभिन्न सृष्टियाँ अपने सात्त्विक, राजस आदि स्वभाववश परस्पर संघर्ष के कारण बदलती रहती हैं। जैसे जलराशि समुद्र में अनन्त लहरें निरन्तर उठती और विलीन होती रहती हैं, उसी प्रकार उस परमपद-स्वरूप परमात्मा में यह तीनों लोकों की रचना आदि मोह माया व्यर्थ ही विस्तार को प्राप्त हो अनवरत बढ़ती, परिणाम को प्राप्त होती और विनष्ट होती रहती है।

बीसवां सर्ग समाप्त

इक्कीसवां सर्ग

संसार का मिथ्यात्व

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन्! इस क्रम से जिस जीव ने परमात्मा के स्वरूप में अपनी स्थिति प्राप्त कर ली, वह अस्थिपिंजररूप देह को कैसे ग्रहण किये रहता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! जो यह शरीर आदि के रूप में स्थावर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (IES) Jammu Collection

जंगम जगत् दिखायी देता है, यह आभासमात्र ही है, अतएव स्वप्न के समान असत् होता हुआ ही प्रकट हुआ है। (तात्पर्य यह कि वह परमात्मनिष्ठ जीव इस शरीर आदि को स्वप्न के तुल्य मिथ्या मानता हुआ ही इसमें रहता है)। निष्पाप श्रीराम ! यह प्रपंच दीर्घकाल तक बने रहने वाले स्वप्न के समान मिथ्या ही दीखता है, दो चन्द्रमाओं की भ्रान्ति के समान तथा पहाड़ी भूमि में घूमते हुए पुरुष को घूमते दीखने वाले पर्वत के समान मिथ्या ही दृष्टिगोचर होता है। जिसकी अज्ञानमयी निद्रा टूट गयी और वासनात्मक भावना गल गयी है, वह ज्ञानवान् पुरुष इस संसाररूपी स्वप्न को देखता हुआ भी नहीं देखता-इसे मिथ्या समझता है। श्रीराम ! जीवों के स्वभाव से कल्पित यह संसार, जिसकी मोक्ष होने से पहले तक निरन्तर प्राप्ति होती रहती है, अनात्मज्ञानी के ही अंदर सदा सत्य-सा विद्यमान रहता है।

इक्कीसवां सर्ग समाप्त

बाईसवां सर्ग

ब्रह्मरूपता का प्रतिपादन

वसिष्ठजी बोले हे रघुनन्दन! यह जगत् यद्यपि सब प्रकार से सम्पन्न दिखायी देता है, तथापि यहाँ वास्तव में कुछ भी सम्पन्न नहीं है। यह अभास मात्र एवं मन का विलासमात्र है; अतः शून्य (असत्) रूप में ही स्थित है। मन का संकल्प मात्र ही इसका स्वरूप है। यहाँ भी यह प्रतीत होता है, वहाँ स्वप्न देखे गये नगर के समान शून्यरूप ही है, केवल आकाशरूप में ही स्थित है। शरीर आदि के रूप में जो ये तीनों लोक दिखायी देते हैं, वे सब-के-सब मन से ही कल्पित हैं। जैसे पदार्थों के देखने में नेत्र कारण हैं, उसी प्रकार उनके स्मरणमात्र में मन कारण है (अतः मनःकल्पित यह जगत् अतीत की स्मृति के ही तुल्य है। स्मरणकाल में वह पदार्थरूप से विद्यमान या उपलब्ध नहीं है)। श्रीराम! मन की इस अद्भुत शक्ति को तो देखो; उसने अपने से उत्पन्न हुए इस शरीर को अपनी भावना या संकल्प के द्वारा ही प्राप्त किया है। इसलिये लोग उस मन की कल्पना को सम्पूर्ण शक्तियों से सम्पन्न समझते हैं। देवता, असुर और मनुष्य आदि सभी प्राणी मन के द्वारा अपने संकल्प से ही रचे गये हैं। अपने संकल्प के शान्त होने पर तैलरहित दीपक की भाँति वे सब शान्त हो जाते हैं। महामते ! देखो, यह सारा जगत् आकाश के समान शून्य, मन की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

कल्पनामात्र से विकसित तथा दीर्घकालीन स्वप्न के तुल्य मिथ्या ही प्रकट हुआ है। विशुद्ध बुद्धिवाले रघुनन्दन! इस जगत् में कभी कोई वस्तु वास्तव में न उत्पन्न होती है और न उसका नाश ही होता है। यहाँ जो जन्म और मरण दीखते हैं, वे सब मिथ्या ही हैं। जैसे मरुभूमि में सूर्य की किरणों का ताप बढ़ने से उसमें मृगतृष्णा (जल) का दर्शन होता है, उसी प्रकार मन के संकल्प से ये ब्रह्मा आदि सभी प्राणी बिना हुए ही दिखायी देते हैं। संसार में जितनी आकार-राशियाँ दिखायी देती हैं, वे सब-की-सब दो चन्द्रमाओं के भ्रम की भाँति असत् हैं, मिथ्या ज्ञान की घनीभूत मूर्तियाँ हैं तथा मनोरथ की भाँति संकल्प में ही प्रकट हुई हैं (वास्तव में इनकी सत्ता नहीं है)। जैसे नौका द्वारा यात्रा करने वाले पुरुष को नदी के तटवर्ती वृक्ष और पहाड़ आदि मिथ्या ही चलते हुए प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार इन दृश्य आकारों की परम्परा नित्य असत्य होती हुई ही सत्य-सी प्रकट दिखायी देती है। माया से ही जिसकी ठठरी रची गयी है और मन के मनन से ही जिसका निर्माण हुआ है, ऐसा जो यह दृश्य जगत् है, इसे इन्द्रजाल ही समझो। यह सत्य नहीं है, तो भी सत्य के समान स्थित है। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है। फिर इसके लिये उससे भिन्न होने का प्रसंग ही कहाँ है। यदि कोई प्रसंग है तो कौन और कैसा है ? वह भिन्नता या भेद भावना कहाँ स्थित है ? 'यह पर्वत है, यह ठूँठा वृक्ष है' इत्यादि रूप से जो जगत् के आडम्बर का विलास है, वह मनकी भावना के दृढ़ होने से असत् होता हुआ भी सत्-सा दृष्टिगोचर होता है। जैसे महान् आयोजनों से पूर्ण स्वप्न भ्रम ही है, वास्तविक नहीं, उसी प्रकार मन के द्वारा रचे गये इस जगत् को भी दीर्घकालीन स्वप्न ही समझो। जो मूढ़चित्त मानव अपने संकल्प से उत्पन्न हुई मनोरथमयी सम्पत्ति को स्वरूप से युक्त (सत्य) समझकर उसका अनुसरण करता है, वह एकमात्र दुख का ही भागी होता है। यदि परमात्मस्वरूप यथार्थ वस्तु न हो तो लोग भले ही अवस्तुरूप संसार का अनुसरण करें; परंतु जो यथार्थ वस्तु-परमात्मा का परित्याग करके अवस्तुरूप संसार का अनुगमन करता है, वह नष्ट हो जाता है-परमात्मा की प्राप्तिरूप परम पुरुषार्थ से वंचित रह जाता है। जैसे रज्जु में सर्प का भय मन का व्यामोह (धर्म) मात्र ही है। मन की भावनाओं की विचित्रता से जगत् चिरकाल तक प्रतीति का विषय बना रहता है। जल के भीतर प्रतिबिम्बित हुए चन्द्रमा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के समान चंचल (क्षणभंगुर) जो मिथ्या उदित हुए पदार्थ हैं, उनसे इस लोक में मूर्ख बालक ही धोखा खा सकता है, तुम-जैसा तत्त्वज्ञानी नहीं। यह जड़संघात देह आदि रूप जो विशाल जगत् दिखायी देता है, मिथ्या ही है। मन के मनन से ही इसका निर्माण हुआ है। जैसे हृदय में स्वप्न या संकल्पमय नगर निर्मित होता है, उसी प्रकार यह जगत् भी मन के संकल्प में ही निर्मित हुआ है (वास्तव में इसकी सत्ता नहीं है)। यह दृश्य-प्रपंच मन के संकल्प से उत्पन्न होता है और उसके संकल्परहित हो जाने से विलीन हो जाता है। इस तरह यह समृद्धिशाली गन्धर्व नगर की भाँति बिना हुए ही दिखायी देता है। हृदय में मन के संकल्प द्वारा कल्पित विशाल नगर का विध्वंस अथवा अभ्युदय हो जाने पर तुम्हीं बताओ, किसकी क्या हानि होती है या किसको क्या लाभ हो जाता है ? जैसे बालक के मन में खेल के लिये बने हुए गुड़ियाओं या खिलौनों के द्वारा पुत्र-पशु आदि व्यवहारों की कल्पना होती है, उसी प्रकार यह जगत् भी सदा मन से ही प्रकट होता है। जैसे इन्द्रजाल के द्वारा रचित जाल के नष्ट-भ्रष्ट होने पर किसी का कुछ भी नहीं बिगड़ता। जो वास्तव में असत् ही है, वह यदि अविद्यमान हो जाय तो किसका क्या बिगड़ गया ? इसलिये संसार में हर्ष और शोक का आधार कुछ भी नहीं है। महामते ! जिसका सदा से ही अत्यन्त अभाव है, उसके नष्ट होने से क्या नष्ट हो जाता है ? और जब किसी का नाश ही नहीं होता, तब उसके लिये दुःख का क्या प्रसंग है ?

एकमात्र प्रपंच का ही विस्तार करने वाले इस असत्य भूत समस्त संसार में ग्रहण करने योग्य कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसे विद्वान् पुरुष ग्रहण करने की इच्छा करें ? इसी प्रकार जो सर्वथा सत्यभूत ब्रह्मत्त्वमय है, उस समस्त त्रिलोकी में कौन ऐसा हेय पदार्थ है, जिसका विद्वान् पुरुष त्याग करे ? अर्थात् तीनों लोक ब्रह्मभूत होने के कारण चिन्मय हैं; उनमें विज्ञानानन्दघन परमात्मा के सिवा अन्य कोई पदार्थ नहीं है, जिसका त्याग किया जा सके। आदि और अन्त में जिसका अभाव है, उसका वर्तमान में भी अभाव ही है। अतः श्रीराम! जो अज्ञानी इस असत् संसार की इच्छा करता है, उसको असत् (जड़ संसार) ही प्राप्त होता है। आदि और अन्त में जो सत्य है, वर्तमान में भी वह सत्य ही है; अतः जिसकी दृष्टि में सब सत् परमात्मा ही है, उसे सर्वत्र परमात्मसत्ता का ही दर्शन होता है। जल के भीतर जो असत्यभूत चन्द्रमा और आकाश-तल आदि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दिखायी देते हैं, उन्हें अपने मन के मोह के लिये मूर्ख बालक ही विशाल आकार वाले अर्थ शून्य कार्यों में सुख समझकर संतुष्ट होता है; किंतु अज्ञान के कारण उसे अनन्त दुःख ही प्राप्त होता है; सुख नहीं।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं–भरद्वाज! वसिष्ठ मुनि के यों कहने पर दिन बीत गया। सूर्य अस्ताचल को चले गये। सारी सभा के लोग मुनि को नमस्कार करके सांयकाल की उपासना के लिये स्नान करने के उद्देश्य से उठ गये और रात बीतने पर दूसरे दिन उदित हुए सूर्यदेव की किरणों के साथ-साथ फिर सभा भवन में आ गये।

बाईसवां सर्ग समाप्त

तेईसवां सर्ग

सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन! रमणीय स्त्री आदि तथा धन के नष्ट होने पर शोक का कौन-सा अवसर है ? इन्द्रजाल की दृष्टि से देखे गये पदार्थ के नष्ट होने पर क्या कोई विलाप करता है ? अविद्या के अंशभूत पुत्र आदि के प्राप्त होने पर सुख और नष्ट होने पर दुःख का प्रसार होना क्या उचित है? रमणीय धन और स्त्री आदि की प्राप्ति एवं वृद्धि होने पर हर्ष से फूल उठने का क्या अवसर है ? क्या मृगतृष्णा के जल की वृद्धि होने पर जलार्थी पुरुषों को आनन्द प्राप्त होता है ? कदापि नहीं। धन और स्त्री आदि के बढ़ने पर तो उन्हें परमार्थ में बाधक समझकर दुःख का अनुभव करना चाहिये, संतोष मानना तो कदापि उचित नहीं। संसार में मोहमाया की वृद्धि होनेपर भला, कौन सुखी एवं स्वस्थ रह सकता है। जिन भोगों के बढ़ जाने पर मूढ़ मनुष्य को राग होता है, उन्हीं की वृद्धि से विवेकशील पुरुष के मन में वैराग्य होता है, नश्वर धन और स्त्री आदि के सुलभ होने में हर्ष का क्या कारण है ? जो इनके परिणाम को देख पाते हैं, उन साधु पुरुषों को तो इनसे वैराग्य ही होता है। अतः रघुनन्दन ! संसार के व्यवहारों में जो वस्तु नश्वर प्रतीत हो उसकी तो तुम उपेक्षा करो और जो न्यायतः प्राप्त हो जाय, उसे यथायोग्य व्यवहार में लाओ; क्योंकि तुम तत्त्वज्ञ हो। अप्राप्त भोगों की स्वभावतः कभी इच्छा न होना और दैवात् प्राप्त हुए भोगों को यथायोग्य व्यवहार में लाना–यह ज्ञानवान् का लक्षण है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जिस किसी भी युक्ति अथवा साधन से जिस पुरुष का जड़ दृश्य से राग चला जाता है, उसकी परमात्मा में दृढ़ विश्वास रखने वाली विमल बुद्धि कभी मोहरूपी सागर में नहीं डूबती। यह असत् है, ऐसा समझकर जिसकी समस्त सांसारिक वस्तुओं में आस्था नहीं रह गयी है, उस सर्वज्ञ को मिथ्या अविद्या अपने अंक में नहीं ले सकती-चंगुल में नहीं फँसा सकती। श्रीराम! अत्यन्त विरक्त, अपने परमार्थिकस्वरूप में स्थित और वासस्थान में सब प्रकार की अहंता-ममता से रहित हो तथा न्याय प्राप्त कार्य में तत्पर रहते हुए भी राग रहित हो तुम आकाश के समान निर्लिप्त हो जाओ; क्योंकि कर्म में लगे रहने पर भी जिस ज्ञानी महापुरुष की उसमें न तो इच्छा (राग) है और न अनिच्छा (द्वेष) ही है, उसकी बुद्धि जल से कमलदल की भाँति कभी लिप्त नहीं होती। तुम्हारी इन्द्रियाँ और मन गौणी वृत्ति से दर्शन और स्पर्श आदि कार्य करें या न करें, तुम सर्वथा इच्छारहित हो अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित रहो। यह संसार- सागर वासनाओं के जल से भरा हुआ है। जो शुद्ध बुद्धिरूप नौका पर आरूढ़ हैं, वे ही इसके पार जा सके हैं। दूसरे लोग तो डूब ही गये हैं। जो नित्य तृप्त, शुद्ध एवं तीक्ष्ण बुद्धि वाले जीवन्मुक्त महात्मा हैं, उन्हीं के आचारों का अनुसरण करना चाहिए, भोग-लम्पट दीन-हीन शठों के आचरणों का नहीं। महात्मा पुरुष सब कुछ नष्ट हो जाने पर भी खिन्न नहीं होते, देवताओं के उद्यान में भी आसक्त नहीं होते और शास्त्र-मर्यादा का कभी त्याग नहीं करते। महात्मा पुरुष इच्छारहित तथा न्याय प्राप्त व्यवहार का अनासक्त भाव से अनुसरण करने वाले हैं। वे देहरूपी रथ का आश्रय ले परमात्मस्वरूप में स्थित हो आसक्ति-शून्य होकर विचरते हैं। परम सुन्दर श्रीराम! तुम भी यथार्थ एवं विस्तृत विवेक को प्राप्त कर चुके हो। अपनी इस पवित्र एवं तीक्ष्ण बुद्धि के बल से सदा विज्ञानानन्दघन आत्मस्वरूप में स्थित हो।

तेईसवां सर्ग समाप्त

चौबीसवां सर्ग

ब्रह्माण्ड एवं भूतों की परम्परा

श्रीरामजी ने कहा-भगवन् ! आप सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता और समस्त वेदान्तों के पारंगत विद्वान् हैं। आपके पवित्र उपदेश से मैं आश्वस्त पुरुष के समान अपने स्वरूप में नित्य स्थित हूँ। प्रवचन करते समय आपके मुख से जो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उदार भावों से युक्त, सुस्पष्ट, सुन्दर तथा परमात्मा के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले वचन निकले हैं, उन्हें सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती- अधिकाधिक सुनने की इच्छा बढ़ती जाती है। आपने श्रुति-पुराण आदि शास्त्रों के आधार पर कमलयोनि ब्रह्मा की जो उत्पत्ति कही थी, उसका पुनः स्पष्ट रूप से वर्णन कीजिये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! इस ब्रह्माण्ड में तथा दूसरे-दूसरे विचित्र ब्रह्माण्डों में भी बहुत से विभिन्न आचार-व्यवहार वाले सहस्त्रों प्राणी विचरते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य समयों में उत्पन्न होने वाले अनन्त भुवनों में दूसरे-दूसरे बहुत से प्राणी एक ही समय अधिक संख्या में उत्पन्न होंगे। महाबाहो ! उन ब्रह्माण्डों में उन ब्रह्मा आदि देवताओं की उत्पत्तियाँ विचित्र सी हुई बतायी गयी हैं। महासर्ग के आरम्भ काल में कभी तो ब्रह्मा कमल से उत्पन्न होते हैं, कभी जल से, कभी अण्ड से और कभी आकाश से प्रादुर्भूत होते हैं। विभिन्न सृष्टियों में कोई भूमि केवल मिट्टी के रूप में प्रकट हुई तो कोई पथरीली थी, कोई सुवर्णमयी थी और कोई ताम्रमयी थी। इस ब्रह्माण्ड में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के कितने ही आश्चर्यमय जगत् हैं। इस सच्चिदानन्दघन परब्रह्मस्वरूप महाकाश में अनन्त जगत् महासागर की तरंगों के समान उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। जैसे समुद्र में लहरें और मरु-मरीचिका में जल की धाराएँ उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा में अगणित विश्व की शोभा प्रकट होती है। (तात्पर्य यह है कि जैसे सूर्य की किरणों में जल की प्रतीति मिथ्या है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन परमात्मा में इस जड़ जगत् का वैभव मिथ्या ही प्रतीत हो रहा है।) जैसे वर्षा आदि ऋतुओं में मच्छरों के समूह उत्पन्न हो-होकर सब ओर भर जाते हैं और फिर नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार ये संसार की सृष्टियाँ उत्पन्न और नष्ट होती रहती हैं; यह नहीं ज्ञात होता कि ये सदा उत्पन्न और नष्ट होने वाली सृष्टि परम्पराएँ परमात्मा में कब से आरम्भ हुई। ये सृष्टियाँ पूर्व-से-पूर्व काल में थीं और उससे भी पहले विद्यमान थीं। इस प्रकार अनादिकाल से इनकी परम्पराएँ चल रही हैं। जैसे समुद्र में निरन्तर लहरें उठती रहती हैं, उसी तरह परमात्मा में सदा ही ये सृष्टियाँ उत्पन्न एवं विलीन होती रहती हैं। देवता, असुर और मनुष्य आदि से युक्त ये समस्त प्राणी नदी की तरंगों के समान उत्पन्न हो-होकर विलीन होते रहते हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जैसे मिट्टी की राशि में घड़े और अंकुर में पत्ते विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार भविष्य में होने वाली अन्य सृष्टि-परम्पराएँ भी परब्रह्म परमात्मा में स्थित हैं।

श्रीराम ! परमात्मा के स्वरूप में जो वस्तुतः विद्यमान नहीं हैं-बिना हुए ही प्रतीत होती हैं, ऐसी इन विलक्षण सृष्टियों में ब्रह्मा की विविध विचित्र उत्पत्तियाँ बीत चुकी हैं। वास्तव में यह संसार मन के संकल्प का विस्तारमात्र है। यही सर्वसम्मत सिद्धान्त है। मैंने केवल समझाने के लिये तुम्हारे समक्ष इस सृष्टि-क्रम का वर्णन किया है। सत्ययुग, फिर त्रेता, फिर द्वापर और फिर कलियुग-इस प्रकार सारा जगत् घूमते हुए चक्र की तरह बारंबार आता-जाता रहता है जैसे प्रत्येक प्रातःकाल के बाद दिन आता है, उसी प्रकार पुनः मन्वन्तरों के आरम्भ होते हैं। एक के बाद पुनः दूसरे कल्पों की परम्पराएँ चलती हैं और बारंबार कार्यावस्थाएँ प्राप्त होती रहती हैं। जैसे वृक्ष में विभिन्न ऋतुओं के अनुसार सारे फल-फूल आदि कभी अप्रकट रहते हैं और कभी समय पाकर प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार परम तत्त्व परमात्मा में यह सारा जगत् कभी अवयक्त रहता है और कभी व्यक्त हो जाता है। श्रीराम ! यह संसार कभी भी सत् नहीं है; क्योंकि सर्वशक्तिमान् परमात्मा में स्वभाव से ही सदा संसार का अत्यन्ताभाव है। महामते ! ज्ञानी की दृष्टि में यह सब कुछ ब्रह्म ही है। इसलिये 'संसार नहीं है' यह कथन सर्वथा युक्तियुक्त ही है। अज्ञानी की दृष्टि में संसार का विच्छेद नहीं होता, वह सदा बना रहता है। इसलिये यह संसार माया मिथ्या होती हुई भी मूढ़ के लिये नित्य है, यह कथन भी युक्ति संगत ही है। रघुनन्दन ! जगत् बारंबार उत्पन्न होता रहता है, इसलिये कभी इसका अभाव नहीं है-ऐसा जो कुछ लोगों का कथन है, वह भी उनकी दृष्टि मिथ्या नहीं है। यह सब दृश्य पुनः-पुनः प्रकट होता है। बारंबार जन्म और मरण होते रहते हैं। सुख-दुःख, करण और कर्म भी बारंबार हुआ करते हैं। दिशाएँ, आकाश, समुद्र और पर्वत भी बारंबार उत्पन्न होते हैं। जैसे खिड़की वाले घरों में एक ही सूर्य की प्रभा बारंबार अनेक रूपों में प्राप्त होती है, वैसे ही यह सृष्टि प्रवाहरूप से पुनः-पुनः चक्र की भाँति चलती रहती है। फिर दैत्य और देवता जन्म लेते हैं, पुनः लोक-लोकान्तरों के क्रम प्रकट होते हैं, फिर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करने की चेष्टाएँ चालू होती हैं। अनेकानेक दानव भी बारंबार जन्म लेते हैं तथा बारंबार सम्पूर्ण दिशाओं में मनोहर चन्द्रमा, सूर्य,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वरुण एवं वायु का संचार होता रहता है। कालरूपी कुम्हार नाना प्रकार के प्राणीरूप प्यालों को बनाने के लिये पुनः बड़े वेग से निरंतर कल्प नामक चाक को चलाने लगता है।

चौबीसवां सर्ग समाप्त

पच्चीसवां सर्ग

ज्ञानी तथा भोगासक्त मूढ़ की स्थिति में अन्तर

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! जिनकी बुद्धि भोग और ऐश्वर्य के द्वारा नष्ट हो गयी है तथा जो ऐहिक और पारलौकिक भोग एवं ऐश्वर्य के लिये सकामभाव से नाना प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं, ऐसे मूढ़ पुरुष सच्चिदानन्दघन परमात्मा की ओर ध्यान नहीं देते, इस कारण उनको परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का अनुभव नहीं होता (अर्थात् वे परम पुरुषार्थरूप परमात्मा की प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं)। जो पुरुष विवेकयुक्त तीक्ष्ण बुद्धि की चरमसीमा को पहुँचे हुए हैं तथा जिन्हें इन्द्रियों ने अपने वश में नहीं कर रक्खा है, वे इस जगत् की माया का हाथ पर रक्खे हुए बेल के समान प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। जो जीव विवेकपूर्ण विचार से युक्त है, वह इस जगत् की अहंकारमूलक माया को तुच्छ जानकर उसी तरह त्याग देता है, जैसे साँप केंचुल को। श्रीराम ! जैसे आग से भुना हुआ बीज चिरकाल तक खेतों में रहने पर भी जमता नहीं, उसी प्रकार वह विवेकी पुरुष अनासक्ति को प्राप्त हो दीर्घकाल तक शरीर में रहने पर भी फिर जन्म नहीं लेता। किंतु अज्ञानी मनुष्य आधि–व्याधि से घिरे हुए तथा आज या कल प्रातःकाल नष्ट हो जाने वाले इस क्षणभंगुर शरीर के हित के लिये ही प्रयत्न करते हैं, आत्मा के लिये नहीं।

इसके बाद दाशूर मुनि का उपाख्यान सुनाकर वसिष्ठजी ने कहा–श्रीराम! यह जड़ जगत् वास्तव में है ही नहीं, ऐसा निश्चय करके इसमें सब ओर से आसक्ति का त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं, उसके प्रति विवेकशील पुरुषों का विश्वास कैसे होगा। जैसे मन के संकल्प द्वारा कल्पित पुरुष अथवा मनोराज्य को, स्वप्नगत जन–समुदाय तथा भ्रम से प्रतीत होने वाले दो चन्द्रमाओं की आकृतियों को तुम देखते हो, उसी प्रकार मन की भावना से ही उत्पन्न हुए इस सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच को देखना चाहिये (अर्थात् इसे मिथ्या समझकर इसके प्रति राग–द्वेष नहीं करना चाहिये)। निष्पाप रघुनन्दन ! पदार्थों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के सौन्दर्य का चिन्तन करने से जो उनके प्रति आन्तरिक आस्था होती है, उसका पूर्णतः परित्याग करके तुम जिस चिन्मयस्वरूप से स्थित हो, वही तुम्हारा वास्तविक रूप है। उसी रूप से इस जगत् में तुम लीलापूर्वक विचरण करो। सब पदार्थों के भीतर विद्यमान रहते हुए भी जो सबसे अतीत है, वह परमात्मा तुम्हीं हो। तुम्हारे सकाशमात्र से यह नियति विस्तार को प्राप्त होती है। जैसे सब प्रकार की इच्छाओं से रहित सूर्यदेव के आकाश में स्थित होनेपर जगत् के सब व्यवहार होने लगते हैं, उसी प्रकार इच्छारहित परमात्मा की सत्ता से ही समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं। जैसे रत्न (सूर्यकान्त एवं चन्द्रकान्त मणि आदि) में प्रकाश करने की इच्छा न होनेपर भी उसकी स्थितिमात्र से स्वतःप्रकाश होने लगता है, उसी प्रकार इच्छारहित परमात्मा के सकाश से ही इस जगत्-समुदाय की प्रवृत्ति (व्यवहार चेष्टा) होती रहती है। सच्चिदानन्द परमात्मा सम्पूर्ण इन्द्रियों से अतीत होने के कारण वास्तव में कर्ता और भोक्ता नहीं है, किंतु इन्द्रियों में व्यापक होने के कारण वही कर्ता भोक्ता माना जाता है। 'मैं सबके भीतर स्थित और अकर्ता हूँ'-ऐसी सुदृढ़ धारणा के साथ विवेक पुरुष प्रवाहरूप से प्राप्त हुए कार्य को करता रहे, तो भी वह उससे लिप्त (बद्ध) नहीं होता। चित्त में प्रवृत्ति का अभाव होने से मनुष्य उपरति को प्राप्त होता है। जिसको यह निश्चय हो गया है कि मैं यहाँ कुछ भी नहीं करता, अर्थात् जो कर्तापन के अभिमान से रहित हो गया है, ऐसा कौन पुरुष भोग-समूहों की कामना मन में लेकर किसी कार्य को करेगा अथवा छोड़ेगा। इसलिये सदा 'मैं कर्ता नहीं हूँ' मैं यह नहीं हूँ, मैं इसे करता हूँ और इसे नहीं करता' इस तरह के भावों का अनुसंधान करने वाली दृष्टि वास्तव में संतोषजनक नहीं होती। 'मैं शरीर हूँ-ऐसी धारणापूर्वक जो स्थिति है, वही कालसूत्र नामक नरक का मार्ग है। वही महावीचि नरक का जाल है और वही असिपत्रवन की पंक्तियाँ है। उस देहाभिमान का सर्वथा प्रयत्न पूर्वक त्याग करना चाहिए। मैं यह दृश्यरूप कुछ भी नहीं हूँ, किन्तु साक्षात् सच्चिदानन्द परमात्मा हूँ-ऐसा निश्चय करके तुम अपने इस सर्वोत्तम स्वरूप में सदा स्थित रहो, जिसमें श्रेष्ठ साधु, ब्रह्मवेत्ता पुरुष स्थित हुए हैं।

पच्चीसवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

छब्बीसवां सर्ग

तत्त्वज्ञानी महात्मा की महत्तम स्थिति का वर्णन

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा–ब्रह्मन् ! आपने अपनी उत्तम उक्तियों द्वारा जो यह सुन्दर बात कही है, वह सर्वथा सत्य है। समस्त भूतों की सृष्टि करने वाले परमात्मा अकर्ता होते हुए ही कर्ता हैं और अभोक्ता होते हुए भी भोक्ता हैं। प्रभो ! जो सबका अधिष्ठान और समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित हैं, उस सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, सच्चिदानन्द निर्मल पदस्वरूप ब्रह्म का मेरे हृदय में प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

श्रीवसिष्ठजी बोले–रघुनन्दन ! आत्मा ही आत्मा को जानता है, आत्मा ने ही आत्मा को संसारी बनाया है अर्थात् इसने स्वयं ही अज्ञान के कारण अपने–आप को संसार बन्धन में बाँधा है। आत्मा ही अपने ज्ञान के द्वारा पवित्र होकर सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होता है। जो वासनाओं के बन्धन में बँधा है, उसी को बद्ध कहा गया है। वासना का अभाव ही मोक्ष है। (वासनाओं का सर्वथा क्षय हो जाने पर साधक संसार के बन्धनों से सदा के लिये मुक्त हो जाता है।) अतः मन, बुद्धि आदि से युक्त सम्पूर्ण वासनाओं का त्याग करके जिस वृत्ति के द्वारा उन सब का त्याग किया जाता है, उस बुद्धि वृत्ति का भी त्याग कर दो अर्थात् उससे सम्बन्ध रहित हो जाओ और सबका अभाव हो जाने पर जो एकमात्र नित्य सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही शेष रहता है, उसी में अविचल भाव से स्थित रहो। शुद्ध बुद्धि से युक्त रघुनन्दन ! प्राणों के स्पन्दन पूर्वक कलना (चेष्टा एवं संकल्प), काल, प्रकाश एवं तिमिर आदि का तथा वासना और विषयों का (इन्द्रियों तथा समूल अहंकार का) सर्वथा त्याग करके उनसे सम्बन्धरहित होकर जो तुम आकाश के समान सौम्य (निर्मल), प्रशान्त-चित्त तथा चिन्मयरूप से विराज रहे हो, उसी सर्व सम्मानित रूप में स्थित रहो। जो परम बुद्धिमान् पुरुष सबका हृदय से परित्याग करके सब विक्षेपों के कारण भूत अभिमान से रहित हो जाता है, वह साक्षात् शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वरूप परमेश्वर है। जिसके में हृदय में अभिमान का अत्यन्त अभाव हो गया है, ऐसा विशुद्ध अन्तःकरण वाला ज्ञानी महात्मा ध्यान, समाधि अथवा कर्म करे या न करे, सदा मुक्त ही है; क्योंकि जिसका मन सर्वथा वासनारहित हो गया है, उसे न तो कर्मों के त्याग से कोई प्रयोजन है और न कर्मों के अनुष्ठान से ही।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जप, ध्यान और समाधि से भी उसका कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने शास्त्र का अच्छी तरह विचार किया और चिरकाल तक सत्पुरुषों के साथ परामर्श करके यही सार निकाला कि सम्पूर्ण वासनाओं से रहित हुए सच्चिदानन्दघन परमात्मा के निरन्तर मननरूप मौन से बढ़कर दूसरा कोई उत्तमपद नहीं है। दसों दिशाओं में घूम-घूमकर मैंने सारी दर्शनीय वस्तुओं को देख लिया; उनमें कुछ ही लोग ऐसे दिखायी दिये, जो परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ अनुभव करने वाले हैं।

मनुष्य के जो कोई भी लौकिक शुभ आयोजन हैं और जो भी उनके व्यावहारिक सत्कर्म हैं, वे सब केवल शरीर का निर्वाह करने के लिये ही हैं, आत्मा के लिये नहीं। पाताल, भूतल, स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक और आकाश में कुछ ही ऐसे प्राणी दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हें सच्चिदानन्द परमात्मा का यथार्थ बोध हो गया हो। जिस ज्ञानी के 'यह ग्राह्य है, यह त्याज्य है' इस तरह के अज्ञानजनित निश्चय नष्ट हो गये हैं, ऐसा कर्तव्याकर्तव्य दृष्टि से रहित ज्ञानी महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। प्राणी चाहे लोक में राज्य करे, चाहे मेघ या जल में प्रवेश कर जाय; परन्तु परमात्मा की प्राप्ति के बिना उसे परम शान्ति नहीं मिल सकती। जो इन्द्रियरूपी शत्रुओं का दमन करने में शूरवीर हैं, जन्मरूपी ज्वर का विनाश करने के लिये उन्हीं महाबुद्धिमान् महापुरुषों की सेवा करनी चाहिये। पाताल में और स्वर्ग में सर्वत्र पाँच ही भूत हैं, छठा कुछ भी नहीं है। फिर धीर मनुष्यों की बुद्धि कहाँ अनुरक्त हो (क्योंकि सर्वत्र क्षणभंगुर पदार्थों की ही उपलब्धि होती है)। शास्त्र के अनुसार निष्कामभावरूप युक्ति से व्यवहार करने वाले विवेकी पुरुष के लिये संसार गौ के खुर के समान अनायास ही लाँघ जाने योग्य है। परंतु जिसने उपर्युक्त युक्ति का दूर से ही परित्याग कर दिया है, उस अज्ञानी के लिये यह संसार महाप्रलयकालीन महासागर के समान दुस्तर है। पाताल से लेकर स्वर्गपर्यन्त इस जगत् में ज्ञानी महात्मा पुरुष के लिये कोई भी कर्तव्य नहीं है। जैसे मन्द-मन्द वायु के चलने से पर्वत नहीं हिलता, वैसे ही भोग-समूहों से तत्त्वज्ञानी पुरुष नहीं विचलित होता। जैसे बादल आकाश में बारंबार छा जाने पर भी उसे अपने रंग में नहीं रंग सकते, उसी प्रकार संसार के ये विषय-भोगरूप कोई भी पदार्थ पुनः-पुनः प्राप्त होने पर भी विशाल-हृदय तत्त्वज्ञानी महात्मा पुरुष को आसक्त नहीं कर सकते।

छब्बीसवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सत्ताइसवां सर्ग

भोगों से वैराग्य का उपदेश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! इस पूर्वोक्त वस्तु के विषय में पहले बृहस्पति के पुत्र कच ने जो पवित्र गाथाएँ गायी थीं, उनका मैं वर्णन करता हूँ; सुनो। एक समय मेरु पर्वत के किसी वन प्रान्त में देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच ब्रह्मविचार में तत्पर होकर रहते थे। वहाँ उन्होंने सुनी हुई ब्रह्म विद्या का बारंबार मनन और निदिध्यासन करके आत्मा में परम शान्ति प्राप्त कर ली थी। इसलिये उनकी बुद्धि परमात्मा के यथार्थ ज्ञानरूपी अमृत से परिपूर्ण थी। विरक्त एवं विवेकी पुरुषों के लिये अनादर के योग्य जो यह आपात रमणीय पाँच भौतिक दृश्य जगत् है, इसमें उनकी बुद्धि नहीं लगती थी। दृश्य–प्रपंच के प्रति आदर न होने के कारण उसमें उनका मन नहीं लगता था। इसलिये एकमात्र सच्चिदानन्दघन परमात्मा के अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तु को न देखते हुए उन्होंने अत्यन्त विरक्त पुरुष की भाँति अकेले एकान्त स्थान में हर्ष–गद्गद वाणी द्वारा यह उद्गार प्रकट किया।

अहो ! जैसे महाप्रलय के जल से समस्त संसार भरा रहता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व परमात्मा से परिपूर्ण है। दुःख, जीवात्मा और सुख एवं दिशाओं से घिरा हुआ सुमहान् आकाश–ये सब परमात्मा ही हैं। बाह्य एवं अभ्यान्तर भावों से युक्त इस देह में, ऊपर नीचे और पूर्व आदि दिशाओं में तथा इधर–उधर परमात्मा ही हैं। परमात्मा के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है। सभी जगह परमात्मा स्थित हैं। सब कुछ परमात्ममय ही है। यह सब जगत् परमात्मा ही है, अतः मैं सदा परमात्मा में ही स्थित हूँ। मैं नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्मस्वरूप हूँ और एकार्णव के समान सर्वत्र सुखपूर्वक विराजमान हूँ–इस प्रकार की भावना करके क्रमशः घण्टानाद की तरह ओंकार का उच्चारण करते हुए वे उस मेरु पर्वत के कुंज में बैठे रहे। श्रीराम ! वे कल्पनारूपी कलंक से रहित होने के कारण शुद्धरूप में स्थित थे। ऐसी स्थिति में पहुँचे हुए महात्मा कच ने उपर्युक्त गाथाओं का गान किया था।

रघुनन्दन ! इस जगत में खाने–पीने और स्त्री समागम के अतिरिक्त उत्तम पुरुषार्थरूप शुभ वस्तु कुछ भी नहीं है–अज्ञानियों के इस कथन पर विचार करके परम पद में आरूढ़ हुआ महान् पुरुष यहाँ किस वस्तु की वांछा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कर सकता है ? जो मूढ़ एवं असाधु पुरुष कृपाणों के सर्वस्वभूत-आदि, मध्य एवं अन्त में भी विनाशशील भोगों द्वारा संतुष्ट होते हैं, वे पशुओं और पक्षियों के समान गये-बीते हैं। जो संसार में इन मिथ्या विषयभोगों को सत् मानते हैं-इनकी स्थिरता पर विश्वास करते हैं, वे मनुष्यों में गदहों के समान हैं, उनका जीवन व्यर्थ है। सारी पृथ्वी मिट्टी ही है। समस्त वृक्ष काष्ठमय ही हैं और सभी शरीर हड्डी-मांस के पुतले ही हैं। नीचे पृथ्वी है तथा ऊपर और आगे पीछे आकाश है; फिर यहाँ सुख देने के लिये कौन-सी अपूर्व वस्तु है ? उत्पन्न और विनष्ट होनेवाली, अनित्य तथा मन और इन्द्रियों के संयोग से प्रकट हुए समस्त भोग वास्तव में मिथ्या ही हैं। हड्डियों के समूह को अपने शरीर की संज्ञा देने वाले पुरुष के द्वारा अपनी प्रेयसी कहकर एक रक्त-मांस की पुतली का सादर आलिंगन किया जाता है। यह संसार को मोहित करने वाले काम का ही क्रीड़ा-विलास है। श्रीराम ! यह सारा जगत् मूढ़ पुरुषों की दृष्टि में ही सत्य और स्थिर है। उन अज्ञानी मनुष्यों के लिये ही यह संतोषदायक होता है। विवेकशील एवं विरक्त पुरुष को संतोष नहीं प्राप्त होता; क्योंकि उनकी दृष्टि में यह समस्त संसार क्षणभंगुर एवं विनाशशील है। भोगों की वासना ऐसी विषैली होती है कि उन विषयों का उपभोग न करने पर भी विष की तरह मूर्च्छा (मोह) पैदा कर देती है। महाबाहु श्रीराम ! सृष्टि की व्यवस्था करने वाले पितामह भगवान् ब्रह्मा जब समाधि से उत्थित होते हैं, जब यह जगत्‌रूपी जीर्ण घटीयंत्र अपनी व्यवस्था के अनुसार चालू होता है और प्राणीरूपी घट वासनारूपी रस्सी से बँधकर जीवन की इच्छा से अपने कर्मानुसार नीचे-ऊपर आने-जाने लगते हैं, तब से निरन्तर कुछ जीव इस भवकूप से निकलते हैं और कुछ इसके भीतर प्रवेश करते हैं। श्रीराम ! अनादि-अनन्त ब्रह्मपद से उत्पन्न हुए जीव-समुदाय उसी तरह ब्रह्म में स्थित हैं, जैसे तरंगों के समूह समुद्र में। पुण्यात्मा रघुनन्दन! संसार में उत्पन्न हुए जो-जो पुरुष केवल सात्त्विक भाव से सम्पन्न हैं, वे फिर कभी यहाँ जन्म ग्रहण नहीं करते-सर्वथा मुक्त हो जाते हैं; परंतु जो सत्त्वगुण प्रधान राजस-प्रकृति पुरुष हैं, उनका इस जगत् में पुनर्जन्म लेना सम्भव है। जो परमात्मा से अधिकार प्राप्त करके प्रधानरूप से यहाँ आते हैं, ऐसे महान् गुणशाली पुरुष संसार में दुर्लभ हैं।

सत्ताइसवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अट्ठाईसवां सर्ग

जगत् की अनित्यता एवं परमात्मा की सर्वव्यापकता

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन! जो पूर्वजन्म की राजस–सात्त्विक की कर्मोपासना से भूतल पर उत्पन्न हुए हैं, वे महान् गुणशाली पुरुष आकाश में प्रकाशित चन्द्रमा के समान सदा मनोहर कान्ति से युक्त एवं आनन्द मग्न रहते हैं। जैसे आकाश का भाग मेघ आदि से मलिन नहीं होता, उसी प्रकार वे सांसारिक दुःखों से दुखी नहीं होते। जैसे स्थावर वृक्ष आदि प्रारब्ध भोग के अतिरिक्त दूसरी कोई चेष्टा नहीं करते, उसी प्रकार वे भी ज्ञान और ज्ञान के साधनों के अतिरिक्त और कोई चेष्टा नहीं करते। जैसे वृक्ष अपने पुष्प और फल आदि से सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार वे भी अपने सदाचारों से शोभायमान होते हैं। जैसे चन्द्रमा क्षीण होने पर भी कभी शीतलता का त्याग नहीं करता, उसी प्रकार वे आपत्तिकाल भी अपने सौम्य स्वभाव को नहीं छोड़ते। मैत्री आदि गुणों से कमनीयता को प्राप्त हुई अपनी प्रकृति से ही वे नूतन पुष्प गुच्छों से विभूषित लता से शोभा पाते हैं। वे पुरुष सब पर समान भाव रखते, समतारूप रस का अनुभव करते, सदा सौम्यभाव का आश्रय लेते, साधुओं से भी बढ़कर साधु होते और अपनी मर्यादा में स्थित रहते हैं। अतः महाबाहो ! आपत्तियों की पहुँच से परे जो उनका पद (स्थान) है, उसकी ओर सदा चलना चाहिये। मनुष्य को इस जगत् में सत्त्वगुण प्रधान राजस पुरुषों की भाँति ऐसा बर्ताव तथासत्–शास्त्रों का विचार करना चाहिये, जिससे परमात्मा की प्राप्ति हो। इस प्रकार भावना करने वाले पुरुष को सब वस्तुओं की अनित्यता का भी विचार करना चाहिये। विशुद्ध बुद्धिवाला पुरुष अज्ञान को बढ़ाने वाले मिथ्याभूत अनात्म दर्शन का त्याग करके सांसारिक पदार्थों के विषय में यह भावना करे कि ये सब–के–सब आपत्ति ही है; उनमें सम्पत्ति भावना कभी न करे। उस परम पुरुषार्थरूप अनन्त नित्य–विज्ञानानन्दघन ब्रह्म का भली–भाँति चिन्तन करना चाहिए और अनर्थकारी जन–समुदाय के साथ कभी नहीं रहना चाहिये। 'संसार की सभी वस्तुओं के साथ सम्बन्ध–विच्छेद अवश्यम्भावी है' ऐसा विचार करके सदा श्रेष्ठ पुरुषों का ही अनुसरण अथवा (अनुकरण) करना चाहिये। जैसे सूत में मनके पिरोये होते हैं, उसी प्रकार उस नित्य विस्तृत सर्वव्यापी सर्वभावित शिवस्वरूप परमपद (परमात्मा) में यह समस्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जगत् पिरोया हुआ है (अर्थात् इस सम्पूर्ण जगत् में परमात्मा व्याप्त है)। जो चेतन परमात्मा विशाल भूमण्डल को विभूषित करने वाले आकाशवर्ती सूर्यदेव में विराजमान हैं, वे ही धरती में बिल के भीतर रहने वाले कीड़े के पेट में भी हैं। निष्पाप रघुनन्दन! जैसे यहाँ घटाकाशी का महाकाश से वास्तविक भेद नहीं है, उसी प्रकार शरीरवर्ती जीवों का परमात्मा से परमार्थतः भेद नहीं है। श्रीराम! जो उत्पन्न होकर विलीन हो जाती है, वह वस्तु वास्तव में है ही नहीं। अतः यह जड़ संसार प्रतीतिमात्र है। यह सदा स्थिर नहीं रहता, इसलिये इसे सत् नहीं कहा जा सकता। किन्तु प्रतीत होता है, इसलिये इसे असत् भी नहीं कहा जा सकता। अतएव यह अनिर्वचनीय है।

पहले विवेक और विचार से युक्त धीर साधक शास्त्र के अनुसार परम बुद्धिमान् तत्त्वज्ञानी श्रेष्ठ महापुरुषों से मिलकर उनके साथ सत्शास्त्र विषयक विचार करे। विषय-तृष्णा से रहित तत्त्वज्ञान सम्पन्न साधु महापुरुष के साथ परमात्मविषयक विचार करके परमात्मा का ध्यान करने से परमपद प्राप्त होता है। शास्त्रों के विचार, महापुरुषों के संग, वैराग्य और अभ्यासरूप सत्कार्य से युक्त पुरुष परमात्मा के ज्ञान का पात्र होकर तुम्हारे समान शोभा पाता है। तुम ज्ञानवान् तथा नाना प्रकारके दिव्यगुणों की खान हो। तुम्हारा आचार-व्यवहार उदार है तथा तुम समस्त दोषों से रहित एवं दुःखहीन परमपद में स्थित हो। तुम उत्तम अनुभव से सम्पन्न हो। अतः इस समय संसार में पूर्वोक्त साधक मनुष्य राग-द्वेषहीन व्यवहार द्वारा तुम्हारी चेष्टा का अनुसरण करेंगे। जो लोकोचित आचार से युक्त हो बाहर विचरण करेंगे, वे ज्ञानरूपी नौका से युक्त बुद्धिमान् पुरुष संसार सागर से पार हो जायँगे। जो तुम्हारे समान विशुद्ध बुद्धि से युक्त और समदर्शी है, वह उत्तम दृष्टिवाला सत्पुरुष मेरी बतायी हुई ज्ञानदृष्टियों को प्राप्त करने में समर्थ होता है। जब तक तुम्हारा शरीर है, तब तक राग-द्वेष और इच्छा आदि से रहित हो शास्त्र के अनुसार आचरण करते हुए स्थित रहो। शुद्ध सात्त्विक जन्मवाले जीवन्मुक्त पुरुषों के जो परम सत्य एवं स्वाभाविक शम, दम आदि गुण हैं, उनका सेवन करता हुआ साधारण पुरुष भी मरकर दूसरे जन्म में जीवन्मुक्त पद को प्राप्त हो जाता है; क्योंकि जीव इस जगत् में जिन जाति-गुणों का सदा सेवन करता है, दूसरे जन्म में उत्पन्न होकर वह उसके अनुसार उसी जाति को प्राप्त होता है। (तात्पर्य यह कि उत्कृष्ट जाति के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

गुणों का सेवन करने पर वह उत्तम जाति में जन्म पाता है और अधम जाति के गुणों का सेवन करने पर अधम जाति में ही जन्म ग्रहण करता है।) कर्मों के अधीन हुए जीव पूर्वजन्म के सब भावों को कर्मों के अनुसार ही पाते हैं। पर्वतों को भी लोग पराक्रम से जीत लेते हैं, इसलिये मनुष्य को आत्मकल्याण के लिये तत्परतापूर्वक परम पुरुषार्थ करना चाहिये। जीव सात्त्विक, राजस और तामस–किसी भी योनि में क्यों न उत्पन्न हुआ हो, उसे कीचड़ में फँसी हुई भोली–भाली गाय की तरह अपनी बुद्धि का धैर्य के साथ परम उद्योगपूर्वक संसाररूपी पंख से उद्धार करना चाहिये। पुरुषोचित प्रयत्न से ही उत्तमोत्तम गुणों द्वारा सुशोभित होनेवाले मुमुक्ष पुरुष दूसरे जन्म में जीवन्मुक्त–पद को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी पर, स्वर्ग में, देवताओं में अथवा अन्यत्र भी कहीं कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे सदगुण सम्पन्न पुरुष अपने पुरुषार्थ या प्रयत्न से प्राप्त न कर सके।

अट्ठाइसवां सर्ग समाप्त

स्थिति–प्रकरण सम्पूर्ण

लोभमोहरुषां यस्य तनुतानुदिनं भवेत्।
यथाशास्त्रं विहरति स्वकर्मसु स सज्जनः।।

(स्थिति प्रकरण से)

'जिस के संग से लोभ, मोह और क्रोध प्रतिदिन क्षीण होते हों और जो शास्त्र के अनुसार अपने कर्मों का आचरण करने में लगा रहता हो, वह सत् पुरुष है।'

• • •

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सचित्र
योगवासिष्ठ महारामायण

प्रथम खण्ड

उपशम प्रकरण

अपुनर्जन्मने यः स्याद् बोधः स ज्ञानशब्दभाक्।
वसनाशनदा शेषा व्यवस्था शिल्पजीविका ।।

(निर्वाण प्रकरण से)

'जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है, पुनर्जन्म की नहीं, उसी का नाम ज्ञान है। उसके अतिरिक्त दूसरा जो शब्दज्ञान का चातुर्य है, वह तो रोटी-कपड़ा प्राप्त करने की कलामात्र है। उसे केवल भोजन-वस्त्र जुटाने वाली व्यवस्था समझना चाहिये।'

•••

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

यह समस्त दृश्य जगत् तथा इसमें होने वाली सभी क्रियाएँ चिदानन्दघन ब्रह्म का ही संकल्प है। वह संकल्प भी ब्रह्म ही है। ब्रह्म जगत् का कारण नहीं है, क्योंकि जगत्रूपी कार्य सर्वथा असत् ही है। नित्य सत्य ब्रह्म से अनित्य असत् जगत् की उत्पत्ति, नित्य निरतिशय दिव्य परमानन्दघन परमात्मा से दुःखपूर्ण जगत् की उत्पत्ति, प्रकाशमय परब्रह्म से तमोमय जगत् की उत्पत्ति सम्भव ही नहीं। अतएव ब्रह्म तथा जगत् में कारण-कार्यभाव नहीं है, ब्रह्म ही जगत्रूप में भासित हो रहा है। उस चिदाकाश में ही चिदाकाश से यह सब खेल हो रहे हैं। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

श्री योगवासिष्ठ महारामायण

उपशम-प्रकरण

प्रथम सर्ग

श्रीवसिष्ठजी द्वारा प्रवचन समाप्त

श्रीवाल्मीकिजी ने कहा-वत्स भरद्वाज! राजा दशरथ की वह सुन्दर सभा शरद्-ऋतु में तारों से भरे हुए आकाश की भाँति निश्चल थी। महर्षि वसिष्ठ हृदय को आल्हाद प्रदान करने वाला परमपवित्र प्रवचन कह रहे थे। श्रीरामचन्द्रजी प्रातः काल के प्रफुल्ल पंकज की भाँति प्रसन्नता से खिल उठे थे। महाराज दशरथ वसिष्ठजी के वचनों को उसी तरह रस के साथ सुन रहे थे, जैसे मयूर वृष्टि के कारण हुई आर्द्रता से युक्त हो मेघ-गर्जन की मधुर ध्वनि को सुनते रहते हैं। इतने में ही दसों दिशाओं को पूर्ण करती हुई मध्यान्हकालीन शंखध्वनि प्रकट हुई, जो प्रलयकाल के मेघों की गर्जना के समान गम्भीर और महासागर की जलराशि के उद्घोष की भाँति दूर तक सुनाई देने वाली थी। वह शंखनाद सुनते ही महर्षि ने अपना प्रवचन बंद कर दिया। दो घड़ी तक विश्राम कर लेने के पश्चात् जब वह घनीभूत कोलाहल शान्त हो गया, तब वसिष्ठ मुनि पुनः श्रीरामचन्द्रजी से बोले-'रघुनन्दन ! आज का दैनिक प्रवचन यहीं तक कहा जा सका है। शत्रुसूदन ! इसके बाद जोकुछ कहना है, उसे मैं कल प्रातःकाल कहूँगा। मध्यान्हकाल में नियमतः करने योग्य जो कर्तव्य द्विजातियों के लिये प्राप्त है, उसे हमलोगों को भी करना चाहिये, जिससे वह कर्म-परम्परा नष्ट न हो जाय। अतः सौभाग्यशाली राजकुमार ! तुम भी उठो। आचारचतुर श्रीराम ! स्नान, दान और पूजन आदि समस्त आचारों तथा सत्कर्मों का अनुष्ठान करो।' यों कहकर महर्षि वसिष्ठ उठ गये। साथ ही राजा दशरथ भी सभासदों सहित उठकर खड़े हो गये। राजा लोग महाराज दशरथ को प्रणाम करके राजभवन से बाहर निकले। फिर सुमन्त्र और दूसरे-दूसरे मंत्री महर्षि वसिष्ठ तथा राजा दशरथ को प्रणाम

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करके स्नान आदि के लिये चले गये। तदनन्तर वामदेव और विश्वामित्र आदि ऋषि-महर्षि वसिष्ठ को आगे करके उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़े रहे। शत्रुओं का दमन करने वाले राजा दशरथ मुनि समुदाय का सत्कार करके उनसे विदा ले अपने कार्य का सम्पादन करने के लिये चले गये। वनवासी मुनि वन में और पुरवासी मनुष्य नगर में दूसरे दिन प्रातःकाल लौटने के लिये चले गये। राजा दशरथ और वसिष्ठ मुनि के प्रेमपूर्वक अनुरोध करने पर

विश्वामित्र ने वसिष्ठजी के घर में रात्रि बितायी। श्रेष्ठ ब्राह्मणों, राजाओं मुनियों तथा श्रीराम आदि समस्त दशरथ-राजकुमारों से घिरे हुए सर्वलोकवन्दित श्रीमान् वसिष्ठजी उसी तरह अपने आश्रम को गये। तत्पश्चात् अपने चरणों पर गिरे हुए श्रीराम आदि समस्त दशरथ राजकुमारों को वसिष्ठजी ने अपने आश्रम से विदा किया और अपने घर में प्रवेश करके उन उदारचेता महर्षि ने द्विजजनोचित दैनिक कृत्य-पंच महायज्ञों का अनुष्ठान सम्पन्न किया।

प्रथम सर्ग समाप्त

दूसरा सर्ग

श्रीराम आदि राजकुमारों की तात्कालिक दिनचर्या

श्रीवाल्मीकिजी ने कहा-भरद्वाज! चन्द्रमा के समान मनोरम कान्ति वाले उन राजकुमारों ने घर में जाकर अपने-अपने भवन में समस्त आह्निक कृत्य पूर्णरूप से सम्पन्न किया। महर्षि वसिष्ठ, महाराज दशरथ, अन्यान्य राजा, मुनि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

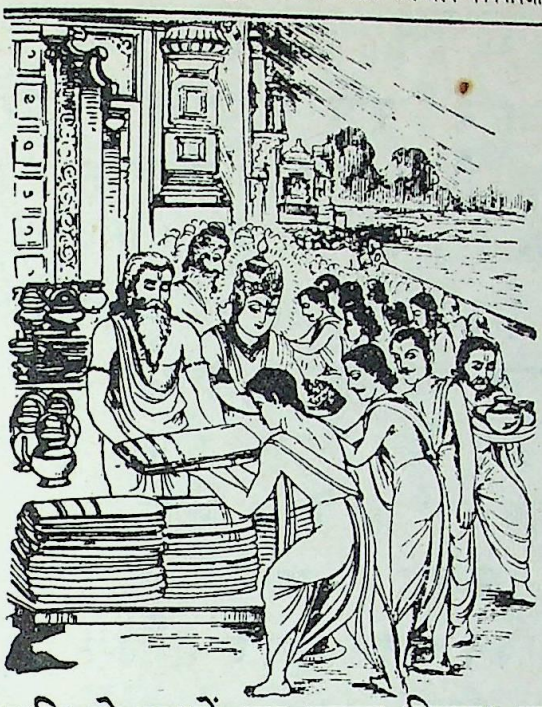

तथा ब्राह्मणों ने अपने-अपने घरों तथा गलियों में अपने-अपने कार्यों का इस प्रकार सम्पादन किया। उन सबने जलाशयों में स्नान किया और ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, शय्या, आसन वस्त्र और बर्तन आदि का दान दिया। सुवर्ण और मणियों से जटित होने के कारण विचित्र शोभा धारण करने वाले अपने घरों और देवालयों में उन्होंने भगवान् विष्णु, शंकर, अग्नि और सूर्य आदि देवताओं का पूजन किया। तत्पश्चात् पुत्र, पौत्र, सुहृद्, सखा भृत्य और बन्धु-बान्धवों के साथ अपनी रुचि के अनुरूप भोज्य पदार्थों का आस्वादन किया। फिर सायंकाल तक का समय उन्होंने पुराण एवं धर्मशास्त्र के श्रवण आदि के द्वारा व्यतीत किया। सूर्यास्त होने पर उन्होंने विधिपूर्वक संध्या-वन्दन, अघमर्षण-मंत्रों का जप, पवित्र स्तोत्रों का पाठ और

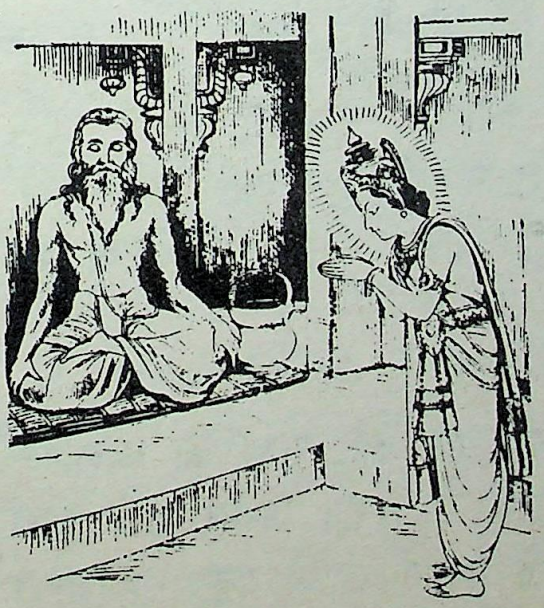

मनोहरगाथाओं का गान किया। फिर धीरे-धीरे वे रघुवंशी राजकुमार दीर्घ चन्द्रबिम्ब के समान रमणीय शय्याओं पर सोये। तदनन्तर प्रातःकाल के तूर्यघोष के साथ चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाले श्रीरामचन्द्रजी शय्या से उठे, तत्पश्चात् प्रातःकाल की स्नानविधि सम्पन्न करके संध्या वन्दन आदि से निवृत्त हो थोड़े से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

परिजनों को आगे भेजकर पीछे स्वयं श्रीराम भी भाईयों के साथ वसिष्ठजी के निवास स्थान पर गये। मुनिवर वसिष्ठ एकान्त में समाधि लगाये बैठे थे और परमात्मा का चिन्तन करते थे। श्रीराम ने दूर से ही कंधा झुकाकर मुनि को प्रणाम किया। उन्हें प्रणाम करके वे विनययुक्त राजकुमार तब तक उस आँगन में खड़े रहे, जब तक अन्धकार का नाश होकर दिगंगनाओं का मुखमण्डल स्पष्ट दिखायी देने लगा। तदनन्तर अनेक राजा, राजकुमार, ऋषि और ब्राह्मण मौनभाव से वसिष्ठजी के निवास स्थान पर आये। ऐसा लगता था मानो देवता लोग ब्रह्मलोक में एकत्र हो रहे हों। वसिष्ठजी का वह निवास स्थान समागत जन-समुदाय से भर गया और राजाओं के संचरण से राजभवन के समान सुशोभित होने लगा। फिर एक ही क्षण में भगवान् वसिष्ठ समाधि से विरत हुए और अपने चरणों में प्रणत हुए लोगों को उचित आचार एवं उपचार से अनुगृहीत करने लगे। तत्पश्चात् मुनियों और विश्वामित्रजी के साथ श्रीमान् मुनिवर वसिष्ठ उसी प्रकार सहसा रथ पर आरूढ़ हुए, जैसे कमलयोनि ब्रह्मा कमल के आसन पर विराजमान हुए हों। राजा के महल में पहुँचकर उन्होंने नतमस्तक हुई राजा दशरथजी की उस रमणीय सभा में प्रवेश किया। उस समय महावीर राजा दशरथ तुरंत अपने सिंहासन से उठकर मुनि के स्वागतार्थ तीन पग आगे बढ़ आये थे। तदनन्तर वहाँ दशरथ आदि समस्त नरेशों, वसिष्ठ आदि ऋषियों, ब्राह्मणों, सुमन्त्र आदि मन्त्रियों, सौम्य आदि विद्वानों, श्रीराम आदि राजकुमारों, शुभ आदि मन्त्रि पुत्रों, मंत्री आदि प्राकृतियों, सुहोत्र आदि नागरिकों, मालव आदि भृत्यों तथा पौर आदि मालियों ने सभा में प्रवेश किया।

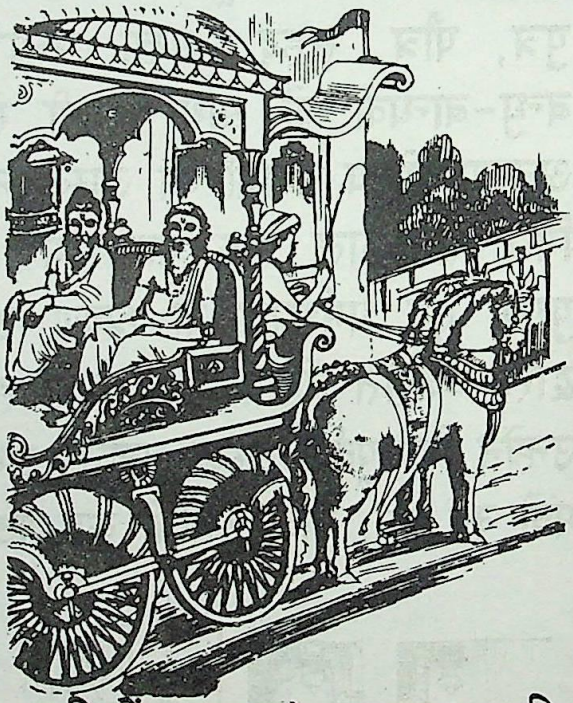

तत्पश्चात जब वे सब-के-सब अपने-अपने आसन पर बैठ गये, उन सबकी दृष्टि वसिष्ठजी के मुख की ओर लग गयी और सभा का कोलाहल शान्त हो गया, तब राजा दशरथ ने मेघ-गर्जन के समान गम्भीर वाणी द्वारा मुनि के उपदेश में विश्वास प्रकट करने वाली पदावलियों से युक्त यह सुन्दर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वचन मुनीश्वर वसिष्ठजी से कहा-'भगवन ! कल आपने जो आनन्ददायिनी विशद वचनावली सुनाई थी, उससे हम लोगों को ऐसा आश्वासन मिला, मानो हमारे ऊपर अमृतराशि की वर्षा हुई हो। जैसे अमृतराशि से पूर्ण चन्द्रमा की निर्मल किरणें अन्धकार को हटाकर अन्तःकरण को शीतल कर देती हैं, उसी प्रकार आप-जैसे महात्माओं के अमृततुल्य मधुर और निर्मल ये उपदेश-वाक्य अज्ञानान्धकार को दूर करके श्रोताओं के अन्तःकरण को परम शान्ति प्रदान करते हैं। जैसे शीत रश्मि शशि की किरणें अन्धकार-राशि को दूर कर देती हैं, उसी तरह सज्जनों के सदुपदेश मन के दुर्विचारों तथा शरीर की सारी दुश्चेष्टाओं को मिटा देते हैं। मुने ! जैसे शरदृतु में वर्षा के काले मेघ क्षीण होने लगते हैं, उसी प्रकार हमारे तृष्णा और लोभ आदि दोष, जो संसार में बाँधने के लिये श्रंखलारूप हैं, आपके उपदेश-वाक्य से क्षीण हो चले हैं। आपके उपदेशरूपी शरदृतु से हमारे हृदयाकाश में स्थित संसार-वासना नामक कुहरा अब क्षीण होने लगा है।'

श्रीवसिष्ठ जी ने कहा-रघुनन्दन ! महामते ! मैंने पूर्वापर-विचार से युक्त जो वाक्यार्थ तुम्हारे समक्ष उपस्थित किया था, क्या तुम्हें उसका स्मरण है ? साधुवाद के एकमात्र भाजन साधुपुरुष ! क्या तुम्हें स्मरण है कि यह जगत् सर्वशक्तिसम्पन्न परब्रह्म परमात्मा से किस प्रकार प्रकट हुआ है ? श्रीराम ! बारंबार विचारपूर्वक हृदय में दृढ़तापूर्वक स्थापित किया हुआ तत्त्वज्ञान मनुष्य को मोक्षरूपी सिद्धि देता है; किंतु जिसने उपदेश से प्राप्त हुए तत्त्वचिन्तन को अवहेलनावश नष्ट कर दिया-भुला दिया, उस मनुष्य को उससे मोक्षरूपी फल नहीं प्राप्त होता। रघुनन्दन ! जैसे विशाल वक्षःस्थल वाला धनवान् पुरुष अपने कण्ठ में उत्तम जाति के मोतियों की माला धारण करने का अधिकारी होता है, उसी प्रकार जिसका हृदय विवेक से सम्पन्न है, वह तुम्हारे-जैसा पुरुष ही सुविचारित एवं विशुद्ध उपदेश-वचनों का योग्य पात्र होता है।

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-भगवन् ! सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता मुनीश्वर ! मैं परम उदार होकर जो आपके उपदेश को समझ सका हूँ, यह आपके ही प्रभाव का विस्तार है। आप मेरे लिये जो-जो आदेश देते हैं, वह सब मैं उसी रूप में ग्रहण करता हूँ, उसके विपरीत कुछ नहीं करता। उदार हृदय महर्षे ! आपने पहले जो मनोहर, पुण्यमय और पवित्र उपदेश दिया है, वह सब मैंने अपने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अन्तःकरण में क्रमशः धारण कर लिया है–ठीक उसी तरह, जैसे कोई सुन्दर और पवित्र रत्न समूह को माला के रूप में गूँथ कर अपने कण्ठ में धारण कर ले। आपका अनुशासन हितकारक, मनोरम, पुण्यदायक और परमानन्द–प्राप्ति का साधन है। भला, कौन ऐसे सिद्ध पुरुष हैं, जो इसे शिरोधार्य नहीं करेंगे। आपका यह पवित्र उपदेश पहले श्रवणकाल में ही परम मधुर लगता है, फिर मध्यकाल में–मनन और निदिध्यासन के समय शम आदि के सौभाग्य की वृद्धि करता है तथा अन्त में परम उत्तम मोक्षरूपी फल की प्राप्ति करने वाला होता है। आपका उपदेश कल्पवृक्ष के पुष्प की भाँति सदा विकास युक्त, उज्ज्वल, अम्लान, शुभ और अशुभ–देव–दानव, सभी को आनन्दमय बना देने वाला और अक्षय शोभा से सम्पन्न है। यह हम सब लोगों को अभीष्ट फल देने वाला हो। भगवन् ! आप सम्पूर्ण शास्त्रों के विचार में विशारद हैं। विस्तृत पुण्यरूपी जलराशि के एकमात्र महान् सरोवर हैं। महान् व्रतधारी और पाप–ताप से रहित हैं। इस समय मेरे प्रति आप पुनः अपनी उपदेश–वाणी के प्रवाह का प्रसार कीजिये–सदुपदेशरूपी अमृत का निर्झर बहाइये।

दूसरा सर्ग समाप्त

तीसरा सर्ग

संसाररूपा माया का मिथ्यात्व

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–परम सुन्दर आकृति वाले रघुनन्दन ! अब तुम सावधान होकर इस उपशम–प्रकरण–को सुनो, जो उत्तम सिद्धान्तों के कारण सुन्दर और मोक्षप्रद होने के कारण हितकारक है। रघुनन्दन ! पहले शास्त्र के अभ्यास से, उत्तम वैराग्य से तथा सत्पुरुषों के संग से मन को पवित्र करना चाहिये। सौजन्य से युक्त चित्त जब वैराग्य को प्राप्त हो जाय, तब शास्त्रों के ज्ञान–विज्ञान से गौरवशाली गुरुजनों का अनुसरण करना चाहिये। फिर गुरुदेव के बताये हुए मार्ग से पहले सगुण परमेश्वर का ध्यान–पूजन आदि करे। यों करने से साधक उस परम पावन परमात्मपद को प्राप्त होता है। अपने अन्तःकरण में निर्मल विचार के द्वारा स्वयं ही आत्मा का साक्षात्कार करे। मनुष्य तब तक संसाररूपी महासागर में तिनके के समान बहता रहता है, जब तक वह बुद्धि रूपी नौका द्वारा विचाररूपी तटपर पहुँचकर स्थिर नहीं हो जाता। जिसने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

विवेक-विचार के द्वारा जानने योग्य वस्तु को जान लिया है, उस पुरुष की बुद्धि उसकी सारी मानसिक चिन्ताओं को उसी तरह शान्त कर देती है, जैसे सुस्थिर जल बालू के कणों को नीचे दबा देता है। जैसे सुवर्ण का ज्ञान रखने वाला सुनार राख में पड़े हुए सोने को 'यह सोना है, यह राख है' इस तरह साफ-साफ समझ लेता है, अतः उसे सुवर्ण की अप्राप्ति के कारण होने वाला मोह नहीं सताता, उसी तरह यह जीव चिरकाल तक विचार द्वारा अपने स्वरूप का परिज्ञान कर लेने पर स्वतः अपने अविनाशीस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इस दशा में उसके लिये यहाँ मोह का अवसर ही कहाँ रह जाता है। जिस पुरुष ने तत्व का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, उसका मन यदि मोहग्रस्त होता है तो हो। किंतु जिस सारतत्व का यथार्थ ज्ञान हो चुका है, उसमें तो मूढ़ता की सम्भावना ही नहीं है-यह बात निश्चितरूप से कही जा सकती है। जगत् के लोगो ! जिसका यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ, वह आत्मा ही तुम्हारे दुःखों की सिद्धि का कारण है। यदि उसका ठीक-ठीक ज्ञान हो जाय तो वह तुम्हें अक्षय सुख एवं शान्ति दे सकता है। मनुष्यो ! जिसने आत्मा पर आवरण डाल रक्खा है, ऐसे इस शरीर से मिले-जुले हुए-से अपने आत्मा का विवेक द्वारा साक्षात्कार करके तुम लोग शीघ्र स्वस्थ हो जाओ। मानवो ! जैसे कीचड़ में गिरे होने पर भी सोने का उस कीचड़ के साथ तनिक भी सम्बन्ध नहीं रहता, उसी प्रकार इस निर्मल आत्मा का देह के साथ थोड़ा-सा भी सम्बन्ध नहीं है। प्रबुद्ध हुआ मन जब अपनी पारमार्थिक स्थिति को मिथ्याभूत प्रपंच से पृथक् करके देखता है, तब हृदय का अज्ञानान्धकार उसी प्रकार भाग जाता है, जैसे सूर्योदय होने पर रात्रि का अँधेरा दूर हो जाता है।

जैसे धूल से आकाश और जल से कमल लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार शरीरों से सम्बन्ध होने पर भी आत्मा उनसे लिप्त नहीं होता। जैसे नेत्रदोष के कारण आकाश में बिन्दुओं के समान आकृति वाले तिरमिरे दिखायी देते हैं और आकाश के निर्मल होने पर भी उसमें मलिनता की प्रतीति होती है, उसी प्रकार आत्मा में सुख-दुःख का अनुभव मलिन बुद्धि-वृत्तिरूप अज्ञान के कारण ही होता है। सुख और दुःख न तो जड़ देह के धर्म हैं और न सर्वातीत विशुद्ध आत्मा के। ये अज्ञान के कारण ही अज्ञानी के अनुभव में आते हैं और यथार्थ ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश हो जाने पर किसी के भी अनुभव में नहीं आते।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रघुनन्दन ! वास्तव में न तो किसी को कुछ सुख है और न किसी को कुछ दुःख ही है। सबको शान्त, अनन्त आत्मस्वरूप ही देखो। ये जो विस्तृत सृष्टियों के दर्शन होते हैं, इन्हें जल में तरंगों और आकाश में मोरपंखों के समान आत्मा में ही देखना चाहिये। अर्थात् जैसे जल ही तरंगरूप में दीखता है, उसी प्रकार ब्रह्म ही जगत् के रूप में दृष्टिगोचर होता है तथा जैसे नेत्रों के दोष से मनुष्य को आकाश में मयूर-पुच्छ-सा दिखाई देता है, पर वास्तव में वह वहाँ होता नहीं, उसी प्रकार यह संसार वस्तुतः न होनेपर भी अज्ञान के कारण परमात्मा में दीखता है। सच्ची बात तो यह है कि एकमात्र ब्रह्म के सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं।

शुद्ध बुद्धि वाले रघुनन्दन ! आत्मा और जगत् न तो एक हैं और न अनेक ही हैं; क्योंकि जगत् है अर्थात् ब्रह्म के सिवा दूसरी कोई वस्तु न होने से द्वैत भी नहीं है तथा ब्रह्म से संसार पृथक् दीखता है, इसलिये एक भी नहीं कहा जा सकता। वास्तव में अज्ञान के कारण अज्ञानी को बिना हुए ही यह संसार प्रतीत हो रहा है। निष्पाप श्रीराम ! यह सब निश्चय ही ब्रह्म है इस प्रकार सब परमात्मा ही है। वही सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। मैं पृथक् हूँ और यह जगत् मुझसे पृथक् है, इस भ्रमपूर्ण कल्पना का परित्याग करो। जैसे अग्नि में हिमकण की कल्पना नहीं हो सकती, उसी प्रकार एक-मात्र अद्वितीय सर्वस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्म तत्त्व में उससे भिन्न दूसरी वस्तु की कल्पना ही नहीं हो सकती। रघुनन्दन ! इस परमात्मा में न शोक है न मोह है, न जन्म है और न कोई जन्म लेने वाला ही है। यहाँ जो है, वही है-ऐसा निश्चय करके तुम दुःख-सुख आदि द्वन्द्वों से रहित, नित्य सत्त्व में स्थित, योग क्षेमरहित, अद्वितीय, शोकशून्य और संतापहीन हो जाओ। परम सुन्दर श्रीराम ! इस समस्त विस्तृत संसार की रचना असत्यरूप है। इसकी असत्यता को जानने वाला तत्त्व ज्ञानी पुरुष इस मिथ्याभूत प्रपंच के पीछे नहीं दौड़ता। तुम तत्त्वज्ञ हो। तुम्हारी कल्पनाएँ शान्त हैं। तुम रोग-दोष से रहित हो और नित्य प्रकाश स्वरूप हो; अतः शोक-शून्य हो जाओ। अपने समस्त गुणों से राजाओं तथा प्रजाजनों को आनन्दित करते हुए तुम इस भूतल पर पिता के दिये हुए इस एकच्छत्र राज्य का चिरकाल तक सर्वत्र समतापूर्ण दृष्टि के द्वारा भली भाँति पालन करते रहो। यहाँ कर्मों का न तो त्याग उचित है और न उनमें राग होना

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ही उचित है।

तीसरा सर्ग समाप्त

चौथा सर्ग

कर्तव्य-बुद्धि से अनासक्त एवं सम रहकर कर्म करने की प्रेरणा

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम! मैं श्रुति, स्मृति और सदाचार से युक्त समस्त व्यवहार को वासनाशून्य होकर करता हूँ इस प्रकार जो पुरुष कर्तव्य-बुद्धि से कार्यों में प्रवृत्त होता है, वह मुक्त है। ऐसी मेरी मान्यता है। मानव शरीर का आश्रय लेकर भी कोई मूढ़ पुरुष सकामभाव से कर्मों में रत हैं, इसलिये वे स्वर्ग से नरक में और नरक से पुनः स्वर्ग में आते जाते रहते हैं। कुछ लोग न करने योग्य कर्मों में आसक्त हैं और करने योग्य कर्तव्य से विरत हैं; ऐसे पुरुष मरकर नरक से नरक को, दुःखसे दुःख को और भय से भय को प्राप्त होते रहते हैं। उनमें से कितने ही जीव अपने वासनारूप तन्तुओं से बँधे रहकर उपर्युक्त कर्मों के फल भोगते हुए तिर्यग् योनि को आते-जाते रहते हैं। कोई-कोई ही मन के साक्षी आत्मा का विचार के द्वारा अनुभव करके तृष्णा रूपी बन्धक को तोड़कर परम कैवल्यरूप पद को प्राप्त होते हैं। ऐसे आत्मज्ञानी पुरुष धन्य हैं। ऐसे पुरुषों का श्रेष्ठता, मनोरमता,मैत्री, सौम्यभाव, करुणा और ज्ञान आदि सद्गुण सदा ही आश्रय लेते हैं।

श्रीराम! विदेह देश में जनक नाम से प्रसिद्ध एक पराक्रमी राजा राज्य करते थे, जिनकी सारी आपत्तियाँ नष्ट हो चुकी थीं और सम्पत्तियाँ दिनों-दिन बढ़ रही थीं। उनका हृदय बड़ा उदार था। वे याचक-समूहों के लिये कल्पवृक्ष थे। बन्धु-बान्धवरूपी फूलों के विकास के लिये ऋतुराज बसन्त के तुल्य थे, ब्राह्मणरूपी कुमुदों के लिये शीतरश्मि चन्द्रमा थे और भगवान् विष्णु के समान प्रजावर्ग के पालन में तत्पर रहने वाले थे। एक दिन की बात है, वे बसन्त ऋतु में खिले हुए पुष्पों से सुशोभित रमणीय उपवन में गये। उस मनोरम उद्यान में अनुचरों को दूर रखकर राजा पर्वत शिखर पर उगे हुए कुंजों में विचरण करने लगे। वहाँ किसी तमाल-वन के निकुंज में कुछ सिद्ध पुरुष बैठे हुए थे, जो दूसरों को दिखायी नहीं देते थे। पर्वतों और उनकी कन्दराओं में विचरने वाले वे सिद्ध सदा एकान्त स्थान में निवास करते थे। उनके मुख से कुछ ऐसे उपदेशात्मक गीत निकले, जो श्रोता के हृदय में परमात्मभाव को जगाने वाले

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

थे। राजा ने उन गीतों को सुना, मानो वे उन्हीं पर अनुग्रह करने के लिये गाये गये थे। उन गीतों के भाव क्रमशः इस प्रकार हैं–

कुछ सिद्ध बोले–द्रष्टा का नेत्र आदि इन्द्रियों द्वारा जो दृश्य–विषय के साथ संयोग होता है, उससे जो विषयसुख की प्रतीति होती है, उसके द्वारा बुद्धि वृत्ति में स्वयं सहज आनन्द रूप से जो निश्चय प्रकट होता है, वही जिसका स्वभाव है तथा जो आत्मतत्त्व के परिशोध से निरतिशय भूमारूप में अविर्भूत हुआ है, उस विशुद्ध आत्मा या परमात्मा की हम निश्चय समाधि के द्वारा उपासना करते हैं।

दूसरे सिद्ध बोले–वासना सहित द्रष्टा, दर्शन और दृश्य की त्रिपुटी को त्याग देने पर जो विशुद्ध दर्शन या ज्ञान के रूप में प्रकाशित होता है, उस विशुद्ध आत्मा की हम उपासना करते हैं।

अन्य सिद्धों ने कहा–अस्ति और नास्ति–इन दोनों पक्षों के बीच में उनके साक्षीरूप से जो सदा विद्यमान है, प्रकाशनीय वस्तुओं को प्रकाशित करने वाले उन परमात्मा की हम उपसना करते हैं।

दूसरे सिद्ध बोले–जिसमें सब है, जिसका सब है, जिससे सब है, जिसके लिये यह सब है, जिसके द्वारा सब है तथा जो स्वयं ही सब कुछ है, उस परमसत्य आत्मा की हम उपासना करते हैं।

अन्य सिद्धों ने कहा–जो आकार से लेकर हकार तक समस्त वर्णों के रूप में स्थित हो निरन्तर उच्चरित हो रहा है, अपने आत्मरूप उस परमात्मा की हम उपासना करते हैं।

दूसरे सिद्ध बोले–जो हृदयगुफा में विराजमान दीप्तिमान् परमेश्वर को छोड़कर दूसरे का आश्रय लेते हैं, वे हाथ में आये हुए कौस्तुभ मणि को त्याग कर दूसरे तुच्छ रत्नों की इच्छा करते हैं।

अन्य सिद्धों ने कहा–सम्पूर्ण आशाओं का त्याग करने पर हृदय में स्थित ज्ञान का फलरूप यह ब्रह्म प्राप्त होता है, जिससे आशारूप विष–वल्लरी की मूल–परम्परा ही कट जाती है।

दूसरे सिद्ध बोले–जो दुर्बुद्धि पुरुष भोग्य पदार्थों की अत्यन्त नीरसता को जानकर भी उनमें बारंबार अपने मन की भावना को बाँधता है, वह मनुष्य नहीं, गदहा है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अन्य सिद्धों ने कहा-जैसे इन्द्र ने वज्र के द्वारा पर्वतों को मारा था, उसी प्रकार बारंबार उठने और गिरने वाले इन इन्द्रियरूपी सर्पों पर विवेकरूपी डंडे से प्रहार करना चाहिये।

दूसरे सिद्ध बोले-उपशम या शान्ति के पवित्र सुख को प्राप्त करना चाहिये; जो उत्तम शम (मनोनिग्रह) से सम्पन्न है, उस पुरुष का विशुद्ध चित्त ही शान्ति को प्राप्त होता है। जिसका चित्त शान्त हो गया है, उसी को अपने परमानन्दमय स्वरूप में दीर्घकाल के लिये उत्तम स्थिति प्राप्त होती है।

चौथा सर्ग समाप्त

पांचवां सर्ग

राजा जनक द्वारा अपने आन्तरिक उद्गार को प्रकट करना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! उन सिद्धगणों के मुख से निकले हुए उन उपदेशात्मक गीतों (वचनों) को सुनकर राजा शीघ्र ही निर्वेद को प्राप्त हो गये। वे अपने साथ के सब लोगों को घर की ओर खींचते हुए उस उपवन से चले और समस्त परिवार को अपने-अपने स्थान पर छोड़कर अकेले ही अपने ऊँचे महल पर चढ़ गये। वहाँ लोक की वर्तमान अवस्थाओं का अवलोकन करते हुए वे व्याकुल हो इस प्रकार अपना उद्गार प्रकट करने लगे-

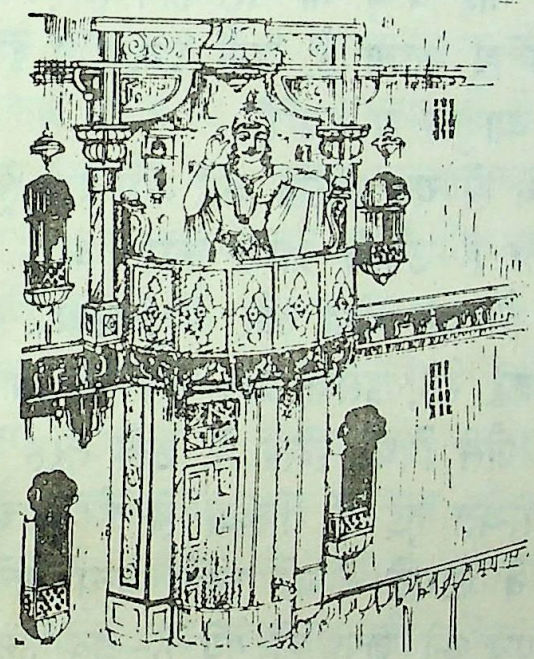

'हाय! बड़े दुःख की बात है कि जन्म, जरा, रोग और मरण आदि के कारण समस्त लोकों की जो अत्यन्त कष्टप्रद चंचल दशाएँ हैं, उन्हीं में मैं बलपूर्वक लोट-पोट रहा हूँ-आवागमन के चक्कर में पड़ा हुआ हूँ। जिस काल का कभी अन्त नहीं होता, उसका एक अत्यन्त अल्पतम अंश मेरा जीवन है। उस क्षणिक जीवन में मैं आसक्त हो रहा हूँ, अपने मन को बाँधे रखता हूँ। केवल जीवन काल तक रहने वाला मेरा यह राज्य कितना है ? कुछ भी तो नहीं है ! परंतु इतने से ही संतुष्ट होकर मैं मूर्ख मनुष्य के समान क्यों निश्चिन्त बैठा हूँ ? मुझे अपनी इस मूढ़ता पर दुःख क्यों नहीं होता ? इस जगत् में ऐसी कोई वस्तु

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है ही नहीं, जो सत्य हो, रमणीय हो, उदार हो और किसी से उत्पन्न न होकर नित्य निर्विकाररूप से स्थित हो। फिर मेरी बुद्धि यहाँ किसमें लगे ? कहाँ शान्ति प्राप्त करे ? जो वस्तु दूरस्थ कही जाती है, वह भी वास्तव में दूर नहीं है; क्योंकि वह मेरे मन में वर्तमान है। ऐसा निश्चय करके मैं बाह्य पदार्थों की भावना का त्याग कर रहा हूँ। प्रतिवर्ष, प्रतिमास, प्रतिदिन और प्रतिक्षण जो दुःख से भरे हुए सांसारिक सुख बारंबार उपलब्ध होते हैं, वे वास्तव में दुःख रूप ही हैं। आज जो बड़े-बड़े लोगों के सिरमौर बने हुए हैं, वे ही कुछ दिनों में नीचे गिर जाते हैं। ऐ मेरे अभागे चित्त ! फिर इस जगत् की महत्ता में तुम्हारा यह कैसा विश्वास है ? यद्यपि मैं बुद्धिमान् हूँ, तो भी जैसे सूर्यदेव के समक्ष उनके प्रकाश को ढक लेने वाला काला मेघ आ जाता है, उसी प्रकार मेरे सामने यह आत्मा के प्रकाश को छिपा देनेवाला मोह सहसा कहाँ से आ गया ? ये महान् भोग मेरे कौन हैं ? ये भाई-बन्धु भी मेरे कौन हैं ? जैसे बालक मिथ्या ही भूत के भय से व्याकुल हो उठता है, उसी प्रकार मैं इनमें ममतारूपी झूठे सम्बन्ध की कल्पना करके व्याकुल हो रहा हूँ।

मैं इन भोगों और सम्बन्धियों में स्वयं ही यह आस्था क्यों बाँध रहा हूँ ? यह आस्था तो जरा और मृत्यु की सहेली है-उनकी प्राप्ति कराने वाली है। साथ ही सदा उद्वेग में डाले रखने वाली है। यह भोगों और बन्धु-बन्धवों की सम्पत्ति चली जाय या भलीभाँति स्थिर होकर रहे, इसके प्रति मेरा क्या आग्रह है ? जल में उठने वाले बुदबुदे की शोभा जैसे मिथ्या होती है, उसी तरह यह भोग आदि सम्पत्ति, जो इस रूप में उपस्थित हुई है, मिथ्या ही है। प्राचीन नरेशों के वे महान् वैभव, वे भोग और वे अच्छे-अच्छे स्नेही बन्धु-बान्धव आज कहाँ हैं ? वे सब इस समय स्मृतिपथ को प्राप्त हो गये हैं-अब उनका केवल स्मरणमात्र यहाँ शेष रह गया है। वे स्वरूपतः विद्यमान नहीं हैं। इस दृष्टान्त को सामने रखते हुए वर्तमान भोग आदि सम्पत्ति पर भी क्या आस्था हो सकती है ? पूर्ववर्ती भूमिपालों के वे धन कहाँ हैं? पूर्वकल्पों में ब्रह्माजी ने जिनकी सृष्टि की थी, वे जगत् कहाँ चले गये ? जब पहले का सब कुछ नष्ट हो गया, तब आज के इन वैभव भोगों पर मेरा यह कैसा विश्वास है ? जैसे जल में अनन्त बुद्बुदे उठते और विलीन होते हैं,उसी तरह लाखों इन्द्र काल के गाल में चले गये तो भी मैं इस जीवन में आस्था बाँधे बैठा हूँ! साधु पुरुष

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मेरी इस मूढ़ता पर हँसेंगे। करोड़ों ब्रह्मा चले गये। कितनी ही सृष्टि परम्पराएँ आयीं और चली गयीं। असंख्य भूपाल धूल के समान उड़ गये। फिर मेरे इस तुच्छ जीवन पर क्या आस्था हो सकती है ? यह, वह और मैं यह तीन प्रकार की कल्पना असत्यरूप ही है अहंकाररूपी पिशाच से ग्रस्त हुए मनुष्य की भाँति मैं क्यों अब तक मूर्ख के समान विचारशून्य होकर बैठा रहा ? मैं इस व्याप्त हुई काल की सूक्ष्म रेखा से प्रतिक्षण नष्ट होनेवाली अपनी आयु को देखता हुआ भी नहीं देखता! यद्यपि दिन-पर-दिन निरन्तर अब भी आते-जाते रहते हैं; फिर भी आज तक एक दिन भी ऐसा नहीं देखा, जिसमें मुझे नित्य एक सत्य परमात्म वस्तु का साक्षात्कार हुआ हो। मैं कष्ट से भी अत्यन्त कष्ट को प्राप्त हुआ, एक दुःख से दूसरे महान् दुःख में फँसता गया; परंतु आज भी इस जगत् के भोगों से विरक्त नहीं हुआ। जिन-जिन सुन्दर वस्तुओं में मैंने दृढ़ता पूर्वक स्नेह बाँधा, वे सब-की-सब नष्ट होती दिखायी दीं। फिर इस संसार में उत्तम वस्तु क्या है ? मनुष्य जगत् के जिन-जिन पदार्थों में आस्था बाँधता है-विश्वास करता है, उन-उन पदार्थों में उस मनुष्य के दुःख का प्रादुर्भाव बारंबार देखा गया है। मूढ़ मनुष्य बाल्यावस्था में एकमात्र अज्ञान से पीड़ित रहता है, युवावस्था में कामदेव के बाणों से घायल रहता है तथा अन्तिम अवस्था में स्त्री आदि कुटुम्ब के पालन पोषण की चिन्ता से जलता रहता है। भला, अपने उद्धार का साधन वह कब करे ? दुर्बुद्धि पुरुष इस उत्पत्ति विनाशशील, रसहीन, विषम दुर्दशाओं से दूषित तथा असार संसार में क्या सार वस्तु देख रहा है ? कोई सामर्थ्यशाली पुरुष राजसूय और अश्वमेध आदि सैकड़ों यज्ञों का अनुष्ठान करके भी अधिक-से-अधिक महाकल्पपर्यन्त उपभोग में आने वाले स्वर्ग को ही पाता है, जो महाकाल की दृष्टि से उसका एक अत्यन्त अल्पतम अंश है। स्वर्ग से अधिक जो अनन्त, नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म है उसकी प्राप्ति उसे नहीं होती है। कौन-सा वह स्वर्ग है और इस पृथ्वी पर या पाताल में कौन-सा ऐसा प्रदेश है, जहाँ दुष्ट भ्रमरियों की भाँति ये आपत्तियाँ जीव को अभिभूत नहीं करतीं। ये मानसी व्यथाएँ अपने ही चित्तरूपी बिल में रहने वाले सर्प हैं और ये व्याधियाँ शरीररूपी स्थल के खुदे हुए क्षुद्र जलाशय हैं। इनका निवारण कैसे किया जा सकता है।

'सत् के सिर पर असत्ता बैठी है। रमणीय पदार्थों के मस्तक पर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अरम्यता विराज रही है और सुखों के माथे पर दुःख चढ़े हुए हैं। भला, इनमें कौन-सी ऐसी एकमात्र सत्य वस्तु है, जिसका मैं आश्रय लूँ ? अज्ञान से मोहित क्षुद्र प्राणी जन्म लेते और मरते हैं। यह पृथ्वी उन्हीं लोगों से ठसाठस भरी है। जो साधुओं से भी बढ़कर साधु हैं, ऐसे महापुरुष इस संसार में दुर्लभ हैं। नीलकमल के समान मनोहर और भ्रमर के समान चंचल नेत्र वाली जो उत्कृष्ट प्रेम से विभूषित विलासिनी वनिताएँ हैं, वे भी क्षणभंगुर होने के कारण उपहास के ही योग्य हैं। संसार में रमणीय से भी रमणीय और सुस्थिर से सुस्थिर पदार्थ हैं, किन्तु यह सारी पदार्थ-सम्पत्ति अन्ततोगत्वा चिन्ता और दुःख का ही कारण होती है। फिर तुम उसकी इच्छा क्यों करते हो ? ये स्त्री, धन और ग्रह आदि विचित्र सम्पत्तियाँ यदि चित्त से आदरणीय हों तो वे भी बहुत प्रयत्नों से प्राप्त करने योग्य, दुःख से रक्षणीय तथा अवश्य विनाशशील होने के कारण महाविपत्तिरूप ही हैं-ऐसा मेरा मत है। किन्तु यदि धन, सम्पत्ति और बन्धुजनों से वियोगरूप आपत्तियाँ भी साधुसंग, तपस्या और ज्ञान आदि की प्राप्ति करा देने के कारण विचित्र एवं कल्याणकारिणी हैं-ऐसा मन में विश्वास हो जाय तो वे भी विवेक-वैराग्य आदि महान् आरम्भों से युक्त सम्पत्तियाँ ही हैं-ऐसा मैं मानता हूँ। समुद्र में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की भाँति क्षणभंगुर, मिथ्यारूप, एकमात्र मन का परिणामस्वरूप जो यह जगत् है, इसमें 'यह मेरा है' यह अपूर्व पद-वाक्यरूप अक्षरमाला कहाँ से आयी ? अर्थात् इसमें ममता करना व्यर्थ है। अग्नि की शिखाओं में आसक्त हुए पतिंगों की भाँति मैं देश, काल और वस्तु से सीमित तथा त्रिविध तापों से संतप्त किन सुखनामक दृष्टियों में अनुरक्त हो रहा हूँ ? निरन्तर दग्ध करने वाली रौरव नरक की आग में लोटना अच्छा है, परंतु सुख-दुःख के परिवर्तन से युक्त विषयभोगरूप संसार में रहना अच्छा नहीं। संसार ही समस्त दुःखों की चरम सीमा कहलाता है। उसके भीतर पड़े हुए शरीर में सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है। जो बाह्य आकार मात्र से रमणीय प्रतीत होने वाली किन्तु विनाश की प्राप्ति कराने वाली हैं, मनरूपी बंदर की उन चपलतारूप वृत्तियों का अनुभव हो जाने पर मैं आज से ही इनमें रमण नहीं करूँगा। जो सैकड़ों आशारूपी पाशों से ओतप्रोत तथा अधोगति, ऊर्ध्वगति एवं संताप को देनेवाली हैं, उन संसार की वृत्तियों को मैंने बहुत भोग लिया। अब मैं इनसे विश्राम लेता हूँ। मैं प्रबुद्ध हूँ तथा हर्ष एवं उत्साह से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भरपूर हूँ। अपने पारमार्थिक धन को चुराने वाले मन नामक चोर को मैंने देख लिया है। अतः अब इसे मैं मारे डालता हूँ; क्योंकि इस मन ने चिरकाल से मुझे मारा है-मेरा पतन कराया है। जैसे सूर्य की धूप से ओस या पाले के कण गल जाते हैं, उसी तरह मेरा मन यथार्थ ज्ञान द्वारा ब्रह्मत्त्व में नित्य-निरन्तर स्थिति प्राप्त करने के लिये बहुत शीघ्र लय को प्राप्त होगा। सिद्ध महापुरुषों ने नाना प्रकार के उपदेशों द्वारा मुझे अच्छी तरह बोध करा दिया है। अब मैं परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश कर रहा हूँ। परमात्मारूपी मणि को पाकर एकान्त में उसी को देखता हुआ मैं अन्य सारी इच्छाओं को शान्त करके सुख पूर्वक स्थित होऊँगा। 'यह देह मैं हूँ, यह विस्तृत धन-राज्य आदि मेरा है; इस प्रकार अन्तःकरण में स्फुरित हुए असत्यरूप का यर्थाथ ज्ञान के द्वारा नाश करके अत्यन्त बलशाली मनरूपी शत्रु को ध्यान के अभ्यास से अच्छी तरह मारकर मैं अतिशय शान्ति को प्राप्त हो रहा हूँ।'

पाँचवां सर्ग समाप्त

छठा सर्ग

राजा जनक द्वारा संसार की स्थिति पर विचार

श्रीवसिष्ठजी बोले-रघुनन्दन! राजा जनक जब इस प्रकार चिन्तन कर रहे थे, उस समय प्रतिहार ने उनके पास जाकर नैत्यिक कार्य करने के निमित्त उठने के लिये अनुरोध किया; परंतु राजा पूर्ववत् संसार की विचित्र स्थिति में ही विचार करते रहे।

राजा बोले-जो सुखरूप में स्थित है, यह राज्य कितने दिन का है ? मुझे यहाँ इस क्षणभंगुर राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है। यह सभी माया का मिथ्या आडम्बर है। मैं इसका त्याग करके प्रशान्त महासागर की भाँति शान्त रहकर एकान्त में ही स्थित रहूँगा। ऐ मेरे चित्त ! बारंबार भोगों के आस्वादन में जो वेगपूर्वक तेरी प्रवृत्ति हो रही है, यह बड़ी घृणित है। इससे तू दूर हो जा। तेरी जो भोग भोगने की चतुरता है, उसे जन्म, जरा एवं जड़ता के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

समूहरूपी कीचड़ की शान्ति के लिये त्याग दे। चित्त! तू जिन-जिन अवस्थाओं में भ्रमवश सुख देखता है, उन्हीं से तुझे महान् दुःख की प्राप्ति होगी। इसलिये इस तुच्छ भोग-चिन्तन से कोई लाभ नहीं है।

ऐसा विचार करके राजा जनक मौन हो गये। उनके चित्त की चपलता शान्त हो चुकी थी। इसलिये वे चित्रलिखित पुरुष की भाँति अचल भाव से स्थित हो गये और पुनः इस प्रकार विचार करने लगे-'मुझे कोई भी क्रिया करने से क्या प्रयोजन है और कुछ न करके निष्क्रिय होकर बैठ रहने से भी क्या मतलब है ? इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो उत्पन्न होकर विनाश को न प्राप्त हो मिथ्यारूप से प्रकट हुआ यह शरीर कर्म करे या निष्क्रिय होकर बैठ रहे, सर्वत्र समान भाव से स्थित हुए मुझ विशुद्ध चेतन की इससे क्या क्षति होने वाली है ? मैं न तो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करता हूँ और न प्राप्त वस्तु का त्याग ही। मेरा इस जगत् में न तो कुछ करने से प्रयोजन है और न न करने से ही। करने या न करने से जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह सब असन्मय-विनाशशील ही है। इसलिये यह शरीर उठकर क्रमशः प्राप्त हुए कर्तव्य का पालन करे। यह निश्चेष्ट होकर क्यों सूख रहा है ?'

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! ऐसा विचार करके वे राजा जनक अनासक्त भाव से न्यायतः प्राप्त हुए कर्तव्य कर्म का सम्पादन करने के लिये उठे। उन्होंने श्रेष्ठ पुरुषों के समादर पूर्वक उस दिन का सारा कार्य भलीभाँति पूर्ण करके उसी ध्यानरूप विनोद से अकेले ही रात बितायी। जब रात बीतने लगी, तब विषय-भ्रम से रहित मन को एकाग्र करके उन्होंने अपने चित्त को इस प्रकार समझाना आरम्भ किया-'ऐ मेरे चंचल चित्त ! यह संसार आत्मा के सुख का साधन नहीं है। तुम शम का आश्रय लो। शम से शान्त सारभूत आत्मसुख की प्राप्ति होती है। जैसे-जैसे तुम विविध विकल्पों का संकल्प करते हो, वैसे-ही-वैसे तुम्हारे विषय चिन्तन से यह संसार अनायास ही वृद्धि को प्राप्त होता है। दुष्ट मन ! जैसे वृक्ष को सींचने से उसमें सैंकड़ों शाखाएँ निकल आती हैं, उसी प्रकार तुम भी विषयभोग की इच्छा करने से अनन्त आन्तरिक व्यथाओं से युक्त हो जाते हो। जन्म तथा संसार की सृष्टियाँ विषय-चिन्ताओं के विलास से ही प्रकट हुई हैं; इसलिये तुम नाना प्रकार की चिन्ताओं का त्याग करके उपशम को प्राप्त होओ-संसार से उपरत हो जाओ। सुन्दर चित्त! इस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

चंचल संसार सृष्टि को और शान्ति के सुख को विचार की तराजू में रखकर तौलो। यदि तुम्हें संसार की सृष्टि में ही सार प्रतीत हो तो इसी का आश्रय लो; नहीं तो शान्तस्वरूप ब्रह्म में स्थित हो जाओ। मेरे अच्छे मन ! पहले से अविद्यमान यह दृश्य-प्रपंच उत्पन्न हो जाय अथवा यह वर्तमान दृश्य नष्ट हो जाय, तुम इसके गुणों और अवगुणों से-उदय और नाश से हर्ष-विषादरूप विषमता को न प्राप्त होओ। इस दृश्य वस्तु संसार के साथ तुम्हारा थोड़ा सा भी सम्बन्ध नहीं है। इसका रूप है ही नहीं। ऐसे मिथ्या दृश्य वस्तु संसार के साथ तुम्हारा थोड़ा-सा भी सम्बन्ध नहीं है। इसका रूप है ही नहीं। ऐसे मिथ्या दृश्य जगत् से तुम्हारा इस तरह का सम्बन्ध हो ही कैसे सकता है। सुन्दर चित्त ! यदि यह दृश्य जगत् असत् है और तुम सत्य हो तो तुम्हीं बतलाओ, सत् और असत् में, जीवित और मृत में कैसे सम्बन्ध स्थापित हो सकता है ? चित्त ! यदि तुम और दृश्य जगत् दोनों ही सत् हो और सदा साथ रहने वाले हो, तब तुम्हारे लिये हर्ष और विषाद का अवसर ही कहाँ है ? इसलिये इस विशाल आन्तरिक व्यथा का त्याग करो। आत्मानन्द को जो मौन होकर सो रहा है, विवेक-वैराग्य से जगाओ और इस अमंगलमयी स्थिति चंचलता को छोड़ो। अरे शठ चित्त ! जड़ दृश्यरूप इस संसार में ऐसी कोई उन्नत और उत्तम वस्तु नहीं है, जिसकी प्राप्ति होने से तुम्हें परम परिपूर्णता प्राप्त हो जाय। इसलिये अभ्यास और वैराग्य के बल से अत्यन्त धीरता का आश्रय ले चंचलता को त्याग दो।'

छठा सर्ग समाप्त

सातवां सर्ग

स्थिति तथा विशुद्ध विचार एवं प्रज्ञा के अद्भुत माहात्म्य का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन! उस समय इस प्रकार विचार करके धीरबुद्धि राजा जनक अपने राज्य के सारे काम-काज सँभालने लगे। फिर उन्हें मोह नहीं हुआ उनका मन कहीं हर्ष के स्थानों में किंचितमात्र भी उल्लास को प्राप्त नहीं हुआ। जैसे केवल सुषुप्ति में स्थित हो, उस प्रकार सदा ही विक्षेपरहित एवं शान्तभाव से स्थिर रहा। तबसे लेकर उन्होंने न तो दृश्य जगत् को मन से ग्रहण किया और न उसका त्याग ही किया। केवल वर्तमान संसार में वे निश्शंक होकर स्थित रहे। इस प्रकार आत्मविवेक के अनुसंधान से राजा जनक का परमात्मविषयक यथार्थ ज्ञान अनन्त एवं अत्यन्त विशुद्ध हो गया।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

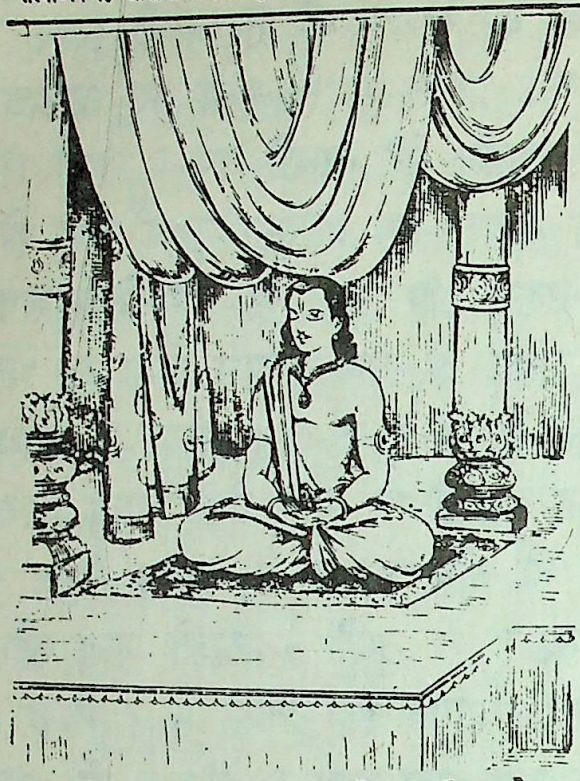

सम्पूर्ण भूतों के आत्मस्वरूप परमात्मा को जानने तथा आत्मा की अनन्तता का अनुभव करने वाले राजा ने चिन्मय परमात्मा में स्थित सारे पदार्थों को अपने आत्मा के रूप में अनुभव किया। वे न तो अनुकूल वस्तु को पाकर हर्ष से उल्लसित हुए और न कभी प्रतिकूल वस्तु को पाकर शोक से आतुर ही हुए। सब कुछ प्रकृति का व्यवहार होने के कारण वे उसमें सदा ही समचित्त एवं विकार शून्य होकर रहे। तभी से लोक में सगुण-निर्गुण परब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने वाले और समस्त प्राणियों को सम्मान देने वाले वे राजा जनक परमात्मा के यथार्थ ज्ञान में निपुण हो जीवन्मुक्त होगये। वे लोगों को प्राणों के समान प्रिय थे और विदेह देश का राज्य करते हुए कभी हर्ष और विषाद के वशीभूत हो संतप्त नहीं होते थे। सुषुप्तावस्था में स्थिति की भाँति राजा जनक की राग-द्वेष आदि समस्त वासनाएँ सम्पूर्ण पदार्थों से सर्वथा निवृत्त हो गयी थीं। वे न कभी भूत की चिन्ता करते और न भविष्य का अनुसंधान। वर्तमान काल का ही वे प्रसन्नतापूर्वक अनुसरण करते थे। कमलनयन श्रीराम ! अपने परमात्म विषयक विवेकपूर्ण विचार द्वारा ही राजा जनक को पाने योग्य परब्रह्म परमात्मरूप वस्तु की पूर्णतया प्राप्ति हो गयी।

अपने चित्त से तब तक परमात्म तत्त्व का विचार करते रहना चाहिये, जब तक विचारों की सीमा का अन्त प्राप्त न हो जाय। महापुरुषों के संग से निर्मलतारूप अभ्युदय को प्राप्त हुए चित्त के विवेकपूर्वक शुद्ध विचार से जो परमात्मरूप परमपद प्राप्त होता है, वह न तो गुरु के उपदेश से न शास्त्रार्थ से और न पुण्य से ही प्राप्त होता है। श्रीराम ! अपने मित्र के तुल्य स्थिर, शुद्ध एवं तीक्ष्ण बुद्धि से जो उत्तम पद प्राप्त होता है, वह दूसरी किसी क्रिया से नहीं होता है। जिस पुरुष की पूर्वापर का विचार करने वाली कुशाग्र एवं तीक्ष्ण प्रज्ञारूपी दीपशिखा प्रज्वलित है, उसे कभी अज्ञानरूपी अन्धकार क्लेश नहीं पहुँचाता। महामते ! दुःखरूपी उत्ताल तरंगों से व्याप्त जो विपत्तिरूपिणी दुस्तर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सरिताएँ हैं, उनको तीक्ष्ण और विशुद्ध बुद्धिरूपी नौका द्वारा ही पार किया जाता है। जैसे वायु का हल्का-सा झोंका भी निस्सार तिनके को उड़ा देता है, उसी प्रकार प्रज्ञाहीन मूढ़ पुरुष को थोड़ी-सी आपत्ति भी शोकाकुल कर देती है। शत्रुमर्दन श्रीराम ! तीक्ष्ण और विशुद्ध प्रज्ञा से युक्त पुरुष दूसरों की सहायता तथा शास्त्राभ्यास के बिना भी संसार-समुद्र से अनायास ही पार हो जाता है। जैसे फल की प्राप्ति के लिये सींचने और संरक्षण आदि के द्वारा अंगूर आदि की लता को बढ़ाया जाता है, उसी प्रकार शास्त्रों के अभ्यास और सत्पुरुषों की संगति से पहले प्रज्ञा को बढ़ाना चाहिये अर्थात् बुद्धि को पवित्र एवं तीक्ष्ण बनाना चाहिए। जैसे चन्द्रमण्डल संसार के अन्धकार को दूर करने वाली चाँदनी को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार निष्काम कर्मरूपी वृक्ष, जिसका शुद्ध तीक्ष्ण प्रज्ञाबल ही महान् मूल है, परम रसमय परमात्मा की प्राप्तिरूप फल को उत्पन्न करता है। लोग धन-सम्पत्ति आदि बाह्य पदार्थों के उपार्जन के लिये जैसा प्रयत्न करते हैं, वही यत्न पहले विशुद्ध बुद्धि की अभिवृद्धि के लिये करना चाहिये। बुद्धि की मन्दता समस्त दुःखों की चरम सीमा है, विपत्तियों का सबसे बड़ा भंडार है और संसाररूपी वृक्षों का बीज है; अतः उसका यत्नपूर्वक विनाश करना चाहिये।

रघुनन्दन ! न दानों से, न तीर्थों से और न तपस्या से ही भयंकर संसार-सागर पार किया जा सकता है। केवल पवित्र एवं अविचल बुद्धिरूपी जहाज का आश्रय लेने से ही उसके पार पहुँचा जा सकता है। पृथ्वी पर विचरने वाले मनुष्यों को भी जो दैवी सम्पत्ति प्राप्त होती है, वह शुद्ध एवं अविचल प्रज्ञामयी लता से उत्पन्न हुआ स्वादिष्ट फल है। जिन सिंहों ने अपने पंजों से मत्त गजराजों के कुम्भ स्थल विदीर्ण पर डाले थे, वे भी सियारों द्वारा बुद्धि-बल से इस तरह पराजित हुए हैं, जैसे सिंहों से हरिन। विवेकी पुरुष के हृदयरूपी कोशागार में स्थित यह पवित्र प्रज्ञा चिन्तामणि के समान है। यह कल्पलता की भाँति मनोवाञ्छित फल देती है। श्रेष्ठ पुरुष पवित्र और अविचल प्रज्ञा के द्वारा संसार-सागर से पार हो जाता है, किन्तु अधम मानव उसमें डूब जाता है। क्यों न हो ? नौका चलाने की कला में शिक्षित हुआ केवट ही नौका से नदी के पार पहुँचता है, अशिक्षित केवट नहीं। जैसे समुद्र की भँवर में चक्कर काटती हुई नौका उस पर चढ़े हुए लोगों को विपत्ति में डाल देती है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उसी प्रकार राग, द्वेष, लोभ आदि असन्मार्ग में लगायी गयी अशुद्ध बुद्धि संसार में भटक कर मनुष्य को आपत्ति में डाल देती है और वही बुद्धि यदि विवेक, वैराग्य आदि सन्मार्ग में लगायी जाय तो वह मनुष्य को भवसागर से पार कर देती है। जैसे कवच बाँधकर युद्ध करनेवाले योद्धा को बाण पीड़ित नहीं करते, उसी प्रकार विवेकशील, मूढ़ता रहित एवं पवित्र बुद्धि वाले पुरुष को तृष्णा वर्ग के काम, लोभ आदि से उत्पन्न हुए क्रोध द्वेष और मोह आदि दोष बाधा नहीं पहुँचाते । रघुवीर ! इस लोक में प्रज्ञारूपी नेत्र से यह सारा जगत् ठीक-ठीक दिखायी देता है। उस यथार्थदर्शी पुरुष के पास न तो सम्पत्तियाँ आती हैं और न विपत्तियाँ ही। जैसे सूर्य को ढकने वाला जलमय विस्तृत काला मेघ वायु में छिन्न-भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार अहंकाररूपी मत्त मेघ जो परमात्मारूपी सूर्य पर आवरण डालने वाला है, पवित्र एवं तीक्ष्ण बुद्धिरूपी वायु से बाधित हो जाता है। परमात्मा की प्राप्तिरूप अनुपम उन्नत पद में पहुँचने वाले पुरुष को पहले सत्संग और विवेक वैराग्य द्वारा इस बुद्धि का ही शोधन करना चाहिये-ठीक उसी तरह, जैसे धान्य आदि की वृद्धि चाहने वाला किसान सबसे पहले पृथ्वी को हल से जोतकर शुद्ध बनाता है।

सातवां सर्ग समाप्त

आठवां सर्ग

चित्त की शान्ति के उपायों का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! बिना जीती हुई मन सहित इन्द्रियाँ शत्रु के समान हैं। इन्हें तब तक बारंबार जीतकर परमात्मा में लगाने का प्रयत्न करे, जब तक अन्तःकरण स्वयं ही परमात्मा के ध्यान में एकाग्र होकर शुद्ध एवं प्रसन्न न हो जाय। इस प्रकार के साधन से नित्य प्रसन्न, सर्वव्यापी, दिव्यस्वरूप, देवेश्वर परमात्मा का स्वतः साक्षात्कार हो जाता है और ऐसा होने पर सारी दुःख-दृष्टियाँ नष्ट हो जाती हैं। उस सगुण-निर्गुणरूप परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार होने पर हृदय-ग्रन्थिरूपी कुदृष्टियाँ जो मोहरूपी बीज की मुट्ठियाँ और नाना प्रकार की आपत्तियों की वृष्टियाँ हैं, नष्ट हो जाती हैं। नित्य आन्तरिक विचार वाले जगत् को क्षणभंगुर देखने वाले पुरुष का अन्तःकरण राजा जनक के अन्तःकरण की तरह समय आने पर अपने आप ही शुद्ध हो जाता है। संसार से भयभीत हुए पुरुषों के लिये सच्चिदानन्दघन परमात्मा के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ध्यानरूप परम पुरुषार्थ को छोड़कर न दैव शरण देने वाला है न कर्म, न धन आश्रय देने वाला है न भाई-बन्धु। तात ! जो लोग विवेक, वैराग्य, विचार उपासना और धर्मपालन आदि उत्तम कार्यों में भाग्य के अधीन रहते हैं तथा मिथ्या विपरीत कल्पनाएँ करते रहते हैं, उनकी मन्दमति विनाश की ओर ले जाने वाली है; अतः उसका अनुसरण नहीं करना चाहिए। उत्तम विवेक का आश्रय ले अपने आत्मा का अपने ही द्वारा अनुभव करके परम वैराग्य से पुष्ट हुई पवित्र एवं सूक्ष्म बुद्धिरूप नौका द्वारा संसार-सागर को पार करे। श्रीराम ! यह मैंने तुमसे आकाश से गिरने वाले फल के समान शीघ्रतापूर्वक होने वाली ज्ञान-प्राप्ति का वर्णन किया है। यह ज्ञान अज्ञानरूपी वृक्ष को काट डालने वाला तथा निरतिशय सुख प्रदान करने वाला है। वांछित और अवांछित वस्तु की आशंकारूपिणी चंचल वानरियाँ जिस चित्तरूपी वृक्ष पर कूद-फाँद लगाये रहती हैं, उसमें सौम्यता कहाँ से आ सकती है।

निष्कामता, निर्भयता, स्थिरता, समता, ज्ञान, निरीहता, निष्क्रियता, सौम्यता, निर्विकल्पता, धैर्य, मैत्री, मननशीलता, संतोष, मृदुता और मधुरभाषिता ये गुण हेय और उपादेय से रहित ज्ञानी पुरुष में बिना किसी वासना के रहते हैं। जैसे बहते हुए जल को बाँध से रोका जाता है, उसी प्रकार निकृष्ट विषयों की ओर दौड़ते हुए मन को विवेक-वैराग्य के बल से विषयों की ओर से लौटाये अर्थात् चित्त की बहिर्मुख वृत्ति को विवेक-वैराग्य द्वारा अन्तर्मुखी करे। श्रीराम ! मोह संसार को भूलकर फिर नहीं प्रस्फुटित होता और संसार चित्त को भुलाकर फिर नहीं अंकुरित होता। खड़े होते, चलते, सोते, जागते, कहीं निवास करते, उछलते और गिरते-पड़ते 'यह दृश्य प्रपंच असत् ही है' ऐसा मन में निश्चय करके इसके प्रति आस्था का परित्याग कर देना चाहिए। रघुनन्दन ! समता का भलीभाँति आश्रय ले प्राप्त हुए कर्तव्य का पालन करते हुए अप्राप्त का चिन्तन न करके निर्द्वन्द्व हो इस लोक में विचरना चाहिए। श्रीराम ! तुम्हीं सर्वज्ञ, तुम्हीं, अजन्मा, तुम्हीं सबके आत्मा और तुम्हीं महेश्वर हो, तुम अपने चैतन्य स्वभाव से कभी च्युत नहीं होते, तथापि तुमने इस प्रकार इस संसार का विस्तार किया है। जिसने सद्रूप आत्मदृश्य में परमार्थ सत्स्वरूपता की भावना करके सब ओर से दूसरी भावना का परित्याग कर दिया, वह पुरुष हर्ष, क्रोध और विषाद आदि से होने वाले दोषों से नहीं बँधता। जो राग द्वेष

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

मुक्त है, मिट्टी के ढेले, पत्थर और सुवर्ण को समान समझता है तथा संसार की वासनाओं का त्याग कर चुका है, ऐसा योगी युक्त कहलाता है। वह जो कुछ करता, खाता, देता और नष्ट करता है, उन सब क्रियाओं में उसकी अहंभावना नहीं होती तथा वह सुख-दुःख में भी समान भाव रखता है। जो इष्ट और अनिष्ट की भावना का त्याग करके प्राप्त हुए कार्य को कर्तव्य समझकर ही उसमें प्रवृत्त होता है, उसका कहीं भी पतन नहीं होता। महामते ! यह जगत् चेतनामात्र ही है-इस प्रकार के निश्चय वाला मन जब भोगों का चिन्तन त्याग देता है, तब वह शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

वास्तव में तो न मन है, न बुद्धि है और न यह शरीर ही है; केवल एकमात्र आत्मा ही सदा विद्यमान है। आत्मा ही यह सम्पूर्ण जगत् है और आत्मा ही कालक्रम है। वह विशुद्ध आत्मा आकाश से भी सूक्ष्म होने के कारण प्रत्यक्ष प्रतीत न होने पर भी ध्रुव सत्य है।

सूक्ष्म होने के कारण प्रत्यक्ष प्रतीत न होने पर भी यह आत्मा नित्य सत्य चेतनरूप है, अतएव सब प्रकार के लक्षणों से अतीत शुद्ध आत्मा केवल अपने अनुभव से ही जाना जाता है। जहाँ केवल परमात्मा की चेतनता है, वहाँ उसी तरह का मन का क्षय हो जाता है, जैसे प्रकाश में अन्धकार का नाश हो जाता है। अतः उस आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये वैराग्य से, प्राणायाम के अभ्यास से, विवेक-विचार से, दुर्व्यसनों के विनाश से तथा परमार्थ-तत्त्व के बोध से प्राणवायु का निरोध करना चाहिये। जड़ तथा स्वरूपहीन होने के कारण मन सदा ही मरा हुआ है। किन्तु आश्चर्य है कि उस मरे हुए मन के द्वारा ही लोग मारे जा रहे हैं। चक्र के समान घूमती हुई यह मूर्खता की परम्परा बड़ी विचित्र है। अहो ! महामायावी मायासुर का भी निर्माण करने वाली यह माया अत्यन्त अद्भुत है, जिसके कारण अत्यन्त चंचल चित्त के द्वारा भी यह लोक अभिभूत हो रहा है। जब मूर्खता आती है, तब पुरुष सभी आपत्तियों का भाजन हो जाता है, भला, अज्ञानी पर कौन-सी आपत्ति नहीं आती। देखो, अज्ञान ने ही मूर्खता से इस सृष्टि को उत्पन्न किया है। हाय ! बड़े क्लेश की बात है कि यह सृष्टि दुर्बुद्धि के कारण मूर्खता के वश में पड़ी हुई उसके द्वारा पीड़ित हो रही है, तथापि यह जीव असत् का अनुवर्तन करके उत्तरोत्तर दुःख उठाने के लिये ही इस सृष्टि को उपलब्ध करता है। मैं समझता हूँ, यह मूर्खतामयी सृष्टि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अत्यन्त सुकुमार-अविचार मात्र से सिद्ध है। अतएव एकमात्र विचार से ही इसका बोध किया जा सकता है। श्रीराम ! इस मूर्ख लोकमयी सृष्टिरूप में असत्‌रूप मन ही प्रकट हुआ है अर्थात् यह मन का ही विकार है। जो पुरुष उस मन को वश में नहीं कर सकता, वह आध्यात्मशास्त्र के उपदेश का पात्र नहीं है। उस पुरुष की बुद्धि चारों ओर से विषयों में ही आरूढ़ है और उतने से ही वह अपने को परिपूर्ण मानती है, इसलिये परमात्मा की ओर अभिमुख नहीं होती, सूक्ष्म वस्तु के विचार में समर्थ नहीं हो पाती। इसीलिये उसमें आध्यात्मिक शास्त्र का उपदेश पाने की योग्यता नहीं होती।

आठवां सर्ग समाप्त

नवां सर्ग

अनाधिकारी को दिये गये उपदेश की व्यर्थता

श्रीवसिष्ठजी बोले-रघुनन्दन ! इस भूतल पर जो मनुष्य पशु मनुष्यों पशु-पक्षियों के समान धर्मा होकर आहार, निद्रा और मैथुन आदि में ही लगे हुए हैं, उन्हें उपदेश देना उचित नहीं। भला, वन में ठूँठे काठ के निकट कथा का तात्पर्य कहने से कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा ? जिन्होंने अपने मन को विषयों में फैला रक्खा है, उन मनुष्यों में और पशुओं में क्या अन्तर है ? पशु रस्सी से बाँधकर खींचे जाते हैं और मूढ़चेत्ता मनुष्य आसक्ति के कारण मन के द्वारा विषयों की ओर घसीटे जाते हैं। जिन लोगों ने अपने मन को नहीं जीता है, उन्हें सब ओर से दुःखदायिनी दशाएँ प्राप्त होती हैं। रघुनन्दन ! जिन्होंने अपने चित्त पर विजय प्राप्त कर ली है, उनके दुःख उत्तम विचार के द्वारा दूर किये जा सकते हैं इसलिये जिसे ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान हो चुका है, वह ज्ञानी पुरुष उनके दुःख का मार्जन करने में प्रवृत्त हो। इस त्रिगुणात्मक मायामय प्रपंच का आश्रय लेना बन्धन में ही डालने वाला है। यदि इसका त्याग कर दिया जाय तो यह भव-बन्धन से छुटकारा दिला सकता है। 'मैं' और 'यह' दोनों ही नहीं हैं, इस प्रकार चिन्तन करते हुए तुम अनन्त आकाश के समान विशाल हृदय वाले आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित हो पर्वत के समान अविचल भाव से स्थित हो जाओ। यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा ही है, ऐसे ज्ञान का अन्तःकरण में उदय होने पर कहाँ चित्त है, कहाँ चेत्य है और क्या चेतन है ? मैं चिन्मय ब्रह्म हूँ, जीवन नहीं; क्योंकि वास्तव में एकमात्र परब्रह्म परमात्मा के सिवा जीव

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

नामक कोई अलग पदार्थ नहीं है। यही चित्त की शान्ति है और इसी को परम सुख कहते हैं। रघुनन्दन ! यह संसार परमात्मा का ही स्वरूप है, ऐसा निश्चय हो जाने पर निस्सदेह चित्त की कोई अलग सत्ता नहीं रह जाती। इस प्रकार परमार्थ-तत्त्व का बोध होने से यह जगत् परमात्मा ही है, ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाता है उस दशा में जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार का नाश हो जाता है, उसी तरह मन भलीभाँति गल जाता है। जब तक मनरूपी सर्प इस शरीर में विद्यमान है, तब तक महान् भय बना रहता है। योग से उसको मार भगाने पर भय के लिये अवसर ही कहाँ रह जाता है ?

श्रीराम ! तृष्णा विष-लता के समान है। वह बढ़ते हुए महान् मोह को देनेवाली और भयंकर है। वह मनुष्य को केवल अज्ञान ही देती है वर्षा ऋतु की अँधेरी रात के समान मन में अनन्त विकार उत्पन्न करने वाली यह तृष्णा जब-जब प्रकट होती है, तब-तब महामोह प्रदान करती है। रघुनन्दन ! संसार में जो दुरन्त, दुर्जर और महान् दुःख हैं, वे तृष्णारूपिणी विष-लता के ही फल हैं। तृष्णा से पीड़ित मनुष्य में दीनता प्रत्यक्ष देखी गयी है। वह मन मारे रहता है, उसका तेज नष्ट हो जाता है, वह बहुत नीचे गिर जाता है। वह मोहग्रस्त होता, रोता और गिरता रहता है। निश्चय ही जहाँ तृष्णारूपिणी काली रात नष्ट हो गयी है, वहाँ शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति सत्कर्म ही बढ़ते हैं। जिस पुरुषरूपी वृक्ष में तृष्णारूपी घुन नहीं लगे हैं, उसमें सदा पुण्यरूपी फूल खिलते हैं और वह विकासशील अवस्था को प्राप्त होता है। तृष्णा द्वारा ये सब लोग सूत में बँधे हुए पक्षी के समान देश-विदेश में भटकाये जाते, शोक से जर्जर किये जाते और अन्ततोगत्वा मारे जाते हैं। जैसे हिरन तिनकों से आच्छादित हुए गड्डे के ऊपर रक्खी हुई हरी-भरी घास की शाखाओं को चरने के लिये जाकर उस गड्डे में गिर जाता है, उसी प्रकार तृष्णा का अनुसरण करने वाला मूढ़ मनुष्य नरक में गिरता है। बुढ़ापा कितना ही बढ़ा हुआ क्यों न हो, वह नेत्रों को क्षणभर में उतना अंधा नहीं बनाता, जितना हृदय में रहने वाली पिशाची के समान तृष्णा बना देती है। जिसका आकार सम्पूर्ण दुःखों से भरा हुआ है और जो जगत् के लोगों के जीवन का नाश करने वाली है, उस तृष्णा को क्रूर सर्पिणी के समान दूर से ही त्याग देना चाहिए।

दूसरों को मान देने वाले कमलनयन श्रीराम ! वासना का त्याग ज्ञेय और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ध्येय के भेद से दो प्रकार का बताया जाता है। सबको ब्रह्मरूप से समान समझकर मनुष्य ममता से रहित हो जिस वासनाक्षय का सम्पादन करके शरीर का त्याग करता है, वह ज्ञेय नामक वासनाक्षय कहा गया है। जो अहंकारमयी वासना का त्याग करके लोक संग्रहोचित व्यवहार में संलग्न रहता है, वह ध्येय नामक वासना से युक्त हुआ पुरुष जीवन्मुक्त कहलाता है। रघुनन्दन ! मूल अज्ञान के सहित संकल्परूप वासना का त्याग करके जो शान्ति को प्राप्त हुआ है, उस जीवन्मुक्त पुरुष को ज्ञेय नामक वासना त्याग से सम्पन्न समझ। जनक आदि महात्मा पुरुष ध्येय नामक वासना त्याग का सम्पादन करके जीवन्मुक्त हो लोकसंग्रह के लिये व्यवहार में स्थित हुए हैं। ज्ञेय नामक वासना त्याग को सम्पन्न करके शान्ति को प्राप्त हुए विदेहमुक्त पुरुष परावरस्वरूप परब्रह्म परमात्मा में ही स्थित होते हैं। रघुनन्दन ! पूर्वोक्त दोनों ही त्याग समान हैं। दोनों ही प्रकार के त्याग वाले पुरुष मुक्त-पद पर प्रतिष्ठित हैं। ये दोनों ही ब्रह्मभाव को प्राप्त हैं और दोनों ही चिन्ता एवं ताप से छुटकारा पा चुके हैं। एक ध्येय नाम वासनाक्षय से युक्त पुरुष इस देह के रहते हुए ही जीवन्मुक्त होकर शोक और चिन्ता से रहित हो जाता है। और दूसरा ज्ञेय नामक वासनाक्षय से युक्त पुरुष देह त्याग के अनन्तर मुक्त होता है। जो समयानुसार निरन्तर प्राप्त होने वाले सुखों और दुःखों में हर्ष और शोक के वशीभूत नहीं होता, वही इस लोक में मुक्त कहा जाता है। जिस पुरुष का इष्ट वस्तुओं में राग और अनिष्ट वस्तुओं में द्वेष नहीं होता, वह मुक्त कहलाता है। जिस पुरुष का अहंता-ममता को लेकर ग्रहण और त्यागरूप संकल्प क्षीण हो गया है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। हर्ष, अमर्ष, भय, क्रोध, काम और कायरता की दृष्टियों से जो रहित है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

श्रीवाल्मीकिजी बोले-भरद्वाज ! महर्षि वसिष्ठ जब इतना उपदेश दे चुके, तब दिन बीत गया, सूर्य अस्ताचल को चले गये। उस सभा के सभी सदस्य मुनि को नमस्कार करके सायंकालिक उपासना के निमित्त स्नान करने चले गये और रात बीतने पर सूर्य की किरणों के उदय के साथ ही फिर उस सभा भवन में आ गये।

नवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दसवां सर्ग

जीवन्मुक्ति की प्राप्ति कराने वाले विभिन्न प्रकार के निश्चय

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–श्रीराम ! जो विदेह मुक्त हैं, वे वाणी के विषय नहीं होते। अतः तुम इस जीवन्मुक्ति का वर्णन सुनो। संसार सत्य है, यह समझते हुए जिसके कारण विषय भोगों के भोगने में दृढ़ भावना हो गयी है, ऐसी तृष्णा द्वारा जीव की जो बाह्य पदार्थ में उसकी सत्ता को लेकर आसक्ति है, उसे आचार्य लोग सुदृढ़ संसार बंधन कहते हैं। जीवन्मुक्तों के शरीर के अन्तःकरण में 'भोग पदार्थ मिथ्या है' इस निश्चय से हृदय में भोग संकल्परहित और बाह्य संसार में बिहार करनेवाली स्फुरणा हुआ करती है। महामते श्रीराम ! 'यह मुझे प्राप्त हो' इस प्रकार ही जो हृदय में भावना है, उसे तुम तृष्णा और संकल्प नामक श्रृंखला समझो। उस तृष्णा का सत् और असत् सभी पदार्थों में सदा त्याग करके जो परम उदार हो गया है, वह महामनस्वी पुरुष जीवन्मुक्ति पद को प्राप्त करता है।

श्रीराम ! विचारवान् पुरुष के हृदय में चार प्रकार का दृढ़ निश्चय होता है–पहला निश्चय यह है कि मैं सिर से लेकर पैर तक माता–पिता के द्वारा रचा गया हूँ; यह असत् दृष्टि हैं। इसके कारण मनुष्य को बन्धन प्राप्त होता है। मैं देह–इन्द्रिय आदि सब पदार्थों से रहित तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर हूँ,–ऐसा जो दूसरा निश्चय है, वह साधु पुरुषों को मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला होता है। रघुनन्दन ! 'जगत् के सब पदार्थ मुझ अविनाशी परमात्मा के ही स्वरूप हैं' इस तरह का तीसरा निश्चय भी मोक्ष की ही प्राप्ति कराने वाला है। अहंकार अथवा यह सारा जगत् सदा आकाश के समान शून्य ही है' ऐसा जो चौथा निश्चय है, वह भी मोक्ष की ही सिद्धि का कारण होता है। इन चार निश्चयों में जो पहला है, उसे बन्धनकारक कहा गया है। शुद्ध भावना से उत्पन्न हुए शेष तीन प्रकार के निश्चय मोक्षदायक बताये गये हैं।

महामते ! मैं आत्मा ही सब कुछ हूँ–इस प्रकार का जो निश्चय है, उसे पाकर ही मेरी बुद्धि फिर कभी विषाद को नहीं प्राप्त होती। आत्मा की महिमा ऊपर–नीचे और अगल–बगल में सर्वत्र व्यापक है। सब आत्मा ही है ऐसे आन्तरिक निश्चय से युक्त पुरुष कभी बन्धन में नहीं पड़ता। जैसे अपार महासागर पाताल तक जल से भरा हुआ है, वैसे ही ब्रह्मा से लेकर कीट पतंग

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

तक सारा जगत् परमात्मा से परिपूर्ण है। इसलिये एकमात्र ब्रह्म ही नित्य और सत्य है। उससे अतिरिक्त जगत् की कोई सत्ता नहीं है-ठीक वैसे ही जैसे सारा समुद्र जल ही है, उससे भिन्न तरंग आदि कुछ नहीं हैं, जैसे सोने के कड़े, बाजूबंद और नूपुर आदि सुवर्ण से भिन्न नहीं हैं, उसी तरह वृक्ष, तृण आदि कोटि-कोटि पदार्थ आत्मा से भिन्न नहीं हैं। परमात्ममयी अद्वैत शक्ति ही द्वैत और अद्वैत के भेद से जगन्निर्माण की लीला को करती हुई विस्तार को प्राप्त होती है। वास्तव में न तो अहंकार है और न यह जगत् ही है। यह सब कुछ केवल निर्विकार शान्त विज्ञानानन्दघन ही प्रकाशित हो रहा है। यह संसार न तो असत् है और न सत् ही है-सदा यही समझना चाहिये। परम, अमृत, अनादि, सब ज्योतियों को प्रकाशित करने वाला, अजर, अजन्मा, अचिन्त्य, निष्फल, निर्विकार, सम्पूर्ण इन्द्रियों से रहित, प्राणों का भी प्राण, समस्त संकल्पों से रहित, कारणों का भी कारण नित्य उदित, परमात्मा, व्यापक, चिन्मय प्रकाश स्वरूप आकाश में परिपूर्ण, अनुभव का बीज अपने आप में ही अपने आपका अनुभव करने योग्य, आन्तरिक आनन्दानुभवस्वरूप ब्रह्म ही तुम, मैं और जगत् है। उससे भिन्न कुछ नहीं है। इस प्रकार का निश्चय तुम्हें करना चाहिये।

दसवां सर्ग समाप्त

ग्यारहवां सर्ग

महापुरुषों के स्वभाव का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-महाबाहु श्रीराम ! जिनका चित्त एकाग्र है तथा जो काम, लोभ आदि कुदृष्टियों से आहत नहीं हुए हैं, इस संसार में लीलापूर्वक विचरने वाले उन महापुरुषों का निम्नांकित स्वभाव बताया जा रहा है। जीवन्मुक्त चित्तवाला मुनि इस संसार में विचरण करता हुआ भी आदि, मध्य और अन्त में-सदा ही रसहीन जो जगत् की अवस्थाएँ हैं, उनको उपहास के योग्य समझे। जो न तो प्राप्त हुई प्रिय वस्तु का अभिनन्दन करता है, न अप्रिय से द्वेष करता है, न नष्ट हुई वस्तु के लिये शोक करता है और न अप्राप्त वस्तु को पाने की इच्छा करता है, सदा मननशील रहकर कर्तव्य कर्म में आलस्य छोड़कर प्रवत्त होता है, वह पुरुष संसार में कभी दुखी नहीं होता। जो पूछने पर प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन करता है, न पूछने पर मौन हो सूखे काठ की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भाँति अविचलभाव से स्थित रहता है तथा इच्छा और अनिच्छा के बन्धन से मुक्त है, वह पुरुष संसार में दुखी नहीं होता। जो सबके अनुकूल बोलता, किसी के पूछने या प्रेरणा करने पर सुन्दर उक्तियों द्वारा समाधान करता और प्राणियों के मनोभाव को समझ लेता है, वह पुरुष संसार में दुखी नहीं होता। वह परम पद में आरूढ़ हो जगत् की क्षणभंगुर अवस्था को अपनी शान्त बुद्धि के द्वारा हँसता हुआ-सा देखता है। रघुनन्दन ! जिन्होंने अपने चित्त को जीत लिया है और परावरस्वरूप परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् करके जो महात्मा हो गये हैं, उन्हीं का ऐसा स्वभाव मैंने तुम्हें बताया है।

अपने चित्त को न जीतने वाले मूढ़ मनुष्यों के जो यज्ञ आदि कर्म हैं, वे फल की कामना से युक्त होते हैं, नाना प्रकार के दम्भ, मान, मद आदि दुर्गुणों से भरे होते हैं; अतएव पुनर्जन्म आदि के कारण होनेवाले सुख-दुःखों से परिपूर्ण हुआ करते हैं। इसलिये हम उन मूढ़ मनुष्यों के उद्धार का कोई उपाय नहीं बता सकते। रघुनन्दन ! तुम तो भीतर से सब आशाओं का त्याग करके, वीतराग और वासनाशून्य हो बाहर से समस्त सत्कर्मों का एवं सदाचारों का ठीक-ठीक पालन करते हुए संसार में विचरो। श्रीराम ! तुम उदार, सदाचारी, समस्त शास्त्रीय कर्मों का भली- भाँति आचरण करने वाले तथा भीतर सम्पूर्ण कामनाओं और आसक्तियों से शून्य हो संसार में विचरण करो। रघुनन्दन ! तुम सब पदार्थों का यथार्थ रहस्य एवं अन्तर जान चुके हो; इसलिय जैसी अभीष्ट हो वैसी ही दृष्टि से देखते हुए अनासक्तभाव से संसार में विचरो।श्रीराम ! अहंकार से रहित, अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित, आकाश के समान निर्लेप एवं निर्मल तथा कलंक से दूर रहकर संसार में विचरण करो। राघव ! सैंकड़ों आशारूपी पाशों से नित्य मुक्त, सब पदार्थों में सम तथा बाहर प्रजाओं के हितकर कार्यों में तत्पर रहकर तुम लोक में विचरो। वास्तव में जीवात्मा का न तो बन्धन है और न मोक्ष ही है। यह मिथ्या माया इन्द्रजाल की भाँति संसार में भटकने वाली है। आत्मा तो सर्वथा एकरूप, सर्वव्यापी और आसक्ति के बन्धन से रहित है; फिर उसका बन्धन कैसे हो सकता है। और जब वह बँधा ही नहीं है, तब किस के लिये मोक्ष का विधान होगा। यह भ्रान्तिरूप विशाल संसार यथार्थ तत्त्व को जानने के कारण अज्ञान से ही उत्पन्न हुआ है। यथार्थ तत्त्व का ज्ञान होने से यह उसी तरह नष्ट हो जाता है, जैसे रस्सी का ज्ञान होने से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उसमें सर्प बुद्धि नष्ट हो जाती है। तुम अनन्त, सत्स्वरूप एवं आकाश के समान व्यापक हो। ज्वालाओं के मध्य भाग की भाँति प्रकाशमान एवं नित्य शुद्ध हो। तुम्हारा स्वरूप किसी की दृष्टि नहीं आता। तुम सूक्ष्मस्वरूप होकर सम्पूर्ण जगत् के पदार्थों के भीतर उसी प्रकार स्थित हो, जैसे मुक्ताहार के सभी मोतियों में एक ही सूत समाया हुआ है। महाबाहु श्रीराम ! यह शत्रु है, यह अपना है, यह दूसरा है, यह तुम हो, यह मैं हूँ-इत्यादि भावनाएँ यहाँ उसी प्रकार सत्य नहीं हैं, जैसे दृष्टि-दोष के कारण होनेवाला दो चन्द्रमा आदि का दर्शन।

ग्यारहवां सर्ग समाप्त

बारहवाँ सर्ग

पिता-माता के शोक से व्याकुल हुए अपने भाई पावन को पुण्य का समझाना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! इसी विषय में विज्ञ पुरुष इस प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं। गंगाजी के तट पर दो मुनिकुमारों में, जो परस्पर भाई थे, उक्त विषय को लेकर ही जो संवाद हुआ था, वही यह पवित्र एवं अद्भुत इतिहास है; तुम इसे सुनो। इस जम्बूद्वीप की किसी पर्वतमाला में एक महेन्द्र नामक पर्वत है। उसके एक देश में जहाँ सुविस्तृत एवं मनोरम रत्नमय शिखर है, मुनियों ने स्नान और जलपान के लिये आकाशगंगा को उतारा था। उसी गंगाजी के तट-प्रदेश में, जहाँ के वृक्ष फूलों से लदे हुए थे तथा जो पार्श्ववर्ती रत्नमय शिखर की प्रभा से प्रकाशमान और दीप्तिमान् सुवर्ण की कान्ति से सुनहरे रंग का दिखायी देता था, एक महर्षि निवास करते थे। उनका नाम था दीर्घतपा। उन्हें सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो चुका था। वे तपस्या की राशि और उदार बुद्धि थे तपस्या के मूर्तिमान्‌रूप-से जान पड़ते थे। उन महर्षि के दो पुत्र थे, जो चन्द्रमा के समान सुन्दर थे। उनके नाम थे पुण्य और पावन। उन दोनों पुत्रों और एक पत्नी के साथ वे मुनि गंगाजी के उस तट पर रहते थे, जहाँ के वृक्ष फलों से भरे हुए थे। कुछ समय बीतने

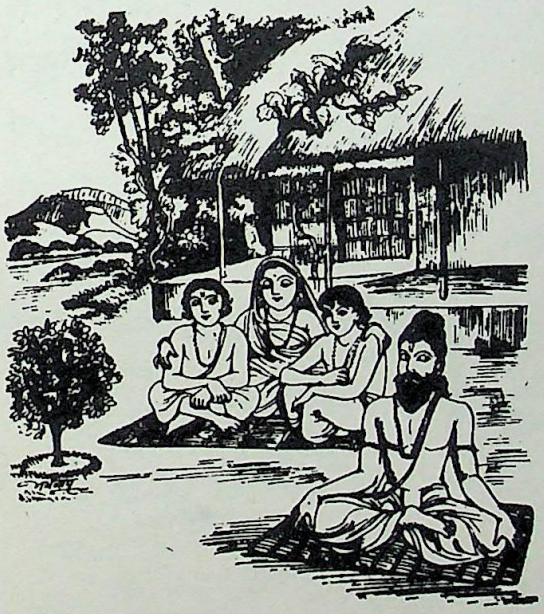

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पर मुनि के उन दोनों पुत्रों में जो अवस्था और गुण दोनों ही दृष्टियों से ज्येष्ठ थे, वे पुण्यात्मक मुनि सम्यक् ज्ञान से सम्पन्न हो गये; परंतु उनके दूसरे पुत्र पावन का ज्ञान अधूरा ही रह गया। वे मूर्खता की सीमा से तो बाहर हो गये थे; परंतु उन्हें परमार्थतत्व का यथार्थज्ञान नहीं प्राप्त हुआ। इसलिये वे बीच में ही झूल रहे थे।

तदनन्तर सौ वर्ष बीत जाने पर दीर्घतपा जरावस्था से जर्जर हो गये। अतः उन्होंने अपने शरीर को त्याग दिया और संकल्प तथा राग से शून्य परम पदस्वरूप सच्चिदानन्दघन ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् पति के शरीर को प्राण और आपान से रहित होकर पृथ्वी पर पड़ा देख मुनि की पत्नी ने भी पति की सिखायी हुई चिरकाल से अभ्यस्त यौगिक क्रिया द्वारा अपने शरीर को त्याग दिया और लोगों की दृष्टि से अदृश्य हो अपने पति का उसी तरह अनुसरण किया, जैसे प्रभा गगनमण्डल में अस्त होते हुए चन्द्रदेव का अनुसरण करती है। माता और पिता के परलोकवासी हो जाने पर ज्येष्ठ पुत्र पुण्य ही स्थिरचित्त हो उनके अन्त्येष्टि-कर्म में प्रवृत्त हुए। पावन को माता-पिता से बिछुड़ जाने के कारण बड़ा दुःख हो रहा था। उनका चित्त शोक से व्याकुल था। वे बड़े भाई की ओर न देखकर वन की गलियों में घूम-घूमकर विलाप करने लगे। माता-पिता का और्ध्वदेहिक कर्म समाप्त करके उदार बुद्धि पुण्य वन में अपने शोकाकुल बन्धु पावन के पास आये। पास आकर पुण्य ने कहा-

वत्स ! यह शोक अन्धता (मोह) का एकमात्र कारण है। तुम इसे घनीभूत क्यों बना रहे हो ? महाप्राज्ञ ! तुम्हारे पिता

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तुम्हारी माताजी के साथ उस मोक्ष नामक सच्चिदानन्दघन परमात्मपद को प्राप्त हो गये हैं, जो सबका अपना ही स्वरूप है। वही सब प्राणियों का अधिष्ठान है और वही जितात्मा ब्रह्मवेत्ताओं का स्वरूप है। जब पिता अपने स्वरूप को ही प्राप्त हुए हैं, तब तुम उनके लिये बारंबार शोक क्यों करते हो ? तुमने इस संसार में ऐसी मोहजनित ममतामयी भावना बाँध रक्खी है, जिससे तुम अशोचनीय पिता के लिये भी शोक कर रहे हो ! न वे ही तुम्हारी माता थीं और वे ही तुम्हारे पिता थे। वत्स ! जैसे प्रत्येक वन में जल के बहने के लिये बहुत-से नाले होते हैं, उसी तरह तुम्हारे सहस्त्रों माता-पिता हो चुके हैं। उन माता-पिता के भी असंख्य पुत्र हो चुके हैं, केवल तुम्हीं उनके पुत्र नहीं हो। जैसे नदी के जल में बहुत-सी तरंगें उठती और विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार मनुष्य आदि प्राणियों के जन्म-जन्म में बहुत से पुत्र हो-होकर काल के गाल में जा चुके हैं। वत्स ! यदि स्नेह के कारण माता-पिता और पुत्रों के लिये शोक करना ही उचित हो तो पहले के जन्मों में जो सहस्त्रों माता-पिता बीत चुके हैं, उनके लिये निरन्तर शोक क्यों नहीं किया जाता ? महाभाग ! जगत् की कल्पना के निमित्तभूत भ्रम या अज्ञान के कारण ही यह प्रपंच दिखायी देता है। विद्वान् ! वास्तव में तो तुम्हारे न कोई मित्र है और न बन्धु-बान्धव ही हैं। वत्स ! परमार्थिक दृष्टि से सत्य क्या है ? इसका तुम विचार करो। विचार करने से तुम्हें ज्ञात होगा कि न तुम हो न हम हैं। तुम्हारे अन्तःकरण में जो भ्रम है, उसी के कारण इस जगत् की प्रतीति हो रही है। अतः तुम उसे त्याग दो। 'यह गया, यह मर गया' इत्यादि कुदृष्टियाँ अपने संकल्परूप अज्ञान से उत्पन्न हो सामने दिखायी देती हैं, वास्तव में इनकी सत्ता नहीं है।

बारहवाँ सर्ग समाप्त

तेरहवाँ सर्ग

पुण्य का पावन को उपदेश

पुण्य कहते हैं-पावन ! बन्धु, मित्र, पुत्र, स्नेह, द्वेष तथा मोह-दशारूप रोग से युक्त जो प्रपंच है, यह अपने नाममात्र से विस्तार को प्राप्त हो रहा है। जिसके प्रति बन्धुभावना कर ली गयी है, वह बन्धु हो गया और जिसके प्रति शत्रु की भावना कर ली गयी, वह शत्रु हो गया। परंतु सभी शरीरों में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अभिन्नरूप से विद्यमान जो सर्वव्यापी आत्मा है, उस एक में ही 'यह बन्धु है, यह शत्रु है' ऐसी कल्पना कैसे हो सकती है ? वत्स ! यह शरीर रक्त, मांस और हड्डियों का समूह है, अस्थियों का पंजर है; इससे भिन्न मैं कौन हूँ, इसका तुम स्वयं अपने चित्त से विचार करो। पारमार्थिक दृष्टि से देखने पर न तुम कोई हो और न मैं कोई हूँ। 'यह पुण्य है, यह पावन है' इत्यादि कल्पनाओं के रूप में मिथ्याज्ञान ही नृत्य कर रहा है। यदि तुम आत्मा से भिन्न कोई लिंगशरीर ही हो तो बताओ। बीते हुए दूसरे अनेक जन्मों में जो तुम्हारे बन्धु और धन-वैभव नष्ट हो गये हैं, उनके लिये भी शोक क्यों नहीं करते ? सुन्दर फूलों से सुशोभित वनस्थलियों में तुम्हारे बहुत-से बन्धु मृगयोनियों में मृ-ग-शरीर धारण कर रहे हैं, उनके लिये तुम्हें शोक क्यों नहीं हो रहा है ? वत्स!

इसी जम्बूद्वीप में तुम पहले अन्यान्य बहुत-सी योनियों में सैकड़ों हजारों बार जन्म ले चुके हो। मैं तत्वज्ञान से शुद्ध हुई सूक्ष्म-बुद्धि के द्वारा तुम्हारे और अपने पूर्वजन्म के वासनाक्रम को देख रहा हूँ। मेरी भी बहुत-सी योनियाँ अनेक बार बीत चुकी हैं, उन मोह-मन्थर (अज्ञान से जड़ीभूत) अतीत योनियों को आज मैं तत्वज्ञान से उदित हुई सूक्ष्मदृष्टि के द्वारा देखता और स्मरण करता हूँ। ऐसी अवस्था में जो जगत् में उत्पन्न हुए सैकड़ों माता-पिता, भाई-बन्धु और मित्र काल के गाल में जा चुके हैं, उनमें से किन-किन के लिये हम दोनों शोक करें और किनके लिये न करें अथवा किनको-किनको छोड़कर यहाँ किन-किनके लिये हम शोक में डूबे रहें; क्योंकि संसार की तो ऐसी ही गति है। पावन ! तुम्हारा भला हो। मन में अहंभाव के रूप में स्थित इस प्रपंच भावना को त्यागकर तुम उस गति को प्राप्त करो, जो आत्मज्ञानी पुरुषों को उपलब्ध होती है। वत्स ! तुम शान्तचित्त होकर आत्मा का- अपने आपका, जो भाव और अभाव (उत्पत्ति और विनाश) से मुक्त तथा जरा और मृत्यु से रहित है, स्मरण करो। मन में मूढ़ता न लाओ। उत्तम बुद्धि वाले पावन! न तुम्हें दुःख है न तुम्हारा जन्म हुआ है; न तुम्हारी कोई माता है और न पिता ही है। तुम केवल शुद्ध-बुद्ध आत्मा हो, दूसरे कोई नहीं हो। जैसे रात होने पर दीपक सन्निधिमात्र से प्रकाश के कर्त्ता होते हुए भी व्यापार शून्य होने के कारण अकर्ता ही हैं, उसी प्रकार तत्वज्ञानी पुरुष कर्तापन के अभिमान से रहित होने के कारण लोक-व्यवहार की स्थिति में कर्ता होकर भी अकर्ता ही हैं। वत्स ! जो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

समस्त एषणाओं के कलंक से रहित एवं मननशील है तथा जिसका हृदय-कमल में स्वस्थ आत्मस्वरूप से साक्षात्कार किया गया है, उस आत्मा के द्वारा अपने भीतर के सम्पूर्ण संसार भ्रम को मिटाकर अवशिष्ट हुए उस भावस्वरूप आत्मा (परब्रह्म परमात्मा) से ही संतोष प्राप्त करो।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! पुण्य के इस प्रकार समझाने-बुझाने पर पावन को उत्कृष्ट बोध (परमात्म-तत्व का दृढ़ निश्चय) प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् ज्ञान और विज्ञान में पारंगत तथा सिद्ध और अनिन्द्य स्थिति को प्राप्त हुए वे दोनों बन्धु उस वन में इच्छानुसार विचरने लगे। तदनन्तर समय आने पर वे दोनों रहित हो परम निर्वाणपद (परमात्मा) को प्राप्त हो गये। निष्पाप श्रीराम ! इस प्रकार पूर्वजन्मों में जो असंख्य देह धारण कर चुके हैं, उन प्राणियों के माता-पिता, बन्धु-बान्धव आदि का समुदाय अनन्त है। उनमें से कौन किनको ग्रहण करे और कौन किनका त्याग। रघुनन्दन! इसलिये इन असंख्य तृष्णाओं की निवृत्ति का एकमात्र उपाय त्याग ही है, उनको पोसना नहीं। जैसे लकड़ी डालने से आग प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार विषय-भोगों के चिन्तन से चिन्ता बढ़ती जाती है; और जैसे बिना ईंधन के आग बुझ जाती है, उसी प्रकार विषयों का चिन्तन न करने से चिन्ता मिट जाती है। एकमात्र विवेकरूपी सखा और एकमात्र पवित्र एवं तीक्ष्ण बुद्धिरूपिणी प्रिय सखी को साथ ले संसार में शास्त्रविहित आचरण करने वाला पुरुष संकट पड़ने पर भी मोहग्रस्त नहीं होता। वैराग्य से, शास्त्रों के अभ्यास से तथा महत्तायुक्त क्षमा, दया, शान्ति, समता और संतोष आदि गुणों से यत्नपूर्वक आपत्ति का निवारण करने के लिये मनुष्य स्वयं ही मन को उन्नत बनाये। जो परम पद की प्राप्तिरूप फल पूर्वोक्त महत्तायुक्त गुणों से उत्कर्ष को प्राप्त हुए मन के द्वारा उपलब्ध हो सकता है, वह तीनों लोकों के ऐश्वर्य तथा रत्नों से भरे हुए कोश की प्राप्ति से भी नहीं हो सकता। मन के विशुद्ध अमृत-रस से पूर्ण होने पर सारी वसुधा आनन्द की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सुधाधारा से आप्लावित हो जाती है। मन वैराग्य से ही पूर्णता को प्राप्त-विज्ञानानन्दघन रस से परिपूर्ण होता है। आशा (इच्छा, कामना आदि) के वशीभूत हुआ मन उपर्युक्त पूर्णता को नहीं प्राप्त होता। जिनके चित्त में किसी लौकिक वस्तु की स्पृहा नहीं है, उन लोगों के लिये तीनों लोकों का ऐश्वर्य कमलगट्टे के समान अत्यन्त तुच्छ है। श्रीराम ! चित्त के नष्ट हो जाने पर अविचल धैर्य से युक्त पुरुष उस परमपद को प्राप्त कर लेता है, जहाँ फिर नाश का भय नहीं है।

तेरहवाँ सर्ग समाप्त

चौदहवाँ सर्ग

राजा बलि के अन्तःकरण में वैराग्य एवं विचार का उदय तथा उनका अपने पिता से पहले के पूछे हुए प्रश्नों का स्मरण करना

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–अथवा हे रघुकुलरूपी आकाश के पूर्ण चन्द्रमा श्रीराम ! तुम राजा बलि की भाँति विवेक के द्वारा परब्रह्म परमात्मा का यथार्थ एवं विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करो।

श्रीरामचन्द्रजी बोले–भगवन् ! सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता गुरुदेव ! आपकी कृपा से मुझे प्राप्तव्य सच्चिदानन्दघन परमात्मा के ज्ञान का यथार्थ अनुभव प्राप्त है और उसी निर्मल पद में मैं परम शान्ति को प्राप्त होकर स्थित हूँ। प्रभो ! जैसे शरद्ऋतु में आकाश से बादल हट जाते हैं, उसी प्रकार मेरे चित्त से तृष्णा नामक महान्तम (अज्ञानान्धकार) का अत्यन्त अभाव हो गया है। पूर्णिमा के सायंकाल में उदित हुए आकाशवर्ती शीतल अमृतमयी किरणों से सम्पन्न तथा महातेजस्वी पूर्ण चन्द्रमा के समान मैं विज्ञानानन्दघनमय अमृत से परिपूर्ण, चिन्मय आकाशस्वरूप ब्रह्म में विराजमान शान्तिमय महान् प्रकाशस्वरूप तथा अन्तःकरण में परमानन्द से परिपूर्ण होकर स्थित हूँ।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–रघुनन्दन ! मैं तुमसे बलि के उत्तम वृत्तान्त का वर्णन करता हूँ, सुनो ! इस ब्रह्माण्डकोश के भीतर किसी दिशारूपी निकुंज में भूमि के नीचे विद्यमान पाताल नाम से विख्यात एक लोक है, जिसमें असुरों के बाहुदण्डों पर आधारित महान् साम्राज्य है। उस साम्राज्य पर विरोचनकुमार बलि राजा के रूप में प्रतिष्ठित हुए। वे दैत्यराज बलि त्रिलोकी के रत्नों के कोश, समस्त शरीरधारियों के रक्षक तथा भुवनपालों के भी पालक हैं। उन्होंने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

अनायास ही वश में किये हुए सम्पूर्ण लोकों के विस्तार से अपने आपको विभूषित करके दस करोड़ वर्षों तक राज्य किया। तदनन्तर आने-जाने वाले बहुत-से युग बीत गये। देवताओं और असुरों के महान् समूह कभी उन्नति को प्राप्त हुए और कभी उनका पतन हुआ। तीनों लोकों में अत्यन्त उत्कृष्ट समझे जाने वाले बहुत-से भोगों का निरन्तर उपभोग करते- करते एक समय दानवराज बलि को उन भोगों से अत्यन्त उद्वेग (वैराग्य) प्राप्त हुआ। एक

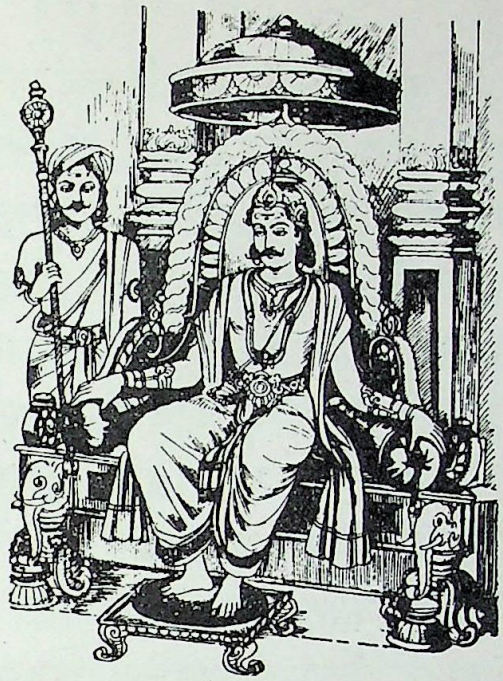

दिन मेरूपर्वत के शिखर पर स्थित रत्नों के बने हुए विशाल भवन में खिड़की के सामने बैठे हुए दैत्यराज बलि स्वयं ही संसार की स्थिति पर विचार करने लगे-'अहो ! अक्षुण्ण शक्ति वाले मुझ बलि को अब इस लोक में कितने समय तक यह साम्राज्य चलाना और तीनों लोकों में विचरना होगा ? मेरा यह महान् राष्ट्र तीनों लोकों को आश्चर्य में डालने वाला है। प्रचुर भोगों से सम्पन्न होने के कारण

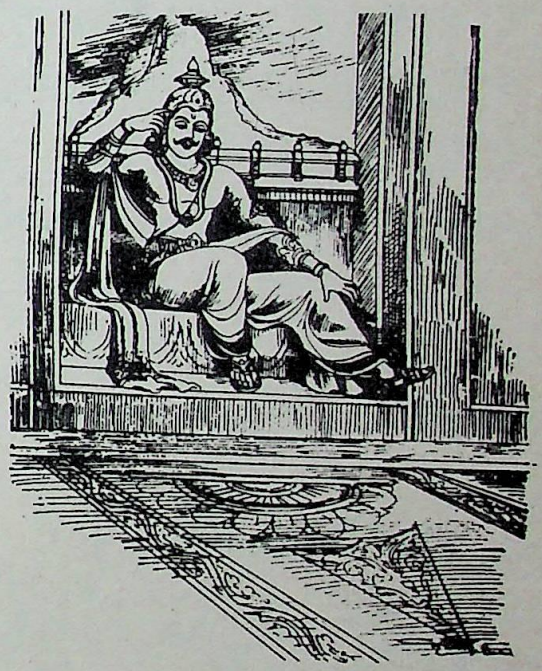

यह अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है, किंतु इसके उपभोग से मेरा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हो रहा है ? जो आरम्भ में तभी तक मधुर प्रतीत होता है, जब तक वह नष्ट या विकृत नहीं हो जाता, और जिसका विनाश अवश्यम्भावी है, उस भोग-समुदाय का उपभोग मात्र करना मेरे लिये क्या सुखदायक हो सकता है ? जिसके प्राप्त हो जाने पर दूसरा कुछ पाना या करना शेष न रह जाय, उस परम उदार अद्वितीय (परमात्मप्राप्ति रूप) फल को मैं यहाँ नहीं देख पाता। इन क्षणभंगुर भोगों को छोड़कर दूसरा नित्य, उत्तम एवं यथार्थ सुख क्या

CC-O: Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है–इसी का मैं विचार करता हूँ।' विवेक–वैराग्य युक्त बुद्धि से ऐसा सोच-समझकर राजा बलि तत्काल ध्यानमग्न हो गये।

तदनन्तर विचार किये हुए परम पुरुषार्थ का मन ही मन चिन्तन करते हुए असुरराज बलि ने क्षणभर में भ्रूभंगपूर्वक कहा–"अरे ! याद आ गया। पहले की बात है–जिन्होंने लोक के छोटे बड़े सभी व्यवहारों को देखा था और जो आत्मतत्व के ज्ञान से सम्पन्न थे, उन अपने ऐश्वर्यशाली पिता महाराज विरोचन से मैंने पूछा–'महामते ! जहाँ समस्त दुःखों और सुखों से सम्बन्ध रखने वाले सारे भ्रम शान्त हो जाते हों, संसार की वह सीमा कौन है ? तात ! मन का मोह कहाँ शान्त होता है ? समस्त एषणाओं का कहाँ अभाव होता है तथा चिरकाल के लिये निरन्तर एवं पुनरावृत्तिरहित विश्राम कहाँ प्राप्त होता है? पूज्य पिताजी ! अविनाशी आनन्द से परम सुन्दर किसी ऐसे परमपद का मेरे लिये वर्णन कीजिये, जहाँ स्थित होकर मैं सदा के लिये परमशान्ति प्राप्त कर लूँ।' मेरे इस प्रश्न को सुनकर पिता ने सम्मोहशान्ति (अज्ञान–निवारण) के लिये मुझसे यह बात कही।'

चौदहवाँ सर्ग समाप्त

पन्द्रहवाँ सर्ग

विरोचन का बलि को परमात्मसाक्षात्कार के लिये उपदेश

विरोचन बोले–महामते ! मनुष्य से लेकर ब्रह्मपाद तक सम्पूर्ण पदों का अतिक्रमण करने वाला जो मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर का स्वामी शुद्ध आत्मा है, वह एक राजा के समान है। उसने बुद्धियुक्त मन को अपना मन्त्री बनाया है। उस मन्त्री को जीत लेने से सबको जीत लिया जाता है और सब कुछ प्राप्त हो जाता है। परंतु उसे अत्यन्त दुर्जय समझना चाहिये। वह बल से नहीं, युक्ति से ही जीता जाता है।

बलि ने कहा–भगवन् ! उस चित्तरूपी मन्त्री पर आक्रमण करने के लिये

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जो युक्ति या उपाय हो, उसे आप भलीभाँति बताइये, जिससे मैं उस भयंकर मन पर विजय पा सकूँ।

विरोचन बोले-बेटा ! सभी विषयों के प्रति सब प्रकार से जो अत्यन्त अनास्था (वैराग्य) है, वही मन पर विजय पाने के लिये उत्तम युक्ति है। यह अनास्था ही वह उत्तम युक्ति है, जिससे महान् मदमत्त मनरूपी मातंग (गजराज) का शीघ्र ही दमन किया जा सकता है। महामते ! यह युक्ति अत्यन्त दुर्लभ और परम सुलभ भी है। यदि इसके लिये अभ्यास न किया जाय तो यह अनायास ही प्राप्त हो जाती है। बेटा ! यदि क्रमशः विषयों के विरक्त होने का अभ्यास किया जाय तो जैसे सींचने से लता लहलहा उठती है, उसी प्रकार यह विरक्ति भी सब ओर से सुस्पष्टतः प्रकट हो जाती है। पुत्र ! जैसे बोये बिना धान नहीं प्राप्त होता, वैसे ही यदि विरक्ति के लिये अभ्यास न किया जाय तो विषय-लोलुप पुरुष कितना ही क्यों न चाहे, यह विरक्ति उसे नहीं मिलती; अतः तुम इसे अभ्यास के द्वारा दृढ़ करो। संसाररूपी गर्त में निवास करने वाले ये जीव तब तक नाना प्रकार के दुःखों में भटकते रहते हैं, जब तक उन्हें विषयों से वैराग्य नहीं हो जाता। जैसे कोई अत्यन्त बलवान् देहवाला मनुष्य भी यदि पैर उठाकर कहीं जाय नहीं तो वह देशान्तर में नहीं पहुँच सकता, उसी तरह कोई शारीरिक शक्ति से सम्पन्न पुरुष भी यदि अभ्यास न करे तो वह विषयों से वैराग्य नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिये देहधारी मनुष्य को चाहिये कि वह जीवन्मुक्ति के हेतुभूत पूर्वकथित ध्येय नामक वासना त्याग की अभिलाषा एवं चिन्तन करते हुए भोगों की ओर से विरक्ति का अभ्यासपूर्वक विस्तार करे-ठीक वैसे ही, जैसे सींचने आदि के द्वारा लगायी हुई बेल को बढ़ाया जाता है। बेटा ! हर्ष और अमर्ष से रहित शुभ कर्मफल को प्राप्त करने के लिये इस संसार में परम पुरुषार्थ के सिवा दूसरा कोई साधन नहीं है। संसार में दैव की चर्चा बहुत की जाती है। परंतु दैव कहीं देहधारण करके स्थित हो, ऐसी बात नहीं है। अवश्य होने वाली जो भवितव्यता है-नियति के द्वारा मिलने वाला जो अपने ही शुभाशुभ कर्मों का फल है, उसी को यहाँ देव अथवा प्रारब्ध नाम दिया गया है।

प्रारब्ध-भोगरूप जो दैव है, उसे परम पुरुषार्थ से ही जीता जाता है। जीवात्मा पुरुष-शरीर धारण करके पुरुषार्थ से जिस पदार्थ का जैसे संकल्प

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करता है, इस लोक में वह पदार्थ उसे उसी रूप में प्राप्त होता है, दूसरे किसी रूप में नहीं। बेटा ! इस जगत् में पुरुषार्थ सिवा दूसरा कुछ नहीं है। अतः उत्तम पुरुषार्थ का आश्रय ले भोगों की ओर से वैराग्य प्राप्त करे। जब तक भोगों से वैराग्य, जो संसार-बन्धन का विनाश करने वाला है, नहीं प्राप्त होता, तब तक विजयदायक परमानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब तक मोह में डालने वाली विषयासक्ति बनी हुई है, तबतक भवदशारूपी झूला चंचल गति से आन्दोलित होता रहता है अर्थात् जीव को संसार में भटकाने वाली अस्थिर अवस्था प्राप्त होती रहती है। पुत्र ! अभ्यास के बिना विषयभोगरूपी भुजंगमों से भरी हुई दुःखदायिनी दुराशा कदापि दूर नहीं होती।

बलि ने पूछा-असुरेश्वर ! विषयों की ओर से जो वैराग्य है, वह जीव के अन्तःकरण में कैसे दृढ़तापूर्वक स्थित होता है ?

विरोचन ने कहा-बेटा ! आत्म साक्षात्काररूपिणी फल दायिनी लता जीव के अन्तःकरण में विषय भोगों से विरक्तिरूपी फल अवश्य उत्पन्न करती है। आत्मसाक्षात्कार होने पर विषयों में राग (आसक्ति) का अत्यन्त अभाव हो जाता है। इसलिये पुरुष पवित्र और तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा अति उत्तम विवेक-विचार से परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करे। साथ ही विषयों की आसक्ति से सर्वथा रहित हो जाय। पवित्र एवं तीक्ष्ण बुद्धि वाला पुरुष दिन के दो भागों में अपने चित्त को वैराग्य पूर्वक परमार्थ-साधनरूप सत्-सास्त्र के अनुशीलन में लगाये, तीसरे भाग में एकान्त देश में स्थित होकर मन को सच्चिदानन्दघन परमात्मा के ध्यान में लगाये तथा चौथे भाग में अपने चित्त को श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गुरु की सेवा और आज्ञा पालन में लगाये। साधु स्वभाव (श्रेष्ठ आचरण) को प्राप्त हुआ पुरुष ही ज्ञानोपदेश पाने का अधिकारी होता है। जैसे स्वच्छ वस्त्र ही उत्तम रंग को ग्रहण करता है, उसी तरह सदाचारी पुरुष ही ज्ञानोपदेश को अपने हृदय में धारण करता है। यह चित्त एक बालक के समान है। इसे पवित्र वचनों, युक्तियों और शास्त्र के अनुशीलन से धीरे-धीरे लाड़-प्यार के साथ रिझाकर वश में करना चाहिये। बेटा ! शुद्ध और सूक्ष्म बुद्धि से तृष्णा-आसक्ति का सर्वथा अभाव करते हुए ही सच्चिदानन्दघन परमात्मा का चिन्तन करना चाहिये; क्योंकि परमात्मा का साक्षात्कार होने पर तृष्णा एवं आसक्ति का सर्वथा अभाव होता है और तृष्णा एवं आसक्ति का अभाव होने पर परमात्मा का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

साक्षात्कार होता है। इस तरह ये दोनों बातें एक-दूसरे पर अवलम्बित हैं। इसलिये दोनों साधनों को एक साथ करते रहना चाहिये। जब भोग-समूहों में आसक्ति का अत्यन्त अभाव हो जाता है तथा पारावारस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्मदेव का साक्षात्कार हो जाता है, तब जीव को कभी नष्ट न होने वाली सीमा रहित परमशान्ति प्राप्त हो जाती है। विषयों में ही आनन्द मनाकर उनका आस्वादन करने वाले मनुष्यों को तो इस जगत् में कभी भी परमात्म तत्व के श्रवण बिना निस्सीम एवं निरतिशय आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। सकाम भाव से किये गये यज्ञ, दान,तप और तीर्थ सेवन से तो स्वर्गादि सुख ही प्राप्त होते हैं। आत्मा का यथार्थ ज्ञान हुए बिना उन तप, दान और तीर्थ-सेवनरूप सकाम साधनों द्वारा जीव को कभी विषयों से वैराग्य नहीं होता।

बेटा ! अपने परम पुरुषार्थ के बिना पुरुष की बुद्धि किसी भी युक्ति से कल्याण के हेतु भूत आत्मज्ञान में प्रवृत नहीं होती। भोगों के सर्वथा त्याग से प्राप्त होने वाले परम पुरुषार्थ के बिना ब्रह्मपद की प्राप्तिरूप परम शान्ति एवं परमानन्द की उपलब्धि नहीं होती। परम कारणरूप परमात्मा का यथार्थ बोध हो जाने पर मनुष्य को जैसी शान्ति प्राप्त होती है, वैसी ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त इस सम्पूर्ण जगत् में कहीं भी नहीं मिलती। बुद्धिमान् मनुष्य परमपुरुषार्थ का आश्रय ले दैव (प्रारब्ध) को दूर से ही त्याग दे तथा कल्याणरूपी भवन के द्वार को दृढ़तापूर्वक बंद रखने वाले अर्गलारूप जो भोग हैं, उनसे घृणा करे-उनकी ओर से सर्वथा विरक्त हो जाय। भोगों के प्रति वैराग्य से परमात्मविषयक विचार उत्पन्न होता है और परमात्मविषयक विचार उदित होने पर भोगों की ओर से वैराग्य होने लगता है। जैसे समुद्र बादल को और बादल समुद्र को भरते हैं, उसी तरह ये दोनों साधन एक-दूसरे के पूरक हैं। जैसे परस्पर अत्यन्त स्नेह रखने वाले सुहृद् एक-दूसरे के मनोरथ सिद्ध करते हैं, उसी प्रकार भोगों से वैराग्य,परमात्मविषयक विचार और नित्य आत्मदर्शन-ये तीनों एक दूसरे को पुष्ट करते हैं। मनुष्य को चाहिये कि पहले देशाचार के अनुकूल तथा बन्धु-बान्धवों की सम्पत्ति के अनुरूप न्याययुक्त पुरुषार्थ द्वारा क्रमशः धन का उपार्जन करे। उस धन के द्वारा कुलीन और गुणशाली सज्जनों को अपनाये-उनकी सेवा करके उन्हें अपने अनुकूल बनाये। उन सत्पुरुषों का संग करने से भोगों की ओर से विरक्ति होने लगती है। तदनन्तर विवेकपूर्वक विचार का उदय होता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तत्पश्चात् शास्त्रों के यथार्थ अर्थ का अनुभव होता है। उसके बाद क्रमशः परम पदस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है।

पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त

सोलहवाँ सर्ग

बलि का पिता के दिये हुए उपदेश का स्मरण

बलि मन ही-मन कहने लगे-पूर्वकाल में सुन्दर विचार रखने वाले मेरे पूज्य पिताजी ने मुझे ऐसा उपदेश दिया था। सौभाग्य की बात है कि वह उपदेश मुझे इस समय याद आ गया, इससे मैं प्रबुद्ध हो गया हूँ। आज मेरे अन्तःकरण में भोगों के प्रति यह अतिशय विरक्ति प्रत्यक्ष अनुभव में आने लगी है। बड़े आनन्द की बात है कि मैं अमृत के समान शीतल, विशुद्ध एवं परम शान्तिमय परमानन्द-सिंधु में प्रविष्ट हो गया हूँ। अहा ! अन्तःकरण को शीतल बना देने वाली यह शान्तिमयी स्थिति बड़ी ही रमणीय है। इस शान्तिमयी स्थिति में सुख-दुःख की सारी दृष्टियाँ ही शान्त (विलीन) हो गयी हैं। परम उपरति में स्थित हो मैं परम शान्ति का अनुभव करता हूँ। सब ओर से निर्वाण को प्राप्त हो रहा हूँ और मेरे अन्तःकरण में ऐसा अपार हर्ष हो रहा है, मानो मुझे चन्द्रमण्डल में स्थापित कर दिया गया है। समस्त वैभवों के दृष्टान्तभूत महान् वैभव का मैंने उपभोग किया, भोगने योग्य सारे भोगों को बिना किसी बाधा के भोग लिया और समस्त प्राणियों को पद दलित कर दिया, तो भी इससे मुझे कौन सा सुन्दर लाभ मिला ? परलोक में, इस लोक में तथा अन्य स्वर्ग आदि में इधर-उधर, बारंबार वे ही पहले की अनुभव की हुई वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। कहीं कोई अपूर्व (नूतन) वस्तु नहीं है। पाताल में, भूलोक में और स्वर्ग में सार पदार्थ क्या है-सुन्दरी स्त्रियाँ, रत्न एवं मणिमय प्रस्तर आदि। परंतु काल इन सबको क्षणभर में निगल जाता है। आज से पहले इतने समय तक मैं पूरा मूर्ख बना रहा जो तुच्छ सांसारिक वस्तुओं की इच्छा से देवताओं के साथ द्वेष करता रहा। जो मन की कल्पनामात्र है, उस जगत् नाम की महती मानसिक व्यथा का त्याग न करने से कौन-सा पुरुषार्थ सिद्ध होता है ? इसमें महात्मा पुरुष का क्या अनुराग होगा ? अहो ! बड़े दुःख की बात है कि अज्ञानरूपी मद से मत्त हुए मैंने दीर्घकाल तक अनर्थ में ही अर्थ-बुद्धि करके स्वयं ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उसका सेवन किया। अत्यन्त चंचल तृष्णावाले मुझ मूर्ख ने तीनों लोकों में केवल अपने पश्चाताप को बढ़ाने के लिये अब तक क्या नहीं किया ? अब मैं आश्रितजनों पर सदा प्रसन्न रहने वाले गुरुदेव भगवान् शुक्राचार्य का चिन्तन करता हूँ। उनकी वाणी द्वारा उपदेश पाकर मैं अनन्त प्रभावशाली विज्ञानानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में स्थित होऊँगा; क्योंकि महात्माओं के उपदेश-वाक्य अक्षय वस्तु को फलरूप में उत्पन्न करके अविनाशी तत्त्व का बोध करा देते हैं।

सोलहवाँ सर्ग समाप्त

सत्रहवाँ सर्ग

शुक्राचार्य का उपदेश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! बलवान् बलि ने ऐसा सोचकर आँखें बंद कर लीं और विज्ञानानन्दघन ब्रह्मस्वरूप आकाश में स्थित कमल नयन शुक्राचार्य का चिन्तन किया। तब परमात्मा के ध्यान में नित्य तत्पर रहने वाले शुक्राचार्य ने सर्वव्यापी ब्रह्म के स्वरूप में स्थित और चित्त के द्वारा परमात्म तत्व का चिन्तन करने वाले अपने शिष्य बलि के विषय में यह जान लिया कि वह अपने नगर में तत्त्वज्ञान की इच्छा रखकर गुरु से मिलना चाहता है। यह जानकर प्रभु शुक्राचार्य जी, जो सर्वगत अनन्त चेतन परमात्मा में स्थित हैं, अपने आपको बलि की रत्ननिर्मित खिड़की के पास ले आये अर्थात् वे बलि के यहाँ स्वयं उपस्थित हो गये। वहाँ राजा ने रत्नमय अर्घ्य देकर,मन्दारवृक्ष के पुष्पों की राशियाँ चढ़ाकर और चरणों में मस्तक झुकाकर इन शुक्राचार्य का पूजन किया। जब वे रत्नमय अर्घ्य ग्रहण करके पूर्णतया पूजित तथा मन्दारवृक्ष के फलों द्वारा निर्मित मुकुट से विभूषित होकर बहुमूल्य आसन पर विराजमान हो गये, तब बलि ने अपने उन गुरुदेव से इस प्रकार कहा।

बलि बोले-भगवन् ! जैसे नवोदित सूर्य की प्रभा संध्या-वन्दन आदि कर्म करने के लिये लोगों को प्रेरित करती है, उसी प्रकार आपके कृपा-प्रसाद से उत्पन्न हुई मेरी यह बुद्धि मुझे आपके सामने कुछ कहने के लिये प्रेरित कर रही है। प्रभो ! मैं महान् मोह प्रदान करने वाले भोगों से विरक्त हूँ, इस लिये ऐसे परम तत्त्व को जानना चाहता हूँ, जो अपने ज्ञानमात्र से महान् मोह का नाश कर दे।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

शुक्राचार्य बोले–सर्वदानवराजेन्द्र ! इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ ? मैं आकाश में जाने के लिये उद्यत हूँ; इसलिये संक्षेप से सार-तत्त्व बता रहा हूँ, सुनो ! इस संसार में एकमात्र चेतन ही है। यह सब जगत् भी चेतनमात्र-चिन्मय ही है। तुम भी चिन्मय, मैं भी चिन्मय और ये लोक भी चिन्मय हैं। अर्थात् जो कुछ भी दिखायी देता है, वह सब एक सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है–यह समस्त सिद्धान्तों का सार है। यदि तुम श्रद्धालु हो तो इस निश्चय से तुम सब कुछ प्राप्त कर सकते हो; और यदि तुममें श्रद्धा नहीं है तो तुम्हें दिया गया बहुत-सा उपदेश भी राख में डाली गयी आहुति के समान व्यर्थ है। चेतन की जो विषयकार कल्पना है, वही बन्धन है। उसे छूटना ही मोक्ष कहलाता है। विषयाकार रहित चेतन ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा है, यह समस्त सिद्धान्तों का सार है। इस सिद्धान्त को ग्रहण करके यदि तुम स्वयं अखण्डाकार वृत्ति से अपने द्वारा अपने-आपका यथार्थ अनुभव करोगे तो अनन्त परमपद स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाओगे। मैं इस समय देवलोक को जाता हूँ। मुझे यहीं पर सप्तर्षि मिले थे। वहाँ देवताओं के किसी कार्य के लिये मुझे रहना होगा। ऐसा कह कर शुक्राचार्य जी ग्रह समुदाय से भरे हुए आकाश मार्ग से चले गये।

सत्रहवाँ सर्ग समाप्त

अठारहवाँ सर्ग

राजा बलि का शुक्राचार्य के दिये हुए उपदेश पर विचार

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं–श्रीराम ! देवताओं और असुरों में श्रेष्ठ माने जाने वाले भृगुनन्दन शुक्राचार्य के चले जाने पर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बलि ने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया–"भगवान् शुक्राचार्य ने यह ठीक ही कहा है कि 'ये तीनों लोक चेतन ही हैं। मैं चेतन हूँ, ये सब लोग चेतन हैं, दिशाएँ चेतन हैं और ये सब क्रियाएँ भी चेतन ही हैं।' वास्तव में जगत् के बाहर और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

भीतर सब चेतन ही है। चेतन के अतिरिक्त यहाँ कहीं कुछ भी नहीं है। इन्द्रियाँ चेतन हैं, शरीर चेतन है, मन चेतन है, उसकी इच्छा चेतन है, भीतर चेतन है, बाहर चेतन है, आकाश चेतन है, समस्त भाव-पदार्थ चेतन हैं तथा इस जगत् की स्थिति भी चेतन ही है। अर्थात जो कुछ भी है, वह एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा का ही स्वरूप है। यहाँ केवल चेतन-ही-चेतन है, दूसरी कोई कल्पना ही नहीं है। संसार में जब द्वैत की सम्भावना ही नहीं है अर्थात् एक चेतन परमात्मा के सिवा दूसरी किसी वस्तु की सत्ता ही नहीं है, तब कौन किसका शत्रु है और कौन किसका मित्र। बहुत विचार करने से भी इस विशाल त्रिलोकी के भीतर चेतन से अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं होती। उस अतिशय शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा में न द्वेष है न राग, न मन है और न उसकी वृत्तियाँ ही। फिर उस चिन्मय परमात्मा में विकल्प की कल्पना हो ही कैसे सकती है। मैं सर्वत्र विचरने वाला, व्यापक, नित्यानन्दमय विकल्प-कल्पना से रहित तथा द्वैत से शून्य सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही हूँ। मैं आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त, अनन्त और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हूँ; इसलिये ये सुख-दुःख आदि की दशाएँ मेरे पास नहीं फटकने पातीं।"

इस प्रकार विचार करते हुए ही परम विवेकी दैत्यराज बलि ओंकार से प्रकट हुए अर्धमात्रा (मकार) के अर्थभूत तुरीय परमात्मा का चिन्तन करने लगे और चुपचाप समाधिस्थ हो गये। उस समय बलि के सारे संकल्प शान्त हो गये, समस्त कल्पनाएँ विलीन हो गयीं। उनके भीतर किसी प्रकार की शंका नहीं रह गयी। वे ध्याता, ध्येय और ध्यान से रहित हो गये। उनकी बुद्धि चेत्य, चिन्तक और चिन्तन की त्रिपुटी दूर हो गयी। वे निर्मल और वासनाशून्य हो वायुरहित स्थान में रक्खे हुए

दीपक की लौ के समान निश्चल हो गये। वे महान् पद (परमात्मा) को प्राप्त हो गये थे। उनका मन सर्वथा शान्त हो गया था। वे वहाँ रत्न निर्मित वातायन (खिड़की) में दीर्घकाल तक उसी तरह अविचल भाव से बैठे रहे मानो प्रस्तर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

में खुदी हुई मूर्ति हो।

रघुनन्दन ! तदनन्तर बलि के अनुचर दानव लोग स्फटिकमणि के बने हुए उनके महल की ऊँची अट्टालिका पर क्षण भर में चढ़ गये। डिम्भ आदि धीर मन्त्री, कुमुद आदि सामन्त, सुर आदि राजा, वृत्त आदि सेनापति, हयग्रीव आदि सैनिक, चाक्राज आदि भाई-बन्धु, लडुक आदि सुहृद, वल्लुक आदि लाड़ लड़ाने वाले सखा, हाथ में भेंट लेकर उपस्थित हुए कुबेर, यम और इन्द्र आदि देवता, सेवा का अवसर चाहने वाले यक्ष, विद्याधर और नाग उस समय बलि की सेवा के लिये उस स्थान पर आ पहुँचे। इनके सिवा त्रिलोकी के भीतर निवास करने वाले अन्य बहुत-से सिद्ध भी आये। उनके पास आकर

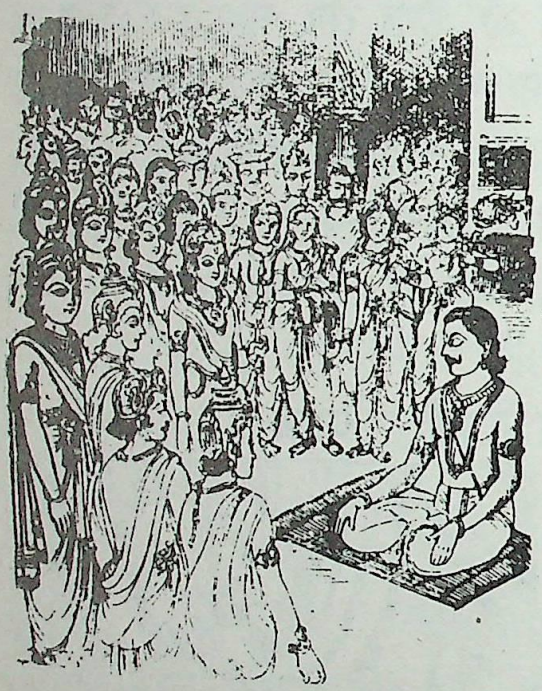

उन सबके मुकुट प्रणाम के लिये झुक गये। उन सबने बड़े आदर के साथ राजा बलि को देखा, वे ध्यान में मौन हो समाधिस्थ हो गये थे और चित्रलिखित पुरुष की भाँति निश्चल भाव से बैठे थे। उस अवस्था में उनका दर्शन करके आवश्यक-कर्तव्य प्रणाम आदि कर चुकने पर वे महान् असुर पहले तो उन्हें निष्प्राण समझकर विषाद में डूब गये, परंतु उनके मुख पर छायी हुई प्रसन्नता देख विस्मित हुए। तत्पश्चात् रोमांच आदि आनन्द के चिन्ह देखकर वे स्वयं भी आनन्दमग्न हो गये। परंतु उस समय अपना कोई रक्षक न देखकर वे भय के कारण शिथिल होने लगे। फिर दानव मन्त्रियों ने यह विचार किया कि अब यहाँ हमारे लिये कौन-सा कर्तव्य प्राप्त है। यह विचार आते ही उन्होंने सर्वज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ दैत्यगुरु शुक्राचार्य का स्मरण किया। स्मरण करते ही दैत्यों ने देखा, भृगुनन्दन शुक्र अपने तेजस्वी शरीर से वहाँ उपस्थित हैं। असुरों ने उनका पूजन किया, फिर वे गुरु के उच्च सिंहासन पर विराजमान हुए। तदनन्तर शुक्राचार्य ने दानवराज बलि को देखा, जो मौन भाव से ध्यानमग्न होकर बैठे थे। क्षणभर विश्राम करके शुक्राचार्य ने बड़े प्रेम से बलि की ओर देखा और विचार करके वे इस निश्चय पर पहुँचे कि बलि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

का संसाररूपी भ्रम नष्ट हो गया है। तत्पश्चात् गुरु ने उस दैत्य मण्डली से कहा-'दैत्यो ! ये ऐश्वर्यशाली बलि अपनी विचारधारा से ही विशुद्ध परमपद को प्राप्त होकर सिद्ध हो गये हैं। यही अतिशय शान्तिमय परमानन्द है। दानव-शिरोमणियो ! ये इसी तरह समाधि में स्थित हो अपने परमानन्दस्वरूप आत्मा में नित्य स्थिति को प्राप्त हों और निर्विकार परमपद का साक्षात्कार करें। दानवो ! जैसे थके हुए पुरुष को विश्राम मिले, उसी प्रकार ये बलि भी चित्त की भ्रान्ति से रहित हो परम विश्राम को प्राप्त हुए हैं। इनका संसाररूपी कुहरा (अज्ञान) शान्त हो गया है; अतः इस समय तुम लोग इनसे बातचीत न करो। जैसे भूतल पर रात्रि के अन्धकार एवं निद्रा आदि के शान्त होने पर दिन में सूर्य की किरणों का समुदाय प्राप्त होता है, उसी प्रकार इनका अज्ञानयुक्त भ्रम दूर हो जाने पर अब इन्हें अपना ही प्रकाश प्राप्त हुआ है। समय आने पर ये स्वयं ही इस समाधि से जाग उठेंगे। दानव नायको ! तुम सब लोग अपने स्वामी के कार्य करो। ये राजा बलि एक सहस्त्र वर्ष पर समाधि से उठेंगे।'

गुरुदेव ऐसा करने पर दैत्यों ने हर्ष, अमर्ष और दुःख से उत्पन्न हुई चिन्ता को त्याग दिया तथा पहले की व्यवस्था के अनुसार बलि की राज्य सभा का सुदृढ़ संगठन करके वे सभी असुर यथाधिकार अपने-अपने कार्य में सलंग्न हो गये। तत्पश्चात् मनुष्य भूतल को, नागराज रसातल को, ग्रह अन्तरिक्ष को, देववृन्द स्वर्ग को, पर्वत और दिक्पाल अपनी-अपनी दिशाओं को वनचर जीव अपनी कन्दराओं को और आकाशचारी प्राणी आकाश को चले गये।

अठारहवां सर्ग समाप्त

उन्नीसवां सर्ग

श्रीराम के चिन्मय स्वरूप का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! तदनन्तर एक सहस्त्र दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर ऐश्वर्यशाली असुरराज बलिदेव दुन्दुभियों का तुमुलनाद सुनकर समाधि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

से जागे और इस प्रकार विचार करने लगे–'न बन्धन है न मोक्ष है मेरी मूर्खता (अज्ञान) का नाश हो गया। ध्यान के लीला-विलास से मेरा क्या होगा अथवा ध्यान न करने से भी कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा ? न मैं ध्यान की इच्छा करता हूँ और न ध्यान न करने की; न भोग चाहता हूँ न भोगों का अभाव; मैं चिन्ता रहित स्वभाव से स्थित हूँ। अथवा यहाँ यह जगत् का राज्य रहे, तो भी मैं यहाँ स्थिर भाव से स्थित हूँ। अथवा यहाँ यह जगत् का राज्य न रहे, तो भी मैं शान्तरूप हो परमात्मा में स्थित हूँ। ध्यान दृष्टि से मेरा क्या काम है ? राज्य वैभव की सम्पत्ति से भी मेरा क्या प्रयोजन है ? जो आता है, वह आये। न वह मैं हूँ न कहीं कुछ मेरा है। यदि आवश्यकता की दृष्टि से इस समय मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं है तो अकर्तव्य भी कुछ नहीं है। अतः यह जो कुछ प्रस्तुत कर्म-राज्यपालन आदि है, इसे मैं क्यों न करूँ ?'

ऐसा विचार करके बलि वासनारहित मन से वहाँ समस्त राज्य कार्य करने लगे। उन्होंने पूजन के अर्घ्य पाद्य आदि उपचारों द्वारा देवतओं, ब्राह्मणों और गुरुजनों की पूजा की तथा सुहृदों, बन्धु-बान्धवों, सामन्तों और सत्पुरुषों का दान-मान आदि के द्वारा सत्कार किया। इतना ही नहीं, उन्होंने सेवकों और याचकों को धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया। इस प्रकार उस राज्य में, जहाँ सब पर समान रूप से शासन किया जाता था राजा बलि दिनों-दिन बढ़ने लगे। किसी समय उनके मन में यज्ञ करने का विचार हुआ, तब वे शुक्राचार्य आदि मुख्य-मुख्य ब्राह्मणों के साथ महायज्ञ अश्वमेध का अनुष्ठान करने लगे। उस यज्ञ में समस्त भुवनों के प्राणियों को तृप्त किया गया। देवर्षियों के समुदाय ने उस यज्ञ की भूरि-भूरि प्रशंसा की। राजा बलि को भोग समूहों की अभिलाषा नहीं है-ऐसा निश्चय करके सिद्धिदाता भगवान् लक्ष्मीपति विष्णु बलि के अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि के लिये उस यज्ञ में पधारे। कार्य के तत्त्व को जानने वाले श्रीहरि एकमात्र भोगों में आसक्त होने के कारण कृपण एवं

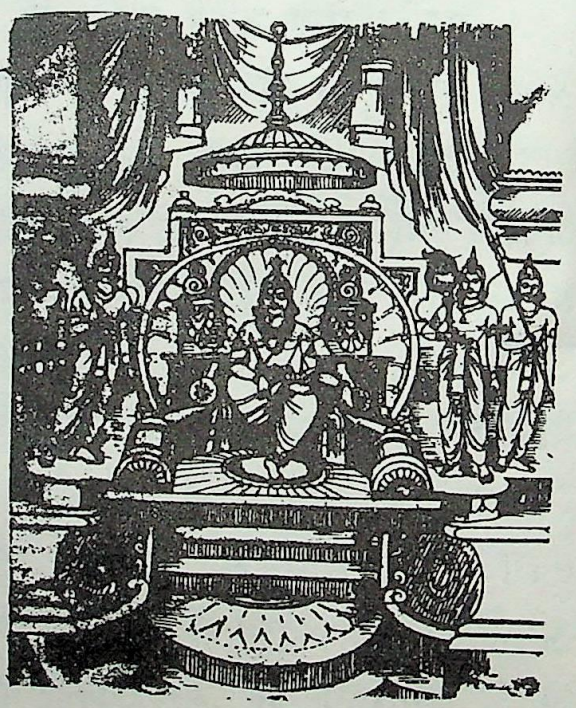

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

शोचनीय देवराज इन्द्र को, जो (उनके बड़े भाई होने के नाते) अवस्था में ज्येष्ठ थे, इस जगत्‌रूपी जंगल का भाग देने के लिये वहाँ आये थे। उन्होंने बल पूर्वक पैर बढ़ाकर तीनों लोकों को नाप लिया और बलि को वैभव-भोग से वंचित करके उन्हें पाताल में ही बाँध दिया अर्थात् उन्हें पाताल लोक के ही राज्य का अधिकारी बना दिया। श्रीराम! अब वे जीवन्मुक्त और अपने ब्रह्मस्वरूप आत्मा में स्थित हो मन को सदा परमात्मा चिन्तन में लगाये रखकर

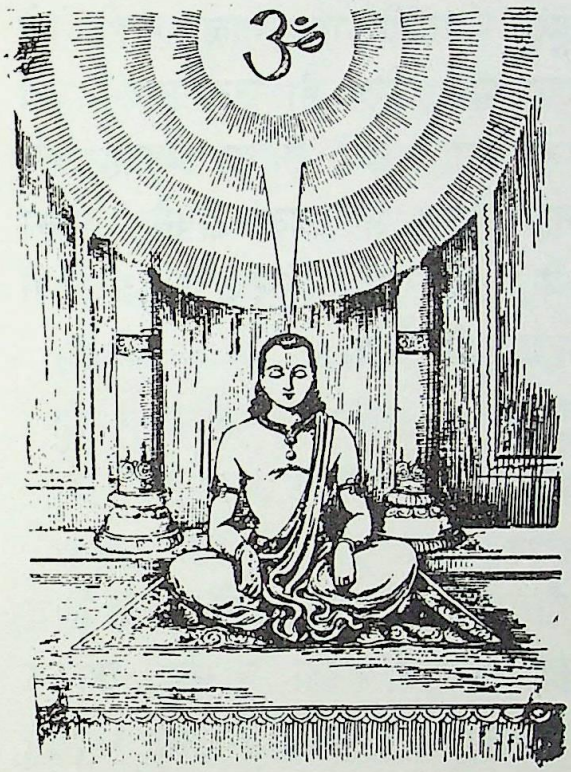

पुनः भावी इन्द्र पद की प्राप्ति के हेतु पाताल में ही विराजमान हैं। पातालरूपी गर्त में रहकर जीवन्मुक्तस्वरूप बलि आपत्ति और सम्पत्ति को समान दृष्टि से ही देखते हैं। उनका सारा मनोरथ पूर्ण हो चुका है। वे भोगों की अभिलाषा छोड़कर नित्य अपने आत्मा में ही रमण करते हुए पाताल में प्रतिष्ठित हैं। श्रीराम! ये बलि पुनः इन्द्र पद पर विराजमान हो बहुत वर्षों तक इस सम्पूर्ण जगत् पर शासन करेंगे। भविष्य में होने वाली इन्द्रपद की प्राप्ति की आशा से न तो उन्हें हर्ष होता है और न अपने त्रिलोकी के राज्यपद से भ्रष्ट कर दिये जाने के कारण उनके मन में उद्वेग ही होता है। वे सभी भावों में सम तथा सदा ही संतुष्ट चित्त रहकर प्राप्त भोगों का अनासक्त भाव से सेवन करते हुए आकाश के समान अपने ब्रह्मस्वरूप आत्मा में नित्य स्थित हैं।

असुरराज बलि लगातार दस करोड़ वर्षों तक तीनों लोकों का राज्य करके अन्त में उससे विरक्त हो गये। अतः भोग समूहों में अवश्य वैरस्य (रस का अभाव एवं दुःख का बाहुल्य) है। श्रीराम! सूर्य के समान सब को प्रकाशित करने वाले सच्चिदानन्द स्वरूप तुम्हीं सम्पूर्ण जगत् में स्थित हो। तुम्हारे लिये कौन अपना है और कौन पराया ? महाबाहो! तुम अनन्त हो, आदि पुरुषोत्तम हो। तुम्हारा शरीर चिन्मय है। सैकड़ों पदार्थों के रूप में तुम्हीं चेष्टा कर रहे हो। जैसे सूत में मणियाँ पिरोयी होती हैं, उसी प्रकार नित्य प्रकाशमान,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

शुद्ध-बुद्धस्वरूप तुम में यह सारा चराचर जगत् पिरोया हुआ है। तुम्हारा न जन्म होता है न मृत्यु। तुम अजन्मा हो, अन्तर्यामी और विराट् पुरुष हो। शुद्ध चैतन्य ही तुम्हारा स्वरूप है। तुम इस जगत् के स्वामी और नित्य प्रकाशित होने वाले चिन्मय सूर्यरूप से स्थित हो। तुममें ही यह स्वप्न-तुल्य सारा संसार भासित होता है। मनुष्य को उचित है कि बालक के समान यह मन जिन-जिन स्थानों में आसक्त होता है, वहाँ-वहाँ से उसे हटाकर परम तत्त्वस्वरूप परमात्मा में लगाये। इस प्रकार अभ्यास को प्राप्त हुए मनरूपी मत वाले हाथी को सर्वतोभावेन बाँधकर मनुष्य परम कल्याण का भागी होता है। जब तक मनुष्य आत्मसाक्षात्कार के लिये परम पुरुषार्थ करके स्वयं अपने ऊपर अनुग्रह नहीं करता, तब तक विवेक-विचार का उदय नहीं होता। जब तक अपने आपका यथार्थरूप से अनुभव नहीं होता, तब तक वेदों और वेदान्तशास्त्र के अर्थों से तथा तार्किक दृष्टियों से भी आत्मा का प्राकट्य नहीं होता।

उन्नीसवां सर्ग समाप्त

बीसवां सर्ग

प्रहलाद का उपाख्यान

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम! जैसे दैत्यराज प्रहलाद अपने-आप सिद्ध हो गये थे, ज्ञान प्राप्ति के उस उत्तम क्रम का मैं वर्णन करता हूँ; सुनो। पाताल लोक में हिरण्यकशिपु नाम से प्रसिद्ध एक दैत्य था जिसका पराक्रम भगवान् नारायण के समान था। उसने युद्धभूमि में देवतओं और असुरों को भी मार भगाया था। उसने समस्त भुवनों पर आक्रमण किया और इन्द्र के हाथ से त्रिलोकी का राज्य छीन लिया। वह देवताओं और असुरों को परास्त करके तीनों लोकों का राजय करने लगा। त्रिभुवन के साम्राज्य पर शासन करते हुए उस असुराज ने यथा समय बहुत से पुत्र उत्पन्न किये। जैसे बहुमूल्य मणियों में कौस्तुभ प्रधान है, उसी प्रकार उन सभी पुत्रों में प्रहलाद नामक बलवान् पुत्र प्रधान हुआ। इससे हिरण्यकशिपु का गर्व और भी बढ़ गया। उसका आक्रमण जनित ताप उत्तरोत्तर बढ़कर तीनों लोकों को उसी तरह तपाने लगा, जैसे प्रलयकाल के बारह सूर्य अपनी किरणों की नूतन प्रभा से समस्त भुवनों को संतप्त कर देते हैं। उसके आक्रमण से सूर्य और चन्द्र आदि देवता खिन्न हो उठे। उन सबने ब्रह्माजी से उस दैत्यराज के वध के लिये प्रार्थना की। क्यों न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हो, किसी के बारंबार किये जाने वाले दुष्कर्म या अपराध को महापुरुष भी सहन नहीं कर सकते। तदनन्तर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु ने नृसिंहरूप धारण कर जोर-जोर से दहाड़ते हुए उस महान् असुर को उसी प्रकार मार डाला, जैसे हाथी कटकट शब्द के साथ घोड़ों को मार डालता है। भगवान् नृसिंह के नख दिग्गजों के दाँतों के समान सुदृढ़ और वज्र आदि के समान भयंकर थे। उनकी चमकीली दन्त पंक्ति सुस्थिर विद्युल्लता के समान शोभा पा रही थी। उनका क्रोध तीनों लोकों को दग्ध करने के लिये प्रज्वलित हुई प्रलयाग्नि के समान जान पड़ता था। उनके सम्पूर्ण अंगों से पट्टिश, प्रास, तोमर आदि नाना प्रकार के आयुध निकल रहे थे। जैसे प्रलयकाल में अग्नि की ज्वाला समस्त जगजंजाल को जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार भगवान् नृसिंह के नेत्रों से प्रकट हुई आग ने उस असुरपुरी के समस्त असुरों को दग्ध कर दिया। संवर्तक नामक प्रलयंकर मेघों की गर्जना युक्त धारावाहिक वृष्टि से सर्वत्र व्याप्त हुए एकार्णव में बिक्षुब्ध हुई वायु के समान जब भगवान् नृसिंह अत्यन्त क्षोभ से भर गये, तब समस्त दानवों के समुदाय दिशाओं में जलते हुए मच्छरों के समान भाग-भागकर अदृश्य हो गये। भगवान् नृसिंह हिरणयकशिपु का वध करके आश्वस्त हुए देवताओं द्वारा बड़े आदर के साथ पूजित हो तब धीरे से कहीं चले गये, तब मरने से बचे हुए दानव प्रहलाद से सुरक्षित हो अपने उस जले हुए देश में लौट गये। वहाँ अपने बन्धु-बान्धवों के नाश का विचार करके समयोचित विलाप करने के अनन्तर उन सबने परलोकवासी बन्धुओं का और्ध्वदैहिक संस्कार एवं श्राद्ध किया। तदनन्तर जिनके बन्धु-बान्धव मारे अथवा भगवान् नृसिंह की क्रोधाग्नि से जल गये थे, मरने से बचे हुए उन आत्मीय जनों को उन सबने धीरे-धीरे आश्वासन दिया।

भगवान् नृसिंह ने जहाँ दानवों का विनाश कर डाला था, उस पाताल-गर्त में रहने वाले मननशील प्रहलाद ने मन-ही-मन अत्यन्त दुखी हो विवेकपूर्वक विचार किया-'इस संसार में सब प्रकार से, सब तरह की पवित्र बुद्धियों से और समस्त उत्तम क्रियाओं द्वारा तीव्रतापूर्वक शरण लेने योग्य एकमात्र भगवान् श्रीहरि ही हैं। उनके सिवा यहाँ दूसरी कोई गति नहीं है। तीनों लोकों में उनसे बढ़कर कोई नहीं है। सृष्टि, पालन और संहार के एकमात्र कारण श्रीहरि ही हैं। अब इसी क्षण से सदा के लिये मैं अजन्मा भगवान् नारायण की शरण में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

आया हूँ। जैसे वायु आकाश से अलग नहीं होती, उसी प्रकार सम्पूर्ण मनोरथों का साधक 'नमो नारायणाय' यह मंत्र मेरे हृदयकोष से दूर नहीं होता। श्रीहरि ही दिशा हैं, हरि ही आकाश हैं; वे ही पृथ्वी हैं और वे ही जगत् हैं; अतः मैं भी अप्रमेयात्मा श्रीहरि ही हूँ। मैं विष्णुरूप हो गया हूँ। श्रीहरि ही प्रहलाद नाम से प्रकट हैं। मुझ आत्मा से श्रीहरि भिन्न नहीं हैं, मेरे अन्तःकरण में यह दृढ़ निश्चय हो गया है, अतएव मैं सर्वव्यापी हरि ही हूँ। जिनकी हाथरूपी शाखाओं पर चक्र, गदा और खंग आदि अस्त्ररूपी पक्षी सदा विश्राम करते हैं, जो नख किरणमयी मंजरियों से व्याप्त हैं जिनके कंधे कोमल-कोमल मन्दार पुष्प की मालाओं से अलंकृत हैं, वे महान मरकत्-मणिमय वृक्षों के समान ये मेरी चार भुजाएँ सुशोभित हो रही हैं, जिनके बाजूबंद समुद्र मन्थन के समय मन्दराचल की रगड़ से घिस गये थे। ये सदा क्रमशः शीतल तथा उष्ण रहने वाले दो देवता चन्द्रमा और सूर्य, जिन्होंने संसार को प्रकाशित किया है, मेरे मुखमण्डल के दो नेत्र हैं, नील कमल के समान श्याम तथा गहरी मेघ मालाओं के समान सुन्दर मेरी यह अंग कान्ति सब ओर फैल रही है। मेरे हाथ में यह पांचजन्य शंख है, जिससे गम्भीर ध्वनि का विस्तार होता है। यह शब्द स्वरूप होने के कारण मूर्तिमान् आकाश और श्वेत होने से क्षीर सागर के समान जान पड़ता है। मेरे करतल में यह शोभाशाली कमल विद्यमान है, जो मेरी ही नाभि से उत्पन्न हुआ है। यह दैत्यों और दानवों का मर्दन करने वाली मेरी भारी गदा है, जो रत्नजटित होने से चितकबरी और सोने के अंगद (वलय) से विभूषित होने के कारण सुमेरू पर्वत के शिखर सी प्रतीत होती है, यह मेरा सुदर्शन चक्र है, जिससे सब ओर किरणें छिटक रही हैं तथा जिसकी आकृति साक्षात् सूर्य के समान दिखायी देती है। यह धूमयुक्त अग्नि के समान सुन्दर मेरा काला और चमकीला नन्दक नामक खंग है, जो दैत्यरूपी वृक्षों का उच्छेद करने के लिये कुठार है, और देवताओं को आनन्द प्रदान करने वाला है। यह इन्द्रधनुष के समान सुन्दर और नागराज वासुकि के समान कुण्डलाकार मेरा शंख धनुष, जो पुष्पक और आवर्तक नामक मेघों के समान बाणरूपी जल की अविच्छिन्न धाराएँ बरसाता है। पृथ्वी ये मेरे दोनों पैर हैं, आकाश मेरा यह सिर है, तीनों लोक मेरे शरीर हैं और सम्पूर्ण दिशाएँ मेरी कुक्षि हैं। मैं नील मेघ के भीतरी भाग की भाँति श्याम कान्ति से सुशोभित, गरुड़रूपी पर्वत पर आरूढ़ एवं शंख,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चक्र तथा गदा धारण करनेवाला साक्षत् विष्णु हूँ। मेरे सामने खड़े हुए ये देवता और असुर मेरे तेज के प्रवाह को उसी तरह नहीं सह सकते, जैसे मन्द दृष्टि वाले लोग सूर्य की प्रभा को नहीं सहन कर पाते। ये ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि और रुद्र आदि देवता बहुसंख्य मुखों से निकली हुई अनन्त वाणी द्वारा मुझ सर्वेश्वर विष्णु की ही स्तुति करते हैं। मेरा ऐश्वर्य बहुत बढ़ा हुआ है। मैं अपराजित विष्णुरूप हो गया हूँ, सब प्रकार के द्वन्द्वों से ऊपर उठकर अपनी सर्वोत्कृष्ट महिमा से सम्पन्न हूँ।

बीसवां सर्ग समाप्त

इक्कीसवां सर्ग

प्रहलाद के द्वारा भगवान् विष्णु की मानसिक एवं बाह्य पूजा

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! इस प्रकार विचार करके भावना द्वारा अपने शरीर को साक्षात् नारायण का स्वरूप बनाकर प्रहलाद ने उन असुरारि श्रीहरि की पूजा के लिये फिर इस प्रकार चिन्तन आरम्भ किया-'मैं भावना-दृष्टि से देख रहा हूँ कि ये भगवान् विष्णु दूसरा शरीर धारण करके मेरे भीतर से बाहर आकर खड़े हैं, गरुड़ की पीठ पर बैठे हैं, चतुर्विध शक्तियों से सम्पन्न हैं। इनके हाथों में शंख, चक्र और गदा आदि शोभा पा रहे हैं। भगवान् के श्रीअंग सुन्दर श्याम कान्ति से सुशोभित हैं। इनके चार भुजाएँ हैं। चन्द्रमा और सूर्य ही इनके नेत्र हैं। ये अद्भुत शोभा से सम्पन्न हैं। कान्तिमान् नन्दक नामक खंग से अपने भक्तजनों को आनन्द प्रदान करते हैं। इनके हाथ में कमल शोभा दे रहा है। नेत्र बड़े-बड़े हैं। ये शार्गधनुष धारण करते हैं और महान् तेज से सम्पन्न हैं। इनके पार्षद इन्हें सब ओर से घेरे हुए हैं। इसलिये मैं शीघ्र ही भावना भावित समस्त सामग्रियों से सुशोभित मानसिक पूजा द्वारा इनका पूजन आरम्भ करता हूँ। इसके बाद बाहरी उपकरणों से युक्त और अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण विशाल पूजा का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भी आयोजन करके इन महान् देव नारायण की पूजा–अर्चना करूँगा।

ऐसा विचार कर प्रहलाद ने विविध पूजा–सामग्रियों के सम्भार से युक्त मन के द्वारा कमलापति माधव का पूजन आरम्भ किया। रत्नसमूहों से जटित नाना प्रकार के पात्रों द्वारा अभिषेक करके भगवान् के श्रीअंगों में उन्होंने चन्दन आदि का अनुलेप किया। फिर नाना प्रकार धूप–दीप निवेदन किये, भाँति–भाँति के वैभवशाली आभूषण पहनाये, मन्दार–पुष्पों की मालाएँ धारण करायीं, सुवर्णमय कमलों की राशि भेंट की, कल्पवृक्ष की लताओं तथा रत्नों के गुच्छ (गुलदस्ते) अर्पित किये, दिव्य वृक्षों के पल्लव तथा नाना प्रकार के फूलों के हार उपहार में दिये, किंकिरात, बक, कुन्द, चम्पा, नीलकमल, लालकमल, कुमुद, काश, खजूर, आम, पलाश, अशोक, मेनफल, बेल, कनेर, किरातक, कदम्ब, बकुल, नीम, सिन्दुवार, जूही, परिभद्र, गग्गुल और बिन्दुक आदि के यथायोग्य पत्र–पुष्प एवं फल अर्पित किये। प्रियंग, पाट, पाटल, धातुपाटल, आम, अमड़ा, गव्य, हर्रे और बहेड़े भेंट किये। शाल, ताल और तमाल के लता, फूल एवं पल्लव चढ़ाये, कोमल कलिकाएँ अर्पित कीं, सहकार, कुकुंम, केतक, शतपत्र और इलायची की मंजरियाँ अर्पित कीं। फिर नैवेद्य, ताम्बूल, आरती और पुष्पांजलि आदि सुन्दर–सुन्दर उपचारों को सादर समर्पित किया। अन्त में अपने आपको श्रीहरि के चरणों में भेंट कर दिया। इस प्रकार जगत् के सारे वैभवों से भव्य प्रतीत होने वाली पूजन सामग्री एवं उच्चकोटि की भक्ति से प्रहलाद ने अन्तःपुर में अपने स्वामी भगवान्विष्णु का मानसिक पूजन किया।

तदनंतर दानवराज प्रहलाद ने सुप्रसिद्ध देव मन्दिर में ब्राह्म वैभवों से परिपूर्ण पूजन के उपचारों द्वारा भगवान् जनार्दन की पूजा की। मानस–पूजन में बताये गये क्रम से ही बाह्य पदार्थों के अर्पण द्वारा बारंबार परमेश्वर श्रीहरि का पूजन करके दानवराज प्रहलाद को बड़ा संतोष हुआ। तभी से प्रहलाद प्रतिदिन पूर्ण भक्तिभाव से परमेश्वर की पूजा करने लगे। फिर तो उस नगर के सभी दैत्य उसी दिन से भव्य वैष्णव बन गये; क्योंकि राजा ही आचार का कारण होता है। (राजा सदाचारी हो तो प्रजा भी सदाचार परायण होती है।) शत्रुसूदन श्रीराम! फिर तो आकाशवर्ती देवलोक में यह बात फैल गयी कि सारे दैत्य द्वेष छोड़कर भगवान् विष्णु के भक्त हो गये हैं। रघुनन्दन! यह सुनकर इन्द्र आदि देवता और मरुद्गण बड़े विस्मित हुए कि दैत्यों ने भगवान् विष्णु की भक्ति कैसे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अपनायी। आश्चर्य में डूबे हुए देवता अन्तरिक्षवर्ती स्वर्गलोक को छोड़कर क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर विराजमान भगवान् श्रीहरि के पास गये। वहाँ बैठे हुए भगवान् से उन्होंने दैत्यों का सारा समाचार कह सुनाया और इस अपूर्व आश्चर्य तथा विस्मय से भरे हुए स्वभाव-परिवर्तन का कारण पूछा।

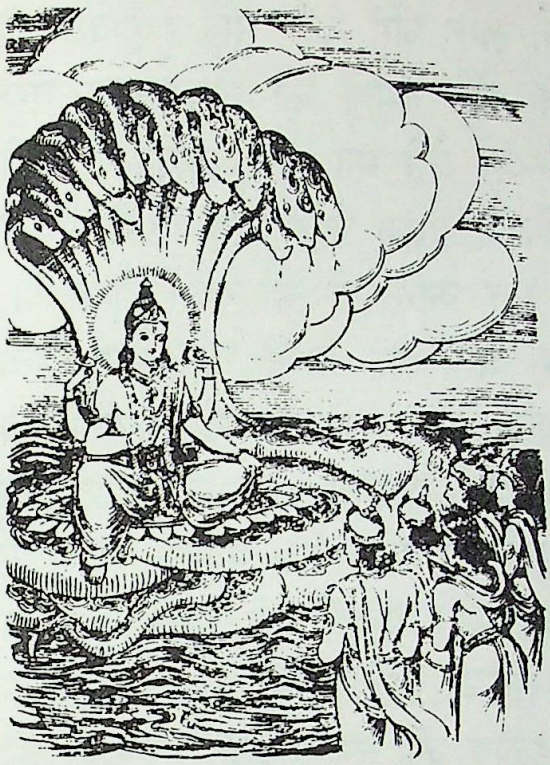

देवता बोले-भगवन्! यह क्या बात है? जो दैत्य सदा ही आपके विरोधी रहे, वे ही आपकी भक्ति में कैसे तन्मय हो गये ? कहाँ तो वे अत्यन्त दुराचारी दानव और कहाँ आप भगवान् जनार्दन के प्रति उत्तम भक्ति। कहाँ तो पामरोचित कार्य करने वाला, सदा निन्दित कर्मों में निरत और हीन जाति वाला बेचारा दानव-समाज और कहाँ आप भगवान् विष्णु की उत्तम भक्ति !

श्रीभगवान् बोले-देवताओ ! तुम विषाद में न पड़ो। शत्रुदमन प्रह्लाद भक्तिमान् हो गये हैं। यह उनका अन्तिम जन्म है। अब वे मोक्ष के अधिकारी हो गये हैं। इसके बाद ये दानवप्रह्लाद गर्भवास नहीं कर सकते। जैसे भूना हुआ बीज अंकुर नहीं उत्पन्न कर सकता, उसी प्रकार ज्ञानाग्नि से दग्ध हुए कर्म बन्धन कारक नहीं हो सकते। श्रेष्ठ देवगण! तुम लोग अपने-अपने विचित्र लोकों में पधारो। प्रह्लाद की यह गुणवत्ता (उनकी यह भगवद्भक्ति) तुम्हें दुःख देने वाली नहीं हो सकती।

इक्कीसवां सर्ग समाप्त

बाईसवां सर्ग

प्रह्लाद द्वारा स्तुति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! देवताओं से ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि वहीं अन्तर्धान हो गये और देवताओं का समुदाय स्वर्गलोक को लौट गया। तब से प्रह्लाद के प्रति देवताओं की मित्रता हो गयी। भक्त प्रह्लाद इसी प्रकार प्रतिदिन मन, वाणी, और क्रिया द्वारा देवाधिदेव भगवान् जनार्दन की पूजा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करने लगे। पूजा में तत्पर रहने वाले प्रहलाद के हृदय में समय पाकर विवेक, आनन्द, वैराग्य और विभूति आदि गुण बढ़ने लगे। जैसे पक्षी सूखे हुए वृक्ष को पसंद नहीं करते, उसी प्रकार प्रहलाद ने भोग-समूहों का अभिनन्दन नहीं किया-भोगों की ओर से उनकी रुचि हट गयी। जैसे मृग जन समुदाय से भरी

हुई भूमि में प्रसन्न नहीं होता, उसी प्रकार उनका मन कान्ताओं में नहीं रमता था, शास्त्रीय बातों की चर्चा के सिवा अन्य लोकचर्याओं में उसका मन नहीं लगता था। नाशवान् दृश्य पदार्थों से उनकी आसक्ति सर्वथा दूर हो गयी थी। भगवान् विष्णु ने क्षीरसागररूपी मन्दिरों में रहते हुए ही अपनी सर्वव्यापिनी परम दिव्य बुद्धि के द्वारा प्रहलाद की उस उच्चतम स्थिति को जान लिया। तदनन्तर भक्तों को आल्हाद प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु पाताल-मार्ग से प्रहलाद के उस भवन में पधारे, जिसमें वे अपने इष्ट देव की पूजा किया करते थे। कमलनयन भगवान् विष्णु को आया हुआ जानकर दैत्यराज प्रहलाद ने पहले की अपेक्षा दुगुनी वैभवशाली सामग्री से सुशोभित पूजा-विधि द्वारा उनका आदर-सत्कार पूर्वक पूजन किया। तत्पश्चात् पूजागृह में पधारे हुए भगवान् श्रीहरि को प्रत्यक्ष विराजमान देख परम प्रतियुक्त हुए प्रहलाद ने भक्ति से परिपुष्ट हुई वाणी द्वारा उनका स्तवन आरम्भ किया।

प्रहलाद बोले-जो त्रिभुवनरूपी रत्न को सुरक्षित रखने के लिये मनोहर कोशागार हैं, उपासकों के सारे पापों को हर लेने वाले हैं, अज्ञानान्धकार से परे परम प्रकाशस्वरूप हैं, अशरण को शरण देने वाले तथा शरणागत पालक हैं, उन अजन्मा, अच्युत, परमेश्वर श्रीहरि की मैं शरण लेता हूँ।

जो प्रफुल्ल नील कमलदल तथा नीलमणि के समान श्याम सुन्दर कान्ति से सुशोभित हैं, जिनके श्याम विग्रह के लिये शरद् ऋतु के निर्मल आकाश के मध्याभाग से उपमा दी जाती है, भ्रमर, अन्धकार, काजल और अंजन के समान नील आभा से जिनके श्रीअंग प्रकाशित होते हैं तथा जो अपने हाथों में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कमल, चक्र एवं गदा धारण करते हैं, उन भगवान् विष्णु की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

जो परम निर्मल हैं, जिनके कोमल अंग अलिकलाप (भ्रमर-राशि) के समान श्याम हैं, जिनके हाथ में श्वेत दलवाले अधखिले कमल के समान शंख शोभा पाता है, जिनके नाभि-कमल में वेद मंत्रों की ध्वनिरूप गुंजारव से युक्त ब्रह्मारूपी भ्रमर विराजमान है तथा जो अपने भक्तजनों के हृदय-कमल-दल में निवास करते हैं, उन भगवान् श्रीहरि की मैं शरण लेता हूँ।

भगवान् के श्वेत नखसमूह जहाँ तारों के समान छिटके हुए हैं, जहाँ मधुर मुस्कान की ज्योत्स्ना से उज्ज्वल मुखरूपी पूर्ण चन्द्र-मण्डल का प्रकाश छा रहा है तथा हृदय स्थित कौस्तुभ मणि की किरणों का समूह जहाँ आकाश गंगा की छटा छिटका रहा है, उन सर्वव्यापी श्रीहरिरूपी शरत्कालिक निर्मल आकाश की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

प्रलयकाल में अक्षवट के पत्र पर शयन करने वाले शिशुरूप बालमुकुन्द की मैं शरण लेता हूँ। बालक होने पर भी उनका अनन्त कल्याणमय दिव्य गुणगणों से सुशोभित शरीर बहुत पुराना (वृद्ध) है। उनके उस बालवपु के उदर भाग में यह घनीभूत सारी सृष्टि पूर्णतया समायी हुई है। वे भगवान् नित्य निरन्तर विराजमान, जन्म-वृद्धि आदि विकारों से रहित तथा विशाल (सर्वत्र व्यापक) हैं।

नूतन खिले हुए नाभि-कमल के पराग से जिनका वक्षःस्थल गौरवर्ण का प्रतीत होता है, जिनका वामांग लक्ष्मीजी के दीप्तिमान् देह से विभूषित है, जो सांयकालिक अरुण किरण के समान लाल अंगराग धारण करते हैं तथा सुवर्ण के समान रंगवाले रेशमी पीताम्बर से जिनका श्रीविग्रह परम सुन्दर दिखायी देता है, उन भगवान् श्रीनारायण की मैं शरण लेता हूँ।

दैत्यरूपिणी कमलिनी पर तुषारपात करने के लिये जो हेमन्त और शिशिर के समान हैं, देवरूपिणी नलिनी को विकसित करने के लिय सदा उदित रहने वाले सूर्यबिम्ब के सदृश हैं तथा ब्रह्मारूपी कमल के उद्भव के लिये जो जल से भरे हुए तड़ाग के तुल्य हैं, उपासकों के हृदय-कमल में निवास करने वाले उन भगवान् श्रीहरि का मैं आश्रय लेता हूँ।

जो त्रिभुवनरूपी कमल के विकास के लिये सूर्य के सदृश हैं, अन्धकार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

की भाँति बुद्धि को आच्छादित करने वाले मोह या अज्ञान का निवारण करने के लिये उत्तम एवं प्रज्वलित दीपक के तुल्य हैं, जिनमें जड़तारूपिणी माया का अभाव है, जो सदा अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हैं अथवा नित्य दिव्य प्रकाश जिनका रूप है, उन चिन्मय आत्मतत्त्वस्वरूप तथा सम्पूर्ण जगत् की सारी पीड़ाओं को हर लेने वाले श्रीहरि की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

वसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! इसप्रकार बहुत सी गुणावलियों से युक्त स्तुतिवचनों द्वारा पूजित हुये असुर-विनाशक तथा नीलकमल दल के समान श्याम भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होकर प्रीतियुक्त भक्त दैत्यराज प्रहलाद से बोले।

बाईसवां सर्ग समाप्त

तेईसवां सर्ग

प्रहलाद को भगवान् द्वारा वर-प्राप्ति

श्रीभगवान् ने कहा–दैत्यकुलशिरोमणि प्रहलाद ! तुम तो गुणों के आकर हो, अतः जन्म-मरणरूपी दुःख की निवृत्ति के लिये तुम पुनः अपना अभीष्ट वर माँग लो।

प्रहलाद बोले–भगवान्! आप समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में विराजमान होकर उनके इच्छानुसार फल प्रदान करने वाले हैं; अतः विभो! आप जिस वस्तु को सबसे श्रेष्ठ समझते हों, वही मुझे देने की कृपा कीजिये।

श्रीभगवान् ने कहा–निष्पाप प्रहलाद ! जब तक तुम्हें ब्रह्मत्व की प्राप्ति न हो जाय, तब तक तुम सम्पूर्ण संशयों की पूर्णतया शान्ति तथा सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा की प्राप्तिरूप फल के लिए विचार परायण बने रहो।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! दैत्यराज प्रहलाद से ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। उन विष्णुदेव के अन्तर्हित हो जाने पर प्रहलाद ने पूजा के अन्त में मणि-रत्नों से सुशोभित पुष्पांजलि समर्पित की। उस समय उनका चित्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Publishing House (P) Ltd. Jammu Collection

अत्यन्त प्रसन्न था। वे एक श्रेष्ठ आसन पर पद्मासन लगाकर बैठ गये और स्तोत्र पाठ करते समय अपने हृदय में यों विचार करने लगे कि आवागमनरूपी संसार का निवारण करने वाले भगवान् ने मुझे ऐसा उपदेश दिया है कि 'तुम विवेक-विचार-संयुक्त होओ। अतः मैं अपने अन्तःकरण में आत्म विचार करने में तत्पर होता हूँ। वृक्ष, तृण और पर्वतों से युक्त यह जगत् तो मैं हूँ नहीं; क्योंकि जो बाह्य और अत्यन्त जड़ है, वह मैं कैसे हो सकता हूँ। अचेतन शरीर भी मैं नहीं हूँ; क्योंकि यह असत् होता हुआ भी प्रकट, जड़ होने के कारण बोलने में असमर्थ, प्राण वायुओं द्वारा अपने संचरणकाल में ही परिचालित और अल्प काल में ही विनष्ट होने वाला है। मैं तो केवल वह शुद्ध चेतन ही हूँ, जो ममताहीन, मननरूप मन के व्यापार से शून्य, शान्त, पाँचों इन्द्रियों भ्रमों से रहित और माया के सम्बन्ध से हीन है। यह जो सबका प्रकाशक, बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त, अखण्ड, निर्मल और सत्तामात्र है, वह जड़ दृश्यरहित शुद्ध चिन्मय आत्मस्वरूप ही मैं हूँ। यह आत्मा, जो सर्वव्यापक और विकल्परहित चिन्मय बोधस्वरूप है, वह मैं ही हूँ। यह आत्मा ही जगत् की स्थिति में निरन्तर अनुभव में आने वाले समस्त पदार्थों का आदि कारण है, परंतु इस आत्मा का कोई कारण नहीं है। इसी आत्मा से सारे पदार्थों का पदार्थत्व उत्पन्न होता है। ये घट-घट आदि आकार वाले सैकड़ों सांसारिक पदार्थ विशाल दर्पणरूप इस चिन्मय शुद्ध आत्मा में प्रतिबिम्बित होते हैं। यह अकेला मैं जो आदि और अन्त से रहित तथा सर्वव्यापक हूँ, सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के अंदर आत्मस्वरूप से स्थित हूँ। मेरा यह साँवला स्वरूप-जो शंख, चक्र और गदा धारण करने वाला तथा सम्पूर्ण सौभाग्यों की चरम सीमा है, इस जगत् का पालन करता है। जो कमलरूपी आसन पर विराजते हैं और निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर परम सुख का अनुभव करते हैं, उन ब्रह्मा के रूप में मैं ही सदा इस जगत् में उत्पन्न होता हूँ मैं ही त्रिनेत्रधारी शिव होकर प्रलयकाल में इस जगत् का संहार करता हूँ। मैं ही इन्द्ररूप से मन्वन्तर के क्रम से प्राप्त हुई इस सम्पूर्ण त्रिलोकी का पालन करता हूँ। यह जो कुछ स्थावर-जंगमरूप जगत् दृष्टिगोचर हो रहा है सम्पूर्ण संकल्पों से रहित वह परम शुद्ध चेतन आत्मरूप में ही हूँ। जिसमें अनन्त आनन्द का अनुभव प्राप्त होता है तथा जो परम शान्ति से सुशोभित एवं शुद्ध है, ऐसी यह चिन्मयी दृष्टि सम्पूर्ण दृष्टियों से बढ़कर है। जो शाश्वत एवं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

विज्ञानानन्दघनरूप है, उस उत्तम साम्राज्य का परित्याग करके मुझे इन अनित्य एवं दुःखरूप राज्य-विभूतियों में लेशमात्र भी सुख की प्रतीति नहीं होती; क्योंकि ये विभूतियाँ रमणीय नहीं है। ऐसे विज्ञानानन्दघन परम पद को छोड़कर मूर्ख ही तुच्छ विषय भोगों में आसक्त होता है, विवेकशील ज्ञानी नहीं। भला, इस परम दिव्य दृष्टि का त्याग करके कौन मनुष्य घृणा करने योग्य तुच्छ राज्य में आसक्त होगा। जिन्होंने इस उत्तम दृष्टि का परित्याग करके दुःखरूप क्षणभंगुर राज्य में मन लगाया, वे सब-के-सब वास्तव में मूर्ख ही थे; क्योंकि कहाँ तो नन्दनवन की प्रफुल्लित रमणीय वनस्थली और कहाँ संतप्त मरुस्थल ! उसी प्रकार कहाँ तो ये पारमार्थिक शान्त दिव्य ज्ञानदृष्टियाँ और कहाँ देह एवं विषय-भोगों में अहंता-ममता बुद्धि ! अर्थात् इनमें आकाश-पाताल का अन्तर है। इस त्रिलोकी में राज्य पाकर भी वास्तविक सुख लेशमात्र भी नहीं मिलता, किंतु मूर्खता के कारण ही मनुष्य उसे चाहता है। उधर जो सर्वव्यापक, स्वस्थ सम, निर्विकार और सर्वरूप है, उस चेतन का आश्रय ग्रहण करने से सम्पूर्ण वास्तविक आनन्द सदा-सर्वदा प्राप्त होता रहता है। ये जो कोई भी विषयी मनुष्य मोहरूपी जाल में आ फँसे हैं, उनके गिरने का प्रधान कारण उनकी संकल्प-कल्पना ही है। इसी प्रकार मेरे पितामह आदि पूर्वजों ने भी जो संकल्प समूहों से आवृत और विषयरूपी गर्त में गिरने वाले थे, इस बाधारहित परमानन्दस्वरूप आत्म पद का अनुभव नहीं किया। इसलिये वे भूतल पर इने-गिने दिनों तक ही स्फुरित होकर गड्डे में गिरे हुए क्षुद्र मच्छरों की भाँति विनष्ट हो गये। सभी जीव इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूपी मोह से युक्त होने के कारण पृथ्वी के छिद्र में छिपे हुए कीटों की समता को प्राप्त हो गये हैं; परंतु जिसकी अनुकूल और प्रतिकूल कल्पनारूपी मृगतृष्णा सच्चिदानन्द परमात्मा के ज्ञानरूपी मेघ से शान्त हो चुकी है, उसी का जीवन धन्य है।

'ॐ' ही जिस सच्चिदानन्द ब्रह्म का सर्वोत्तम नाम है और जो समस्त विकारों से सर्वथा रहित है, वह परमात्मा ही भूतल के समस्त पदार्थों के रूप में विराजमान है। ज्योतिःस्वरूप वह परमात्मा ही सूर्य आदि के अंदर स्थित होकर अपनी सत्ता-स्फूर्ति से उन्हें प्रकाशित करता है। वही अग्नि को उष्णतायुक्त करता है और जल को रसमय बनाता है। भयरहित वह परमात्मा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

स्वयं ही प्रकट होता है और ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त समस्त जगत् को अपनी सत्ता-स्फूर्ति से घुमाता रहता है। वह स्थाणु से भी बढ़कर नित्य अचल और आकाश से भी बढ़कर नित्य निर्लेप है। इसी का सदा अन्वेषण, स्तवन और ध्यान करना चाहिये। समस्त प्राणियों के शरीरों के अंदर उनके हृदय कमल में स्थित यह परमात्मा अत्यन्त सुलभ है; क्योंकि हृदय की भी सच्ची पुकार से यह तत्क्षण सम्मुख प्रकट हो जाता है। यह परमात्मदेव सभी शरीरों में उसी प्रकार व्याप्त है, जैसे पुष्पों में सुगन्ध, तिलकणों में तेल और रसयुक्त पदार्थों में माधुर्य। परंतु हृदय में विद्यमान रहने पर भी यह चेतन विवेक विचार के अभाव के कारण जाना नहीं जा सकता; विचारणा के द्वारा ही उस परमेश्वर का ज्ञान होता है। उसे भलीभाँति जान लेने पर प्रियजन के समागम की तरह परमानन्द की प्राप्ति होती है। अतिशय आनन्द प्रदान करने वाले परमात्मारूपी उस परमप्रेमी बन्धु का दर्शन होने पर ऐसी-ऐसी बुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनके प्रभाव से साधक का परमात्मा से कभी वियोग नहीं होता। उसके सांसारिक स्नेह के समस्त बन्धन टूट जाते हैं, काम-क्रोध आदि सारे शत्रु विनष्ट हो जाते हैं, और तृष्णाएँ मन को चंचल नहीं कर पातीं। यही परमात्मा आकाश में शून्यता, वायु में स्पन्दन, तेजस्वी पदार्थों में प्रकाश, जल में उत्तम मधुरता, पृथ्वी में कठोरता, अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता और सृष्टि समूह में सत्तारूप से स्थित है।

अज्ञानरूपी शत्रु ने मेरे विवेक-धन का अपहरण करके उसका सर्वनाश कर डाला था और वह इतने काल तक मुझे कष्ट देता रहा; परंतु इस समय स्वतः उत्पन्न हुई सर्वोत्तम विष्णु-कृपा से मुझे परम तत्त्व का ज्ञान हो गया है, जिससे मैंने उस अज्ञान का परित्याग कर दिया है। इस समय मैंने उस परम ज्ञानरूपी मंत्र के बल से इस अहंकार-पिशाच को शरीररूपी वृक्ष के खोखले से बाहर निकाल दिया है, जिससे मेरा यह शरीररूपी महान् वृक्ष अहंकाररूपी यक्ष से रहित होकर परम पवित्र हो गया है। और प्रफुल्लित वृक्ष के समान सुशोभित हो रहा है। विवेकरूपी धनराशि की प्राप्ति के कारण जब मेरे दुराशारूपी दोष सर्वथा नष्ट हो गये, तब मेरी अज्ञानरूपी दरिद्रता भी पूर्णतया शान्त हो गयी; अतः अब मैं परमेश्वर के रूप में स्थित हूँ। भगवान् की कृपा से मुझे सम्पूर्ण ज्ञातव्य वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त हो गया है और मैंने देखने योग्य सभी दृष्टियों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

को देख लिया है। इस समय मुझे वह वस्तु प्राप्त हो गयी है, जिसके पा लेने पर कुछ भी पाना अवशिष्ट नहीं रह जाता। सौभाग्य की बात है कि मैं उस ऊँची एवं विस्तृत पारमार्थिक भूमि को प्राप्त हो गया हूँ, जिसमें अनर्थों का नाम निशान नहीं है, विषयरूपी सर्पों का अत्यन्त अभाव हो गया है, अज्ञानरूपी कुहरा सर्वथा नष्ट हो गया है, आशारूपी मृगतृष्णा शान्त हो चुकी है, जिसकी सारी दिशाएँ रजोगुणरूपी धूल से रहित हो गयी हैं और जिसमें शान्तिरूपी शीतल छायावाला वृक्ष लहलहा रहा है। भगवान् विष्णु की स्तुति, प्रणाम और प्रार्थना करने से तथा शम एवं यम नियमों के पालन से मुझे इन सच्चिदानन्दघन परमात्मा की प्राप्ति हुई है और उन्हीं की कृपा से मैंने परमात्मा को स्पष्ट रूप से देखा और समझा भी है। वह अविनाशी एवं अहंकार रहित विज्ञानघन परमात्मा भगवान् विष्णु की कृपावश चिरकाल से मेरी स्मृति में सुदृढ़रूप से स्थित हो गया है, जिससे मेरा मोह पूर्णतया शान्त हो गया है। अहंकाररूपी राक्षस नष्ट हो गया है और मैं दुराशारूपी पिशाचिनी से मुक्त हो गया हूँ; अतः अब मेरा संताप मिट गया है। सबसे बड़े हर्ष की बात तो यह है कि मेरी बहुत-सी दुर्वासनाएँ, जो दुराशाओं तथा दीर्घकाल से दुष्ट देह आदि में आत्मत्व के अभिमान से मलिन एवं भयरूपी सर्पों के लिये हितकारिणी थीं, भगवान् ध्यान से विनष्ट हो गयी हैं। मैंने सच्चिदानन्दघन परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है और उन्हें भलीभाँति जान भी लिया है। मुझे उनका यथार्थ अनुभव हो गया है, इसलिये उनका नित्य संयोग मुझे प्राप्त है। अब मेरा मन-जिसके विषय-भोग, संकल्प-विकल्प और इच्छाएँ पूर्णतया नष्ट हो गयी हैं, जो अहंकार से सर्वथा मुक्त है, जिसमें आसक्ति और विषय-भोगों की उत्कण्ठा लेशमात्र भी नहीं रह गयी है और जो बाहर-भीतर की चेष्टाओं से रहित हो गया है, संसार से उपराम होकर परमात्मा में लीन हो गया है।

यों समस्त पदों से उत्कृष्ट आनन्दरूप परमात्मा चिरकाल से मेरी स्मृति में स्थित हुए हैं। भगवन् ! बड़े सौभाग्य से आप मुझे उपलब्ध हुए हैं, अतः आप परमात्मा के लिये मेरा नमस्कार है। प्रभो ! मैं चिरकाल से आपका दर्शन करते हुए प्रणाम करके आलिंगन कर रहा हूँ। भला, त्रिलोकी में आपके अतिरिक्त मेरा परमप्रिय बन्धु और कौन हो सकता है। विश्व को उत्पन्न करने वाले विभो ! आपने अपनी सत्ता स्फूर्ति से सम्पूर्ण विश्व को परिपूर्ण कर रक्खा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है, इसी कारण सर्वत्र आपका नित्य अनुभव होता है; अतः अब आप कहाँ भागकर जा सकते हैं अर्थात् अदृश्य हो सकते हैं। परम प्रिय मित्र ! बहुसंख्य जन्मों के व्यवधान के कारण अज्ञानवश हम दोनों में जो अन्तर प्रतीत होता था, वह अब उस अज्ञान के नाश होने से दूर हो गया है और अभेदरूप समीपता प्राप्त हो गयी है। बड़े सौभाग्य से मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। आप कृतकृत्य, संसार के कर्ता और सबका भरण-पोषण करने वाले हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप संसार वृक्ष के कारण, अविनाशी और विशुद्धात्मा हैं; आपको मेरा प्रणाम है। जिनके हाथों में चक्र और कमल सुशोभित होते हैं, उन विष्णु-रूप आपको नमस्कार है। ललाट पर अर्धचन्द्र धारण करने वाले शिवस्वरूप आपको मैं अभिवादन करता हूँ। कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मारूप आपको प्रणाम है। देवराज इन्द्र के रूप में विराजमान आपकी मैं वन्दना करता हूँ। भगवन् ! हम दोनों में जो यह भेद दृष्टिगोचर हो रहा है, वह समुद्र के जल और उसकी तरंग के समान केवल झूठी कल्पना ही है। वस्तुतः हम दोनों में कोई भेद है ही नहीं आप सृष्टिकर्ता, सबके साक्षीरूप और अनन्त रूपों में प्रकट होने वाले हैं; आपको पुनः-पुनः नमस्कार है। सबके आत्मरूप और सर्वव्यापी आप परमात्मा को बारंबार प्रणाम है। देव ! मिट्टी, काष्ठ, पत्थर और जलमात्र यह सारा जगत् आपके सिवा और कुछ नहीं है अर्थात् आपका ही स्वरूप है; अतः आपकी प्राप्ति हो जाने पर फिर किसी अन्य वस्तु के प्राप्त करने के इच्छा ही नहीं रह जाती। जिसका वेद-वेदान्त के सिद्धान्त, तर्क और पुराणों के गीतों द्वारा वर्णन किया गया है, उस परमात्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर फिर वह कैसे विस्मृत हो सकता है। निर्मल परब्रह्म परमात्मारूप आपका साक्षात्कार हो जाने पर देह के वे सुन्दर विषय-भोग भी आज मेरे हृदय को रुचिकर नहीं लग रहे हैं। आप निर्मल दिव्य ज्योतिःस्वरूप हैं। आपसे ही सूर्य में प्रकाशकता आयी है और शीतल हिमरूप आपसे ही चन्द्रमा को शीतलता की प्राप्ति हुई है। आपके ही प्रभाव से ये पर्वत गुरुता से सम्पन्न हुए हैं और आपने ही इन खेचरों को धारण कर रक्खा है। आपके ही बल से यह पृथ्वी अटलरूप से स्थित है और आपकी ही सत्ता से आकाश आकाशता को प्राप्त हो गये हैं और मैं आपके रूप में परिणत हो गया हूँ; अतः अब मैं आप हूँ और आप मैं हैं। इसलिये देव ! अब हम दोनों में भेद नहीं रह गया है

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अर्थात् हम एकीभाव को प्राप्त हो गये हैं। इसमें भी मेरा सौभाग्य ही कारण है। मेरी आत्मा–जो सम, शुद्ध, निराकार और दिशा–काल आदि से रहित है, उसी में आप स्थित हैं। आपका स्वरूप सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। आपके ही अंदर यह संसार–मंडल था और रहेगा। काष्ठ में व्याप्त हुई आग की भाँति आप इस शरीर के अंदर स्थित हैं। आप ही सर्वोत्तम अमृतस्वरूप रस हैं और तेजस्वी पदार्थों को प्रकाशित करने वाले भी आप ही हैं। आप ही पदार्थों के ज्ञाता और ज्योतियों के प्रकाशक हैं। जैसे सुवर्ण में कड़े, बाजूबंद, केयूर आदि आभूषणों का आरोप किया जाता है, उसी तरह सांसारिक पदार्थ–समूह आपमें ही आरोपित हैं। आपको प्राप्त कर लेने पर प्रारब्धानुकूल प्राप्त हुए सुख–दुःख का प्रवाह समूल नष्ट हो जाता है–ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य के प्रकाश को पाकर अन्धकार का अथवा गरमी को पाकर हिम का नाम–निशान मिट जाता है। भगवन् ! यह सारा विश्व आपका ही स्वरूप है, आपकी जय हो। आप शान्ति परायण, सभी प्रामणों से परे और सम्पूर्ण अगमों द्वारा जानने योग्य हैं; आपकी बारंबार जय हो।

तेईसवां सर्ग समाप्त

चौबीसवां सर्ग

प्रहलाद का आत्मचिन्तन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! शत्रु वीरों का संहार करने वाले प्रहलाद इस प्रकार परमात्मा का चिन्तन करते–करते निर्विकल्प परमानन्दस्वरूप परमात्मा में समाधिस्थ हो गये। अपने महल में यों समाधि–अवस्था में पड़े हुए दैत्यवंशी प्रहलाद का बहुत सा समय व्यतीत हो गया। उस समय यद्यपि असुर श्रेष्ठों ने उन्हें जगाने की बहुत चेष्टा की, तथापि असमय में उन महाबुद्धिमान् की समाधि भंग न हुई। यों निश्चल ब्रह्मस्वरूप एवं शान्त हुए प्रहलाद बाह्य दृष्टि शून्य होकर हजारों वर्षों तक उस दैत्यनगरी में समाधिस्थ पड़े रहे। उस समय हिरण्यकशिपु मर चुका था और उसके पुत्र प्रहलाद समाधिस्थ हो गये थे; अतः जब पाताल में कोई अन्य राजा नहीं रह गया, तब दानवों को अपने अधिपति का अभाव खटकने लगा। इसलिये उन्होंने प्रहलाद को समाधि से जगाने के लिये घोर प्रयत्न किया, परंतु वे नहीं जगे। तब उस राजारहित नगर में बलवान् दैत्य लुटेरों की तरह स्वेच्छानुसार लूट–पाट करने लगे, जिससे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उद्विग्न होकर अन्य दैत्य अपनी अभीष्ट दिशाओं में भाग गये। उस अराजकता के कारण पाताललोक चिरकाल के लिये मात्स्य न्याय से अस्त-व्यस्त और मर्यादा रहित हो गया। वहाँ बलवानों ने दुर्बलों के नगर छीन लिये। मर्यादा के क्रम का सर्वथा विनाश हो गया। सभी लोग स्त्रियों को पीड़ा पहुँचाने लगे। पुरुषों के प्रलाप और रोदन के शब्द चारों ओर व्याप्त हो गये। लोगों ने एक दूसरे के वस्त्र छीन लिये। नगर का मध्यभाग खँडहर के रूप में परिणत हो गया और क्रीड़ोद्यान नष्ट-भ्रष्ट हो गये। सारा राज्य व्यर्थ के अनर्थों से पीड़ित हो गया। दिशाएँ धूल से व्याप्त हो गयीं। अन्न, फल और उत्पात से विवश होकर सारा असुर-समुदाय चिन्ताग्रस्त हो गया। उस समय वह असुर-मण्डल भय से उद्विग्न हो गया था। वहाँ स्त्रियाँ, धन, मंत्र और युद्ध मर्यादाहीन हो गये थे। जिनके धन और स्त्रियों का अपहरण हो गया था उनका करुण क्रन्दन चारों ओर गूँज रहा था, जिससे वह दैत्य-समाज कलियुग आने पर लूट-पाट करने वाले क्रूर लुटेरों-सा जान पड़ता था।

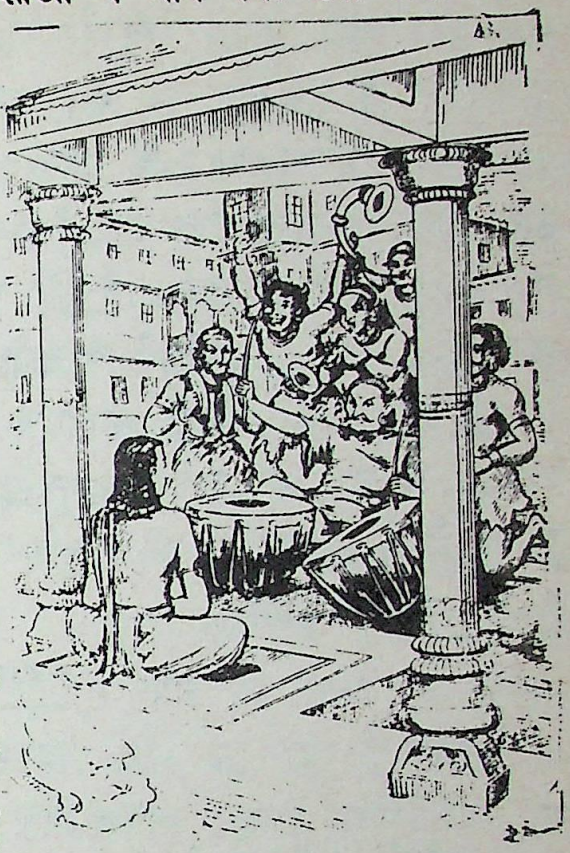

राघव ! तदनन्तर एक बार शेषशय्या पर विराजमान शत्रुसूदन श्रीहरि, जो लीलापूर्वक सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं, देवताओं की प्रयोजन सिद्धि के लिये अपनी बुद्धि से सांसारिक स्थिति का निरीक्षण करने लगे। पहले उन्होंने मन-ही-मन स्वर्गलोक का अवलोकन करके तत्पश्चात् भूतलवासियों के आचरणों का निरीक्षण किया। फिर वे मन से ही शीघ्र दैत्यों द्वारा सुरक्षित पाताल लोक में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि दानवराज प्रहलाद अटल समाधि में स्थित हैं, जिससे अमरावतीपुरी में सम्पत्ति की भरपूर वृद्धि हो गयी है। तब जो शेष शय्या पर पद्मासन लगाकर बैठे थे तथा जिनके हाथों में शंख, चक्र और गदा सुशोभित हो रहे थे, उन भगवान् नारायण के मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि मैं रसताल में जाकर दानवराज प्रहलाद को उसके कर्म में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पहले की तरह उसी प्रकार स्थापित करूँगा, जैसे बसन्त ऋतु वृक्ष को पुनः उसकी पूर्व दशा में ला देती है। यदि मैं प्रहलाद के अतिरिक्त किसी दूसरे को दानवराज के पद पर स्थापित करता हूँ तो वह निश्चय ही देवताओं पर आक्रमण कर देगा। साथ ही प्रहलाद का यह अन्तिम शरीर परम पावन है। वह इसी शरीर से कल्पपर्यन्त यहाँ निवास करेगा; क्योंकि परमेश्वर की नियति देवी ने ऐसा ही निश्चित किया है कि प्रहलाद को इसी शरीर से यहाँ एक कल्प तक रहना चाहिए। इसलिये मैं वहाँ जाकर दैत्यराज प्रहलाद को ही जगाऊँगा, जिससे वह जीवन्मुक्तों की समाधि में स्थित होकर दैत्याधिपत्य को ग्रहण करे। निश्चय ही हम मर्यादारहित दस्युओं के अत्याचार से भयानक उस पाताल में जाकर दैत्यराज प्रहलाद को समाधि से विरत करेंगे और इस सम्पूर्ण जगत् को पूर्ववत् स्वस्थ बनायेंगे।

चौबीसवां सर्ग समाप्त

पच्चीसवां सर्ग

भगवान् विष्णु का पाताल में जाना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–वत्स राम! यों विचारकर सर्वात्मा भगवान् श्रीहरि शंख, चक्र, गदा, पद्म और लक्ष्मी आदि पार्षदों के साथ अपने नगर क्षीरसागर से चल पड़े। वे उसी क्षीरसागर के तले के छिद्र से निकलकर प्रहलाद के नगर में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने स्वर्णमय महल के मध्य में स्थित असुरराज प्रहलाद को देखा। भगवान् विष्णु के तेज से प्रभावित होकर वहाँ का सारा दैत्य समुदाय धूल की तरह उड़कर उसी प्रकार अदृश्य हो गया, जैसे सूर्य की किरणों से भयभीत होकर उलूक छिप जाते हैं। तब अपने परिवार सहित श्रीहरि ने दो-तीन प्रधान-प्रधान असुरों को साथ लेकर प्रहलाद के महल में प्रवेश किया। उस समय वे गरुड़ की पीठ पर सवार थे। लक्ष्मीजी उन पर चँवर डुला रही थीं। वे शंख, चक्र गदा आदि अपने (सजीव) आयुधों से घिरे हुए थे, और देवर्षि तथा मुनि उनकी वन्दना कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर भगवान् विष्णु ने कहा 'महात्मन् ! समाधि का त्याग करके उठो यों कहते हुए अपना पांचजन्य शंख बजाया, जिसकी ध्वनि से सारी दिशाएँ गूँज उठीं। विष्णु भगवान् के बल पूर्वक फूँकने से इस शंख से ऐसा घोर शब्द प्रकट हुआ, जो प्रलयकाल में एक साथ परिक्षुब्ध हुए मेघों और सागरों की गर्जना के समान वेगशाली था। उस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

शब्द से भयभीत होकर आनन्द पूर्वक हर्ष मनाने लगे। प्रहलाद के शरीर में प्राण और अपान का संचार होने से नाड़ीविवरों में सवेदन आरम्भ हो गया। फिर तो जैसे वायु से पीड़ित होकर कमल चंचल हो जाता है, उसी तरह उनका शरीर स्पन्दन युक्त हो गया तथा नेत्र, मन, प्राण और शरीर-सभी विकसित हो गये। इस अवसर पर भगवान् श्रीहरि ने ज्यों ही 'जागो' ऐसा कहा, त्यों ही वह सचेत हो गया। तब कल्प के आदि में जैसे त्रिलोकेश्वर भगवान् कमलयोनि ब्रह्मा से कहते हैं, उसी प्रकार श्रीहरि ने प्रहलाद से-जिसके नेत्र प्रफुल्लित हो गये थे, जिसे 'मैं प्रहलाद हूँ, ऐसी पहचान हो चुकी थी और जिसकी पूर्व स्मृति सुदृढ़ हो गयी थी-यों कहना प्रारम्भ किया-

"साधो ! अब उठो, शीघ्र उठो और इस विशाल दैत्य-राज्यलक्ष्मी का तथा अपने स्वरूप का स्मरण करो। अनघ ! तुम तो जीवन्मुक्त हो, अतः राज्य शासन करते हुए ही उद्वेगरहित होकर अपने इस शरीर को कल्पान्तपर्यन्त कर्मों से प्रेरित करते रहो। प्रलय के समय जब इस शरीर का नाश हो जायगा, तब तुम निरतिशय सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में निवास करोगे-ठीक उसी तरह, जैसे घट के फूट जाने पर घटाकाश महाकाश में विलीन हो जाता है। तुम्हारी यह शुद्ध देह कल्पान्त तक स्थित रहने वाली है, लोक के ऊँच-नीच व्यवहारों का अनुभव कर चुकी है और जीवन्मुक्ति से सुशोभित है। मैं गरुड़ पर सवार होकर स्वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भासित दसों दिशाओं में विचरता रहता हूँ। ऐसी परिस्थिति में तुम इस शरीर का परित्याग मत करो। ये हम लोग हैं। ये पर्वत हैं। ये प्राणी हैं। यह जगत् है। यह आकाश है। ये सभी जब प्रलयपर्यन्त रहने वाले हैं, तब तुम भी तब तक इस शरीर को कायम रक्खो। जिसकी बुद्धि स्वात्म तत्त्व के विचार से ऊबती नहीं, उस यथार्थदर्शी तत्त्वज्ञानी का जीवन शोभा देता है। जिसका अहंभाव नष्ट हो गया है और जिसकी बुद्धि स्वार्थ में लिप्त नहीं है तथा जिसका सम्पूर्ण पदार्थों में समभाव है, उसका जीवन सुन्दर है। जो राग-द्वेषविहीन अतएव अन्तःशीतल बुद्धि से साक्षी की भाँति इस जगत् को देखता है, उसी के जीवन की शोभा होती है। जो सत्य का दृष्टि का अवलम्बन करके वासना रहित होकर लीलापूर्वक इस जगत् व्यवहार को करता हुआ भी न तो अनुकूल की प्राप्ति से अन्तःकरण में प्रसन्नता का अनुभव करता है और न प्रतिकूल की प्राप्ति होने पर उद्विग्न होता है, उसी का जीवन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्रशसंनीय है। जिसके गुणों के सुनने पर, स्वरूप का दर्शन करने पर और जिसकी याद आ जाने पर प्राणियों को आनन्द प्राप्त होता है, उसी का जीवन सार्थक है।

"असुरेश ! इस वर्तमान देह की स्थिरता को लोग जीवन कहते हैं और देहान्तर की प्राप्ति के लिये इसके परित्याग को मरण कहा गया है; किंतु महामते ! तुम तो इन दोनों जन्म मरणरूप पक्षों से रहित हो, अतएव इस लोक में वस्तुतः न तो तुम्हारा जन्म है और न मरण ही। शत्रुसूदन ! यह सब तो मैंने तुम्हें समझाने के लिये कहा है। सर्वज्ञ ! तुम्हारा तो न कभी जन्म होता है और न कभी तुम मरते हो; क्योंकि तुम तो देह दृष्टि से सर्वथा रहित हो, इसी कारण देह में स्थित रहते हुए भी तुम विदेह हो। तुम्हें परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो गया है, अतएव तुम प्रबुद्ध हो गये हो। भला, प्रबुद्ध हुए पुरुषों का शरीर से क्या सम्बन्ध है ? यह परिच्छिन्न देह तो केवल अज्ञानियों की दृष्टि में ही है अर्थात् 'देह मैं हूँ' ऐसा अभिमान अज्ञानियों को ही होता है। तुम्हारी बुद्धि तो सर्वदा एकमात्र परमात्मा में ही लीन रहती है, अतएव तुम चित्प्रकाश से संयुक्त हो। इसलिये सब कुछ तुम्हीं हो तत्त्वज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुष प्रलयकाल में उत्पातसूचक वायुओं के बहने पर, प्रलयाग्नि के धधकने तथा पर्वतों के ढह जाने पर भी नित्य परमात्मा में ही स्थित रहता है। संसार के सभी प्राणी स्थित रहें अथवा सब के सब चले जायँ, उनका विनाश हो जाय अथवा उनकी वृद्धि हो तत्त्वज्ञानी तो परमात्मा में ही स्थित रहता है, उससे विचलित नहीं होता। परमात्मा इस शरीर का नाश हो जानेपर न तो नष्ट होता है, न इसके वृद्धिगत होने पर बढ़ता है और न इसके चेष्टा करने पर चेष्टाशील ही होता है। तब 'इस देह को धारण करने वाला देही मैं हूँ' चित्त के ऐसे अज्ञान के नष्ट हो जाने पर 'मैं इसका त्याग करता हूँ अथवा नहीं करता' ऐसी निरर्थक कल्पना क्यों उत्पन्न होती हैं ? तात ! जिन्हें तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है, उनके हृदय में 'मैं इस कार्य को समाप्त करके इसे करूँगा और इसका त्याग करके इसे छोड़ूँगा' ऐसे संकल्पों का सर्वथा अभाव हो जाता है । ज्ञानी पुरुष इस जगत् में शास्त्रोक्त सारे कर्मों को करते हुए भी कुछ नहीं करते और उनका कभी भी अनुष्ठान न करने पर वे सदा अकर्तारूप से ही स्थित रहते हैं। इस प्रकार संसार में कर्तृत्व और भोक्तृत्व का उपशम हो जानेपर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

एकमात्र शान्ति ही शेष रह जाती है, तब विद्वान् लोग उसे मुक्ति नाम से पुकारते हैं। ग्राह्य-ग्राहक-सम्बन्ध का विनाश होने पर परम शान्ति का उदय होता है। वही शान्ति जब स्थिरता को प्राप्त हो जाती है, तब मोक्ष नाम से कही जाती है। जिनका चित्त परमात्मा में ही संलग्न है, ऐसे ज्ञानीजन संसार रमणीय विषयभोगों के प्राप्त होनेपर न तो प्रसन्न होते हैं और न मन के विपरीत दुःखों के आ पड़ने पर उद्विग्न ही होते हैं। अर्थात् सुख दुःख उनकी समान स्थिति रहती है। महात्मन् ! तुम परमात्मा के परमपद में स्थित होकर ब्रह्मा के एक दिन (इस कल्प के अन्त) तक इस पाताल में ही विविध गुणों से युक्त राज्य लक्ष्मी का उपभोग करके अवनिाशी परम पद को प्राप्त होओ।''

पच्चीसवां सर्ग समाप्त

छब्बीसवाँ सर्ग

तत्व ज्ञान का उपदेश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जब जगद्रूपी रत्नों के आकर तथा त्रैलोक्यरूपी अदभुत पदार्थों को प्रदर्शन करने वाले भगवान् विष्णु ने चन्द्रकिरण-सदृश शीतल वाणी द्वारा इस प्रकार कहा, तब जिसके नेत्र-कमल आनन्दवश प्रफुल्लित हो उठे थे तथा जिसने मननक्रम ग्रहण कर लिया था, उस धैर्यशाली प्रहलाद नामक देह ने हर्षपूर्वक यों कहना आरम्भ किया।

प्रहलाद ने कहा-भगवन् ! आपकी कृपा से मुझे तत्वज्ञान द्वारा भलीभाँति स्वरूपावस्थिति प्राप्त हो गयी है, जिससे मैं समाधि अथवा व्युत्थानावस्था-दोनों में वास्तविकरूप से सदा ही सम हूँ। देवाधिदेव ! मैंने चिरकाल तक विशुद्ध बुद्धि द्वारा अपने हृदय में आपका साक्षात्कार किया है। देव ! सौभाग्य की बात है कि अब पुनः बाहर नेत्रों से भी आपका प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ। महेश्वर ! मैं जो समस्त संकल्पों से रहित इस अनन्त दृष्टि में स्थित था, वह शोक, मोह, वैराग्य-चिन्ता, देहत्याग के प्रयोजन अथवा संसार के भय से नहीं था; क्योंकि जब एक ही विज्ञानानन्दघन परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है, तब शोक, हानि, देह, संसार, स्थिति और भय-अभय कहाँ से प्राप्त होंगे। परंतु परमेश्वर ! 'हाय ! मैं विरक्त हो गया हूँ, अतः इस संसार का त्याग करता हूँ, इस प्रकार की अज्ञानियों द्वारा की गयी चिन्ता हर्ष शोकरूप विकार उत्पन्न करने वाली होती है। यह सुख है, यह दुःख है; यह मेरा है, यह मेरा नहीं है-यों द्विविधाग्रस्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चित्त ही मूर्ख का विनाशक होता है, पण्डित का नहीं। मैं अन्य हूँ और यह अन्य है-ऐसी वासना इस जगत् में उन अज्ञानी प्राणियों को ही प्रभावित करती है, जो तत्वज्ञान से बहुत दूर हैं। कमललोचन ! जब सभी प्राणियों में आत्मरूप से आप ही व्याप्त हैं, तब ग्रहण-त्याग के पक्ष का अवलम्बन करने वाली कल्पना कहाँ से हो सकती है। देवेश्वर ! समाधिकाल में तो मैं भाव-अभाव से परे रहकर ग्रहण-त्याग से रहित था; परंतु इस समय प्रबुद्ध होकर वही कार्य करने के लिये उद्यत हूँ, जो आपको रुचिकर है। भगवन् ! आप तो वे ही पुण्डरीकाक्ष नारायण हैं, जिनकी तीनों लोकों में पूजा होती है; अतः मेरे द्वारा स्वभावतः प्राप्त हुई पूजा को ग्रहण कीजिये। यों कहकर दानवराज प्रहलाद ने उन भुवनाधिपति भगवान् गोविन्द की- जिनके अंदर त्रिलोकी वर्तमान थी तथा जो शंख-चक्र आदि आयुधों, अप्सरासमूह, देवगण और पक्षीराज गरुड़ के साथ सामने खड़े थे-पूजा की। पूजोपरान्त चरणों में पड़े हुए प्रहलाद से भगवान् लक्ष्मीपति ने कहा।

श्रीभगवान् बोले-दानवाधीश ! उठो और तब तक इस सिंहासन पर बैठे रहो, जब तक मैं शीघ्र स्वंय अपने हाथ से ही तुम्हारा राज्याभिषेक करता हूँ। साथ ही पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनकर जो ये साध्य, सिद्ध और देवगण यहाँ आए हुए हैं, ये सब-के सब तुम्हारी मंगलकामना करें। यों कहकर कमलनयन भगवान् नारायण ने प्रहलाद को सिंहासन पर बैठा दिया। तदनन्तर अप्रमेय आत्मबल से सम्पन्न श्रीहरि ने समस्त महर्षि-समुदाय, सारे सिद्धगण, विद्याधर और लोकपालों को साथ लेकर इन महान् असुर प्रहलाद को आवाहन किये गये क्षीराब्धि आदि महासागरों, गंगा आदि सरिताओं और सम्पूर्ण तीर्थों के जल से सींचकर दैत्यराज्य को उसी प्रकार अभिषिक्त कर दिया, जैसे पूर्वकाल में देवगणों द्वारा स्तुति किये जाते हुए इन्द्र का स्वर्गलोक के राज्य पर अभिषेक किया था। उस समय अभिषिक्त हुए प्रहलाद की देवता और असुर- सभी स्तुति कर रहे थे। तब सुरासुरवन्दित भगवान् मधुसूदन उनसे इस प्रकार बोले।

श्रीभगवान् ने कहा-निष्पाप प्रहलाद ! जब तक सुमेरुगिरि, पृथ्वी तथा सूर्य और चन्द्रमा का मण्डल कायम रहेगा, तब तक तुम राज्य करोगे और तुम्हारे समस्त गुणों की प्रशंसा होगी। तुम राग, भय और क्रोध से रहित होकर इष्ट-अनिष्ट फलों का परित्याग करके समतायुक्त बुद्धि से इस राज्य का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama (I.E.S) Jammu Collection

भलीभाँति पालन करो। शत्रु-प्रजा आदि के ऊपर निग्रह-अनुग्रह आदि यथावसर प्राप्त हुई दृष्टियों से देश, काल और क्रिया के अनुरूप प्राप्त हुए कर्तव्य का तुम न्यायपूर्वक पालन करो और राग-द्वेष आदि विषमता का त्याग करके समबुद्धि बने रहो। आत्मा देह से अतिरिक्त है-इस भाव से लाभ-हानि में सम तथा इदंता-ममता से रहित कार्य करते हुए भी तुम इस जगत् में बन्धन को नहीं प्राप्त होओगे। जगद्-व्यवहार को तो तुमने देख ही लिया है और उस अनुपम परमपद का अनुभव भी तुम्हें प्राप्त हो गया है। इस प्रकार तुम्हें देश-कालानुरूप सभी वस्तुएँ ज्ञात हैं। अब दूसरा और क्या उपदेश दिया जाय। अर्थात् व्यवहार और परमार्थ-दोनों में तुम कुशल हो, अतः अब तुम्हें उपदेश की आवश्यकता नहीं है। राग, भय और क्रोध से रहित तुम्हारे राजा होने पर अब देवताओं द्वारा प्राप्त दुःख न तो असुरों में टिक सकेगा और न उनका संहार ही कर सकेगा। आज से देवताओं और दानवों का युद्ध नहीं होगा, जिससे जगत् स्वस्थ हो जायेगा।

छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त

सत्ताईसवाँ सर्ग

पुरुषार्थ की शक्ति का कथन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-वत्स राम ! प्रहलाद से ऐसा कहकर कमलनयन भगवान् नारायण देवता, किन्नर और मनुष्यों के साथ उस दैत्यसदन से चल पड़े। उस समय प्रहलाद आदि असुर पीछे से उन पर अंजलि भर-भरकर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे, जिससे गरुड़ के पंख का पिछला भाग पुष्पों से आच्छादित हो गया। इस प्रकार क्रमशः चलते हुए वे क्षीरसागर के तट पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देवगणों को विदा कर दिया और स्वयं शेषशय्या पर स्थित हो गये। इस प्रकार शेषशय्या पर विष्णु, स्वर्गलोक में देवताओं सहित इन्द्र और पाताल में दानवराज प्रहलाद-तीनों संतापरहित होकर स्थित हुए ! श्रीराम ! प्रहलाद की ज्ञान प्राप्ति सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाली तथा अमृत के समान शीतल है। उसका वर्णन मैंने तुम्हें सुना दिया। संसार में जो मनुष्य-चाहे वे घोर-से-घोर पातकी ही क्यों न हों- विवेकपूर्वक उसका विचार करेंगे, वे शीघ्र ही परमपद को प्राप्त हो जायेंगे। अज्ञान ही पाप कहलाता है और उस अज्ञान का नाश विवेकपूर्वक विचार करने से होता है; इसलिये पाप का समूल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विनाश करने वाले विचार का परित्याग नहीं करना चाहिये। प्रहलाद की इस सिद्धि का विवेकपूर्वक विचार करने वाले लोगों के पूर्व के सात जन्मों में किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं-इसमें संशय नहीं है।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन्! महामनस्वी प्रहलाद का मन तो परमपद में तल्लीन था, वह पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनकर कैसे प्रबुद्ध हुआ ? यह बताने की कृपा करें।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-निर्दोष स्वरूपवाले राम ! लोक में दो प्रकार की मुक्ति होती है-एक सदेहमुक्ति अर्थात् जीवन्मुक्ति और दूसरी विदेहमुक्ति। इन दोनों का विभाग इस प्रकार है, सुनो। जिस अनासक्त बुद्धिवाले पुरुष की इष्टानिष्ट कर्मों के ग्रहण-त्याग में अपनी कोई इच्छा नहीं रहती अर्थात् जिसकी इच्छा का सर्वथा अभाव हो गया है, ऐसे पुरुष की स्थिति को तुम जीवन्मुक्त-अवस्था-सदेह मुक्ति समझो। फिर देह का विनाश होने पर पुनर्जन्म से रहित हुई वही जीवन्मुक्ति विदेहमुक्ति कही गयी है। श्रीराम ! जिन्हें विदेहमुक्ति की प्राप्ति हो गयी है, वे फिर जन्म धारण करके दृश्यता को नहीं प्राप्त होते-ठीक उसी तरह, जैसे भुना हुआ बीज जमता नहीं है। महाबाहु राम ! प्रहलाद के अन्तःकरण में शुद्ध सत्वमयी वासना स्थित थी, वह शंखध्वनि होते ही उद्बुद्ध हो उठी। अपनी उसी वासना से प्रहलाद को बोध प्राप्त हुआ था। श्रीहरि ही समस्त प्राणियों के आत्मा हैं, इसलिये उनके मन में जैसा संकल्प होता है, वह शीघ्र ही उसी रूप में मूर्त हो जाता है; क्योंकि परमात्मा ही सबके कारण हैं। भगवान् वासुदेव ने ज्यों ही ऐसा संकल्प किया कि प्रहलाद प्रबुद्ध हो जाय, त्यों ही वह क्षणमात्र में उठ बैठा। अर्थात् भगवान् के संकल्प से ही प्रहलाद पांचजन्य शंख की ध्वनि से प्रबुद्ध हो गया। भगवान् वासुदेव ने निजी स्वार्थ के बिना ही प्राणियों के कल्याण के हेतु अपने आत्मा में ही जगत् की सृष्टि लिये विष्णुरूप से शरीर धारण किया है। परमात्मा के साक्षात्कार से शीघ्र ही भगवान् माधव का दर्शन प्राप्त हो जाता है और उन माधव की आराधना से शीघ्र ही निर्गुण-निराकार परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन् ! आप तो सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता हैं; अतः आपके शुद्ध वचनरूपी किरणों से हम उसी प्रकार आल्हादित हुए हैं, जैसे चन्द्रमा की रश्मियों के स्पर्श से अनाज के पौधे प्रफुल्लित हो जाते हैं। परंतु

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

गुरुदेव ! यदि पुरुषार्थपूर्वक प्रयत्न करने से ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है तो भगवान् माधव के वरदान बिना प्रह्लाद अपने पुरुषार्थ से ही क्यों नहीं प्रबुद्ध हुआ ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-राघव ! महामनस्वी प्रह्लाद ने जिन-जिन पदार्थों को प्राप्त किया था, वे सभी उसे अपने पुरुषार्थ से ही मिले थे। उनकी प्राप्ति में दूसरा कोई कारण नहीं है। (क्योंकि प्रह्लाद ने परम पुरुषार्थ से जो भक्ति की, उसी से भगवान् ने उनको वर दिया; इसलिये भगवान् का वर मिलना भी अपना पुरुषार्थ ही है।) जो विष्णु है, वही सबका आत्मा है, वही विष्णु है। इस प्रकार पुष्प और उसकी सुगन्ध की भाँति आत्मा और नारायण भिन्न नहीं हैं। पहले-पहल प्रह्लाद नामक आत्मा ही अपने-आप अपनी परम शक्ति से ही विष्णुभक्ति में नियुक्त हुआ। फिर उसने स्वात्मभूत विष्णु से ही स्वयं यह वर प्राप्त किया और स्वयं ही अपने मन को विचारशील बनाकर स्वयं ही आत्मज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार कभी तो आत्मा अपने आप ही अपनी शक्ति से प्रबुद्ध हो जाती है और कभी भक्तिरूपी प्रयत्न से प्राप्त होने वाले विष्णु रूप से प्रबोधित किया जाता है। इसलिये किसी को जहाँ-कहीं भी जो कुछ प्राप्त होता है, वह सब उसे अपनी सामर्थ्यरूप प्रयत्न से ही मिलता है; कहीं भी किसी अन्य कारण से उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त

अट्ठाईसवाँ सर्ग

मायाचक्र का निरूपण

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! जो भगवत्प्राप्ति के साधनरूप सम्पूर्ण अंगों का उच्छेदक तथा यों वेगपूर्वक घूमता रहता है, उस मायाचक्र का निरोध कैसे किया जाय ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-राघव ! यह संसाररूपी मायाचक्र नित्य भ्रमणशील तथा भ्रान्तिदायक है। तुम चित्त को इस चक्र की महानाभि समझो। जब पुरुष प्रयत्नपूर्वक बुद्धि द्वारा इस चित्त को स्तम्भित कर देता है, तब जिसकी नाभि पकड़ ली गयी है, ऐसा यह मायाचक्र शीघ्र ही आगे बढ़ने से रुक जाता है। इस चित्त निरोधरूपी युक्ति के बिना आत्मा को अनन्त दुःखों की प्राप्ति हो रही है, परंतु इस उपर्युक्त दृष्टि के प्राप्त होने पर तुम सारे-के-सारे दुःखों को

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji-shyama-prasad-mukherji-jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

क्षणमात्र में नष्ट हुआ ही समझो। यह संसार एक महाभयंकर रोग है। चित्त निरोध ही इस रोग की परमोत्तम औषध है। इस औषध के अतिरिक्त अन्य किसी प्रयत्न से उस व्याधि की शान्ति नहीं होती। जैसे घड़े के भीतर घटाकाश रहता है, परंतु घड़े के नष्ट होने पर घटाकाश नहीं रह जाता, उसी तरह यह संसार चित्त के अंदर ही है, अतः चित्त का नाश होने पर संसार भी विनष्ट हो जाता है। यह चित्त जब भूत और भविष्य के पदार्थों का चिन्तन न करके वर्तमान समय का बाह्य बुद्धि द्वारा अनायास ही उपयोग करने लगता है, उसी क्षण अचित्तता को प्राप्त हो जाता है; क्योंकि चित्त की वृत्तियाँ तभी तक रहती हैं, जब तक संकल्प की कल्पना बनी रहती है-ठीक उसी तरह, जैसे जब तक मेघ का विस्तार रहता है, तभी तक आकाश में जल के अणु वर्तमान रहते हैं। संकल्प-कल्पना भी तभी तक रहती है, जब तक चेतन जीवात्मा मन के साथ है। रघुनन्दन ! यदि ऐसी भावना की जाय कि चेतन जीवात्मा मन से पृथक है तो जैसे सिद्ध पुरुषों में मूल अविद्या सहित वासनाओं का ज्ञानद्वारा जलकर अत्यन्ताभाव हो जाता है, उसी तरह तुम अपने संसार के मूलों-वासनाओं को मूल विद्या सहित जलकर भस्म हुआ समझो। चित्त से शून्य हुआ चेतन प्रत्यक्चेतन अर्थात् शुद्ध आत्मा कहा जाता है। वास्तव में तो निर्मनस्क रहना उसका स्वभाव ही है; क्योंकि उसमें संकल्परूपी मल नहीं है। वह शुद्ध आत्मा ही वास्तव में सत्यता है; वही कल्याणरूपता, सच्चिदानन्द परमात्मा की प्राप्तिरूप अवस्था, सर्वज्ञता और वास्तविक दृष्टि है। किंतु जिस समय उसका विनाशकाल मन के साथ संयोग बना रहता है, उस समय उसकी उपर्युक्त स्थिति नहीं रहती; क्योंकि जहाँ मन रहता है, वहाँ उसके सनिकट अनेक प्रकार की आशाएँ और सुख-दुःख उसी प्रकार सदा आते रहते हैं, जैसे शमशानभूमि में कौए मँडराया करते हैं। परंतु जब परमार्थ वस्तुरूप परमात्मा के तत्व का ज्ञान हो जाता है, तब उसे पुरुष के मन के संकल्प में आशा आदि सम्पूर्ण भावों की व्यवस्थापिका संसाररूपी लता का बीज उत्पन्न ही नहीं होता; क्योंकि उस समय उसका मन भुने हुए बीज के समान हो जाता है। शास्त्राध्ययन और सज्जनों की संगति का निरन्तर अभ्यास करने से सांसारिक पदार्थों की अवास्तविकता का ज्ञान होता है, अर्थात् जगत् के पदार्थ वास्तव में असत् हैं-ऐसा अनुभव होता है। इसलिये निश्चयपूर्वक परम प्रयत्न के साथ मन को

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अविवेक से हटाकर उसे बलात्कार से शास्त्राध्ययन और सत्पुरुषों के संग में लगाना चाहिये; क्योंकि परमात्मा का साक्षात्कार होने में शुद्ध आत्मा ही प्रधान कारण है।

श्रीराम ! अपना आत्मा ही अपने द्वारा अनुभूत दुःखों को त्याग देने की इच्छा करता है, अतएव परमात्मा का साक्षात्कार होने में एकमात्र शुद्ध आत्मा ही मुख्य हेतु कहा गया है। इसलिये तुम बोलते हुए, त्याग करते हुए, ग्रहण करते हुए तथा आँखों को खोलते और मींचते हुए भी अचिन्त्य, अनन्त, नित्यविज्ञानानन्दघन परमात्मा में स्थित रहो। इसी प्रकार बाल्य, यौवन और वृद्धावस्था में, दुःखों में, सुखों में तथा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में तुम सदा-सर्वदा अपने वास्तविक सच्चिदानन्दस्वरूप में बने रहो। जो आत्मज्ञान सम्पन्न एवं अमृतस्वरूप परमार्थ-तत्व का अनुभव करने वाला है, उसके लिये हलाहल विष भी अमृत के समान फलदायक हो जाता है। जिस समय निर्मल एवं अखण्ड चैतन्य का ज्ञान नहीं रहता, उस समय संसाररूपी भ्रम का कारण स्वरूप महामोह वृद्धि को प्राप्त होता है और जब उस निर्मल एवं अखण्ड सच्चिदानन्दघन परमात्मा में दृढ़ स्थिति हो जाती है, तब संसार-भ्रम का कारणभूत मोह सर्वथा विनष्ट हो जाता है। श्रीराम ! जो अद्वितीय आनन्दरूप ब्रह्म में स्थित होकर अपने विज्ञानानन्दघन स्वरूप का साक्षात्कार करने वाला है, उसके लिये स्वादिष्ट रसायन भी विष-तुल्य हो जाता है। परमात्मा के तत्व को जानने वाला महापुरुष समस्त प्रकाशों में, सभी प्रभावों में, समस्त बलवानों में, सम्पूर्ण महान् व्यक्तियों में तथा सभी उन्नतिशाली मनुष्यों में परम उन्नत होता है। जिस परमात्मा की प्रभा से सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, मणि और तारे आदि प्रकाशित होते हैं, उस जगदीश्वर का जिन महापुरुषों को ज्ञान हो गया है, वे भी सूर्यादि की भाँति जगत् में सुशोभित होते हैं। परंतु श्रीराम ! जो मानव परमात्मविषयक ज्ञान से हीन हैं, वे पृथ्वी के दरारों में रहने वाले कीड़ों, गदहों एवं अन्य तिर्यग्योनि में उत्पन्न हुए जीवों से भी अत्यन्त तुच्छ माने जाते हैं। आत्मज्ञानविहीन पुरुष की सारी चेष्टाएँ दुःखदायिनी होती हैं। वह भूतल पर चलाता-फिरता हुआ भी मुर्दा ही है। इसलिये आत्मज्ञ पुरुष को चाहिये कि वह भोगों के रसों में आसक्त न होते हुए उनके उपभोग के तिरस्कार द्वारा मन को अत्यन्त सूखे हुए पत्ते के समान समयानुसार धीरे-धीरे कृश बना डाले; क्योंकि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

यह मन अनात्मा में आत्मभाव, देहमात्र में ऐसी आस्था, पुत्र, कलत्र और कुटुम्ब की ममता, अहंकार के विकास, ममतारूपी मल में सने रहना, 'यह मेरा है' ऐसी भावना, जरा-मरणरूपी दुःख, व्यर्थ ही उन्नति को प्राप्त हुए काम-क्रोधादि दोषरूपी सर्पों के विषरूप संसार की ममता, आधिव्याधि की अभिवृद्धि, संसार की रमणीयता में विश्वास, हेयोपादेय के प्रयत्न, स्त्री-पुत्र आदि के प्रति स्नेह तथा रत्नों और स्त्रियों के आपातरमणीय लाभ से उत्पन्न हुए धन के लोभ से स्थूलता को प्राप्त होता है। यह चित्त सर्प के समान है, जो दुराशारूपी दूध के पीने से, भोग रूपी वायु के बल से, आदरप्रदान से तथा नाना प्रकार के विषयों में संचरण करने से मोटा-ताजा हो जाता है। आना और जाना-उत्पत्ति-विनाश ही जिनका स्वरूप है तथा जो विष की विषमता को सूचित करने वाले हैं, ऐसे भीषण भोगों का उपभोग करने से चित्त स्थूलभाव को प्राप्त हो जाता है।

राघव ! यह चित्त विषवृक्ष के समान है, जो चिरकाल से शरीररूपी बुरे गड्डे में उगा हुआ है। आशाएँ ही इसकी विशाल शाखाएँ और विकल्प ही इसके पत्ते हैं। अनेक प्रकार की चिन्ताएँ ही इसकी लंबी-लंबी मंजरियाँ हैं। कामोपभोगों के समूह ही इसमें खिले हुए पुष्प हैं। यह जरा-मरण और व्याधिरूपी फलों के भार से झुका हुआ है। इस पर्वतकार अद्भुत वृक्ष को तुम निश्शंक होकर हठपूर्वक विवेक-विचाररूपी मजबूत आरे से काट डालो। जब तक इस चित्तरूपी पिशाच को-जो अज्ञानरूपी विशाल वटवृक्षों पर विश्राम करने वाला है, तृष्णा-पिशाची जिसकी परिचर्या करती है और जो चेतनरहित सैकड़ों देह धारण करके अपनी कल्पनारूपी अटवी में चिरकाल से भटक रहा है-विवेक, वैराग्य, गुरुसंनिधि, प्रयत्न और मन्त्र आदि स्वतन्त्र उपायों द्वारा चेतन जीवात्मा के निवास-स्थानरूप अपने हृदय से हटाया नहीं जायेगा, तब तक इस जगत् में आत्मसिद्धि की प्राप्ति कैसे हो सकती है।

अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त

उन्तीसवाँ सर्ग

भगवत्प्राप्ति महिमा

रघुनन्दन ! मेरे वाक्यों के एकमात्र तत्वज्ञ तो तुम्हीं हो, इसीलिये केवल मेरे वाक्यार्थों की भावना से तुम्हें सुख मिलता है। वत्स राम ! पूर्वकाल में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उद्दालक मुनि को पंच महाभूतों के विचार-विमर्श से जिस प्रकार परमोत्कृष्ट एवं अविनाशी दृष्टि प्राप्त हुई थी, वह वृत्तान्त तुम्हें कहता हूँ; सुनो! प्राचीन काल में पर्वतराज गन्धमादन के किसी भूभाग में एक ऊँचे शिखर पर एक मुनि निवास करते थे। उनका नाम उद्दालक था। अभी उनकी जवानी नहीं आयी थी। वे स्वाभिमानी और महाबुद्धिमान् थे। तथा मौन रहकर घोर तपस्या में संलग्न थे। पहले तो उनकी बुद्धि मन्द थी। उनमें विवेक-विचार भी नहीं था। उन्हें परमपररूप शान्ति की प्राप्ति भी नहीं हुई थी तथा वे परमात्मा के तत्व से भी अनभिज्ञ थे; परंतु उनका अन्तःकरण शुभ भावों से युक्त था। तदनन्तर तपस्या, नियमपूर्वक शास्त्रार्थ-चिन्तन और अभ्यास के पाकस्वरूप क्रमों से उनके हृदय में विवेक जाग उठा। उनका मन तो शुद्ध था ही, अतः उनकी बुद्धि इस संसार रूपी रोग को देखकर भयभीत हो उठी। तब वे किसी समय एकान्त में बैठकर इस प्रकार विचार करने लगे-

'जिसमें विश्राम प्राप्त हो जाने पर शोक का अत्यन्तभाव हो जाता है तथा जिसे पा लेने पर पुनर्जन्म नहीं होता, वह प्राप्त करने योग्य प्रधानवस्तु क्या है? मैं मनन रहित परम पवित्र पद में चिरकाल के लिये कब विश्राम को प्राप्त होऊँगा ? जैसे किलोल करती हुई चंचल तरगें समुद्र में ही विलीन हो जाती हैं, उसी तरह भोगतृष्णाएँ कब मेरे अंदर ही शान्त हो जायँगी ? कब मैं परमपद में विश्राम को प्राप्त हुई अपनी बुद्धि द्वारा 'यह कार्य करके पुनः इस दूसरे कार्य को भी करना है' ऐसी व्यर्थ कल्पना का भीतर-ही-भीतर उपहास करूँगा ? मेरे मन में स्थित हुए भी विकल्प-समूह कमल दल पर पड़े हुए जल की तरह सम्बन्ध रहित होकर कब चित्त से विलग हो जायँगे ? अर्थात् संकल्प-विकल्पों का अभाव कब होगा ? मैं उन्मत्त होकर बहने वाली तृष्णा-नदी को, जो बहुसंख्यक भीषण तरंगों से युक्त है, अपनी परमोत्कृष्ट बुद्धिरूपी नौका से कब पार कर जाऊँगा ? मैं जगत् के प्राणियों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

द्वारा की जाने वाली इस बाह्य प्रवृत्ति को, जो मिथ्या तथा चित्त को व्यग्र कर देने वाली है, बालकों की क्रीड़ा के समान समझकर कब उसका उपहास करूँगा ? मेरा मन, जो विकल्पों से विक्षिप्त तथा हिंडोले की तरह चंचल है, कब शान्ति लाभ करेगा ? मेरा अन्तःकरण परमात्मा के समान आकार वाला, सौम्य और सम्पूर्ण पदार्थों की स्पृहा से रहित होकर कब शान्ति को प्राप्त होगा ? वह दिन कब होगा, जब मैं अपनी शान्त हुई कल्पनाओं वाली बुद्धि द्वारा बाहर-भीतर सहित इस सम्पूर्ण विश्व को सच्चिदानन्द रूप से देखता हुआ अनुभव करूँगा ? कब मैं इष्ट और अनिष्ट तथा हेय और उपादेय से रहित एवं स्वयंप्रकाशस्वरूप परमद में स्थित होकर अपने अन्तःकरण में परम शान्ति को प्राप्त होऊँगा ? ऐसा सुअवसर कब आयेगा, जब मैं किसी पर्वत की कन्दरा में निर्विकल्प समाधि द्वारा मन के व्यापार से रहित होकर शिला की भाँति निश्चल हो जाऊँगा ? मौनव्रत धारण करके अविचल ध्यान में निमग्न हुए मेरे मस्तक पर वन की चिड़ियाँ कब घोंसला बनायेंगी ?'

यों चिन्तापरवश हुए उद्दालक मुनि ने वन में स्थित होकर बारंबार ध्यान का अभ्यास किया, परंतु विषय उनके बंदर के समान चंचल चित्त को अपनी ओर खींच ले जाते थे; जिससे प्रसन्नता प्रदान करने वाली समाधिस्थिरता उन्हें न मिल सकी। उनका मन कभी-कभी विषयासक्त हो जाता था; उस अवस्था में वह अपने हृदयान्तर्वर्ती तमोगुण का त्याग करके भयभीत पक्षी की भाँति वहाँ से भाग निकलता था। कभी वह बाह्य और आभ्यन्तर विषयों के चिन्तन का परित्याग करके तमोगुण में लीन होकर निद्रारूपी लंबे काल तक रहने वाली स्थिति को प्राप्त हो जाता था। यद्यपि वे प्रतिदिन भयानक गुफाओं में बैठकर अपने मन को ध्यानमग्न करने में तत्पर थे, फिर भी ध्यानवृत्तियों में विघ्न पड़ने के कारण उनका अन्तःकरण अत्यन्त व्याकुल हो गया और शरीर तुच्छ तृष्णा-नदी के तटवर्ती तरंगों के थपेड़ों से चंचल हो उठा। इस प्रकार जब वे मुनि संकटापन्न हो गये, तब विक्षिप्तचित्त होकर उस पर्वत पर भ्रमण करने लगे।

उन्तीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तीसवाँ सर्ग

परमार्थ चिन्तन

रघुकुलभूषण राम ! तदनन्तर धर्मात्मा उद्दालक बहुत अन्वेषण के पश्चात् प्राप्त हुई गन्धमादन की एक रमणीय गुहा में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने न मुरझाये हुए कोमल पत्तों का एक आसन बनाया, जिसके चारों ओर पुष्पों के गुच्छे शोभा पा रहे थे। उस आसन के ऊपर उन्होंने एक सुन्दर मृगचर्म फैला दिया। तत्पश्चात शुद्ध अन्तःकरण वाले उद्दालक अपने मन की वृत्तियों को सूक्ष्म बनाते हुए उस आसन पर विराजमान हुए। वहाँ उन्होंने उत्तराभिमुख होकर दोनों एड़ियों से अण्डकोषों को दबाकर ज्ञानी की भाँति सुदृढ़ पद्मासन लगाया। वे विषयों की ओर दौड़ते हुए अपने मनरूपी मृग को वासनाओं से हटाकर निर्विकल्प समाधि में स्थित होना चाहते थे, इसलिये यों विचार करने लगे-

"अरे मूर्ख मन ! इन सांसारिक वृत्तियों से तेरा क्या प्रयोजन है ? क्योंकि बुद्धिमान् लोग ऐसी क्रिया के लिये चेष्टा नहीं करते, जो परिणाम में दुःखदायिनी हो। जो शान्तिप्रद उपरतिरूपी रसायन को छोड़कर विषयभोगों के पीछे दौड़ता है, वह मानो मन्दार-वन का परित्याग करके विषवृक्षों से भरे हुए जंगल की ओर जा रहा है। तू चाहे पाताल में चला जा अथवा ब्रह्मलोक में ही क्यों न पहुँच जा, किंतु शान्तिप्रद उपरतिरूपी अमृत के बिना तुझे निर्वाण ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। रे मन ! तू सैकड़ों भोगाशाओं से परिपूर्ण होने के कारण इस प्रकार समस्त दुःखों का प्रदाता बना हुआ है, अतः इन दुःखदायिनी भोगाशाओं का सर्वथा परित्याग करके अत्यन्त सुन्दर परम ऐकान्तिक कल्याणस्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर ले। ये उत्पत्ति-विनाशमयी विचित्र कल्पनाएँ तो तुझे भयानक दुःख देने वाली ही हैं, इनसे कभी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। अरे मूर्ख ! तू व्यर्थ बहिर्मुखतारूप उत्थान से वृद्धि को प्राप्त हुई श्रोत्रेन्द्रिय के वशीभूत होकर सांसारिक रसिक-गान का अनुसरण करने वाली बुद्धिवृत्ति द्वारा व्याध के वीणा-गीत आदि से मोहित हुए मृग के समान विनाश को मत प्राप्त हो। मन्दबुद्धे ! जैसे हथिनी के स्पर्श सुख का लोभी गजेन्द्र शिकारियों द्वारा बाँध लिया जाता है, उसी तरह तू भी सुन्दरी युवती के स्पर्श-सुख का अनुभव करने के लिये उन्मुख हुई बुद्धिवृत्ति से केवल दुःख के लिये ही त्वगिन्द्रिय का आश्रय लेकर बन्धन में मत पड़। रे अंधे ! परिणाम में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दुःख को देने वाले स्वादिष्ट अन्नों की अभिलाषा से रसनेन्द्रियता को प्राप्त होकर बंसी में लगे हुए चारे के लोभी मत्स्य की भाँति तू अपना विनाश मत कर। मूढ़ ! तू युवती स्त्री, बालक, बालिका आदि नाना प्रकार के सुन्दर दृश्यों को देखने में तत्पर हुई चक्षुरिन्द्रिय का अवलम्बन करके प्रकाश के लोलुप फतिंगे के समान जलन को मत प्राप्त हो। जैसे गन्धलोलुप भ्रमर सांयकाल में कमल-कोश में बंद हो जाता है, उसी प्रकार तेल-फुलेल, इत्र, पुष्प आदि सुगन्धित पदार्थों की गन्ध के अनुभव की इच्छा से घ्राणेन्द्रिय का आश्रय लेकर तू भी शरीररूपी कमल-कोश के भीतर बँध मत जा। मन्दबुद्धे ! मृग शब्द से, भ्रमर गन्ध से, फतिंगा रूप से, गजेन्द्र स्पर्श से और मत्स्य रस से-इस प्रकार ये सब तो केवल एक-एक विषय से नष्ट हो गये; किंतु तू तो इन पाँचों इन्द्रियों के विषय-भोगरूप अनर्थों से व्याप्त है, अतः तुझे सुख कैसे मिल सकता है। यदि तू सांसारिक दोषों से रहित, अतएव शरत्कालीन मेघ के समान निर्मल अन्तःकरण की शुद्धि को प्राप्त होकर समस्त अनर्थों के मूल अज्ञान का उच्छेद करके शान्ति को प्राप्त होगा तो यह तेरी असीम विजय होगी। जैसे जब तक वर्षा ऋतु के मेघ वर्तमान हैं, तब तक कुहरे की प्रचुरता रहेगी ही, उसी तरह जब तक घनीभूत अज्ञान मौजूद है, तब तक चित्त की स्थूलता का रहना निश्चित ही है। तथा ज्यों-ज्यों वर्षाकालीन मेघ क्षीण होते जाते हैं, त्यों-त्यों कुहरे का भी विनाश होता जाता है, उसी प्रकार ज्यों-ज्यों अज्ञान क्षीण होता जायेगा, त्यों-त्यों चित्त की भी सूक्ष्मता बढ़ती जायेगी।

"असत्वस्वरूप मन ! मैं अहंकार और वासनाओं से रहित निर्विकल्प चिन्मय ज्योतिःस्वरूप हूँ और तू अहंकारों का बीजस्वरूप है। अतः तुझसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। 'अहं' रूप से कौन स्थित है ?- इसका मैंने पैर के अँगूठे से लेकर सिर तक सर्वत्र अन्वेषण किया; किंतु यह 'अहं' नामक पदार्थ मुझे कहीं उपलब्ध नहीं हुआ। इस शरीर में यह मांस है, यह रक्त है, ये हड्डियाँ हैं, ये श्वासवायु हैं, पर यह 'अहं' रूप से स्थित कौन है ? देह में स्पन्दनांश तो प्राणवायुओं का है, चेतनांश परमात्मा का है तथा जरा-मरण शरीर के धर्म हैं; फिर यह 'अहं' क्या वस्तु है ? रे चित्त ! मांस अहं से पृथक है, रक्त उससे भिन्न है, हड्डियाँ भी दूसरी हैं, चेतनता उससे अन्य है, स्पन्दन भी उससे अलग है; फिर 'अहं' रूप से स्थित पदार्थ कौन है ? यह नासिका

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है, यह जिव्हा है, यह त्वचा है, ये दोनों कान हैं, यह आँख है और यह स्पन्दन है; फिर 'अहं' रूप से स्थित कौन वस्तु है ? परमार्थरूप से विचार करने पर न तो मन अहं है न चित्त अहं है और न वासना ही अहं है। आत्मा तो अहं हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह तो केवल शुद्ध चेतन प्रकाशस्वरूप है। वस्तुतः तो इस जगत् में जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, सर्वत्र मेरा ही स्वरूप है। अथवा विनाशशील असत् होने के कारण कोई भी पदार्थ मेरा स्वरूप नहीं है-यही दृष्टि सच्ची है, इससे भिन्न दूसरा कोई क्रम नहीं है। परंतु अज्ञानरूपी धूर्त अहंकार के द्वारा चिरकाल से मुझे उसी प्रकार कष्ट दे रहा है, जैसे जंगल में कोई ढीठ भेड़िया मृगछौने को क्लेश पहुँचाये। सौभाग्य की बात है कि अब मैंने उस अज्ञानरूपी चोर को भली भाँति जान लिया है। वह मेरे स्वरूप रूपी धन का अपहरण करने वाला है, अतः अब मैं पुनः उसका आश्रय नहीं ग्रहण करूँगा। यह देह में अहंतारूपी भावना मृगतृष्णा के सदृश व्यर्थ है। जब ऐसी भावना असत्य ही है, तब 'यह देह अहं है' ऐसा जो भाव है, वह केवल भ्रम ही है। किंतु ज्ञानी महात्मा जो वासनाहीन हो गये हैं, वे भी अपने जीवन-निर्वाह के लिये स्वतः बाह्यरूप से चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा कर्मों में प्रवृत्त होते ही हैं। उनकी इस प्रवृत्ति में वासना कारण नहीं है। चित्त ! यदि केवल वासनारहित कर्म किया जाय तो भविष्य में होने वाले सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता। इसलिये मूर्ख इन्द्रियो ! यदि तुम अपनी अन्तर्वासना का परित्याग करके सम्पूर्ण कर्म करोगी तो तुम्हें दुःख की प्राप्ति नहीं होगी। निष्पाप ! जैसे तरंग आदि जल से भिन्न नहीं हैं, उसी तरह ज्ञानी महात्मा की दृष्टि में ये वासना आदि सभी पदार्थ आत्मा से पृथक नहीं है; किंतु अज्ञानी की दृष्टि में उनकी पृथक सत्ता है। इन्द्रियरूपी बालको ! जैसे रेशम के कीड़े अपने द्वारा उत्पन्न हुए तन्तु से ही नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह तुम लोग भी स्वतः उद्धृत तृष्णाद्वारा विनष्ट हो रहे हो। वासना ही तुम लोगों को एक जगह बाँधने में हेतु है-ठीक उसी तरह, जैसे छिद्रों में पिरोयी हुई रज्जु मोतियों के बन्धन में कारण होती है। वस्तुतः तो यह वासना कल्पना मात्र से ही उद्धृत हुई है, अतः यह सत्य नहीं है; क्योंकि संकल्प का त्याग कर देने से यह विनष्ट हो जाती है।

"यह चेतन आत्मा सर्वव्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप है, अतः इसका जन्म अथवा मरण नहीं होता। फिर कैसे इसकी मृत्यु हो सकती है अथवा कैसे किसी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के द्वारा यह मारा जा सकता है। इसका जीवन से तो कोई प्रयोजन है नहीं; क्योंकि यह सर्वात्मा ही सबका जीवन है। यदि शुद्ध चेतन आत्मा ही सबका जीवन है तो उसे इस जीवन से कब कौन-सी दूसरी अप्राप्त वस्तु प्राप्त होगी, जिसके लिये उसे जीवन की इच्छा हो ? जिसका अपनी देह में अहंभाव है, वही भाव-अभावरूप जन्म-मरण के बन्धन में पड़ता है; परंतु आत्मन् ! तुम्हारे में तो देहाहंभाव है नहीं, इसलिये तुम्हें भाव-अभावरूप जन्म-मरण कहाँ से प्राप्त होंगे। अहंकार तो व्यर्थ मोहरूप है, मन मृगतृष्णा के समान है और पदार्थ समूह जड़ है; ऐसी दशा में अहंभाव किसको हो ? शरीर रक्त-मांसमय है, विवेक-विचार द्वारा मन का विनाश हो गया है और चित्त आदि सभी जड़ हैं; फिर देह में अहंभावना किसको कैसे हो ? सभी इन्द्रियाँ नित्य अपने-अपने व्यापार में संलग्न हैं और जड़ पदार्थ अपने स्वरूप में स्थित हैं; फिर किसको और कैसे अहंभाव हो ? गुणों की कार्यरूपा इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में बरत रही हैं, प्रकृति गुणसाम्यावस्थारूप अपने स्वभाव में स्थित है और सच्चिदानन्द ब्रह्म अपने आप में ही पूर्ण रूप से विराजमान है; फिर देह में अहंभावना किसको और कैसे हो ? इस प्रकार इस भूतल पर जो कुछ स्थित है, वह सब ब्रह्मस्वरूप ही है। वह 'सत्' (ब्रह्म) मैं ही हूँ और वह 'तत्' (ब्रह्म) भी मैं ही हूँ; फिर व्यर्थ ही शोक क्यों करूँ। जब केवल एक ही सर्वव्यापक विशुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मारूप परमपद सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, तब अहंकाररूपी कलंक की उत्पत्ति कहाँ से हो सकती है। वास्तव में तो पदार्थ-सम्पत्ति है ही नहीं, एकमात्र सर्वव्यापक विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र विराजमान हो रहा है। अथवा यदि पदार्थ-सम्पत्ति की सत्ता मान भी लें तो उसके साथ किसी का सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। वस्तुतः तो अहंकाररूपी महान् भ्रम असत्-मिथ्या है; किंतु इसका प्रादुर्भाव होने पर यह सारा जगत् 'यह मेरा है, यह उसका है' यों व्यर्थ ही विपर्यास को प्राप्त हुआ है। यह आश्चर्यमय अहंकार परमात्मा के तत्व का यथार्थ ज्ञान न होने के कारण ही उत्पन्न हुआ है। उस परमात्मतत्व के ज्ञात हो जाने पर तो इसका उसी प्रकार विनाश हो जाता है, जैसे सूर्य के ताप से हिमकणिका गल जाती है। इससे सिद्ध हुआ है कि परमात्मा के अतिरिक्त और किसी की भी सत्ता नहीं है; इसलिये 'सर्व ब्रह्म' इस प्रकार का जो मेरा अनुभव सिद्ध तत्व है, उसी का मैं चिन्तन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करूँगा। मैं तो यही उत्तम समझता हूँ कि आकाश की नीलिमा के सदृश उत्पन्न हुए इस अहंकाररूपी महाभ्रम को ऐसे भुला दिया जाय जिससे पुनः कभी इसका स्मरण ही नहीं हो। मैं चिरकाल से प्राप्त हुए इस मूलाविद्या सहित अहंकाररूपी महाभ्रम का सर्वथा त्याग करके शान्तात्मा होकर विशुद्ध परमात्मा में ही स्थित रहूँगा, जैसे शरत्कालीन आकाश अपने निर्मल स्वभाव में स्थित रहता है। यह अहंभाव जब बढ़ जाता है, तब अनर्थ-परम्पराओं की सृष्टि करता है, पाप का विस्तार करता है और संताप को बढ़ाता है। मरणादि पारलौकिक दुःख पुनर्जन्म तक भोगना पड़ता है एवं जीवन आदि ऐहलौकिक कष्ट मरणपर्यन्त रहता है और वर्तमान काल के पदार्थ काल के पदार्थ विनाशशील हैं, अतः यह दुःखवेदना घोर कष्टप्रद है। दुर्बुद्धिजनों की 'यह मुझे मिल गया, अब इसे प्राप्त करूँगा' इस प्रकार की संतापदायिनी पीड़ा कभी शान्त नहीं होती। अहंकार का समूल विनाश हो जाने पर संसार रूपी वृक्ष सूख जाता है। उसकी उत्पादन शक्ति विनष्ट हो जाती है, जिससे वह पाषाण की भाँति पुनः अंकुर उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाता है।

देहरूपी वृक्ष को अपना निवास स्थान बनाकर रहने वाली तृष्णारूपी काली नागिनें हृदय में विवेक विचाररूपी गरुड़ का आगमन होते ही न जाने कहाँ लुप्त हो जाती हैं। जब विश्व असत्य सिद्ध हो जाता है, तब उससे उत्पन्न होने वाला सारा-का-सारा भेद-व्यवहार असत्य हो जाता है। इस प्रकार व्यवहार के असत्य हो जाने पर 'अहं'-'त्वं' का भेद-व्यवहार सत्य कैसे रह सकता है। तरंग की भाँति क्षणभंगुर एवं विनाशोन्मुख इस देह में जिनकी आस्था सुदृण हो गयी है, उन दुर्बुद्धियों का परमार्थ से पतन हो जाता है; क्योंकि देह आदि समस्त वस्तुएँ सर्वत्र उत्पत्ति के पूर्व और विनाश के पश्चात नहीं रहतीं, केवल मध्य में ही इनका प्राकट्य दृष्टिगोचर होता है। फिर उनकी मिथ्या स्थिरता में आस्था कैसी। अर्थात् इन देह आदि विनाशी पदार्थों को सत्य मानकर उनमें नहीं फँसना चाहिये। जब मन पूर्णतया इस निर्णय पर पहुँच जाता है कि यह जो कुछ विशाल दृश्यमण्डल है, व सारा-का-सारा अवास्तविक है, तब वह अमन-मन के व्यापार से शून्य हो जाता है। तदनन्तर 'यह अवास्तविक है' ऐसा मन में दृढ़ निश्चय हो जाने पर सारी भोग-वासनाएँ उसी प्रकार क्षीण हो जाती हैं, जैसे हेमन्त ऋतु में वृक्षों की मंजरियाँ झड़ जाती हैं। वास्तव में न तो कोई किसी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

का स्वाभाविक मित्र ही है; किंतु जो सुख पहुँचाने वाला है, वह मित्र कहा गया है और जो दुःखप्रद हैं, वे शत्रु कहलाते हैं। इसलिये अब मैं मनरूपी वन को, जो संकल्परूपी वृक्षों से व्याप्त तथा तृष्णारूपी लताओं से आच्छादित है, छिन्न-भिन्न करके विस्तृत मुक्तिरूपी भूमि में जाकर सुखपूर्वक विचरण करूँगा। इस प्रकार मन के पूर्णतया क्षीण हो जाने पर रक्त-मांस आदि धातुओं का संघातरूप यह मेरा अनिष्टकारी शरीर चाहे रहे अथवा नष्ट हो जाय, इससे कोई हानि नहीं है। अतः मन का विनाश करना ही आवश्यक है। मैं देह नहीं हूँ-इस विषय में मैं एक युक्ति बतलाता हूँ; सुनो ! यदि देह को ही आत्मा मान लिया जाय तो मरने पर शरीर के सभी अंगों के वर्तमान रहने पर भी मुर्दा शरीर व्यवहार क्यों नहीं करता ? इससे सिद्ध हुआ कि देह आत्मा नहीं है। मैं तो नित्य अविनाशी ज्योतिःस्वरूप हूँ और इस देह से अतीत हूँ। न तो मैं अज्ञानी हूँ, न मुझे कोई दुःख है, न अनर्थ है और न दुःख का कोई कारण ही है। अब तो यह शरीर रहे अथवा न रहे, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है; मैं तो संताप रहित हुआ नित्य स्थित हूँ। मुझे उस परम पर स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति हो चुकी है; इसलिये मैं सबसे उत्कृष्ट, केवल-शुद्धस्वरूप, विक्षेपरहित, शान्तरूप, अंशाशीभाव से रहित, अपने आप में परिपूर्ण, निष्क्रिय एवं इच्छारहित ब्रह्मस्वरूप हूँ। स्वच्छता, प्रभावशालिता, सत्ता, सुहृदयता, सत्यभाषण, यथार्थ ज्ञान, आनन्दस्वरूपता, शान्ति,सदा मृदुभाषिता, पूर्णता, उदारता, सत्यस्वरूपता, कान्तिमत्ता, एकाग्रता, सर्वात्मकता, निर्भयता और द्वैत के विकल्प का अभाव-ये सभी गुण मुझ आत्मनिष्ठ के हृदय को अत्यन्त प्रिय लगने वाले हैं। चूँकि सर्वरूप परमात्मा परमात्मा में सभी कुछ सर्वदा एवं सर्वथा सम्भव है, इसलिये सभी विषयों के प्रति मेरी इच्छा अनिच्छा और सुख-दुःख क्षीण हो गये हैं। अब मेरा मोह विनष्ट हो गया है, मन अमनी भाव को प्राप्त हो गया है और चित्त के संकल्प-विकल्प दूर हो गये हैं; अतः मैं शान्तस्वरूप परमात्मा में रमण कर रहा हूँ।

तीसवाँ सर्ग समाप्त

इकत्तीसवाँ सर्ग

महर्षि उद्दालक की साधना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! उद्दालक मुनि अपनी विशाल एवं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

विशुद्ध बुद्धि से यों निर्णय करके पद्मासन लगाकर बैठ गये। उस समय उनके नेत्र आधे मुँदे हुए थे। तदनन्तर "जो ॐकार का उच्चारण करता है, उसे परमपद की प्राप्ति हो जाती है; क्योंकि 'ॐ' का यह अक्षर परब्रह्म है।" ऐसा निश्चय करके उन्होंने ॐकार का, जिसकी ध्वनि ऊपर को जा रही थी, उसी प्रकार उच्च स्वर से उच्चारण किया, जैसे घंटे के अधोभाग में लटके हुए लटकन को अच्छी तरह पीटने से जोर का शब्द होता है। उनके द्वारा उच्चारित प्रणवध्वनि जब तक ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त व्याप्त नहीं हो गयी और जब तक वे सर्वव्यापक, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप परमात्मा के अभिमुख नहीं हो गये, तब तक 'ॐ' का उच्चारण करते रहे। प्रणव के अकार, उकार, मकार और बिन्दु-इस प्रकार साढ़े तीन अंश हैं। उनमें से प्रथम अंश अकार के उच्चस्वर से उच्चरित होने पर जब शरीर के भीतर शब्द के गूँजने के कारण प्राण पूर्ण रूप से क्षुब्ध हो उठे, तब प्राणवायु को छोड़ने के क्रमने जिसे रेचक कहा जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर को रिक्त कर दिया, जैसे महर्षि अगस्त्य ने सागर के जल को पीकर उसे खाली कर दिया था। तत्पश्चात् प्रणव के द्वितीय अंश 'उकार' के उच्चारण के समय ॐकार की समस्थिति होने पर प्राणों का निश्चल कुम्भक नामक क्रम सम्पन्न। उस समय प्राण न बाहर थे न भीतर, न अधोभाग में थे न ऊर्ध्वभाग में और न दिशाओं में ही भ्रमण कर रहे थे, बल्कि भलीभाँति स्तम्भित किये गये जल की तरह पूर्णतः शान्त थे। तदनन्तर प्रणव के उपशान्तिप्रद तृतीयांश मकार के उच्चारण-काल में प्राण वायु को भीतर ले जाने के कारण प्राणों का पूरक नामक क्रम घटित हुआ। इस तीसरे क्रम में प्राण जीवात्मा में भावना द्वारा भावित अमृत के मध्य में पहुँचकर हिमस्पर्श के समान सुन्दर शीतलता को प्राप्त हो गये।

तदुपरान्त पद्मासन से बैठे हुए उद्दालक मुनि ने उस भावनामय शरीर में दृढ़ स्थिति करके आलान में बँधे हुए गजराज की तरह अपनी पाँचों इन्द्रियों को देह में निबद्ध कर दिया। फिर वे निर्विकल्प समाधि के लिये तथा शरत्कालीन निर्मल आकाश की तरह अपने स्वभाव को शुद्ध बनाने के हेतु प्रयत्न करने लगे। जब उद्दालक मुनि को उस समाधि से तत्वज्ञान की प्राप्ति हो गयी, तब वे दृश्य-प्रपंच के विकल्पों से रहित होकर उस नित्य अनन्त विज्ञानानन्दघन परमात्मा में तद्रूप हो गये, जो जगत् का अधिष्ठानभूत,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama Prasad Collection

शुद्धस्वरूप एवं महान् है। वे शरीर से पृथक होकर किसी अनिर्वचनीय स्थिति को प्राप्त हो गये और नित्य-सत्य-सम-चिन्मयरूप होकर आनन्द सागर परमात्मा में विलीन हो गये। उस समय वे वातरहित स्थान में रखे हुए दीपक की भाँति कान्तिमान्, चित्रलिखित के सदृश अटल मनवाले, निस्तरंग समुद्र के समान गम्भीर एवं बरसे हुए निर्जल बादल की तरह मूक हो गये।

इस प्रकार जब इस महालोकस्वरूप परब्रह्म में स्थित हुए उद्दालक का बहुत-सा समय व्यतीत हो गया, तब उन्होंने बहुसंख्यक आकाशचारी सिद्धों तथा देवताओं को भी देखा। तदनन्तर जो इन्द्र और सूर्य का पद प्रदान करने की सामर्थ्य रखती थीं, ऐसी बहुत-सी विचित्र सिद्धियाँ भी अप्सराओं से घिरी हुई वहाँ चारों ओर से आ पहुँचीं; परंतु उद्दालक मुनि ने उन सिद्धियों को बच्चों के खिलौनों की तरह समझकर उनका कुछ भी आदर नहीं किया; क्योंकि उनका मन क्षोभरहित और बुद्धि गम्भीर थी। इस प्रकार सिद्धि-समूहों का अनादर करके वे छः महीने तक उस आनन्द-मन्दिर रूप समाधि में स्थित रहे-ठीक उसी तरह, जैसे उत्तरायण के छः मास तक सूर्य उत्तर दिशा की ओर रहते हैं। इतने समय तक उद्दालक मुनि को जीवन्मुक्त पद की प्राप्ति हो गयी। तब वहाँ उनके समीप सिद्धों का दल, देवताओं का समुदाय, साध्यगण, ब्रह्मा और शंकर आदि उपस्थित हुए। परमात्मा की प्राप्ति ही वह परम पद है, वही परम शान्त गति है, वही शाश्वत कल्याणस्वरूप मंगलमय पद है। जिसे वहाँ विश्राम करने का अवसर प्राप्त हो गया, उसे भ्रम पुनः बाधा नहीं पहुँचा सकता। संत पुरुष उस परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करके इस विनाशशील बाह्य दृश्य प्रपंचों में उसी प्रकार नहीं रमते, जैसे चैत्ररथ नामक रमणीय उद्यान में पहुँचे हुए जन खैर के वन में जाने की इच्छा नहीं करते। उद्दालक मुनि ने सिद्धियों को दूर हटा दिया था। वे छः मास तक समाधि में स्थित रहने के पश्चात् जब पुनः समाधि से विरत होकर जागे, तब उन्हें अपने सम्मुख कुछ परम तेजस्विनी रमणियाँ दीख पड़ीं, जो चन्द्रबिम्ब के समान सुन्दर शरीर वाली, स्नेहमयी और प्रणाम करने की लालसा से युक्त थीं। साथ ही कतार-के-कतार दिव्य विमान भी दृष्टिगोचर हुए, जो गौर वर्ण वाले मन्दार पुष्पों के पराग से धूसरित भ्रमरों और चँवरों से सुशोभित थे तथा जिन पर पताकाएँ फहरा रही थीं। दूसरी ओर उन्होंने जिनके करकमलों में कुशा की पवित्रणी धारण करने से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चिन्ह पड़ गये थे, उन हमारे जैसे मुनियों को और विद्याधरियों सहित श्रेष्ठ विद्याधरों को भी देखा। उन सबने उन महात्मा उद्दालक मुनि से कहा-'भगवन् ! हम आपको प्रणाम कर रहे हैं। आप अनुग्रहपूर्ण दृष्टि से हमारी ओर देखिये। मुने ! आइये और इस विमान पर चढ़कर स्वर्गलोक को पधारिये; क्योंकि जगत् की भोग-सम्पत्तियों की चरम सीमा स्वर्ग ही तो है। विभो ! वहाँ चलकर आप कल्पपर्यन्त अपने अभीष्ट भोगों का समुचित रूप से उपभोग कीजिये; क्योंकि समस्त तपस्याएँ स्वर्गादिरूप का फल का उपभोग करने के लिये ही होती हैं। भगवन् ! ये विद्याधरों की ललनाएँ हार और चँवर धारण किये आपके पास खड़ी हैं, इन पर दृष्टिपात कीजिये; क्योंकि धर्म और अर्थ का सार काम है तथा काम की सारभूता सुन्दरी युवतियाँ हैं। जैस मंजरियाँ वसन्त ऋतु में ही उपलब्ध होती हैं, उसी तरह ये वरांगनाएँ स्वर्ग में ही मिलती हैं।-

यों कहने वाले उन सभी विद्याधर और ऋषि-मुनि आदि अतिथियों का यथोचित आदर-सत्कार करके उद्दालक मुनि निर्भ्रान्त एवं निश्चल भाव से बैठे रहे। उनकी बुद्धि तो गम्भीर थी ही; अतः उन्होंने न तो उस विभूति का अभिनन्दन किया और न तिरस्कार ही किया अर्थात् उदासीन बने रहे तथा 'भो सिद्धगण ! आप लोग जाइये' यों कहकर वे अपने समाधिरूप कार्य में संलग्न हो गये। तदनन्तर सिद्धगण कुछ दिनों तक उद्दालक मुनि की, जो भोगों की आसक्ति से रहित और अपने धर्म में निरत थे, प्रणाम, स्तुत-प्रशंसा आदि द्वारा उपासना करके अपने-आप चले गये। तब जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए मुनि स्वेच्छानुसार वनप्रान्तों तथा मुनियों के आश्रमों में सुखपूर्वक विचरते रहे। उस समय से उद्दालकमुनि परमपद के प्राप्त होने पर पर्वतों की कन्दराओं में ध्यान आदि लीलाएँ करते हुए निवास करने लगे। ध्यानस्थ होने पर उनका कभी एक दिन में, कभी एक मास में, कभी एक वर्ष में और कभी-कभी तो कई वर्षों में उस ध्यान-समाधि से व्युत्थान होता था। उस समय से लेकर उद्दालक मुनि व्यवहार में तत्पर रहते हुए भी चिन्मय परमात्मा में एकीभाव से स्थित होकर परम समाहित-चित्त बने रहते थे। यों चिन्मय परमात्मतत्व में एकीभाव के दृढ़ अभ्यास से महान् चिन्मय विज्ञानानन्दघन परमात्मा को प्राप्त करके उन मुनि की सर्वत्र समदृष्टि हो गयी, जैसे सूर्य का तेज भूतल पर सर्वत्र समभाव से पड़ता है। इस प्रकार समस्त विक्षेपों का उपशमन होने के कारण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

परम पद की प्राप्ति से उनका चित्त जब शान्त हो गया, उनकी जन्म–मरणरूपी फाँसी कट गयी और वे संशय तथा चंचलता से रहित हो गये, तब वे शरत्कालीन आकाश के समान शान्त, सर्वव्यापक, तेजस्वी, प्रकाशमय, चित्त रहित विशुद्धस्वरूप चिन्मय परमात्मा को प्राप्त हो गये।

इकत्तीसवाँ सर्ग समाप्त

बत्तीसवाँ सर्ग

परमात्मप्राप्ति का कथन

श्रीरामजी ने पूछा–ऐश्वर्यशाली गुरो ! आप आत्मज्ञानरूपी दिन के लिये सूर्यस्वरूप हैं, अतः अब यह बतलाने की कृपा करें कि सत्ता–सामान्य का क्या लक्षण है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–राघव ! दृश्य वस्तु है ही नहीं–इस प्रकार की दृढ़ भावना से चित्त जब सर्वथा क्षीण हो जाता है, तब उस सामान्यरूप चेतन की सबमें सामान्यभाव से व्यापक स्वतःसिद्ध सत्तामात्र ही सत्ता–सामान्य अवस्था होती है। जब चैतन्य समस्त दृश्य पदार्थों से रहित होकर परमात्मा में विलीन हो जाता है, तब उसकी निराकार आकाश की भाँति अत्यन्त निर्मल सत्ता–सामान्य होती है। जब चैतन्य बाह्य एवं आभ्यन्तरसहित यह जो कुछ है, उस सबका अपलाप करके स्थित हो, उस समय उसकी सत्ता–सामान्य अवस्था समझनी चाहिये। जब साधक सम्पूर्ण दृश्यप्रपंच को अपने वास्तविक स्वरूप से स्वप्रकाशात्मक सत्ता–सामान्यतावस्था जाननी चाहिये। यह परम दृष्टि तुर्यातीत पद के सदृश है, अतः यह सदेहमुक्त और विदेहमुक्त दोनों के लिए सदा समान है। निष्पाप राम ! यह दृष्टि ज्ञान से प्रादुर्भूत ही है, अतः यह केवल तुर्यातीत ज्ञानी महापुरुष को समाधि अवस्था एवं व्युत्थान–अवस्था–दोनों में होती है, किंतु अज्ञानी को कभी नहीं होती। यह सत्ता–सामान्य पदवी समस्त भयों का विनाश करने वाली है। इसका आश्रय लेकर उद्दालक मुनि दैवेच्छानुसार प्रारब्ध कर्मों का क्षय होने तक जगत् में स्थित रहे। वे पर्वत की गुफा में पत्तों के आसन पर नेत्रों को आधा मूँदकर पद्मासन से बैठे थे। उस समय वे महात्मा चित्रलिखित–से निश्चल होकर शरदृऋतु के निर्मल आकाश में सम्पूर्ण कलाओं से परिपूर्ण चन्द्रमा के समान विशुद्ध और सम हो गये। उनके सारे संकल्प विकल्प जाते रहे। वे निर्विकार एवं समस्त पापों और विषय–भोगों की उपाधि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

से रहित होने के कारण अभिराम हो गये। उन्हें उस चिन्मय परम आनन्द की प्राप्ति हुई, जहाँ से सारे सांसारिक सुख प्रादुर्भूत होते हैं तथा जिसकी समता में इन्द्र का ऐश्वर्य भी समुद्र में तिनके के समान है। तदनन्तर वे विप्रवर उद्दालक, जो अनन्त आकाशों में व्याप्त रहने वाली दिशाओं को भी व्याप्त करने वाला, सदा समस्त वस्तुओं से पूर्ण, भुवनों का भरण-पोषण करने वाला, बड़े भाग्य से एवं उत्तम जनों द्वारा सेवा करने योग्य, वाणी से परे, अनन्त, सबका आदि और सत्यस्वरूप है, उस परम विज्ञानानन्दघन परमात्मा में तद्रूप हो गये। जो विवेक द्वारा स्फुरित हुए आनन्द रूपी विकसित पुष्पों से सुशोभित है, उद्दालक की वह चंचलता रहित पवित्र चित्तवृत्तिरूपिणी कल्पलता जिसके हृदय-कानन में उगकर विस्तार को प्राप्त हो जाती है, वह संसार-कानन में विहार करता हुआ भी सत्यस्वरूप परमात्मा के आश्रयरूपा छाया से कभी वियुक्त नहीं होता, अपितु उसका सर्वोत्कृष्ट मोक्षफल से सम्बन्ध जुड़ जाता है। इसलिये कल्याणकामी मनुष्य को उद्दालक की चित्तवृत्तिरूपा लता को हृदय में रोपकर उसका विस्तार करना चाहिये।

रघुकुलभूषण राम ! संसार से वैराग्य, जप-ध्यान के अभ्यास, सत-शास्त्रों के विचारपूर्वक अध्ययन, पवित्र और तीक्ष्ण बुद्धि, सद्गुरू के उपदेश और यम-नियमों के पालन से परमात्मा की प्राप्ति रूप विशुद्ध परमपद की प्राप्ति होती है अथवा केवल विशुद्ध और तीक्ष्ण प्रज्ञा से ही परमपद मिल जाता है; क्योंकि जो बुद्धि सम्यक् प्रकार से ज्ञानयुक्त, तीक्ष्ण और दोषरहित है, वह सम्पूर्ण साधनों के बिना भी यथार्थ ज्ञान द्वारा जीव को अविनाशी परमपद की प्राप्ति करा देती है।

बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त

तेतीसवाँ सर्ग

तपस्या

श्रीरामजी ने पूछा-भूत और भविष्य के ज्ञाता भगवन् ! कोई ज्ञानी पुरुष व्यवहार करता हुआ भी समाधिस्थ के सदृश विश्राम को प्राप्त हुआ रहता है और कोई एकान्त का आश्रय लेकर ध्यान-समाधि में स्थित रहता है। इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है ? यह मुझे बतलाने की कृपा करें।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-वत्स राम ! जो इस सत्वादि गुणों के समाहाररूप

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दृश्य जड़ संसार को अनात्मरूप (अनित्य और मिथ्या) देखता है, उस पुरुष की जो यह परम शान्तिस्वरूप अन्तःशीतलता है, वही समाधि कहलाती है। मन के रहने पर दृश्य पदार्थों के साथ सम्बन्ध होता है–ऐसा निश्चय करके जो मन से रहित होकर परम शान्ति को प्राप्त हो चुका है, ऐसा कोई पुरुष तो व्यवहार में लगा रहता है और कोई ध्यान–समाधि में तल्लीन हो जाता है। यदि उनके अन्तःकरण में परम शान्तिरूप शीतलता है तो वे दोनों ही सुखी हैं; क्योंकि जो अन्तःकरण की शीतलता है, वह अनन्त साधनरूप तपस्याओं का फल है। इसलिये जो ज्ञानी व्यवहारपरायण है और जिसने ज्ञान प्राप्त करके वन का आश्रय ले लिया है, वे दोनों ही सर्वथा समान हैं; क्योंकि उन दोनों को ही सम्पूर्ण संदेहों से रहित परम पद की प्राप्ति हो गयी है। रघुनन्दन ! चित्त में जो कर्तापन अभाव है, वह उत्तम समाधान है और वही मंगलमय परमानन्द–पद है। उसी को तुम केवल चिन्मयभाव समझो। जो मन वासनाओं से रहित हो गया है, वह स्थिर कहा गया है; वही ध्यान समाधि है, वही केवल चिन्मयभाव है और वही अविनाशी परम शान्ति है। जिसके मन की वासनाएँ क्षीण हो चुकी हैं, वह पुरुष सर्वोत्कृष्ट परमपद की प्राप्ति के योग्य कहा जाता है; क्योंकि वासनाशून्य मनवाला पुरुष कर्त्तापन से रहित हो जाता है, अतः उसे परमपद प्राप्ति होती है। जिस साधन से मनुष्य की जगद्विषयिणी आस्था पूर्णतया शान्त हो जाती है और उसका अन्तःकरण शोक, भय और एषणाओं से रहित हो जाता है तथा आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाता है, उस साधन को समाधि कहते हैं। जिन गृहस्थों के चित्त अच्छी प्रकार समाहित हो चुके हैं तथा जिनके अहंकार आदि दोष शान्त हो गये हैं, उनके लिये घर ही निर्जन वनस्थलियों के समान है। समाहित मन और बुद्धिवाले तुम्हारे–जैसे प्राणियों के लिये इस जगत् में घर और वन एक–से हैं। राजकुमार राम ! जिसका चित्त अहंता, ममता, रागादि दोषरूप महामेघ से रहित होकर शान्त हो चुका है, उसके लिये जनसमूहों से व्याप्त नगर भी सुनसान अरण्य जैसे लगते हैं; परंतु शत्रु–वीरों का संहार करने वाले रघुनन्दन ! जिसका चित्त अहंता, ममता, राग आदि वृत्तियों से युक्त होने के कारण उन्मत्त बना रहता है, उसके लिये निर्जन वन भी प्रचुर जनों से परिपूर्ण नगर जैसे ही हैं।

जो मनुष्य समाधि–काल में परमात्मा को सम्पूर्ण भावों और पदार्थों से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (H S) Jammu Collection

अतीत तथा व्यवहार काल में सम्पूर्ण भावों को परमात्मा का स्वरूप समझता है, वह समाहित कहा जाता है। जिसका मन सदा अन्तर्मुख बना रहता है, वह सोते, जागते और चलते हुए भी ग्राम, नगर और देश को जंगल-जैसा ही समझता है। यद्यपि यह सारा जगत् प्राणियों से परिपूर्ण है, तथापि नित्य अन्तर्मुखी स्थिति वाले पुरुष के लिये सर्वथा अनुपयोगी होने के कारण यह आकाश की तरह शून्य हो जाता है। जिन पुरुषों के अन्तःकरण में परम शान्ति प्राप्त हो जाती है, उनके लिये सारा जगत् सदा शान्तिमय हो जाता है; परंतु जिनका अन्तःकरण तृष्णा की ज्वाला से संतप्त होता रहता है, उनके लिये जगत् दावाग्नि से दग्ध होता हुआ-सा प्रतीत होता है; क्योंकि समस्त प्राणियों के भीतर जैसा भाव होता है, वैसा ही बाहर अनुभव होता है। जो बाहर कर्मेन्द्रियों द्वारा क्रियाओं का सम्पादन करता हुआ भीतर केवल आत्मा में ही रत रहता है और हर्ष-शोक के वशीभूत नहीं होता, वह समाहित कहा जाता है। जो शान्त बुद्धि पुरुष सर्वव्यापक आत्मा का साक्षात्कार करते हुए न तो किसी के लिये शोक करता है और न किसी की चिन्ता ही करता है, वह समाहित कहलाता है। जो आकाश की तरह निर्मल है, शास्त्र और शिष्टाचार के अनुकूल बाह्य चेष्टाओं का सम्यक् प्रकार से आचरण करता है और हर्ष, अमर्ष आदि विकारों में काष्ठ और मिट्टी के ढेले के समान विकार रहित एवं शान्त स्वभाव वाला है तथा जो भय से नहीं, बल्कि स्वाभाविक ही समस्त प्राणियों को अपने आत्मा के तुल्य और पराये धन को मिट्टी के ढेले के सदृश देखता है, वही यथार्थ देखता है। जो इस प्रकार के आशय से सम्पन्न होकर सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप परमपद को प्राप्त हो गया है, उसके ऐश्वर्य आदि पदार्थ चाहे पूर्ववत् स्थित रहें, चाहे अभ्युदय को प्राप्त हों, चाहे नष्ट हो जायँ, चाहे उसके बन्धु-बान्धव मृत्यु को प्राप्त हो जायँ, चाहे वह उत्तमोत्तम भोग-सामग्रियों से परिपूर्ण तथा कुटुम्बी जनों से भरपूर घर में रहे, अथवा सभी प्रकार के भोगों से शून्य विशाल वन में रहे, चाहे उसके शरीर पर चन्दन, अगुरु और कपूर का अनुलेप किया जाय अथवा वह बड़ी-बड़ी ज्वालाओं से व्याप्त अग्नि में गिरे, चाहे उसकी आज ही मृत्यु हो जाय अथवा अनेक कल्पों के बाद हो, वह न तो स्वयं कुछ बनता है और न उस महात्मा ने कुछ किया ही। अर्थात् वह सभी परिस्थितियों में विकार-रहित समभाव से स्थित रहता है। अहंकार और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Collection

वासनारूपी अनर्थों के उत्पन्न होने से संविदात्मा पुरुष के जीवन में नाना प्रकार के सुख-दुःख आते-जाते रहते हैं; परंतु उस अहंता के पूर्णतया शान्त हो जाने पर चित्त में ऐसी समता प्राप्त हो जाती है, जैसे रज्जु में सर्पभ्रान्ति के नष्ट हो जाने पर 'यह सर्प नहीं है' इस ज्ञान से निर्भयता और प्रसन्नता होती है। ज्ञानी जो कार्य करता है, जो खाता है, जो दान देता है, जो हवन आदि करता है- उन सब कर्मों को करता हुआ भी वह कुछ नहीं करता एवं न उनमें रत ही रहता है; क्योंकि वह अहंता-ममता से रहित हो जाता है, इसलिये उसका कर्म करना अथवा न करना एक-सा है। उसका न तो कर्मों के करने कोई प्रयोजन है और न कर्मों के न करने से ही कोई मतलब है; क्योंकि वह तो यथार्थ ज्ञान के प्रभाव से स्वाभाविक ही परमात्मा में स्थित है। अतः उसके मन में कामनाओं की उत्पत्ति उसी प्रकार रुक जाती है, जैसे पत्थर से मंजरियाँ नहीं निकलती।

तेतीसवाँ सर्ग समाप्त

चौतीसवाँ सर्ग

किरातराज सुरघु का वृत्तान्त

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-राघव ! इस विषय में एक प्राचीन इतिहास का दृष्टान्त दिया जाता है, जो किरातराज सुरघु का परम विस्मयजनक वृत्तान्त है। पूर्वकाल में हिमालय के शिखरभूत कैलास के मूल देश में हेमजट नामक किरात निवास करते थे। उनका जो राजा था, उसका नाम सुरघु था। वह उदारचेता एवं शत्रु-नगरी पर विजय पाने वाला था। विजयलक्ष्मी तो मानो उसकी भुजा ही थी। वह बलवान् तथा प्रजापालन में दक्ष था। पराक्रम में तो वह सूर्यतुल्य और बल में साक्षात् मूर्तिमान् वायु के समान था। उसने नाना प्रकार के राज्यवैभवों तथा विविध धन-सम्पत्तियों से गुह्यकाधिपति कुबेर को, ज्ञान से इन्द्र गुरु बृहस्पति को और काव्यगुणों से असुर गुरु शुक्राचार्य को जीत लिया था। वह यथावसर प्राप्त होते हुए राजकार्यों को निग्रह-अनुग्रह की व्यवस्था से उत्साहपूर्वक करता था। तदनन्तर उन राजकार्यों से उत्पन्न हुए सुख-दुःखों से उसकी पारमार्थिक गति उसी प्रकार अभिभूत हो गयी, जैसे जाल में फँसे हुए पक्षी की गति रुक जाती है। तब वह यों विचार करने लगा-'मैं इन दुखी प्रजाजनों को कोल्हू में पेरे जाते हुए तिलों की भाँति क्यों बलपूर्वक पीड़ित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (RTS) Jammu Collection

करता हूँ ? मेरे समान ही इन सभी प्राणियों को भी तो दुःख होता होगा। अतः अब मेरा इन्हें और अधिक दण्ड देना व्यर्थ है। मैं इन्हें धन-सम्पत्ति प्रदान करूँगा; क्योंकि मेरी तरह सभी लोग धन से आनन्दित होते हैं। अथवा निग्रह का अवसर प्राप्त होने पर उसे भी करूँगा; क्योंकि निग्रह के बिना प्रजा अपनी मर्यादा में स्थित नहीं रहती। यह मेरे लिये दण्डनीय है। यह सदा मेरे अनुग्रह का पात्र है। सौभाग्य की बात है कि आज मैं सुखी हूँ और दुर्भाग्यवश आज मैं दुखी हूँ। यह सब अन्त में कष्ट-ही-कष्ट है।' पृथ्वीपति सुरघु का मन इस प्रकार के संकल्प-विकल्पों से चंचल हो गया, जिससे उसे कहीं विश्राम नहीं मिला-जैसे चिरकाल की तृषा से युक्त मन जल के बड़े-बड़े आवर्तों पर घूमते रहने पर भी जल के बिना कहीं शान्ति नहीं पाता।

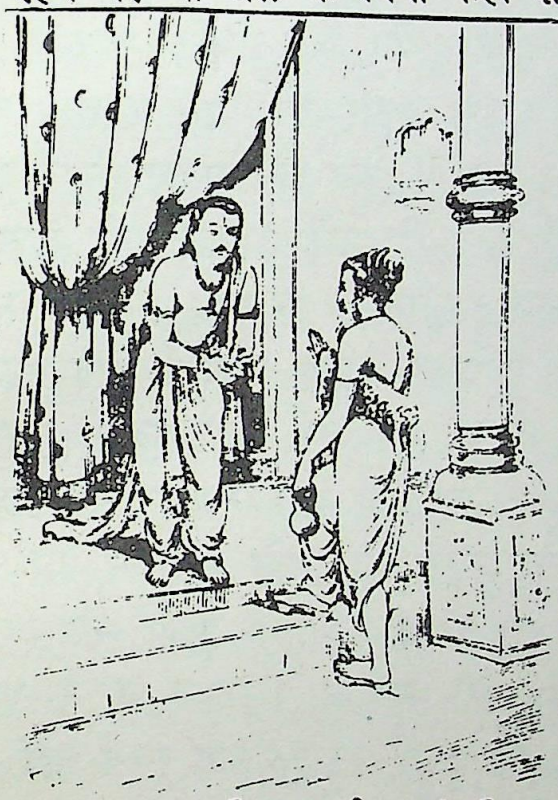

तदनन्तर किसी समय महर्षि माण्डव्य सम्पूर्ण दिशाओं में भ्रमण करते हुए राजा सुरघु के घर पधारे-ठीक उसी तरह, जैसे देवर्षि नारद इन्द्र-भवन में पदार्पण करते हैं। वे मुनिराज सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता थे, अतएव संदेहरूपी दुष्ट वृक्षस्तम्भ का छेदन करने के लिये कुठारस्वरूप थे। राजा ने उनका पूजन किया और यों पूछा।

सुरघु ने कहा-मुने ! जैसे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु का दर्शन करके भक्त परम प्रसन्न होता है, उसी प्रकार आपके शुभागमन से मुझे परम हर्ष प्राप्त हुआ है। भगवन् आप तो सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता हैं; अतः जैसे सूर्य अन्धकार का विनाश कर देते हैं, उसी प्रकार आप मेरे संशय का निवारण कीजिये; क्योंकि दुःख के स्वरूप को पूर्णतया जाननेवाले विज्ञजन संशय को ही महान् दुःख का विनाश बतलाते हैं। भला, महापुरुषों के संग से किसके दुःख का विनाश नहीं होता अर्थात् सभी के दुःख नष्ट हो जाते हैं। प्रभो ! अपने प्रजाजनों पर मेरे द्वारा किये गये निग्रह और अनुग्रह से उत्पन्न हुई चिन्ताएँ मुझे उसी प्रकार उत्पीड़ित कर रही हैं, जैसे सिंह के नख हाथी को कष्ट में डाल देते हैं। अतः मुने !

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama Prasad Collection

जिस प्रकार मेरी बुद्धि में सूर्य की किरणों के समान समता का उदय हो और विषमता न आने पाये, कृपापूर्वक वैसा ही प्रयत्न कीजिये।

महर्षि माण्डव्य बोले-राजन् ! जैसे सूर्य की किरणों के स्पर्श से कुहरे का विनाश हो जाता है, उसी तरह वैराग्य, श्रवण-मनन-निदिध्यासनरूप अभ्यासादि निजी प्रयत्न से तथा आत्मस्थितिरूप उपाय से मन की यह कायरता पूर्णतया नष्ट हो जाती है। आत्मविषयक विवेक विचार करने से ही मन के भीतरी संताप का शमन होता है-ठीक उसी तरह, जैसे शरद्ऋतु के आगमन मात्र से विशाल मेघमण्डल विलीन हो जाता है। इसलिये तुम मन-ही-मन विचार करो-ये जो पुत्र, मित्र आदि अपने सम्बन्धी हैं तथा अपने शरीर में रहने वाली इन्द्रियाँ हैं, वे तत्वतः कौन हैं और कैसी हैं ? मैं कौन हूँ ? कैसा हूँ ? यह दृष्य जगत् क्या है ? प्राणियों के जन्म-मरण कैसे होते हैं ? यों विचार करने से तुम्हें परमोत्कृष्ट महत्ता प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार जब परमात्म-तत्त्व का यथार्थ अनुभव कर लेने पर तुम संतुष्ट हो जाओगे, तब जैसे संतान संतुष्ट हुए पिता की कृपा का पात्र होती है, उसी तरह वे सभी सम्पत्तिशाली राजा-महाराजा तुम्हारे कृपा पात्र हो जाँयेंगे। सज्जनशिरोमणे ! परमात्मा की प्राप्तिरूप महत्ता के प्राप्त कर लेने पर तुम्हारा चित्त जागतिक विषय-भोगों में उसी प्रकार नहीं डूबेगा, जैसे गाय के खुर के गड्ढे के जल में हाथी नहीं डूबता। तुम्हारे अन्तःकरण में केवल दृश्य का अवलम्बन करने वाली वासनारूपा दीनता छायी हुई, है, अपनी उसी दीनता के कारण तुम कीड़े की भाँति भोगों में पच रहे हो। जो सर्वात्मिका बुद्धि से सब देश में, सब काल में, सभी प्रकारों से सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च का परित्याग कर देता है, उसे सर्वरूप परमात्मा अपने-आप उपलब्ध हो जाते हैं; किंतु जब तक सम्पूर्ण दृश्यों का पूर्णतया त्याग नहीं हो जाता, तब तक परमात्मा का साक्षात्कार होना दुर्लभ है; क्योंकि सभी अवस्थाओं का परित्याग कर देने पर जो शेष रहता है, वही परमात्मा कहा गया है। राजन! अन्याय कार्यों का परित्याग करके आत्मा जिस विषय की प्राप्ति के लिये स्वयं सब प्रकार से यत्न करता है, उसी को पाता है; उससे भिन्न कुछ नहीं मिलता। इसलिये अपने आत्मा का साक्षात्कार करने के लिये सभी विषयों का परित्याग कर देना चाहिये; क्योंकि सब कुछ त्याग देने पर अन्त में जो दृष्टिगोचर होता है, वही परम पद है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं-रघुनन्दन ! महर्षि माण्डव्य राजा सुरघु को यों उपदेश देकर अपने उसी रुचिर आश्रम की ओर चले गये, जहाँ मुनियों का जमघट लगा रहता था। उन मुनिश्रेष्ठ के चले जाने पर राजा सुरघु किसी दोष रहित एवं एकान्त स्थान में जाकर अपनी बुद्धि से यों विचार करने लगा-'वस्तुतः स्वयं मैं कौन हूँ ? मैं मेरुपर्वत तो हूँ नहीं और न मेरुगिरि मेरा है। न तो जगत् हूँ और न जगत् मेरा है। मैं पर्वत भी नहीं हूँ और न पर्वत मेरे हैं। मैं न पृथ्वी हूँ और न पृथ्वी मेरी है। यह किरातमण्डल भी मेरा नहीं है और न मैं किरातमण्डल हूँ। केवल अपने संकेत से ही यह देश मेरा कहा जाता है। लो, मैंने इस संकेत को छोड़ दिया; अतः न तो मैं देश हूँ और न यह देश मेरा है। इस नगर के विषय में भी इस कल्पना त्याग से यही निश्चय होता है कि यह पुरी जो पताकाओं और वनश्रेणियों से सुशोभित,भृत्यों और उपवनों से व्याप्त तथा हाथी, घोड़ों और सामान्तों से परिपूर्ण है, वह मैं नहीं हूँ और न यह पुरी मेरी है। जो मिथ्याभूत मान्यता से सम्बन्ध रखने वाला और उस मान्यता का विनाश होने पर नष्ट हो जाने वाला है, ऐसा यह भोग-समुदाय और भार्या आदि कुटुम्ब भी मैं नहीं हूँ और न ये सब मेरे हैं। इसी प्रकार भृत्यों, सेनाओं, वाहनों एवं अन्याय नगरों से युक्त राज्य मैं नहीं हूँ और न राज्य मेरा है; क्योंकि यह मान्यता तो केवल कल्पित है। इस शरीर में स्थित मांस और अस्थि भी मैं नहीं हूँ; क्योंकि ये जड़ हैं। कमल दल पर पड़े हुये जल की बूँद की तरह उनका मेरे साथ सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार मांस, रक्त और हड्डियाँ-ये सभी जड़ हैं; अतः मैं ये नहीं हूँ और न किसी दशा में ये मेरे हैं। कर्मेन्द्रियाँ भी मैं नहीं हूँ और न कर्मेन्द्रियाँ मेरी हैं। इस प्रकार इस देह में यावन्मात्र जड़ पदार्थ हैं, मैं नहीं हूँ; क्योंकि मैं तो चेतन हूँ। मैं भोग नहीं हूँ और न भोग मेरे हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ भी मेरी नहीं हैं और न मैं ही ज्ञानेन्द्रियाँ हूँ; क्योंकि वे जड़ और असत्स्वरूपा हैं। जो संसार रूपी दोष का मूल कारण है, वह मन भी मैं नहीं हूँ क्योंकि वह तो जड़ है। बुद्धि और अहंकार भी मैं नहीं हूँ और न वे मेरे हैं; क्योंकि यह दृष्टि मनोमयी होने के कारण जड़ है। यों चंचलस्वरूप वाले शरीर से लेकर मन, बुद्धि और इन्द्रिय आदि तक जो स्थूल-सूक्ष्म भूतों का समुदाय है, उनमें से मैं एक भी नहीं हूँ।

'अहो ! महान् आश्चर्य की बात है, मैं तो सम्पूर्ण विकल्पों से रहित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

विशुद्ध साक्षी स्वरूप चेतन आत्मा हूँ। जिसकी प्राप्ति के लिये मैं चिरकाल से प्रयत्नशील था, उस आत्मा की उपलब्धि तो मुझे आज ही हुई है। जिस विशुद्ध आत्मा का कहीं अन्त नहीं है, वह तत्पदवोध्य असीम आत्मा ही मैं हूँ। वह चेतन आत्मा निर्मल, विषय-दोषों से शून्य, सम्पूर्ण दिग्मण्डल को परिपूर्ण करने वाला, सर्वव्यापक, सूक्ष्म, उत्पत्ति-विनाश रहित, समस्त आकारों से परे एवं सर्वदा सर्वभाव को प्राप्त है। जगत् की यह अनुभवात्मक कल्पना भी चेतना शक्ति मयी ही है। यह जो सुख और दुःख की दशा का ज्ञान होता है, वह तो मिथ्या अनुभव मात्र है तथा जो नाना प्रकार के आकारों की प्रतीत होती है, वह सब कुछ परम चेतन आत्मा ही है। जो समस्त जगत् में व्यापक है, वही चेतन मेरा आत्मा है और जो मेरी बुद्धि का साक्षी है, वही यह चेतन है। इसी चेतन शक्ति की कृपा से देह रूपी रथ पर आरूढ़ होकर अनेकों सृष्टि-विलासों में जाता है, वहाँ दौड़-धूप करता और नाचता है। वस्तुतः तो ये मन-शरीर आदि वस्तुएँ कुछ भी नहीं हैं; क्योंकि इनके नष्ट हो जाने पर भी आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता। चित्तरूपी नटने ही इस जगज्जाल रूपी नाटक का विस्तार किया है। इसे केवल वही बुद्धि देखती है, जो दीप-शिखा के समान देदीप्यमान है। अत्यन्त खेद की बात है कि निग्रह और अनुग्रह की स्थिति में मुझे देह विषयिणी चिन्ता व्यर्थ ही हुई; क्योंकि परमार्थतः देह कुछ भी नहीं है। अहो ! अब तो मुझे विशेष रूप से ज्ञान की प्राप्ति हो गयी है, जिससे मेरा असद्विचार नष्ट हो गया है। जिसे जानना आवश्यक था, उसे मैंने जान लिया और जो प्राप्त करने योग्य था, उसे पा लिया। अब लोक में वे निग्रह और अनुग्रह कहाँ हैं, किस प्रकार के हैं, किस में रहते हैं और उनका स्वरूप क्या है ? इसी तरह हर्ष और अमर्ष की परम्परा भी कहाँ है ? अर्थात् ये सभी व्यर्थ कल्पनामात्र ही हैं। अब मैं रागशून्य, विषयों के संसर्ग से रहित और सुषुप्ति आदि अवस्थाओं से परे होकर उस विशुद्ध विज्ञानानन्दघन परमात्मा में, जो संसार-भ्रम और रागादि से शून्य है, नित्य निवास करूँगा।'

चौतीसवाँ सर्ग समाप्त

पैतीसवाँ सर्ग

सुरघु को परम पद प्राप्ति

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं-रघुकुल भूषण राम ! जैसे गाधिनन्दन विश्वामित्र

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama Prasad (I.F.S.) Jammu Collection

ने अपने तपोबल से ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया था, उसी तरह हेमजट नामक किरातों के राजा सुरघु ने निश्चयात्मक ज्ञान के बल से परमपद प्राप्त कर लिया। तभी से राजा सुरघु चिन्ता ज्वर से मुक्त हो गया। वह सर्वदा निग्रह-अनुग्रहरूपी अपने राजोचित कार्यों में उसी तरह अटल बना रहता था, जैसे जल प्रवाह के सम्मुख पर्वत निष्कम्प बना रहता है। हर्ष, विषाद और ईर्ष्या से रहित होकर प्रतिदिन यथावसर प्राप्त हुए कार्यों को न्याय पूर्वक करता हुआ राजा सुरघु अपनी उदार और गम्भीर आकृति द्वारा समुद्र से भी बढ़ कर सुशोभित होने लगा। उसकी वृत्ति अन्तःकरण को शीतल करने वाली, निश्चलता के कारण धीर और समदर्शनात्मक थी; उस वृत्ति से वह परिपूर्ण समुद्र और चन्द्रमा की भाँति शोभा पाने लगा। यह सारा जगत् केवल चेतन-तत्त्व की कल्पना ही है-यों निश्चय करने के कारण उसकी बुद्धि सांसारिक सुख-दुःख से रहित हो गयी थी; अतः वह पूर्णरूप से प्रकाशित हो रही थी। इसलिये प्रबुद्ध तथा चेतन में विलीन हुआ वह राजा हर्षित होते, प्रफुल्लित होते, पूर्णरूप से स्थित रहते, चलते, बैठते और सोते समय सदा समस्वरूप परब्रह्म परमात्मा में ही स्थित रहता था। उसका शरीर विकार रहित था तथा नेत्र कमल के समान सुन्दर थे। वह अनासक्त भाव से राज्य करते हुए सैकड़ों वर्षपर्यन्त इस भूमण्डल पर विद्यमान रहा। तत्पश्चात् उसने स्वयं ही इस पंचभूतात्मक शरीर का परित्याग कर दिया और परमात्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाने के कारण, जो सृष्टि और प्रलय के हेतु तथा ईश्वर हैं, उन परब्रह्म परमात्मा में प्रवेश कर गया-ठीक उसी तरह, जैसे नदियों का जल परिपूर्ण समुद्र में प्रवेश करता है। वह विशुद्ध एक रस स्वप्रकाश परमात्मा को यथार्थ रूप से जान चुका था और जन्म आदि विकारों से रहित अवस्था को प्राप्त कर लेने के कारण उसके समग्र शोक शान्त हो गये थे; इसलिये वह पूर्णरूप से परब्रह्म परमात्मा में उसी प्रकार एकीभाव को प्राप्त हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

गया, जैसे घट के फूट जाने पर घटाकाश महाकाश में मिल जाता है।

पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त

छत्तीसवाँ सर्ग

किरातराज सुरघु और राजर्षि पर्णाद का संवाद

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं–रघुनन्दन ! जिस समय सुरघु को तत्त्वज्ञान हो चुका था, उसी समय अर्थात् उसके जीवन काल में ही उसका और राजर्षि पर्णाद (परिघ) का परस्पर जो अद्भुत संवाद हुआ था, उसे सुनो। रघुकुल को आनन्दित करने वाले राम ! जैसे रथ पर रखा हुआ परिघ नामक अस्त्र विपक्षी वीरों का संहार करने में प्रसिद्ध है, उसी तरह पारसीक देश का एक विख्यात राजा हो गया है; जो शत्रु वीरों का संहार करने वाला था। उसका नाम था परिघ। वह किरातराज सुरघु का परम मित्र था। किसी समय जैसे कल्पान्त के अवसर पर संसार में वर्षा का अभाव हो जाता है, उसी तरह राजा परिघ के राज्य में महान् आवर्षण हुआ, जिसमें प्रजाजनों का पापरूपी दोष ही कारण था। उस समय बहुत-सी जनता भूख से गतप्राण होकर उसी प्रकार विनष्ट हो गयी, जैसे जंगल में आग लग जाने पर झुंड-के-झुंड प्राणी जल कर भस्म हो जाते हैं। प्रजा के उस कष्ट को देखकर राजा परिघ को अपार विषाद हुआ। उसने प्रजाजनों को विनाश से बचाने के लिये अनेकों यत्न किये, किन्तु वे सब निष्फल सिद्ध हुए। तब उसे राज्य से वैराग्य हो गया। फिर तो जैसे राहगीर जले हुए गाँव को छोड़कर चल देते हैं, उसी तरह उसने शीघ्र ही अपने सम्पूर्ण राज्य का परित्याग कर दिया और मृगचर्मधारी मुनियों की तरह तपस्या करने के लिये जंगल की राह ली। वह विरक्तात्मा परिधि किसी दूरवर्ती कानन में, जो पुरवासियों की जानकारी के बाहर था, जाकर इस प्रकार रहने लगा मानो किसी अन्य लोक में चला गया हो। उसकी बुद्धि तो शान्त थी ही, उसने अपने मन-इन्द्रियों का भी दमन कर लिया था; अतः वह वहाँ एक पर्वत की कन्दरा में आसन लगाकर तपस्या में निरत हो गया। उस समय स्वयं सूखकर गिरे हुए पत्ते ही उसके आहार थे। इस प्रकार चिरकाल तक वह अग्नि की भाँति सूखे पत्तों को ही भक्षण करता रहा, जिससे तपस्वियों के मध्य में वह 'पर्णाद' नाम से विख्यात हुआ। तभी से वह परिघ जम्बूद्वीप में मुनियों के आश्रमों में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.F.S) Jammu Collection

राजर्षिश्रेष्ठ पर्णाद के नाम से प्रसिद्ध हो गया। तदनन्तर एक सहस्त्र वर्षों की घोर तपस्या और अभ्यास के द्वारा परमात्मा की कृपा से उसे आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई। साधु स्वभाव राम ! फिर तो उसकी बुद्धि प्रबुद्ध हो उठी। वह सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से परे हो गया। उसकी विषय-वासनाएँ नष्ट हो गयीं। उसका मन विक्षेप शून्य और शान्त हो गया तथा वह विषयों की आसक्तियों और आक्षेपों से रहित हो गया। इस प्रकार जीवन्मुक्त होकर वह तत्त्वज्ञानियों तथा तत्त्वजिज्ञासु मुनियों के साथ स्वेच्छानुकूल त्रिलोकी में विचरण करने लगा। यों पर्यटन करते हुए वह एक समय हेमजट देश अधिपति राजा सुरघु के रत्ननिर्मित महल में जा पहुँचा। वे दोनों पहले के मित्र तो थे ही, साथ ही वे पूर्ण ज्ञानी उन्हें ज्ञातव्य तत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो चुका था तथा वे जीवन्मुक्त थे अतः वे परस्पर एक-दूसरे का आदर-सत्कार करके यों कहने लगे-'अहो ! निश्चय ही आज मेरे कल्याणमय पावन सत्कर्मों का फल उदय हुआ, जिससे मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ।' उस समय उनके शरीर आनन्द से परिपूर्ण हो गये थे, अतः वे परस्पर आलिंगन करके एक ही आसन पर विराजमान हुए।

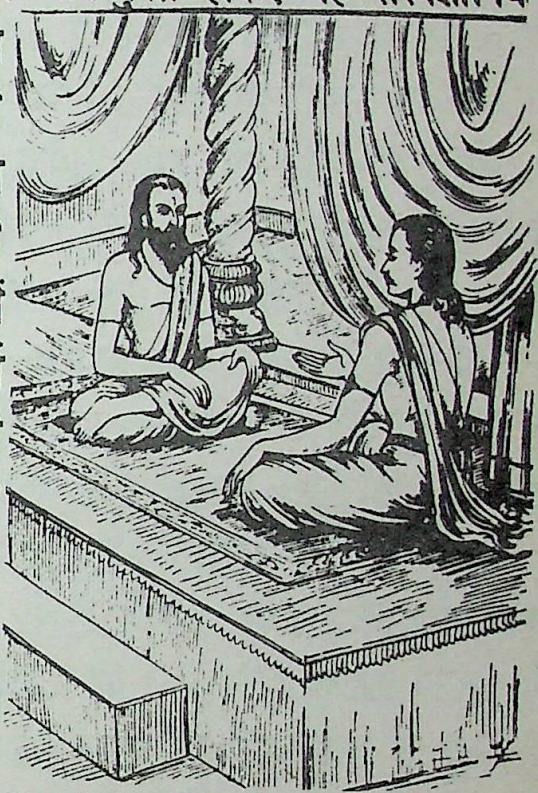

तब परिघ ने कहा-सखे ! तुम्हारे दर्शन से आज मेरा चित्त परमानन्द से परिपूर्ण हो गया है। सज्जन शिरोमणे ! पहले के वे संकोचहीन वार्तालाप, विविध लीलाएँ और विभिन्न चेष्टाएँ बारंबार मेरे स्मृति-पटल पर आ रही हैं, जिससे मुझे परम हर्ष हो रहा है। निष्पाप राजन् ! जैसे महर्षि माण्डव्य की कृपा से तुम्हें तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हुई है, उसी तरह आराधना द्वारा प्रसन्न हुए परमात्मा के प्रसाद के प्रसाद से मुझे भी यह ज्ञान प्राप्त हुआ है। मित्र ! अब तो तुम्हें कोई कष्ट नहीं है न ? तुम मेरुगिरि पर विश्राम करने वाले भूमण्डल के अधिपति की तरह परम कारणरूप परब्रह्म परमात्मा में विश्राम को प्राप्त हो गये हो न ? परम कल्याणस्वरूप ! तुम्हारे चित्त में आत्मारामता के कारण सदा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

प्रसन्नता छायी रहती है न ? परम सौभाग्यशाली नरेश ! तुम अत्यन्त प्रसन्नता एवं गम्भीरतापूर्ण समदृष्टि से जनता के कल्याणार्थ कर्तव्य कर्मों को करते हो न ? तुम्हारे देश में निवास करने वाली जनता शारीरिक एवं मानसिक पीड़ाओं से रहित, धैर्य-सम्पन्न और धन से परिपूर्ण है न ? उसे कोई चिन्ता तो नहीं सताती ? क्या उत्तम फल प्रदान करनेवाली एवं अनेक विध फलों के भार से नम्र हुई कल्पलता की भाँति तुम्हारे राज्य की भूमि प्रजाजनों का उनके अभिलाषित पदार्थों की पूर्ति द्वारा सदा-सर्वदा पोषण करती है ? जैसे चन्द्रमा के किरणजाल सारे भूमण्डल को व्याप्त कर लेते हैं, उसी तरह तुम्हारा पावन यश, जो तुषार-राशि के सदृश निर्मल है, सारी दिशाओं में फैला हुआ है न ? जैसे सरोवर का जल अपने अंदर रहने वाले कमलनालों की भूमि को पूर्ण कर देता है, वैसे ही तुमने अपने गुण-गणों से सारी दिशाओं को भर दिया है न ? क्या गाँव-गाँव में धान की क्यारियों के कोनों में बैठी हुई हर्षित चित्तवाली कुमारियाँ तुम्हारे आनन्दवर्धक यश का गान करती हैं ? तुम्हारे धन-धान्य, ऐश्वर्य, भृत्यवर्ग, पुत्र-कुलत्र और नगर आदि सबकी कुशल तो है न ? तुम्हारी यह शरीररूपी लता शारीरिक एवं मानसिक पीड़ाओं से रहित होकर उस पुण्य नामक फल को उत्पन्न करती है न, जिसकी इहलोक तथा परलोक-दोनों के लिये शास्त्र आज्ञा देते हैं ? जो तत्वज्ञान में प्रतिबन्धक होने के कारण महान् शत्रु-तुल्य हैं तथा सर्प के समान विषवत् फल प्रदान करने वाले हैं, ऐसे इन आपात-रमणीय विषय-भोगों से तुम्हारा मन विरक्त तो है न ? अहो ! हम दोनों को वियुक्त हुए बहुत-सा काल व्यतीत हो गया, परंतु काल की प्रेरणा से आज हम पुनः मिल गये। सखे ! जगत् में संयोग-वियोग-जनित सुख-दुःख की ऐसी कोई अवस्थाएँ हैं ही नहीं, जिनका प्राणियों को अनुभव न होता है। इसी नियम के अनुसार हम लोग भी दीर्घकालिक सुख-दुःख की दशाओं के फेर में पड़ गये थे, परंतु अब पुनः आ मिले हैं। अहो ! भगवान् का कैसा अदभुत विधान है !

सुरघु बोला-भगवन ! भगवद्विधानरूप इस नियति की गति सर्प की चाल की तरह बड़ी टेढ़ी है। वह गम्भीर एवं विस्मयजनक है। भला, उसे कौन जान सकता है। उसने ही आपको और मुझे चिरकाल तक दूर हटाकर आज पुनः मिला दिया है। अहो ! उस नियति के लिये क्या असाध्य है ? अर्थात् कुछ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shama Fund Jammu Collection

नहीं। महात्मन् ! आज आपके शुभागमन-जनित पुण्य के संस्पर्श से हम सब तरह से कल्याण के भागी और परम पावन हो गये। राजर्षे ! इस नगर में हमारी जो सम्पत्तियाँ वर्तमान हैं, वे सभी आज आपके शुभागमन से सैकड़ों रूपों में वृद्धि को प्राप्त हो गयी हैं। महानुभाव ! आपके पुण्य वचन और दर्शन चारों ओर से मानो राशि-राशि अमृतरूप मधुर रसायनों की वर्षा कर रहे हैं; क्योंकि सत्पुरुषों का समागम परमपद की प्राप्ति के समान होता है।

छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त

सैतीसवां सर्ग

दुखों की शान्ति का साधन

श्री वसिष्ठजी कहते हैं-राघव ! प्रायः ऐसे ही प्राचीन स्नेह से ओतप्रोत एवं संकोचहीन वार्तालाप करते हुए राजा परिघ सुरघु के राजसदन में चिरकाल तक स्थित रहे। तदनन्तर उन्होंने सुरघु से पूछा-'राजन् ! जो समग्र संकल्पों से शून्य, विश्राम का परमोत्तम स्थान तथा विक्षेपात्मक दुःखों की शान्ति का परम साधन है, उस कल्याणकारी समाधि का अनुष्ठान तो तुम करते हो न ?

सुरघु ने कहा-प्रभो ! आप मुझसे 'सम्पूर्ण संकल्पों से रहित परम शान्ति ही कल्याणप्रद है' ऐसा तो कहिये, परंतु समाधि के लिये क्यों कहते हैं ? क्योंकि महात्मन् ! जो तत्त्वज्ञानी महात्मा पुरुष है, वह चाहे समाधिस्थ रहे चाहे व्यवहार करे. उसका तो स्वरूप ही सदा समाधिस्थ सा होजाता है। वह कभी असमाहित चित्तवाला हो ही नहीं सकता।

जिनका चित्त प्रबुद्ध हो गया है, ऐसे तत्त्वज्ञानी महात्माओं की आत्मारूपी अद्वितीय तत्त्व में परम निष्ठा हो जाती है, इसलिये वे सांसारिक व्यवहारों को करते हुए भी सदा सर्वदा समाधि सम्पन्न ही बने रहते हैं। परंतु जिसका अन्तःकरण चंचल होने के कारण विश्राम को नहीं प्राप्त हुआ है, वह चाहे पद्मासन बाँधे चाहे परब्रह्म को अंजलि समर्पित करे, उसकी कोई समाधि कैसे लग सकती है। भगवन् ! मौन होकर बैठे रहना ही समाधि थोड़े ही है। समाधि तो परमात्म तत्त्व के उस यथार्थ ज्ञान को कहते हैं, जो सम्पूर्ण आशारूपी घास-फूस को भस्म करने के लिये अग्नि स्वरूप है। साधो ! परमात्मा के तत्त्व को जानने वाले ज्ञानीजन उस तीक्ष्ण और अचल परा प्रज्ञा को ही समाधि कहते हैं, जो एकाग्र, सदा-सर्वदा तृप्त और सत्य अर्थ को ग्रहण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करने वाली है। एवं जो प्रज्ञा क्षोभरहित, अहंकार शून्य, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से पृथक् रहने वाली तथा मेरु से भी बढ़कर स्थिरता युक्त है, उसे समाधि कहते हैं। जो मनःस्थिति चिन्ता शून्य, अभीष्ट पदार्थों को प्राप्त करने वाली, ग्रहणोपादान से रहित तथा सच्चिदानन्द परमात्म भाव से परिपूर्ण है, उसके लिये समाधि शब्द का व्यवहार किया जाता है। जब मन तत्त्वज्ञान के साथ सदा के लिये अत्यन्त सम्बद्ध हो जाता है, तब से ज्ञानी महात्मा की समाधि सदा बनी रहती है, उसका कभी विच्छेद नहीं होता। जैसे सूर्य दिन भर प्रकाश से विश्राम नहीं लेता, अपितु प्रकाश पूर्ण ही रहता है, उसी तरह तत्त्वज्ञानी की प्रज्ञा जीवन पर्यन्त परमात्म-तत्त्व के यथार्थ अवलोकन से विश्राम नहीं लेती, अपितु सदा सर्वदा परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से परिपूर्ण रहती है। जैसे नदी निरन्तर बेरोक-टोक जल की धारा बहाती रहती है, उसी तरह महात्मा की विज्ञानमयी दृष्टि क्षणमात्र के लिये भी परमात्मा के स्वरूप ज्ञान से विरत नहीं होती, अपितु सदा सर्वदा एक रस बनी रहती है। जैसे काल अपने क्षण आदि कलाओं की गति को कभी नहीं भूलता, उसी तरह तत्त्वज्ञानी पुरुष की बुद्धि अपने आत्मस्वरूप का कभी विस्मरण नहीं करती। तथा जैसे सर्वत्र गमन करने वाले वायु देव को सदा अपनी गति का ध्यान बना रहता है, उसी प्रकार तत्त्वज्ञानी की बुद्धि निश्चय करने योग्य विज्ञानानन्दघन परमात्मा का संतत चिन्तन करती रहती है। जैसे जिस पदार्थ की सत्ता का विनाश हो जाता है, उसकी पुनः उपलब्धि नहीं होती, उसी तरह तत्त्वज्ञानी का समय परमात्मा के ज्ञान से विहीन होकर कभी उपलब्ध नहीं होता। अर्थात् वह सदा परमात्मा के ध्यान में ही रचा पचा रहता है। जैसे संसार में गुणवानों का गुणहीन होना असम्भव है, उसी तरह आत्मज्ञानी महात्मा कभी भी परमात्मा के ज्ञान से विहीन नहीं रह सकता। मैं सदा-सर्वदा ही परमात्मज्ञान से सम्पन्न, परमशुद्ध स्वरूप, शान्तात्मा और समहितचित हूँ; ऐसी दशा में मेरा समाधि से विच्छेद किसके द्वारा और कैसे हो सकता है। क्योंकि मेरी समाधि परमात्मा के स्वरूप से भिन्न नहीं है, अतः उस परमात्म स्वरूप समाधि का अस्तित्व नित्य ही बना हुआ है। जब यह जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सारा-का-सारा सदा सब प्रकार से सर्वव्यापक परमात्म स्वरूप ही है, तब किसे समाधि कहा जाय और किसे असमाधि ?

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (Prof.) Collection

तब परिघ ने कहा-राजन् ! निश्चय ही तुम्हें परमात्मा के यथार्थरूप का ज्ञान प्राप्त हो गया है और उस सच्चिदानन्दघन परब्रह्मरूप परमपद की प्राप्ति भी हो चुकी है। इसीलिये तुम्हारा अन्तःकरण परम शान्तिरूप शीतलता से युक्त हो गया है, जिससे तुम पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे हो। महाराज ! इस समय स्नेह के कारण अत्यन्त मधुर, शीतल, आनन्दरूपी पुष्परस से परिपूर्ण एवं उत्तम श्री से सम्पन्न होने के कारण तुम्हारी शोभा कमल जैसी हो रही है। तुम्हारा चित्त निर्मल, विस्तृत, परिपूर्ण, गम्भीर और विशद आशय वाला है; इससे तुम्हारी वैसी ही शोभा हो रही है, जैसी तटवर्ती झंझावात से मुक्त हुए शान्त समुद्र की होती है। जैसी शोभा शरत्कालीन निर्मल आकाश धारण करता है, वैसे ही तुम भी स्वच्छ, आनन्द से परिपूर्ण, अहंकाररूपी बादलों से रहित, स्पष्ट, विस्तीर्ण और अत्यन्त गम्भीर होने के कारण शोभित हो रहे हो। राजन्! तुम सर्वत्र अपने स्वरूप में समभाव से स्थित दीख पड़ते हो, सर्वत्र पूर्णतया संतुष्ट हो और किसी विषय में तुम्हारी आसक्ति नहीं रह गयी है; इसलिय सर्वत्र तुम्हारी शोभा हो रही है। तुम अपनी उत्तम बुद्धि से सार-असार का निर्णय करके उसके झमेले से पार हो गये हो तथा तुम्हें इसका भी ज्ञान हो चुका है कि यह जो कुछ प्रपंच है, वह सारा-का-सारा अखण्ड परबह्म परमात्मा ही है।

सुरघु बोला-मुने ! संसार में ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जिसे ग्रहण करने के लिये हमारे मन में अभिलाषा हो; क्योंकि यह जितना दृश्य प्रपंच है, यह सभी कुछ नहीं है अर्थात् मिथ्या है। त्रिलोकी में जो ये स्त्रियों, पर्वत, समुद्र, वन श्रेणियाँ आदि पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं, ये सभी वास्तविकता शून्य हैं; क्योंकि वास्तव में इस जगत् में कोई सारभूत वस्तु है ही नहीं। इस मांस और अस्थिमय शरीर में तथा काष्ठ, मिट्टी और शिलामय जगत् में, जो जर्जर, अवांछनीय और अभाव स्वरूप है, किस वस्तु की इच्छा की जाय ? अर्थात् इनमें कुछ भी वांछनीय नहीं है। इस विषय में अब विशेष कुछ कहना आवश्यक नहीं दीख पड़ता; क्योंकि यदि मन रागरूप रस से रहित तथा सम्भाव में नित्य स्थित एवं आत्मस्वरूप में ही परितृप्त है तो वही सर्वोत्तम स्थिति है। अतः परमानन्द की प्राप्ति के लिये केवल इसी दृष्टि का सदा सर्वदा आश्रय ग्रहण करना उचित है।

सैंतीसवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma(I.P.S) Jammu Collection

अढ़तीसवां सर्ग

आत्मा का संसार-दुःख से उद्धार करने के उपाय

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! यों तत्त्वज्ञ सुरघु और राजर्षि पर्णाद (परिघ) दोनों जगद् भ्रम का विचार करके परम प्रसन्न हुए। उन्होंने एक-दूसरे का आदर-सत्कार किया और फिर वे अपने-अपने कार्य में तत्पर होकर अभीष्ट स्थान को चले गये। ज्ञानी महापुरुषों के साथ विचार विमर्श करने के कारण अत्यन्त तीव्र हुई उत्तम बुद्धि द्वारा जिसके हृदयाकश में अहंकाररूपी काले मेघों का सर्वथा अभाव हो गया है, शरत्कालीन निर्मल आकाश की तरह जिसका विस्तृत चित्त समस्त लोगों द्वारा अनुमोदित, फलात्मक बोध से युक्त, आल्हाद जनक एवं रागादि मलों से रहित हो गया है, जो ध्यान करने एवं शरण लेने योग्य, सुगम, सम्पूर्ण आनन्दों की निधि, अत्यन्त प्रसन्न विज्ञानानन्दघन परमात्मा में स्थित रहता है और जो नित्य परमात्मा के विचार में निरत, सदा अन्तर्मुखी वृत्ति से युक्त, सुखी तथा नित्य चिन्मय परमात्मा का अनुसंधान करने वाला है, उसे मानसिक शोक कभी बाधा नहीं पहुँचा सकते। जो परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से सम्पन्न, शुद्ध, भीतर से परम शान्ति युक्त एवं मननशील महात्मा है, उसे मन क्लेश नहीं दे सकता-ठीक उसी तरह, जैसे हाथी सिंह को बाधा नहीं पहुँचा सकता। ज्ञानी का अन्तःकरण तो अत्यन्त विशाल होता है; क्योंकि वह केवल विषय भोगों की शरण लेने वाला और दीन नहीं होता। ज्यों ही 'अविद्या असत् है' यों अविद्या के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हुआ, त्यों ही उसका सदा सर्वदा के लिये अभाव हो जाता है-जैसे स्वप्न का ज्ञान हो जाने पर स्वप्न दृष्ट भोग-भूमि का सर्वथा विनाश हो जाता है। जिसकी बुद्धि विषयों की आसक्ति से रहित और केवल विज्ञानानन्दघन परमात्मा में नित्य स्थित है, उस श्रेष्ठ महापुरुष को व्यवहार परायण रहने पर भी पाप स्पर्श नहीं कर सकता। जब चेतन परमात्मा के देदीप्यमान प्रकाश का उदय होता है, तब अज्ञानरूपी रात्रि विनष्ट हो जाती है और ज्ञानी की परमानन्द को प्राप्त हुई बुद्धि प्रकाशित हो उठती है। सत् शास्त्रज्ञानरूपी सूर्य द्वारा प्रबोधित मनुष्य की अज्ञान-निद्रा का जब सर्वथा विनाश हो जाता है, तब उसे परमात्मविषयक उस यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिसे पा लेने पर फिर कभी मोह नहीं होता। उन्हीं दिनों का जीवन वास्तव में सफल है और वे ही क्रियाएँ सच्चे आनन्द से युक्त हैं, जिन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

दिनों और जिन क्रियाओं में हृदयाकाश में परमात्मारूपी चन्द्रमा के उदय होने से चेतनारूपिणी चाँदनी खिल रही हो। मोह का अतिक्रमण कर लेने वाला मनुष्य निरन्तर आत्मचिन्तन के प्रभाव से अपने अन्तःकरण में उसी प्रकार शीतलता को प्राप्त कर लेता है, जैसे चन्द्रमा अपने अंदर वर्तमान अमृत से सदा शीतल बना रहता है। वे ही मित्र सच्चे मित्र हैं, वे ही शास्त्र सत् शास्त्र हैं और वे ही दिन शुभ दिन हैं, जिनके सहयोग से वैरागयरूपी उल्लास से युक्त परमात्मविषयक चित्त का अभ्युदय स्पष्टरूप से सिद्ध होता है। जिनके पाप क्षीण नहीं हुए हैं और जो परमात्मा की प्राप्ति की उपेक्षा करते हैं, वे जन्मरूपी जंगल के गुल्म हैं, दीन हैं और उन्हें चिरकाल तक दुःखों के लिये शोक करना पड़ता है।

श्रीराम ! जीवात्मा एक बैल के समान है। बुढ़ापे ने इसके शरीर को जर्जरित कर दिया है, जिससे यह शोकजनित उच्छ्वास से विडम्बित हो रहा है। यह आशारूपी सैकड़ों पाशों से जकड़ा हुआ है, फिर भी भोगरूपी घास के लिये इसके मन में उत्कट लालसा भरी है। यह अपनी पीठ पर दुःख का भारी बोझ लिये हुए जन्मरूपी जंगल में भटक रहा है और सारे शरीर में कुकर्मरूपी कीचड़ लपेटे हुये मोह-जलाशय में लोट रहा है। राग की दन्तपंक्तियाँ इसे चबाये डालती हैं और तृष्णारूपी नाथ से यह खींचा जा रहा है। मनरूपी वणिक् ने इस पर अधिकार जमा रखा है। यह बन्धु-ममतारूपी बन्धन में बँधा होने के कारण चलने-फिरने में असमर्थ हो गया है। पुत्र कलत्र की ममताजनित जीर्णतारूपी दलदल में यह बुरी तरह फँस गया है। लंबे रास्ते पर चलने के कारण इसका मन टूट गया है और विश्राम न मिलने से यह मन थक गया है, जिससे अब इसके चलने-फिरने की शक्ति क्षीण हो गयी है। यह संसाररूपी अरण्य में चक्कर काट रहा है, फिर भी परम शान्तिरूप शीतल छाया इसे नसीब नहीं हुई; उल्टे यह विषय-संसर्गजनित तीव्र ताप से संतप्त हो उठा है। बाह्य इन्द्रियाँ इसे आक्रान्त किये हुए हैं, जिससे ऊपर से तो इसका आकार सुन्दर है किन्तु अन्तःकरण दीन हो गया है। इसके गर्भ में लटकते हुए कर्मरूपी घंटे का शब्द हो रहा है। यह जन्म-मरणरूप गाड़ी के बोझ से लदा हुआ अज्ञान के विकट वन में लोट रहा है, ऊपर से पापरूपी कोड़ों की मार पड़ रही है, जिससे इसका शरीर भग्न हो गया है। अनर्थों में ही सदा निमग्न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S.) Library Collection

रहने से दुखी, दीन और शिथिल अंग वाला यह कर्मों के भारी भार से पीड़ित होकर करुण क्रन्दन कर रहा है। अतः चिरकाल तक उत्तम यत्न का आश्रय लेकर परमात्मविषयक ज्ञानरूपी बल के सहारे इसका संसाररूपी जलाशय से उद्धार करना चाहिये।

राघव ! परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार होने से जब चित्त विनष्ट हो जाता है, तब जीवात्मा पुनः संसार में कभी जन्म नहीं लेता; क्योंकि वह तो उसी समय संसार सागर से पार हो जाता है। श्रीराम ! जैसे समुद्र को पार करने के लिये नाविक से जहाज प्राप्त होता है, उसी तरह ज्ञानी महात्मा पुरुषों के संग से संसार सागर को लाँघ जाने की युक्ति ज्ञात हो जाती है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह मरुस्थल की भाँति जिस देश में परम शान्तिरूपी शीतल छाया और मोक्षरूपी फल से सम्पन्न तत्त्वज्ञ महापुरुष वृक्ष न हों, वहाँ निवास न करें। श्रीराम ! कोमल और शान्तिप्रद वचन ही जिसके पत्ते हैं, सच्चरित्रता ही जिसकी छाया है, मुसकान ही जिसके पुष्प हैं-ऐसे महापुरुषरूपी चम्पा के वृक्ष के नीचे जाने से उनके संग के प्रभाव से क्षणभर में ही आत्यन्तिक विश्राम प्राप्त हो जाता है। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है। अतः उसे चाहिये कि वह सत्संग, तीव्र अभ्यास, वैराग्य, विवेक-विचार आदि उपायों से स्वयं ही अपना उद्धार कर ले; संसार की आसक्ति, ममता, कामना और देहाभिमान के गर्व से अपने-आपको जन्म-मरणरूपी कीचड़ के महासागर में न फँसाये। विवेकशील पुरुषों को सत्संग, तीव्र अभ्यास वैराग्य आदि प्रबल उपायों द्वारा सदा यों विचार करते रहना चाहिए कि 'यह देह आदि दुःख क्या है ? कैसे आया है ? इसका मूल कारण क्या है ? और किस साधन से इसका विनाश हो सकता है ?' क्योंकि अज्ञान में निमग्न हुए अपने आत्मा का उद्धार करने में मनुष्यों का धन, मित्र, साधारण शास्त्र और बन्धु-बान्धव-कोई भी उपकारक नहीं होते। हाँ! सदा सर्वदा साथ रहने वाले विशुद्ध मनरूपी सुहृदय के साथ थोड़ा-सा भी परामर्श करने से आत्मा का उद्धार हो जाता है। तीव्र वैराग्य और अभ्यासरूपी प्रयत्नों के द्वारा विवेकपूर्वक किये गये आत्मविचार से जिसकी उपलब्धि होती है, उस परमात्म तत्व-साक्षात्काररूपी पोत के आश्रय से यह भवसागर पार किया जाता है, जिसके लिये लोग प्रतिदिन चिन्ता कर रहे हों और जो दुराशाओं द्वारा दग्ध हो रहा हो, उस अपने आत्मा की उपेक्षा नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Collection (Prof. Jammu Collection

करनी चाहिये; बल्कि आदरपूर्वक उसका उद्धार करना चाहिये। यह जीवात्मारूपी दंतार गजराज, जिसे बाँधने के लिये अहंकार की सुदृढ़ आलान है, तृष्णा ही लोहे की साँकल है और मन ही जिसका मद है, जन्म-मरण के दलदल में फँस गया है; अतः इसका उद्धार करना चाहिये।

जब मनुष्य विवेक-वैराग्य की दृष्टि से यों देखने लगता है कि यह देह काष्ठ और मिट्टी के ढेले के समान है, तब उतने से ही उसे देवाधिदेव परमात्मा का ज्ञान हो जाता है। पहले जब अहंकाररूपी मेघ नष्ट हो जाते हैं, तब यथार्थ आत्मज्ञानरूप सूर्य दिखायी पड़ता है। तदनन्तर उसके परिणाम स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है। जैसे अन्धकार का पूर्णतया विनाश हो जाने पर प्रकाश का अनुभव स्वतः होने लगता है, उसी तरह अहंकार का समूल नाश हो जाने पर परमात्मा का अपने आप ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार अहंकार के विनष्ट हो जाने पर जो परम आनन्द और परम शान्तिमय अवस्था होती है, वह परिपूर्णावस्था है। पूर्ण समुद्र की भाँति वह असीम होती है। न तो वह हम लोगों के मन आदि इन्द्रियों का विषय है, न उसकी किसी उपमान के साथ तुलना ही की जा सकती है और न वह विनाशशील विषयों के पीछे ही दौड़ती है; अतः उसका तीव्र प्रयत्न से निरन्तर सेवन करना चाहिए। श्रीराम ! मन और अहंकार का विनाश हो जाने पर समस्त पदार्थों के अंदर विद्यमान रहनेवाली जिसे निरतिशयानन्दात्मक परमात्म स्वरूपावस्था का अविर्भाव होता है, वह स्वयं समाधि सिद्ध तथा वाणी के अगोचर है। उसका तो केवल हृदय में ही अनुभव होता है। जैसे अनुभूति के बिना खाँड की मिठास अनुभव नहीं होती, उसी तरह अनुभव के बिना परमात्मा के स्वरूप का भी ज्ञान नहीं होता।

राजीवनयन राम ! 'यह मेरा है, यह मैं हूँ' इस प्रकार के अभिमान को त्यागकर मन से ही विवेकपूर्वक विचार द्वारा संकल्पात्मक मन का छेदन करके यदि परमात्मा का साक्षात्कार न किया जाय तो चित्रलिखित सूर्य के सदृश मिथ्या होते हुए भी इस जगद्-दुःख का कभी नाश नहीं होता, प्रत्युत महासागर की तरह विस्तार वाली एवं दुःखदायिनी संसाररूपी विपत्ति अनन्त हो जाती है। इस विषय में सह्य पर्वत के शिखर पर रहने वाले भास और विलास नामक दो मित्रों के संवादरूप में निम्नलिखित प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया जाता है। वह सह्य पर्वत नाना प्रकार के पुष्पों से आच्छादित तथा निर्मल जल से पूर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

बहुसंख्य झरनों से सुशोभित है। उसके ऊपरी भाग में देवता निवास करते हैं, तलहटी में मनुष्यों ने अपना आवास स्थान बना रक्खा है और पृथ्वी के अंदर का हिस्सा नागों से भरा रहता है। उसकी कन्दराओं में सिद्धों का निवास स्थान रहता है। भीतरी भाग में नाना प्रकार की खानें हैं। उसके शिखरों पर उगे हुए चन्दन-वृक्षों पर सर्प लिपटे रहते हैं और चोटियों पर सिंह दहाड़ते रहते हैं। उसी सह्य पर्वत के उत्तर-तटवर्ती शिखर पर, जहाँ फलों के भार से झुके हुए वृक्ष सुशोभित हैं, वह आश्रम सिद्धों के श्रम का अपहरण करने वाला, ब्रह्मलोक के समान उत्कृष्ट, स्वर्ग-तुल्य रमणीय और शिवाजी के नगर कैलास के समान शोभा सम्पन्न है। उसी विशाल आश्रम में शुक्र और वृहस्पति नाम के दो तपस्वी रहते थे, जो आकाश मार्ग में विचरण करने वाले शुक्र और बृहस्पति के समान शास्त्रों के ज्ञाता थे। कुछ समय बाद एक ही स्थान में रहने वाले उन दोनों तपस्वियों के पवित्र शरीर वाले दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे-विलास और भास। वे दोनों बालक उस आश्रम में पिताओं द्वारा लगाये हुए लता-वृक्षों के लंबे-लंबे पल्लवों की तरह क्रमशः बढ़ने लगे। वे दोनों मित्र थे। उनके मन में एक दूसरे के प्रति अत्यन्त स्नेह था, जिससे वे परस्पर प्रेम रखते थे और एक-दूसरे से मिल-जुलकर रहते थे। उन दोनों का मन समान होने के कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो एक ही मन ने दो भागों में विभक्त होकर दो शरीर धारण कर लिये हैं। इस तरह वहाँ रहते हुए उन दोनों ने थोड़े ही समय में बचपन को लाँघकर युवावस्था में प्रवेश किया। तदनन्तर जैसे दो पक्षी अपने-अपने घोंसले से उड़कर अन्यंत्र चले जायँ, उसी तरह उनके वे दोनों पिता (शुक्र और वृहस्पति) बुढ़ापे से दुखी हो शरीर का परित्याग करके स्वर्ग को चले गये। पिताओं की मृत्यु हो जाने पर उन दोनों का मुख जल से निकाले गये कमल की तरह दीन हो गया, शरीर संतप्त हो गया और उत्साह जाता रहा। वे व्यथा से अभिभूत हो गये।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji shyama (I.F.S) Jammu Collection

तदनन्तर वे पिताओं की और्ध्वदेहिक क्रिया सम्पन्न करके पितृशोकजनित करुणापूर्ण आर्त वाणी से विलाप करने लगे।

अढ़तीसवा सर्ग समाप्त

उनतालीसवा सर्ग

भास और विलास की परस्पर बातचीत

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! इस प्रकार वे दोनों सुदृढ़ तपस्वी भास और विलास पिता के मृत्युजनित शोक से पराभूत होकर स्थित थे। उस शोकजनित संताप से उनके शरीर सूखकर काँटा हो गये थे और ऐसे लगते थे, जैसे ग्रीष्म ऋतु के प्रचण्ड ताप से आमूल चूल सूखे हुए दो जंगली वृक्ष हों। उन्हें सांसारिक पदार्थों से परम वैराग्य हो गया था, अतः वे दोनों ब्राह्मण झुंड से बिछुड़े हुए दो मृगों की भाँति वियुक्त होकर उस जंगल में कालक्षेप करने लगे। इस प्रकार क्रमशः उनके दिन, मास और वर्ष बीतते गये। अन्ततोगत्वा उन्हें बुढ़ापे ने घेर लिया; परंतु उन्हें विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति न हुई। चिरकाल के पश्चात् एक समय प्रारब्धवश उन दोनों बिछुड़े हुए वृद्ध तापसों की परस्पर भेंट हो गयी, तब वे परस्पर यों कहने लगे।

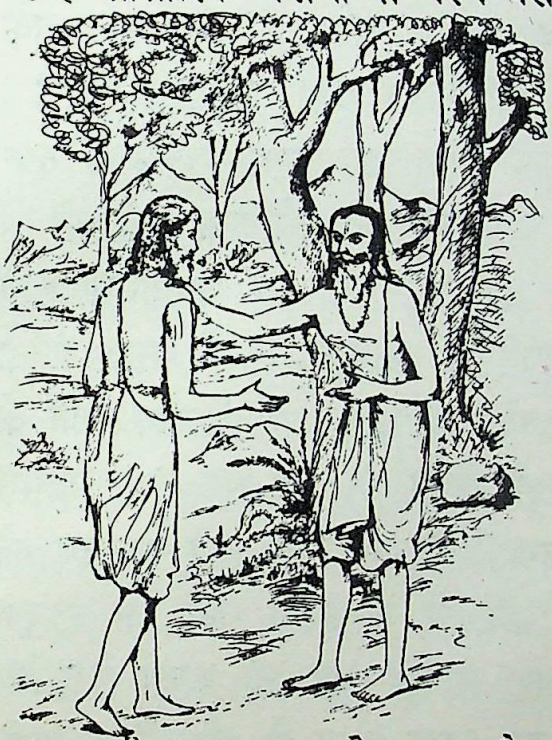

विलास ने कहा-मित्रवर ! इस जगत् में तुम्हीं मेरे परम प्रेमी बन्धु, मेरे जीवनरूपी उत्तम वृक्ष के फल और सदा-सर्वदा मेरे हृदय में निवास करने वाले अमृत के सागर हो; तुम्हारा स्वागत है। सज्जनशिरोमणे ! पहले यह तो बताओ, मुझसे अलग होकर तुमने इतने दिन कहाँ व्यतीत किये? तुम्हारी तपस्या तो सफल हुई है न ? क्या तुम्हारी बुद्धि संसार विषयक संताप से रहित हो गयी ? तुम्हारी विद्या फलवती हो गयी है न ? क्या तुमने परमात्मा को प्राप्त कर लिया ? तुम सकुशल तो हो न ?

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम-तब जिसे परमात्मविषयक यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई थी तथा जो संसार से पूर्णतया उद्विग्न हो गये थे, उन अपने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मित्र विलास के यों कहने पर परम हितैषी भास ने उनसे आदरपूर्वक कहना आरम्भ किया।

भास बोले–दूसरों को मान देने वाले साधो ! स्वागतता तो आज ही चरितार्थ हुई है; क्योंकि सौभाग्यवश मुझे तुम्हारा दर्शन प्राप्त हो गया। किन्तु मित्रवर ! इस दुःखमय संसार में चक्कर काटने वाले हम लोगों की कुशल कहाँ ? भला, जब तक मुझे जानने योग्य परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ, मेरे मन में उत्पन्न होने वाले संकल्प आदि नष्ट नहीं हुए और मैंने संसार सागर को पार नहीं कर लिया, तब तक मेरी कुशल कहाँ। जब तक चित्त में उत्पन्न होने वाली आशाएँ तीव्र वैराग्यरूप शस्त्र के द्वारा पूर्णतया काटी नहीं गयीं, तब तक हमलोगों की कुशल कहाँ ? जब तक परमात्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ और जब तक समता उद्भूत नहीं हुई तथा जब तक विवेक नहीं उत्पन्न हुआ, तब तक हमलोगों की कुशल कहाँ। सज्जनशिरोमणे ! परमात्मा की प्राप्ति तथा ज्ञानरूपी महौषध के बिना यह जन्म–मरणरूपी दुष्ट महामारी बारंबार प्राप्त होती ही रहती है। यह जीवात्मा लौकिक क्रियाओं में तथा देहरूपी पर्वत की उन अत्यन्त भीषण कन्दराओं में, जो विषयोपभोगरूपी भयंकर सर्पों से व्याप्त एवं तृष्णारूपी कण्टकों से आच्छादित हैं, सदा–सर्वदा लोटता रहता है। यों कुत्सित आशाओं के आवेश से युक्त व्यर्थ क्रियाकलापों के करते रहने से इसकी आयु वृथा ही नष्ट हो जाती है। यह मन एक मदमत्त गजराज के समान है, जिसने परमात्मा में बन्धन हेतुभूत विवेकरूपी आलान को उखाड़ डाला है और जो तृष्णारूपिणी हथिनी में कामासक्त होने के कारण उद्विग्न हो उठा है, अतः वह जगत् में दूर से दूर भटकता रहता है। जैसे राजहंस सूखे हुए सरोवर से तत्क्षण ही भाग खड़ा होता है और फिर कभी उसकी ओर ताकता तक नहीं, उसी तरह जिसका यौवनरूपी जल नष्ट हो गया है, उस सूखते हुए शरीररूपी सरोवर से आयु तत्काल पलायन कर जाती है, पुनः वह कभी लौटती ही नहीं। जब यह जीवन वृक्ष जर्जर हो जाता है और कालरूपी वायु उसे बलपूर्वक झकझोरता है, तब उसके भोगरूपी पुष्प और दिनरूपी पत्ते झड़कर नीचे गिर जाते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं। परंतु नाना प्रकार के अनुरागों से लिपटी हुई यह तुच्छ चंचल तृष्णा देवालयों के ऊपर फहराती हुई पताका की भाँति अधिकाधिक बढ़ती रहती है। बन्धु समूहरूपी ये

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

असंख्य सरिताएँ गम्भीर कोटर वाले विस्तृत काल सागर में निरन्तर गिरती रहती हैं। तात ! यह देहरूपी रतनशलाका का विनाशरूपी कीचड़ से परिपूर्ण सागर के गर्भ में न जाने कहाँ समा गयी है कि जन्म-जन्मान्तर में भी इसका पता नहीं चलता। चिरकाल से चिन्ताचक्र में बँधा हुआ तथा पापकर्मों के आचरण में संलग्न चित्त समुद्र के गम्भीर आवर्त में पड़कर चक्कर काटते हुए तृण की भाँति संसार में भटकता रहता है। इसे कार्यरूपी असंख्यों विशाल तरंगे उछालती रहती हैं तथा चिन्ता के फेर में पड़कर यह ताण्डव नृत्य करता रहता है, जिससे इसे क्षणभर भी विश्राम नहीं मिलता। 'मैंने इसे कर लिया, यह करता हूँ और आगे उसे करूँगा' इस प्रकार की कल्पनाओं के जाल में फँसकर इस मनुष्य की बुद्धिरूपी पक्षिणी अत्यन्त मोहित हो जाती है।

उनतालीसवां सर्ग समाप्त

चालीसवां सर्ग

तत्त्वज्ञान उपदेश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-राघव ! उन दोनों ने परस्पर एक-दूसरे का कुशल समाचार पूछा। तदनन्तरकाल क्रम से विवेकपूर्वक ध्यान के अभ्यास और संसार से वैराग्य के द्वारा परमात्मा का विशुद्ध ज्ञान लाभ करके वे दोनों मोक्ष को प्राप्त हो गये। महाबाहो ! इसीलिये मैं कहता हूँ कि सांसारिक पाश से जकड़े हुए चित्त को संसार-सागर से पार होने के लिये परमात्मा के यथार्थ ज्ञान के अतिरिक्त और कोई दूसरा सुगम उपाय नहीं है। यह उपर्युक्त दुःख यद्यपि अज्ञानी के लिये अनन्त है तथापि ज्ञानी पुरुष के लिये वह अत्यन्त साधारण है-ठीक उसी तरह जैसे सागर तुच्छ पक्षी के लिये दुस्तर होते हुए भी गरुड़ के लिये गौ की खुरी के जल के समान ही प्रतीत होता है। जैसे दर्शक पुरुष दूर से ही जनसमूह का अवलोकन करता है, किंतु उसके साथ अपना कोई सम्बन्ध नहीं मानता, उसी तरह जो देहाभिमान से रहित तथा विज्ञानानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में एकीभाव से स्थित हैं, वे ज्ञानी महात्मा पुरुष साक्षीभूत होकर दूर से ही शरीर को देखते रहते हैं। इसलिये भले ही देह दुःख से भलीभाँति क्षुब्ध हो जाय, उससे आत्मा को कौन सी क्षति पहुँचती है ? शोभाशाली राम ! भला हिमालय पर्वत और समुद्र का क्या सम्बन्ध ? उसी तरह आत्मा और संसाररूप बन्धन का भी वास्तव में परस्पर क्या सम्बन्ध है ?

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अर्थात् कुछ नहीं है। जैसे सरिताओं का जल कमलों को अपनी गोद में धारण किये रहता है, फिर भी वे कमल उस जल से कोई सम्बन्ध न रखकर निर्लेप बने रहते हैं, उसी तरह इस जगत् में शरीर का भी आत्मा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। ये सुख-दुःख आदि के अनुभव केवल शुद्ध चेतन आत्मा और केवल जड़ देह को नहीं होते, किन्तु देह और आत्मा के तादात्म्य के कारण होते हैं। अतः तब सुख-दुःखों का अत्यन्ताभाव होकर केवल शुद्ध चेतन आत्मा ही शेष रह जाता है। अज्ञानी पुरुष जिस रूप में इस संसार को देखता है, वह उसी रूप में उसे सत्य मान लेता है; परंतु ज्ञानी के लिये वैसी बात नहीं है। वह उसी रूप में संसार को सत्य नहीं मानता; क्योंकि वह समझता है कि यह संसार अज्ञान से ही प्रतीत होता है।

जैसे वास्तव में सम्बन्ध न होने पर भी स्वप्न में स्त्री के साथ रति-क्रीड़ा आदि व्यापार में सम्बन्ध सा हो जाता है तथा जैसे वास्तविक प्रेत न होने पर भी अँधेरे में ठूँठ प्रेत-सा दीखने लग जाता है, उसी तरह यद्यपि वास्तव में आत्मा के साथ देहादि का सम्बन्ध नहीं है, फिर भी अज्ञान के कारण सम्बन्ध सा दीखता है। वस्तुतः तो शरीर और शुद्ध आत्मा का सम्बन्ध मिथ्या ही है; क्योंकि इनका सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। विद्वानों का कथन है कि देह में अहंभावना करने से ही आत्मा दैहिक दुःखों के वशीभूत होता है तथा उस देहभावना का त्याग कर देने से वह उस दुःखजाल से मुक्त हो जाता है। वत्स राम ! जैसे सरोवर में गिरे हुए पत्ते, जल, मल और काष्ठ यद्यपि परस्पर सम्बद्ध रहते हैं, तथापि भीतरी संग से रहित होने के कारण वे दुखी नहीं होते, उसी तरह यद्यपि अन्तःकरणों में अहंता, ममता और आसक्ति का अभाव होने के कारण ज्ञानी महात्मा सदा-सर्वदा दुःखरहित ही रहते हैं। श्रीराम ! अन्तःसंघ अर्थात् अहंता, ममता और आसक्ति ही संसार में समस्त प्राणियों के जरा, मरण और मोहरूपी वृक्षों का मूल कारण है। जो जीव अहंता, ममता और आसक्ति से युक्त है, वह भवसागर में डूबा हुआ है; परंतु जो इनसे मुक्त हो गया है, वह समझ ले कि मैं संसार सागर से पार हो गया। जो चित्त विषयों की आसक्ति से रहित और निर्मल है, वह संसारी होते हुए भी निस्संदेह मुक्त है; परंतु विषयासक्त चित्त दीर्घकाल की तपस्या से युक्त होता हुआ भी कामना के कारण सुदृढ़ बन्धन से बँधा हुआ है। जैसे काष्ठभारों को पार उतारने वाली जल स्थित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Collection (P.C.) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

नौका जल के गुण-दोष से लिपायमान नहीं होती, वैसे ही अहंता, ममता और आसक्ति से रहित पुरुष शरीर यात्रा के लिये न्याय युक्त कर्म करता हुआ भी कर्तृत्व से लिप्त नहीं होता। जो मनुष्य अहंता, ममता और आसक्ति से रहित तथा परम मधुर परमात्मा में नित्य स्थित है, वह बाहर से कुछ भी कार्य करे अथवा न करे, किसी भी दशा में वह कर्ता अथवा भोक्ता नहीं है।

चालीसवां सर्ग समाप्त

इकतालीसवां सर्ग

संसक्ति और असंसक्ति का लक्षण

श्रीरामजी ने पूछा-भगवान् ! किस प्रकार का संग मनुष्यों के लिये मोक्षदायक कहा गया है और कैसा संग बन्धन का हेतु होता है एवं उसके बन्धन का निमित्त बनने में कारण क्या है तथा बन्धन के हेतुभूत उस संग की निवृत्ति कैसे की जा सकती है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! शरीर-क्षेत्र और शरीरी-क्षेत्रज्ञ आत्मा का जो विभाग है अर्थात् शरीर जड़ है और आत्मा चेतन है-ऐसा जो अनुभव है, उसके अभाव में केवल देह ही आत्मा है, ऐसी भावना से उत्पन्न देहाभिमान ही संग है और वही बन्धन का हेतु कहा जाता है। तथा देश, काल और वस्तु से अपरिच्छिन्न होने के कारण आत्मा का स्वरूप अनन्त है; किन्तु अज्ञानवश उसमें परिच्छिन्नता का निश्चय हो जाने पर जीव अपने अंदर जो सुख की चाह करने लगता है, वही संग है और वही बन्धन का कारण कहा जाता है। यह दृश्यमान सम्पूर्ण संसार परमात्मा का स्वरूप है, तब फिर मैं उसमें से किसकी चाह करूँ और किसको त्याग दूँ-इस प्रकार की धारणा से उत्पन्न होने वाली जो जीवन्मुक्त की अवस्था है, उसे तुम असंग स्थिति समझो। न तो मैं ही हूँ और न दूसरा ही कुछ है; अतः विषयों से उत्पन्न सुख हों अथवा न हों-ऐसा निश्चय करके जिसका अन्तःकरण अहंता, ममता और आसक्ति से रहित हो गया है, वह मनुष्य मुक्ति का अधिकारी कहलाता है। जो निष्कर्मभाव की प्रशंसा नहीं करता, किसी भी कर्म में आसक्त नहीं होता, सबमें समभाव रखता है और कर्मफलों की इच्छा से रहित है, वही पुरुष असंसक्त कहा जाता है। केवल परमात्मा के स्वरूप में अटल स्थिति वाले जिस महात्मा का मन हर्ष, शोक और ईर्ष्या वशीभूत नहीं होता, वही असक्त है और उसी की 'जीवन्मुक्त'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.P.S.) Jammu Collection

संज्ञा होती है। जो मनुष्य सम्पूर्ण कर्मों और उनके फल आदि का कर्म से नहीं, अपितु केवल मन से भलीभाँति त्याग कर देता है, वह असंसक्त कहलाता है।

रामजी ! वृक्ष एक स्थान पर स्थित रहकर अपने स्थावर शरीर से जो शीत, वात और धाम के क्लेशों को सहता रहता है, वह उसके पूर्वजन्मों के अहंता, ममता और आसक्तिपूर्वक किये गये कर्मों का ही फल है। पृथ्वी की दरार में पड़ा हुआ कीड़ा अंगों के पीड़ित होने के कारण विकल होकर जो कालक्षेप करता है, वह उसके पूर्वजन्म के अहंता, ममता और आसक्ति पूर्वक किये गये कर्मों का ही फल है। जिसका पेट भूख के कारण दुर्बल होकर पीठ से सट गया है तथा बुद्धि आघात के भय से सदा भीत बनी रहती है, ऐसा पक्षी जो वृक्ष की शाखाओं पर निवास करता हुआ कालयापन करता है, वह उसके पूर्वजन्मों के अहंता, ममता और आसक्ति पूर्वक किये गये कर्मों का ही फल है। दुर्वांकुरों और तिनकों का आहार करने वाला मृग किरातों के बाणों की चोट से पीड़ित होकर जो मर जाता है, वह उसके पूर्व जन्मों के अहंता, ममता और आसक्ति पूर्वक किये गये कर्मों का ही फल है। ये असंख्य भूत-प्राणी जो नदी में तरंगों की भाँति बारंबार उत्पन्न होकर पुनः विलीन हो रहे हैं, यह उनके पूर्व जन्मों के अहंता, ममता और आसक्ति पूर्वक किये गये कर्मों का ही फल है। लता और तिनकों के समान शक्तिहीन दशा को प्राप्त हुए मनुष्य चलने-फिरने की शक्ति से शून्य होकर जो बारंबार मरते रहते हैं, उसका कारण उनके पूर्वजन्म में अहंता, ममता और आसक्तिपूर्वक किये गये कर्मों का फल ही है।

राघव ! यह आसक्ति दो प्रकार की कही गयी है-एक वन्ध्या अर्थात् प्रशस्त और दूसरी वन्ध्या अर्थात् पुरुषार्थ फल से शून्य। इनमें तत्त्वज्ञ महात्माओं की अपने स्वरूप में आसक्ति बन्ध्या है और वन्ध्या आसक्ति सर्वत्र अज्ञानियों की है। जो आसक्ति आत्मतत्त्व के ज्ञान से शून्य, देह आदि असत्य वस्तुओं से उत्पन्न और बारंबार संसार में सुदृढ़रूप से स्थित है, वह वन्ध्या कही जाती है तथा जो आसक्ति आत्मतत्त्व के ज्ञान द्वारा यथार्थ विवेक से उत्पन्न हुई है और पुनर्जन्म का कारण नहीं है, उसे लोग वन्ध्या कहते हैं। यह वन्ध्या आसक्ति का ही प्रभाव है, जो आत्मतत्त्व के विज्ञान में कुशल सिद्धगुण, लोकपाल तथा अन्यान्य मुक्त पुरुष इस जगत् के प्रांगण में अध्यात्म विषय की प्रीति से युक्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

होकर स्थित रहते हैं। अन्यान्य भुवनों में निवास करने वाले अध्यात्म विषय की प्रीति से युक्त तत्त्वज्ञ महात्मा लोग जो जन्म-मरण से रहित शरीररूपी यंत्र समूहों को धारण करते हैं, वह भी वन्ध्या आसक्ति की ही सामर्थ्य है। किन्तु वन्ध्या आसक्ति के वशीभूत होने से मन विषय भोगों में व्यर्थ ही रमणीयता की कल्पना करके उनपर उसी प्रकार टूट पड़ता है, जैसे गीध मांस के टुकड़ों पर झपटता है। वन्ध्या असक्ति के प्रभाव से ब्रह्माण्डरूपी गूलर के फल के अंदर मच्छर ही तरह स्फुरित होते हुए देवता स्वर्ग लोक में, मनुष्य मृत्युलोक में और नाग तथा असुर पाताल में स्थित हैं। ये असंख्य प्राणी जो नदी में तरंगों की भाँति जन्मते हैं, मरते हैं, गिरते हैं और उठते हैं-यह भी वन्ध्या आसक्ति का ही चमत्कार है। यह भी वन्ध्या आसक्ति का ही प्रताप है, जो ये भूत-प्राणी झरनों के जलकणों की तरह बारंबार उत्पन्न होकर पुनः विरसता पूर्वक नष्ट हो रहे हैं।

श्रीराम ! शून्य आकाश में केवल मन की आसक्तिरूपी रंग से संकल्प पूर्वक जो यह जगद्रूपी चित्र बनाया गया है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। इस संसार में आसक्तिपूर्ण मन से व्यवहार करने वाले मनुष्यों के शरीरों को तृष्णा उसी प्रकार क्षीण करती रहती है, जैसे अग्नि की लपट तृणों को भस्मसात् कर देती है। जैसे मुद्र तट की सिकताओं और त्रसरेणु-समूहों की संख्या करना असम्भव है, उसी तरह जिसकी बुद्धि सर्वथा विषयों में आसक्त है, भला, उसके शरीरों की ठीक-ठीक गणना करने में कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। राघव ! विषयासक्त चित्तवाला मनुष्य दुःखों के कारण सूख जाता है, जिससे वह धधकती हुई नरकाग्नियों के लिये इन्धन-समूह का काम देता है; क्योंकि वे नरकाग्नियाँ उस इन्धन से ही जलती हैं। इस भूतल पर यह जो कुछ दुःख समूह दृष्टिगोचर हो रहा है, उस सब की कल्पना विषयासक्त चित्तवाले मनुष्यों के लिये ही हुई है। जैसे जल की तरंगों से युक्त बड़ी-बड़ी नदियाँ किलोल करती हुई समुद्र की ओर दौड़ी जाती हैं, उसी तरह सारी दुःख-परम्पराएँ विषयासक्त चित्तवाले मनुष्य को आ घेरती हैं। जो मन आसक्ति शून्य, सब ओर से शान्त, आकाश के समान निर्मलरूप से स्थित और असत् सा प्रतीत् होते हुए भी सत्रूप से भासमान हो रहा है, वह साधक के लिये सुख का ही हेतु होता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रघुनन्दन ! कल्याणकामी विवेकी पुरुष को चाहिये कि वह सर्वत्र स्थित रहते हुए, सबके साथ रहते हुए और सभी न्यायुक्त कर्मों में लगे हुए भी सदा-सर्वदा अपने मन को अनासक्त और सम बनाये रक्खे। उसे चेष्टाओं में, किसी प्रकार की चिन्ताओं में, पदार्थों में, आकाश में, नीचे पाताल में, ऊपर पृथ्वी में, दसों दिशाओं में, लताओं में, बाहर के विशाल विषय भोगों में, इन्द्रिय-वृत्तियों में, अन्तःकरण में, प्राण, मूर्धा और तालू में, भ्रूमध्य में, नासिका के अग्रभाग में, मुख में, दक्षिण नेत्र की कनीनिका में, अन्धकार में, प्रकाश में, इस हृदयरूपी आकाश में, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त अवस्थाओं में, शुद्ध सत्त्वगुण में, तमोगुण में, रजोगुण में, त्रिगुणमय पदार्थ-विशेष में, चल-अचल पदार्थों में, सृष्टि के आदि, मध्य और अन्त में, दूर में, समीप में, सामने, नाम रूपात्मक किसी पदार्थ में, अपने आत्मा में शब्द-स्पर्श रूप आदि विषयों में, अज्ञानजनित आनन्द की वृत्तियों में, गमनागमन की चेष्टाओं में और घड़ी, दिन, मास, संवत्, युग आदि काल की कल्पनाओं में आसक्त नहीं करना चाहिये। सर्वत्र दृश्य पदार्थों में अनासक्त-सा होकर जड़ दृश्य जगत् के आश्रयभूत नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्मा में विश्राम करके परमात्मा में ही अमृतमय रस से युक्त मन वाला होकर स्थित रहना चाहिये। इस प्रकार उस परमात्मा में स्थित हुआ जीवात्मा सम्पूर्ण आसक्तियों से रहित होकर ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है। फिर तो वह इन समस्त व्यवहारों को करे अथवा न करे; क्योंकि उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। जैसे आकाश का मेघों के साथ कोई सम्पर्क नहीं रहता, उसी तरह अपने परमात्म स्वरूप में रत हुआ जीवात्मा क्रियाओं को करता हुआ अथवा न करता हुआ भी क्रियाजनित फलों के साथ तनिक भी सम्बद्ध नहीं होता। अथवा शान्त चैतन्य-घन जीवात्मा को चाहिये कि वह पूर्वोक्त दृश्य संसार के सम्बन्ध का भी परित्याग करके शान्त होकर परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहे। रामभद्र ! जिसने अपने स्वरूप में परम विश्राम को प्राप्त कर लिया है, जिसका अन्तःकरण आत्मसाक्षात्कार से सम्पन्न है और जिसकी कर्म तथा उसके फलों में तनिक भी आसक्ति नहीं रह गयी है, ऐसा जीवात्मा कर्म करते हुए भी आसक्ति से रहित होने के कारण कर्मजनित फलों से सम्बद्ध नहीं होता।

इक्तालिसवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookesh Sharma (I.E.S) Jammu Collection

बयालीसवां सर्ग

असंग सुख में

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जो संसार में राग के अत्यन्त अभाव से उत्पन्न निर्विशेष आनन्द के अभ्यास में संलग्न हैं और जिनके अन्तःकरण अत्यन्त विशाल हैं, वे जीवन्मुक्त महापुरुष चाहे व्यवहार करें, पर वे सदा-सर्वदा भय और शोक से रहित होकर ही स्थित रहते हैं। जिसका अन्तःकरण दृश्य चिन्तन से रहित, केवल नित्य चेतन परमात्मा का ही अवलम्बन करने वाला तथा सम्पूर्ण चिन्ता ज्वरों से मुक्त हैं, उस महात्मा पुरुष के सत्संग से मनुष्य वैसे ही विशुद्ध हो जाते हैं, जैसे निर्मली से जल शुद्ध हो जाता है। परमात्मा के स्वरूप में निमग्न रहने वाला वह तत्त्वेत्ता पुरुष क्रियाशील होते हुए भी अपने स्वरूप में नित्य स्थित रहता है। जैसे चिकने स्फटिक मणि पर वास्तव में किसी भी रंग से रंग नहीं चढ़ता, वैसे ही परमात्म स्वरूप को प्राप्त तत्त्ववेत्ता का अन्तःकरण सुख-दुःख की प्राप्ति होने पर विकारवान् नहीं होता। जिसने सगुण-निर्गुणरूप परमात्मा को भलीभाँति जान लिया है और जो परमात्म स्वरूप परम अभ्युदय को प्राप्त हो गया है, उस महात्मा पुरुष के चित्त को संसार का दृश्य उसी प्रकार लिपायमान नहीं कर सकता, जैसे जलरेखा कमल को लिपायमान नहीं कर सकती। जब यह जीवात्मा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर समस्त कल्पनाओं के हेतुभूत मलों से रहित हुआ ध्यानाभाव दशा में भी परमात्मा के स्वरूपानुभव में निमग्न रहता है, तब वह 'स्वसक्त' (आत्माराम) कहलाता है। आत्माराम होने से ही मनुष्य संसार में असंग भाव को प्राप्त करता है; क्योंकि आत्मा के ज्ञान से ही विषयासक्ति का क्षय होता है। चित्त के विषय-सम्बन्धिनी वृत्तियों से रहित हो जाने पर क्षीण वृत्ति वाले अन्तःकरणों की जो वासनाओं से रहित शान्तिमयी स्थिति है, वही जाग्रत् में सुषुप्ति के समान समाधि-अवस्था कही जाती है। इस प्रकार अखण्ड समाधि-अवस्था को प्राप्त मनुष्य व्यवहार करता हुआ भी सुख-दुःख रूपी रस्सों से बँधकर संसार की ओर कभी आकृष्ट नहीं होता; क्योंकि उसकी दृष्टि संसार है ही नहीं। जो पुरुष जाग्रत् में ही परमात्मा में स्थित हुआ जगत् के कार्यों को करता है, उस पुरुष को यंत्र की पुतली के समान सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता।

जो पूर्व से ही यानी साधनावस्था से ही तीव्र वैराग्य के कारण उपेक्षा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

बुद्धि से कर्म करता है तथा जिसकी बुद्धि परमात्मा में ही स्थित है, वह मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और फिर वह उन कर्मों के फलों से नहीं बँधता। विवेकशील साधक को कर्मों का अनुष्ठान या परित्याग–कुछ भी अच्छा नहीं लगता। किंतु जिन्होंने आत्मतत्त्व को जान लिया है, वे महात्मा तो जिस समय जो कुछ प्राप्त हो जाता है, तदानुसार न्याय युक्त जीवन–यापन करते हुए स्थित हैं। सांसारिक विषयों के सम्बन्ध से रहित सच्चिदानन्दघन परमात्मपद में भलीभाँति स्थित परमात्म प्राप्त पुरुष जो–जो कर्म करता है, उसमें वस्तुतः उसका कर्तापन नहीं रहता। श्रीराम ! यही अखण्ड समाधिरूप सुषुप्ति–स्थिति अभ्यास योग से जब दृढ़ हो जाती है, तब तत्त्वज्ञ महात्माओं के द्वारा वह तुर्य स्थिति कही जाती है। जिसके अन्तःकरण से समस्त विकार विनष्ट हो चुके हैं और जिसके मन का अत्यन्त अभाव सा हो गया है, वह ज्ञानी महानुभाव विशुद्ध आनन्दमय हो जाता है। उपर्युक्त अखण्ड समाधि में स्थित रहने वाला ज्ञानी अतिशय प्रसन्नता से परिपूर्ण और परम आनन्द में निमग्न हुआ इस जगत् के व्यवहार को सदा लीला की ज्यों देखता रहता है। श्रीराम ! जिसके शोक, भय एवं सांसारिक क्लेश सदा के लिये निवृत्त हो गये हैं तथा जो संसाररूपी भ्रम से रहित है, वह तुर्यावस्था में सदा सर्वदा स्थित आत्मज्ञानी फिर इस संसार चक्र में कभी नहीं गिरता। जैसे आकाश मार्ग वायुओं के लिये गम्य है, वैसे ही दूर से भी अति दूर परमपद विदेहमुक्त पुरुषों के लिये अनुभव गम्य है। परमानन्द में निमग्न ज्ञानी पूर्वोक्त सुषुप्ति के समान अखण्ड ब्रह्माकार समाधि अवस्था से जगत्स्थिति का वास्तविक अनुभव करके उसके पश्चात् तुर्यावस्था (जीवन्मुक्तावस्था) को प्राप्त होता है। रघुकुलतिलक ! जिस प्रकार तुर्यातीत पद का ज्ञान रखनेवाले आत्मतत्त्व–ज्ञानी महात्मा तुर्यातीत पद में स्थित रहते हैं उसी प्रकार तुम भी सुख–दुःखादि द्वन्द्वों से रहित हो उस परम पद में स्थित रहो। चाहे देह नष्ट हो जाय, चाहे वह नष्ट न हो यानी स्थिर रहे, उससे तुम को क्या प्रयोजन है ? तुम तो केवल आत्मज्ञानी में ही स्थित रहो। यह देह जैसा है, वैसा भले ही बना रहे। श्रीराम ! जैसे अन्धकार और मेघ–मण्डल से मुक्त शरत्पूर्णिमा की रात्रि का आकाशमण्डल सुशोभित होता है, वैसे ही तुम अभीष्ट और अनभीष्ट विषयों से मुक्त हुए शीतल साक्षात्काररूपी आलोक की शोभा से सुशोभित हो रहे हो।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Library (J & K) Jammu Collection

रघुनन्दन ! इस संसार में देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से शून्य एक विशुद्ध चेतन आत्मा ही है; उसके सिवा अन्य कुछ नहीं है। सर्वत्र व्यापक चेतन 'आत्मा' यह नाम केवल व्यवहार के लिये ही कल्पित है, वास्तव में नाम-रूप आदि भेद तो इस चेतन से अत्यन्त दूर ही हैं अर्थात् यह चेतन आत्मा नाम-रूप आदि उपाधि से रहित है। जैसे समुद्र जल स्वरूप ही है, उससे भिन्न तरंग आदि कुछ भी नहीं हैं, वैसे ही यह सब जगत आत्मस्वरूप ही है, उससे भिन्न पृथ्वी जल आदि कुछ भी नहीं हैं। जैसे छाया और धूप का तथा प्रकाश और अन्धकार का परस्पर सम्बन्ध नहीं हो सकता, वैसे ही शरीर और आत्मा का भी परस्पर सम्बन्ध नहीं हो सकता। श्रीराम ! जैसे सदा परस्पर विरुद्ध रहने वाले शीत और उष्ण का एक दूसरे से सम्बन्ध नहीं हो सकता, वैसे ही देह और आत्मा का भी एक दूसरे से कभी सम्बन्ध नहीं हो सकता। जैसे मरुभूमि में सूर्य की किरणों से प्रतीत हुआ जल किरणों के यथार्थ ज्ञान से विनष्ट हो जाता है, वैसे ही अज्ञानजनित यह देह और आत्मा का परस्पर सम्बन्ध-भ्रम भी आत्म तत्त्व के साक्षात्कार से विनष्ट हो जाता है। वह चेतन आत्मा शुद्ध, अविनाशी, स्वप्रकाश एवं सम्पूर्ण विकारों से रहित है और देह विनाशशील, अनित्य और मलरूप विकार से युक्त है; ऐसी स्थिति में अत्यन्त अन्तर होने के कारण आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है। प्राणवायु से बलवान् होकर ही शरीर स्पन्द को प्राप्त करता है, इसलिये आत्मा के साथ किंचित भी शरीर का सम्बन्ध नहीं है। श्रेष्ठ बुद्धि से सम्पन्न श्रीराम ! जब द्वैत को मानने पर भी आत्मा के साथ पूर्वोक्त प्रणाली से देहादि का सम्बन्ध नहीं हो सकता, तब द्वैत की असिद्धि में तो इस प्रकार सम्बन्ध की कल्पना ही कैसे हो सकती है। जैसे परस्पर अत्यन्त विरुद्ध प्रकाश और अन्धकार का एक दूसरे से सम्बन्ध और सादृश्य नहीं हो सकता, वैसे ही परस्पर अत्यन्त विरुद्ध आत्मा और शरीर का भी एक दूसरे से सम्बन्ध और सादृश्य नहीं हो सकता।

जैसे शीत और उष्ण की एकता कहीं दिखलायी नहीं पड़ती, वैसे ही क्रमशः जड़ और चेतन स्वरूप देह और आत्मा का भी संयोग नहीं हो सकता। यह देह प्राणवायु से ही चलता है, उसी से उसका गमनागमन होता है एवं देह की नाड़ियों में संचार करने वाले प्राणवायु से ही शब्द होता है। जिस प्रकार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

छिद्र युक्त बाँसों से वायु के गमनागमन से शब्द उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार शरीर के कण्ठरूप छिद्र से निकले हुए प्राण वायु से जब कण्ठ, तालु आदि स्थानों में जिव्हा आदि के द्वारा अभिघात से निकाले जाते हैं, तब क्वर्ग, चवर्ग, ट्वर्ग, त्वर्ग आदि शब्द प्रकट होते हैं–यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है। शरीररूपी स्थान को छोड़कर जहाँ चित्तरूपी पक्षी अपनी वासना के अनुसार जाता है, वहीं पर विचार करने पर आत्मा का अनुभव होता है। जहाँ पुष्प रहता है, वहीं पर जैसे गन्ध का ज्ञान रहता है, उसी प्रकार जहाँ चित्त रहता है, वहीं पर आत्मा का ज्ञान होता है। जिस प्रकार सर्वत्र स्थित आकाश दर्पण में प्रतिबिम्बित होता है, वैसे ही सर्वत्र स्थित आत्मा शुद्ध अन्तःकरण में दिखलायी पड़ता है। जैसे पृथ्वी में नीचे का भाग जल का आश्रय स्थान होता है, उसी प्रकार अन्तःकरण ही आत्मा के अनुभव का आश्रय स्थान है। महान् बुद्धि वाले पुरुष कहते हैं कि संसार की उत्पत्ति में अविचार, अज्ञान और मूर्खता ही सारभूत है और यही अन्तःकरण की उत्पत्ति में हेतु है। रघुनन्दन ! जैसे प्रज्वलित दीपक से अन्धकार का तत्क्षण ही नाश हो जाता है, वैसे ही नित्य सिद्ध आत्मा के यथार्थ ज्ञान से ही चित्त का तत्क्षण नाश हो जाता है। जैसे बंदर वन के एक वृक्ष को त्यागकर दूसरे वृक्ष पर चला जाता है, उसी प्रकार वासना के वशीभूत जीव कर्मानुसार एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर में चला जाता है। श्रीराम ! जिस शरीर में वह चला गया, उस शरीर को भी त्यागकर फिर दूसरे समय में अन्य विशाल देश के अन्तर्गत दूसरे शरीर में चला जाता है। इस प्रकार जीवों के यथार्थ स्वरूप को आवृत करके रहने वाली अपनी वंचक वासना जीवों को इधर-उधर भटकाती रहती है। श्रीराम ! वासनारूपी रज्जु में बँधे हुए जीव पहले से ही जीर्ण तो हैं ही, फिर भी वे पर्वत तुल्य जड़ शरीरों में अत्यन्त दुःखपूर्वक आयु क्षीण कर रहे हैं। जिन्होंने जीर्ण से भी अधिक जीर्ण होकर दरिद्रता, रोग, वियोग आदि से उत्पन्न हुए दुःखों का भार वहन किया है तथा जिनका जीवन अनेक योनियों में दुर्दशाग्रस्त परिणामों से जर्जर हो चुका है, वे जीव बारंबार अपने हृदय की दुर्वासनाओं से दीर्घकाल तक नरकों में निवास करते हैं।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं–भरद्वाज ! मुनिवर श्रीवसिष्ठजी के ऐसा कहनेपर जब दिन बीत गया, सूर्यभगवान् अस्ताचल की ओर जाने लगे, तब सभा में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

उपस्थित सब लोग मुनि को प्रणाम करके सायंकालीन स्नान-संध्या-वन्दनादि नित्यकर्म करने के लिये चले गये और रात्रि बीत जाने पर दूसरे दिन सूर्य की किरणों के साथ ही पुनः सभा में उपस्थित हो गये।

बयालीसवां सर्ग समाप्त

तेतालीसवां सर्ग

देहादि के संयोग-वियोगादि में राग-द्वेष और हर्ष-शोक से रहित शुद्ध आत्मा के स्वरूप का विवेचन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! तुम देह के उत्पन्न होने पर उत्पन्न नहीं होते और देह के नष्ट होने पर नष्ट नहीं होते; क्योंकि अपने स्वरूप में तुम विकार-रहित और विशुद्ध हुए नित्य स्थित हो। इस विनाशशील देह के नष्ट हो जाने पर शुद्ध आत्मा का नाश नहीं होता; इसलिये जो देह का विनाश हो पर जाने पर 'मैं नष्ट हो जाता हूँ', इस प्रकार की भावना से दुखी होता है, उस अन्ध बुद्धि को धिक्कार है ! जैसे घोड़े की लगाम और रथ का सम्बन्ध राग-द्वेष से रहित है, उसी प्रकार चेतन आत्मा का भी देह, चित्त, इन्द्रिय आदि के साथ सम्बन्ध राग-द्वेष से रहित है। जैसे मार्ग बटोहियों के संयोग और वियोग में हर्ष-शोक का अनुभव नहीं करता, वैसे ही विशुद्ध आत्मा शरीरों के संयोग वियोग में हर्ष-शोक से रहित है। जिस प्रकार कल्पित प्रेत के विकराल रूप से भयभीत बालक को होने वाला भय मिथ्या ही है, वैसे ही ये कल्पित स्नेह, सुख आदि मिथ्या ही हैं। जैसे लकड़ियों के बोझे में लकड़ियों के सिवा और कुछ भी नहीं दिखलायी पड़ता, वैसे ही आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी-इन पाँचों भूतों के शरीर में पाँचों भूतों के संघात के सिवा और कुछ भी दिखलायी नहीं पड़ता। अतः श्रोतागण ! आप लोग इन पाँचों भूतों की उत्पत्ति, विनाश और विकार होने पर हर्ष-अमर्ष और विषाद के वश में क्यों हो जाते हैं? जिस देह का 'स्त्री' यह दूसरा नाम है, उस तुच्छ भूतों के समूह में यानी स्त्री शरीरात्मक पाँच भूतों के पिण्ड में पुरुषों को ऐसी कौन-सी विशेषता प्रतीत होती है, जिससे उनकी उस स्त्रीरूप विषय-भोगाग्नि में पतिंगे की तरह गिरने की चेष्टा उचित कही जाय ? स्त्री की सुन्दरता, रूप-लावण्य और शरीर संगठन को लेकर जो विलक्षणता दिखायी पड़ती है, उससे तो केवल अज्ञानी ही आनन्दित होता है; किन्तु विवेकी पुरुषों को वह पाँच भूतों का पिण्ड ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दिखायी देता है। जैसे एक पत्थर से बनायी गयी दो पाषाण प्रतिमाओं का परस्पर आलिंगन होने पर उनमें राग नहीं होता, उसी प्रकार चित्त और शरीर का परस्पर आलिंगन होने पर भी राग नहीं होना चाहिये। तथा जैसे पत्थर की बनायी गयी प्रतिमाओं में परस्पर स्नेह का सम्बन्ध नहीं होता, वैसे ही देह, इन्द्रिय, आत्मा और प्राणों में भी परस्पर स्नेह का सम्बन्ध नहीं है। इसलिये यहाँ शोक किसका ? जिस प्रकार समुद्र ऊँची-ऊँची भँवरों से युक्त हो तृण, काठ आदि पदार्थों से संयोग करता है, वैसे ही जीवात्मा भी चित्ताकृति को प्राप्त कर देह और प्राणियों के साथ संयोग करता है। (अतः मनुष्य को समुद्र की भाँति सबसे निर्लेप रहना चाहिये।) जैसे जल अपनी स्पन्दन क्रिया से ही मलिनता का परित्याग करके स्वयं ही स्वच्छता को प्राप्त करता है,उसी प्रकार जीवात्मा यथार्थज्ञान के द्वारा विषय रूपता का परित्याग करके स्वयं ही विशुद्ध आत्मरूपता को प्राप्त करता है। उस समय सम्पूर्ण भूत-प्राणियों में आसक्ति से रहित जीवात्मा द्रष्टा-साक्षी हुआ देह को आत्मा से भिन्न देखता है तथा भूत-समूह को भी अपने से पृथक् देखकर अविनाशी आत्मा देहातीत हो जाता है। इस प्रकार आत्मा अपने से ही प्रमाण प्रमेयरूप विकारों से रहित अपने यथार्थ स्वरूप को जान लेता है। श्रीराम ! जिनका सम्पूर्ण राग विनष्ट हो गया है, जिनके पाप दूर हो गये हैं तथा जो परब्रह्म पद को प्राप्त हो चुके हैं, वे जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष उसी प्रकार के विशिष्ट विज्ञान से युक्त हो इस संसार में विचरण करते हैं। जैसे समुद्र की तरगें अनेक प्रकार के रत्नों के साथ अनासक्तभाव से व्यवहार करती हैं, उसी प्रकार वासना रहित उत्तम महात्मा लोग भी चित्त की चेष्टाओं के साथ अनासक्त भाव से व्यवहार करते हैं। जैसे समुद्र अपने तट पर पड़े हुए काष्ट समूहों से मलिन नहीं होता, वैसे ही आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला वह मनुष्य इस संसार में अपने सांसारिक व्यवहारों से मलिन नहीं होता। जैसे समुद्र को गत, आगत, स्वच्छ, चंचल, मलिन और जड़ तरंगों से राग और द्वेष नहीं होता, उसी प्रकार उस तत्त्वज्ञानी महात्मा पुरुष को गत, आगत, स्वच्छ, चंचल, मलिन और जड़ भागों से राग-द्वेष नहीं होता; क्योंकि जो अहं, भूत आदि तथा तीनों कालों में उत्पन्न होनेवाली वस्तुएँ दृश्य और दर्शन के सम्बन्धों से दिखायी पड़ती हैं, वह सब केवल मन की कल्पना ही है। इसलिये आत्मसाक्षात्काररूप दृश्य-दर्शन से रहित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सुखानुभूति का अवलम्बन करने से संसार का अभाव हो जाता है, आत्मस्वरूप को आवृत करने वाली दृष्टि का विच्छेद हो जाता है और यथार्थ आत्मानुभव प्रकाशित हो जाता है। उसी का अवलम्बन करने पर तुर्यावस्था प्राप्त हो जाती है और उसी के अवलम्बन से मुक्ति हो जाती है। रघुनन्दन ! जब दृश्य और दर्शन के सम्बन्ध से मुक्त और परम विशुद्ध बुद्धि से युक्त यह स्वरूपदृष्टि होती है, तब दृश्य और दर्शन के सम्बन्ध के असली तत्त्व को जानकर पुरुष मुक्ति को प्राप्त होता है। मुक्त होने के अनन्तर वहाँ आत्मा का स्वरूप न स्थूल है न अणु, न प्रत्यक्ष है न अप्रत्यक्ष, न चेतन है न जड़, न असत् है न सत्, न अहंरूप है न अन्यस्वरूप, न एक है न अनेक, न समीप है न दूर, न सत्तायुक्त है न असत्तायुक्त, न प्राप्य है न अप्राप्य, न सर्वात्मक है न सर्वव्यापक, न पदार्थ है न अपदार्थ, न पाँचों भूतों का आत्मा है और न पाँचों भूत ही। (तात्पर्य यह है कि वह समस्त विशेषणों और लक्षणों से रहित विशुद्ध आत्मा मन, वाणी और बुद्धि का विषय नहीं है; इसलिये उसे इंद्रता के द्वारा न कहा जा सकता है न समझाया जा सकता है। अतएव उसका यहाँ निषेधमुख से वर्णन किया गया है।) किन्तु मन के साथ चक्षु आदि छहों इन्द्रियों का विषय जो यह दृश्यत्व को प्राप्त जगत् है, वह कुछ भी नहीं है। उससे अतीत जो पद है, वही यथार्थ वस्तु है। जिस प्रकार का यह जगत् है, उस प्रकार के इस जगत् को भलीभाँति जाननेवाले पुरुष के लिये यह समस्त विश्व आत्मस्वरूप ही है, कहीं भी आत्मस्वरूप से अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है, यह आत्मा ही कठोरता, द्रवता, प्रकाश, स्पन्दन और अवकाश क्रम से पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशरूप सम्पूर्ण जगत्-भावों में विद्यमान है। श्रीराम ! पदार्थों की जो-जो सत्ता है, वह चेतन आत्मा के सिवा दूसरी वस्तु नहीं है; इसलिये जो यह कहता है कि 'मैं आत्मा से अतिरिक्त हूँ', उसके इस कथन को उन्मत्त के प्रलाप के समान समझो !

तेतालीसवां सर्ग समाप्त

चौवालीसवाँ सर्ग

अहंकार का एवं परमात्मा के स्वरूप का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जैसे चिन्तामणि के तत्व को जानने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma Collection Jammu

वाले लोग चिन्तामणि को प्राप्त कर लेते हैं, वैसे ही उपर्युक्त विचार-दृष्टि से द्वैतभाव को त्याग कर आत्मा के स्वरूप को जानने वाले महापुरुष विशुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। श्रीराम ! अब मैं तुमसे दूसरी दृष्टि का वर्णन करता हूँ; सुनो! मैं ही आकाश हूँ, मैं ही आदित्य हूँ, मैं ही दिशाएँ हूँ, मैं ही अधः हूँ, मैं ही ऊर्ध्व हूँ, मैं ही दैत्य हूँ, मैं ही देव हूँ, मैं ही लोक हूँ, मैं ही चन्द्रमा आदि की प्रभा हूँ, मैं ही अन्धकार हूँ, मैं ही मेघ हूँ, मैं ही पृथ्वी हूँ, मैं ही समुद्र आदि हूँ एवं रेणु, वायु, अग्नि और यह सारा जगत् भी मैं ही हूँ। उस सर्वरूप परमात्मा से भिन्न परिच्छिन्न मैं कौन हूँ ? मैं कभी परिच्छिन्न नहीं हो सकता। देह आदि भी मुझसे भिन्न क्या हैं ? एक अद्वितीय वस्तु परमात्मा में द्वैत कैसे हो सकता है। कमलनयन निष्पाप श्रीराम ! तुम्हीं बताओ, इस प्रकार इस सम्पूर्ण जगत् के आत्मरूप से स्थित हो जाने पर कौन अपना और कौन पराया रहेगा ? तत्वज्ञ से भिन्न ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो उसे यदि प्राप्त हो जाय तो वह हर्ष और विषाद से ग्रस्त हो ? यदि उसको ऐसी वस्तु के आ जाने से विषाद दिखायी पड़े तो वह तत्वज्ञ ही नहीं है, किंतु मूढ़ ही है; क्योंकि ऐसा पुरुष जगन्मय ही होता है, सच्चिदानन्दमय नहीं।

रघुनन्दन ! दो प्रकार की अहंकार-दृष्टियाँ सात्विक और अत्यन्त निर्मल हैं। उनकी तत्वज्ञान से उत्पत्ति होती है। वे मोक्ष प्रदान करने वाली और परमार्थ स्वरूप हैं। मैं सबसे परे, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर और विनाशशील सम्पूर्ण पदार्थों से अतीत हूँ-यह पहली अहंकार-दृष्टि है। निष्पाप श्रीराम ! इन दोनों से भिन्न तीसरी अहंकार दृष्टि यह है-देह मैं हूँ। इस दृष्टि को तुम केवल दुःखदायिनी ही जानो, यह कभी शान्तिदायिनी नहीं होती। अब तुम इन तीनों ही अहंकारों को छोड़कर सबके शेष में रहने वाले अहंभावनाशून्य पूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप का अवलम्बन करके उसी अवलम्बनयोग्य परम तत्व में निरत हुए ही स्थित रहो; क्योंकि इस मिथ्या जगत् में परिपूर्ण और सर्वप्रकाशक आत्मा वास्तव में अखिल प्रपंचस्वरूप से मुक्त और समस्त पदार्थों की सत्ता से अतीत ही है। इसलिये श्रीराम ! तुम अपने ही अनुभव से शीघ्र ही देखो कि तुम सदा-सर्वदा प्रकट सच्चिदानन्दघन परब्रह्मस्वरूप ही हो। आत्मा न तो केवल अनुमान से प्रत्यक्ष होता है और न आप्तवचन तथा शास्त्र आदि के श्रवणमात्र से ही; किंतु वह सदा सर्वदा सब प्रकार से केवल अनुभव से ही प्रत्यक्ष होता है। ये जो कुछ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

स्पर्श, आनन्द और ज्ञान आदि पदार्थ हैं, वे सब दृश्य और दर्शन से रहित सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही हैं। यह प्रकाशस्वरूप परमात्मा वास्तव में न तो सत् है और न असत् है, न अणु है और न महान् है तथा न सत् और असत् के मध्य में है। यह आत्मा है और यह आत्मा नहीं है-यों जो संज्ञा भेद है, इसकी स्वयं आत्मा ने ही अपने में अपनी सर्वव्यापिनी शक्ति से कल्पना कर रक्खी है। वह प्रकाशमान परमात्मा तीनों कालों में सदा-सर्वदा सब जगह स्थित है तथापि केवल सूक्ष्म और महान् होने के कारण वह अज्ञानी पुरुषों के द्वारा जानने में नहीं आता। जैसे लोक दृष्टि से सारे पदार्थों का अस्तित्व सर्वत्र विद्यमान है, उसी प्रकार परमार्थ दृष्टि से सच्चिदानन्दघन परमात्मा भी सर्वत्र विद्यमान है तथा सर्वव्यापी है; वह कहीं एक देश में स्थित है-ऐसी बात नहीं है। सबका यह आत्मा किसी समय भी वास्तव में न तो उत्पन्न होता है न मरता है, न कुछ ग्रहण करता है, न कुछ चाहता है, न मुक्त होता है और न बद्ध होता है। जैसे सर्प में रज्जु की भ्रान्ति दुःख देने वाली ही होती है, वैसे ही आत्मा के अज्ञान से उत्पन्न देह आदि अनात्म पदार्थों में आत्म बुद्धिरूप भ्रान्ति केवल दुःख देने वाली ही होती है। यह आत्मा कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि यह अनादि है; और यह विनष्ट भी नहीं होता, क्योंकि यह अजन्मा है। तथा वह आत्मभिन्न वस्तु की कभी अभिलाषा नहीं करता; क्योंकि आत्मा से भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं। यह आत्मा दिशा, देश और काल से परिमित न होने के कारण कभी भी बँधता नहीं; और जब बन्धन ही नहीं है, तब मोक्ष कहाँ से होगा। अतएव वास्तव में आत्मा बन्धन-मोक्ष से रहित है। रघुनन्दन ! उपर्युक्त गुणों से युक्त ही यह सबका आत्मा है; किन्तु ये सब लोग शरीर का विनाश होने पर अविचार से मोहित हुए व्यर्थ ही रुदन कर रहे हैं। जैसे गेहूँ आदि को पीसने के लिये निर्मित जल-चक्की आदि यन्त्र के द्वारा गेहूँ आदि का पेषण चालू होने पर पुरुष केवल साक्षीमात्र से उक्त कार्य को करता है, वैसे ही आत्मज्ञानी विद्वान् मुनि को बन्धन और मोक्षरूपी दोनों ही कल्पनाओं से रहित होकर (यन्त्र की ज्यों) देह आदि का व्यवहार करना चाहिये। सम्पूर्ण विषयों में अनासक्ति से संकल्प और कामना का अभाव हो जाने के कारण जो स्वतः ही साधक के मन का विनाश हो जाता है, उसी को आत्मदर्शी तत्वज्ञ महापुरुषों ने 'मोक्ष' नाम से कहा है। श्रीराम ! तुम समस्त कल्पनाओं से रहित अवस्था को

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji-shyama Prasad Mukherji Collection

प्राप्त और आसक्ति रहित हो, अतः इस सगर पुत्रों के द्वारा खोदी गयी समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का दीर्घ काल तक पालन करो।

चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त

पैंतालीसवाँ सर्ग

मन, अहंकार, वासना और अविद्या के नाश से मुक्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जैसे मरुभूमि में सूर्य की किरणों से जल प्रतीत होता है, वैसे ही अहंता ममता, राग-द्वेष आदि विकारों से युक्त और बिना हुए ही अपने स्वरूप को कायम रखने वाली माया से ही यह सम्पूर्ण जगत् प्रतीत हो रहा है। जैसे बर्फ से भिन्न शुक्लता की कल्पना की जाती है पर वास्तव में बर्फ और शुक्लता में परस्पर पार्थक्य नहीं है, उसी प्रकार चित्त और अहंकार की पृथक कल्पना व्यर्थ ही की जाती है; वास्तव में उनका परस्पर कोई भेद नहीं है। श्रीराम ! मन और अहंकार-इन दोनों में से किसी एक का विनाश हो जाने पर मन एवं अहंकार दोनों का विनाश हो ही जाता है। इसलिये अन्यान्य इच्छाओं का परित्याग करके अपने वैराग्य और आत्मा-अनात्मा के विवेक से केवल मन का ही विनाश कर देना चाहिये। जैसे वायु वृक्ष में पल्लवों की पंक्ति को चलाता है, वैसे ही प्राणादि वायु देह में अंगों की पंक्तियों को पर्याप्त रूप से चलाता है; किंतु सब पदार्थों को व्याप्त कर लेने वाला अतिसूक्ष्म चेतन आत्मा न तो स्वतः चल है और न किसी से चलायमान होता है। जैसे अचल मेरुपर्वत वायुओं से कम्पित नहीं होता, उसी प्रकार यह चेतन आत्मा भी प्राणादि वायुओं से कम्पित नहीं होता।

रघुनन्दन ! यह मैं आने वाला हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं कर्त्ता हूँ-इस प्रकार की वासना मूढ़ पुरुषों के हृदय में व्यर्थ ही उत्पन्न हुआ करती है, जैसे अज्ञान से मरुभूमि में सूर्य किरणों से मृगतृष्णा उत्पन्न होती है। वास्तव में असत्य होते हुए भी सत्य-सी दिखायी पड़ने वाली यह अविद्यारूपा वासना विषयों की अभिलाषा से युक्त मनरूप मत्त मृग को उसी प्रकार खींचती है, जिस प्रकार जल की अभिलाषा से युक्त मृग को मृगतृष्णा खींचती है; किंतु उस अविद्या रूपा वासना का यथार्थ स्वरूप जान लेने पर उसका विनाश हो जाता है। जैसे 'यह मृगतृष्णा का जल है' इस प्रकार तात्त्विकस्वरूप से जान लेने पर मृगतृष्णा तृषार्त्त मनुष्य को अपनी ओर नहीं खींचती, उसी प्रकार 'यह अविद्या है' इस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

प्रकार तत्वतः जान लेने पर अविद्या मन को नहीं खींच सकती। श्रीराम ! जैसे दीपक से अन्धकार नष्ट हो जाता है और प्रकाश आ जाता है, वैसे ही परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से वासना समूल (अविद्या सहित) नष्ट हो जाती है और परमात्मा का वास्तविक स्वरूप प्रकाशित हो जाता है। अविद्या का अस्तित्व किसी प्रकार नहीं है-इस तरह शास्त्र और युक्ति से दृढ़ निश्चय हो जाने पर अविद्या का तत्क्षण विनाश हो जाता है। इस जड़ देह के लिये भोगों से क्या प्रयोजन है-इस प्रकार के निश्चय से युक्त तत्वज्ञ पुरुष इच्छाओं के कारण रूप अपने अज्ञान को विनष्ट कर देता है। जैसे राज्य मिल जाने पर दरिद्र मनुष्य परम शान्ति को पा लेता है, वैसे ही यह तत्वज्ञ पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है। जैसे प्रशान्त समुद्र अपने स्वरूप में सदा अचल स्थित रहता है, उसी प्रकार वह अपने विज्ञानानन्दघन स्वरूप में ही नित्य अचल स्थित रहता है। जैसे मेरुपर्वत स्थिरता और धीरता को धारण करता है, वैसे ही तत्ववेत्ता पुरुष स्थिरता और धीरता को धारण करता है। वह तत्वज्ञानी महात्मा पुरुष अपने विज्ञानानन्दघन स्वरूप में ही सदा परम शान्त और परम तृप्त रहता है तथा वह तत्वज्ञ महापुरुष उस सम्पूर्ण भूतों के आत्मस्वरूप, सर्वत्र व्यापक, सबके नियन्ता, सबके नायक, सर्वाकार और निराकार सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप को अपना आत्मा जान लेता है। तत्ववेत्ता पुरुष विषयी पुरुषों के संग और विषयों की आसक्ति से रहित, मान और मानसिक चिन्ताओं से शून्य, परमात्मा में ही रत तथा विज्ञानानन्द से परिपूर्ण और विशुद्ध अन्तःकरण से युक्त होता है। वह आत्मज्ञानी महात्मा कामरूपी कीचड़ से मुक्त, बन्धनस्वरूप आत्मभ्रम से शून्य तथा हर्ष-शोक, राग द्वेषादि द्वन्द्वरूप दोष और भय से रहित होता है। अतएव वह संसार-समुद्र से तर चुका होता है। वह तत्वज्ञ विद्वान् सर्वोत्तम परम शान्ति को, दुर्लभ परम पद को तथा अनावृत्तिरूप परम गति को प्राप्त है। सभी लोग मन, वाणी और कर्म द्वारा इस महापुरुष के आचरणों के अनुकरण की इच्छा करते हैं; पर वह किसी प्रकार की इच्छा नहीं करता। सभी मनुष्य इसके आनन्द का अनुमोदन करते हैं, पर वह किसी का भी अनुमोदन नहीं करता-उदासीन रहता है। तत्वज्ञ पुरुष न तो त्याग करता है न ग्रहण; न किसी की स्तुति करता है न किसी की निन्दा, न मरता है न जन्म लेता है, न हर्ष करता है और न शोक। वह समस्त आरम्भों, सम्पूर्ण विकारों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और सारी आशा, इच्छा, वासना आदिसे रहित पुरुष 'जीवन्मुक्त' कहा जाता है।

श्रीराम ! मनुष्य को न राज्य से, न स्वर्ग से, न चन्द्रमा से, न वसन्त से और न कान्ता के कमनीय संसर्ग से ही वैसे उत्तम सुख-शान्ति प्राप्त होते हैं, जैसे आशा त्याग से क्योंकि आशा का त्याग ही सबसे बढ़-चढ़कर सुख-शान्ति है। जिस परम निर्वाणरूप मोक्ष के लिये तीनों लोकों की सम्पत्तियाँ तिनके की तरह कुछ भी काम नहीं देतीं, वह आशा के त्याग से ही प्राप्त होता है। जिसके हृदय में आशा अपना स्थान कभी नहीं जमा सकती, सम्पूर्ण त्रिभुवन को तृण के सदृश समझने वाले उस विरक्त पुरुष की उपमा किससे दी जा सकती है ? अर्थात् किसी से नहीं। मेरे लिये यह होना चाहिये और यह नहीं होना चाहिये-इस प्रकार की इच्छा जिसके चित्त में नहीं होती, उस स्वाधीन चित्तवाले ज्ञानी महात्मा पुरुष की मनुष्य कैसे तुलना कर सकते हैं ? श्रीराम ! तुममें न तो आशाओं का अस्तित्व है और न तुम्हारा आशाओं से किसी तरह का सम्बन्ध ही है। तुम इस जगत् को मिथ्या भ्रममात्र ही समझो; क्योंकि जैसे दौड़ते हुए रथ में लगे पहियों के ऊर्ध्व और नीचे प्रदेश में होने वाला घुमाव नेमी का आश्रय लेने वाले पिपीलिका आदि जीवों के पतन, पेषण आदि अनर्थों का ही कारण होता है, वैसे ही यह जगत् भी उसका आश्रय लेने वाले (इसमें सत्य-बुद्धि रखने वाले) जीवों के जन्म-मरण आदि अनर्थों का ही कारण है।

रघुनन्दन ! यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मस्वरूप ही है, यहाँ नानारूपता है ही नहीं। जगत् को अद्वितीय परमानन्दस्वरूप जानकर धीर महात्मा तनिक भी खिन्न नहीं होते। इन पदार्थों के समूहों का जो यथार्थ-आत्मा से अभिन्न स्वरूप है, उसको जानने से ही पुरुष बुद्धि के परम विश्रामस्वरूप नैराश्य को प्राप्त होता है। जैसे वीर केसरी के पास से मृगी दूर भाग जाती है, उसी प्रकार तीव्र वैराग्य से वीरता को प्राप्त अन्तःकरण से युक्त पुरुष के पास से यह संसार को मोहित करने वाली माया दूर भाग जाती है-फिर उसके पास भी नहीं फटकती। जिस प्रकार वायु पर्वत को न आनन्द दे सकता है, न खेद और न धैर्य से च्युत कर सकता है, उसी प्रकार ज्ञानी महात्मा पुरुष को न तो विषयोपभोग आनन्द पहुँचा सकते हैं, न सांसारिक आपत्तियाँ हृदय में खेद पहुँचा सकती हैं और न दृश्य-सम्पत्तियाँ धैर्य से च्युत कर सकती हैं। जिसके प्रति युवती स्त्रियाँ अनुरक्त हैं, ऐसे उदारबुद्धि तत्वज्ञ महात्मा के अन्तःकरण में कामदेव के बाण छिन्न-भिन्न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

होकर धूल के समान हो जाते हैं-उन युवती स्त्रियों का उस पर कोई असर नहीं होता। जो परमात्मा के स्वरूप को जानता है और मन-इन्द्रियों के वश में नहीं है, उस महापुरुष को राग और द्वेष अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकते। इस प्रकार वह जब राग-द्वेष के द्वारा तनिक सा भी विचलित नहीं किया जा सकता, तब उनके द्वारा उसके आक्रान्त होने की तो बात ही क्या है। जो लता और वनिता में एक-सी दृष्टि रखता है तथा जो पर्वत की तरह अचल है, वह ज्ञानी पुरुष इन तुच्छ विषयभोगों में उसी प्रकार रमण नहीं करता, जैसे बटोही मरुभूमि में रमण नहीं करता। जिसका अन्तःकरण किसी भी भोग पदार्थ में आसक्त नहीं है, वह तत्वज्ञानी महात्मा पुरुष बिना प्रयत्न के अपने-आप प्राप्त अनिषिद्ध भोग-पदार्थों का केवल शरीर रक्षा के लिये अनासक्त भाव से लीलापूर्वक सेवन करता है। काकतालीय न्याय की भाँति अनायास न्याययुक्त प्राप्त ललना आदि भोग-समूह आस्वादित होने पर भी तत्वज्ञ धीर पुरुष को सुख-दुःख नहीं दे सकते, क्योंकि जिसने परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग को भलीभाँति जान लिया है, उस तत्वज्ञ महापुरुष को सुखदुःख तनिक भी विचलित नहीं कर सकते। इन विनाशशील विषयों को त्याज्य बुद्धि से देखने वाला वह मृदु, दमनशील और सम्पूर्ण चिन्ता आदि ज्वरों से रहित ज्ञानी महापुरुष सब भूतों में अन्तरात्मा स्वरूप से स्थित आत्मपद का ही अवलम्बन कर स्थित रहता है। जैसे ऋतुओं के आने-जाने से पर्वत विचलित नहीं होता, वैसे ही ज्ञानी महात्मा पुरुष कालानुसार, देशानुसार और क्रमानुसार आपत्तियों और सुख-दुःख के आने पर भी विचलित नहीं होता। शरीर से पृथक आत्मा का अपरोक्ष साक्षात्कार करने वाले, नित्यानित्य वस्तु के यथार्थ विवेक से सम्पन्न ज्ञानी के शरीर का छेदन करने पर भी उसका कुछ भी छेदन नहीं होता; क्योंकि वह अपने विज्ञानानन्दघन स्वरूप परमात्मा का एक बार यथार्थ ज्ञान हो जाने पर वह सदा ज्ञात ही रहता है, फिर उसका विस्मरण नहीं होता। अपने हृदय की चिज्जडग्रन्थि का उच्छेद हो जाने पर माया के तीनों गुणों के द्वारा आत्मा का पुनः बन्धन उसी प्रकार नहीं हो सकता, जैसे वृक्ष से टूटा हुआ फल किसी के द्वारा पुनः नहीं जोड़ा जा सकता। अविद्या का असली स्वरूप जान लेने के अनन्तर कौन बुद्धिमान पुरुष फिर उसमें डूबता (फँसता) है; क्योंकि सांसारिक वासना विवेकपूर्वक बुद्धि के विचार से निवृत्त हो जाती है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

श्रीराम ! तत्ववेत्ता पुरुष रूप-लावण्ययुक्त कामिनी को भी चित्र में लिखित कान्ता की प्रतिमा की तरह ही समझते हैं; क्योंकि जैसे चित्र में चित्रित कामिनी के केश, ओष्ठ आदि अवयव मषी, कुंकुम आदि रंग-स्वरूप पाँच भूतों को छोड़कर और कुछ भी नहीं होते, उसी प्रकार रूप और लावण्य से युक्त जीवित कामिनी के केश, ओष्ठ आदि भी पाँच भूतों के स्वरूप से अतिरिक्त दूसरे कुछ नहीं हैं। इसलिये कान्ता-प्रतिमा और जीवित कान्ता में तत्वतः समानता है-इस तत्व को जानने वाले विवेकशील विरक्त महात्मा पुरुष का जीवित कान्ता के उपभोग में आग्रह कैसे हो सकता है। जैसे परपुरुष में व्यसन (आसक्ति) रखने वाली नारी, घर के काम-काज में व्यग्र रहने पर भी उसी परपुरुष-सम्बन्ध रूप रसायन का अपने अंदर आस्वाद लेती रहती है, उसी प्रकार व्यवहार करते हुए भी विशुद्ध परब्रह्मतत्व में उत्तम विश्राम को प्राप्त धीर पुरुष उस विज्ञानानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में ही मग्न रहता है; फलतः वह इन्द्रादि देवताओं के द्वारा प्रलोभित किये जाने पर भी विचलित नहीं होता। क्योंकि जिस महात्मा की अविद्या निवृत्त हो गयी है, जिसको परमात्मविषय का अच्छी प्रकार ज्ञान है तथा जो सदाचार से युक्त है, वह महात्मा सुचारु रूप से व्यवहार करता हुआ भी अपने अन्तरात्मा में प्रसन्न रहता है। उसके शरीर का छेदन होने पर भी उसका छेदन नहीं होता, गिरते हुए अश्रुओं से युक्त होता हुआ भी वह रोता नहीं, दग्ध होता हुआ भी दग्ध नहीं होता और देह का विनाश होने पर भी उसका विनाश नहीं होता; क्योंकि वह देह से रहित हुआ सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के स्वरूप में नित्य स्थित है। श्रीराम ! वह तत्वज्ञ पुरुष प्रारब्ध भोग के विधान के अनुसार चाहे दरिद्र-अवस्था में रहे या संकटावस्था में, उत्तम नगर महल में रहे या विस्तृत पहाड़ या वन में, वह सदा-सर्वदा सुख-दुःख के उपद्रव से रहित ही होता है।

पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त

छियालीसवाँ सर्ग

जीवन्मुक्त महात्माओं का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! अपने राज्य के व्यवहार में तत्पर होते हुए भी राजा जनक सम्पूर्ण चिन्तारूप ज्वर से अन्तःकरण की व्याकुलता से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रहित होकर ही सदा-सर्वदा स्थित रहते हैं। आपके पितामह महाराज दिलीप ने अनेक तरह के उचित सांसारिक कर्मों को सुचारु रूप से करते हुए भी आसक्ति से रहित होकर ही दीर्घकाल तक पृथ्वी का पालन किया। तथा राग आदि दोषों से रहित होने के कारण आत्मज्ञान को प्राप्त तथा सदा जीवन्मुक्त-स्वरूप महाराज मनु ने चिरकाल तक प्रजाओं का संरक्षण करते हुए राज्य का पालन किया। विचित्र सैन्य और बाहुबल के प्रयोग से युक्त युद्धों तथा अनेक व्यवहारों को निष्काम भाव से दीर्घकाल तक करते हुए महाराज मान्धाता परम पद को प्राप्त हुए। पाताल के राज्यसिंहासन पर आसीन, सदा त्यागी, सदा अनासक्त राजा बलि यथार्थरूप से व्यवहार को करते हुए भी जीवन्मुक्त रूप से स्थित हैं। दानवों के अधिपति नमुचि देवताओं के साथ युद्ध करते हुए तथा सदा नाना प्रकार के व्यवहार एवं विचार-विमर्शों में तत्पर होते हुए भी भीतर से संतप्त (खिन्न) नहीं होते थे। इन्द्र के युद्ध में अपने शरीर का परित्याग करने वाले विशाल-हृदय मानी वृत्रासुर ने प्रशान्त मन होकर ही देवताओं के साथ युद्ध किया। पातालतल का परिपालन करते समय दानवोचित्त कर्मों का अनासक्त भाव से अनुष्ठान करते हुए भक्तप्रवर प्रहलाद अविनाशी अनिवर्चनीय परमानन्दस्वरूप परमपद को प्राप्त हुए। समस्त देवताओं के मुखस्वरूप अग्नि क्रियासमूह में तत्पर होते हुए यज्ञिय शोभा का चिरकाल तक उपभोग करते हैं तथापि वे मुक्त होकर ही इस त्रिभुवन में निवास करते हैं। जगत् के प्राणि समूहों के अंगों का चिरकाल से संचरण कराते हुए भी वायु, जो सदा-सर्वदा सर्वत्र संचरण करने वाले हैं, मुक्त ही स्थित हैं। ज्ञानरूप रत्नों का एकमात्र समुद्र, तीक्ष्णबुद्धि, वीरवर स्वामी कार्तिकेय ने मुक्त होते हुए भी तारकादि असुरों से युद्ध किया। महामुनि नारद मुक्त स्वभाव होते हुए भी इस जगत् में कार्यशील और शान्त बुद्धि से विचरण किया करते हैं। जीवन्मुक्त होकर ही अनासक्त भाव से सहस्त्रमुख नागराज शेष पृथ्वी को धारण करते हैं, सूर्य दिवस-परम्पराओं का निर्माण करते हैं और यमराज धर्माधर्म-विचारपूर्वक लोगों का नियमन करते हैं। इन पूर्वोक्त महानुभावों के सिवा दूसरे भी सैकड़ों महात्मा यक्ष, राक्षस, मनुष्य और देवता इस त्रिभुवन में मुक्त स्वरूप हुए ही संसार में अनासक्त भाव से विचरण करते हैं। विचित्र आचार-व्यवहारों में स्थित कितने ही पुरुष भीतर शान्ति से युक्त हैं, जबकि कुछ तामसी मूढ़ पुरुष तो मोह में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मग्न हुए पत्थर के सदृश बने रहते हैं। कुछ महात्माओं ने परम ज्ञान का सम्पादन करके तपोवन का आश्रय लिया, जैसे-भृगु, भरद्वाज, विश्वामित्र, शुक आदि। कुछ महात्मा परमज्ञान प्राप्त कर राज्यों में ही छत्र, चवँर धारण किये रहते हैं-जैसे जनक, शर्याति, मान्धाता, सगर आदि। कुछ तत्वज्ञ आकाश में ग्रह, नक्षत्र आदि के आधारभूत ज्योतिश्चक्र के मध्य में स्थित हैं-जैसे बृहस्पति, शुक्राचार्य, चन्द्र, सूर्य, सप्तर्षि आदि। तिर्यक् योनियों में भी सदा से कृतबुद्धि महात्मा रहते हैं और देवयोनियों में भी मूर्खबुद्धि वाले लोग विद्यमान हैं। जिसका अत्यन्त व्यापक स्वरूप है, उस सर्वस्वरूप परमात्मा में सब कुछ सर्वभाव से सर्वत्र सब प्रकार से सदा ही सम्भव है।

श्रीराम ! मुक्ति हो जाने पर फिर इस संसार में किसी प्रकार जन्म की प्राप्ति सम्भव नहीं। किंतु करोड़ों मनुष्य आत्मा के ज्ञान का अभाव होने से ही अज्ञान में निमग्न रहते हैं। रघुकुलतिलक ! मुक्ति होने पर इस संसार में विज्ञानानन्दघन परमात्मा की प्राप्ति सदा ही बनी रहती है, इसलिये आत्मा-अनात्मा के यथार्थ विवेक-विज्ञान को प्राप्त करके करोड़ों मनुष्य विमुक्त हो चुके हैं। ज्ञान से मुक्ति सुलभ है और अज्ञान से दुर्लभ। अतः जिसको मुक्ति की अभिलाषा हो, उसे आत्मज्ञान के लिये प्रयत्न करना चाहिये। आत्मज्ञान से सम्पूर्ण दुःखों का सर्वथा विनाश हो जाता है। इस वर्तमान काल में भी रागशून्य, भयरहित महाबुद्धिमान् राजा सुहोत्र और जनक आदि के समान अनेक जीवन्मुक्त महापुरुष विद्यमान हैं। इसलिये श्रीराम ! तुम भी ज्ञान-वैराग्य से उत्पन्न धीरबुद्धि से युक्त, मिट्टी के ढेले, पत्थर और सुवर्ण में समदृष्टि तथा जीवन्मुक्त हुए विचरण करो।

रघुनन्दन ! इस लोक में देहधारी जीवों को दो प्रकार की मुक्ति होती है-एक तो सदेह-मुक्ति और दूसरी विदेह-मुक्ति। अब तुम इनका विभाग सुनो। निष्पाप श्रीराम ! पदार्थों (विषयों) के असंग से जो मन की शान्ति होती है, वही विमुक्तता है। वह विमुक्तता देह के रहते हुए और देहावसान होने पर भी होती है। जो विद्वान् विषय-स्नेह से रहित होकर जीता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है एवं जो विषय-स्नेह से युक्त होकर जीता है, वह बद्ध कहलाता है। इन दोनों से भिन्न तीसरा जो देहत्याग के पश्चात् ब्रह्म में विलीन हो जाता है, वह विदेही तो मुक्त है ही। इसलिये मनुष्य को मोक्ष के लिये युक्ति और प्रयत्न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पूर्वक साधन करना चाहिये। युक्ति और प्रयत्न बिना तो गाय का खुर टिके, इतनी भूमि भी नहीं लाँघी जा सकती।

छियालीसवाँ सर्ग समाप्त

सैतालीसवाँ सर्ग

जीवन्मुक्त महात्माओं के गुण, लक्षण और महिमा

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं-रघुनन्दन ! यह जगत् ब्रह्म से ही उत्पन्न होता है, अविवेक से स्थिरता को प्राप्त होता है और परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से निश्चय ही प्रशान्त हो जाता है; क्योंकि परमात्मा का यथार्थ ज्ञान न होना ही संसार की स्थिति में कारण है और परमात्मा का यथार्थ ज्ञान ही उस संसार के विनाश में कारण है। यह संसार-सागर ऐसा घोर है कि इससे पार हो जाना अत्यन्त दुष्कर है; युक्ति और प्रयत्न के बिना इसका तरण नहीं किया जा सकता। यह संसाररूपी सागर है। इसमें मुग्ध अंगनारूपी विस्तृत तरगें हैं। ये स्त्रीरूपी तरगें ओठों की शोभारूप पद्मराग मणियों से युक्त, नेत्ररूपी नील-कमलों से परिपूर्ण, स्मितरूपी फेनों से सुशोभित, दाँतरूपी प्रफुल्लित पुष्पों से अलंकृत, केशरूपी इन्द्र नीलमणियों से सुसज्जित, भौहों के विलासरूपी वायु से आन्दोलित, नितम्बरूपी पुलिनों से युक्त, कण्ठरूपी शंखों से विभूषित, ललाटरूपी मणि समूहों से सुशोभित, विलासरूपी ग्राहों से संकुल, कटाक्षों की चपलता के कारण अति गहन तथा देहकान्तिरूपी सुवर्ण-बालुका से युक्त हैं। इस प्रकार की अति चंचल लहरियों के कारण जो अत्यन्त भयंकर है-ऐसे सागर में निमग्न हुआ पुरुष यदि पार हो जाय तो वह परम पुरुषार्थ ही है। शुद्ध और तीक्ष्ण बुद्धिरूपी बड़ी नौका और विचारपूर्वक विवेकरूपी नाविक के रहते हुए भी जो मनुष्य इस संसार-सागर से पार नहीं हुआ, उस पुरुष को धिक्कार है। श्रीराम ! जो मनुष्य श्रेष्ठ पुरुषों के साथ परब्रह्म का विचार करके तथा बुद्धि से संसार-सागर का तत्व समझकर जगत् में विचरण करता है, वही वास्तविक शोभा पाता है। इस संसार में तुम धन्य हो, जो इस बाल-अवस्था में ही विवेकयुक्त बुद्धि से इस संसार के विषय में विचार करते हो। जिसने तत्व को जान लिया है, उस पुरुष के बल, बुद्धि और तेज उसी प्रकार बढ़ते हैं, जिस प्रकार बसंत ऋतु में वृक्षों के सौन्दर्य आदि गुण बढ़ते हैं। रघुनन्दन ! तुम जानने योग्य वस्तु को जानते

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हो। इस कारण इस समय तुम चिन्मय घनीभूत आनन्दामृत रसायन से परिपूर्ण, सुशीतल (त्रिविध तापों से रहित), विशुद्ध और सम शोभा से पूर्ण चन्द्रमा की तरह अत्यन्त सुशोभित हो रहे हो।

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा–मुनिवर ! जिसने ब्रह्मतत्वरूप चमत्कार का अपरोक्ष साक्षात्कार कर लिया है, ऐसे तत्वज्ञानी पुरुष का उदार चरित्र आप मुझसे साररूप में कहिये; क्योंकि आपके वचनों से तृप्ति किसको हो सकती है।

श्रीवसिष्ठजी बोले–महाबाहु श्रीराम ! अनेक बार मैंने तुमसे जीवन्मुक्त के लक्षण कहे हैं, फिर भी मैं तुमसे कह रहा हूँ; जिसकी समस्त अभिलाषाएँ निकल गयी हैं, ऐसा आत्मवान् (तत्ववेत्ता) पुरुष उपरत हुआ ही इस दृश्यमान अखिल जगत् को सर्वत्र सदा असत्–सा देखता है। जिसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है और जिसका मन विक्षेप रहित–शान्तियुक्त हो गया है, वह कैवल्य को प्राप्त महापुरुष आनन्द में मग्न हुआ रहता है। शान्त बुद्धि से सम्पन्न ज्ञानी महात्मा अन्तरात्मा में लीन दृष्टि से जनता के व्यवहारों को यन्त्रनिर्मित कठपुतली के खेल के समान देखता है। तत्त्ववेत्ता पुरुष न भविष्य की परवा करता है, न वर्तमान में किसी पदार्थ में तन्मय होता है, न भूतकालीन वस्तु का स्मरण करता है और सब कुछ करता हुआ भी निर्लेप रहता है। तत्त्वज्ञानी सोता हुआ भी आत्मज्ञान में जागता रहता है और जागता हुआ भी संसार से निःस्पृह तथा उपरत रहता है। वह सब कुछ करता हुआ भी कर्तापन के अभियान से रहित होने के कारण कुछ भी नहीं करता। सम्पूर्ण संसार की आसक्ति से शून्य और सदा–सर्वदा सम्पूर्ण कामनाओं रहित तत्त्ववेत्ता महात्मा सब कार्यों को करता हुआ भी समभाव से स्थित रहता है। वह तत्त्वज्ञ पुरुष उदासीन मनुष्य की तरह स्थित रहता है। वह प्रारब्धानुसार प्राप्त हुई क्रियाओं में न इच्छा करता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है और न प्रसन्न होता है। तत्त्वज्ञ महात्मा जब अपने मुख से वाणी को प्रवृत्त करता है, तब पवित्र कथाओं को ही कहता है। उसका अन्तःकरण दीनता से रहित रहता है। वह धीर बुद्धिवाला, प्रत्यक्ष आनन्द में मग्न तथा दक्ष होता है और लोक में उसके पुण्य चरित्रों का वर्णन होता है। तत्त्वज्ञ उदार–चरित एवं उदार आकार से युक्त, सम, सौम्य, सुख का समुद्र एवं सुस्निग्ध होता है; उसका स्पर्श शान्तिमय होता है और वह पूर्णचन्द्र की तरह नित्य उदित रहता है। उसका न आवश्यक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma Sadhanu Collection

कर्मों तथा ऐहिक और आमुष्मिक फल के हेतुरूप कर्मों के आरम्भ से न कर्मों के अभाव से, न बन्धन से न मोक्ष से न पाताल से और न स्वर्ग ही प्रयोजन होता है; क्योंकि सम्यक-ज्ञानरूपी अग्नि से जिसके संदेहरूपी जाल विनष्ट हो गये हैं, उस तत्त्वज्ञ महात्मा ने समस्त जगत् की स्वरूपभूत अद्वितीय परमात्मरूप यथार्थ वस्तु को भली प्रकार जान लिया है।

जिसका अन्तःकरण भ्रान्ति से रहित होकर समतारूप ब्रह्म के स्वरूप में स्थित हो गया हो, वह आकाश की तरह सभी दृष्टियों में न मरता है और न जन्मता है। देश और काल के अनुसार प्राप्त हुई क्रियाओं में स्थित हुआ भी कर्मों से जनित सुख और दुःख की प्राप्ति में तनिक भी विकारवान् नहीं होता। वह प्राप्त हुई दुःखावस्था की उपेक्षा नहीं करता और न सुखावस्था की परवाह ही करता है। न कार्यों के सफल होने पर हर्षित होता है और न कार्यों के विनष्ट होने पर खिन्न होता है। यदि सूर्य शीतल हो जाय, चन्द्रमा तपने लग जाय, अग्नि अधोमुख होकर जलने लगे, तो भी तत्वज्ञानी महात्मा को आश्चर्य नहीं होता; क्योंकि तत्ववित् पुरुष यह जानता है कि चिन्मय परब्रह्म परमात्मा की ये असीम मायाशक्तियाँ इसप्रकार प्रस्फुरित हो रहीं हैं। इसलिये आश्चर्य-समूहों के होने पर भी उसको आश्चर्य नहीं होता। वह कभी भी दीनता युक्त नहीं होता, न कभी उद्दण्ड होता है तथा न कभी उन्मत्त, खिन्न, उद्विग्न और हर्षयुक्त ही होता है। अर्थात इन सब विकारों का उसमें अत्यन्त अभाव होता है। उस परमात्म प्राप्त पुरुष के आकाश की तरह अत्यन्त निर्मल, विशाल चित्त में कोप आदि विकार उत्पन्न नहीं होते। सुख-दुःख दोनों के क्षीण हो जाने से उसके लिये हेय और उपादेय तथा शुभ और अशुभ का भी विनाश हो जाता है; ऐसी स्थिति में अनुकूल और प्रतिकूल कैसे रह सकते हैं।

श्रीराम ! तिलों के भस्म हो जाने पर तेल की कल्पना ही कैसे हो सकती है। इसी प्रकार मूल सहित मनके विनष्ट हो जानेपर संकलप की चर्चा ही क्या है। रघुनन्दन ! परमात्मा से पृथक् कोई भी पदार्थ नहीं है, इस प्रकार की दृढ़ भावना के कारण समस्त दृश्य पदार्थों के संकल्प-विकल्प का अभाव करके सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित ज्ञानी महात्मा नित्यतृप्त तथा अपने निरतिशयानन्दन स्वरूप से आनन्दवान् होकर स्थित रहता है।

सैतालीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अड़तालीसवाँ सर्ग

योग की सिद्धि के अनेक उपाय

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–श्रीराम ! जैसे रात्रि में जलती हुई लुकाठी को गोल घुमाने से अग्निमय चक्र असत् होते हुए भी सत्–सा दिखायी पड़ता है, वैसे ही चित्त के संकल्प से असत् जगत् सत्–सा दिखायी पड़ता है। जैसे जल के चारों ओर घूमने से जल से पृथक गोल–नाभि के आकार का आवर्त (भँवर) दिखायी पड़ता है, वैसे ही चित्त के संकल्प–विकल्प से जगत् दिखायी पड़ता है। जैसे आकाश में नेत्रों के दोष से असत् मोर के पंख और मोती के समूह सत्य–से दिखायी पड़ते हैं, वैसे ही चित्त के संकल्प से असत् जगत् सत्य–सा दिखायी पड़ता है। रघुनन्दन ! जैसे शुक्लत्व और हिम, जैसे तिल और तेल, जैसे पुष्प और सुगंध तथा जैसे अग्नि और उष्णता एकदूसरे से मिले हुए और अभिन्नरूप हैं, वैसे ही चित्त और संकल्प एक दूसरे से मिले हुए और अभिन्न रूप हैं। उनके भेद की केवल मिथ्या कल्पना की गयी है। चित्त के विनाश के लिये दो उपाय शास्त्रों में दिखलाये गये हैं–एक योग और दूसरा ज्ञान। चित्तवृत्ति का निरोध योग है और परमात्मा का यथार्थ अपरोक्ष साक्षात्कार ही ज्ञान है।

श्रीरामजी ने पूछा–ब्रह्मन् ! प्राण और अपान के निरोधरूप योग नाम की किस युक्ति से और कब मन अनन्त सुख को देने वाली परमशान्ति को प्राप्त करता है ?

श्रीवसिष्ठ जी ने कहा–श्रीराम ! जैसे जल पृथ्वी में चारों ओर से प्रवेश करके व्याप्त होता है, वैसे ही इस देह में विद्यमान असंख्य नाड़ियों में चारों ओर से जो वायु प्रवेश करके व्याप्त होता है, वह प्राणवायु है। स्पन्दन के कारण भीतर क्रिया के वैचित्र्य को प्राप्त हुए उसी प्राणवायु के अपान आदि नामों की योगी–विवेकी पुरुषों ने कल्पना की है। जैसे सुगन्ध का पुष्प तथा जैसे शुक्लता का हिम आधार है, वैसे ही चित्त का यह प्राण आधार है। प्राण के स्पन्दन से चित्त का स्पन्दन होता है और चित्त के स्पन्दन से ही पदार्थों की अनुभूतियाँ होती हैं, जिस प्रकार जल के स्पन्दन से चक्र की तरह गोल आकार की रचना करने वाली लहरें उत्पन्न होती हैं। चित्त का स्पन्दन प्राण–स्पन्दन के अधीन है। अतः प्राण का निरोध करने पर मन अवश्य उपशान्त (निरुद्ध) हो जाता है–यह बात वेद–शास्त्रों को जानने वाले विद्वान् कहते हैं। मन के संकल्प का अभाव हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

जाने पर यह संसार विलीन हो जाता है।

श्रीरामजी ने पूछा-महाराज ! देहरूपी घर में स्थित हृदयादि स्थानों में विद्यमान नाड़ीरूपी छिद्रों में निरन्तर संचरण करने वाले तथा मुख, नासिका आदि छिद्रों में निरन्तर गमनागमनशील प्राण आदि वायुओं का स्पन्दन कैसे रोका जा सकता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! शास्त्रों के अध्ययन, सत्पुरुषों के संग, वैराग्य और अभ्यास से सांसारिक दृश्य पदार्थों में सत्ता का अभाव समझ लेने पर चिरकाल पर्यन्त एकतानतापूर्वक अपने इष्टदेव के ध्यान से और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में स्थिति के लिये तीव्र अभ्यास से प्राणों का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है। सुखपूर्वक रेचक, पूरक और कुम्भक आदि प्राणायामों के दृढ़ अभ्यास से तथा एकान्त ध्यानयोग से प्राणवायु निरुद्ध हो जाता है। ॐकार का उच्चारण और ॐकार के अर्थ का चिन्तन करने से बाह्य विषयों के ज्ञान का अभाव हो जाने पर प्राणवायु का स्पन्दन रुक जाता है। रेचक प्राणायाम का दृढ़ अभ्यास करने से विशाल प्राणवायु के बाह्य आकाश में स्थित हो जाने पर नासिका के छिद्रों को जब प्राणवायु स्पर्श नहीं करता, तब प्राणवायु का स्पन्दन रुक जाता है। इसी का नाम बाह्यकुम्भक प्राणायाम है। पूरक का दृढ़ अभ्यास करते-करते पर्वत पर मेघों की तरह हृदय में प्राणों के स्थित हो जाने पर जब प्राणों का संचार शान्त हो जाता है, तब प्राण-स्पन्दन रुक जाता है। इसी का नाम आभ्यन्तरकुम्भक प्राणायाम है। कुम्भ की तरह कुम्भक प्राणायाम के अनन्तकाल तक स्थिर होने पर और अभ्यास के प्राण का निश्चल स्तम्भन हो जाने पर प्राणवायु के स्पन्दन का निरोध हो जाता है। इसी का नाम स्तम्भवृत्ति प्राणायाम है। जिव्हा के द्वारा तालु के मध्यभाग में रहने वाली घण्टिका को प्रयत्नपूर्वक स्पर्श करने से जब प्राण ऊर्ध्वरन्ध्र में (ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् कपाल-कुहर में, जो सुषुम्णा के ऊपरी भाग का द्वार कहा जाता है) प्रविष्ट हो जाता है, तब प्राणवायु का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है। समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित होने पर कोई भी नाम-रूप नहीं रहता, तब अत्यन्त सूक्ष्म चिन्मय आकाशरूप परमात्मा के ध्यान से बाह्याभ्यन्तर सारे विषयों के विलीन हो जाने पर प्राणवायु का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है। नासिका के अग्रभाग से लेकर बारह अंगुल पर्यन्त निर्मल आकाश भाग में नेत्रों की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshe Karmyatra Trust Jammu Collection

लक्ष्यभूत संवित्दृष्टि (वृत्तिज्ञान) के शान्त हो जाने पर अर्थात् नेत्र और मन की वृत्ति को रोकने से प्राण का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है।

अभ्यास से यानी योगशास्त्रों में प्रदर्शित पवन-निरोध के अभ्यास से ऊर्ध्वरन्ध्र के द्वारा (सुषुम्णामार्ग से) तालु के ऊपर जो ब्रह्मरन्ध्र है, उसमें स्थित प्राणवायु जब विलीन हो जाता है, तब प्राणवायु का स्पन्दन रुक जाता है। भृकुटी के मध्य में चक्षु-इन्द्रिय की वृत्ति के शान्त होने से आज्ञाचक्र में प्राणों के विलीन हो जाने पर जब चिन्मय परमात्मा का अनुभव हो जाता है, तब प्राणों का स्पन्दन रुक जाता है। ईश्वर के अनुग्रह से तुरंत उत्पन्न हुए दृढ़ीभूत तथा समस्त विकल्पांशों से रहित परमात्मज्ञान के हो जाने पर प्राणों का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है। मननशील श्रीराम जी ! हृदय में स्थित एकमात्र चिन्मय आकाशस्वरूपपरमात्मा के ज्ञान से, विषयवासना के अभाव से और मन के द्वारा परमात्मा का निरन्तर ध्यान करने से प्राणों का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! इस जगत् में प्राणियों के उस हृदय का स्वरूप क्या है, जिसमें यह सब दर्पण में प्रतिबिम्ब की तरह स्फुरित होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! इस जगत् में प्राणियों के दो प्रकार के हृदय हैं-एक उपादेय और दूसरा हेय। अब तुम इनका विभाग सुनो। इयत्तारूप से परिच्छिन्न इस देह में वक्षःस्थल के भीतर शरीर के एक देश में स्थित जो हृदय है, उसे तुम हेय हृदय जानो। चेतनमात्रस्वरूप से स्थित हृदय (परमात्मा) को उपादेय कहा गया है। वह परमात्मा सबके भीतर और बाहर है और भीतर एवं बाहर नहीं भी है। अर्थात् संसार के प्रतीतिकाल में तो परमात्मा भीतर और बाहर सब जगह परिपूर्ण है और वास्तव में वह संसार के भीतर बाहर नहीं है; क्योंकि संसार का अत्यन्त अभाव है। अतः परमात्मा ही अपने आप में नित्य स्थित है। वह उपादेय परमात्मा ही प्रधान हृदय है। उसी में यह समस्त जगत् विद्यमान है, वही समस्त पदार्थों का दर्पण है अर्थात् उसी में यह संसार दर्पण में प्रतिबिम्ब की ज्यों संकल्परूप से स्थित है और वही सम्पूर्ण सम्पत्तियों का कोष है। श्रीराम ! चेतन परमात्मा ही सभी प्राणियों का हृदय कहा जाता है। जड़ और जीर्ण पत्थर के सदृश देह के अवयव का मांस-खण्डरूप एक अंश वास्तविक हृदय नहीं है। इसलिये चेतनस्वरूप विशुद्ध हृदय-परमात्मा में वासनाओं से रहित होकर बलपूर्वक चित्त को लगाने से प्राण का स्पन्दन निरुद्ध

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हो जाता है। इन पूर्वोक्त उपायों से तथा अन्यान्य अनेक तत्त्वज्ञ आचार्यों के मुख से उपदिष्ट नाना संकल्पों से कल्पित उपायों से प्राणस्पन्द निरुद्ध हो जाता है। ये पूर्वोक्त योगविषयक युक्तियाँ अभ्यास के द्वारा ही श्रेष्ठ साधक के लिये संसार का उच्छेदन करने में बाधारहित उपाय हैं। भ्रू, नासिका, तालुसंस्थान तथा कण्ठाग्र-प्रदेश से लेकर बारह अंगुल परिमित प्रदेश में अभ्यास से प्राण लीन हो जाता है अर्थात् प्राणों का निरोध हो जाता है। अभ्यास से ही पुरुष आत्माराम, वीतशोक तथा परमात्मा की प्राप्तिरूप भीतरी सुख से पूर्ण होता है। उस परमपदरूप परमात्मा में यह समस्त जगत् विद्यमान है; उससे यह सब उत्पन्न हुआ है, वह समस्त जगत् का स्वरूपभूत है और वह इस जगत् के चारों ओर विद्यमान है। किंतु वास्तव में उसमें न तो यह दृश्यमान समस्त जगत विद्यमान है, न यह उससे उत्पन्न हुआ है और न जगत् उसका स्वरूप ही है। वास्तव में इस प्रकार का जगत् है ही नहीं, प्रत्युत वह परमात्मा स्वयं ही अपने आप में स्थित है। श्रीराम ! जो महाबुद्धिमान् ज्ञानी महात्मा पुरुष सारी सीमाओं के अन्तरूप उस परमपद का अवलम्बन करके स्थित रहता है, वह स्थितप्रज्ञ, तत्त्ववेत्ता, जीवन्मुक्त कहलाता है। जिस महात्मा की समस्त कामोपभोग की इच्छाएँ निवृत्त होगयी हैं, जिसका सम्पूर्ण पदार्थों में अनुकूलता और प्रतिकूलता रूप संकल्प निवृत्त हो गया है तथा जिसका अन्तःकरण समस्त व्यवहारों में हर्ष और विषाद से रहित तथा सम हो गया है एवं जिसका मन शान्त हो चुका है, वह महात्मा सब पुरुषों में श्रेष्ठ है।

अढ़तालीसवाँ सर्ग समाप्त

उनन्चासवाँ सर्ग

ब्रह्मविचार से परमात्मा की प्राप्ति

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-भगवन् ! उपर्युक्त दो उपायों में से आपने योगयुक्त पुरुष के चित्त-विनाश का ही निरूपण किया है। अब आप अनुग्रह करके मुझसे यथार्थ ज्ञान का सम्यक् प्रकार से निरूपण कीजिये।

श्रीवसिष्ठजी बोले-श्रीराम ! इस जगत् में आदि और अन्त से रहित प्रकाशस्वरूप परमात्मा ही है-इस प्रकार का जो दृढ़ निश्चय है, उसी निश्चय को ज्ञानी महात्मागण सम्यक्ज्ञान यानी परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान कहते

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LF S) Jammu Collection

हैं। ये जो घट-पट आदि आकारों से युक्त पदार्थों के सैकड़ों समूह हैं, वे सब परमात्मस्वरूप ही हैं; उससे भिन्न अन्य कुछ नहीं है-इस प्रकार का दृढ़ निश्चय ही परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान है। परमात्मा का यथार्थ ज्ञान न होने से जन्म होता है और परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से मोक्ष होता है। रज्जु का यथार्थ ज्ञान न होने से रज्जु सर्परूप प्रतीत होती है और उसका यथार्थ ज्ञान होने से रज्जु सर्परूप नहीं प्रतीत होती यानी रज्जु रज्जुरूप ही दिखायी पड़ती है। इस मुक्ति में संकल्प से सर्वथा रहित, समस्त विषयों से रहित केवल चिन्मय परमात्मा ही सच्चिदानन्दरूप से विराजमान रहता है; उससे अन्य कुछ भी नहीं रहता। इन तीनों लोकों में यथार्थ आत्मदर्शन इतना ही है कि यह सब जगत् परमात्मा ही है, ऐसा निश्चय करके पुरुष पूर्णता को प्राप्त हो जाय। उस परमात्मा से भिन्न न तो दृश्य जड़ जगत् है और न मन है। ब्रह्म ही यह दृश्य रूप बनकर चेष्टा कर रहा है। समस्त ब्रह्माण्ड एक चिन्मय आकाशरूप विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही है; अतः क्या मोक्ष है और क्या बन्धन है ? जितने बड़े-से-बड़े पदार्थ हैं, उन सबसे भी ब्रह्म महान् है। जैसे काष्ठ, पाषाण और वस्त्र आदि सब कुछ पृथ्वी ही है-इस प्रकार का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर उनमें तनिक भी भेद नहीं रह जाता, वैसे ही परमात्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर परमात्मा से भिन्न कोई वस्तु नहीं रहती। रघुनन्दन ! आदि और अन्त में जो अविनाशी, पूर्ण, शान्तस्वरूप है, वास्तव में वही सच्चिदानन्दघन परमात्मा है। जो महात्मा उस विशुद्ध परमात्मा का अनुभव करके अन्तःस्थ बुद्धि से सदा-सर्वदा स्थित रहता है, वह तत्त्वज्ञानी आत्माराम पुरुष भोगों के द्वारा बन्धन में नहीं पड़ता। जैसे मन्द पवन पर्वत का भेदन नहीं कर सकते, वैसे ही जिस ज्ञानी ने प्रकाशमान परमात्मा का पूर्णरूप से अनुभव कर लिया है, उस तत्त्वज्ञ के अन्तःकरण को काम आदि शत्रु तनिक भी भेदन (विचलित) नहीं कर सकते। जैसे जल से बाहर निकली हुई मछली को बगुले निगल जाते हैं, वैसे ही इस संसार में आशाओं में निरत, मूढ़, अज्ञानी और अविचारी पुरुष को दुःख निगल जाते हैं। श्रीराम ! जैसे अनेक प्रकार के सरोवरों में जल, फेन आदि जल से पृथक् नहीं हैं, वैसे ही दृश्य जगत् ब्रह्म से पृथक नहीं है। केवल कल्पनाओं में ही नानात्व है, वास्तव में नानात्व नहीं है-इस प्रकार विवेकपूर्वक भलीभाँति अर्थ को जान लेने वाला एक निश्चय युक्त ज्ञानी पुरुष विमुक्त कहा जाता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

श्रीराम ! अपने हृदय में ब्रह्मविषयक विचार करने वाले विवेकी वीतराग पुरुष की सर्वदा सम्मुखस्थित सांसारिक भोगों में भी रुचि उत्पन्न ही नहीं होती। अधम नेत्र ! स्त्री, पुत्र आदि के सौन्दर्यस्वरूप रूपात्मक कीचड़ का तुम आस्वादन मत करो। यह रूप क्षण में ही विनष्ट हो जाने वाला है और तुम्हें विनष्ट कर देने वाला है। नेत्र ! जो उत्पत्ति-विनाशशील है और जो केवल देखने मात्र में ही रमणीय प्रतीत होता है, ऐसे मिथ्या रूपसौन्दर्य का तुम उस अवश्यम्भावी मृत्यु के मुख में प्रवेश करने के लिये आश्रय मत लो। जैसे वास्तव में परस्पर एक दूसरे से असम्बद्ध रूप, प्रकाश और मन एक दूसरे से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं। जैसे दो काठ लाह के द्वारा एक दूसरे से संश्लिष्ट हो जाते हैं, वैसे ही ये रूप, आलोक और संकल्प आदि मनन चित्त की कल्पना से एक दूसरे से संश्लिष्ट हो जाते हैं। अपनें चित्त का संकल्प-विकल्पात्मक तन्तु विवेकशील बुद्धि के द्वारा यत्नपूर्वक किये गये विवेक-विचाररूप अभ्यास से विनष्ट हो जाता है। फिर उस तन्तु के नष्ट हो जानेपर स्वभावतः ही अज्ञान-भावना प्रवृत्त नहीं होती। अज्ञान के विनाश से क्षीण हुए मन में फिर ये रूप, आलोक और मनन-कोई भी एक दूसरे से संघटित नहीं होते। चित्त ! तुम मिथ्या ही उछल-कूद मचाते हो। मैंने तुम्हारे उच्छेद के लिये उपाय ढूँढ निकाला है। तुम आदि और अन्त दोनों में नितान्त तुच्छ (क्षणभंगुर) हो, इस लिये वर्तमान काल में भी विनष्ट ही हो। तुम इन्द्रियों से सम्बद्ध शब्द आदि पाँच विषयों के द्वारा अपने भीतर क्यों वृथा उछल रहे हो ? जो मनुष्य तुम्हें अपना मानता है, उसी के सामने तुम उछल-कूद से मुझे तनिक भी प्रसन्नता नहीं होती। तुम रहो चाहे जाओ, तुम न तो मेरे हो और न तुम जीते हो। विचार करने पर अपने मिथ्या स्वभाव से तुम सदा मृतक ही हो। तुम साररहित जड़, भ्रान्त और शठ हो। तुम्हारा आकार अत्यन्त विनाशशील है। अज्ञानस्वरूप तुम्हारे द्वारा अज्ञानी पुरुष को ही बाधा पहुँच सकती है, विचारवान् विवेकी पुरुष को नहीं।

जगत्‌रूपी चित्त-वेताल ! शठरूप तुम पहले ही नहीं थे, वर्तमान काल में भी नहीं हो और आगे भी नहीं रहोगे। इस प्रकार तुम्हारी तीनों कालों में सत्ता नहीं है। बिना हुए ही तुम कायम हो। तुम्हें क्या लज्जा नहीं आती ? चित्तरूपी वेताल ! तृष्णारूपी पिशाचिनियों तथा क्रोध आदि गुह्यकों के साथ तुम मेरे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

शरीररूपी घर से बाहर निकल जाओ। बड़े आश्चर्य की बात है कि महान् जड़ एवं क्षणभंगुर शठ मन ने इस समस्त जनसमूह को विवश कर रक्खा है। अज्ञानी दीन चित्त ! मैं आज तुमको मारता नहीं हूँ; क्योंकि तुम पहले से ही मर चुके हो, यह मैंने जान लिया है। चित्त मरा हुआ है; अतः उसका अस्तित्व ही नहीं है–यह मैंने आज जान लिया। इसलिये मैं चित्त के आश्रय का परित्याग करके केवल अपने आत्मा में ही स्थित हूँ। मन को देहरूपी घर से क्षणभर में निकाल कर मैं इस वेतालरूप मन से रहित हो भीतर से स्वस्थ हुआ स्थित हूँ। भाग्यवश बहुत काल के अनन्तर अब मैंने विचाररूपी तलवार से पीड़ित कर चित्तरूपी वेताल को, जो ताल वृक्ष के सदृश ऊँचाई से युक्त है, हृदय-मन्दिर से हटा दिया है। चित्तरूपी वेताल के शान्त हो जाने और पवित्र पदवी को प्राप्त कर लेने पर अब उत्तम भाग्य से शरीररूपी नगर में केवल मैं सुखपूर्वक स्थित हूँ। विवेक-विचाररूपी मन्त्र से मन, चिन्ता और अहंकाररूपी राक्षस का विनाश हो गया। अब समस्त विषमताओं से रहित मैं केवल अपने स्वरूप में ही स्थित हूँ। एक, कृतकृत्य, नित्य, विशुद्ध स्वरूप तथा निर्विकल्प सच्चिदानन्दघन परमात्मरूप तुमको बार-बार नमस्कार है। विकारशून्य, नित्य, अंशरहित, सर्वस्वरूप तथा सर्वकालात्मक परमात्मस्वरूप मुझको बार-बार नमस्कार है। नाम और रूप से रहित, प्रकाशरूप, स्वयं अपने आप में ही स्थित अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परमात्मस्वरूप मुझको ही बार-बार नमस्कार है। मननरहित,सम, अत्यन्त सुन्दर,समस्त विश्व का अविर्भाव करने वाले, वास्तव में विश्व-रहित, अनन्त स्वरूप, अजन्मा, जरारहित, समस्त गुणों से अतीत तथा अविनाशी विज्ञानानन्दघन परमेश्वर के स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।

रघुनन्दन ! जैसे आकाश में दृष्टि दोष से प्रतीत होने वाला वृक्ष भ्रमवश वृक्षरूप में प्रतीत होता है, वास्तव में वह विशुद्ध आकाशस्वरूप ही है, उससे पृथक् आकाश-वृक्ष नहीं है, वैसे ही चित्त अविद्यमान, जड़ और माया का कार्य करने से निश्चयरूप से असत् ही है, वह परमात्मा से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। जैसे नौका में स्थित अज्ञानी बालक को तटवर्ती वृक्ष और पहाड़ में प्रतीत होने वाली गति केवल भ्रान्ति से ही दिखायी पड़ती है, वैसे ही अज्ञानी मनुष्य को यह चित्त दिखायी पड़ता है। किंतु आत्मज्ञानी तत्त्वज्ञ की दृष्टि में वह असन्मय पूर्वक ही है–है ही नहीं मेरे समस्त संदेह शान्त हो चुके हैं, समस्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma Trust (R.S.) Jammu Collection

चिन्ताज्वरों से रहित होकर मैं स्वानुभाव से ही इच्छाओं से रहित हुआ स्थित हूँ। मेरा चित्त मर गया, तृष्णाएँ हट गयीं और मैं मोह तथा अहंकार से रहित हो गया। इससे मैंने अपने स्वाभाविक-वास्तविक स्वरूप को जान लिया। जगत् शान्त होकर अद्वितीय परब्रह्मरूप ही हो गया और नानात्व वास्तव में है ही नहीं। जीवत्व से तथा आदि और अन्त से रहित पवित्र परमपद को मैं प्राप्त हो गया हूँ। अतः मैं सौम्य, सर्वत्र व्यापक, अतिसूक्ष्म, सनातन परमात्मस्वरूप में स्थित हूँ। श्रीराम ! इस प्रकार की बुद्धि से तत्वज्ञानी पुरुष को खाते, चलते, सोते और स्थित रहते सदा-सर्वदा सर्वत्र प्रतिदिन भली भाँति विचार करना चाहिये। जिनका अन्तःकरण प्रमुदित है, जिनकी शरद्ऋतु के चन्द्रमा की तरह चमकीली मुखकान्ति है और जो प्राप्त हुए शास्त्रानुमोदित व्यवहारों में विहार करते हैं, वे असीम बुद्धिवाले महापुरुष इस संसार में मान और मद से रहित हुए सुखपूर्वक विचरण करते हैं।

उन्चासवाँ सर्ग समाप्त

पचासवाँ सर्ग

वीतहव्य मुनि का इन्द्रिय और मन को बोधित करना

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं-श्रीराम ! मैंने तुम्हें जिस विचार का दिग्दर्शन कराया है, उस विचार को पहले विद्वान् संवर्त (बृहस्पति के छोटे भाई) ने किया था। विन्ध्याचल पर्वत के ऊपर उसी आत्मतत्त्वज्ञ संवर्त ने उक्त विचार को मुझसे कहा था। अब तुम इस दूसरी दृष्टि का, जो परमपद को प्रदान करने वाली है, श्रवण करो। इसी दृष्टि से महामुनि वीतहव्य ने निश्शंक परमपद को प्राप्त किया था। एक समय की बात है, महामुनि वीतहव्य संसाररूपी भ्रम प्रदान करने वाले घोर आधि-व्याधिमय आकारयुक्त सांसारिक क्रियाकलापों से वैराग्ययुक्त होकर विरक्त अवस्था को प्राप्त हो गये और केवल निर्विकल्प समाधि से प्राप्त होने वाले परम उदार परब्रह्म परमात्मा को जानने की इच्छा से ही उक्त महामुनि ने अपने सांसारिक व्यवहारों का त्याग कर दिया। तदनन्तर महामुनि वीतहव्य ने स्वरचित पर्णकुटी में प्रवेश किया। उस पर्णकुटी में अपने द्वारा बिछाये गये सम और शुद्ध आसन पर वे बैठ गये। फिर बाह्य और आभ्यन्तर विषयों का परित्याग करते हुए उन महामुनि ने विशुद्ध मन से क्रमशः इस प्रकार विचार किया-'कितने आश्चर्य की बात है कि यह अत्यन्त चंचल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (IRS) Jammu Collection

मन किसी एक निश्चित विषय में लगाया जाने पर भी क्षणभर भी उसी प्रकार स्थिर नहीं होता, जैसे तरंगों के द्वारा बहाया गया पत्ता स्थिर नहीं होता। मन घट से पट के ऊपर और पट से उत्कट शकट के ऊपर कूद जाता है। यों यह चित्त विषयों पर उसी प्रकार दौड़ता है, जिस प्रकार वृक्षों के ऊपर बंदर दौड़ता है। इन्द्रियगण ! तुम मन के ही अलग-अलग द्वार हो, अतएव निश्चित ही अधम और जड़ हो। मैं तो सच्चिदानन्दघन परमात्मस्वरूप में स्थित हुआ साक्षीरूप से सब कुछ कर रहा हूँ। चक्षुरादि इन्द्रियगण ! आकार से रहित तुम लोग मेरे सामने मिथ्या ही उछल-कूद कर रहे हो। तुम लोग अलातचक्र के सदृश और रज्जु में सर्पभ्रम के सदृश मिथ्यारूप ही हो। जैसे सर्पों से डरा हुआ पथिक उनसे दूर रहता है, वैसे ही दोषरहित चेतन आत्मा इन्द्रियों से सर्वथा दूर रहता है। इन्द्रियगण ! केवल चेतन सत्ता की संनिधि सेही तुम लोगों की परस्पर चेष्टा होती रहती है।

'मूर्ख मन ! 'मैं चेतन हूँ' इस प्रकार की तुम्हारी वासना मिथ्या और निरर्थक है; क्योंकि एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न धर्मवाले चेतन और जड़ मन की एकता नहीं हो सकती। चित्त ! अहंकार के उत्पन्न होने पर 'यह शरीर मैं ही हूँ' इस प्रकार का जो तुम मिथ्या अभिमान करते हो, उसे छोड़ दो। मूर्ख ! तुम कुछ भी नहीं हो; इसलिये क्यों व्यर्थ चंचल हो उठते हो ? ज्ञानस्वरूप चेतन आत्मा अनादि और अनन्त है। उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। इस लिये महामूर्ख ! इस शरीर में चित्त नाम वाले तुम कहाँ से आये ? मूर्ख चित्त ! चक्षु आदि इन्द्रियगणों का आश्रय करके तुम उपहास के पात्र मत बनो। तुम न तो कर्ता हो और न भोक्ता हो, किंतु जड़ हो। तुम अन्य के द्वारा-द्रष्टा-साक्षी आत्मा के द्वारा जाने जाते हो। जो जड़स्वरूप है, उसका अस्तित्व है ही नहीं। अतः उस जड़ में ज्ञातापन, कर्तापन, भोक्तापन नहीं हो सकते। चित्त ! तुम स्वयं ही जड़रूप हो, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। भला, बतलाओ तो सही,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

जड़ में कैसे कर्तापन रह सकता है। क्या यहाँ पत्थर की मूर्तियाँ भी किसी प्रकार नाच सकती हैं ? जिसकी शक्ति से जो किया जाता है, वह उसी के द्वारा किया हुआ होगा। पुरुष की शक्ति से दराँती (हँसुआ) काटती है, पर काटने वाला पुरुष कहलाता है। जिसकी शक्ति से वध किया जाता है, वह उसी के द्वारा हत कहा जायगा। पुरुष की शक्ति से तलवार हनन करती है, पर हनन करने वाला पुरुष ही कहा जाता है। जिसकी शक्ति से जो किया जाता है, वह उसी के द्वारा किया गया कहा जाएगा। पात्र के द्वारा जल आदि पिये जाते हैं; पर जो मनुष्य है, वही पीने वाला कहा जाता है, पात्र नहीं। मेरे प्यारे चित्त! तुम स्वभाव से ही जड़ हो, पर उसी सर्वज्ञ साक्षी के द्वारा बोधित होते हो; क्योंकि जीवात्मा ही अपने को अपने से भोक्ता, भोग्य, करण, उपकरण आदि जगत् के रूप में स्वप्न की तरह रचता है। इससे तुम तत्वरहित हो, तुम मूढ़ हो और वास्तव में तुम्हारा कोई अस्तित्व ही नहीं है। इसलिये तुम्हें 'मैं तत्स्वरूप ही हूँ' ऐसा दुःखदायी मिथ्याभाव नहीं करना चाहिये। वास्तव में बाजीगर की रची हुई ऐन्द्रजालिक लता के समान चित्त की कल्पना मिथ्या है तथा इस ब्रह्माण्ड में एक विज्ञानानन्दघन ब्रह्म का स्वरूप ही सर्वत्र विराजमान है।

'अज्ञानी चित्त ! वह परमपद सर्वत्र व्यापक, सारे पदार्थों में स्थित और सबका स्वरूप है। उसकी प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य को सदा-सर्वदा सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। चित्त ! उस समय न तो तुम रहते हो और न देह ही पृथक् रहता है; किंतु एक महान् प्रकाशस्वरूप, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही अपने आप में स्थित रहता है। स्वभाव से ही प्रकाशस्वरूप, सर्वत्र व्यापक, अद्वितीय चेतन परमात्मा ने ही इस समस्त ब्रह्माण्ड को परिपूर्ण कर रक्खा है। इसलिये उसके सिवा दूसरी कोई कल्पना ही नहीं हो सकती। वही एक और अनेक-सबका प्रकाशक है, समसतरूप है। उसी परमात्मा ने अपने आप में संकल्प से इस जगत् की रचना की है। ऐसी स्थिति में कौन किसकी कैसे इच्छा करेगा ? किंतु चित्त ! तुम्हारे-जैसे मूर्खों की दृष्टि से ही इस जगत् में व्यर्थ चंचलता उत्पन्न होती है, जिस प्रकार राजा की स्त्री को देखकर मूर्ख युवापुरुष को मदमयी चंचलता उत्पन्न होती है। परन्तु कल्पना और मन से रहित आत्मा में कर्तृत्व कैसा। क्या कहीं आकाश में पुष्प किसी तरह उत्पन्न हो सकता है ? जैसे आकाश में हाथ, पैर आदि अंग हो ही नहीं सकते, वैसे ही आत्मा में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma N.F. Collection, Jammu. Digitized by eGangotri

कर्तृत्व हो ही नहीं सकता; जैसे समुद्र में तप्त अंगार नहीं रह सकता, वैसे ही परमात्मा में दूसरी कोई कल्पना रह ही नहीं सकती। इस प्रकार जब परमात्मदेव में कल्पना का अभाव है तथा मन एवं देह जड़ हैं, तब विवेकदृष्टि से 'यह अन्य है, यह अन्य नहीं है; यह शुभ है, यह अशुभ है' इत्यादि असत् कल्पनाएँ नहीं रह सकतीं। ऐसी स्थिति में सुन्दर चित्त ! विषय से रहित चेतन परमात्मा ही सारभूत वस्तु है, दूसरी नहीं। चित्त ! जैसे आकाश में वन नहीं है, वैसे ही पूर्वोक्त असत् कल्पनाएँ आत्मा में हैं ही नहीं। दृश्य से रहित केवल चेतन ही इस जगत् के रूप में विस्तृत हुआ है। इसलिये उसमें 'यह मैं हूँ, यह अन्य है' इस प्रकार की असत् कल्पनाएँ हो ही कैसे सकती हैं। अनादि, रूपरहित, सर्वगामी और व्यापक परमात्मा में कल्पनाओं का कौन कैसे आरोप कर सकता है। क्या कोई आकाश में ऋग्वेद आदि को लिख सकता है ?'

पचासवाँ सर्ग समाप्त

इक्यावनवाँ सर्ग

समस्त गुणों की और परमात्मा की प्राप्ति का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! मुनियों में श्रेष्ठ धीर वीतहव्य मुनि ने विशुद्ध धारणा से युक्त बुद्धि से एकान्त में स्थित होकर पुनः अपनी इन्द्रियों को भली भाँति इस प्रकार समझाया-'इन्द्रियगण ! मेरे पूर्व में किये गये आत्मतत्त्व के उपदेश से तुम लोगों की यह मिथ्याभूत सत्ता नष्ट ही हो गयी, ऐसा मैं मानता हूँ; क्योंकि तुम अज्ञान से उत्पन्न हुए हो। चित्त ! तुम देखो कि तुम्हारे कायम रहने से अज्ञानी मूर्खों के राग-द्वेष आदि तरंगों से युक्त संसाररूपी नदियों का समूह कालरूपी विशाल समुद्र में प्रविष्ट हो रहा है। देखो ! एक दूसरों के अहंकार से होने वाले एक दूसरों के वध, पराजय, उत्पीड़न आदि की चिन्ताओं से युक्त दुःख की पंक्तियाँ कहीं से उसी प्रकार गिर रही हैं, जिस प्रकार वृष्टि की धाराएँ गिर रही हों। अपने विलासों से शब्द करता हुआ लोभरूपी पक्षी राग-द्वेषरूप अपने तीक्ष्ण ठोरद्वारा इस जीर्ण शरीररूपी वृक्ष के शम, दम आदि गुण समूहरूपी फल-पुष्पों को कतर रहा है। अपवित्र, दुष्ट आचरण करने वाला कामरूपी कर्कश मुर्गा हृदय के राग-द्वेष आदि दोषरूप कूड़े के ढेर को इधर-उधर बिखेर देता है। मोहरूपी महारात्रि में अज्ञानरूपी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Charitable Trust Jammu Collection

उलूक हृदयरूपी वृक्ष के ऊपर श्मशान में वेताल की भाँति चारों ओर से प्रलाप कर रहा है। इन्द्रियगण ! आप लोगों के विद्यमान रहने पर ये और इनसे दूसरी भी बहुत-सी इच्छा, कामना, वासना, स्पृहा आदि अशुभ श्रियाँ रात्रि में पिशाचिनियों की तरह उछल-कूद मचाती रहती हैं। चित्त ! तुम्हारे विनाश होने पर समता, शान्ति, सरलता, क्षमा, दया आदि सम्पूर्ण शुभ श्रियाँ ज्ञानरूपी प्रकाश से युक्त हो उसी प्रकार पूर्णरूप से प्रफुल्लित हो उठती हैं, जिस प्रकार प्रातःकाल में कमलिनियाँ। अब मोहरूपी तुषार से रहित, रजोगुणरूप रेणु से शून्य, निर्मल ज्ञान के प्रकाश से युक्त हृदयाकाशरूप सच्चिदानन्दघन ब्रह्म शोभित हो रहा है। आकाशमण्डल से गिरने वाली और वायु आदि से आकुलित वृष्टिधाराओं की तरह दुःखदायी विकल्प-समूह अब नहीं गिरते। सबको आल्हादित करने वाली, शान्त, परम पवित्र मित्रता हृदय में उत्पन्न हो रही है।

'अज्ञान का विनाश होने पर हृदय में ज्ञान का प्रकाश उसी प्रकार प्रकट हो रहा है, जिस प्रकार शरत्काल में मेघों के शान्त हो जाने पर निर्मल आकाश में सूर्यमण्डल प्रकट होता है। वायु के शान्त होने पर समुद्र जैसे सम हो जाता है, वैसे ही प्रसन्न, विशाल, गम्भीरता से युक्त, क्षोभशून्य तथा राग-द्वेष आदि दोषों से रहित वश में किया हुआ मन सम हो जाता है। परमात्मा की प्राप्तिरूप अमृत-प्रवाह से पूर्ण तथा अविनाशी आनन्द से सम्पन्न पुरुष शान्ति युक्त रहता है। केवल सच्चिदानन्द परमात्मा में विश्राम हो जाने पर परमात्मा के स्वरूप का पूर्णरूप से अनुभव हो जाता है। चित्त ! तुम्हारा स्वरूप अविचार के कारण ही कायम है। विवेकपूर्वक विचार करने पर तुम कायम नहीं रहते किंतु केवल एक समस्वरूप परमात्मा ही भली-भाँति समभाव से स्थित रह जाता है। विचार न करने पर तुम उसी प्रकार उत्पन्न होते हो, जिस प्रकार प्रकाश के न रहने पर अन्धकार। चित्त ! विचार से तुम्हारा स्वरूप उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जिस प्रकार प्रकाश से अन्धकार। क्योंकि जिसकी अविवेक से उत्पत्ति होती है, उसका विवेक से विनाश हो जाता है-जैसे प्रकाश से अन्धकार का विनाश होता है और प्रकाश का अभाव होने पर अन्धकार हो जाता है। तुम्हारी इच्छा न रहने पर भी विचार के दृढ़ होने पर सुख की सिद्धि के लिये तुम्हारा चारों ओर से यह विनाश प्राप्त हुआ है। (अब वीतहव्य मुनि अपनी स्थिति का वर्णन करते हैं) सौभाग्यवश मैं समस्त चिन्ता-ज्वरों से मुक्त हो गया हूँ, शान्त हो गया

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LF S) Jammu Collection

हूँ और चारों ओर से तृप्त हो गया हूँ। मैं तुरीयपदरूप परमात्मस्वरूप अपनी आत्मा में स्थित हो गया हूँ इसलिये यह निश्चय हुआ कि इस संसार में जिसकी स्थिति विवेकपूर्वक विचार करने पर कायम हो ही नहीं सकती, वह चित्त है ही नहीं, है ही नहीं। किंतु परमात्मा तो अवश्य ही है, अवश्य ही है। परमात्मा को छोड़कर और कुछ भी उससे भिन्न है ही नहीं सब प्रकार के मलों से रहित आत्मा के अंदर 'यह आत्मा है' इस प्रकार की कल्पना ही नहीं हो सकती, यह मैं मानता हूँ; क्योंकि एक अद्वितीय आत्मा में इंद्ररूप से अन्य वस्तु की सत्ता से होने वाली कल्पना कैसे हो सकती है। इसी कारण 'मैं यह आत्मा हूँ' इस प्रकार कल्पना न करता हुआ मैं मौनी होकर उसी प्रकार अपने विज्ञानानन्दघन परमात्मस्वरूप में स्थित हूँ, जिस प्रकार जल में तरंग। अतः उस वासनाशून्य, जीव के आश्रय से रहित, प्राण-संचार से रहित, भेदभाव से शून्य, दृश्य से रहित, ज्ञानस्वरूप, मन और वाणी की चेष्टा से शून्य विज्ञानानन्दघन परमात्मा को प्राप्त करके मैं परम शान्त हूँ।'

इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त

बावनवाँ सर्ग

वीतहव्य महामुनि

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! इस प्रकार निर्णय करके वे मुनिवर वीतहव्य समस्त वासनाओं को छोड़कर विन्ध्य पर्वत की गुफा में समाधि लगाकर उसमें अचल स्थित हो गये। उस समय महामुनि वीतहव्य सब प्रकार के शून्य परिपूर्ण चेतन विज्ञान आनन्द से युक्त होने के कारण अत्यन्त सुशोभित हुए। उनका मन अत्यन्त विलीन हो गया था; अतएव वे ऐसे भले लगते थे, जैसे प्रशान्त समुद्र भला लगता है। जिस प्रकार ईंधन के जल जाने पर अग्नि में ज्वालाओं का संचरण शान्त हो जाता है, वैसे ही उन महामुनि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mooken Sharma (I.F.S) Jammu Collection

का प्राणसंचार क्रमशः भीतर हृदय में ही शान्त हो गया। समाधि में स्थित महामुनि वीतहव्य के दोनों नेत्र ऐसे दिखायी पड़ते थे, जैसे उनकी वृत्ति नासिका के अग्रभाग में दोनों ओर बराबर फैली हुई हो। महाबुद्धि वीतहव्य ने अपने आसन-बन्धन में शरीर, सिर और ग्रीवा को समानरूप से रक्खा था; इसलिये वे ऐसे जान पड़ते थे, जैसे पत्थर पर खोदी गयी या चित्र में लिखी गयी मूर्ति हो। श्रीराम ! विन्ध्याद्रि के किसी झरने के निकट गुफा में इस प्रकार की समाधि में स्थित महामुनि वीतहव्य के तीन सौ वर्ष आधे मुहूर्त की तरह व्यतीत हो गये। परमात्मा में स्थित ध्यान-निमग्न उन मुनि ने जीवन्मुक्तता के कारण इतने काल को कुछ भी नहीं समझा और अपने उस शरीर का त्याग भी नहीं किया। योग के रहस्य को जानने वाले परम भाग्यशाली वे मुनि महान् मेघों के चारों ओर फैलने वाले शब्दों से, बरसती हुई वृष्टि की धाराओं के गिरने से उत्पन्न घर-घर शब्दों से, सिंहों के क्रोधपूर्वक गर्जनों से, झरनों की दिग्व्यापी घर्घराहट से, भयंकर वज्रपातों से, मनुष्यों के घने कोलाहलों से, भूकम्प के द्वारा छिन्न-भिन्न हुए पर्वत-तटों की हलचलों से तथा अग्नि की तरह कर्कश ग्रीष्म आदि के तापों से भी उतने समय तक समाधि से जागे नहीं। थोड़े ही समय में उस पर्वत की गुफा में वर्षा के कीचड़ से ढके हुए महामुनि वीतहव्य पृथ्वी में निमग्न से प्रतीत होते थे। उस गुफा की भूमि में ये मुनि कीचड़ से लथपथ होकर उसी प्रकार रहते थे, जिस प्रकार पर्वत के अंदर शिला। तदनन्तर तीन सौ वर्ष बीत जाने पर पृथ्वी की गुफा में दबे हुए वे निग्रहानुग्रह समर्थ तथा परमात्मा को प्राप्त महामुनि स्वयं ही समाधि से जाग गये। राघव ! तत्पश्चात् महामुनि वीतहव्य ने सम्पूर्ण भूतों में आत्मभाव होने के कारण अनेक लोकों का ब्रह्मरूप से अनुभव किया और वर्तमान समय में कर भी रहे हैं। श्रीराम ! आपका भी यह जगत् मनोमय, भ्रमतुल्य एवं परमार्थ-दशा में जिस प्रकार सच्चिदानन्दस्वरूप है, उसी प्रकार महामुनि वीतहव्यका भी वह जगत् मनोमय, भ्रमतुल्य एवं परमार्थ-दशा में सच्चिदानन्दस्वरूप है। जब तक इस प्रकार जगत् को तत्त्वज्ञान द्वारा सच्चिदानन्दरूप नहीं जाना जाता, तब तक वह हृदय में वज्रसार की तरह अत्यन्त दृढ़ रहता है। किंतु यथार्थरूप से जान लिये जाने पर वह सच्चिदानन्दनस्वरूप हो जाता है।

श्रीराम ! दिन की समाप्ति के बाद मुनि ने फिर भी मन की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma N.L.S. Jammu Collection

एकाग्रतारूप समाधि के लिए उसी पूर्व-परिचित विन्ध्याद्रि की गुफा में प्रवेश करके विचार किया-'शरीर, सिर और ग्रीवा को समानरूप से रखकर दृढ़ासन होकर मैं पर्वत के शिखर की तरह अचल बैठता हूँ। मन से परे, चारों ओर स्थित, परिपूर्ण समान सत्ता और परम समतारूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा में विकार रहित हुआ स्थाणु की तरह मैं नित्य स्थित हूँ।' इस प्रकार चिन्तन करते हुए वे परमात्मा के ध्यान में छः दिन तक फिर रहे। तदनन्तर उसी प्रकार समाधि से जाग गये, जिस प्रकार सोया हुआ पथिक जग जाता है। इसके बाद उन सिद्ध, महान् तपस्वी महात्मा वीतहव्य ने जीवन्मुक्त अवस्था में स्थित हुए ही चिरकाल तक यत्र-तत्र विचरण किया। ये महामुनि वीतहव्य न तो किसी वस्तु की स्तुति करते थे और न कभी किसी की निन्दा ही करते थे। वे प्रतिकूल की प्राप्ति में कभी उद्विग्न नहीं होते थे तथा अनुकूल की प्राप्ति में हर्षित नहीं होते थे।

(अब वीतहव्य मुनि अपनी इन्द्रियों के प्रति कहते हैं)'इन्द्रियगण ! अब तुम लोग विनाश को ही प्राप्त हो जाओ। तुम्हारी सारी अभिलाषाएँ निष्फल हो गयी हैं। अब आश्रयरहित तुम लोग मुझ पर आक्रमण करने में समर्थ नहीं हो। अब विस्मरण करने योग्य इस जड़दृश्य संसार की विस्मृति हो गयी है और स्मरण करने योग्य परमात्मा की स्पष्टरूप से स्मृति हो गयी है। जो सत्‌रूप परमात्मा था, वह सत् ही रहा तथा जो जड़ दृश्य वर्ग असत् था, वह असत् ही रहा।'

श्रीराम ! इस प्रकार के विचार से युक्त हो वे महान् तपस्वी मुनिश्रेष्ठ महात्मा वीतहव्य अनेक वर्षों तक इस लोक में स्थित रहे। जिसके प्राप्त होने पर पुनर्जन्म के लिये चिन्ता विनष्ट हो जाती है और मूढ़ता दूर भाग जाती है, उस विज्ञानानन्दघन परमात्मा में मुनि निरन्तर स्थित थे। त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति हो जाने पर भी त्याग और ग्रहण की बुद्धि का विनाश हो जाने के कारण महामुनि वीतहव्य का अन्तःकरण इच्छा और अनिच्छा से रहित हो गया था।

(तत्पश्चात् वे फिर अपने मन-ही-मन विचार करने लगे-)'दुःख ! तुम्हारे द्वारा संतप्त हुए मैंने अत्यन्त आदर से आत्मा का अनुभव किया है; मुझको तुमने ही सचेत कराकर इस मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है। अतः तुम्हें

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मेरा प्रणाम है। आश्चर्य है कि प्राणियों के स्वार्थों की अत्यन्त विलक्षण गति है, जो आज मैं भी सैकड़ों जन्म तक साथी रहकर अपने प्यारे मित्र इस शरीर से अलग हो रहा हूँ। मातृरूप तृष्णे ! अब हम दोनों का संयोग के कारण ही सदा के लिये वियोग हो रहा है। इसलिये तुम्हें प्रणाम है। सुकृत(पुण्य)-देव ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आपने ही पहले मेरा नरकों से उद्धार करके मुझे स्वर्ग में भेजा था। जिसके सम्बन्ध से मैंने दीर्घकाल तक नाना योनियों का उपभोग किया, उस अज्ञान को मैं प्रणाम करता हूँ। सखी गुहातपस्विनि ! संसाररूपी महामार्ग में खिन्न हुए मेरे लिये तुम ही अकेली आश्वासन देने में समर्थ, अत्यन्त स्नेह से युक्त और समस्त लोकों का नाश करने वाली सखी हुई। इसलिये समाधि में स्त्री के सदृश व्यवहार करने वाली उस गुहारूपी तपस्विनीको भी मैं प्रणाम करता हूँ। संकट, गड्ढे और कुंजों में हाथ को अवलम्बन देने वाले, वृद्धावस्था के एकमात्र मित्र दण्ड ! तुम्हें मैं प्रणाम करता हूँ। प्रिय प्राण समुदाय! तुम सब प्रकृति में विलीन हो जाओ और मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म में विलीन होता हूँ; क्योंकि जितने भी भोगसमूह हैं, वे अन्त में नाशवान् हैं। जो आज उन्नत हैं, उनका अन्त में पतन निश्चित है एवं संसार में जितने संयोग हैं, उनका भी अन्त में वियोग निश्चित है।'

(अब प्रत्येक इन्द्रिय आदि के द्वारा प्राप्त करने योग्य प्रवृति का विभाग पूर्वक वर्णन करते हैं-)'चक्षु-इन्द्रिय आदित्य-मण्डल में प्रवेश करे, घ्राणेन्द्रिय पृथ्वी में प्रविष्ट हो जाय, प्राणवायु वायुतत्व में प्रविष्ट हो जाय, श्रोत्रेन्द्रिय आकाश में प्रविष्ट हो जाय और रसनेन्द्रिय जल में प्रविष्ट हो जाय। मैं ओंकार की अन्तिम अर्धमात्रा से लक्षित परब्रह्मस्वरूप परमात्मा में अपने-आप ही अन्तःकरण से रहित हो शान्त हो रहा हूँ। अतः मैं सम्पूर्ण कार्यों की परम्परा से रहित, समस्त दृश्यों की अवस्थाओं से अतीत, उच्चारण किये हुए प्रणव की ब्रह्मरन्ध्र में विश्रान्ति का अनुसरण करके ब्रह्माकारता की प्राप्ति से उपरत-बुद्धि तथा अविद्यारूपी मल से रहित हुआ स्थित हूँ।'

बावनवाँ सर्ग समाप्त

तिरपनवाँ सर्ग

महामुनि वीतहव्य की परमात्म प्राप्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! इस प्रकार धीरे-धीरे प्रणव का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उच्चारण करते हुए महामुनि वीतहव्य संकल्प और इच्छाओं से रहित होकर अन्तिम भूमिका को प्राप्तकर अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा से युक्त पादों के भेद ॐकार का स्मरण करते हुए ब्रह्मके स्वरूप में संसार का जो अध्यारोप है, उसका बाध करके अर्थात् केवल ब्रह्म के सिवा अन्य कुछ नहीं है–इस प्रकार निश्चय करके अविनाशी विशुद्ध परमात्मा के स्वरूप का चिन्तन करते थे। कल्पित बाह्य और आभ्यन्तर स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर सम्पूर्ण त्रिलोकी के पदार्थों का भी परित्याग करके वे क्षोभशून्य आकार वाले महामुनि वीतहव्य नित्य आत्मस्वरूप में ही स्थित थे। वे पूर्णचन्द्र की तरह परिपूर्ण थे तथा मन्दराचल की तरह स्थिर थे। तदनन्तर 'नेति नेति' इत्यादि श्रुतियों से बोधित जो अद्वैत तत्त्व है और जो वाणी का भी अगोचर है, उस तत्व को ये मुनि प्राप्त हो गये। इसके अनन्तर ये मुनि समस्त पदार्थों में व्यापक, समस्त पदार्थों से रहित, निरतिशय समता से पूर्ण, चिन्मय, अतिशय पवित्र परमपद स्वरूप हो गये। जो ब्रह्मज्ञानियों का ब्रह्मरूप, विज्ञानवादियों का विज्ञानरूप एवं कपिलमुनि–निर्मित सांख्यशास्त्र में प्रतिपादित पुरुषरूप, पतंजलि–निर्मित योगशास्त्र में प्रतिपादित क्लेश आदि से रहित पुरुष विशेषात्मक ईश्वररूप, आत्मा के स्वरूप को भलीप्रकार जानने वाले आत्मवादियों के मत में आत्मतत्व रूप, समस्त शास्त्र का सिद्धान्तभूत, सबके हृदय में अनुगत, सर्वात्मक, सर्वस्वरूप जो निर्मल श्रेष्ठ पद है, तत्स्वरूप होकर ये मुनि अवस्थित थे। जो तत्त्व वास्तव में अद्वितीय होने के कारण एक और माया के सम्बन्ध से अनेक भी है, जो माया से युक्त होने के कारण सगुण और वास्तव में माया से अतीत–निर्गुण है, तत्स्वरूप होकर ये मुनि स्थित थे।

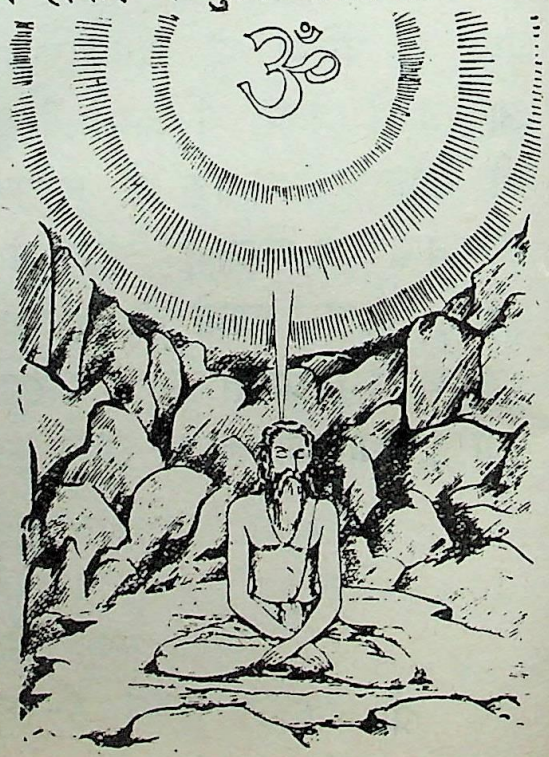

श्रीराम इस प्रकार महामुनि वीतहव्य के परम शान्त हो परम निर्वाणपद को प्राप्त हो जाने पर उनका क्रियाशून्य वह देह उसी प्रकार कुम्हला गया, जिस प्रकार हेमन्त ऋतु में कमल रस–रहित हो कुम्हला जाता है। उस देह के सम्पूर्ण स्थूल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भूत तन्मात्रा स्वरूप सूक्ष्म महाभूतों में ही लीन हो गये तथा मांस, अस्थि और आँतरूपी देह वन की भूमि में मिल गया जैसे घड़े के फूटने पर घटाकाश महाकाश में मिल जाता है, वैसे ही व्यष्टि-चेतन में जा मिला। उस शरीर के तन्मात्रारूप सूक्ष्म भूत अपने अपने उपादान कारण मूल-प्रकृति में लीन हो गये। इस प्रकार उन महामुनि के शान्त हो जाने पर सभी पदार्थ अपने-अपने उपादान-कारण में ही लीन हो गये। श्रीराम ! महामुनि वीतहव्य की यह सैकड़ों विचारों से युक्त मोक्ष-कथा तुमने मैंने कही है। अब तुम अपनी प्रज्ञा से इसका विवेचन करो। जिस तत्त्व का मैंने तुमसे वर्णन किया है, जिसका वर्णन कर रहा हूँ और जिसका वर्णन करूँगा, त्रिकाल को प्रत्यक्षरूप से देखने वाले तथा चिरकाल तक जीने वाले मैंने उसके विषय में विचार किया है और पूर्णरूप से उसको स्वंय देखा भी है। ज्ञान से ही मनुष्य दुःख के अभाव को प्राप्त होता है, ज्ञान से अज्ञान का विनाश हो जाता है, ज्ञान से ही परमात्मा की प्राप्तिरूप परम सिद्धि मिलती है, ज्ञान के बिना नहीं मिलती। इसलिये मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। जिन्होंने परम प्रयोजनरूप परमात्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जिनके राग आदि दोष विनष्ट हो चुके थे, जो समस्त पापों से, अहंता-ममता आदि विकारों से, अविद्या से तथा आसक्ति एवं शोक से रहित थे, वे ज्ञानी वीतहव्य मुनि, जिसका बहुत काल तक अभ्यास किया गया था, उस अपने निर्मल असीम सच्चिदानन्दघनस्वरूप परम पद को प्राप्त हुए।

तिरपनवाँ सर्ग समाप्त

चौवनवाँ सर्ग

ज्ञानी महात्माओं के लिये सिद्धियों की अनावश्यकता का कथन

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं-श्रीराम ! जैसे सिंह मयूरों के वश में नहीं होते, वैसे तुम्हारे-जैसे कोई भी महापुरुष हर्ष, अमर्ष आदि विकारों के वश में नहीं होते।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! जीवन्मुक्त शरीर वाले महात्माओं की आकाश-गमन आदि शक्तियाँ यहाँ क्यों नहीं दिखलायी पड़तीं ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! जो चित्र-विचित्र आकाश-गमन आदि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

क्रिया–कलाप दिखायी पड़ता है, वह प्राणियों और पदार्थों का स्वभाव है। इसलिये वह आत्मतत्वज्ञों के लिये वाञ्छनीय नहीं है। आत्मज्ञान से शून्य अमुक्त जीव मणि, औषध आदि द्रव्यों की शक्ति से, पूर्वकृत कर्म की जन्मजात शक्ति से, योगाभ्यास आदि क्रियाओं की शक्ति से और काल की शक्ति से आकाश गमन आदि सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है। इन आकाश–गमन आदि सिद्धियों का होना आत्मज्ञ पुरुष के लिये गौरव का विषय नहीं है; क्योंकि आत्मज्ञानी स्वयं आत्मा को प्राप्त कर चुका होता है, इसलिये वह अपने आत्मा में ही तृप्त रहता है, अविद्या के कार्य की ओर नहीं दौड़ता। संसार में जो कोई भी पदार्थ हैं, उन सबको आत्मज्ञ अविद्यामय ही मानते हैं। इसलिये अविद्या से रहित तत्वज्ञ उनमें कैसे फँस सकता है ? जो योगाभ्यास आदि साधनों से अविद्यारूप आकाश–गमन आदि सिद्धियों को भी सुख का साधन बना लेते हैं, वे आत्मतत्वज्ञ हैं ही नहीं; क्योंकि आकाश–गमन आदि सिद्धियाँ अविद्यामय ही हैं। तत्वज्ञ हो चाहे अतत्वज्ञ हो, जो कोई भी दीर्घकाल तक प्रयत्नपूर्वक द्रव्य–कर्मों से शास्त्रोक्त उपाय का अनुष्ठान करता है, वह आकाश–गमन आदि सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। यहाँ धन आदि की अभिलाषाओं से रहित और परमात्मा को यथार्थरूप से जानने वाला तथा प्रकृति से ऊपर उठा हुआ पुरुष अपने परमात्मस्वरूप में ही नित्य संतुष्ट रहता है। इसीलिये वह न कुछ चाहता है और कुछ करता है। आत्मज्ञ पुरुष को न तो आकाश–गमन से, न अणिमादि सिद्धियों से, न तुच्छ भोगों से न निग्रहानुग्रह–सामर्थ्य से, न मान–बड़ायी–प्रतिष्ठा से और न आशा, मरण तथा जीवन से ही कोई प्रयोजन है।

परमात्मा के स्वरूप में ही सदा संतुष्ट, परम शान्तिस्वरूप, राग और वासना से रहित तथा आकाश के सदृश निर्मल आकार वाला तत्वज्ञानी महापुरुष अपने परमात्मस्वरूप में ही स्थित रहता है। अपने जीवन और मरण की आसक्ति से रहित तत्वज्ञानी पुरुष अकस्मात् प्राप्त हुए सुख और दुःख से विचलित नहीं होता। उस महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न करने से ही; तथा सम्पूर्ण प्राणियों में भी इसका किंचिन्मात्र भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता। जो आत्मज्ञान से शून्य है, वह भी आकाश–गमन आदि सिद्धि समूह को चाहता है और वह सिद्धियों के साधक द्रव्यों से क्रमशः उन्हें प्राप्त भी करता है। श्रीराम ! मणि, औषध आदि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

द्रव्य, काल, योगाभ्यास आदि क्रिया और मन्त्र प्रयोगों में उक्त प्रकार की शक्तियाँ, जो आकाश-गमन आदि शब्दों से कही जाती हैं, स्वाभावतः सिद्ध हैं। जैसे विषघ्न मणि, मन्त्र, द्रव्य आदि की शक्तियाँ विषय का विनाश कर देती हैं, जैसे मदिरा उन्मत्त कर देती है, जैसे मधु आदि वस्तुएँ वमन करा देती हैं, वैसे ही युक्ति द्वारा प्रयुक्त मणि, औषध आदि द्रव्य, काल, योग की क्रिया आदि उपाय स्वभाव से ही सिद्धियों को अवश्य उत्पन्न करते हैं। परंतु द्रव्य-काल-क्रिया-क्रमस्वरूप मायिक पदार्थों से अतीत तथा अज्ञानरहित आत्मज्ञान में आकाश-गमन आदि सिद्धियाँ हेतु अथवा विरोधी नहीं हैं; क्योंकि परमात्मा के पद की प्राप्ति में कोई भी द्रव्य, देश, क्रिया, काल आदि युक्तियाँ उपकारक नहीं हैं। किसी पुरुष को आकाशगमन आदि की इच्छा होती है तो वह उसकी सिद्धि का साधन पूर्णरूप से करता है। किंतु आत्मज्ञानी पूर्ण है। अतः उसमें कहीं इच्छा की सम्भावना नहीं है। निष्पाप श्रीराम ! परमात्मा की प्राप्ति सारी इच्छाओं की शान्ति होने पर ही होती है; आत्मज्ञानी को आत्मलाभ की विरोधिनी इच्छा कैसे और किससे हो सकती है। किंतु चाहे विवेकी हो चाहे अविवेकी, जिसकी जिस प्रकार इच्छा उत्पन्न होती है, वह उस प्रकार से उसी इच्छा से यत्न करता है और समय आने पर वह उस सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। परमात्मा ज्ञान की इच्छा वाले वीतहव्य ने सिद्धियों की इच्छा से किसी प्रकार का यत्न नहीं किया था; बल्कि परमार्थ-ज्ञान की इच्छा से ही उसने तेजी के साथ यत्न किया था। जिस प्रकार इसने वन में यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिये उद्योग किया था, यह मैं तुमसे पहले कह चुका हूँ। इस प्रकार काल, क्रिया, कर्म, द्रव्य, युक्ति और स्वभाव से उत्पन्न होने वाली क्रम प्राप्त सिद्धियाँ अपनी इच्छा के ही अनुसार सिद्ध हो जाती हैं। श्रीराम ! जो-जो आकाशगमन आदि सिद्धि-नामक फलों के समूह जिस पुरुष के द्वारा प्राप्त किये गये देखे जाते हैं, वे उस पुरुष के अपने प्रयत्नरूपी वृक्ष के ही फल हैं। किंतु जिनका अन्तःकरण पवित्र है, जो परमात्मा को यथार्थरूप से जानते हैं, जो परमात्मा के स्वरूप में नित्य तृप्त हैं तथा जो अपने अभिलाषित परमात्मा को प्राप्त कर चुके हैं, उन महात्माओं का सिद्धियाँ कुछ भी उपकार नहीं करतीं।

चौवनवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma Jk Sd Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

पचमनवाँ सर्ग

जीवन्मुक्त और विदेह-मुक्त पुरुषों के चित्तनाश का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जब जीवन्मुक्त वीतहव्य का चित्त विवेकपूर्वक विचार के द्वारा अस्तप्राय हो गया यानी भूने हुए बीज की तरह अंकुर शक्ति से रहित हो गया, तब उसमें मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा आदि गुणों का आर्विभाव हो गया। श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-प्रभो ! आत्मा और अनात्मा के विचार के अभ्युदय से अदृश्य हुए महामुनि वीतहव्य के अन्तःकरण में मैत्री आदि गुण उत्पन्न हुए, आपके इस कथन का अभिप्राय है ? वक्ताओं में श्रेष्ठ महामुने ! जब चित्त ब्रह्म में लीन हो गया, तब मैत्री आदि गुण किसके और किसमें उत्पन्न होंगे-यह आप मुझसे कहिये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! चित्त का विनाश दो प्रकार का होता है-एक सरूप विनाश और दूसरा अरूप विनाश। पहला सरूप विनाश तो जीवन्मुक्त होने से हो जाता है और दूसरा अरूप विनाश विदेह-मुक्त होने पर होता है। इस संसार में चित्त का अस्तित्व दुःख का कारण है और चित्त का विनाश सुख का कारण है। अतः पहले चित्त के अस्तित्व का भूने हुए बीज के समान विनाश करके तदनन्तर चित्त के स्वरूप का भी विनाश कर देना चाहिये। अज्ञान से उत्पन्न हुई वासनाओं से व्याप्त जो जन्म का कारण मन है, उसी को अज्ञानियों का विद्यमान मन समझो। वह विद्यमान मन केवल दुःख का ही कारण होता है। इसलिये जब तक मन का अस्तित्व है, तब तक दुःख का विनाश कैसे हो सकता है। मन जब अस्त हो जाता है, तब प्राणी का यह संकल्पमय संसार भी अस्त हो जाता है। इस अज्ञानी जीव में ही वासनारूपी अंकुरों से दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित हुए इस विद्यमान मन को ही दुःखरूपी वृक्ष का मूल जानो। ये दुःखरूपी वृक्ष समूह के अंकुर उन्हीं अज्ञानियों के मन में उत्पन्न होते हैं।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! किस महात्मा का मन विनष्ट हो गया ? विनाश को प्राप्त हुए मन का स्वरूप किस प्रकार का होता है ? चित्त का नाश किस प्रकार होता है और नाश का स्वरूप कैसा है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-प्रश्नवेत्ताओं में श्रेष्ठ रघुकुलनायक श्रीराम ! मैंने पहले चित्त की सत्ता का स्वरूप तो बता दिया है। अब तुम इसके विनाश का स्वरूप सुनो। जैसे निःश्वासवायु पर्वतराज को अपने स्वरूप से विचलित नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करते, वैसे ही सुख-दुःखरूप दशाएँ जिस धीर पुरुष को सम-स्वभाव तथा पूर्णानन्दैकरस परमात्मनिष्ठा से विचलित नहीं करती, श्रेष्ठ पुरुष उस महात्मा के चित्त को भूने हुए बीज के समान नष्ट हुआ चित्त कहते हैं 'यह जड़ देह ही मैं हूँ', इस प्रकार की तुच्छ भावना जिस श्रेष्ठ पुरुष को भीतर से विकारयुक्त नहीं करती, विद्वान लोग उस पुरुष के चित्त को नष्ट कहते हैं। जिस नररत्न के अंदर विपत्ति, कायरता, उत्साह (हर्ष), मद, बुद्धि की मन्दता और विवाहादि लौकिक महोत्सव विकार पैदा नहीं करते, विद्वान् लोग उसके चित्त को नष्टचित्त कहते हैं। इस लोक में यही चित्त का विनाश है और इसी को भूने हुए बीज के समान विनष्ट चित्त भी कहते हैं। यही जीवन्मुक्त महापुरुष की चित्तनाश-दशा है। निष्पाप श्रीराम ! जीवन्मुक्त पुरुष का मन मैत्री आदि शुभ गुणों से सम्पन्न, उत्तम वासनाओं से युक्त तथा पुनर्जन्म से शून्य होता है। ब्रह्म की वासना से युक्त तथा पुनर्जन्म से शून्य होता है। ब्रह्म की वासना से ओतप्रोत, पुनर्जन्म से रहित जो जीवन्मुक्त पुरुष के मन की सत्ता है, वह सत्व नाम से कही जाती है। जिस प्रकार चन्द्रमा में प्रसन्न किरणें रहती हैं, वैसे ही जीवन्मुक्त पुरुष के मन के विनाश में विशुद्ध मैत्री आदि गुण सदा सब तरह से रहते हैं। शान्तिरूप शीतलता के आश्रय जीवन्मुक्त पुरुष के सत्व नामक मन के नाश की अवस्था में अनेक गुण-सम्पत्तियाँ प्रकट होती हैं।

रघुकुलतिलक ! जो मैंने पहले अरूप-मनोनाश कहा था, वह विदेहमुक्त का ही होता है तथा जो अवयवादि विकारों से रहित है, उस परमपवित्र विदेह मुक्तिरूपी निर्मल परमपद में समस्त श्रेष्ठ गुणों का आश्रयरूप मन भी विलीन हो जाता है। विदेहमुक्त महात्माओं की उस सत्व-विनाशरूप अरूपचित्तनाश-दशा में किसी भी दृश्य-पदार्थ का अस्तित्व नहीं रहता अर्थात् संकल्पसहित सम्पूर्ण संसार का अत्यन्त अभाव हो जाता है। उस अरूपचित्त विनाश-दशा में न गुण है न अवगुण हैं, न शोभा है न अशोभा है, न चंचलता है न अचंलता है, न उदय है न अस्त है, न हर्ष है न अमर्ष है और न ज्ञान है, न प्रकाश है न अन्धकार है, न संध्या है न दिन या रात है, न दिशाएँ हैं न आकाश है, न अधः है और न अनर्थरूपता है, न कोई वासना है न किसी प्रकार की रचना है, न इच्छा है न अनिच्छा है, न राग है न भाव है और न अभाव है और न वह पदसाध्य ही है। वह परमपद तम और तेज से शून्य, तारे, चन्द्र, सूर्य और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वायु से तथा संध्या, रजःकण और सूर्य-कान्ति से रहित शरत्कालीन स्वच्छ आकाश के समान अत्यन्त निर्मल है। वह विशाल पद उन लोगों आश्रय-स्थान है, जो बुद्धि और संसार-भ्रमण से पार हो गये हैं। सम्पूर्ण दुःखों से रहित, चिन्मय, निष्क्रिय ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण तथा रज और तम से रहित जो परमपद है, उस परम पद में वे चित्त से रहि और आकाश के सदृश सूक्ष्म विदेह मुक्त महात्मा तद्रूप हुए स्थित रहते हैं, वे अपुनरावृत्ति रूप परमगति को प्राप्त हो जाते हैं।

पचपनवाँ सर्ग समाप्त

छप्पनवाँ सर्ग

शरीर का कारण मन है तथा मन के कारण प्राण-स्पन्द और वासना इनका कारण विषय, विषय का कारण जीवात्मा और जीवात्मा का कारण परमात्मा है-इस तत्व का प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! भाव और अभाव का तथा दुःखरूपी रत्नों का खजाना चित्त ही, जो वासनाओं के वश में रहने वाला एक तरह से अनुचर है, शरीर का कारण है। प्रतीत होने के कारण सत् और विनाशशील होने के कारण असत्रूप ये शरीर समूह एकमात्र चित्त से ही उत्पन्न हुए हैं, जैसे स्वप्न में भ्रम से संसार की प्रतीति सबको स्वयं होती है। जो यह मिथ्या जगत् का स्वरूप दृश्यता को प्राप्त है, वह चित्त से उसी प्रकार उत्पन्न होता है, जिस प्रकार मिट्टी से घड़े आदि उत्पन्न होते हैं। अनेक तरह की वृत्तियाँ धारण करने वाले इस चित्तरूपी वृक्ष के दो बीज हैं-एक प्राण-संचरण और दूसरा दृढ़भावना। जब शरीर की नाड़ियों में प्राणवायु संचरण करने लगता है, तब वृत्तिमय चित्त तत्काल ही उत्पन्न होता है। किंतु जब शरीर की नाड़ियों में प्राण संचरण नहीं करता, तब वृत्ति ज्ञान न होने के कारण उसमें चित्त उत्पन्न नहीं होता। यह प्राण-संचरणरूप जगत् ही चित्त के द्वारा दिखायी पड़ता है, जिस प्रकार आकाश में नीलता आदि दिखायी पड़ते हैं। राघव ! जीवात्मा के विषयों के सम्पर्क से रहित होने पर ही उसका परम कल्याण होता है, ऐसा जानो। किंतु प्रकट हुआ जीव ही तत्काल बाह्य विषयों की ओर रागवश चला जाता है और उन विषयों के भोग के अनुभव से चित्त में अनन्त दुःख उत्पन्न होते हैं। जब जीवात्मा बाह्य विषयों से उदासीन होकर परमात्मा के ज्ञान के लिये प्रयत्नशील होता है, तब वह प्राप्त करने योग्य निर्मल परमपद रूप परमात्मा को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्राप्त हो जाता है। श्रीराम ! जीवात्मा के संकल्प को ही तुम चित्त जानो। उसी चित्त ने इस अनर्थ-जाल का विस्तार किया है।

योगीलोग चित्त की शान्ति के लिये योगशास्त्र में बतलाये गये प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यानरूप योग की युक्तियों के द्वारा प्राण का निरोध करते हैं। विद्वान् लोग प्राण-निरोध को ही चित्तशान्तिरूप फल का दाता, उत्तम समता का हेतु और जीवात्मा की अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा में सुन्दर स्थिति कहते हैं। महाबाहु श्रीराम ! तीव्र सवेग से आत्मा के द्वारा जिस पदार्थ की भावना की जाती है, तत्काल ही जीवात्मा अन्य स्मृतियों को छोड़कर तद्रूप ही हो जाता है। वासना के अत्यन्त वशीभूत और तद्रूप हुआ वह जीवात्मा जिस किसी को देख लेता है, उस सबको अज्ञान से सत्वस्तु मान लेता है और वासना के वेग वश अपने स्वरूप को भूल जाता है। फिर वह वास्तविक आत्मज्ञान से रहित जीवात्मा भीतरी वासनाओं के अभिभूत होकर, विष से अभिभूत पुरुष की तरह अनेक मानसिक आपत्तियों से व्याकुल रहता है। श्रीराम ! जिससे देहादि अनात्मा में आत्मभावनारूप और अवस्तु संसार में वस्तुभावनारूप अयथार्थ ज्ञान होता है, उसको तुम चित्त जानो। दृढ़ अभ्यास के कारण देह आदि पदार्थों में 'अहम्' 'मम' आदि वासना से ही जन्म, जरा और मरण का कारण अति चंचल चित्त उत्पन्न होता है। जब निरन्तर वासना का अभाव होने से मन मनन से रहित हो जाता है, तब मन का अभाव हो जाता है, जो परम उपरतिस्वरूप है। जब जगद्रूप वस्तु में किसी पदार्थ की भावना नहीं होती, तब शून्य हृदयाकाश में चित्त कैसे उत्पन्न हो सकता है। श्रीराम ! मैं तो यही मानता हूँ कि आसक्ति से विनाशशील जगत् रूपी वस्तु में वस्तुत्व की भावना करना मात्र ही चित्त का स्वरूप है। बाह्य वस्तुओं के अस्मरणरूप साधन का अवलम्बन करने से जो समस्त दृश्य-जगत् के अभाव की भावना और परमार्थ वस्तु परमात्मा का अनुभव होता है, वह अचित्त कहा जाता है। अतः जिस महामति पुरुष को संस्कार से उत्पन्न विषय-रसास्वाद के स्मरण से विषयों में आसक्ति उत्पन्न नहीं होती, उस पुरुष का चित्त अचित्त रूपता को तथा विशुद्ध सत्व को प्राप्त कहा जाता है। जिस महापुरुष में पुनर्जन्म की कारणभूता अहंता-ममतारूप वासना का अभाव हो गया है, वह चक्र के भ्रमण-सदृश जगत् के व्यवहार में लगा हुआ भी जीवन्मुक्त और परमात्मा में स्थित है। तात्पर्य यह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कि जिस प्रकार कुम्भकार के व्यापार के अभाव में भी चक्र का भ्रमण तब तक होता रहता है, जब तक उसमें वेग रहता है, उसी प्रकार अविद्या के नाश होने पर भी प्रारब्ध संस्कार के अवशिष्ट रहने से अहंकार के बिना ही जीवन्मुक्त का शरीर और उसका व्यवहार– दोनों प्रारब्ध–भोगपर्यन्त विद्यमान रहते हैं। जिनका चित्त भूने हुए बीज के सदृश पुनर्जन्म से शून्य और विषयानुरक्ति से रहित है, वे महानुभाव जीवन्मुक्त हुए स्थित रहते हैं। जिनका चित्त विशुद्ध सत्वरूपता प्राप्त कर चुका है, ऐसे ज्ञान के पारंगत महात्मा चित्त से रहित कहे जाते हैं। प्रारब्ध का क्षय हो जाने पर वे सच्चिदानन्दघन परमात्मा में विलीन हो जाते हैं।

वासना का ऊर्ध्वगति स्वभाव होने से वह जीवात्मा के क्षोभकारक कर्म से प्राण–स्पन्दन का उद्बबोधन करती है और उससे चित्त उत्पन्न होता है। एवं स्पन्दन–धर्मवाला होने से हृदयगत राग आदि गुणों का स्पर्श करके प्राण जीवात्मा का उद्बबोधन करता है और क्रम से चित्तरूपी बालक उत्पन्न होता है। श्रीराम ! वासना और प्राणस्पन्द–दोनों चित्त के कारण हैं। उनमें से किसी एक का लय हो जाने पर दोनों का और उनके कार्य चित्त का विनाश हो जाता है, जैसे विदेहमुक्त ज्ञानी का वासनासहित चित्त और प्राण ब्रह्म में विलीन हो जाता है। वासना और प्राणस्पन्दन–इन दोनों का कारण विषय है; क्योंकि उसी के सम्बन्ध से वे दोनों प्रस्फुरित होते हैं। हृदय में प्रिय और अप्रिय शब्द आदि विषयों का चिन्तन करके ही प्राणस्पन्दन और वासना दोनों आविर्भूत होते हैं; इसलिये विषय ही उन दोनों का बीज (कारण) है। जिस प्रकार मूल के उच्छेद से वृक्ष तत्काल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार विषयचिन्तन का परित्याग करने से प्राणस्पन्दन और वासना–दोनों ही तत्काल समूल नष्ट हो जाते हैं। रघुनन्दन! जीवात्मा ही अपनी धीरता का परित्याग करके अपने संकल्प से विषयरूप सा बनकर चित्त का बीजरूप हो जाता है, ऐसा जानो। जिस प्रकार तिल तेल से रहित नहीं है, उसी प्रकार जीवात्मा से रहित कोई भी विषय नहीं है; क्योंकि जीवात्मा सब विषयों में व्यापक है। इसलिये बाहर और भीतर कोई भी पदार्थ जीवात्मा से अलग नहीं है। अपने संकल्प से चेतन जीवात्मा ही प्रस्फुरित होता हुआ स्वयं पदार्थ को देखता है। जिस तरह स्वप्न में अपना मरण और भिन्न देश में स्थिति–दोनों अपने संकल्प से ही होते हैं, उसी तरह जाग्रत्कालीन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पदार्थ भी जीवात्मा के संकल्प से ही होते हैं। रघुनन्दन ! जिस विवेक-अवस्था में अपने पारमार्थिक स्वरूप का अनुभव होता है, वह अपने संकल्प से हुआ स्वस्वरूपानुभव भी जगज्जाल (स्वप्न के सदृश) ही है; क्योंकि सच्चिदानन्द ब्रह्म अनुभव करने वाला, अनुभव करने योग्य और अनुभव-इन तीनों से ही रहित है; अतः उस अनुभव को जगज्जाल कहना उचित ही है। जैसे बालक को अपने संकल्प से ही प्रेत का और मनुष्यों को स्थाणु में पुरुष का भ्रम होता है वैसे ही संकल्प से उत्पन्न भ्रम से ही चेतन जीवात्मा की पदार्थरूपता होती है; वास्तव में नहीं। यह भ्रान्तिज्ञान मिथ्या है। वह यथार्थ परमात्मज्ञान से उसी प्रकार विलीन हो जाता है, जिस प्रकार रज्जु और चन्द्र के निर्दोष दर्शन से रज्जु में सर्प-भ्रान्ति और एक चन्द्र में दो चन्द्ररूपों की भ्रान्ति विलीन हो जाती है। पहले देखा हुआ या न देखा हुआ जो पदार्थ इस जीवात्मा को भासता है, विद्वान् को उसे विवेक-वैराग्यरूप प्रयत्न द्वारा मिथ्या समझकर उसका बाध कर देना चाहिये। इस जड़ जगत्रूप दृश्य का बाध न करना ही इस बड़े भारी संसार के साथ सम्बन्ध जोड़ना है। यही बन्धन है तथा इस संसार के सम्बन्ध से रहित होना ही मोक्ष है-यह महात्माओं का अनुभव किया हुआ निश्चय है; क्योंकि इस जड़ दृश्य जगत् का चिन्तन ही जन्मरूप अनन्त दुःख का हेतु है और उस दृश्य-चिन्तन से रहित होकर सच्चिदानन्द परमात्मा में स्थित रहना ही पुनर्जन्मरहित अक्षय सुख का हेतु है।

वासनारहित होने के कारण अपनी आत्मा में जब किसी पदार्थ की भावना नहीं रहती और वह परमात्मा के स्वरूप में अचल स्थित रहता है, तब जड़ता से रहित, विशाल एवं विशुद्ध यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। इसलिये ज्ञानवान् फिर कभी संसार में लिप्त नहीं होता। समस्त वासनाओं का अत्यन्त अभाव होने पर निर्विकल्प समाधि से परम आनन्दरूप परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। संसार के चिन्तन से रहित योगी लोग उसी असीम आनन्द में नित्य स्थित रहते हैं। इसलिये संसार चिन्तन से रहित योगी चलते, बैठते, स्पर्श करते और सूँघते हुए भी चिन्मय अक्षय आनन्द से पूर्ण और सुखी कहा जाता है। श्रीराम ! यह जीवात्मा जिसकी भावना करता है, उसी रूप में तत्काल परिणत हो जाता है। अज्ञान की भूमिकाओं से मुक्त न होने के कारण जीवात्मा दीर्घकाल बीत जाने पर भी अपना वास्तविक स्वरूप नहीं प्राप्त कर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पाता। जीवात्मा ब्रह्म का अंश है, अतः एकमात्र सच्चिदानन्द ब्रह्म ही इस जीवात्मा का कारण कहा जाता है। श्रीराम ! सत्ता के दो रूप हैं–एक तो अनेक आकारवाली व्यावहारिक सत्ता और दूसरी एक रूप वाली वास्तविक सत्ता। अब उनका विभाग सुनो। घटादि रूपों के विभाग से जो घटत्व, पटत्व, त्वत्व, मत्व आदि उपाधिभूत सत्ता कही जाती है, वह नानाकृति व्यावहारिक सत्ता है। जो विभाग से रहित, सत्तारूप से व्याप्त समानभाव से स्थित वास्तविक सत्ता है, वह एकरूपा वास्तविक सत्ता है, उसी को विद्वान् परमपद कहते हैं। वास्तव में सत्ता का रूप नाना आकार के रूप में कभी नहीं है; क्योंकि वह कायम नहीं रहता; अतः वह सत्यरूप नहीं हो सकता। सत्ता का जो विशुद्ध एकरूप वास्तविक स्वरूप है, वह कभी नष्ट नहीं होता और न कभी लुप्त ही होता है। वह नित्य विज्ञानानन्दस्वरूप होने से सदा कायम रहता है। उसका अभाव कभी नहीं होता। किंतु जो विभिन्न पदार्थों को उत्पन्न करने वाली विभाग कल्पना नानारूपता का कारण देखी जाती है, वह विशुद्ध पररूपा कैसे हो सकती है।

श्रीराम ! सत्ता–सामान्य की चरम अवधिरूप जो कल्पनाओं से और आदि–अन्त से रहित परमपद है, उसका और कोई कारण नहीं है; क्योंकि वही सबका परम कारण है। जिस परमपद में सम्पूर्ण सत्ताएँ विलीन हो जाती हैं, उस निर्विकार परमपद में स्थित पुरुष इस दुःखमय संसार में कभी नहीं आता। और वही वास्तव में परम पुरुषार्थी है। वह परमात्मा ही समस्त कारणों का कारण है, उसका कोई दूसरा कारण नहीं है। वही सम्पूर्ण सारों का सार है, उससे बढ़कर दूसरी सारभूत वस्तु नहीं है। जैसे तालाब में तटस्थ वृक्ष प्रतिबिम्बित होते हैं, वैसे ही उस असीम चिन्मय परमात्मारूप दर्पण में ये सब पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं। उसी आनन्द–समुद्र परब्रह्म से सभी प्रकार के सुख प्रतिबिम्बित होते हैं। उस आनन्दमय परमात्मा में ही सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होता है, स्थित रहता है, बढ़ता है और विलीन हो जाता है। वह परब्रह्म भारी से भी भारी, हलके से हलका, स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम है। वह दूर से भी दूर, निकट से भी निकट, छोटे से भी छोटा और बड़े से भी अत्यन्त बड़ा है तथा सबका प्रकाशक होने से ज्योतियों का ज्योति है। वह सम्पूर्ण वस्तुओं से रहित और सर्ववस्तु रूप है, वही सत् और असत् है, वही दृश्य और अदृश्य है, वह अहंता से रहित और अहंस्वरूप है। श्रीराम ! वास्तव में वही विशुद्ध जरारहित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

परमात्मतत्व है। उसकी प्राप्ति होने पर चित्त परम शान्त हो जाता है।

छप्पनवाँ सर्ग समाप्त

सत्तावनवाँ सर्ग

तत्वज्ञान, वासनाक्षय और मनोनाश से परमपद की प्राप्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जब तक मन विलीन नहीं होता, तब तक वासना का सर्वथा विनाश नहीं और जब तक वासना विनष्ट नहीं होती, तब तक चित्त शान्त नहीं होता। जब तक परमात्मा के तत्व का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, तब तक चित्त की शान्ति कहाँ और जब तक चित्त की शान्ति नहीं होती, तब तक परमात्मा के तत्व का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जब तक वासना का सर्वथा नाश नहीं होता, तब तक तत्व ज्ञान कहाँ से होगा और जब तक तत्वज्ञान नहीं होता, तब तक वासना का सर्वथा विनाश नहीं होगा। इसलिये परमात्मा का यथार्थ ज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय-ये तीनों ही एक दूसरे के कारण हैं। अतः ये दुस्साध्य हैं, किंतु असाध्य नहीं। विशेष प्रयत्न करने ये तीनों कार्य सिद्ध हो सकते हैं। श्रीराम ! विवेक से युक्त पौरुष प्रयत्न से भोगेच्छा का दूर से ही परित्याग करके इन तीनों साधनों का अवलम्बन करना चाहिये। यदि इन तीनों उपायों का एक साथ प्रयत्नपूर्वक भली प्रकार बार-बार अभ्यास न किया जाय तो सैकड़ों वर्षों तक भी परमपद की प्राप्ति सम्भव नहीं। किंतु महाबुद्धिमान् श्रीराम ! वासनाक्षय, परमात्मा का यथार्थ ज्ञान और मनोनाश-इन तीनों का एक साथ दीर्घकाल तक प्रयत्नपूर्वक अभ्यास किया जाय तो ये परमपदरूप फल देते हैं। इन तीनों का चिरकाल तक प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने से अत्यन्त दृढ़ हृदयग्रन्थियाँ निःशेषरूप से टूट जाती हैं।

श्रीराम ! यह संसार की दृढ़ स्थिति सैकड़ों जन्म-जन्मान्तरों से मनुष्यों के द्वारा अभ्यस्त है; अतः चिरकाल तक अभ्यास किये बिना वह किसी तरह भी नष्ट नहीं हो सकती। इसलिये चलते-फिरते, श्रवण करते, स्पर्श करते, सूँघते, खड़े रहते, जागते, सोते-सभी अवस्थाओं में परम कल्याण के लिये इन तीनों उपायों के अभ्यास में लग जाना चाहिये। तत्वज्ञों का मत है कि वासनाओं के परित्याग के समान ही प्राणायाम भी एक उपाय है। इसलिये वासना-परित्याग के साथ-साथ प्राण-निरोध का भी अभ्यास करना आवश्यक है। वासनाओं का भली-भाँति परित्याग करने से चित्त भूने हुए बीज के समान अचित्तरूप हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जाता है और प्राणस्पन्द के निरोध से भी चित्त अचित्तरूप हो जाता है; इसलिये तुम जैसा उचित समझो, वैसा करो। चिरकाल तक प्राणायाम के अभ्यास से, योगाभ्यास में कुशल गुरुद्वारा बतायी हुई युक्ति से, स्वस्तिक आदि आसनों की सिद्धि से और उचित भोजन से प्राण-स्पन्दन का निरोध हो जाता है। परमात्मा के स्वरूप का साक्षात् अनुभव होने पर वासना उत्पन्न नहीं होती। आदि, मध्य और अन्त में कभी पृथक् न होने वाले एकमात्र सत्यस्वरूप परमात्मा को भलीभाँति यथार्थरूप से जान लेना ही ज्ञान है। यह ज्ञान वासना का सर्वथा विनाश कर देता है तथा अनासक्त होकर व्यवहार करने से, संसार का चिन्तन छोड़ने से और शरीर को विनाशशील समझने से वासना उत्पन्न नहीं होती। जिस प्रकार पवन-स्पन्द के शान्त हो जाने पर आकाश में धूलि नहीं उठती, वैसे ही वासना का विनाश हो जाने पर चित्त विषयों में नहीं भटकता। बुद्धिमान् पुरुष को एकाग्रचित्त से बारंबार एकान्त में बैठकर प्राणस्पन्द के निरोध के लिये विशेष यत्न करना चाहिये। जिस प्रकार मदमत्त दुष्ट हाथी अंकुश के बिना दूसरे उपाय से वश में नहीं होता, उसी प्रकार पवित्र युक्ति के बिना मन वश में नहीं होता। अध्यात्मविद्या की प्राप्ति, साधु संगति, वासना का सर्वथा परित्याग और प्राणस्पन्दन का निरोध-ये ही युक्तियाँ चित्त पर विजय पाने के लिये निश्चित रूप से दृढ़ उपाय हैं। इनसे तत्काल ही चित्त पर विजय प्राप्त हो जाती है। उपर्युक्त इन चार युक्तियों के रहते जो पुरुष हठ से चित्त को वशीभूत करना चाहते हैं, उनके सम्बन्ध में मेरा यही मत है कि वे दीपक का परित्याग करके अंजनों से अन्धकार का निवारण करना चाहते हैं। उपर्युक्त इन चार युक्तियों को त्याग कर जो पुरुष चित्त या चित्त के निकटवर्ती अपने शरीर को स्थिर करने के लिये यत्न करते हैं, उन हठ करने वाले पुरुषों को विवेकी लोग हठी समझते हैं।

सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त

अठ्ठावनवाँ सर्ग

वैराग्य एवं सद्गुणों से तत्वज्ञान की प्राप्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! किंचिन्मात्र विवेकपूर्वक विचार से जिसने अपने चित्त का निग्रह कर लिया, उसने जन्म का फल पा लिया। यदि हृदय में इस विचाररूपी कल्पवृक्ष का कोमल अंकुर भी प्रकट हो जाय तो वही अंकुर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

अभ्यास योग के द्वारा सैकड़ों शाखाओं में फैल सकता है। विवेक-वैराग्य से जिसका विचार कुछ दृढ़ हो गया है, उस पुरुष का शान्ति, समता, क्षमा, दया आदि पवित्र गुण उसी प्रकार आश्रय लेते हैं, जिस प्रकार जल से परिपूर्ण सरोवर का पक्षी और मत्स्य, कच्छप आदि आश्रय लेते हैं। भलीभाँति परमात्मविषयक विचार करने से जिसे परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार हो गया है ऐसे ज्ञानी महापुरुष को अविद्या से उत्पन्न अत्यन्त रमणीय और विशाल वैभव भी आकृष्ट नहीं कर पाते। परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से जिसकी बुद्धि विशुद्ध हो गयी है, उस महात्मा का यहाँ के विषय, मानसिक वृत्तियाँ, आधि और व्याधि-ये सब क्या कर सकते हैं अर्थात् वे उसे तनिक भी विचलित नहीं कर सकते। जिसने ज्ञान की चतुर्थ भूमिका प्राप्त कर ली है और जिसने जानने योग्य परमात्मा के स्वरूप का अनुभव कर लिया है, उस धीर वीर ज्ञानी महात्मा पुरुष पर विषय तथा इन्द्रियरूपी डाकू क्या कभी आक्रमण कर सकते हैं ? जिस पुरुष का अन्तःकरण चलते-फिरते या बैठते, जागते या सोते-इन सभी अवस्थाओं में विवेकपूर्ण ब्रह्मविचार से युक्त नहीं रहता, वह मृतक के समान है। अज्ञानरूपी अन्धकार का हरण करने वाले परमात्मविषयक विचार से तत्काल ही विशुद्ध परमपदरूप परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है-ठीक उसी प्रकार जैसे प्रकाशमान दीपक से वस्तु प्रत्यक्ष दिखायी पड़ती है तथा परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से सम्पूर्ण दुःखों का उसी प्रकार अत्यन्त अभाव हो जाता है। क्योंकि जब परमात्मविषयक यथार्थ ज्ञान पूर्णतया प्राप्त हो जाता है, तब जानने योग्य ब्रह्म के स्वरूप की प्राप्ति अपने-आप ही उसी प्रकार हो जाती है, जिस प्रकार सूर्य का उदय हो जाने पर भूमण्डल पर विशुद्ध प्रकाश उसी क्षण अपने-आप अनायास ही हो जाता है। जिस सत्-शास्त्र के विवेक पूर्वक विचार से सच्चिदानन्द परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ अनुभव हो जाता है, वही ज्ञान कहा जाता है ओर वह ज्ञान ज्ञेयस्वरूप परमात्मा से भिन्न नहीं है-परमात्मा का स्वरूप ही है।

श्रीराम ! पण्डित लोग विवेकपूर्वक परमात्मविषयक विचार से उत्पन्न परमात्मस्वरूप के अनुभव को ही ज्ञान कहते हैं। उसी ज्ञान के अंदर ज्ञेय उसी प्रकार छिपा रहता है, जिस प्रकार दूध के अंदर माधुर्य छिपा रहता है। सम्यक्-ज्ञान के प्रकाश से आलोकित पुरुष स्वयं ज्ञेयस्वरूप हो जाता है। सम

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और विशुद्धस्वरूप विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही ज्ञेय कहा जाता है। जिसके अन्तःकरण में आनन्द का प्राकट्य हो गया है, वह ज्ञानवान् पुरुष किसी भी सांसारिक विषय में नहीं फँसता। समस्त संगों से रहित पूर्णकाम जीवन्मुक्त ज्ञानी सम्राट की तरह सदा मस्त रहता है। श्रीराम ! ज्ञानी महात्मा पुरुष वीणा-वंशी की मधुरध्वनि आदि मनोहर शब्दों में, कामिनियों के श्रृंगार-रस-मिश्रित कमनीय गीतों में, करताल, गम्भीर मृदंग तथा चित्र-विचित्र कांस्यताल आदि वाद्यों की ध्वनियों में-चाहे ध्वनि रुक्ष हो या मधुर कहीं भी प्रेम नहीं करता। आसक्ति-रहित ज्ञानी पुरुष कोमल कदली के स्तम्भों की पल्लव-पंक्तियों से युक्त तथा देवता एवं गन्धर्वों की कन्याओं के अंगों के समान अतिकोमल अवयव वाली लताओं से युक्त नन्दनवन की क्रीड़ाओं में कहीं रमण नहीं करता। जिस प्रकार हंस मरुभूमि में रमण नहीं करता। जिस प्रकार हंस मरुभूमि में रमण नहीं करता, उसी प्रकार स्वाधीन विषयभोगों में भी आसक्ति न रखने वाला धीर तत्वज्ञ किसी भी विषय में रमण नहीं करता। कदम्ब, कटहल, अंगूर, खरबूजा, अखरोट तथा नारंगी आदि फलों में; दही, दूध, घी, मक्खन, चावल आदि भोज्य पदार्थों में; लेह्य (चटनी), पेय (शर्बत) आदि विलास-पूर्ण चित्र-विचित्र छः प्रकार के रस युक्त पदार्थों में, इनके सिवा अन्यान्य फल, कन्द-मूल, शाक आदि भोज्य पदार्थों में-कहीं पर भी वह परमात्मा के आनन्द में तृप्त, आसक्ति रहित ज्ञानी महात्मा पुरुष नहीं फँसता।

धर्मराज, चन्द्र, इन्द्र, रुद्र, सूर्य और वायु के लोकों को; मेरु, मन्दराचल, कैलास, सह्याद्रि तथा दर्दुर पर्वतों के शिखरों को; चन्द्रमा की चाँदनी को; मणिमुक्तामय रत्न और सुवर्ण-निर्मित महलों को; तिलोत्तमा, उर्वशी रम्भा, मेनका आदि की अंगलताओं को-किसी को भी वह आसक्तिरहित ज्ञानी महात्मा देखना भी नहीं चाहता और वह विज्ञानानन्दघन परमात्मा में [illegible], मान न चाहने वाला, मौनी महात्मा शत्रुओं के प्रतिकूल व्यवहार को देखकर भी विचलित नहीं होता। जो एक ब्रह्मदृष्टि रखने वाला तथा विकार रहित समबुद्धि ज्ञानवान् पुरुष है, वह कनेर, मन्दार, कल्हार, कमल आदि में; कुई, नीलकमल, चम्पा, केतकी, अगर, जाति (मालती) आदि पुष्पों में; चन्दन, अगुरु, कपूर एवं कस्तूरी आदि में; केसर, लौंग-इलायची, कंकोल (शीतलचीनी के वृक्ष का भेद), तगर आदि अंगरागों में से किसी की भी सुगन्ध से प्रेम नहीं करता। जो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के ध्यान में मग्न है, वह वज्र के भयावह शब्द से, पर्वत के विस्फोट से एवं ऐरावत आदि हाथियों के चिंघाड़ने से कम्पित नहीं होता। तीक्ष्ण छुरे के धारा में या नवीन कमलों से निर्मित शय्याओं में, सूर्य किरणों से प्रतप्त शिलाओं में या कोमल ललनाओं में, सम्पत्तियों या उग्र विपत्तियों एवं क्रीड़ाओं तथा उत्सवों में विहार करते हुए भी ज्ञानी महात्मा को प्रतिकूल पदार्थों से तो उद्वेग नहीं होता और अनुकूल की प्राप्ति में हर्ष नहीं होता। वह भीतर से सदा अहंता-ममता एवं आसक्ति से रहित होता है और बाहर से निःस्वार्थ भाव से कर्म करता रहता है। जीवन का विनाश करने वाला तथा जीवन का दान देने वाला-इन दोनों पुरुषों को ज्ञानी पुरुष प्रसन्नता एवं मधुरता से शोभित समदृष्टि से देखता है। ज्ञानवान् पुरुष देवता और मनुष्य आदि शरीरों से तथा प्रिय और अप्रिय पदार्थों से न हर्षित होता है और न ग्लानि का अनुभव करता है अर्थात् अनुकूल में हर्षित नहीं होता औ प्रतिकूल में ग्लानि और विषाद के वशीभूत नहीं होता। श्रीराम ! अपने चित्त में आसक्ति का अभाव और परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो जाने से तत्वज्ञानी पुरुष जगत् को मिथ्या समझता है। इसलिये वह किसी भी समय इन्द्रियों के द्वारा विषयों में रमण नहीं करता; क्योंकि उसकी बुद्धि समस्त मानस पीड़ाओं से मुक्त हो चुकी रहती है। किंतु जो तत्वज्ञान से शून्य और शान्तिरहित है एवं परमात्मा को प्राप्त नहीं हुआ है, उस वास्तविक स्थिति से वंचित मनुष्य को इन्द्रियाँ तत्काल उसी प्रकार निगल जाती हैं, जिस प्रकार हरिन हरे कोमल पत्तों को निगल जाते हैं।

रघुनन्दन ! जो विवेकपूर्वक विचारशील है एवं जिसकी एकमात्र सच्चिदानन्द ब्रह्म के स्वरूप में ही स्थिति है और परमात्मा के स्वरूप में ही जिसको विश्राम प्राप्त हो गया है, उस ज्ञानी महात्मा को संसार के संकल्प-विकल्प विचलित नहीं कर सकते-ठीक उसी प्रकार जैसे जल का प्रवाह अचल पहाड़ को विचलित नहीं कर सकता। समस्त संकल्पों की सीमा के अन्तस्वरूप पद में जो महानुभाव विश्राम को प्राप्त हो गये हैं, उन परमात्मा को प्राप्त हुए महात्माओं की दृष्टि में सुवर्णमय सुमेरु पर्वत भी तृण के सदृश है अर्थात् कुछ भी नहीं है। उन विशालहृदय महात्माओं की दृष्टि में सारा संसार और एक छोटा-सा तृण, अमृत और विष, कल्प और क्षण समान हैं। जिस जड़ दृश्य संसार का आदि और अन्त में अस्तित्व नहीं है, उसकी यदि वर्तमान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

काल में कुछ काल तक सत्ता प्रतीत हो रही है तो वह जीवात्मा का भ्रम ही है। ज्ञानी शरीर, मन, बुद्धि तथा आसक्ति से रहित इन्द्रियों से चाहे कर्म करे या न करे, असंग होने के कारण कर्म से लिप्त नहीं होता। महाबाहु श्रीराम ! जिस प्रकार कोई भी मनोराज्य की सम्पत्तियों के नष्ट होने या न होने पर, उससे उत्पन्न सुख-दुःखों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानी महात्मा पुरुष आसक्ति रहित मन से कर्म करता हुआ भी उससे उत्पन्न सुख-दुःखरूप फल से लिप्त नहीं होता तथा आसक्ति रहित मनवाला महात्मा पुरुष चक्षु से विषयों को देखता हुआ भी, उसका चित्त अन्यत्र- परमात्मा में स्थित होने के कारण, कुछ नहीं देखता। जिसका चित्त दूसरी जगह तत्परता से लगा रहता है, वह विषय को नहीं देखता-यह बात बालक भी जानता है। इसलिये आसक्तिरहित मन वाला ज्ञानी महात्मा पुरुष सुनता हुआ भी नहीं सुनता, स्पर्श करता हुआ भी स्पर्श नहीं करता, सूँघता हुआ भी नहीं सूँघता, नेत्रों को खोलता और बंद करता हुआ भी न उन्हें खोलता और न बंद ही करता है। श्रीराम ! आसक्ति ही संसार का कारण है, आसक्ति ही समस्त पदार्थों का हेतु है, आसक्ति ही वासनाओं की जड़ है और आसक्ति ही समस्त विपत्तियों का मूल है। अतः आसक्ति के त्याग को ही मोक्ष समझा गया है और आसक्ति के त्याग से ही मनुष्य जन्म-मरण से छूट जाता है।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-अखिल संशयरूपी कुहरे का नाश करने वाले शरत्काल के वायुरूप महामुने ! संग (आसक्ति) किसे कहते हैं-प्रभो ! यह मुझसे कहिये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! अनुकूल और प्रतिकूल पदार्थों की उत्पत्ति और विनाश में जो हर्ष और विषादरूप विकार उत्पन्न करने वाली मलिन वासना है, वही संग (आसक्ति) है-ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं। जीवन्मुक्त स्वरूप वाले तत्ववेत्ताओं के पुनर्जन्म का नाश करने वाली, हर्ष एवं विषाद दोनों से रहित, शुद्ध वासना-आसक्ति रहित चित्तवृत्ति होती है। वह भूने हुए बीज के समान आकृति मात्र है। उस शुद्ध वासना का दूसरा नाम असंग (आसक्ति का अभाव) जानो। वह तब तक रहती है, जब तक प्रारब्ध भोगों का संस्काररूप देह रहता है। उस शुद्ध वासना से जो कुछ किया जाता है, वह पुनः संसार में जन्म-मरणरूप बन्धन का कारण नहीं होता। जो जीवन्मुक्त नहीं हैं, जो दीन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.F.S) Jammu Collection

एवं मूढ़चित्त हैं, उनकी वासना हर्ष तथा विषाद से युक्त रहती है। वह वासना जन्म-मरणरूप बन्धन देने वाली होती है। इसी बन्धनकारक वासना का दूसरा नाम संग है। यह पुनर्जन्म का कारण है। इस वासना से जो कुछ किया जाता है, वह केवल बन्धन का ही हेतु होता है। रघुनन्दन ! यदि तुम दुःखों से घबराते नहीं, सुखों से हर्षित नहीं होते और सम्पूर्ण आशाओं से रहित हो तो तुम असंग ही हो। समस्त व्यवहारों में एवं सुख-दुःख की अवस्थाओं में समचित्त रहते हुए ही यदि विचरण करते हो तुम असंग ही हो। सांसारिक पदार्थों को तुम अपनी आत्मा ही समझते हो और जिस समय न्याययुक्त जैसा व्यवहार प्राप्त होता है, उसी के अनुसार शास्त्रानुकूल आचरण करते हो तो तुम असंग ही हो। जीवन्मुक्तों के ज्ञान से सम्पन्न, इन्द्रियों को वश में रखने वाला, परमात्मा के स्वरूप का मनन करने वाला श्रेष्ठ मुनि मान, मद, मात्सर्य और चिन्ता ज्वर से रहित होकर स्थित रहता है। श्रीराम ! प्रचुरतर पदार्थों के सदा रहते हुए भी सबमें समानभाव रखने वाला तथा बाहर एवं भीतर इच्छा एवं याचना आदि रूप दीनता से शून्य अन्तःकरण वाला यह महात्मा एकमात्र अपने वर्णाश्रमोचित स्वाभाविक क्रम-प्राप्त न्याययुक्त व्यापार से पृथक् दूसरा कुछ भी व्यापार नहीं करता। वर्णाश्रमानुसार परम्परा-प्राप्त अपना जो कुछ भी कर्त्तव्य है, उसका वह ज्ञानी संसर्ग सम्बन्ध अर्थात् आसक्ति, अहंता-ममता से रहित बुद्धि से खेदशून्य हो अनुष्ठान करता हुआ परमात्मस्वरूप अपने आत्मा में रमण करता है। जिस प्रकार मन्दराचल पर्वत से मथे जाने पर भी क्षीरसमुद्र अपना स्वाभाविक शुक्लपन नहीं छोड़ता, उसी प्रकार आपत्ति अथवा उत्तम सम्पत्ति को प्राप्त होने पर वह महामति तत्वज्ञ अपना सहज स्वभाव नहीं छोड़ता।

अठ्ठावनवाँ सर्ग समाप्त

उपशम प्रकरण सम्पूर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सचित्र
योगवासिष्ठ महारामायण

द्वितीय खण्ड

निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध

आकाश की शून्यता आकाश ही है, जल की द्रवता जल ही है, प्रकाश की आभा प्रकाश ही है, वायु का स्पन्दन वायु ही है, समुद्र की तरंगें समुद्र ही हैं, बर्फ की शीतलता बर्फ ही है, काजल की कालिमा काजल ही है–ठीक वैसे ही ब्रह्म में दीखने वाला यह समस्त जगत भी ब्रह्म ही है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

निर्वाण-प्रकरण पूर्वार्ध

पहला सर्ग

श्रीवसिष्ठजी के कहने पर श्रोताओं का विषयों का चिन्तन करना

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! उपशमप्रकरण के अनन्तर अब इस निर्वाण-प्रकरण का श्रवण करो। उसका यथार्थ ज्ञान हो जाने पर यह मोक्षरूप फल देता है। जिस समय महाराज वसिष्ठजी उस प्रकार के गम्भीर अर्थ के प्रतिपादक वचन कह रहे थे, उनके श्रवण के ही आनन्द में निमग्न श्रीराम मौन होकर स्थित थे; महामुनि वसिष्ठजी की वाणी और उसके द्वारा प्रतिपादित अर्थों को मन में धारणकर राजा लोग, जो बाह्य विषयों के विज्ञान एवं शारीरिक चेष्टा से रहित थे, निश्चेष्ट होकर चित्रलिखित मूर्ति की तरह अचल स्थित थे। एवं महामुनि वसिष्ठजी द्वारा उपदिष्ट वाक्यों का बड़े आदर के साथ श्रोता मुनिगण विचार कर रहे थे, उस समय दिन के चतुर्थ भाग में भेरी और शंख की ध्वनि हुई । उक्त ध्वनि से मुनि वसिष्ठजी का उन्नत स्वर भी उसी प्रकार दब गया, जिस प्रकार मेघों के नाद से मयूरों का शब्द। धीरे-धीरे उस शंख-ध्वनि के शान्त होने पर मुनिश्रेष्ठ महाराज श्रीवसिष्ठजी सभा में श्रीरामचन्द्रजी से यों मधुर वचन कहने लगे-'श्रीराम ! मेरी इस वाणी के अर्थ को तुमने क्या उसी तरह ग्रहण किया, जिस तरह हंस जल का त्यागकर दूध को ग्रहण करता है ? तुमको इसे अपनी बुद्धि से अच्छी तरह बार-बार विचारकर उसी के अनुसार चलना चाहिये। समस्त शास्त्रों के सिद्धान्त को समझकर तुम उदार चित्त से मेरे द्वारा कथित प्रयोजन की सिद्धि के लिये असंग होकर समयानुसार प्राप्त व्यवहार का परिपालन करो।'

'सभासद्गण ! महाराज दशरथ ! श्रीराम ! लक्ष्मण ! तथा अन्यान्य नृपवर्ग ! आप सभी आज अपने-अपने नित्यकर्मों का अनुष्ठान करें; क्योंकि आज का दिन प्रायः समाप्त होने जा रहा है। अब जो विचार करना शेष है, उसका जब आप लोग प्रातःकाल सभा में आयेंगे, तब हम लोग विचार करेंगे।'

'श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! मुनिवर वसिष्ठजी के इस प्रकार कहने पर वह सभा उठ खड़ी हुई। समस्त सभा का वदन कमल की तरह था, अतएव वह विकासयुक्त कमलिनी के सदृश भली मालूम पड़ती थी। उस समय अन्यान्य राजाओं ने महाराज दशरथ की स्तुति की, श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

किया तथा महर्षि वसिष्ठजी की विशेषरूप से स्तुति की। तदनन्तर वे अपने-अपने आश्रम में चले गये। आकाशचारी देवताओं की वन्दना करके महाराज वसिष्ठजी महर्षि विश्वामित्र के साथ आश्रम में जाने के लिये आसन से उठे। दशरथ आदि राजा तथा मुनि लोग अपने अनुरूप उपदेष्टा मुनिवर वसिष्ठजी के पीछे-पीछे आश्रमपर्यन्त जाकर उनकी आज्ञा लेकर कोई आकाश की ओर, कोई अरण्य की ओर, कोई राजमन्दिर की ओर कमल से उत्थित भ्रमरों की तरह चले गये। श्रीराम, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न ने गुरुवर वसिष्ठजी आश्रम में उनके साथ जाकर उनके चरणों की भक्तिपूर्वक पूजा की और फिर दशरथजी के भवन की ओर चले गये। अपने-अपने स्थान में आकर उन सब श्रोताओं ने स्नान किया, देवता और पितरों की पूजा की तथा ब्राह्मणों और अतिथियों का स्वागत-सत्कार किया। इन क्रियाओं से निवृत्त होकर उन श्रोताओं ने ब्राह्मणों आदि से लेकर नौकर-पर्यन्त अपने-अपने परिवारों के साथ वर्ण-धर्म के क्रमानुसार भोज्यपदार्थों का भोजन किया। दैनिक क्रियाओं के साथ सूर्यभगवान् के अस्ताचल की ओर प्रस्थान करने पर तथा रात्रि-कृत्यों के साथ निशाकर के उदित होने पर कौशेय आस्तरणों से युक्त शय्याओं पर तथा आसनों पर बैठकर भूमि पर विहार करने वाले मुनि, राजा, राजपुत्र तथा महर्षि लोग अत्यन्त आदरपूर्वक महर्षि वसिष्ठ के वदनकमल से निर्गत संसार-तरण के उपाय का एकाग्र चित्त से यथावत् विचार करने लगे। तदनन्तर प्रहरमात्र में वे श्रोतागण सुन्दर स्वप्न से युक्त निद्रा को प्राप्त हुए। श्रीराम, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न- इन तीनों भ्राताओं ने तीन प्रहर तक महर्षि के उपदेश का निरन्तर विचार किया। उन्होंने केवल आधे प्रहर (दो घड़ी) तक ही नयनों को मूँदकर उत्तम स्वप्न से युक्त तथा क्षणभर में श्रम का निवारण कर देने वाली निद्रा प्राप्त की।

पहला सर्ग समाप्त

दूसरा सर्ग

श्रीरामचन्द्रजी की ब्रह्मरूपता का निरूपण

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-रात्रि के क्षीण होने पर श्रीराम, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न अपने-अपने अनुचरों के साथ उठकर स्नान, संध्या आदि कर्मों का अनुष्ठान करके महामुनि श्रीवसिष्ठजी के आश्रम पर चले गये। वहाँ उन्होंने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

संध्या करके आश्रम से बाहर निकलते हुए महर्षि वसिष्ठजी के चरणों में अर्घ्य प्रदानकर प्रणाम किया। क्षणभर में महर्षि वसिष्ठजी का आश्रम मुनियों, ब्राह्मणों और राजाओं से तथा हाथी, घोड़े, रथ आदि अन्यान्य वाहनों से इतना भर गया कि वहाँ तनिक भी अवकाश नहीं रहा। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ महाराज वसिष्ठजी उस सेना के साथ ही श्रीराम आदि से अनुगत होकर यथासमय दशरथजी के घर पर पहुँचे। वहाँ पर शीघ्रतापूर्वक मिलने के उत्साह से संध्या-वन्दन से निवृत्त हुए महाराज दशरथ ने आदपूर्वक दूर मार्ग में ही जाकर महर्षि का पूजन किया। वे सब श्रोतागण पुष्पों, मोतियों तथा मणियों के समूहों से पहले की अपेक्षा पुनः अधिक सजायी गयी सभा में प्रविष्ट होकर अपने-अपने आसनों पर बैठ गये। इसके अनन्तर उसी समय पहले दिन के जो आकाशचर, भूचर आदि श्रोता थे, वे सब-के-सब आ गये। एक दूसरे का अभिवादन करके सभा बैठ गयी। तदनन्तर वाक्यरचना में पटु महामुनि वसिष्ठजी पूर्व प्रकरण के अनुसार ही वाक्यार्थ के विज्ञाता श्रीरघुनन्दन को कहने लगे।

महाराज वसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! मैंने कल सुन्दर पद्धति से जो अत्यन्त गहन अर्थ वाला तथा परमार्थ का बोधक वाक्य कहा था, उसका क्या तुमको स्मरण है ? अब मैं तुम्हारे समझने के लिये यह और भी शाश्वत सिद्धिदायक उपदेश करता हूँ, इसे सुनो। श्रीराम ! परमात्मतत्त्व के यथार्थ ज्ञान से अज्ञान का क्षय तथा वासना का विनाश हो जाने पर शोकशून्य परमपद प्राप्त हो जाता है। देश, काल और वस्तु से रहित एक अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा ही है। उसके सिवा द्वित्वरूप जगत् तो अज्ञान से प्रतीत होता है। वास्तव में परमात्मा के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है; क्योंकि जहाँ समस्त पदार्थों से रहित, परम शान्त, समान भाव से प्रकाशित एक सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है, वहाँ उस परमात्मा के सिवा दूसरा पदार्थ कैसे रह सकता है। जो सम्पदाएँ हैं, जो दृश्य हैं, जो प्राणी हैं और जो उनकी इच्छाएँ हैं-इन सबके रूप में आदि और अन्त से रहित एक विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही है, जैसे समुद्र की तरगें समुद्र ही हैं। पाताल में, भूमि में, स्वर्ग में, तृण आदि जड़ पदार्थों में, प्राणी एवं आकाश में-सर्वत्र वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है, दूसरा कुछ नहीं। जैसे समुद्र की नाना तरगें समुद्र ही हैं, वैसे ही उपेक्ष्य, हेय, उपादेय, बन्धु-बान्धव, सम्पदाएँ, देह-इन सभी रूपों में आदि और अन्त से रहित परब्रह्म ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्रकाशित है। जब तक अज्ञान की कल्पना, ब्रह्म से अतिरिक्त पदार्थ की भावना और जगज्जाल में आस्था रहती है, तभी तक चित्त आदि की कल्पना रहती है। जब तक देह में अहंभावना रहती है, जब तक इस दृश्य में आत्मरूपता रहती है, जब तक यह मेरा है–इस प्रकार की आस्था रहती है, तभी तक चित्त भ्रम रहता है।

जब तक पूर्णता का उदय नहीं होता और जब तक सज्जनों के संसर्ग से अज्ञान का विनाश नहीं होता, तभी तक चित्त आदि पतन की ओर जाते रहते हैं। जब तक सच्चिदानन्द परमात्मा के यथार्थ अनुभव से यह जगत् की वासना शिथिल नहीं हो जाती, तभी तक चित्त आदि प्रतीत होते हैं। जब तक अज्ञानरूप मूर्खता रहती है, जब तक विषयाभिलाषा से विवशता रहती है एवं जब तक मूर्खतावश मोह का समुद्र बना रहता है, तब तक चित्त आदि की कल्पना रहती है। किंतु जिसका अन्तःकरण भोगों में आस्था नहीं रखता, जिसको सुशीतल निर्मल निर्वाण परमपद प्राप्त हो चुका है एवं जिसके आशापाश के जाल छिन्न-भिन्न हो गये हैं, उसका चित्तरूप भ्रम नष्ट हो जाता है। मिथ्या भ्रम उत्पन्न करने वाले अनात्मदर्शन का विनाश तथा परमार्थभूत सच्चिदानन्द परमात्मज्ञानरूप उत्तम सूर्य का उदय होने पर चित्त विनष्ट होकर उसी प्रकार पुनः दिखायी नहीं देता, जिस प्रकार अग्नि में सूखा पत्ता या घी की बूँद गिरने पर पुनः दिखायी नहीं देती। परमात्मा के सगुण-निर्गुण स्वरूप का साक्षात्कार किये हुए जो जीवन्मुक्त महात्मा हैं, उनका पवित्र अन्तःकरण ही 'सत्व' नाम से कहा गया है जो समरूप परमात्मपद में नित्य स्थित, चित्तरहित तत्वज्ञानी महात्मा हैं, वे सत्वगुण में स्थिति से उत्पन्न उपेक्षा से ही लीलामात्र व्यवहार करते हैं। परमात्मा में स्थित, संयतेन्द्रिय, परम शान्त महात्मा पुरुष उस ब्रह्मरूप ज्योति का सदा ही साक्षात्कार करते रहते हैं; अतः उनमें द्वैतभाव, एकभाव और वासना नहीं हो सकती। 'मैं सर्वात्मक हूँ' इस प्रकार की परिपूर्ण आत्मभावना से समस्त त्रिजगत्रूपी तृण का सच्चिदानन्दरूप अग्नि में हवन करने वाले महामुनि के चित्त आदि भ्रम निवृत्त हो जाते हैं। विवेक से विशुद्ध हुआ चित्त सत्व कहा जाता है। वह फिर मोहरूपी फल उसी प्रकार नहीं उत्पन्न करता, जिस प्रकार दग्ध हुआ बीज नहीं उगता। मूढ़ मनुष्यों के भीतर पुनर्जन्म का विधायक वासनायुक्त चित्त होता है; किंतु तत्वज्ञान हो जाने पर वही वासना

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रहित सत्वरूप होकर पुनर्जन्म का बाधक हो जाता है। श्रीराम ! तुम प्राप्तव्य वस्तु को प्राप्त कर चुके हो। तुम्हें कुछ भी प्राप्त करना नहीं है, तुम्हारा चित्त शुद्ध है और ज्ञानरूप अग्नि से दग्ध हो चुका है; अतः वह भावी जन्म का कारण नहीं हो सकता अर्थात् तुम जन्म-मरण से रहित हो। तुम वास्तव में अवयव और सीमा से रहित चेतनस्वरूप ही हो; अतः तुम अपने स्वरूप का स्मरण करो, उसे कभी भूलो मत। तुम वही परिपूर्ण, परम शान्त, सच्चिदानन्द परब्रह्मरूप परमात्मा हो। श्रीराम ! सारा चराचर चेतन-समूह तुम्हारे अंदर है और वास्तव में वह नहीं है। तुम जो हो सो हो, तुम सत् भी हो, असत् भी हो। जो कुछ सत्-असत् प्रतीत होता है, वह तुम्हारा संकल्प होने से तुम ही हो और तुम स्वयं प्रकाशरूप हो। वास्तव में जड़-पदार्थ विशेष तुम नहीं हो और न वह सब तुममें है। तुम्हारा संकल्प होने से वह तुम्हारा स्वरूप भी है और वस्तु से असत् होने के कारण वह नहीं है, तुम अपने सच्चिदानन्दस्वरूप में नित्य स्थित हो। तुम्हें नमस्कार है ! तुम आदि और अन्त से रहित, शिला के समान चेतनघन हो- जिस प्रकार शिला में पत्थर के सिवा कोई वस्तु नहीं, उसी तरह तुममें एक चेतन के सिवा और कुछ नहीं है। तुम आकाश की तरह निर्मल और स्वस्थ हो। तुम लीला से ही सम्पूर्ण जगत् को अपने एक अंश में धारण किये हुए हो। ऐसे ब्रह्मस्वरूप तुम्हें नमस्कार है !

दूसरा सर्ग समाप्त

तीसरा सर्ग

ब्रह्म की जगत्कारणता और ज्ञान द्वारा माया का विनाश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-निष्पाप श्रीराम ! जिस प्रकार समुद्र में उठने वाली असंख्य तरंगों का मूल कारण जल ही है, उसी प्रकार जो नाना प्रकार के असंख्य ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति और धारण करने वाला चेतन है, वह तुम हो। समरूप, आकाश की तरह सौम्य, बड़ी-बड़ी सृष्टिरूपी जल-तरंगों से घन प्रकाशमय परमात्मा-चैतन्यरूप समुद्र तुम ही हो। जिस प्रकार अग्नि से उष्णत्व भिन्न नहीं है, कमल से सौगन्ध्य भिन्न नहीं है, कज्जल से कृष्ण रूप भिन्न नहीं है, बरफ से शुक्ल रूप भिन्न नहीं है, ईख से माधुर्य भिन्न नहीं है, तेज से प्रकाश भिन्न नहीं है, चेतन से उसका अनुभव भिन्न नहीं है, जल से तरंग भिन्न नहीं है, उसी प्रकार सच्चिदानन्द ब्रह्म से चराचर जगत् भिन्न नहीं है; क्योंकि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ब्रह्म ही सबका कारण है। इसलिये चेतन से उसका अनुभव भिन्न नहीं है। अनुभव से 'अहम्' भिन्न नहीं है, 'अहम्' से जीव भिन्न नहीं है, जीव से मन भिन्न नहीं है, मन से इन्द्रिय भिन्न नहीं है, इन्द्रियों से देह भिन्न नहीं है, देह से यह जड़ दृश्य जगत् भिन्न नहीं है, जगत् से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं है।

श्रीराम ! यह दृश्यमान जगत्रूपी चक्र चिन्मय परमात्मा ने ही अनादि काल से अपने संकल्प द्वारा प्रवृत्त नहीं किया है। यथार्थ में तो यह सब कुछ विभागरहित अनन्त सच्चिानन्दरूप आकाश ही अपने आप में स्थित है। उसके सिवा दूसरा और कुछ भी नहीं है। ज्ञानी पुरुष इन्द्रियों और मन के व्यापारों को करता हुआ भी कुछ भी नहीं करता; क्योंकि उसमें कर्तृत्व है ही नहीं। श्रीराम ! तुम भीतर से आकाश की तरह निर्मल हो, बाहर से अपने वर्णाश्रमानुकूल आचरण करते हो एवं हर्ष और ईर्ष्या आदि विकारों में काष्ठ और लोष्ठ के समान निर्विकार हो। जो तत्क्षण मारने के लिये उद्यत अत्यन्त ही कठोर शत्रु है, उसे स्वाभाविक प्रियतम मित्र के रूप में जो देखता है, वही यथार्थ देखने वाला ज्ञानी महात्मा है। जिस प्रकार तटवर्ती वृक्ष को नदी वेग से मूलोच्छेदनपूर्वक उखाड़कर फेंक देती है, उसी प्रकार जो महात्मा सौहार्द और ईर्ष्या से वेग से समूल उखाड़ कर फेंक देता है, वही हर्ष और ईर्ष्यारूपी दोषों का विनाश कर सकता है। जिस पुरुष के अन्तःकरण में 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थों में और कर्मों में लिप्त नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकों को मारकर भी वास्तव में न तो मारता है और न पाप से बँधता है। श्रीराम ! जिसका त्रिकाल में अस्तित्व नहीं है, उसकी व्यावहारिक सत्ता का ज्ञान कराने के लिये 'माया' शब्द को प्रयोग किया गया है। वह माया उसका यथार्थ ज्ञान हो जाने से निस्संदेह विनष्ट हो जाती है।

निष्पाप श्रीराम ! मन, बुद्धि, अहंकार तथा इन्द्रिय आदि सब कुछ जड़ता रहित एकमात्र चिन्मय परमात्मा ही है। फिर जीवात्मा उस परमात्मा से अलग कैसे रह सकता है, अर्थात् वह भी परमात्मा का स्वरूप ही है। जब भोग–तृष्णा रूपी विष का आवेश विनष्ट हो जाता है– संसार के विषय भोगों से तीव्र वैराग्य हो जाता है, तब अज्ञान उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे गत रात्रि के अन्धकार के नष्ट हो जाने पर रतौंधी भाग जाती है, भली प्रकार से आलोचित अध्यात्मशास्त्ररूपी विचार से तृष्णाविषरूपी महामारी क्षीण हो जाती

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Sharma (I.F.S) Jammu Collection

है। जैसे विस्तृत आकाश में अव्यक्त वायु स्थिर है, वैसे ही भावाभाव से रहित हुए तुम उस अत्यन्त विस्तृत परम पदरूप अपने ब्रह्मस्वरूप में स्थिर हो। श्रीराम ! जब साधारण मनुष्यों को भी अपने कुलगुरु के वचन लग जाते हैं, तब फिर तुम उदार (विशाल) बुद्धि को मेरा उपदेश क्यों नहीं लगेगा ? क्योंकि तुमने अपनी बुद्धि से मेरे वचनों को ग्रहण करने योग्य समझ लिया है, अतएव मेरे वचन तुम्हारे हृदय के अंदर प्रविष्ट हो जाते हैं। श्रेष्ठ महानुभाव श्रीराम ! मैं रघुकुल को उन्नत करने वाले तुम लोगों का सदा से कुलगुरु हूँ, इसलिये तुम मेरे द्वारा कहे गये शुभ वचनों को हृदय में हार की तरह धारण करो।

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-भगवन् ! मैं केवल परम शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ और परमानन्दमय स्वरूप में सुखपूर्वक स्थित हूँ। मुने ! मुझे कुहरे से शून्य दिग्मण्डल की भाँति भली प्रकार प्रसन्न यह समस्त जगत् वास्तविक सच्चिदानन्दस्वरूप दीख रहा है। भगवन् ! मैं संदेह से, आशारूप मृगतृष्णा से, राग और वैराग्य से रहित हूँ। नाथ ! मैं अपने आप से ही अपने उस अविनाशी विज्ञानानन्दघन स्वरूप में स्थित हूँ, जहाँ पर अमृत का रसास्वाद भी तृण के सदृश नीरस होकर उपेक्षणीय हो जाता है। मैं अपने प्राकृतस्वरूप में स्थित हूँ, स्वस्थ हूँ, प्रसन्न हूँ। लोक जहाँ विश्राम करते हैं, उस सुख का केन्द्रस्वरूप मैं हूँ। अतएव मैं वास्तविक राम हूँ। शुद्ध आत्मा में अज्ञान आदि विकार कैसे आ सकते हैं। सदा शुद्ध आत्मा ही सर्वत्र विद्यमान है। सब कुछ आत्मा ही है। यह दूसरा है, यह दूसरा है-इत्यादि असत् कल्पनाएँ कैसे आ सकती हैं।

तीसरा सर्ग समाप्त

चौथा सर्ग

देह और आत्मा के विवेक का एवं अज्ञानी को देह में आत्मबुद्धि और विषयों में सुख-बुद्धि करने से दुःख की प्राप्ति का प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-महाबाहु श्रीराम ! तुम फिर भी मेरे परम रहस्यमय और प्रभावयुक्त वचन सुनो, जिन्हें मैं अतिशय प्रेम रखने वाले तुम्हारे लिये हित की इच्छा से कहता हूँ। श्रीराम ! जिस अज्ञानी पुरुष की अज्ञानवश देह में ही आत्मभावना उत्पन्न हो जाती है, उस पुरुष को इन्द्रियाँ रोषपूर्वक शत्रु बनकर पराजित कर देती हैं। किंतु जिस विवेकी पुरुष की ज्ञानपूर्वक एकमात्र नित्य परमात्मा के स्वरूप में ही स्थिति रहती है, उस निर्दोष पुरुष की इन्द्रियाँ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (N.F.S) Jammu Collection

संतोषपूर्वक मित्र बनकर रहती हैं, उसका पतन नहीं कर सकतीं। व्यवहार करते हुए जिस ज्ञानी पुरुष को निन्दनीय भोग्य पदार्थों में दोष-दर्शन के कारण निन्दा के सिवा स्तुति बुद्धि उत्पन्न होती ही नहीं, वह पुरुष दुःखदायी देह में किसलिये आत्मबुद्धि करेगा ? कभी नहीं करेगा। जैसे प्रकाश और अन्धकार एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न हैं, वैसे ही शरीर और आत्मा एक दूसरे से अत्यन्त विलक्षण हैं; क्योंकि शरीर जड़ और मिथ्या है तथा आत्मा चेतन और सत्य है। इसी से न आत्मा शरीर का सम्बन्धी है और न शरीर ही आत्मा का सम्बन्धी, अर्थात् परस्पर विरुद्ध होने के कारण इनका सम्बन्ध सम्भव नहीं है। भगवन् ! समस्त भावविकारों से नित्यमुक्त एवं निर्लिप्त आत्मा न कभी उत्पन्न होता है और न कभी विनष्ट ही होता है, वरं वह सदा-सर्वदा एकरूप से रहता है। पत्थर के समान जड़, ज्ञानरहित, तुच्छ, कृतघ्न तथा विनाशशील इस शरीर का जो कुछ भी होने वाला हो वह भले ही हो, इससे आत्मा की न तो हानि है और न इससे उसका कोई सम्बन्ध ही है।

विभिन्न दृष्टियों से देखने पर भी सद्रूप ब्रह्म कभी असद्रूप नहीं हो सकता, इसी प्रकार सर्वव्यापक जीवात्मा शरीर के साथ तनिक भी सम्बन्ध सम्भव नहीं। जैसे जल में स्थित कमलपत्र का जल से किंचिन्मात्र सम्बन्ध नहीं होता, वैसे ही देह में स्थित जीवात्मा का भी देहसत्ता के साथ किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। परमात्मा का अच्छी प्रकार साक्षात्कार हो जाने पर परमार्थ सत्यरूप परमात्मा में ही स्थित हो जाती है और देहात्मबुद्धिरूप अज्ञान-प्रयुक्त भ्रम नष्ट हो जाता है। देह और आत्मा के यथार्थ ज्ञान से देह की असत्ता और आत्मा की सत्ता सिद्ध हो जाती है। सभी प्राणियों में अविनाशी चेतन रहता ही है, परंतु जीवात्मा को इसका भली प्रकार ज्ञान न होने के कारण उसमें कायरता आ गयी है। ऐसे अज्ञानी जीवों के शरीर से श्वास उसी प्रकार निकलते रहते हैं, जैसे लोहार की धोंकनी से हवा निकलती है; अतः उनका जीवन व्यर्थ है। अज्ञान ही आपत्तियों का आश्रय स्थान है। भला, बतलाइये तो सही कि कौन-सी आपत्तियाँ अज्ञानी को नहीं प्राप्त होतीं ? अज्ञानी को उग्र दुःख और सांसारिक क्षणिक सुख भी बार-बार आते और जाते रहते हैं। देह, धन, स्त्री आदि में आसक्ति रखने वाले अज्ञानी का यह दुष्ट दुःख कभी भी शान्त नहीं होता। इस अनात्मभूत जड़ देह में आत्मभाव करने वाले अज्ञानी पुरुष की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

असत्य बोधमयी माया क्या किसी प्रकार भी नष्ट हो सकती है ? अर्थात् बिना ज्ञान के किसी प्रकार भी नष्ट नहीं हो सकती। उस अज्ञानी पुरुष का ही जन्म पुनः पुनः बालपन प्राप्त करता रहता है, बालपन बार-बार यौवन प्राप्त करता रहता है, यौवन बार-बार वार्धक्य प्राप्त करता रहता है और वार्धक्य बार-बार मरण प्राप्त करता रहता है। अज्ञानी पुरुष ही इस जगत्‌रूपी जीर्ण घटीयन्त्र (रहँट) में संसाररूपी रज्जु से बँधा हुआ कलशरूप होकर जल में डूबता और निकलता रहता है। अर्थात् यह अज्ञानी जीव संसार में बार-बार जन्मता-मरता रहता है। जिस प्रकार पक्षिणियाँ पिंजर से बाहर निकल नहीं पातीं, वैसे ही उदरभरण में अति आसक्तिरूपी बन्धन से बँधे ज्ञानदृष्टि से हीन अज्ञानी पुरुष की बुद्धियाँ अपार संसार समुद्र के पार नहीं जा सकतीं। श्रीराम ! विषयों की जो केवल ऊपर-ऊपर से दिखायी पड़ने वाली मधुरता, परिणाम में अनर्थरूपता, आद्यन्तवत्ता, देशतः परिच्छिन्नता और समस्त अवस्थाओं में नश्वरता प्रसिद्ध है, वे सब अज्ञानरूपी वृक्ष के ही फल हैं।

चौथा सर्ग समाप्त

पाँचवाँ सर्ग

अज्ञान की महिमा और विभूतियों का सविस्तार वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! मदरूपी चन्द्र के उदित होने पर मोतियों से वेष्टित तथा रत्नों से सुशोभित स्त्रियाँ क्षुब्ध काम-क्षीरसागर की तरंग के समान जो दिखायी पड़ती हैं, वह केवल अज्ञान की ही विभूति है। वसन्त ऋतु में भूमि पर वनखण्डों में पुष्प काम के दास कामियों को जो रमणीय दिखायी पड़ते हैं, उसमें भी अज्ञान ही कारण है। गीध, गीदड़, कुत्ते आदि के खाने योग्य मांस-पिण्डरूप स्त्रियों के शरीरों की जो चन्द्रमा, चन्दन और कमल से उपमा दी जाती है, वह भी अज्ञान की ही महिमा है। लारसे आर्द्र ओष्ठ नामक मांस के टुकड़े की जो रसायन, अमृत, मधु आदि के साथ उपमा दी जाती है, वह भी अज्ञान ही है। आरम्भ में अज्ञानी लोगों को अत्यन्त मधुर लगने वाली, मध्य में राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों से बाँधने वाली एवं अन्त में शीघ्र नष्ट हो जाने वाली धनराशि की जो अभिलाषा की जाती है, वह भी अज्ञान ही है। जिसने अनन्त ब्रह्माण्डरूपी पके हुए फलों को ग्रास बना लिया है और सदा खाने की चेष्टा करने वाली जठराग्नि से युक्त है, वह काल कल्पों तक जो तृप्त नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

होता, उसमें भी अज्ञान की ही महिमा है। जीवों की जो यौवन रात्रि चिन्तारूपी पिशाचों से उपहत तथा विवेकरूपी चन्द्रमा के उदय से शून्य, अतएव अन्धकार की तरह प्रकाशरहित बीत जाती है, वह अज्ञान का ही विलास है। आरम्भकाल में कानों के संनिहित कपोल-प्रदेश को आक्रान्त कर चारों ओर से निश्चयपूर्वक स्फुरणशील जरारूपी बूढ़ी बिल्ली, जो यौवनरूपी चूहों का भक्षण करती रहती है, वह भी अज्ञान की ही महिमा है। प्रतीतिरूपी पुष्पों से उज्जवल व्यावहारिक सत्तारूपी लता, जिसमें जगत्‌रूपी पल्लव हैं और जो धर्म-अर्थरूपी फल धारण करती है एवं विकसित होती है, इसका कारण भी माया ही है। जिसमें बड़े-बड़े पर्वत ही खंभे हैं, सूर्य-चन्द्र ही खिड़कियाँ हैं, आकाश ही आच्छादन (छत) है, ऐसा जगत्-त्रयरूपी महल जो खड़ा हो जाता है, वह भी माया की ही महिमा है। अपनी वासनारूपिणी शलाकाओं से निर्मित शरीर के भीतर स्थित इन्द्रिय-समूहरूप पिंजरे में जो जगत् के अन्तर्गत जीवरूपी पक्षी आशारूपी सूत से बँधा हुआ है, उसमें भी उसका अज्ञान ही कारण है।

संसाररूपी स्वल्प जलाशय में स्फुरित होने वाली सृष्टिरूपी क्षुद्र मछली को शठ कृतान्तरूपी वृद्ध गीध जो पकड़ लेता है, उसमें भी माया की ही महिमा है। परमपद अचल ब्रह्म में संकल्प से उत्पन्न असंख्य जगत्‌रूप जंगलों के जाल युगान्तरूपी अग्नि से जो दग्ध हो जाते हैं, उसमें भी अविद्या ही कारण है। निरन्तर उत्पत्ति और विनाश से तथा दुःख और सुख की सैकड़ों दशाओं से, इस प्रकार जगत्स्थिति जो पुनः-पुनः बदलती रहती है, उसमें भी अविद्या ही कारण है। वासनारूपी जंजीरों से बँधी हुई अज्ञानियों की दृढ़ धारणा क्षुभित युगों के आवागमन तथा कठोर वज्रों के आघातों से भी जो विदीर्ण नहीं होती, इसमें उनकी अविद्या ही कारण है। राग-द्वेष से होने वाले उत्पत्ति-विनाश से तथा जरा-मरणरूपी रोग से समस्त जंगम जाति जीर्ण-शीर्ण हो गयी है, इसमें उनका अज्ञान ही कारण है। कभी लक्ष्य में न आने वाले बिल में रहने के कारण अदृश्य और अपरिमित भोजन करने वाला कालरूपी सर्प निर्भय होकर इस समस्त जगत् को जो क्षण भर में ही निगल जाता है, यह सब माया की ही महिमा है। प्रत्येक कल्परूप क्षीण में क्षीण हो जाने वाले ब्रह्माण्डरूप प्रस्फुट बुद्बुद, जो भयंकर कालरूपी महासमुद्र में उत्पन्न और विनष्ट हो जाते हैं, यह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भी माया की महिमा है। उत्पन्न हो-होकर नष्ट हो जाने वाली प्रतप्त सृष्टिरूपी ये बिजलियाँ, जिन्हें चिन्मय परमात्मा के सकाश से प्रकाश-शक्ति प्राप्त हुई है, जो प्रकट होती है, वह भी माया की महिमा है। अनन्त संकल्पोंवाली समस्त विकल्पों से शून्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्मरूप पद में आश्चर्यों की पूर्ति करने वाली ऐसी कौन-सी शक्तियाँ नहीं हैं ? अर्थात् सभी शक्तियाँ उसमें विद्यमान हैं। उस प्रकार सुदृढ़ संकल्पों से प्राप्त अर्थसमूह से देदीप्यमान जगत् की ब्रह्म में जो यह कल्पना है, उसमें भी अज्ञान ही हेतु है। इसलिये श्रीराम ! जो कुछ बारंबार प्राप्त होने वाली सम्पत्तियाँ या आपत्तियाँ हैं, जो बाल्य-यौवन-जरा-मरणरूपी महान् संताप हैं, जो सुख-दुःख की परम्परारूप संसार-सागर में गोता लगाना है, वह सब अज्ञानरूपी गाढ़ अन्धकार विभूतियाँ हैं।

पाँचवाँ सर्ग समाप्त

छठवाँ सर्ग

विद्या एवं अविद्या के स्वरूप

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! यह अविद्या का कार्य संसार-लता कब और किस प्रकार विकसित हुई, इसका मैं वर्णन करता हूँ, सुनो ! यह अविद्या का कार्य संसारलता बड़े-बड़े मेरु आदि पर्वतरूप पर्वों से युक्त, ब्रह्माण्डरूपी त्वचा से आवृत और जनरूपी पत्र, अंकुर आदि विकासों से युक्त है। ये तीनों लोक इसकी देह हैं। इस अविद्यारूपी लता में प्रतिदिन वृद्धि प्राप्त करने वाले सुख, दुःख, जन्म, मृत्यु और ज्ञान तो फल हैं और अज्ञान इसका मूल है। जन्म से ही अविद्या उत्पन्न होती है और वह बाद में जन्मान्तररूप फल प्रदान करती है। जन्म से ही वह संसार के रूप में अपना अस्तित्व प्राप्त करती है और बाद में स्थितरूप फल प्रदान करती है। वह अविद्या अज्ञान से वृद्धि प्राप्त करती है और बाद में अज्ञानरूप फल देती है। ज्ञान से आत्मा का अनुभव प्राप्त करती और अन्त में आत्मा का अनुभवरूप फल देती है। प्रतिदिन आकाश में चारों ओर से विकसित होने वाली चन्द्र, सूर्य आदि के सहित ग्रहरूप ज्योतियों की जो पंक्तियाँ हैं, वे ही इस सृष्टिरूपा लता के पुष्प हैं। रघुनन्दन ! आकाश मण्डल को व्याप्त कर स्थित इस लता के ऊपर प्रस्फुरित नक्षत्र और तारे ही पुष्पों की कलियाँ हैं। चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि के प्रकाश इस लता के पराग हैं। इसी पराग से यह शुभांगी स्त्री के समान लोगों के मन का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

आकर्षण करती है। यह लता चित्तरूप हाथी द्वारा प्रकम्पित, संकल्परूप मधुर कलनाद करने वाली कोकिल से युक्त, इन्द्रियरूपी साँपों से वेष्टित और तृष्णा रूपी त्वचा से आच्छादित, चतुर्दश भुवनरूपी वनों से शोभित, सात समुद्ररूपी सुन्दर खाइयों से आवृत एवं स्त्रीरूप पुष्प समूहों से शोभित, मन के स्पन्दरूप वायु से कम्पित, शास्त्रनिषिद्धि कर्मरूपी अजगर से व्याप्त, स्वर्ग की शोभारूपी पुष्पमण्डल से शोभित तथा जीवों की जीविका से पूर्ण एवं अनेक प्रकार के विषयभोगों की वासनारूप गन्धों से अज्ञों को उन्मत्त करने वाली है। वह अविद्यारूपा लता अनेक बार उत्पन्न हो चुकी है और उत्पन्न हो रही है, अनेक बार मर चुकी है और मर भी रही है। वह अतीत काल में थी और वर्तमान काल में भी है। वह सर्वदा असत्पदार्थ के सदृश होती हुई थी सत्य पदार्थ के सदृश बार-बार प्रतीत होती है तथा नित्य विनष्ट भी होती है। यह अविद्या का कार्य संसार निश्चय ही महती विषयमयी लता है; क्योंकि अविचार से इसका सम्बन्ध होने पर यह तत्क्षण संसार रूपी विष से उत्पन्न होने वाली मूर्च्छा लाती है और विवेकपूर्वक सत्-असत् के विचार से तत्क्षण नष्ट हो जाती है। इसलिये यह विवेकी के लिये तो नष्ट हो जाती है और अविवेकी के लिये स्थित रहती है। यह सृष्टिरूपा लता जल के रूप में, पर्वतों के रूप में, नागों के रूप में, देवताओं के रूप में, पृथिवी के रूप में, द्युलोक के रूप में, चन्द्र, सूर्य और तारों के रूप में विस्तृत हो रही है। श्रीराम ! इन समस्त भुवनों में उत्कृष्ट प्रभाव से चारों ओर व्याप्त अथवा जीर्णता को प्राप्त हुए क्षुद्र तिनके के रूप में जो कुछ यह दृश्य प्रतीत हो रहा है, उस सबको अविद्या का कार्य होने से विनाशशील अविद्या ही समझना चाहिये। उसका विवेक-वैराग्यपूर्वक यथार्थ ज्ञान द्वारा विनाश हो जाने पर सच्चिदानन्दघन परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।

श्रीराम ! यहाँ दृश्यरूप जगत् के सम्बन्ध से और कल्पनाओं से रहित, परम शान्त, सबका आत्मस्वरूप केवल एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही है। जिस प्रकार जल तरंगें प्रकट होती हैं, वैसे ही उस परमात्मा के संकल्प से कलारूप प्रकृति प्रकट होती है। यह प्रकृति सत्व, रज, तम त्रिगुणमयी है। सत्व आदि तीन गुणस्वरूप धर्मों से युक्त प्रकृति ही अविद्या (माया) है। यही प्राणियों का संसार है। इस प्रकृति से पार हो जाना ही परमपद की प्राप्ति है। जो कुछ भी यह दृश्य-प्रपंच दिखाई पड़ता है, वह सब इसी अविद्या का कार्य होने से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उसी के आश्रित है। श्रीराम ! ऋषि, मुनि, सिद्ध, दिव्य नाग, विद्याधर, देवता-इनको प्रकृति के सात्त्विक, अंशस्वरूप जानो। प्रकृति का जो शुद्ध सत्व-अंश है, वह विद्या है; उस विद्या से अविद्या उसी प्रकार उत्पन्न होती है, जिस प्रकार जल से बुदबुद उत्पन्न होते हैं। और जिस प्रकार बुदबुद जल में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार उस विद्या में ही यह अविद्या विलीन भी हो जाती है। जैसे जल और तरंग की द्वित्वभावना से ही भिन्नता है, वैसेही विद्या और अविद्या-दृष्टियों की भेदभावना से ही भिन्नता है, वस्तुतः नहीं। जिस प्रकार परमार्थतः जल और तरंग की एक रूपता ही है, उसी प्रकार विद्या और अविद्या भी एक रूप ही हैं, पृथक् नहीं। वास्तव में तो एक परमात्मा से भिन्न विद्या और अविद्या नाम की कोई वस्तु ही नहीं है; अतः विद्या और अविद्या-दृष्टि का परित्याग करने पर यहाँ जो कुछ अवशिष्ट रहता है, वह परब्रह्म परमात्मा ही वास्तव में विद्यमान है, दूसरा नहीं; क्योंकि न अविद्या नाम का पदार्थ है और न विद्या नाम का ही पदार्थ है, इसलिये यह कल्पना व्यर्थ है। वास्तव में परमात्मा को छोड़कर बच रहने वाला कुछ भी नहीं है; यदि कुछ है तो वह एकमात्र चिन्मय परमात्मा ही है। जब परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं रहता, तब वह अज्ञान ही अविद्या कहलाता है और जब यथार्थ ज्ञान हो जाता है तब वह ज्ञान ही अविद्याक्षय-इस नाम से कहा जाता है। आतप और छाया की तरह परस्पर-विरुद्ध विद्या और अविद्या दोनों में से विद्या का अभाव होने पर अविद्या नामक मिथ्या कल्पना प्रकट होती है, जैसे सूर्य के अस्त हो जाने पर छाया-ही छाया रह जाती है। श्रीराम ! अविद्या का विनाश हो जाने पर विद्या और अविद्या दोनों ही कल्पनाओं का विनाश हो जाता है। इन दोनों का अभाव हो जाने पर एक प्राप्तव्य सच्चिदानन्द परब्रह्म ही बच रहता है। जैसे समुद्र तरंगों का और निर्मल मणि रश्मियों का खजाना है, वैसे ही सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही अनन्त चराचर प्राणियों का खजाना है। जैसे अनन्त घड़ों में एक ही आकाश बाहर-भीतर परिपूर्ण है, उसी प्रकार समस्त जड़-चेतन वस्तुओं में बाहर और भीतर भी एक अविनाशी सत् वस्तुरूप विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। जिस प्रकार अयस्कान्तमणि (चुम्बक) के सकाशमात्र से जड़ लोह क्रियाशील हो जाता है, वैसे ही एकमात्र चिन्मय परमात्मा के सकाश से जड़ देहादि पदार्थ क्रियाशील होते हैं। जगत् के एकमात्र कारण उस चिन्मय परमात्मा में उसकी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कल्पना से ही यह कल्पित दृश्य जगत् स्थित है–ठीक उसी प्रकार, जैसे चित्र विचित्र चंचल तरंग–समूह जल में स्थित है। वास्तव में अनन्त आकाश की तरह निराकार चिन्मय परमात्मा में यह कुछ भी नहीं है।

छठवाँ सर्ग समाप्त

सातवाँ सर्ग

स्थावरयोनि के जीवों के स्वरूप

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–श्रीराम ! परमात्मा के सिवा जो यह स्थावर–जंगमरूप जगत् प्रतीत होता है, यथार्थ में वह कुछ भी नहीं है; क्योंकि विवेकपूर्वक विचार करने पर जैसे रज्जु में होने वाले सर्पभ्रम से किसी भी सर्प की उपलब्धि नहीं होती, उसी प्रकार हृदय के भीतर जो यह देह में अहंता और बाह्य विषयों में ममतारूपी सम्बन्ध भी होता है, विवेकपूर्वक विचार करने पर उसकी किसी तरह भी उपलब्धि नहीं होती। जाने बिना ही भ्रम से ब्रह्म ही जगत् के रूप में प्रतीत होता है, ब्रह्म का अच्छी प्रकार ज्ञान हो जाने पर सम्पूर्ण जड़–चेतन की अन्तिम सीमारूप ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। अज्ञानी बालक की तरह यह जीवात्मा अज्ञान के कारण चित्तस्वरूप को प्राप्त हुआ, इसलिये चित्त के चलने पर अपने आपको चलता हुआ देखता है, चित्त के स्थिर होने पर अपने को भी स्थिर देखता है। यह आत्मा इस तरह अज्ञान से इस उपद्रवयुक्त चित्त को ही अपना स्वरूप समझता है। यह चित्त बालक यानी विवेकशून्य है, इसलिये वह चित्तप्राय मनुष्य रेशम के कीड़े की तरह अपने को चित्तगत वासनारूप दीर्घतन्तुओं से भीतर बाँधता हुआ भी नहीं जानता।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा–प्रभो ! अत्यन्त घनीभाव को प्राप्त हुआ अविवेक (अज्ञान) वृक्ष–पहाड़ आदि स्थावर योनियों को प्राप्त होता हुआ किस प्रकार स्थित रहता है ? यह कृपा करके कहिये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–रघुनन्दन ! अमनस्त्व अर्थात् सुषुप्ति की भाँति मन के लय को प्राप्त न हुआ और मनस्त्व अर्थात् मननशीलता से च्युत हुआ जीवात्मा स्थावर योनि में साक्षी (उदासीन) की भाँति स्थिर रहता है। तात्पर्य यह कि स्थावर योनियों में जीवात्मा का चित्त न तो सुषुप्ति की तरह विलीन ही होता है और न जंगम प्राणियों की तरह चंचल ही रहता है; बल्कि मूढ़ मनुष्य

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

की तरह वह बीच की सी स्थिति में रहता है। ज्ञातव्य ब्रह्म को जानने वाले पुरुषों में श्रेष्ठ श्रीराम ! उन स्थावर योनियों में जीवात्मा विवेकशून्य और दुःख का प्रतीकार करने में असमर्थ रहता है; अतः उन स्थावर शरीरों में मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा मैं मानता हूँ; क्योंकि वहाँ जीवात्मा कर्मेन्द्रियों से, ज्ञानेन्द्रियों के व्यापारों से तथा मानस व्यापारों से शून्य हुआ केवल सत्तामात्र से स्थिर रहता है।

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा-ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ महर्षे ! जिन स्थावर शरीर में जीवात्मा एकमात्र सत्तरूप से ही स्थित रहता है, वहाँ मुक्ति दुर्लभ है-ऐसा ही मैं भी मानता हूँ।

श्रीवसिष्ठजी बोले-श्रीराम ! बुद्धिपूर्वक विचारने पर यथार्थ वस्तुरूप परमात्मा के साक्षात्कार से चिन्मय सत्ता का जो सबमें समान भाव से अनुभव होता है, वही अविनाशी मोक्षपद है। परमात्मतत्त्व को यथार्थतः जान लेने पर वासनाओं का जो उत्तम यानी अशेषरूप से अभाव है, उसे ही उसमें समभाव से सत्तरूप मोक्ष पद कहा गया है। ज्ञानी महात्मा पुरुषों के साथ विचार करके और अध्यात्मभावना से शास्त्रों को समझकर सत्ता-सामान्य में जो निष्ठा होती है, उसी निष्ठा को मुनिलोग परब्रह्म कहते हैं। यही परब्रह्म की प्राप्ति है। जिसके भीतर मानस व्यापाररूप मनन भली भाँति लीन हो गया है तथा चारों ओर से जिसमें वासनाएँ तिरोहित हो गयी हैं, वह जड़ धर्मवाली स्थावर जीवों की सुषुप्ति सैकड़ों जन्मरूपी दुःखों को देती है। जड़ स्वभाववाले ये सभी वृक्ष पहाड़ आदि स्थावर योनि के जीव सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त हुए-से पुनः-पुनः जन्म के भागी होते हैं। श्रेष्ठ श्रीराम ! जिस तरह बीजों में अंकुर से लेकर पुष्पतक पदार्थ स्थित हैं एवं जिस तरह मिट्टी में घट स्थित है, उसी तरह स्थावरों के भीतर भी अपनी वासना स्थित है। वासना, अग्नि, ऋण, व्यधि, शत्रु, स्नेह, विरोध एवं विष-ये थोड़े-बीज ज्ञानाग्निसे दग्ध हो गया है और जिसने सबमें समान सत्तारूप परमात्मा को प्राप्त कर लिया है, वह महात्मा पुरुष, चाहे सदेह हो या देहसे रहित, पुनः कभी दुःख का भागी नहीं होता।

श्रीराम ! आत्मदर्शन के विरोधी अज्ञान से आवृत हुई यह चेतनशक्ति संसाररूप भ्रम को जन्म देती है और अज्ञान से मुक्त होने पर सम्पूर्ण दुःखों का विनाश कर देती है। इस आत्मदृष्टि का जो अभाव है, उसी को विद्वान् लोग

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अविद्या कहते हैं। अविद्या जगत की कारणभूत है, अतः उसी से सम्पूर्ण पदार्थों की उत्पत्ति होती है। रूपरहित इस अविद्या का जब यथार्थ ज्ञान हो जाता है तब तुरंत यह उसी प्रकार विनष्ट हो जाती है, जैसे घाम में तुषार के परमाणु गल जाते हैं। दीपक को प्रज्वलित करने पर जिस प्रकार अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी तरह अच्छी प्रकार विचार करने पर यह अविद्या नष्ट हो जाती है। वास्तव में यह अविद्या कोई वस्तु न होने से असत् है और विचार न करने से ही दीख पड़ती है। रक्त, मांस तथा अस्थिमय इस देह-यन्त्र में 'मैं स्वयं कौन हूँ ?' इस प्रकार जब विवेक-पूर्वक विचार किया जाता है, तब देह के किसी भी पदार्थ में मैं-पन सिद्ध नहीं होता, वरं शरीर का अभाव हो जाता है। अपने अन्तःकरण के विवेक -विचार से आदि-अन्त में असद्रूप इस शरीर और संसार का परिहार कर देने पर अविद्या का क्षय हो जाता है; फिर शेष में एक परमात्मा ही रह जाता है। वही वास्तव में शाश्वत ब्रह्म है। वही वास्तविक पदार्थ और उपादेह है; क्योंकि उसी से अविद्या निवृत्त हो जाती है। 'अविद्या' इस अपने नाम से ही इसके अभावस्वरूप का ज्ञान हो जाता है। वास्तव में अविद्या नाम की कोई वस्तु कहीं भी नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत अखण्ड ब्रह्मस्वरूप ही है, जिस ब्रह्म ने कार्य कारणरूप इस सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप नहीं है' इस प्रकार का निश्चय ही अविद्या का स्वरूप है और 'यह जगत् ब्रह्मरूप है' यह निश्चय ही उसका विनाश है।

सातवाँ सर्ग समाप्त

आठवाँ सर्ग

परमात्मा सर्वात्मक और सर्वातीत है

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं-श्रीराम ! यह अज्ञान अत्यन्त बलवान् है। इसी का दूसरा नाम 'अविद्या' है। वह अन्य असंख्य जन्मों से चला आ रहा है, अतएव वह दृढ़ हो गया है। देह की उत्पत्ति और विनाश में, बाहर-भीतर सर्वत्र समस्त इन्द्रियाँ उस अविद्या का ही निरन्तर अनुभव करती हैं, इसलिये यह अविद्या दृढ़ हो गयी है; क्योंकि परमात्मा के स्वरूप का यथार्थज्ञान तो किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं है। मन सहित छहों इन्द्रियों का विनाश हो जाने पर वह सत्स्वरूप परमात्मा का यथार्थ ज्ञान ही कायम रहता है। इन्द्रिय-वृत्तियों से अतीत होने के कारण वह परमात्मा का स्वरूप प्रणियों को प्रत्यक्ष कैसे हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection

सकता है; क्योंकि प्राणी तो पदार्थों का अनुभव मन-इन्द्रियों के द्वारा ही करते हैं। रघुनन्दन ! जिस प्रकार परमात्मज्ञान के अभ्यास में निरत राजा जनक परमात्मतत्त्व को यथार्थरूप में जानकर भूमण्डल में विचरण करते हैं, उसी प्रकार तुम भी विचरण करो। भगवान् नारायण जीवों के कल्याण के लिये विभिन्न लीलाएँ करने के जिस निश्चय से पृथ्वी पर नाना योनियों में अवतार लेते हैं, वही निश्चय वास्तविक यथार्थ ज्ञान है। रघुनन्दन ! जगदम्बा पार्वती के साथ रहने वाले त्रिनेत्र महादेवजी का या रागरहित ब्रह्मा का जो निश्चय है, वही निश्चय वास्तविक है। तुम्हारा भी वही निश्चय होना चाहिए। देवगुरु बृहस्पति, शुक्राचार्य, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, महामुनि नारद, महर्षि पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, भृगु, क्रतु, अत्रि, शुकदेव तथा अन्यान्य जीवनन्मुक्त ब्रह्मर्षि महात्माओं का तथा मेरा भी परमात्मा के स्वरूप के विषय में जो निश्चय है, वही निश्चय तुम्हारा होना चाहिए।

आठवाँ सर्ग समाप्त

नवाँ सर्ग

परमात्मविषयक यथार्थज्ञान

श्रीराम बोले-भगवन् ! ब्रह्मन् ! जिस निश्चय के कारण ये पूर्वोक्त महाबुद्धिमान् एवं धीर बृहस्पति आदि शोकरहित हुए स्थित हैं, उसका मुझसे तात्विक रूप से वर्णन कीजिये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-समस्त जानने योग्य पदार्थों को यथार्थतः जानने वाले महाबाहु श्रीराम ! जो तुमने पूछा है, उसका उत्तर स्पष्टरूप से सुनो। उनका यही निश्चय है, जो मैं बतला रहा हूँ। श्रीराम ! जो कुछ भी यह भोगरूप संसार-जाल स्थित दिखायी पड़ता है, वह सब निर्मल ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही जीवात्मा है, चौदह भुवन ब्रह्म ही हैं, आकाशादि भूत ही ब्रह्म हैं, मैं भी ब्रह्मस्वरूप हूँ, मेरा शत्रु भी ब्रह्मस्वरूप है; सन्मित्र, बन्धु-बान्धव आदि भी ब्रह्मस्वरूप हैं। तीनों काल भी ब्रह्मस्वरूप हैं; क्योंकि वे ब्रह्म में ही अवस्थित हैं। जैसे समुद्र अपने आप में तरंगों के रूप में प्रकट होता है, वैसे ही यह सच्चिदानन्द ब्रह्म अपने आप में सांसारिक पदार्थ-सम्पत्ति के रूप में प्रकट होता है। नेत्र दोष के कारण आकाश में बिना हुए ही भ्रान्ति से वृक्ष की प्रतीति

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama Prasad Collection

होती है, किंतु वास्तव में वृक्ष नहीं है; इसी तरह ब्रह्म जो राग-द्वेष आदि दोष भ्रम से प्रतीत होते हैं, वे वास्तव में हैं ही नहीं; क्योंकि ये सब कल्पनामात्र हैं, इसलिये संकल्प के अभाव से इनका अत्यन्त अभाव हो जाता है। गमनागमन आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ भी ब्रह्म में ही होती हैं, क्योंकि ब्रह्म ही अपने संकल्प से अद्वितीय सुखरूप में स्फुरित होता है, तब उसमें दुःख और सुख कैसे ? ब्रह्म ही स्वयं ब्रह्म में तृप्त है, ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है, ब्रह्म ही ब्रह्म में स्फुरित होता है; अतः मैं भी ब्रह्म से भिन्न नहीं हूँ। क्योंकि घट भी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, मैं भी ब्रह्म हूँ, यह विस्तृत जगत् भी ब्रह्मस्वरूप ही है, इसलिये यहाँ ब्रह्म के अतिरिक्त मिथ्या राग-वैराग्य आदि की कल्पना ही नहीं हो सकती।

जिस प्रकार सुवर्ण से आभूषण और जल से तरंग भिन्न नहीं है, वैसे ही प्रकृति ब्रह्म में बिना हुए प्रतीत होती है, किन्तु ब्रह्म से भिन्न नहीं है। यह जीवात्मा चेतन है और यह पदार्थ जड़ है- इस प्रकार का मोह अज्ञानी को ही होता है, ज्ञानी को कभी नहीं होता। जिस प्रकार अंधे मनुष्य को जगत अन्धकाररूप और सुदृष्टि वाले को प्रकाशरूप प्रतीत होता है, उसी प्रकार अज्ञानी को यह जगत् दुःखमय और अज्ञानी को सच्चिदानन्दमय प्रतीत होता है। सदा-सर्वदा सब ओर एकरस स्थित विज्ञानानन्दघन ब्रह्म में न कोई मरता है और न कोई जीता है। जिस प्रकार महान् सागर के उल्लसित होने पर भी उसमें तरंग आदि न जन्मते हैं और न मरते हैं, उसी प्रकार वस्तुतः ब्रह्म में प्राणी न जन्मते हैं और न मरते हैं। जैसे जल में तरंगों के रूप में प्रचुर जल ही स्थित है, वैसे ही अपने आपमें जगत् की शक्ति के रूप में ब्रह्म ही स्थित है। जैसे जल में जो कण, कणिका, वीचि तरंग, फेन और लहरी हैं, वे सब जलस्वरूप ही हैं, वैसे ही ब्रह्म में जो देह, मनका व्यापार, दृश्य, क्षय का अभाव, भाव-रचना और अर्थ हैं, वे सब ब्रह्मस्वरूप ही हैं। जिस प्रकार सुवर्ण से बनी आभूषण की विभिन्न आकृति-रचनाएँ सुवर्ण से पृथक् नहीं होती, उसी प्रकार ब्रह्म से उत्पन्न हुई चित्र-विचित्र देहादि की आकृति-रचनाएँ भी भिन्न नहीं हो सकतीं। अज्ञानियों को वृथा ही उसमें द्वित्वभावना होती है। मन, बुद्धि, अहंकार, तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ आदि सब ब्रह्मस्वरूप ही हैं, उससे भिन्न नहीं; अतः ब्रह्म से भिन्न सुख और दुःख की भी सत्ता नहीं है। ब्रह्म को ब्रह्म न जानने से अज्ञानी के लिये वह प्राप्त होते हुए भी अप्राप्त है, जिस तरह सुवर्ण का ज्ञान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हुए बिना सुवर्ण प्राप्त हुआ भी अप्राप्त ही है। ब्रह्म को ब्रह्म जान लेने पर तत्क्षण ही ब्रह्म प्राप्त हो जाता है, जिस प्रकार सुवर्ण को सुवर्ण जान लेने पर तत्क्षण ही सुवर्ण प्राप्त हो जाता है। कर्म, कर्त्ता, कारण, करण और विकारों से रहित स्वयं समर्थ महान् आत्मा ही ब्रह्म है, यों ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं।

'यह देह मैं नहीं हूँ' इस प्रकार जब ज्ञान हो जाता है, तब ब्रह्मभावना उत्पन्न होती है। इसी से देह में अहंभाव मिथ्या सिद्ध हो जाता है। उस समय पुरुष देह से विरक्त हो जाता है। मैं एकमात्र ब्रह्मस्वरूप हूँ' इस प्रकार यथार्थ ज्ञान होने पर ब्रह्मभावना प्रकट होती है। उस अपने वास्तविक रूप का यथार्थ ज्ञान होने पर अज्ञान विलीन हो जाता है। मुझे न दुःख है न कर्म हैं, न मोह है न कुछ अभिलषित है। मैं एकरूप, अपने स्वरूप में स्थित, शोकशून्य तथा ब्रह्मस्वरूप हूँ-यह ध्रुव सत्य है। मैं कल्पनाओं से शून्य हूँ, मैं सर्वविध विकारों से रहित और सर्वात्मक हूँ; मैं न त्याग करता हूँ और न कुछ चाहता हूँ; मैं परब्रह्मस्वरूप परमात्मा हूँ, यह ध्रुव सत्य है। जिसमें सब कुछ स्थित है, जिससे यह सब उत्पन्न हुआ है, जो यह सब है, जो सब ओर विद्यमान है एवं जो सबका अद्वितीय आत्मा है, वही परब्रह्म परमात्मा है। यह निश्चय है, वही चेतन आत्मा-वही व्यापक, दृश्यरहित सच्चिदानन्दघन ब्रह्मतत्त्व ही ब्रह्म, सत्, सत्य, ऋत, ज्ञ इत्यादि नामों से सर्वत्र कहा जाता है। विषय-संसर्गरहित, चेतन मात्र स्वरूप, विशुद्ध, समस्त भूत-प्राणियों को जानने वाला, सर्वव्यापक, परम शान्त, सच्चिदानन्द ब्रह्म का ब्रह्मज्ञानी अनुभव करते हैं। सुषुप्ति के सदृश समस्त विकल्पों से रहित, परम शान्तरूप, विशुद्ध प्रकाशस्वरूप, सांसारिक विषय-सुखों से अत्युत्तम तथा वासनाओं से रहित सच्चिदानन्द ब्रह्म ही मैं हूँ। सुख दुःख आदि कल्पनाओं से रहित, निर्मल, सत्य अनुभवरूप जो शाश्वत सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप है, वही मैं हूँ। पर्वत आदि पदार्थ-समुदाय के बाहर एवं भीतर सर्वदा समान सत्तारूप से व्यापक निर्लेप विज्ञानानन्दघन जो परमात्मा है, वही मैं हूँ जो सम्पूर्ण संकल्पों का फल देने वाला, अग्नि सूर्य-चन्द्र आदि सम्पूर्ण तेजों का प्रकाशक और प्राप्त करने योग्य सम्पूर्ण पदार्थों की अन्तिम सीमा है, उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा की हम उपासना करते हैं। वह चिन्मय परमात्मा बाहर-भीतर-सर्वत्र प्रकाशस्वरूप से विद्यमान और अपने आप में स्थित है; सब के हृदय में स्थित होते हुए भी उसका अज्ञान के कारण अनुभव नहीं होता;

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अतः वह दूर न होते हुए भी दूर कहा गया है। उस परमात्मा की हम उपासना करते हैं। जो समस्त संकल्पों, कामनाओं तथा रोष आदि से रहित है, उस चिन्मय परमात्मा की हम उपासना करते हैं। उस परमात्मा में यह सारा जगत् प्रतीत होता है, किंतु वास्तव में इस जगत् का उसमें अत्यन्ताभाव है तथा वास्तव में वह है, इसीलिये वह सद्रूप है; किंतु वह मन-इन्द्रियों का विषय नहीं है, इसलिये असद्रूप है। ऐसे उस एक अद्वितीय निर्गुण-निराकार सच्चिदानन्द परमात्मा को मैं प्राप्त हूँ। जो शब्द, स्पर्शरूप, रस और गन्ध आदि सारे विषय-पदार्थों से रहित है, उस परम शान्त चिन्मय परमात्मा को मैं प्राप्त हूँ। जो समस्त विभूतियों और महिमाओं से युक्त प्रतीत होता है, किंतु जो वास्तव में समस्त विभूतियों एवं महिमाओं से रहित है तथा जो माया के सम्बन्ध से जगत् का कर्ता-सा प्रतीत होते हुए भी वास्तव में अकर्ता है, उस विज्ञानानन्दघन परमात्मा को मैं प्राप्त हूँ।

रघुनन्दन ! पूर्वोक्त निश्चयवाले ये सत्पुरुष जीवन्मुक्त महात्मा सत्यस्वरूप परम शान्त परमपद में स्थित हो गये थे। वे फूलों से पूर्ण, झूले के-से आन्दोलनों से चंचल चित्र-विचित्र वनों की पंक्तियों में एवं मेरु पर्वत की चोटियों के ऊपर विचरण करते थे। वे अनेक प्रकार के सदाचारों के रूप में इन सभी धर्मों का स्वयं अनुष्ठान करते थे। इसी प्रकार श्रुति-स्मृतिविहित कर्मों का भी वे कर्तव्य-बुद्धि से आचरण करते थे। उन तत्त्ववेत्ता महापुरुषों का मन अत्यन्त कमनीय कंचन और कामिनी के प्राप्त होने पर हर्ष और चंचलता आदि विकारों को नहीं प्राप्त होता था। वे सुख की प्राप्ति होने पर हर्षित और दुःख की प्राप्ति होनेपर खिन्न नहीं होते थे।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! अब कृपाकर मुझे यह बतलाइये कि प्राणवायु की गति के अवरोध से वासना का विनाश हो जाने पर जीवन्मुक्त-पद में परम शान्ति कैसे मिलती है ?

नवाँ सर्ग समाप्त

दसवाँ सर्ग

प्राण निरोधरूप योग का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! संसार-सागर से पार उतरने के साधन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

का नाम ही 'योग' है। उस चित्त को शान्त करने वाले साधन को तुम दो प्रकार का समझो। इसका प्रथम प्रकार परमात्मा का यथार्थ ज्ञान है, जो संसार में प्रसिद्ध है और द्वितीय प्रकार प्राण-निरोध है, जिसे मैं आगे बता रहा हूँ; सुनो।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-गुरुवर ! योग के इन दोनों प्रकार के साधनों में कौन-सा सरल और कष्टरहित उत्तम साधन है, जिसके जानने से विक्षेप फिर बाधा नहीं पहुँचाता ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! यद्यपि शास्त्रों में 'योग' शब्द से उपयुक्त दोनों ही प्रकार(परमात्मविषयक ज्ञान और प्राणनिरोध) कहे गये हैं, तथापि इस 'योग' शब्द प्राणनिरोध के अर्थ में ही अधिक प्रसिद्ध है। संसार-सागर से पार उतरने की पद्धति में एक योग(प्राण-निरोध) और दूसरा ज्ञान-ये दोनों एक फल देने वाले समान उपाय शास्त्रों में बतलाये गये हैं। किसी के लिये योग का साधन असाध्य-सा है और किसी के लिये परमात्मविषयक ज्ञान का साधन असाध्य-सा है; परंतु मैं तो परमात्मविषयक ज्ञान के साधन को ही सुसाध्य मानता हूँ। यह प्राणनिरोधरूप योग देश, काल, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि उपायों से सिद्ध होता है; अतः वह सुसाध्य नहीं है। किंतु साधक को सुसाध्यता और दुःसाध्यता का विचार नहीं करना चाहिये। रघुकुलतिलक ! ज्ञान और योग ये दोनों ही उपाय शास्त्रोक्त हैं। इन दोनों में से सब ज्ञानों से परे ही जानने योग्य विशुद्ध ज्ञान तुम्हें पहले बतलाया जा चुका है। अब तुम यह योग सुनो, जो प्राण और अपान के निरोध के नाम से प्रसिद्ध है, तथा देहरूपी गुहा का दृढ़ आश्रय करने वाला, अणिमादि अनन्त सिद्धियों को देने वाला और परमार्थ-ज्ञान प्रदान कराने वाला है।

नवाँ सर्ग समाप्त

ग्यारहवाँ सर्ग

वायसराज भुशुण्ड का वृत्तान्त

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-वत्स राम ! पूर्ववर्णित उस अनन्त परमात्मा के किसी एक अंश में मरुस्थल में प्रतीत होने वाली मृगतृष्णा की भाँति यह ब्रह्माण्ड वर्तमान है। उस ब्रह्माण्ड में सृष्टि की उत्पत्ति के कारण तथा पूर्वकृत

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कर्मानुसार प्राणिसमूह की रचना में संलग्न कमलयोनि ब्रह्मा पितामहरूप से स्थित हैं। उन्हीं ब्रह्मदेव का मैं एक सदाचार सम्पन्न मानसपुत्र हूँ। मेरा नाम वसिष्ठ है। मैं ध्रुव द्वारा धारण किये गये सप्तर्षिमण्डल में वैवस्वत मन्वन्तर-पर्यन्त निवास करता हूँ। एक समय की बात है, मैं स्वर्गलोक में देवराज इन्द्र की सभा में बैठा हुआ था। वहाँ देवर्षि नारद आदि भी विराजमान थे। वे चिरजीवियों की कथा सुना रहे थे। मैंने भी वह कथा सुनी थी। उस समय किसी कथा-प्रसंग के अवसर पर मुनिवर शातातप, जो मितभाषी, मानी और अगाध बुद्धिसम्पन्न थे, कहने लगे-

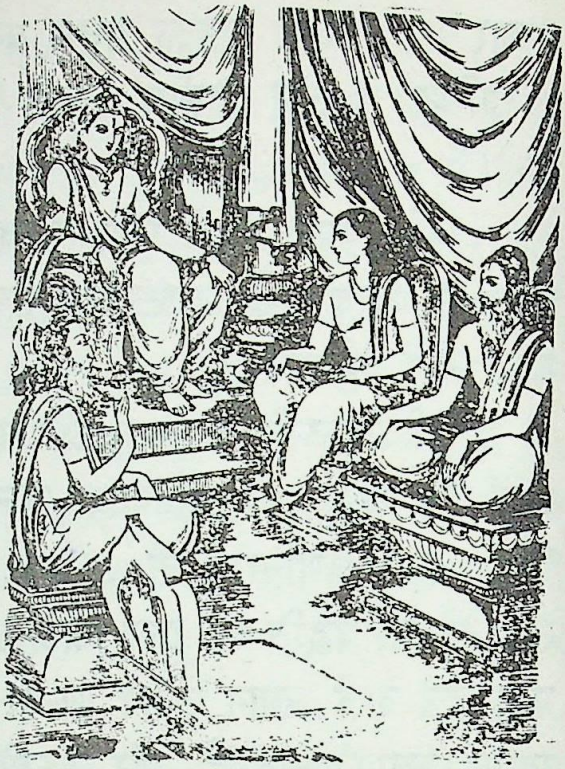

"मेरुगिरि के ईशानकोण में पद्मरागमणि से युक्त एक बहुत ऊँचा शिखर है। उसकी चोटी पर एक अत्यन्त शोभाशाली कल्पतरु के ऊपरी भाग की दाहिनी शाखा में एक कोटर है, जो चाँदी के समान श्वेतवर्ण की लताओं से आच्छादित है। उस कोटर में एक घोंसला विद्यमान है। उस घोंसले में एक परम ऐश्वर्यशाली कौआ निवास करता है। उस वीतराग वायस का नाम भुशुण्ड है। देवगण ! वह वायसराज भुशुण्ड इस जगत् में जिस प्रकार चिरकाल से जी रहा है, वैसा चिरजीवी तो स्वर्गलोक में न कोई हुआ है और न होगा ही। वह दीर्घायु तो है ही, साथ ही रागरहित, ऐश्वर्ययुक्त, शान्त और सुन्दर रूपवाला भी है। उसकी बुद्धि अगाध और स्थिर है। वह काल की गतिका पूर्णज्ञाता है।"

राघव ! इस प्रकार जब कथा का समय समाप्त हुआ और सभी देवता अपने-अपने वासस्थान को चले गये, तब मैं कुतूहलवश उस भुशुण्ड पक्षी को देखने के लिये चल पड़ा। फिर तो तुरंत ही मैं मेरुगिरि के उत्तम शिखर पर जा पहुँचा, जहाँ वह भुशुण्ड नामक कौवा रहता था। वह विशाल शिखर पद्मरागमणि से निर्मित था। वहाँ झरते हुए गंगाजी के झरनों के शब्द गूँज रहे थे। उसके लताकुंजों में देवता विराजित थे। गन्धर्वों की गीत ध्वनि से वह अत्यन्त रमणीय लग रहा था और वहाँ शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बह रही थी।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

उसी शिखर पर मैंने कल्पवृक्ष को देखा। वह देवता, किंनर, गन्धर्व एवं विद्याधरों से युक्त, ब्रह्माण्ड की तरह विस्तृत, असीम तथा दसों दिशाओं और आकाश को व्याप्त किये हुए था। वह सब ओर से पुष्पों, फलों और कोमल पल्लवों से आच्छादित था उसके पुष्पों से सबको आल्हाद प्रदान करने वाले पराग उड़ रहे थे, जिनसे उसकी अत्यन्त विचित्र शोभा हो रही थी। वहाँ मैंने देखा, अनेक जाति के पक्षी उस वृक्ष के तने और शाखाओं की संधियों में, लताओं से आवृत शाखाग्रभागों में, लता-पत्रों में, गाँठों में और पुष्पों में घोंसले बनाकर उनमें छिपे हुए बैठे थे। वहाँ मैंने ॐकार और वेद के मित्रभूत ब्रह्मा के वाहन हंसों के बच्चों को भी देखा, जिन्हें ब्रह्मविद्या की विधिवत् शिक्षा प्राप्त हो चुकी थी एवं जो सामवेद का गान करने वाले थे। तत्पश्चात् मैंने अग्निदेव के वाहन शुकों को देखा। उनके शरीर का रंग शंख, विद्युत्पुञ्ज और नीलमेघ के समान था तथा कोई-कोई यज्ञवेदियों पर बिछाये गये हरितवर्ण के कुश-लताओं के दलों की भाँति हरे रंग भी थे। देवगण सदा उनका दर्शन करते थे। वे मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। उनकी बोली स्वाहाकार की सी जान पड़ती थी। वहाँ मयूरों के बच्चे भी थे, जिनकी शिखाएँ अग्निशिखा-सी उद्दीप्त थीं, जिनके पर जगज्जननी पार्वती (अपने जूड़े में बाँधने के लिये) सँभालकर रखती थीं, तथा जो स्कन्द द्वारा विस्तारित शिवसम्बन्धी सम्पूर्ण विज्ञानों के विशेष जानकार थे।

इस प्रकार ज्यों ही मेरी दृष्टि उस वृक्ष की दाहिनी शाखा के एकान्त कोटर पर पड़ी, त्यों ही मैंने देखा कि वहाँ बहुत-से-कौए बैठे हुए हैं और उनके बीच में ऐश्वर्यशाली एवं अत्यन्त उन्नत शरीरवाला वायसराज भुशुण्ड विराजमान है। उसका मन आत्मज्ञान से परिपूर्ण है। वह दूसरों को मान देने वाला, समदर्शी और सर्वांगसुन्दर है। प्राणक्रिया के निरोध से वह सदा अन्तर्मुख वृत्ति वाला और सुखी है तथा चिरजीवी होने के कारण वह 'चिरंजीवी' नाम से विख्यात है। वह भूतकालीन सुर, असुर और महीपालों के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इतिहास का ज्ञाता, प्रसन्न एवं गम्भीर मन से युक्त, चतुर तथा कोमल एवं मधुरवाणी बोलने वाला है। वह परमात्मा के सूक्ष्मतत्व का वक्ता तथा विज्ञाता है। वह ममता और अहंकार से रहित, बुद्धि में बृहस्पति से भी बढ़कर, प्राणिमात्र का हितैषी, बन्धु एवं मित्र है। वह एक मनोरम सरोवर की भाँति सौम्य, प्रसन्न, मधुर, ब्रह्म-रस से युक्त, महान् आत्मबल से सम्पन्न और आन्तरिक अखण्ड शान्ति-समन्वित है। गम्भीरता का परित्याग न करने के कारण उसके अन्तःकरण की शोभा प्रकटित हो रही थी।

रघुनन्दन ! तदनन्तर मैं उस भुशुण्ड पक्षी के सामने उतर पड़ा, मानो पर्वत पर आकाश से कोई नक्षत्र आ गिरा हो। मेरा शरीर कान्तिमान् तो था ही, अतः मेरे आने से वह सभा कुछ चंचल हो उठी। यद्यपि वहाँ मेरे जाने की कोई सम्भावना नहीं थी, तथापि मुझे देखते ही भुशुण्ड ने पहचान लिया कि ये तो वसिष्ठजी पधारे हैं। फिर तो वह पर्वत से उठे हुए छोटे-से मेघ खण्ड के समान अपने पत्र-पुंज के आसन से उठ खड़ा हुआ और मधुर वाणी में बोला-'मुनिवर' ! आपका स्वागत है।' तत्पश्चात् उसने आसन, अर्घ्य और पाद्य आदि देकर मेरा सत्कार किया। उस समय उस महान् तेजस्वी भुशुण्ड का मन परम प्रसन्न था। उसने सौहार्दवश मधुर वाणी में मुझसे कहना आरम्भ किया।

भुशुण्ड बोला-मुने ! बड़े सौभाग्य की बात है कि चिरकाल के पश्चात् आज आपने हम लोगों पर महान् अनुग्रह किया है; क्योंकि आपके दर्शनामृत के सिंचन से सिक्त होकर आज हमलोग पुण्यवृक्ष-सरीखे परम पवित्र हो गये। मुनिवर ! आप तो माननीयों के भी मान्य हैं। इस समय जो आपने मुझे दर्शन दिया है, इसमें चिरकाल से संचित मेरी पुण्यराशि की प्रेरणा ही कारण जान पड़ती है। अच्छा, अब यह बताइये कि कहाँ से आपका शुभागमन हुआ है तथा किसलिये आज आपने यहाँ पधारने का कष्ट उठाया है। हमलोग सदा आपका आदेशपूर्ण वचन सुनने के लिये लालायित रहते हैं, अतः आप हमें आज्ञा देने की कृपा कीजिये। मुनिराज ! आपके चरणों के दर्शन से ही मुझे सारी बातें ज्ञात हो गयी हैं। आपने अपने शुभागमन के पुण्य से हम लोगों को संयुक्त कर दिया। इन्द्रसभा में चिरजीवियों के विषय में चर्चा हो रही थी, उसी प्रसंग में आपको हमारा स्मरण हो आया। इसी कारण आपने अपने चरणों से इस स्थान को तथा मुझे भी पवित्र बनाया है। मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार यद्यपि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

आपके आगमन का प्रयोजन मुझे ज्ञात हो गया है, फिर भी जो मैं आपसे पूछ रहा हूँ, इसका कारण यह है कि आपके वचनामृत के रसास्वाद की वांछा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। श्रीराम ! तीनों कालों का निर्मल ज्ञान रखने वाले उस चिरजीवी पक्षी भुशुण्ड ने जब इस प्रकार पूछा, तब मैंने उत्तर दिया।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-पक्षियों के सरदार ! तुम जो कुछ कह रहे हो, वह बिल्कुल सत्य है। आज मैं तुम चिरजीवी को देखने के लिये ही यहाँ आया हूँ। सौभाग्य की बात है कि तुम्हारा अन्तःकरण पूर्णतया शान्त है, तुम सकुशल हो और परमात्मज्ञान-सम्पन्न होने के कारण इस भीषण जगज्जाल में भी नहीं फँसे हो। परंतु ऐश्वर्यशाली वायसराज ! मेरे मन में एक संदेह है, उसे तुम अपने यथार्थ वचनों द्वारा दूर करो। (वह संशय यह है कि) तुम किस कुल में उत्पन्न हुए हो ? किस प्रकार तुम्हें ज्ञेय-तत्वका ज्ञान प्राप्त हुआ ? तुम्हारी आयु कितनी है ? तुम्हें अपना कौन-सा वृतान्त अर्थात किस कल्प का चरित्र याद है ? किस महानुभाव ने तुम-जैसे दीर्घदर्शी के लिये यह निवासस्थान निश्चित किया है ?

श्रीराम ! वह भुशुण्ड न तो अभीष्ट-लाभ से प्रसन्न ही होता था, न तो उसकी बुद्धि ही क्रूर थी। उसके सभी अंग सुन्दर थे तथा शरीर का वर्ण वर्षाकालीन मेघ के सदृश श्याम था। उसके वचन स्नेहपूर्ण और गम्भीर होते थे। वह मुसकुराकर ही बोलता था। तीनों लोकों की इयत्ता उसके लिये हस्तामलक वत् थी। वह सम्पूर्ण भोगों को तृण-सरीखे तुच्छ समझता था। वह परावर ब्रह्म का ज्ञाता था। उसकी बुद्धि पूर्णतया शान्त थी तथा वह शान्त और परमानन्द से परिपूर्ण था। उसके वाक्य प्रिय और मधुर, अतएव सुनने योग्य तथा वीणा के गान की भाँति मनोहर थे। उसका शरीर तो ऐसा लगता था मानो सम्पूर्ण भयों का अपहरण करने वाले स्वयं ब्रह्म ने ही नवीन भुशुण्ड-शरीर धारण किया हो। वह स्वाभाविक प्रसन्नता से युक्त था तथा प्रश्नों का उत्तर देने के लिये उत्सुक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

होने के कारण उसके मुख की अद्भुत शोभा हो रही थी। इस प्रकार उस वायसराज भुशुण्ड ने शुद्ध, अमृतमय तथा क्रमबद्ध रूप से निर्मल वाणी द्वारा अपना सम्पूर्ण वृतान्त मुझसे कहना आरम्भ किया।

ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त

बारहवाँ सर्ग

महादेवजी तथा मातृकाओं का वर्णन

भुशुण्ड बोला–मुनिवर वसिष्ठजी ! इस जगत् में देवाधिदेव महादेव समस्त स्वर्गवासी देवताओं में श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मादि देवता भी उनकी अभिवन्दना करते हैं।

उनके शरीर के वामार्ध में सौन्दर्यशालिनी भगवती पार्वती विराजमान रहती हैं। उन महादेवजी के मस्तक पर गंगारूपी पुष्पमाला सुशोभित है, जो हिम के हार की भाँति धवल तथा लहररूपी पुष्प-गुच्छों से गुँथी हुई है। उस माला ने ही उनके जटा-जूट को आवेष्टित कर रखा है। क्षीरसागर से जिसकी उत्पत्ति हुई है तथा जिससे अमृत के झरने झरते रहते हैं, वह शोभाशाली चन्द्रमा उनके ललाट में स्थित है। उस चन्द्रमा के अनवरत अमृत-प्रवाह से अभिषिक्त होने के कारण जिस की विषैली शान्ति होकर अमृतस्वरूपिणी हो गयी है तथा जिसका वर्ण इन्द्रनीलमणि के समान श्याम है, वह कालकूट विष उनके कण्ठ में आभूषण के समान सुशोभित है। निर्मल अग्नि से जिसकी उत्पत्ति हुई है, वह अत्यन्त शुभ्र भस्म उन महादेवजी का भूषण है। आकाश ही उनका वस्त्र है, जो चन्द्रमा की सुधाधारा से प्रक्षालित, नीले मेघ के समान सुशोभित और तारारूपी बिन्दुओं से समन्वित है। हिलने के कारण जिनके मस्तक की मणियाँ चमक रहीं हैं तथा जिनकी कान्ति तपाये हुए सुवर्ण के समान है, ऐसे चिकने अंगवाले सर्प ही उनके हाथ के कंगन हैं। उनका मुख तीन नेत्रों से देदीप्यमान है। जैसे प्रमथगण उनके परिवाररूप हैं, उसी प्रकार निर्मल कान्तिवाली मातृकाएँ भी उनके परिवार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

में ही हैं। ये मातृकाएँ पर्वतशिखरों पर, आकाश में, विभिन्न लोकों में, गड्ढों में, श्मशानों में तथा प्राणियों के शरीर में निवास करती हैं। उन सभी मातृकाओं में जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, सिद्धा, रक्ता, अलम्बुसा और उत्पला-ये आठ मातृदेवियाँ प्रधान हैं। शेष माताएँ इन्हीं आठों का अनुगमन करती हैं।

दूसरों को मान देने वाले मुनीश्वर ! उन महामहिमाशालिनी मातृकाओं में माता अलम्बुसा अत्यन्त विख्यात हैं। उनका वाहन कौआ है। उस कौए का नाम चण्ड है। वह इन्द्रनील-पर्वत के समान नीला है तथा उसके ठोर की हड्डी वज्र के समान कठोर है। एक समय की बात है, भयंकर चेष्टावाली तथा अष्ट सिद्धियों से सम्पन्न वे सभी मातृकाएँ किसी कारणवश आकाश में इकट्ठी हुईं। वहाँ उन सबका एक महोत्सव हुआ, जो नाच-गान आदि से अत्यन्त मनोहर था। उस उत्सव में ब्राह्मी देवी के रथ में जुतने वाली उनकी दासी हंसियाँ और अलम्बुसा देवी का वाहन चण्ड नामक

कौआ-ये सभी आकाश में एकत्र होकर नृत्य करने लगे। इस प्रकार साथ-साथ नाचने के कारण वह वायस सात कुलहंसियों का वल्लभ हो गया। फिर तो उसने क्रमशः प्रत्येक हंसी के साथ रमण किया, जिससे वे ब्राह्मी शक्ति के रथ की हंसियाँ गर्भवती हो गयीं। मुनीश्वर ! तब उन हंसियों ने ब्राह्मी देवी से अपना वृत्तान्त यथार्थरूप से कह सुनाया।

बारहवाँ सर्ग समाप्त

तेरहवाँ सर्ग

ज्ञान प्राप्ति

इसपर ब्रह्माजी ने कहा-पुत्रियो! इस समय तुम लोग गर्भवती हो, इसलिये मेरा रथ वहन करने में समर्थ नहीं हो; अतः अब तुम लोग स्वेच्छानुसार विचरण करो। इस प्रकार ब्राह्मीदेवी दया परवश हो गर्भ के कारण अलसायी हुई उन हंसियों से ऐसा कहकर सुखपूर्वक निर्विकल्प समाधि में स्थित हो गयीं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तदनन्तर समय आने पर उन हंसियों ने इक्कीस अंडे दिये। मुने ! इस प्रकार उन अण्डों से ये हमलोग इक्कीस भाई चण्ड के पुत्ररूप में कौए की योनि में उत्पन्न हुए। धीरे-धीरे हम बड़े हुए। हमारे पर निकल आये और हम आकाश में उड़ने योग्य भी हो गये। जब भगवती ब्राह्मी समाधि से विरत हुई, तब हमलोगों ने अपने माता हंसियों के साथ उन देवी की चिरकालतक भलीभाँति आराधना की। तदनन्तर उपयुक्त समय आने पर कृपापरवश हुई भगवती ब्राह्मी ने हम लोगों पर ऐसा अनुग्रह किया, जिसके फलस्वरूप हमलोग जीवन्मुक्त होकर स्थित हैं। जब हमलोगों का मन पूर्णतया शान्त हो गया, तब ऐसी धारणा हुई कि अब एकान्त प्रदेश में चलकर ध्यान-समाधि में स्थित रहना चाहिए। ऐसा निश्चय करके हमलोग अपने पिताजी के पास विन्ध्यप्रदेश में गये। वहाँ पहुँचने पर पिताजी ने हमलोगों का आलिंगन किया। तत्पश्चात् हमलोगों ने अलम्बुसा देवी का पूजन किया, जिससे उन देवी ने हमलोगों को कृपादृष्टि से देखा। फिर तो हमलोग समाहित चित्त होकर वहीं रहने लगे।

तब पिता चण्ड ने पूछा-पुत्रो ! क्या तुमलोग इस जगज्जाल से, जो अनन्त वासनारूपी तन्तुओं से गुँथा हुआ है, मुक्त हो चुके हो ? यदि नहीं तो हम इन भृत्यवत्सला भगवती अलम्बुसा से प्रार्थना करें, जिससे तुम लोग ज्ञान में पारंगत हो जाओगे।

कौओं ने कहा-पिताजी ! ब्राह्मीदेवी की कृपा से हमलोगों को ज्ञेय तत्व का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो चुका है; किंतु अब हमें एकान्तवास के लिये किसी उत्तम स्थान की अभिलाषा है।

चण्ड ने कहा-पुत्रो ! मेरु नाम का एक अत्यन्त ऊँचा पर्वत है, जो रत्नसमूहों का आधार और देवताओं का आश्रय-स्थान है। उसके पृष्ठभाग में एक महान् कल्पवृक्ष है, जो नाना प्रकार के प्राणियों से समावृत है। उसके दाहिने तने पर एक शाखा है, जिसमें सुवर्ण-सदृश

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पीले रंग के चमकीले पल्लव लगे हैं और वह रत्न-तुल्य घने पुष्प-गुच्छों से तथा चन्द्रबिम्ब की तरह प्रकाशमान फलों से सुशोभित है। पुत्रो ! पूर्वकाल में मैंने उसी शाखा पर चमकीली मणियों से युक्त घोंसला बनाया था और उसी में क्रीड़ा की थी। उस घोंसले के बाहरी दरवाजों की रचना चिन्तामणि की शलाकाओं से की गयी है। वह रत्न-सदृश चमकीले पुष्पदलों से आच्छादित, सुस्वादु, रसयुक्त फलों से युक्त और विचारपूर्वक व्यवहार करने वाले कौओं के बच्चों से परिपूर्ण है। अतः प्यारे बच्चो ! तुमलोग उसी घोंसले पर जाओ। वहाँ रहते हुए तुमलोगों को पर्याप्त मात्रा में भोग और निर्विघ्न मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे।

मुनिवर ! यों कहकर हमारे पिता ने हमलोगों का चुम्बन तथा आलिंगन किया। तब हमलोग भगवती अलम्बुसा और पिताजी के चरणों में अभिवादन करके अलम्बुसा के वासस्थान उस विन्ध्यप्रदेश से उड़ चले। फिर तो क्रमशः आकाश को लाँघ कर और मेघों के कोटरों से निकलकर पवनलोक में जा पहुँचे। वहाँ हमलोगों ने आकाशचारी देवों को प्रणाम किया। मुनीश्वर ! फिर सूर्यमण्डल का अतिक्रमण करके हमलोग स्वर्ग की अमरावती पुरी में गये और फिर स्वर्ग को लाँघकर ब्रह्मलोक में पहुँच गये। वहाँ हमलोगों ने माता भगवती ब्राह्मीदेवी को प्रणाम किया और तुरन्त ही पिताद्वारा कहा हुआ वह सारा वृतान्त उन्हें ज्यों का त्यों कह सुनाया। तब उन्होंने स्नेहपूर्वक हमलोगों का आलिंगन किया और 'जाओ' यों आज्ञा प्रदान करके हमें उत्साहित किया। तत्पश्चात् हमलोग उन्हें नमस्कार करके ब्रह्मलोक से चल पड़े। आकाशमार्ग से चलने में हमलोग चपल तो थे ही; अतः पवनलोक में विचरते हुए लोकपालों की पुरियों को, जो सूर्य के समान देदीप्यमान हैं, लाँघकर कल्पतरु पर आ पहुँचे और अपने घोंसले में प्रविष्ट हो गये। मुने ! यहाँ सारी बाधाएँ हमलोगों से दूर रहती हैं और हम लोग सदा समाधि में ही स्थित रहते हैं। महानुभाव ! आपके पूर्व प्रश्नों के उत्तर में हमलोग जैसे उत्पन्न हुए, जिस प्रकार यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने से हमलोगों की बुद्धि शान्त हुई एवं जिस तरह हमलोग इस घोंसले में आये-वह सारा वृतान्त आपको अविकलरूप से भलीभाँति कह सुनाया।

तेरहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चौदहवाँ सर्ग

वसिष्ठजी के प्रश्नों का भुशुण्ड द्वारा समाधान

भुशुण्ड ने कहा–मुने ! मैं जो निर्विघ्नता पूर्वक आपका दर्शन कर रहा हूँ, इससे प्रतीत होता है कि चिरकाल से संचित किये गये मेरे पुण्यों का फल आज ही प्रकट हुआ है। मुनिराज ! आज आपके दर्शन से यह घोंसला, यह शाखा, यह मैं और यह कल्पतरु–ये सब–के–सब पवित्र हो गये।

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा–पक्षिराज ! उस प्रकार बलवान् एवं अगाध बुद्धि-सम्पन्न तुम्हारे भाई यहाँ दिखायी क्यों नहीं देते ? अकेले तुम्हीं क्यों दृष्टिगोचर हो रहे हो ?

भुशुण्ड ने कहा–निष्पाप महर्षे ! हम लोगों को यहाँ रहते हुए लंबा समय व्यतीत हो गया, यहाँ तक कि दिन की भाँति युगों की पंक्तियाँ समाप्त हो गयीं। अतः इतना लंबा समय बीत जाने के कारण मेरे सभी छोटे भाई तृण की तरह अपने शरीरों का त्याग करके कल्याणमय शिवपद में लीन हो गये; क्योंकि चाहे कोई दीर्घायु हो, महान हो, सज्जन हो, बलवान् हो–कैसे भी क्यों न हो, अलक्षितस्वरूपवाला काल सभी को निगल जाता है।

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा–प्यारे वायसराज ! जिस समय प्रलयवायु अनवरत वेगपूर्वक बहने लगती है, उस समय क्या तुम्हें खेद नहीं होता ? उदयाचल और अस्ताचल के अरण्यसमूहों को भस्म करने वाली सूर्य की किरणों से क्या तुम्हें कष्ट नहीं होता ? यह कल्पवृक्ष जो स्वयं ही अत्यन्त ऊँचा है तथा ऊँचे-से-ऊँचे स्थान पर स्थित है; जागतिक विषम क्षोभों से क्षुब्ध क्यों नहीं होता ?

भुशुण्ड ने कहा–भगवन् ! हम सदा परमात्मा में ही संतोष मानकर स्थित रहते हैं, इसलिये भ्रम के अवसर आने पर भी हमें कभी इस जगत् में भ्रम नहीं होता। ब्रह्मन् ! हम अपने स्वभाव मात्र से संतुष्ट रहते हैं और कष्टदायक विचारों से मुक्त होकर अपने इस घोंसले में रहकर केवल कालयापन करते हैं। हमें न तो इस देह के जीवित रहने से किसी फल की अभिलाषा है और न हम मरण द्वारा इसका विनाश ही चाहते हैं; क्योंकि हमलोग वर्तमान समय में जिस प्रकार स्थित हैं, वैसे ही आगे भी स्थित रहेंगे। हमने प्राणियों की जन्म-मरण आदि दशाओं का अवलोकन कर लिया और हमारे मन ने अपने चंचल स्वरूप का सर्वथा त्याग कर दिया है। निरन्तर शान्ति प्रदान करने वाले अपने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Jnanamandira Prakrana, Jammu Collection

अविनाशी सच्चिदानन्दघनस्वरूप ज्ञान में स्थित होकर मैं इस कल्पवृक्ष के ऊपर बैठा हुआ सदा काल की कलापूर्णगति को जानता रहता हूँ। ब्रह्मन् ! मैं रत्न-सदृश चमकीले पुष्प-गुच्छों के प्रकाश से युक्त इस कल्पलता गृह में बैठकर प्राणायाम के द्वारा योगबल से सम्पूर्ण कल्प की बात जान लेता हूँ। मैं इस ऊँचे शिखर पर बैठा हुआ अपनी बुद्धि से लोकों के कालक्रम की स्थिति को जानता रहता हूँ। मुनिवर ! मेरा मन सार और असार वस्तुओं का विभाग करने वाले ज्ञान की प्राप्ति से उत्तम शान्ति को प्राप्त हो गया है, अतः इसकी चंचलता नष्ट हो गयी है और अब यह शान्त होकर भलीभाँति स्थिर हो गया है। अगाध-बुद्धिसम्पन्न महर्षे ! सांसारिक व्यवहारों से उत्पन्न मिथ्या आकाशरूपी पाशों से बँधा हुआ भूलोकवासी साधारण कौआ जिस प्रकार सिसकारियों से भयभीत हो जाता है, उस प्रकार मैं भयभीत नहीं होता; क्योंकि उत्कृष्ट शान्तिरूप धर्मवाली तथा आत्मप्रकाश से शीतल हुई बुद्धि द्वारा जागतिक माया को देखते हुए हमलोग धैर्यसम्पन्न हो गये हैं, इस लिये भयंकर दशाओं में भी हमारी बुद्धि पर्वत के समान स्थिर रहती है। परम ऐश्वर्यशाली मुने ! समस्त भूतसमुदाय व्यवहारदृष्टि से आते और जाते हैं, परंतु परमार्थदृष्टि से न कोई आता है न जाता है; अतः इस विषय में हमलोगों को भय कैसा। क्योंकि प्राणि-समुदायरूपी तरंगों से युक्त तथा कालसागर में प्रवेश करनेवाली संसार-सरिता के तटपर स्थित होते हुए भी हम लोग उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। जिनके शोक, भय और आयास नष्ट हो चुके हैं तथा जो आत्मलाभ से संतुष्ट हैं-ऐसे आप-सरीखे उत्तम पुरुष हम लोगों पर अनुग्रह करते रहते हैं, इस लिये हमलोग सारे दुःखों से मुक्त हो गये हैं। भगवन् ! हमलोगों का मन यद्यपि व्यवहारार्थ इधर-उधर कार्यों में व्यस्त रहता है, तथापि न तो वह राग आदि वृत्तियों में फँसता है और न तत्त्व-विचार से शून्य ही होता है। क्योंकि हमारा आत्मा निर्विकार, क्षोभरहित और शान्त हो गया है, इसलिये चिद्रूप तरंगवाले हमलोग पूर्णिमा के पर्वकाल में बढ़नेवाले महासागर की भाँति प्रबुद्ध हो गये हैं। ब्रह्मन् ! इस समय आपके आगमन से हमलोगों का अन्तःकरण हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा है। समस्त एषणाओं का परित्याग कर चुकने वाले संत-महात्मा अपने शुभागमन द्वारा जो हम पर अनुग्रह करते हैं इससे बढ़कर कलयाणकारक मैं अपने लिये और कुछ नहीं समझता। भला, आपातरमणीय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshe Jammu Collection

भोगों से कौन-सा लाभ मिल सकता है ? अर्थात् कुछ नहीं। किंतु सत्संगरूपी चिन्तामणि से तो सबके सारभूत यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। सज्जन-शिरोमणे ! आपकी वाणी स्नेहपूर्ण, गम्भीर, कोमल, मधुर, उदार और धीरतायुक्त है; मैंने परमात्मा को जान लिया है और आपके दर्शन से मैं पवित्र हो चुका हूँ। इसलिये मेरी तो ऐसी धारणा है कि आज मेरा जन्म सफल हो गया; क्योंकि साधुपुरुषों का संग समस्त भयों का अपहरण करने वाला होता है।

मुनीश्वर ! युगान्तकाल में जब भीषण उपद्रव होने लगते हैं और प्रचण्ड वायु बहने लगती है, उस समय भी यह कल्पवृक्ष सुस्थिर रहता है। यह कभी भी कम्पित नहीं होता। अन्य लोकों में विचरण करने वाले समस्त प्राणियों के लिये यह अगम्य है, इसीलिये हमलोग यहाँ सुखपूर्वक निवास करते हैं। ऐसे उत्तम वृक्ष पर निवास करने वाले हमलोगों के निकट भला, आपत्तियाँ कैसे फटक सकती हैं।

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा-महाबुद्धिमान् भुशुण्ड ! प्रलयकाल में जब सूर्य और चन्द्रमा को भी गिरा देने वाली उत्पातवायु बहने लगती है, उस समय तुम संतापरहित कैसे रह पाते हो ?

भुशुण्ड ने कहा-मुनिश्रेष्ठ ! कल्पान्त के समय जब सांसारिक व्यवहार का विनाश हो जाता है, उस समय जैसे कृतघ्न आपत्तिकाल में सन्मित्र को त्याग देता है, उसी तरह मैं इस घोंसले को छोड़ देता हूँ और आकाश में ही स्थिर रहता हूँ। उस अवसर पर वासनाशून्य मन की तरह मैं सारी कल्पनाओं से रहित रहता हूँ और मेरा सारा शरीर निश्चल हो जाता है। फिर मैं ब्रह्माण्ड के उस पार पहुँचकर समस्त तत्त्वों के अन्तर्भूत एवं विशुद्ध परमात्मा में अचल सुषुप्तावस्था के सदृश निर्विकल्पसमाधि में तब तक स्थिर रहता हूँ, जब तक कमलयोनि ब्रह्मा पुनः सृष्टिकर्म में प्रवृत्त नहीं होते। सृष्टिरचना हो जाने के पश्चात् मैं ब्रह्माण्ड में प्रवेश करके पुनः अपने इस घोंसले में आ जाता हूँ।

चौदहवाँ सर्ग समाप्त

पन्द्रहवाँ सर्ग

वसिष्ठ का समाधान

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा-विहंगराज ! कल्पान्त के अवसरों पर जैसे तुम धारणा, ध्यान और समाधि के द्वारा अखण्डरूप से स्थिर रहते हो, वैसे अन्य

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Memorial (J.K.) Jammu Collection

योगी क्यों नहीं रहते ?

भुशुण्ड ने कहा-ब्रह्मन् यह तो परमेश्वर की नियामिका शक्ति है, जो सबको नियमबद्ध रखती है। उसका उल्लंघन करना कठिन है। इसी कारण मुझे ऐसे रहना पड़ता है और दूसरे योगी दूसरी प्रकार से रहते हैं। जो अवश्यंभावी है, उसकी इदमित्थंरूप से अवधारणा नहीं की जा सकती; क्योंकि परमेश्वर की नियामिका शक्तिरूप स्वभाव का ऐसा निश्चय है कि जैसा होनहार होता है, वैसा ही होता है। इसलिये प्रत्येक कल्प में केवल मेरे संकल्प से ही मेरुगिरि के इसी शिखर पर इस प्रकार यह कल्पवृक्ष बारंबार उत्पन्न होता है।

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा-कल्याणस्वरूप वायसराज ! तुम्हारी आयु अत्यन्त लंबी है। तुम भूतकालीन पदार्थों का निर्देश करने वालों में अग्रगण्य, ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न और धीर हो। तुम्हारी मनोगति योगसाधन के योग्य है। मैंने अनेक प्रकार की असंख्य सृष्टियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय भी देखा है। अतः अब यह बताओ कि इस सृष्टि क्रम में तुम्हें किस-किस आश्चर्यजनक सृष्टि का स्मरण है ?

भुशुण्ड ने कहा-मुनिश्रेष्ठ ! मुझे इस पृथ्वी के विषय में ऐसा स्मरण है कि किसी समय यह शिला और वृक्षों से रहित थी। इस पर तृण और लता आदि भी नहीं थे; पर्वत, वन और भाँति-भाँति के वृक्ष-ये कुछ भी नहीं थे और यह मेरु के नीचे स्थित थी। वहाँ यह ग्यारह हजार वर्षों तक भस्मक से परिपूर्ण रही-ऐसा मुझे सम्यक् रूप से स्मरण है। मुझे यह भी खूब याद है कि जब बल और ऐश्वर्य के पद से उन्मत्त हुए असुरों का घोर संग्राम चल रहा था, उस समय इस पृथ्वी का भीतरी भाग क्षीण हो गया था और यह युद्ध से भागे हुए जनों से परिपूर्ण हो गयी थी। फिर एक चतुर्युगी तक यह उन मतवाले असुरों के अधिकार में रही, इसका भी मुझे पूर्ण स्मरण है। अन्य चतुर्युगी के दो युगों तक यह भूमि वनैले वृक्षों से खचाखच भरी रही। उस समय उन वृक्षों के अतिरिक्त और किसी पदार्थ का निर्माण नहीं हुआ था-इसका भी मुझे ठीक-ठीक स्मरण है। एक समय यह वसुधा चारों युगों से भी अधिक काल तक घने पर्वतों से आच्छादित रही। उस पर मनुष्य चल-फिर भी नहीं सकते थे-यह भी मुझे स्मरण है। मुझे वह समय भी याद आता है, जब अन्तरिक्ष आदि लोकों में समस्त विमानचारी देवता भय के कारण अन्तर्धान हो गये थे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Memorial (JK) Jammu Collection

और यह पृथ्वी वृक्षशून्य होकर अन्धकार से आच्छादित हो गयी थी। इनका तथा इनके अतिरिक्त अन्य बहुत सी बातों का मुझे स्मरण है; परंतु इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ। जो सार वस्तु है, उसे मैं संक्षेप से कहता हूँ, सुनिये। ब्रह्मन् ! मुझे तो यहाँ तक स्मरण है कि मेरे सामने सैकड़ों चतुर्युगियाँ बीत गयीं और ऐसे असंख्य मनु समाप्त हो गये, जो सब-के-सब प्रभावाधिक्य से परिपूर्ण थे। मुझे एक ऐसी सृष्टि का स्मरण है, जिसमें पर्वत और भूमि का नाम-निशान भी नहीं था। चन्द्रमा और सूर्य के बिना ही पूर्ण प्रकाश छाया रहता था और देवता तथा सिद्ध मानव आकाश में ही रहते थे। मुझे ऐसी ही एक और सृष्टि का स्मरण है, जिसमें न कोई इन्द्र था न भूपाल तथा उत्तम, मध्य और अधम का भेद भी नहीं था। सब एकरूप था और दिशामण्डल अन्धकार से व्याप्त था।

मुनिराज ! पहले सृष्टि-रचना का संकल्प हुआ, फिर तीनों लोकों का निर्माण हुआ। उस त्रिलोकी में अवान्तर प्रदेशों का विभाग होने के बाद उनमें सात कुलपर्वतों की स्थापना हुई। उन्हीं प्रदेशों में जम्बूद्वीप की पृथक् स्थापना हुई। ब्रह्माजी ने उस जम्बूद्वीप में ब्राह्मण आदि वर्ण, उनके धर्म और उन वर्णों के लिये योग्य विद्याविशेषों की सृष्टि की। तत्पश्चात् अवनिमण्डल एवं नक्षत्र-चक्र की स्थिति और ध्रुवमण्डल का निर्माण किया। तात ! तदनन्तर चन्द्रमा और सूर्य की उत्पत्ति, इन्द्र और उपेन्द्र की व्यवस्था, हिरण्याक्ष द्वारा पृथ्वी का अपहरण, वराहरूपधारी भगवान् द्वारा उसका उद्धार, भूपालों की रचना, मत्स्यरूपधारी भगवान्‌द्वारा वेदों का लाया जाना, मन्दराचल का उन्मूलन, अमृत के लिये क्षीरसागर का मन्थन, गरुड़ का शैशव, जब कि उनके पंख नहीं जमे थे, और सागरों की उत्पत्ति आदि जो निकटतम सृष्टि की स्मृतियाँ हैं, उन्हें तो मेरी अपेक्षा अल्प आयुवाले योगी भी स्मरण करते हैं; अतः उनमें मेरी क्या आदर-बुद्धि हो सकती है।

मुनिश्रेष्ठ ! हयग्रीव, हिरण्याक्ष, कालनेमि, बल, हिरण्यकशिपु, क्राथ, बलि और प्रह्लाद आदि असुरों में शिबि, न्यंकु, पृथु, उलाख्य, वैन्य, नाभाग, केलि, नल, मान्धाता, सगर, दिलीप और नहुष आदि नरेशों में तथा आत्रेय, व्यास, वाल्मीकि, शुक, वात्स्यायन, उपमन्यु, मणीमकि और भागीरथ आदि महर्षियों में कुछ तो सुदूर भूतकाल में, कुछ निकटतम अतीत और कुछ इसी वर्तमान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सृष्टि में उत्पन्न हुए हैं; अतः इनके स्मरण की तो बात ही क्या है। मुनिवर ! आप तो ब्रह्मा के पुत्र हैं। आपके भी आठ जन्म हो चुके हैं। इस आठवें जन्म में मेरा आपके साथ समागम होगा-यह मुझे पहले से ही ज्ञात था। यह वर्तमान सृष्टि जैसी है, इसके जैसे आचरण हैं और जैसा इसका अवयव संस्थान एवं दिशागण है, ठीक इसी तरह की तीन सृष्टियाँ पहले भी हो चुकी हैं, जिनका मुझे भली भाँति स्मरण है। अमृत के लिये, जिसमें मन्दराचल के आकर्षण के प्रयास से देवता और दैत्य व्याकुल हो गये थे-ऐसा यह बारहवाँ समुद्र-मन्थन है, यह भी मुझे स्मरण है। मुने ! प्रत्येक युग में अध्येता पुरुषों की बुद्धियों के न्यूनाधिक होने के कारण ब्रह्मचर्य आदि क्रियाओं, शिक्षा-कल्प आदि अंगों और स्वर आदि के उच्चारणपूर्वक पाठ की विचित्रता से युक्त वेद भी मेरे स्मृतिपथ में वर्तमान हैं। निष्पाप महर्षे ! युग-युग में जो एकार्थक, विस्तारयुक्त तथा बहुत से पाठ भेदवाले पुराण प्रवृत्त होते हैं, उन सबका भी मुझे स्मरण है। पुनः प्रत्येक युग में वेद आदि शास्त्रों के ज्ञाता व्यास आदि महर्षियों द्वारा विरचित महाभारत आदि इतिहास भी मुझे याद हैं। इनके अतिरिक्त रामायण नाम से प्रसिद्ध जो दूसरा महान् आश्चर्यजनक इतिहास है, जिसकी श्लोक-संख्या एक लाख है, उस ज्ञान-शास्त्र का भी मुझे स्मरण है। उस शास्त्र में बुद्धिमानों के लिये हाथ पर रक्खे हुए फल की तरह 'श्रीराम की तरह व्यवहार करना चाहिये, परंतु रावण के विलासी जीवन का अनुकरण नहीं करना चाहिए' ऐसा ज्ञान बतलाया गया है। उसके निर्माता महर्षि वाल्मीकि हैं। अब उनके द्वारा जगत् में जो (वसिष्ठ-राम-संवादरूप) दूसरे ज्ञानशास्त्र की रचना की जायगी, उसका भी मुझे ज्ञान है और समयानुसार वह आपको भी ज्ञात हो जाएगा। यह जगत्स्वरूपा भ्रान्ति जल में बुलबुले के समान कभी स्थित-सी दीख पड़ती है, किंतु वास्तव में इसका किसी भी काल में अस्तित्व नहीं है। मेरे पिता चण्ड के जीवनकाल में इस कल्पतरु की जैसी शोभा और जैसा संगठन था, वह आज भी वैसा ही है; इसीलिये इस समय मैं यहाँ स्थित हूँ।

पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त

सोलहवाँ सर्ग

निर्दोष महात्मा की स्थिति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-महाबाहु श्रीराम ! तदनन्तर कल्पवृक्ष के अग्रभाग

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

में आसीन इस वायसराज भुशुण्ड से मैंने जानने के लिये यह पूछा-'पक्षियों के श्रेष्ठ राजा! जगत् में विचरण करने वाले तथा व्यवहार में लगे हुए प्राणियों की देह को मृत्यु कैसे बाधा नहीं पहुँचाती ?

भुशुण्ड ने कहा-सर्वज्ञ ब्रह्मन् ! आप यद्यपि सब कुछ जानते हैं, फिर भी जो मुझसे जिज्ञासु की तरह पूछते हैं, वह ठीक ही है; क्योंकि स्वामी प्रश्नों द्वारा अपने सेवकों की वाक्पटुता प्रसिद्ध कराया करते हैं। फिर भी आप जो मुझसे पूछते हैं, उसका मैं उत्तर आपको देता हूँ; क्योंकि आज्ञा का पालन ही सज्जनों की सबसे बड़ी सेवा है, ऐसा मुनिलोग कहते हैं। महाराज ! पापरूप मोती जिसमें पिरोये गये हैं, ऐसी वासनारूपी तन्तुसंतति जिसके हृदय-कमल में ग्रथित नहीं रहती अर्थात् जो वासना और पाप से रहित हैं, उसको मृत्यु मारने की इच्छा नहीं करती। जो शरीर-लता के घुनरूप मानसिक चिन्ताओं से और आशाओं से रहित है, उसको मृत्यु मारने की इच्छा नहीं करती। राग-द्वेषरूपी विष से परिपूर्ण अपने मनरूपी बिल में रहने वाला लोभरूपी सर्प जिसको नहीं डँसता, उसे मृत्यु मारने की इच्छा नहीं करती। शरीररूपी समुद्र का बडवाग्निरूप अतएव समस्त विवेकरूपी जल को पी लाने वाला क्रोध जिसको दग्ध नहीं करता, उसे मृत्यु मारने की इच्छा नहीं करती। तिलों की बड़ी राशि को पेर देने वाले कठिन कोल्हू की तरह उग्रतापूर्वक कामदेव जिसे पीड़ा नहीं पहुँचाता, उसे मृत्यु मारने की इच्छा नहीं करती। जिसका चित्त एक निर्मल परम पवित्र सच्चिदानन्दघन ब्रह्मरूप परमपद में स्थित है, उसको मृत्यु मारने की इच्छा नहीं करती। शरीररूपी पुष्पित वन में प्रवेशकर उछल-कूद मचाने वाला जिसका बलवान् मन वानर की तरह चंचल नहीं है, उसको मृत्यु मारने की इच्छा नहीं करती। ब्रह्मन ! ये पूर्वोक्त महान् दोष संसाररूपी व्याधि के कारण हैं। ये दोष विक्षेप रहित चित्त को तनिक भी नहीं झकझोरते। अज्ञान के कारण शारीरिक एवं मानसिक पीड़ाओं से उत्पन्न नाना प्रकार के दुःख विक्षेपरहित चित्त को छिन्न-भिन्न नहीं कर पाते।

जिसका चित्त परमात्मा के स्वरूप में सम्यक् प्रकार से स्थित है, वह पुरूष शास्त्रानुसार व्यवहार करता हुआ भी वास्तव में न कुछ देता है न लेता है, न कुछ त्याग करता है और न कुछ माँगता ही है। जिस महापुरुष का चित्त परमात्मा में स्थित है, उसे उपार्जन करने के अयोग्य दुष्ट धनादि, बुरे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

आरम्भ, राग-द्वेष आदि दुर्गुण, कठोर वचन, दुराचार-ये सब विचलित नहीं कर सकते अर्थात् उसके निकट भी नहीं जा सकते। जिसका चित्त परमात्मा में स्थित है, उसके न चाहने पर भी न्याय आदि गुणों से युक्त अनेक सम्पत्तियाँ उसके पीछे-पीछे दौड़ती हैं। इसलिये कल्याणकामी मनुष्य को चाहिए कि जो परिणाम में हितकर, सत्य, अविनाशी, संशयरहित एवं विषयाभिलाषरूपी दृष्टि से रहित है, उसी एक परमात्म-तत्व में मन को स्थिर करे। जो सदा ही परम ग्राह्य है एवं जो आदि, मध्य और अन्त में सुन्दर, मधुर तथा हितकारक है, उस परमात्म-तत्व में मन को स्थिर करना चाहिये। जो अविनाशी है, मन के लिये सदा हितकर है, वास्तविक ध्रुव सत्य है, आदि, मध्य एवं अन्त में सदा सर्वदा परिपूर्ण है तथा जिसकी सभी संतलोग प्रीतिपूर्वक उपासना करते हैं, उस परमात्म-तत्व में मनको स्थिर करना चाहिए। जो बुद्धि से परे है, ज्ञानस्वरूप है, सबका आदिकारण है, निरतिशय परम अमृतस्वरूप है तथा जिसके अधिक मंगलमय दूसरा कोई नहीं है, उस परमतत्व परमात्मा में मन को स्थिर करना चाहिये; क्योंकि देवताओं, असुरों, गन्धर्वों, विद्याधरों, किंनरों तथा देवांगनाओं से युक्त स्वर्ग में कुछ भी सुस्थिर एवं उत्तम तत्त्व नहीं है।

तात ! वृक्षों से, राजा-महाराजाओं से, पर्वत, नगर एवं ग्वालों की आवास-भूमि से तथा समुद्र से युक्त भूमण्डल में कुछ भी स्थायी और शोभन तत्त्व नहीं है। नागों, असुरों तथा असुरों की स्त्रियों से युक्त समस्त पाताल लोक में भी जिसमें स्वर्ग, देवलोक, पृथ्वी सहित पाताल एवं दसों दिशाएँ हैं, ऐसे इस सम्पूर्ण जगत् में कोई भी स्थिर और मंगलदायक पदार्थ नहीं है। तात्पर्य यह कि त्रिलोकमय सम्पूर्ण संसार में आधि, व्याधि, चिन्ता, शोक ही भरे हैं; वास्तविक सुख और शान्ति का नामोनिशान भी नहीं है। इसलिये नाशवान् क्षणभंगुर संसार से तीव्र वैराग्य करना चाहिए। अतएव सम्पूर्ण भूमण्डल का एकछत्र सम्राट् होना श्रेष्ठ नहीं, सबसे बड़े अभिज्ञ इन्द्र-बृहस्पति आदि देवता होना यानी स्वर्ग का अधिपति होना भी श्रेष्ठ नहीं तथा पाताल में सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करने में समर्थ शेषनाग होना यानी पाताल का अधिपति होना भी श्रेष्ठ नहीं ! क्योंकि ये सब क्षणभंगुर नाशवान् हैं। जहाँ विवेकी पुरुषों का मन पूर्णकाम होकर सुख-शान्ति पाता है, वैसी वास्तविक सुखशान्ति वहाँ लेशमात्र भी नहीं है। आधि व्याधियों से प्रचुर चिरजीविता भी श्रेष्ठ नहीं, समस्त व्याधियों का विनाशरूप

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (IPS) Jammu Collection

मरण भी अखिल दुःखों की निदान दृढ़ अज्ञतारूप होने से श्रेष्ठ नहीं है, नरक तथा स्वर्ग भी श्रेष्ठ नहीं क्योंकि जहाँ विवेकी पुरुषों का मन पूर्णकाम होता है, जैसा वहाँ कुछ भी नहीं है। उस प्रकार के सम्पूर्ण विविध सृष्टियों के क्रम अज्ञानी मनुष्य को बुद्धि की मूढ़ता के कारण ही रमणीय प्रतीत होते हैं। इसलिये जो महान् संत हैं, वे अनित्य, क्षणभंगुर, नाशवान् मायिक पदार्थों में चिरविश्राम कैसे कर सकते हैं ? क्योंकि उनमें वास्तविक सुख शान्ति और विश्राम का अत्यन्त अभाव है। इसलिये विवेकी पुरुषों को उनमें अत्यन्त वैराग्य करके उनसे उपरत हो जाना चाहिए।

सोलहवां सर्ग समाप्त

सत्रहवां सर्ग

प्राण-अपान की गति को तत्त्वतः जानने से मुक्ति

भुशुण्ड ने कहा-महाराज ! कभी नष्ट न होनेवाली, संशयों से रहित एक परमात्मदृष्टि ही समस्त ज्ञानों में सबसे उन्नत और सबसे श्रेष्ठ है। ब्रह्मन् ! परमात्मविषयक विचार समस्त दुःखों अन्त कर देने तथा अनादिकाल से चले आते हुए अज्ञान से परिपूर्ण, दुःस्वप्नतुल्य संसाररूपी भ्रम का विनाश करने वाला है। भगवन् ! समस्त संकल्पों से रहित परमात्मविषयक भावना से अज्ञानरूपी अन्धकार का, उसके कार्यों के साथ भली प्रकार विनाश हो जाता है। किन्तु सामान्य बुद्धि वाले प्राणी समस्त कल्पनाओं से अतीत इस परमपद को कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? अर्थात् साधारण पुरुषों के लिए वह पद प्राप्त होना कठिन है। इस परमात्मविषयक भावना के अनेक भेद हैं। उनमें से सम्पूर्ण दुःखों का विनाश करने वाली प्राणभावना का मैंने आश्रय लिया है, वही यहाँ मेरे जीवन का आधार है।

श्रीवसिष्ठजी बोले-श्रीराम ! जब मननशील भुशुण्ड इस प्रकार कह रहे थे, तब जानते हुए भी मैंने शान्त भाव से उनसे फिर कौतुकवश पूछा-'समस्त संदेहों को काटने वाले अत्यन्त दीर्घजीवी सज्जन स्वभाव भुशुण्ड ! तुम मुझ से ठीक-ठीक कहो कि प्राण की भावना किसे कहते हैं ?'

भुशुण्ड ने कहा-मुने ! आप समस्त वेदान्त के ज्ञाता हैं, समस्त संशयों का विनाश करने वाले हैं, तथापि केवल विनोद के लिये ही मुझ जैसे कौए से इस विषय का प्रश्न कर रहे हैं-ऐसा मैं मानता हूँ। महाराज ! भुशुण्ड को

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जिसने चिरजीवी बनाया है तथा जिसने भुशुण्ड को आत्मस्वरूप की प्राप्ति करायी है, उस प्राण समाधि का निरूपण मैं कहता हूँ, सुनिये। मुनिराज ! इडा और पिंगल नाम की दो अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ियाँ इस देहरूपी घर के बीच दाहिने और बायें भाग में स्थित कोष्ठ में यानी कुक्षि में रहती हैं। उनका किसी को भान नहीं होता, वे केवल नासापुट में प्राणसंचार द्वारा प्रतीत होती हैं। उक्त देह में यंत्र के सदृश तीन कमल के जोड़े हैं। वे अस्थि मांसमय एवं अत्यन्त मृदु हैं। उनमें ऊपर और नीचे दोनों ओर से नाल दण्ड लगे हुए हैं और वे सम्पुटित होकर एक दूसरे से मिले हुए कोमल सुन्दर दलों से सुशोभित हैं। उन तीन हृदय-कमल यंत्रों में प्राण की समस्त शक्तियाँ ऊपर और नीचे ओर उसी प्रकार फैली हुई हैं, जिस प्रकार चन्द्र-बिम्ब से किरणें फैलती हैं। इन प्राण शक्तियों से ही शीघ्रगति, आगति, विकर्षण, हरण, विहरण, उत्पतन एवं निपतन की क्रियाएँ निष्पन्न होती हैं। मुने ! हृदय कमल में स्थित यही वायु पण्डितों द्वारा प्राण के नाम से कही जाती है। इसी की कोई एक शक्ति स्पन्दित करती है यानि नेत्रों में निमेष उन्मेष की क्रिया करती हैं। उसी की कोई एक शक्ति का स्पर्श का ग्रहण करती है, दूसरी कोई शक्ति नासिका द्वारा श्वासउच्छ्वास का निर्वाह करती है, कोई एक दूसरी शक्ति अन्न का परिपाक करती है तो कोई अन्य शक्ति वाक्यों का उच्चरण करती है। महाराज ! इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ। शरीर में जो कुछ क्रिया या व्यापार होता है, वह सब शक्तिसम्पन्न वायु ही कराती है, जिस प्रकार यंत्रचालक कठपुतली से नृत्यादि चेष्टा कराता है। उसमें ऊर्ध्वगमन और अधोगमन-ये दो प्रकार के संकेत वाले जो दो वायु प्रसृत होते हैं, वे दोनों श्रेष्ठ वायु प्राण एवं अपान नाम से प्रसिद्ध एव प्रकट हैं। मुने ! मैं उनकी गति का सदा अनुसरण करता हुआ स्थित रहता हूँ। उनका स्वरूप सदा शीतल और उष्ण रहता है एवं वे दोनों निरन्तर शरीर के भीतर आकाश मार्ग की यात्रा करते रहते हैं। उन प्राण और अपान नामक वायुओं की-जो शरीर में सदा संचरण करते हैं तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति में सदा समानरूप हैं-गति का अनुसरण करते हुए मेरे दिन सुषुप्ति अवस्था में स्थित मनुष्य की भाँति व्यतीत हो रहे हैं। एक हजार अंशों में विभक्त कमल तन्तु के लवमात्र की अपेक्षा भी अत्यन्त दुर्लक्ष्य ये नाड़ियाँ हैं, अतः उनमें विद्यमान इन प्राण और अपान दोनों वायुओं की भी गति दुर्बोध है। महात्मन् !

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

हृदय आदि स्थानों में निरन्तर विचरण करने वाले प्राण और अपान वायुओं की गति तत्त्व को जानकर उसका अनुसरण करने वाला प्रसन्नचित्त पुरुष जन्म-मरणरूपी फाँसी से छूटकर सदा के लिये मुक्त हो जाता है। वह फिर इस संसार से लौटकर नहीं आता।

सत्रहवां सर्ग समाप्त

अठारहवां सर्ग

परमात्मा की उपासना की महिमा

भुशुण्ड ने कहा–ब्रह्मन् ! इस प्राण में स्पन्दन-शक्ति तथा निरन्तर गतिक्रिया रहती है। यह प्राण बाह्य एवं आन्तर सर्वांगों से परिपूर्ण देह में ऊपर के स्थान में–हृदय देश में स्थित रहता है। अपानवायु में भी निरन्तर स्पन्द शक्ति तथा सततगति रहती है। यह अपानवायु भी बाह्य एवं आन्तर समस्त अंगों से परिपूर्ण शरीर में नीचे के स्थान में–नाभिदेश में स्थित रहता है। मुनिवर ! किसी प्रकार के यत्न के बिना प्राणों की हृदय कमल के कोश से होने वाली जो स्वाभाविक बहिर्मुखता है, विद्वान् लोग उसे 'रेचक' कहते हैं। बारह अंगुलपर्यन्त बाह्य प्रदेश की ओर नीचे गये हुए प्राणों का लौटकर भीतर प्रवेश करते समय जो शरीर के अंगों के साथ स्पर्श होता है, उसे 'पूरक' कहते हैं। अपानवायु के शान्त हो जानेपर जब तक हृदय में प्राणवायु का अभ्युदय नहीं होता, तब तक वह वायु की कुम्भावस्था (निश्चल स्थिति) रहती है, जिसका योगी लोग अनुभव करते हैं। इसी को कुम्भक कहते हैं। ब्रह्मन् ! मृत्तिका के अंदर असिद्ध घट की स्थिति के सदृश बाहर नासिका के अग्र भाग से लेकर बराबर सामने बारह अंगुलपर्यन्त आकाश में जो अपानवायु की निरन्तर स्थिति है, उसे पण्डित लोग 'बाह्य कुम्भक' कहते हैं। अतः बाहर प्राण वायु के अस्तंगत होने पर जब तक अपान-वायु का उद्गम नहीं होता, तब तक एकरूप से स्थित पूर्ण (दूसरा) बाह्य कुम्भक रहता है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। प्राण और अपानवायु के स्वभाव भूत ये जो बाह्य और आभ्यन्तर कुम्भकादि प्राणायाम हैं, उनका भली प्रकार तत्त्व-रहस्य जानकर निरन्तर उपासना करने वाला पुरुष पुनः इस संसार में उत्पन्न नहीं होता। प्राणायाम के तत्त्व रहस्य को जानने वाले योगी के स्वभावतः अत्यन्त चंचल ये वायु चलते, बैठते, जागते या सोते–सभी अवस्थाओं में उसके इच्छानुसार निरुद्ध हो जाते हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मनुष्य अपने भीतर बुद्धि पूर्वक सम्यक् प्रकार से इन कुम्भक आदि प्राणायामों का स्मरण करता हुआ जो कुछ करता है या खाता है, उनमें वह कर्तृत्व आदि के अभिमान से तनिक भी ग्रस्त नहीं होता।

महर्षे ! इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करने वाले पुरुष का मन विषयाकार वृत्तियों के होने पर भी बाह्य विषयों में रमण नहीं करता। जो शुद्ध और तीक्ष्ण बुद्धि वाले महात्मा इस प्राणविषयक दृष्टि का अवलम्बन करके स्थित हैं, उन्होंने प्रापणीय पूर्ण ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लिया और वे ही समस्त खेदों से रहित हैं बैठते, चलते, सोते और जागते-सदा सर्वदा पुरुष यदि तत्त्व रहस्य समझकर प्राणायाम का अभ्यास करें तो वे भी कभी बन्धन को प्राप्त ही न हों। प्राण और अपान की उपासना द्वारा प्राप्त यथार्थ ज्ञान से युक्त पुरुषों का मन, जो मलरूप मोह से रहित एवं स्वस्थ है, इस अन्तःस्थित परमात्मा में ही सदा सर्वदा लगा रहता है। शास्त्रविहित सम्पूर्ण कर्मों को सदा करता हुआ भी शुद्धान्तःकरण निष्कामी ज्ञानी पुरुष प्राणापान की गति को तत्त्वतः जानकर भली भाँति स्वस्थ हो सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मन् ! हृदय कमल से प्राण का अभ्युदय होता है और बाहर बारह अंगुल पर्यन्त प्रदेश में यह प्राणविहीन होकर रहता है। इसी को 'बाह्य कुम्भक' कहते हैं। महामुने ! बाह्य बारह अंगुल की चरम सीमा से अपान का उदय होता है और हृदय-प्रदेश में स्थित कमल में उसकी गति अस्त हो जाती है; इसी को 'अभ्यन्तर कुम्भक' कहते हैं। जिस बारह अंगुल की चरम सीमा के आकाश प्रदेश में प्राण की समाप्ति हो जाती है, उसी आकाश-प्रदेश में यह अपान उसी के बाद उत्पन्न हो जाता है। यह प्राण वायु अग्नि शिखा की भाँति बाह्य आकाश के सम्मुख होकर बहता है और अपान वायु जल की तरह हृदयाकाश के सम्मुख होकर निम्नभाग में बहता है। चन्द्रमारूप अपान वायु शरीर को बाहर से पुष्ट करता है और सूर्यरूप प्राणवायु इस शरीर को भीतर से परिपक्व कर देता है। प्राणवायु निरन्तर हृदयाकाश को संतप्त कर पश्चात् मुखाग्र भाग के आकाश को तपाता है; क्योंकि यह उत्तम सूर्य ही है। अपान वायुरूप यह चन्द्रमा पहले मुख के अग्रभाग को पुष्टकर तदनन्तर हृदयाकाश का अपने अमृत प्रवाह से पोषण करता है। अपानरूप चन्द्रमा की किरण का प्राणरूपी सूर्य के साथ आभ्यन्तर कुम्भक के समय जिस हृदयस्थ ब्रह्म से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सम्बन्ध होता है, उस ब्रह्मपद को प्राप्त कर पुरुष पुनः शोक को प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार प्राणरूपी सूर्य की किरण का अपानरूपी चन्द्रमा के साथ ब्रह्म-कुम्भक के समय जिस बाह्य प्रदेश स्थित ब्रह्म से सम्बन्ध होता है, उस ब्रह्मपद को प्राप्त कर मनुष्य पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करता।

मुने ! जो पुरुष हृदयकाश में स्थित प्राणरूप सूर्य देव को उदय-अस्त, चन्द्रमा-रश्मि और गमनागमन सहित तत्त्व से अनुभव करता है, वही यथार्थ अनुभव करता है। जैसे बाह्य अन्धकार के नष्ट हो जाने पर बाहर के पदार्थ प्रत्यक्ष हो जाते हैं, उसी प्रकार हृदय स्थित अज्ञान के नष्ट हो जाने पर बाहर के पदार्थ प्रत्यक्ष हो जाते हैं, उसी प्रकार हृदयस्थित अज्ञान के नष्ट हो जाने पर शुद्धस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। प्राण-वायु के विलीन हो जाने पर और अपान-वायु के उदय के पूर्व बाह्य कुम्भक का चिरकाल तक अभ्यास करने से योगी शोक से रहित हो जाता है। अपान वायु के विलीन होने पर और प्राणवायु के उदय से पूर्व भीतरी कुम्भक का चिरकाल तक अभ्यास करने से योगी शोक से रहित हो जाता है। जिस हृदयवर्ती ब्रह्मरूप स्थान में ये प्राण और अपान दोनों विलीन हो जाते हैं, उस शान्त, आत्मस्वरूप ब्रह्मरूप पद का अवलम्बन करने से योगी अनुतप्त नहीं होता। महर्षे ! जिस चिन्मय परब्रह्म परमात्मा में अपान के साथ प्राण का, प्राण के साथ अपान का तथा उन दोनों के साथ बाह्य एवं आभ्यन्तर देश-काल का विलय हो जाता है, उसी परब्रह्मरूप पद का आप दर्शन कीजिये।

जिस समय अपान के प्राकट्य से पूर्व प्राण विलीन हुआ रहता है, उस समय किसी प्रकार के यत्न के बिना स्वाभाविक सिद्ध हुई जो बाह्य कुम्भक अवस्था है, उसी को योगी लोग 'परम पद' कहते हैं। किसी प्रकार के यत्न के बिना ही सिद्ध हुआ अन्तःस्थ कुम्भक सर्वातिशायी ब्रह्मरूप परमपद है। यह परमात्मा का वास्तविक स्वरूप है और यही सदा प्रकाशमय परम विशुद्ध चेतन है। इसको प्राप्त कर मनुष्य शौक से रहित हो जाता है। जो प्राण विलय का और जो अपान विनाश का समीप एवं अन्त में रहकर प्रकाशक है तथा जो प्राण और अपान के अंदर रहता है, हम लोग उस चेतन परमात्मा की उपासना करते हैं। जिसकी सत्ता स्फूर्ति से मन मनन करता है, बुद्धि निश्चय करती है एवं अहंकार अहंता को प्राप्त है, उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा की हमलोग

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mockerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

उपासना करते हैं। जिस परमात्मा में समस्त पदार्थ विद्यमान हैं, जिससे समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है, जो सर्वात्मक है, जो सब ओर स्थित है और जो सर्वमय है, हमलोग उस चिन्मय परमात्मा की निरन्तर उपासना करते हैं। जो सम्पूर्ण ज्योतियों का प्रकाशक है, जो समस्त पवित्रों का भी परम पवित्र है, जो सम्पूर्ण संकल्प-विकल्प आदि भावनाओं से रहित है, उस चेतन परब्रह्म परमात्मा की हम उपासना करते हैं। जहाँ पर प्राण विलीन हो जाता है तथा जहाँ प्राण और अपान दोनों उत्पन्न भी नहीं होते, हमलोग उस चेतन तत्त्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं। बाह्य और आभ्यन्तर प्रदेश में स्थित, योगियों द्वारा अनुभूत होने वाले जो दो प्राण और अपान की उत्पत्ति के स्थान हैं, उन दोनों के अधिष्ठानभूत चेतन तत्त्व की हम उपासना करते हैं। जो प्राण और अपान के विवेक में हेतु है, जो उनके अस्तित्व का ज्ञान कराने वाला है, जो स्वयं रूप रहित है एवं जो प्राणोपासना से प्राप्तव्य है, उस चिन्मय विज्ञानानन्दघन परमात्मा की हम उपासना करते हैं।

अठारहवां सर्ग समाप्त

उन्नीसवां सर्ग

भुशुण्ड की वास्तविक स्थिति का निरूपण

भुशण्ड ने कहा-महामुने ! मैंने प्राणसमाधि के द्वारा पूर्वोक्त रीति से विशुद्ध परमात्मा में यह चित्त-विश्रामरूप परम शान्ति क्रमशः स्वयं प्राप्त की है। मैं इस प्राणायाम का अवलम्बन करके दृढ़तापूर्वक स्थित हूँ। इसलिये सुमेरु पर्वत के विचलित होने पर भी मैं चलायमान नहीं होता। चलते-बैठते, जागते या सोते अथवा स्वप्न में भीमैं अखण्ड ब्रह्माकार वृत्तिरूप समाधि से विचलित नहीं होता; क्योंकि तपस्वियों में महान् वसिष्ठजी ! प्राण और अपान के संयमरूप प्राणायाम के अभ्यास से प्राप्त परमात्मा के साक्षात् अनुभव से मैं समस्त शोकों से रहित आदि कारण परमपद को प्राप्त हो गया हूँ। ब्रह्मन् ! महाप्रलय से लेकर प्राणियों की उत्पत्ति एवं विनाश को देखता हुआ मैं ज्ञानवान् हुआ आज भी जी रहा हूँ। जो बात बीत चुकी और जो होने वाली है, उसका मैं कभी चिन्तन नहीं करता। उपर्युक्त प्राणायाम विषयक दृष्टि का अपने मन से अवलम्बन करके इस कल्पवृक्ष पर स्थित हूँ। न्याययुक्त जो भी कर्तव्य प्राप्त हो जाते हैं, उनका फलाभिलाशाओं रहित होकर केवल सुषुप्ति के समान उपरत

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

बुद्धि से अनुष्ठान करता रहता हूँ। प्राण और अपान के संयोग रूप कुम्भक काल में प्रकाशित होने वाले परमात्मतत्त्व का निरन्तर स्मरण करता हुआ मैं अपने आप में स्वयं ही नित्य संतुष्ट रहता हूँ। इसलिये मैं दोष रहित होकर चिरकाल से जी रहा हूँ। मैंने आज यह प्राप्त किया और भविष्य में दूसरा सुन्दर पदार्थ प्राप्त करूँगा, इस प्रकार की चिन्ता मुझे कभी नहीं होती। मैं अपने या दूसरे किसी के कार्यों की किसी समय कहीं पर कभी स्तुति और निन्दा नहीं करता। शुभ की प्राप्ति होने पर मेरा मन हर्षित नहीं होता और अशुभ की प्राप्ति होने पर कभी खिन्न नहीं होता; क्योंकि मेरा मन नित्य सम ही रहता है।

मुने ! मेरे मन की चंचलता शान्त हो गयी है। मेरा मन शोक से रहित, स्वस्थ, समाहित एवं शान्त हो चुका है। इसलिये मैं विकार रहित हुआ चिरकाल से जी रहा हूँ। लकड़ी, रमणी, पर्वत, तृण, अग्नि, हित, आकाश-इन सबको मैं समभाव से देखता हूँ। जरा और मरण आदि से मैं भयभीत नहीं होता एवं राज्य प्राप्ति आदि से हर्षित नहीं होता। इसलिये मैं अनामय होकर जीवित हूँ। ब्रह्मन् ! यह मेरा बन्धु है, यह मेरा शत्रु है, यह मेरा है एवं यह दूसरे का है- इस प्रकार की भेद बुद्धि से मैं रहित हूँ। ग्रहण और बिहार करने वाला, बैठने और खड़ा रहने वाला, श्वास तथा निद्रा लेने वाला यह शरीर ही है, आत्मा नहीं-यह मैं अनुभव करता हूँ। इसलिये मैं चिरजीवी हूँ। मैं जो कुछ क्रिया करता हूँ, जो कुछ खाता-पीता हूँ, वह सब अहंता ममता से रहित हुआ ही करता हूँ। मैं दूसरों पर आक्रमण करने में समर्थ हुआ भी आक्रमण नहीं करता, दूसरों के द्वारा खेद पहुँचाये जाने पर भी दुःखित नहीं होता एवं दरिद्र होने पर भी कुछ नहीं चाहता; इसलिये मैं विकाररहित हुआ बहुत काल से जी रहा हूँ। मैं आपत्तिकाल में भी चलायमान नहीं होता, वरं पर्वत की तरह अचल रहता हूँ। जगत् आकाश, देश-काल परम्परा-क्रिया इन सबमें चिन्मयरूप से मैं ही हूँ, इस प्रकार की मेरी बुद्धि है; इसलिये मैं विकार रहित हुआ बहुत काल से स्थित हूँ। ज्ञान के पारंगत ब्रह्मन् ! एकमात्र आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये ही धृष्टतापूर्वक मैंने, जो और जैसा हूँ, सब आपसे यथार्थरूप से बता दिया है।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-'ऐश्वर्यपूर्ण पक्षिराज ! यह बड़े हर्ष की विषय है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जो आपने कानों के लिये भूषण-स्वरूप यह अत्यन्त आश्चर्यमयी अपनी अलौकिक स्थिति मुझसे कही है। वे महात्मा धन्य हैं, जो ब्रह्माजी के समान स्थित अत्यन्त दीर्घजीवी आपके दर्शन करते हैं। ये मेरे नेत्र भी धन्य हैं, जो बराबर आपके दर्शन कर रहे हैं। आपने मुझ से बुद्धि को पवित्र करने वाला अपना सम्पूर्ण जीवन-वृत्तान्त ज्यों का त्यों ठीक-ठीक कहा है। मैंने सब दिशाओं में भ्रमण किया और देवताओं एवं बड़े-बड़े तत्त्ववेताओं की ज्ञान आदि विभूतियों को देखा, परंतु इस जगत् में आपके समान दूसरे किसी महान् ज्ञानी को नहीं देखा। इस संसार में भ्रमण करने पर किसी को किसी महान् पुरुष की प्राप्ति हो भी सकती है; परन्तु आप-जैसे ज्ञानी महात्माओं का प्राप्त होना तो इस जगत् में कहीं भी सुलभ नहीं हैं अर्थात् दुर्लभ है। पुण्य देह एवं विमुक्तात्मा आपका अवलोकन करके मैंने तो आज अत्यन्त कल्याणकर एक बहुत बड़ा कार्य सम्पादन कर लिया है। पक्षिराज ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपनी शुभ गुफा में प्रवेश करो; क्योंकि मध्यान्ह कर्तव्य के लिये मेरा समय हो गया है; अतः मैं भी देवलोक में जा रहा हूँ।' श्रीराम ! यह सुनकर चिरंजीवी भुशुण्ड ने वृक्ष से उठकर अर्घ्य, पाद्य और पुष्पों से त्रिनेत्रधारी महादेवजी समान मेरी पैर से लेकर मस्तकपर्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा की। तदनन्तर 'आप मेरे पीछे चलने के लिए अधिक श्रम न करें' इस प्रकार कहता हुआ मैं आसन से उठकर आकाश मार्ग से चला गया। भुशुण्ड का स्मरण करते हुए अरुन्धती से पूजित मैंने भी सप्तर्षि-मण्डल को प्राप्त कर मुनियों का दर्शन किया।

श्रीराम ! सत्ययुग के प्रथम दो शतक जब व्यतीत हो चुके थे, तब मेरु पर्वत के उस कल्प वृक्ष पर भुशुण्ड के साथ मैंने पहले-पहल भेंट की थी। इस समय सत्ययुग के क्षीण हो जाने पर त्रेतायुग चल रहा है और इस त्रेतायुग के मध्य में आप प्रकट हुए हैं। आज से आठ वर्ष पहले सुमेरु पर्वत उसी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shamma (I.P.S) Jammu Collection

शिखर के ऊपर ज्यों का त्यों अजररूपधारी भुशुण्ड मुझसे फिर मिला था। इस प्रकार विचित्र उत्तम भुशुण्ड-वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा, इसका श्रवण और विचार करके जैसा उचित समझो, वैसा करो।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! बुद्धिमान् भुशुण्ड की इस उत्तम कथा का जो विशुद्ध बुद्धि मनुष्य भलीप्रकार विवेकपूर्वक विचार करेगा, वह इसी शरीर में जन्मादि भयों से परिपूर्ण इस माया नदी को पार कर जायगा।

उन्नीसवां सर्ग समाप्त

बीसवां सर्ग

शरीर और संसार की अनिश्चितता का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-निष्पाप श्रीराम ! इस प्रकार यह भुशुण्ड-वृतान्त मैंने तुमसे कहा। इस विवेकयुक्त यथार्थ बुद्धि से भुशुण्ड मोह संकट से तर गया था। पूर्वोक्त प्राण और अपान की उपासना करनेवाले सभी अनासक्त बुद्धि मनुष्य भुशुण्ड की तरह परम पदरूप परमात्मा में स्थिति प्राप्त करते हैं। श्रीराम ! इन सब विचित्र विज्ञानोपासनाओं का तुमने श्रवण किया। अब बुद्धि का अवलम्बन करके जैसा उचित समझो, वैसा करो।

श्रीरामजी ने कहा-भगवन् ! आपने जो भुशुण्ड का उत्तम, यथार्थ तत्त्व का बोधक और आश्चर्यजनक श्रेष्ठ चरित्र कहा, उससे मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। ब्रह्मन् ! मांस, चर्म और अस्थि से निर्मित शरीररूपी घर का जो आपने वर्णन किया है, उसकी किसने रचना की, कहाँ से वह उत्पन्न हुआ, किस तरह से स्थित हुआ और उसमें कौन रहता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-राघव ! परब्रह्मरूप परमार्थ तत्त्व को जानने के लिये तथा संसार के कारणरूप अनेक दोषों के विनाश के लिये मेरे द्वारा तत्त्वतः कहे जाने वाले इस उपदेश को तुम सुनो। श्रीराम ! इस शरीररूपी घर का-जिसमें हड्डियाँ ही खंभे हैं, मुख आदि नौ दरवाजे हैं और जो रक्त और मांस से लीपा गया है-वास्तव में किसी ने भी निर्माण नहीं किया है। यह शरीर केवल आभासरूप (झलकमात्र) ही है-बिना निर्माता के ही अज्ञान से भासित होता है। यह देह प्रतीत होता है, इसलिये इसे सत् कहा गया है और वास्तव में यह नहीं है, इसलिये असत् कहा गया है। जैसे स्वप्नकाल में ही स्वाप्निक पदार्थ सत् से प्रतीत होते हैं, किन्तु जाग्रतकाल में वे असत् हैं-उनका अत्यन्त अभाव

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

है, तथा जैसे मृगतृष्णा का जल भी मृगतृष्णा की प्रतीति होने पर ही सत् सा रहता है, अन्य विचारकाल में वह असत् रहता है, वैसे ही देह की प्रतीति होने पर देह सत्य सी है, और आत्मा का यथार्थ ज्ञान होने पर असत्य है, अर्थात् उसका अत्यन्त अभाव है। इसलिये ये शरीर आदि, जो केवल अभासरूप ही हैं, अज्ञानकाल में ही प्रतीत होते हैं।

श्रीराम ! भला, बतलाओ तो सही कि सुख शय्या पर सोये हुए तुम जिस स्वप्न देह से विविध दिशाओं में परिभ्रमण करते हो, वह तुम्हारी देह किस स्थान में स्थित है। स्वप्नों में भी जो दूसरा स्वप्न आता है, उस स्वप्न में जिस देह से बड़े-बड़े पृथिवी-तटों पर तुम परिभ्रमण करते हो, वह तुम्हारी देह कहाँ स्थित है ? मनोराज्य के भीतर कल्पित दूसरे मनोराज्य में बड़े-बड़े वैभवपूर्ण स्थानों में संकल्प द्वारा जिस देह से तुम भ्रमण करते हो, वह तुम्हारी देह कहाँ स्थित है अर्थात् कहीं नहीं। श्रीराम ! ये शरीर जिस प्रकार मानसिक संकल्प से उत्पन्न अतएव सत् और असद्रूप हैं, ठीक उसी प्रकार यह प्रस्तुत शरीर भी मानसिक संकल्प से उत्पन्न-अतएव सद्रूप और असद्रूप है। यह मेरा धन है, यह मेरा शरीर है, यह मेरा देश है-इस प्रकार की भ्रमजनित प्रतीति होती है, वह भी अज्ञान से ही होती है; क्योंकि धन आदि सब कुछ चित्तजनित संकल्प का ही कार्य है। रघुनन्दन ! इस संसार को एक तरह का दीर्घ स्वप्न, दीर्घ चित्तभ्रम या दीर्घ मनोराज्य ही समझना चाहिये। स्वप्न और संकल्पों से (मनोराज्यों से) जैसे एक विलक्षण बिना हुए ही जगत् की प्रतीति होती है, वैसे ही यह व्यावहारिक जगत् की स्थिति भी एक प्रकार से संकल्पजनित एवं विलक्षण (अनिर्वचीनीय) ही है; क्योंकि वह बिना हुए ही प्रतीत होती है। श्रीराम! पौरुष प्रयत्न से मन को अन्तर्मुख बनाने पर जब परमात्मा के तत्त्व का यथार्थ साक्षात्कार हो जाता है, तब यह जगदाकार संकल्प चिन्मय परमात्मरूप ही अनुभव होने लगता है; किन्तु यदि उसकी विपरीत रूप से भावना की जाय तो विपरीत ही अनुभव होने लगता है (भावना के अनुसार ही संसार है)। क्योंकि 'यह वह है', 'यह मेरा है' और 'यह मेरा संसार है',-इसप्रकार की भावना करने पर देहादि जगद्रूप संकल्प जो सत्य सा प्रतीत होता है, वह केवल सुदृढ़ भावना से ही होता है। दिन के व्यवहारकाल में मनुष्य जैसा अभ्यास करता है, वैसा ही स्वप्न में उसे दिखायी पड़ता है। उसी प्रकार बारंबार जैसी भावना की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LF S) Jammu Collection

जाती है, वैसा ही यह संसार दिखलायी देता है। जैसे स्वप्नकाल में थोड़ा सा समय भी अधिक समय प्रतीत होता है, वैसे ही यह संसार अल्पकाल स्थायी और विनाशशील होने पर भी स्थिर प्रतीत होता है।

जैसे सूर्य की किरणों से मरुभूमि में मृगतृष्णा नदी दिखायी देती है, वैसे ही ये पृथिवी आदि पदार्थ वास्तविक न होने पर भी संकल्प से सत्य से दिखायी देते हैं। जिस प्रकार नेत्रों के दोष से आकाश में मोरपंख दिखायी देते हैं, वैसे ही बिना हुए ही यह जगत मन के भ्रम से प्रतीत होता है। किन्तु दोषरहित नेत्र से जैसे आकाश में मोरपंख नहीं दिखायी देते, वैसे ही यथार्थ ज्ञान होने पर यह जगत् दिखलायी नहीं पड़ता। श्रीराम ! जिस प्रकार डरपोक मनुष्य भी अपने कल्पित मनोराज्य के हाथी, बाघ आदि को देखकर भयभीत नहीं होता, क्योंकि वह समझता है कि यह मेरी कल्पना के सिवा और कुछ नहीं है, वैसे ही यथार्थ ज्ञानी पुरुष इस संसार को कल्पित समझकर भयभीत नहीं होता; क्योंकि ये भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों जगत् प्रतीतिमात्र ही हैं। वे वास्तव में नहीं हैं, इसलिये सत् नहीं है और उनकी प्रतीति होती है, इसलिये उनको सर्वथा असत् भी नहीं कह सकते; अतएव अन्य कल्पनाओं का अभाव ही परमात्मा का यथार्थ ज्ञान है। इस संसार में व्यावहार करने वाले सभी मनुष्यों को अनेक प्रकार की आपदाएँ स्वाभाविक ही प्राप्त हुआ करती हैं। क्योंकि यह जगत् समूह वैसे ही उत्पन्न होता है, बढ़ता और विकसित होता है, जैसे समुद्र में बुद्बुदों का समूह; फिर इस विषय में शोक ही क्या। परमात्मा जो सत्य वस्तु है, वह सदा सत्य ही है और यह दृश्य जो असत्य वस्तु है, वह सदा असत्य ही है; इसलिये मायारूप विकृति के वैचित्र्य से प्रतीयमान इस प्रपंच में ऐसी दूसरी कौन वस्तु है; जिसके विषय में शोक किया जाय ?

इसलिये असत्यभूत इस संसार में तनिक भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए; क्योंकि जैसे रज्जु से बैल दृढ़ बँध जाता है, वैसे ही आसक्ति से यह मनुष्य दृढ़ बँध जाता है। अतः निष्पाप श्रीराम ! 'यह सब ब्रह्मरूप ही है' इस प्रकार समझकर तुम आसक्ति रहित हुए इस संसार में विचरण करो। मनुष्य को विवेक-बुद्धि से आसक्ति और अनासक्ति का परित्याग करके अनायास ही शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये, शात्रनिषिद्ध कर्मों का कभी नहीं। अर्थात् उनकी सर्वथा उपेक्षा कर देनी चाहिए। यह दृश्यमान प्रपंच केवल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha Collection

प्रतीतिमात्र है, वास्तव में कुछ नहीं है-यों जिस मनुष्य को भलीभाँति अनुभव हो जाता है, वह अपने भीतर परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है। अथवा 'मैं और यह सारा प्रपंच चैतन्यात्मक परब्रह्मस्वरूप ही है'-इस प्रकार अनुभव करने पर अनर्थकारी यह व्यर्थ जगद्रूपी आडम्बर प्रतीत नहीं होता। श्रीराम ! जो कुछ भी आकाश में या स्वर्ग में या इस संसार में सर्वोत्तम परमात्म वस्तु है, वह एकमात्र राग द्वेष आदि के विनाश से ही प्राप्त हो जाती है। किन्तु राग द्वेष आदि दोषों से आक्रान्त हुई बुद्धि के द्वारा जैसा जो कुछ किया जाता है, वह सब कुछ मूढ़ों के लिये तत्काल ही विपरीत रूप (दुःखरूप) हो जाता है। जो पुरुष शास्त्रों में निपुण, चतुर एवं बुद्धिमान् होकर भी राग-द्वेष आदि से परिपूर्ण हैं, वे संसार में श्रृगाल के तुल्य हैं। उन्हें धिक्कार है। धन, बन्धु वर्ग, मित्र-ये सब बार-बार आते और जाते रहते हैं; इसलिये उनमें बुद्धिमान् पुरुष क्या अनुराग करेगा। कभी नहीं, उत्पत्ति-विनाशशील भोग-पदार्थों से परिपूर्ण संसार की रचनारूप यह परमेश्वर की माया आसक्त पुरुषों को ही अनर्थ गर्तों में ढकेल देती है। राघव ! वास्तव में धन, जन और मन सत्य नहीं है, किन्तु मिथ्या ही दीख पड़ते हैं। क्योंकि आदि और अन्त में सभी पदार्थ असत हैं और बीच में भी क्षणिक एवं दुःखप्रद हैं; इसलिये बुद्धिमान् पुरुष आकाश-वृक्ष के सदृश कल्पित इस संसार से कैसे प्रेम करेगा।

बीसवां सर्ग समाप्त

इक्कीसवां सर्ग

संसार चक्र के अवरोध का उपाय

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जब केवल संकल्परूपी नाभि का भली प्रकार अवरोध कर दिया जाता है, तभी यह संसाररूपी चक्र घूमने से रुक जाता है। किन्तु संकल्पात्मक मनोरूप नाभि को राग-द्वेष आदि से क्षोभित करने पर यह संसाररूपी चक्र रोकने की चेष्टा करने पर भी वेग के कारण चलता ही रहता है। इसलिये परमपुरुषार्थ का आश्रय लेकर श्रवण, मनन, निदिध्यासन की युक्तियों के द्वारा ज्ञानरूपी बल से चित्तरूपी संसार-चक्र नाभि का आवश्यक अवरोध करना चाहिये। क्योंकि कहीं पर ऐसी कोई वस्तु उपलब्ध है ही नहीं, जो उत्तम बुद्धि तथा सौजन्य से परिपूर्ण शास्त्रसम्मत परम पुरुषार्थ से प्राप्त न की जा सके। श्रीराम ! आधि और व्याधि से निरन्तर दुःखित, अश्रु

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji shamala (I.A.S) Jammu Collection

आदि से खिन्न तथा स्वयं विनाशशील इस शरीर में उसप्रकार की भी स्थिरता नहीं रहती, जिस प्रकार की चित्रलिखित पुरुष में रहती है। चित्रित मनुष्य की यदि भलीभाँति रक्षा की जाय तो वह दीर्घकाल तक सुशोभित रहता है; किन्तु उसका बिम्बरूप शरीर तो अनेक यत्नों से रक्षित होने पर भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। स्वप्न आदि का शरीर स्वप्नकालीन संकल्प से जनित होने के कारण दीर्घकालीन सुख-दुःखों से आक्रान्त रहता है। संकल्पमय यह शरीर स्वयं भी नहीं है और न आत्मा के साथ इसका सम्बन्ध ही है; अतः इस शरीर के लिये यह अज्ञानी जीव निरर्थक क्लेश का भाजन क्यों बनता है ? अर्थात् इसमें एकमात्र अज्ञान ही हेतु हैं। जिस प्रकार चित्रलिखित पुरुष का क्षय या विनाश हो जाने पर बिम्बरूप देह की हानि नहीं होती, उसी प्रकार संकल्पजनित पुरुष का क्षय या विनाश हो जाने पर आत्मा की कुछ भी हानि नहीं होती। जिस प्रकार मनोराज्य में उत्पन्न शरीर आदि पदार्थों का क्षय या विनाश हो जाने पर आत्मा की कुछ भी हानि नहीं होती, जिस प्रकार स्वप्न में उत्पन्न पदार्थों का क्षय या विनाश हो जानेपर आत्मा की हानि नहीं होती अथवा जिस प्रकार मृगतृष्णिका नदी के जल का क्षय या विनाश हो जाने पर वास्तविक जल की कुछ भी हानि नहीं होती, उसी प्रकार एकमात्र संकल्प से उत्पन्न, स्वभावतः विनाशशील इस शरीररूपी यंत्र का क्षय या विनाश हो जाने पर आत्मा की कुछ भी हानि नहीं होती। अतः शरीर के लिये शोक करना निरर्थक ही है। चित्त के संकल्प से कल्पित तथा दीर्घकालीन स्वप्नमय इस देह के अलंकारों से भूषित या आधि-व्याधि से दूषित हो जाने पर चेतन आत्मा की कुछ भी हानि नहीं है। श्रीराम ! देह का विनाश होने पर चेतन आत्मा विनष्ट नहीं होता।

अज्ञानरूप चक्र के ऊपर स्थित हुआ जीवात्मा जिस देह के जन्म मरणरूपी चक्र को देखता रहता है, वह उत्तरोत्तर अधिक भ्रान्ति को देनेवाला, स्वयं भ्रान्तिरूप, पतनोन्मुख स्वरूप ग्रस्त, भली प्रकार अनर्थ गर्तों में गिराया गया, हत एवं हन्यमान ही दीख पड़ता है। इसलिये मनुष्य को उत्तम धैर्य का भली प्रकार आश्रय लेकर इस अनादि दृढ़ीभूत भ्रम का परित्याग कर देना चाहिए। मिथ्या अज्ञान के द्वारा एकमात्र संकल्प से उत्पन्न हुआ यह शरीर सत्य सा होने पर भी वास्तव में असत्य ही है; क्योंकि जो वस्तु अज्ञान से उत्पन्न हुई है, वह किसी समय भी सत्य नहीं हो सकती। श्रीराम ! जड़ पदार्थों के द्वारा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LEC) Jammu Collection

जो कुछ किया जाता है, वह किया हुआ नहीं माना जाता; इसलिये यह देह कार्य करता हुआ भी कुछ भी नहीं करता। जड़ देह तो इच्छा से रहित है और इस निर्विकार आत्मा में इच्छा रहती नहीं; इसलिये कोई कर्ता है ही नहीं। आत्मा शरीर का द्रष्टामात्र है। अपने शरीररूपी घर से चित्तरूपी वेताल को हटा देने पर इस संसाररूपी शून्य नगर में पुरुष कभी भी नहीं डरता। विशद बुद्धि से अहंकार की दासता छोड़कर और अहंकार को सर्वथा भूलकर शीघ्रातिशीघ्र अपनी आत्मा का ही अवलम्बन करना चाहिये। अहंकार से युक्त बुद्धि से जो क्रिया की जाती है, विषवल्लरी के फल के सदृश्य उसका फल मरणरूप ही होता है। विवेक एवं धैर्य से रहित जिस मूर्ख ने अपने अहंकाररूपी महोत्सव का अवलम्बन किया, उसे तुम तत्काल विनष्ट हुआ ही समझो। राघव ! जिन बेचारों को अहंकाररूपी पिशाच ने अपने अधीन बना लिया, वे सब नरकरूपी अग्नियों के ईंधन ही बन गये अर्थात् वे नरक की ज्वाला जलते रहते हैं। पापशून्य राघव! हा ! हा ! मैं मर गया हूँ', 'मैं जल गया हूँ' इत्यादि जो दुःखवृत्तियाँ हैं, वे अहंकाररूपी पिशाच की ही शक्तियाँ हैं, दूसरे की नहीं। जिस प्रकार सर्वत्र व्यापक आकाश यहाँ किसी से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार सर्वत्र व्यापक आत्मा भी अहंकार से लिप्त नहीं होता। श्रीराम ! प्राणवायु से युक्त यह चंचल देहरूपी यंत्र जोकुछ करता एवं जोकुछ लेता है, वह सब अहंकार की चेष्टा है।

श्रीराम ! जड़ चित्त का, जो आत्मा से सर्वथा पृथक् है, चेतन आत्मा के साथ कभी सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। चित्त ही आत्मा है-यों अज्ञान से ही प्रतीत होता है। यह जो आत्मा है, वह ज्ञानस्वरूप (चैतन्यरूप), अविनाशी, सर्वत्र विद्यमान और व्यापक है; जब कि अहंकाररूप चित्त तो मूर्ख और हृदयवर्ती सबसे बड़ा अज्ञान है। जिस पुरुष का चित्तरूपी वेताल शान्त हो चुका है, ऐसे पुरुष का गुरु, शास्त्र, धन और बन्धु उसी प्रकार उद्धार करने में समर्थ हैं, जिस प्रकार अल्प कीचड़ में फँसे हुए पशु का मनुष्य उद्धार करने में समर्थ हो। इस जगत्‌रूपी महान् अरण्य में अपने द्वारा ही स्वयं दृढ़ता से धैर्य धारण कर अपना उद्धार कर लेना चाहिए। श्रीराम ! मनुष्य को उचित है कि विषयरूपी सर्पों का बहिष्कार करदे, आर्यों के मार्ग का अनुसरण करे और महाकाव्यों के अर्थ का भली प्रकार विचार करके अपनी अद्वितीय आत्मा का ही आश्रय ले। मनुष्य को अपवित्र, तुच्छ, भाग्यरहित तथा दुष्ट आकृति वाले इस शरीर के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

आराम के लिये विषयभोग में कभी नहीं फँसना चाहिये; क्योंकि उसमें फँसे हुए पुरुषों को चिन्तारूप क्रूर राक्षसी खा डालती है। जैसे पत्थर का पत्थरपन अथवा जैसे घट का घटपना सामान्य सत्तास्वरूप परमात्मा से अभिन्न ही है, वैसे ही समष्टि-व्यष्टि मन आदि भी परमात्मा से अभिन्न ही हैं। श्रीराम ! इस विषय में आगे कही जाने वाली महान् अज्ञान की नाशक मानस शिव पूजारूप यह दूसरी बात तुम श्रवण करो, जो चन्द्रमौलि भगवान् शंकर ने कैलास पर्वत की कन्दरा में जन्म-मरणरूप दुःख की शान्ति के लिये मेरे समक्ष कही थी।

कैलास नामक एक पर्वतों का राजा है। वह अपनी ऊँचाई से स्वर्गलोक को भी पार कर गया है और वह उमापति भगवान् श्रीशंकर का निवास स्थान है। वहाँ पर स्वयं प्रकाशमान भगवान् महादेवजी रहते हैं। पहले किसी समय उसी पर्वत पर उन देवाधिदेवजी की पूजा करता हुआ मैं गंगाजी के किनारे आश्रम बना कर रहता था। तप के लिये वहाँ पर मैंने दीर्घकाल तक तपस्वियों के आचरण का अनुसरण किया। वहाँ पर मेरे चारों ओर सिद्धों के समूह रहते थे। मैं उनसे विचार विनिमय करके शास्त्रीय दुरूह तत्वों का अनुशीलन करता था। मैंने फूल चुनने के लिये एक डलिया रख छोड़ी थी और अनेक शास्त्रीय पुस्तकें भी जुटा रखीं थीं। श्रीराम ! उस तरह के गुणों से सम्पन्न कैलास वन के कुंजों में तपस्या करते हुए मेरा बहुत समय व्यतीत हो गया। इसके अनन्तर किसी एक समय की बात है-श्रावण के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि थी और रात्रि का प्रथम भाग यानी प्रदोषकाल पूजा, जप, ध्यान, आदि में व्यतीत हो चुका था। उस समय उस अरण्य में मैंने तत्काल ही उत्पन्न हुआ एक बड़ा तेज देखा। वह तेज सैकड़ों बादलों के तुल्य सफेद एवं असंख्य चन्द्र बिम्बों के सदृश चमकीला था, उस तेज की चकाचौंध से दिशाओं के समस्त कुंज चमक उठे। उसे देखकर मैंने भीतर की प्रकाशमान दिव्य-दृष्टि से उसके विषय में विचार किया और तदनन्तर फिर बाह्य दृष्टि से विशेष अवयवों के अनुसंधान पूर्वक उसका अवलोकन किया। विचारकर ज्यों ही मैं सामने का शिखर-प्रदेश देखता हूँ, त्यों ही चन्द्रकलाधर महादेवजी उपस्थित हो गये। वहाँ अर्घ्यपात्र लेकर सावधान एवं प्रसन्न मन मैं उन गौरीपति के निकट गया। तदनन्तर चन्द्रज्योत्स्ना के समान कोमल, शीतल तथा समस्त संतापों का अपहरण करने वाली उस महादेवजी की दृष्टि का मैं दीर्घकाल तक भाजन बना

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu Collection

रहा। पुष्पों के शिखर पर उपविष्ट तीनों लोकों के साक्षी उन देवाधिदेव को मैंने समीप जाकर अर्घ्य, पुष्प तथा पाद्य समर्पण किया। उनके सामने मैंने अनेक मन्दार पुष्पों की अंजलियाँ बिखेर दीं और नानाविध नमस्कार एवं स्तोत्रों से शिवजी का अभ्यर्चन किया। तदनन्तर मैंने शिवजी की पूजा के सदृश ही पूजा से सखियों से युक्त तथा गणमण्डल से परिवेष्टित भगवती गौरी का उत्तम रीति से पूजन किया। पूजा की समाप्ति होने पर उनकी आज्ञा से पुष्पमय शिखर पर बैठे हुए मुझसे अर्धचन्द्र की कला धारण करने वाले भगवान् उमापित परिपूर्ण हिमांशु की किरण के सदृश शीतल वाणी से कहने लगे।

भगवान् उमापति ने कहा-ब्रह्मन् ! शान्ति से युक्त, परमात्मा में विश्राम लेने वाली तथा कल्याण करनेवाली तुम्हारी चित्तवृतियाँ अपने स्वरूप में अवस्थित तो हैं ? तुम्हारा कल्याणकारी तप निर्विघ्नरूप से बराबर चल रहा है न ? तुमने प्राप्तव्य वस्तु प्राप्त कर ली है न ? और सांसारिक भय शान्त हो रहे हैं न ?

इक्कीसवां सर्ग समाप्त

बाईसवां सर्ग

निराकार परमात्मा की पूजा

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! समस्त लोकों के एकमात्र हेतु देवाधिदेव महादेवजी के उस प्रकार कहने के अनन्तर विनययुक्त वाणी से मैंने उनसे निवेदन किया-'महेश्वर ! देवाधिदेव ! त्रिलोचन ! आपकी निरन्तर स्मृति से प्राप्त हुए उत्तम कल्याण से सम्पन्न पुरुषों के लिये इस संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है और न किसी तरह के भय ही हैं। आपके निरन्तर स्मरण से जनित आनन्द के कारण जिनका चित्त चारों ओर से मुग्ध हो गया है, ऐसे पुरुषों को इस जगत्कोश में सभी प्राणी प्रणाम करते हैं। एकमात्र आपके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अनुस्मरण में निरन्तर जिनका मन लगा रहता है, ऐसे पुरुष जहाँ स्थित रहते हैं, वे ही देश, वे ही जनपद, वे ही दिशाएँ और वे ही पर्वत प्रशस्ततम हैं। प्रभो ! आपका अनुस्मरण पूर्व संचित, वर्तमान और भविष्य के पुण्य समूह की वृद्धि करता है। आपका अनुस्मरण ज्ञानरूपी अमृत का एकमात्र आधारभूत कलश है, धृतिरूपी नगर का द्वार है। समस्त भूतों के अधिपते ! आपके निरन्तर चिन्तनरूपी उदार चिन्तामणि से शोभित मैंने समस्त वर्तमान और भविष्यकालीन आपत्तियों को पैर से ठुकरा दिया है।' श्रीराम ! सुप्रसन्न उन भगवान् शंकरजी से यों कहकर फिर नतमस्तक हो मैंने जो कुछ कहा, उसे तुम सुनो ! 'भगवन् ! यद्यपि आपकी अनुकम्पा से मेरे लिये समस्त दिशाएँ अभीष्ट पदार्थों से परिपूर्ण हैं, तथापि देवेश ! मुझे जो एक संदेह है, उसके विषय में आपसे निर्णय पूछता हूँ। प्रभो ! वह देवार्चन-विधान किस तरह का है, जो उद्वेग का नाशक, विकार रहित, समस्त पापों का विनाशकारी तथा समस्त कल्याणों का अभिवर्धक है ? उसे प्रसन्नमति से आप मुझसे कहिये।'

श्री महादेवजी ने कहा-ब्रह्मज्ञानियों में अग्रगण्य मुनिवर ! मैं तुमसे सर्वश्रेष्ठ वह देवार्चन का विधान कहता हूँ, जिसका अनुष्ठान करने से तत्काल ही मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो आदि और अन्त से रहित, वास्तविक ज्ञानस्वरूप है,वही 'देव' कहा जाता है। सबको सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला सत्-स्वरूप सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही 'देव' शब्द का वाच्य है, इसलिये उसी की पूजा करनी चाहिये। कौन पूज्य है, इस विषय का तात्त्विक ज्ञान रखने वाले विद्वान् कहते हैं कि एकमात्र निर्गुण निराकार विज्ञानानन्दघन विशुद्ध परमात्मा शिव ही पूज्य है और उसकी पूजन सामग्री में ज्ञान, समता और शान्ति-ये सबसे श्रेष्ठ पुष्प हैं। महर्षे ! ज्ञानस्वरूप परमात्मदेव की ज्ञान, समता और शान्तिरूप पुष्पों से जो पूजा की जाती है, उसी को आप वास्तविक देवार्चन जानिये। परमात्मा ही विज्ञानस्वरूप देव, भगवान् शिव और परम कारण स्वरूप है। अतः ज्ञानरूप पूजन-सामग्री से उसी की सदा सर्वदा पूजा करनी चाहिए। वसिष्ठजी ! आप जीवात्मा को चिन्मय आकाशस्वरूप अविनाशी अकृत्रिम सच्चिदानन्द परमात्म स्वरूप ही जानिये। एकमात्र वह परमात्मा ही पूज्य है, उसके सिवा दूसरा कोई पूज्य नहीं है। अतः उस विज्ञानानन्दघन परमात्मा की पूजा ही पूजा है। महर्षे ! जो परमार्थतः सबसे श्रेष्ठ है, जो आपका-'तत्' पदार्थ का, मेरा तथा समस्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshi Sharma (I.F.S) Jammu Collection

जगत् का स्वरूप भूत है, एवं जो स्वयं परिपूर्णस्वरूप है, ज्ञानरूप सामग्री से पूजा करने योग्य उस देव का मैंने आपसे वर्णन कर दिया। सभी वस्तुओं का, समस्त जगत् का, दूसरेका, आपका और मेरा सर्वव्यापी चिन्मय परमात्मा ही पारमार्थिक स्वरूप है, दूसरा नहीं।

बाईसवां सर्ग समाप्त

तेईसवां सर्ग

चेतन परमात्मा की सर्वात्मता

श्रीमहादेवजी ने कहा-ब्रह्मन् ! इस रीति से यह समस्त संसार एकमात्र परमात्मस्वरूप ही है। ब्रह्म ही परम आकाश है और यही सबसे बड़ा देव कहा गया है। इस परमदेव का पूजन सबसे कल्याणकार है। उसीसे सब कुछ प्राप्त होता है। वही समस्त जगत्-सृष्टि के आरोप का अधिष्ठान है और उसी में यह सब व्यवस्थित है। स्वाभाविक, आदि-अन्त से रहित, अद्वितीय, अखण्ड नित्य परमानन्द उसी एकमात्र देव की अर्चना से प्राप्त होता है। वह सच्चिदानन्द कल्याणस्वरूप शिव समस्त गुणों से अतीत और सम्पूर्ण संकल्पों से रहित है। मुने ! देश और काल आदि परिच्छेदों से रहित, समस्त संसार का प्रकाश करनेवाला विशुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा ही देव कहा जाता है। वही परब्रह्म परमात्मा 'ॐ' 'तत्', 'सत्' इन नामों से कहा गया है। वह स्वभावतः महान् ध्रुव सत्यस्वरूपहै, सर्वत्र समभाव से व्यापक है; वही महान् चेतन और परमार्थस्वरूप कहा जाता है। पापशून्य मुने ! अरुन्धती का और आपका जो चैतन्य तत्त्व है, पार्वतीजी का मेरा और गणों का जो चैतन्य तत्त्व है तथा जो चैतन्य तत्त्व तीनों जगत् में परिपूर्ण है, उत्तममति तत्त्वज्ञ लोग उसे ही परमदेव परमात्मा समझते हैं। एकमात्र चिन्मय परमात्मा ही इस दृश्य संसार का सार हैं; इसलिये सकल-सारभूत वस्तुओं की भी साररूपता को प्राप्त हुआ वह सर्वरूप परम देव परमात्मा मैं हूँ। ब्रह्मन् ! वह परमात्मा सर्वव्यापी होनेसे किसी के लिये भी दूर नही हैं। वह शरीर के बाहर-भीतर-सर्वत्र स्थित है। वही परमात्मा चिन्मय, सूक्ष्म, सर्वव्यापी और माया रहित है। देव, दानव और गन्धर्वों तथा पर्वत, समुद्र आदि से युक्त यह सम्पूर्ण जगत् उस चैतन्य में स्थित होकर कर्मानुसार उसी प्रकार घूमता रहता है, जिस प्रकार जल भँवर में जल।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama (I.T.S) Jammu Collection

ब्रह्मन् ! चिन्मय परमात्माने ही गदा, चक्र आदि आयुधों से युक्त चतुर्भुज विष्णुरूप से समस्त असुर-समूह का उसी प्रकार विनाश कर दिया था, जिस प्रकार वर्षाऋतु इन्द्र धनुष से युक्त मेघरूप से आतप का विनाश कर देती है। चेतन परमात्मा ने भी वृषभ और चन्द्रमा के चिन्हों से युक्त त्रिनेत्र रूप धारण कर गौरी को प्राप्त किया है। चेतन परमात्मा ही भगवान् विष्णु के नाभिकमल में भ्रमर के समानध्यान में तल्लीन एवं वेदत्रयीरूपी कमलिनी का महान् सरोवरस्वरूप ब्रह्माजी का रूप धारण करता है। इसी महाचैतन्य परमात्मा के सकाश से सूर्य-चन्द्रमा आदि सदा प्रकाशित होते हैं। निर्मल चेतनरूपी चन्द्रबिम्ब में खरगोश की तरह सम्बन्ध प्राप्तकर यह जगत् स्थित पदार्थों की शोभा सर्वत्र दिखायी पड़ती है। भद्र ! सुनो। यद्यपि इस देहरूपी वृक्ष में हाथ, पैर आदि अपने अंग ही शाखाएँ हैं और केशों का समूह ही सुन्दर लताओं का समूह है, तथापि यह वृक्ष क्या पर्याप्तरूप से चेतन के सम्बन्ध के बिना किसी तरह शोभित हो सकता है ? चराचर पदार्थों का निर्माण करने वाला भी यह चेतन ही है, दूसरा नहीं, इसलिये एकमात्र चेतन ही अपने संकल्प से जगत्रूप में प्रकट है। ब्रह्मन् ! वस्तुतः इस शरीर में दो प्रकार का सर्वभूत स्वरूप चेतन है-एक तो चंचलस्वभाव जीवात्मा और दूसरा निर्विकल्प परम चेतन परमात्मा। वह चेतन परमात्माही अपने संकल्प से जीवात्मा के रूप में अपने भिन्न सा होकर स्थित है। वह चेतन परमात्मा ही अपने संकल्प से आकाश आदि पाँच भूतों, शब्दादि पाँच विषयों, प्राणापनादि पाँच प्राणों और देशकाल के रूप में परिणत होता है। सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही नारायण होकर समुद्र में शयन करता है, ब्रह्मा होकर ब्रह्मलोक में ध्यानस्थित रहता है, हिमालय पर्वत पर पार्वती के सहित महादेवजी का रूप धारण कर निवास करता है और वैकुण्ठ में देवश्रेष्ठ विष्णु का रूप धारण कर रहता है। वह परमात्मा ही सूर्य बनकर दिवस का निर्माण करता है, मेघ बनकर जल बरसाता है, वायु बनकर बहता है। सबका आत्मा, सर्वत्र व्यापक एवं अपनी समस्त संकल्पशक्ति के प्रभाव से सर्वस्वरूप होने के कारण वह चिन्मय ब्रह्म जगत्रूप हो जाता है। वास्तव में तो वह विज्ञानानन्द परमात्मा आकाश से भी बढ़कर निर्मल और सूक्ष्म है। वह परमात्मा जब जहाँ पर जिस भाव से जिस तरह संकल्प करता है, तब-तब वहाँ वैसा ही बन जाता है।

तेईसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

चौबीसवाँ सर्ग

शुद्ध चेतन आत्मा और जीवन के स्वरूप का विवेचन

श्रीमहादेवजी ने कहा-ब्रह्मन ! चेतन जीवात्मा अज्ञान के कारण 'मैं दुखी हूँ' इस भावना से व्यर्थ ही दुखी होता है और 'मैं नष्ट हो गया, मैं मर गया' यों भावना करता हुआ रोता रहता है। किंतु जिस प्रकार पत्थर में तेल नहीं रहता, उसी प्रकार शुद्ध चेतन आत्मा में दृश्य, दर्शन और द्रष्टा की त्रिपुटी नहीं रहती। जैसे चन्द्रमा में कालिमा नहीं रहती, वैसे ही शुद्ध आत्मा में कर्ता, कर्म और करण नहीं रहते। जिस प्रकार आकाश में नवीन अंकुर का अभाव है, उसी प्रकार आत्मा में प्रमाता, प्रमेय और प्रमाण-इन तीनों का अभाव है। जिस प्रकार नन्दन-वन में खैरके वृक्ष का अभाव है, उसी प्रकार शुद्ध आत्मा में, मनन और दृश्य विषय का अभाव है । जैसे आकाश में पर्वत का अभाव है, वैसे ही शुद्ध चेतन में मैं-पना, तू-पना और वह-पना आदि नहीं है। जैसे काजल में सफेदी नहीं रहती, वैसे ही चेतन में अपनी देह तथा परायी देह का भाव नहीं रहता। वह शुद्ध चेतन आत्मा केवल, निर्विकल्प, सर्वव्यापक, सम्पूर्ण तेजों को भी प्रकाशित करने वाला, स्वच्छ और परम श्रेष्ठ है। वह सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकाशित करने वाला, सर्वव्यापक, नित्य शुद्ध, नित्य प्रकाशरूप, मन से रहित, निर्विकार और निरंजन है। एक वही घट और पट में, वट और दीवाल में, शकट और वानर में, गदहे और असुर में, सागर और आकाशादि भूतों में तथा नर और नाग में-सर्वत्र व्यापक होकर स्थित है। वह शुद्ध हुआ भी मलिन-सा, निर्विकल्प हुआ भी सर्विकल्प-सा, चेतन हुआ भी जड़-सा और सर्वव्यापी हुआ भी एकदेशीय-सा प्रतीत होता है।

कर्मेंद्रियों की प्रवृत्ति में तत्परता संकल्प से होती है। वह संकल्प मननजनितहै। वह मनन चित्त की अशुद्धि के कारण होता है और उन सबका साक्षी आत्मरूप चेतन सर्वविध मलों से रहित है। जिस प्रकार स्फटिक-शिला में अरण्य, पर्वत, नदी आदि का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी प्रकार अपने स्वरूप में ही स्थित प्रकाशरूप नित्य चेतन-के अन्तःकरण में इस जगत् का प्रतिबिम्ब पड़ता है। इस जगत् का अपने संकल्प में धारण करने वाला अद्वितीय, निर्विकार चेतन न उत्पन्न होता है न विनष्ट होता है, न क्षीण होता है और न बढ़ता ही है। अर्थात् वह सब प्रकार के विकारों से रहित है। असत्स्वरूप यह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.E.S.) Jammu Collection

जगत् अज्ञान के कारण विलास स्वप्न की तरह आत्मा में ही प्रतीत होता है। किंतु वास्तव में मृगतृष्णिका-जल के सदृश प्रतीत होनेवाना यह जगत् तनिक भी सत्य नहीं है। मुने ! यह परम चेतन आत्मा अपने पुर्यष्टक में ही प्रतिबिम्बित होता है, जैसे स्वच्छ दर्पण में ही प्रतिमा दिखलायी पड़ती है। महर्षे ! अनेक प्रकार की कल्पनाओं-से ग्रस्त यह पुर्यष्टकरूप दृश्यसमूह शुद्ध चिन्मय आत्मा से ही उत्पन्न होता है, उसी में स्थित और विलीन हो जाता है। इसलिये यह सम्पूर्ण विश्व विशुद्ध चेतन आत्मस्वरूप ही है, दूसरा नहीं-यह जानिये।

जिस प्रकार जड़ लोह लोह-चुम्बक के सानिध्य से संचरणशील होता है, उसी प्रकार सर्वव्यापी सत्स्वरूप परमात्मा के सानिध्य से यह जीवात्मा संचरणशील होता है। अर्थात् सर्वत्र स्थित परमात्मशक्ति से ही यह जीव चेष्टा करता है। यह जीव अज्ञान से अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाने के कारण देह के सम्बन्ध से जड़-सा हो गया है तथा अपना विशुद्ध चैतन्यरूप स्वभाव भूल जाने के कारण ही यह चेतन चित्त-सा बन गया है। ब्रह्मन् ! परमात्मा ने ही शरीररूपी गाड़ी खींचने के लिये मनः शक्ति और प्राण-शक्ति-ये दो सुदृढ़ बैल उत्पन्न किये हैं। सच्चिदानन्दघन निर्विकार परमात्मा के सकाश से ही यह जीव जीवन धारण करता है, जिस प्रकार दीपक के सकाश से घर शोभा देता है। अज्ञान के कारण इस जीव की आधियाँ एवं व्याधियाँ उसी प्रकार उत्तरोत्तर स्थूलता प्राप्त करती हैं, जिस प्रकार जल का तरंग रूप और उस तरंग रूप का फेनरूप उत्तरोत्तर स्थूलता प्राप्त करता है। सर्वशक्तिरूप होने पर भी वही चेतन जीवात्म अज्ञान के कारण 'मैं चेतन नहीं हूँ' इस भावना से इस देह में परवशता प्राप्त करता है, किंतु अपने स्वरूप के ज्ञान से मोह-रहित हो जाता है। हृदय रूप कमल पत्र के चेष्टा-रहित हो जाने पर ये प्राण शान्त हो जाते हैं, जिस प्रकार पंखे के कम्पन शून्य हो जाने पर पवन की शक्तियाँ विलीन हो जाती हैं। हृदयरूप कमल-पत्र के स्फुरण से यह पुर्यष्टक विस्पष्ट हो जाता है। और हृदय-कमलरूप यन्त्र जब चलने से रुक जाता है यानी निश्चल हो जाता है, तब वह भी विनष्ट हो जाता है। द्विजवर ! जब तक देह में पुर्यष्टक विद्यमान रहता है, तब तक देह जीवित रहती है और जब देह में से पुर्यष्टक विलीन हो जाता है, तब देह 'मृत' कही जाती है। किंतु जब शरीर का हृदय कमलरूपी यन्त्र सदा चलता रहता है, तब यह जीव अपने संकल्पवश प्रकृति

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma(LFS) Jammu Collection

के अधीन हुआ कर्म करता रहता है। पर राग-द्वेषरहित विशुद्ध वासना जिनके हृदय में रहती है, वे अटल एवं एकरूप रहने वाले मनुष्य जीवन्मुक्त हैं। हृदय-कमलरूपी यन्त्र के रुक जाने तथा प्राण के शान्त हो जाने पर यह देह पृथ्वी पर लकड़ी और ढेले आदि की भाँति गिर जाती है। मुने ! ज्यों ही हृदयाकाश के वायु में अर्थात् प्राण में यह पुर्यष्टक लीन हो जाता है, त्यों ही मन भी प्राण में ही विलीन हो जाता है। जिस प्रकार घर के लोगों के घर छोड़कर दूर चले जाने पर घर शून्य हो जाता है, उसी प्रकार मन एवं प्राण से शून्य हुआ यह शरीर शवरूप हो जाता है। जिस प्रकार नाना प्रकार के पत्ते उत्पन्न हो-होकर समय पाकर वृक्ष से झड़ जाते हैं, उसी प्रकार प्राणियों के ये शरीर भी झड़ जाते हैं-विनष्ट हो जाते हैं। जीवों के ये शरीर और वृक्षों के पत्ते उत्पन्न और नष्ट होते ही रहते हैं, अतः उनके विषय में शोक ही क्या है। चैतन्य-समुद्र परमात्मा में ये देहरूपी बुद्बुद कहीं एक प्रकार के तो कहीं दूसरे प्रकार के उत्पन्न होते रहते हैं। बुद्धिमान् जन विनाशशील समझकर इन पर विश्वास नहीं करते।

चौबीसवाँ सर्ग समाप्त

पच्चीसवाँ सर्ग

संकल्प त्याग से द्वैतभावना की निवृत्ति

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा-मस्तक में अर्धचन्द्र धारण करने वाले महादेव ! व्यापक रूप अनन्त एवं अद्वितीय चेतन ब्रह्म-तत्त्व में द्वित्व (भेद) कैसे प्राप्त हुआ ? एवं उसका बुद्धि से निवारण कैसे हो, ताकि जीव के दुःखों का सर्वथा नाश हो जाय ?

श्रीमहादेवजी ने कहा-जब वह ब्रह्म सत्स्वरूप अद्वितीय और सर्वशक्तिमान् है, तब उसमें यह भेद और अभेद की कल्पना ही निर्मूल है। जैसे तरंग, कण, कल्लोल और जलप्रवाह जल से विभक्त नहीं रहते, वैसे ही ब्रह्म का सर्वशक्ति वास्तव में ब्रह्म से विभक्त नहीं रहता। जिस प्रकार फूल, कोंपल, पत्ते आदि लता से वास्तव में भिन्न नहीं हैं, वैसे ही द्वित्व, एकत्व, जगत्व, तू-पन, मैं-पन आदि भी चेतन से भिन्न नहीं हैं। चेतन का देश, काल, क्रिया आदि रूप जो भेद किया गया है, वह भेद चेतनस्वरूप ही है। 'वास्तव में चेतन में द्वैत (भेद)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshartha Jammu Collection

है ही नहीं, तब उसमें भेद आया कहाँ से ?'-यह प्रश्न ही नहीं बनता; क्योंकि देश, काल और क्रिया की सत्ता एवं नियति आदि शक्तियाँ स्वयं चेतन की सत्ता से ही सत्तायुक्त होकर स्थित है, इसलिये वे सब चेतनस्वरूप परमात्मा ही हैं। वही यह चेतन तत्त्व परम ब्रह्म, सत्य, ईश्वर, शिव तथा निराकार, एक परमात्मा आदि अनेक नामों से कहा जाता है। इन नामों एवं रूपों से अतीत जो परमात्मा का स्वरूप है तथा जो सम्पूर्ण मलों से रहित आत्मपदार्थ है, वह वाणी और मन का विषय नहीं है। जो यह संसार दिखायी दे रहा है, वह उस महाचेतन परमात्मारूपी लता के फल, पल्लव तथा पुष्प आदि रूप ही हैं, अतः उससे भिन्न नहीं। किंतु अज्ञानी जीव को अपने ही द्वैतसंकल्प से एक में ही द्वैत की इसी प्रकार प्रतीति होती है, जैसे पुरुष की वेताल-कल्पना से उसे भयंकर वेताल की प्रतीति होने लगती है। जैसे 'मैं कुछ नहीं करता' इस तरह के संकल्प से पुरुष का कर्तृत्व निवृत्त हो जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा में प्रतीत होने वाला द्वैत भी अद्वैतभावना से निवृत्त हो जाता है।

द्वैत-संकल्प से तो एक ही वस्तु में द्वित्व की प्राप्ति होती है, पर अद्वैतभावना से अनेकात्मक जगत् का भी द्वित्व नष्ट हो जाता है। क्योंकि विकार आदि से शून्य, सदा सर्वगामी तथा परमात्मा का स्वरूप भूत होने से आत्मा में कभी द्वैतभाव नहीं रहता। मुने ! अपने संकल्प से निर्मित मनोराज्य और गन्धर्वनगर की तरह जो वस्तु नष्ट हो जाती है। केवल दृढ़ संकल्प से जो यह संसार रूपी दुःख प्राप्त हुआ है, वह केवल संकल्प के अभाव से ही नष्ट हो जायगा, फिर इस विषय में क्लेश ही क्या? क्योंकि तनिक भी संकल्प करके मनुष्य दुःख में डूब जाता है और कुछ भी संकल्प न करके वह अविनाशी सुख पाता है। अतः मुने ! अपने विवेकरूपी पवन से संकल्परूपी मेघों का विनाश करके शरत्काल में आकाश-मण्डल की भाँति तुम उत्तम निर्मलता प्राप्त करो। अविवेक रूप प्रबल प्रवाह से उमड़ती हुई उन्मत्त संकल्प रूप नदी को तुम मणिमन्त्र से सुखा दो और उसमें बहते हुए अपने-धैर्य देकर मनसे रहित हो जाओ एवं अपने-आप अपने संकल्पात्मक कालुष्य का विनाश करके आत्मा की उत्तम विशुद्धता प्राप्त कर अविनाशी आनन्दरूप हो जाओ। यह आत्मा समस्त शक्तियों से परिपूर्ण है, अतः जब कभी वह किसी वस्तु की जैसी भी भावना करता है, अपने संकल्प से रचित उस वस्तु को उसी समय वैसी ही देखता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerjisharma (I F S) Jammu Collection

ब्रह्मन् ! यह उत्पन्न हुआ मिथ्यारूप जगत् एकमात्र संकल्पात्मक ही है; अतः केवल संकल्प के अभाव से ही कहीं भी विलीन हो जाता है। इसलिये संकल्परूप जड़ को उखाड़ कर अत्यन्त दृढ़ता को प्राप्त हुई इस तृष्णा रूपी करंजलता को सुखा डालिये। जिस प्रकार गन्धर्व नगर की उत्पत्ति और विनाश प्रतीतिमात्र ही हैं, उसी प्रकार यह संसार रूप भ्रम की उत्पत्ति और विनाश भी प्रतीति मात्र ही हैं। मुने ! मैं एक हूँ, मैं परमात्मा हूँ-इस प्रकार की भावना कीजिये। इस भावना से आप परमात्मा ही हो जायेंगे ।

महर्षे ! चेतन जीवात्मा ने अज्ञान के कारण अपने संकल्प से संसार रूपता प्राप्त की है; किंतु वास्तव में मोह रूपी कलंक से रहित वह असंसारी है तथा वह ब्रह्म से अभिन्न और अद्वैत ब्रह्मरूप है। मैं दृश्य देहादि-स्वरूप हूँ-इस प्रकार मोह को प्राप्त हुआ चेतन जीवात्मा संसार में फँस जाता है; पर वही शुद्ध चिन्मय परमात्मस्वरूप को, जो अपने से अभिन्न है, अनुभव करके संसार के बन्धन से निर्मुक्त हो जाता है। पुनरावृत्ति रहित निरतिशयानन्द स्वरूप परमात्मा के ज्ञान से परिपूर्ण चेतन जीवात्मा परमपद प्राप्तकर समस्त श्रमों से निर्मुक्त हुआ व्यापक ब्रह्मपद में विश्राम करता है। मन से रहित यही चेतन जीवात्मा शान्ति में सुशोभित सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतियों से एवं अन्धकार-अज्ञान आदि जड़ता से रहित तथा विस्तृत आकाश की भाँति परम सुन्दर है। वह दोषरहित जीवात्मा अपने वास्तविक परमात्म स्वरूप में स्थित हो जब तुर्यातीत अवस्था को प्राप्त हो जाता है, तब वह परमपद को प्राप्त होता है। वह परमपद सभी उत्तमोत्तम अवस्थाओं की परम अवधि है, परम मंगल रूप होने के कारण समस्त मंगलों में प्रधान मंगल है। वही एक अखण्ड परम पवित्र चेतनरूप है। मुने ! वह परमपद जाग्रत आदि तीनों अवस्थाओं और कल्पना से अतीत है। उसी का आपसे मैंने वर्णन किया है। उसी पद में आप सदा स्थित रहें। वह पद ही अविनाशी पूज्य देव है। मुनीश्वर ! इस समस्त जगत् का उपादान वही परमदेव है-इस ज्ञान से यह समस्त विश्व चिन्मय ब्रह्मरूप ही है। यह विश्व ब्रह्म के संकल्प से कल्पित होने के कारण प्रतीत होता है; किंतु यथार्थ ज्ञान होने पर वास्तव में इसकी सत्ता नहीं रहती, इसलिये यह नहीं है। वह परमपद शान्त, शिव एवं वाणी के व्यापार से अतीत है। 'ॐ' इस अक्षर की जो आनन्दमयी तुरीयमात्रा है, वही परमगति है।

पच्चीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modesh Shastri (RSS) Jammu Collection

छब्बीसवाँ सर्ग

सबके परम पूजनीय परमात्मा का वर्णन

श्रीमहादेवजी ने कहा-मुने ! आप पूर्वोक्त विचार का अवलम्बन करके अपने पारमार्थिक स्वरूप का ही प्रमाणों से शीघ्र निर्धारण करें एवं उसके विपरीत अनर्थरूप देहाभिमान का अबलम्बन न करें। जो इस संसार में जानने योग्य हैं, उस परमात्मा को तत्त्वज्ञानी ने जान लिया। फिर संसार के भ्रम के साथ उसका कोई प्रयोजन नहीं रहा। अतः उस तत्व ज्ञानी के लिये कर्तव्य या अकर्तव्य कुछ नहीं रहता, यह मैं जानता हूँ। आप इन शान्तिमय और अशान्तिमय विकल्पों का यदि दलन करते हैं तो आप धीर हैं। यदि वैसा नहीं करते तो आप धीर नहीं हैं। इसलिये आस्था रखकर आप परमात्मदर्शी बन जाइये। ब्रह्मज्ञान के लिये ही उपर्युक्त दृष्टिका आश्रय करके मेरे द्वारा जो कुछ कहा जाय, उसे सुनिये। आत्मज्ञान के प्रयत्न के बिना चुपचाप बैठे रहने से क्या लाभ ? त्रिशूलधारी भगवान् शंकर इस प्रकार कहकर फिर बोले कि 'आप बाह्यदेह में आत्मबुद्धि मत कीजिये; क्योंकि यन्त्र की भाँति प्राण से ही यह शरीर चेष्टा करता है और प्राणवायु से रहित शरीर निश्चेष्ट हो मूक के सदृश स्थित रहता है; किंतु चेतन जीवात्मा आकाश मे बढ़कर निर्मल और अव्यक्त है। सत्स्वरूप परमात्मा की सत्ता ही चेतन जीवात्मा के अस्तित्व में कारण है। जीवात्मा के बिना तो प्राण और देह-ये दोनों नष्ट को जाते हैं और देह-वियोग से प्राण वायु में विलीन हो जाता है; आकाश से भी निर्मल चेतन आत्मा नष्ट नहीं होता। इसलिये संसार-भ्रम से उसका क्या प्रयोजन है? ब्रह्मज्ञान के द्वारा दोषों से रहित हो जीवात्मा परमशिव परब्रह्म परमात्मा हो जाता है । वह परब्रह्म ही हरि है, वही शिव है, वही हिरण्यगर्भ है, वही चतुर्मुख ब्रह्मा है, वही इन्द्र है; वही वायु, चन्द्र एवं सूर्यरूप है और वही परमेश्वर है। वही सर्वव्यापी परमात्मा, सर्वचेतनों का मूल स्रोत, देवेश, देवभृत, धाता, देवदेव और स्वर्ग का अधिपति है। जिस तरह पल्लवों का मूलबीज वृक्ष है, उसी तरह सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि का मूल बीज है। वही सच्चिदानन्दघन परब्रह्म ज्ञानी महात्माओं का वन्दनीय और पूजनीय है; क्योंकि सबका बल और नाम उसी के हैं। वही सर्वात्मक, प्रकाशरूप, समस्त ज्ञानों का एकमात्र उत्पादक और सबको सत्तास्फूर्ति देने वाला है। महर्षे सबका आदि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

कारण तथा पूजा, नमस्कार, स्तुति और अर्घ्य के योग्य एवं समस्त देवताओं का स्वामी वही परम चेतन परब्रह्म परमात्मतत्त्व है-यह आप जान लें। यही बड़े-बड़े ज्ञातव्य पदार्थों की भी चरम सीमा है। जरा, शोक एवं भय के विनाशक इस परमात्मतत्त्वका साक्षात्कार करके मनुष्य फिर संसार में भूने हुए बीज की भाँति जन्म नहीं लेता। विप्रेन्द्र ! तत्त्व से जान लिये जाने पर जो समस्त प्राणियों को अभय कर देता है, जो सबका आदि कारण है और जो अनायास उपासना के योग्य है, वही अज, परम एवं परमात्मरूप परमपद हैं।

मुने ! समस्त पदार्थों के भीतर रहने वाले अनुभव स्वरूप एकमात्र विशुद्ध प्रकाश मय परमचेतन परमात्मा को मुनिलोग महादेव रूप परमेश्वर समझते हैं। वह परमचेतन तत्त्व सम्पूर्ण कारणों का कारण है, किंतु वास्तव में उसका कोई कारण नहीं है; वह अपनी सत्ता से समस्त भावों को सत्ता प्रदान करने वाला है, किंतु स्वयं भावना का विषय नहीं है। वह विशुद्ध और अजन्मा है। वही समस्त चेतनों का चेतन, दृश्य विषयों का प्रकाशक और दृश्य-संसार का परम आधार है। उसी को मुनिलोग चक्षु आदि एवं सूर्य आदि प्रकाशकों का प्रकाशक, स्वयं चक्षु-सूर्य आदि प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित न होने वाला, अलौकिक, समस्त बीजों का भी बीज, ज्ञानस्वरूप और विशुद्ध सच्चिदानन्द घन परमात्मा कहते हैं। सत्य प्रतीत होने वाला दृश्य संसार और असत्य न प्रतीत होने वाली प्रकृति-इन दोनों का कारण होने से वह चिन्मय परमात्मा तत्स्वरूप है; किंतु वास्तव में वह प्रकृति और संसार से रहित, परमशान्त है। इस महान् चिन्मय परमात्मा में पहले करोड़ों जगद्रूपी मरु-मरीचिकाएँ हो चुकी हैं, आगे भी होती रहेंगी और वर्तमान काल में भी हो रही हैं। महान् मेरुपर्वत एवं महान् कल्प आदि काल उस चेतन तत्त्व परमात्मा में समाये हुए हैं। फिर भी वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम है। कर्तापन के अभिमान से रहित होने के कारण यह परमात्मा कुछ न करते हुए ही संसार की रचना करता है और यह संसार का उद्धाररूप महान् कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता। जिस परमात्मा के संकल्प में यह समस्त संसार विद्यमान है, जिससे यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है, जो सर्वस्वरूप है, जो सब ओर व्याप्त है एवं जो सर्वमय है, उस सर्वात्मक परमात्मा को बार-बार नमस्कार है।

छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Jammu (1947) Jammu Collection

सत्ताईसवाँ सर्ग

परमशिव परमात्मा की अनन्त शक्तियाँ

श्रीमहादेवजी ने कहा–महर्षे ! उस समस्त जगत्सत्तास्वरूप मणि की पिटारी परम चेतन सर्वेश्वर परमात्मा में उनकी शक्तियाँ प्रत्यक्ष आविर्भूत होती रहती हैं। उनमें से परमात्मा की एक शक्ति महाकाश रूप में दर्पण के अंदर अपनी सत्ता के प्रतिबिम्ब के सदृश कल्प–निमेषनामक निर्मल कालात्मक शरीर धारण करती है। जैसे घर में दीपक के रहने पर घरभर की क्रियाएँ प्रकाशित हो जाती हैं, वैसे ही साक्षी रूपी उस प्रकाशात्मक, सत्यस्वरूप चेतनतत्त्व के रहने पर ही जगत् रूप चित्त की परम्पराएँ प्रकाशित होती हैं।

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा–जगत् के स्वामिन् ! इन सदाशिव की कौन–सी शक्तियाँ हैं, वे किस तरह से रहती हैं, उनकी साक्षिता का क्या स्वरूप है, उनका व्यवहार क्या है और वे कितनी हैं ?

श्रीमहादेव जी ने कहा–उत्तम व्रत का पालन करने वाले सौम्य ! उस निराकार, सर्वात्मक, अप्रमेय, परमशान्त, सच्चिदानन्दघन सदाशिव परमात्मा की इच्छा सत्ता, व्योमसत्ता, कालसत्ता तथा नियति–सत्ता और महासत्ता–ये पाँच सत्तात्मक शक्तियाँ हैं। (तात्पर्य यह है कि 'सोऽकामयत् बहु स्याम्' इस श्रुति के अनुसार सबसे पहले उनकी इच्छा सत्ता अभिव्यक्त हुई। तदनन्तर आकाश की अभिव्यक्ति होने पर आकाशसत्ता, तदनन्तर कालात्मक सूत्र की अभिव्यक्ति होने पर कालसत्ता, सद्रूप के नियत संस्थान वाले भूत एवं भौतिक पदार्थों का आविर्भाव होने पर नियति–सत्ता अभिव्यक्त हुई और तदनन्तर उनमें अनुस्यूत महासत्ता अभिव्यक्त हुई।) इनके सिवा ज्ञान शक्ति, क्रियाशक्ति, कर्तृव्यशक्ति और अकर्तृत्वशक्ति आदि परमात्मा की अनेक शक्तियाँ हैं। उन सदाशिव स्वरूप परमात्मा की इन शक्तियों का कोई अन्त नहीं है।

श्रीवसिष्ठ जी ने पूछा–देव ! ये उपर्युक्त शक्तियाँ हुईं किस निमित्त से ? इनमें बहुत्व कैसे आया ? इनका उदय कैसे हुआ ? एवं शक्ति और शक्तिमान् दोनों में परस्पर विरूद्ध भेद और अभेद किस युक्ति से रह सकते हैं ?

श्रीमहादेवजी ने कहा–महर्षे ! अनन्त असीम आकारवाले सदाशिव रूप परमात्मा की यह चिन्मात्ररूपता ही उसकी शक्ति कही जाती है। एकमात्र कल्पना से ही वह चेतन परमात्मा से भिन्न–सी प्रतीत होती है, वास्तव में कुछ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (T P S) Jammu Collection

भी भेद नहीं है। ज्ञातत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, साक्षित्व आदि कल्पनाओं से परमात्मा की ये शक्तियाँ उसी प्रकार विविध स्वरूप धारण करती हैं, जैसे समुद्र में तरंग आदि भेद-कल्पनाओं से जल विविध रूप धारण करता है। गमनशील ब्रह्माण्डरूपी नृत्य-मण्डप में ऋतु, मास आदि काल नियति-क्रमद्वारा महाकालरूपी नट से उत्तम रीति से शिक्षित हुई उस प्रकार की शक्ति रूपिणी नटियाँ नाचती हैं। यही परा और अपरा एवं नियति कही जाती है। ईश्वर की क्रिया, कृति, इच्छा या काल इत्यादि उसी के नाम हैं। तृण से लेकर ब्रह्मापर्यन्त जितने चराचर जीव हैं, उनको मर्यादा में रखने वाली नियति कही जाती है। महर्षे ! नाट्यशास्त्र में प्रसिद्ध स्वेद, स्तम्भ, रोमांच आदि विकारों से व्याप्त, चिरकाल तक प्रवृत्त हुए इस संसार नामक नाटक में नाट्यों में सारभूत नियति-नटी के विलास में अधिपति होकर देखने वाला सदा उदितस्वभाव यह परमेश्वर अद्वितीय होकर ही स्थित है। वह परमार्थतः उस नटी और नाट्य से भिन्न नहीं है।

सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त

अट्ठाईसवाँ सर्ग

परमात्मा के ध्यानरूप पूजन से परमपद की प्राप्ति

श्रीमहादेवजी कहते हैं-महर्षे ! उस परमात्मदेव के पूजन के जितने क्रम हैं, उन सबमें पहले देहाभिमान को प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिये। ध्यान ही इस परमात्मदेव की पूजा है। इसलिये तीनों भुवनों के आधारभूत इस परमात्मदेव की निम्न प्रकार के ध्यान से सदा पूजा करनी चाहिये। वह चेतन परमात्मा ज्ञान के द्वारा लाखों सूर्यों के समान देदीप्यमान् सूर्य आदि समस्त प्रकाशकों का प्रकाशक तथा सबसे परे रहने वाला ज्ञानस्वरूप है। उसका मन से चिन्तन करना चाहिये। इस नियति-नाटक के साक्षी परमात्मा का इतना बड़ा स्वरूप है कि सबसे बड़े असीम आकाशका जो विपुल विस्तार है, वह उसकी गर्दन है; नीचे के आकाश का जो असीम विस्तार है, वह उसका चरण-सरोज है। सीमा-शून्य दिशाओं के किनारों का यह जो विस्तार है, वही उसका भुजा मण्डल है और उसी से वह सुशोभित है; उन हाथों में उसने विविध ब्रह्माण्डों में विद्यमान बड़े-बड़े सत्य आदि लोकस्वरूप श्रेष्ठ आयुधों को ग्रहण कर रक्खा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

है। उसके हृदय-कोश के एक कोने में अनेक ब्रह्माण्ड-समूह छिपे हुए हैं। वह प्रकाशस्वरूप एवं तमसे परे है और उसके स्वरूप का कहीं पार भी नहीं पाया जा सकता। पूर्वोक्त नियति के नाटक का साक्षी यह परमात्मा ही परमदेव है। यही समस्त पदार्थों का आश्रय, सर्वव्यापक, चिन्मय और अनुभवरूप है। सभी सज्जनों द्वारा यही सर्वदा पूजनीय है। यही परमदेव परमात्मा घट में, पट में, वट में, दीवाल में, छकड़े में और वानर आदि प्राणियों में समयाभाव से स्थित है। यही परमात्मा शिव, हर, हरि, ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर और यमस्वरूप है। अनेक प्रकार की घट-पट आदि आकृतियों को लेकर असंख्य पदों से बोधित होने वाली तथा उन आकृतियों को छोड़ने पर एक पद से बोधित होने वाली सत्तारूप इस जगज्जाल का उत्पादक महाकाल इस परमात्मदेव का द्वारपाल है। पर्वतों एवं चौदह भुवनों के असीम विस्तार से युक्त यह ब्रह्माण्डमण्डल इस परमात्मदेव के किसी एक देहकोण में स्थित होकर उसके अंग का अवयव रूप हो गया है।

महर्षे ! जिसके हजारों कान एवं आँखें हैं, हज़ारों मस्तक हैं और जो स्वयं हजारों भुजाओं से विभूषित है, ऐसे शान्तस्वभाव महादेव का चिन्तन करना चाहिये। वह परमात्मा सभी जगह दर्शन-शक्ति से परिपूर्ण है यानी सर्वत्र देखता है, सब ओर घ्राण-शक्ति से समन्वित है, सर्वतः स्पर्शन-शक्ति से युक्त है, सभी ओर रसन-शक्ति से परिपूर्ण है, सर्वत्र श्रवण-शक्ति से व्याप्त है, सर्वत्र मनन-शक्तिवाला है; तथापि वह सर्वथा संकल्प से रहित है एवं सभी ओर सर्वश्रेष्ठ कल्याणस्वरूप है। उस परमात्मदेव का चिन्तन करना चाहिये। नित्य, सम्पूर्ण जगत् के कर्ता, सबको अपने-अपने संकल्प के अनुसार समस्त पदार्थ प्रदान करने वाले, सारे प्राणियों के अन्तः करण में स्थित और सभी के लिये एकमात्र साध्य, सर्वस्वरूप उस परमात्मदेव का चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान के द्वारा उस देवाधिदेव की पूजा करनी चाहिये। अनायास प्राप्त होने योग्य, शान्तिमय, अविनाशी, अमृतस्वरूप एकमात्र परमात्मस्वरूप के ज्ञान से सदा इस देव की पूजा की जा सकती है। जो यह हृदयप्रदेश में स्थित शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा का निरन्तर अनुभव है, यही श्रेष्ठ ध्यान है और यही परम पूजा कही गयी है। देखते-सुनते, स्पर्श करते, सूँघते-खाते, चलते-सोते, श्वास-प्रश्वास लेते, बोलते, त्याग करते और ग्रहण करते-सभी समय मनुष्य

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerjisharma (I F S) Jammu Collection

को शुद्ध चिन्मय परमात्मा के ध्यान में ही तत्पर रहना चाहिये। इस परमात्मा के लिये शुद्ध ज्ञानरूप ध्यान आते ही प्रियतम वस्तु है, अतः ध्यान ही उसके उपहार है। ध्यान ही उसके लिये अर्घ्य, पाद्य और पुष्प हैं। मुने ! यह परमात्मदेव ध्यान से ही प्रसन्न होता है। इस प्रकार आठों पहर ध्यान द्वारा पूजन करने से मनुष्य परमधाम में निवास करता है। महर्षे ! जो यह परमात्मदेव का उत्तम पूजन मैंने आपसे कहा है, यही परम योग है, यही वह उत्तम कर्म है। आत्मस्वरूप वसिष्ठजी ! जो मनुष्य दुःख और विक्षेप से रहित हो सारे पापों के विनाशक एवं परम पवित्र इस ध्यान रूप पूजन को करेगा, उस समस्त बन्धनों से मुक्त और ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त पुरुष की जगत् में सुर एवं असुर वैसे ही वन्दना करेंगे, जैसे वे मेरी वन्दना कहते हैं।

महर्षे ! यह ध्यान पवित्र करने वालों को भी पवित्र करने वाला तथा सम्पूर्ण अज्ञानों का नाशक है। अतः शरीर में स्थित, समस्त ज्ञानों के उत्पादक एवं बोधक परम कल्याणस्वरूप इस परमात्मदेव का अपने अन्तःकरण में नित्य ही ध्यान करना चाहिये। सबके हृदयरूपी गुहा में स्थित, समस्त ज्ञान और ज्ञेय के ज्ञाता, सम्पूर्ण कर्मों के कर्ता और समस्त ज्ञानों के स्मर्ता, सम्पूर्ण प्रकाशों से भी अधिक प्रकाशरूप तथा सर्वव्यापी परम शिव परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। वह परमात्मा मन की मननात्मिका शक्ति में, प्राण एवं अपान के मध्य में तथा हृदय, कण्ठ, तालु और भौं के मध्य में स्थित (व्यापक) है। वह कलाओं की कल्पनाओं से रहित और देह के एक देशभूत सुन्दर हृदय-कमल में विशेषरूप से और सम्पूर्ण देह में समान रूप से स्थित है। वह परमात्मा केवल चेतन और शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। उसका चिन्तन करना चाहिये।

इसके सिवा ध्यान का एक दूसरा प्रकार यह है कि मैं जीवात्मा ही परिच्छेद शून्य आकार वाला, अनन्तस्वरूप, सम्पूर्ण पदार्थों से परिपूर्ण, सब वस्तुओं का पूरक एवं अखण्ड अद्वितीय शिवस्वरूप परमात्मा हूँ-इस प्रकार स्वच्छ और अलौकिक भावना करके देवभाव से परिपूर्ण यह जीवात्मा महान् परमात्मा बन जाता है। वह परमात्मा को प्राप्त पुरुष सबमें सम रहता है। उसका व्यवहार भी समान होता है। उसका ज्ञान भी सम होता है। उसका भाव भी सम होता है। उस सौम्य पुरुष का उद्देश्य भी महान् सुन्दर होता है। वह देहपातपर्यन्त अखण्ड तत्त्वज्ञान से युक्त होता हुआ चिरकाल तक निरन्तर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sahib (MP) Jammu Collection

परमात्मा का ध्यानरूप पूजन ही करता रहता है। इसलिये मनुष्य को उचित है कि सज्जनों के हृदय में रहने वाली, चन्द्रमा ही भाँति शीतल, मधुर-स्वभाव, दृढ़ मैत्री से हृदय-प्रदेश में स्थित उस परमात्मदेव ही ध्यानरूप पूजा करे। दुष्टों की उपेक्षा, दुखियों पर दया पुण्यात्माओं के प्रति हृदय की नित्य मुदिता (प्रसन्नता) की भावना से, शुद्ध सामर्थ्य की पद्धति से और ज्ञान रूप से उस परमात्मदेव की पूजा करें।

प्रारब्ध से प्राप्त सम्पूर्ण इष्ट एवं अनिष्ट पदार्थों में सर्वदा ही परम समता का आश्रय लेकर नित्य चेतन परमात्मा का ध्यानरूप व्रत करना चाहिये। अनुकूल और प्रतिकूल की प्राप्ति में सम होकर नित्य चिन्मय परमात्मा के ध्यानरूप व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ-इस प्रकार के भेद को छोड़ देना चाहिये तथा 'यह सब ब्रह्म ही है' इस प्रकार निश्चय करके नित्य चिन्मय परमात्मा के ध्यानरूप व्रत का आचरण करना चाहिये। महर्षे ! इस परमात्मा के ध्यानरूप पूजा के विधान में जो द्रव्य-सम्पत्तियाँ बतलायी गयी हैं, वे सब एकमात्र समतारूप रस से परिपूर्ण होने के कारण मधुर-रसवती ही हो जाती हैं। रसमयी शक्ति-समता मधुर और अतीन्द्रिय है। उस समता से जो भी दृश्य विषय भावित होगा, वह तत्क्षण ही अमृततुल्य मधुर हो जायगा । समतारूप अमृत से जो-जो भावित होता है, वह सब परम मधुरता को प्राप्त होता है। ब्रह्मैक्य-दर्शन स्वरूप समता से स्वयं आकाश की तरह विकार शून्य होकर मन के लय होने पर जो स्वाभाविक स्थिति है, वही परमात्मा की ध्यानरूप पूजा कही जाती है। महात्मा ज्ञानी को पूर्णचन्द्र की भाँति परिपूर्ण, समता के द्वारा समान ज्ञानवान, एक, चिन्मय, स्वच्छ और स्फटिक-शिला की तरह निर्मल एवं दृढ़ होना चाहिये। जो भीतर आकाश की तरह विशाल और बाहर न्यायतः प्राप्त कार्यों को करने वाला, आसक्ति से रहित एवं परमात्मा के यथार्थ तत्व का पूर्णतया ज्ञाता है, वही सच्चा उपासक है। अज्ञानरूप मेघों के नष्ट होने पर स्वप्न में भी जिसमें राग-द्वेष आदि हृदय-विकार नहीं देखे जाते तथा जिसका अहंता-ममतास्वरूप कुहरा शान्त हो चुका है, ऐसे निर्मल आकाश के समान वह तत्त्वज्ञ सुशोभित होता है।

महर्षे ! यथासमय और यथाशक्ति आप जो कुछ भी कर्म करते हैं अथवा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mockerji Sharma (I.F.S) Jammu Collection

नहीं करते, उसी को चिन्मय शिवस्वरूप परमात्मा का अन्तःपूजन समझना चाहिये। इस प्रकार के पूजन से ही साधक अपने पारमार्थिक निरतिशय आनन्दमय स्वरूप का अनुभव करता है। शिव, शान्त, अन्य से प्रकाशित न होने वाला, स्वप्रकाशरूप परमात्मा ही जगत् के रूप में प्रतीत हो रहा है। ब्रह्मन् ! भूत, भविष्य, वर्तमान-तीनों जगत् में व्यापक, परम विशुद्ध चेतन परमात्मस्वरूप ईश्वर के स्वरूप का वाणी से वर्णन भी नहीं किया जा सकता। इसलिये वसिष्ठजी ! तुच्छ दृष्टि का परित्याग करके और अपनी अखण्ड दृष्टि का आश्रय लेकर सम, निर्मलमन, शान्त, राग और दोष से रहित तथा शोक रहित बुद्धि से युक्त होकर आप न्यायतः प्राप्त पदार्थों से परमात्मदेव की पूजा करते हुए स्थित रहें।

अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त

उन्तीसवाँ सर्ग

दुःख नाश का उपाय

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा-देव ! शिव, परब्रह्म आत्मा और परमात्मा किस के नाम कहे गये हैं ? तीनों लोकों के स्वामिन् ! भगवन् ! 'तत्', 'सत्' 'किंचित्', 'न किंचित्' 'शून्य' और 'विज्ञान' आदि भेद किसके कहे गये हैं ?

श्रीमहादेवजी ने कहा-मुने ! आदि और अन्त से रहित, प्रकाशान्तर की अपेक्षा न रखने वाली, स्वतः प्रकाशस्वरूप जो सत् वस्तु अपनी महिमा में अपने-आप विद्यमान है, वही 'किंचित्' शब्द से कही जाती है; और वह इन्द्रियों के द्वारा जानने में नहीं आती, इसलिये 'न किंचित्' शब्द से कही जाती है।

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा-ईशान ! जो बुद्धि आदि से युक्त चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियों के जानने में नहीं आता, उस परमब्रह्म का संशयरहित अधिकारी द्वारा कैसे साक्षात्कार किया जाता है ?

श्रीमहादेवजी ने कहा-महर्षे ! जिसमें अविद्या का नाममात्र अंश है, ऐसा केवल सात्त्विक और मोक्ष की चाह रखने वाला साधक शास्त्राभ्यास आदि सात्त्विक उपायों से अविद्या का प्रक्षालन करता है, तब अविद्या का क्षय होने पर वह अपने-आप ही अपने द्वारा परमात्मा का अनुभव करता है। आत्मा ही परमात्मा को देखता है और आत्मरूप से ही उसका विचार करता है। इस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sangrahalaya (RMS) Jammu Collection

संसार में एकमात्र परमात्मा ही सत् है, अविद्या नहीं; इसे ही अविद्या का क्षय कहते हैं। जो कुछ यह नानाविध विनाशशील दृश्य वस्तु है, इसे आप परमात्मा न समझिये; क्योंकि यह मिथ्या है। परब्रह्म परमात्मा तो सम्पूर्ण इन्द्रियों के क्षय से प्राप्त है। जो वस्तु जिसका नाश होने पर प्राप्त होती है, वह वस्तु उसके उपस्थित रहते कभी प्राप्त नहीं हो सकती। शिष्य के बोध के लिये किये गये गुरूपदेश से अनिर्देश्य और अव्यक्त परमात्मा उसे स्वयं प्राप्त हो जाता है। गुरु के उपदेशों और शास्त्रार्थों के बिना भी परमात्मा का ज्ञान नहीं होता; क्योंकि इन सबके संयोग से ही परमात्मा का ज्ञान होता है। कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय आदि का नाश तथा सुख, दुःख आदि का अभाव होने पर जो बच रहता है, वह शिवस्वरूप परमात्मा ही 'तत्'-'सत्' इत्यादि नामों से कहा गया है। वास्तव में तो यह सम्पूर्ण जगत् है नहीं, बल्कि परमात्मा का संकल्प होने के कारण यह उसका स्वरूप ही है। वह सत्-स्वरूप परमात्मा आकाश से भी अत्यन्त बढ़कर निर्मल और अनन्त है। विशुद्ध अन्तः करण वाले मुमुक्षु पुरुषों ने मोक्ष के उपासकों के बोध के लिये नाम-रूपहित सच्चिदानन्द परमात्मा में चेतन, ब्रह्म, शिव, आत्मा, ईश, परमात्मा और ईश्वर आदि पृथक्-पृथक् नाम-रूपों की कल्पना कर रक्खी है। वसिष्ठजी ! इस तरह जगत्तत्त्व एवं शिवनामक परमात्मतत्त्व ही सर्वदा सब तरह से सब कुछ है। इसलिये आप इसे जानकर सुखपूर्वक स्थित हो जायँ। प्राचीन मुमुक्षु लोगों ने शिव, आत्मा और परब्रह्म इत्यादि नामों से उस परमात्मा की भिन्न-भिन्न कल्पना की है; वस्तुतः एक परमात्मा ही है, उसमें कुछ भेद नहीं है। मुनिनायक ! इस प्रकार ज्ञानपूर्वक ध्यान रूप पूजा करने वाला ज्ञानी पुरुष उस परमपद को प्राप्त हो जाता है।

श्रीवसिष्ठजी बोले-भगवन् ! मिथ्या होते हुए भी यह जगत् किस प्रकार सत्-सा प्रतीत होता है, वह सब कुछ फिर संक्षेप में मुझसे कहने की कृपा कीजिये।

श्रीमहादेवजी ने कहा-मुने ! जो यह ब्रह्म, शिव, ईश्वर इत्यादि शब्दों का अर्थ है, उसे ही विशुद्ध चिन्मय परमात्मा समझिये। जैसे जल के आधारभूत समुद्र में जल ही तरंग के रूप में प्रकट होता है, वैसे ही परब्रह्म परमात्मा में केवल अद्वितीय सद्रूप ब्रह्म ही जगत् के रूप में प्रकट हो रहा है; क्योंकि सारा जड़ दृश्य समूह चेतनपरमात्मरूप ही है, इस प्रकार का ज्ञान होने पर वह दृश्य

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

समूह मनोराज्य के संकल्प नगर की तरह हो जाता है। यह जगत् परमात्मा का संकल्प है, इस यथार्थ अनुभव से सम्पूर्ण दृश्य जगत् कल्याणमय परमात्मा ही बन जाता है।

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा-भगवन् ! इस जगत् की भले ही गन्धर्व नगर से अथवा स्वप्न के मनुष्य से उपमा दी जाय, फिर भी यह दुःख का कारण तो है ही। अतः दुःख के नाश के लिये यहाँ कौन-सी युक्ति है ?

श्रीमहादेवजी ने कहा-महर्षे ! वासना के कारण दुःख उत्पन्न होता है और वह वासना सत् पदार्थ में हुआ करती है; किंतु यह जगत् तो मृगतृष्णा के जल की तरंग के समान मिथ्या ही है। इसलिये वासना कैसे, किसमें, किसको, कहाँ से होगी ? स्वप्नावस्था का पुरुष भला कैसे मृगतृष्णा के जल का पान कर सकता है। द्रष्टा के सहित, अहंता से युक्त और मन तथा मनन आदि के साथ इस जगत् का जब स्वप्नवत् अस्तित्व ही नहीं है, तब जो शेष रह जाता है, वही सद्वस्तु परमात्म है। उस परमात्मा में न तो कोई वासना रहती है, न कोई वासना करने वाला और न कोई वासना का विषय ही रहता है। किंतु एकमात्र वह परमात्मा ही रहता है, जिसमें कल्पना-भ्रम का अत्यन्त अभाव है। प्रतीत होने के कारण सत्य और वास्तव में असत्य संसार रूप वेताल शून्य-स्वरूप होने के कारण जिस ज्ञानवान् की दृष्टि में असत्य ही है, उसकी दृष्टि में केवल परमात्मा के सिवा और दूसरा क्या अवशिष्ट रह सकता है ? अर्थात् कुछ नहीं। इस प्रकार शून्य में ही वेताल की तरह यह चित्त-वासना उत्पन्न हुई है, जिसका नाम जगत् है। उसकी शान्ति हो जाने पर अक्षय शान्ति ही अवशिष्ट रहती है। किंतु अहंता में, जगत् में तथा मृगतृष्णा के जल में जिस अज्ञानी मनुष्य की आस्था (सत्ताबुद्धि) बँधी हुई है, उसको बार-बार धिक्कार है! वह अज्ञानी उपर्युक्त उपदेश के योग्य नहीं। इस जगत् में ज्ञानी लोग जिज्ञासु विवेकी मनुष्य को ही उपदेश दिया करते हैं, न कि उस बाल बुद्धि वाले अविवेकीको, जो अनेक प्रकार की भ्रान्तियों से ग्रस्त है, श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा त्याज्य है एवं देह आदि में अभिमान रखता है।

उन्नतीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.A.S.) Jammu Collection

तीसवाँ सर्ग

संसार वह सब माया ही है

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा-भगवन् ! सृष्टि के आदि में देह के सम्बन्ध से संसार में भ्रमण करने वाला वह जीवात्मा माया रूप आकाश में स्थित हुआ किस अवस्था को प्राप्त करता है ?

भगवान् शंकर ने कहा-मुने ! जिस प्रकार स्वप्नमनुष्य स्वप्न के संसार को देखता है, उसी प्रकार वह जीवात्मा भी परम सूक्ष्म मायामय आकाश में कर्मानुसार शरीरों को देखता है। जैसे आज भी स्वप्नमनुष्य चैतन्यघन आत्मा के सर्वत्र व्यापक होने से स्वप्न में कार्य करता है, वैसे ही देहधारी जीवात्मा भी जाग्रदवस्था में कार्य करता है। जिस तरह शून्य स्वरूप वेताल वास्तविक दृष्टि से असद्रूप है, किंतु भ्रम से सद्रूप प्रतीत होता है, उसी प्रकार यह समस्त जगत् वास्तव में असत् है, किंतु भ्रम से सद्रूप प्रतीत होता है; इसलिये जगत् का कारण वास्तव में अहंकार ही है। यह संसार वास्तव में सत् नहीं है; न यह कल्पित है न क्षणिक है, न यह कुछ उत्पन्न ही होता है और न कुछ विनष्ट ही होता है। वास्तव में इसका अत्यन्त अभाव है। चेतन जीवात्मा ही सम्पूर्ण प्रपंच की संकल्प रूप से अपने में उसी प्रकार कल्पना करता है, जिस प्रकार मनुष्य स्वप्न में नगर का निर्माण और विनाश करता है पर जागने पर वास्तव में उसका स्वप्न के देश और काल से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। इस विनाशशील संसार का वास्तविक स्वरूप तत्त्व से समझ लेने पर इस माया रूप संसार की भेद सत्ता का अभाव हो जाता है। तदनन्तर ज्ञानपूर्वक ध्यान के अभ्यास से कल्याणमय शिव रूप परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। नहीं तो यह जीवात्मा अपने कर्मानुसार देह, इन्द्रिय आदि के संयोग-क्रम से मृगी, लता, कीट, देव, असुर आदि रूप हो जाता है। नित्य, व्यापक, अनन्त, दृढ़ और विश्व में व्याप्त एवं विश्व के कर्ता जिस परब्रह्म में यह जगत् कल्पित है, विवेक होने पर वह जगत् न दूर है न समीप, न ऊपर न नीचे, न आपका है न मेरा, न पहले था न आज है, न प्रातःकाल में है, न सत् है न असत् और न सत् और असत् के मध्य में है अर्थात् वास्तव में यह कल्पना मात्र ही है। मुने ! जैसा आपने पूछा, वैसा ही मैंने उत्तर दे दिया। आपका कल्याण हो। अब हम लोग अपनी अभिलाषित दिशा की ओर जा रहे हैं। पार्वती ! आओ, उठो।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

श्रीवसिष्ठजी बोले-श्रीराम ! ऐसा कहकर वे नीलकण्ठ भगवान् शंकर जिनके ऊपर मैंने उस समय पुष्पांजलि समर्पित की थी, अपने परिवार के साथ आकाश की ओर चले गये। तब पहले से ही शान्त स्वभाव वाला मैं त्रिभुवन के अधिपति उमापति के जाने के बाद क्षणभर चुप रहकर उनके स्मरण पूर्वक उनके द्वारा उपदिष्ट परमात्म देव का ज्ञान पूर्वक ध्यान रूप पूजन नवीन (परिष्कृत) और श्रद्धा आदि से पवित्र हुई बुद्धि से करने लगा।

रघुनन्दन ! महादेव शंकर जी ने सच्चिदानन्द परमात्मा का ध्यानरूप यह सर्वोत्कृष्ट पूजन मुझसे कहा है और स्वयं मैं भी उसे तत्त्व से जानता हूँ। जिस तरह का यह जगत् का स्वरूप है, उसे तुम भी तत्त्व से जानते ही हो। जैसे जल का द्रवत्व स्वभाव है, जैसे वायु का स्पन्दत्व स्वभाव है और जैसे आकाश का शून्यत्व स्वभाव है, वैसे ही परमात्मका का सर्गत्व (सृजन) स्वभाव है। श्रीराम! तबसे लेकर आज तक उसी क्रम से मैं शान्ति पूर्वक परमात्मा का ध्यान रूप पूजन करता आ रहा हूँ। इसलिये मनुष्यों को धन और बन्धुओं की उत्पत्ति और विनाश होने पर हर्ष और विषाद नहीं करना चाहिये; क्योंकि ये सभी संसार के अनुभव सदा विनश्वर ही हैं। श्रीराम ! प्रमथनशील चित्र-विचित्र परिस्थितियाँ जिस प्रकार आती हैं, जाती हैं और पुरुष को पराजित करती हैं, यह सब तुम भी जानते ही हो। इसी प्रकार प्रेम और धन आते रहते हैं और यों ही चले भी जाते हैं। वे जगत् के व्यवहार वास्तव में न तो तुम्हारे अंदर हैं और न तुम ही उनके अंदर हो। इस प्रकार यह जगत् तुच्छ ही है। केवल चेतनस्वरूप व्यापक देह वाले श्रीराम ! यह जगत् तुम्हारा संकल्प होने के कारण तुम्हारा स्वरूप ही है। अतः तुम्हारे लिये हर्ष और शोक का प्रसंग ही क्या है। तात ! तुम चिन्मात्र स्वरूप हो। यह जगत् तुमसे पृथक् नहीं है। इसलिये तुमको किस प्रकार और कहाँ हेय और उपादेय की कल्पना हो सकती है ? तुम सम,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

ज्ञान स्वरूप और उदारधी होकर सदा ब्रह्म के ध्यान में तत्पर होते हुए समुद्र की तरह परिपूर्ण (परितृप्त) रूप से स्थित रहो। रघुनन्दन ! यह सब तुमने सुना और परिपूर्ण बुद्धि होकर तुम स्थित भी हो; इस विषय में और जो कुछ पूछना चाहो, पूछो। पहले जो तुमने प्रश्न किये थे, उनमें से यदि कोई उत्तर के बिना रह गया हो तो उसे भी आज पूछ लो।

श्रीरामजी ने कहा-ब्रह्मन् ! न तो आत्मा उत्पन्न होता है न करता है और न माया से कलंकित ही है तथा 'यह सारा जगत् ब्रह्ममय है' इस प्रकार का निश्चय मेरा है। भगवन् ! मेरा मन शुद्ध और सब प्रकार के प्रश्नों से, संशयों से और इच्छित पदार्थों से निवृत्त है। इस चराचर संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसकी मुझे इच्छा और अभिलाषा हो तथा ऐसी कोई वस्तु भी नहीं है, जो मेरे लिये त्याज्य और ग्राह्य हो। मुझे न स्वर्ग की आकांक्षा है और न नरक से द्वेष है; किंतु मन्दराचल की तरह संशय रहित हुआ मैं अपने स्वरूप में स्थित हूँ। यह जगत् जिस स्वरूप का दिखायी देता है, उसी स्वरूप का है, उससे भिन्न उसका कोई दूसरा स्वरूप नहीं है- यों जो मूर्ख जानता है, उसके हृदय में ज्वाला के सदृश अधिक संतापदायिनी, कुत्सित संशय-समूहों से होने वाली 'यह वस्तु है और यह अवस्तु है' इस प्रकार की कल्पनाएँ पर्याप्त रूप से उत्पन्न होती रहती हैं। मूढ़ पुरुष जिन धन आदि विषयों के लिये कृपणता करता है, जगत् की वे वस्तुएँ वास्तव में हैं ही नहीं। परमेश्वर ! हमने सम्पत्तियों की अवधि जान ली, आपत्तियों की सीमा का भी अन्त देख लिया। हम सर्वसार अपने स्वरूप में दीनता रहित और परिपूर्ण हुए स्थित हैं।

तीसवाँ सर्ग समाप्त

इकतीसवाँ सर्ग

ज्ञान की प्राप्ति के लिये वासना, आसक्ति और अज्ञान के नाश से मन के विनाश का वर्णन

श्री वसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! आसक्ति से तथा कर्तृत्वाभिमान से रहित एवं न्याययुक्त व्यवहार करने वाले अन्तः करण से इन्द्रियों के साथ तुम जो कुछ करते हो, वह कर्म कर्म ही नहीं है। जिस तरह प्राप्तिकाल में विषय तुष्टिकारक होता है, उसी तरह उसके बाद दूसरे काल में नहीं होता। इसलिये बालबुद्धि अविवेकी ही क्षणिक सुख देने वाले विषयों में आसक्त होता है, विवेकी नहीं। श्रीराम ! तुम आत्मज्ञानी हो। इसलिये अहंकार तुम्हारा पतन नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Deshmukh Library (I.E.S) Jammu Collection

कर सकता; क्योंकि जिसने निरन्तर असीम सत्यस्वरूप ब्रह्म का स्मरण किया है और जो तत्त्व ज्ञान रूप सुमेरु पर्वत के शिखर पर स्थित है, उस पुरुष का पुनर्जन्म रूप पतन नहीं हो सकता। श्रीराम ! तुम्हारा जो यह समता एवं सत्यतामय स्वभाव मुझे दिखायी देता है, इससे मैं मानता हूँ कि तुम संकल्प-विकल्प और अविद्या से रहित हो, अपने स्वरूप में भलीभाँति स्थित हुए तुम मानो मुझे यह प्रत्यक्ष करा रहे हो कि सागर के समान पूर्ण समता तुममें विद्यमान है। जिस-जिस वस्तु को तुम देख रहे हो, उस-उस वस्तु में समानभाव से सत्तारूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा स्थित है।

जिस प्रकार चित्रलिखित पुरुष में संसार की भावना नहीं हो सकती, उसी प्रकार दृश्य और दर्शन के सम्बन्ध का अभाव होने पर हृदय में जगत् की भावना उत्पन्न नहीं हो सकती। चित्त के संकल्प से उत्पन्न जगत् चित्त के संकल्प का अभाव होने पर उसी प्रकार विलीन हो जाता है, जिस प्रकार जल की चंचलता से उत्पन्न तरंग जल की चंचलता का अभाव होने पर विलीन हो जाती है। वासना के त्याग से, परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से अथवा प्राणों के विरोध से चित्त के संकल्परहित हो जाने पर जगत् कहाँ से उत्पन्न होगा ? जब चित्त-संकल्प के अभाव से अथवा प्राणों के निरोध से चित्त का विनाश हो जाता है, तब जो बच रहता है, वही परमपद है। जहाँ चित्त का अभाव है, वहाँ वह सारा सुख स्वाभाविक ब्रह्म सुख रूप ही है। वह सुख स्वार्गादि भोग भूमियों में नहीं हो सकता। चित्त का विनाश होने पर जो ब्रह्म विषयक सुख होता है, वह वाणी से भी नहीं कहा जा सकता। वह सुख सब समय एकरस रहता है- न घटता है न बढ़ता है। परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से चित्त का अन्त (अभाव) हो जाता है। बाल कल्पित वेताल की तरह अज्ञान से मोह घनरूपता प्राप्त करता है। उस अज्ञान से ही चित्त की सत्ता प्रतीत होती है। ज्ञानी का चित्त चित्त नाम से नहीं कहा जाता, किंतु सत्त्व नाम से कहा जाता है। चित्त का स्वरूप वास्तव में किसी भी काल में नहीं है। उसका स्वरूप भ्रान्ति से प्रतीत होता है। इसलिये भ्रान्ति का नाश होने पर उसका विनाश हो जाता है। वह मिथ्या भ्रान्ति तत्त्व ज्ञान से शान्त हो जाती है; क्योंकि जो सद् वस्तु है, उसका अभाव कभी नहीं होता। जैसे खरगोश के सींग की सत्ता का अभाव है, वैसे ही विकल्परूप मन आदि का भी अभाव है। वे सब आत्मा में आरोपित हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

इसलिये उनका परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से विनाश हो जाता है।

इकतीसवाँ सर्ग समाप्त

बत्तीसवाँ सर्ग

शिला के रूप में ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन

श्री वसिष्ठजी कहते हैं-राघवेन्द्र ! प्रेममय होने से स्निग्ध (चिकनी), स्वयम्प्रकाश होने से स्पष्ट, आनन्द मय होने से मृदुल स्पर्श वाली, अनन्त होने के कारण महाविस्तार से युक्त, प्रचुर होने से घन नित्य विकाररहित एक ब्रह्मरूप महती शिला है। उस महाशिला के भीतर मनःकल्पनाओं से अनन्त वे सभी भुवनादिरूप कमल विराज रहे हैं। यहाँ पर मैंने यह कोई अपूर्व शिला ही दृष्टान्त रूप से आपके समक्ष उपस्थित की है, जिसकी महाकुक्षि के भीतर यह सब जगत् प्रतीत होने के कारण तो है, किंतु वास्तव में नहीं है। तुमसे उस चिन्मय ब्रह्मारूप शिला का ही मैंने कथन किया है, जिसके संकल्प में ये सारे जगत् विद्यमान हैं। इस सच्चिदानन्द ब्रह्म में शिला की ज्यों घनता, एकरूपता आदि हैं। अत्यन्त घनीभूत अंगों वाली और पोल से रहित इस सच्चिदानन्द घन रूप शिला के अंदर यह जगत्-समूह कल्पित है। यद्यपि उस चेतनरूप शिला में स्वर्ग, पृथिवी, वायु, आकाश, पर्वत, नदियाँ और दिशाएँ विद्यमान प्रतीत होती हैं, तथापि उसमें वस्तुतः तनिक भी अवकाश नहीं है। इस चेतनरूप शिला में घनीभूत अवयवों वाला जगद्रूपी कमल विकसित हो रहा है। वह यद्यपि उससे पृथक-सा प्रतीत होता है, तथापि वास्तव में उससे पृथक् नहीं है। श्रीराम ! जैसे पत्थर में चित्रकार की मनः कल्पना से शंख, कमल आदि चित्र निर्मित किये जाते हैं, वैसे ही एकमात्र मन की कल्पना से इस चेतनरूप शिला में भूत, वर्तमान और भविष्यत्-सारा संसार चित्रित किया गया है। प्राकृत शिला में जैसे पुतली आदि वास्तविक-से प्रतीत होते हैं, पर वास्तविक हैं नहीं; अपितु शिलारूप ही हैं, वैसे ही चेतन शिला में सभी पदार्थ वास्तविक-से प्रतीत होने पर भी वास्तविक नहीं हैं, किंतु चिन्मय ब्रह्म ही हैं। भीतर स्थित शंख, कमल आदि आकारों से युक्त शिला अनेकरूप से प्रतीत होती हुई भी जैसे घनीभूत एक शिला ही है, वैसे ही कल्पित आकारों से युक्त होकर अनेक आकृतियों के रूप में प्रतीत होता हुआ भी वास्तव में घनीभूत एक ब्रह्म ही है। जिस प्रकार पाषाण शिला के भीतर शिल्पी द्वारा लिखित कमल, उस शिला कोश में अभिन्न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama (I.E.S) Jammu Collection

होने पर भी, अपने परिछिन्न आकार से युक्त होकर उससे भिन्न-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार चेतन के स्वरूप से अभिन्न होने पर भी यह सृष्टि उससे अन्य-परिच्छिन्न आकारवाली होकर उससे भिन्न-सी प्रतीत होती है, वास्तव में भिन्न नहीं है। वास्तव में ये प्रतीत होने वाले भुवन आदि विकारादि अर्थों से शून्य ब्रह्मरूप ही हैं। विषयों का ग्रहण और अग्रहण भी ब्रह्मरूप ही हैं; क्योंकि ब्रह्म अनन्त है। विकार आदि रूप से ब्रह्म ही अवस्थित है और ब्रह्म ही क्रमशः विकार आदि के रूप में उत्पन्न हुआ है। इस चेतन शिला के भीतर जो ये विकारादि पदार्थ प्रतीत हो रहे हैं, उन्हें तुम मृगतृष्णा-जल के सदृश समझो। जिस प्रकार रेखाओं एवं उपरेखाओं से युक्त एक ही स्थूल शिला दीखती है, उसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म ही त्रैलोक्य से युक्त प्रसिद्ध जगत्‌रूप से दीखता है। जैसे इस लौकिक शिला के भीतर सर्वदा स्थित शिल्पी के वासनास्वरूप कमल आदि वास्तव में न उदित होते हैं और न अन्त ही होते हैं, वैसे ही इस चेतन शिला में मनोरूप जगत् की गति भी वास्तव में न उदित होती है और न अस्त ही होती है जिस तरह शिला के भीतर की रेखा आदि शिला से भिन्न नहीं हैं, किंतु शिलामय ही हैं, उसी तरह कर्तृत्व आदि जगत् चेतन का संकल्प होने से चिन्मय ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं, किंतु ब्रह्मरूप ही हैं।

रघुनन्दन ! देश, काल, क्रिया आदि भी ब्रह्मरूप ही हैं; अतः 'यह अन्य है', 'यह अन्य है' इस प्रकार की कल्पना यहाँ नहीं बन सकती। जिस प्रकार चिन्तामणि के अन्तर्गत चिन्तको के अनन्त फल पर्याप्त रूप से रहते हैं, उसी प्रकार परम चेतन परमात्मरूप मणि में अनन्त जगत् रहते हैं। समुद्र में स्थित आवर्त तरंग आदि रूप जलस्पन्दन के विलास की तरह और शिला के भीतर अंकित कमल की तरह यह अद्वितीय चेतन परमात्मा जगद्रूप से नाना प्रतीत होता है। जो वर्तमान-कालिक जगत् है, वह चेतन में एक तरह से शिला में खुदी गयी मूर्ति के सदृश है और जो जगत् वर्तमान काल में नहीं है यानी भूत एवं भविष्यत्कालिक जो जगत् है, वह एक तरह से चेतन शिला में न खोदी गयी मूर्ति के सदृश है। जैसे कमल आदि शब्द और उनके अनेकों अर्थ शिला को छोड़कर नाना-से प्रतीत होते हैं, वास्तव में शिला से उनका पृथक् अस्तित्व नहीं है। वैसे ही अद्वय चेतन परमात्मा को छोड़कर ये जगदादि शब्द और उनके अर्थ नाना-से प्रतीत होते हैं; वास्तव में चिन्मय परमात्मा से पृथक उनका

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Memorial Library, Jammu Collection

अस्तित्व नहीं है, किंतु वे चिन्मय परमात्मा ही हैं। श्रीराम ! मरु-मरीचिका मृग की दृष्टि में तो निर्मल जलराशि ही है, किंतु विवेक-बुद्धि से सम्पन्न विद्वानों को स्थल पर सूर्य की किरणें ही पड़ती हुई दिखायी देती हैं। वहाँ जैसे सत्स्वरूप किरणें ही असत् जलराशि के रूप में दिखायी देती पड़ती हैं, वैसे ही सच्चिदानन्द-स्वरूप तुम ही असम् जगद्रूप से प्रतीत से होते हो। वास्तव में तो तुम सच्चिदानन्द-स्वरूप हो। जैसे सच्चिदानन्द घन परमात्मा में उत्पत्ति-विनाश का अभाव है, ैसे ही जगत् में भी उत्पत्ति-विनाश का अभाव है; क्योंकि जिस प्रकार मरुभूमि में सूर्य की किरणें जलरूप से प्रतीत होती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म ही जगद्रूप से प्रतीत होता है। जैसे सूर्य की धूप से बर्फ गलकर जलरूप ही हो जाता है, वैसे ही मेरु, तृण, गुल्म, मन और जगत् आदि सारे पदार्थ परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से परम विशुद्ध परमात्मा ही हो जाते हैं, यों ब्रह्मज्ञानी लोग जानते हैं।

बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त

तेतीसवाँ सर्ग

परमात्मा के स्वरूप और अविद्या के अभाव का निरूपण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! अपने अतिशय परमानन्दमय स्वरूप का अनुभव करने वाले ज्ञानी मुनि, देवतागण, सिद्ध और महर्षि लोग सर्वदा तुरीय पद में स्थित रहते हैं। व्यवहार में लगे हुए जो लोग बाह्य दृश्य विषयों में सत्यता ही भावना से रहित हैं, जो पुरुष विषयेन्द्रिय-सम्बन्धों का परित्याग करके समाधि में निरत हैं, चित्रलिखित देहधारियों की भाँति जो प्राणों के स्पन्दन से रहित हैं और उन्हीं की भाँति जो मनोगति से भी शून्य हैं, वे सब अपने उस परमपद-स्वरूप परमात्मा में-जहाँ मन का एवं दृश्य ही आसक्ति का अभाव है-समानभाव से नित्य स्थित हैं। वह विशुद्ध चिन्मय परमात्मा न तो दृष्टि का विषय है और न उपदेश का ही विषय है। वह न तो अत्यन्त समीप है और न दूरवर्ती ही है; किंतु केवल अनुभव से ही प्राप्य और सब जगह समानभाव से स्थित है। शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा न देहस्वरूप है न इन्द्रिय एवं प्राणस्वरूप है, न चित्तस्वरूप है न वासनारूप है, न स्पन्दस्वरूप है न ज्ञानरूप है और न जगद्रूप ही है, बल्कि इन सबसे अति परे महान् श्रेष्ठ है। वह न सद्रूप है न असद्रूप है और न सत् एवं असत् के मध्यवर्ती ही है। वह न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama Prasad Mukherji Collection

तो शून्य स्वरूप है और न अशून्य-स्वरूप ही है; वह देश, काल एवं वस्तु भी नहीं है, किंतु ब्रह्मस्वरूप ही है, उससे भिन्न कुछ नहीं। वह ब्रह्म देह आदि समस्त पदार्थों से रहित है और जिसके रहने पर यह दृश्य जगत् आविर्भाव, तिरोभाव आदि रूप से स्पन्दित होता है वह परमात्मपद ही है। ये हजारों देहरूप घड़े उत्पन्न होते हैं और नष्ट भी होते हैं; किंतु बाहर एवं भीतर व्याप्त इस परमात्मस्वरूप आकाश का नाश नहीं होता (अर्थात् जिस प्रकार घड़ों का नाश होने पर भी घटाकाश का नाश नहीं होता, उसी तरह देह का नाश होने पर भी परमात्मा का नाश नहीं होता।) आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ श्रीराम ! उपर्युक्त देहादि सम्पूर्ण जगत् परमात्म रूप ही है, किंतु वह जगत् केवल अज्ञानवश ही परमात्मा से पृथक्-सा प्रतीत होता है। तुम्हें तो अपनी पवित्र बुद्धि से यह ज्ञात ही है कि यह विश्व परमात्मस्वरूप है। स्थावर एवं जंगम-स्वरूप जो कुछ यह जगत् दीखता है, वह सब ब्रह्म ही है; किंतु वास्तव में वह ब्रह्म लक्षणों और गुणों से, मल से, विकारों से तथा आदि और अन्त से रहित एवं नित्य, शान्त और समस्वरूप है।

श्रीराम ! दही बन जाने से दूध पुनः अपने दूधरूप में नहीं आता। किंतु ब्रह्म ऐसा नहीं है। आदि, मध्य और अन्त-किसी भी दशा में ब्रह्म तो निर्विकार ब्रह्मरूप ही ज्ञात होता है। इसलिये दूध आदि के समान ब्रह्म में विकारिता नहीं है। समस्वरूप ब्रह्म का आदि और अन्त में जो क्षणभर के लिये विकार दिखलायी पड़ता है, उसे तुम जीवात्मा का भ्रम समझो; क्योंकि अविकारी ब्रह्म में कोई विकार नहीं हो सकता। उस ब्रह्म में दृश्य-दर्शन का अत्यन्त अभाव है। वास्तव में वह ब्रह्म संसार के सम्बन्ध से रहित, सच्चिदानन्दघन कहा गया है। आदि और अन्त में जिस वस्तु का जो स्वरूप है, वही उसका नित्य स्वरूप है। यदि मध्य में उसका अन्य रूप दिखलायी पड़ता है तो वह केवल अज्ञान के कारण ही दिखायी देता है। वास्तव में परमात्मा तो आदि, अन्त और मध्य में सर्वत्र सदा एकरूप है; क्योंकि स्वस्वरूप परमात्मतत्त्व कभी भी विषमभाव को प्राप्त नहीं होता। निराकार, अद्वितीय तथा नित्यस्वरूप होने के कारण यह परब्रह्म परमात्मा कभी-भाव विकारों से युक्त नहीं होता।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! अद्वितीय तथा अत्यन्त शुद्ध नित्य ब्रह्म में जीवात्मा के भ्रमरूप अविद्या का आगमन कैसे हुआ ?

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji shama (I F S) Jammu Collection

श्रीवसिष्ठ जी ने कहा–श्रीराम ! विकार तथा आदि और अन्त से रहित यह पूर्ण ब्रह्मतत्त्व पहले भी था, इस समय भी है और भविष्य में भी सदा रहेगा। वास्तव में अविद्या का किंचिन्मात्र भी अस्तित्व नहीं है, यह मेरा दृढ़ निश्चय है। 'ब्रह्म' इस शब्द से जो वाच्य एवं वाचक का पृथक्–पृथक् वर्णन किया जाता है, उसका भी भेद में तात्पर्य नहीं है, किंतु वह समझाने के लिये ही है। श्रीराम ! तुम और मैं, यह संसार और दिशाएँ, आकाश और पृथ्वी अथवा अनल आदि सब–के–सब आदि और अन्त से रहित ब्रह्म ही हैं, अविद्या तो वास्तव में है ही नहीं; क्योंकि मुनिलोग 'अविद्या' को भ्रममात्र और असत् कहते हैं। श्रीराम ! वास्तव में जो वस्तु है ही नहीं, वह सत्य कैसे समझी जा सकती है। वेदरूप वाणी का रहस्य जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ विद्वानों ने 'यह अविद्या है और यह जीव है' इत्यादि कल्पना अज्ञानी जनों को उपदेश देने के लिए ही की है। केवल युक्ति से ही बोध कराकर इस जीव को परमात्मा में नियुक्त किया जा सकता है; क्योंकि जो कार्य युक्ति से सम्पादित होता है, वह सैकड़ों अन्य उपायों से नहीं होता। अज्ञानी दुर्मति के सम्मुख उसे सुहृद समझकर 'यह सब कुछ ब्रह्म है' यों जो पुरुष कहता है, उसका वह कथन एक ठूँठ को दुःख निवेदन करने के समान है। उससे कोई लाभ नहीं है। क्योंकि मूर्ख युक्ति से प्रबोधित होता है। और प्राज्ञ तत्त्व से। युक्ति से बोध कराये बिना मूर्ख को ज्ञान नहीं होता । श्रीराम ! मैं ब्रह्म हूँ, तीनों जगत् ब्रह्म हैं, तुम ब्रह्म हो और यह दृश्य पृथ्वी भी ब्रह्म ही है; ब्रह्म से पृथक् कोई दूसरी कल्पना ही नहीं है। रघुनन्दन ! सोते–जागते, चलते–फिरते, बैठते, श्वास लेते–सब समय अपने हृदय में 'सर्वव्यापी सच्चिदानन्द घन परमात्मा ही मैं हूँ' ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि तुम वास्तव में सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित, शान्त, चिन्मय ब्रह्म हो तथा सर्वव्यापी, अद्वितीय, शुद्ध ज्ञान स्वरूप, आदि और अन्त से रहित, प्रकाशात्मक परमपदस्वरूप हो एवं ब्रह्म, तुरीय, आत्मा, अविद्या, प्रकृति–ये सब भी अभिन्न, अद्वितीय नित्य परमात्मस्वरूप ही हैं। जैसे मिट्टी से घड़ा पृथक् नहीं है, वैसे ही परमात्मा से प्रकृति पृथक नहीं है। जैसे वायु और उसका स्पन्दन एक ही पदार्थ हैं और नाम से दोनों भिन्न होते हुए भी वास्तव में भिन्न नहीं हैं, वैसे ही परमात्मा और प्रकृति–ये दोनों एक हैं और नाम से भिन्न होते हुए भी वास्तव में भिन्न नहीं हैं। जैसे अज्ञान से रज्जु में सर्प की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Jammu Collection

प्रतीति होती है, वैसे ही अज्ञान से इन दोनों में भेद जान पड़ता है और वह भेद यथार्थ ज्ञान से ही विनष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह कि परमात्मा के सिवा-उससे भिन्न कोई वस्तु नहीं है।

तेतीसवाँ सर्ग समाप्त

चौतीसवाँ सर्ग

जीवात्मा का अपनी भावना से अनेक रूप धारण करना

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-ब्रह्मन् ! मुझे सम्पूर्ण ज्ञातव्य (जानने योग्य) वस्तु का ज्ञान है और अविनाशी द्रष्टव्यवस्तु का अनुभव है तथा मैं आपके सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मज्ञानरूप उपदेशामृत तृप्त हूँ। सच्चिदानन्द घन पूर्णब्रह्म परमात्मा से यह पूर्ण संसार परिपूर्ण है। पूर्ण ब्रह्म परमात्मा से ही यह संसार उत्पन्न होता है, पूर्ण ब्रह्म परमात्मा द्वारा ही यह संसार पूरित है एवं पूर्णब्रह्म परमात्मा में ही यह संसार स्थित है; तथापि ब्रह्मन् ! बहुत लोगों के ज्ञान की अभिवृद्धि के लिये लीला से मैं आप से यह प्रश्न पूछता हूँ। मृत प्राणी के श्रोत्र, चक्षु, त्वचा, रसना और घ्राण-ये इन्द्रियगोलक प्रत्यक्ष विद्यमान रहते हुए भी अपने-अपने विषयों का ग्रहण क्यों नहीं करते और जीते हुए प्राणी की इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों का ग्रहण कैसे करती हैं जड़रूप होती हुई भी ये इन्द्रियाँ शरीर के भीतर रहकर घटादि बाह्य पदार्थों का अनुभव कैसे करती हैं और कैसे नहीं करती ? महर्षे ! यद्यपि मैं इन विशेषों को जान रहा हूँ, तथापि आप से फिर पूछता हूँ, उसे आप कृपापूर्वक पूर्णरूप से कहिये।

श्रीवसिष्ठजी बोले-श्रीराम ! इस संसार में विशुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म के सिवा इन्द्रिय, चित्त और घट आदि किसी भी अन्य पदार्थ का पृथक् अस्तित्व नहीं है। अर्थात एक विज्ञानानन्द घन परमात्मा ही है। वह चिन्मय परमात्मा ही प्रकृति बन गया है। उसी प्रकृति के अंश से इन्द्रिय आदि एवं घट आदि उत्पन्न हुए हैं। किंतु आदि और अन्त से रहित, विकार-रहित, प्रकाशस्वरूप, शुद्ध चैतन्यमात्र, जगत-कारणरूप ब्रह्म वास्तव में माया से रहित है। यह अज्ञानी जीवात्मा ही अज्ञान के कारण अपनी भावना के अनुसार संसार का रूप धारण करता है। वह अहंभावना से 'अहंकार', मनन से 'मन', निश्चय ही भावना से 'बुद्धि', इन्द्रियों की भावना से 'इन्द्रिय', देह की भावना से 'देह' और घट की भावना से घट बन जाता है। इस प्रकार अपनी भावना के कारण यह जीवात्मा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

'पुर्यष्टक' बन जाता है। ज्ञानेन्द्रियों के व्यापारों को लेकर 'मैं ज्ञाता हूँ', कर्मेन्द्रियों के व्यापारों को लेकर 'मैं कर्ता हूँ', उन ज्ञान-कर्मेन्द्रियों के व्यापारों से जनित सुख-दुःखों का आश्रय होने से 'मैं भोक्ता हूँ', उदासीन होकर सबका प्रकाशन करने से 'मैं साक्षी हूँ', इत्यादि अभिमानयुक्त जो चैतन्य है, वही 'जीव' कहा गया है। वही जीवात्मा अपनी भावना से समय-समय पर स्वयं ही अनेक रूप हो जाता है। जैसे जल सींचने से बीज के पल्लव आदि आकार होते हैं, वैसे ही भावना के अनुसार उस जीव के भी शरीर आदि, स्थावर आदि एवं जंगम आदि अनेक रूप होते हैं; क्योंकि वह जीवात्मा अज्ञान से यह मान लेता है कि मैं चेतन आत्मा नहीं हूँ, किंतु शरीर आदि हूँ। वासनाओं के वशीभूत हुआ यह जीव कर्मानुसार चिरकाल तक स्वर्ग-नरक में आवागमनों द्वारा जगत् में घूमता ही रहता है। इनमें से कोई तो विशुद्ध जन्म के कारण पहले ही परमात्मा को यथार्थ जानकर आदि-अन्त से रहित परमपद परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। कोई बहुत काल तक अनेक योनियों में प्राप्त सुख-दुःखादि भोगों के अनन्तर परमात्मा के यथार्थ ज्ञान द्वारा परमपद को प्राप्त होता है। श्रीराम ! बाह्य विषयों के ज्ञान में इन्द्रिय-सम्बन्ध ही सदा कारण है और वह इन्द्रियों का सम्बन्ध चित्त से युक्त जीवित पुरुष में ही सम्भव है, मृत पुरुष में कभी नहीं। जब शान पर चढ़े हुए चमकीले नवीन रत्न के समान आँखों के तारे में बाह्य दृश्य पदार्थ प्रतिबिम्बित होता है, तब उस पदार्थ का हृदय में प्रतिबिम्बि पड़ने के कारण, देहाभिमानी जीव के साथ सम्बन्ध हो जाता है। इस रीति से बाह्य वस्तु जीव द्वारा हृदय में जानी जाती है।

चौतीसवाँ सर्ग समाप्त

पैतीसवाँ सर्ग

जीवात्मा को तत्त्व ज्ञान से परब्रह्म प्राप्ति होने का कथन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! व्यष्टि चेतन जीवात्मा गर्भ में चक्षु आदि इन्द्रियों के प्रादुर्भाव से सम्पन्न पुर्यष्टकस्वरूप हो जाने पर जिस वस्तु की जिस प्रकार भावना करता है, उसी प्रकार उसे अपनी भावना से तत्काल ही अनुभव करने लगता है। किंतु वास्तव में अद्वितीय, असीम और अवैद्य होने से निर्विकार शुद्ध आत्मा में दूसरे किसी पदार्थ का अस्तित्व है ही नहीं। अतः वह चेतन आत्मा वास्तव में दृश्य सम्बन्ध से कभी भी मनोरूपता, जीवरूपता अथवा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पुर्यष्टकरूपता को नहीं प्राप्त होता। श्रीराम ! परमात्मा तो वास्तव में विद्या आदि द्वारा नहीं जाना जा सकता और वह सदा विद्यमान होते हुए भी अश्रद्धालु विश्वासहीन पुरुषों के लिये नहीं है। वहीं 'परमात्मा' इस नाम से कहा गया है तथा वहीं पाँचों इन्द्रिय और छठे मन से अतीत है अर्थात् इनके द्वारा वह जाना नहीं जा सकता। 'उस परमात्मा से चेतन जीव उत्पन्न होता है' इत्यादि मननात्मक कल्पना एकमात्र शिष्यों को समझाने के लिये ही कही गयी है। वास्तव में परमात्मा से भिन्न अन्य कुछ है ही नहीं। जैसे कि मृगतृष्णा-जल को प्रयत्न से भी किसी ने कहीं नहीं पाया, उसी प्रकार प्रतीत होने पर भी जो अभाव रूप पदार्थ हैं, वे प्रयत्न से भी किस तरह पाये जा सकते हैं। क्योंकि असत् पदार्थ ही सत् प्रतीत होता है। उसकी सत्यता असद्रूप अविद्या से ही है। ज्ञान से तो जो वस्तु वास्तव में जिस प्रकार की रहती है, वह उसी प्रकार की अनुभूत हो जाती है और भ्रान्ति नष्ट को जाती है। ये इन्द्रिय, मन, प्राण आदि आन्तरिक पदार्थ हैं और ये घट आदि बाह्य पदार्थ हैं-ऐसे विचार वाला जीवात्मा जिस की जैसी भावना कर लेता है, उसे वैसी ही प्रतीति होने लगती है। द्वैत एवं अद्वैत रूप यह सम्पर्ण जगत् उसी प्रकार परमात्मा से ही बना है, जैसे ईख के रस से खाँड़ और मिट्टी से महान् घट। खाँड़, घट आदि में-देश, काल आदि से परिच्छिन्न होने के कारण-अवयव-विन्यास, विकार आदि हो सकते हैं; परंतु ब्रह्म तो देश, काल आदि से परिच्छिन्न नहीं है; सुतरां उसमें वे विकार आदि वास्तव में हो ही नहीं सकते। केवल ब्रह्म में जगत् की कल्पना मात्र है। क्योंकि जिस प्रकार भूषण में स्थित सुवर्ण में यानी सुवर्ण के आभूषण में सत्य एवं असत्य रूप सुवर्णत्व और कटकत्व दोनों रहते हैं, उसी प्रकार परमात्मा में भी चेतनता और जड़ता दोनों रहती हैं। तात्पर्य यह कि जैसे स्वर्ष ही आभूषण के रूप में प्रतीत होता है, वैसे ही चेतन ब्रह्म ही जड़ जगत् के रूप में प्रतीत होता है।

जैसे मनुष्य स्वप्न में शीघ्र ही दीवाल बनकर पट बन जाता है, वैसे ही मरणकाल में जीवात्मा दूसरा शरीर अपने-आप बन जाता है। स्वप्न में अपने संकल्प से ही जीवात्मा जन्मता-मरता है, वास्तव में यह सब मिथ्या है। इस जीव की अपनी वासना ही पाञ्चभौतिक देह होकर उसी प्रकार आगे खड़ी हुई-सी रहती है, जिस प्रकार बालक के आगे कल्पित असत्य महान् प्रेत खड़ा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हुआ-सा रहता है। मन, बुद्धि, अहंकार एवं पाँच सूक्ष्म तन्मात्राएँ-इन आठों का समूह पुर्यष्टक कहा गया है और यही 'आतिवाहिक' देह कहा गया है। सजीव पहाड़, वृक्षरूप स्थावर आदि अवस्थाओं में तथा कल्पवृक्ष की अवस्थाओं में भी पाषाण-शिला के समान घनीभूत जड़ता वाली (तमोयुक्त) यह आतिवाहिक देह (लिंग शरीर) सुषुप्ति-अवस्था में स्थित की ज्यों ही स्थित रहती है। जीवात्मा के यथार्थ ज्ञान से ही मुक्ति होती है और उसी ज्ञान से वह परमात्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है। जीवात्मा के यथार्थ ज्ञान से जो मुक्ति प्राप्त होती है, वह शास्त्रों में दो प्रकार की बतलायी गयी है- एक जीवन्मुक्ति और दूसरी विदेहमुक्ति। जीवन्मुक्ति ही तुरीयावस्था है। उसके परे तुरीयातीत परम ब्रह्मपद है। यथार्थ ज्ञान होने से यह जीव प्रबोधस्वरूप हो जाता है यानी उत्कृष्ट चैतन्यात्मक ब्रह्मरूप हो जाता है और वह यथार्थ ज्ञान या बोध पुरुष-प्रयत्न से साध्य है। जो जीवात्मा अपने सर्वव्यापी स्वरूप को यथार्थ जान जाता है, वह सच्चिदानन्द मय ही हो जाता है। किंतु जो जीव उपर्युक्त ज्ञान से शून्य है, वह अज्ञानवश शिला ही तरह दृढ़ीकरण अपने हृदय में दीर्घतम संसारस्वप्न भ्रान्ति रूप तीव्र भय का अनुभव करता रहता है। जीव के भीतर चिन्मय आत्मा के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है। पर यह अज्ञान के कारण उसी चेतन आत्मा को जड़ देह के रूप में समझकर व्यर्थ ही शोक किया करता है। जीवात्मा के भीतर परमब्रह्म के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है। अहो ! जहाँ-तहाँ यह जो जगत् प्रतीत होता है, वह माया का ही परिणाम है।

श्रीराम ! वासनाओं का बन्धन ही इस जीवात्मा के लिये बन्धन है, वासनाओं का अभाव ही इस का मोक्ष है और वासनाओं का लय ही सुषुप्ति-अवस्था है; और वही वासना स्वप्न में नानाप्रकार से प्रकट होती है। जब यह जीव वासनाओं की घनता से मोहित होता है, तब वह स्थावर आदि योनियों को प्राप्त होता है; जब मध्यम प्रकार की वासनाओं से युक्त होता है, तब पशु-पक्षी आदि योनियों को प्राप्त होता है और जब क्षीण वासनाओं से समन्वित होता है, तब मनुष्य-देव-गन्धर्व आदि योनियों को प्राप्त होता है। तात्पर्य यह कि वासनाओं के क्षय के तारतम्य से उत्तरोत्तर शुभयोनि की प्राप्ति होती है। किंतु परमात्मा तो वास्तव में न किसी का त्याग करता है और न किसी का ग्रहण ही करता है। वास्तव में परमात्मा से भिन्न किसी का अस्तित्व है ही नहीं। अतः

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

यहाँ बाह्य और आन्तर कलात्मक जगत् के रूप में वह परमात्मा ही अपने संकल्प से प्रकाशित होता है, अतः परमात्मा के सिवा और कुछ नहीं है। ये तीनों जगत् चिन्मय परमात्मा का संकल्प ही हैं। इसलिये भेद के विकल्पों से प्रयोजन ही क्या रहा। अब हम सच्चिदानन्द परमात्मा में नित्य स्थित हैं। इस बाह्य-आन्तर जगत् का भूत, भविष्य, वर्तमान-तीनों कालों में ही अत्यन्त अभाव है। अर्थात् वास्तव में यह जगत् न पहले था, न अभी है और न भविष्य में ही कायम रहेगा। जैसे समुद्र तरंग आदि समस्त भेदों से रहित, सम्पूर्ण रूप से केवल विशुद्ध द्रवात्मक जलस्वरूप ही है, वैसे ही यह जगत् भी समस्त भेदों और विकारों से रहित केवल परमपद ब्रह्मस्वरूप ही है।

पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त

छत्तीसवाँ सर्ग

श्रीकृष्णार्जुन-आख्यान का आरम्भ

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-महाबाहु श्रीराम ! अब कमल नयन भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा कहे हुए उस शुभ अनासक्तियोग को तुम सुनो, जिसका अवलम्बन करके मनुष्य जीवन्मुक्त महामुनि बन जाता है। उस उपदेश को सुनकर महाराज पाण्डु का पुत्र अर्जुन जीवन्मुक्ति रूप सुख से युक्त हुआ अपना जीवन बितायेगा।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! कृपाकर आप मुझे यह बतलाइये कि वह पाण्डुनन्दन इस पृथ्वी पर कब उत्पन्न होगा और उसके प्रति अनासक्ति का वर्णन भगवान् श्रीकृष्ण किस तरह करेंगे ?

श्री वसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! एक समय यह पृथ्वी मृत्युलोक में आये हुए भारस्वरूप पापी प्राणियों से व्याप्त, वन-गुल्मों से संकीर्ण-सी और दीन हो जायेगी। उस समय पापी मनुष्यों के भार से पीड़ित यह दीन पृथ्वी शरण पाने के लिये भगवान् विष्णु के समीप उसी तरह जायेगी, जिस तरह लुटेरों से लूटी गयी कातर स्त्री अपने पति के समीप जाती है। तब सम्पूर्ण देवांशों के साथ भगवान् श्रीहरि नर और नारायण के अवतार रूप में दो शरीरों से पृथ्वी पर प्रकट होंगे । उनमें से श्रीहरि के नारायणस्वरूप का साक्षात् अवतार एक तो 'श्रीवासुदेव' इस नाम से विख्यात होगा और दूसरा अंशावतार नरस्वरूप पाण्डुपुत्र 'अर्जुन' इस नाम से विख्यात होगा और चारों समुद्रों से घिरी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

का अधिपति एवं धर्म का पुत्र 'युधिष्ठिर' इस नाम से प्रसिद्ध होगा। वह पाण्डुपुत्र धर्मज्ञ होगा, उसका चचेरा भाई 'दुर्योधन' नाम से विख्यात होगा और उस दुर्योधन का 'भीम' नामक द्वितीय पाण्डु-पुत्र वैसा ही प्रतिद्वन्द्वी होगा, जैसे सर्प का प्रतिद्वन्द्वी नकुल। पृथ्वी को अपने-अपने अधिकार में करने के लिये परस्पर युद्ध करने में तत्पर उन दोनों ही भयंकर अठारह अक्षौहिणी सेना कुरुक्षेत्र में होने वाली महाभारत की लड़ाई में इकट्ठी होगी। रघुनन्दन ! महान् गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन की देह से उन सेनाओं को नष्टकर श्रीविष्णुभगवान् (श्रीकृष्ण) पृथ्वी को भार से मुक्त कर देंगे। युद्ध के प्रारम्भ में भगवान् विष्णु का अंश अर्जुन प्राकृतभाव में स्थित होकर हर्ष और शोक से युक्त मनुष्य-धर्मवाला बन जायगा। दोनों सेनाओं में पहुँचे हुए और मरने के लिये तैयार अपने बन्धुओं को देखकर अर्जुन को उपस्थित कार्य की सिद्धि के लिये श्रीविष्णुभगवान् अपने ज्ञानमय श्रीकृष्णस्वरूप से इस प्रकार उपदेश देगें-

'यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता। जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा वास्तव में न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है। अनन्त, एकरूप, सत्स्वरूप और आकाश से भी अत्यन्त सूक्ष्म प्रभावशाली परमशुद्ध आत्मा का किससे किस तरह क्या नष्ट होता है ? अर्थात् उसका किसीप्रकार कभी विनाश नहीं होता। अतएव ज्ञानस्वरूप अर्जुन ! तुम आदि और मध्य से रहित, अनन्त एवं अव्यक्त अपने वास्तविक स्वरूप का अवलोकन करो। चैतन्यस्वरूप, अज, नित्य और विशुद्ध हो।'

छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त

सैतीसवाँ सर्ग

ज्ञान और योग की परिभाषा

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा-अर्जुन ! तुम स्वयं जरा मरण से रहित नित्य चिन्मय आत्मस्वरूप हो। तुम 'मारने वाले' नहीं हो, अतः इस अभिमान रूप दोष का त्याग कर दो। क्योंकि जिस पुरुष के अन्तःकरण में 'मैं कर्ता हूँ', ऐसा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थों में और कर्मों में लिप्त नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकों को मारकर भी वास्तव में न तो मारता है और न पाप से बँधता है। इसलिये 'अयम्' यानी यह संसार 'सोऽहम्' यानी वह मारनेवाला मैं, 'इदम्' यानी यह देह और 'तन्मे' यानी वे बन्धु आदि मेरे हैं- इस तरह की अन्तःकरण में उत्पन्न हुई वृत्ति का त्याग कर दो। क्योंकि भारत ! इसी बुद्धिवृत्ति के कारण 'मैं पापों से युक्त हूँ', 'मैं विनाशशील हूँ' इत्यादि भ्रान्तियों के अधीन होकर तुम चारों ओर सुख-दुःखों से संतप्त हो रहे हो। वास्तव में सम्पूर्ण कर्म अपनी आत्मा के अंशरूप गुणों के द्वारा ही विभागपूर्वक किये जाते हैं; तो भी जिसका अन्तःकरण अहंकार से मोहित हो रहा है, वह अज्ञानी 'मैं कर्ता हूँ', ऐसा मानता है। महात्मा पुरुष के अन्तःकरण में 'मैं' नाम की कोई वस्तु नहीं है; फिर तुम्हारे लिये कौन पदार्थ क्लेशकारक है ? अर्थात् कोई नहीं। भारत ! बहुतों ने मिलकर एक साथ जिस कार्य का सम्पादन किया हो, उसमें यदि किसी एक को 'मैंने ही यह किया है' यों अभिमान-जन्य दुःख होता है तो वह हास्यास्पद ही है। क्योंकि कर्मयोगी ममत्वबुद्धि रहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं। तथा जिसका शरीर अहंता रूपी विष से दूषित नहीं हुआ वह रागादिरूपी हैजे से मुक्त योगी कर्म करते हुए और न करते हुए भी लिप्त नहीं होता। जैसे विवेकी और लौकिक विषयों का ज्ञाता होने पर भी दुष्ट-प्रकृति पुरुष कहीं शोभा नहीं पाता, वैसे ही ममता रूपी दोष से दूषित मनुष्य कहीं भी शोभा नहीं पाता। जो ममता और अहंकार से रहित, सुख और दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है वह मनुष्य कर्म करता हुआ भी उनसे लिप्त नहीं होता। पाण्डुपुत्र ! यह शास्त्रविहित उत्तम क्षात्रकर्म तुम्हारा स्वकर्म है। वह बन्धु-वधरूप होने से क्रूर होने पर भी कर्तव्य बुद्धि से किये जाने पर सुख, अभ्युदय और कल्याण का जनक है।

धनंजय ! तुम आसक्ति को त्यागकर योग-समता में स्थित हुए कर्तव्यकर्मों को करो। क्योंकि आसक्ति रहित होकर न्याय से प्राप्त कर्म करने वाला मनुष्य कर्मों से नहीं बँधता। तुम शान्तिमय ब्रह्मस्वरूप होकर कर्म को ब्रह्ममय बना दो। अपने सत्कर्मों को ब्रह्मार्पण कर देने पर तुम शीघ्र ब्रह्म ही हो जाओगे। अपने सम्पूर्ण स्वार्थों को परमेश्वर में समर्पित कर तथा अपने-आपको

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Jammu Collection

भी परमेश्वर में समर्पित कर पापरहित हुए एवं सर्वभूतों का आत्मा बनकर इस भूतल को विभूषित करते हुए तुम परमात्मा बन जाओ। तुम सभी संकल्पों से रहित हो; इसलिये अब समस्वरूप, शान्तचित्त मुनि बनकर कर्मफल त्यागरूपी संन्यास योग में आत्मा को युक्त करके कर्म करते हुए ही मुक्त हो जाओ।

अर्जुन ने पूछा-भगवन् ! संग-त्याग, ब्रह्मार्पण, ईश्वरार्पण, सर्वथा संन्यास तथा ज्ञान और योग का विभाग क्या है ? प्रभो ! मेरे मोह निवृत्ति के लिये यह सब कहिये।

श्रीभगवान् ने कहा-सारे संकल्पों की भलीभाँति शान्ति हो जाने पर सम्पूर्ण वासनाओं और भावनाओं से रहित जो विशुद्ध केवल चेतनतत्त्व है, वही परब्रह्म परमात्मा कहा गया है। संस्कार के द्वारा पवित्र बुद्धिवाले पुरुषों ने उस परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के साधन को ही ज्ञान कहा है और उसी को योग कहा है तथा 'सम्पूर्ण संसार ब्रह्म ही है', और 'मैं ब्रह्मरूप ही हूँ'-इस प्रकार अपने आपको ब्रह्म में अर्पण कर देने को ब्रह्मार्पण कहा है एवं सम्पूर्ण कर्म-फलों के त्याग को ज्ञानियों ने सन्यास कहा है। संकल्प-समूहों का जो त्याग है, वही असंग (आसक्ति का अभाव) कहा गया है। आसक्ति के अभाव का नाम ही संगत्याग है। सभी संकल्प-विकल्प-समूहों में जो एक ईश्वर ही भावना है तथा जीव और ईश्वर के एकतत्व की भावना है, उसी को जीवात्मा का ईश्वर में अर्पण कहा गया है। क्योंकि अज्ञान के कारण ही चेतन परमात्मा में इन जीवों और जगत् आदि का नाममात्र ही भेद है। वास्तव में यह नाम-रूपात्मक सम्पूर्ण जगत् ज्ञान-स्वरूप है; अतः जगत् एक ब्रह्ममय ही है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। अर्जुन ! दिशाएँ मैं हूँ, जगत् मैं हूँ, आत्मा मैं हूँ और कर्म भी मैं ही हूँ । काल मैं हूँ, अद्वैत और द्वैत-सब मैं ही हूँ । इसलिये मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरे पूजक बनो, मुझको प्रणाम करो। इस प्रकार आत्मा को मुझ में नियुक्त करके मेरे परायण होकर तुम मुझको ही प्राप्त होओगे।

अर्जुन ने पूछा-देवेश्वर ! आपके पर और अपर-दो रूप किस प्रकार के हैं और परमपदरूप सिद्धि के लिये किस समय किस रूप का आश्रय लेकर मैं स्थित रहूँ ?

श्रीभगवान् ने कहा-निष्पाप अर्जुन ! यह जान लो कि मेरे दो रूप हैं-

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Collection, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक तो सामान्य रूप और दूसरा परम रूप। शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाला चतुर्भुज साकारस्वरूप तो मेरा सामान्य रूप है और जो मेरा विकार रहित, अद्वितीय, आदि और अन्त से रहित निर्गुण निराकार स्वरूप है, वह परम रूप है; वही ब्रह्म, शुद्ध आत्मा, परमात्मा आदि शब्दों से कहा जाता है। तुम सम्प्रबुद्ध होकर परम उत्कृष्ट, आदि और अन्त से रहित मेरे उस रूप को जान जाओगे, जिसके ज्ञान से प्राणी इस संसार में फिर उत्पन्न नहीं होता। अरिमर्दन ! यदि तुम ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के योग्य हो तो मुझ परमेश्वर ही आत्मा को और अपनी आत्मा को एक रस कर अखण्ड परिपूर्णात्मा का तत्काल आश्रय ले लो। 'यह मैं हूँ' और 'यह भी मैं हूँ' इत्यादि जो कुछ मैं कहता हूँ, वह सब इस आत्मतत्त्व का ही उपदेश मैं तुम्हें देता हूँ। मैं समझता हूँ कि मेरे उपदेश से तुम भली प्रकार प्रबुद्ध हो चुके हो, ब्रह्मपद में विश्रान्ति पा चुके हो और सर्वसंकल्पों से भी मुक्त हो चुके हो। अब तुम सत्य एवं अद्वितीय आत्मस्वरूप होकर स्थित रहो एवं सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त और सबको समभाव से देखने वाले तुम आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों में आत्मा में कल्पित देखो-अर्थात् एक परमात्मा के सिवा और कुछ नहीं है, ऐसा समझो। क्योंकि जो पुरुष 'सब कुछ ब्रह्म ही है' 'मैं भी ब्रह्म ही हूँ' इस प्रकार एकीभाव का आश्रय लेकर सम्पूर्ण भूतों में स्थित परमात्मा को भजता है, वह सब प्रकार से व्यवहार करता हुआ भी पुनः इस संसार में उत्पन्न नहीं होता, अर्थात् वह परमपद को प्राप्त हो जाता है। 'सर्व' शब्द का अर्थ है-एकत्व और वह एकत्व परमात्मा का वाचक है। वह परमात्मा प्रत्यक्ष प्रतीत न होने के कारण सत् भी नहीं कहा जा सकता और ध्रुव सत्य भावरूप होने के कारण असत् भी नहीं कहा जा सकता; अतः वह सत्-असत् से विलक्षण है। वह जिसके अनुभव में आ जाता है, उसे शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। जो तीनों लोकों के अन्तःकरण के भीतर स्थित हुआ प्रकाश देता है और जो ज्ञानियों के अनुभव में प्रत्यक्ष है, निश्चय ही वही मैं परमात्मा हूँ।

सम्पूर्ण शरीरों के भीतर स्थित जो दृश्य संसार से रहित और सूक्ष्म रूप से व्यापक अनुभव स्वरूप है, वही वह सर्वव्यापी परमात्मा है। बाहर-भीतर प्रकाश करने वाला तेजरूप मैं देहों के भीतर प्रत्यक्ष विद्यमान रहता हुआ भी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतीत नहीं होता। जिस तरह हजारों घड़ों के बाहर और भीतर आकाश समभाव से व्यापक है, उसी तरह भूत, भविष्य, वर्तमान-तीनों जगत् में स्थित शरीरों के भी बाहर और भीतर मैं व्यापक हूँ; किंतु लाखों देहों के भीतर समभाव से व्यापक हुआ भी यह परमात्मा सूक्ष्म होने के कारण प्रतीत नहीं होता। ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त जितना भी पदार्थ-समूह है, उसमें जो समभाव से नित्य स्थित है, विद्वान्लोग उसे ही नित्य चिन्मय परमात्मा जानते हैं। विनाशशील पदार्थों में साक्षी की भाँति समभाव से स्थित अविनाशी परमात्मा को जो देखता है, वही यथार्थ देखता है। पाण्डुनन्दन ! 'समस्त शरीरों में चेतन ही मैं हूँ, शरीर मैं नहीं हूँ' इस प्रकार जो मैं कहता हूँ वह अद्वितीय परमात्मा मैं सबका आत्मा हूँ। तुम मुझे इस प्रकार तत्त्वतः जानो। जिस प्रकार पर्वतों का वास्तविक स्वरूप पाषाण ही है, वृक्षों का स्वरूप काष्ठ ही है और तरंगों का स्वरूप जल ही है, उसी प्रकार सम्पूर्ण पदार्थों का वास्तविक स्वरूप परमात्मा ही है। जो पुरुष परमात्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को परमात्मा में कल्पित देखता है एवं आत्मा को अकर्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है। अर्जुन ! नाना प्रकार के आकार-विकारों-वाले तरंगों में जैसे जल व्यापक है या कड़े-कुण्डल आदि में सुवर्ण व्यापक है, वैसे ही विविध प्रकार के समस्त प्राणियों में परमात्मा समभाव से व्यापक है। तथा जिस प्रकार जल में नाना प्रकार के चंचल तरंग-समूह हैं या सुवर्ण में कड़े-कुण्डल आदि हैं, उसी प्रकार परमात्मा में ये समस्त भूत-प्राणी भी हैं। इसलिये भारत ! सम्पूर्ण पदार्थ और भूत-प्राणी एवं परम ब्रह्म-इन सबको एकरूप ही जानो, इनमें लेशमात्र भी पृथक्त्व नहीं है। इस प्रकार के उपदेशों को सुनकर और निश्चय पूर्वक भीतर अभय ब्रह्म की भलीभाँति भावना करके समबुद्धि महात्मा लोग जीवन्मुक्त होकर इस संसार में विचरा करते हैं। जिनका मान और मोह नष्ट को गया है, जिन्होंने आसक्ति रूप दोष को जीत लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरूप में नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूप से नष्ट हो गयी हैं-वे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं।

सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.P.S) Jammu Collection

अड़तीसवाँ सर्ग

श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन के प्रति कर्म और ज्ञान के तत्त्व-रहस्य का प्रतिपादन

श्रीभगवान् ने कहा-महाबाहो अर्जुन ! तुम फिर भी मेरे परम रहस्य और प्रभावयुक्त वचन को सुनो, जिसे मैं अतिशय प्रेम रखने वाले तुम्हारे लिये हित की इच्छा से कहूँगा। कुन्ती पुत्र ! सर्दी, गर्मी और सुख-दुःख-को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति विनाशशील और अनित्य हैं; इसलिये भारत ! उनको तुम सहन करो। इन्द्रियाँ, इन्द्रियों का विषय-संसर्ग, सुख-दुःख आदि द्वन्द्व या इनसे भिन्न जो कुछ भी पदार्थ हैं, वे सब-के-सब एक सच्चिदानन्द घन परमात्मा से तनिक भी पृथक् नहीं हैं अर्थात् सब कुछ परमात्मा ही है। अतः फिर सुख और दुःख कहाँ ? आदि-अन्त से रहित तथा अवयवहीन परमात्मा में पूर्णता और अपूर्णता कैसे हो सकती है। इसलिये जो पुरुष सुख-दुःख में समान और धीर है, वह अमृतमय ब्रह्मपद को प्राप्त करने में समर्थ होता है। वास्तव में सभी तरह से सुख-दुःखों का अस्तित्व तनिक भी नहीं है।परत्मात्त्वतत्त्व ही सर्वस्वरूप है, इसलिये अनात्मरूप संसार की सत्ता कैसे स्थिर होगी। क्योंकि असत वस्तु की तो सत्ता है नहीं और सत का अभाव नहीं है अतएव सुख-दुःख आदि हैं ही नहीं, केवल एक सर्वव्यापी परमात्मा ही है। अर्जुन ! यद्यपि आत्मा दृश्य पदार्थों का साक्षी रूप से साक्षत्कार करने वाला चेतन स्वरूप है और शरीर के अन्दर रहता भी है, तथापि वह सुखों से न तो हर्षित होता है और न दुःखों से दुखित ही। परमात्मा से पृथक् देह आदि कुछ भी नहीं है और न दुःख आदि ही हैं; अतः वास्तव में कौन किसका अनुभव करेगा ? क्योंकि एक परमात्मा के सिवा दूसरी वस्तु है ही नहीं। भारत! यह दुःख अज्ञान से उत्पन्न एक प्रकार की भ्रान्ति ही है, अतः परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से वह सर्वथा विनष्ट हो जाता है। जिस प्रकार रज्जु का यथार्थ तत्त्व न जानने से उत्पन्न हुआ रज्जु में सर्प का भय रज्जु के यथार्थ ज्ञान से नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अज्ञान से उत्पन्न हुए देह एवं दुःखादि का अस्तित्व परमात्मा के तात्त्विक ज्ञान से नष्ट हो जाता है। यह विश्व नित्य एवं पूर्ण ब्रह्म ही है। वह ब्रह्म न तो नष्ट होता है और न उत्पन्न ही होता है, इसे ही ध्रुव सत्य जानो। यही यथार्थ बोध है।

अर्जुन ! तुम मान, मद, शोक, भय, इच्छा, सुख, दुःख-इस सम्पूर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji shakma (I F S) Jammu Collection

असद्रूप जड़ द्वैत-प्रपंच से रहित हो जाओ और एकमात्र अद्वितीय चिन्मय सत्स्वरूप परमात्मा तद्रूप हो जाओ। भारत ! सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय और पराजय के ज्ञान से रहित होकर तुम एकमात्र शुद्ध ब्रह्मरूप ही हो। अर्जुन ! तुम जो कर्म करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो, जो दान देते हो और भविष्य में जो कुछ शास्त्रानुकूल अनुष्ठान करोगे, वह सब परमात्मरूप ही है- इस प्रकार के ज्ञान में स्थिर रहो। जो पुरुष अपने अन्तःकरण में जिस पदार्थ का संकल्प करता है, वह निस्संदेह उसी रूप में बदल जाता है। इसलिये अर्जुन ! सत्यस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये तुम सत्यस्वरूप ब्रह्म हो जाओ। क्योंकि जो पुरुष विनाशशील क्रिया रूप संसार में अक्रिय सच्चिदानन्द ब्रह्म को स्थित देखता है और अक्रिय सच्चिदानन्द ब्रह्म में विनाशशील क्रियारूप संसार को कल्पित देखता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् है और सम्पूर्ण कर्मों को कर चुका है-ऐसा कहा गया है। इसलिये अर्जुन ! तुम कर्मों में वासना तथा कर्तापन के अभिमान से रहित हो जाओ। तुम्हारी कर्मों को न करने में आसक्ति न हो और तुम योग में स्थित हुए अनासक्तभाव से शास्त्रविहित कर्तव्य कर्मों का आचरण करो। मूढ़ता, अकर्मण्यता तथा कर्मों में आसक्ति के आश्रय से रहित हुए सब में समभाव होकर स्थित रहो। जो पुरुष समस्त कर्मों में और उन के फल में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है, वह कर्मों को भलीभाँति करता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।

परमात्मा के यथार्थ तात्त्विक ज्ञान का आश्रय लेने वाले आसक्ति रहित महात्मा के हृदय में सम्पूर्ण कर्म करते हुए भी कहीं कभी कर्तृत्वाभिमान नहीं होता। कर्तृत्वाभिमान न रहने से अभोक्तृत्व की सिद्धि होती है और भोक्तृत्व के अभाव से समता और एकता की सिद्धि होती है। उस समता और एकता से अनन्तता की सिद्धि होती है तथा उससे अनन्त नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्प के होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्नि के द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुष को ज्ञानी जन भी पण्डित कहते हैं। जो सम, सौम्य, स्थिर, स्वस्थ, शान्त और सब पदार्थों से निःस्पृह होकर स्थित रहता है, वह कर्म करता हुआ भी वास्तव में कुछ नहीं करता। इसलिये अर्जुन ! तुम हर्ष-शोकादि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerjee Shama Prasad (UGC) Jammu Collection

द्वन्द्वों से रहित, नित्य वस्तु परमात्मा में स्थित, योग-क्षेम को न चाहने वाले और स्वाधीन अन्तःकरण वाले हो जाओ एवं न्याय से प्राप्त शास्त्रोक्त कर्मों को करते हुए पृथ्वी को विभूषित करने वाले आदर्श पुरुष बन जाओ। जो मूढ़ बुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियों को हठपूर्वक ऊपर से रोककर मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है। किंतु अर्जुन ! जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है। जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।

अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त

उनतालीसवाँ सर्ग

देह की नश्वरता एवं आत्मा की अविनाशिता

श्रीभगवान् ने कहा-पार्थ ! बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि प्रारब्धानुसार न्याय से प्राप्त भोगों का त्याग न करे और अप्राप्त भोगों को पाने की इच्छा न करे एवं न्याय से प्राप्त भोगों का शास्त्रानुकूल उपभोग करते हुए भी समभाव से स्थित रहे। महाबाहु अर्जुन ! जन्मादि विकारस्वभाव वाले अनात्मरूप जड़ देह में मैं-पन ही भावना मत करो, अपितु जन्मादि विकार से रहित सत्य चिन्मय आत्मा में ही आत्मा की भावना करो। इसलिये सम्पूर्ण परिग्रहों से रहित, चित्तरहित पुरुष का पतन नहीं होता। वह कर्मों को करता हुआ भी कुछ नहीं करता; क्योंकि परमात्मा के यथार्थ तात्त्विक ज्ञान का आश्रय लेने वाले आसक्ति रहित महात्मा के हृदय में सम्पूर्ण कर्म करते हुए भी कहीं कभी कर्तृत्वाभिमान नहीं होता। अर्जुन ! यह आत्मा अविनाशी, आदि और अन्त से रहित, अजर कहा गया है; इसलिये 'आत्मा का नाश होता है' यह दुःख दायी द्वोध तुम-जैसे मनुष्य को नहीं होना चाहिये। उत्तम आत्मज्ञानी लोग 'आत्मा नाशवान् है' इस रूप से आत्मा को नहीं देखते। देहाभिमानी अज्ञानी मनुष्य ही आत्मा को अनात्मरूप से देखते हैं यानी देह को ही आत्मा मानते हैं। तथा यह नष्ट हो गया है और यह प्राप्त हो गया-इत्यादि भावनाएँ वन्ध्या स्त्री के पुत्र के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.P.S) Jammu Collection

समान मोहजनित भ्रम (असत्) हैं। असत् वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनों का ही तत्व तत्त्वज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है। नाशरहित तो तुम उसको जानो, जिससे यह सम्पूर्ण जगत्-दृश्यवर्ग व्याप्त है। इस अविनाशी का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये भरतवंशी अर्जुन ! तुम युद्ध करो। आत्मा एक है और द्वैत है ही नहीं; अतः आत्मा के सिवा दूसरे असत् पदार्थ की उत्पत्ति हो कैसे सकती है ? क्योंकि सत का नाश नहीं होता, इसलिये यह सद्रूप परमात्मा अविनाशी और अनन्त है।

अर्जुन ने पूछा-भगवन् ! तब तो मैं 'मर गया हूँ' इस प्रकार मनुष्यों की मरणस्थिति किस हेतु से प्राप्त होती है और उस स्थिति में प्रभो ! लोगों को प्रसिद्ध स्वर्ग और नरक कैसे प्राप्त होते हैं ?

श्रीभगवान् ने कहा-अर्जुन ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन और बुद्धि-इनसे युक्त तन्मात्राओं का जो समूह है, अज्ञान से तत्स्वरूप हुआ ही जीव देहों में स्थित रहता है। वह देह में स्थित जीवात्मा वासना के उसी तरह खींचा जाता है, जिस तरह रस्सी से बछड़ा। वह शरीर के अंदर पिंजरे में पक्षी की तरह बैठा रहता है। जब देश और काल से जर्जर हुए शरीर से यह जीव वासना लेकर निकल जाता है, तब इसी को लोग मरना कहते हैं। जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचा को तथा रसना और घ्राण को ग्रहण करके पूर्व शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है। इसका शरीर वासनामय ही है यानी केवल वासना के अनुसार ही उत्पन्न हुआ है, अन्य किसी दूसरे कारण से नहीं। अतएव वासना का त्याग होने पर लिंग देह विनष्ट हो जाता है और उस लिंग देह के विनष्ट हो जाने पर वह जीवात्मा परमपद को प्राप्त हो जाता है। यह वासनामय जीव वासना से परिपुष्ट होकर अज्ञान से अनेक भ्रमों का भार ढोता हुआ कर्मानुसार नाना योनियों में भ्रमण करता है; यही जीवात्मा का जन्म-मरण है। कुन्तीपुत्र अर्जुन ! शरीर से जीव के निकल जाने पर देह उसी प्रकार कम्पनशून्य हो जाती है, जिस प्रकार वायु के शान्त हो जाने पर वृक्ष। जब शरीर जीवात्मा से रहित हो जाता है, तब वह 'मर गया' यों कहा जाता है। अनादि अविद्या से मूढ़बुद्धि यह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जीव अपने कर्म और वासना के अनुसार नरक, स्वर्ग, (इसी लोक में) पुनर्जन्म आदि, जिनमें भ्रमण करने का उसने चिरकाल से अभ्यास किया है, अनुभव करता रहता है।

अर्जुन ने पूछा-जगत्पते ! इस जीव का स्वर्ग, नरक, मर्त्य लोक आदि में जो भ्रमण होता है, उसमें कारण क्या है, यह आप मुझसे कहिये।

श्री भगवान् बोले-अर्जुन ! चिरकालिक अभ्यास से प्रौढ़ हुई स्वप्नतुल्या यह वासना ही जीव को संसार रूप भूलभुलैया में डालती है; इसलिये तत्त्व ज्ञान के अभ्यास से वासना का समूल क्षय ही जीव के लिये कल्याणकारक है।

अर्जुन ने पूछा-देवदेवेश ! यह वासना किससे उत्पन्न हुई और वह किस प्रकार नष्ट होती है ?

श्री भगवान् बोले-कौन्तेय ! अनात्म वस्तु देह में आत्म भावना रूप यह वासना अज्ञान स्वरूप मोह से उत्पन्न हुई है और परमात्मा के यथार्थ अनुभव रूप ज्ञान से यह विनष्ट हो जाती है। तुम पवित्रात्मा हो चुके हो और सत्य वस्तु का विवेक भी तुम्हें हो चुका है। अब तुम 'यह', 'वह', 'मैं' और 'ये लोग' इत्यादि रूप वासना से रहित हो जाओ। क्योंकि भारत ! दूसरे के अधीन न रहने वाला, संकल्प रहित और अविनाशी जीवात्म का परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से वासना से छूट जाना ही उसका 'मोक्ष' है। महाबाहु अर्जुन ! वासना रूप रज्जु के बन्धन से छूटा हुआ पुरुष 'मुक्त' कहा जाता है। अतः तुम वासना से रहित होकर जीते-जी ही उस वास्तविक यथार्थ तत्त्व का अनुभव करो। जो वासना से रहित नहीं है,-भले ही वह समस्त धर्मों के परायण क्यों न हो, सर्वज्ञ यानी समस्त सांसारिक विषयों का पण्डित ही क्यों न हो,-फिर भी वह पिंजरे में स्थित पंछी की भाँति सब ओर से वासना-जाल से बँधा हुआ है। क्योंकि वासना ही बन्धन है और वासना का क्षय ही मोक्ष है।

उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त

चालीसवाँ सर्ग

जीवन्मुक्त अवस्था और जगद्रूप चित्र का वर्णन

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा-अर्जुन ! इस प्रकार वासना-निवृत्तिरूप जीवन्मुक्ति के द्वारा तुम आन्तरिक शान्ति प्राप्त कर बन्धुवध प्रयुक्त दुःख का निःशेष रूप से परित्याग कर दो। निष्पाप अर्जुन ! जरा और मरण से रहित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mukesh Sharma (IPS) Jammu Collection

आकाश की तरह विशाल चित्तवाले तथा इष्ट एवं अनिष्ट विषयों के संकल्पों से रहित होकर तुम वीतराग हो जाओ। सदा से चला आने वाला स्वधर्म रूप कर्म जो समभाव से किया जाता है, वह तो जीवन्मुक्तों के लिये स्वाभाविक ही है और वही जीवन्मुक्तता है। 'यह कर्म मैं छोड़ता हूँ, और 'इस कर्म को मैं अंगीकार करता हूँ,–इस प्रकार जो त्याग और ग्रहण का निर्णय है, वह एकमात्र अज्ञानियों के मन का स्वरूप है; ज्ञानियों की तो उनमें सम स्थिति रहती है। जिसकी इन्द्रियाँ कछुए के अंगों की भाँति इन्द्रियों के विषयों से उठकर अन्तःकरण में स्थिर हो जाती हैं, वही स्थितप्रज्ञ और जीवन्मुक्त है। कमलनयन! वास्तव में यह संसार आकाश से भी बढ़कर वैसे ही शून्यरूप है, जैसे स्वप्न में क्षणमात्र में चित्त में होने वाले तीनों लोकों का नाश और उत्पत्ति–यह तुम जानो। क्योंकि आत्मा, मन और उसका कार्य यह बाह्य और आभ्यन्तर सम्पूर्ण जगत् स्वप्न की तरह शून्य है (असत् ही है)। यह सब चिरकालिक मनोराज्य है, इसलिये अज्ञानी मनुष्यों को इसमें सत्य की प्रतीति होती है। किंतु वह सत्यत्व की प्रतीति तत्त्व–ज्ञान रूप आलोक से नष्ट हो जाती है। चित्तरूपी चितेरे के चित्र में अवस्थित त्रिभुवन आदि विचित्र मूर्तियाँ आधारभूत भीत के न रहने से बाहर आकार–रहित यानी मिथ्या ही हैं। अर्जुन ! वास्तव में न तो उन चित्त–कल्पित मूर्तियों का अस्तित्व है और न तुम्हारे शरीर का ही अस्तित्व है; इसलिये कौन किससे मारा जाता है ? अतः नाश्य–नाशक का मोह छोड़कर तुम निर्मल बनकर ब्रह्मरूप परमपद में स्थित हो जाओ। अर्जुन ! जैसे एकमात्र चित्त में रहने वाला मनोराज्यरूप चित्र आकार वाला प्रतीत होता हुआ भी वास्तव में शून्यस्वरूप होने से असत् ही है, वैसे ही यह जगत् भी शून्यरूप है–यह तुम जानो। अर्जुन ! मन ही क्षण को कल्प कर देता है और असत् को उत्पन्न कर देता है–यह जो मन के विषय में आश्चर्य है, वह तो बहुत ही थोड़ा है; उससे भी बढ़कर तो आश्चर्य यह है कि वह असत जगत को भी शीघ्र सद्रूप कर देता है। इसलिये यह जगद्रूप भ्रान्ति इस प्रकार के आश्चर्य पैदा करने वाले मन से ही उत्पन्न हुई है। क्षण भर के लिये ही अज्ञानवश चित्र–विचित्र स्वरूप प्रतीत हुआ जो यह मनोराज्य है, वही दृश्यमान इस प्रपंच–जाल के रूप में प्रतीत होता है। यद्यपि ज्ञानियों की दृष्टि में स्वतः नित्य मुक्त आत्मा में अध्यस्त और एकमात्र कल्पना से उत्पन्न होने के कारण प्रतीति

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shastri Prakashan Trust Collection

काल मात्र स्थायी यह तुच्छ जगत् क्षणिक ही है, तथापि इसी क्षणिक जगत् के विषय में इसके वास्तविक स्वरूप से अपरिचित अज्ञानी लोगों ने वज्र सार की तरह दृढ़ कल्पना कर रक्खी है अर्थात् इस असत् जगत् को सत्य मान रक्खा है। अहो ! अत्यन्त आश्चर्य है कि यह उज्ज्वल चित्र आधार के बिना ही उत्पन्न होकर सामने दिखायी दे रहा है। यह जगद्रूप चित्र भली-भाँति लोगों का अनरंजन करने वाला है और दृष्टि, मन आदि को भी लुभाने वाला है। यह नाना प्रकार के प्राणियों से युक्त है, अद्भुत है, आकाश के समान शून्य रूप है और नाना प्रकार के विलासों से वेष्टित भी है। इस प्रकार के इस जगत् रूप चित्र का शीघ्र ही अद्भुत चित्रों का निर्माण करने में समर्थ चित्त रूप चित्रकार ने आकाश में ही चित्रण किया है।

अर्जुन ! चेतन आकाशस्वरूप ब्रह्म से निर्मित सब कुछ ब्रह्म ही है। ब्रह्म में ब्रह्म के द्वारा ब्रह्म विलीन होता है। ब्रह्म में ही ब्रह्म के द्वारा ब्रह्म का उपभोग किया जाता है और ब्रह्म द्वारा ब्रह्म में ब्रह्म का ही विस्तार हुआ है। जैसे प्रतिबिम्ब अपने आधार दर्पण में प्रतीत होता है, वैसे ही यह जगत् भी अपने आधार ब्रह्म में ही प्रतीत होता है। अर्जुन ! जब ब्रह्म में प्रतिभासित छेदन-भेदन आदि सम्पूर्ण व्यवहार और उनका विषय जगत्-ये सब ब्रह्म से अभिन्न होकर एक मात्र चिन्मय आकाश स्वरूप ही हैं, तब किस कर्ता या करण से किस प्रकार से किस देश या किस काल में क्या छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। इसलिये बोध से तुम्हारी वासनाओं का अभाव सिद्ध ही है। जो वासना से रहित नहीं है, भले ही वह समस्त शास्त्रीय कर्मों के परायण हो और समस्त सांसारिक विषयों का ज्ञाता हो; फिर भी वह वैसे ही अत्यन्त बद्ध है, जैसे पिंजरे में स्थित सिंह। जिसकी चित्तरूपी भूमि में अणुमात्र भी वासनारूप बीज पड़ा रहता है, उसका संसाररूप जंगल पुनः बढ़ जाता है। जब सत्य स्वरूप परमात्मा का यथार्थ ज्ञान अभ्यास के द्वारा हृदय में दृढ़ हो जाता है, तब वासना पूर्णतया नष्ट हो जाती है और वह फिर उत्पन्न नहीं होती। वासनाओं के पूर्णतया नष्ट हो जाने पर विशुद्ध जीवात्मा सांसारिक सुख-दुःखादि वस्तुओं में वैसे ही लिप्त नहीं होता, जैसे पानी में कमल का पत्ता। अर्जुन ! असंख्य वासनाओं से रहित तुम मुझसे सुने हुए पवित्र उपदेश को भलीभाँति समझकर परमात्मा में चित्त को विलीन कर भय और मोह से रहित एवं शान्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshe Jnanam Kaivalyam Collection

निर्वाण ब्रह्म स्वरूप हुए स्थित रहो।

अर्जुन ने कहा-अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा-अर्जुन ! यदि परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से तुम्हारे हृदय में रागादि वृत्तियाँ अशेष रूप से शान्त हो चुकीं तो तुम जान लो कि तुम्हारा सवासनात्मक चित्त भी भीतर शान्त होकर निर्वासनता को प्राप्त हो गया। इस सत्त्वावस्था में सर्वस्वरूप जीवात्मा सम्पूर्ण वासनाओं और विषयों से मुक्त हो जाता है। उस जीवात्मा के यथार्थ स्वरूप को कोई भी उसी प्रकार नहीं देख सकते, जिस प्रकार भूमि से आकाश में उड़कर दूर-देश में गये हुए पक्षी को। पार्थ ! मन-इन्द्रियों के प्रकाशक, शुद्ध स्वरूप, संकल्प रहित, निर्विषय इस जीवात्मा को मन-इन्द्रियों से दूर समझो। जैसे अग्नि के पर्वत पर पहुँचकर हिमकण सर्वथा नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से अविद्या भी नष्ट हो जाती है। नाना प्रकार के आकार और विकारों वाली यह अविद्या तभी तक रहती है, जब तक जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप- विशुद्ध विज्ञानानन्दघन परमात्मा को भलीभाँति नहीं जान लेता। जो समग्र परमात्मा अपने आपसे परिपूर्ण है, समस्त दृश्य संसार से रहित है और वाणी से अतीत है, उस अनुपम परम वस्तु परमात्मा की किसके साथ उपमा दी जा सकती है अर्थात् किसी के साथ नहीं। इसलिये अर्जुन ! तुम अभीष्ट कामनाओं की निवृत्ति रूप युक्ति से विषयात्मक विष से उत्पन्न महामारी रूप अन्तः करण की वासना को निपुणता पूर्वक दूर कर संसार से तथा सम्पूर्ण भयों से रहित परमात्म स्वरूप ही हो जाओ।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! इस प्रकार उपदेश देकर त्रिलोकी के अधिपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के क्षण भर के लिये मौन धारण कर सामने स्थित हो जाने पर वहाँ (द्वापर युग में) पाण्डु पुत्र अर्जुन पुनः यह वचन कहेगा।

अर्जुन ने कहा-भगवन् ! आप सम्पूर्ण लोकों का भरण-पोषण करने वाले हैं। आपके वचन से मेरी यह बुद्धि शोक रहित और ज्ञान सम्पन्न हो गयी है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! इस प्रकार के वचन कहकर और उठकर गाण्डीव-धनुर्धारी वह पाण्डु पुत्र अर्जुन, जिसके सारथि श्रीकृष्ण होंगे,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

संदेह-रहित हुआ रण लीला करेगा। वह अर्जुन पृथ्वी को ऐसी रक्त की महानदियों से पूर्ण कर देगा, जिनमें आहत हुए बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, सारथि आदि बह जायँगे और आकाश को भी ऐसा बना देगा कि सूर्य बाणों के तथा धूलि के समूहों से आच्छादित हो जायगा।

चालीसवाँ सर्ग समाप्त

इकतालीसवाँ सर्ग

परमात्मा की नित्य सत्ता, जगत् की असत्ता एवं जीवन्मुक्त-अवस्था का निरूपण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है, जिसमें सम्पूर्ण जगत् स्थित रहता है, जो सम्पूर्ण जगत्स्वरूप है, जो सब ओर विद्यमान है और जो सर्वमय है, उसी को नित्य परमात्मा समझो। वह परमात्मा अश्रद्धालु के लिये दूर होता हुआ भी श्रद्धालु के लिये समीप ही है। वह सर्वव्यापी होने से सबमें स्थित है, एवं वास्तव में ज्ञान और ज्ञेय से रहित सच्चिदानन्द परमपद स्वरूप है। वही परमपद सबकी पराकाष्ठा है, वही सम्पूर्ण दृष्टियों में सर्वोत्तम दृष्टि है, वही सारी महिमाओं की सर्वोत्तम महिमा है तथा वही गुरुओं का भी गुरु है। वही सबका आत्मा है और वही विज्ञान है, वही शून्य स्वरूप है, वही परब्रह्म है, वही परम कल्याण है, वही शान्त और मंगलमय शिव है, वही परम विद्या है और वही परम स्थिति है। उस परमात्मा में यह जगत् अविचार से ही सत्य-सा प्रतीत होता है, किंतु वास्तव में विवेक पूर्वक विचार करने से असत् है। आदि और अन्त से रहित आकाश के समान व्यापक मैं ही परब्रह्म परमात्मा हूँ, मुझसे अतिरिक्त यह संसार कुछ भी नहीं है- यों निश्चय करने पर फिर ब्रह्म स्वरूप मुझमें परिमितता नहीं रह सकती। जो पुरुष इस प्रकार के निश्चय से युक्त रहता है, वह बाहर से लोक-शास्त्र की मर्यादा के अनुसार कार्य करने पर भी वास्तव में उत्पत्ति और विनाश से रहित है। जिसका मन सम से भी सम ब्रह्म में लीन होकर फिर न उदित होता है और न अस्त होता है एवं जिसकी बुद्धि में मन का अभाव है, वह महात्मा ब्रह्म रूप ही है। एक मात्र ब्रह्म भावना से अद्वितीय परमपद पर आरूढ़ हुआ वह महात्मा व्यवहार करता हुआ भी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता। व्यवहार करते हुए भी जिस पुरुष के हृदय में मानापमान से जनित सुख-दुःख आदि विकार तनिक भी नहीं होते वह पुरुष मुक्ति का अधिकारी है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्त्वोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तत्त्वोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

वह शान्त चेतन परमात्मा अपने-आप ही अपने में संकल्प करता है। उसका संकल्प ही संसार है और उसके संकल्प का अभाव ही परमपद है। इसलिये परमात्मा के संकल्प का अभाव होने से ही इस संसार का अभाव हो जाता है। अतः मुनि लोग परमात्मा के संकल्प को ही प्रमाता, प्रमाण एवं प्रमेय आदि रूप संसार-चक्र की परम्परा कहते हैं। जैसे सुवर्ण में कड़ा-कुण्डल आदि सुवर्ण से पृथक् नहीं हैं, वैसे ही परमात्मा का संकल्प यह संसार भी परमात्मा से पृथक् नहीं है। परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से ही भोग-वासना क्षीण हो जाती है और भोग-वासना का अभाव ही ज्ञानी का उत्तम लक्षण है। ज्ञान और वैराग्य के कारण तत्त्वज्ञ पुरुष को संसार के भोग स्वभाव से ही रुचिकर नहीं होते। यह संसार सर्वात्म स्वरूप परमात्मा ही है-इस प्रकार का जिसके हृदय में दृढ़ अनुभव है, वही जीवन्मुक्त कहा गया है। किंतु यह जीवात्मा जब तक अज्ञान से आवृत रहता है, तब तक दृश्य विषय भोगों में स्थित हुआ संसार का संकल्प करता रहता है। जब अन्तःकरण में उत्तम तत्त्व ज्ञान का उदय हो जाता है, तब संकल्प-विकल्प का यह क्रम बुझे हुए दीपक की भाँति शान्त हो जाता है। स्वयम्प्रकाश, चैतन्य रूप, सम्पूर्ण पदार्थों का आश्रय और विषयोन्मुखता से रहित शुद्ध चेतन का जो स्वरूप है, उसे ही तुम परमपद जानो। यह संसार संकल्पमय ही है; इसलिये संकल्प नष्ट हो जाने पर संसार भी नष्ट हो जाता है और फिर सच्चिदानन्द परमात्मा ही रह जाता है।

इकतालीसवाँ सर्ग समाप्त

बयालीसवाँ सर्ग

परब्रह्म परमात्मा के सत्ता-सामान्य स्वरूप का प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! इस प्रकार सबका आदि परमतत्त्व सच्चिदानन्दघन ही परमपद है। उस सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मका को यथार्थ ज्ञान से प्राप्त कर यह जीव अज्ञानियों की तरह मृत्यु को नहीं प्राप्त होता (अर्थात् वह जन्म-मरण से छूट जाता है)। उसे प्राप्त कर वह शोचनीय नहीं रह जाता। उसे पा लेने पर वह अज्ञानियों की तरह जीवन धारण नहीं करता (अर्थात् वह कुछ विलक्षण ही बन जाता है) और उसे प्राप्त कर वह सर्वव्यापी होने के कारण सीमाओं में नहीं बँधता। आकाश के समान अनन्त परमात्मा के सत्ता-सामान्य स्वरूप का यदि जीव थोड़ी देर और थोड़ा-सा भी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चिन्तन करता है तो वह मुक्तचित्त मुनि बन जाता है और उस अवस्था में संसार के समस्त कार्यों को करते हुए भी कभी संतप्त नहीं होता।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-महर्षे ! 'सत्ता-सामान्य' शब्द से आप किसे ग्रहण करते हैं-मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त का जहाँ लय हो गया है, उस (निर्विशेष) तत्त्व को या मन आदि विशेषताओं से युक्त (सविशेष) तत्त्व को ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! जो सर्वव्यापक, आदि और अन्त से रहित तथा सदा समभाव से स्थित है, वह ज्ञान से प्राप्तव्य तथा सम्पूर्ण वस्तुओं का तत्त्वभूत ब्रह्म ही यहाँ पर 'सत्ता-सामान्य' शब्द से कहा गया है। वह ब्रह्म आकाश में आकाशरूप से, शब्द में शब्दरूप से, स्पर्श में स्पर्शरूप से तथा त्वचा में त्वग्रूप से है। रस में रसरूप से, रसनेन्द्रिय में रसनेन्द्रियरूप से विद्यमान है। रूप में रूपस्वरूप से, नेत्र में नेत्ररूप से, घ्राणेन्द्रिय में घ्राणरूप से और गन्ध में गन्धरूप से है। शरीर में शरीर रूप से, पृथ्वी में पृथ्वीरूप से है। दूध में दूधरूप से, वायु में वायुरूप से, तेज में तेजरूप से, बुद्धि में बुद्धिरूप से, मन में मन रूप से और अहंकार में अहंकाररूप से विद्यमान है। वृक्ष में वृक्षरूप से, पट में पटरूप से, घट में घटरूप से और वट में वटरूप से विद्यमान है। स्थावर में स्थावररूप से, जंगम में जंगमरूप से, जड़ में जड़रूप से और चेतन में चेतन रूप से विद्यमान है। देवों में देवतारूप से, मनुष्यों में मनुष्यरूप से, तिर्यक-योनियों में तिर्यक्रूप से और कृमियोनियों में कृमिरूप से विद्यमान है। काल के क्रम में कालरूप से, ऋतुओं में ऋतुरूप से एवं त्रुटि, क्षण, निमेष आदि में भी वह सर्वव्यापी ब्रह्म ही उस-उस रूप से विद्यमान है। इस प्रकार सभी पदार्थों में तत्-तत्रूप से रहता हुआ वह परब्रह्म परमात्मा सत्ता-सामान्य स्वरूप से उसी तरह उनसे अभिन्न है, जैसे समुद्रगत कल्लोल, जलकण तथा लहरें जल सामान्य से अभिन्न हैं। सबमें समान भाव से सत्तारूप में व्यापक होने के कारण वह परमात्मा ही सत्ता-सामान्य कहा गया है। श्रीराम ! सत्य चिन्मय-स्वरूप इस परमात्मा द्वारा कल्पित होने के कारण इन पदार्थों की अनेक रूपता वैसे ही मिथ्या है, जिस प्रकार बालक द्वारा परछाईं में कल्पित प्रेत।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! मुनि वसिष्ठ के इतना कह चुकने पर दिन बीत गया, सूर्य अस्ताचल को चले गये, सभासद्गण भी सायंकालिक कृत्य स्नान, संध्योपासना आदि करने के लिये मुनि को नमस्कार करके उठ गये और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LF S) Jammu Collection

रात बीतने पर सूर्य देव की किरणों के साथ ही फिर दूसरे दिन सभा में प्रविष्ट हुए।

बयालीसवाँ सर्ग समाप्त

तेतालीसवाँ सर्ग

संसार के मिथ्यातत्व का दिग्दर्शन तथा मोह से जीव का पतन

श्रीरामजी ने पूछा–मुने ! जिस प्रकार हम लोगों के लिये स्वप्न के नगर, राजधानियाँ तथा राज्य मिथ्या हैं, उसी प्रकार यदि ब्रह्मा आदि के लिये भी शरीर–धारण एवं उत्पन्न हुआ यह सम्पूर्ण जगत् मिथ्या ही है तो हम लोगों को इसकी सत्यता में अत्यन्त दृढ़ विश्वास क्यों होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–श्रीराम ! प्रजापति ने इस सृष्टि के पूर्व जो सृष्टि रचना की थी, वह भी हमारे अनुभव में आने वाली वर्तमान सृष्टि के समान ही सत्य प्रतीत होती थी, तथापि वह ब्रह्माजी का संकल्प होने के कारण वास्तविक न थी। इस प्रकार यह सृष्टि भी वास्तविक नहीं है। सच्चिदानन्द परमात्मा के सर्वव्यापी होने से जीव भी सर्वव्यापी है और उस परमात्मा की सत्ता से ही यह संसार सत्य–सा भासित होता है। किंतु वास्तव में यह संसार अज्ञान से उत्पन्न होता है और तत्त्व ज्ञान से नष्ट हो जाता है। श्रीराम ! सोये हुए पुरुष को अपने तथा अन्य सभी पदार्थों के रूप में दीखने वाला स्वप्न जैसे मिथ्या है, वैसे ही यह दृश्य संसार भी मिथ्या है। जो स्वप्न का संसार पुरुष से उत्पन्न है, वह पुरुष का स्वरूप ही है– जैसे किसी बीज से उत्पन्न वृक्ष सहित फल बीज रूप ही है, यह बात भली प्रकार अनुभूत है। जो असत्य से उत्पन्न होता है, उसे असत्य ही समझो। अतः स्वप्न–पुरुष से उत्पन्न जो असत् पदार्थों की भावना है, वह दृढ़ सत्य रूप से प्रतीत होने पर भी असत्य ही है, इसलिये त्याग कर देने योग्य है। जैसे हम लोगों को स्वप्न में प्रतीत होने वाला सृष्टि आदि कार्य दृढ़ रूप (सत्य) दीखने पर भी क्षण स्थायी (मिथ्या) ही होता है, उसी प्रकार सामने वर्तमान यह प्रजापति के संकल्प से रचित सृष्टि भी मिथ्या ही है। जैसे द्रवत्व के कारण आवर्तरूप परिवर्तनों से जल स्फुरित होता है, उसी प्रकार चिन्मय ब्रह्म के संकल्प से यह सृष्टि स्फुरित हो रही है। जो देश और काल में, क्रियाओं से, द्रव्यों से, मणियों से तथा संकल्पों से प्रकट हैं, ऐसे असंख्य पदार्थ गन्धर्व–नगर के सदृश (मिथ्या) होने पर भी सत्य के समान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Moakerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

प्रतीत होते हैं। इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो सत्य न हो; क्योंकि सब कुछ ब्रह्म का संकल्प होने से ब्रह्म का स्वरूप ही है एवं ब्रह्म का स्वरूप होने से सत्य ही है। साथ ही ऐसी कोई वस्तु भी नहीं है, जो असत्य न हो; क्योंकि सब कल्पना मात्र होने से असत्य ही है। जैसे स्वप्न में निमग्न पुरुष स्वप्न काल में वस्तुओं की स्थिर स्थिति ही देखता है, उसी प्रकार इस सृष्टि में जिस अज्ञानी की बुद्धि निमग्न है, वह सब विषयों की स्थिर स्थिति ही देखता है, किंतु यह सृष्टि वास्तव में स्वप्नवत् कल्पना-मात्र है। संसार को अत्यन्त स्थिर समझने वाला यह जीव एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न में प्रवेश करने वाले की तरह मोह के कारण एक भ्रम से दूसरे भ्रम में पड़ जाता है।

चार प्रकार का मौन और उनमें से जीवन्मुक्त ज्ञानी के सुषुप्त मौन की श्रेष्ठता

इसके अनन्तर भिक्षु आख्यान का वर्णन करके श्रीवसिष्ठजी कहते हैं- श्रीराम ! मुनिवरों ने दो तरह के मुनि बतलाये हैं-एक काष्ठतपस्वी और दूसरा जीवन्मुक्त। परमात्मा की भावना से रहित शुष्क क्रिया में बद्धनिश्चय और हठसे सम्पूर्ण इन्द्रियों को जीत रखने वाला मुनि काष्ठमौनी कहा गया है। इस विनाशकाल संसार के स्वरूप को यथार्थरूप से जानकर जो विशुद्धात्मा और परमात्मा में स्थित ज्ञानी महात्मा बाहर न्याययुक्त लौकिक व्यवहार करता हुआ भी भीतर विज्ञानानन्दघन परमात्मा में तृप्त रहता है, वह जीवन्मुक्त मुनि कहा गया है। मौन को जानने वाले मुनियों ने मौन के चार भेद बतलाये हैं- वाग्मौन, इन्द्रियमौन, काष्ठमौन और सुषुप्तमौन। वाणी का निरोध वाग्मौन, हठपूर्वक विषयों से इन्द्रियों का निग्रह इन्द्रियमौन और सम्पूर्ण चेष्टाओं का त्याग काष्ठमौन कहलाता है। एवं परमात्मा के स्वरूपानुभव में जो जीवन्मुक्त निरन्तर लगा रहता है, उसके मौन को सुषुप्तमौन कहते हैं। काष्ठमौन में वाग्मौन आदि तीनों मौनों का अन्तर्भाव है और सुषुप्तमौनावस्था में जो तुर्यावस्था है, वही जीवन्मुक्तों की स्थिति है। ऊपर जो तीन प्रकार का मौन कहा गया है, वह प्रस्फुरित हुए चित्त का चलन ही है। अतएव ये तीनों मौन उपादेय नहीं वरं त्याज्य हैं। किंतु इन तीनों से भिन्न चौथा जो सुषुप्तमौन है, वह जीवन्मुक्तों की स्थिति है। इसमें स्थित जीवात्मा का पुनर्जन्म नहीं होता। इसमें सम्पूर्ण इन्द्रिय-वृत्तियाँ अनुकूल में तो हर्षित होतीं और प्रतिकूल में घृणा नहीं करती। जो विभाग रहित, अभ्यास रहित एवं आदि से अन्त से रहित है तथा जो ध्यान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

करते हुए या ध्यान न करते हुए सभी अवस्थाओं में समभाव से स्थित है, वही सुषुप्तमौन कहा जाता है। अनेक प्रकार के विभ्रमयुक्त संसार के और परमात्मा के तत्व को यथार्थरूप से जानने पर जो संदेहरहित स्थिति होती है, वही सुषुप्त मौन है। जो सर्वशून्य, आलम्बन-रहित, शान्तिस्वरूप, विज्ञानमात्र तथा सत्-असत् से रहित स्थिति है, वह उत्तम सुषुप्त मौन कही गयी है। इस जगत् में विकार-रहित, सर्वात्मक तथा सत्ता-सामान्यस्वरूप परमात्मा मैं ही हूँ-इस तरह की ज्ञानावस्था को सौषुप्तमौन कहते हैं। ब्रह्मभूत श्रीरामभद्र ! जाग्रदवस्था में सब ओर भलीभाँति व्यवहार करता हुआ अथवा सम्पूर्ण व्यवहारों को छोड़कर समाधि में स्थित हुआ जीवन्मुक्त देहयुक्त होने पर भी सम्पूर्ण निर्मल शान्तिवृत्ति से युक्त तुरीयावस्था में ही स्थित एवं विदेहस्वरूप ही है।

तेतालीसवाँ सर्ग समाप्त

चौवालीसवाँ सर्ग

सांख्ययोग और अष्टांगयोग के द्वारा परमपद की प्राप्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! जड़ आकाश से भी अत्यन्त स्वच्छ चेतनस्वरूप परमात्माकाश है और उस परमात्माकाशभाव की प्राप्ति ही परम श्रेय (मोक्ष) है। वह कैसे प्राप्त की जाती है, यह मैं बतलाता हूँ; सुनो। परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से और नित्य एकरस समाधि से जो सांख्ययोग के द्वारा ज्ञानी हुए हैं, वे सांख्ययोगी कहे गये हैं। जो प्राणादि वायुओं के संयमपूर्वक अष्टांगयोग के द्वारा अनामय, आदि-अन्म से रहित परमपद को प्राप्त हो गये हैं, वे योग-योगी कहे गये हैं। वह स्वाभाविक परम शान्त पद सभी योगियों के लिये उपादेय है। कुछ लोग उस पद को सांख्ययोग द्वारा प्राप्त हो चुके हैं और कुछ लोग इसी देह से अष्टांग योग के द्वारा प्राप्त हो चुके हैं। जो सांख्य और योग को एक समझता है, वही ठीक समझता है। क्योंकि जो परमपद सांख्ययोगियों द्वारा प्राप्त किया जाता है; वही अष्टांगयोगियों द्वारा भी प्राप्त किया जाता है। जहाँ प्राण, मन की वृत्ति तथा वासनारूपी जाल का अत्यन्त अभाव है, उसी को परमपद समझो। वासना को ही चित्त कहते हैं। वही संसार का कारण है। वह चित्त सांख्य या योग दोनों में से किसी एक साधन के द्वारा विलीन होकर संसार की निवृत्ति का कारण हो जाता है। यह संसार मन के संकल्प से उत्पन्न हुआ है। उससे उत्पन्न ममता, अहंता, संसृति, उपदेश्य-उपदेशादि, बन्ध और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.A.S.) Jammu Collection

मोक्ष की सत्ता ही कहाँ है अर्थात् सब संकल्पमात्र हैं। एक विज्ञानानन्दघन परमार्थ-तत्व का दृढ़ अभ्यास, प्राणों का विलीन होना तथा मनोनाश- यही 'मोक्ष' शब्द के अर्थ का संग्रह है यानी ये ही मोक्ष के साधन हैं।

श्रीराम ! इन तीनों उपायों में मनोनाश को ही मुख्य साध्य जानो। मनोविनाश जितना ही शीघ्र होगा उतना ही शीघ्र कल्याण होगा। परमात्मा के यथार्थज्ञान से सभी पदार्थों का अभाव हो जाता है, जिससे वासना का विनाश होने पर प्राण और चित्त का वियोग हो जाता है। फिर भलीभाँति शान्त हुआ मन देहरूपता को नहीं प्राप्त होता। मन के विनाश से ही जीवात्मा को परमपद की प्राप्ति होती है, अतः मुनिगण वासना को ही मन जानते हैं। चित्त का स्वरूप केवल वासना ही है। उस चित्त का अभाव होने पर परमपद प्राप्त हो जाता है। रामभद्र ! रज्जु में सर्पभ्रम के सदृश मिथ्यारूप इस संसार का स्वंय ही विवेकज्ञान से अच्छी तरह विनाश हो जाता है। एक विज्ञानानन्दघन परमार्थ-तत्व का दृढ़ अभ्यास, प्राणनिरोध और मनोविनाश-ये जो तीनों उपाय हैं, इनमें से किसी एक की सिद्धि हो जाने पर ही दूसरे भी परस्पर सिद्ध हो जाते हैं। ताड़ के पत्तों से निर्मित पंखे को चलाना जब बंद कर दिया जाता है, तब पवन जैसे अपने-आप शान्त हो जाता है, वैसे ही जब प्राणरूप वायु का स्पन्दन शान्त हो जाता है, तब मन भी अपने-आप शान्त हो जाता है। जैसे वायु का चलना रुक जाने पर गन्ध का प्रसार भी रुक जाता है, वैसे ही मन का चलना रुक जाने पर प्राण-वायुओं का चलना भी रुक जाता है। सभी प्राणियों के प्राण और चित्त दोनों उसी प्रकार एक दूसरे से निरन्तर मिले-जुले रहते हैं, जिस प्रकार पुष्प और गन्ध एवं तिल और तेल एक दूसरे से निरन्तर मिले-जुले रहते हैं। आधार और आधेय के समान अर्थात् अग्नि और उष्णता के समान दोनों में से किसी एक का विनाश हो जाने पर दोनों विनष्ट हो जाते हैं और अपने विनाश के द्वारा वे दोनों जीवात्मा के लिये एक महान् मोक्षनामक कार्य सम्पन्न कर देते हैं। एक ब्रह्मतत्व के दृढ़ अभ्यास से द्वैत-वासना से रहित होकर मन शान्त हो जाता है और इससे प्राण भी शान्त हो जाता है; क्योंकि प्राण का स्वभाव मन के साथ विलीन हो जाना ही है। मनुष्य को एक सुदृढ़ परमात्मतत्व में तबतक तदाकारवृत्ति बनाये रखनी चाहिये, जब तक उस वृत्ति का ही अभ्यास के द्वारा अभाव न हो जाय। क्योंकि निग्रहवृत्ति से युक्त पुरुषों का चित्त स्वयं ही प्राणों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I F S) Jammu Collection

के साथ विलीन हो जाता है और परमतत्व अवशिष्ट रह जाता है। चित्त जिस किसी वस्तु में तन्मय हो जाता है, वह शीघ्र तद्रूप ही बन जाता है; अतः दीर्घकाल तक परमात्मतत्व के अभ्यास से वह समस्त विशेषों से मुक्त होकर निर्विशेष ब्रह्मरूप ही हो जाता है। श्रीराम ! यदि परमपद में चित्त मुहूर्तमात्र भी विश्राम को प्राप्त हो जाय तो उसे तुम ब्रह्मरूप में ही परिणत हुआ समझो। जिसमें अविद्या का अभाव हो चुका है, ऐसा विशुद्ध चित्त 'सत्व' शब्द से कहा जाता है। जिसमें संसार की बीजरूपा वासना दग्ध हो गयी है, वह चित्त फिर कभी ब्रह्मरूपता से अलग नहीं होता; क्योंकि वह ब्रह्म में तद्रूप हो गया है। जिसकी अविद्या निवृत्त हो चुकी है, जो सत्वभाव में स्थित है, जो वासना रहित हो चुका है, ऐसा कोई विरला मनुष्य आकाश के समान निर्गुण-निराकार विज्ञानानन्दघन परमतत्व को देखता है और तत्काल मुक्त हो जाता है।

चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त

पैतालीसवाँ सर्ग

वेताल और राजा का संवाद

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! जिस अवस्था में जीव ब्रह्म हो जाता है और चित्त का विनाश हो जाता है तथा विवेकपूर्वक विचार से अविद्या अन्त-अभाव हो जाता है, वही जीवात्मा का मोक्ष कहा जाता है। मृगतृष्णा-जल की तरह मिथ्या मन तथा अहंता आदि प्रपंच क्षणभर के लिये ही प्रतीत होते हैं और पूर्वोक्त विवेकपूर्वक विचार से विलीन हो जाते हैं। भद्र ! इस संसाररूपी स्वप्न विभ्रम के सम्बन्ध में वेताल द्वारा किये गये इन शुभ प्रश्नों को तुम सुनो, जो मुझे प्रसंगवश स्मरण हो आये हैं। विन्ध्याचल के महान् वन में एक विशालकाय वेताल रहता था। किसी समय वह गर्व में भरकर प्राणियों को मार डालने की इच्छा से किसी नगर में गया। पहले वह वेताल किसी सज्जन नामक राजा के देश में रहता था। उस राजा द्वारा किये गये अनेक वध के योग्य मनुष्यों की बलि के उपहार से सदा तृप्त होकर वह सुख से रहता था। सामने आये हुए निरपराधी मनुष्य को वह भूख से पीड़ित होने पर भी अकारण नहीं मारता था; क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष न्याय के पक्षपाती होते हैं। किसी समय न्यायोचित भक्ष्य न मिलने के कारण अरण्यवासी वह वेताल क्षुधा से प्रेरित होकर न्यायप्राप्त मनुष्य का भक्षण करने के लिये नगर के भीतर चला गया।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उस नगर में प्रजा-रक्षा के लिये रात्रि में विचरण करता हुआ राजा उसे मिला। उस राजा से यह उग्र निशाचर भयंकर शब्दों में कहने लगा। राजन् ! इस समय मुझ भयंकर वेताल के द्वारा तुम पकड़ लिये गये हो। कहाँ जा रहे हो ? अब तुम मर चुके। आज तुम मेरे भोजन बन जाओ।

राजा ने कहा-निशाचर ! यदि तुम यहाँ बलपूर्वक अन्याय मार्ग से मुझे खा जाओगे तो निश्चय ही तुम्हारे मस्तक के हजारों टुकड़े हो जायँगे।

वेताल ने कहा-राजन् ! मैं तुम्हें अन्यायपूर्वक नहीं खाऊँगा; परंतु तुम्हें मैं यह न्याय बतलाता हूँ कि तुम राजा हो, इसलिये तुम्हें अर्थियों के सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करने चाहिये। मेरी इस याचना को, जो पूर्ण करने योग्य है, तुम पूर्ण करो। मैं यहाँ तुमसे जो प्रश्न कर रहा हूँ, इनका भली-भाँति उत्तर दो। राजन् ! किस सूर्य की किरणों के ये ब्रह्माण्डरूपी छोटे अणु हैं और किस पवन में महागगनरूपी त्रसरेणु स्फुरित होते हैं ? एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न में जाता हुआ जीवात्मा पहले के सैकड़ों या हजारों स्पप्नों के अस्तित्व को छोड़ता हुआ भी किस प्रकाशक स्वच्छ वास्तविक स्वरूप का परित्याग नहीं करता ? जिस प्रकार केले का खंभा भीतर के भी और उसके भी भीतर बार-बार देखने से केवल छिलकामात्र ही रहता है, उसी प्रकार और उसके भी भीतर ऐसा कौन अणु है, जो प्रकाशक स्वच्छ आत्मस्वरूप है। ब्रह्माण्ड, आकाश, भूतों के आधारभूत भुवन, सूर्यमण्डल तथा मेरु-ये सब जो बड़े-बड़े महान् पदार्थ प्रसिद्ध हैं-ये अणुत्व धर्म न छोड़ने वाले ऐसे किस अणु के परमाणु हैं? किस अवयव-रहित परमाणुरूप महागिरि की शिला के भीतर ये भूत, भविष्य वर्तमान-तीनों जगत् हैं ? दुष्ट राजन् ! यदि तुम इन प्रश्नों का उत्तर मुझे न दे सकोगे तो तुम्हें खाकर फिर तुम्हारे नगर के प्राणियों को बलपूर्वक पकड़कर उन्हें यमराज की तरह निगल जाऊँगा।

पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

छियालीसवाँ सर्ग

वेतालकृत छः प्रश्नों का राजा द्वारा समाधान

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं-रामभद्र ! जब ऐसा कहकर वेताल चुप हो गया, तब वह राजा हँसकर यह कहने लगा।

राजा ने कहा-वेताल ! यह चराचर जगत्रूपी फल उत्तरोत्तर दशगुण पंचभूतों की परत से घिरा हुआ है-अर्थात् इस जगत् के सब ओर पृथ्वी का घेरा है। उसके बाद पृथ्वी से दस गुना जल, जल से दस गुना तेज, तेज से दस गुना वायु और वायु से दस गुना आकाश है। ऐसे हजारों फल जहाँ विद्यमान हैं, ऐसी बहुत ऊँची एक शाखा है। उस प्रकार की बड़ी-बड़ी हजारों शाखाएँ जहाँ विद्यमान हैं, ऐसा बड़े आकारवाला एक महान् वृक्ष है। इसी प्रकार के हजारों वृक्ष, जिसमें हैं ऐसा एक वन है। उसी प्रकार के हजारों वन जहाँ पर हैं, ऐसा उन्नत शिखरों से युक्त चारों ओर से परिपूर्ण आकारवाला एक विशाल पर्वत है। जहाँ पर वैसे हजारों पर्वत हैं, ऐसा अत्यन्त विस्तीर्ण विशाल खोहों वाला एक देश है। वैसे हजारों देश जहाँ पर विद्यमान हैं, ऐसा बड़े-बड़े हद और नदियों से युक्त एक बहुत बड़ा द्वीप है। वैसे अनन्त द्वीप जिसमें हैं, ऐसी चित्र-विचित्र रचनाओं से युक्त एक पृथ्वी है। उस प्रकार के हजारों पृथ्वीमण्डल जिसमें विद्यमान हैं, ऐसा एक अत्यन्त विस्तृत महान् भुवन है। उस तरह के असंख्य महान् भुवन जिसमें विद्यमान हैं, ऐसा विस्तृत आकाश के सदृश एक महान् प्रचण्ड ब्रह्माण्ड है। इस-इस तरह के असंख्य ब्रह्माण्ड जिसमें विद्यमान हैं ऐसा एक चंचलतारहित असीम जलनिधि है। उस तरह के लाखों सागर जिसमें कोमल तरंगरूप हैं, ऐसा एक अपने स्वरूप में विलास करने वाला निर्मल महार्णव है। उस प्रकार के हजारों महार्णव जिसके उदर के जलरूप हैं, ऐसा एक कोई बड़ा भारी परिपूर्णकृति पुरुष है। ऐसे-ऐसे लाखों पुरुषों की माला जिसके वक्षःस्थल में स्थित है, ऐसा एक परम पुरुष है, जो सब सत्ताओं का प्रधान है। इस प्रकार के असंख्य महापुरुष जिसके मण्डल में स्फुरित हो रहे हैं, ऐसा एक महान् आदित्य है। ये सब कल्पनाएँ ही इस आदित्यरूप ब्रह्म की रश्मियाँ हैं। ब्रह्माण्ड ही इस आदित्य (ब्रह्म) की दीप्तियों के त्रसरेणु हैं। मैंने तुमसे जिस सूर्य का कथन किया था, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही वह सूर्य है; इसी के प्रभाव से सारा जगत् प्रकाशित होता है। वेताल ! पूर्वोक्त असंख्य पदार्थ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.E.S) Jammu Collection

जिससे प्रकाशित होते हैं, ऐसा विज्ञान स्वरूप परम सूर्य की किरणों में स्फुरित होने वाले त्रसरेणु हैं। इस प्रकार यह तुम्हारे प्रथम प्रश्न का उत्तर दिया गया।

वेताल ! कालकी सत्ता, आकाश की सत्ता, जीवात्मा की सत्ता तथा शुद्ध चेतन आत्मा की सत्ता-इत्यादि सब सूक्ष्म होने से निर्दोष रज हैं। वे परमात्मारूपी महावायु में कल्पित अनेक विकारों से चंचल होकर स्फुरित होते हैं। 'जगत्' नामक महास्वप्न में एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न में जाता हुआ जीवात्मा परम शान्ति को बढ़ाने वाले अपने महान् शुद्ध आत्मस्वरूप को नहीं छोड़ता। जैसे केले का खंभा ज्यों-ज्यों छीला जाता है त्यों-त्यों उसके भीतर-भीतर केवल पत्ता ही मिलता जाता है, वैसे ही परिणामशील यह विश्व ज्यों-ज्यों भीतर-भीतर देखा जाता है त्यों-त्यों उसमें ब्रह्म ही मिलता जाता है। वह आकाश के तुल्य निराकार, अनिर्वचनीय परमात्मा सत्, ब्रह्म, आत्मा आदि शब्दों से कहा जाता है। सूक्ष्म मन और इन्द्रियों के द्वारा अप्राप्य होने के कारण परमात्मा ही मेरू आदि पर्वतों का मूल है। परमाणुस्वरूप होते हुए भी इस परम पुरुष अनन्त परमात्मा में ब्रह्माण्ड, आकाश, भुवन, सूर्यमण्डल और मेरु-ये सब पदार्थ परमाणु की तरह प्रतीत होते हैं। यह परमात्मा चक्षु आदि इन्द्रियों से ग्राह्य न होने से परमाणु कहा गया है और सब ओर परिपूर्ण होने से महापर्वत कहा गया है। वास्तव में यह परम पुरुष परमात्मा अवयवरहित है, किंतु दृश्य के सम्बन्ध से अवयव युक्त दिखायी पड़ता है। अज्ञानी वेताल ! ये सब जगत् उसक विज्ञानस्वरूप परमात्मा के संकल्प से कल्पित हैं। अतः तुम उस अनन्त, शान्त स्वभाव अपार परमपद को अनुभव करो और शान्त हो जाओ।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! राजा के मुख से इस प्रकार प्रश्नों का समाधान सुनकर शुद्धान्तःकरण वेताल विचारयुक्त बुद्धि से परम शान्ति को प्राप्त हो गया। निर्दोष आत्मा को तत्व से समझकर और भयंकर क्षुधा को भूलकर वह शान्तमन वेताल परमात्मा के ध्यान में अचल स्थिर हो गया

छियालीसवाँ सर्ग समाप्त

सैतालीसवाँ सर्ग

भगीरथ के गुण, उनका विवेकपूर्वक वैराग्य

श्री वसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! देहयात्रार्थ प्रारब्धवश प्राप्त हुए अर्थ से संतुष्ट रहने वाले प्रयत्नशील पुरुष के दुस्साध्य अर्थ भी भगीरथ राजा की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

तरह सिद्ध हो जाते हैं। जिसका पूर्णरूप से मन शान्त हो गया है, जिसकी वृत्तियाँ पर्याप्त रूप से तृप्त हो गयी हैं, जिसकी आनन्दघनस्वरूप सम ब्रह्म में निरन्तर निष्ठा है, उस महापुरुष के दुर्लभतर अभीष्ट कार्य भी उसी प्रकार सिद्ध हो जाते हैं, जिस प्रकार भगीरथ का सगर पुत्रों के उद्धार के लिये संजीवन गंगावतरण रूप अत्यन्त दुर्लभ कार्य सिद्ध हो गया था।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-प्रभो ! राजा भगीरथ के चित्त-कौशल से गंगावतरण रूप दुस्साध्य कार्य किस रीति से सिद्ध हुआ था, वह मुझसे कहिये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! समुद्रों से युक्त पृथ्वी का एक अत्यन्त धार्मिक भगीरथ नाम का राजा हो चुका है। वह राजमण्डल में सबसे श्रेष्ठ था। चन्द्रमा की तरह प्रसन्न मुख एवं चिन्तामणि के सदृश अभीष्ट अर्थों को देने वाले इस राजा से याचकगण अपने संकल्प के अनुसार ही अभीष्ट अर्थ प्राप्त करते थे। वह श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा के लिये निरन्तर धन देता था। न्याय से प्राप्त तृण भी ले लेता था वह याचकों की अभीष्ट-सिद्धि के लिये चिन्तामणि के सदृश था। मृदु और शीतल स्पर्श वाला वह ब्रह्म तत्वज्ञानियों की सनिधि में उनके चित्त को आल्हादित करता हुआ उसी प्रकार द्रवीभूत हो जाता था, जिस प्रकार चन्द्रमा की सनिधि में चन्द्रकान्तमणि। उसने अगस्त्य मुनि द्वारा शोषित सागर को गंगा के प्रवाह से उसी तरह पूरा कर दिया, जिस तरह याचकों के समूह को धन से पूरा किया था। पातालवासी अपने पूर्वजों को उस लोकबन्धु ने गंगारूपी सीढ़ी लगाकर ब्रह्मलोक में पहुचाया। गंगाजी को यहाँ लाने के उद्देश्य से अपनी तपस्या से ब्रह्मा, शंकर और जह्नु की आराधना करते हुए उस दृढ़ निश्चय से युक्त भगीरथ ने बार-बार क्लेश सहन किया। श्रीराम ! इस लोकयात्रा का खूब विचार करते हुए हुए उस राजा को युवावस्था में ही तीव्र वैराग्य की विलक्षणता से विवेकयुक्त विचार उत्पन्न हुआ। वह राजा एकान्त में असमंजस में पड़कर व्याकुल हो इस संसार यात्रा का प्रतिदिन यों विचार करने लगा-'इस संसार में, जिसके प्राप्त हो जाने से दूसरा कोई प्राप्य पदार्थ अवशिष्ट नहीं रहता, मैं उसी कर्म का सुकृत समझता हूँ। शेष कर्म तो विषूचिका (हैजे की बीमारी) हैं। पुनः पुनः पर्युषित कर्म करता हुआ मूढ़ बुद्धि प्राणी लज्जित नहीं होता। कोई मूर्ख प्राणी तो अवश्य ही बालक की तरह बार-बार एक ही कर्म करता रहता है।' इस तरह चिन्ता करने के अनन्तर संसार से अत्यन्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

भयभीत उद्विग्न-मन राजा भगीरथ ने एक दिन अपने गुरु त्रितल से पूछा।

भगीरथ ने कहा-विभो ! बहुत काल से इन सारहीन संसारिक वृत्तिरूप बड़े-बड़े जंगलों में भटकते हुए हम सब अत्यन्त खिन्न हो गये हैं। भगवन् ! संसार में फँसाने वाले जरा-मरण-मोहादिरूप सब दुःखों का अन्त कैसे होता है ?

त्रितल बोले-निष्पाप राजन् ! चिर-काल से अभ्यस्त अन्तःकरण की समता से उत्पन्न, निर्विशेष, अखण्ड और व्यापक ज्ञेय परमात्मा के ज्ञान से सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, सारी ग्रन्थियाँ सब ओर से टूट जाती हैं, सारे संशय तथा कर्म शान्त हो जाते हैं। राजन् ! तत्वज्ञानियों ने शुद्ध ज्ञानस्वरूप परमात्मा को ही ज्ञेय बतलाया है और वह परमात्मा सर्वव्यापी तथा नित्य है। वह उत्पत्ति-विनाश से रहित है।

भगीरथ ने कहा- मुनीश्वर ! यह तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि चिन्मय, निर्गुण, शान्त, निर्मल और अच्युत परमात्मा है तथा देह आदि अन्य कुछ भी नहीं है-कल्पनामात्र है। किंतु भगवन ! ज्ञेयस्वरूप परमात्मा के स्वरूप में मेरी अचल स्थिति (समाधि) नहीं हो रही है। इसमें क्या कारण है ? मैं किस उपाय से उसे प्राप्त करूँ ?

त्रितल बोले-हृदयाकाश में यह चित्त जब ज्ञान के द्वारा ज्ञेयस्वरूप परमात्मा में स्थिर हो जाता है, तब यह जीव सर्वात्मरूप परमात्मा को प्राप्त होकर पुनः संसार में उत्पन्न नहीं होता। पुत्र, स्त्री, घर और धन आदि में आसक्ति का अभाव, ममता का न होना तथा प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना, अनन्ययोग से-आत्मा ही ब्रह्म है, ब्रह्म के सिवा दूसरा कोई पदार्थ है ही नहीं, इस प्रकार की अभेद भावना से निरन्तर आत्मा में ब्रह्म भावना, एकान्त और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना, अध्यात्म ज्ञान में नित्य-स्थिति और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तत्वज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा को ही देखना-यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है, ऐसा कहा गया है। राजन् ! अहंभाव की शान्ति हो जाने पर राग-द्वेष का विनाश कर देने वाला तथा जन्म-मरणरूप संसार-व्याधि की औषध परमात्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

भगीरथ ने कहा-महाभाग ! पर्वत में दीर्घकाल से सुदृढ़ हुए वृक्ष की तरह अपने शरीर में दीर्घकाल से सुदृढ़ हुए अंहभाव का मैं कैसे त्याग करूँ ?

त्रितल बोले-राजन् ! पौरुष-प्रयत्न से विषय-भोग की भावना का त्याग कर फिर परमात्मा की सत्ता का अनुभव करने से अहंकार का विनाश हो जाता है। जब तक सम्पूर्ण पदार्थों का सर्वथा त्याग नहीं किया जाता, तब तक यह अहंकार बना रहता है। यदि विवेकपूर्वक विचार-बुद्धि से सबका परित्याग करके तुम निश्चल होकर स्थित हो जाओ तो अहंकार का अभाव होकर तुम परमपद-स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाओगे। यदि तुम्हारे सम्पूर्ण राजचिन्ह आदि विशेषणों का त्याग हो जाय, यदि तुम भय से रहित हो जाओ, यदि तुम समस्त धनादि की इच्छाओं का त्याग कर दो, यदि तुम शत्रुओं के लिये ही सम्पूर्ण ऐश्वर्य का त्याग करके और अकिंचन भाव को प्राप्त कर अहंभाव से निवृत्त हो जाओ, यदि तुम अपने देह के अभिमान से रहित होकर उन सब शत्रुओं में ही भिक्षाटन करने लगो तो तुम उच्च-से-उच्च स्थिति को प्राप्त होकर परमपद रूप परमात्मा को प्राप्त हो जाओगे।

सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त

अढ़तालीसवाँ सर्ग

राजा भगीरथ का सर्वस्वत्याग

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! तदनन्तर उन गुरुजी के मुख से इस प्रकार का उपदेश सुनकर राजा भगीरथ मन में कर्त्तव्य निश्चित कर उसके अनुष्ठान में तत्पर हो गया। कुछ ही दिन व्यतीत होने पर राजा भगीरथ ने एकमात्र सर्वत्याग की सिद्धि के लिये अग्निष्टोम यज्ञ का अनुष्ठान किया। उसमें उसने ब्राह्मणों तथा अपने बन्धुओं को गौ, पृथ्वी, घोड़े, सुवर्ण आदि समस्त धन दे दिया। तदनन्तर उसने सम्पूर्ण धन से खाली तथा चिन्तामग्न मन्त्री, नागरिक, प्रजा आदि से युक्त अपने राज्य को तृण के समान समझकर सीमा के पास के अपने शत्रु को दे दिया। जब महल, मण्डल एवं राज्य पर शत्रु ने अधिकार कर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Dharma (I.E.S) Jammu Collection

लिया, तब मननशील राजा भगीरथ एकमात्र कटिवस्त्र धारण किये अपने मण्डल से निकल गया। अपने मण्डल से निकलकर धैर्यवान् राजा भगीरथ ने अपनी राजधानी से बहुत दूर के गाँवों और वनों में निवास किया, जहाँ लोग उसके नाम-रूप को नहीं पहचान सकते थे। इस प्रकार व्यवहार करते हुए राजा थोड़े ही समय में समस्त एषणाओं से रहित हो उत्तम उपरति के कारण परमात्मा में परम विश्राम को प्राप्त हो गया। किसी समय राजा भगीरथ घूमता हुआ अपने नगर में ही चला आया और वहाँ उसने अनेक घरों, नागरिकों और मन्त्रियों से भिक्षा की याचना की। उन नागरिकों और मन्त्रियों ने राजा भगीरथ को पहचान लिया और उन विषादयुक्त लोगों ने पूजन-सामग्री से विधिवत् उसकी पूजा की।

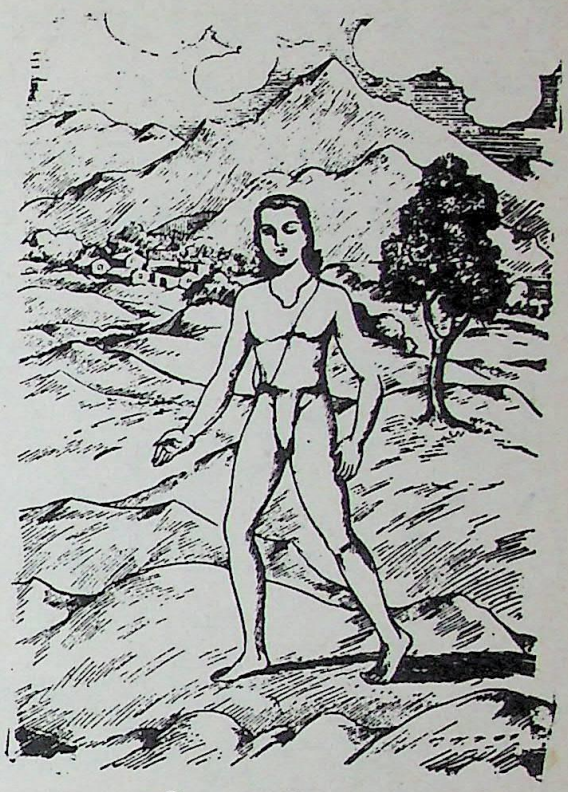

'प्रभो ! आप अपना राज्य ले लीजिये' इस प्रकार शत्रु द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी उस मननशील राजा ने, जिसने सर्वत्याग कर दिया था, भोजन के सिवा तृणमात्र भी ग्रहण नहीं किया। कुछ दिन वहाँ पर बिताकर वह अन्यत्र चला गया। लोगों ने उस समय 'क्या ये ही भगीरथ राजा हैं ? ये ही हम लोगों को छोड़कर चले गये ? अहो ! महान् कष्ट है।' इस प्रकार उसके विषय में शोक किया। तदनन्तर दूसरे स्थानों में विचरण करते हुए शान्तचित्त, स्थिरबुद्धि एवं परम सुखी वह नरेश किसी समय अपने आत्माराम त्रितल नामक गुरु के पास गया। प्रणाम आदि से अपने गुरु का स्वागत-सत्कार करके उनके साथ कुछ कालतक पर्वत, वन, गाँव और नगर में

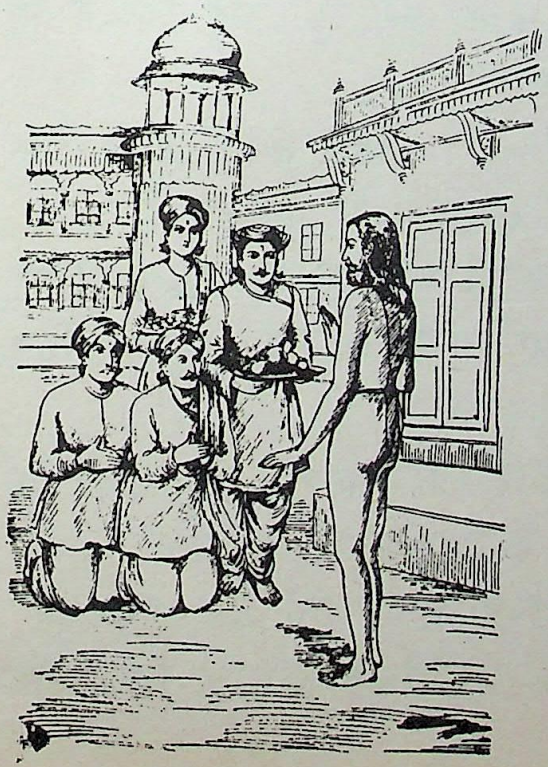

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (M.P.S) Jammu Collection

तथा अनेक सत्पुरुषों के बीच निवास किया। वे दोनों उत्तम मुनि अपने पूर्व कृत कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त सुख और दुःख दोनों का आदर करते थे। वे समस्त इच्छाओं से रहित थे और समके भी समरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म में एकरस होकर परम शान्ति को प्राप्त हो गये थे।

किसी एक अन्य देश में विद्यमान उत्तम नगर में पुत्ररहित राजा की मृत्यु हो गयी थी। शासक के अभाव के कारण जिनके देश की प्रजा-पालन-मर्यादा नष्ट हो चुकी थी, उस देश के उदास मन्त्री आदि प्रजावर्ग प्रजा-पालन योग्य उदार गुण-लक्ष्मी से युक्त किसी एक सुन्दर राजा की खोज में थे। वे मन्त्री आदि प्रजावर्ग भिक्षाचरण में रत, विरक्त, तपस्वी भगीरथ मुनि के पास पहुँचे। वे उनको प्रजापालन योग्य समस्त शुभ गुणों से युक्त जानकर आदर-सत्कार पूर्वक ले आये और उनको सेनासहित राज्य पर अभिषिक्त करके राजा बना दिया। वहाँ पर उस राज्य का परिपालन करते हुए राजा भगीरथ के पास पहले आदर पाये हुए कोसल देश के मन्त्री, पुरोहित आदि प्रजावर्ग भी आये और राजाधिराज भगीरथ से यों कहने लगे।

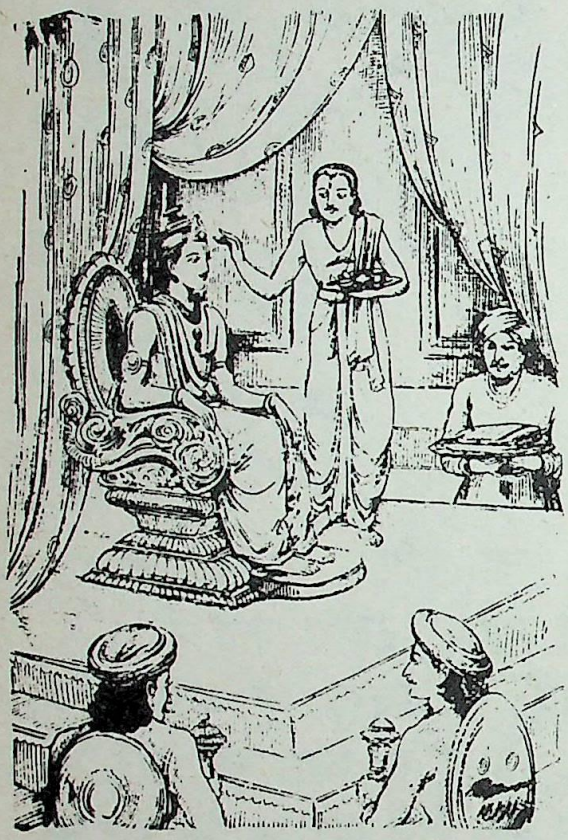

प्रजावर्ग ने कहा-राजन् ! अयोध्या का राज्य छोड़ते समय आपने सीमा के पास में स्थित अपने जिस शत्रुराजा को राज्यदान से पुरस्कृत किया था, उसको मृत्यु ने निगल लिया है। इस कारण अपने पूर्वराज्य की रक्षा करने की आप दया कीजिये। बिना इच्छा के प्राप्त हुए, राज्य का त्याग करना उचित नहीं।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! इस प्रकार प्रजावर्ग के प्रार्थना करने पर राजा भगीरथ ने उनकी बात मान ली और वे सात समुद्रों से युक्त पृथ्वी के स्वामी हो गये। राजा भगीरथ सर्वत्र समभाव रखने वाले, शान्तचित्त, मननशील, वीतराग एवं मत्सर-रहित थे। जिन्होंने अश्व का अन्वेषण करने के लिये भूमि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

खोदकर सागर के सदृश गर्त निर्माण किया था और जो कपिल की क्रोधाग्नि से पाताल तल में भस्मीभूत हो चुके थे, उन पितामहों को तारने में गंगाजल ही समर्थ है, जब यह बात राजा ने सुनी, तब भूतल पर गंगाजी को लाने के लिये

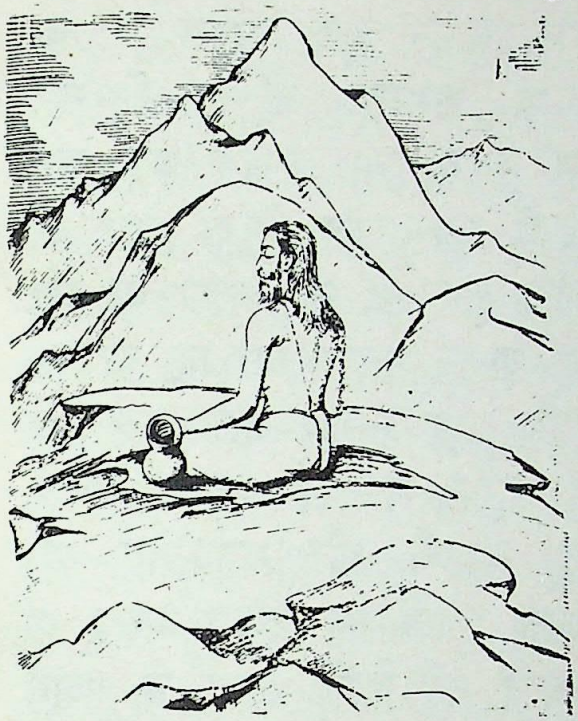

जितेन्द्रिय पृथ्वीपति भगीरथ मन्त्रियों के सिर पर समस्त राज्यभार छोड़कर तप के लिये निर्जन अरण्य में चले गये। उस अरण्य में हजार वर्ष तक ब्रह्माजी, शंकरजी और जह्नु मुनि की बार-बार आराधना करके वे इस पृथ्वीतल पर गंगाजी को ले आये। तभी से ये पुण्यतोया त्रिपथगा गंगाजी, जो निर्मल तरंग-मालाओं से रंजित जगत्पति शशिभूषण शिवाजी के मस्तक में सुशोभित तथा महात्माओं के महान् पुण्यों की राशि हैं, आकाशतल से पृथ्वी पर गिरती हैं। चंचल तरंगमालाओं से सुशोभित अपने फेनपुंजरूप हास से युक्त, प्रसन्न, पुण्यरूपा मंजरी से समन्वित तथा धर्म की संततिस्वरूप यह त्रिमार्गगामिनी गंगा उसी समय से इस पृथ्वी पर पृथ्वीपति भगीरथ की समुद्रपर्यन्त कीर्ति विस्तार करने के लिये एक तरह की वीथिका ही बन गयी है।

अढ़तालीसवाँ सर्ग समाप्त

उनन्चासवाँ सर्ग

शिखिध्वज और चूडाला के आख्यान का आरम्भ

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! अब तुम अविचल राजा शिखिध्वज की तरह शान्तिपूर्वक अपने स्वरूप में स्थित रहो।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! यह शिखिध्वज कौन था और उसने परमपद कैसे प्राप्त किया ? गुरुवर ! उसका चरित्र मुझसे कहिये, जिससे मैं उसे अच्छी प्रकार जान सकूँ।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! अतीतकालीन सातवें मवन्तर की चतुर्थ चतुर्युगी के द्वापर युग में कुरुवंश में इसी महासर्ग में शिखिध्वज नाम का राजा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

हुआ था। जम्बूद्वीप में प्रसिद्ध विन्ध्याचल के समीपवर्ती मालव देश की उज्जयिनी नगरी में वह राजा राज्य करता था। वह धैर्य, औदार्य आदि गुणों से युक्त था। उसमें क्षमा, शम, दम विद्यमान थे। वह वीरता से पूर्ण था। शुभ कर्मों के अनुष्ठान में लगा रहता था। मितभाषी था। इस प्रकार वह अनेक गुणों का

खजाना था। समस्त यज्ञों का निरन्तर अनुष्ठान करता था। उसने बड़े-बड़े धनुर्धारियों को जीत लिया था। वह लोकोपयोगी शुभकार्यों को करता था और पृथ्वी का पालन करता था। वह कोमल, स्निग्ध और मधुर स्वभाव वाला, दक्ष तथा प्रेम का समुद्र था। वह सुन्दर, शान्त, भाग्यवान्, प्रतापी और धर्मवत्सल था। विनय युक्त वाक्यों का प्रयोग करता था तथा याचकों को सभी प्रकार से पदार्थ देता था। वह उत्तम पदार्थों का भोक्ता, सत्संग से युक्त और समस्त वेद-शास्त्रों का उत्तम श्रोता था। वह शिखिध्वज सब बातों को जानते हुए भी जानकारी के अभिमान से रहित था, स्त्री-व्यसन आदि का तो उसने तृणवत् त्याग कर दिया था। बाल्यकाल में ही उसके पिता स्वर्ग चल दिये थे। उसके बाद अपने बाहुबल से उस जितेन्द्रिय शिखिध्वज ने सोलह वर्ष तक स्वयं ही दिग्विजय करके अखिल भूमण्डल को अपनी साम्राज्य-सम्पत्ति में परिणत कर दिया। तदनन्तर निःशंक होकर धर्म से प्रजा का पालन करते हुए वे बुद्धिमान राजा शिखिध्वज मन्त्रियों के साथ अपने यश से दिशाओं का उज्ज्वल करते हुए स्थिर थे।

जब वे युवा हो गये, तब उन्होंने अनेक वन और उपवनों में, लीला-सरोवरों में, लतागृहों में तथा विविध भूमियों में विचरण किया। उन्होंने वन और उपवन के गुण-वर्णन से युक्त श्रृंगार रस से परिपूर्ण कथाओं में रस लिया तथा सुवर्ण-कलश के सदृश स्तनवाली, हार से सुशोभित शरीर तथा चंचल केशों से युक्त कुमारियों का मन से आदर किया। चतुर मन्त्रियों ने राजा का अभिप्राय जान लिया। तदनन्तर राजा के विवाह के लिये विचार करके मन्त्रियों ने सौराष्ट्र

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

देश के राजा से युवती कन्या की याचना की। राजा शिखिध्वज ने नवीन यौवन से सम्पन्न तथा अपने अनुरूप उस उत्तम कन्या के साथ विधिपूर्वक विवाह किया। राजा शिखिध्वज की पत्नी संसार में चूडाला नाम से विख्यात थी। वह भी अपने अनुरूप पति प्राप्त कर प्रफुल्लित हो रही थी। राजा शिखिध्वज नील कमल के सदृश नेत्रवाली उस चूडाला को स्नेह से प्रसन्न रखते थे। एक दूसरे के प्रति अर्पित चित्त वाले उन दोनों की प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। हाव, भाव, विलास आदि श्रृंगारमयी चेष्टाविशेषों से परिपूर्ण अंगों के कारण वह चूडाला सुन्दर नवीन लता के समान शोभित हो रही थी। शिखिध्वज राजा को मन्त्रियों द्वारा सभी उपभोग-सामग्री समयानुसार समर्पित की जाती थी। उसकी प्रजा सुव्यवस्थित थी। परम सुखी वह राजा कमलिनी के साथ राजहंस के सदृश उस प्रियतमा के साथ रमण करता था। वे दोनों निरन्तर एक दूसरे से मिले हुए थे। एक दूसरे की चेष्टाएँ उन्हें प्रिय लगती थीं। एक दूसरे से शिक्षाग्रहण करने के कारण वे दोनों सम्पूर्ण कलाओं के ज्ञाता हो गये थे। परस्पर अत्यन्त मित्रता को प्राप्त हुए वे दोनों एक दूसरे के हृदय में बस जाने के कारण मानो एकरूप ही हो गये थे। जैसे ब्रह्मचारी नियत काल तक गुरुमुख से अध्ययन करके समस्त शास्त्रों का पण्डित हो जाता है, वैसे ही कुछ नियत काल तक अपने स्वामी के मुख से सुन-सुन कर समस्त शास्त्रों के तात्पर्य में और चित्रकला आदि में भी चातुर्य प्राप्त कर चूडाला समस्त विषयों की पण्डिता हो गयी थी तथा चूडाला के द्वाराइस शिखिध्वज ने भी नृत्य, वाद्य आदि जितने कलाकौशल हैं, उन सबका शिक्षण ग्रहण किया और वे कलाओं के पारंगत विद्वान् हो गये। उन दोनों की बुद्धि चातुर्य से युक्त सुन्दर थी। वे दोनों स्नेह से प्रसन्न और मधुर लगते थे। ज्ञान तत्व का कथन करने में भी वे समान थे। श्रेष्ठ पुरुषों का अनुकरण करते थे। सदाचार-परायण थे। प्रजाजनों के वृत्तान्त का भी ज्ञान रखते थे। वे समस्त कलाओं के पण्डित एवं श्रृंगारादि नवरसरूपी रसायनों से सुशोभित थे।

उनन्चासवाँ सर्ग समाप्त

पचासवाँ सर्ग

क्रम से उन दोनों की वैराग्य एवं अध्यात्म ज्ञान में निष्ठा

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! इसी प्रकार अनेक वर्षों तक दृढ़ प्रेम से सम्पन्न उस दम्पती ने प्रतिदिन यौवन की अमन्द लीलाओं द्वारा रमण किया।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (P.S.) Jammu Collection

यों एक के बाद एक करके अनेक वर्ष बीत गये और फूटे हुए घड़े से जल के क्षय होने की भाँति धीरे-धीरे तारुण्य का क्षय होते देख उन दोनों ने विचार किया-'समुद्र की तरंगों के समान चंचल, क्षणभंगुर शरीर से व्यवहार करने वाले जीव का पके हुए फल के पतन की तरह मरण अवश्यम्भावी है। अब इस देह में वृद्धावस्था आने की तैयारी कर रही है; क्योंकि आयु निरन्तर क्षीण होती जाती है। यह जीर्ण जीवन इन्द्रजाल के सदृश असत्य ही है। यह शरीर वर्षाकाल में जल के बुद्बुद की भाँति क्षणभर में ही विलीन हो जाने वाला है। विचार करने से जगत् का यह व्यवहार कदली-गर्भ के सदृश निस्सार ही सिद्ध होता है। इस संसार में ऐसी कौन वस्तु है, जो शुभ, सुस्थिर एवं अत्यन्त सुन्दर हो, अर्थात् कोई भी नहीं है।' उस दम्पती ने इस प्रकार निश्चय करके संसाररूपी व्याधि की असली औषध अध्यात्म शास्त्र का दीर्घकाल तक विवेकपूर्वक विचार किया। केवल आत्मज्ञान से ही संसार रूपी महामारी शान्त हो जाती है, यह निर्णय कर वे दोनों आत्मा का ज्ञान सम्पादन करने में तत्पर हो गये। अध्यात्म ज्ञान में ही उनका चित्त लग गया था। प्राण भी उसी में लगे थे। उसी में उनकी निष्ठा थी। अध्यात्म ज्ञान का ही उन्होंने आश्रय लिया था। वे उसी की अर्चना में लगे रहते थे। उनकी इच्छा भी अध्यात्म ज्ञान की ही रहती थी और उस समय इस संसार से वे दोनों विरक्त हो गये थे। उन्होंने अध्यात्मज्ञान में ही दृढ़ अभ्यास बढ़ा लिया था। वे एक दूसरे को अध्यात्मज्ञान का ही प्रबोध कराते थे। उनकी प्रीति उसी ज्ञान में थी एवं परस्पर उनका समस्त आरम्भ उसी में होता था।

तदनन्तर वह चूडाला अध्यात्मविषय को जानने वाले महात्माओं के मुख से संसार-दुःख समुद्र से पार करने में समर्थ आत्मज्ञानोपयोगी मनोहर पदक्रमों से संयुक्त शास्त्रार्थों का निरन्तर श्रवण करके बाह्य शरीर के व्यापारों से उपरत और उज्ज्वल उग्रबुद्धि से युक्त हो अपनी आत्मा के विषय में इस प्रकार अहर्निश विचार करने लगी।

'अब मैं स्वयं विवेचन करके अपने आपका पता लगाती हूँ कि मैं क्या हूँ तथा यह संसार रूप मोह किसको, कैसे, कहाँ से प्राप्त हुआ है। यह देह तो जड़ है; इसलिये देह मैं नहीं हूँ, यह अटल निश्चय है। हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रिय-समुदाय भी इस शरीर से अभिन्न अवयव रूप ही है। कभी अवयव

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और अवयवी में भेद नहीं होता, इसलिये वे भी जड़ ही हैं। ज्ञानेन्द्रिय समुदाय भी शरीरावयवरूप ही है, इसलिये वह भी जड़ ही दीख पड़ता है। संकल्पात्मक शक्ति रखने वाला जो मन है, उसे भी मैं जड़ ही मानती हूँ; क्योंकि ज्ञानेन्द्रियाँ मन से ही प्रेरित होती हैं। जैसे गोफन से पाषाण प्रेरित होता है, वैसे ही मन भी बुद्धि के निश्चयों से प्रेरित होता है; इस तरह निश्चयरूप बुद्धि भी जड़ ही है, यह अटल निश्चय है। अहंकार भी सारशून्य तथा मुर्दे के सदृश है, इसलिये जड़ ही है; क्योंकि बुद्धि अहंकार से प्रेरित होती है। अहंकार भी जड़ है, क्योंकि जीवात्मा से अध्यस्त है। यह चेतन जीव प्राणवायु रूप उपाधि से उपाहित हुआ हृदय में रहता है। वह परमात्मा का अंश होने के कारण परमात्मा की सत्ता से ही सत्तावान् है। चेतनस्वरूप आत्मा मिथ्या जड़ विषयों के साथ तादात्म्य एंव संसर्ग का अध्यास करके ही जड़-जैसा बन जाता है और अपने असली शुद्ध चिन्मय स्वरूप को भूल जाता है। चेतन जीवात्मा की विषयों के साथ एकाग्रता होने पर वह एक क्षण में अपने आप स्वरूप को भूलकर तत्वस्वरूप हो जाता है। इस प्रकार जब विषयों के सम्मुख होने से यह चेतन जीवात्मा जड़, शून्य, मिथ्या के समान हो जाता है, तब चिन्मय परमात्मा के द्वारा प्रबोधित किया जाता है।'

इस प्रकार विचार कर फिर उस चूडाला ने यह सोचा कि किस उपाय से यह जीवात्मा प्रबुद्ध हो। बहुत समय के बाद उसने आत्म तत्व को जान लिया और वह कहने लगी-'अहो ! बड़े आनन्द का विषय है कि दीर्घकाल के बाद मुझे उस निर्विकार जानने योग्य परमात्मा के स्वरूप का अनुभव हो गया, जिसे जान लेने पर पुरुष फिर उससे च्युत नहीं होता। वास्तव में एक महान् चेतन परमात्मा ही इस संसार में सत्य रूप से विराजमान है। उसको महासत्ता भी कहते हैं। यह निष्कलंक समरूप, विशुद्ध और अहंकार रहित है। उसका स्वरूप शुद्ध विज्ञान ही है। वह परम मंगलमय केवल सत्यस्वरूप है। वह अपने परमानन्द स्वरूप से कभी विचलित नहीं होता। एक बाद उसका साक्षात्कार हो जाने पर वह फिर सदा प्रत्यक्ष रहता है, उसका कभी अभाव नहीं होता। वह ब्रह्म, परमात्मा आदि नामों से कहा गया है। ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयरूप त्रिपुटी इस परमात्मा से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। वह चेतन परमात्मा ही मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि पदार्थों के रूप में प्रकट होकर क्रियाशील होता है। जैसे समुद्र के जल में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshe Jnanmukti Sanmukhi Collection

तरंग आदि वास्तव में उत्पन्न न हुए भी उत्पन्न हुए से प्रतीत होते हैं, वैसे ही महाचेतन में जगत् वास्तव में उत्पन्न न होते हुए भी उत्पन्न हुआ सा प्रतीत होता है। इस नित्य चिन्मय परमात्मा के जन्म, मरण, सदगति, असद्गति या नाश की कहीं सम्भावना ही नहीं है। यह परमात्मा अच्छेद्य, अदाह्य और परम विशुद्ध है। अहा ! मैं बहुत काल के बाद शान्त होकर सब ओर से परम निर्वाण पद को प्राप्त हुई हूँ। कुम्हार आदि के द्वारा बनायी गयी मृत्तिका की सेना जैसे मृत्तिका रूप ही है, वैसे ही सुर, असुर आदि से युक्त यह विश्व स्वभावतः परब्रह्मस्वरूप ही है तथा द्रष्टा एवं दृश्यरूप सत्ता भी एक चैतन्य-स्वरूप ही है। यह ऐक्य है, यह द्वैत है; यह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ इत्यादि भ्रमजनित मोह क्या चीज है और वह किस तरह, किसको, कहाँ से और कहाँ हुआ है ? अर्थात् किसी को कहीं नहीं। यह सब मिथ्या है। अतः मैं अपने अंदर अनन्त पारमार्थिक स्वरूप को अनायास प्राप्त कर अब शान्त रूप से स्थित हूँ। न तो इदं है, न अहं है और न दूसरा है एवं न भाव है और न अभाव ही है। सब कुछ शान्त, निरालम्ब केवल परब्रह्मस्वरूप परमात्मा ही है।' इस प्रकार परमात्मा के मनन में परायण वह चूडाला यथार्थ ज्ञान के द्वारा उस परमात्मा के वास्तविक स्वरूप के तत्व से जानकर राग, भय, मोह आदि अज्ञान-विकारों के शान्त होने से उसी प्रकार शान्त हो गयी, जैसे शरत्-काल में आकाश बादलों से रहित हो जाता है।

उनन्चासवाँ सर्ग समाप्त

पचासवाँ सर्ग

राजा शिखिध्वज का वार्तालाप करना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! चूडाला संसार के सम्बन्धों, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों, राग और इच्छाओं से रहित हो गयी थी। वह न किसी पदार्थ का ग्रहण करती थी और न किसी का त्याग करती थी। केवल न्याय से प्राप्त आचरण करती थी। संसार रूपी महासमुद्र को वह पार कर गयी थी। संदेह रूपी जाल से मुक्त हो गयी थी। वह परमात्मा के महान् लाभ से परिपूर्ण हो गयी थी। इस प्रकार सुन्दर वर्ण वाली शिखिध्वज की श्रेष्ठ धर्मपत्नी वह चूडाला थोड़े ही काल में जानने योग्य परमात्मा को यथार्थ जान गयी। अपने विवेक के दृढ़ अभ्यास-बल से परमात्मा का यथार्थ अनुभव हो जाने पर वह परम शोभा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पाने लगी। किसी समय उस सुन्दर अंगों वाली चूडाला को अपूर्व शोभा से

युक्त देख राजा शिखिध्वज ने हँसते हुए कहा-'प्रिये ! इस समय तुम वैसे ही अत्यन्त सुशोभित हो रही हो, जैसे तुमने अमृत का सार पी लिया हो या अलभ्य परमात्म पद की प्राप्ति कर ली हो अथवा आनन्द प्रवाह से तुम परिपूर्ण हो गयी हो। इस समय मैं तुम्हारे चित्त को भोग-लालसा से रहित, शान्त, विवेक से बलिष्ठ, समता को प्राप्त, गम्भीर और चंचलता रहित देख रहा हूँ। तुम्हारे मन के साथ किसी भी विभवानन्द की वस्तु से उपमा नहीं दी जा सकती। भद्रे ! क्या तुमने अमृत पी लिया है या किसी साम्राज्य की प्राप्ति कर ली है या मन्त्र के प्रयोग या योग के साधन से अमरता प्राप्त कर ली है ? नीलकमल के सदृश नेत्रोंवाली! क्या तुमने राज्य, चिन्तामणि और त्रैलोक्य से भी बढ़कर किसी अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति कर ली है ?'

चूडाला ने कहा-आर्य ! इस समस्त विनाशशील संसार का त्याग कर इससे भिन्न सत्-असत्-स्वरूप सर्वात्मक परमात्मा का मैंने आश्रय लिया है, इसीलिये मैं परम श्रीसम्पन्न होकर स्थित हूँ। एकमात्र आकाशसदृश विमल अद्वितीय केवल हृदयरूप चिन्मय ब्रह्म में अकेली ही मैं रमण करती हूँ, राजलीलाओं में मैं कभी रमण नहीं करती; इसलिये मैं परम श्रीसम्पन्न होकर स्थित हूँ। मूल्यवान् आसन, उद्यान और घरों में रहकर भी मैं परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहती हूँ तथा विषय-भोगों से दूर हूँ; इसीलिये मैं परम शोभायुक्त हुई स्थित हूँ। मैं सुख-सम्पत्ति नहीं चाहती, न अर्थ और अनर्थ को ही चाहती हूँ; दूसरी किसी प्रकार की स्थिति भी नहीं चाहती। जो कुछ न्याय से प्रारब्धानुसार प्राप्त होता है, उसी से संतुष्ट रहती हूँ। इसीसे मैं परम श्रीसम्पन्न होकर स्थित हूँ। राग और विद्वेश को विनष्ट कर देने वाली आत्मविषयक बुद्धि और शास्त्र दृष्टि रूपी सखियों के साथ मैं रमण करती हूँ; इसलिये मैं परम शोभासम्पन्न होकर स्थित हूँ।

पचासवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.P.S) Jammu Collection

इक्यावनवाँ सर्ग

शरीरों में जीवात्मा की स्थिति का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! परमात्मा के स्वरूप में स्थित उस चूडाला के इस प्रकार कहने पर उसके वचनों का रहस्य न जानने के कारण राजा शिखिध्वज हँसते हुए कहने लगे।

शिखिध्वज ने कहा–सुन्दरी राजपुत्रि ! तुम बालबुद्धि हो। तुम्हारा वचन युक्तिसंगत नहीं है। तुम जिस प्रकार राजलीलाओं में रमण करती आयी हो, उसी प्रकार रमण किया करो। भद्रे ! बतलाओ तो सही, जो वस्तु आकार-सामान्य का परित्याग करके कभी भी प्रत्यक्ष न होने वाली निराकारता को प्राप्त हो चुकी है, वह प्रत्यक्ष और अस्तित्व से शून्य वस्तु कैसे शोभित हो सकती है? धनादि समस्त भोग-वस्तुओं का परित्याग करके जो एक शून्य आकाश में ही रमण करता है, वह शोभित होता है–यह कहना कैसे संगत हो सकता है ? जो धीरबुद्धि पुरुष वस्त्र, भोजन, शय्या आदि सारे साधनों का परित्याग करके अकेला स्वरूप में ही स्थित रहता है, वह कैसे शोभित हो सकता है ? इसलिये सुन्दरी ! तुम बाला हो, मुग्धा हो और चपल हो। विलासिनि ! अनेक प्रकार के आलाप-विलासों से जिस तरह मैं क्रीड़ा करता हूँ, उसी तरह तुम भी क्रीड़ा करो।

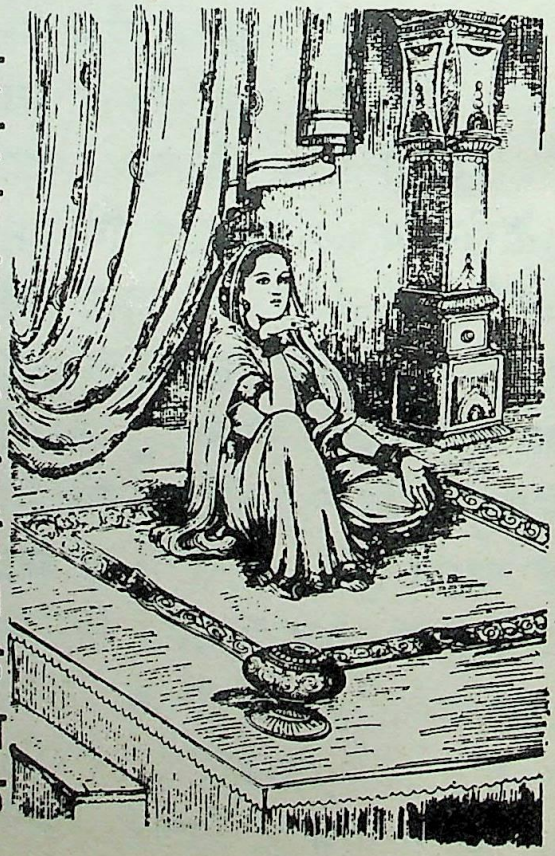

राजा शिखिध्वज ने इस प्रकार अपनी प्रिया चूडाला के प्रति कहकर अट्टहास करते हुए मध्यान्ह में स्नान करने के लिये उठकर चूडाला के महल से प्रस्थान किया। 'बड़े दुःख का विषय है कि अभी तक राजा अपने स्वरूप में स्थित नहीं हुए हैं। मेरे वचनों को भी वे न समझ सके–'इस प्रकार के विचार से खिन्न हुई वह चूडाला अपने कार्य में संलग्न हो गयी। रामभद्र ! तदनन्तर वहीं पर उस प्रकार के भिन्न-भिन्न आशय से युक्त उन दोनों का उस समय भी पहले की सांसारिक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

क्रीड़ाओं में उसी तरह बहुत काल चला गया। एकसमय की बात है, नित्यतृप्त और इच्छारहित चूडाला को लीलावश आकाश में गमनागमन करने की स्फुरणा हुई। तब वह राजपुत्री आकाश में गमनागमन की सिद्धि के लिये सम्पूर्ण भोगों की अवहेलना करके और निर्जन स्थान में आकर अकेली ही एकान्त में आसन लगाकर ऊर्ध्वगामी प्राण वायु का निरोध करने के लिये अभ्यास करने लगी।

श्रीरामजी ने कहा-प्रभो ! जो अनात्मज्ञ पुरुष हैं, वे अपनी सफलता के लिये अथवा जो आत्मज्ञ हैं, वे केवल लीला के लिये किस क्रम से इन सिद्धियों को सिद्ध करते हैं, वह मुझसे कहिये।

श्रीवसिष्ठजी बोले-प्रिय राघव ! इस जगत् में सभी जगह साध्य वस्तु तीन तरह की होती है-उपादेय (ग्रहण करने योग्य), हेय (त्याज्य) और उपेक्षा के योग्य। सद्बुद्धे जो वस्तु साक्षात् या परम्परा से सुख-दायक होती है, वह उपादेय होती है; जो सुख-विघातक होती है, वह हेय होती है एवं जो वस्तु इन दोनों के बीच की होती है, वह उपेक्ष्य होती है-ऐसा अनुभवी लोगों का कहना है। परमात्म-तत्व को जानने वाले श्रेष्ठबुद्धि विद्वान् की दृष्टि में जब यह सब परमात्मास्वरूप हो जाता है, तब इन तीनों पक्षों में से कोई भी पक्ष नहीं रहता। किसी समय ज्ञानी व्यवहार काल में लीला से ही इस समस्त जगत् को उपेक्षा-बुद्धि से केवल देखता है और समाधिकाल में नहीं देखता। ऐश्वर्यादि एक ही वस्तु ज्ञान की दृष्टि में उपेक्षा के योग्य मूढ़ की दृष्टि में उपादेय और उत्तम वैराग्यसम्पन्न पुरुष की दृष्टि में हेय हो जाती है। श्रीराम ! आकाशगमन आदि सिद्धियों का क्रम कैसा है, उसे तुम अब सुनो। देश, काल, क्रिया एवं द्रव्य की अपेक्षा रखने वाली सब तरह की सिद्धियाँ यहाँ जीव को मोहित करती हैं। मणि, औषधि, तप, मन्त्र और क्रिया से होने वाली सिद्धि के क्रम का निरूपण अनावश्यक है; क्योंकि यह अध्यात्म विषय में विघ्न ही है। कृतार्थ श्रीराम ! सिद्ध देश के नाम से प्रसिद्ध श्रीशैल अथवा मेरू पर्वत पर निवास करने वाले

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerjisharma (R.S.) Jammu Collection

पुरुष को सिद्धि होती है- इसका भी विस्तारपूर्वक वर्णन करना अध्यात्म विषय में हानिकर है। इसलिये शिखिध्वज की कथा से प्रसंग से प्राप्त सिद्धिरूपी फल से युक्त इस प्राणादि वायु की अभ्यास क्रिया का तुम श्रवण करो। साध्य अर्थ से भिन्न पदार्थों की वासनाओं का त्याग करके गुदा आदि द्वारों के संकोच से; सिद्धादि आसन, काया, मस्तक और गर्दन की समता, निश्चलता तथा नासिका के अग्रभाग में दृष्टि को स्थिर करना आदि योगशास्त्रोक्त क्रियाओं से; भोजन और आसन की पवित्रता से, भलीभाँति योगशास्त्र के परिशीलन से, उत्तम आचरण से, सज्जनों के संग से, सर्वत्याग से, सुखासन से बैठकर कुछ काल तक प्राणायाम के दृढ़ अभ्यास से, क्रोध-लोभ आदि के सर्वथा त्याग से तथा भोगों के त्याग से एवं रेचक, पूरक और कुम्भक का अच्छी तरह अभ्यास हो जाने पर प्राणों पर पूर्ण प्रभुत्व हो जाने से योगी के पाँचों प्राण उसी तरह उसके अधीन हो जाते हैं, जिस तरह राजा के सेवक राजा के वश में होते हैं।

राघव ! प्राणायाम के द्वारा देह में स्थित प्राण-अपान वायु के अपने अधीन हो जाने पर राज्य से लेकर मोक्षपर्यन्त सभी सम्पत्तियाँ सुखसाध्य हो जाती हैं। मण्डलाकार (गोल कुण्डलाकार) से युक्त, मर्म (नाभि) स्थान में समाश्रित, सौ नाड़ियों की आश्रय आन्त्रवेष्टि का (सुषुम्ना) नाम की नाड़ी है। श्रीराम ! देव, असुर, मनुष्य, मृग, नक्र, खग, कीट, पतंग आदि सब प्रकार के प्राणियों में वह नाड़ी स्थित है। गुदा से लेकर भौंह के बीच तक सब छिद्रों का स्पर्श करती हुई वह सुषुम्ना नाड़ी मन की वृत्तियों से भीतर चंचल और बाहर प्राणादि से स्पन्दयुक्त होकर सदा स्थित रहती है। वह कुण्डलाकार वाहिनी है, इसलिये कुण्डलिनी नाम से कही गयी है। वह सब प्राणियों की परमा शक्ति है तथा प्राण, इन्द्रिय बुद्धि आदि सभी शक्तियों की सत्ता स्फुर्ति की निर्वाहक होने से सबको वेग प्रदान करने वाली है। वही अपने मुख से प्राणवायु को ऊपर फ़ेंकती है और अपान को नीचे खींचती है; इसलिये सदा साँस खींचती हुई स्पन्दन में हेतु बनी वह ऊपर की ओर मुँह करके कुपित सर्पिणी की तरह स्थित रहती है। यह कोमल स्पर्श वाली कुण्डलिनी कमल में भ्रमर की तरह देह में जैसे-जैसे स्फुरित होती है, वैसे-वैसे अन्तःकरण में ज्ञान होता है। उस कुण्डलिनी में हृदयकोश की समस्त नाड़ियाँ सागर में नदियों की तरह उसी से बारंबार उत्पन्न होती हैं तथा उसी में विलीन हो जाती हैं। प्राणरूप से उसके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerjisharma (I.F.S) Jammu Collection

ऊर्ध्वगमन में उत्सुक होने तथा अपानरूप से अधःप्रवेश की ओर उन्मुख होने से एक वही सम्पूर्ण ज्ञानों की साधारण बीज कही गयी है।

निष्पाप श्रीराम ! पशुओं से लेकर स्थावर आदि देहों में तथा मनुष्यादि शरीरों में जिस तारतम्य से जीवात्मा रहता है, यह मैं तुमसे क्रमशः कहता हूँ, सुनो। यह सत्य, नित्य चेतन, विकारशून्य और अनामय जीवात्मा अपनी कल्पना से पंचभूतों के रूप से स्थित होता है। पूर्वकृत कर्मों के अनुसार जीवात्मा की कल्पना से पंचभूत मनुष्यादि देहादिभाव की और द्रव्यादि भाव की प्राप्ति होती है। रघुनन्दन ! इस तरह यह संसार केवल पंचभूत का विकास मात्र ही है और वह चेतन जीवात्मा ही यहाँ सर्वत्र विद्यमान है। वही जीवात्मा केवल पंचभूतों के सम्बन्ध से मनुष्यादि देहों में बौद्धिक ज्ञान की विशेषता के कारण चेतन-प्रधान, कहीं (तिर्यगादि में) जड़-चेतन उभय-प्रधान और वृक्ष, पहाड़ आदि स्थावर योनियों में जड़ प्रधान रहता है। निष्पाप श्रीराम ! देहादि आकर में परिणत पंचभूत जीव का संकल्प होने के कारण ही जीव कहलाता है और पहाड़ आदि तो केवल जड़ ही हैं एवं वृक्षादि स्थावर बाहर की वायु से स्पन्दनशील (चेष्टावान्) होते हैं। पंचभूत समूहात्मक मेरु पर्वत आदि तो तृण की भाँति जड़ हैं; किंतु ये वृक्ष, कीट आदि स्थावर-जंगम प्राणी चेतन हैं। इनमें वृक्ष आदि स्थावर जाति की वासना निद्राग्रस्त मनुष्य की वासना की भाँति प्रसुप्त है तथा मनुष्य और देवता आदि में बुद्धि की अधिकता के कारण उनकी वासना प्रबुद्ध है। पशु, पक्षी आदि मलिन वासना से युक्त हैं, किंतु मनुष्यों में कुछ मोक्षगामी मनुष्य वासनाओं से रहित हैं; क्योंकि वे विवेक को प्राप्त हो गये हैं। अतः वे इस संसार में पुनः जन्म-धारण नहीं करते; किंतु इनसे भिन्न अविवेकी मनुष्य बार-बार संसार में भ्रमण करते रहते हैं।

इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त

बावनवाँ सर्ग

आधि और व्याधि के नाश का तथा सिद्धि और सिद्धों के दर्शन का उपाय

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-मुनीश्वर ! इस शरीर में आधि (मानसिक) और व्याधि (शरीरिक) रोग किससे उत्पन्न होते हैं तथा किससे विनष्ट होते हैं ? यह मुझको समझाकर कहिये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! आधि और व्याधि-ये दोनों दुःख के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (IAS) Jammu Collection

कारण हैं। औषधादि के द्वारा इनकी निवृत्ति से सुख प्राप्त होता है तथा ज्ञान के द्वारा इनका समूल नाश होता है। वही मोक्ष कहलाता है। शरीर के अंदर आधि और व्याधियाँ कभी परस्पर एक दूसरे की कारण बनकर उत्पन्न होती हैं अर्थात् कभी आधि से व्याधि हो जाती है और कभी व्याधि से आधि हो जाती है। कभी आधि-व्याधि-दोनों एक साथ हो जाती हैं और कभी सुख के अनन्तर दुःखरूप ये आधि-व्याधि क्रम से उत्पन्न होती हैं। शारीरिक दुःख को व्याधि कहते हैं और वासनामय मानसिक दुःख को आधि। श्रीराम ! यह जान लेना चाहिये कि अज्ञान ही इन दोनों का मूल कारण है। यथार्थ ज्ञान होने पर इनका अवश्य विनाश हो जाता है। यथार्थ परमात्म-ज्ञान और इन्द्रिय-निग्रह के अभाव से, राग-द्वेष में फँस जाने से तथा यह प्राप्त हो गया, यह प्राप्त होना शेष है- इस तरह रात-दिन चिन्ता करने से जड़ता के कारण महामोहदायिनी आधियाँ (मानसिक व्यथाएँ) उत्पन्न होती हैं। प्रबल इच्छाओं के पुनः पुनः स्फुरित होने से, मूर्खता से, चित्त के न जीतने से, दुष्ट अन्न खाने से तथा श्मशान आदि निकृष्ट स्थानों में निवास करने से शरीर में व्याधियाँ (शरीरिक रोग) उत्पन्न होती हैं। आधी रात में तथा प्रदोषादि काल में भोजन एवं मैथुनादि व्यवहार से, दुष्कर्म करने से, दुर्जनों की संगतिरूप दोष से तथा विष, सर्प, व्याघ्र और चोर आदि का मनमें भय होने से शरीर में व्याधि उत्पन्न होती है। नाड़ियों के छिद्रों में अन्न के रस का प्रवेश न होने के कारण नाड़ियों के क्षीण होने से अथवा उन छिद्रों में अन्न के रस एवं वायु आदि के अधिक प्रवेश हो जाने के कारण नाड़ियों के एकदम भर जाने से, कफ, पित्त आदि के प्रकोप से, प्राण तथा शरीर के व्याकुल हो जाने आदि अनेक दोषों के द्वारा रोग उत्पन्न होता है।

अभिमत पदार्थों की प्राप्ति होने से व्यावहारिक व्याधियाँ तथा आधि (अज्ञान) के क्षय से आधि से उत्पन्न मानसिक व्याधियाँ भी भली-भाँति नष्ट हो जाती हैं। राघव ! आत्म ज्ञान के बिना जन्मादि विकारों की जड़ व्याधि (अज्ञान) नष्ट नहीं होती; क्योंकि रज्जु के यथार्थ ज्ञान से ही रज्जु में प्रतीत होने वाला सर्प नष्ट होता है। जैसे वर्षा काल की नदी अपने तट के सभी वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंकती है, वैसे ही सम्पूर्ण आधि और व्याधियों को जड़ से उखाड़ फेंकने वाला जन्मादि विकारों की मूल अज्ञान रूपी व्याधिका क्षय ही है, जो परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से होता है। सामान्य व्याधियाँ तो आयुर्वेदोक्त औषधियों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.E.S) Jammu Collection

तथा मन्त्रादि शुभ कर्मों से अथवा वृद्धों की परम्परा से कथित औषधों से नष्ट हो जाती हैं। श्रीराम ! तीर्थों में स्नान, मन्त्र, औषध आदि उपाय, वृद्धजनों से प्राप्त हुई औषधियाँ तथा आयुर्वेद शास्त्र को तो आप स्वयं खूब जानते हैं। इनसे अतिरिक्त और मैं क्या आपको उपदेश दूँ।

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-गुरुवर! आधि से व्याधि कैसे उत्पन्न होती है और औषध के अतिरिक्त मन्त्र, पुण्य आदिरूप युक्ति से वह कैसे नष्ट होती है ?

श्रीवसिष्ठजी बोले-श्रीराम ! मानसिक पीड़ाओं से चित्त के व्याकुल हो जाने पर शरीर में क्षोभ हो जाता है; इसलिये क्रोधी मनुष्य अपने आगे का उचित मार्ग नहीं देख पाता। वह उचित मार्ग को न देखकर कुमार्ग की ओर उसी प्रकार दौड़ता है, जिस प्रकार बाण से घायल हुआ हरिण अपने स्वाभाविक मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग की ओर दौड़ता है। प्राण-वायु के विषम बहने पर कफ, पित्त आदि के भर जाने से नाड़ियाँ विषम स्थिति को प्राप्त हो जाती हैं, जैसे राजा के अव्यवस्थित हो जाने पर वर्णाश्रम की मर्यादा विषम-स्थिति को-विश्रृंखलता को प्राप्त हो जाती है। प्राण-वायु के संचार का क्रम बिगड़ जाने से खाया हुआ अन्न कुजीर्णता, अजीर्णता या अतिजीर्णता रूप दोष को ही प्राप्त होता है। इस तरह आधि से व्याधि उत्पन्न होती है और आधि के अभाव से व्याधि भी नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार मन्त्रों से व्याधियाँ विनष्ट होती हैं-वह भी क्रम तुम सुनो। जिस तरह हर्रे का फल खाने से स्वाभाविक ही दस्त लग जाते हैं, उसी तरह वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल आदि के बीज रूप य र ल व आदि मन्त्रों के वर्ण भी मान्त्रिक भावना के वश से नाड़ियों में रोगाकार में परिणत अन्न रसों का उत्सारण, पाचन आदि कार्य करते हैं। साधु-सेवारूप पवित्र पुण्य क्रिया से मन निर्मलता को प्राप्त होता है। चित्त के शुद्ध हो जाने पर शरीर में आनन्द बढ़ता है। अन्तःकरण की शुद्धि से ये प्राण वायु अपने क्रम से बहते हैं और अन्न का उचित परिपाक करते हैं। इससे सब व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। श्रीराम ! इस प्रकार आधि और व्याधि के नाश तथा उत्पत्ति के क्रम का वर्णन मैंने तुमसे कर दिया। अब तुम प्रकृत प्रसंग को सुनो।

राघव ! पुर्यष्टक नामक लिंगात्मक जीव की आधार-भूत कुण्डलिनी को तुम सुगन्ध की आधारभूत पुष्पमंजरी की भाँति जानो। पूरक के अभ्यास से जब प्राणी कुण्डलिनी को भर करके यानी कूर्माकार नाड़ी में प्राण वायु को रोककर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji shaumaji F. Collection, Jammu. Digitized by eGangotri

समरूप से स्थित होता है, तब मेरु पर्वत के समान स्थिरता अर्थात् भैरवी सिद्धि तथा काया की गुरुता (गरिमा नामक सिद्धि) उसे प्राप्त होती है। जिस समय पूरक से पूर्ण शरीर के भीतर मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त लंबा करके प्राण वायु को ऊपर खींचकर प्राणवायु के निरोध से उत्पन्न गरमी और तत्प्रयुक्त शारीरिक और मानसिक कष्ट सहन करने के लिये सवित् (कुण्डलिनी) ऊपर की ओर पहुँचायी जाती है। उस समय प्राणवायु को ऊपर खींचने से दण्ड के सदृश लंबी होकर वह कुण्डलिनी देह में बँधी हुई लता के समान सब नाड़ियों को अपने साथ लेकर अधिक अभ्यास होने के कारण सर्पिणी की भाँति शीघ्र ऊपर चली जाती है। उस समय नाड़ियों में वायु भर जाने से पैर से लेकर मस्तक तक बिल्कुल हलके हुए इस शरीर को कुण्डलिनी इस प्रकार ऊपर उठा ले जाती है, जिस प्रकार पवन से पूर्ण जलगत भाथी मनुष्य को जल के ऊपर उठा ले जाती है, यही योगियों का आकाश गमन है। इस प्रकार अभ्यास से युक्त आकाशगामी योग से अर्थात् आकाश के साथ शरीर का सम्बन्ध रखने के लिये किये गये संयम रूप योग से योगी लोग ऊर्ध्व-गति को प्राप्त हो जाते हैं। जिस समय दूसरी नाड़ियों के व्यापार को रोक देने वाले रेचक प्राणायाम के प्रयोग से ऊपर की ओर खींच ली गयी कुण्डलिनी रूपा प्राण शक्ति सुषुम्ना नाड़ी के भीतर प्राण वायु के प्रवाह से मस्तक के दोनों कपालों की संधिरूप कपाट (किवाड़) के बारह-बारह अंगुल स्थान में मुहूर्त भरके लिये स्थित रहती है, उस समय आकाशगामी सिद्धों के दर्शन होते हैं; किंतु अज्ञान का आश्रय करने वाला मलिन पुरुष इन्द्रियों से या दूसरे किसी अदिव्य उपाय से या इस पृथ्वी पर विचरण करने वाला कोई भी पुरुष वायु स्वरूप आकाशगामी सिद्धों को कभी नहीं देख सकता। परंतु राघव ! योग के अभ्यास से मनके संस्कृत हो जाने पर विषयों से दूर संस्थित बुद्धिरूपी नेत्र से स्वप्न की भाँति आकाशगामी सिद्ध दिखायी देते हैं और वे अभीष्ट अर्थों को भी देते हैं। जिस प्रकार स्वप्न में पदार्थों का अवलोकन होता है, उसी प्रकार सिद्धों के भी दर्शन होते हैं। केवल स्वप्न की अपेक्षा विशेषता यही है कि सिद्धों की प्राप्ति में संवाद, वरदान आदि फलरूप पदार्थों की प्राप्ति होती है।

रेचक प्राणायाम के अभ्यासरूप युक्ति से मुख से बारह-बारह अंगुल परिमित देश में प्राण को चिरकाल तक स्थित रखने पर योगी अन्य शरीर में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्रवेश कर सकता है। सारे शरीर में प्रदीप्त उस जठराग्नि से स्वभावतः शीत-वातात्मक वह शरीर ऐसे ही उष्णता को प्राप्त होता है जैसे सूर्य से तीनों लोक। तारों के आकार के समान तथा हृदय पद्म में सुवर्ण-भ्रमर के सदृश वह तेज इस शरीर में चारों ओर विचरता है, जो योगियों की चिन्त्य-दशा को प्राप्त है अर्थात् योगी लोग जिसकी उपासना करते हैं। इस प्रकार से उपासित वह तेज प्रकाश स्वरूप ज्ञान प्रदान करता है, जिससे लाख योजन की दूरी पर स्थित वस्तु भी सदा आँखों के सामने दिखायी देती है। उष्ण-प्रकृति प्राणवायु अग्नि स्वरूप है तथा शीतल-प्रकृति अपान वायु चन्द्र-स्वरूप है। छाया और घाम की भाँति ये दोनों मुखरूप मार्ग में स्थित रहते हैं।

बावनवाँ सर्ग समाप्त

तिरेपनवाँ सर्ग

ज्ञान साध्य वस्तु और योगियों की परकाय-प्रवेश-सिद्धि का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! योग के द्वारा साध्य अणिमादि पदार्थों का साधन तुम सुन चुके। अब श्रवण-भूषण ज्ञान के द्वारा साध्य विषय को सुनो। इस संसार में एक, अद्वितीय, शुद्ध, सौम्य, अनिर्देश्य, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और शान्तिमय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही है। न यह दृश्य जगत् है, न इसकी कोई क्रिया है। यह जीव इस मिथ्या शरीर को संकल्प-भ्रम से उसी प्रकार देखता है, जिस प्रकार बालक उद्दण्ड प्रेत को। जब प्रज्वलित ज्ञान दीप से उत्तम प्रकाश हो जाता है, तब इस जीव का संकल्प मोह उसी तरह विनष्ट हो जाता है, जिस तरह शरत्काल में मेघ। जागने पर जैसे प्राणी स्वप्न के संसार को नहीं देखता, वैसे ही सच्चिदानन्द परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर जीवात्मा देह को आत्मबुद्धि से नहीं देखता। अतात्त्विक शरीर आदि में तात्त्विक भावना से यह जीव देह से आवृत होकर स्थित रहता है; किंतु एक ब्रह्मतत्त्व की भावना से देह से रहित, श्रीमान् और परम सुखी हो जाता है। अनात्म शरीर आदि में जो आत्मा की भावना है, वह हृदय का बड़ा भारी अन्धकार है। वह सूर्य आदि के प्रकाश से दूर नहीं किया जा सकता। वह अज्ञान-अन्धकार तो परमात्मा में ही आत्म-भावना से-'सर्वव्यापक, निरंजन और निर्मल सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं ही हूँ,-इस यथार्थ ज्ञान रूपी सूर्य से ही नष्ट होता है।

अन्य तत्त्व ज्ञानी योगी लोग जिस पदार्थ की जिस रीति से भावना करते

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma(I.E.S)Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

हैं, वे उस पदार्थ को उसी रीति से शीघ्र अपनी उस दृढ़ भावना के बल से देख लेते हैं। किंतु राघव ! दृढ़भावना के अनुसन्धान से विमूढ़ अज्ञानी प्राणी तो विष को अमृत के समान और अमृत को भी विष के समान समझ लेते हैं। इस प्रकार दृढ़ भावना से जिस विमूढ़ अज्ञानी प्राणी के द्वारा जिस पदार्थ की जिस रीति से भावना की जाती है, उसी समय वह प्राणी वही बन जाता है, यह संसार में देखा भी जाता है। जैसे स्वप्न का संसार स्वप्न में प्रत्यक्ष की ज्यों दीखता है, वैसे ही सत्य की भावना से देखा गया यह शरीर हो जाता है और असत्य की भावना से विवेक पूर्वक देखा गया यह शरीर शून्यता को-अभाव को प्राप्त हो जाता है।

साधुस्वभाव श्रीराम ! अणिमादि पद की प्राप्ति में तुमने इस प्रकार से ज्ञानयुक्ति तो सुन ली। अब तुम यह दूसरी युक्ति सुनो। जिस तरह वायु पुष्प में से गन्ध खींचकर उसका घ्राणेन्द्रिय के साथ सम्बन्ध कर देता है, उसी तरह योगी रेचक के अभ्यास रूप योग से कुण्डलिनी रूप घर से बाहर निकलकर ज्यों ही दूसरे शरीर में जीव का सम्बन्ध करता है, त्यों ही यह शरीर परित्यक्त हो जाता है। जीव-रहित यह देह चेष्टाओं से रहित होकर काठ और मिट्टी के ढेले के सदृश पड़ा रहता है। जैसे सिंचन करने वाला पुरुष जल पूर्ण कुम्भ से जिस वृक्ष और लता को सींचने की इच्छा करता है, उसे ही सींचता है, वैसे ही अपनी रुचि के अनुसार देह, जीव, बुद्धि, स्थावर और जंगम सबमें उनकी सम्पत्ति का भोग करने के लिये जीव को प्रविष्ट किया जाता है।

उक्त प्रणाली से परदेह में सिद्धि का उपभोग कर स्थित हुआ योगी यदि अपना पहला शरीर विद्यमान रहा तो उसमें पुनः प्रविष्ट हो जाता है और यदि न रहा तो दूसरे शरीर में जब तक उसकी रुचि रहती है, तब तक उसमें प्रविष्ट होकर स्थित रहता है। अथवा देहादि सम्पूर्ण कल्पित पदार्थों को और जगत् को सर्वव्यापी ज्ञान से परिपूर्ण करके पूर्ण रूप से स्थित रहता है। श्रीराम! योग रूप ऐश्वर्य से सम्पन्न चेतन जीवात्मा सदा प्रकट, दोष शून्य परमात्म-तत्त्व को जानकर जो भी कुछ जैसा चाहता है, वैसा ही उसे तत्काल प्राप्त कर लेता है। वास्तव में अनावरणता रूप उत्तम पद ही यथार्थ पद है, यों अनुभवी लोग कहते हैं।

तिरेपनवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चौवनवाँ सर्ग

चूडाला की सिद्धि का वैभव

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! इस प्रकार निरन्तर योग का अभ्यास करने वाली वह राजरानी सती-साध्वी चूडाला अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों के गुणों के ऐश्वर्य से सम्पन्न हो गयी। मोह आदि दोषों तथा त्रिविध तापों का उपशम हो जाने से उसका हृदय गंगाजी की भाँति निर्मल और शीतल हो गया। वह कभी आकाश मार्ग से गमन करती थी, कभी समुद्र के भीतर द्वीपों में पहुँच जाती थी और कभी स्वेच्छानुसार भूतलपर विचरण करती थी। यों बिजली की प्रभा के समान चमकीले आभूषणों से विभूषित वह सुन्दरी चूडाला आकाशगामिनी होकर यत्र-तत्र घूमने फिरने लगी। वह मोतियों में प्रविष्ट हुए धागे की भाँति काष्ठ, तृण, पत्थर, भूत, आकाश, वायु, अग्नि, जल आदि सभी पदार्थों में निर्विघ्नता पूर्वक प्रवेश कर जाती थी। इस प्रकार उसने मेरुगिरि के शिखरों पर, लोकपालों के नगरों में और दिशा एवं आकाश के मध्य में स्थित सारे भुवनों में सुखपूर्वक विचरण किया तथा पशु-पक्षी, भूत-पिशाच आदि एवं नाग, देवता, असुर, विद्याधर, अप्सरा और सिद्धों के साथ सम्भाषण आदि व्यवहार भी किया।

चूडाला अपने स्वामी राजा शिखिध्वज को अनेक बार यत्नपूर्वक ज्ञानामृत का उपदेश करती, परंतु उनकी समझ में कुछ भी नहीं आता। जैसे बालक को विद्या के गुण का अनुभव नहीं होता, वैसे ही इतने लंबे काल तक सम्पर्क में रहने पर भी राजा शिखिध्वज यह न जान सके कि मेरी पत्नी चूडाला ऐसी गुणशालिनी है। चूडाला ने भी अनधिकारी समझकर आत्मशान्ति की प्राप्ति से रहित राजा के सामने अपनी अणिमादि सिद्धियों के ऐश्वर्य को उसी प्रकार प्रकट नहीं किया, जैसे शूद्र को यज्ञ क्रिया नहीं दिखलायी जाती।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha Collection

श्रीरामजी ने पूछा-ऐश्वर्यशाली गुरुदेव ! इतनी बड़ी सिद्धयोगिनी चूडाला से प्रयत्न भी जब राजा शिखिध्वज ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके, तब भला, अन्य साधारण व्यक्ति को ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुकुलभूषण राम ! गुरुद्वारा उपदेश प्राप्त करने का क्रम केवल शास्त्र-मर्यादा का पालन मात्र है। ज्ञान-प्राप्ति का कारण तो शिष्य की विश्वासयुक्त विशुद्ध प्रज्ञा ही है; क्योंकि जानने योग्य ब्रह्म शास्त्रों के श्रवण से अथवा किसी पुण्य कर्म से नहीं जाना जाता, उसे तो आत्मा ही जानता है।

श्रीरामजी ने पूछा-मुनिश्रेष्ठ ! यदि ऐसी ही बात है कि गुरुपदेश आत्मज्ञान में कारण नहीं है तो जगत् में जो यह क्रम प्रचलित है कि आत्मज्ञान का कारण गुरुपदेश है, यह कैसे उचित होगा ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-राघव ! (मैं इस विषय में एक दृष्टान्त देता हूँ, सुनो) विन्ध्याचल के जंगली प्रदेश में एक किराट रहता था। वह धन-धान्यसम्पन्न होने पर भी अत्यन्त कृपण था। श्रीराम ! एक बार वह उस जंगली मार्ग से कहीं जा रहा था कि उसकी एक कौड़ी किसी घास-फूस से ढकेहुए स्थान में गिर पड़ी। कृपण-शिरोमणि तो वह था ही; अतः उस एक कौड़ी को वह तीन दिनों तक चारों ओर सारे घास-फूसों को उलटकर खोजने का प्रयत्न करता रहा। उसके मन में बारंबार ऐसी कल्पना उठ रही थी कि यदि यह कौड़ी मिल जाती तो समयानुसार इस एक से चार, चार से आठ, आठ से सौ, सौ से हजार और हजार से कई हजार कौड़ियाँ हो जातीं। उस समय सहस्त्रों मनुष्य उस कृपण का उपहास कर रहे थे; परंतु वह उनकी तनिक भी परवाह न करके उस वन में आलस्यरहित होकर रात-दिन खोजता ही रहा। तदनन्तर तीन दिनों तक अथक परिश्रम करने के पश्चात् उसे उस जंगल में एक महान् चिन्तामणि प्राप्त हुई, जो पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल-सी आकार-प्रकार एवं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्रकाशवाली थी। उसे पाकर किराट का हृदय प्रसन्न हो गया और वह आनन्द पूर्वक घर लौट आया। वह चिन्तामणि जगत् के सम्पूर्ण ऐश्वर्य के समान थी। उसकी प्राप्ति हो जाने से वह सुख शान्तिपूर्वक रहने लगा। निष्पाप राम ! ब्रह्म सम्पूर्ण इन्द्रियों से अतीत है और शास्त्रोपदेश से इन्द्रिय सम्बन्धी वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, इसलिये गुरूपदेश से आत्मतत्व की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् आत्मज्ञान में उपदेश कारण नहीं है। फिर भी गुरूपदेश के बिना आत्मतत्व की प्राप्ति हो भी नहीं सकती; वह कृपण कौड़ी की खोज न करता तो चिन्तामणि की उपलब्धि उसे कैसे होती ! इसलिये जैसे चिन्तामणि की प्राप्ति में कौड़ी की खोज कारण है, वैसे ही इस महान् अर्थरूप आत्मतत्व की प्राप्ति में गुरुपदेश पूर्णतया कारण न होने पर भी कारणता को प्राप्त है। क्योंकि श्रीराम ! पुरुष कार्य तो कुछ और ही करता है और उसे उस कार्य का फल अन्य ही मिलता है। यह बात तीनों लोकों में देखी सुनी जाती है; इसलिये आत्मज्ञान के अनन्तर इस काल्पनिक जगत् को अनासक्ति और निष्कामभाव से वहन करना ही श्रेयस्कर है।

चौवनवाँ सर्ग समाप्त

पचपनवाँ सर्ग

शिखिध्वज का वैराग्य

हे राघव ! तदनन्तर राजा शिखिध्वज तत्वज्ञानरूप परम पद की प्राप्ति के बिना वैसे ही अत्यन्त मोह को प्राप्त हो गये, जैसे संतानहीन पुरुष पुत्र अभावरूपी तमसे अंधा-सा हो जाता है। उनका मन दुःखाग्नि से संतप्त हो उठा। अतः प्रियवर्ग द्वारा लायी गयी भोग-सामग्रियाँ उन्हें आग की लपट-सी प्रतीत होने लगीं। वैराग्य के कारण उनका मन उनमें तनिक भी सुख का अनुभव नहीं करता था। उन्हें अब एकान्त प्रदेशों में, निर्झर-तटों पर और गुफाओं में ही निवास करना वैसे ही अधिक रुचने लगा, जैसे व्याध के बाणप्रहार से मुक्त हुआ जन्तु एकान्त में छिपना ही पसंद करता है। रघुनन्दन ! राजा शिखिध्वज सान्त्वनापूर्वक अनुनय-विनय करने वाले एवं समझाने-बुझाने वाले भृत्यों के प्रार्थना करने पर दिन का सारा काम-काज करते थे। परंतु उनका वैराग्य प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। उनकी बुद्धि अत्यन्त शान्त थी। वे परिव्राजक की भाँति रहते थे। इसलिये विशाल विषयभोगों तथा राज्यश्री का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshagundam Vidyasagar Collection

उपभोग करने में उनका मन खिन्न हो जाता था। दूसरों को मान देने वाले श्रीराम ! वे देवकार्य के निमित्त तथा ब्राह्मणों और स्वजनों के लिये गौ, भूमि और सुवर्ण आदि का खुले हाथों दान करने लगे। वे तप करने के हेतु कृच्छ्र-

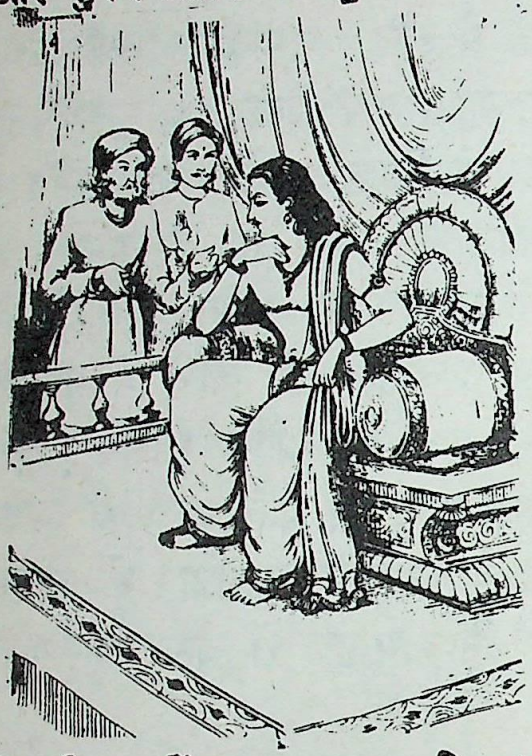

चान्द्रायण आदि व्रतों का अनुष्ठान तथा तीर्थों, वनों और आश्रमों में भ्रमण करने लगे। इतने पर भी, उन्हें तनिक-सी भी शोकशून्य स्थिति वैसे ही नहीं प्राप्त हुई, जैसे धनार्थी पुरुष को खानरहित भूमि के खोदने से निधि की प्राप्ति नहीं होती। इस प्रकार महान् बुद्धिमान होते हुए भी राजा शिखिध्वज चिन्तारूपी अग्नि से संतप्त होकर सूखते जा रहे थे। तब वे संसाररूपी व्याधि की औषधि के विषय में विचार करने लगे। यों चिन्तापरवश होकर वे दीन हो गये। उन्हें अपना राज्य विष-सा प्रतीत होने लगा। इस प्रकार उनकी बुद्धि विषयों से खिन्न हो गयी, अतः बहुमूल्य भोगपदार्थ सामने रखे जाने पर भी वे वैराग्ययुक्त राजा उनकी ओर ताकते भी नहीं थे। इसी स्थिति में एक दिन चूडाला महल में बैठी हुई थी, तब राजा उससे मधुर वाणी में बोले।

शिखिध्वज ने कहा-सूक्ष्मांगी प्रिये ! मैंने बहुत दिनों तक राज्य का उपभोग किया और विभवपूर्ण पदों को भी भोग लिया। अब मुझे वैराग्य हो गया है, अतः मैं वन जाना चाहता हूँ; क्योंकि वनवासी मुनि पर सांसारिक सुख, दुःख, आपत्ति, सम्पत्ति-ये कोई भी अपना अधिकार नहीं जमा सकते। न तो उन्हें देश के विनाश से मोहपूर्वक दुःख होता है और न संग्राम में प्रजाजनों का क्षय ही करना-कराना पड़ता है; अतः मैं वनवासी मुनियों के सुख को

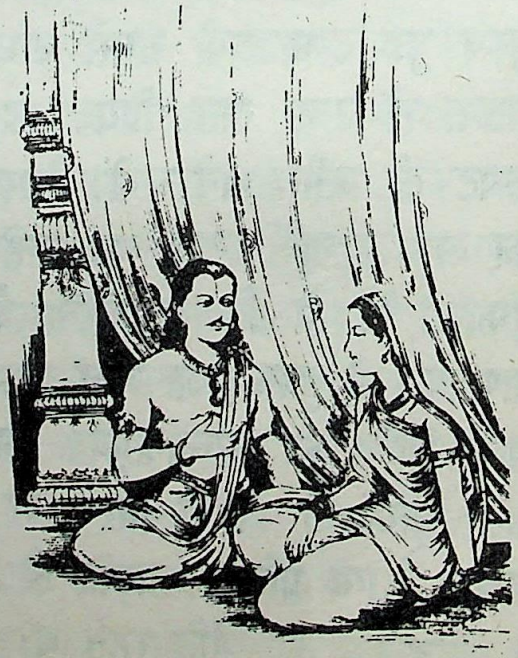

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

राज्य-सुख की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट मानता हूँ। वैराग्ययुक्त मन जैसा एकान्त में सुख का अनुभव करता है, वैसा सुख उसे न तो चन्द्रवदनी रमणियों के मुख-मण्डलों में मिलता है और न ब्रह्मा एवं इन्द्र के भवनों में ही प्राप्त होता है। इसलिये सुन्दरि ! मैंने जो यह वनगमन का उत्तम विचार किया है, इसमें बाधा डालना तुम्हारे लिये उचित नहीं है; क्योंकि कुलीन स्त्रियाँ स्वप्न में भी पति की इच्छा को भंग नहीं करतीं।

चूडाला बोली-नाथ ! जैसे वसन्त ऋतु में पुष्प की शोभा होती है और शरद् ऋतु में पुष्प भला मालूम देता है, उसी तरह जिस कार्य के अवसर प्राप्त हो, उसी का सम्पादन करने से उसकी शोभा होती है, अप्राप्त काल के कार्य में नहीं। इसलिये जिनके शरीर बुढ़ापे से जर्जर हो गये हैं, उन्हीं के लिये वन का आश्रय लेना उचित है, आप जैसे युवकों के लिये नहीं। इसी कारण आपका यह विचार मुझे पसंद नहीं है। प्रियतम ! जब वृद्धावस्था आने पर हम दोनों के सिर के बाल श्वेत पुष्प की भाँति बिल्कुल सफेद हो जायँगे, उस समय हम दोनों एक साथ ही घर से निकलकर वन को चले चलेंगे। साथ ही, राजन् ! बिना समय के ही प्रजापालनरूप कर्म का परित्याग कर देने वाले राजा के राज्य का विनाश हो जाता है, जिससे उसे महान् पाप का भागी होना पड़ता है। बिना अवसर के ही कार्य करने वाले राजा को प्रजाएँ रोकती ही हैं। इसी प्रकार न करने योग्य कार्य से नौकर स्वामी को और स्वामी नौकर को परस्पर मना करते ही हैं।

शिखिध्वज ने कहा-कमलनयनी प्रिये ! तुम मेरे अभीष्ट कार्य में विघ्न मत डालो। अब तुम मुझे यहाँ से दूर एकान्त वन में गया हुआ ही समझो। अनिन्दितागि कठोर-से कठोर अंगवाली स्त्रियाँ भी वनवास के लिये समर्थ नहीं हो सकतीं, फिर तुम्हारे अंग तो बहुत कोमल हैं और तुम अभी नवयुवती हो, अतः तुम्हें तो वन में नहीं जाना चाहिये। वनवास तो पुरुषों के लिये भी अत्यन्त कठिन होता है; अतः तुम्हें तो प्रजा का पालन करते हुए इस उत्तम राज्य में ही रहना चाहिये; क्योंकि पति के चले जाने पर कुटुम्ब का भार वहन करना स्त्री का धर्म है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! अपनी उस चन्द्रवदनी प्राणप्रिया से ऐसा कहकर जितेन्द्रिय राजा शिखिध्वज स्नान करने के लिये उठकर चल दिये और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.P.S) Jammu Collection

स्नान करके उन्होंने अपने सम्पूर्ण दैनिक कार्यों का सम्पादन किया। जब सायंकाल हुआ, तब पुनः संध्याकालीन समस्त कृत्यों को पूरा करके वे अपनी प्रिय पत्नी चूडाला के साथ शय्या पर सो गये। तदन्तर आधी रात के समय जब सारे देश में सन्नाटा छा गया, सारी जनता गाढ़ निद्रा में लीन हो गयी और कोमल बिछावन से युक्त पलंग पर सोयी हुई चूडाला भी गाढ़ निद्रा में निमग्न हो गयी, तब जिस पलंग के आधे बिस्तर पर पत्नी सोयी हुई थी, उस पलंग से राजा उठ खड़े हुए और 'हे राजलक्ष्मि ! तुम्हें नमस्कार है' यों कहकर अकेले ही अपने राजमहल से चल पड़े।

चलते-चलते वे महासागर में प्रवेश करने वाली नद की तरह एक भयंकर अरण्य में जा पहुँचे। पुनः प्रातः काल होने पर राजा शिखिध्वज वेगपूर्वक वहाँ से आगे चले और बारह दिनों में बहुत-से नगरों, देशों, पर्वतों और नदियों को लाँघ गये। तत्पश्चात् वे मन्दराचल के तटवर्ती एक कानन में जा पहुँचे, जो मनुष्य के लिये अति दुर्गम था। वहाँ से मनुष्यों की बस्ती और नगर अत्यन्त दूर पड़ते थे। वहाँ उन्होंने एक चौरस एवं शुद्ध स्थान में, जो जल से घिरा हुआ, शीतल, हरी-हरी घासों से आच्छादित होने के कारण श्याम, स्निग्ध तथा फलों से लदे हुए वृक्षों से सम्पन्न था, मंजरीयुक्त लताओं से बाँधकर अपने लिये एक पर्णशाला बना ली। फिर राजा ने अपनी उस कुटिया में बाँस का चिकना डंडा, फलाहार के लिये पात्र, अर्घ्यपात्र, पुष्पपात्र, कमण्डलु, रुद्राक्ष की माला, शीत का निवारण करने के लिये गुदड़ी, चटाई और मृगचर्म आदि लाकर यथास्थान रख दिये। इनके सिवा और जो भी कोई वस्तु तापस-कर्मोपयोगी प्रतीत हुई, राजा ने उसे भी लाकर वहाँ रख लिया। फिर दिन के प्रथम प्रहर में प्रातःकाल उन्होंने संध्यापूर्वक जप और दूसरे प्रहर में पुष्प आदि का संचय कर लेने के बाद स्नान और देवार्चन किया। तत्पश्चात् कुछ जंगली फल, कन्दमूल और कमलदण्ड आदि खाकर उन जितेन्द्रिय नरेश

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerjisharma (I.F.S) Jammu Collection

ने जपपरायण हो अकेले ही वह रात बितायी। इस प्रकार मन्दराचल की तलहटी में अपने द्वारा बनायी गयी पर्णशाला के भीतर बैठकर जप करते हुए मालव-नरेश शिखिध्वज खेदरहित होकर दिन बिताने लगे। वे अपने पूर्वानुभूत नित्य नूतन राजसी भोगविलासों का कुछ भी स्मरण नहीं करते थे। भला, जिसके हृदय में विवेकपूर्वक वैराग्य का उदय हो जायगा, उसके मन का अपहरण राज्यलक्ष्मियाँ कैसे कर सकती हैं ?

पचपनवाँ सर्ग समाप्त

छप्पनवाँ सर्ग

चूडाला के द्वारा राजा की खोज

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुकुलभूषण राम ! इस प्रकार राजा शिखिध्वज वन में, एक तापस को जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, उन पदार्थों का संग्रह करके कुटियाँ में रहने लगे। इधर घर पर चूडाला ने क्या किया-अब उसे सुनो। आधी रात के समय जब राजा शिखिध्वज महल से निकलकर दूर चले गये, तब अकस्मात् चूडाल की नींद टूटी। वह तत्काल उठकर शय्या पर बैठ गयी और चिन्ताग्रस्त होकर यों विचार करने लगी-

'दुःख की बात है, जो मेरे पतिदेव राज्य का परित्याग करके घर से वन को चले गये; अतः अब मेरा यहाँ रहना किस काम का ? मैं भी उनके समीप ही जाऊँगी; क्योंकि ब्रह्मा ने स्त्रियों के लिये पति को ही एकमात्र गति निर्धारित किया है।' यों सोच-विचारकर चूडाला पति का अनुगमन करने के लिये उठ खड़ी हुई और झरोखे के रास्ते निकलकर आकाश में जा पहुँची। वहाँ आकाशमण्डल में स्थित होकर उसने अपने पति को निर्जन वन में भटकते देखा। फिर वह उनके भविष्य के विषय में पूर्ण रूप से विचार करने लगी। राघव ! उसने अपने योगबल से राजा को जैसे, जिस निमित्त से, जिस देश काल में जितने कार्य का जिस रीति से सम्पादन तथा जिस प्रकार निर्वाण की प्राप्ति आदि करनी होगी, उन सभी अवश्यंभावी विषयों का योग के द्वारा अनुभव किया और फिर उन्हीं के अनुकूल आचरण करने के लिये वह ऐसा सोचकर आकाश से लौट पड़ी कि दैवका यही निश्चित विधान मालूम पड़ता है कि कुछ काल के बाद ही मैं इनके समीप जाऊँ, अतः अभी मेरा वन में जाना ठीक नहीं है। इस प्रकार निश्चय करके चूडाला ने वहाँ से लौटकर पुनः अपने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection

अन्तःपुर में प्रवेश किया।

दूसरे दिन उसने ऐसी घोषणा करा दी कि 'किसी विशेष कारणवश महाराज इस समय बाहर गये हुए हैं।' इस प्रकार समस्त पुरवासी जनों को आश्वासन देकर सुन्दरी चूडाला वहाँ रहने लगी। जैसे धान की रखवाली करने वाली स्त्री धान के खेत की रक्षा करती है, वैसे ही वह समतापूर्वक अपने स्वामी की शासनप्रणाली के अनुसार राज्य की देख-भाल करने लगी। इस प्रकार वन में राजा शिखिध्वज के और अपने महल में चूडाला के क्रमशः दिन, पक्ष, मास, ऋतु और वर्ष बीतने लगे। यों सुन्दरी चूडाला को राजमहल में और शिखिध्वज को जंगली लताकुंजों में निवास करते अठारह वर्ष बीत गये।

तदनन्तर बहुत वर्षों तक उस महाशैल की तलहटी में निवास करते हुए राजा शिखिध्वज वृद्धावस्था को प्राप्त हो गये। इधर चूडाला अपने पति की रागादि वासनाओं के परिपाक का लक्ष्य करके उतने काल तक प्रतीक्षा करती रही। जब वन में रहते हुए जरावस्था से युक्त राजा शिखिध्वज के बहुत-से वर्ष व्यतीत हो गये, तब पति के प्रति अपने कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर चूडाला के मन में ऐसा विचार उदय हुआ कि अब मेरे लिये पति के समीप जाने का समय आ गया है। यों सोचकर वह मन्दराचल की उपत्यका में जाने के लिये तैयार हो गयी और रात्रि के समय अन्तःपुर से निकलकर आकाशमार्ग से उड़ चली। वह वायुमण्डल में होकर यात्रा कर रही थी। जब वह आकाश के मध्य में पहुँची, तब उसने बादलों में चमकती हुई बिजलियों का बारंबार अवलोकन किया। उस समय वह मन-ही-मन कहने लगी-'अहो ! प्राणियों का स्वभाव जीवनपर्यन्त शान्त नहीं होता, इसी कारण आज मेरा भी मन उत्कण्ठित हो ही गया। किंतु सखे चित्त ! यह तुम्हारा कोई दोष नहीं है; क्योंकि तुम्हारी उत्कण्ठा तो अपने स्वामी के प्रति है न। फिर भी तुम उत्कण्ठा से परिपूर्ण होकर स्थित रहो, तुम्हारे भलीभाँति उत्कण्ठित होने से मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है; क्योंकि मेरे स्वामी तो अब तपस्वी हैं। अतः वे क्षीणकाय एवं वासनाशून्य हो गये होंगे। मैं तो ऐसा समझती हूँ कि उनका मन अब राज्य आदि भोगों की ओर से उपरत हो गया होगा। जैसे वर्षाकाल की क्षुद्र नदी महानदी में मिलकर उसी में विलीन हो जाती है, वैसे ही उनकी वासना लता

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

महान् आत्मा में एकमेक हो गयी होगी। वे एकात्मा होकर एकान्त में ही रत रहते होंगे। तथा उन वीतराग की वासनाएँ शान्त हो गयी होंगी। मेरे विचार में तो ऐसा आता है कि अब मेरे स्वामी की स्थिति सूखे वृक्ष की-सी हो गयी होगी। तथापि चित्त ! तुम्हें उत्कण्ठित होने की क्या आवश्यकता है। मैं स्वयं अपने योगबल से पतिदेव की बुद्धि को उद्बुद्ध करके उन्हें उत्कण्ठित कर दूँगी और फिर तुम्हारे साथ मिला दूँगी। मैं अपने मुनिस्वरूप स्वामी के इच्छारहित मन को समतायुक्त बनाकर राज्य में ही नियुक्त करूँगी और फिर हम दोनों चिरकाल तक सुखपूर्वक निवास करेंगे। अहो ! निश्चय ही चिरकाल के पश्चात में इस शुभ मनोरथ को प्राप्त करूँगी।

यों सोचकर चूडाला आकाशमार्ग से उड़ती हुई पर्वतों, देशों, मेघों तथा दिग्दिगन्तों को लाँघकर मन्दराचल की उस कन्दरा के निकट जा पहुँची। वहाँ वह अदृश्यरूप से आकाश में ही स्थित रही। फिर वृक्षों और लताओं के स्पन्दन से गमनागमन को सूचित करने वाली वायु की तरह उसने वन के भीतर प्रवेश किया। वहाँ उसने वन के किसी एक प्रदेश में पर्णशाला बनाकर उसमें बैठे हुए अपने पति को देखा। जो पहले हार, बाजूबंद, कड़े और कुण्डल आदि से विभूषित होकर सुमुरु के समान कान्तिमान् दीखते थे, उन्हीं को आज चूडाला ने कृशकाय, कृष्णवर्ण तथा जीर्ण-शीर्ण पत्ते की तरह शुष्क शरीर वाला देखा। उनके सिर पर जटाएँ बँध गयी थीं तथा शरीर पर वल्कलवस्त्र शोभा दे रहा था। शान्त तो थे ही; अतः अकेले ही भूमि पर बैठकर पुष्पों की माला गूँथ रहे थे। उन्हें देखकर सर्वांगसुन्दरी चूडाला का मन कुछ खिन्न हो गया; फिर वह मन-ही-मन कहने लगी-'अहो! मेरे पति की यह कैसी अज्ञानभरी मूर्खता है। इसी मूर्खता के प्रमाद से ही ऐसी दशाएँ आया करती हैं। ये शोभाशाली नरेश मेरे परम प्रिय पति हैं। इनका हृदय गाढ़ मोह से आहत हो गया है, इसी कारण ये इस दशा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (IAS) Jammu Collection

को प्राप्त हो गये हैं। अतः अब मैं इन्हें सर्वोत्तम ज्ञान प्रदान करने के लिये अपने इस रूप का त्याग करके किसी अन्य रूप से इनके समीप जाऊँगी; क्योंकि यदि मैं इसी रूप से जाती हूँ तो 'यह बाला मेरी प्रेयसी प्रिया है' यों समझकर ये मेरे कथन पर भलीभाँति ध्यान नहीं देंगे, इसलिये तपस्वी का वेष धारण करके इनके सामने उपस्थित होकर मैं क्षण भर में इन्हें प्रबुद्ध कर दूँगी। इस समय मेरे स्वामी की बुद्धि रागादि वासनाओं के परिपाक से परिपक्व हो गयी है, अतः अब इनके निर्मल चित्त में आत्मतत्त्व भली भाँति प्रकट हो सकता है।' यों मन-ही-मन विचार करके चूडाला थोड़ी देर तक ध्यानमग्न हो गयी। फिर, तत्काल ही जल-तरंग की तरह उसका रूप बदल गया और वह एक ब्राह्मणकुमार के रूप में परिवर्तित हो गयी। फिर तो वह उसी रूप में उस जंगल में उतर पड़ी और अपने पति देव के सामने जाकर खड़ी हो गयी। उस समय उसका मुख मन्द मुस्कान से सुशोभित हो रहा था।

उस द्विजपुत्र का शरीर तपाये हुए सुवर्ण के समान गौरवर्ण का था, कंधे पर यज्ञोपवीत लटक रहा था और वह दो निर्मल स्वच्छ वस्त्रों से आच्छादित था। इस प्रकार वह दूसरे वन से आया हुआ मूर्तिमान तप-सा ही प्रतीत होता था। उस शोभाशाली द्विजकुमार को अपने सामने देखकर राजा शिखिध्वज ने समझा कि यह कोई देवपुत्र आया हुआ है, अतः वे अपनी खड़ाऊँ छोड़कर तुरंत ही उठ खड़े हुए और बोले-'देवपुत्र! आपको नमस्कार है। आइये, इस आसन पर विराजिये।' यों कहकर उन्होंने अपने हाथ से उसके सामने एक पत्ते का आसन रख दिया। तब ब्राह्मणकुमार ने भी कहा-'राजर्षे ! आपको प्रणाम है।'

शिखिध्वज ने कहा-महाभाग देवपुत्र ! कहाँ से आपका शुभागमन हुआ है? आज मुझे जो आपका दर्शन प्राप्त हो गया, इससे मैं आज का दिन सफल समझता हूँ। मानद ! आपका कल्याण हो। आपके लिये यह अर्घ्य है, यह पाद्य है, ये पुष्प हैं और यह गुँथी हुई माला है इन्हें आप ग्रहण करने की कृपा करें।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-निष्पाप राम ! ऐसा कहकर राजा शिखिध्वज ने ब्राह्मणकुमार के वेष में आयी हुई अपनी उस प्रियतमा पत्नी को शास्त्रविधि के अनुसार अर्घ्य, पाद्य, पुष्प और माला आदि समर्पित किये।

तत्पश्चात् (ब्राह्मणकुमार के वेष में) चूडाला बोली-सज्जनशिरोमणे ! आपने शान्त मन से निर्वाण-प्राप्ति के लिये फल की कामना से रहित उत्कृष्ट तप का संचय तो कर लिया है न ? क्योंकि सौम्य ! आपने जो धन-धान्य सम्पन्न राज्य का परित्याग करके महावन का आश्रय लिया है, आपका यह शान्तव्रत तलवार की धार के समान है।

शिखिध्वज ने कहा-भगवन् ! आपके लोकोत्तर चिन्हस्वरूप सौन्दर्य से ही ज्ञात हो रहा है कि आप कोई देवता हैं, इसी से सब कुछ जानते हैं। इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ? सौन्दर्य शाली देव ! अभी मेरी प्रियतमा भार्या वर्तमान है। आजकल वह मेरे राज्य का संचालन कर रही है। उसी के सारे अंगों की तरह आपके अंग लक्षित हो रहे हैं। अभ्यागत का आदर-सत्कार करने से अपना जीवन सफल हो जाता है, इसलिये सत्पुरुष अभ्यागत को देवता से बढ़कर पूज्य मानते हैं। (इसी कारण मैंने आपका आतिथ्य किया है।) निर्मल चन्द्रमा के समान कान्तिमान् मुखवाले देवपुत्र! अब मेरे मन में एक संशय है, उसका आप निवारण कीजिये। वह संशय यह है कि आप कौन हैं ? किसके पुत्र हैं? और मुझ पर कृपा करके कहाँ से और किस लिये पधारे हैं ?

ब्राह्मण कुमार बोला-राजन् ! आपके प्रश्नानुसार मैं सारी बातें कहता हूँ, सुनिये। इस जगन्मण्डल में मुनिवर नारद रहते हैं। उनका हृदय परम विशुद्ध है। उनके शरीर का वर्ण पुण्यलक्ष्मी के कमनीय मुख में सुशोभित कर्पूर के तिलक के सदृश गौर है। किसी समय वे देवर्षि मेरुगिरि की कन्दरा में ध्यानावस्थित थे। उस गुहा में समीप ही उत्ताल तरंगों वाली गंगाजी बह रही थीं, जिनका जल मेरुगिरि के सौन्दर्य से उद्भासित हो रहा था, जिससे वे हार की तरह सुशोभित हो रही थीं। उसी गंगा नदी के तट पर एक बार ध्यान से विरत होने पर नारद मुनि बैठे थे, तब तक उन्हें कंकणों की झनकार से युक्त जल क्रीड़ा की कल-कल ध्वनि सुनायी पड़ी। सुनते ही उनके मन में कुछ कुतुहल उत्पन्न हो गया और उन्होंने यह जानना चाहा कि यह क्या है। फिर तो कौतूहलवश चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर उन्हें नदी में रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

दल दिखायी पड़ा, जो जल क्रीड़ा से निवृत्त होकर बाहर निकल रहा था। भीग जाने के कारण उनके समस्त अंग ऊपर से नीचे तक दीख रहे थे और ये परस्पर एक-दूसरे में प्रतिबिम्बित हो रहे थे, जिससे वे एक दूसरे के लिये दर्पण-सी बन गयी थीं। एक ही स्थान पर एकत्रित किये गये चन्द्रमण्डल के कलापुंज की भाँति उस कमनीय नारीदल को देखकर जब सहसा नारदमुनि का चित्त क्षुब्ध हो उठा, तब उनका वीर्य स्खलित हो गया।

तदनन्तर नारदमुनि ने अपने मनरूपी उन्मत्त गजराज को विशुद्ध बुद्धिरूपी रस्से से विवेकरूपी सुदृढ़ आलान में बाँध दिया और उस स्खलित हुए वीर्य को, जो प्रलयकालीन अग्नि के ताप से पिघले हुए चन्द्ररव के सदृश तथा पारद और सुवर्ण आदि शम्भु के दिव्य वीर्य के समान था, अपने पास ही पड़े हुए एक अद्भुत कान्तिमान स्फटिककुम्भ में स्थापित कर दिया। फिर उन्होंने उस कुम्भ को अपने संकल्पजनित दूध से परिपूर्ण कर दिया, कुछ ही दिनों में वह घटस्थित शुभ गर्भ वृद्धि को प्राप्त हो गया। फिर तो जैसे मास चन्द्रमा को तथा वसन्त ऋतु पुष्पों को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार समय आने पर उस घटने एक कमल दल-सदृश नेत्रों वाले बालक को जन्म दिया। कुम्भ से वह बालक सम्पूर्ण अंगों से परिपूर्ण होकर निकला था। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो क्षीरसागर से दूसरा क्षयरहित पूर्ण चन्द्रमा निकला हो। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान कुछ ही दिनों में बढ़कर बड़ा हो गया। उसका शरीर अनुपम सौन्दर्य से युक्त था। जब वह जातकर्म आदि सभी संस्कारों से सम्पन्न हो गया, तब मुनिवर नारद ने अपना सारा विद्याधन उस बालक में उसी प्रकार स्थापित कर दिया, जैसे एक पात्र मे रखा हुआ धन दूसरे पात्र में उड़ेल दिया जाता है। थोड़े ही दिनों में वह सम्पूर्ण वांगमय विशिष्ट ज्ञाता हो गया। इस प्रकार मुनिवर नारद ने उसे अपना प्रतिबिम्ब-सा बना दिया।

तदनन्तर नारदजी अपने पुत्र को साथ लेकर ब्रह्मलोक को गये और वहाँ उससे अपने पिता ब्रह्माजी के चरणों में अभिवादन करवाया। प्रणाम कर चुकने के बाद ब्रह्माजी अपने पौत्र से परीक्षार्थ वेदादि शास्त्रों के विषय में प्रश्न किये और उनका समुचित उत्तर पाने पर उन्होंने पर उसे पकड़कर अपनी गोद में बैठा लिया। फिर तो, उन कमलयोनि ने उस कुम्भ नाम वाले पौत्र को केवल आशीर्वाद देकर सर्वज्ञ तथा ज्ञान का पारगामी विद्वान् बना दिया। साधुशिरोमणे!

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वह कुम्भ मैं ही हूँ। कुम्भ से उत्पन्न होने के कारण मेरा ही नाम कुम्भ पड़ा है। मैं नारदमुनि का पुत्र और पद्मजन्मा ब्रह्मा का पौत्र हूँ। ब्रह्मलोक ही मेरा घर है। वहीं मैं अपने पिताजी के साथ सुखपूर्वक निवास करता हूँ। चारों वेद मेरे सुहृद हैं। मैं किसी कार्यवश नहीं, बल्कि कौतुकवश स्वेच्छानुसार सभी लोकों में विचरता हूँ। जब मैं भूलोक में विचरण करता हूँ, उस समय मेरे पैर भूतल पर नहीं पड़ते, धूलिकण अंगों का स्पर्श नहीं करते और मेरा शरीर कभी मलिन नहीं होता। आज मैं आकाशमार्ग से जा रहा था कि सामने आप दिखायी पड़ गये, इसलिये यहाँ चला आया हूँ। वनवास के गुणों तथा तज्जन्य फलों के ज्ञाता साधो ! इस प्रकार अपने अनुभव के अनुसार मैंने सारा-का सारा वृतान्त आपको बतला दिया।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-मुने ! महर्षि वसिष्ठ के इस प्रकार कहते-कहते वह दिन समाप्त हो गया। जब भगवान् सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगे, तब वह सभा विसर्जित हुई और सभी सभासद् मुनिवर वसिष्ठ को नमस्कार करके सायंकालीन विधि का सम्पादन करने के लिये स्नान करने चले गये और रात्रि व्यतीत होने पर पुनः सूर्योदय होते-होते सभा में जुट गये।

छप्पनवाँ सर्ग समाप्त

सत्तावनवाँ सर्ग

कुम्भ का ब्रह्माजी के द्वारा किये हुए ज्ञान और कर्म के विवेचन को सुनाना

राजा शिखिध्वज ने कहा-देवकुमार ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि जैसे आँधी मेघों को उड़ाकर पर्वत पर पहुँचा देती है, उसी प्रकार मेरी संचित पुण्यराशि ने अप्रकटरूप से फलदानोन्मुख होकर आपको यहाँ भेजा है। साधो ! आपके वचनों से तो मानो अमृत टपक रहा है, अतः आपके साथ आज जो मेरा समागम हो गया, इससे अब मैं धर्मात्माओं की गणना में सर्वप्रथम गिना जाऊँगा। प्रभो ! साधु-समागम से चित्त को जैसी शान्ति उपलब्ध होती है, वैसी शान्ति राज्य-लाभ आदि कोई भी पदार्थ नहीं दे सकते; क्योंकि सत्संग होने पर सामान्यरूप से अपरिमित ब्रह्मानन्दरूप सुख प्रकट होने लगता है, जिससे कल्पनाजनित सुख प्रदान करनेवाले रागादि दोषों का विचार ही नष्ट होजाता है।

(देवपुत्र के वेष में) चूडाला बोली-साधु श्रेष्ठ ! छोड़िये इस कथा को। मैंने तो आपके प्रश्नानुसार अपना सारा वृत्तान्त आपको बता दिया। अब आप

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

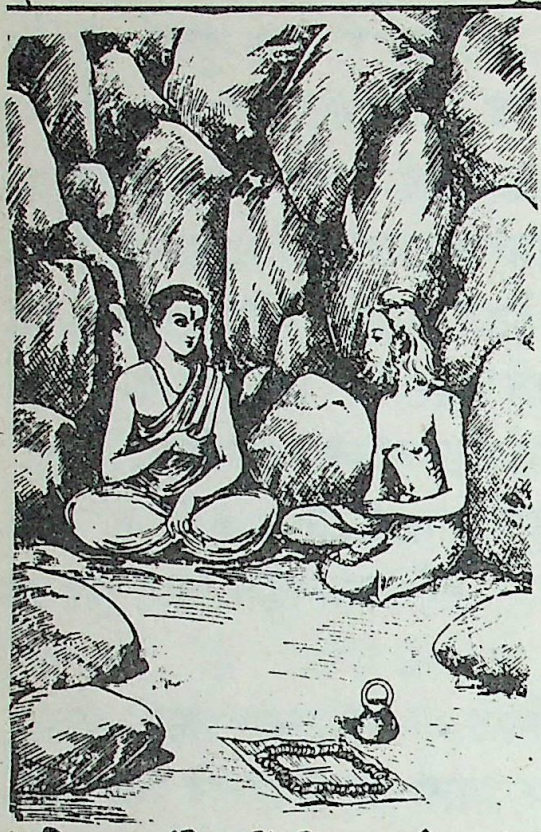

मुझे अपना परिचय दीजिये–आप कौन हैं? इस पर्वत पर क्या कर रहे हैं ? आपको अरण्यवास करते कितना समय बीत गया और इससे आप अब कौन–सा कार्य सिद्ध करना चाहते हैं ?–यह सब बताइये।

शिखिध्वज ने कहा–भगवान् ! आप तो स्वयं ही देवकुमार हैं, अतः लोकवृत्तान्त और परमार्थवृत्तान्त के पूर्ण ज्ञाता हैं। मेरे विषय में भी आप सब कुछ यथार्थरूप से जानते ही हैं, फिर, इसके अतिरिक्त मैं और क्या कहूँ। आर्य ! यद्यपि आप मुझे जानते हैं, फिर भी मैं आपसे अपना परिचय संक्षेप में दे रहा हूँ, सुनिये। मैं शिखिध्वज नाम का राजा हूँ और अपने राज्य का परित्याग करके यहाँ चला आया हूँ। मैं संसार–भय से भीत हो गया हूँ, अतः वन में निवास करता हूँ। तत्वज्ञ ! मुझे सबसे बड़ा भय तो इस बात का है कि कहीं संसार में मेरा पुनर्जन्म न हो जाय। यद्यपि मैं दिग्दिगन्तों में भ्रमण कर रहा हूँ और कठोर तप भी कर रहा हूँ, तथापि मुझे अभी वास्तविक शान्ति प्राप्त नहीं हुई है, शास्त्रोक्ति प्रक्रिया का समुचित रूप से सम्पादन करने पर भी मुझे दुःख–पर–दुःख ही मिलते जा रहे हैं और मेरे लिये अमृत भी विषवत् हो गया है। (भगवन् ! इसका क्या कारण है ?)

(देवपुत्र के रूप में) चूडाला बोली–साधो ! पहले किसी समय मैंने अपने पितामह ब्रह्माजी से ऐसा प्रश्न किया था–'प्रभो ! ज्ञान और कर्म–इन दोनों में जो एकमात्र श्रेयस्कर हो, उसे मुझे बताने की कृपा कीजिये।' तब ब्रह्माजी ने कहा–बेटा ! ज्ञान और कर्म में ज्ञान ही परम श्रेयस्कर है; क्योंकि उससे भलीभाँति कैवल्य स्वरूप परमात्मा का साक्षात् अनुभव हो जाता है; परंतु पुत्र ! जिन्हें ज्ञान–दृष्टि की प्राप्ति नहीं हुई है, उनके लिये कर्म ही सबसे बढ़कर है; क्योंकि जिसके पास रेशमी साल नहीं है, वह क्या साधारण कम्बल को भी छोड़ देता है ? अज्ञानी के सभी कर्म सफल हैं अर्थात् जन्म–मरणरूप फल प्रदान करते हैं; क्योंकि कर्मों की सफलता में प्रयोजक वासनाएँ उसमें बनी हुई

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

हैं; परंतु जो ज्ञान सम्पन्न है, उसके सभी कर्म निष्फल हैं अर्थात् वे जन्म-मरणरूप फल नहीं देते; क्योंकि उसकी सारी वासनाएँ नष्ट हो चुकी हैं। जैसे ऋतु-परिवर्तन के समय पहली ऋतु के गुणों का आगामी ऋतु में विनाश हो जाता है, उसी तरह वासना का क्षय हो जाने पर कर्मफल भी नष्ट हो जाता है। वत्स ! वास्तव में वासना कार्यवस्तु है ही नहीं, किंतु जैसे मरुस्थल में असत्यरूप से जल प्रतीत होता है, उसी प्रकार वह मूर्खता के कारण अज्ञानी में अहंकार आदि का रूप धारण करके असत्य रूप से प्रकट होती है। परंतु 'सर्व ब्रह्म-सब कुछ ब्रह्म ही है' ऐसी भावना करने से जिसके अज्ञान का नाश हो गया है, उसके मन में वासना उत्पन्न ही नहीं होती। ठीक उसी तरह, जैसे बुद्धिमान् पुरुष को मरुस्थल में जल की भ्रान्ति नहीं होती। अपने भीतर से वासनामात्र का पूर्णतया परित्याग कर देने से जीव जरा-मरण रहित एवं पुनर्जन्म शून्य परमपद को प्राप्त हो जाता है।

(देवपुत्र के रूप में) चूडाला कहती है-राजर्षे ! इस प्रकार जब वे ब्रह्मा आदि महापुरुष भी ज्ञान को ही परमोत्कृष्ट श्रेय बतलाते हैं, तब आप उस ज्ञान से रहित क्यों हैं ? भूपाल ! 'इधर कमण्डलु है, इधर दण्डकाष्ठ है, इधर कुश की चटाई है-ऐसे अनर्थों से परिपूर्ण इस संसार में क्यों सुख मान रहे हैं? राजन् मैं कौन हूँ ? यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ है और किस उपाय से इस की शान्ति होगी ?-इन प्रश्नों पर किसलिये आप विचार नहीं करते ? क्यों अज्ञानी बने बैठे हैं ? नरेश ! जो सगुण-निर्गुणरूप परमात्मा के तत्त्व को जानने वाले हैं, ऐसे महात्माओं के पास जाकर 'बन्धन कैसे हुआ और मोक्ष का उपाय क्या है ?' यों प्रश्न करते हुए आज उनके चरणों की सेवा क्यों नहीं करते ? यहाँ पर्वत की कन्दरा में बैठे इस कठोर तपस्या में आप अपना जीवन क्यों बिता रहे हैं ? जिस युक्ति से संसार-बन्धन से मुक्ति मिलती है, वह तो समतापूर्ण दृष्टिवाले महात्माओं के पास जाकर उनसे पूछने से, उनकी सेवा से तथा उनके समागम से ही उपलब्ध होती है।

सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त

अठ्ठावनवाँ सर्ग

राजा द्वारा कुम्भ का शिष्यत्व स्वीकार

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! उस देवरूपिणी कान्ता चूडाला ने जब

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I F S) Jammu Collection

इस प्रकार ज्ञानोपदेश किया, तब राजा शिखिध्वज की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और वे इस प्रकार बोले।

शिखिध्वज ने कहा–देवकुमार ! बहुत काल के पश्चात् आज आपने मुझे प्रबुद्ध कर दिया। अहो ! इतने दिनों तक साधु–समागम का पत्याग करके मैं जो वन में निवास करता रहा, यह मेरी मूर्खता का परिचायक है। आज जो स्वयं ही यहाँ पधारकर मुझे ज्ञानोपदेश कर रहे हैं, इससे तो मैं समझता हूँ कि निश्चय ही मेरे सम्पूर्ण पापों का विनाश हो गया। सुमुख ! अब आप ही मेरे गुरु हैं, आप ही मेरे पिता हैं और आप ही मेरे मित्र हैं। मैं आपका शिष्य हूँ और आपके चरणों में नतमस्तक हूँ, मुझ पर कृपा कीजिये। भगवन् जिसे आप सर्वोत्तम समझते हों और जिसे जान लेने पर फिर शोक नहीं करना पड़ता तथा जिसको प्राप्त करके मैं मुक्त हो जाऊँगा, उस परब्रह्म–तत्व का मुझे शीघ्र ही उपदेश दीजिये।

(देवपुत्र के रूप में) चूडाला बोली–राजर्षे ! यदि आप मेरे वचनों को उपादेय मानते हों अर्थात् उन्हें सुनने की श्रद्धा रखते हों तब तो मैं अपनी जानकारी के अनुसार उस ब्रह्म का उपदेश करूँगा, अन्यथा कुछ भी नहीं कहूँगा; क्योंकि अश्रद्धालु के सामने कुछ कहना निरर्थक होता है। साथ ही जिसके वचनों श्रोता की श्रद्धा नहीं होती और जिससे कौतूहल से प्रश्न किया जाता है, उस वक्ता के वचन निष्फल हो जाते हैं।

शिखिध्वज ने कहा–गुरुदेव ! मैं आपसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप जो कुछ उपदेश देंगे, मैं उसे वेद की विधि–वाक्य की भाँति निश्चय ही तुरंत ग्रहण कर लूँगा।

(देवपुत्र के रूप में) चूडाला बोली–राजर्षे ! जैसे छोटा शिशु अपने पिता के वचन को बिना ननु–नच किये प्रमाणबुद्धि से स्वीकार कर लेता है, वैसे ही आप भी मेरे इन वचनों को ग्रहण कीजिये। राजन् ! सुनिये, मैं एक ऐसे मनोहर कथानक का वर्णन करूँगा, जो आपके चरित्र के सदृश है। वह चिरकाल के पश्चात् उन्नति को प्राप्त होती हुई मन्दमतियों की बुद्धि को उद्बुद्ध करने वाला है तथा उत्कृष्ट बुद्धि वालों को शीघ्र ही भवभय से उद्धार करने वाला है।

अठ्ठावनवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उनसठवाँ सर्ग

विन्ध्यगिरि निवासी हाथी का आख्यान

(देवपुत्र के रूप में) चूडाला कहती है-राजन् ! एक श्रीसम्पन्न पुरुष था, जो कलाओं का ज्ञाता, अस्त्र विद्या में निपुण और व्यवहार करने में भी चतुर था। वह जिन-जिन कार्यों के करने का संकल्प करता, उन्हें पूरा करके ही छोड़ता था। तब वह अनन्त प्रयत्नों से उपलब्ध होने वाली चिन्तामणि की प्राप्ति के लिये तपश्चर्या में प्रवृत्त हुआ। उस दृढ़निश्चयी पुरुष के कुछ काल तक महान् प्रयत्न करने पर चिन्तामणि प्रकट हुई। भला, उद्योगी पुरुषों के लिये ऐसी कौन-सी वस्तु है जो सुलभ नहीं हो सकती; क्योंकि यदि अकिंचन भी कष्ट की परवाह न करके अपनी बुद्धि के सहारे कार्य में प्रवृत्त होकर उद्यम करता है तो उसे भी उस कार्य को निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार उस उत्तम मणिराज के प्राप्त होने पर वह यह निश्चय नहीं कर सका कि यह चिन्तामणि ही है। तब घोर दुःख और परिश्रम से उपलब्ध हुई उस चिन्तामणि की उपेक्षा करके वह अपने विस्मययुक्त मन से यों विचार करने लगा-'यह चिन्तामणि है या नहीं है; क्योंकि यदि चिन्तामणि होती तो यह मेरे सामने प्रत्यक्ष नहीं होती। मैं इसका स्पर्श करूँ या न करूँ; कहीं ऐसा न हो कि यह मेरे छूने से अदृश्य हो जाय। निश्चय ही इतने ही समय में उस वास्तविक मणिराज की प्राप्ति नहीं हो सकती; क्योंकि शास्त्रों का कथन है कि उसके लिये जीवनपर्यन्त प्रयत्न करना पड़ता है। भला, मेरी ऐसी उत्कृष्ट भाग्य-सम्पत्ति कहाँ हो सकती है, जो इतने थोड़े काल में सम्पूर्ण सिद्धियों को प्रदान करने वाली उस चिन्तामणि को मैं पा लूँ। मेरी तपस्या तो बहुत थोड़ी है। मैं साधुओं में एक तुच्छ मनुष्य हूँ और दुर्भाग्य का एकमात्र पात्र हूँ। ऐसी स्थिति में सिद्धियाँ मेरे निकट कैसे आ सकती हैं।'

इस प्रकार वह मूर्ख तर्क-वितर्क के हिंडोले में झूलता हुआ बहुत देर तक विचार करता रहा। अन्ततोगत्वा उसने उस मणि के ग्रहण करने का विचार छोड़ दिया; क्योंकि मूर्खता के कारण उसकी बुद्धि मूढ़ हो गयी थी। ऐसा नियम भी है कि जो वस्तु जिसे समय (प्रारब्ध के कारण) प्राप्तव्य नहीं होती, वह उसे उस समय पा नहीं सकता। देखो न, उस दुर्बुद्धि ने प्राप्त हुई चिन्तामणि को

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (R.S.) Jammu Collection

भी उपेक्षा कर दी। इस प्रकार जब वह तर्क-वितर्क करता ही रह गया, तब वह मणि उड़कर वहाँ से अदृश्य हो गयी; क्योंकि अवहेलना करने वाले को सिद्धियाँ उसी प्रकार छोड़ देती हैं, जैसे धनुष से छोड़ा हुआ बाण प्रत्यंचा का परित्याग कर देता है। सिद्धियाँ जब आती हैं, तब वे सभी अभीष्ट पदार्थों को देती रहती हैं, परंतु अवहेलना करने पर जब वे वापस जाने लगती हैं, उस समय वे उस पुरुष की बुद्धि का विनाश कर डालती हैं। इस प्रकार उस चिन्तामणि के अदृश्य हो जाने पर वह पुनः उस उत्तम रत्न की प्राप्ति के लिये यत्नपूर्वक चेष्टा करने लगा; क्योंकि अटल निश्चय वाले मनुष्य अपने कार्य से उद्विग्न नहीं होते। कुछ समय के बाद उसे अत्यन्त कान्तिमान् एक काँच का टुकड़ा दिखायी पड़ा। फिर तो, जैसे मोहग्रस्त अज्ञानी पुरुष मिट्टी को सुवर्ण समझने लगता है, उसी प्रकार उस मूर्ख ने 'यही चिन्तामणि है' यों निश्चय करके उसकी उपादेयता स्वीकार कर ली। उस काँच की मणि को लेकर उसने सोचा कि अब तो इस चिन्तामणि के प्रभाव से मुझे सारी अभीष्ट वस्तुएँ अनायास ही मिल जायँगी, फिर इन धन-सम्पत्तियों को लेकर क्या करना है-ऐसा विचारकर उसने अपनी पहली सम्पत्ति का त्याग कर दिया। उसे विश्वास हो गया कि 'अब तो घर से दूर जाकर इच्छानुसार सम्पत्ति-सम्पन्न होकर मैं सुखपूर्वक जीवन-यापन करूँगा'-ऐसी धारणा करके वह मूर्ख निर्जन कानन में चला गया। वहाँ पहुँचने पर, उसे उस काँच-खण्ड से कुछ मिलनाजुलना तो था ही नहीं, वह भारी विपत्ति में फँस गया। मूर्खता के कारण जैसे दुःख मनुष्य के सामने आते हैं, वैसे दुःख तो भीषण आपत्तियों में फँसने पर, बुढ़ापे से तथा मृत्यु से भी नहीं प्राप्त होते। अतः एकमात्र मूर्खता ही सम्पूर्ण दुःखों की प्राप्ति में कारण है।

भूपाल ! अब यह दूसरा मनोहर उपाख्यान सुनो। साधो ! यह आपके वृत्तान्त के ही अनुरूप है और बुद्धि को परमोत्कृष्ट ज्ञान प्रदान करने वाला है। राजन् ! विन्ध्यगिरि के किसी वन में एक हाथी रहता था, जो बड़े-बड़े यूथपतियों के यूथ का भी अधिपति था। उसके दोनों दाँत बहुत सफेद और लंबे थे तथा वज्र की ज्वाला के समान चमकीले एवं तीक्ष्ण थे। एक बार एक महावत ने उसे चारों ओर से लोहे की श्रृंखला से जकड़कर वैसे ही बाँध दिया, जैसे मुनिवर अगस्त्य ने विन्ध्याचल को और उपेन्द्र ने असुरराज बलि को बाँध

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Sharma (IF) Jammu Collection

दिया था। बँधा तो वह था ही, ऊपर से उसके गण्डस्थलों पर शस्त्रों की मार भी पड़ रही थी, जिससे वह धैर्यशाली गजराज भीषण यन्त्रणा भोग रहा था। उसे बड़ी पीड़ा हो रही थी। इस प्रकार लोहे की जंजीर में बँधे हुए उस गजराज को जब तीन दिन बीत गये, तब उसे बड़ा खेद हुआ और उस बन्धन को तोड़ डालने के लिये तैयार होकर उसने चिंघाड़ना शुरु किया। फिर तो चार ही घड़ी में घोर प्रयास करके उस हाथी ने अपने दोनों दाँतों से बन्धन को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसका शत्रु महावत दूर से ही उसकी बन्धन-छेदन-क्रिया को देख रहा था। जब उस हाथी का बन्धन टूट गया, तब वह महावत पहले एक ताड़ वृक्ष पर चढ़कर वहीं से अंकुश द्वारा हाथी को वश में करने के लिये उसके सिर को लक्ष्य करके कूद पड़ा; परंतु उसके पैर हाथी के सिर पर नहीं पहुँच सके, जिससे वह घबराकर भूमि पर गिर पड़ा।

राजर्षे ! तिर्यग्-योनि में भी प्रकाशमान एवं विशुद्ध गुणों से युक्त साधु-स्वभाव वाले जीव देखे जाते हैं, इसीलिये अपने शत्रुभूत महावत को सामने गिरा हुआ देखकर उस गजराज के हृदय में करुणा उत्पन्न हो गयी। वह सोचने लगा-'यदि मैं इस गिरे हुए को पैरों से कुचल दूँ तो इससे मेरा कौन-सा पुरुषार्थ सिद्ध होगा।' यों विचारकर हाथी ने अपने शत्रुभूत उस महावत के प्राण नहीं लिये। जब वह हाथी वहाँ से जंगल की ओर चला गया, तब महावत उठ बैठा। उसका शरीर और बुद्धि-दोनों स्वप्न थे। हाथी के जाने के साथ-ही-साथ उसकी व्यथा भी दूर हो गयी। इतने ऊँचे ताड़ वृक्ष की चोटी से गिरने पर उसका अंग-भंग नहीं हुआ था। वह पैदल चलने में बड़ा उत्साही था। इस प्रकार जब उस हाथी के शत्रु महावत का प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ और हाथी उसके हाथ से निकल गया, तब उसे महान् दुःख हुआ। वह पुनः यत्नपूर्वक वन में झाड़ियों में छिपे हुए उस हाथी की खोज करने लगा। चिरकाल के पश्चात इसे वही गजराज मिला, जो एक जंगल में वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम कर रहा था। तब उस धूर्त महावत ने, जहाँ वह हाथी बैठा था, उसके समीप ही हाथी के फँसाने योग्य एक गोलाकार गड्डा खोदकर तैयार किया और ऊपर से उसे कोमल लताओं से ढक दिया।

कुछ ही दिनों के बाद जब वह हाथी वन में विहार कर रहा था कि यकायक उसी गड्ढे में जा गिरा। तब उस महावत ने गड्ढे में गिरे हुए उस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हाथी को पुनः सुदृढ़रूप से बाँध दिया, जो आज भी भूगर्भ में पड़ा दुःख भोग रहा है। यदि वह हाथी अपने सामने गिरे हुए शत्रु को पहले ही मार डाले होता तो आज उसे शत्रु द्वारा गर्तबन्धनरूप दुःख की प्राप्ति नहीं हुई होती। जो मनुष्य मूर्खतावश वर्तमान क्रियाओं द्वारा आगामी काल का शोधन नहीं कर लेता, वह विन्ध्यगिरि निवासी गजराज की भाँति ही दुःख का भागी होता है। वह हाथी 'मैं श्रृंखलाबन्धन से मुक्त हो गया हूँ' इतने मात्र से ही संतुष्ट हो गया; परंतु दूर चले जाने पर भी वह पुनः अज्ञानवश बन्धन में पड़ गया। भला, मूर्खता कहाँ नहीं बाधा पहुँचाती अर्थात् सर्वत्र बाधा देती ही है। महात्मन् ! 'बद्ध हुआ भी मैं बन्धनरहित हूँ' इस प्रकार की चित्तगत मूर्खता को ही परम बन्धन समझना चाहिये। अतः उससे छुटकारा पाने के लिये परमात्मा के संकल्प से उत्पन्न सम्पूर्ण त्रिलोकी को परमात्मा का स्वरूप समझना चाहिये। जिसे इस प्रकार का ज्ञान नहीं है और जो मूर्खता में स्थित है, उसके लिये वह स्वयं ही सहसा समस्त बन्धनों का कारण बन जाता है।

उनसठवाँ सर्ग समाप्त

साठवाँ सर्ग

विन्ध्यगिरि निवासी हाथी के उपाख्यान के रहस्य का वर्णन

राजा शिखिध्वज ने कहा–देवपुत्र ! आपने चिन्ता मणि की प्राप्ति तथा विन्ध्यगिरि निवासी गजराज के बन्धन आदि का जो कथाप्रसंग मुझे सुनाया है, उसका अब स्पष्टीकरण कीजिये।

(देवपुत्र के रूप में) चूडाला बोली–राजन् ! मैंने आपको जो विचित्र कथा सुनायी थी, उसका रहस्य भी सुनिये। महीपते ! उसमें जो वह शास्त्रार्थकुशल किंतु तत्वज्ञान में मूर्ख चिन्तामणि का साधक बतलाया गया है, वह तो आप ही हैं। साधो ! अकृत्रिम सर्वस्व–त्याग को चिन्तामणि समझिये, जो सम्पूर्ण दुःखों का अन्त करने वाली है। शुद्ध बुद्धिपूर्वक आप उसी का साधन कर रहे हैं। किंतु निष्पाप राजन् ! वास्तविक शुद्ध सर्वत्याग से ही कुछ प्राप्त किया जा सकता है, कृत्रिम त्याग से नहीं। यद्यपि आपने स्त्री–पुत्र, धन–दौलत और बन्धु–बान्धवों सहित सम्पूर्ण राज्य का परित्याग कर दिया है और अपने देश से बहुत दूर आकर इस आश्रम में अपना निवास स्थान बनाया है तथापि आपके इस सर्वस्व–त्याग में अभी अहंकार का त्याग शेष रह गया है। अभी आपके मन में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ऐसी धारणा बनी हुई है कि यह सर्वस्व त्याग वह महान् अभ्युदयशाली परमानन्द नहीं है। वह तो इससे भी उत्कृष्ट कोई दूसरी महान् वस्तु है, जो चिरकाल की साधना से उपलब्ध होती है। ऐसी चिन्ता करने से धीरे-धीरे जब आपके संकल्प-ग्रहण में पर्याप्त वृद्धि हो गयी, तब वह त्याग कहीं अन्यत्र चला गया। जैसे वायु के स्पन्दन से युक्त वृक्ष का निश्चल रहना असम्भव है, वैसे ही जो थोड़ी-सी भी चिन्ता को अपने हृदय में स्थान देता है, उसका त्याग कैसे सिद्ध हो सकता है ?

राजन् ! चिन्ता ही चित्त कहलाती है। संकल्प तो उस चित्त का दूसरा नाम है। भला, उस चिन्ता के स्फुरित रहते हुए वस्तुतः चित्त का त्याग कैसे सम्भव है ? साधुशिरोमणे ! क्षण भर में ही त्रिलोकी के आधारभूत चित्त के चिन्ताग्रस्त हो जाने पर निरंजन सर्वत्याग की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? आपका प्राप्त किया हुआ चिन्तामणि रूप त्याग, अवहेलना कर देने से आपकी सारी उत्कृष्ट निश्चिन्तता को लेकर चला गया। कमललोचन ! इस प्रकार सर्वत्यागरूपी चिन्तामणि के चले जाने पर आपने अपने संकल्परूपी नेत्रों से देखकर तप रूपी काँच को ही चिन्तामणि समझ लिया। जैसे दृष्टिभ्रम हो जाने पर जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा में वास्तविक चन्द्रमा की भावना हो जाती है, वैसे ही आपने इस दुःखभूत तपस्या में ही दृढ़ ग्राह्यभावना कर ली है। पहले तो आपने मन को वासनाशून्य करके अनासक्त भाव से सर्वत्याग का उपक्रम किया और पीछे वासनायुक्त होकर अनन्त तपस्या की क्रिया स्वीकार ली। इस क्रिया में तो दुःख-ही-दुःख है। साधो ! अब तो आप वर्धमान दुःखों से परिपूर्ण राज्यरूपी फंदे से निकलकर वनवास नामक एक दूसरे सुदृढ़ बन्धन में बँध गये हैं। इस समय आपको शीत, वात और आतप आदि की चिन्ता पहले से दुगुनी हो गयी है। मैं तो यह समझता हूँ कि वनवास के गुण-दोष की जानकारी न रखने वालों के लिये वनवास बन्धन से भी अधिक कष्टप्रद हो जाता है। आपको मिला तो है काँच का टुकड़ा, परंतु आप समझ रहे हैं कि मुझे चिन्तामणि मिल गयी। कमललोचन नरेश ! इस प्रकार मैंने मणि-प्राप्ति के प्रयत्न की कथा के सदृश आपके चरित्र को सम्यक् रूप से आपके सामने प्रकट कर दिया अब आप स्वयं ही अपनी बुद्धि से उस निर्मल बोध्य वस्तु का विचार कीजिये तथा सर्व-त्याग और तपस्या-इन दोनों में आपको जो उत्तम

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Jammu (1 F 8) Jammu Collection

प्रतीत हो, उसे हृदय में धारण करके परिपक्व बनाइये।

राजसिंह ! अब आप पूर्ण तत्वबोध के लिये विन्ध्यगिरि निवासी गजेन्द्र के वृत्तान्त की व्याख्या सुनिये। वह बड़ी ही आश्चर्यजनक है। मैंने विन्ध्याचल के वन में निवास करने वाले जिस हाथी का वर्णन किया था, वही इस भूमि पर आप हैं। उसके जो दो श्वेतवर्ण के दाँत थे, वे ही आपके वैराग्य और विवेक हैं। हाथी को आक्रान्त करने में तत्पर जो वह महावत था, वह आपका अज्ञान है, जो आपको दुःख दे रहा है। राजन् ! जैसे अत्यन्त बलशाली हाथी को निर्बल महावत दुःख दे रहा था, उसी प्रकार, यद्यपि आप अत्यन्त शक्ति सम्पन्न हैं, तथापि मूर्खतारूपी दुर्बल महावत आपको एक दुःख से दूसरे दुःख में तथा एक भय से दूसरे भय में पहुँचा रहा है। जिस वज्र-सदृश सुदृढ़ लोहश्रृंखला से वह हाथी बाँधा गया था, वह श्रृंखला आपका आशापाश है, जिससे आप सिर से पैर तक बँधे हैं। राजर्षे ! आशा लोह की जंजीर से भी बढ़कर भयंकर, विशाल और सुदृढ़ होती है; क्योंकि लोह तो काल पाकर पुराना होने पर नष्ट भी हो जाता है, परंतु आशा-तृष्णा तो दिनोंदिन बढ़ती ही चली जाती है। वहाँ पास ही छिपकर बैठा हुआ जो शत्रु महावत उस हाथी की ओर देख रहा था, वह महावत आपका अज्ञान है, जो एकाकी बँधे हुए आप की ओर क्रीड़ा के लिये आँख लगाये हुए है। साधो ! हाथी ने जो शत्रु द्वारा किये गये श्रृंखला-बन्धन को तोड़ डाला था, वह आपके भोग एवं अकण्टक राज्य के त्याग के समान हैं; क्योंकि शस्त्र और श्रृंखलाबन्धन का तोड़ डालना तो कदाचित् आसान भी हो सकता है, किंतु मन से भोगों की आशा का निवारण करना अत्यन्त दुष्कर है। जैसे हाथी द्वारा बन्धन तोड़ दिये जाने पर महावत ऊपर से गिर पड़ा था, उसी तरह आपके राज्य का परित्याग कर देने पर अज्ञान का पतन हो गया था। जिस समय आप वन के लिये प्रस्थित हुए थे, उसी समय आपने अज्ञान को क्षत-विक्षत कर दिया था, परंतु घायल होकर सामने पड़े हुए उसका मनस्त्यागरूपी महान् खड़ग द्वारा वध नहीं किया। यही कारण है कि वह पुनः उठ खड़ा हुआ और आपके द्वारा की गयी अपनी पराजय का स्मरण करके उसने आपको इस तपःप्रपंच रूपी भीषण गड्ढे में ढकेल दिया ! यदि आपने राज्य-त्याग करते समय ही वैसी दुरवस्था में पड़े हुए अज्ञान का वध कर दिया होता तो वह उसी समय नष्ट हो गया होता,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

फिर वह आपको तपरूपी गर्त में नहीं गिरा पाता। राजन् ! हाथी के बैरी उस महावत ने जो गोलाकार गड्ढे का निर्माण किया था, वह आपके अज्ञान ने तपरूपी सम्पूर्ण दुःखों का गर्त बनाकर आपको समर्पित किया है। वह गड्ढा जो कोमल लताओं से आच्छादित किया गया था, वह आपका तपोदुःख ही स्वल्प गुणों तथा सज्जनों के समागम से आवृत है। नरेश ! इस प्रकार आज भी आप इस अत्यन्त भयंकर तथा दुःखदायक तपरूपी गर्त में बँधे हुए पड़े हैं। भूपाल ! आप गज हैं, आशाएँ जंजीर हैं, अज्ञान शत्रुभूत महावत है, उग्र तपस्या का आग्रह ही गर्त है, भूतल विन्ध्यगिरि है। इस प्रकार मैंने आपका वृत्तान्त हाथी के उपाख्यान द्वारा कह सुनाया, अब आप जैसा करना उचित समझें, वैसा ही कीजिये।

साठवाँ सर्ग समाप्त

इकसठवाँ सर्ग

राजा शिखिध्वज द्वारा अपनी सारी उपयोगी वस्तुओं का अग्नि में झोंकना

(देवपुत्र के रूप में) चूडाला ने कहा-राजर्षे ! चूडाला बड़ी नीति निपुण तथा ज्ञेय वस्तु के ज्ञान से सम्पन्न है, उसने उस समय जिस ज्ञान का उपदेश दिया था, उसे आपने क्यों नहीं स्वीकार किया? वह तत्त्वज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ है तथा जो कुछ कहती और करती है, वह सब सत्य ही होता है; अतः आपको उसके कथन का आदर-पूर्वक पालन करना उचित था। नरेश्वर ! यदि आपने चूडाला के वचन का आदर नहीं किया तो सर्वत्याग का ही पूर्ण रूप से आश्रय क्यों नहीं लिया?

राजा शिखिध्वज बोले-प्रियवर ! मैंने राज्य छोड़ा, घर छोड़ा, धन-धान्य सम्पन्न देश छोड़ा, पत्नी भी त्याग दी; फिर भी आप कहते हैं सर्वत्याग क्यों नहीं किया-इसका क्या कारण है?

(देवपुत्र के रूप में) चूडाला ने कहा-राजन् ! धन, स्त्री, गृह, राज्य, भूमि, छत्र और बन्धु-बान्धव-ये सब आपके तो हैं नहीं; फिर आपका सर्वत्याग हुआ कैसे ? आपका जो सबसे उत्तम भाग है, उसका त्याग तो अभी हुआ ही नहीं। उसका पूर्णरूप से परित्याग कर देने पर ही आप सर्वत्यागी शोकरहित हो सकेंगे। राजा शिखिध्वज बोले-देव ! अच्छा, यदि आप ऐसा मानते हैं कि यह सारा राजपाट मेरा नहीं है तो पर्वत, वृक्ष और लताओं से परिपूर्ण वन तो मेरा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha Collection.

है न ? मैं इसी का परित्याग कर रहा हूँ।

कुम्भ ने कहा-राजन् ! यह पर्वत का तट, वन, गर्त, जल और वृक्ष के नीचे की भूमि-ये सब आपके तो हैं नहीं; फिर आपका सर्वत्याग कैसे सम्पन्न हुआ ? आपका जो सबसे उत्तम भाग है, वह तो अभी बिना त्यागा हुआ ही पड़ा है। उसका पूर्णरूप से त्याग कर देने पर ही आप परम अशोक-पद को प्राप्त कर सकेंगे।

शिखिध्वज बोले-अच्छा, यदि ये वन आदि सारी वस्तुएँ मेरी नहीं हैं तो बावली और चबूतरा आदि से युक्त यह आश्रम ही मेरा सर्वस्व है। मैं इसका अभी त्याग किये देता हूँ।

कुम्भ ने कहा-राजन् ! ये जो वृक्ष, बावली (जलाशय), चबूतरा, गुल्म, आश्रम और लताओं की पंक्तियाँ हैं, इनमें से कुछ भी आपका नहीं है; फिर आपका सर्वत्याग कैसे सिद्ध हुआ ? अभी तो आपका सबसे उत्तम भाग पड़ा ही है, आपने उसका त्याग किया ही नहीं। उसका पूर्णरूप से त्याग कर देने पर ही आपको उत्कृष्ट अशोक-पद मिल सकेगा।

शिखिध्वज बोले-ठीक है, यदि ये सारी वस्तुएँ मेरी नहीं हैं तो ये पात्र आदि तथा मृगचर्म, दीवाल और कुटीर आदि ही मेरे सर्वस्व हैं। मैं इन्हीं को छोड़ रहा हूँ।

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं-रघुनन्दन ! ऐसा कहकर राजा शिखिध्वज ने भाण्ड आदि उन समस्त सामग्रियों को आश्रम से निकालकर एक जगह स्थापित किया, फिर सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी करके अग्नि प्रज्वलित की और उन सभी वस्तुओं को आग में डालकर वे पुनः अपने आसन पर बैठ गये। तत्पश्चात् उन्होंने अक्षमाला तथा मृगचर्म को भी उसी आग में झोंक दिया और कमण्डलु एक श्रोत्रिय ब्राह्मण को दे दिया; क्योंकि ऐसा नियम है कि अपनी जो उत्तम वस्तु हो, उसे या तो किसी महात्मा को दे दें अथवा अग्नि में जला दें। फिर राजा ने अपनी कोमल चटाई को भी चित्तशुद्धि तथा चेतनब्रह्म में विश्राम-प्राप्ति के लिये उसी धधकती आग में फेंक दिया। फिर कुम्भ को सम्बोधित करके वे बोले-'कुम्भ ! जो वस्तु त्याज्य है, उसे सदा शीघ्र-से-शीघ्र त्याग देना चाहिये । साधो मैं त्याग कररहा हूँ; क्योंकि अयोग्य वस्तु को कौन ढोता फिरे।'

इकसठवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

बासठवाँ सर्ग

चित्त त्याग का उपदेश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-राघव ! तदनन्तर राजा शिखिध्वज ने अपनी सूखी फूस की कुटिया को, जो अपने अज्ञानी मन के मिथ्याभूत संकल्प द्वारा कल्पित थी, जलाकर भस्म कर दिया। उन मौजी राजा की बुद्धि समतायुक्त हो गयी थी और मन उद्वेगरहित हो गया था, अतः उन्होंने वहाँ जो कुछ भी सामग्री शेष रह गयी थी, उस सबको क्रमशः जला दिया। यहाँ तक कि उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी लँगोटी और भोजनपात्र तथा भोजन आदि को भी फूँक दिया। जब सूखी लकड़ी के साथ-साथ वे बर्तन आदि सारे पदार्थ आग में जल रहे थे, उस समय जिनका देहमात्र शेष रह गया था वे राजा शिखिध्वज रागरहित हो प्रसन्नतापूर्वक बोले-देवकुमार ! आश्चर्य है, चिरकाल के पश्चात् आपने अपने ज्ञानोपदेश द्वारा मुझे प्रबुद्ध कर दिया, जिससे अब मैं वस्तु-विषयक वासना का परित्याग करके सर्वत्यागी होकर स्थित हूँ तथा केवल, शुद्ध सुख से सम्पन्न और ज्ञानवान् हो गया हूँ। जिसमें ममता-संकल्पप्रयुक्त संग्रहक्रम वर्तमान है, ऐसी यह सामग्री किस काम की। अब तो नाना प्रकार के बन्धनों के हेतुभूत विषय ज्यों-ज्यों प्रक्षीण होते जा रहे हैं, त्यों-त्यों मेरा मन परमानन्द में निमग्न होता जा रहा है। मुझे शान्ति मिल रही है। मैं परमानन्द स्वरूप को प्राप्त हो रहा हूँ और विजयी हो रहा हूँ; अतः अब मैं पूर्ण सुखी हूँ। मेरे सम्पूर्ण बन्धन नष्ट को गये; क्योंकि मैंने सर्वत्याग कर दिया। देवपुत्र ! महान् त्याग करने के कारण अब दिशाएँ ही मेरे लिये वस्त्र हैं और दिशाएँ ही मेरे लिये घर हैं। यहाँ तक कि मैं स्वयं ही दिशाओं के समान स्थित हूँ। अब बताइये और क्या शेष रह गया है?

कुम्भ ने कहा-महाराज शिखिध्वज ! अभी भी आपने सभी वस्तुओं का पूर्णतया त्याग नहीं किया है, अतः सर्वत्याग जन्य परमानन्द की प्राप्ति का व्यर्थ ही अभिनय मत कीजिये। अपने सर्वोत्तम भाग का तो अभी आपने त्याग किया ही नहीं, जिसके पूर्णतः त्याग करने से ही आपको परम अशोक-पद की प्राप्ति हो सकेगी।

शिखिध्वज बोले-देवतात्मज ! अब तो सर्वत्याग में मेरा यह शरीर, जो रक्त-मांसमय तथा इन्द्रिय से युक्त है, शेष रह गया है; इसलिये अब मैं पुनः उठकर बिना किसी विघ्न-बाधा के इस शरीर को गड्ढे में गिराकर विनष्ट कर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mohan Lal Sharma (I F S) Jammu Collection

दूँगा और सर्वत्यागी हो जाऊँगा।

कुम्भ ने कहा–राजा ! इस बेचारे निरपराध शरीर को आप क्यों महान् गर्त में गिराना चाहते हैं? आप तो उस अज्ञानी बैल के सदृश प्रतीत हो रहे हैं, जो कुपित होने पर अपने बछड़े को ही मारता है। यह बेचारा शरीर तो जड़, तुच्छ और मूकात्मा है। सदा ध्यानस्थ–सा बना रहता है। इसने आपका कोई अपराध भी नहीं किया है, अतः व्यर्थ ही आप इसका त्याग मत कीजिये। जैसे वायुद्वारा स्पन्दन (फलादि का पतन) होने पर फलवान् वृक्ष का कोई अपराध नहीं माना जाता, उसी प्रकार सुख–दुःख आदि का अनुभव–स्थानमात्र होने मात्र से शरीर को अपराधी नहीं कहा जा सकता। स्पन्दनशील वायु ही बलपूर्वक फल, पल्लव और पुष्पों को गिराती है, फिर बेचारे साधुस्वभाव वृक्ष का क्या अपराध ? इसी प्रकार साधु शरीर ने साधु आत्मा का कौन–सा अपराध किया है ? कमल लोचन ! साथ ही शरीर का त्याग का देने पर भी आपका सर्वत्याग निष्पन्न हो होगा नहीं; फिर व्यर्थ ही आप इस निरपराध शरीर को गड्ढे में क्यों फेंक रहे हैं ? देह का त्याग कर देने पर सर्वत्याग सिद्ध नहीं होता। जैसे उन्मत्त गजराज वृक्ष को तहस–नहस कर देता है, उसी तरह जिसके द्वारा यह शरीर क्षुब्ध हो उठता है, उस पापात्मा का यदि आप पूर्णतया त्याग करते हैं तभी आप महान् त्यागी हैं। भूपते ! उस पापात्मा का परित्याग कर देने पर देहादि समस्त पदार्थों का अपने–आप त्याग हो जाता है। यदि उसका त्याग नहीं हुआ तो गर्त में गिरकर नष्ट हुआ भी शरीर उस पापात्मा से बारंबार उत्पन्न होता रहेगा।

शिखिध्वज बोले–सौन्दर्यशाली देव ! इस शरीर का संचालन करने वाला वह पापात्मा कौन है? जन्मादि कर्मों का बीज क्या है और किसका त्याग कर देने पर सर्वत्याग सम्पन्न होता है ?

कुम्भ ने कहा–साधुस्वभाव नरेश ! शरीर अथवा राज्य का त्याग कर देने से तथा कुटिया जलाकर भस्म कर देने से सर्वत्याग सम्पन्न नहीं होता, वह तो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सर्वात्मक एवं सर्वव्यापी संकल्प द्वारा सबके एकमात्र कारणभूत सर्वात्मा का परित्याग कर देने पर ही निष्पन्न होगा।

शिखिध्वज बोले-समस्त तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ कुम्भ ! अच्छा यह बतलाइये आपने जिस सर्वथा एवं सर्वदा त्यागने योग्य, सर्वगत एवं सर्वात्मक वस्तु का नाम लिया है, वह सर्वात्मा किसे कहते हैं?

कुम्भ ने कहा-नरेश्वर ! आप चित्त को ही भ्रम, चित्त को ही पापात्मा पुरुष और चित्त को ही जगज्जाल समझिये। यह चित्त ही 'सर्व'-सर्वात्मा कहलाता है। महीपाल ! जैसे वृक्ष का बीज वृक्ष ही होता है, उसी तरह मन ही राज्य, देह और आश्रम आदि समस्त वस्तुओं का बीज है। अतः सबके बीजभूत उस मन का परित्याग कर देने पर सबका त्याग स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। भूपते ! उस मन के त्याग-अत्याग पर ही सर्वत्याग का होना-न-होना निर्भर करता है। राजन् ! ये राज्य अथवा कानन आदि सभी वस्तुएँ चित्तयुक्त अर्थात् चित्त के साथ सम्बन्ध रखने वाले पुरुष के लिये केवल दुःख रूप हैं और जिसका चित्त के साथ सम्बन्ध विच्छेद हो गया है, उसके लिये ही परम सुखस्वरूप हैं। जैसे बीज समय पाकर वृक्षरूप में परिणत हो जाता है, वैसे ही यह चित्त ही जगत् एवं देहादि आकार धारण करके सबमें व्याप्त हो रहा है। जैसे वायु से वृक्ष, भूकम्प से पर्वत और लोहार से धोंकनी संचालित होती है, उसी प्रकार इस शरीर का संचालक चित्त है। राजन् ! इस चित्त को आप समस्त प्राणियों के उपभोगों का, जरा-मरण और जन्म आदि देहधर्मों का तथा महामुनियों के धर्मों का अटूट खजाना ही समझिये। चित्त ही अपने संकल्प द्वारा जगत् तथा देहादि विविध आकार धारण करके सबमें व्याप्त हो रहा है। महीपते इस प्रकार चित्त ही सब कुछ बनता है; अतः उसका त्याग हो जाने पर सारी आधि-व्याधियों की सीमा विनाश करने वाला सर्वत्याग अपने-आप ही सिद्ध हो जाता है। त्याग के तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ राजन् ! चित्त त्याग को ही सर्वत्याग कहा जाता है। महाबाहो ! उसके सिद्ध हो जाने पर विज्ञानानन्दघन सत्य वस्तु का अनुभव अपने-आप ही अवश्य हो जाता है। चित्त का अभाव हो जाने पर द्वैत-अद्वैत आदि सभी भावनाओं का सर्वथा विनाश हो जाता है और एकमात्र शान्त, निर्मल, अनामय परमपद ही शेष रह जाता है। चित्त को इस संसार रूपी धान का खेत कहा जाता है। जैस जल ही तरंगरूप से दीख पड़ता है, वैसे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Jammu Collection

विचित्र चेष्टाओं वाला चित्त ही अपने संकल्प से भाव और अभाव का आकार धारण करने वाले पदार्थों के रूप से परिणत होता है। भूपते ! चित्तविनाशरूपी सर्वत्याग से सर्वदा सभी वस्तुएँ वैसे ही सुलभ हो जाती हैं, जैसे साम्राज्य की प्राप्ति से सांसारिक पदार्थों का समस्त अभाव मिट जाता है। जैसे राज्यादि समस्त वस्तुओं का त्याग कर देने पर आप अवशेष रह गये हैं, वैसे ही सर्वत्याग कर देने पर एकमात्र विज्ञानात्मा ही अवशिष्ट रह जाता है।

राजन् ! सर्वत्यागरूपी रस का आस्वादन कर लेने पर जरा-मरण आदि कोई भी भय पुरुष को बाधा नहीं पहुँचा सकता। निर्मल कान्ति वाले महत्व की प्राप्ति का कारण भी सर्वत्याग ही है। अब आप सर्वत्याग करने के लिये प्रस्तुत हो गये हैं, इसी से आप को बृहत्तम बुद्धिस्थिरता प्राप्त हो रही है। नरेश्वर ! सर्वत्याग परमानन्द स्वरूप है। इसके अतिरिक्त अन्य सब अत्यन्त भीषण दुःख स्वरूप है-यों विचारपूर्वक स्वीकार करके जैसा आप चाहते हों, उसी के अनुसार आचरण कीजिये। सर्वत्याग करने वाले पुरुष के पास प्रारब्धानुसार सभी वस्तुएँ अपने-आप उपस्थित होती हैं। सर्वत्याग के अंदर आत्मप्रसादक ज्ञान वर्तमान रहता है। महाराज ! सर्वत्याग सारी सम्पत्तियों का आश्रय स्थान है, इसीलिये जो कुछ भी ग्रहण नहीं करता, उसे सब कुछ दिया जाता है। भूपते ! सर्वत्याग करके आप शान्त, स्वस्थ, आकाश के समान निर्मल एवं सौम्य आदि जिस रूप में होना चाहते हैं, उस रूप में हो जाइये। महीपाल ! पहले आप सारी वस्तुओं का परित्याग कर दीजिये। तदनन्दर जिस मन से उनका त्याग किया है, उस मन का भी लय कीजिये; फिर त्याग-अभिमानरूपी मल से भी रहित होकर जीवन्मुक्त स्वरूप हो जाइये।

बासठवाँ सर्ग समाप्त

तिरेसठवाँ सर्ग

चित्तरूपी वृक्ष को मूल सहित उखाड़ फेंकने का उपाय

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! इस प्रकार चित्त के परित्याग का उपाय कुम्भ ऋषि के बतलाने पर अपने अन्तःकरण में बार-बार विचार करते हुए वे सौम्य राजा शिखिध्वज यह वचन बोले।

राजा शिखिध्वज ने कहा-मुने ! जाल जैसे व्याकुल मछली को पकड़ लेता है, वैसे ही इस चित्त को पकड़ लेना तो मैं जानता हूँ, परंतु इस का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

त्याग मैं नहीं जानता। भगवन् ! सबके पहले तो आप मुझे चित्त का क्या स्वरूप है, यह ठीक-ठीक कहिये। इसके बाद प्रभो ! चित्त के परित्याग की यथावत् विधि बतलाइये।

कुम्भ बोले-महाराज ! वासना को ही चित्त का स्वरूप समझिये। उसका त्याग अत्यन्त सुगम और सुखसाध्य है। राज्य की अपेक्षा उस त्याग में अधिक आनन्द है और पुष्प की अपेक्षा वह अधिक सुन्दर है। मूर्ख के लिये तो चित्त का परित्याग करना उतना ही दुःखसाध्य है, जितना कि पामर के लिये साम्राज्य प्राप्त करना।

राजा शिखिध्वज ने कहा-मुने ! आपके वचन से चित्त का स्वरूप वासनामय है, यह तो जानता हूँ, परंतु उसका परित्याग वज्र को निगल जाने की अपेक्षा भी अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ। यह चित्त संसाररूपी सुगन्धित पुष्प है, दुःखरूपी दाहजनक अग्नि है तथा शरीररूपी यन्त्र का संचालक है। इसका अनायास त्याग जिस तरह होता हो, वह बतलाइये।

कुम्भ बोले-साधो ! इस चित्र का सर्वथा नाश ही संसार का भी नाश है, वही चित्त का अच्छी प्रकार से त्याग है-ऐसा दीर्घदर्शी महात्माओं ने कहा है।

राजा शिखिध्वज ने कहा-मुने ! परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति रूप सिकद्ध के लिये मैं चित्त-त्याग की अपेक्षा तो चित्त का विनाश ही विशेष अच्छा समझता हूँ, परंतु सैकड़ों व्याधियों के मूल इस चित्त का अभाव कैसे होता है?

कुम्भ बोले-राजन् ! शाखा, फल और पल्लवों से युक्त चित्त रूपी वृक्ष का अहंकार ही बीज है। अतः आप उस वृक्ष को मूलसहित उखाड़ फेंकिये और अपना हृदय आकाश में सदृश निर्मल बना डालिये।

राजा शिखिध्वज ने कहा-मुने ! चित्त का मूल क्या है, अंकुर क्या है और इस का कौन-सा खेत है, इसकी शाखाएँ और स्कन्ध कौन हैं तथा यह मूलसहित कैसे उखाड़ कर फेंक दिया जाता है?

कुम्भ बोले-महामते ! यह अहंकार ही इस चित्तरूपी वृक्ष का बीज (मूल) है, इसे आप जान लीजिये। परमात्मा की माया ही इस मायामय संसार का खेत है। इसलिये इस चित्त का भी वह परमात्मा की माया ही खेत है। इस प्रथम उत्पन्न मूल से अनात्म देह में आत्मविषयक निश्चय (बुद्धि) ही इसका अंकुर है। जो निराकार निश्चयात्मक समझ है, वहीं बुद्धि कही जाती है। इस बुद्धि नामक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mukesh Sharma (I.T.S) Jammu Collection

अंकुर की जो संकल्पस्वरूप स्थूलता उत्पन्न होती है, उसका चित्त और मन नाम पड़ा हुआ है। ये इन्द्रियाँ ही इस चित्त रूपी वृक्ष की दूरतक फैली हुई लंबी विस्तृत शाखाएँ हैं और जन्म-मरणात्मक हजारों अनर्थों के कारण शुभ और अशुभ रूप फलों से परिपूर्ण जो तुच्छ विषयभोग हैं, वे इसकी बड़ी-बड़ी अवान्तर शाखाएँ हैं। इस तरह के इस कठिन चित्त रूपी वृक्ष की शाखाओं (विषयभोगों में आसक्ति का) वैराग्य से प्रतिक्षण छेदन करते हुए आप उसके अहंकाररूप मूल को उखाड़ फेंक देने वाले सच्चिदानन्द परमात्मा के चिन्तन में पूर्ण प्रयत्न कीजिये।

राजा शिखिध्वज ने कहा-मुने ! चित्तरूपी वृक्ष की शाखा आदि का छेदन करता हुआ मैं उसके मूल को अशेष रूप से किस तरह उखाड़ फेंकूँ ?

कुम्भ बोले-राजन् ! फल और स्पन्दन आदि से युक्त विविध वासनाएँ चित्त रूपी वृक्ष की शाखाएँ हैं। तीव्र विवेक-वैराग्य के द्वारा वे वासनारूपी शाखाएँ नष्ट हो जाती हैं; क्योंकि जिसका मन किसी विषय में आसक्त नहीं है, जो मौनी और तर्क-वितर्क से रहित है तथा जो न्याय से प्राप्त हुए कार्य का शीघ्र सम्पादन कर लेता है, उस पुरुष का चित्त नष्ट हो जाता है। जो पुरुष अपने पुरुषार्थ से चित्तरूपी वृक्ष की शाखाओं को काटता रहता है, वह मूल का भी उच्छेद करने में समर्थ हो जाता है। चित्त वृक्ष की शाखाओं का छेदन करना तो गौण है और मूल का छेदन करना प्रधान है, इसलिये आप अहंकाररूप मूल का उच्छेद करने में तत्पर हो जाइये। महाबुद्धे ! मुख्यरूप से इस चित्तरूपी वृक्ष को मूल सहित जला डालिये। ऐसा करने पर अचित्तता हो जायेगी।

राजा शिखिध्वज ने कहा-मुने ! अहंभावात्मक चित्तरूपी बीज (मूल) को जलाने में कौन-सी अग्नि समर्थ होगी?

कुम्भ बोले-राजन् ! 'मैं कौन हूँ' इस विषय का विवेक-विचारपूर्वक यथार्थ ज्ञान की चित्तरूपी वृक्ष के मूल को जलाने की अग्नि कही गयी है।

राजा शिखिध्वज ने कहा-मुने ! इस विषय में मैंने अनेक बार अपनी बुद्धि से अच्छी तरह विचार कर लिया है-मैं अहंकार नहीं हूँ और न पृथ्वी और उसके अन्तर्गत वनमण्डलादि से मण्डित जगत् ही हूँ। जड़ होने के कारण पर्वत का तट, विपिन, पत्र, स्पन्दन आदि और देहादि मैं नहीं हूँ तथा मांस, हड्डी और रक्त आदि भी मैं नहीं हूँ। मैं न तो कर्मेन्द्रिय हूँ। जड़ होने के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कारण मन-बुद्धि भी मैं नहीं हूँ। जैसे नेत्रदोष से आकाश में प्रतीत होने वाला वृक्ष आकाश से भिन्न नहीं है, वैसे ही परमात्मा के संकल्प से उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण पदार्थ परमात्मा से भिन्न नहीं हैं, परमात्मा के ही स्वरूप हैं। भगवन् ! इस तरह अहंकाररूपी मलका परिमार्जन जानता हुआ भी मैं अन्तर्यामी परमात्मा को नहीं जान सका हूँ। इसलिये मैं रात-दिन चिन्ता से जल रहा हूँ। इस चित्त रूपी वृक्ष के बीज अहंकाररूप मल का त्याग करना मैं नहीं जानता हूँ; क्योंकि बार-बार त्याग करने पर भी मैं उससे छुटकारा नहीं पा सका हूँ। मुने ! शरीर आदि में अहंताभिमानरूप जो दोष है उसका कारण शरीर आदि का परिज्ञान ही है, यह मैं जानता हूँ। मुनीश्वर ! वह जिस उपाय से शान्त हो जाय, वह उपाय मुझसे कहिये। यह अहंभाव जीवात्मा को विषयों की ओर आकृष्ट करता है, जिससे दुःख ही प्राप्त होता है । इसलिये उस दुःख की शान्ति के लिये विषय-भोगरूपी दृश्यवर्ग का जिस उपाय से अभाव होता हो, वह मुझसे कहिये। मुने ! जिस पदार्थ का प्रत्यक्षात्मक कोई एक स्वरूप उपलब्ध हो रहा है, वह असत्-स्वरूप कैसे है? हाथ, पैर आदि से संयुक्त तथा क्रिया-फलस्वरूप विलास आदि से समन्वित हमलोगों से सदा अनुभूत होनेवाला यह शरीर मिथ्या कैसे है?

कुम्भ ने कहा-भूमिपाल ! इस संसार में वास्तव में जिस कार्य का कारण विद्यमान नहीं है, वह कार्य भी अपना अस्तित्व नहीं रखता, फिर उसका ज्ञान तो विभ्रम ही है। बिना कारण के यह शरीररूपी कार्य नहीं रह सकता। जिस द्रव्य का बीज नहीं है, उसकी उत्पत्ति कहाँ कभी होती है ? अर्थात् कभी नहीं। बिना कारण के जो कार्य सामने सत् की भाँति प्रतीत होता है उसे मृगतृष्णा जल के सदृश, देखने वाले मनुष्य के भ्रम से विद्यमान शरीर आदि को आप अविद्यमान ही जानिये; क्योंकि अत्यधिक यत्नशील मनुष्य को भी यह मृग तृष्णा जल प्राप्त नहीं होता। राजन् ! शरीर आदि अस्थिपंजररूपी यह कार्य बिना कारण के ही अनुभूत हो रहा है। इसलिये वास्तव में किसी से उत्पन्न न होने के कारण इसे अविद्यमान ही जानिये।

राजा शिखिध्वज बोले-मुनीश्वर ! हाथ, पैर आदि से युक्त प्रतिदिन दिखायी देने वाले इस शरीर का भला पिता कारण कैसे नहीं है ?

कुम्भ ने कहा-राजन् ! कारण रूप पिता का भी अभाव होने से वास्तव में पिता भी कारण नहीं है। जो पदार्थ असत् से उत्पन्न होता है, वह असत् ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshagundam (1.4.5) Jammu Collection

है। कार्यभूत पदार्थों का कारण बीज कहा जाता है। इसलिये जिस कार्य का कारण नहीं है, वह कार्य भी कारणरूप बीज का अभाव रहने से नहीं है। मनुष्य को जो उसका ज्ञान होता है वह तो बिलकुल विभ्रम है। अवश्य ही जो वस्तु बीज रूप कारण से रहित है, वह है ही नहीं। अतः उसका जो मनुष्य को ज्ञान होता है, वह नेत्र-दोष से दीखने वाले दो चन्द्रमा, मरुभूमि में जल और वन्ध्यापुत्र के समान बुद्धि का भ्रम ही है-मिथ्या है।

तिरेसठवाँ सर्ग समाप्त

चौंसठवाँ सर्ग

जगत् का अत्यन्ताभाव

राजा शिखिध्वज ने पूछा-मुने ! ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त जो कुछ यह संसार भासित होता है वह यदि भ्रमरूप ही है तो फिर वह दुःखदायी कैसे है ?

कुम्भ बोले-राजन् ! वास्तव में पितामह की भी सत्ता नहीं है, फिर उनके द्वारा निर्मित प्रपंच की सत्ता हो ही कैसे सकती है। जो वस्तु असत् वस्तु से सिद्ध की जाती हो, वह त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं हो सकती। यह जो भूत-सृष्टि दिखायी पड़ती है, वह मृगतृष्णा जाल के सदृश मिथ्या ही उदित हुई है, इसलिये शुक्ति में रजत ज्ञान के सदृश विचार से ही उसका विलय हो जाता है। कारण का अस्तित्व न होने से कार्य की सत्ता हो ही नहीं सकती। जो असत् कारण से असत् कार्य की उत्पत्ति प्रतीत होती है, उसका स्वरूप मिथ्या ज्ञान के अतिरिक्त और कोई दूसरा हो ही नहीं सकता। मिथ्या ज्ञान के कारण दिखायी पड़ने वाला पदार्थ किसी काल में भी अस्तित्व नहीं रख सकता, क्या कहीं किसी ने मृगतृष्णा-जल से घड़े भरे हैं ? राजा शिखिध्वज ने कहा-मुनिवर ! अनन्त, अजन्मा, अव्यक्त, आकाश की तरह निराकार, अविनाशी, शान्त, परब्रह्म परमात्म सृष्टि के आदिरचयिता ब्रह्मा का कारण क्यों नहीं है ?

कुम्भ बोले-राजन् ! वास्तव में शुद्ध निर्विशेष अद्वितीय ब्रह्म न तो कार्य है और न कारण ही है; क्योंकि निर्विकार होने से उसमें कारणत्व और कार्यत्व का अभाव है। इसलिये वस्तुतः ब्रह्म न कर्ता है, न कर्म है और न कारण ही है। उसका न कोई निमित्त है और न कोई उपादान है। वह तर्क का विषय नहीं है; अतः वह अविज्ञेय है। जो अतर्क्य, अविज्ञेय, शान्त, विकार-शून्य और कल्याणरूप है, उसमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व किस तरह, किसका, किससे और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

किस समय होगा ? अतः यह जगत् वास्तव में किसी से उत्पन्न नहीं है और न इसकी सत्ता ही है। इसलिये आप न कर्ता हैं और न भोक्ता हैं; किंतु सब कुछ शान्त, अजन्मा, कल्याणमय ब्रह्म ही है। वास्तव में कारण की सत्ता ही नहीं है। इसलिये यह जगत् किसी का भी कार्य नहीं है; क्योंकि कारण का स्वरूप न रहने से जो कार्यस्वरूप दिखायी देता है, वह केवल भ्रम से ही है। किसी का कार्य न होने से इस सृष्टि का तीनों कालों में अत्यन्त अभाव है। यह जगत् जब किसी भी कारण का कार्य नहीं है, तब अनायास समस्त पदार्थों का मिथ्यात्व सिद्ध हो जाता है। पदार्थों का मिथ्यात्व सिद्ध हो जाने पर फिर ज्ञान किसका और जब ज्ञान का ही अभाव सिद्ध हो गया, तब अहंकार का कोई कारण ही नहीं रहता। इसलिये राजन् ! आप शुद्ध मुक्त ही हैं। फिर बन्धन और मोक्ष की बात ही क्या है ?

राजा शिखिध्वज ने कहा-भगवन् ! मैं वास्तविक तत्त्व को जान गया। आपने बहुत ही उत्तम और युक्तियुक्त कहा है। मैं यह भी समझ गया कि कारण का अभाव होने से ब्रह्म भी जगत् का कर्ता नहीं है। अतः कर्ता के अभाव से जगत् का अभाव है और जगत् के अभाव से पदार्थ का अभाव है। इससे उसके बीच चित्त आदि का भी अभाव है और इसी से अहंता आदि की भी सत्ता नहीं है। इस प्रकार की स्थिति होने पर मैं विशुद्ध ही हूँ, सर्वज्ञ हूँ और कल्याण स्वरूप हूँ; क्योंकि परमात्मा ने भिन्न दृश्य विषय कुछ है ही नहीं, यह आपने मुझे समझा दिया। इसलिये सब पदार्थों का स्वरूप जान लेने पर 'अहम्' आदि से लेकर अन्त तक के जितने दृश्य पदार्थ हैं, वे सब असद्रूप ही भासते हैं; इसलिये मैं आकाश की भाँति शान्त हुआ समभाव से नित्य स्थित हूँ। अहो ! देश, काल, कला एवं क्रियाओं से युक्त जो जगत् के पदार्थों की नाना दृष्टि थी, वह दीर्घकाल के अनन्तर शान्त हो गयी अर्थात् मुझे दृश्य जगत् का अभाव का ज्ञान हो गया। अब केवल अविनाशी शान्त ब्रह्म ही स्थित है। अब मैं शान्तिमय मुक्तस्वरूप और परिपूर्ण हूँ। मैं क्रिया, उत्पत्ति और विनाश से रहित हूँ। मैं अतिशय शुभ, कल्याणस्वरूप विशुद्ध परमात्मस्वरूप हूँ।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! राजा शिखिध्वज पूर्वोक्त रीति से परब्रह्म में विश्राम पाकर दो घड़ी तक वायुरहित स्थान में दीपशिखा की तरह निश्चल तथा शान्तचित्त हो गये। फिर जब राजा शिखिध्वज निर्विकल्प समाधि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

में स्थित थे, तब अपनी सहज लीलाभरी वाणी से कुम्भ ने उन्हें तत्काल जगाया।

कुम्भ ने कहा–राजन् ! अब आप अज्ञानरूपी निद्रा से जाग गये हैं और कल्याणरूप होकर स्थित हैं। प्रिय ! जब परमात्मा का एकबार स्पष्टरूप से अनुभव हो जाता है, तब उसके लिये समस्त अनिष्टकारक पदार्थों का अभाव हो जाता है। अतः अब आप समस्त कल्पनारूपी दोषों से रहित हो जीवन्मुक्त बन गये हैं।

चौंसठवाँ सर्ग समाप्त

पैंसठवाँ सर्ग

शिखिध्वज को शान्ति का प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–श्रीराम ! जब मुनिश्रेष्ठ उस कुम्भ ने राजा शिखिध्वज को इस तरह समझाया, तब वे ज्ञानी हो गये और महामोह से रहित हो शोभा पाने लगे।

(तब) कुम्भ ने कहा–महाराज ! मैंने पहले जिस आत्मतत्त्व का उपदेश दिया था, उसे ग्रहणकर अज्ञानरूपी आवरण से मुक्त हो जाने के कारण आप देदीप्यमान होकर खूब शोभा पा रहे हैं। अब आपको जानने के लिये जो यह कुछ बच गया है, उसे सुनिये। राजन् ! यह जो कुछ भी स्थावर, जंगम नानाविध आकार–प्रकार से भरा हुआ जगत् दिखायी पड़ता है, वह सब कल्प की समाप्ति में विनष्ट हो जाता है। तदनन्तर जब महाकल्प की लीला समाप्त हो जाती है, तब एकमात्र प्रसन्न, गम्भीर, सर्वव्यापक सच्चिदानन्द परमात्मा ही अवशिष्ट रह जाता है। वह परमात्मा केवल चिन्मय, विशुद्ध, शान्त, परम अनन्त, सम्पूर्ण कल्पनाओं से रहित और परम दिव्य ज्ञान स्वरूप है। वह तर्क रहित, अविज्ञेय, समस्वरूप, कल्याणमय, निन्दारहित, ज्ञान से परिपूर्ण एवं निर्वाण ब्रह्मस्वरूप है। इसलिये राजन ! परमात्मा से भिन्न कोई भी दूसरी कल्पना इस संसार में है ही नहीं। आपको जो निर्मल परमात्मतत्त्व ज्ञात हुआ है, वही परिपूर्ण और अविनाशी ब्रह्म है। सम्पूर्ण आकार–प्रकारों से युक्त हो प्रकट हुआ–सा वह सर्वस्वरूप होकर सदा ही स्थित रहता है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से अगम्य होने के कारण वह अनिर्वचनीय, अति उत्तम और विलक्षण पदार्थ है। वह सर्वस्वरूप परमात्मा सबका आत्मा है। वह अति सूक्ष्म, शुद्ध तथा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अनुभव स्वरूप है। वह वास्तव में न कर्ता है, न कर्म है और न कारण ही है। वह सत्-चित्-आनन्दमयपरमात्मा अविनाशी, अगम्य तथा स्वयं अनुभवस्वरूप है। यह जगत् यथार्थ से जान लिये जाने पर परम कल्याण कारक हो जाता है; क्योंकि यह परमात्मा के संकल्प से उत्पन्न होने के कारण परमात्मा का स्वरूप ही है। किंतु यदि जगत् यथार्थरूप से न जाना गया तो वह भयंकर दुःख देने वाला और अकल्याण कारक होता है। जैसे अग्नि चित्र-विचित्ररूप से आविर्भूत हुई भी वास्तव में वह अपने ही स्वरूप से रहती है, वैसे ही संकल्प से अन्यान्य रूपों में आविर्भूत हुई भी ब्रह्मसत्ता अपने यथार्थ ब्रह्म रूप से ही स्थित रहती है। वास्तव में जगत् का कोई भी कारण नहीं है; अतः इसका तीनों कालों में अत्यन्त अभाव है। ब्रह्म ही जगत के रूप में प्रतीत होता है।

कुम्भ ने कहा-महाराज ! अपनी ही सत्ता में स्थित ब्रह्म वास्तव में तो न किसी का उपादान कारण है और न किसी का निमित्त कारण है। वह केवल विशुद्ध अनुभव रूप है। अनुभवरूप उससे भिन्न दूसरा कुछ भी पदार्थ नहीं है। जो कुछ अहंता आदि जगत् प्रतीत होता है, वह भी ब्रह्म का संकल्प होने के कारण अनन्त ब्रह्मरूप ही है।

राजा शिखिध्वज बोले-मुनिवर ! मैं मानता हूँ कि कल्याणमय परमात्मा में वास्तव में अहंतादि जगत् नहीं है; परंतु उसमें जो जगत् का ज्ञान होता है, वह किस कारण से होता है, इसे शीघ्र मुझसे कहिये।

कुम्भ ने कहा-साधो ! असीम जगत् का विस्तार करने वाला जो अनादि-अनन्त ब्रह्म है, वही अपने संकल्प से जगत् और जगत् के ज्ञान के सदृश बनकर अवस्थित है; इसीलिये वही जगत-स्वरूप कहा जाता है। जिस प्रकार जल में रस सारवस्तु है, उसी प्रकार सब पदार्थों की सारवस्तु परमात्मा ही है। यदि शान्त ब्रह्म रूप पद जगत् का कारण माना जाय तो फिर निष्क्रिय, अगम्य, अतर्क्य आदि शब्दों से जो ब्रह्म का वर्णन किया गया है, वह कैसे सिद्ध होगा ? इन सब युक्तियों से यह निश्चित होता है कि वास्तव में वह ब्रह्म किसी भी कार्य का न निमित्त कारण है और न उपादान कारण ही है, अतः इस सृष्टि का अस्तित्व किसी काल में है ही नहीं। चिन्मय परमात्मा के अतिरिक्त इस सृष्टि की दूसरी कोई सत्ता है ही नहीं, जिससे कि उसका वर्णन किया जाय। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि जड़ दृश्य जगत् की सत्ता है ही नहीं। जो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

भी कुछ यह दीखता है, वह एक तरह से चैतन्यघन ही अपने संकल्प से स्फुरित हो रहा है। वही अहंभाव, जगत् आदि शब्द और शब्दार्थ रूप रसों से युक्त सा होकर भासता है। घट, पट आदि जागतिक वस्तु चिन्मय नहीं हो सकती, क्योंकि जागतिक वस्तुओं का नाश अवश्यम्भावी है। साधो ! 'यह चेतन है और यह जड़ है'–इस प्रकार की जो कल्पना होती है वह केवल चित्त की चंचलता है, दूसरा कुछ भी नहीं है। संसार में केवल चेतनतत्त्व ब्रह्म की ही सत्ता है। द्वित्व और एकत्व कुछ नहीं है, केवल कल्पनामात्र है। राजन् ! इसलिये जगद्रूप पदार्थों की सत्ता का अभाव होने पर उनकी भावना की असत्ता अनायास सिद्ध हो जाती है। सम्पूर्ण भावनाओं की असत्ता होने पर तो आपकी अहं भावना का अस्तित्व कैसे रह सकता है ? अहंभाव का अभाव होने पर फिर दूसरा बचता ही कौन है जिसे कि चित्त कहा जाय। इसलिये चित्त ही अहंरूप है। अहमर्थ से भिन्न दूसरा चित्त नामक पदार्थ है ही नहीं और जीव–ब्रह्म भेद तथा द्रष्टा और दृश्य का भेद भी नहीं है। अतः वासना से रहित, शान्त–मन से युक्त और मौनी हो जाने पर आप अनन्त सच्चिदानन्दमय हो जाते हैं। शुद्ध चैतन्य दृष्टि के सम्बन्ध से जड़ पदार्थ की कदापि सिद्धि न होने के कारण, जड़ पदार्थों की भावना का भी अभाव हो जाने से भावना–जनित जीवरूप नहीं रहता, केवल स्वयं परमात्मा ही रहता है। 'सब ब्रह्म स्वरूप ही है' इत्यादि वेदार्थ भावना से जनित ब्रह्म साक्षात्कार द्वारा केवल चिन्मय ब्रह्म के ही प्रकाशित हो जाने पर फिर शोक कहाँ ? फिर तो, शोक का अत्यन्त अभाव हो जाता है। समस्त द्वैत का बाध हो जाने पर एक ब्रह्म रूप ही रह जाता है। वह ब्रह्म विशुद्ध, कारणशून्य, शाश्वत एवं आदि और मध्य से रहित है।

पैंसठवाँ सर्ग समाप्त

छियासठवाँ सर्ग

चित्त और संसार के अत्यन्त अभाव का तथा परमात्मा के भाव का निरूपण

कुम्भ कहते हैं–राजन् ! चित्त नाम का पदार्थ किसी काल में, किसी देश में या किसी वस्तु रूप में कहीं है ही नहीं। यह जो चित्त–सा प्रतीत हो रहा है, वह अविनाशी ब्रह्म ही है। सम्पूर्ण चित्त आदि प्रपंच अज्ञानात्मक है, इसलिये उसका अस्तित्व ही नहीं है; क्योंकि जो अज्ञानात्मक वस्तु रहती है, उसका ज्ञान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

से बाध हो जाता है। अतः अधिष्ठान ब्रह्म में अहम्, त्वम्, तत् इत्यादि कल्पनाएँ कैसे रह सकती हैं ? जो कुछ भी यह प्रकट जगत् है, वह कुछ है ही नहीं। सब ब्रह्म ही है; अतः कौन किसको कैसे जाने ? प्राकृत प्रलय के अनन्तर सृष्टि के आरम्भ में जो यह चित्त आदि जगत् उत्पन्न प्रतीत होता है, वह वास्तव में है ही नहीं। मैंने 'यह चित्त-सा मालूम पड़ता है', इत्यादि रूप से जो कहीं-कहीं निर्देश किया है, वह केवल आपके बोध के लिये ही किया है। उपादान आदि कारणरूप से जो प्रसिद्ध हैं, उनका भी अस्तित्व नहीं है और जितने भाव रूप से प्रसिद्ध हैं, उनका भी अस्तित्व नहीं है, इसलिये इस असत् जगत् का ब्रह्म कारण नहीं है; क्योंकि अज्ञानजनित भ्रान्ति रूप ही जगत् है, इसलिये उसकी किसी काल में सत्ता ही नहीं है। अतः यह जो दिखायी पड़ता है, वह भासनात्मक ब्रह्म ही है, दूसरा नहीं। जो देव नाम और रूप से रहित है, उस ब्रह्मरूप देव के विषय में यह कहना कि यह देव इस मिथ्या जगत् का निर्माण करता है, वास्तव में न तो युक्तिसंगत है, न सत्य है और न अद्वैतवादियों का वैसा अनुभव ही है। राजन् ! इसी प्रयोग से चित्त का अस्तित्व नहीं है; क्योंकि जब जगत् का ही अस्तित्व नहीं है, तब जगत् के अन्तर्गत चित्त का अस्तित्व कैसे हो सकता है ? चित्त तो वासनामात्र रूप है। वासना तब होती है, जब कि वासना का विषय रहे। परंतु वासना का विषय जो जगत् है, वह तो स्वयं असत् है, अतः चित्त का अस्तित्व ही कहाँ है ? वास्तव में तो कारण के अभाव से ही यह दृश्य वासना का विषय जगत उत्पन्न ही नहीं हुआ है; फिर चित्त आया ही कहाँ से ?

अतः केवल चिन्मय विशुद्ध विज्ञानस्वरूप परमात्मा ही अपने संकल्प से स्फुरित हो रहा है, इसलिये उससे भिन्न जगत् की सत्ता कहाँ से आयी ? समस्त अनर्थों को उत्पन्न करने वाला अहम्, त्वम्, जगत् इत्यादि जो यह अनुभव होता है, वह वास्तविक नहीं है; स्वप्न के सदृश मिथ्या ही है। वासना के विषय जगत् की असत्ता होने से वासना की सत्ता नहीं है, इसलिये फिर वासनात्मक चित्त ही कैसा, कहाँ, किससे और किस तरह से हो सकता है ? जो परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से रहित हैं, वे अज्ञानी ही चित्त और इस दृश्य जगत् को सत्य समझते हैं। वस्तुतः चित्त असत् है, उसका कोई आकार नहीं है और न वह उत्पन्न ही हुआ है। क्योंकि लोक, शास्त्र और अनुभव से दृश्य वस्तु

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

में अनादिता, अजता और स्थिरता सम्भव नहीं है। जिसकी बुद्धि में लोक, शास्त्र और वेद प्रमाण नहीं हैं, वह अत्यन्त मूर्ख है। अतः सज्जन को उसके कथन का कभी अवलम्बन नहीं करना चाहिये। वास्तव में शास्त्रीय बोध से सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है। न तो कहीं जगत् आदि का ज्ञान है, न कहीं चित्त का ही भाव है और न अभाव है न कहीं द्वैत है, न कहीं अद्वैत ही है। यह समस्त जगत् आश्रय रहित, परम शान्त, अजन्मा अनादि परमात्म रूप ही है। किंतु यह जो अज्ञानियों द्वारा देखे गये रूप से युक्त जगत् है, वह न नाना है और न अनाना ही है। अतः आप मौन व्रत धारण करके काठ के सदृश स्थित रहिये।

राजा शिखिध्वज ने कहा–महामुने ! आपकी दया से मेरा मोह नष्ट हो गया। मुझे ब्रह्म के स्वरूप की स्मृति प्राप्त हो गयी, मेरा संदेह दूर हो गया। मेरी बुद्धि परम विश्राम को प्राप्त हो गयी, अब मैं आत्मवान् होकर स्थित हूँ। अब मैंने ज्ञेय वस्तु परमात्मा के स्वरूप का अनुभव कर लिया, मैं महामौनी हो गया, मायारूपी महासमुद्र को पार कर गया; अब मैं शान्त हूँ, मैं अहंकार स्वरूप नहीं हूँ, आत्मज्ञानी बनकर सम्पूर्ण विकारों से रहित होकर अवस्थित हूँ। अहो ! अति चिरकाल तक मैं भवसागर में परिभ्रमण करता रहा। परंतु अब मैं क्षोभ रहित अक्षय परम पद को प्राप्त हो गया हूँ। मुने ! इस तरह अवस्थित होने पर मूर्खों के माने हुए अहंता सहित ये भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों जगत् नहीं हैं। जो कुछ यह भासित हो रहा है, उसे ब्रह्म का संकल्प होने के कारण मैं ब्रह्म रूप ही समझता हूँ।

कुम्भ बोले–राजन् ! आपका कथन सत्य है। जिस चिन्मय परमात्मा में वस्तुतः यह जगत् ही नहीं है, वहाँ आकाश में बिना हुए प्रतीत होने वाले गन्धर्व नगर के समान इस तरह का 'अहं, त्वम्' आदि अनुभव कैसा, कहाँ, किस निमित्त से और किस प्रकार हो सकता है ? जैसे कड़ा, कुण्डल आदि भावना के शान्त हो जाने पर सुवर्ण मात्र अवशिष्ट रह जाता है, वैसे ही जगदादि भावनाओं के शान्त हो जाने पर एकमात्र ब्रह्म ही अवशिष्ट रह जाता है। 'देह आदि मैं हूँ' इस तरह की भावना अत्यन्त विनाश कारक बन्धन के लिये होती है तथा 'देहादिरूप मैं नहीं हूँ' इस तरह की भावना विशुद्ध मोक्ष के लिये होती है। अहंकार–ज्ञान का अभाव मोक्ष है तथा अहंकार–ज्ञान ही बन्धन है। इसलिये राजन् ! 'मैं वह साक्षात् ब्रह्म ही हूँ, अहंकार मैं नहीं हूँ' इस प्रकार के शुद्ध

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कैवल्यात्मक बोध से युक्त होकर आप आत्मवान् हो जाइये। जिस तरह समुद्र तरंग आदि वास्तव में जल मात्र ही है, उसी तरह ब्रह्म में संसार और संसार के पदार्थ परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होने पर एकमात्र परमात्म स्वरूप ही हैं। यह सृष्टि ही सृष्टि शब्द के अर्थ से रहित परब्रह्म है और परब्रह्म ही सृष्टि है; क्योंकि यही शाश्वत परब्रह्म 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस श्रुति वाक्यका अर्थ है। समस्त शब्द और उनके अर्थ की भावना का जहाँ अभाव है, वह शुद्ध, नित्य, चेतन, अनन्त परमात्मा ही ब्रह्म शब्द से कहा जाता है; क्योंकि परमात्मा का यथार्थ अनुभव हो जाने पर जब शब्द और उनके अर्थरूप संसार का ज्ञान नहीं रहता, तब एक अजर, शान्त ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है। वहाँ वाणी की भी गति नहीं है।

छियासठवाँ सर्ग समाप्त

सड़सठवाँ सर्ग

ब्रह्म से जगत् की पृथक् सत्ता का निषेध तथा जन्म आदि विकारों से रहित ब्रह्म की स्वतःसत्ता का विधान

कुम्भ ने कहा-राजन् ! जिसमें कारणता है, उसका वह कार्य सिद्ध हो सकता है। वास्तव में जो निर्विशेष ब्रह्म है वह तो किसी का कारण ही नहीं, फिर उससे कार्य होगा ही कैसे ? जो कार्य कारण से उत्पन्न होता है, वह कारण के सदृश होता है। जो यहाँ उत्पन्न ही नहीं होता, उसमें भला सादृश्य आयेगा ही कहाँ से ? भला आप बतलाइये तो सही, जिसका कोई बीज ही नहीं है, वह उत्पन्न कैसे होगा ? जो वस्तु अतर्क्य, अगम्य और निर्विशेष है, उसमें बीजता ही कहाँ ठहरेगी ? देश और काल के वश से सभी पदार्थ कारण से युक्त और प्रमाण से गम्य होते हैं। किंतु अकर्ता होने से ब्रह्म निमित्त और उपादान कारणों का प्रमाण कैसे सिद्ध हो सकता है ? क्योंकि कर्ता, कर्म और कारण शून्य कल्याणमय परमात्मा में कारणता नहीं है, इसलिये जगत् शब्दार्थ ज्ञान का वह कारण नहीं हो सकता। अतएव राजन् ! जो सत्स्वरूप निर्विशेष ब्रह्म है, वह 'मैं ही हूँ' इस प्रकार आप निश्चय कीजिये। यह प्रतीति होने वाला जगत् अज्ञानियों की दृष्टि में ही सत् है; क्योंकि वह एक अद्वितीय चिन्मय अजर और शान्त निर्विशेष ब्रह्म ही वास्तव में प्रमाणित है। किंतु अलात चक्र के सदृश भ्रमाकृति जो यहाँ जगत्, चित्त आदि दिखायी देता है, वह मृगतृष्णा-जल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (IFS) Jammu. Processed

दृष्टि दोष से दो चन्द्रमा आदि की भ्रान्ति तथा बालकल्पित प्रेत आदि की भाँति है। जो जगत् सर्वथा भ्रमात्मक है, वह भला सत्य नाम से कैसे कहा जा सकता है ? अज्ञानजनित भ्रान्ति ही अन्तःकरण और चित्तादि शब्दों से कही जाती है। जैसे मरुमरीचिका में प्रतीत होने वाले जल का ज्ञान 'यह जल नहीं है', इस यथार्थ ज्ञान से नष्ट हो जाता है, वैसे ही यह चित्त है। इस रूप से हृदय में दृढ़ हुआ जो अज्ञानात्मक विकार है, वह 'यह चित्त नहीं है' इस यथार्थ ज्ञान से समूल विनष्ट हो जाता है। जैसे अज्ञान भ्रम से उत्पन्न हुई रज्जु में सर्परूपता 'यह सर्प नहीं है' इस तरह के हृदय में दृढ़ हुए यथार्थ ज्ञान से नष्ट हो जाती है, वैसे ही आत्मा में अज्ञान-भ्रम से उत्पन्न हुआ मनोरूप चित्त 'यह चित्त नहीं है' इस तरह के यथार्थ विज्ञान से विनष्ट हो जाता है। मन, बुद्धि, चित्त अहंकार आदि सारे पदार्थ हृदय में अज्ञान से उत्पन्न हुए हैं। वस्तुतः इस जगत् में चित्त नहीं है और इसी तरह अहंकारादि से संयुक्त देहादि कुछ भी नहीं है, किंतु एकान्त निर्मल एक आत्मा ही है। अज्ञानी जीवों के द्वारा ही अज्ञान से मन, बुद्धि चित्त, अहंकार की रचना की गयी है। किंतु आज आपने संकल्प के अभाव के द्वारा उन सबका परित्याग कर दिया है; क्योंकि जो पदार्थ संकल्प से आता है, उसका संकल्प का अभाव होते ही विनाश हो जाता है। जैसे जल से समुद्र परिपूर्ण है, वैसे ही सच्चिदानन्दघन परमात्म-तत्त्व से यह सारा संसार परिपूर्ण है। न मैं हूँ, न आप हैं न अन्य हैं, न ये सब पदार्थ हैं, न चित्त है, न इन्द्रियाँ हैं और न आकाश ही है। घटपदादि दृश्य-जगत् के आकाशरूप से एक वह परमात्मा ही दिखायी देता है। 'यह चित्त है, यह मैं हूँ' इत्यादि तो असत्य कल्पनाएँ हैं। महीपते ! वास्तव में तो इस त्रैलोक्य में न कोई जन्म लेता है और न कोई मरता ही है। सत् और असत् भावनारूप यह केवल चेतन का संकल्पमात्र है। जब वास्तव में एक सर्वात्मक व्यापक ब्रह्म परमात्मा ही प्रकट है, तब द्वित्व और एकत्व कैसे रह सकता है और कैसे संशय तथा भ्रम ही रह सकता है ? मित्र ! केवल निर्मल अनन्त परमात्म-स्वरूप आपका न तो कुछ विनष्ट हो सकता है और न कुछ बढ़ ही सकता है; क्योंकि जो अजन्मा, अजर, अनादि, अद्वितीय, विशुद्ध, सदा एकरूप, चिन्मय, संकल्परहित, सत्स्वरूप वस्तु है, वही परमात्म-तत्त्व है।

सड़सठवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

अड़सठवाँ सर्ग

राजा शिखिध्वज की ज्ञान में दृढ़ स्थिति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुकुल भूषण राम ! इस प्रकार कुम्भ के स्वाभाविक वचनों पर विचार करके राजा शिखिध्वज उसी क्षण स्वयंमेव आत्मपद में स्थित हो गये। फिर तो उनके मन और नेत्रों का व्यापार बंद हो गया, वाणी शान्त हो गयी तथा वे ध्यानस्थ होकर मनन करने लगे, उस समय उनके शरीर के सभी अवयव ऐसे निश्चल हो गये, मानो शिलातल पर खुदी हुई कोई मूर्ति हो। महाबाहो ! तदनन्तर दो ही घड़ी के बाद जब उनकी ध्यान मुद्रा भंग हुई और वे विकसित नेत्रों से कुम्भ की ओर देखने लगे, तब कुम्भरूपिणी चूडाला ने राजा से प्रश्न करना आरम्भ किया।

कुम्भ ने पूछा-राजन् ! जो अत्यन्त प्रकाशमान, शुद्ध, विस्तृत एवं निर्मल है तथा जो निर्विकल्प-समाधि में स्थित रहने वाले योगियों के लिये सुन्दर शय्या के समान है, उस आत्मपद में आपको आनन्दपूर्वक विश्रान्ति प्राप्त हो चुकी न? आपका अन्तः करण प्रबुद्ध हो गया न ? आपने भ्रान्ति का परित्याग कर दिया न ? ज्ञातव्य का ज्ञान प्राप्त कर लिया और द्रष्टव्य वस्तु देख ली न ?

शिखिध्वज बोले-भगवन् ! आपकी कृपा से मुझे उस महती पदवी का साक्षात्कार हो गया, जो निरतिशयानन्द की भूमिका और समस्त उत्कर्षों की पराकाष्ठा है। अहो ! जानने योग्य वस्तुओं के ज्ञान से सम्पन्न संत महात्माओं का संग अपूर्व एवं सर्वोत्तम अमृतमय होता है, अतः सर्वोत्कृष्ट फल प्रदान करने वाला है। प्रभो ! जिस महामृत की उपलब्धि मुझे सारे जन्म में भी नहीं हुई, वही आज आपके समागम से अनायास ही सुलभ हो गयी। परंतु कमल लोचन ! इस अनन्त, आद्य एवं अमृत स्वरूप आत्मपद की प्राप्ति मुझे पहले ही क्यों नहीं हो गयी ?

कुम्भ ने कहा-राजन् ! जब भोगेच्छाओं का परित्याग कर देने से मन पूर्णतः शान्त हो जाता है और सम्पूर्ण इन्द्रिय गणों के भोगरूप दोषों की निवृत्ति हो जाती है, तब चित्त में उपदेशक की विमल उक्तियाँ उसी प्रकार स्थित हो जाती हैं, जैसे शुद्ध स्वच्छ वस्त्र पर कुंकुममिश्रित जल के छींटे। कमलनयन ! आपके अपने वासना स्वरूप अनन्त दोषों का, जो अनेक जन्मों के शरीरों द्वारा संगृहीत किये हुए थे, परिपाक आज प्रकट हुआ है। साधुशिरोमणे ! काल द्वारा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Moorji Jammu Collection

परिपक्व होकर सम्पूर्ण दोष शरीर से निकल जाते हैं। सखे ! शरीर से वासनात्मक दोषों के निकल जाने पर गुरुदेव जो कुछ निर्मल उपदेश देते हैं, वह शीघ्र ही अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जाता है। महामते ! दोषों का परिपाक सम्पन्न हो जाने पर आज मैंने आपको उद्बुद्ध किया है। इसी कारण आज ही आपके अज्ञान का विनाश हो गया। आज आपके सभी दोष परिपक्व हो-होकर नष्ट हो गये। आज ही आपने सम्यक् रूप से ज्ञानोपदेश धारण किया है। आज ही आप उपदेश सम्पन्न हुए हैं और आज ही आप प्रबोधवान् भी हुए हैं। सत्संग के व्याज से आज आपके समस्त शुभ-अशुभ कर्मों का समूल विनाश हो गया। महीपते ! जब तक इस दिन का पूर्व भाग बीत रहा था, तब तक आपके चित्त में 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' ऐसा अज्ञान वर्तमान था; परंतु भूपते ! इस समय मेरा वचनोपदेश श्रवण करके आपने अपने हृदय से उस अज्ञान को निकाल फेंका है, जिससे आपके चित्त का विनाश हो गया है; अतः अब आप भलीभाँति प्रबुद्ध हो गये हैं। राजन् ! जब तक हृदय में मनका अस्तित्व वर्तमान रहता है, तब तक अज्ञान रहता है; किंतु ज्यों ही अचित्त रूप से चित्त का विनाश हुआ, त्यों ही ज्ञान का अभ्युदय हो जाता है। द्वैत और अद्वैत की दृष्टि ही चित्त है और वही अज्ञान भी कहा जाता है; इन दोनों की दृष्टि का जो विनाश है, वही ज्ञान और वही परम गति है। नरेश्वर ! जो प्रतीत होने के कारण सत् और वास्तव में न होने के कारण असत् है तथा जो मिथ्या जगत् की कल्पना का स्थान है, उस चित्त का तो आपने विनाश कर ही दिया। इससे अब आपका ज्ञान जाग उठा है और आप विमुक्त हो गये हैं। अतः अब आप शोकशून्य, आयासरहित निःसंग, अनन्य, आत्मज्ञान सम्पन्न, महान् अभ्युदय से युक्त, मौनी एवं मुनि होकर अपने निर्मल स्वरूप में स्थित रहिये।

अड़सठवाँ सर्ग समाप्त

उनहत्तरवाँ सर्ग

तत्वस्थिति का वर्णन

शिखिध्वज बोले-भगवन् ! यों आपके कथनानुसार जो मूर्ख जीव के लिये ही चित्त है, ज्ञानी के लिये नहीं; किंतु प्रभो ! यदि आत्मज्ञानी के लिये चित्त है ही नहीं तो ये आप-जैसे जीवन्मुक्त मनुष्य मनसे रहित होकर जगत् में कैसे विचरण करते हैं ? यह बतलाने की कृपा कीजिये।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कुम्भ ने कहा-तत्त्वज्ञ ! आप जैसा कह रहे हैं, यह ठीक वैसा ही है; इसमें थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं है। जैसे पत्थर में अंकुर नहीं निकलता, उसी प्रकार जीवन्मुक्तों का चित्त व्यापार शून्य हो जाता है; क्योंकि पुनर्जन्म लेने में सहायक जो घनीभूत वासना होती है, वही चित्त शब्द से कही जाती है और वह आत्मज्ञानी में रहती नहीं। आत्म ज्ञान सम्पन्न पुरुष जिस वासना द्वारा सांसारिक कर्मों का व्यवहार करते हैं, उसे आप 'सत्त्व' नामवाली समझिये। वह वासना पुनर्जन्म से रहित होती है। जो सत्त्व में स्थित हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ सम्यक् प्रकार से वश में हैं, ऐसे जीवन्मुक्त महात्मा आसक्ति रहित होकर विचरते हैं; परंतु चित्तस्थ पुरुष वैसा कभी नहीं कर सकते। राजन् ! अज्ञान से आच्छादित चित्त को 'चित्त' कहते हैं और प्रबुद्ध चित्त 'सत्त्व' कहा जाता है। जो अज्ञानी हैं ये 'चित्त' में स्थित रहते हैं और महाबुद्धिमान् ज्ञानी लोग 'सत्त्व' में स्थित रहते हैं। भूपते ! चित्त बारंबार उत्पन्न होता है; किंतु सत्त्व पुनः नहीं पैदा होता; इसीलिये अज्ञानी बन्धन में पड़ता है, ज्ञानी नहीं पड़ता। राजन् ! मुझे यह ठीक-ठीक पता है कि आज आपने पूर्ण रूप से अपने चित्त का विनाश कर दिया है जिससे आप सत्त्व सम्पन्न हो गये हैं और महात्यागी बनकर स्थित हैं। आज आपकी सारी वासनाएँ नष्ट हो गयी हैं, जिससे आपकी विशेष शोभा हो रही है। मुने ! मैं यह भी मानता हूँ कि आपका मन आकाश की तरह निर्मल हो गया है। आप परम शान्ति को प्राप्त हो गये हैं और सिद्ध होकर सर्वोत्कृष्ट समस्थिति में पहुँच गये हैं। राजन ! यह वही महात्याग है, जिसमें आपने अपने सर्वस्व-रूप चित्त का परित्याग कर दिया है। भला, तप आपके कितने दुःखों का विनाश करने में समर्थ होता। यह जो उपरतिरूप परम सुख है, यही अक्षय सुख है। यही वास्तव में सत्य है। स्वर्गादिका जो थोड़ा-बहुत सुख है, वह सत्य नहीं है; क्योंकि वह विनाशशील है तथा उत्पत्ति एवं विनाश युक्त होने के कारण वर्तमान काल में ही प्रतीत होता है।

राजर्षे जैसे आकाश से भी अत्यन्त निर्मल सच्चिदानन्द परमात्मा से सभी पदार्थ समुद्भूत होकर दृष्टिगोचर होते हैं, वैसे ही वे उसी परमात्मा में विलीन भी हो जाते हैं। संकल्प से ही जिनकी उत्पत्ति हुई है, ऐसे पदार्थों को आत्मज्ञानी महात्मा लोग जल में प्रतिबिम्बित सूर्यों की तरह समझकर ग्रहण नहीं करते। सज्जनशिरोमणे ! जगत् में जिसका चित्त स्पन्दनरहित हो गया है, उसके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.E.S.) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

समीप संसार आ ही नहीं सकता; क्योंकि महीपाल ! इस त्रिलोकी में जो-जो दुःख जीव को प्राप्त होते हैं, वे सभी चित्त की चपलता से ही उत्पन्न हुए रहते हैं। इसलिये जिसका चित्त स्थिर, शान्त, स्पन्दनशून्य और चंचलता रहित हो गया है, वही मनुष्य सदा परमानन्द में निमग्न रहता है और वही साम्राज्य-परमात्म-साक्षात्कार-का पात्र होता है।

शिखिध्वज बोले-सम्पूर्ण संशयों का उच्छेद करने वाले विभो ! स्पन्द और अस्पन्द-ये दोनों किस प्रकार एकता को प्राप्त होते हैं, वह विधि मुझे शीघ्र बतलाने की कृपा कीजिये।

कुम्भ ने कहा-राजन् ! जैसे सागर जलरूप से एक है, उसी तरह यह सारा जगत् चिन्मात्रस्वरूप होने के कारण एक ही वस्तु है; अतः जैसे तरंगें शुद्ध जल को ही उछालती हैं, वैसे ही बुद्धिवृत्तियाँ उसी चिन्मात्र को स्पन्दित करती हैं। तात ! श्रुतियाँ जिसका ब्रह्म, चिन्मात्र, अमल और सत्त्व आदि नामों द्वारा गान करती हैं, उसी को मूढ़ लोग जगद्रूप से देखते हैं। इस संसार का स्वरूप तो चेतन परमात्मा का स्पन्दनमात्र है, इसलिये यथार्थ दृष्टिवालों के लिये तो इसका विनाश ही हो जाता है; परंतु जिन्हें यथार्थ दृष्टि की प्राप्ति नहीं हुई है, ऐसे पुरुषों को रज्जु में सर्पभ्रान्ति की भाँति यह भ्रमरूप से ही प्रतीत होता है। जैसे चक्षुरिन्द्रिय के दोष रहित होने पर एक ही चन्द्रमा दृष्टिगोचर होता है, उसी तरह निरन्तर शास्त्रों के अभ्यास और सत्पुरुषों के संग से जब समय पाकर चित्त शुद्ध हो जाता है, तब एकमात्र चेतन परमात्मा के स्वरूप का अनुभव होता है। साधो ! आप आदि-मध्य से रहित स्व-स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं। देहादि रूपों में आपका भेदभाव नहीं रह गया है, आप महान् चेतन स्वरूप हो गये हैं और आपका शोक नष्ट हो गया है, अतः अब आप अपने उसी पद में प्रविष्ट हुए स्थित रहिये।

उन्नहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

सत्तरवाँ सर्ग

राजा शिखिध्वज का कुछ काल तक विचार

कुम्भ ने कहा-महाराज शिखिध्वज ! जिस प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है और जैसे विलीन हो जाता है, वह सारा-का-सारा वृत्तान्त मैंने आपसे वर्णन कर दिया। इसे सुनकर, समझकर तथा मनन करके स्पष्टरूप से प्रत्यक्ष

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्राप्त परमपद में आप स्वेच्छानुसार स्थित रहिये। संकल्प परम्परा से तथा किसी भी वस्तु की अभिलाषा से रहित आपको सदा आत्म दृष्टि में ही स्थित रहना चाहिये; क्योंकि यही दृष्टि परम पावन है।

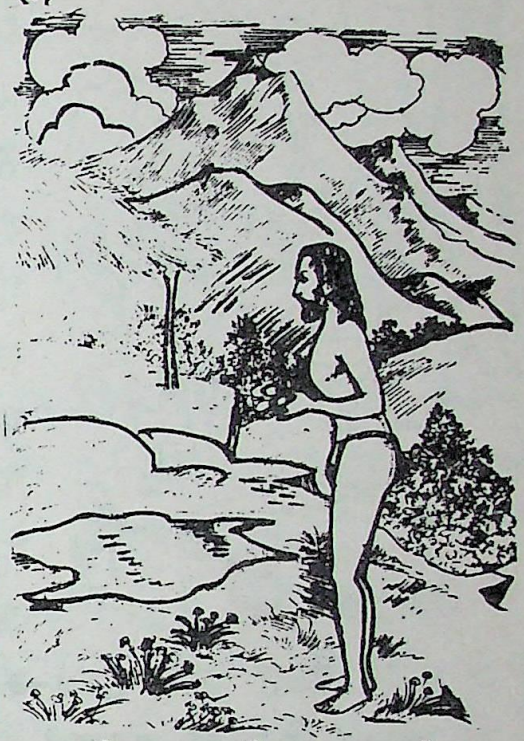

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! कुम्भ के यों कहने पर राजा शिखिध्वज हाथ में फूल लेकर कुम्भ को प्रणाम करने के लिये प्रतिवचन बोलना चाहते थे कि तब तक कुम्भ अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार कुम्भ के अन्तर्हित हो जाने पर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसी विस्मयोत्पादक घटना का विचार करते हुए चित्रलिखित-से अवाक् रह गये। फिर वे यों सोचने लगे-'अहो ! ब्रह्मा की लीला बड़ी विचित्र है, जो कुम्भ के व्याज से मुझे सदा अभ्युदयस्वरूप ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हुआ। अहो ! उन देव कुमार ने मुझको अत्यन्त ही सुन्दर एवं युक्ति युक्त उपदेश दिया, जिसके प्रभाव से चिरकाल से मोहनिद्रा में व्याकुल पड़ा हुआ मैं प्रबुद्ध हो गया हूँ। अहो ! कहाँ तो मैं कर्मजाल रूपी दलदल में, जो 'यह करना चाहिये और यह नहीं' इस प्रकार के मिथ्या विभ्रम का चक्ररूप है, विशेषरूप से फँसा हुआ था, कहाँ मुझे ऐसी साम्राज्यपदवी प्राप्त हो गयी, जो सर्वथा शीतल शुद्ध, शान्त और अमृतोद्रव सुधाकर की भाँति आल्हादजनक है। इसीलिये अब मैं पूर्ण शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ, पूर्णतः तृप्त हो रहा हूँ और केवल आनन्द में ही स्थित हूँ। मेरे मन में अब तृण के अग्रभाग के बराबर भी इच्छा शेष नहीं रह गयी है। मैं अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो गया हूँ।' यों विचार करते हुए राजा शिखिध्वज, जिनका अन्तःकरण वासनाओं से शून्य हो गया था, मौन होकर इस प्रकार बैठ गये मानो पत्थर पर खुदी हुई कोई प्रतिमा हो। तत्पश्चात् उस निर्विकल्प एवं निराश्रय मौनावस्था में अचल रूप से प्रतिष्ठित होकर वे पर्वत के शिखर की भाँति स्थित हो गये।

रघुकुल भूषण राम ! इस प्रकार इधर राजा शिखिध्वज तो निर्विकल्प

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Moorji Sanjha (P.H.S) Jammu Collection

समाधि में स्थित होने के कारण काष्ठ और दीवाल की तरह निश्चेष्ट हो गये।

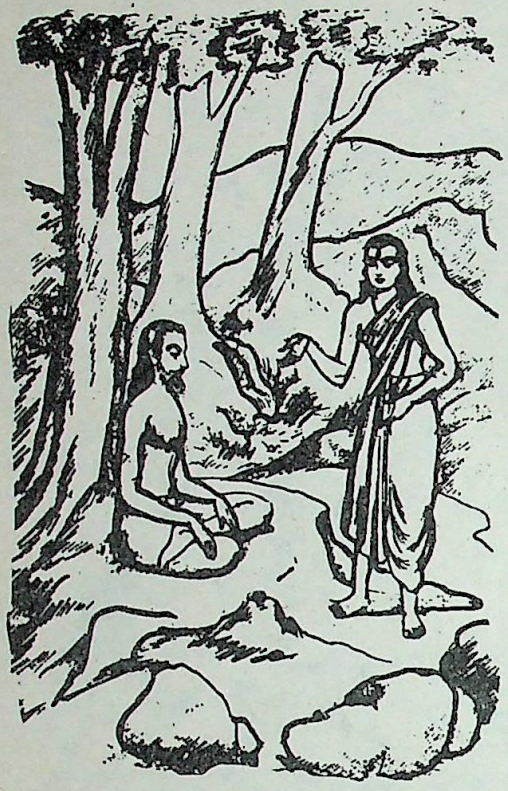

उधर अब घूडाला की बात सुनिये। वह उस कुम्भ-वेष से अपने स्वामी राजा शिखिध्वज को प्रबुद्ध करके स्वयं अन्तर्हित हो गयी और बड़े वेग से उछलकर आकाश में जा पहुँची। वहाँ उसने माया द्वारा विरचित देव पुत्र की आकृति का परित्याग कर दिया और ऐसा सुन्दर स्त्रीरूप धारण कर लिया, जो समझदार पुरुषों को भी मुग्ध कर देने वाला था। फिर तो, वह आकाश मार्ग से अपने नगर में जा पहुँची और उसी क्षण अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गयी। तत्पश्चात् लोगों के सामने प्रकट होकर राज्य-कार्य करने लगी। तीन दिन बीतने के बाद वह पुनः आकाश में जाकर योगबल से कुम्भरूप में परिणत हो गयी और राजा शिखिध्वज के वन में जा पहुँची। वहाँ उस वनस्थली पर उतरकर घूडाला ने देखा कि राजा शिखिध्वज उसी स्थान पर निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर ऐसे निश्चल हो गये हैं, जैसे चित्रलिखित वृक्ष। उन्हें देखकर वह बारंबार इस प्रकार कहने लगी-'अहो ! बड़े सौभाग्य की बात है कि यहाँ इन राजा को अपने आत्मा में विश्राम प्राप्त हो गया, जिससे ये सम, शान्त एवं स्वस्थ होकर स्थित हैं। इसलिये मैं इन्हें इस समाधि से अवश्य जगाऊँगी; क्योंकि अभी इनका देह त्याग करना उचित नहीं है।'

यों सोच-विचार कर घूडाला अपने स्वामी के आगे बारंबार ऐसा भीषण सिंहनाद करने लगी, जो वनचरों को भी भयभीत करने वाला था। किंतु जब पुनःपुनः उस भयंकर सिंहनाद के करने पर भी पर्वत की शिला के समान राजा विचलित नहीं हुए, तब घूडाला उन्हें हाथों से हिलाने-डुलाने लगी। परंतु जब झकझोरने पर भी राजा नहीं जागे, तब कुम्भरूपिणी घूडाला सोचने लगी- 'अहो ! ये साधु भगवान् तो अपने स्वरूप में परिणत हो गये हैं, अब मैं इन्हें किस युक्ति से जगाऊँ।' ऐसा विचारकर सुन्दरी घूडाला ने पति की ओर देखा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

और फिर उनके शरीर का स्पर्श किया। जीवन के हेतु भूत लक्षणों से जब उसने जान लिया कि अभी ये जीवित हैं, तब वह कहने लगी कि अभी इनके हृदय में प्राण विद्यमान है।

सत्तरवाँ सर्ग समाप्त

इकहत्तरवाँ सर्ग

चूडाला की वापिसी

श्रीराम ने पूछा-ब्रह्मन् ! जिनका चित्त अत्यन्त शान्त हो गया है और जिनकी स्थिति काष्ठ और लोष्ट की सी हो गयी है, ऐसे ध्यानशाली पुरुष के सत्त्वशेष का ज्ञान कैसे होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-वत्स राम ! जैसे बीज के अंदर पुष्प और फल सूक्ष्म रूप से वर्तमान रहते हैं, वैसे ही किसी भी ध्यानशाली पुरुष के हृदय में प्रबोध का कारण भूत सत्त्वशेष-वासनारहित अन्तःकरण सूक्ष्मरूप से विद्यमान रहता ही है। जैसे समानरूप से बहने वाले जलप्रवाह में तरंग आदि की उत्पत्ति नहीं होती, वैसे ही जिस ध्यानी के अन्तःकरण की गति सम हो गयी है, उसमें रागादि दोषों का उद्भव नहीं होता। श्रीराम ! जिस शरीर में न तो चित्त विद्यमान है और न सत्त्व ही, वह शरीर मरण द्वारा वैसे ही पंचतत्त्वों में विलीन हो जाता है जैसे गरमी में बर्फ गलकर अपने असली जलस्वरूप में परिणत हो जाती है। परंतु राजा शिखिध्वजका वह शरीर यद्यपि चित्तशून्य था तथापि उसमें पर्याप्त गरमी वर्तमान थी और वह सत्त्वांश अर्थात् वासनारहित अन्तःकरण से संयुक्त था. इसी कारण पंच तत्त्वों में विलीन नहीं हुआ था। तब उस श्रेष्ठ सुन्दरी चूडाला ने अपने पति के शरीर की इस दशा का अवलोकन करके शीघ्र ही विचार किया कि 'यदि मैं इन्हें नहीं जगाती हूँ तो भी कुछ समय के बाद से स्वयं जाग ही जायँगे; किंतु मैं यहाँ अकेले ही क्यों बैठी रहूँ, अतः इन्हें अवश्य जगाऊँगी।'

यों विचार कर चूडाला अपने इन्द्रियसमूहरूपी शरीर को वहीं छोड़कर स्वामी के अन्तःकरण में प्रविष्ट हो गयी। वहाँ पहुँचकर उसने सत्त्वसम्पन्न अपने स्वामी की चेतना को स्पन्दित कर दिया और फिर लौटकर वह अपने शरीर में उसी प्रकार प्रवेश कर गयी जैसे चिड़िया अपने घोंसले में से जाती है। तदनन्तर कुम्भ स्वरूपिणी चूडाला वहाँ से उठकर एक पुष्पाच्छादित स्थान में जा बैठी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

और सामगान करने लगी। उस सामगान को सुनकर राजा के शरीर में वर्तमान सत्त्वगुणसम्पन्ना चेतनता उद्बुद्ध हो उठी। आँख खोलने पर राजा शिखिध्वज ने कुम्भ को अपने सामने उपस्थित देखा, जो दिव्य शरीर से युक्त होकर सामगान में तत्पर थे तथा मूर्तिमान् दूसरे सामवेद-से जान पड़ते थे। उन्हें देखकर राजा ने सोचा-'अहो ! मैं तो धन्य हो गया, जो ये मुनि पुनः अपने-आप यहाँ पधारे।' ऐसा विचार कर उन्होंने कुम्भ को पुष्पांजलि समर्पित की और कहा-'भगवन् ! मालूम होता है, मुझे पवित्र करने के लिये ही आपका पुनः आगमन हुआ है। यदि ऐसी बात नहीं है तो आप ही बतलाइये कि आपके पुनः आगमन में दूसरा कौन-सा कारण हो सकता है ?'

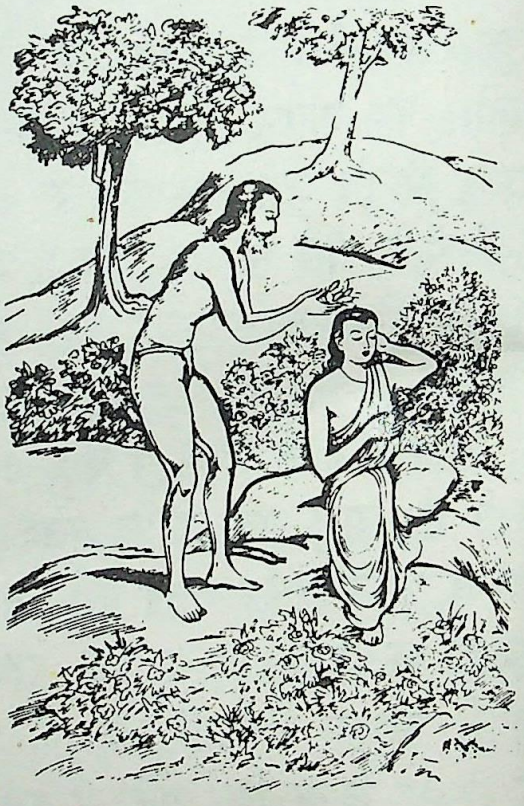

कुम्भ ने कहा-महाराज ! मैं शरीर से तो आपके पास से चला गया था किंतु मेरा चित्त तो यहाँ आपके साथ ही स्थित था, इसी कारण में आपके सामने पुनः उपस्थित हुआ हूँ; क्योंकि मेरी तो ऐसी धारणा है कि इस जगत् में आपके समान मेरा बन्धु; आप्त, सुहृद्, मित्र, सखा, विश्वासपात्र व्यक्ति अथवा अनुयायी दूसरा कोई नहीं है।

शिखिध्वज बोले-अहो ! देवपुत्र ! असंग होते हुए भी जो आप मेरे समागम की इच्छा रखते हैं, इससे प्रतीत होता है कि आज निश्चय ही मेरे पुण्य सफल हो गये।

कुम्भ ने कहा-राजन् ! आपको महानन्दस्वरूप परमपद में विश्राम की प्राप्ति हो गयी न ? आप इस भेदमय दुःख से सर्वथा रहित हो गये हैं न ? भोग की नीरसता का विचार करके आपातरमणीय संकल्पों से आपका प्रेम एकदम निर्मूल हो गया है न ? आपका मन हेय और उपादेय ही अवस्था को अतिक्रान्त कर गया है न ? वह शान्त, शम-सम्पन्न होने से समता युक्त और प्रारब्धानुसार प्राप्त पदार्थों में उद्वेगशून्य होकर ही स्थित रहता है न ?

शिखिध्वज बोले-भगवन ! चिरकाल के पश्चात् थोड़े ही समय में मैं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

निर्विकार होकर पूर्ण विश्राम को प्राप्त हो गया हूँ। मुझे सम्पूर्ण प्राप्तव्य पदार्थ उपलब्ध हो चुके हैं। अब मैं पूर्णतया तृप्त हो गया हूँ। जिस ब्रह्म का मुझे न तो ज्ञान ही था और न जिसकी प्राप्ति ही हुई थी, उसे मैंने जान लिया और प्राप्त भी कर लिया तथा छोड़ देने योग्य संसार का त्याग भी कर दिया। अब मेरा मन वासनारहित हो गया है और मैंने परमात्मस्वरूप परमतत्त्व का आश्रय भी ले लिया है। अब मेरे लिये कुछ भी शेष नहीं रह गया है। अब तो मैं सांसारिक वासनाओं से शून्य, मोह से भय से रहित, वीतराग, नित्य ज्ञानस्वरूप, सर्वत्र समतापूर्ण, सर्वथा सौम्य, सर्वात्मक, सारी कल्पनाओं से मुक्त, आकाशमण्डल के समान निर्मल तथा एकरूप होकर स्थित हूँ।

इकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

बहत्तरवाँ सर्ग

चूडाला द्वारा दुर्वासा के शाप का कथन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! वे दोनों कुम्भ और शिखिध्वज तत्त्वज्ञानी तो थे ही, अतः वे परस्पर इस प्रकार की अध्यात्मविषय की विचित्र कथाएँ कहते हुए तीन मुहूर्त-छः घड़ी तक उस वन में बैठे रहे। तत्पश्चात् वे वहाँ से उठकर किसी दूसरे शिखर पर जाकर वहाँ के सरोवर पर तथा आनन्ददायक वन में विचरण करने लगे। इस प्रकार उस महावन की उन वनवीथियों में वैसा आचरण करते हुए तथा परस्पर वैसी कथाओं को कहते सुनते हुए उन दोनों के आठ दिन बीत गये। तब कुम्भ ने राजा से कहा-'राजन् ! आओ हम लोग इस पर्वत पर किसी दूसरे वन में चलें।' राजा ने कुम्भ की बात मानकर स्वीकार कर लिया। फिर तो वे दोनों वहाँ से चल पड़े और अनेक तरह के वनों, जंगलों, जलाशयों के तटों, सरोवरों, कुंजों, भीषण शिखरों, नदी-प्रदेशों, ग्रामों, नगरों, उपवनों, पर्वतीय गोष्ठों, कुंजों, तीर्थस्थानों और आश्रमों में घूमते रहे। वे पूर्णतया शान्त तो थे ही, अतः एक ही साथ रहते थे। उनमें स्नेह, सत्त्व और उत्साह एक-सा था। राघव ! वे देवताओं और पितरों की पूजा भी एक ही साथ करते थे और उनका भोजन भी एक साथ ही होता था। श्रीराम ! 'यह अपना घर है और यह नहीं है' ऐसी वैकल्पिक धारणा उन दोनों के मन का कभी अपहरण नहीं कर पाती थी। वे कभी अपने शरीर पर धूल लपेट लेते, कभी चन्दन का लेपन कर लेते, कभी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

भस्म रमा लेते, कभी दिव्य वस्त्र धारण कर लेते, कभी उसे पल्लवों से आच्छादित कर लेते और कभी पुष्पों से सजा लेते। इस प्रकार वे दोनों मित्र साथ-साथ विचरण करते थे। कुछ ही दिनों बाद समचित्तता तथा सत्त्व की उत्कृष्टता के कारण राजा शिखिध्वज भी कुम्भ के ही समान शोभा पाने लगे। तब मानिनी घूडाला ने राजा शिखिध्वज को देवकुमार के सदृश उत्तम शोभा से सम्पन्न देखकर विचार किया कि 'अब मैं इस कानन में अपनी बुद्धि से सोचकर कुछ ऐसे प्रपंच की रचना करूँ जिससे दूसरों को मान देने वाले ये मेरे स्वामी राजाशिखिध्वज मुझमें रतिसुख के इच्छुक हो जायँ।' यों सोच विचार कर कानन कुंज में बैठी हुई कुम्भवेषधारिणी घूडाला अपने पति से बोली-

कुम्भ ने कहा-'राजन् ! मैं स्वर्ग जा रहा हूँ और सायंकाल होते-होते वहाँ से निश्चय ही लौट आऊँगा; क्योंकि आपका संग मुझे स्वर्ग से भी बढ़कर सुखप्रद है।' 'अच्छा, आप शीघ्र ही लौटियेगा।' राजा के ऐसा कहने पर कुम्भ उस वन प्रान्त से उड़कर शरत्कालीन मेघ के सदृश आकाश में जा पहुँचे। वहाँ आकाश मार्ग से जाते हुए कुम्भ ने राजा के ऊपर पुष्पाजलि छोड़ दी। राजा शिखिध्वज भी जाते हुए कुम्भ की ओर तब तक टकटकी लगाये देखते ही रहे, जबतक वे उनकी आँखों से ओझल नहीं हो गये।

उधर आकाश में राजा शिखिध्वज की आँखों से ओझल होते ही सुन्दरी घूडाला ने कुम्भ-शरीर का परित्याग कर दिया और वह पुनः अपने पूर्वरूप में आ गयी। फिर आकाशमार्ग से चलकर वह स्वर्ग के समान रमणीय अपने नगर में जा पहुँची और अदृश्य रूप से अपने अन्तः पुर में, जो सुन्दरी स्त्रियों से खचाखच भरा था, प्रवेश कर गयी। वहाँ झटपट सारा राज्यकार्य सँभालकर वह पुनः राजा शिखिध्वज के समक्ष आ गयी। पर आज उसके चेहरे पर उदासी छायी थी। यों उदास-मन कुम्भ को सामने देखकर राजा शिखिध्वज उठकर खड़े हो गये। उनका चित्त उदास हो गया, फिर वे आदरपूर्वक यों कहने लगे-'देवपुत्र ! आपको नमस्कार है। आप तो उदास-से दीख पड़ते हैं। आप कुम्भ तो हैं न ? इस उदासी को छोड़िये और इस आसन पर विराजिये। मित्रवर ! जिन्हें वेद्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त हो चुका है तथा जो अपने स्वरूप में स्थित हो गये हैं, ऐसे संत-महात्मा लोग हर्ष-विषादजनित स्थिति का उसी प्रकार आश्रय नहीं ग्रहण करते, जैसे कमलपत्र जल का।'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (IFS) Jammu Collection

तब कुम्भ ने कहा-'राजन् ! जैसे जब तक तिल है, तब तक तेल रहता है, उसी तरह जब तक देह है, तब तक उसकी अच्छी-बुरी दशा भी होती है। परंतु योग से चित्त की जो समता होती है, वही देह की अच्छी-बुरी दशाओं द्वारा प्राप्त दुःख से रहित होना है। तत्त्वज्ञानी लोग तो, जब तक प्राप्त हुए अन्तिम देह का पतन नहीं हो जाता, बुद्धि आदि की समता तथा हाथपैर आदि के संचालन से तब तक ईश्वरीय विधान के अनुसार समय बिताते रहते हैं।'

शिखिध्वज बोले-महाभाग ! आप तो तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। देवता होते हुए भी आपको ऐसी उदासी किस कारण से प्राप्त हुई-यह बतलाने की कृपा कीजिये।

तब कुम्भ ने कहा-भद्र ! जब मैं यहाँ से चला, तब आपको पुष्पांजलि समर्पित करके आकाश को लाँघता हुआ स्वर्ग में जा पहुँचा। वहाँ पिताजी के साथ महेन्द्र के सभाभवन में क्रमानुसार बैठा था। जब सभा-विसर्जन का समय आया और पिताजी ने मुझे जाने की आज्ञा दी, तब मैं उठकर यहाँ आने के लिये स्वर्ग से चल पड़ा और नभोमण्डल में आ पहुँचा। आगे बढ़ने पर मैंने देखा कि सजल जलधरों के मध्य से मुनिवर दुर्वासा बड़े वेग से इधर ही आ रहे हैं। वे भूतल पर स्थित गंगाजी की ओर बड़ी तेजी से दौड़े जा रहे थे। तब मैंने भी आकाश मार्ग से ही आगे जाकर उन मुनि श्रेष्ठ को अभिवादन किया और कहा-'मुने ! नीले मेघ के सदृश वस्त्र धारण करने के कारण आप अभिसारिका नारी की तरह लग रहे हैं।' दूसरों को मान देने वाले महाराज ! यह सुनकर दुर्वासा जी मुझे शाप देते हुए बोले-'जाओ, इस दुर्वचन के कारण आज से तुम प्रत्येक रात्रि में स्तन और केश आदि स्त्री-चिन्हों से युक्त होकर हाव-भाव आदि विलासों वाली कमनीया रमणी के रूप में बदल जाया करोगे।' वृद्ध ब्राह्मण दुर्वासा के मुख से निकले हुए उस अशुभ वचन को सुनकर, जब तक मैं कुछ थोड़ा विचार करने लगा, तब तक वे मुनि अन्तर्धान हो गये। इसी कारण से मेरा मन उदास हो गया है और मैं सीधे आकाश तल से यहाँ चला आया हूँ। सज्जन शिरोमणि ! इस प्रकार मैंने अपना सारा वृतान्त आपको सुना दिया। अब मैं रात्रि में स्त्री हो जाऊँगा। भला, रात्रि में मैं इस स्त्रीत्व का निर्वाह कैसे कर सकूँगा ? अहो ! संसार में होनहार की बड़ी विलक्षण गति है। हाय ! रात में जब मेरा स्त्रीरूप हो जायेगा, उस समय मैं लज्जा परवश होकर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरुजनों, देवताओं और ब्राह्मणों के सामने निर्बाध रूप से कैसे रह सकूँगा?

शिखिध्वज बोले–देवपुत्र ! जगत् में जो कुछ भी दुःख अथवा सुख प्राप्त होते हैं, वे सभी प्रारब्धानुसार शरीर के लिये ही होते हैं। उनमें से किसी का भी आत्मा पर प्रभाव नहीं पड़ता। मुने ! आप तो शास्त्र को भूषण की तरह धारण करने वाले हैं, इसलिये किसी भी कार्यफल के विषय में विचार करना आपके लिये उचित नहीं है। फिर, यदि आप–जैसे विवेकी पुरुष भी यों विचार करने लगेंगे तो अन्य विवेकी जनों के खेद–नाश का क्या उपाय होगा? मैं तो ऐसा समझता हूँ कि खेद का विषय उपस्थित होने पर ही कुछ खेदोचित वचन कहना चाहिये–इसी अभिप्राय से आपने ऐसा कहा है।

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं–राघव ! तदनन्तर जब चन्द्रोदय का समय आया, तब उन दोनों मित्रों ने उठकर संध्या–वन्दन किया और फिर जप–कर्म समाप्त करके वे लताओं के एक समूह में जा बैठे। वहाँ जब कुम्भ धीरे–धीरे स्त्री रूप में परिवर्तित होने लगे, तब वे सामने बैठे हुए राजा शिखिध्वज से गद्गद वाणी में बोले–'राजन् ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आपके सामने मैं लज्जा के साथ–ही–साथ स्त्री भाव को प्राप्त होता जा रहा हूँ।'

दो घड़ी तक विचार करने के पश्चात् राजा शिखिध्वज इस प्रकार कहने लगे–'अहो ! दुःख की बात है। ये कुम्भ मुनि, जो महान् सत्त्व सम्पन्न थे, वे ही अब सुन्दरी स्त्री बन गये। साधुशिरोमणे ! आप तो तत्त्वज्ञानी हैं। दैव ही गति भी आपसे छिपी नहीं है; अतः इस अवश्यम्भावी घटना के विषय में विचार मत कीजिये। ये जो अवश्यम्भाविनी सुख–दुःखात्मक दशाएँ हैं, सभी तत्त्वज्ञानियों के केवल शरीर पर ही प्रभाव डाल पाती हैं, उनके अन्तःकरण पर नहीं; परंतु ये ही अविवेकियों के केवल शरीर पर ही नहीं, अन्तःकरण तक पहुँच जाती हैं।

कुम्भ ने कहा–राजन् ! ठीक है, ऐसा ही हो। अब मैं रात्रि के समय अपने स्त्री–भाव को स्वीकार कर लेता हूँ और इसके लिये चिन्ता भी नहीं करूँगा; भला, दैव का उल्लंघन कौन कर सकता है।

तदनन्तर जब प्रातःकाल हुआ, तब कुम्भ ने उस युवती स्त्री के स्वरूप का परित्याग कर दिया और अपना वही कुम्भरूप धारण कर लिया। इस प्रकार वह राजरानी सुन्दरी चूडाला अपने पति के पास पहले कुम्भरूप से उपस्थित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.F.S) Jammu Collection

हुई, तत्पश्चात् स्त्रीरूप धारण करके आयी। वह रात्रि में कुमारी धर्म से युक्त होकर और दिन में कुम्भरूप धारण करके अपने मित्र स्वामी शिखिध्वज के साथ वन प्रान्तों में विचरण करती थी। योगबल से उसका गमनागमन कहीं रुकता नहीं था। इस प्रकार वह नारी चूडाला पुष्पमालाओं एवं हारों से विभूषित होकर अपने मित्र एवं प्रियतम पति के साथ कैलाश, मन्दर, महेन्द्र, सुमेरु और सह्यगिरि के शिखरों पर स्वेच्छानुकूल विचरण करती रही।

बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

तिहत्तरवाँ सर्ग

मदनि का (चूडाला) और शिखिध्वज का विवाह

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! तदनन्तर कुछ ही दिनों के बीतने के बाद कुम्भरूप धारिणी सती चूडाला अपने स्वामी राजा शिखिध्वज से इस प्रकार बोली-'कमलपत्र सदृश नेत्रों वाले महाराज ! मेरी यह बात सुनिये। मैं प्रतिदिन रात्रि के समय स्त्री ही बनकर रहता हूँ, इसलिये मैं अपने इस प्रकार के स्त्री-धर्म को सफल बनाना चाहता हूँ। इसके लिये विवाह द्वारा अपने को किसी योग्य पति के हाथों सौंप देने का विचार है। इस विषय में त्रिलोकी में केवल आप ही मुझे पतिरूप से पसंद आ रहे हैं, अतः विवाह-विधि से आप सर्वदा रात्रि के समय पत्नीरूप में मुझे स्वीकार कीजिये। राजन् ! चारों ओर से सारी वस्तुओं में इच्छा, अनिच्छा तथा तज्जनित फल का त्याग करके हमलोग इच्छा-अनिच्छा से रहित हो गये हैं, अतः इस अभीष्ठ कार्य को आप अवश्य सम्पन्न करें।

तब शिखिध्वज बोले-सखे ! इस विवाहकार्य के करने से मुझे अथवा अशुभ-किसी प्रकार के फल की सम्भावना नहीं दीख रही है, अतः आपको जैसा रुचे, वैसा ही कीजिये।

कुम्भ ने कहा-महीपाल ! यदि ऐसी बात है तो आज यह श्रावणमास की पूर्णिमा है, अतः आज ही शुभ लग्न है; क्योंकि कल ही मैंने विवाह सम्बन्धी सारी गणना कर ली थी। महाबाहो ! आज रात में सम्पूर्ण कलाओं से परिपूर्ण निर्मल चन्द्रमा के उदय होने पर हम दोनों का विवाह होगा । राजन् ! उठिये और हम दोनों वन के भीतर से अपने विवाह के लिये चन्दन और पुष्प आदि सामग्री एकत्र करें।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

यों कहकर कुम्भ उठे और राजा शिखिध्वज के साथ पुष्पों को चुनने तथा सामग्रियों के संचय करने में जुट गये। इस प्रकार एक सुन्दर गुफा में सारी विवाह-सामग्री जुटाकर वे दोनों प्रेमी मित्र मन्दाकिनी नदी में स्नान करने के लिये गये। वहाँ नहा-धोकर उन लोगों ने देवताओं, पितरों और ऋषियों का पूजन किया; क्योंकि जैसे उन्हें क्रियाजनित फल की इच्छा नहीं थी, उसी प्रकार शास्त्रविहित क्रिया का त्याग भी उन्हें पसंद नहीं था। तदनन्तर कल्प वृक्ष के उज्ज्वल वर्ण के वल्कल वस्त्र पहन कर तथा फल खाकर वे दोनों क्रमशः विवाह-स्थान में आये। फिर सूर्यास्त होने पर उन्होंने संध्या-वन्दन ही विधि पूरी की और मन्त्र-जाप तथा अघमर्षण आदि भी किया। इतने में ही कुम्भ स्त्रीरूप में परिणित हो गये। तब वे सोचने लगे कि 'यह वधू तो मैं बन गया। अब मुझे अपना शरीर वर को दे देना चाहिये; क्योंकि समयोचित कृत्य का पालन अवश्य करना चाहिये। यह मैं वधू हूँ और आप मेरे मनोनीत वर सामने उपस्थित हैं। यह आपके परिणय का समय है, अतः आइये और मुझे ग्रहण कीजिये।' यों विचार कर वह वर के समीप, जो सामने वनदेवी के निकट स्थित तथा उगते हुए सूर्य के समान तेजस्वी थे, गयी और यों बोली-'मानद ! मैं आपकी भार्या हूँ। मेरा नाम मदनिका है। मैं आपके चरणों में यह स्नेहपूर्वक प्रणाम करती हूँ। नाथ ! अब आप शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अग्नि प्रज्जवलित करके पाणिग्रहण कीजिये।'

तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

चौहत्तरवाँ सर्ग

शिखिध्वज की परीक्षा

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! तदनन्तर उन दोनों ने वेदी के समीप खड़े खम्भों को फूल से लदी हुई लताओं से सजाया। फिर उस वेदी के मध्य भाग में अग्नि की स्थापना करके उसे चन्दन की लकड़ियों से प्रज्वलित किया। जब लपटें निकलने लगीं, तब दक्षिण क्रम से उस अग्नि की प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् उस अग्नि के सामने पल्लव के आसन पर वे पूर्वाभिमुख हो दोनों आसीन हो गये। उस समय उन दोनों वर-वधू की अद्भुत शोभा हो रही थी। फिर शिखिध्वज ने उठकर स्वयं ही उस कान्ता मदनिकाका पाणिग्रहण किया। उस समय उस वन में उन दोनों की परस्पर शिव-पार्वती के समान शोभा हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Nirvana Prakarana Collection

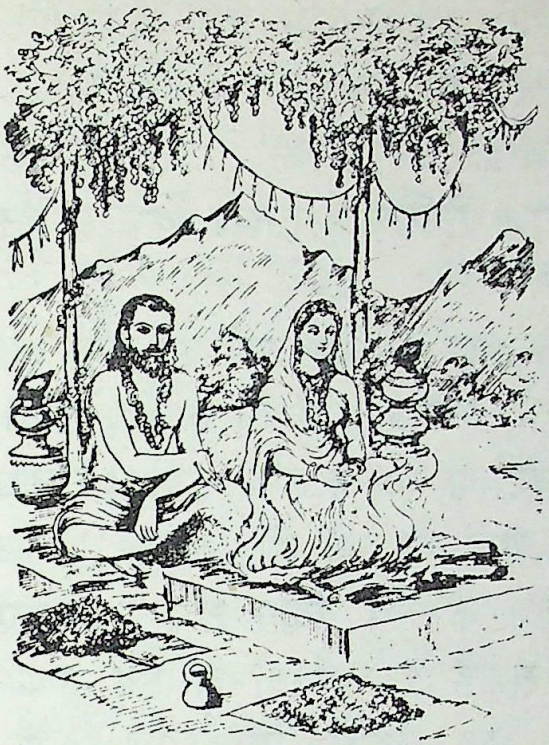

रही थी। फिर उस मंगल स्वरूप दम्पती ने उस अग्नि की प्रदक्षिणा की। उन दोनों ने परस्पर एक-दूसरे को अपना हृदय, जो प्रेम के लिये लोलुप तथा सर्वोत्तम ज्ञान से पूर्ण था, समर्पित कर दिया। उन्होंने अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा की और उसमें लाजाहोम किया। इस प्रकार समान रूप से संतुष्ट हुए वर-वधू ने एक-दूसरे द्वारा पकड़े गये अपने हाथ को छुड़ा लिया। तदनन्तर उन दोनों प्रेमियों ने वहाँ से उठकर एक सुन्दर कन्दरा में, जिसका उन्होंने पहले से ही स्वयं निर्माण कर रखा था और जिसमें चमकीले दीपक जल रहे थे, प्रवेश किया। और वे दोनों पुष्पशय्या पर बैठ गये। फिर तो, परस्पर प्रेम भरे तरह-तरह के मनोहर वाग्विलासों से, समयोचित आलिंगन आदि कृत्यों से, प्रेम युक्त व्यवहारों से तथा नये-नये सुखोपभोग से उस उत्तम दम्पति की वह लंबी रात एक मुहूर्त के समान बीत गयी।

रघुकुल भूषण राम ! इस प्रकार वे दोनों कुम्भ और शिखिध्वज उस महेन्द्राचल की गुफा में स्वयं विवाहित होकर देवतुल्य परम प्रेमी दम्पती बन गये। दिन में तो वे परम प्रेमी मित्र बन जाते थे और रात में प्रिय पति-पत्नी हो जाते थे। प्रभा और दीपक की तरह वे परस्पर घुले-मिले रहते थे, अलग तो कभी होते ही नहीं थे। इस प्रकार जब धीरे-धीरे कुछ मास व्यतीत हो गये, तब देव पुत्र का स्वरूप धारण करने वाली चूडाला ने विचार किया कि अब मैं नाना प्रकार के उत्तम-उत्तम उपभोगों द्वारा राजा शिखिध्वज की परीक्षा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (J.E.S) Jammu Collection

करूँगी, जिससे इनका चित्त कभी भी भोगों में अनुरक्त नहीं होगा। ऐसा सोचकर चूडाला ने अपनी माया के बल से उस वनस्थली में देवगणों तथा अप्सराओं के साथ पधारे हुए इन्द्र को दिखलाया। परिवार सहित इन्द्र को अपने निकट आया हुआ देखकर वनवासी राजा शिखिध्वज उनकी विधिवत् पूजा करके पूछने लगे।

शिखिध्वज बोले–देवराज ! आपने इतनी दूर से यहाँ आने का कष्ट क्यों उठाया ? आप जिस प्रयोजन से यहाँ पधारे हैं, उसे बतलाने की कृपा कीजिये।

इन्द्र ने कहा–राजन् ! आपके गुणाधिक्यरूपी सूत्र ने हमारे हृदय को बाँध रखा है, जिससे खिंचकर हम आकाश से यहाँ आ गये हैं। महाराज ! अब उठिये और स्वर्ग चलिये; क्योंकि वहाँ यूथ-के-यूथ देवता तथा देवांगनाएँ आपके गुणों को सुनकर विस्मय-विमुग्ध हो रहे हैं और वे सब-के-सब आपके शुभागमन की प्रतीक्षा में बैठे हैं। इसलिये आप पादुका, गुटिका, खंग और पारद आदि रसों को भी लेकर सिद्ध मार्ग से स्वर्गलोक में चलना स्वीकार कीजिये। राजर्षे ! आप जीवन्मुक्त तो हैं ही, अतः देवलोक में पधारकर आप अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग करें, इसी कारण मैं आपके पास आया हूँ। साधो ! आपके समान जो संत-महात्मा हैं, वे न तो प्राप्त हुई लक्ष्मी का तिरस्कार द्वारा अपमान करते हैं और न अप्राप्त की कामना ही करते हैं। महात्मन् ! जैसे भगवान् नारायण के शुभागमन से त्रिलोकी पवित्र हो जाती है, वैसे ही आप बिना किसी विघ्न-बाधा के स्वर्ग पधारें और वहाँ सुखपूर्वक विहार करें, जिससे वह स्वर्ग पवित्र हो जाय।

शिखिध्वज बोले–देवेन्द्र ! मैं तो सभी देशों को स्वर्ग-सा ही मानता हूँ; क्योंकि मैं जिस परमात्मा को स्वर्ग मानता हूँ, उसकी सत्ता सदा सर्वत्र वर्तमान है; अतः मेरे लिये कहीं पर भी एक देशी स्वर्ग नहीं है। प्रभो ! मैं सभी जगह संतुष्ट रहता हूँ और सभी स्थानों में विचरण करता हूँ। मेरे मन में किसी प्रकार की इच्छा तो है नहीं, अतः मैं सर्वत्र आनन्द से परिपूर्ण रहता हूँ। इन्द्र! इन्हीं सब कारणों से एक स्थान में स्थित रहने वाले किसी ऐसे एकदेशी स्वर्ग में जाने की तो मैं इच्छा ही नहीं करता। इसलिये मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकूँगा।

इन्द्र ने कहा–साधुशिरोमणे ! जिन्हें ज्ञातव्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त हो गया

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Library Collection, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है तथा जिनकी बुद्धि परिपूर्ण हो गयी है, उनके लिये भोगों का उपभोग करना और न करना बराबर है; अतः आपके लिये भोगों का सेवन करना उचित है। देवराज इन्द्र के यों कहने पर भी जब राजा मौन ही रहे, तब इन्द्र ने पुनः कहा-'राजन् ! जब आपकी ऐसी ही धारणा है, तब मैं ही यहाँ से चला जाता हूँ।' यों कहकर 'राजन् ! आपका कल्याण हो' यह आशीर्वाद देते हुए इन्द्र वहीं अन्तर्धान हो गये। देवराज के अदृश्य होते ही उनके साथ का देवसमूह भी क्षण भर में अदृश्य हो गया।

चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

पिचहत्तरवाँ सर्ग

राजा शिखिध्वज के क्रोध की परीक्षा

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! इन्द्र-दर्शन की माया का उपसंहार करके चूडाला मन-ही-मन विचार करने लगी-'बड़े सौभाग्य की बात है, जो विषय भोगों की लालसा इन नरेश के मनको आकृष्ट करने में समर्थ न हो सकी। इन्द्र के आने पर भी ये निर्विकार शान्त ही रहे। इनके शरीर के अवयवों की स्थिति पूर्ववत् समान रही तथा बिना किसी प्रकार के क्षोभ एवं अवहेलना के इन्होंने इन्द्र के साथ उचित व्यवहार भी किया। अतः अब मैं पुनः एक ऐसे माया प्रपंच की रचना करूँगी, जिसमें राग-द्वेष की प्रधानता रहेगी और जो बुद्धि का अपहरण करने वाला होगा। फिर उसके द्वारा आदरपूर्वक इनकी परीक्षा करूँगी।' ऐसा निश्चय करके रात्रि में चन्द्रोदय होने पर उसने उस वन में सुन्दरी मदनिकाका रूप धारण कर लिया। उस समय जब राजा शिखिध्वज नदी के तट पर संध्यावन्दन तथा जप-कर्म में तत्पर होकर ध्यानस्थ थे और शीतल-मन्द सुगन्ध वायु बह रही थी, तब मदनिका काम-मद से विह्वल हुई-सी संतानक वृक्षों के एक लताकुंज में प्रविष्ट हुई। वह कुंज सघन पुष्पगुच्छों से सुशोभित था तथा वनदेवियों के शुद्ध अन्तःपुर सा प्रतीत होता था। वहाँ पुष्पहारों से सजी हुई मदनिका ने अपने संकल्प से एक पुष्पशय्या तैयार की और उस पर मायानिर्मित एक सुन्दर जार पुरुष को लेकर उसके गले से लिपटकर लेट गयी। उधर जप कर्म समाप्त होने पर जब राजा शिखिध्वज उस स्थान से उठे और एक कुंज से दूसरे कुंज में मदनिका का अन्वेषण करने लगे, तब उन्हें उस लतागृह में मदनिका दीख पड़ी। उसके गले से एक मनोहर जार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

पुरुष लिपटा हुआ था। उस पुरुष के कंधे लंबे केशों से आच्छादित थे और शरीर में चन्दन का अनुलेप लगा हुआ था। उसके सिर की सजावट शय्या पर इधर-उधर के परिवर्तन एवं परस्पर के मर्दन से अस्त-व्यस्त हो गयी थी। वह मदनिका की भुजा को, जिसकी कान्ति सुवर्ण की सी थी तथा जो मोड़ने के कारण दो भुजा-सी लग रही थी, तकिया बनाकर उस पर अपना कान, नेत्र प्रान्त, कपोल और केश रखकर लेटा हुआ था। तदनन्तर राजा ने पुनः देखा- उन दोनों स्त्री-पुरुषों के मुख परस्पर एक-दूसरे से सटे हुए हैं और उन पर मुसकराहट खेल रही है। शयन करते समय उनके पुष्पहार हिल रहे हैं। वे काम वेग से आतुर और व्याकुल हैं। परस्पर आलिंगन के बहाने वे एक-दूसरे को अपना प्रेम समर्पित कर रहे हैं। वे एक दूसरे के उन्मुख, समान आनन्द से परिपूर्ण तथा प्रबल काममद से भरपूर हो गये हैं। यह सब देखकर भी राजा शिखिध्वज के मन में जरा-सी क्रोध विकार उत्पन्न नहीं हुआ, उलटे वे परम संतुष्ट हुए और कहने लगे-'अहो ! ये दोनों व्यभिचारी कैसे आनन्दमग्न हैं।' सहसा राजा को आया हुआ देखकर जब वे दोनों डर गये, तब राजा ने कहा- 'तात ! भय मत करो। तुम दोनों स्वेच्छानुसार सुखपूर्वक जैसे सोये हो, वैसे ही सोये रहो। मैं इसमें विघ्न नहीं डालूँगा।' यों कहकर राजा वहाँ से चले गये।

तदनन्तर दो ही घड़ी के बाद चूडाला उस प्रपंच का उपसंहार करके लता गृह से बाहर निकली। उस समय उसका शरीर प्रियतम के साथ सम्भोग करने के कारण प्रफुल्लित दीख रहा था। बाहर आकर उसने देखा कि राजा शिखिध्वज एकान्त में एक सुन्दर शिला पर बैठे हैं। उनकी समाधि लग गयी है, जिससे उनके नेत्र थोड़े खुले हुए हैं। तब सुन्दरी मदनिका राजा के निकट गयी और क्षण भर तक चुपचाप खड़ी रही। उस समय लज्जा के कारण उसका मुख नीचे झुक गया था और उसकी कान्ति मलिन हो गयी थी तथा मन खिन्न था। क्षण भर के बाद जब राजा शिखिध्वज ध्यान से विरत हुए, तब मदनिका को पास ही खड़ी देखा। उसे देखकर उनकी बुद्धि में जरा-सा भी क्षोभ नहीं हुआ। वे उससे अत्यन्त मधुर वाणी में कहने लगे-'सुन्दरि ! क्या किसी ने शीघ्र ही तुम्हारे सुख में विघ्न डाल दिया ? तुमने सुख का उपभोग तो किया है न ? (इसमें लज्जित होने की क्या बात है; क्योंकि) संसार में जितने प्राणी हैं, वे सभी सुख के लिये ही तो प्रयत्न करते हैं। अतः तुम जाओ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और पुनः अपनी प्रणयगर्भित चेष्टाओं से अपने उस प्रियतम को संतुष्ट करो। मानिनि ! तुम्हारे इस कार्य से मेरे मन में किसी प्रकार की उद्विग्नता नहीं है। यहाँ मेरे और कुम्भ में तो राग का लेशमात्र भी नहीं रह गया है, अतः हम दोनों तो वीतराग हो चुके हैं। तुम तो हम लोगों से भिन्न एक तीसरी नारी हो, जो महर्षि दुर्वासा के शाप से उत्पन्न हुई हो; अतः तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा ही करो।'

तब मदनिका बोली-महाभाग ! आपका कथन बिल्कुल सत्य है; परंतु मैं क्या करूँ, स्त्रियों का स्वभाव ही बड़ा चंचल होता है। उनमें पुरुषों की अपेक्षा काम का वेग भी अठगुना बताया जाता है; अतः आप मुझ पर क्रोध न करें। महाराज ! जब आप संध्यावन्दन तथा जप कर्म में रत हो गये, तब रात्रि के समय इस गहन कानन में उस कामी पुरुष ने मुझे पकड़ लिया। उस समय मैं दीन अबला कर ही क्या सकती थी। राजन् ! स्त्रियों का ऐसा स्वभाव ही होता है कि वे अपने काम वेग को रोक नहीं सकतीं। अतः प्राणनाथ ! एक तो मैं अबला नारी, दूसरे नवयुवती और मूढ़ हूँ; इसी कारण मुझसे यह महान् अपराध हो गया। अब आप मुझे क्षमा करें; क्योंकि क्षमा करना साधु पुरुषों का स्वभाव ही होता है।

शिखिध्वज ने कहा-बाले ! तुम्हारे इस कृत्य से मेरे अन्तःकरण में क्रोध तो तनिक-सा भी नहीं है, परंतु मैं अब तुम्हें अपनी वधू के रूप में केवल इस कारण से स्वीकार करना नहीं चाहता कि साधु पुरुष इस कर्म की घोर निन्दा करेंगे। इसलिये अंगने ! अब हम दोनों पहले की तरह मित्र भाव से वीतराग होकर वन प्रान्तों में नित्य साथ-साथ ही सुखपूर्वक विचरण करेंगे।

पिचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

छिहत्तरवाँ सर्ग

चूडाला का असली रूप प्रकट करना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! इस प्रकार जब राजा शिखिध्वज समत्वभाव में स्थित हो गये, तब उन्हें रागद्वेष की भावनाओं से निर्मुक्त देखकर चूडाला का मन प्रसन्न हो गया और वह मन-ही-मन विचार करने लगी-'अहो ! ये राजा शिखिध्वज अब सर्वोत्कृष्ट समता को प्राप्त हो गये हैं। राग से शून्य हो जाने के कारण अब इनमें क्रोध का लेशमात्र भी अवशिष्ट नहीं है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अब ये सचमुच जीवन्मुक्त हो चुके हैं। तभी तो जिन्हें स्वयं इन्द्र प्रदान कर रहे थे, वे उत्तमोत्तम भोग, इनको विचलित नहीं कर सके तथा बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ, सुख, दुःख, आपत्ति और सम्पत्ति भी इन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ न हो सकीं। एक जीवन्मुक्त में जितनी निर्दोष महान् ऋद्धियाँ बतायी जाती हैं, वे सब-की-सब इस समय अकेले इन्हीं का आश्रय ले रही हैं, अतः ये दूसरे नारायण की तरह जान पड़ते हैं। इसलिये अब मैं इस कुम्भ रूप का परित्याग करके चूडाला ही बन जाऊँगी और इन्हें अपने सारे वृत्तान्त का स्मरण दिलाऊँगी।' यों विचार कर चूडाला ने तुरंत ही मदनिका के शरीर को छोड़कर वहीं अपने को चूडाला के रूप में प्रकट कर दिया। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो चूडाला मदनिका के उसी शरीर से निकली है। तत्पश्चात् वह योगधारणा से युक्त होकर राजा के सामने सुशोभित हुई। राजा ने प्रेम परवशता के कारण निर्दोष अंगों वाली उस कमनीया मदनिका को ही अपनी प्रियतमा भार्या चूडाला के रूप में स्थित देखा। उस समय चूडाला भूमितल से प्रकट हुई लक्ष्मी (सीता) के समान सुशोभित हो रही थी तथा रत्नमंजूषा से निकली हुई रत्नप्रभा की भाँति उद्दीप्त हो रही थी। इस रूप में राजा शिखिध्वज ने अपनी प्राणप्रिया को सामने उपस्थित देखा।

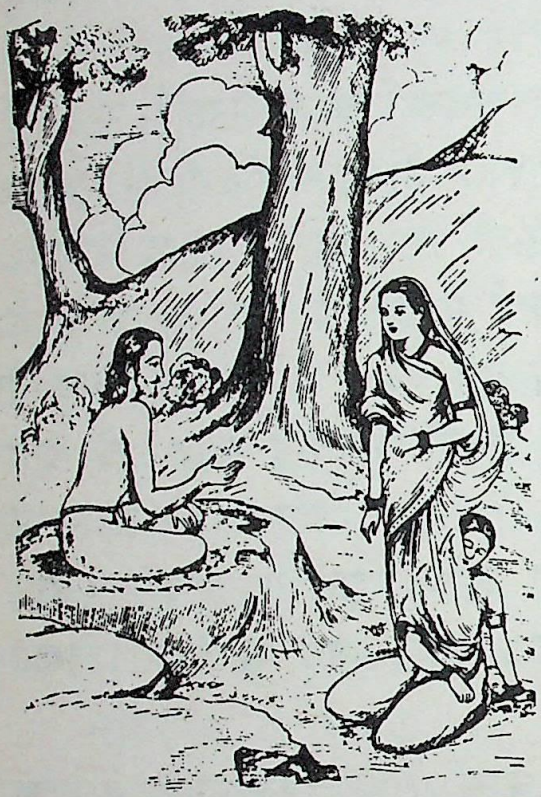

छिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

सतत्तरवाँ सर्ग

ध्यान से सब कुछ जानकर राजा शिखिध्वज का आश्चर्यचकित होना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुकुल भूषण राम ! तदनन्तर अपनी प्यारी पत्नी चूडाला को देखकर आश्चर्य के कारण राजा शिखिध्वज के नेत्र प्रफुल्लित हो उठे। तब वे आश्चर्ययुक्त वाणी से इस प्रकार बोले-'सुन्दरि ! तुम अपने शरीर से, व्यवहार से, मन्द-मुसुकान से, अनुनय-विनय से तथा पत्नी सम्बन्धी विलास

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

से ऐसी उपलक्षित हो रही हो, मानो मेरी भार्या चूडाला की ही प्रति मूर्ति हो।'

चूडाला ने कहा-प्रभो ! हाँ, ऐसा ही समझिये, निःसंदेह मैं चूडाला ही हूँ। आज मैंने अपने पहले के स्वाभाविक शरीर से साक्षात् आपको प्राप्त किया है। इस वन में मैंने जो कुम्भ आदि के देह निर्माण द्वारा माया प्रपंच प्रकट किया था, वह तो केवल आपको प्रबुद्ध करने के लिये ही था। महाराज ! जब आप मोहवश राज्य का परित्याग करके तपस्या के लिये वन में चले आये, तभी से मैं आपको ज्ञान सम्पन्न बनाने के लिये प्रयत्न कर रही थी। भूपते ! इस कुम्भ वेष से मैंने ही आपको प्रबुद्ध किया है। मैंने माया द्वारा जो कुम्भ, मदनिका आदि के शरीर का निर्माण किये थे, उसका एक मात्र प्रयोजन आपको प्रबुद्ध करना ही था। वास्तव में कुम्भ आदि कुछ भी सत्य नहीं है। राजन् ! (यदि मेरी बातों पर विश्वास न आता हो तो) अब तो आप जानने योग्य परमात्मा को जान चुके हैं, अतः ध्यान लगाने से आप यह सारा दृश्य अविकल रूप से देख सकेंगे। इसलिये तत्त्वज्ञ ! अब शीघ्र ही ध्यान लगाकर देखिये।

चूडाला के ऐसा कहने पर राजा आसन लगाकर बैठ गये और ध्यान द्वारा उन्होंने अपना सारा वृत्तान्त अच्छी तरह से जान लिया। मुहूर्तमात्र के ध्यान से ही राजा ने राज्य-परित्याग से लेकर चूडाला के साक्षात्कार पर्यन्त अपने विषय में जितनी घटनाएँ घटी थीं, उन सबको प्रत्यक्षरूप से देख लिया। तत्पश्चात् समाधि भंग होने पर हर्षातिरेक से राजा के नेत्र कमल विकसित हो उठे, भुजाएँ रोमांच के कारण उज्जवल हो गयीं। उन्होंने तुरंत ही दोनों ही भुजाओं को फैलाकर अपनी प्रियतमा पत्नी चूडाला का गाढ़ आलिंगन किया। उस समय स्नेह घनीभूत होकर टपक रहा था, आँखों से प्रेमाश्रु झर रहे थे और प्रेम स्फुरित हो गया। तदनन्तर

शिखिध्वज ने कहा-'प्रिये ! तुम बालचन्द्रमा के सदृश सुन्दरी हो, फिर भी तुमने अपने पति के लिये चिरकाल तक कितना दारुण कष्ट उठाया है। मैं इस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.P.S.) Jammu Collection

दुस्तर भवकूप में डूब रहा था, तुमने अपनी जिस सत्त्वमयी बुद्धि के आश्रय से मेरा उससे उद्धार किया है, तुम्हारी उस बुद्धि की उपमा भला, किससे दी जा सकती है ? वह अनुपमेय है। सुन्दरि ! अलौकिक सौन्दर्यवाली नारियों में धी, श्री, कान्ति, क्षमा, मैत्री और करुणा आदि उत्तम रूपवती मानी जाती हैं; परंतु तुम तो उन सभी में मुख्य प्रतीत हो रही हो। तुमने घोर प्रयत्न करके मुझे ज्ञान सम्पन्न बनाया है। इस उपकार के बदले में मैं ऐसा कौन-सा कार्य करूँ जिससे तुम्हारा मन प्रसन्न हो। प्रिये ! जो कुलीन स्त्रियाँ होती हैं, वे उद्योग परायण होकर अनादि काल से चले आते हुए अत्यन्त गहन से भी गहन मोह रूपी सागर में पड़े अपने पति का उद्धार कर ही लेती हैं। यहाँ तक कि कुलांगनाएँ अपने पति के लिये सखा, भ्राता, सुहृद्, भृत्य, शिक्षक, मित्र, धन, सुख, शास्त्र, घर, दास आदि सब कुछ बन जाती हैं। अतः जिनमें इहलोक तथा परलोक-दोनों का सम्पूर्ण सुख प्रतिष्ठित है, उन कुलांगनाओं का सभी प्रयत्नों द्वारा सर्वदा सम्यक् रूप से आदर-सत्कार करना चाहिये। रूप, सौजन्य और उत्तमोत्तम गुण रूपी रत्नों से विभूषित प्रिये ! तुम पतिव्रता सती हो। तुम्हारी सारी इच्छाएँ शान्त हो गयी हैं और तुम संसार-सागर से पार हो चुकी हो-ऐसी दशा में तुम्हारे इस उपकार का प्रतिशोध मैं कैसे कर सकूँगा।'

तब चूडाला बोली-पतिदेव ! बारंबार शुष्क क्रिया जाल में फँसकर जब आपका आत्मा व्याकुल हो जाता था, तब उसे देखकर मैं आपके लिये अत्यन्त चिन्तातुर हो जाती थी; इसलिये आपके आत्मा को ज्ञान सम्पन्न बनाकर मैंने अपना ही तो स्वार्थ सिद्ध किया है-(अपनी ही चिन्ता का तो नाश किया है। इसमें आपका क्या उपकार किया।) आप तो व्यर्थ ही इस बात को लेकर मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।

शिखिध्वज ने कहा-वरारोहे ! ठीक है, तुम जिस प्रकार के शुभ स्वार्थ का सम्पादन कर रही हो, वैसा ही स्वार्थ सभी कुलांगनाएँ सिद्ध करें।

चूडाला बोली-देव ! 'यह करूँ, यह न करूँ, इस प्राप्त करूँ' इस प्रकार की बुद्धि की अपक्व दशाजनित कोमलतारूप जो स्थिति थी, उसका आप क्या अपने अंदर उपहास करते हैं ? क्योंकि जैसे आकाश में पर्वत नहीं दीख पड़ते, उसी प्रकार आपमें वे पहले के तुच्छ तृष्णाओं का समूह तथा कुत्सित संकल्प रूपी कल्पनाएँ अब दृष्टिगोचर नहीं हो रही हैं। प्रियतम ! अब आपका कैसा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

स्वरूप बन गया है ? किस वस्तु में आपकी निष्ठा है और आप क्या चाहते हैं ? विभो ! आप अपनी पिछली शारीरिक चेष्टाओं को कैसा देखते हैं ?

शिखिध्वज ने कहा-प्रिये ! जिस-जिसके अंदर तुम हो, उसी-उसी के अंदर मैं उपस्थित हूँ, मैं इच्छा और स्पृहा से तथा एकदेशता से रहित हो गया हूँ, आकाश के समान निर्मल हूँ, शान्त हूँ और वास्तविक परमार्थस्वरूप परमात्मा हूँ। भ्रमरलोचने ! मैं समस्त वस्तुओं की निष्ठा से मुक्त एकमात्र चिन्मयपरमात्म स्वरूप हूँ। पतिव्रते ! जो 'तत्' वस्तु-सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है, वही मैं हूँ। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं कह सकता। तरंग सदृश चंचल कटाक्षवाली प्रिये ! तुम मेरी गुरु हो, अतः मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम्हारी ही कृपा से मैं इस भवसागर से पार हो पाया हूँ। अब मैं शान्त, अपने ब्रह्मस्वरूप में स्थित, कोमल, प्रयत्नशील, आसक्ति और एकदेशता से रहित, सर्वव्यापक और वास्तव में सबसे अतीत निर्मल आकाश की तरह स्थित हूँ।

चूडाला बोली-प्राणनाथ ! आप तो महान् सत्त्व-सम्पन्न तथा मेरे हृदयवल्लभ हैं। आपकी बुद्धि अगाध है। प्रभो ! बतलाइये, ऐसी दशा में अब आप क्या चाहते हैं ?

शिखिध्वज ने कहा-कृशांगि ! चित्त के इच्छा और आसक्ति से रहित हो जाने के कारण मैं प्रारब्धानुसार न्यायतः प्राप्त वस्तु की न तो प्रशंसा करता हूँ और न निन्दा ही करता हूँ। अतः अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा ही करो।

चूडाला बोली-जीवन्मुक्तस्वरूप महाबाहो ! यदि ऐसी बात है तो अब आप मेरा मत सुनिये और उसे सुनकर तदनुकूल आचरण कीजिये। महाराज ! सर्वत्र अद्वैत का बोध होने से हम लोगों के अज्ञान का विनाश हो गया है, अतः अब हम लोग सारी इच्छाओं से मुक्त होकर आकाश की तरह निर्मलरूप में स्थित हैं। प्रभो ! इस समय राज्य-शासन द्वारा क्रमशः अपनी अवशिष्ट आयु बिताकर कुछ काल के बाद हम लोग विदेहमुक्त हो जायँगे। इसलिये नाथ ! अब आप अपने नगर में लौट चलिये और राज सिंहासन पर बैठकर राजकाज सँभालिये। रमणियों की भूषणस्वरूपा मैं आपकी पटरानी होकर रहूँगी। राजन् ! न तो मुझे भोगों की इच्छा है, न विभूतियों की। मैं तो स्वभाववश जो कुछ भी न्यायतः प्राप्त हो जाता है, उसी से निर्वाह करती हूँ। यह स्वर्ग, राज्य अथवा क्रिया-कोई भी मेरे लिये सुखदायक नहीं है। मैं तो अपने स्वरूप में स्थित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sahib Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होकर तदनुकूल व्यापार से युक्त हो अपनी वास्तविक स्थिति के अनुसार बिना किसी क्षोभ के स्थित रहती हूँ। 'यह सुख है और यह दुःख है' इस द्वन्द्व के नष्ट होने के साथ-साथ मैं शान्त परमपद में सुखपूर्वक स्थित हूँ।

शिखिध्वज ने कहा-विशाल नेत्रों वाली प्रिये ! तुमने अपनी निर्विकार बुद्धि से जो कुछ कहा है, वह ठीक ही है। हमें राज्य के ग्रहण अथवा त्याग से क्या प्रयोजन है। हम लोग सांसारिक सुख-दुःख की चिन्ता और मत्सर से रहित मत्सरशून्य और ब्रह्म स्वरूप में स्थित हुए यथा प्राप्त स्थिति के अनुसार निवास करेंगे।

इस प्रकार वहाँ उन दोनों निर्दोष एवं प्रेमी पति-पत्नी के बहुत देर तक परस्पर वार्तालाप करते हुए सायंकाल हो गया। तब उन दोनों ने उठकर अपना दैनिक कार्य सम्पन्न किया। वे दोनों जीवन्मुक्त तो थे ही, अतः स्वर्ग की सिद्धि का अनादर करके सर्वथा समचित्त हो वे दोनों एक ही शय्या पर बैठ गये। उनकी वह रात्रि तरह-तरह की प्रेम भरी चेष्टाओं की पूर्ति में ही बीत गयी।

सतत्तरवाँ सर्ग समाप्त

अठत्तरवाँ सर्ग

शिखिध्वज का राज्य भोग

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! तदनन्तर प्रातः काल होने पर वे प्रेमी दम्पति उस सुन्दर कन्दरा में बिछे हुए कोमल एवं चिकने पत्तों के आसन पर उठकर बैठ गये। उस समय चूडाला ने कहा-'प्रभो ! आपका यह शान्त तेजः स्वरूप केवल मुनियों के योग्य है, अतः इसका परित्याग करके अब आपको इन्द्रादि अष्ट लोकपालों के समान तेजस्वीरूप धारण करना चाहिये।'

उस वन में चूडाला के यों कहने पर राजा शिखिध्वज ने 'ठीक है, ऐसा ही करूँगा' यों कहकर महाराज का स्वरूप धारण कर लिया और अपनी प्रिय चूडाला से कहा-'कमलदल के सदृश नेत्रों वाली प्राण वल्लभे ! अब तुम्हें चाहिये कि क्षण भर में ही अपने सत्य संकल्प से महान् वैभव से युक्त विशाल सैन्यदल एकत्र कर दो।' अपने पति की यह बात सुनकर सुन्दरी चूडाला ने ज्यों ही सेना का संकल्प किया, त्यों ही उन दोनों ने देखा कि एक विशाल सेना सामने प्रत्यक्ष खड़ी है, जिसने उस कानन को ठसाठस भर दिया है। वह हाथी-घोड़ों से भरी-पूरी ह तथा पताकाओं से आकाश को पूर्ण-सा कर रही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है। जिसकी तुरही आदि के शब्द पर्वतों की गुफाओं तथा गहन कोटरों को प्रतिध्वनित कर रहे हैं। तब उस सेना में, जिसके चारों ओर राजा लोग मण्डलाकार में खड़े थे तथा हृष्ट-पुष्ट सामन्त जिसकी रक्षा कर रहे थे, ऐसे एक मदस्रावी गजराज की पीठ पर वे राजदम्पति सवार हुए। तत्पश्चात् अपनी प्रियतमा महारानी सहित महाबली राजा शिखिध्वज ने पैदल सैनिकों तथा रथों से खचाखच भरी हुई उस विशाल सेना के साथ उस वन से प्रस्थान किया। उस महेन्द्र पर्वत से चलकर राजा शिखिध्वज मार्ग में काननों सहित पर्वत, देश, नदी और ग्रामों को देखते हुए तथा अपना सारा वृत्तान्त एवं तदन्तर्गत घटनास्थल अपनी प्रिया चूडाला को दिखाते हुए थोड़े ही समय के बाद अपनी पुरी में जा पहुँचे, जो स्वर्ग के समान शोभायमान हो रही थी।

वहाँ पहुँचने पर जय-जयकार के तुमुल नाद से जब राजा के सम्मानित सामन्तों को पता लगा कि महाराज पधार रहे हैं, तब वे उनके स्वागत के लिये सेना लेकर नगर से बाहर निकले। उस समय तुरही के तुमुल नाद से निनादित हुई दोनों सेनाएँ एकमेक हो गयीं। तत्पश्चात् राजा शिखिध्वज ने उन दोनों

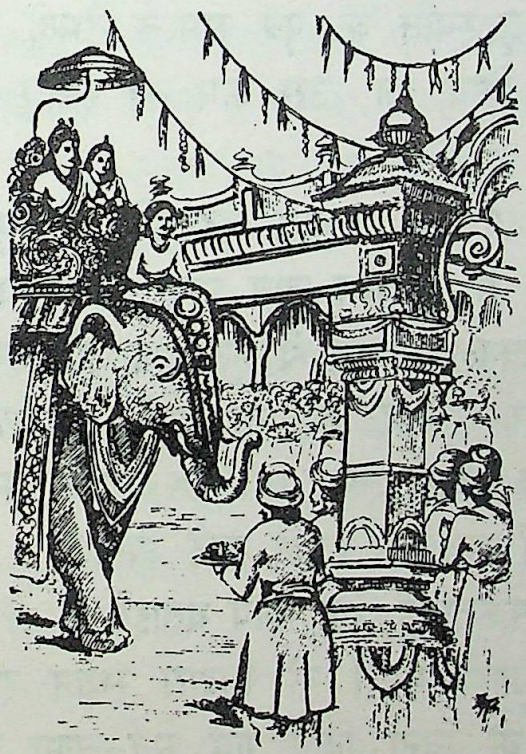

सेनाओं के साथ नगर में प्रवेश किया। उस समय नगर की नारियाँ राजा के ऊपर अजलि भर-भरकर लाजा और पुष्पों की वर्षा कर रही थीं। राजा शिखिध्वज व्यापारियों के मार्ग को, जो उत्तरोत्तर परम रमणीय था, देखते हुए राज महल में प्रविष्ट हुए। वह महल ध्वजा-पताकाओं से खूब सजाया गया था और राजा के योग्य सारी मांगलिक वस्तुओं से सम्पन्न था। वहाँ राजा ने नमस्कार करते हुए प्रजा वर्ग का भलीभाँति सम्मान किया। इस प्रकार सात दिनों तक नगर में बड़े धूमधाम के साथ उत्सव मनाकर राजा अपने अन्तःपुर में निवास करते हुए अपने राज्य का पालन करने लगे। श्रीराम ! इस प्रकार भूतल पर चूडाला के साथ दस हजार वर्षों तक राज्य करने के पश्चात् राजा का देहावसान हो गया। वे महाबुद्धिमान्

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Library Collection

नरेश इस शरीर को त्यागकर परमपद स्वरूप निर्वाण को प्राप्त हो गये।

श्रीराम ! राजा शिखिध्वज के भय और विषाद नष्ट हो गये थे। मान और मात्सर्य से वे रहित हो गये थे तथा वे न्याययुक्त प्राप्त शास्त्रोक्त स्वाभाविक कर्मों का सम्पादन करने वाले थे। भोगों में उनकी वैराग्यबुद्धि हो गयी थी और वे सबमें समरूप ब्रह्मदृष्टि से युक्त हो गये थे। इस प्रकार उपर्युक्त बोध के द्वारा उन्होंने मृत्यु को-जन्म-मरण को जीतकर दस हजार वर्षों तक एकच्छत्र राज्य किया था।

अठत्तरवाँ सर्ग समाप्त

उन्यासीवाँ सर्ग

बृहस्पति पुत्र कच की सर्वत्याग-साधन से जीवन्मुक्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! यह शिखिध्वज की कथा मैंने तुमसे आद्योपान्त कह दी। श्रीराम ! राजा शिखिध्वज ने जिस प्रकार व्यवहार करते हुए राज्य किया, उसी प्रकार तुम भी राज्य-व्यवहार करो। शिखिध्वज की तरह ही बृहस्पति के पुत्र कच ने भी ज्ञान प्राप्त किया था।

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा-भगवन् ! बृहस्पति के पुत्र समस्त वैभवों से परिपूर्ण कच ने जिस क्रम से ज्ञान प्राप्त किया था, उस क्रम को संक्षेप में मुझसे कहिये।

श्रीवसिष्ठजी बोले-श्रीराम ! देवताओं के आचार्य बृहस्पति के पुत्र श्रीमान् कच ने राजा शिखिध्वज की तरह ही सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। इसकी कथा तुम सुनो। कच का अभी बाल्यकाल समाप्त ही हुआ था और ज्यों ही यौवन आरम्भ हुआ, त्यों ही वह संसार-सागर को तर जाने के लिये कटिबद्ध हो गया। वह पद और पदार्थ का यथार्थ ज्ञाता था। वह अपने पिता बृहस्पति से कहने लगा-भगवन् ! सब धर्मों का ज्ञान रखने वाले पिताजी ! मैं इस संसाररूपी जाल से कैसे बाहर निकल सकता हूँ, यह आप बताइये।

बृहस्पति बोले-पुत्र ! अनर्थरूप हजारों मगरों के निवास स्थान इस संसार-सागर से किसी प्रकार के उद्वेग के बिना किये गये सर्व-त्याग से तत्काल ही प्राणी बाहर निकल जा सकता है।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! अपने पिता का यह परम पवित्र वचन सुनकर कच सब कुछ परित्याग करके एकान्त वन में चला गया। पुत्र के चले

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जाने से बृहस्पति को चित्त में जरा भी उद्वेग नहीं हुआ; क्योंकि जो महान् होते हैं, उनका मन संयोग और वियोग-दोनों में सुमेरु पर्वत के सदृश अचल रहता है। वन में जाने के अनन्तर उसे जब आठ वर्ष व्यतीत हो गये, तब किसी महारण्य में उस कचने अपने पिताजी का दर्शन किया। कच ने पहले अपने पिताजी की विधि पूर्वक पूजा की, फिर उन्हें प्रणाम किया। बृहस्पति ने भी अपने पुत्र का आलिंगन किया। इसके बाद कच ने अत्यन्त मधुर वाणी में बृहस्पति से कहा-पिताजी ! मैंने जो सर्व-त्याग किया है, उसका आज यद्यपि आठवाँ वर्ष है, तथापि मुझे अभी तक निर्मल शान्ति प्राप्त नहीं हुई।

श्रीवसिष्ठजी बोले-श्रीराम ! कच अरण्य में इस प्रकार दीन वचन बोल ही रहा था कि 'सभी का त्याग करो' यों कहकर बृहस्पति आकाश में जाकर अदृश्य हो गये। बृहस्पति के चले जाने के अनन्तर कच ने अपने शरीर पर से वल्कल आदि का भी परित्याग कर दिया और शरत् काल के आकाश की तरह वह दिगम्बर हो गया। वह अनावृत दिशाओं में रहने लगा। उसका शरीर शान्त और सुन्न हो गया था तथा वह श्वासमात्र ले रहा था। तीन वर्ष के बाद खिन्न-चित्त उसने किसी एक जंगल में फिर अपने गुरु उन्हीं पिताजी का दर्शन किया। भक्ति से उसने अपने पिताजी का पूजन-अभिवादन आदि किया। पिता ने भी अपने पुत्र का आलिंगन किया। इसके अनन्तर कच दुःखित होकर गदगद् वाणी से पूछने लगा।

कच ने कहा-पिताजी ! मैंने सबका त्याग कर दिया, कन्था, दण्ड, कमण्डलु आदि का भी त्याग कर दिया। तथापि अपने आत्मपद में मेरी स्थिति नहीं हुई। अब मैं क्या करूँ ?

बृहस्पति बोले-पुत्र ! चित्त ही सब कुछ है; अतः उसीका त्यागकर तुम अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ। सर्वज्ञ लोग चित्तत्याग को ही सर्वत्याग कहते हैं।

उन्यासीवाँ सर्ग समाप्त

अस्सीवाँ सर्ग

मिथ्या पुरुष की आख्यायिका

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! पुत्र से ऐसा कहकर बृहस्पति शीघ्रता से आकाश में उड़ गये। इसके अनन्तर अन्तःकरण से खेद निकालकर वह कच

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

त्याग के उद्देश्य से चित्त की खोज करने लगा। खोज करने पर भी जब उसे चित्त की प्राप्ति नहीं हुई, तब उसने विवेक-पूर्वक विचार किया कि 'देह आदि जो भी कुछ ये प्रसिद्ध पदार्थ हैं, वे तो चित्त नहीं कहे जा सकते और उनमें चित्त कहाँ रहता है, इसका भी निरूपण नहीं हो सकता। इसलिये बेचारे अपराध-शून्य देह आदि का मैं व्यर्थ ही क्यों त्याग करूँ ! इस परिस्थिति में अब चित्त स्वरूप महाशत्रु को जानने के लिये पिताजी के पास ही जाता हूँ। उनसे जानकर मैं उसका त्याग करूँगा। तदनन्तर शीघ्र ही समस्त शोकों से मुक्त हो जाऊँगा।'

रघुवर ! ऐसा विचारकर वह कच स्वर्ग में चला गया तथा बृहस्पति के पास जाकर उसने स्नेह-पूर्वक वन्दना और प्रणाम किया। फिर, एकान्त में उसने उनसे पूछा-'भगवन् ! चित्त क्या है? इसका आप मुझे उपदेश दीजिये और चित्त का स्वरूप भी बतलाइये, जिससे कि मैं उसका त्याग करूँ।'

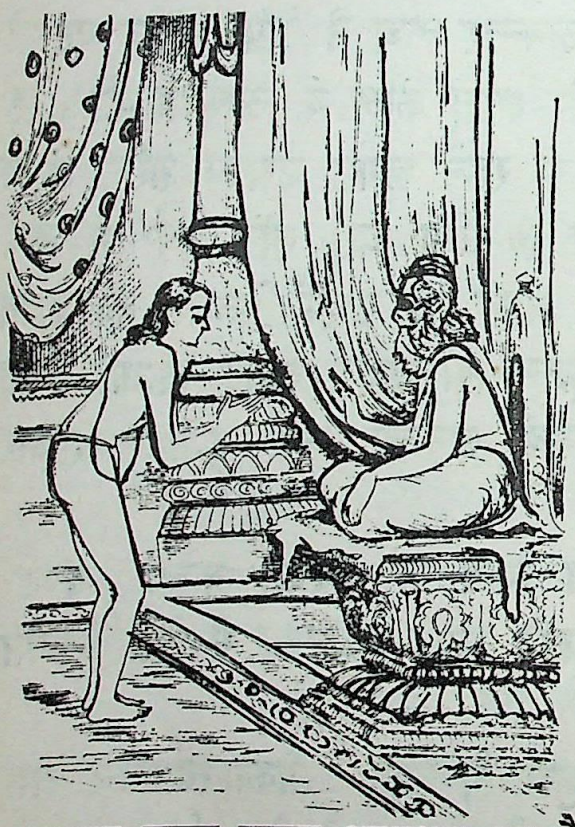

बृहस्पति ने कहा-आयुष्मन् ! चित्त-तत्त्वज्ञ महानुभाव अपने अहंकार को ही चित्त जानते हैं; अतः प्राणी का जो यह भीतरी अहंभाव है, वही चित्त कहाजाता है।

कच ने कहा-तैंतीस करोड़ देवताओं के गुरो ! महामते ! अहंभाव ही चित्तरूप कैसे हो सकता है, उसे मुझसे कहिये। योगियों में श्रेष्ठ ! मैं तो मानता हूँ कि इसका त्याग इतना असम्भव-सा है कि किसी प्रकार सिद्ध हो ही नहीं सकता। इसलिये इसका त्याग कैसे होगा ?

बृहस्पति ने कहा-पुत्र ! अहंकाररूप चित्त का त्याग तो फूलों के मर्दन से भी और नेत्रों के मीलन से भी अत्यन्त सुलभ है; अतः इसके त्याग में तनिक भी क्लेश नहीं है। तनय ! इसका त्याग जिस उपाय से सुलभ होता है, वह उपाय मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो। जो वस्तु केवल अज्ञान से उत्पन्न होती है, उसका परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से विनाश हो जाता है। पुत्र ! जैसे मिथ्या

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भ्रम कुछ वस्तु नहीं है, वैसे ही अहंकार भी वास्तव में कुछ है ही नहीं। अज्ञानियों की दृष्टि से यह उसी प्रकार असत् होता हुआ भी सत्-सा प्रतीत होता है, जिस प्रकार बालक की दृष्टि से असत् बेताल प्रतीत होता है। जैसे रज्जु में भ्रान्ति से बिना हुए ही साँप दिखायी पड़ता है, जैसे मरुभूमि में बिना हुए ही जल दिखायी पड़ता है, वैसे ही अज्ञान से अहंकार भी मिथ्या ही प्रतीत होता है। जैसे चन्द्रमा एक ही है; परंतु नेत्र-दोष से मिथ्या ही दो दिखायी देता है, वैसे ही यह अहंकार अज्ञान से ही दिखायी देता है। वह अज्ञान से प्रतीत होता है; इसलिये तो असत्य नहीं है, और वास्तव में है नहीं; इसलिये सत्य नहीं है। एक, आदि और अन्त से रहित, चैतन्यमात्र, सभी ओर से निर्मल, आकाश से भी अत्यन्त स्वच्छ सर्वानुभव रूप परमात्मा ही सत्य वस्तु है। सभी जगह और सभी प्राणियों से निरन्तर सब ओर से प्रकाश करने वाला वही एक विज्ञानानन्दघन परमात्मा उसी प्रकार प्रकाशित होता है, जिस प्रकार समुद्र की चंचल अनन्त तरंगों में जल। विवेक-पूर्वक विचार करना चाहिये कि यह अहंकार नाम की कौन वस्तु है और किस प्रकार किससे उत्पन्न हुई है ? अज्ञान के कारण ही यह प्रतीत होता है; अतः मिथ्या है। इसलिये पुत्र ! यह देह आदि मैं हूँ, इस तुच्छ, परिमिताकार और देश-काल से परिच्छिन्न मिथ्या विश्वास को छोड़ दो। तुम तो देश, काल आदि परिच्छेदों से शून्य, स्वच्छ, निरन्तर उदय स्वभाव, व्यापक, सब पदार्थों के रूप से भासमान, निर्मल अद्वय केवल सच्चिदानन्दमय हो। तुम सर्वदा ही अत्यन्त विशुद्ध, अनन्त, नित्य चिन्मय परमात्मा हो। कच ! सत्स्वरूप तुम्हारा यह अहंभाव क्या वस्तु है ? अर्थात् कुछ नहीं है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! देवगुरु बृहस्पति से अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ एकरूपता से सम्पन्न कराने वाला उत्तमोत्तम इस प्रकार का परम उपदेश पाकर उनका पुत्र कच जीवन्मुक्त हो गया। जिस प्रकार बृहस्पति का पुत्र कच ममता और अहंकार रहित, अज्ञान मूलक जड़चेतन की ग्रन्थि से रहित और परम शान्तबुद्धि होकर ब्रह्म में स्थित रहा, उसी प्रकार तुम भी निर्विकार होकर स्थित रहो। इस अहंकार को तुम असत् समझो; क्योंकि मिथ्या खरगोश के सींगों का त्याग और ग्रहण क्या ? तुम एक देशी नहीं हो। संकल्प रहित, सर्वभावरूप, सर्वव्यापी, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर, मन से रहित केवल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सच्चिदानन्दघन-स्वरूप हो। निष्पाप श्रीराम ! यह मायामय सम्पूर्ण जगत् अज्ञान से तो सत्-सा दिखायी पड़ता है और ज्ञान से वह सब ब्रह्मरूप ही है; क्योंकि यह अत्यन्त गाढ़, जो संसार की माया है, उसका पार पाना यद्यपि अत्यन्त कठिन है, तथापि जैसे शरद् ऋतु से कुहरा नष्ट हो जाता है, वैसे ही यह माया परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से तुरंत नष्ट हो जाती है।

श्रीरामजी ने कहा-गुरुवर ! ज्ञातव्य तत्त्व के ज्ञान से तृप्त हुआ भी मैं आपसे यह प्रश्न पूछता हूँ। भला बतलाइये तो सही कि कौन ऐसा प्राणी है, जो तृप्त होता हुआ भी सामने रखे हुए अमृतरूपी पेय को न पीयेगा ? मुनिश्रेष्ठ ! मुझसे शीघ्र यह बतलाइये कि मिथ्या पुरुष नाम की कौन वस्तु है, जिसने सत्य वस्तु ब्रह्म को असत्य-सा बना रखा है और असत्य वस्तु समस्त जगत् को सत्य-सा बना डाला है ?

श्रीवसिष्ठजी बोले-राघव ! मिथ्यापुरुष को जानने के लिये यह सुन्दर हास्यप्रद आख्यायिका तुम सुनो, जो मेरे द्वारा कही जाती है। महाबाहो ! कोई एक माया-यन्त्रमय पुरुष था। वह केवल बालक के सदृश तुच्छबुद्धि, मूढ़ और अज्ञान से आवृत था। वह किसी एक निर्जन एकान्त प्रदेश में उत्पन्न हुआ था और उसी शून्य प्रदेश में रहता था। वह वास्तव में आकाश में नेत्रदोष से दिखायी पड़ने वाले केशों के झुंड-सदृश और मरुभूमि में मृगतृष्णाजल के सदृश मिथ्या ही था। वहाँ वृद्धि को प्राप्त हुए उस मिथ्या पुरुष के मन में यह संकल्प हुआ कि मेरी प्रिय से प्रिय वस्तु आकाश है, अतः उसे कहीं पर रखकर स्वयं मैं ही उसकी बड़े आदर से रक्षा करूँ। इस प्रकार विचार करके आकाश की रक्षा के लिये उसने एक घर का निर्माण किया। रघुनन्दन ! तदनन्तर उस घर के अंदर उसने यह आस्था बाँध ली कि यह आकाश मेरा है और इसकी मैंने रक्षा की है और उस गृहाकाश से वह सन्तुष्ट हो गया। इसके अनन्तर कुछ काल के बाद वह उसका घर नष्ट हो गया। जब वह नष्ट हो गया, तब मिथ्यापुरुष इस प्रकार शोक करने लगा-'हा गृहाकाश, तुम नष्ट हो गये, अरे ! तुम एकही क्षण में कहाँ चले गये। हा हा ! तुम टूट गये। तुम बड़े अच्छे थे।'

इस प्रकार सैकड़ों बार शोक कर फिर उस दुर्बुद्धि मिथ्या पुरुष ने वहाँ पर आकाश की रक्षा करने के लिये एक कूप का निर्माण किया और उसी कूपाकाश की रक्षा में तत्पर होकर संतुष्ट हो गया। कुछ समय के बाद उसका

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वह कूप भी नष्ट हो गया। जब कूपाकाश का नाश हो गया, तब वह महान् शोक-सागर में निमग्न हो गया। कूपाकाश के लिये शोक कर चुकने के अनन्तर उसने तत्काल ही एक घड़े का निर्माण किया और घटाकाश की रक्षा में तत्पर होकर संतुष्ट हो गया। रघुकुलश्रेष्ठ ! काल से उसका वह घट भी नष्ट हो गया। भाग्यहीन जिस किसी दिशा का ग्रहण करता है, वही नष्ट हो जाती है। घड़े के आकाश का शोक कर लेने के बाद उसने आकाश की रक्षा के लिये कुण्ड का निर्माण किया और पहले की तरह ही कुण्डाकाश की रक्षा के लिये तत्पर होकर संतुष्ट हो गया। कुछ काल के बाद उसका कुण्ड भी उसी प्रकार विनाश को प्राप्त हो गया, जिस प्रकार तेज से अन्धकार का नाश हो जाता है। कुण्डाकाश के विषश में भी उसने महान् शोक किया। कुण्ड के आकाश का शोक करने के बाद उसने आकाश की रक्षा के लिये एक ऐसे घेरे का निर्माण किया, जिसमें चारों ओर कमरे तथा बीच में एक बड़ा कमरा था, फिर उसी के आकाश की रक्षा में तन्मय होकर वह संतुष्ट हो गया। जिसने अनेक प्रजाओं का ग्रास कर लिया है, समय पर वह काल इस घर को भी खा गया। उससे भी वह शोक-निमग्न हो गया। उस चतुःशाल घर के शोक के बाद उसने आकाश की रक्षा के लिये मेघाकार कुसूल (कोठार) बनाया और फिर उसी के आकाश की रक्षा में निरत हो संतुष्ट हो गया। उसके उस कुसूल को भी काल ने वैसे अपहृत कर लिया. जैसे वायु मेघ को अपहृत कर लेता है। उस कुसूल विनाश के शोक से वह अत्यन्त सन्तप्त हो गया। इस प्रकार घर, चतुःशाल, कुण्ड और कुसूल आदि से आकाश की रक्षा करते हुए उस मिथ्या पुरुष का यह कभी समाप्त न होने वाला काल बीतता ही जाता था। श्रीराम ! इस प्रकार गहन घर, कूप, कुण्ड आदि उपाधियों से आकाश को आत्म बुद्धि से पकड़कर स्थित हुआ वह मिथ्या पुरुष गमनागमन की आसक्ति से मूढ़ और विवश होकर एक दुःख से अति कठिन दूसरे दुःख में आता और जाता रहता है।

अस्सीवाँ सर्ग समाप्त

इक्यासीवाँ सर्ग

मिथ्या पुरुष का तात्पर्य

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-प्रभो ! मिथ्या पुरुष के प्रसंग से आपने जिस मायामय पुरुष का कथन किया, वह किस अभिप्राय से किया है और उसके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

द्वारा किये गये आकाश रक्षण का भी क्या अभिप्राय है, यह मुझसे कहिये।

श्रीवसिष्ठजी बोले–श्रीराम ! सुनो। अभी जो मैंने मिथ्या पुरुष की कथा तुमसे कही है, उसका यथार्थ तात्पर्य तुमसे प्रकट करता हूँ। रघुनन्दन ! मैंने मायायन्त्रमय जिस मिथ्या पुरुष का उस कथा से उल्लेख किया है, उसे तुम अहंकार ही जानो। वह शून्य आकाश में माया से उत्पन्न हुआ है। जिस मायामय आकाश के एक कोने में यह जगत् स्थित है, वह स्वयं सृष्टि के आदि में भी असीम, असत् और शून्यरूप ही रहता है। उस मायाकाश के अंदर प्राणियों से अत्यन्त अगम्य परमब्रह्म परमात्मा विराजमान है और उसी ब्रह्मरूप मायाकाश से आरम्भ में अहंकार का वैसे ही उदय होता है, जैसे आकाश से शब्द और वायु से स्पन्दन का उदय होता है। वह अहंकार ही पूर्वोक्त कथा का मायापुरुष है और वही मिथ्या पुरुष है; क्योंकि माया से जो अहंकार उत्पन्न हुआ है, वह असत् एवं मिथ्यारूप ही है। कुँआ, कुण्ड, चतुःशाल, घड़ा आदि शरीरों की रचना कर मैंने उनके स्वरूप की रक्षा की–यों अहंकार ने ही आकाश में संकल्प किया था। जगदाकाररूप विभ्रमों से यह अहंकार ही जीवात्मा को मोहित करता है। उस व्यापक, शून्य, भूताकाशरूप ब्रह्म में यह जगत् निश्चय ही मिथ्या है। श्रीराम ! आकाश में आकाश की रक्षा करते हुए उस मिथ्या पुरुष ने घट आदि का निर्माण कर उनके आकाशों का रक्षण करने में अनेक तरह के क्लेशों का ही अनुभव किया था। जो आत्मा है, वह तो आकाश से भी बड़ा है, परम शुद्ध है, अत्यन्त सूक्ष्म है, परम कल्याणरूप तथा शुभ है। उसको कौन पकड़ सकता है और कौन उसकी रक्षा कर सकता है ? जैसे घट आदि के विनष्ट हो जाने पर घटादि का आकाश कभी नष्ट नहीं होता, वैसे ही देहों के नष्ट हो जाने पर निर्लेप जीवात्मा का कभी विनाश नहीं होता। श्रीराम ! आत्मा शुद्ध, केवल, चिन्मय तथा आकाश और अणु से भी अत्यन्त सूक्ष्म तथा अहंकार से रहित नित्य स्वप्रकाश रूप चेतन ही है; इसलिये आकाश के समान उसका नाश नहीं होता। वास्तव में तो कहीं, किसी समय न कुछ उत्पन्न होता है और न मरता ही है, केवल ब्रह्म ही जगत् के रूप में प्रकाशित हो रहा है। आदि, मध्य और अन्त से तथा उत्पत्ति और विनाश से रहित वह परमात्मा एक, अद्वितीय सत्य, परमपद स्वरूप और शान्ति मय है।

इक्यासीवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

बयासीवाँ सर्ग

सब कुछ ब्रह्म ही है-इसका प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! सृष्टि के आदि काल में परब्रह्म से यह संकल्प-विकल्पात्मक समष्टि मन उत्पन्न हुआ। वह उस परब्रह्म में स्थित हुआ ही अनेक भिन्न-भिन्न कल्पनाओं का निमित्त बनकर आज तक विद्यमान है। जैसे फूलों में सुगन्ध, सागर में बड़े-बड़े तरंग और सूर्य में किरणें स्वाभाविक ही रहती हैं, वैसे ही ब्रह्म में मन भी स्वाभाविक ही रहता है। किंतु राघव ! जो पुरुष इन किरणों की आदित्य से अलग भावना करता है, उस पुरुष के लिये ये किरण, आदित्य से अलग ही है। जिसने केयूर की सुवर्ण से पृथक्रूप से भावना की, उसकी दृष्टि में सुवर्ण से पृथक् ही केयूर प्रतीत होता है; क्योंकि उसकी भावना में केयूर सुवर्ण नहीं है। परंतु जिसने किरणों की आदित्य-स्वरूप से ही भावना की, उसकी दृष्टि में वे किरणें आदित्यरूप ही ठहरती हैं और वह यह कहता है कि आदित्य रश्मि भेदों से शून्य ही है यानी आदित्य और किरणों का परस्पर कोई भेद नहीं है। जिसने तरंग की जल भिन्न रूप से भावना की, उसमें एकमात्र तरंग बुद्धि ही स्थित रहती है, जल-बुद्धि नहीं। किंतु जो पुरुष तरंग की जलरूपता से भावना करता है उसे सामान्य जल-बुद्धि ही होती है। ऐसा पुरुष जल और तरंग के भेद से निर्मुक्त निर्विकल्पक कहा जाता है। जो पुरुष केयूर स्वर्ण से भिन्न नहीं है, ऐसी भावना करता है, वह सामान्य स्वर्ण-बुद्धिवाला भेदशून्य निर्विकल्प कहा जाता है। ज्वालापंक्ति अग्नि से भिन्न है, जो पुरुष ऐसी भावना करता है उसे अग्नि-बुद्धि उत्पन्न नहीं होती, केवल ज्वाला-बुद्धि ही रहती है। किंतु ज्वाला की पंक्ति अग्नि से भिन्न नहीं है, इस प्रकार जो भावना करता है उसको केवल अग्नि-बुद्धि ही रहती है और उसे निर्विकल्प कहा जाता है। जो पुरुष निर्विकल्प है, वही महान् है। उसकी बुद्धि कभी क्षीण नहीं होती, सदा एकरस रहती है। उसने प्राप्तव्य वस्तु परमात्म को प्राप्त कर लिया। इसलिये वह सांसारिक पदार्थों में कभी नहीं फँसता। स्वप्रकाश स्वयं आत्मा ही अपने-आप जब संकल्प करता है, तब वह आत्मा ही भिन्न की तरह भासने वाला संकल्पात्क मन हो जाता है। फिर मन ही अपनी विश्वाकार आकृति की भावना कर लेता है। वह विश्वाकार संकल्परूप चित्त इस जगत् की जिस रूप से कल्पना करता है, तत्क्षण ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

संकल्पों से वह तद्रूप हो जाता है। यह जो जगद्रूप विशाल आकार देखा जाता है, सब मनका संकल्प ही है। वह सत्य तो इसलिये नहीं है कि वह वास्तव में संकल्प रूप होने के कारण मिथ्या है और सर्वथा असत्य इसलिये नहीं कहा जाता कि वह प्रतीत होता है। किंतु स्वप्नों के सदृश अनिर्वचनीय ही उत्पन्न हुआ है; क्योंकि वह स्वप्न के संसार-जाल के समान है। जैसे साधारण प्राणी के मन का संकल्प विविध सामग्री-रचनाओं से सुन्दर लगता है, वैसे ही हिरण्यगर्भ का भी यह व्यापक मन का संकल्प सुन्दर लगता है। 'जगत् परब्रह्म-स्वरूप है' इस प्रकार की भावना करने पर यह जगत् ब्रह्म में विलीन हो जाता है। वास्तव में तो यदि देखा जाय, तो यह जगत् कुछ भी नहीं है। किंतु यदि दृश्य जगत् को अपरमार्थतः देखा जाय, तो वह हजारों शाखा-प्रशाखाओं में विभक्त हो जाता है। अतः तुम जो कुछ करते हो, उसे निर्मल चिन्मय ब्रह्म ही समझो; क्योंकि ब्रह्म ही जगत् के रूप में वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। इसलिये उस ब्रह्म से भिन्न और कुछ भी नहीं है।

बयासीवाँ सर्ग समाप्त

तिरासीवाँ सर्ग

भृंगीश के प्रति महादेवजी के द्वारा महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी के लक्षणों का निरूपण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! किसी समय की बात है कि सुमेरु पर्वत के अग्नि सदृश शिखर पर अपने समस्त परिवार के साथ भगवान् शंकर विराजमान थे। अपने परिवार के साथ बैठे हुए उमापति से साधारण आत्मज्ञान रखने वाले महान् तेजस्वी विनम्र भृंगीश ने, जो वहीं पर उपस्थित था, अंजलि बाँधकर पूछा-'महाराज ! इस क्षणभंगुर जगद्रूपी घर के अंदर विश्राम सुख से किस आन्तरिक निश्चय का अवलम्बन करके मैं समग्र चिन्ता ज्वर से मुक्त होकर निश्चल रूप से स्थित रह सकता हूँ ?'

भगवान शंकर बोले-अनघ ! तुम समस्त शंकाओं से रहित होकर अविनाशी अचल धैर्य का अवलम्बन कर महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी हो जाओ।

भृंगीश ने कहा-प्रभो ! ऐसे वे कौन से लक्षण हैं, जिनकी प्राप्ति हो जाने पर पुरुष महाकर्ता, महाभोक्ता और महात्यागी कहा जा सकता है, उन्हें मुझसे भली-भाँति कहिये।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भगवान् शंकर बोले-महाभाग ! अहंता, पाप और मात्सर्य से रहित जो मननशील पुरुष उद्वेग से रहित हो शास्त्र विहित क्रियाओं का अनुष्ठान करता है, वह महाकर्ता कहा जाता है। जो कहीं पर भी स्नेह नहीं रखता, जो साक्षी के सदृश निर्विकार रहता है और जो न्याययुक्त प्राप्त कार्य का निष्कामभाव से आचरण करता है, वह पुरुष महाकर्ता कहा जाता है। उद्वेग और हर्ष से रहित जो पुरुष निर्मल समबुद्धि से शोकजनक परिस्थितियों में शोक नहीं करता और हर्ष जनक परिस्थितियों में हर्ष नहीं करता, वह महाकर्ता कहा जाता है। जो ज्ञानवान् मुनि अपने प्रारब्ध से जिस समय जो भी कोई न्यायोचित कार्य प्राप्त हो जाय, उस समय उस कार्य को आसक्ति-रहित हो करता है, वह महाकर्ता कहा जाता है। जन्म, स्थिति और विनाश में तथा उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थों में जिसका मन सम ही रहता है, वह महाकर्ता कहा जाता है। जो किसी से द्वेष नहीं करता, जो किसी की अभिलाषा नहीं करता और जो प्रारब्ध के अनुसार न्याययुक्त प्राप्त हुए सारे पदार्थों का उपभोग करता है, वह महाभोक्ता कहा जाता है। जो पुरुष अहंकार से रहित और परमात्मा में स्थित होने के कारण न्यायपूर्वक इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण करता हुआ भी ग्रहण नहीं करता, कर्मों का आचरण करता हुआ भी आचरण नहीं करता एवं पदार्थों का उपभोग करता हुआ भी उपभोग नहीं करता, वह महाभोक्ता कहा जाता है। जो पुरुष बुद्धि की खिन्नता से रहित होकर साक्षी के सदृश समस्त लोक व्यवहारों का किसी प्रकार की इच्छा के बिना अनुभव करता है, वह पुरुष महाभोक्ता कहा जाता है। जैसे समुद्र नाना नदियों के जल को समानरूप से ग्रहण करता है, वैसे ही जो मनुष्य न्याय से प्राप्त बड़े-बड़े सुख-दुःखों को समान रूप से ग्रहण करता है, वह महाभोक्ता कहा जाता है। जो पुरुष कड़ुए, खट्टे, नमकीन, तीते, मीठे, खारे, स्वादु या अस्वादु भी न्याय से प्राप्त अन्न को समान बुद्धि से खा लेता है-वह महाभोक्ता कहा जाता है।

काम्य कर्म, निषिद्ध कर्म, सुख, दुःख, जन्म और मृत्यु का जिसने विवेकपूर्ण सर्वथा त्याग कर दिया है, वह महात्यागी कहा जाता है। सम्पूर्ण इच्छाओं, समस्त संशयों, वाणी, मन और शरीर की सभी चेष्टाओं तथा सम्पूर्ण सांसारिक निश्चयों का जिस पुरुष ने विवेकपूर्वक सर्वथा त्याग कर दिया है, वह महात्यागी कहा जाता है। यह जितनी भी सम्पूर्ण दृश्यरूपी मन की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

कल्पना दिखायी दे रही है, उसका जिस पुरुष ने अच्छी तरह से त्याग कर दिया है, वह महात्यागी कहा जाता है।

निष्पाप श्रीराम ! देवदेवेश भगवान् शंकर ने बहुत दिन पहले भृंगीश को इस तरह का उपदेश दिया था। श्रीराम ! सदा प्रकाशमान, निर्मलस्वरूप आदि और अन्त से शून्य केवल परब्रह्म ही है, ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी पदार्थ नहीं है; क्योंकि इस संसार में जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह सब, कुछ कल्पों के कार्य का एकमात्र मूल कारण निर्विकार परमात्मस्वरूप परब्रह्म ही है। वह परमात्मा बड़े-बड़े अनेक सर्गों से विशाल आकार वाला होने पर भी वास्तव में आकाश के समान निराकार ही है। कहीं पर कुछ भी पदार्थ, फिर चाहे वह स्थूल हो, सूक्ष्म हो अथवा कारण रूप हो,-सदा एकरस परब्रह्म से भिन्न किसी तरह नहीं हो सकता; इसलिये तुम 'मैं सद्रूप ब्रह्म हूँ,' इस प्रकार का अपने अंदर निश्चय करके स्थित रहो।

तिरासीवाँ सर्ग समाप्त

चौरासीवाँ सर्ग

अहंकार-रूप चित्त के लक्षण

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-सर्वधर्मज्ञ ! भगवन् ! अहंकार नामक चित्त जिस समय सर्वथा विलीन हो जाता है या विलीन होने लग जाता है, उस समय के वासनारहित अन्तःकरण का क्या स्वरूप होता है?

श्रीवसिष्ठजी बोले-श्रीराम ! वासनारहित अन्तःकरण को बलपूर्वक उत्पन्न हुए भी-लोभ, मोह आदि दोष वैसे ही लिप्त नहीं कर सकते, जैसे कमल-पत्र को जल लिप्त नहीं कर सकते। अहंकार नामक चित्त और पाप के विलीन हो जाने पर पुरुष सदा शान्त प्रसन्न मुख रहता है। उस समय साधक की वासनाओं का समूह छिन्न-भिन्न-सा होकर धीरे-धीरे बिल्कुल क्षीण होने लग जाता है। क्रोध और मोह का क्षय होने लगता है। काम और लोभ चले जाते हैं। इन्द्रियाँ और दुःख विकसित नहीं होते। ये सुख-दुख आदि प्रतीत होने पर भी, तुच्छ होने के कारण, उस साधक के मन को लिप्त नहीं कर सकते। चित्त के विलीन हो जाने पर उस श्रेष्ठ साधक पुरुष की देवतागण भी प्रशंसा करते हैं। उस पुरुष के हृदय में शीतल चाँदनीरूपी समता उत्पन्न होती है। ऐसा श्रेष्ठ साधक पुरुष उपशान्त, कमनीय, सेव्य, अप्रतिरोधी (दूसरे की इच्छा का विघात

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

न करने वाला), विनीत, बलशाली और स्वच्छ श्रेष्ठ शरीर वाला होकर रहता है। जो बुद्धि की तीक्ष्णता से प्राप्त करने योग्य है और जिस की प्राप्ति होने पर समस्त आपत्तियाँ अस्त हो जाती हैं, उस परमात्म-वस्तु में जो मनुष्य मोह के कारण प्रवृत्त नहीं होता, उस नराधम को धिक्कार है। श्रीराम ! दुःख रूपी रत्नों की खानि और जन्म-मरणरूप संसार-सागर के पार होने की इच्छा वाले पुरुष को निरतिशयानन्दमय परमात्मा में नित्य निरन्तर समुचित विश्राम पाने के लिये 'मैं कौन हूँ' 'यह जगत् क्या है, परमात्मतत्त्व कैसा है ? इन तुच्छ भोगों से कौन सा फल मिलेगा ?' इन प्रश्नों पर विवेक पूर्वक विचार करना चाहिये। यही परम साधन है। इसलिये मनुष्य को उपर्युक्त साधन का आश्रय लेना चाहिये।

चौरासीवाँ सर्ग समाप्त

पिचासीवाँ सर्ग

महाराज मनु का इक्ष्वाकु के प्रति उपदेश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! तुम्हारे वंश के आदि पुरुष इक्ष्वाकु नामक राजा जिस प्रकार के विवेक पूर्वक विचार से मुक्त हो गये, उस विचार को तुम सुनो। अपने राज्य का परिपालन करते हुए इक्ष्वाकु नामक राजा किसी समय एकान्त में जाकर अपने मन में स्वयं यह विवेकपूर्वक विचार करने लगे कि 'बुढ़ापा, मृत्यु, क्षोभ, सुख, दुख तथा भ्रम से युक्त इस दृश्य-प्रपंच का हेतु क्या है।' इस प्रकार विचार करते हुए भी वे जब जगत् के कारण को न समझ सके, तब उन्होंने एक दिन ब्रह्मलोक से आये हुए सभा में बैठे तथा पूजित हुए अपने पिता प्रजापति मनु से पूछा-भगवन् ! आपकी दया ही आप से पूछने के लिये मुझे प्रेरित कर रही है। करुणानिधे ! 'यह सृष्टि कहाँ से आयी है, इसका स्वरूप कैसा है तथा कब किसने इसकी रचना की है? यह आप कहिये। भगवन् ! विस्तृत जाल में फँसे हुए पक्षी की भाँति मैं इस विषम संसार जाल से किस प्रकार मुक्त हो सकूँगा ?'

मनु बोले-राजन् ! तुम्हारे अंदर सुन्दर विकासयुक्त विवेक का उदय हुआ है, तभी तुमने यह प्रश्न किया है। यह प्रश्न मिथ्या संसारजाल का उच्छेद करने वाला तथा सब प्रश्नों का सार है। महीपते ! यह जो कुछ जगत् दिखायी दे रहा है, वस्तुतः कुछ भी नहीं है। यह आकाश में प्रतीत होने वाले गन्धर्व नगर की भाँति तथा मरुस्थल में प्रतीत होने वाले जल ही भाँति मिथ्या है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

किन्तु जो अविनाशी परब्रह्म है, वही 'सत्' और 'परमात्मा' इत्यादि नामों से कहा जाता है। उस परमात्मा रूप दर्पण में यह दृश्य रूप जगत् प्रतिबिम्ब की तरह प्रतीतिमात्र है। इसलिये वस्तुतः संसार में न तो किसी का बन्धन है और न मोक्ष है। केवल एकमात्र सब विकारों से शून्य ब्रह्म ही है। जैसे समुद्र में एक ही जल अनेक तरंगों के रूप में प्रतीत होता है, उसी तरह एक सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म ही जगत् के अनेक रूपों में प्रतीत होता है। उस ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसलिये राजन् ! तुम बन्ध और मोक्ष से रहित होकर निर्भय-पदरूप परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो जाओ।

अज्ञान की उपाधि से युक्त जीव कर्मानुसार सुख-दुःख भोगते हुए अनेक योनियों में भ्रमण करते रहते हैं। किन्तु वास्तव में सुख-दुःख और मोह आदि विकार मन में ही होते हैं, आत्मा में नहीं। परमेश्वर न तो शास्त्रों के स्वाध्याय द्वारा और न गुरु के द्वारा ही दिखायी देता है। वह तो अपनी सत्त्वस्थ-श्रद्धायुक्त पवित्र और स्थिर बुद्धि से ही अपने आप दिखायी देता है। इसलिये जैसे मार्ग से राग-द्वेषरहित बुद्धि से पथिक देखे जाते हैं, वैसे ही अपनी राग-द्वेषरहित बुद्धि से ही इन अपनी इन्द्रिय आदि का अवलोकन करना चाहिये। अपनी बुद्धि से देहादि पदार्थ मात्र का दूर से ही त्यागकर अपने अन्तःकरण को शान्तिमय बनाकर नित्य परमात्ममय हो जाओ। 'मैं ही देह हूँ' यह बुद्धि संसार में फँसाने वाली है। इसलिये मुमुक्षु पुरुषों को इस प्रकार की बुद्धि को कभी नहीं अपनाना चाहिये। मैं आकाश से भी सूक्ष्मतर सच्चिदानन्द मय हूँ-ऐसी जो नित्य अचला बुद्धि है, वह संसार-बन्धन से छुड़ाने वाली है। जैसे केयूर, कड़े, कुण्डल आदि आभूषणों का आकार सुवर्ण ही है, वैसे ही माया के कार्यरूप जगत् का आकार भी परमात्मा का संकल्प होने से परमात्मा ही है। अतः इस अनात्म देहादि दृश्य समूह को आत्मा न समझकर और अन्तःकरण को वासनारहित करके गूढ़ रूप परमात्मा में अनायास अचल स्थित रहो। जैसे परिस्पन्द के कारण एक ही जल फेन, बुद्बुद और लहर आदि नाना प्रकार के आकारों में दिखायी देता है, वैसे ही अपने संकल्पों से यह सच्चिदानन्द ब्रह्म ही नाना प्रकार के आकारों में प्रकट होता है। वत्स ! तुम संकल्प रूपी कलंकों से रहित चित्त को परमात्मा में स्थापित करके कर्म करते हुए भी कर्तापन के अभिमान से रहित, शान्त और सुखपूर्वक ब्रह्म के स्वरूप में स्थित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हुए राज्य-पालन करो।

जैसे चन्द्र, सूर्य, अग्नि, तप्तलोह एवं रत्न आदि के प्रकाश, वृक्षों के पत्ते तथा झरनों के कण कल्पित हैं, वैसे ही इस ब्रह्म में जगत् तथा बुद्धि आदि भी कल्पित ही हैं तथा वही ब्रह्म जगद्रूप होकर अज्ञानियों के लिये दुःखप्रद हो रहा है। अहो ! विश्व को मोह में डाल देने वाली यह माया कैसी विचित्र है, जिसके कारण संपूर्ण अंगों में भीतर और बाहर सब जगह व्याप्त परमात्मा को यह जीव नहीं देख सकता। इसलिये अहंकार से रहित निर्मल सात्त्विक अन्तःकरण से 'सभी पदार्थ निराकार सच्चिदानन्द ब्रह्म ही हैं'-ऐसी भावना करे। 'यह रमणीय है और वह रमणीय नहीं है'-इस प्रकार की भावना ही तुम्हारे दुःख का कारण है। वह भावना जब सर्वत्र समदृष्टि रूपी अग्नि से जल जाती है, तब कहीं भी दुःख का नामोनिशान भी नहीं रह जाता। निर्वासना रूप अस्त्र से प्रियाप्रिय रूप विषमता को परम पुरुषार्थ के द्वारा तुम स्वयं ही काट डालो। राजन् ! तुम निर्वासन रूप अस्त्र से वासनारूप कर्म-वन को काटकर सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर ब्रह्मभाव प्राप्त कर शोकरहित हो जाओ। पुत्र ! तुम सदसद्वस्तु के विवेकरूप विचार से युक्त होकर समस्त भावनाओं से रहित हो जाओ तथा समस्त विशाल भुवनों को परमात्मा के स्वरूप से परिपूर्ण समझो। तदनन्तर जन्म-मरणरूप रोग से रहित होकर परब्रह्म परमात्मा के आनन्द का अनुभव करते हुए दीर्घकाल तक स्थिर रहो और समता तथा शान्ति से युक्त होकर निर्भय चेतन ब्रह्मस्वरूप बन जाओ।

पिचासीवाँ सर्ग समाप्त

छियासीवाँ सर्ग

जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष के लक्षणों का वर्णन

मनु महाराज ने कहा-राजन् ! सबसे पहले शास्त्र और सज्जनों की संगति से अपनी बुद्धि शुद्ध और तीक्ष्ण करनी चाहिये। यही योगी के योग की पहली भूमिका कही गयी है। इस का नाम 'श्रवण' भूमिका है। सच्चिदानन्द ब्रह्म के स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करना 'मनन' नामक दूसरी भूमिका है। संसार के संग से रहित होकर परमात्मा के ध्यान में नित्य स्थित रहना 'निदिध्यासन' नामक तीसरी भूमिका है। जिसमें वासना का अत्यन्त अभाव है, वह ब्रह्म-साक्षात्कार से अज्ञान आदि निखिल प्रपंच की निवृत्ति करने वाली

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

'विलापनी' नाम की चौथी भूमिका है। इस 'ब्रह्मवित्' पुरुष को संसार स्वप्न प्रतीत होता है। विशुद्ध चिन्मय आनन्दस्वरूप की प्राप्ति पाँचवीं भूमिका है। इस भूमिका में जीवन्मुक्त पुरुष आधे सोये या जागे हुए पुरुष के सदृश रहता है। अर्धसुप्त पुष्प को संसार की जैसी प्रतीति होती है, वैसी ही इस 'ब्रह्मविद्वर' जीवन्मुक्त पुरुष को होती है। छठी भूमिका में एक विज्ञानानन्दघन परमात्मा का ही अनुभव रहता है, संसार का अनुभव ही नहीं रहता। जैसे सुषुप्ति अवस्था में मनुष्य को संसार की प्रतीति नहीं होती, वैसे ही इस 'ब्रह्मविद्वरीयान्' योगी को जाग्रत अवस्था में भी संसार की प्रतीति नहीं होती। इसे स्वसंवेदन रूप शान्ति मय 'तुर्यावस्था' कहते हैं। केवल विदेह-मुक्ति रूप अवस्था ही सप्तम भूमिका है। यह अवस्था समता, स्वच्छता और सौम्यता रूप है। तुर्यातीत सप्तम भूमिका में स्थित योगी को 'ब्रह्मविद्वरिष्ठ' कहते हैं। इसमें गाढ़ सुषुप्तिकी तरह संसार का अत्यन्त अभाव हो जाता है। छठी भूमिका में स्थित योगी को तो दूसरे के द्वारा जगाये जाने पर प्रबोध होता है। किंतु सातवीं भूमिका में स्थित योगी मुर्दे की भाँति दूसरे के द्वारा जगाये जाने पर भी नहीं जागता; क्योंकि वह जीता हुआ ही मुर्दे के तुल्य है। वह जीता है तो भी थोड़े समय ही जीता है। मरने पर उसकी आत्मा ब्रह्म में विलीन हो जाती है, तब उसको भी विदेह मुक्त कहते हैं। यह तुर्यातीत अवस्था परम मुक्तिरूप है।

इन सातों में जो पहले की तीन भूमिकाएँ हैं, वे जागद्रूप ही हैं और जो चौथी भूमिका है वह तो स्वप्न ही कही गयी है; क्योंकि उसमें जगत् स्पप्न के सदृश प्रतीत होता है। आनन्द के साथ एकात्मभाव हो जाने से पाँचवीं भूमिका अर्ध-सुषुप्त रूप है तथा अन्य पदार्थों के ज्ञान से रहित एकमात्र स्वसंवेदन रूप छठी भूमिका तुर्य शब्द से कही जाती है। तुर्यातीत शब्द से कहलाने वाली अवस्था सातवीं भूमिका सबसे अन्तिम है। यह अवस्था मन और वाणी से परे है तथा केवल स्वप्रकाश परब्रह्मरूप ही है। राजन् ! इस सप्तम भूमिका के अवलम्बन से सब दृश्यों को ब्रह्म में विलीन करके तुम यदि दृश्य चिन्तन से रहित हो जाओगे तो निश्चय ही मुक्त हो जाओगे, इसमें सन्देह नहीं; क्योंकि जिसकी बुद्धि भोगों और सुख-दुःखों से लिपायमान नहीं होती, वही पुरुष जीवन्मुक्त है। 'मैं जीवन-मरण, सत्-असत् सबसे रहित हूँ'-इस प्रकार जो मनुष्य आत्माराम होकर स्थित रहता है, वह जीवन्मुक्त कहा गया है। मनुष्य

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

व्यवहार करे चाहे न करे, गृहस्थ हो चाहे अकेला विचरण करने वाला यति हो, परंतु 'मैं वास्तव में कुछ भी नहीं हूँ, केवल सच्चिदानन्द ब्रह्म ही हूँ, ऐसा निश्चय करने से सदा शोक से मुक्त ही रहता है। 'मैं निर्लेप, अजर, राग-रहित, वासनाओं से शून्य, शुद्ध अनन्त चिन्मय ब्रह्म हूँ'-ऐसा मानकर पुरुष सदा के लिये शोक से मुक्त हो जाता है। 'मैं अन्त और आदि से रहित, शुद्ध-बुद्ध, अजर-अमर और शान्त हूँ तथा सभी पदार्थों में समरूप स्थित हूँ'-ऐसा मानकर पुरुष सदा के लिये शोक से परे हो जाता है। क्षीण वासना से युक्त हो या सर्वथा वासना से रहित होकर जो पुरुष जिस अर्थ का सेवन करता है वह अर्थ उस पुरुष के लिये न सुखजनक होता है और न दुःखजनक ही होता है। अनघ ! वासना रहित बुद्धि से जो कर्म किया जाता है, वह कर्म जले हुए बीज के सदृश रहता है। वह फिर अंकुर उत्पन्न नहीं करता अर्थात् भावी जन्म को देने वाला नहीं होता। देह, इन्द्रिय आदि जो भिन्न-भिन्न करण हैं, उन्हीं के द्वारा कर्म किये जाते हैं। ऐसी स्थिति में जीवात्मा कर्ता नहीं है, इसलिये भोक्ता भी नहीं है। यह परमात्म-विषयक ज्ञान की वृत्ति यदि भीतर एक बार उत्पन्न हो जाय तो उर्वरा भूमि में बोये गये धान के सदृश अनिवार्य रूप से दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती है।

राजन् ! व्यष्टिचेतन को जब तक विषयभोग की अभिलाषा बनी रहती है, तभी तक उसकी 'जीव'-संज्ञा है। यह अभिलाषा भी अज्ञान के कारण ही है। जब यथार्थ ज्ञान से विषयभोग की अभिलाषा नष्ट हो जाती है, तब यह व्यष्टि-चेतन जीवत्वरहित और निर्विकार होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। राजन् ! कर्मानुसार ऊपर के लोक से नीचे के लोक में तथा नीचे के लोक से ऊपर के लोक में दीर्घकाल तक आवागमन करते हुए तुम संसाररूपी अरहट्टकी चिन्तारूपी रज्जु में घड़े के सदृश मत बनो। 'ये पुत्र-कलत्र आदि मेरे हैं और मैं इन पुत्र-कलत्र आदि का हूँ, इस प्रकार के व्यवहार रूपी दृढ़ भ्रम का जो शठ मोह से सेवन करते हैं, वे नीची से भी नीची योनि को प्राप्त होते हैं। 'पुत्र-कलत्र आदि का मैं सम्बन्धी हूँ और पुत्र, कलत्र आदि परिवार मेरा सम्बन्धी है तथा मैं ऐसा हूँ' इस प्रकार के मोह को जिन लोगों ने बुद्धि पूर्वक छोड़ दिया है वे महानुभाव ऊँचे से भी ऊँचे लोक को प्राप्त होते हैं। इसलिये राजन् ! तुम अपने-आप ही प्रकाशित होने वाले चिन्मय परमात्मा का शीघ्र ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

आश्रय लेकर स्थित हो जाओ और समस्त जगत् को परिपूर्ण अनन्त विज्ञानानन्दघन रूप ही देखो। जिस समय तुम इस प्रकार के सर्वव्यापी, पूर्ण, चिन्मय परमात्मा के स्वरूप को यथार्थरूप से जान जाओगे, उसी समय संसार से तर जाओगे और परब्रह्म हो जाओगे; क्योंकि जो पुरुष विज्ञानानन्दघन-स्वरूप हो गया है, जो संसार रूपी मृत्यु से पार हो चुका है और जिसका चित्त विलीन हो गया है, उस महापुरुष को जो परमानन्द प्राप्त होता है, उसकी उपमा किस आनन्द से दी जा सकती है ? इस परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करने पर अविद्या शान्त हो जाती है। फिर, उसके लिये ब्रह्म की प्राप्ति के सिवा मोक्ष नाम का न कोई देश है, न कोई काल है और न कोई स्थिति ही है; क्योंकि यह जो वासनारूपी अविद्या है, वह अहंकाररूपी मोह के विनाश से विलीन हो जाती है और अविद्या का यह अभाव ही प्रसिद्ध मोक्ष है। जब योगी पुरुष की अविद्या नष्ट हो जाती है, तब उसकी नाना प्रकार के शस्त्रार्थों के विचार की चंचलता शान्त हो जाती है। काव्य, नाटक आदि विषयों की उत्कण्ठा नष्ट हो जाती है और उसके सारे विकल्प-विभ्रम विलीन हो जाते हैं। वह केवल शाश्वत और सम परमात्मस्वरूप होकर सुखपूर्वक स्थित रहता है।

जो वाणी से अतीत ब्रह्म में स्थित है तथा विषय कामना से रहित है, वह पुरुष संसार में परम शोभा से सम्पन्न है। वह गम्भीर, प्रसन्न तथा निरन्तर परमात्मा के आनन्द में मत्त योगी स्वयं ही अपने आत्मस्वरूप परब्रह्म में रमण करता रहता है। वह सम्पूर्ण कर्मों के फलों का त्याग करने वाला, ब्रह्मानन्द में नित्य तृप्त और संसार के आश्रय से रहित योगी पुरुष पुण्य-पाप और हर्ष-शोक आदि विकारों से लिपायमान नहीं होता, जनसमूह में विचरण करता हुआ भी वह ब्रह्मज्ञानी अपनी देह के छेदन या पूजन से शोक या हर्ष का अनुभव नहीं करता। उस ब्रह्मज्ञानी पुरुष से प्राणियों को उद्वेग नहीं होता। वह भी दूसरे प्राणियों की प्रतिकूल चेष्टा से उद्वेगवान् नहीं होता। वह ज्ञानी पुरुष अपने शरीर का किसी तीर्थ में त्याग कर दे या किसी चाण्डाल के घर में त्याग कर दे अथवा कभी भी शरीर का त्याग न करे या वर्तमान क्षण में ही त्याग कर दे, फिर भी वह ज्ञानप्राप्ति काल में पहले से ही अन्तः करण से रहित और जीवन्मुक्त हो चुका है। अहंकार ही भ्रान्ति बन्धनकारक है और ज्ञान के अहंकार का नाश होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है। विभूति और वैभव चाहने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वाले पुरुष को प्रयत्नपूर्वक उपयुक्त ज्ञानी महात्मा पुरुष की पूजा, स्तुति, नमस्कार, दर्शन और अभिवादन करना चाहिये। प्रिय पुत्र ! जो सांसारिक दोषों से सर्वथा रहित हैं, उन जीवन्मुक्त आत्मज्ञानी सज्जनों की श्रद्धाभक्ति पूर्वक सेवा-पूजा करने से जो परम पवित्र पद प्राप्त होता है, वह न तो यज्ञों और तीर्थों से प्राप्त होता है एवं न तपस्याओं तथा दानों से ही।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! यों कहकर मनुभगवान् ब्रह्मलोक को चले गये और इक्ष्वाकु भी उस बोधरूप दृष्टि का अवलम्बन करके स्थिर हो गये।

छियासीवाँ सर्ग समाप्त

सत्तासीवाँ सर्ग

जीवन्मुक्त पुरुष की विशेषता, राग से बन्धन और वैराग्य से मुक्ति

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-आत्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवन् ! ऐसा होने पर श्रेष्ठबुद्धि आत्मज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुष में अन्य सिद्धों की अपेक्षा कौन-सी विशेषता होती है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! जीवन्मुक्त ब्रह्मज्ञानी पुरुष की बुद्धि सच्चिदानन्द परमात्मा में ही दृढ़तारूप से जम जाती है। यही कारण है कि वह नित्य तृप्त शान्तचित्त पुरुष परमात्म-स्वरूप में ही स्थित रहता है। मन्त्र, तप एवं तन्त्र की सिद्धि से युक्त सिद्धों के द्वारा प्राप्त की गयी जो आकाशगमन आदि सिद्धियाँ हैं, उनमें कौन-सी अपूर्व (महत्व की) विशेषता की बात है? मन्त्र सिद्धि आदि से युक्त उन सिद्धों ने प्रयत्न पूर्वक साधन कर जिन अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति की है, उनमें ब्रह्मज्ञानी पुरुष कोई विशेषता नहीं समझता। उस जीवन्मुक्त महात्मा में यही विशेषता है कि वह मूढ़ बुद्धि अज्ञानी पुरुषों के समान नहीं रहता। उस महाबुद्धि का मन सभी वस्तुओं में आसक्ति के परित्याग के कारण राग रहित तथा निर्मल ही बना रहता है और वह कभी भी विषय भोगों में नहीं फँसता है। जिसका स्वरूप समस्त बाहरी चिन्हों से रहित है तथा तत्त्व ज्ञान से दीर्घ कालिक सांसारिक भ्रम की निवृत्ति हो जाने के कारण जो परम शान्ति प्राप्त हो चुका है, उस ज्ञानी महापुरुष में काम, क्रोध, विषाद, मोह, लोभ आदि आपत्तियों का नित्य अत्यन्त अभाव ही रहता है।

प्रिय श्रीराम ! महासर्ग के आरम्भ में प्राणी उस परमात्मा से निकलकर अपने-अपने कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार के जन्मों का अनुभव करते हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (IF Scholarship) Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

परमात्मा से निकलने के बाद उन जीवों के अपने-अपने जो कर्म हैं वे ही सुख और दुःख के कारण होते हैं तथा अपनी-अपनी समझ के अनुसार उत्पन्न हुआ जो संकल्प है वही शुभाशुभ कर्मों का कारण होता है। निष्पाप श्रीराम ! ये इन्द्रियाँ जिस-जिस विषय की ओर निरन्तर दौड़ती हैं, उस-उस विषय में पुरुष राग के द्वारा बँध जाता है। इसलिये उन विषयों में राग न करने वाला पुरुष ही मुक्त होता है। अतएव तृण से लेकर देवादि शरीर तक के जितने स्थावर-जगंम रूप विनाशशील पदार्थ हैं, उनमें तुमको रुचि नहीं करनी चाहिये। तुम जो कुछ करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ हवन करते हो और जो कुछ दान करते हो, उन सब क्रियाओं में तुम वास्तव में न कर्ता हो और न भोक्ता हो; क्योंकि तुम उन सबसे मुक्त और शान्त स्वरूप हो। जो महात्मा पुरुष हैं, वे न तो अतीत के विषय में शोक करते हैं और न भविष्य के विषय में चिन्ता ही करते हैं। वे तो वर्तमान काल में जो कुछ न्याय युक्त कर्म प्राप्त हो जाता है, उसी का उचित रूप में सम्पादन करते हैं। श्रीराम ! तृष्णा, मोह, मद आदि जितने त्याज्य भाव हैं, वे सब मन में ही स्थित रहते हैं, इसलिये बुद्धिमान् पुरुष को अपने विवेक-विचारयुक्त मन के द्वारा ही मन सहित उनका विनाश कर देना चाहिये; क्योंकि जैसे अति तीक्ष्ण लोहे से लोहा काटा जाता है वैसे ही सब भ्रमों की शान्ति के लिये अति तीक्ष्ण विवेक-विचारयुक्त मन से दोषसहित मन काटा जाता है।

सत्तासीवाँ सर्ग समाप्त

अट्ठासीवाँ सर्ग

ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-मुनिनायक ! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति-इन तीनों अवस्थाओं में व्यापक और अलक्षित जो तुर्यरूप है, उसका विशेषरूप से विवेचन करते हुए बतलाइये।

श्रीवसिष्ठजी बोले-श्रीराम ! जो असक्त, सम और स्वच्छ स्वरूप स्थित है वहीं तुर्य है। जिसमें जीवन्मुक्त पुरुषों की स्थिति है, जो स्वच्छ, समरूप और शान्त है तथा जो व्यवहार काल में साक्षी रूप है, वही तुर्यावस्था कही जाती है। संकल्पों का अभाव रहने के कारण यह अवस्था न जाग्रत् है, न स्वप्न है और अज्ञान का अभाव होने से यह न सुषुप्त ही है अर्थात् यह इन तीनों अवस्थाओं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

से अतीत है। ज्ञान के द्वारा सामने दिखायी देने वाले इस जगत् की जो निवृत्ति है, परमात्मा में स्थित एवं भली भाँति प्रबुद्ध हुए ज्ञानी पुरुषों की उसी अवस्था को तुर्यपद कहते हैं। अहंकार का त्याग होने पर और चित्त के विलीन हो जाने पर जब समता की उत्पत्ति हो जाती है, तब उसे तुर्यावस्था कहते हैं।

श्रीराम ! इसके अनन्तर अब तुम्हें मैं एक दृष्टान्त बतला रहा हूँ, उसे सुनो। किसी एक विस्तृत घने जंगल में महामौन धारण करके बैठे हुए किसी एक अद्भुत मुनि को देखकर एक व्याध ने उन से पूछा-'मुने ! मेरे बाण के द्वारा घायल एक मृग इधर आया था, वह कहाँ चला गया ?' इस प्रकार का उस व्याध का प्रश्न सुनकर उस मुनि ने उस व्याध को उत्तर दिया-'सखे ! हम जंगल के निवासी मुनि समता और शीलवान् होते हैं। व्यवहार का कारण जो अहंकार है, वह हमलोगों में नहीं है। सम्पूर्ण इन्द्रियों का कार्य अकेला अहंकार रूप मन ही करता है और वह मेरा मन निःसंदेह चिरकाल से विलीन हो चुका है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति नामक किसी भी अवस्था को मैं नहीं जानता। इन अवस्थाओं से अतीत एकमात्र तुर्यपद में ही, जहाँ दृश्य का अभाव है, मैं स्थित रहता हूँ। रघुनन्दन ! उस मुनिश्रेष्ठ के ऐसे वचन सुनकर वह व्याध उनके अर्थ को न समझकर अपनी अभीष्ट दिशा की ओर चला गया। इसीलिये मैं कहता हूँ कि महाबाहो ! तुर्य से श्रेष्ठ अन्य कोई अवस्था नहीं है। कल्पना से रहित सच्चिदानन्द परमात्मा ही तुर्य है और वही यहाँ विद्यमान है, उसके सिवा अन्य कुछ नहीं है; क्योंकि जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति-ये तीनों अवस्थाएँ चित्त का ही विकार होने से उसका स्वरूप है। जाग्रत् अवस्था का चित्त घोर है, स्वप्न अवस्था का चित्त शान्त है और सुषुप्त अवस्था का चित्त मूढ़ है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति-इन तीनों अवस्थाओं से रहित हुआ चित्त 'मृत' है। जो 'मृत' चित्त है, उसमें एकमात्र सत्त्व ही समरूप से स्थित रहता है। इसी का समस्त योगीजन बड़े यत्न के साथ सम्पादन करते हैं और मुक्त हो जाते हैं।

समस्त दृश्य-जगत् का बाध करना ही सम्पूर्ण अध्यात्मशास्त्रों का परम सिद्धान्त है। वहाँ न तो अविद्या है और न माया ही है; किंतु एक अद्वितीय, क्रियारहित शान्त विज्ञानानन्दघन परब्रह्म ही है। जो शान्त, चेतन, स्वच्छ, सर्वत्र एकरूप से विद्यमान तथा सर्वशक्ति सम्पन्न 'ब्रह्म' नाम से कहा गया है, उसे अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय करके कोई शून्य, कोई विज्ञानमात्र और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कोई ईश्वररूप कहते हुए आपस में विवाद किया करते हैं। मनुष्य को रमणीय या अरमणीय वस्तु को देखकर उनमें समभाव से स्थित रहना चाहिये। बस, इतने ही अपने साधन से यह संसार जीत लिया जाता है। सुख या दुःख अथवा सुख-दुःख-मिश्रित पदार्थ के प्राप्त होने पर उनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। बस, इतने ही अपने साधन से वास्तविक अक्षय अनन्त सुखरूप परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। जिसने तीनों लोकों की सभी वस्तुओं के साररूप परमात्मा का ज्ञान कर लिया है, जो शोभायमान तथा अमृतमय है और जिसका अन्तःकरण पूर्ण चन्द्रमण्डल के सदृश शान्त है, ऐसा परमपद में स्थित ज्ञानी महात्मा पुरुष के विज्ञानानन्दघन परमात्मा को प्राप्त करता है। वह कर्मों को करता हुआ भी कुछ नहीं करता।

अट्ठासीवाँ सर्ग समाप्त

नवासीवाँ सर्ग

योग की सात भूमिकाओं का अभ्यासक्रम और लक्षण

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा–मुने ! सातों योग भूमिकाओं का अभ्यास कैसे किया जाता है तथा प्रत्येक भूमिका में योगी के चिन्ह किस तरह के होते हैं ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–रघुनन्दन ! जीव चौरासी लाख योनियों में घूमता हुआ अन्त में मनुष्य-जन्म में भाग्योदय होने पर विवेकी बन जाता है। 'अहो ! संसार की यह व्यवस्था बिल्कुल असार है। इस व्यवस्था से मुझे क्या प्रयोजन है ? इन व्यर्थ कर्मों से ही मैं अपना दिन क्यों बिता रहा हूँ ? मैं वैराग्यवान् बनकर किस तरह संसार सागर को तैर जाऊँ'–इस प्रकार के विचार में जब सद्बुद्धि प्राणी तत्पर होता है, तब उसके हृदय में भोगों और सांसारिक संकल्पों में हर समय वैराग्य रहता है। वह संत्सग, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना आदि उत्तम क्रियाओं का अनुष्ठान करता है और उन्हीं में प्रसन्न रहता है। तुच्छ व्यर्थ चेष्टाओं में उसे निरन्तर वैराग्य रहता है। वह दूसरों के दोषों को प्रकट नहीं करता और स्वयं यज्ञ, दान, तप, सेवा-पूजा आदि पुण्य कर्मों का ही सेवन करता है। वह किसी के भी मन में उद्वेग न पहुँचाने वाले शास्त्रविहित विनययुक्त कर्मों का आचरण करता है, शास्त्रविपरीत कर्म से सदा डरता रहता है और सांसारिक विषयभोगों की कभी अभिलाषा नहीं करता। वह स्नेह और प्रणय से पूर्ण, कोमल, सत्य प्रिय और हितकारक तथा देश-कालोचित वचन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

बोलता है। वह मन, कर्म एवं वाणी से सत्पुरुषों का संग और सेवा करता है। जिस-किसी जगह से ज्ञानदायक शास्त्रों को प्राप्त करके उनका विवेक-विचारपूर्वक स्वाध्याय करता है। संसार-सागर को तैर जाने के लिये इस प्रकार के विचार से सम्पन्न पुरुष प्रथम 'शुभेच्छा' नामक भूमिका को प्राप्त होता है। इसमें उसे आत्मोद्धार के सिवा और कोई भी इच्छा नहीं रह जाती । इसी को 'श्रवण' भूमिका भी कहते हैं।

इसके बाद अधिकार की प्राप्ति होने पर वह 'विचार' नामक दूसरी योगभूमिका में प्रवेश करता है। उस समय वह श्रुति, स्मृति, सदाचार, धारणा, ध्यान और कर्मों में तत्पर रहने वाले पुरुषों में से, जिन्होंने अध्यात्म शास्त्रों की प्रशस्त व्याख्या करने के कारण अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली है, उन श्रेष्ठ विद्वानों का आश्रय लेकर उनके उपदेशानुसार साधन करता है। वह अध्यात्म शास्त्र का श्रवण करके कार्य और अकार्य के स्वरूप को तत्त्वतः जान लेता है। वह मद, अभिमान, मात्सर्य, मोह और लोभ को उसी तरह छोड़ देता है, जिस तरह साँप केंचुल को। उपर्युक्त यथार्थ निश्चय से युक्त पुरुष सत्-शास्त्र, गुरू और सज्जनों की सेवा से ब्रह्म विषयक रहस्य को विवेक-विचार-पूर्वक यथार्थ रूप से पूर्णतया जान लेता है और उसके अनुसार मनन करता है। वह अध्यात्मविषयक शास्त्रों के वाक्यार्थ में अपनी बुद्धि को निश्चलता पूर्वक स्थापित करता है, तपस्वियों के आश्रमों में निवास करता है, अध्यात्मशास्त्रों की कथाओं का मनन करता है तथा निन्दनीय संसार के विषय-भोग रूप पदार्थों से वैराग्य करके पत्थर की चट्टान रूपी शैय्या पर आसीन हो अपनी आयु बिताता है। अध्यात्म-विषयक सत्-शास्त्रों के अध्ययन-मननरूप से अभ्यास से तथा निष्काम पुण्यकर्मों के अनुष्ठान से उस पुरुष को आध्यात्मविषयक यथार्थ दृष्टि प्राप्त हो जाती है। इस भूमिका का नाम 'विचारणा' है। इसी को 'मनन' भी कहते हैं।

तीसरी भूमिका में पहुँचकर विवेकी पुरुष दो प्रकार के असंग का अनुभव करता है। श्रीराम ! तुम उसके इस भेद को सुनो। यह असंग दो तरह का है-एक सामान्य और दूसरा श्रेष्ठ (विशेष)। 'मैं न कर्ता हूँ और न भोक्ता ही; मैं सांसारिक कर्मों के लिये बाध्य नहीं हूँ और न दूसरों के लिये बाधक हूँ।' इस प्रकार के निश्चय से विषयभोगों की आसक्ति से रहित होना ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सामान्य असंग है। 'सुख या दुःख की प्राप्ति पूर्वकर्म के अनुसार निश्चित और ईश्वर के अधीन है अर्थात् ईश्वर के विधान के अनुसार होती है। इसमें मेरा कर्तृत्व कैसा? ये विस्तृत विषयभोग अन्त में संताप देने वाले होने के कारण महारोग हैं तथा ये सांसारिक सारी सम्पत्तियाँ परम आपत्तियाँ हैं। संयोग का अन्त में वियोग निश्चित है और ये मन के सारे विकार बुद्धि की व्याधियाँ हैं। सब पदार्थों को ग्रास बना लेने के लिये काल सदा तैयार रहता है।' इस तरह अन्यात्मविषयक वचनों के अर्थ में संलग्न चित्त वाले पुरुष की सम्पूर्ण पदार्थों में जो आन्तरिक मिथ्यात्व की भावना है, वह भी सामान्य असंग कहलाता है। इस पूर्वोक्त अभ्यास योग से, महापुरुषों की संगति से, दुर्जनों की संगति के त्याग से, आत्मज्ञान के प्रयोग से तथा लगातार अभ्यास योग द्वारा अपने पुरुष-प्रयत्न से संसार सागर के पार, सबके सार, परम कारणभूत परमात्मा के ध्यान की स्थिति हस्तामलकवत् दृढ़ रूप से खूब स्पष्ट हो जाने पर जो नाम रूप की भावना से रहित होकर 'न मैं कर्ता हूँ, न ईश्वर कर्ता है, न प्रारब्ध कर्ता है'- यों शान्त और मौन रूप से स्थित रहता है वही श्रेष्ठ (विशेष) असंग कहलाता है। तथा जो शान्त, आदि-अन्त से रहित सुन्दर सच्चिदानन्द घन ब्रह्म है वही श्रेष्ठ असंग कहा जाता है। यही श्रेष्ठ असंग नामक तीसरी भूमिका है। इसी को 'निदिध्यासन' भी कहते हैं। इस भूमिका में स्थित पुरुष सम्पूर्ण संकल्पों की कल्पनाओं से शून्य होकर परमात्मा के ध्यान में स्थित हो जाता है।

नवासीवाँ सर्ग समाप्त

नब्बेवाँ सर्ग

योगभ्रष्ट पुरुष की गति

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-भगवन् ! असत्कुल में उत्पन्न, कामोपभोग में ही प्रवृत्त, अधम तथा योगी महात्मा के संग से रहित मूढ़ मनुष्य का उद्धार कैसे होगा? तथा पहली, दूसरी, तीसरी भूमिका में आरूढ़ होकर मरे हुए प्राणी की गति कैसी होती है?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! प्रवृद्ध रागादि दोषों वाले मूढ़ पुरुष को सैकड़ों जन्मों के बाद तक काकतालीय-न्याय से या महापुरुषों के संग के वैराग्य उत्पन्न नहीं हो जाता, तब तक उसका यह विस्तृत संसार रहता ही है अर्थात् बिना वैराग्य के उसका उद्धार होना कठिन है। वैराग्य उत्पन्न हो जाने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (L.E.S) Jammu Collection

पर प्रथम भूमिका का उदय प्राणी को अवश्य होता है और तदनन्तर उसका संसार नष्ट हो जाता है, यही शास्त्रों का परम सिद्धान्त है। प्रथम आदि भूमिकाओं में पहुँचकर मरने वाले प्राणी का भूमिकाओं के अनुसार ही पूर्वजन्म का दुष्कृत नष्ट को जाता है। तदनन्तर वह योगी देवताओं के विमानों में, लोकपालों के नगरों में तथा सुमेरु पर्वत के वन-कुंजों में अप्सराओं के साथ रमण करता है। उसके बाद पूर्वजन्म में किये गये पुण्यों और पापों का भोग समूहों के द्वारा नाश हो जाने पर वे योगी लोग पृथ्वी पर पवित्र, गुणवान् और लक्ष्मीवान् सज्जनों के घर में जन्म लेते हैं और वहाँ जन्म लेकर वे लोग पूर्वजन्म के योग-साधन के संस्कारों के अनुसार योग का ही साधन करते हैं। वहाँ पर पूर्वजन्म में की गयी भावनाओं से अभ्यस्त हुए योगभूमिकाओं के क्रम का स्मरण करके वे बुद्धिमान् लोग आगे के भूमिका-क्रम का भली भाँति अभ्यास करने लग जाते हैं।

श्रीराम ! ये पूर्वोक्त तीनों भूमिकाएँ जाग्रत कही गयी हैं; क्योंकि इन भूमिकाओं में यथावत् भेदबुद्धि रहने से यह सम्पूर्ण दृश्यसमूह उस जाग्रत् काल की तरह ही दिखायी पड़ता है। इन तीनों भूमिकाओं में योगयुक्त पुरुषों में केवल आर्यता (श्रेष्ठता) का उदय होता है, जिसे देखकर मूढ़बुद्धि पुरुषों को भी मुक्त होने की अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। जो मनुष्य शास्त्रविहित कर्तव्य कर्मों का भली-भाँति सम्पादन करता है तथा शास्त्र-निषिद्ध कर्मों को सर्वथा नहीं करता है एवं सदाचार में स्थित रहता है, वह आर्य कहा गया है। श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा आचरित, शास्त्रोक्त तथा मन को प्रिय और हितकर यथोचित व्यवहारों को जो ग्रहण करता है, वह आर्य कहा गया है। योगी की वही आर्यता प्रथम भूमिका में अंकुरित, द्वितीय भूमिका में विवेक के द्वारा विकसित तथा तृतीय भूमिका में संसार के असंग और परमात्मा के ध्यान रूप फल से फलित होती है। इस तीसरी भूमिका (आर्यता) की प्राप्ति के बीच में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ योगी पुरुष शुभ संकल्प युक्त भोगों का चिरकाल तक उपभोग कर पुनः योगी ही होता है। क्रमशः तीनों भूमिकाओं का अभ्यास करने से अज्ञान के नष्ट को जाने पर वास्तविक ज्ञान का उदय होने के बाद जब चित्त पूर्ण-चन्द्रोदय के सदृश हो जाता है, जब चौथी भूमिका में पहुँचे हुए युक्तचित्त योगी लोग सम्पूर्ण जगत् में विभाग से तथा आदि और अन्त से रहित समभाव से परिपूर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सच्चिदानन्द ब्रह्म का ही अनुभव करते हैं। द्वैत के सर्वथा शान्त हो जाने पर जब अद्वैत ही अचल रह जाता है तब चौथी भूमिका में गये हुए योगी लोग समस्त संसार को स्वप्न के समान अनुभव करते हैं। इसलिये पूर्वोक्त तीन भूमिकाओं को जाग्रत कहते हैं और चौथी भूमिका को स्वप्न कहते हैं।

जो पुरुष पंचम भूमिका में पहुँच गये हैं, वह केवल सत्स्वरूप ब्रह्म बनकर रहता है। इस अर्धसुषुप्त पंचम भूमिका को प्राप्त करके पुरुष समस्त विकारों से मुक्त हो जाता है और अद्वैत परब्रह्मरूप तत्त्व में नित्य स्थित हो जाता है। पाँचवीं भूमिका में स्थित पुरुष अन्तर्मुख वृत्ति से रहता है। बाह्य व्यापार में लगा हुआ भी निरन्तर चारों ओर से शान्त होने के कारण तन्द्रा में स्थित के सदृश दिखायी देता है। वह कभी तो बाहरी व्यवहार करता है और कभी अटल समाधि में स्थित रहता है। इस भूमिका में वासनाशून्य होकर अभ्यास करता हुआ पुरुष क्रमशः तुर्या नाम की छठी भूमिका में चला जाता है। उस भूमिका में निर्विकल्प होने के कारण योगी द्वैत और अद्वैत की भावना से रहित हो जाता है। वह चिज्जड-ग्रन्थि से और संदेह से रहित हो जाता है। वह वासनाओं से रहित जीवन्मुक्त योगी चित्र-लिखित प्रदीप की भाँति निर्वाण को न प्राप्त हुआ भी निर्वाण को प्राप्त हुआ-सा स्थित रहता है। (उसको बाहरी ज्ञान नहीं रहता। किंतु दूसरों के चेष्टा करने पर बाह्य ज्ञान हो सकता है।) वह जीवन्मुक्त योगी बाहर और भीतर से शून्य आकाश में स्थित घट की तरह बाहर-भीतर संसार से रहित रहता है तथा सागर में परिपूर्ण घट के समान बाहर-भीतर ब्रह्म से परिपूर्ण रहता है। तदनन्तर छठी भूमिका में स्थित हुआ वह योगी सातवीं भूमिका में पहुँचता है। सातवीं योगभूमिका विदेह मुक्तता कही गयी है। वह शान्तस्वरूप, वाणी से अगम्य और सभी भूमिकाओं की सीमा है।

शैव उसे शिव कहते हैं, वेदान्ती उसे ब्रह्म कहते हैं और सांख्यवादी उसे प्रकृति और पुरुष का यथार्थ-ज्ञान कहते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न लोगों ने अपनी बुद्धि के अनुसार अनेक रूपों से सप्तम भूमिका की भावना की है। यद्यपि यह भूमिका सर्वथा उपदेशयोग्य नहीं है, तथापि किसी तरह इसका उपदेश किया ही जाता है। (इस भूमिका में स्थित योगी को दूसरों के द्वारा चेष्टा करने पर भी संसार का ज्ञान नहीं होता।) श्रीराम ! ये सातों भूमिकाएँ मैंने तुमसे कह दीं। इनके अभ्यास योग से मनुष्य सम्पूर्ण दुःखों से रहित हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जाता है। धीरे-धीरे चलने वाली अत्यन्त मदोन्मत्त, लड़ाई करने में सदा तत्पर, अपने बड़े-बड़े दाँतों से ख्याति को प्राप्त करने वाली तथा अनन्त अनर्थों को पैदा करने वाली एक हथिनी है। उसे यदि किसी तरह से मार दिया जाय तो मनुष्य इन उपर्युक्त समस्त भूमिकाओं में विजयी बन सकता है। वह मदोन्मत्त हथिनी जब तक पराक्रम से जीत नहीं ली जाती, तब तक कौन ऐसा वीर योद्धा है, जो उपर्युक्त भूमिका-सम्पत्तिरूपी समर भूमियों में प्रवेश करने में भी समर्थ हो ?

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन् ! वह प्रमत्त हथिनी कौन है, वे समर भूमियाँ कौन है, वह कैसे मारी जाती है तथा वह चिरकाल तक कहाँ रमण करती है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! 'मुझे यह मिल जाय,' ऐसी जो 'इच्छा' है, उसी का नाम हथिनी है। वह शरीर-रूपी जंगल में रहती है और मत्त होकर अनेक तरह के शोक, मोह आदि विकारों को उत्पन्न करने में लगी रहती है। मतवाले इन्द्रियों के समूह ही उसके उग्र प्रकृति के बच्चे हैं। वह जीभ से मनोहर भाषण करती है, शुभाशुभ कर्मरूपी दो दाँतों से युक्त वह मनरूपी गहन स्थान में लीन रहती है। चारों ओर दूर तक फैले हुए वासनाओं का समूह ही इस हथिनी का मद है। और श्रीराम ! संसार की स्मृतियाँ इसकी युद्धभूमियाँ हैं। यहाँ पर पुरुष बार-बार जय और पराजय का अनुभव करता है। यह इच्छा नामवाली हथिनी लोभी मनुष्यों को मारती है। वासना, इच्छा, मनन, चिन्तन, संकल्प, भावना और स्पृहा इत्यादि इसके नाम हैं। यह अन्तःकरणरूपी कोश के अंदर रहती है। बहुत दूर तक फैली हुई तथा सब पदार्थों में निवास करने वाली इस इच्छारूपी हथिनी पर अवहेलनापूर्वक 'धैर्य' नामक सर्वश्रेष्ठ अस्त्र से प्रहार करके सब प्रकार से विजय प्राप्त कर लेनी चाहिये।

'यह वस्तु मुझे इस प्रकार प्राप्त हो जाय ?' यह इच्छा जब तक अन्तःकरण के भीतर प्रकट रहती है, तभी तक यह महाभयंकर कुत्सित संसाररूपी महाविष से उत्पन्न विषूचिकारूपी महामारी बनी रहती है। 'यह मुझे मिल जाय' यह जो संकल्परूप इच्छा है, बस, यही संसार है तथा इसका शान्त हो जाना ही मोक्ष है, यही ज्ञान का सार है। इच्छारहित विशुद्ध अन्तःकरण में महापुरुषों के पवित्र और सात्त्विक प्रसन्नता पैदा करने वाले हितमय उपदेश दर्पण में तैल-बिन्दु की भाँति जम जाते हैं। एकमात्र विषयों के स्मरण का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

परित्याग कर देने से इच्छारूपी संसार का अंकुर उत्पन्न नहीं होता। विष के तुल्य अनेक प्रकार का अनर्थ पैदा करने वाली, इस इच्छा को तनिक-सी बढ़ते ही विषयों के विस्मरणरूप शस्त्र से काट डालना चाहिये। इच्छा से युक्त जीवात्मा दीनता को कभी भी नहीं छोड़ सकता। सुन्दर असवेदन में यानी उत्तम रूप से विषयों का स्मरण न होने में श्रेष्ठ प्रयत्न यही है कि चित्त अपने अंदर संकल्पों से रहित होकर मृतक की तरह स्थित रहे।

'यह मुझे मिल जाय' इस तीव्र इच्छा को उत्तम पुरुष 'संकल्प' कहते हैं और जो संसार के पदार्थों की भावना से रहित होना है, उसी को 'संकल्प का त्याग' कहते हैं। श्रीराम ! संकल्प को ही तुम स्मरण समझो। और विस्मरण (संकल्प के अभाव) को विद्वान् लोग कल्याणरूप समझते हैं। संकल्प में पहले के अनुभव किये हुए पदार्थों की तथा भविष्य में होने वाले पदार्थों की भी भावना की जाती है। मैं ऊपर हाथ उठाकर बार-बार ऊँचे स्वर से चिल्लाकर यह कह रहा हूँ, किंतु इसे कोई सुनता नहीं कि संकल्पत्याग ही परम श्रेय का सम्पादक है। इसकी भावना लोग अपने हृदय में क्यों नहीं करते ?

श्रीराम ! सम्पूर्ण इन्द्रियों और मन के व्यापारों से रहित और ध्यान-समाधि में लीन बैठा हुआ पुरुष उस परमपद को प्राप्त करता है, जहाँ एकच्छत्र साम्राज्य भी तृण के सदृश तुच्छ है। इस विषय में अधिक कहने की क्या आवश्यकता है ? संक्षेप से मैं इतना ही कहता हूँ कि संसार का संकल्प ही बढ़कर बन्धन है और उस संकल्प का अभाव ही मोक्ष है। संसार के स्मरण के अभाव को ही स्वाभाविक 'चित्त-विनाशरूप योग' कहते हैं और वह अक्षय योग शान्तरूप से नित्य स्थित है। श्रीराम ! शिव, सर्वव्यापी, शान्तिमय, चिन्मय, अज और कल्याणरूप ब्रह्म के साथ जो जीव-ब्रह्म के एकत्व का निश्चय है, वही वास्तविक सर्वत्याग है। श्रीराम ! अहंता-ममता ही भावना रखने वाला मनुष्य दुःख से छुटकारा नहीं पाता; किंतु अहंता-ममताकी भावना से रहित हुआ मनुष्य मुक्त हो जाता है।

नब्बेवाँ सर्ग समाप्त

इक्यानवेवाँ सर्ग

श्रीवाल्मीकिजी के द्वारा कल्याणकारक उपदेश

श्रीभरद्वाजजी ने पूछा-गुरो ! निश्चय ही श्रीरामभद्र तो परम योगी,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सबके वन्दनीय, देवताओं के भी ईश्वर, जन्म-मरण से रहित, विशुद्ध ज्ञानमय, समस्त उत्तम गुणों की खान, समस्त ऐश्वर्यों के आधार तथा तीनों लोकों के उत्पादन, रक्षण एवं अनुग्रह करने वाले थे। उन ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण पूर्णज्ञानी और विशुद्धबुद्धि रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामभद्र ने मुनिवर वसिष्ठजी के द्वारा उपदिष्ट इस अतिप्राचीन समस्त ज्ञानरूपी सार का श्रवणकर क्या औरभी कुछ पूछा था?

श्रीवाल्मीकिजी ने कहा-भारद्वाज ! वसिष्ठ मुनि के वेदान्त शास्त्र के संग्रहरूप वचनों का श्रवण कर अखिल विज्ञानों के ज्ञाता कमल लोचन श्रीरामभद्र अपने चिन्मय आनन्द-स्वरूप में स्थित रहे। उस समय वे प्रश्न, उत्तर और विभाग आदि करने की पद्धति से उपरत हो गये थे। उनका चित्त आनन्दरूप अमृत से पूर्ण था। वे चिन्मय और सर्वव्यापी होने के कारण अपने मंगलमयस्वरूप में ही समभाव से नित्य स्थित थे। अतः उन्होंने उस समय वसिष्ठजी से कुछ भी नहीं पूछा।

श्रीभरद्वाजजी ने पूछा-मुनिनायक ! कहाँ तो मेरे जैसे मूर्ख, स्तब्ध, अल्पज्ञ, पापी और कहाँ ब्रह्मा आदि देवता भी जिसकी आकांक्षा करते हैं-उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की अपने स्वरूप में स्थिति। मुनीश्वर ! अहो ! मैं किस प्रकार परमात्मपद में विश्राम पा सकूँगा और इस दुस्तर संसाररूपी महासागर के मोहरूपी जल से किस प्रकार पार हो सकूँगा ? यह शीघ्र मुझसे कहिये।

श्रीवाल्मीकिजी बोले-शिष्य ! श्रीवसिष्ठजी द्वारा कथित आरम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण राम-वृत्तान्त, मैंने तुमको सुना दिया, अब तुम अपनी बुद्धि से पहले विवेकपूर्वक विचार कर पीछे उसका मनन करो। मैं भी इस विषय में तुमसे जो वर्णन करने योग्य रहस्य है, उसे कहता हूँ, सुनो। भद्र ! यह जो यहाँ संसाररूप अविद्या प्रपंच दीख रहा है, वह तनिक भी सत्य नहीं है। अर्थात् समस्त संसार रूप प्रपंच सर्वथा मिथ्या ही है। विवेकी पुरुष वास्तविक तत्त्व को विवेचनपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं, किंतु अविवेकी मनुष्य वाद-विवाद करते रहते हैं। प्रिय मित्र! वास्तव में सच्चिदानन्द परमात्मा से अतिरिक्त कोई वस्तु ही नहीं है। अतः प्रपंच से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? मैं तुमसे आगे जो वेदान्त शास्त्रों के रहस्य बतलाता हूँ, उनके अभ्यास से तुम अपने चित्त को परम विशुद्ध बना डालो।

मित्र ! यह जो संसाररूप प्रपंच दीखता है, इसके मूल में भी सत्ता का अभाव ही है और इसके अन्त में भी सत्ता का अभाव ही है। मध्यकाल में भी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

विचार करने पर इसकी कोई सत्ता न होने के कारण केवल प्रतीतिमात्र ही है। अतः विवेकी पुरुष इस संसार में किसी तरह का विश्वास नहीं करते; क्योंकि अनादि वासना के दोष से ही यह असत् संसार दिखलायी देता है। इसका गन्धर्वनगर के सदृश मिथ्यास्वरूप है और यह अनेक प्रकार के भ्रमों से भरा है। भद्र ! तुम चिन्मय कल्याणरूपी अमृत लता का अभ्यास न कर विषय-वासना रूपी विषमता का आश्रय कर क्यों व्यर्थ मोह में फँसे हो ? सखे ! यह समस्त जगत् न तो आरम्भ में है और न अन्त में ही है। इसलिये तुम यह भी समझ लो कि मध्य में भी यह है ही नहीं। इस जगत् का सारा वृत्तान्त स्वप्न जैसा है। अज्ञानमूलक ये सारे भेद जल में बुद्बुदों की तरह क्षण-क्षण में उत्पन्न होते रहते हैं; और अज्ञान का नाश होते ही एकमात्र ज्ञान रूप समुद्र में विलीन हो जाते हैं। अकेला अज्ञानरूपी समुद्र ही समस्त जगत् को व्याप्त करके स्थित है। इस समुद्र में अविद्यारूप वायु से उत्पन्न सबसे बड़ा यह 'अहम्' नाम का तरंग है। उन-उन विषयों में चित्त के गिरने के जो नाना प्रकार हैं, उनके हेतु भूत राग आदि दोष इस समुद्र के छोटे-छोटे कल्पित तरंग हैं। ममता ही इसमें आवर्त है, जो स्वतः ही इच्छानुसार प्रवृत्त होता रहता है। इस समुद्र में राग और द्वेष बड़े-बड़े मगर हैं, उन्हीं दो मगरों से मनुष्य पकड़ लिया जाता है और उसका निश्चय ही अनर्थरूपी पाताल में प्रवेश हो जाता है। यह प्रवेश किसी से भी रोका नहीं जा सकता। भद्र ! प्रशान्त तथा अमृत रूप तरंगों से पूर्ण केवल आनन्दामृत के समुद्र में ही प्रवेश करना चाहिये। व्यर्थ द्वैतरूप मकरों से पूर्ण लवण सागर के तरंगों में क्यों प्रवेश करते हो ?

प्रसिद्ध परमात्मा का जो सूक्ष्म तत्त्व है, वह अज्ञानी लोगों के लिये अज्ञान से आवृत रहता है। इसलिये जैसे साधारण मनुष्य को जल में स्थल और स्थल में जल का भ्रम हो जाता है, वैसे ही अज्ञानी मनुष्यों को अनात्मा में आत्मा का और आत्मा में अनात्मा का भ्रम हो जाता है। मित्र ! वास्तव में न तो असद् वस्तु की उत्पत्ति होती है और न सद् वस्तु का कभी अभाव होता है। केवल माया द्वारा रचित चित्र-विचित्र रचनाओं के ये आविर्भाव और तिरोभाव होते रहते हैं। इसलिये प्रचण्ड बने हुए अज्ञान की इस व्यामोह-शक्ति को विशुद्ध सत्त्व के बल से जीतकर विश्वासयुक्त मन से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि साधनों का अनुष्ठान करो। इसके अनन्तर ध्यान-

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (IT-S) Jammu Collection

समाधि के द्वारा अपने-आप ही परमात्मा के शुद्धस्वरूप का अनुभव करो, जिसके द्वारा अज्ञान से आच्छादित तुम्हारी बुद्धिरूपी रात्रि दिन के रूप में परिणत हो जाय। केवल पुरुष-प्रयत्नरूप कर्मों से महेश्वर की कृपा प्राप्त होने पर ही मनुष्य प्राप्तव्य वस्तु परमपदरूपी परमात्मा की प्राप्ति कर लेते हैं। भरद्वाज ! तुम अपने विवेक से इस मोह का स्पष्टरूप से त्याग कर दो। फिर तो तुम असाधारण परमात्मा के यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर लोगे। इसमें संदेह नहीं है। पुत्र ! कामना और आसक्ति होने पर शत्रु स्वरूप हुए जिस पुण्यकर्म से तुम्हें इस प्रकार का बन्धन प्राप्त हुआ है, कामना और आसक्ति से रहित होने पर मित्रस्वरूप हुए उसी पुण्यकर्म से ज्ञान के द्वारा तुम मोक्ष पा जाओगे; क्योंकि रागादि दोषों से रहित सज्जनों का यह सत्कर्मों का संवेग प्राणियों के पूर्वजन्म के पापों को नष्ट करता हुआ उनके त्रिविध तापों को वैसे ही शान्त कर देता है, जैसे वर्षा का जल समूह दावानल को।

मित्र ! संसार चक्र के आवर्तरूपी भ्रम में यदि तुम भ्रमण करना नहीं चाहते तो सारे काम्य-कर्मों को छोड़कर केवल ब्रह्म आसक्त हो जाओ। ब्रह्म प्रीति न होकर जब तक बाह्य विषयों में आसक्ति है, तभी तक विकल्प से उत्पन्न हुआ यह सब जगत् दिखायी देता है। जैसे जल के तरंग युक्त होने पर ही समुद्र अपने तट की ओर जाकर उससे टक्कर खा करके विक्षिप्त होता है, जल के निश्चल रहने पर तो वह केवल जलरूप ही दिखायी देता है। इसी प्रकार ब्रह्म चित्त की स्थिरता होने पर केवल ब्रह्म ही दिखायी देता है। किंतु जैसे समुद्र की तरंगों से तृण विचलित रहते हैं, वैसे ही जो हर्ष और शोक से विचलित हो जाते हैं, वे लोग श्रेष्ठ नहीं माने जाते। सखे ! वह सारा जीव समूह हर्ष-विषाद आदि अवस्थारूप झूले पर निरन्तर आरूढ़ है। इस राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह आदिरूप छः झूलों में झुलाकर काल क्रीड़ा करता है। अतः इसमें तुम खिन्न क्यों हो रहे हो ? इस तरह क्रीड़ा करने वाला काल ही अनेक उपायों से एक के पीछे एक अनेक सृष्टियों को उत्पन्न करता है, विनाश करता है, फिर तत्काल ही उत्पन्न करता है और फिर विनाश करता है। जब देवगण भी दुष्ट काल के पिण्ड से छुटकारा नहीं पाते, तब क्षणभंगुर विनाशशील शरीरों की तो बात ही क्या ? इसीलिये भरद्वाज ! अनेक तरंगों से युक्त इस जगत् को क्षणभंगुर देखकर ज्ञानी पुरुष तनिक भी शोक नहीं करता।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama (I.P.S.) Jammu Collection

अतः तुम अमंगलरूप शोक को छोड़ दो, कल्याणकारी वस्तुओं का विचार करो और विशुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा का चिन्तन करो। जो पुरुष देव, द्विज और गुरुओं के ऊपर परिपूर्ण श्रद्धा रखकर निर्मल चित्त वाले हो गये हैं और जो वेदादि सत्-शास्त्रों में विश्वास पूर्वक प्रामाण्य बुद्धि रखते हैं, उन पुरुषों के ऊपर परमात्मा का परम अनुग्रह होता है।

भरद्वाजजी ने कहा-भगवन् ! आपके प्रसाद से मैंने पूर्णरूप से ब्रह्म और जगत् का सारा तत्त्व जान लिया। वैराग्यरूप साधन से बढ़कर दूसरा कोई बन्धु नहीं है और संसार की प्रीति से बढ़कर दूसरा कोई शत्रु नहीं है। अब मैं महाराज वसिष्ठजी द्वारा समस्त ग्रन्थ में कहे गये ज्ञानरूपी रहस्य का सम्पूर्ण निचोड़ थोड़े शब्दों में सुनना चाहता हूँ। कृपाकर कहिये।

श्रीवाल्मीकिजी बोले-भरद्वाज ! मुक्ति देने वाले इस महान् ज्ञान को तुम सुनो। इसके केवल सुनने से ही तुम फिर संसाररूपी सागर में नहीं डूबोगे। जो देव वास्तव में एक होता हुआ भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भेदों से अनेक प्रकार का होकर स्थित है, उस सच्चिदानन्द रूप परमात्मा को नमस्कार है। जब सारे प्रपंच का अपने कारण में लय किया जाता है, तब जिस उपाय से परम तत्त्व प्रकाशित होता है, उस उपाय को तुम्हें संक्षेप से श्रुति के अनुसार कहता हूँ। अपने अन्तःकरण से तत्त्व का स्वयं ही विचार करना चाहिये। इसी से वह परमात्मा प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्राप्त होने पर पुरुष फिर शोक नहीं करता। सत्संग और सत्-शास्त्र से प्राप्त विवेक से वैराग्य युक्त होकर पुरुष को उसी तत्त्व का बार-बार चिन्तन करना चाहिये।

इक्यानवेवाँ सर्ग समाप्त

बानवेवाँ सर्ग

वाल्मीकिजी द्वारा मुक्ति के उपायों का कथन

श्रीवाल्मीकिजी ने कहा-भारद्वाज ! निषिद्ध कर्म, सकाम कर्म तथा विषयों के साथ इन्द्रियों के सम्बन्ध से जनित सुख-भोग से रहित शम, दम और श्रद्धा से युक्त पुरुष कोमल आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को जीत करके तब तक ॐकार का उच्चारण करता रहे, जब तक मन पवित्र और प्रसन्न न हो जाय। तदनन्तर अपने अन्तःकरण की विशुद्धि के लिये प्राणायाम करे और उसके बाद विषयों से इन्द्रियों को धीरे-धीरे खींच ले। देह, इन्द्रिय,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मन, बुद्धि और क्षेत्रज्ञ इनमें जिस-जिसकी जिस-जिस से उत्पत्ति हुई है, उस-उस को जानकर उन-उनके उपादान कारण में उन सबको विलीन कर दे। पहले अपने-आपको चराचर विश्व में अनुभव करे। इसके बाद सारे विश्व को अपने आत्मा के अंदर अनुभव करे; फिर विवेक के द्वारा इसका भी अभाव करके केवल आत्मा में ही स्थित रहे। तदनन्तर प्रकृति सहित ब्रह्म के स्वरूप में आत्म भावना करे। इसके पश्चात् परम कारण रूप केवल निर्विशेष निराकार शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा में आत्म भावना करे।

(अब देह, इन्द्रिय आदि में जिसकी जिससे उत्पत्ति हुई है, उसका उसमें लय करने का प्रकार बतलाते हैं) अपने स्थूल देह के मांस आदि, जो पार्थिव भाग हैं उनका पृथिवी में, रक्त आदि जो जलीय भाग हैं उनका जल में तथा जो तैजस भाग हैं उनका अग्नि में विवेक के द्वारा विलय कर दे। व्यष्टि प्राण वायु का महावायु में और आकाश-अंशका आकाश में लय कर दे। अपने श्रोत्रेन्द्रिय का दिशाओं में और त्वगिन्द्रिय का विद्युत में लय कर दे। चक्षुरिन्द्रिय का सूर्य में तथा रसनेन्द्रिय का जल के देवता वरुण में (एवं घ्राणेन्द्रिय का अश्विनी कुमार में) लय कर दे। समष्टि प्राण का वायु में, वाणी का अग्नि में और हस्तेन्द्रिय का इन्द्र में लय कर दे। अपने पादेन्द्रिय का विष्णु में तथा गुदा-इन्द्रिय का मित्र में लय कर दे। उपस्थेन्द्रिय का कश्यप में लय करके मन का चन्द्रमा में लय कर दे। बुद्धि का ब्रह्मा में लय कर दे। मित्र ! इन्द्रियों के रूप में देवता ही स्थित हैं। इनका मैं तुम्हें तत्त्वोपदेश द्वारा लय करने का आदेश श्रुति-वाक्य को प्रमाण मानकर ही दे रहा हूँ। मैंने अपने मन से किसी तरह की कोई कल्पना करके इन अर्थों को तुम्हारे सामने प्रकट नहीं किया है। इस तरह अपनी देह को उसके कारण में विलीन करके 'मैं विराट् हूँ' ऐसा चिन्तन करे। (इसके बाद पूर्वोक्त क्रम से परमात्मा में आत्म भावना करे।) सारे ब्रह्माण्ड के भीतर जो यह सदाशिव रूप परमात्मा व्यापक है, वही सम्पूर्ण भूतों का आधार तथा कारण कहा गया है। वही परमात्मा जगत् के व्यवहार में यज्ञ के रूप में स्थित है।

(अब पृथ्वी आदि भूतों के लय का क्रम बतलाते हैं-) योगी को चाहिये कि वह पृथ्वी का जल में लय करके उस जल को फिर तेज में लीन कर दे। तेज को वायु में विलीन करके उस वायु को फिर आकाश में विलीन कर दे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और आकाश का समस्त भूतों की उत्पत्ति के कारण भूत महाकाश में लय कर दे। योगी उस महाकाश में एकमात्र लिंग शरीर धारण किये हुए स्थित रहे। वासनाएँ, सूक्ष्मभूत, कर्म, अविद्या, दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन सबको पण्डित लोग लिंग शरीर कहते हैं। तदनन्तर वह योगी बाहर निकलकर वहाँ 'मैं शुद्ध आत्मा हूँ' यों चिन्तन करे। फिर वह बुद्धिमान् योगी सूक्ष्म और निराकार अव्याकृत प्रकृति में अपने लिंग शरीर को भी विलीन करके स्थित रहे। जिसमें यह समस्त जगत् रहता है वह अव्यक्त (माया) नाम और रूप से रहित है। उसी को कोई प्रकृति, कोई माया तथा कोई परमाणु एवं कोई अविद्या कहते हैं। उस अव्याकृत में प्रलयकाल में सभी प्राणी पदार्थ लय को प्राप्त होकर अव्यक्त रूप से अवस्थित रहते हैं। जब तक दूसरी सृष्टि नहीं होती तब तक वे सभी प्राणी–पदार्थ परस्पर के सम्बन्ध से शून्य तथा आस्वाद से रहित होकर उस अव्याकृत (प्रकृति) स्वरूप में ही स्थित रहते हैं और प्रलय के अनन्तर सृष्टिकाल में फिर उसी प्रकृतिभूत अव्याकृत से सब उत्पन्न हो जाते हैं। सर्ग के आदि में प्रकृति से अनुलोम–क्रम से सृष्टि होती है और प्रलय के आरम्भ में प्रतिलोम–क्रम से प्रकृति में सारी सृष्टि विलीन हो जाती है। इसलिये जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं से रहित होकर अविनाशी तुरीय पद की प्राप्ति के लिये ब्रह्म का ध्यान करे। पूर्वोक्त प्रकार से लिंग शरीर को भी कारण में विलीन करके स्वयं सच्चिदानन्द परमात्मा में प्रविष्ट हो जाय।

श्रीभरद्वाजजी ने कहा–महाराज ! मैं अब लिंग शरीररूपी बेड़ी के बन्धन से सर्वथा मुक्त हो गया हूँ और सच्चिदानन्द का अंश होने से सच्चिदानन्द ब्रह्म में प्रविष्ट हो गया हूँ। अंश और अंशी का वस्तुतः अभेद होने के कारण अब मैं समस्त उपाधियों से रहित परब्रह्म परमात्मा ही हूँ। मैं कूटस्थ, शुद्ध और व्यापक हूँ। जैसे जल में छोड़ा हुआ जल, दूध में छोड़ा हुआ दूध और घी में छोड़ा हुआ घी–सबके सब विनष्ट न होते हुए ही तद्रूप हो जाते हैं, किसी पृथक्रूप से गृहीत नहीं होते, वैसे ही सर्वभाव से नित्य आनन्दस्वरूप सर्वसाक्षी, परम कारण चेतन परब्रह्म परमात्मा में प्रविष्ट होकर मैं तद्रूप ही हो गया हूँ। नित्य, सर्वव्यापी, शान्त, सर्वदोषरहित, अक्रिय, शुद्ध, परब्रह्म परमात्मा मैं ही हूँ। पुण्य और पाप से रहित, जगत् का परम कारण, अद्वितीय, आनन्दमय, अविनाशी और चिन्मय स्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही मैं हूँ। इस प्रकार के लक्षणों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shantilal Jain Jammu Collection

से युक्त, प्रकृति के सत्त्व, रज, तम-तीनों गुणों से अतीत, सर्वव्यापक और सर्वस्वरूप ब्रह्म का निष्काम भाव से अपने कर्तव्य का पान करते हुए सदा ध्यान करना चाहिये। इस रीति से परब्रह्म विषयक अभ्यास करने वाले पुरुष का मन ब्रह्म में विलीन हो जाता है और मन के विलीन हो जाने पर उसे स्वयं ही अपने आत्मस्वरूप का अनुभव हो जाता है। आत्मा का अनुभव होने पर सम्पूर्ण दुःखों का अन्त होकर आत्मा में आनन्द का अनुभव होने लगता है तथा आत्मा स्वयं ही अपने आपअपने परमानन्द परमात्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है। तदनन्तर 'मुझसे अतिरिक्त कोई दूसरा सच्चिदानन्दमय परमात्मा नहीं है। मैं ही अद्वितीय परब्रह्म हूँ'-इस प्रकार हृदय में परमात्मा का अनुभव हो जाता है। गुरो ! आपके द्वारा कहा गया यह सब ज्ञान मुझे अवगत हो गया। मेरी बुद्धि सर्वथा निर्मल हो गयी। अब मेरा यह संसार चिरकाल तक स्थिर नहीं रह सकता। भगवन् ! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि ज्ञानियों के लिये कौन-सा कर्म विहित है ? क्या उन्हें कर्मों का अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। और यदि करना चाहिये तो क्या केवल प्रवृत्तिरूप कर्मों का ही अनुष्ठान करना चाहिये या निवृत्तिरूप कर्मों का भी ?

श्रीवाल्मीकिजी ने कहा-मुमुक्षु पुरुषों को वही कर्म करने चाहिये, जिसमें कोई दोष नहीं हो, विशेष करके मुमुक्षु को काम्य और निषिद्ध कर्म कभी नहीं करना चाहिए। संकल्पों से रहित होकर जब जीवात्मा ब्रह्म के लक्षणों से युक्त हो जाता है, तब उसकी सभी इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं और वह सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मस्वरूप बन जाता है। 'देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से परे जो जीवात्मा है तथा उससे भी परे जो सच्चिदानन्द ब्रह्म है, वही मैं हूँ' इस प्रकार निश्चय पूर्वक जब जीवात्मा एकत्वभाव से ध्यान करता है, तब वह सदा के लिये मुक्त होकर परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। जब जीवात्मा कर्तृव्य, भोक्तृत्व और ज्ञातृत्व से तथा सम्पूर्ण देहादि उपाधियों से एवं सुख और दुःखों से रहित होता है, तब वह सर्वथा मुक्त समझा जाता है। जब जीवात्मा सम्पूर्ण भूतों में आत्मा को तथा आत्मा में सम्पूर्ण भूतों को अभेदरूप से देखने लगता है, तब यह जीवात्मा संसार से सर्वथा मुक्त हो जाता है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-इन तीनों अवस्थाओं से रहित होकर जब जीवात्मा तुरीय आत्मानन्द-रूप में प्रवेश करता है, तब वह सर्वथा मुक्त समझा जाता है; क्योंकि शास्त्रों के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Collection, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विवेकपूर्वक विचार से, गुरु के वाक्यों का अर्थ और भाव यथार्थ समझने से तथा श्रवण, मनन, निदिध्यासन के अभ्यास से सब प्रकार से सिद्धि प्राप्त होती है अर्थात् वह सदा के लिये मुक्त हो जाता है, यह वेदों का आदेश है। इसलिये भरद्वाज ! तुम सब कुछ छोड़कर केवल ध्यान-समाधि के लिये अभ्यास में अपना मन तत्परता पूर्वक स्थिर करो। जब महामना साधु-स्वभाव श्रीरामचन्द्रजी अपने ब्रह्मरूप में समाधिस्थ थे, उस समय ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ श्रीवसिष्ठजी से श्रीविश्वामित्रजी कहने लगे।

श्रीविश्वामित्रजी ने कहा-ब्रह्म पुत्र महाभाग वसिष्ठजी ! आप महान् हैं। आपने अपना गुरुत्व शीघ्र ही हम लोगों को दिखला दिया; क्योंकि अपने दर्शन, स्पर्श और वाक्य प्रयोग से जो कृपा करके शिष्य के शरीर में शिव-स्वरूप परमात्म भाव का समावेश करा दे, वही सच्चा गुरु है। गुरुवाक्य-श्रवण से होने वाले ज्ञान में शिष्य की श्रद्धापूर्वक पवित्र बुद्धि ही कारण है। यह ज्ञान की प्राप्ति ही गुरु और शिष्य के समागम का वास्तविक प्रयोजन है। विभो ! आप तो परमपद में स्थित हैं, परंतु हम लोग अभी तक यज्ञादि कार्यों में लगे हुए हैं। बड़े कष्ट के साथ जिसके लिये मैंने स्वयं राजा दशरथ से प्रार्थना की है और जिस उद्देश्य से मैं यहाँ आपके पास आया हूँ, उस मेरे निर्विघ्न यज्ञ सिद्धिरूप कार्य का स्मरण करते हुए आप श्रीरामचन्द्रजी को अब समाधि से उठाने की कृपा कीजिये। मुने ! मेरे उस समस्त कार्य को आप अपने शुद्ध मन से व्यर्थ न बनाइये; क्योंकि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के समाधि से उठने पर उनके अवतार के जो अन्य प्रयोजन, देवताओं और ऋषियों के कार्य हैं, उनका भी हम लोग सम्पादन कर लेंगे। जब मैं श्रीरामचन्द्रजी को अपने आश्रम में ले जाऊँगा, तब वे राक्षसों का नाश करेंगे और उसके बाद अहल्या को शाप से मुक्त करेंगे। तदनन्तर निश्चय पूर्वक भगवान् शंकर का धनुष तोड़कर जनक दुलारी सीता के साथ अपना विवाह करेंगे। इस संसार में पिता-पितामह के राज्य का त्याग कर वनवास के निमित्त वन में पहुँच कर अभय और निःस्पृह श्रीरामचन्द्रजी राक्षसों का वध करके दण्डकारण्य के निवासी मुनियों, अनेक तीर्थों तथा अन्यान्य प्राणियों का उद्धार करेंगे। सीताहरण के निमित्त रावण आदि का वध करके श्रीरामचन्द्र जी इन्द्र के वरदान द्वारा युद्ध में मरे हुए वानर आदि को पुनर्जीवित हुए दिखलायेंगे। तदनन्तर साध्वी सीता की अग्नि में प्रवेश

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के द्वारा शुद्धि के उद्देश्य से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने चरित्र की आदर्शता दिखलायेंगे। जो लोग भगवान् श्रीराम का दर्शन करेंगे। उनके चरित्र का स्मरण तथा श्रवण करेंगे एवं जो लोग भगवान् के स्वरूप का दूसरों को बोध करायेंगे, उन सम्पूर्ण अवस्थाओं में स्थित अपने भक्तों को भगवान् श्रीरामचन्द्र जी जीवन्मुक्ति प्रदान करेंगे। इस प्रकार तीनों लोकों का तथा मेरा भी हित इन महापुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा सम्पूर्ण रूप से सम्पन्न होगा। सज्जनो ! आप सब लोग इन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार कीजिये। इनके नमस्कार से ही आप लोग सारे संसार को जीत लेंगे अर्थात् आप लोगों को किसी दूसरे साधन की आवश्यकता न होगी। आप लोग चिरकाल तक बढ़ते रहें।

श्रीवाल्मीकिजी ने कहा-भरद्वाज ! इस प्रकार का विश्वामित्रजी का भाषण रूप श्रीरामचन्द्रजी की भावी चरित्र रूप दुर्लभ कथा सुनकर श्रीवसिष्ठ आदि सभी श्रेष्ठ योगीन्द्र तथा सिद्ध पुनः भगवान् श्रीराम की चरण कमल रज के आदर में यानी नमस्कार में तथा उनके स्मरण में स्थित हो गये। जानकी पति श्रीराम की भावी कथा सुनने से भगवान् वसिष्ठजी तथा और दूसरे महर्षि भी तृप्त नहीं हो सके। इसलिये उन सबने दूसरों के द्वारा कहे गये उन गुणसागर भगवान् के गुणों का पुनः श्रवण किया तथा सुने हुए गुणों का दूसरों से वर्णन किया। तदनन्तर महर्षि भगवान् वसिष्ठजी मुनिवर विश्वामित्रजी से कहने लगे।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-मुनि विश्वामित्रजी ! इन श्रोताओं को आप साफ-साफ बतला दीजिये कि ये राजीव-लोचन रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी पूर्व में देव या मनुष्य क्या थे।

श्रीविश्वामित्रजी ने कहा-सज्जनो ! आप सब लोग इन्हीं श्रीरामचन्द्रजी में विश्वास कीजिये कि परमपुरुष परब्रह्म परमात्मा ये ही हैं। इन्होंने ही विश्व के कल्याण के लिये विष्णुरूप से क्षीरसागर का मन्थन किया था। गूढ़ अभिप्राय से भरे उपनिषदादि शास्त्रों के तत्त्वगोचर साक्षात् परब्रह्म ये ही हैं। परिपूर्णपरानन्द, समस्वरूप, श्रीवत्स के चिन्ह से सुशोभित भगवान् विष्णुरूप यही श्रीरामचन्द्रजी जब भक्ति से भलीभाँति प्रसन्न होते हैं, तब सब प्राणियों को परम पुरुषार्थरूप मोक्ष देते हैं। कुपित होकर यही श्रीरामचन्द्रजी शिवरूप से संसार का संहार करते हैं और यही ब्रह्मारूप से विनाशशील संसार की रचना करते हैं। यही विश्व के आदि, विश्व के उत्पादक, विश्व के धाता, पालनकर्ता तथा महासखा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LF S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

भी हैं। यही भगवान् ऋक्, यजुः, सामवेदमय हैं, तीनों गुणों से परे अति गहन यही हैं और शिक्षा, कल्प आदि छः अंगों से समन्वित वेदात्मा अद्भुत पुरुष भी यही हैं। विश्व का पालन करने वाले चतुर्भुज विष्णु भगवान् यही हैं, विश्व के रचयिता चतुर्मुख ब्रह्मा यही हैं और सारे संसार का संहार करने वाले त्रिलोचन भगवान् शिव भी यही हैं। ये अजन्मा होते हुए भी अपनी योगमाया के सम्बन्ध से अवतार लेते हैं। ये सबसे महान् हैं। ये सदा जागते रहते हैं और रूपरहित हुए भी ये विश्वरूप हैं। ये भगवान् ही इस विश्व को अपने संकल्प से धारण करते हैं। ये राजा दशरथजी धन्य हैं, जिनके पुत्र परमपुरुष परमात्मा हुए। वह दशग्रीव रावण भी धन्य है, जिसका ये अपने चित्त से चिन्तन करेंगे। क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु भगवान् ही श्रीरामचन्द्रजी के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। ये ही श्रीरामचन्द्र जी सच्चिदानन्दघन अविनाशी परमात्मा हैं। अपनी इन्द्रियों को रोक रखनेवाले योगी लोग ही श्रीरामचन्द्रजी को वस्तुतः जानते हैं। हम लोग तो इनके इस सगुण साकारस्वरूप का ही निरूपण या दर्शन करने में समर्थ हैं। वसिष्ठजी ! हम लोगों ने ऐसा सुना है कि ये ही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रघुवंश के पापों का सर्वथा विनाश करनेवाले हैं। अब आप कृपाकर इन्हें व्यवहार में लगाइये।

श्रीवाल्मीकिजी ने कहा–भरद्वाज ! यों कहकर महामुनि विश्वामित्रजी चुपचाप बैठ गये। तदनन्तर महातेजस्वी वसिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजी से कहने लगे।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–चिन्मय महापुरुष महाबाहु श्रीराम ! यह विश्राम का समय नहीं है। उठो और इस संसार के लिये आनन्दकारक बनो। पुत्र ! विनाशशील राज्य-कार्यों का अवलोकन करके देवताओं और मुनियों को संकट से उद्धार करने के भार का वहन करो और सुखी रहो।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं–भरद्वाज ! गुरु वसिष्ठजी के उपर्युक्त वचनों को सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी समाधि से सचेत हो गये और सावधान होकर कहने लगे।

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा–महामुने ! वेदों, आगमों, पुराणों और स्मृतियों में भी गुरु-वाक्य का पालन करना ही विधि कहा गया है और उसके विरुद्ध आचरण करना निषेध कहा गया है। यों कहकर उन महात्मा वसिष्ठजी के चरणों में अपने सिरसे नमस्कार कर सबके आत्मस्वरूप करुणासागर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji chairman(L.F.S) Jammu Collection

श्रीरामचन्द्रजी सबसे बोले-'सभ्य पुरुषो ! आप सब लोग हमारे इस निर्णय को अच्छी तरह सुन लीजिये। इससे आप लोगों का बड़ा कल्याण होगा। कल्याणकामी पुरुष के लिये इस संसार में परमात्मज्ञान तथा परमात्मज्ञानी गुरु से बढ़कर कुछ भी नहीं है।'

सिद्ध आदि सब लोगों ने कहा-श्रीरामचन्द्रजी ! आप जैसा कह रहे हैं, वैसा ही आपकी दया से हम लोगों के मन में पहले से ही स्थित है और अब तो वह सब आपके इस संवाद से और भी विशेष दृढ़ हो गया है। महाराज श्रीरामचन्द्रजी ! आप सुखी होइये, आपको नमस्कार है। अब हमलोग वसिष्ठजी से भी अनुमति लेकर जहाँ से आये थे, वहीं जा रहे हैं।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! यों कहकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करते हुए वे सब-के-सब चल दिये। श्रीरामचन्द्रजी के ऊपर पुष्पों की वृष्टि होने लगी। श्रीरामचन्द्रजी की यह सब कथा मैंने तुमसे कह सुनायी। इसी क्रमयोग से तुम भी साधन करते हुए सुखी रहो। मुनिवर वसिष्ठजी की वचन-पंक्तिरूपी रत्नमाला से विभूषित यह जो श्रीरामचन्द्रजी की कथा मैंने तुमसे कही है, वह सम्पूर्ण कवियों और योगियों के लिये सेवनयोग्य है तथा परम गुरु की दयादृष्टि से वह मुक्ति मार्ग को देती है। जो कोई मनुष्य वसिष्ठजी और श्रीरामचन्द्रजी के इस संवाद को प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक सुनेगा, वह किसी अवस्था में रहते हुए भी एकमात्र श्रवण से ही मुक्त हो जायगा और परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेगा।

बानवेवाँ सर्ग समाप्त

निर्वाण-प्रकरण पूर्वार्ध सम्पूर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पूर्वापरसमाधानक्षमबुद्धावनिन्दिते ।
पृष्टं प्राज्ञेन वक्तव्यं नाधमे पशुधर्मिणि।।
प्रामाणिकार्थयोग्यत्वं पृच्छकस्याविचार्य च।
यो वक्ति तमिह प्राज्ञाः प्राहुर्मूढतरं नरम्।।

(मुमुक्षु प्रकरण से)

'ज्ञानी महात्मा को चाहिये कि पूर्वापर का विचार करके यथार्थ निश्चय करने में जिसकी बुद्धि समर्थ हो, जिसके आचरण निन्दनीय न हों, ऐसे ही पुरुष को उसके पूछे हुए तत्त्व का उपदेश दे। जो आहार-निद्रा, भय-मैथुन आदि पशुधर्म से संयुक्त है, ऐसे अधम को उपदेश न दे। प्रश्न कर्त्ता में श्रुति आदि प्रमाणों के द्वारा निर्णय किये हुए तत्त्व-पदार्थों को ग्रहण करने की योग्यता है या नहीं, इसका विचार किये बिना ही जो वक्ता उसे उपदेश देता है, उसको ज्ञानीजन इस लोक में महान् मूढ़ बतलाते हैं।'

•••

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सचित्र
योगवासिष्ठ महारामायण

द्वितीय खण्ड

निर्वाण प्रकरण उत्तरार्ध

ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः।।

(मुमुक्षु प्रकरण से)

'जो लोग उद्योग का त्याग करके केवल दैव के भरोसे बैठे रहते हैं, वे अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–चारों पुरुषार्थों का नाश कर डालते हैं। वे आलसी मनुष्य आप ही अपने शत्रु हैं।'

•••

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Memorial Library Collection

निर्वाण-प्रकरण उत्तरार्ध

पहला सर्ग

कल्पना या संकल्प के त्याग का स्वरूप, कामना या संकल्प से शून्य होकर कर्म करने की प्रेरणा, दृश्य की असत्ता तथा तत्त्वज्ञान से मोक्ष का प्रतिपादन

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा–ब्रह्मन् ! जब पुरुष देह, प्राण आदि में अहंता, ममता आदि कल्पनाओं को त्याग देगा, तब फिर उससे कोई भी कर्म नहीं बन सकता। ऐसी दशा में शरीर के भरण-पोषण की चेष्टा से भी विरत हो जाने के कारण उसे देहधारी जीव का शरीर शीघ्र ही गिर सकता है। अतः जीवित पुरुष के लिये यह कल्पना त्यागपूर्वक व्यवहार कैसे सम्भव है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–रघुनन्दन ! जीवित पुरुष के लिये ही कल्पनाओं का त्याग सम्भव है। जो जीवित नहीं है, उसके लिये नहीं। इस कल्पना-त्याग का यथार्थस्वरूप क्या है, यह बतलाता हूँ, सुनो। कल्पना के स्वरूप को जानने वाले विद्वान अहंभावना (आत्मा को देहमात्र मान लेने) को ही कल्पना कहते हैं तथा आत्मा को आकाश के समान अपरिमित, अनन्त और व्यापक जानकर परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करना ही तत्त्वज्ञ पुरुषों के मत में कल्पना का या संकल्प का त्याग कहलाता है। संकल्पशून्य होकर चुपचाप स्थित रहने से ही उस परमपद की प्राप्ति होती है, जहाँ उच्च कोटि का साम्राज्य भी तिनके के समान तुच्छ प्रतीत होता है। समस्त कर्म और उनके विस्तृत फलों को सोये हुए पुरुष की भाँति सर्वथा भूलकर प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए कार्य के लिये संकल्पशून्य होकर मनुष्य को चेष्टा करते रहना चाहिये। अपने कर्मों में यदि वासना रहित प्रवृत्ति का अभ्यास हो जाय तो यही उच्च कोटि का धैर्य है, जो भावी जन्मरूपी ज्वर का निवारण कर देता है। वासना और संकल्प से शून्य होकर प्रारब्धवश प्राप्त हुए कार्य का अनुसरण करते हुए चाक के ऊपर घूमने वाले घट आदि की भाँति धीरे-धीरे उपरत होते हुए कर्मों में लगे रहना चाहिये।

सम, शान्त, कल्याणमय, सूक्ष्म, द्वित्व और एकत्व से रहित, सर्वत्र व्यापक, अनन्त तथा शुद्धस्वरूप परब्रह्म परमात्मा के प्राप्त होने पर किसलिये कौन खिन्न हो सकता है ? जो पुरुष संकल्पशून्य और शान्त हो गया है अर्थात् जिसे परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति हो गयी है, उसे अपने शरीर के रहने या न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रहने से कोई प्रयोजन नहीं है तथा इस लोक में किसी कर्म के किये जाने अथवा न किये जाने से भी उसका कोई, किंचित् मात्र भी प्रयोजन नहीं है। रघुनन्दन ! जैसे सुवर्ण ही कड़े और बाजूबन्द के रूप में प्रतीत होता है; किंतु वास्तव में सुवर्ण से पृथक् इन आभूषणें के नामरूप की सत्ता नहीं है, उसी प्रकार यह जो कुछ जगत्‌रूप में दिखायी देता है, प्रतीतिमात्र ही है। परमात्मा से पृथक् इसकी सत्ता नहीं है। परमात्मा से भिन्न इसकी सत्ता का अनुभव न होने को ही ज्ञानी पुरुषों ने इस जगत् का नाश माना है। जगद्-भ्रम का निवारण हो जाने पर इसके अधिष्ठान रूप से अवशिष्ट जो परमात्मा है, वही परमार्थ सत्य है।

श्रीरामजी ने पूछा-प्रभो ! 'मैं' और 'मेरा' इत्यादि जो दृश्य है, उसको असत् मानकर उसका चिन्तन न करने वाले ज्ञानी पुरुष को कर्मों के त्याग से कौन-सा अशुभ और कर्मों के सम्पादन से कौन-सा शुभ फल प्राप्त होता है ?

श्रीवसिष्ठजी बोले-रघुनन्दन ! जब तक देहरूपी उपाधि विद्यमान है, तब तक इस भावनामय सूक्ष्म कर्म का क्या त्याग हो सकता है और क्या अनुष्ठान। देह के रहते हुए यह जीव-चेतन बाह्य और आभ्यन्तर जिस-जिस वस्तु की भावना करता है, वह-वह तत्काल उसको प्रतीत होने लगती है। भले ही, उसका आकार सत्य हो या भ्रम से भरा हुआ असत्य। यदि वह किसी वस्तु की भावना नहीं करता तो इस संसार-भ्रम से पूर्णतया मुक्त हो जाता है। वह भ्रम सत्य हो या असत्य, इस विचार से क्या प्रयोजन है ? बोध होने के पश्चात् इस दृश्य की प्रतीति का स्वयं ही लय हो जाने से जो इसका अत्यन्ताभाव सिद्ध होता है, उसी को जगत् का त्याग, अनासक्ति एवं मोक्ष माना गया है। इसलिये जब तक यह शरीर विद्यमान है, तब तक कर्मों का सर्वथा त्याग नहीं हो सकता। परंतु जो अज्ञानी कर्म का आदर करते हैं, वे उसके मूल को नहीं छोड़ते हैं। मनका जो वासनात्मक संकल्प है, वही अपने कर्म का मूल है। जब तक यह शरीर है, तब तक ज्ञान के बिना उस मानसिक संकल्प का उच्छेद नहीं हो सकता। परंतु जो तत्त्वज्ञान के द्वारा मन के संकल्पों का निवारण कर देता है, वह संसार रूपी वृक्ष का मूलोच्छेद कर डालता है।

पहला सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LF S) Jammu Collection

दूसरा सर्ग

समूल कर्मत्याग के स्वरूप का विवेचन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जब यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि न तो असत् वस्तु की सत्ता हो सकती है और न सत्-वस्तु का अभाव ही, तब दृश्य विषयों के प्रति उन्मुखता का निवारणस्वयं सुगम हो जाता है। (क्योंकि दृश्य की असत्ता का प्रतिपादन किया जा चुका है। जो वस्तु है ही नहीं, उसका चिन्तन कोई समझदार मनुष्य कैसे करेगा ?) विवेकी पुरुष को चाहिये कि वह अपने शुभाशुभ कर्म को नष्ट कर दे। आत्मा के साथ कर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा कर्तृत्व और भोक्तृत्व दोनों से रहित है। इस तत्त्वज्ञान के द्वारा कर्मों का नाश स्वतः सिद्ध हो जाता है। समस्त कर्मों के मूलभूत मानसिक संकल्प का विनाश करने से संसार पूर्णतः शान्त हो जाता है। जब कर्म के मूल कारण का भलीभाँति विचार किया जाता है, तब समस्त कर्मों का अभाव अपने-आप ही सिद्ध हो जाता है। (क्योंकि जब चित्त और उसका संकल्प ही मिथ्या है, तब उससे होने वाला कर्म सत्य कैसे हो सकता है ?) अथवा चिन्मय आत्मा अपने भीतर जिस चित्त नामक कर्मबीज का- क्रिया, करण और कर्तारूप त्रिपुटी का निर्माण करता है, वह उस आत्मा से किंचिन्मात्र भिन्न नहीं है। इसलिये बाहर और भीतर (जाग्रत् तथा स्वप्न सुषुप्ति में) जो पदार्थों की प्रतीति होती है, वह आत्मस्वरूप ही है, आत्मा से भिन्न नहीं है।

किंतु वास्तव में रघुनन्दन ! सम्पूर्ण कर्मों का विस्तार यह शरीर है। उसका मूल अहंकार है और शाखा-प्रशाखाएँ संसार। चिन्तन या भावना का जहाँ बाध हो जाता है, उस अहंकार शून्य स्थिति से इस संसार का मूलोच्छेद हो जाने के कारण वह उसी तरह शान्त हो जाता है, जैसे स्पन्दनशून्य वायु। जैसे नदी के प्रवाह में पड़ा हुआ तृण-काष्ठ आदि सब कुछ स्वभावतः बहता रहता है, उसी प्रकार ज्ञानियों की कर्मेन्द्रियों से किसी प्रकार के मनोविकार के बिना ही अधसोये पुरुष की भाँति स्वाभाविक चेष्टा होती रहती है। वासनाशून्य निरतिशय ब्रह्मानन्द के प्राप्त हो जाने पर विषय-सुख अत्यन्त नीरस हो जाते हैं। फिर न वे बाहर अपना प्रभाव डाल पाते हैं, न भीतर। विषयों और वासनाओं से रहित, शान्त और कृताकृत के अनुसंधान से हीन जो संकल्प रहित स्थिति है, उसी को कर्मत्याग कहते हैं। दीर्घकाल के भूले हुए कर्म की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Branch Library, Jammu. CC-O. Jammu Collection

भाँति विषयों का पुनः स्मरण न होना कर्मत्याग कहलाता है। जो मिथ्या ज्ञान रखने वाले पुरुष मूल-त्याग के बिना केवल कर्मेन्द्रिय-संयमरूप त्याग करते हैं, वे मूढ़ पशु-तुल्य हैं। उनको वह कर्मत्यागरूपिणी पिशाची खा जाती है। किंतु जो मूल सहित कर्मत्याग के द्वारा शान्ति पा चुके हैं, उनके लिये इस जगत् में किसी कर्म के करने या न करने से कोई प्रयोजन नहीं है। जिसका समूल त्याग कर दिया जाता है, वही वास्तव में त्याग है। मूल का उच्छेद किये बिना जो ऊपर से कर्म का त्याग किया जाता है, वह वृक्ष की जड़ न काटकर उसकी शाखा काटने के समान व्यर्थ है। जिस कर्मरूपी वृक्ष की जड़ न काटकर केवल शाखा मात्र का उच्छेद किया जाता है, वह पुनः सहस्त्रों शाखाओं से विस्तार को प्राप्त हो केवल दुःख देने के लिये बढ़ता रहता है। प्रिय रामभद्र ! संकल्पशून्यता रूप त्याग से ही वास्तव में कर्मत्याग सिद्ध होता है, दूसरे किसी क्रम से नहीं। ज्ञान के द्वारा कर्मत्याग के सिद्ध हो जाने पर वासना रहित जीवन्मुक्त पुरुष घर में रहे या वन में, दीन-हीन अवस्था को पहुँच जाय या लौकिक उन्नति को प्राप्त हो, उसके लिये सभी अवस्थाएँ एक-सी हैं। जिसका चित्त शान्त है, उस पुरुष के लिये घर ही दूरवर्ती निर्जन वन है। परंतु जिसका चित्त शान्त नहीं है, उस पुरुष के लिये निर्जन वन भी जनसमुदाय से भरा हुआ नगर है।

दूसरा सर्ग समाप्त

तीसरा सर्ग

अहंभाव का आत्मबोध के द्वारा उच्छेद कर परमात्मस्वरूप से स्थित होने का उपदेश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! चेतन आत्मा के स्वरूप का तत्त्वतः बोध प्राप्त होने पर जब अहंता आदि के साथ ही सम्पूर्ण जगत् शान्त हो जाता है, तब तेल समाप्त होने पर बुझे हुए दीपक की भाँति सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच का त्याग सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं। कर्मों का त्याग त्याग नहीं है। 'जहाँ जगत् का भान ही नहीं है, वह एकमात्र शुद्ध आत्मा ही अहंता आदि विकारों से रहित एवं अविनाशी है।'-इस प्रकार का बोध ही वास्तविक त्याग कहा गया है। 'यह स्त्री, पुत्र, धन आदि सब मेरे हैं, यह शरीर इन्द्रिय आदि ही मैं हूँ' इस प्रकार की अहंता-ममता का सर्वथा अभाव होने पर जो शेष रहता है वही कल्याणमय, शान्त, बोधस्वरूप परमात्मा है। उससे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। परमात्मा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Sharma (P.G.) Jammu Collection

के यथार्थ ज्ञान के द्वारा अहंता का क्षय हो जाने पर ममता का आधारभूत सारा संसार ही विनष्ट हो जाता है। फिर सर्वत्र परिपूर्ण एकमात्र शान्तस्वरूप सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही स्थित रहता है। अहंकार की भावना करने वाला जीवात्मा एकमात्र अहं-भावना का त्याग कर देने मात्र से बिना किसी विघ्न-बाधा के शान्तस्वरूप हो जाता है। यह मुक्ति इतने ही मात्र साधन से सिद्ध हो जाती है। तब फिर संसार में भटककर व्यर्थ कष्ट क्यों उठाया जाय ? 'मैं देह आदि नहीं हूँ। विशुद्ध चेतनमात्र हूँ।' इस बुद्धि को भी यदि कोई द्वैतभ्रम ही कहे तो उसके लिये यह उत्तर है कि यह बुद्धि परमार्थ-स्वभाव को छोड़कर और कुछ भी नहीं है। चिन्मय परमात्मा तो आकाश के समान विशद है। उसमें भ्रम कहाँ ठहर सकता है ? न भ्रम है, न भ्रम का साधन है, न भ्रम का फल है और न भ्रम का कोई आश्रय ही है। यह जो कुछ दिखायी देता है, सब अज्ञानजनित ही है। ज्ञान का प्रकाश होते ही यह अज्ञानजन्य अन्धकार नष्ट हो जायगा। यह जो सब ओर फैला हुआ प्रपंच दृष्टिगोचर होता है, वास्तव में यह है ही नहीं, केवल एक शान्तस्वरूप परमात्मा ही है।

जो अपने अंदर की मनोवृत्ति को जीत रहा है या जीत चुका है, वही विवेक का पात्र है और उसे ही पुरुष कहते हैं; क्योंकि उसी ने पुरुषार्थ करके अपना जीवन सफल किया है। जब मनुष्य अस्त्र-शस्त्रों की मार और रोगों की पीड़ाएँ भी सह लेता है, तब 'मैं यह शरीर आदि नहीं हूँ' इतनी-सी भावनामात्र को सह लेने में कौन-सा कष्ट है; क्योंकि संसार के जितने पदार्थ हैं, उन सबका अंकुर (कारण) अहंभाव ही है। इसलिये ज्ञान के द्वारा उस अहंभाव का उन्मूलन हो जाने पर संसार की जड़ अपने आप उखड़ जाती है। जैसे मुँह से निकली हुई भाप निःसार होने पर भी सारवान् स्वच्छ दर्पण को मलिन कर देती है और उसे मिट जाने पर वह दर्पण पुनः स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार इस अहंभाव रूपी निःसार बाष्प से भी सारवान् परमात्मा रूपी दर्पण मल से आवृत-सा हो जाता है; किंतु उस अहंभाव के शान्त होते ही शुद्ध स्वच्छ रूप से प्रकाशित होने लगता है। अहंभावशून्य परब्रह्म परमात्मा में विलीन हुई यह अहंता भी ब्रह्मरूप ही हो जाती है, अतः उसका पृथक् कोई नाम-रूप नहीं रह जाता। अहंकार ही इस जगत् का बीज है। परंतु ज्ञानाग्नि के द्वारा जब वह अहंकाररूपी बीज दग्ध हो जाता है, तब जगत् और बन्धन इत्यादि की कल्पना

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ही नहीं रह जाती।

वह परब्रह्म परमात्मा सत्स्वरूप और कल्याणमय है। जैसे घट-बुद्धि से घट में एकदेशिता होने पर मृत्तिका के स्वरूप का विस्मरण हो जाता है, उसी प्रकार अहंता से परमात्मा के स्वरूप की विस्मृति हो जाती है। अहंकाररूपी बीज से ही यह दृश्य-प्रपंच की सत्तारूपिणी लता उत्पन्न हुई है, जिसमें अनन्त जगत्‌रूपी फल पैदा होते और नष्ट होते रहते हैं। नित्य परमात्म-तत्त्व के ज्ञान से जब अहंकार को सर्वथा नष्ट कर दिया जाता है, तब यह संसाररूपिणी मृगतृष्णा सर्वथा शान्त हो जाती है। निष्पाप रघुनन्दन ! किसी दूसरे सहायक साधनों के बिना ही अपने प्रयत्न मात्र से सिद्ध होने वाली अहंभाव की निवृत्ति के सिवा मुझे दूसरा कोई कल्याणकारी साधन नहीं दिखायी देता।

तीसरा सर्ग समाप्त

चौथा सर्ग

वसिष्ठजी के द्वारा भुशुण्ड और विद्याधर के संवाद का उल्लेख

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे राम जी ! जैसे स्वच्छ निर्मल वस्तु पर तेल की एक बूँद भी पड़ जाय तो अपना प्रभाव डाल देती है, उसी प्रकार शुद्ध चित्तवाले पुरुष को दिया हुआ थोड़ा-सा भी उपदेश उस पर अपना प्रभाव डाल देता है। परंतु जिनका चित्त अहंभाव के कारण बढ़ा हुआ है, उन्हें दिया हुआ उपदेश उसी तरह लागू नहीं होता, जैसे दर्पण में मोती नहीं घुस सकता। इस विषय में विद्वान् लोग इस प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं, जिसे बहुत दिन पहले सुमेरु पर्वत के शिखर पर भुशुण्डजी ने मुझसे कहा था।

प्राचीन काल की बात है, सुमेरु पर्वत के शिखर की एक एकान्त गुफा में किसी समय अध्यात्म चर्चा के प्रसंग में मैंने भुशुण्डजी से पूछा-'भुशुण्डजी ! यह तो बताइये, कौन ऐसा मूढ़बुद्धि, आत्मज्ञान-शून्य तथा चिरंजीवी पुरुष है, जिसका आपको स्मरण है ?' प्रिय श्रीराम ! मेरे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इस प्रकार पूछने पर भुशुण्डजी ने यह उत्तर दिया।

भुशुण्डजी बोले-महर्षे ! पूर्वकाल में लोकालोकान्तर पर्वत की चोटी पर एक विद्याधर रहता था। उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं थीं। इसके कारण उसे बड़ा खेद था। अतएव वह सूख-सा गया था। यद्यपि उसे आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं था, तथापि वह श्रेष्ठ और विचारशील था। उसने अनेक प्रकार से तप किये थे, यम और नियमों को पालन किया था। इससे उसकी आयु अभी क्षीण नहीं होती थी। इसीलिये वह पहले चार कल्पों तक जीवित रहा। तदनन्तर चौथे कल्प के अन्त में उचित कारण-सामग्री जुट जाने अर्थात् चिरकाल से अभ्यस्त तप और नियम आदि का प्रभाव पड़ने से उसके भीतर विवेक का उदय हुआ। उसने सोचा-बारंबार जन्म, बारंबार मरण और बारंबार वृद्धावस्था की प्राप्ति न हो, इसका क्या उपाय है। अब तक संसार बन्धन से मुक्त न होने के कारण मुझे लज्जा होती है; अतः ऐसी कौन-सी एक वस्तु है, जो सदा निर्विकार भाव से स्थित रहती है।' यों सोचकर पाँच प्राण, दस इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा स्थूल शरीर-इन अठारह अवयवों से युक्त अपनी पुरी को चिरकाल तक धारण करने से विरक्त-चित्त होकर वह विद्याधर कुछ पूछने के लिये मेरे पास आया। अब उसे संसार में कोई रस नहीं मिल रहा था। मेरे समीप आकर उसने बड़े आदर के साथ मुझे नमस्कार किया, तब मैंने भी उसका आतिथ्य-सत्कार किया। तत्पश्चात् अवसर पाकर उसने यह उत्तम बात कही।

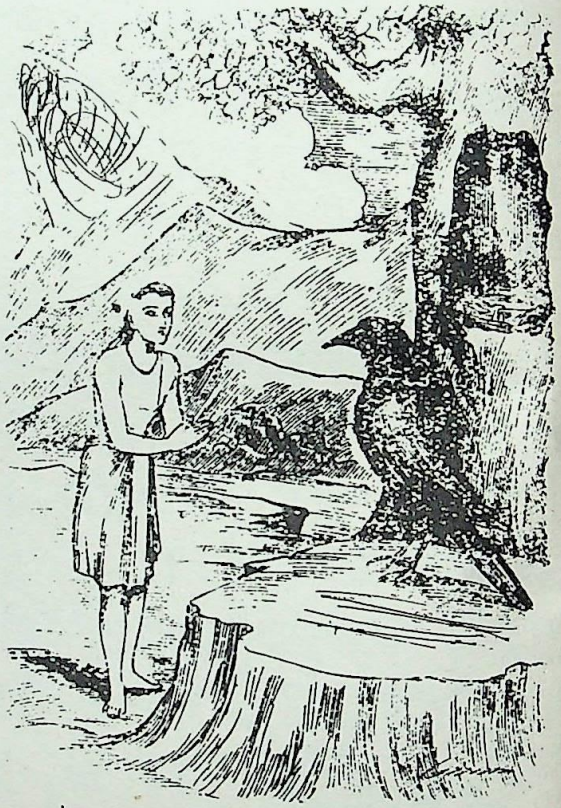

विद्याधर ने कहा-भुशुण्डजी ! जो परम उदार, दुःखहीन, क्षय और वृद्धि से वर्जित तथा आदि और अन्त से रहित है, उस पावन पद का आप मुझे शीघ्र उपदेश दीजिये। महर्षे ! इतने समय तक मैं जड़ स्वरूप बनकर मोह की प्रगाढ़ निद्रा में सोया हुआ था। अब तीव्र वैराग्य के कारण अन्तःकरण शुद्ध हो जाने से मैं जाग उठा हूँ। मनके महान् रोग काम से मैं बहुत पीड़ित हूँ। अज्ञान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

की वृत्तियों और दुर्वासनाओं में पड़कर क्षुब्ध हूँ। मेरी चेष्टाओं का अन्त होना बहुत कठिन हो रहा है। अहंभाव के रूप में स्थित जो मोह है, उससे आप मेरा शीघ्र उद्धार कीजिये। पहले सहस्त्रों बार उपभोग में लाये हुए शब्दादि विषयों से ही अत्यन्त तुच्छ सुख के लिये जो इन्द्रियों द्वारा सम्पर्क स्थापित किया जाता है, वह अपने आपको धोखा देना है। ऐसी विडम्बनाओं से बारंबार ठगे जाकर मनुष्य चिरकाल से अत्यन्त खिन्न रहते हैं। विषय-भोग आरम्भ में रमणीय प्रतीत होते हैं। किंतु वे क्षण में ही नष्ट हो जाने वाले हैं। उनमें शीघ्र ही विकार पैदा हो जाता है। वे संसार बन्धन के हेतु हैं; अतएव बड़े भयंकर हैं।

मेरा नेत्र सुन्दर रूप निहारने के लिये अत्यन्त चंचल तथा सुन्दरी नारी का मुँह देखने के लिये लालायित रहता था। बाह्य और आभ्यन्तर प्रकाश की सहायता से मन को दूषित करने के लिये विषयों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके इसने मुझे भारी दुःख में डाल दिया। नारी के शरीर में जो ये वस्त्र और आभूषण आदि हैं, ये ही उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं, वास्तव में वह रक्त-मांस आदि का पिण्ड है। इस तरह का विचार न करके केवल रूपमात्र अनुसरण करने के स्वभाव से युक्त होने के कारण ये नेत्र अयोग्य विषय ही ओर भी दौड़ पड़ते हैं।

तात ! यह घ्राणेन्द्रिय इस संसार में अनर्थ की प्राप्ति के लिये ही चारों ओर दौड़ लगा रही है। तेज दौड़ने वाले घोड़े की भाँति इसे मैं रोक नहीं पाता हूँ। मेरी यह रसना शास्त्र के अनुसार भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करके चिरकाल से नाना प्रकार से रसों का आस्वादन कर रही है। इसने मुझे गजराजों और गीदड़ों से भरे हुए दुःख के पहाड़ों पर चढ़ाकर बड़ा तंग किया है। जैसे ग्रीष्म ऋतु में प्रचण्ड किरणों से तपते हुए सूर्य के ताप को रोकना असम्भव है, उसी प्रकार मेरी त्वगिन्द्रिय में जो दूसरों के आलिंगन की लम्पटता आ गयी है, उसे मैं रोक नहीं सकता। मुने ! जैसे नयी-नयी घास चरने की इच्छा हरिण को विषम संकट में (तिनकों से ढके हुए कूप में) डाल देती है, उसी प्रकार मेरी ये श्रवणशक्तियाँ सुमधुर शब्दों के रसास्वादन की अभिलाषा लेकर मुझे विषम संकट में डाल देती हैं। विनम्र सेवकों के मुख से निकली हुई प्रियकारिणी (आनन्ददायिनी), विनयपूर्ण तथा वाद्यगीत की मधुर ध्वनि से मिली हुई सुन्दर शब्द सम्पत्तियों का मैंने श्रवण किया है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

खनखनाते हुए मणियों के आभूषण जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, ऐसी सुन्दरी स्त्रियों तथा जो अपनी सौन्दर्य-सम्पदा से सबके मन को हर लेती हैं ऐसी राज्यलक्ष्मियों, दिशाओं तथा समुद्र और पर्वतों की तटभूमियों का मैंने बारंबार अवलोकन किया है। मैंने विनयशालिनी प्रियतमाओं द्वारा लाये गये, स्वादिष्ट मधुर आदि रसों के चमत्कारों से मन को मोह लेने वाले तथा उत्तम गुणों से सुशोभित छः प्रकार से रसों का चिरकाल तक आस्वादन किया है। मैंने सब ओर भोग भूमियों में रेशमी मुलायम वस्त्रों, सुन्दर कामिनियों, मनोहर हारों, फूल-बिछी शय्याओं तथा शीतल, मन्द, सुगन्ध हवाओं का बिना किसी विघ्न-बाधा के भली भाँति स्पर्श (आलिंगन) प्राप्त किया है। मुने ! चन्दन, अगुरु आदि औषधियों, भाँति-भाँति-के फूलों तथा ढेर-के-ढेर कपूर एवं कस्तूरी आदि के संचय से प्रकट होने वाली सुगन्धों का, जो मन्द-मन्द वायु से प्रेरित होकर मेरी नासिका तक पहुँचती थीं, मैंने दीर्घकाल तक अनुभव किया है। मैंने शब्द आदि विषयों का बारंबार श्रवण, स्पर्श, दर्शन, रसास्वादन तथा सुगन्ध-सेवन किया है। पर अब तीव्र वैराग्य के कारण ये विषय मेरे लिये रसहीन हो गये हैं। अतः शीघ्र बताइये, अब मैं पुनः किस वस्तु का सेवन करूँ? चिरकाल तक अकण्टक राज्य किया, सुन्दरियों का उपभोग किया और शत्रुओं की बड़ी भारी सेनाओं को मिट्टी में मिला दिया। यह सब करके अब कौन-सी अपूर्व वास्तविक वस्तु शेष है, जिसकी प्राप्ति की जाय ?

विषयों की इन दुरन्त वन श्रेणियों में इन्द्रिय रूपी लुटेरों ने मुझे चिरकाल तक उसी तरह ठगा है, जैसे धूर्त किसी भोले-भाले बच्चे को ठग लेते हैं। मतवाले हाथी ऐरावत के कुम्भ स्थल को विदीर्ण कर देना सरल है; परंतु कुमार्ग में प्रवृत्त हुई अपनी इन इन्द्रियों को रोकना सरल नहीं है। जो लोग जितेन्द्रिय तथा महान् सत्त्व गुण से सम्पन्न हैं, वे ही इस भूतल पर मनुष्य कहे जाने योग्य हैं। इनके अतिरिक्त शेष मानवों को तो मैं मांस की बुनी हुई चलती-फिरती मशीनें समझता हूँ। भोगों की आशा का परित्याग कर देने के सिवा दूसरे कोई ऐसे साधन नहीं हैं, जो इन्द्रिय रूपी महान् रोगों की शान्ति कर सकें। इनकी शान्ति के लिये न तो औषधियाँ, न तीर्थ और न मन्त्र ही लाभकारी सिद्ध होते हैं। जैसे विशाल वन में बहुत-से लुटेरे यात्रा करने वाले अकेले पथिक को महान् कष्ट में डाल देते हैं, उसी प्रकार विषयों की ओर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दौड़ने वाली इन इन्द्रियों ने मुझे अत्यन्त खेदजनक अवस्था में पहुँचा दिया है। गहरे गड्ढे और इन्द्रियाँ एक-सी ही हैं, दोनों ही प्राणियों को नीचे गिराने में अत्यन्त कुशल हैं। उनमें दोषरूपी विषधर सर्प वास करते हैं तथा इनमें विषय रूपी लाखों रूखे काँटे होते हैं। राक्षस और अपनी इन्द्रियाँ दोनों एक-से स्वभाव वाले हैं। दोनों अपने ही पालन-पोषण में तत्पर, अनार्य, दुःसाहसी तथा अन्धकार में विहार करने वाले होते हैं। जीर्ण बाँस आदि की लकड़ियाँ और इन्द्रियाँ भीतर से खोखली, निस्सार, टेढ़ी, गाँठवाली तथा एकमात्र जलाने के ही योग्य होती हैं। दुखियों का उद्धार करने वाले महात्मन् ! इस प्रकार इन इन्द्रियों के कारण मैं विपत्ति के समुद्र में डूबा हुआ हूँ। मेरे पास आत्मरक्षा का कोई साधन नहीं है। आप स्वयं ही कृपा करके मेरा उद्धार कीजिये; क्योंकि संसार में जो कोई भी श्रेष्ठ संत-महात्मा हैं, उनका समागम बड़े-से-बड़े शोक को हर लेने वाला है, ऐसा सभी सत्पुरुष कहते हैं।

चौथा सर्ग समाप्त

पांचवाँ सर्ग

दृश्य-प्रपंच की असत्ता बताते हुए संसार-वृक्ष का निरूपण

भुशुण्डजी कहते हैं-ब्रह्मन् ! विद्याधर के उस पवित्र वचन को सुनकर मैंने उसके प्रश्न के अनुसार सुस्पष्ट पदों से युक्त वाणी द्वारा उसे इस प्रकार उत्तर दिया-'विद्याधर ! यह बड़ी अच्छी बात है कि तुम अपने कल्याण के लिये जाग उठे हो। सौभाग्य का विषय है कि तुम्हें चिरकाल के बाद संसाररूपी अंधकारपूर्ण कूप से ऊपर उठने की इच्छा हुई है। आज विवेक से युक्त हुई तुम्हारी पवित्र बुद्धि अग्नि से व्याप्त सुवर्ण की भाँति अद्भुत शोभा पा रही है। मुझे विश्वास है कि विवेक से निर्मल हुई तुम्हारी बुद्धि मेरी उपदेश वाणी के तात्पर्य को सुन्दर ढंग से अनायास ही ग्रहण कर सकती है; क्योंकि स्वच्छ दर्पण में पदार्थों का प्रतिबिम्ब अनायास ही प्रकट हो जाता है। इस समय मैं जो कुछ कहूँ, वह सब तुम्हें स्वीकार कर लेना चाहिये; क्योंकि मैंने चिरकाल तक अनुसंधान करके इस विचार को निश्चित किया है। अतएव तुम्हें इस विषय में कोई दूसरा विचार नहीं करना चाहिये। जो कुछ अहंकार आदि तुम्हारे अन्तःकरण में प्रतीत हो रहा है, वह सब तुम नहीं हो। इन दृश्यों में ही कोई आत्मा है, जिसे ढूँढकर प्राप्त करना है, ऐसा विचार कर यदि चिरकाल तक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अपने भीतर ढूँढ़ते रहोगे तो भी तुम्हें अपने स्वरूप भूत आत्मा की उपलब्धि नहीं होगी। इसलिये दृश्यमात्र ही जिसका लक्षण है, उस अज्ञान को छोड़कर तुम उसके साक्षी को आत्मा समझो।

जैसे मृगतृष्णा में जल की प्रतीति होने पर भी वास्तव में वहाँ जल नहीं होता है, उसी प्रकार सारा विश्व अवस्तु रूप होने के कारण सद्रूप से प्रतीत होने पर भी असत् ही है। अथवा ऐसा समझो कि यह जो कुछ भासित होता है, वह सब ब्रह्म ही है या यों समझो कि वह कुछ भी नहीं है अथवा कोई अनिर्वचनीय वस्तु ही है। तुम अहंता को ही इस विश्व का बीज–मूल कारण समझो; क्योंकि उसी से पर्वत, समुद्र, पृथ्वी और नदी आदि के सहित यह जगत्–रूपी वृक्ष प्रकट हुआ है और इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति रूपी रस से परिपूर्ण जो ऊपर के भुवन हैं, वे ही इस वृक्ष के मूल भाग हैं। चारों युग इसमें लगे हुए घुन हैं। अज्ञान ही इसकी उत्पत्ति की भूमि है। जीवमात्र इस पर बसेरे लेने वाले करोड़ों पक्षी हैं। भ्रान्ति–ज्ञान इस वृक्ष का विशाल तना है और तत्त्वज्ञान से उपलब्ध होने वाला मोक्ष ही इस वृक्ष को दग्ध करने वाली अग्नि है। इन्द्रियों–द्वारा विषयों की उपलब्धि और मन से होने वाले संकल्प विकल्प आदि इस वृक्ष के विविध भाँति–भाँति के सौरभ (सुगन्ध) हैं। विशाल आकाश महान् वन है। ऋतुएँ इसकी विचित्र शाखाएँ हैं, दसों दिशाएँ उपशाखाएँ हैं। इस तरह संसाररूपी वृक्ष अपने मूल भाग से पाताल को, मध्य भाग से सम्पूर्ण दिशाओं को और शिखा भाग से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करके वास्तव में असद्रूप होता हुआ भी सत् के समान प्रतीत होता है।

पांचवाँ सर्ग समाप्त

छठा सर्ग

संसार–वृक्ष के उच्छेद के उपाय, प्रतीयमान जगत् की असत्ता, ब्रह्म में ही जगत् की प्रतीति तथा सर्वत्र ब्रह्म की सत्ता का प्रतिपादन

भुशुण्ड जी कहते हैं–विद्याधर ! पातालसहित यह पृथ्वी जिसका आधार (मूलभाग) है, लोकालोक पर्यन्त फैले हुए पर्वतों की कन्दराएँ जिसकी वेदी हैं, ऐसा यह संसाररूपी वृक्ष अहंकाररूप बीज से उत्पन्न होता है। ज्ञानरूपी अग्नि से जब इसका बीज दग्ध हो जाता है, तब कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। यहाँ जो कुछ प्रतीत हो रहा है, सब असत्य ही है। माया के हाथी–घोड़ों की तरह कहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

से यों ही पैदा हो गया है। संकल्प-विकल्प को त्याग देने-मात्र से इस संसार-भ्रम का नाश हो जाता है। शुद्धात्मन् ! तुम पहले पतन के हेतु भूत अविवेक-पद में स्थित थे। किंतु अब उससे भिन्न उस पुण्यमयी दूसरी विवेक-पदवी को प्राप्त हो गये हो, जो तीनों लोकों को पवित्र करने वाली है। अतः मेरा अनुमान है कि इस मन के द्वारा अब फिर तुम नीचे नहीं गिरोगे। इसलिये तुम मन और वाणी की चेष्टा से रहित, निर्मल, सच्चिदानन्द परमात्मपद का आश्रय लेकर सम्पूर्ण दृश्य समूह को त्याग दो।

निष्पाप विद्याधर ! दृश्य को याद न रखते हुए सब प्रकार से ताप से शून्य एवं शान्त सच्चिदानन्द घन-स्वरूप से स्थित रहो। अहंकार की सत्ता नहीं है, इस भावना से अहंकाररहित होकर यदि तुम्हारा चेतन-स्वरूप चिन्मय परमात्मा में पूर्णरूप से मिलकर एक हो जाय तो दूसरी कोई प्रकाशित वस्तु है ही नहीं, फिर तुम्हारे स्वरूपभूत ब्रह्म की किससे उपमा दी जाय।

चिन्मय परमात्मा से भिन्न माने गये इस जगत् के स्फुरण को तुम चिन्मय परमात्मा से ही उत्पन्न हुआ जानो; क्योंकि काष्ठ, जल और दीवार सबमें ही परब्रह्म परमात्मा विराजमान है। सभी स्थानों में सृष्टि का समूह परस्पर गुँथा हुआ स्थित है। ब्रह्म और जगत् में जो भेद कहा गया है, वह असत् है। जैसे सुवर्ण और कटक में भेद नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्म और जगत् में भी भेद नहीं है।

छठा सर्ग समाप्त

सातवाँ सर्ग

चिन्मय परब्रह्म के सिवा अन्य वस्तु की सत्ता का निराकरण, जगत् की निःसारता तथा सत्संग, सत्-शास्त्र-विचार और आत्मप्रयत्न के द्वारा अविद्या के नाश का प्रतिपादन

भुशुण्डजी कहते हैं-विद्याधर ! जैसे 'महाकाश में घटाकाश उत्पन्न हुआ है' अपने मन से इस तरह की कल्पना करना भ्रममात्र ही है; उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा में प्रपंचात्मक असद्रूप अहंभाव की भावना केवल भ्रम ही है। सम्पूर्ण कल्पनाओं का अधिष्ठान वह ब्रह्म परमसूक्ष्म है। उसी की कल्पना यह आकाश आदि जगत् है। देश, काल आदि जगत् तथा इसके सहस्त्रों अवान्तर कार्यरूपी विस्तारों में भी एकमात्र घन, सूक्ष्म, चिन्मय ब्रह्म के विस्तार के सिवा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दूसरा कोई वास्तविक रूप हो, यह सम्भव नहीं है। चिन्मय परमात्मा का विस्तार होने से ही काल, आकाश, नौका, जल, स्थल, निद्रा, जाग्रत और स्वप्न में भी जगत् उत्पन्न हुआ-सा प्रतीत होता है। विद्याधर ! यह जगत् किसी पट पर अंकित हुए विशाल राज्य के चित्र के समान सुन्दर जान पड़ता है। इसमें सहस्त्रों खुर (पैर), मस्तक, नेत्र, हाथ और मुख, मुखों की चेष्टाएँ तथा तर्क-वितर्क दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें परिमित जगह में ही नाना प्रकार के पर्वत, शरीर, दिशा, देश और नदी आदि दृश्य वस्तुओं का चित्रण हुआ है। यह भीतर से शून्य और निःसार है। अनेक प्रकार के रंगों से रँगा हुआ है। वैराग्य-भाव के प्रकट होते ही इसका विनाश हो जाता है। इस चित्रमय जगत् में देवता, असुर, गन्धर्व, विद्याधर, बड़े-बड़े नाग और मनुष्य आदि प्राणी अंकित हैं। जैसे नूतन चित्र अंगुलियों द्वारा किया गया मर्दन नहीं सह सकता, उसी तरह यह जगत् विचार को नहीं सहन कर पाता अर्थात् जैसे हाथ से रगड़ने पर चित्र मिट जाता है, उसी तरह विवेकपूर्वक विचार करने पर यह जगत् भी नहीं टिक पाता है। मानसिक संकल्प-विकल्प से ही यह प्रकाश में आता है। हृदय हो क्षुब्ध कर देने वाली काम-वासनारूप जाल के समूहों से निबद्ध, सम्पूर्ण आवर्त-रूपी विकारों से युक्त, स्त्री-पुत्र आदि में फैलते हुए स्नेह से मिश्रित तथा मिथ्या होने के कारण अजात विषयों के बारंबार आस्वादन के द्वारा प्रसार को प्राप्त हुआ जो जीवात्मा का संकल्प है, वह चित्रलिखित विशाल राज्य के रूप में वर्णित यह संसार है। विद्याधर ! मन, अहंकार, बुद्धि आदि जो कुछ विकल्पक ज्ञान है, उस सबको तुम एकमात्र अविद्या ही समझो, जो पुरुष-प्रयत्न से शीघ्र नष्ट हो जाती है।

इतना प्रसंग सुनाने के बाद श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! संसार-सागर को पार करने की इच्छावाले विरक्त श्रेष्ठ पुरुष के साथ तथा परमात्मज्ञानी के साथ भी बैठकर इस संसार के विषय में विवेकी मनुष्य को विचार करना चाहिये(कि यह क्या है? इसका परिणाम, मूल और सार क्या है? तथा इससे मुक्त होने का क्या उपाय है?)। विवेकी पुरुष को उचित है कि वह जहाँ-कहीं से भी विरक्त, ईर्ष्यारहित एवं परमात्मज्ञानी श्रेष्ठ पुरुष को ढूँढ़ निकाले और यत्न पूर्वक उसका संग और सेवा करे। ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान रखने वाले विद्वानों में श्रेष्ठ श्रीराम ! तुम यह अच्छी तरह जान लो कि श्रेष्ठ पुरुष

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

का संग सिद्ध हो जाने पर साधक को महान् श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त होती है, जिससे अविद्या का आधा भाग तत्काल नष्ट हो जाता है। इस प्रकार अविद्या का आधा भाग तो सत्संग से नष्ट होता है और चौथाई भाग शास्त्रों के तात्पर्य की आलोचना से दूर हो जाता है; फिर जो चातुर्य भाग शेष रह जाता है, उसे मनुष्य को अपने प्रयत्न से परमात्म साक्षात्कार के द्वारा नष्ट कर देना चाहिये। यदि संसार बन्धन से मुक्त होने की एकमात्र उत्कट इच्छा उत्पन्न हो जाय तो वह इच्छा वैराग्य द्वारा उस पुरुष को भोगों और उस के साधनों से दूर हटा देती है। भोग-इच्छा का नाश हो जाने पर अविद्या का चतुर्थ अंश अपने यत्न से नष्ट हो जाता है। सत्संग, शास्त्रों के अर्थ का विवेक पूर्वक विचार और अपना प्रयत्न-इन सब साधनों की एक साथ प्राप्ति होने पर एक ही समय में अथवा एक-एक साधन-के प्राप्त होने पर क्रमशः अविद्यारूपी मल का नाश होता है। अविद्या का नाश हो जाना ही जिसका एकमात्र स्वरूप है, ऐसा जो अविद्या की निवृत्ति के पश्चात् तत्त्व शेष रहता है, उस नाम और अर्थ से रहित परम वस्तु को वास्तव में नित्य सत्य होने के कारण सत् और प्रतीत न होने के कारण असत् भी कहा गया है। यह परमार्थ वस्तु, आनन्दघन, जरा आदि विकारों से रहित, अनन्त और एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही है। संकल्पमात्र से स्फुरित होने वाला नाम-रूपात्मक जगत् तो वास्तव में है ही नहीं। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय की जो त्रिपुटी है, उसके मोह से तुम सर्वथा रहित हो। अतः निर्वाण ब्रह्मरूप से सर्वत्र व्याप्त हुए सदा शोकशून्य अवस्था में स्थित हो।

सातवाँ सर्ग समाप्त

आठवाँ सर्ग

त्रसरेणु के उदर में इन्द्र का निवास

भुशुण्डजी कहते हैं-विद्याधर ! किसी समय की बात है, कहीं किसी कल्पवृक्ष में उसकी युगल शाखा में ब्रह्माण्डरूपी गूलर का फल प्रकट हुआ। उस के भीतर तीनों लोकों के स्वामी देवताओं के राजा इन्द्र उसी तरह निवास करते थे, जैसे शहद के छत्ते में मधु-मक्खियों का स्वामी। वे गुरु के उपदेश और अपने अभ्यास से अविद्या के आवरण का नाश करके महात्मा हो गये थे। अपने अन्तःकरण में सदा परमात्मा के स्वरूप का चिन्तन करते रहते थे। पूर्वापर का ज्ञान रखने वाले विद्वानों में उनका सबसे ऊँचा स्थान था। तदनन्तर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

एक समय प्रभावशाली भगवान् नारायण और शिव आदि, जब कहीं अपने लोकातीत परमधाम में विराजमान थे, उस समय उन देवराज इन्द्र ने अकेले की अस्त्र-शस्त्ररूपी अग्नि ज्वाला को धारण करने वाले महापराक्रमी असुरों के साथ युद्ध किया, उसमें उनकी पराजय हुई और उन्हें तुरंत ही युद्ध भूमि से भागना पड़ा। शत्रु उनके पीछे पड़ गये थे; अतः वे बड़े वेग से दसों दिशाओं में भागते फिरे। उन्हें कहीं भी ऐसा आश्रय नहीं मिला, जहाँ वे विश्राम ले सकें। इतने में ही उनके शत्रुओं की दृष्टि कहीं इधर-उधर चली गयी। उस समय इन्द्र को छिपने के लिये थोड़ा-सा अवसर मिल गया। उन्होंने अपने संकल्पजनित स्थूल साकाररूप को शान्त करके अपने अन्तःकरण के भीतर ही सूक्ष्म भूत में विलीन कर दिया और अत्यन्त अणुरूप होकर बाहर सूर्य की किरणों में स्थित किसी त्रसरेणु के भीतर संकल्पमात्र से प्रवेश किया, वहाँ उन्हें शीघ्र ही विश्राम प्राप्त हुआ। फिर तो उन्हें युद्ध की बात भूल गयी और इसीलिये वहाँ से बाहर निकलने का संकल्प भी निवृत्त हो गया। वहाँ उन्होंने अपने रहने के लिये एक घर की कल्पना की और क्षण भर में उन्हें अनुभव हुआ कि घर का निर्माण हो गया और मैं उसमें रह रहा हूँ। उस संकल्प कल्पित भवन के भीतर एक कमल के आसन पर बैठकर वे उसी तरह आनन्द का अनुभव करने लगे, जैसे अपने स्वर्गीय सदन में सिंहासन पर बैठकर किया करते थे।

उस घर में रहते हुए इन्द्र ने ऐसा कल्पित नगर देखा, जिसके परकोटे और महल मणि, मोती तथा मूँगे आदि से बने हुए थे। उस नगर के भीतर जाकर देवराज ने जब इधर-उधर दृष्टिपात किया, तब उन्हें एक देश दिखायी दिया, जब अनेकानेक, पर्वत, ग्राम, गोशाला, नगर और काननों से सुशोभित था। तत्पश्चात् वैसे की संकल्प से युक्त हुए इन्द्र ने एक विशाल लोक का अनुभव किया, जिसमें बहुत-से पर्वत, समुद्र, पृथ्वी, नदियाँ, नरेश और उनके राज्य की सीमाएँ दृष्टिगोचर होती थीं। वह लोक क्रिया तथा काल आदि की कल्पनाओं से युक्त था। इसके बाद उसी तरह के संकल्प का आनन्द लेने वाले देवेन्द्र ने वहाँ तीनों लोकों को देखा, जो पाताल, आकाश, स्वर्ग, सूर्य और पर्वत आदि अनेक पदार्थों से भरे-पूरे थे। फिर उसी त्रिलोकी में भोगराशि से विभूषित हुए इन्द्र देवराज के पद पर प्रतिष्ठित हुए। कुछ काल के बाद उन्हें

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

एक पराक्रमी पुत्र प्राप्त हुआ, जिसका नाम था कुन्द। तत्पश्चात् वे प्रशंसा के योग्य देवराज इन्द्र जीवन के अन्त में शरीर का परित्याग करके मोक्ष को प्राप्त हो गये। इसके बाद उनके पुत्र कुन्द त्रिलोकी के राजा हुए। फिर वे भी अपने एक पुत्र को जन्म देकर जीवन के अन्त में काल के अधीन हो परमपद को प्राप्त हुए। तदनन्तर कुन्द का पुत्र भी पिता की ही भाँति दीर्घकाल तक राज्य करने के पश्चात् अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाकर जीवन के अन्त में परमपद को प्राप्त हो गया। सुन्दर! इस प्रकार उस देवराज इन्द्र के सहस्त्रों पौत्र राज्य पर प्रतिष्ठित हुए और काल के गाल में चले गये। आज भी वहाँ उन्हीं के पौत्रों को राज्य है, जिनमें अंशक इस समय राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित है।

आठवाँ सर्ग समाप्त

नवाँ सर्ग

संसार-भ्रम के मूलोच्छेद का कथन

भुशुण्डजी कहते हैं-विद्याधर ! पहले जिनकी चर्चा की गयी है, उन्हीं इन्द्र के कुल में कोई उत्तम गुणों से सम्पन्न कान्तिमान् बालक उत्पन्न हुआ, जो देवराज के पद पर प्रतिष्ठित हुआ। कुछ काल के पश्चात् बृहस्पति के उपदेश से उन इन्द्र के उस वंशज को आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कराने वाला ज्ञान प्राप्त हुआ। फिर तो उसे जानने योग्य आत्मतत्त्व का ज्ञान हो गया। वह प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ प्राप्त होता, उसी में संतोष करता था। इस प्रकार रहते हुए उस इन्द्र वंशी देवराज ने तीनों लोकों का राज्य किया।

ज्ञान-बल से सुशोभित होने वाले उन देवेन्द्र के मन में किसी समय ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई कि 'मैं भली भाँति ध्यान लगाकर ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करूँ।' ऐसा विचार कर वे एकान्त में बैठ गये और बाहर-भीतर के सम्पूर्ण विक्षेपों से रहित शान्त-चित्त हो ध्यान-समाधि लगाकर परब्रह्म के स्वरूप को विचार-दृष्टि से देखने लगे। उन्होंने अनुभव किया कि परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण शक्तियों से सम्पन्न है। सर्व-वस्तु-स्वरूप, सर्वत्र व्यापक, सब प्रकार से सर्वदा सर्वमय है। सबके साथ सर्वत्र विद्यमान है और सब में व्यापक है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, मस्तक और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं, क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है। वह सम्पूर्ण इन्द्रियों के गुणों से रहित होता हुआ भी सम्पूर्ण इन्द्रियों के गुणों से युक्त है। आसक्तिरहित होने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पर सबका धारण-पोषण करने वाला है तथा निर्गुण होकर भी गुणों को भोगने वाला है। वह चराचर सभी प्राणियों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है। अचर और चर रूप भी वही है। सूक्ष्म होने के कारण वह जानने में नहीं आता है। वह अति समीप में है और दूर में भी है। चन्द्रमा और सूर्य के रूप में वही है। उसी ने पृथ्वी का रूप धारण कर रखा है और वही पर्वत तथा समुद्र के रूप में है, वह सर्वत्र सारभूत है एवं गुरु है। वही आकाश रूप से विद्यमान है। सर्वत्र संसृति और जगत् के रूप में भी वही है। वह सभी स्थानों में मोक्षरूप से विद्यमान है। सभी जगह वह चिन्मय तत्त्वरूप से स्थित है। वह सर्वत्र सभी पदार्थों के रूप में है और वास्तव में सब ओर से सब से रहित है। इस प्रकार परम बुद्धिमान् और उदार चित्त उस इन्द्र ने देर तक ध्यान लगाकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एकमात्र परमात्मा में स्थित देखते हुए हम लोगों के द्वारा अनुभव में लाये जाने वाले इस जगत् का भी अवलोकन किया। तदनन्तर इस सृष्टि के ब्रह्माण्ड में विचरता हुआ वह इन्द्र वहाँ के इन्द्रलोक में पहुँचकर जब इन्द्र के समीप गया, तब उसका 'मैं इन्द्र हूँ' यह संस्कार जाग उठा और वह प्रारब्धवश वहाँ का इन्द्र हो गया। तत्पश्चात् वह सैकड़ों वृत्तान्तों से सुशोभित इस त्रिभुवन के राज्य का शासन करने लगा। त्रसरेणु के उदर में निवास करने वाला जैसे यह परम कान्तिमान् तथा इन्द्र कुल में उत्पन्न इन्द्र बताया गया है, वैसे ही इधर-उधर ऐसे व्यवहारवाले लाखों इन्द्र इस चेतन आकाश में हो चुके हैं और मौजूद हैं।

विद्याधर ! तुम यह अच्छी तरह समझ लो कि जगत् अहंकार का कार्य है। अहंकार के भीतर जगत् कल्पित है और जगत् के अंदर अहंकार व्यापक है। जो पुरुष संकल्प-शून्यतारूप ज्ञान से जगत् के बीज भूत अहंभाव का मार्जन कर देता है, उसने मानो जगत्रूपी मल को जल के द्वारा ही पूर्णरूप से धो डाला है। अतः विद्याधर ! अहंता नाम की भी कोई वस्तु कहीं नहीं है। वह अवास्तविक होने के कारण खरगोश के सींग की भाँति असत् एवं बिना कारण के ही प्रकट हुई है।

नवाँ सर्ग समाप्त

दसवाँ सर्ग

शुद्ध चित्त में थोड़े से ही उपदेश से महान् प्रभाव

भुशुण्डजी कहते हैं-मुने ! मैं इस प्रकार उपदेश दे ही रहा था कि उस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

विद्याधर-राजा का सारा दृश्य विषयक संकल्प शान्त हो गया। उसकी समाधि

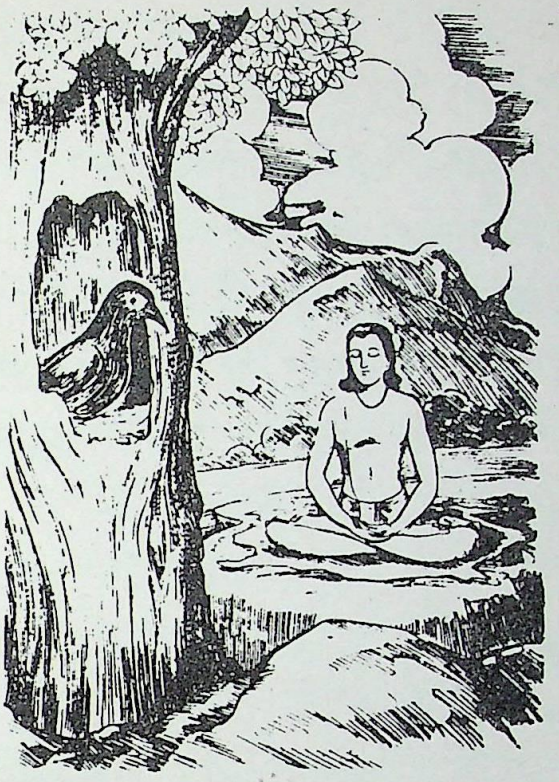

लग गयी। मैंने बारंबार उसे इधर-उधर से हिला-डुलाकर जगाया; परंतु परम निर्वाण पद को प्राप्त वह विद्याधर फिर सामने के दृश्य विषयों की ओर उन्मुख नहीं हुआ।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! भुशुण्डजी का बताया हुआ विद्याधर का इतिहास मुझे स्मरण हो आया; इसीलिये मैंने तुमसे कहा था कि शुद्ध चित्त में उपदेश उसी तरह प्रभाव डालता है, जैसे पानी में तेल की बूँद। अहंभावना ही दुःख नामक सेमर के वृक्ष का मुख्य बीज है। उस अहंभावना के समान ही 'यह मेरा है' ऐसी बुद्धि भी उक्त वृक्ष का आदिकारण है; क्योंकि वही रागादिरूपिणी शाखाओं के विस्तार का कारण है। पहले बीजरूपिणी अहंभावना होती है। फिर वृक्षरूपिणी ममभावना होती है। तत्पश्चात् शाखारूपिणी इच्छा (राग) की प्रवृत्ति होती है। यह इच्छा ही इदंपदार्थ के रूप में सैकड़ों अनर्थों को उत्पन्न करने वाली तथा संसार-भ्रम का धारण-पोषण करने वाली है।

रघुनन्दन ! मेरु पर्वत के शिखर पर पक्षिराज मुक्तात्मा मुनि काकभुशुण्डजी मुझसे पूर्वोक्त विद्याधर की कथा सुनाकर चुप हो गये। श्रीराम ! तत्पश्चात् मैं उन मुनि से और उस सिद्ध विद्याधर से भी बिदा लेकर मुनिमण्डली से मण्डित अपने आश्रम पर आ गया। इस प्रकार आज मैंने तुमसे काकभुशुण्डजी द्वारा कही गयी कथा से प्रतिपादित विषय का वर्णन किया है, जिसके अनुसार यह ज्ञात हुआ कि भुशुण्डजी के थोड़े-से उपदेश से ही विद्याधर को तत्त्वज्ञान प्राप्त होकर परम शान्ति मिल गयी। रघुनन्दन ! पक्षिराज भुशुण्ड के साथ जब मेरा समागम हुआ था, तब से आज तक ग्यारह महायुग व्यतीत हो चुके हैं।

श्रीराम ! यह सबको ज्ञात है कि बीज के भीतर सैकड़ों शाखाओं से युक्त तथा पत्र, पुष्प और फल से सम्पन्न वृक्ष विद्यमान है; क्योंकि बीजारोपण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के पश्चात् प्रकट हुए उस वृक्ष को सब लोग अपनी आँखों से देखते हैं, इसी तरह अहंकाररूपी सूक्ष्म बीज के भीतर समस्त दृश्य ज्ञान से युक्त यह शरीर वर्तमान है, यह विवेकी पुरुषों ने विचार दृष्टि से देखा है। परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होने पर सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप हुए जीवन्मुक्त पुरुष का शरीर लोकदृष्टि से विद्यमान होने पर भी वह अहंतामूलक अभिमान को नहीं प्राप्त होता। अतएव उससे संसाररूपी वृक्ष का प्राकट्य नहीं होता अथवा जो विदेह मुक्त होकर निरतिशय आनन्द स्वरूप परमात्मा में प्रतिष्ठित हो चुका है, उस पुरुष के बोधरूपी महाग्नि से दग्ध हुए असत् स्वरूप अहंतारूपी बीज के भीतर से फिर इस संसाररूपी वृक्ष का प्रादुर्भाव नहीं होता।

दसवाँ सर्ग समाप्त

ग्यारहवाँ सर्ग

परब्रह्म में जगत् की असत्ता

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! सम्पूर्णतः नाशरूप मृत्यु कभी नहीं होती है। अपने दूसरे संकल्पों का कुछ काल तक स्थिर रहना ही मरण कहलाता है। प्राण के भीतर चित्त है और चित्त के भीतर विविध आकार–प्रकार से युक्त जगत् वैसे ही विद्यमान है, जैसे बीज के भीतर वृक्ष। पुरुष की मृत्यु हो जाने पर उसके शरीर से निकले हुए प्राण बाह्याकाश में भरे हुए वायु समूह के साथ ऐसे मिल जाते हैं, जैसे समुद्र के जल नदियों के जल के साथ मिलकर एक हो जाते हैं। आकाश में विद्यमान वायु के भीतर मृत प्राणियों के प्राण हैं। उन प्राणों के भीतर उनका मन है और उस मन के भीतर जगत् को उसी प्रकार स्थित समझो, जैसे तिल में तेल रहता है। रघुनन्दन ! जैसे वायु में स्थित सुगन्ध इधर–उधर ले जायी जाती है, उसी तरह प्राण–वायु में स्थित आकाशात्मक जगत् इधर–उधर यत्र–तत्र ले जाये जाते हैं। जैसे घड़े को एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचा देने पर उसके भीतर के आकाश में कोई भेद नहीं होता, उसी प्रकार स्पन्दन आदि से युक्त चित्त में तीनों जगत् का भ्रम रहने पर भी चेतन आत्मा में वस्तुतः वह स्पन्दन और भ्रम नहीं होता है। जगत् और इसका भ्रम दोनों उदित नहीं है। यदि उदित हों तो भी वायु द्वारा किये गये इस पृथ्वी के परिभ्रमण आदि को इसके ऊपर स्थित हुए प्राणी उसी तरह नहीं देख पाते हैं, जैसे नौका के भीतर बैठे हुए मनुष्य उसकी गति

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

को नहीं देखते हैं। वे तीनों लोक देश, काल, क्रिया तथा द्रव्यरूप ही हैं और अहंकार भी इन देश, काल आदि के सम्बन्ध रखने के कारण देश-कालादि रूप ही है। अतः देश-कालादिरूप जगत् और अहंकार में भेद नहीं है। अज्ञानी में जिस प्रकार विकल्प-सम्पत्ति का उदय होता है, उस प्रकार ज्ञानी में निश्चय ही उसका उदय नहीं होता है। चेतन आकाशरूप परमात्मा सर्वव्यापी और अनन्त हैं। इसलिये वह विकल्प-सम्पत्ति उसका स्वरूप न होने के कारण सत्स्वरूपा नहीं है।

परम चेतन-परब्रह्म परमात्मा सर्वस्वरूप सर्वशक्तिमान् है। इसलिये उसमें गुण, वस्तु, क्रिया और जाति आदि से अनन्तरूपता को प्राप्त तथा नाना प्रकार के कार्यों का आरम्भ करने वाले दिगन्तवर्ती जनसमुदाय से परिपूर्ण ये सब संसार चंचल जलाशय के भीतर प्रतिबिम्बित क्षणभंगुर नगरों एवं अपने अन्तःकरण में स्थित समस्त उपकरणों से भरे महानगरों के समान असद्रूप से ही स्थित हैं।

ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त

बारहवाँ सर्ग

जीव के स्वरूप, स्वभाव तथा विराट् पुरुष का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जो वास्तव में न परम अणुरूप कहा जा सकता है और न स्थूल, शून्य या अन्य कुछ ही, वरं जो चिन्मय, स्वानुभव रूप और सर्वव्यापक है, वही जीव कहा जाता है। जिस-जिस पदार्थ का जो भाव-असाधारण स्वरूप है, उसके रूप में उस-उस पदार्थ में स्थित होकर जो तदाकार भासित होता है, उसे तुम जीव ही समझो; क्योंकि बारंबार देखने पर उन-उन पदार्थों के आकार में उसी का अनुभव होता है। श्रीराम ! जीव जहाँ जिस प्रकार जो-जो संकल्प करता है, वहाँ वह तत्काल वैसा ही आकार धरण कर लेता है। जैसे चलना या हिलना-डुलना आदि चेष्टा वायु का स्वभाव है, उसी प्रकार विचित्र वस्तुओं का अनुभवरूप संसार जीव का स्वभाव ही है। इस बात का अपने अनुभव से ही निर्णय कर लेना चाहिये। बालक को होने वाले यक्ष भ्रम के समान इसका हम उपदेश के द्वारा साधन नहीं करना चाहते। जीव चैतन्यघन स्वरूप होने के कारण ही अहंभावना से ही देश, काल, क्रिया और द्रव्य की शक्तियों का निर्माण करके स्थित होता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection -

सर्वप्रथम परब्रह्म परमात्मा से मनोमयरूप से उदित विराट् पुरुष (हिरण्यगर्भ) प्रकट हुआ। अतः वह आकाश के समान विशद, शान्त, नित्य, अनन्तस्वरूप और प्रकाशमय है। यह अद्वितीय विराट् पुरुष सबसे उत्कृष्ट परमेश्वररूप है। वह पंचभूतात्मक न होने पर भी पंचभूतात्मक सा भासित होता है। वह अपने ही संकल्प से कल्पित अनेक कल्पों में तथा क्षण भर में स्वेच्छानुसार स्वयं प्रकट होता है और बारंबार प्रकट होकर फिर स्वयं ही अदृश्य हो जाता है। वह आकाशस्वरूप, सर्वव्यापी, अनन्त परमेश्वर स्थूल, सूक्ष्म। व्यक्त एवं अव्यक्तरूप हो सबके बाहर-भीतर स्थित है। वह वास्तव में किंचिद्रूप न होने पर भी व्यवहारकाल में किंचिद्रूप अवश्य है

श्रीराम ! उस विराट् पुरुष के मूर्तामूर्त-स्वरूप आठ अंग हैं-पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रिय सहित प्राण, छठीं इन्द्रिय मन और अहंकार। उसी पुरुष ने चार मुखों से युक्त होकर शब्द और अर्थ की कल्पना से युक्त इन ऋक् आदि चारों वेदों का गान किया है। उसी ने शास्त्रीय सदाचार की मर्यादा स्थापित की है, जो आज भी यथावत् रूप से चली आ रही है। ऊपर अनन्त आकाश उस पुरुष का मस्तक है। नीचे का भूतल आदि उसके पैरों का तलवा है। मध्यवर्ती आकाश उसका उदर है तथा यह ब्रह्माण्ड मण्डप उसका शरीर है। अनन्त लोक-लोकान्तर उस पुरुष के पार्श्वभाग हैं। जल रक्त है। पर्वत मांसपेशियाँ हैं और सदा अविच्छिन्न भाव से बहने वाली नदियाँ उसकी नाड़ियाँ हैं। समुद्र रक्त के आधार (रक्त संचय की पेशियाँ) हैं। द्वीप ही कोशों को आवेष्टित करने वाली आँतें हैं। दिशाएँ फैली हुई भुजाएँ हैं। तारिकाएँ रोमावली हैं। उनचास वातस्कन्ध प्राण वायु हैं। सूर्य मण्डल प्रचण्ड नेत्र है और बड़वानल उसका पित्त है। चन्द्रमण्डल संकल्पात्मक मन है तथा परब्रह्म ही सारभूत आत्मा है। चन्द्रमा रूपी मन ही शरीररूपी वृक्ष का मूल, कर्मरूपी विटप का बीज तथा सम्पूर्ण भाव पदार्थों का उत्पादन एवं संवर्धन करने से आनन्द का कारण है। इस प्रकार भाँति-भाँति के आचारों से युक्त विराट् पुरुष सहस्त्रों बार प्रकट हो चुके हैं तथा सैकड़ों महाकल्प बीत चुके हैं, भविष्य में होने वाले हैं और इस समय भी विद्यमान हैं। रघुनन्दन ! जो ब्रह्म से अभिन्न है; उस अनुभवरूप अधिष्ठान-सत्ता के द्वारा परम विराट् पुरुष सब देश-काल में स्थित रहता है।

बारहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तेरहवाँ सर्ग

अहंभावनारूप भेदन से ही मोक्ष की प्राप्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! यह पंचभूतात्मा संकल्प पुरुष (विराट्) स्वयं जैसा-जैसा संकल्प करता है, वह ब्रह्मरूप आकाश भी वैसा ही प्रतीत होने लगता है। अतः विद्वान् पुरुष समस्त जगत् को विराट् पुरुष का एक संकल्प ही मानते हैं। वास्तव में कहीं कोई वस्तु न तो स्थूल है और न सूक्ष्म ही है। भ्रम से जहाँ जिस प्रकार की कल्पना का विस्तार होता है, वहाँ तत्काल वैसा ही अनुभव होने लगता है। मन चन्द्रमा से उत्पन्न हुआ है और चन्द्रमा मनसे। जैसे कुहरे से आच्छादित हुई वस्तु का यथार्थ ज्ञान न होकर विपरीत ज्ञान होता है, उसी तरह अज्ञान से आवृत आत्मा का भी यथार्थ ज्ञान न होकर, जो अन्य प्रकार से देखना या समझना है, वही जीव का स्वरूप है। इसीलिये विषयात्मक वस्तुओं में उसकी प्रवृत्ति होती है। वह प्राण और इन्द्रिय आदि जड़ वस्तुओं से तादात्म्यभाव को प्राप्त होकर अपने यथार्थस्वरूप को उसी प्रकार नहीं देख पाता, जैसे जन्मान्ध मनुष्य मार्ग नहीं देख सकता। जगत् के रूप में बढ़ी हुई अविद्या-शक्ति से आवृत होकर जीव अपने अद्वैत स्वरूप में ही द्रष्टा-दृश्य आदि द्वैत की कल्पना करके उसमें अभिनिवेश (सुदृढ़ आग्रह) कर बैठता है। जैसे वायु स्पन्द-शक्ति से आवृत होती है, उसी तरह अविद्या शक्ति से आच्छादित हुआ जीव अपने यथार्थ स्वरूप को नहीं देख पाता। अज्ञान की सबसे बड़ी गाँठ है अहंभावना। वह मिथ्या विषयभूत और असत् है। उसका जो भेदन है, उसी को तत्त्वज्ञ पुरुषों ने मोक्ष कहा है।

श्रीराम ! मनुष्य को सदा ज्ञानी ही होना चाहिये, ज्ञानबन्धु नहीं। मैं अज्ञानी को अच्छा समझता हूँ, परंतु ज्ञानबन्धु को नहीं।

श्रीरामजी ने पूछा-मुने ! ज्ञानबन्धु किसे कहते हैं और ज्ञानी कौन बताया जाता है ? ज्ञानबन्धु होने का क्या फल है और ज्ञानी होने पर कौन-सा फल प्राप्त होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! जैसे शिल्पी जीविका के लिये ही शिल्प कला को सीखता है, उसी प्रकार जो मनुष्य केवल भोगोपार्जन के लिये शास्त्र को पढ़ता और उसकी व्याख्या करता है किंतु स्वयं शास्त्र के कथनानुसार अनुष्ठान में लगने का प्रयत्न नहीं करता, वह ज्ञानबन्धु कहलाता है। शास्त्रों के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshji Jnanganga Trust Collection

अभ्यास से जिसे शाब्दिक बोध तो प्राप्त हो गया है, परंतु विनाशशील भोग-व्यवहारों में उनसे वैराग्य आदि के रूप में उस बोध का कोई फल नहीं दिखायी देता, उसका वह बोध केवल शिल्प है-तत्त्वज्ञान की कथा कहकर दूसरों को ठगने के लिये चातुर्यपूर्ण कलामात्र है। उस कला से केवल जीवन निर्वाह मात्र करने वाला होने के कारण वह पुरुष ज्ञानबन्धु कहलाता है। जो केवल भोजन और वस्त्रमात्र से संतुष्ट हो भोजन आदि की प्राप्ति को ही शास्त्रध्ययन का फल समझते हैं, वे शास्त्रों के अर्थ को शिल्पकला के रूप में धारण करने वाले हैं। ऐसे पुरुषों को ज्ञानबन्धु जानना चाहिये। तत्त्वज्ञ पुरुष परमात्म-ज्ञान को ही ज्ञान मानते हैं। उससे भिन्न जो दूसरे-दूसरे ज्ञान हैं, वे ज्ञानाभास मात्र हैं; क्योंकि उनके द्वारा सार तत्त्व परब्रह्म परमात्मा का बोध नहीं होता। जो परमात्म-ज्ञान को न पाकर अन्य प्रकार के ज्ञानलेश की प्राप्ति से ही संतुष्ट हो लौकिक सुख के लिये कष्ट-साध्य चेष्टाएँ किया करते हैं, वे ज्ञानबन्धु माने गये हैं। मनुष्य को चाहिये कि इस संसार में आहार की प्राप्ति के लिये शास्त्रानुकूल अनिन्द्य कर्म करे। आहार भी उतना ही करे, जितने से प्राणों की रक्षा हो सके। प्राण रक्षा भी तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के लिये ही करे। तत्त्व ज्ञान की इच्छा सबके लिये अत्यन्त आवश्यक है, जिससे फिर कभी जन्म-मरण आदि दुःखों की प्राप्ति न हो।

तेरहवाँ सर्ग समाप्त

चौदहवाँ सर्ग

ज्ञानी के लक्षण, जीव के बन्धन और मोक्ष का स्वरूप

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जो तत्त्वज्ञान के द्वारा ज्ञातव्य परब्रह्म परमात्मा में दृढ़ निष्ठा हो जाने के कारण पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःखादि प्रारब्ध का, शब्द आदि जड़ विषयों का तथा चित्त का भी सद्रूप से अनुभव नहीं करता है, वह ज्ञानी कहलाता है। परमात्मा के स्वरूप को यथार्थ रूप से जान लेने पर जिस तत्त्वज्ञ के समस्त व्यवहार उस तत्त्वज्ञान के अनुरूप ही होते हैं एवं जिसके चित्त की सम्पूर्ण वासनाओं का अभाव हो चुका है, वह ज्ञानी कहलाता है। जो परमात्म-लाभ से संतुष्ट हो स्वाभाविक रूप से परम शान्त है तथा जिसकी सभी चेष्टाओं में बुद्धिमान् पुरुषों को आन्तरिक शान्ति का अनुभव होता है, वह ज्ञानी कहलाता है। जो बोध मोक्ष का कारण है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पुनर्जन्म का कभी नहीं, उसी का नाम ज्ञान है। उसके सिवा दूसरा जो शब्द ज्ञान का चातुर्य है, वह शिल्प-जीविका-जीवन निर्वाह की कलामात्र है। उसे भोजन, वस्त्र को जुटाने वाली व्यवस्था समझना चाहिये। प्रारब्ध के अनुसार जो भी कार्य प्राप्त हो जाय, उसमें जो पुरुष कामना और संकल्प से रहित होकर प्रवृत्त होता है तथा जिसका हृदय शरत्काल के आकाश की भाँति आवरण-शून्य ज्ञान के आलोक से प्रकाशित है, वह पण्डित (ज्ञानी) कहलाता है।

ये जो जगत् के विविध पदार्थ हैं, वे किसी कारण के बिना ही उत्पन्न-से होते हैं। इसलिये ये वास्तव में हैं ही नहीं, तो भी विद्यमान की भाँति प्रतीत होते हैं। जो असत्य होते हुए भी भासित हो रहे हैं, उन पदार्थों की प्रतीति में एकमात्र यह अज्ञान ही कारण है। इस अज्ञान का ज्ञान काल में तत्काल नाश हो जाता है। यह जीव अपने से भिन्न जड़ अहंकार और शरीर आदि का जब अनुभव करता है, तब तत्काल ही उनके साथ अपना तादात्म्य मानकर उनको अपना स्वरूप समझ बैठता है। यही इसका संसार-बन्धन है और जब यह अपने को चिन्मय समझता है, तब सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप ही हो जाता है। यही इसका मोक्ष है। यह जीव जो अज्ञान-निद्रा में पड़कर अचेत हो रहा है, जब जाग उठता है, तब परमात्मरस के आवेश से परमात्म रूपता को ही प्राप्त हो जाता है-ठीक उसी प्रकार जैसे हेमन्त ऋतु में सोया हुआ-सा आम का वृक्ष वसन्तु ऋतु में रसावेश के कारण प्रबुद्ध-सा होकर जब पल्लवित एवं पुष्पित हो जाता है, तब 'सहकार' नाम धारण करता है। जो दृश्य शोभा के पारदर्शी ज्ञानी पुरुष परादृष्टि (तत्त्वज्ञान) को प्राप्त कर चुके हैं, उन्हें इस विस्तृत दृश्य प्रपंच के विद्यमान होने पर भी इसका भान नहीं होता (वे सबको परब्रह्म ही समझते हैं)। जो परादृष्टि को प्राप्त हो चुके हैं, उन्हें दृश्य-प्रपंच का भान न होने के कारण उनकी चेष्टा भी वास्तव में चेष्टा नहीं होती। ज्ञानी पुरुष दृश्य-दर्शन के अभिमान से बँधते नहीं, इसलिये बन्धनमुक्त साँड़ की भाँति सांसारिक कर्मबन्धन के सम्बन्ध से रहित रहते हैं। वे प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए कर्मों के लिये उसी तरह काम और संकल्प से रहित होकर चेष्टाएँ करते हैं, जैसे वृक्ष के पत्ते को कम्पित करने में वायु। जो संसार के पारदर्शी पुरुष सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मदृष्टि को प्राप्त कर चुके हैं, वे कर्म की प्रशंसा नहीं करते हैं-ठीक उसी तरह, जैसे नदी के तट पर निवास करने वाले पुरुष कूप की प्रशंसा नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करते। किंतु अज्ञानी पुरुषों की इन्द्रियाँ अधःपतन के हेतु भूत विषयों पर इस प्रकार गिरती हैं, जैसे गीध मांस के ऊपर टूट पड़ता है। इसलिये विद्वान पुरुष को चाहिये कि वह इन सम्पूर्ण इन्द्रियों को मन के द्वारा वश में करके समाहित चित्त हो उस परब्रह्म परमात्मा के चिन्तन में लग जाय।

जैसे सुवर्ण कटक, कुण्डल आदि अभूषणों से भिन्न नहीं है, उसी तरह ब्रह्म भी सृष्टि से भिन्न नहीं है; इसी से 'सृष्टि' आदि शब्दों का अर्थ तत्त्वज्ञानी की दृष्टि में कल्याणमय ब्रह्म ही कहा गया है। जैसे कल्प के अन्त में जब एकमात्र अन्धकार ही छा जाता है, तब यह सारा व्यवहार निर्विभाग और निराभास ही रहता है, वैसे ही सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में यह जगत् विभाग और आभास से रहित ही रहता है। जैसे अवयवरहित आकाश में दिशाओं के विभागरूप आकाश के अवयवों की अभिन्न सृष्टि भासित होती है, उसी प्रकार अवयवरहित शिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा में यह द्वैताद्वैत सृष्टि भी अभिन्नरूप से विद्यमान है। इस प्रकार जगत् के भीतर अहंकार और अहंकार के भीतर जगत् है। ये दोनों एक दूसरे में उसी प्रकार स्थित हैं, जैसे केले के तने की छाल में तना और तने में उसकी छाल होती है।

जिस ग्वाले का मन गोशाला के बर्तनों (दूध दुहने के पात्रों) में लगा हुआ है, वह घर में रहकर घर के काम करता हुआ भी उन्हें नहीं देख पाता, उसी प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुष जीवन-निर्वाह के लिये सब कार्य करता हुआ भी ब्रह्म चिन्तन में रत होने के कारण उन्हें नहीं देखता है। जिसके भीतर तुच्छ दृश्य-प्रपंच की भावना नहीं है, वह जीते-जी आकाश के समान निर्मल और बन्धन से छूटे हुए की भाँति मुक्त है। जो पुरुष सांसारिक पदार्थों में अभावरूपता की भावना नहीं करता, मोक्ष के लिये यत्न न करने वाले उस पुरुष का जन्म मरण रूपी अनन्त दुःख कभी शान्त नहीं होता। तत्त्वज्ञानी पुरुष यहाँ सम्राट् के समान शोभा पाता है। उसे प्रारब्धवश जो कोई भी वस्त्र देकर उसके शरीर को ढक देता है, जो कोई भी भोजन करा देता है तथा वह जहाँ-कहीं भी सो जाता है। वह समग्र विशुद्ध वासनाओं से युक्त होकर भी वासना रहित ही रहता है। भीतर से शून्य होता हुआ भी परिपूर्णात्मा होता है अर्थात् उसका अन्तःकरण पूर्ण परब्रह्म की भावना से भरा होता है और जैसे आकाश में वायु चलती है, उसी तरह उसकी भी साँस चलती रहती है (परंतु वह देह और उसकी वासनाओं से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रहित हुआ परब्रह्मरूप से ही स्थित रहता है)। तत्त्वज्ञानी पुरुष निर्वाण-दशा को प्राप्त हो मन के द्वारा ब्रह्म भाव का मनन करने से जब परमानन्द में निमग्न हो जाता है, तब नींद में पड़े हुए मनुष्य की भाँति आसन, शय्या अथवा सवारी में स्थित वह यत्नपूर्वक जगाने से भी नहीं जागता। रघुनन्दन ! तत्त्वज्ञानी और अज्ञानी-दोनों के सम्पूर्ण उत्पत्ति-विनाशशील कर्मों में वासना-शून्यता के सिवा दूसरा कोई अन्तर नहीं होता (अर्थात् ज्ञानी वासना रहित होकर कर्म करता है और अज्ञानी वासनायुक्त होकर)।

यह सारा दृश्य-प्रपंच नष्ट होता है और नष्ट होकर फिर उत्पन्न होता है, इसलिये असत् है। परंतु जो न तो कभी नष्ट हुआ और न उत्पन्न ही हुआ, वही सत्स्वरूप परमात्मा है और वह परमात्मा ही तुम हो। ज्ञान से जगत्‌रूपी भ्रम का मूल (अज्ञान) नष्ट हो जाता है। फिर तो ढूँढ़ने पर भी इस भ्रम का पता नहीं चलता। जैसे मृगतृष्णा जल नहीं दे सकती, उसी तरह निर्मूल हुआ भ्रम संसाररूपी अंकुर नहीं उत्पन्न कर सकता। जैसे जला हुआ बीज अंकुरित नहीं हो सकता, उसी प्रकार परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से छिन्न हुई अहंभावना दिखायी देने पर भी मनोभूमि में संसाररूपी वृक्ष का अंकुर नहीं उत्पन्न कर सकती। मानसिक विकारों से रहित वीतराग तत्त्वज्ञानी पुरुष कर्म करे या न करे, उसकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। वह तो मन के संकल्प से रहित एवं नित्य शान्त हुआ परब्रह्म परमात्मा में ही स्थित रहता है। जो लोग योग का आश्रय लेकर शान्त बने हुए हैं, वे योगी भी चित्त का उपशमन होने पर ही भलीभाँति शान्त हो पाते हैं, अन्यथा नहीं; क्योंकि उनकी भोग-वासनाएँ मूलतः क्षीण नहीं होतीं। (कारण यह है कि इन वासनाओं की खानरूप जो चित्त है, वह तो उनका बना ही रहता है।) अनन्त, अव्यक्त एवं सुन्दर चिदाकाश रूप कर्पूर अपने भीतर स्वयं जो चमत्कार प्रकट करता है, उसी को वह जगत्‌रूप से जानता है। रघुनन्दन ! इस तरह यह जगत् तत्त्वज्ञानी पुरुष को उसका सांसारिक भ्रम दूर हो जाने के कारण प्रकाशमय तथा शान्त अक्षय ब्रह्मरूप ही भासित होता है, जब कि अज्ञानी को यह परमार्थतः परब्रह्म परमात्मा में स्थित होकर भी भोगजनित आनन्द के अनुगत ही प्रतीत होता है। (इस प्रकार दोनों की दृष्टियों में भेद है।)

चौदहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पन्द्रहवाँ सर्ग

महर्षि वसिष्ठ और मंकि का समागम

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! पहले की बात है। मंकि नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे, जो बड़े कठोर व्रत का पालन करते थे। उन्हें मेरे उपदेश से किस प्रकार निर्वाणपद की प्राप्ति हुई, यह बताता हूँ, सुनो। एक समय तुम्हारे पितामह राजा अज के किसी कार्य से बुलाने पर मैं आकाश मण्डल से इस पृथ्वी पर आया। तुम्हारे पितामह की नगरी अयोध्या को आते समय मैं भूतल पर विचरता हुआ किसी ऐसे विशाल वन में आ पहुँचा, जहाँ बड़ी बड़ाके की धूप पड़ रही थी। श्रीराम ! अविच्छिन्न रूप से धूल उड़ने के कारण वह सारा जंगल धूसर हो रहा था। वहाँ तपी हुई बालू के कण खूब चमक रहे थे। उस वन का कहीं ओर-छोर नहीं दिखायी देता था। वहाँ कहीं-कहीं निकृष्ट श्रेणी के गाँव चिन्ह दृष्टिगोचर होते थे। मैं उस जंगल में जाकर ज्यों ही इधर-उधर घूमने लगा, त्यों ही मुझे अपने सामने एक पथिक दिखायी दिया, जो श्रम से थक कर इस प्रकार कह रहा था।

पथिक कहा रहा था–अहो ! जैसे दुष्ट पुरुषों का पापपूर्ण संग संताप देने वाला ही होता है, इसी प्रकार प्रचण्ड आतप से तपते हुए ये सूर्यदेव इस समय सब ओर से खेद ही प्रदान कर रहे हैं। मेरे सारे मर्मस्थल मानो जलते जा रहे हैं। इस धूप में आग-सी जल रही है। सारी वन-श्रेणियाँ तप्त हो उठी हैं। इनके पत्ते और फूल सिकुड़ गये हैं। इसलिये यह सामने जो छोटा-सा गाँव दिखायी दे रहा है, मैं पहले इसी में प्रवेश करता हूँ। वहाँ शीघ्रतापूर्वक थकावट दूर करके तीव्र गति से अपना रास्ता लूँगा। (यों कहकर वह सामने के छोटे-से गाँव में, जहाँ कि ज्ञातों की बस्ती थी, ज्यों ही घुसने लगा त्यों ही मैंने उससे यह बात कही– 'सुन्दर शरीर वाले साथी ! जान पड़ता है, तुम्हें वीतराग अकिंचन पुरुषों के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

संचरण योग्य मार्ग का ज्ञान नहीं है। मरुभूमि के मार्ग में मिले हुए इस महान् जंगल के राही ! तुम्हारा स्वागत है। नीचे के मार्ग से चलने वाले राहगीर ! मनुष्य देश के इस मार्ग पर, जहाँ जन समुदाय से भरे हुए गाँव का अभाव है, थोड़ा-सा विश्राम कर लेने पर भी चिरस्थायी विश्राम प्राप्त नहीं कर सकोगे। (तात्पर्य यह कि तुम सकाम कर्म के पथ पर चल रहे हो। इस सकाम-कर्मोपासना द्वारा दक्षिण मार्ग से स्वर्गादि लोकों में जाकर कुछ काल तक मनोऽनुकूल सुख भोगने पर भी वहाँ देहाभिमान से बँधे रहने के कारण चिरस्थायी परमानन्दस्वरूप मोक्ष नहीं पा सकोगे।) पामरों के आवास स्थान इस गाँव में (देहाभिमानियों के निवास स्थान इस शरीर में) विश्राम नहीं मिल सकता। जैसे नमकीन पानी पीने से प्यास बढ़ती ही है, घटती नहीं, उसी प्रकार यहाँ सुख भोग की इच्छा बढ़ती है, परंतु पूरी नहीं होती। यहाँ रहने वाले प्राणी काम, धन की आसक्ति और द्वेष आदि में ही पुरुषार्थ की पराकाष्ठा समझते हैं। इनके विचार जले हुए हैं। इसलिये ये आपातरमणीय सकाम कर्मों में ही रमते रहते हैं, जिससे उनमें कुलीनता के कारण विस्तार को प्राप्त होने वाली, उदार, शीतल तथा ब्रह्मानन्द से सुशोभित होने वाली विवेकयुक्त बुद्धि नहीं होती। जैसे मधुमिश्रित विष के कण पलभर के लिये स्वाद में मीठे होते हैं, किंतु दूसरे ही क्षण अपनी ओर से विराग उत्पन्न कर देते हैं और अनिवार्य रूप से मृत्युदायक होते हैं, उसी प्रकार ग्राम्य सुखभोग क्षण भर के लिये मधुर प्रतीत होते हैं किंतु दूसरे ही क्षण विराग पैदा कर देने तथा प्रायः मार डालने वाले होते हैं (अतः इनके उपभोग से तुम्हें चिर विश्राम की उपलब्धि नहीं हो सकती)।' निष्पाप श्रीराम ! जब मैंने ऐसी बात कही, तब मेरे वचन से उसे इतनी शान्ति मिली, मानो उसने अमृतमय जल से स्नान कर लिया हो। तत्पश्चात् वह मुझसे इस प्रकार बोला।

पथिक ने कहा-भगवन् ! आप कौन हैं ? आप भीतर से पूर्ण काम आत्म ज्ञानी महात्मा जान पड़ते हैं। आप इस जगत् को शान्तभाव से देख रहे हैं। क्या आपने अमृत का पान किया है ? क्या आप सम्राट् या विराट् पुरुष हैं? सम्पूर्ण अर्थों से रिक्त होते हुए भी आप परिपूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे हैं। मुने ! आपका शान्त, कान्तिमान्, अप्रतिहत, सब ओर से निवृत्त तथा शक्तिशाली तेजस्वीरूप जो दिखायी देता है, यह कैसे ? आप पृथिवी पर स्थित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

होकर भी ऐसे जान पड़ते हैं, मानो समस्त लोकों के ऊपर आकाश में खड़े हों। आपकी संसार में कहीं भी आस्था नहीं है, तथापि मुझ-जैसे लोगों के उद्धार के लिये आप अत्यन्त दृढ़ आस्था से युक्त दिखायी देते हैं। आप पूर्ण चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण कलाओं से युक्त होते हुए भी निष्कलंक हैं। आपका अन्तःकरण शीतल है। आप प्रकाशमान, समत्वबुद्धि से युक्त तथा रसायन की राशि से सम्पन्न होकर अपनी सहज शोभा से प्रकाशित हो रहे हैं। महाभाग ब्रह्मर्षे ! मैं शाण्डिल्य गोत्र में उत्पन्न ब्राह्मण हूँ। मेरा नाम मंकि है। मैं तीर्थ यात्रा के लिये निकला था। मैंने दूर तक का रास्ता तै करके बहुत से तीर्थों का दर्शन किया है और अब दीर्घकाल के पश्चात् अपने घर को जाने के लिये उद्यत हुआ हूँ। इस ब्रह्माण्ड के भीतर बिजली की चमक के समान क्षण-भंगुर भूतों को देखकर मेरा मन संसार से विरक्त हो रहा है। अतः अब मुझे घर लौटने का उत्साह नहीं है। भगवन् ! मुझ पर कृपा करके आप अपना यथार्थ परिचय दीजिये; क्योंकि साधु पुरुषों के हृदयरूपी सरोवर स्वच्छ एवं गम्भीर होते हैं। दर्शन मात्र से ही मित्रता करने वाले आप-जैसे महात्माओं के सामने आ जाने पर ही समस्त प्राणी कमलों के समान विकसित और आश्वस्त होते हैं। प्रभो ! मैं समझता हूँ कि मेरा यह मन मोहवश संसार भ्रमजनित दुःख को मिटाने में समर्थ नहीं है। अतः आप मुझे तत्त्वज्ञान का उपदेश देने की कृपा द्वारा अनुगृहीत कीजिये।

तब मैंने कहा-महाबुद्धे ! मैं आकाशवासी वसिष्ठ मुनि हूँ। राजर्षि अज के किसी आवश्यक कार्य से मैं इस मार्ग पर उपस्थित हुआ हूँ। ब्रह्मन् ! अब तुम विषाद न करो; क्योंकि मनीषी पुरुषों के मार्ग पर आ गये हो और प्रायः संसार-सागर के दूसरे तट पर आ पहुँचे हो। जो महात्मा नहीं है, उसकी बुद्धि और वाणी इस तरह के वैराग्य-वैभव से उदार नहीं होती तथा उसकी आकृति भी इतनी शान्तिपूर्ण नहीं दिखायी देती। जैसे धीरे-धीरे सान पर घिसने से मणि साफ होकर चमक उठती है, उसी प्रकार राग आदि मलों के पक जाने से चित्त में विवेक का उदय होता है। बताओ, तुम क्या जानना चाहते हो ? और इस संसार को क्यों छोड़ने की इच्छा रखते हो ? मैं तो यह मानता हूँ कि साधक अपने ही प्रयत्नों से महात्माओं के दिये हुए उपदेश को सफल बनाता है। जिसकी वासना रागादि मलों से रहित हो गयी है, अतएव जिसका हृदय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वैराग्य आदि उत्तम साधनों से सम्पन्न है तथा जिसकी बुद्धि नित्यानित्य एवं सारासार के विवेक से सुशोभित है, ऐसा साधक ही महापुरुषों के उपदेश रूपी तेज से शोक रहित विशुद्ध परमात्म-तत्त्व को प्राप्त करने का अधिकारी होता है, दूसरा नहीं। इसलिये जन्म आदि सम्पूर्ण दुःखों से पार होने की इच्छा रखने वाले तुमसे मैं यह कहता हूँ कि तुम उपदेश पाने के योग्य हो। अतः अपना पूर्व वृत्तान्त बताओ।

पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त

सोलहवाँ सर्ग

मंकि के द्वारा संसार, लौकिक सुख, मन, बुद्धि और तृष्णा आदि के दोषों तथा उनसे होने वाले कष्टों का वर्णन और वसिष्ठजी से उपदेश देने के लिये प्रार्थना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! जब मैंने ऐसी बात कही, तब मंकि मेरे चरणों में साष्टांग प्रणाम करके नेत्रों में आनन्द के आँसू भरकर मार्ग में चलते हुए ही इस प्रकार बोले।

मंकि ने कहा-भगवन् ! जैसे नेत्र बारंबार दसों दिशाओं की ओर दृष्टि-पात करते हैं, उसी प्रकार मैंने भी संत-महात्मा की खोज के लिये अनेक बार दसों दिशाओं में भ्रमण किया; परंतु संशय का विनाश करने वाला कोई श्रेष्ठ महापुरुष मुझे नहीं मिला। आज आपको पाकर मैंने समस्त शरीर के सारों के भी सार इस ब्राह्मण शरीर का फल पा लिया। भगवन् ! संसाररूपी दोष प्रदान करने वाली दशाओं को देखते-देखते मैं उद्विग्न हो उठा हूँ। मुने ! संसार के सभी सुख अन्ततोगत्वा अवश्य ही दुःख रूप ही हैं। इन सांसारिक सुखों की अपेक्षा तो दुःख ही श्रेष्ठ है। अन्त में सुदृढ़ दुःख की प्राप्ति कराने के कारण ये लौकिक सुख मुझे दुःख में ही डाल रहे हैं, मानो मेरे लिये दुःख ही सुख के रूप में प्राप्त हुआ हो। दाँत, केश और आँतों के साथ ही मेरी अवस्था भी अब जरा से जर्जर हो गयी है। मेरा मन पीपल के उड़ते हुए सूखे पत्ते आदि के संचय से गंदे गाँवों के मध्यभाग की भाँति मलिन हो गया है तथा मेरी जीविका भी नाना प्रकार की भोग-वासनारूपी दुर्गन्धों को अपने अंग में धारण करने वाली गृध्रतुल्य इन्द्रियों के कारण निकृष्ट गाँवों की स्थिति के समान अत्यन्त पाप पूर्ण एवं दुःख दायिनी हो गयी है। मेरी बुद्धि काँटेदार वृक्ष पर फलने वाली बेल के समान विकराल एवं कुटिल है। आयास से युक्त और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अज्ञानान्धकार से आच्छादित जो विषयों की निरन्तर चिन्ता है, उसमें रत रहकर मैंने अपनी सारी आयु व्यर्थ गवाँ दी है। ब्रह्म-साक्षात्काररूपी प्रकाश मुझे इस जीवन में अभी तक नहीं मिला। स्वजनों में आसक्त हुआ यह जीवन जीर्ण हो चला, परंतु अब तक मैं संसार को पार न कर सका। जन्म-मरण का भय देने वाली भोगों की अभिलाषा दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। कण्टकयुक्त और अपवित्र स्थान में स्थित भिलावे के वृक्ष की भाँति मेरा मन भी क्रूरता से युक्त और अपवित्र विषयों में रत है। यह सारे शरीर में फैलने या रेंगने वाले अर्जुनवात नामक रोग के समान चंचल है तथा असत् होने पर भी संकल्प द्वारा बड़े-बड़े कर्मों का आरम्भ करने वाला है। इसकी इच्छाएँ कभी पूरी नहीं हुईं तथा शरीरों के मरने पर भी इसकी मृत्यु नहीं हुई। यह केवल दुःख देने के लिये ही उछल-कूद मचाता है। मैंने अवस्तु को ही वस्तु समझा है। मेरा मनरूपी हाथी मतवाला हो गया है और इन्द्रियाँ मुझे काटे डालती हैं। न जाने मेरी क्या दशा होगी। मैंने ज्ञानी पुरुषों की सेवा करके वह शास्त्रीय दृष्टि नहीं प्राप्त की, जो संसार-सागर से पार करने के लिये नौका के समान है। तात ! इसलिये इस प्रकार सब ओर से अनर्थों की ही प्राप्ति होने के कारण मैं अत्यन्त भयंकर मोह में डूब गया हूँ। इस मोह-सागर से उद्धार पाने के लिये भविष्य में जो कल्याणकारी उपाय हो, उसी को मैं पूछ रहा हूँ। अतः कृपा करके आप उसे बताइये। श्रेष्ठ महात्मा पुरुष का संग प्राप्त होने पर मोह का नाश हो जाता है और समस्त आशाएँ निर्मल हो जाती हैं-ठीक उसी तरह जैसे शरत्काल आने पर कुहरे मिट जाते हैं और सम्पूर्ण दिशाएँ स्वच्छ हो जाती हैं। संतों की महिमा के विषय में जो ऐसी बात कही गयी है, वह आपके द्वारा मुझे भवरोग को शान्त करने वाले बोध की प्राप्ति करने के साथ ही सत्य एवं सफल हो।

सोलहवाँ सर्ग समाप्त

सत्रहवाँ सर्ग

संसार के चार बीजों का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी ने (मैंने) कहा-ब्रह्मन्! सवेदन, भावन, वासना और कलना-ये चार ही शब्द ऐसे हैं, जिनके अर्थ इस संसार में अनर्थ पैदा करने वाले हैं। ये सभी मिथ्या होने के कारण निष्प्रयोजन हैं, तथापि अविद्या से विस्तार को प्राप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हो रहे हैं। वेदन और भावन-इन दो को समस्त दोषों का आश्रय समझो। इनमें भी जो भावन है, उसी में सारी आपत्तियाँ निवास करती हैं-ठीक वैसे ही, जैसे वसन्त ऋतु के द्वारा प्रवर्तित रस में ही पुष्प, पल्लव आदि से समृद्ध लताएँ विद्यमान रहती हैं (क्योंकि लता का सारा वैभव उस रस का ही परिणाम होता है)। यह संसार मार्ग बड़ा गहन है। इस पर वासना का आवेश लेकर चलते हुए प्राणी के ऊपर विचित्र परिणामवाले अनेक प्रकार के घटना-चक्र आते रहते हैं। जो विवेकी है, उसका संसार भ्रम वसन्त के अन्त में ग्रीष्म ऋतु के ताप से सूख जाने वाले पृथ्वी के रस की भाँति वासना सहित नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार वसन्त ऋतु का रस प्रवाह कदलीवन में फैलने वाली कदली का विस्तार करती है, उसी प्रकार वासना संसाररूपी काँटेदार झाड़ी का प्रसार करती है। यहाँ अद्वितीय विशुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है। जैसे अनन्त आकाश में शून्यरूपता को छोड़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार असीम परमात्मा में चैतन्य सत्ता के सिवा और कोई वस्तु नहीं है। जैसे बालक को वेताल के न होने पर भी अज्ञानवश उसके होने का भ्रम हो जाता है, उसी प्रकार असत् होकर भी सत् की भाँति भासित होने वाला यह संसार परमात्मतत्त्व को न जानने के कारण ही अनुभव में आ रहा है। परमात्मतत्त्व के ज्ञान का प्रकाश होते ही यह क्षण भर में नष्ट हो जाता है। जो वस्तु तत्त्व ज्ञान से ज्ञात होती है, वह ज्ञानस्वरूप ही कही जाती है; क्योंकि अज्ञान ज्ञान का विरोधी है, इसलिये वह ज्ञानरूप से नहीं जाना जाता। इस तरह विचार करने से ज्ञेय और ज्ञान दोनों एकरूप सिद्ध होते हैं। उनमें कोई भेद नहीं है। द्रष्टा, दर्शन और दृश्य-इन तीनों में से प्रत्येक की बोधरूपता ही सार है। जैसे आकाश में फूल नहीं होता, उसी तरह द्रष्टा आदि की त्रिपुटी में ज्ञान रूपता से भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं होती। 'यह मेरा है' इस तरह की ममता ही बन्धन में डालने वाली है और 'मैं यह शरीर आदि नहीं हूँ' इस प्रकार जो अहंता का अभाव है, वह ममता के बन्धन को दूर करके मुक्ति प्रदान करने वाला है-जब यह समझ पूर्णतया अपने अधीन हो जाय, तब अज्ञान कहाँ रहा? अपनी वासना और अभिमान के अनुसार राग आदि रस से रंजित लोग हथेली से ताड़ित हुए गेंद के समान खूब इधर-उधर उछल-कूद कर अन्त में नरकों के गर्त में गिर जाते हैं। वहाँ दीर्घ काल तक तरह-तरह की वासनाओं के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

क्लेश से भली भाँति जर्जर हो कालान्तर में पुनः स्थावर, कृमि-कीट आदि दूसरे-दूसरे रूपों में प्रकट होते हैं। (मानव-जन्म तो उनके लिये दुर्लभ ही बना रहता है।)

सत्रहवाँ सर्ग समाप्त

अठारहवाँ सर्ग

मंकि के मोह का निवारण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-ब्रह्मन् ! संसार के ये सभी पदार्थ वन में बिखरे हुए प्रस्तर-खण्डों के समान एक दूसरे से कोई लगाव नहीं रखते। भावना ही इन्हें एक-दूसरे से जोड़ने के लिये श्रृंखला है। अहो! कितने आश्चर्य की बात है कि वासना के वशीभूत होकर विवश हुए ये समस्त प्राणी विभिन्न जन्मों में विचित्र प्रकार के सुख-दुःख को भोगते रहते हैं। अहो ! यह वासना बड़ी विषम है, जिसके वश में होकर लोग असत् विषयों से ही अपने मन में तृप्ति का अनुभव करते हैं, यद्यपि यह तृप्ति उनका भ्रम ही है। जैसे रूप का अवलोकन दृष्टि का प्रसार मात्र है, उसी प्रकार अहंकारयुक्त जगत् जीवात्मा के अविवेक और प्रमाद से पूर्ण मानसिक संकल्प का विस्तारमात्र है। जैसे वायु अपनी चेष्टा की प्रसार करती है, उसी प्रकार विशुद्ध जीवात्मा वास्तव में शुद्ध होने पर भी किंचित् अविवेक-जनित प्रसरणमात्र से अहंकार युक्त असत् जगत् का विस्तार करता है। जैसे जड़ आकाश शून्यमात्र है, वायु स्पन्दनमात्र है और लहर आदि जल मात्र ही है, उसी प्रकार यह जगत् भी जीवात्मा की भावना या संकल्पमात्र ही है। 'ब्रह्म' शब्द से जिस सत्ता का प्रतिपादन किया जाता है, वही सम्पूर्ण पदार्थों का अपना वास्तविक रूप है। उसमें किसी तरह की बाधा नहीं है। इस लिये सब कुछ अविनाशी ब्रह्ममय ही है।

प्रिय विप्रवर ! आकाश में समान निर्मल आत्मा में मन को विलीन करके स्थित हुए ज्ञानयोगी को नाम और रूप की प्रतीति ही नहीं होती। स्वरूप स्थिति के लिये उसके द्वारा किया गया अभ्यास जब तक दृढ़ नहीं हो जाता, तभी तक उसे अपने मनमें स्वप्न-विकार के समान नाम-रूप का भान होता है। मन जहाँ जो कुछ निर्माण या प्रसार करता है, वहाँ वह स्वयं ही उन-उन वस्तुओं का रूप धारण करके स्थित हो जाता है अतः मन से भिन्न किसी दृश्य वस्तु की सत्ता न होने के कारण यह दृश्य-प्रपंच वास्तव में है ही नहीं। फिर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कौन कहाँ किसकी सृष्टि करता है? जब जीवात्मा में अहंता की रेखा खिंच जाती है, तभी वह संसार-भ्रमरूप भाव-विकार से युक्त हो जाता है और जब अहंता की वह रेखा मिट जाती है, तब वह अपने स्वरूपमात्र में स्थित हो सहज शान्ति से सुशोभित होता है। परमात्मा मोक्षस्वरूप, मन से रहित, मौनी, कर्ता, अकर्ता और शीतल है। वह ज्ञानस्वरूप एवं शान्त ही है। वह दृश्य-प्रपंच से शून्य होता हुआ ही सर्वत्र परिपूर्ण है। जैसे किसी यन्त्र द्वारा बनाये गये पुतले का शरीर वासना और चेष्टा से शून्य होता है, उसी प्रकार ज्ञान स्वरूप आत्मा वास्तव में वासना रहित एवं स्पन्दन शून्य है। वह व्यवहार-परायण प्रतीत होकर भी अपने यथार्थ स्वरूप में ही स्थित रहता है।

जैसे झूलते हुए झूले में सोये हुए बालक के अंग नहीं हिलते, झूले के हिलने से ही उन अंगों का हिलना प्रतीत होता है, उसी प्रकार आत्मज्ञानी पुरुष में स्वरूपानुसंधान के सिवा दूसरी कोई चेष्टा नहीं होती; वे परेच्छा से ही चेष्टा शील दिखायी देते हैं, स्वतः नहीं। आशा, चेष्टा, एषणा और कामना आदि से रहित तथा बहिर्मुख वृत्ति से शून्य जो अखण्ड आत्मबोध है, वह शान्त, अनन्त आत्मस्वरूप ही है। अतः उसे शरीर आदि का अनुसंधान होना कैसे सम्भव है। समस्त कामनाओं से रहित जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष को, जो द्रष्टा, दृश्य और दर्शन की त्रिपुटी से रहित निराकार ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार कर चुका है, शरीर का अनुसंधान कैसे हो सकता है। समस्त वस्तुओं की अपेक्षा (इच्छा) ही सुदृढ़ बन्धन है और उनकी उपेक्षा ही मुक्ति है। जो उस मुक्ति में विश्राम कर रहा है, उसे किस वस्तु की इच्छा हो सकती है। तत्त्व ज्ञानी विद्वान् केवल अपने यथार्थ स्वरूप में ही स्थित रहता है।

श्रीराम ! मेरे इस उपदेश को सुनकर मंकि ने वहीं अपने महान् मोह को उसी तरह पूर्णरूप से त्याग दिया, जैसे साँप अपनी केंचुल को छोड़ देता है। प्रारब्धवश प्राप्त हुए कार्य को वासनाशून्य होकर करते हुए मंकि मुनि सौ वर्षों के पश्चात् एक पर्वत पर समाधि में स्थित हो गये। वे आज तक वहाँ प्रस्तर के समान निश्चल होकर बैठे हैं। उनकी नेत्र आदि समस्त इन्द्रियाँ शान्त हो गयी हैं। कभी-कभी दूसरों द्वारा जगाये जाने पर ज्ञानयोगी मंकि समाधि से जग भी जाते हैं।

अठारहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उन्नीसवाँ सर्ग

आत्मा या ब्रह्म की समता

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! सर्वत्र व्यापक परमात्मा एक होता हुआ ही सभी रूपों में विराजमान है। उस में अज्ञानवश ही अनेकता की कल्पना हुई है। ज्ञान हो जाने पर तो वह एक है और न अनेक या सर्वरूपा ही; फिर उसमें नानात्व की कल्पना कैसे हो सकती है। आदि–अन्त से रहित सारा आकाश चित्तत्त्व–सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा से परिपूर्ण है। फिर शरीर की उत्पत्ति और विनाश होने पर भी उस चेतन तत्त्व का खण्डन कैसे हो सकता है। अमावास्या के बाद जब प्रतिपदा को चन्द्रमा की एक कला उदित होती है, तब समुद्र आनन्द के मारे उछलने लगता है और जब प्रलय काल की प्रचण्ड वायु चलती है, तब वह सूख जाता है। परंतु आत्मत्त्व कभी किसी अवस्था में न तो क्षुब्ध होता है और न क्षीण ही होता है। वह सदा समभाव से सौम्य बना रहता है। जैसे नाव पर यात्रा करने वाले पुरुष को स्थावर वृक्ष और पर्वत आदि से चलते–से प्रतीत होते हैं तथा जैसे सीपी में लोगों को चाँदी का भ्रम होता है, उसी प्रकार चित्त को चिन्मय परमात्मा में देहादिरूप जगत् की प्रतीति होती है। यह शरीर आदि चित्त की कल्पना है और शरीर आदि की दृष्टि से चित्त की कल्पना हुई है। इसी प्रकार देह और चित्त दोनों की दृष्टि से जीवभाव की कल्पना हुई है। वास्तव में ये सब–के–सब परमपद स्वरूप परब्रह्म परमात्मा में बिना हुए ही प्रतीत होते हैं अथवा ये सब–के–सब चिन्मय परम तत्त्व से भिन्न नहीं हैं; ऐसी दशा में द्वैत कहाँ रहा? परब्रह्म परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होने पर यह सब कुछ एकमात्र शान्तस्वरूप ब्रह्म ही सिद्ध होता है। अतः ब्रह्म के सिवा जगत् आदि दूसरा कोई पदार्थ नहीं है और न दूसरी कोई भ्रान्ति ही है।

रघुनन्दन ! वासनायुक्त जीवात्मा की भावना से जगत्–सम्पत्ति का प्रादुर्भाव होता है और वासनाशून्य जीवात्मा की ब्रह्म भावना से संसार की निवृत्ति होती है। जीवात्मा का जो वासनारहित विशुद्ध स्पन्दन (भावना) है, उसे स्पन्दन माना ही नहीं गया है, जैसे समुद्र में भँवर आदि के द्वारा भीतर घुसती हुई तरंग स्पन्दन शील होने पर भी स्पन्दनशून्य ही मानी जाती है। किंतु जन्म की कारण भूता जो जीवात्मा की दृश्यभावना है, उसके भीतर जो वासना रस विद्यमान है, वहीं अंकुर प्रकट करता है ! अतः उसी को असंगरूप अग्नि से जलाकर भस्म कर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

देना चाहिये। मनुष्य कर्म करता हो या न करता हो; परंतु शुभाशुभ कार्यों में वह जो मन से डूब नहीं जाता, उसकी इस अनासक्ति को ही विद्वान् पुरुष असंग मानते हैं अथवा वासना को उखाड़ फेंकना ही असंग कहा गया है। अहंभाव त्याग करना ही संसार-सागर से पार होना है और उसी का नाम वासनाक्षय है। इसके लिये अपने पुरुषार्थ के सिवा दूसरी कोई गति नहीं है। श्रीराम ! तुम तो आत्माराम और पूर्णकाम हो ही। सारी इच्छाओं से रहित निश्शंक हो समस्त कार्य करते हुए भी केवल अपने चिन्मयस्वरूप में ही स्थित हो। भय तुमसे सदा दूर ही रहता है। अतः अपनी सहजशान्ति के द्वारा सबके मनोऽभिराम बने रहो।

उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त

बीसवाँ सर्ग

परमार्थ-तत्त्व का उपदेश

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! तुम आकाश के समान विशद और तत्त्व के ज्ञाता हो। एकमात्र सच्चिदानन्दघन परमात्मपद में तुम्हारी स्थिति है। तुम सर्वत्र सम, सौम्य और सम्पूर्णानन्दमय हो, तुम्हारा अन्तःकरण ब्रह्मस्वरूप एवं विशाल है। निष्पाप रघुनन्दन ! जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुख करके सदा ब्रह्मानन्द में निमग्न हो आत्माराम, शान्त एवं उदारभाव से कार्य करता है, वह कर्तापन के दोष से रहित होता है। जो समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित अपनी बुद्धिगुहा-हृदयाकाश में विराजमान परमात्मपद में स्वेच्छानुसार स्थित रहता है, वह अपने आत्मा में ही रमण करने वाला परमेश्वररूप ही है। जो लोग सदा अन्तर्मुख रहकर बाहर के कार्यों का सम्पादन करते रहते हैं, उनके जीवित रहते हुए भी उनके मन में उसी तरह वासना नहीं उत्पन्न होती, जैसे जड़ पत्थरों में वह नहीं उत्पन्न होती। जगत् न तो द्वैतरूप में है और न अद्वैत रूप में ही।

श्रीरामजी ने पूछा-मुनिश्रेष्ठ ! यदि ऐसी बात है तो अहंभाव की प्रतीति रूप वसिष्ठ-नामक आप यहाँ कैसे स्थित हैं ? यह बताइये।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! श्रीरघुनाथजी के इस प्रकार प्रश्न करने पर वक्ताओं में श्रेष्ठ वसिष्ठजी आधे मुहूर्त तक चुपचाप ही बैठे रह गये। उनकी यह चेष्टा सुस्पष्ट ज्ञात हो गयी थी। उनके चुप हो जाने पर सभा में जो बड़े-बड़े लोग बैठे हुए थे, वे संशय के समुद्र में गोते लगाने लगे। तब

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

श्रीरामचन्द्रजी ने फिर पूछा-'भगवन् ! आप मेरी ही तरह चुपचाप क्यों बैठे हैं ? संसार में कोई ऐसा प्रश्न नहीं है, जिसका उत्तर आप-जैसे श्रेष्ठ पुरुष न दे सकें।'

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-निष्पाप रघुनन्दन ! मुझमें कुछ कहने की शक्ति न होने के कारण मेरे पास युक्तियों का अभाव हो गया हो, ऐसी बात नहीं है। परंतु यह प्रश्न जिस कोटि का है, उसमें चुप हो जाना ही इसका उत्तर है। प्रश्न कर्त्ता दो प्रकार के होते हैं-एक तत्त्वज्ञ और दूसरे अज्ञानी। अज्ञानी प्रश्नकर्त्ता को अज्ञानी बनकर ही उत्तर देना चाहिये और ज्ञानी को ज्ञानी बनकर। परम सुन्दर श्रीराम ! तत्त्वज्ञ पुरुष का उसके प्रश्न का कलंक युक्त उत्तर नहीं देना चाहिये। परंतु कोई भी ऐसी वाणी नहीं है, जो निष्कलंक हो और तुम केवल ज्ञानी ही नहीं, परम ज्ञानी हो। अतः तुम्हारे प्रश्न का मौन ही उत्तर है। जो परमपद है, वह तत्त्व ज्ञान के पूर्व इस रूप में उपस्थित किया जाता है जिससे उसके विषय में उपदेश वाणी की प्रवृत्ति हो सके। अतः अज्ञान से ही उसको ससंकल्प वाणी का विषय बताया गया है एवं उसका कल्पित स्वरूप ही उपदेश का विषय होता है। किंतु तत्त्वज्ञान के पश्चात् जो उसका यथार्थ स्वरूप प्रकट होता है, उसे मौन अर्थात् वाणी का अविषय ही कहा गया है। इसी लिये तुम-जैसे तत्त्वज्ञ शिरोमणि को मौन के रूप में ही सुन्दर उत्तर दिया गया है। प्रिय रघुनन्दन ! वक्ता पुरुष स्वयं जैसा होता है, उसके अनुरूप ही वह उपदेश करता है। मैं ज्ञेय ब्रह्मरूप ही हूँ। अतः उस परमपद में प्रतिष्ठित हूँ, जहाँ वाणी की पहुँच नहीं है। जो वाणी से अतीत पद में प्रतिष्ठित है, वह वाणीरूप मल को कैसे ग्रहण कर सकता है। मैं मौन रहकर उस तत्त्व का प्रतिपादन कर रहा हूँ, जो अनिर्वचनीय है-जिसका वाणी द्वारा ठीक-ठीक वर्णन हो ही नहीं सकता, क्योंकि वाणी संकल्परूप कलंक से युक्त होती है।

बीसवाँ सर्ग समाप्त

इक्कीसवाँ सर्ग

ब्रह्म भावना से संसार निवृत्ति

श्रीराम जी ने पूछा-भगवन् ! वाणी में जो-जो दोष आते हैं, उनका आदर न करके विधिरूप से और निषेधरूप से यह बताइये कि वास्तव में आप

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

कौन हैं ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ रघुनन्दन ! यदि तुम मुझसे मेरे स्वरूप का परिचय सुनाना चाहते हो तो इस विषय को यथावत् सुनो। 'तुम कौन हो,' 'मैं कौन हूँ' और 'यह जगत् क्या है' इसका विवेचन किया जा रहा है। तात ! यह जो निर्विकार अनन्त चिन्मय परमात्मा है, वही मैं हूँ। इसमें बाह्य और आभ्यन्तर विषयों का सर्वथा अभाव है तथा यह समस्त कल्पनाओं से परे है। मैं निर्मल अनन्त चेतन हूँ, तुम अनन्त चेतन हो, सारा जगत् अनन्त चेतन है और सब कुछ अनन्त चेतनमात्र ही है। विशुद्ध ज्ञानस्वरूप परमात्मा में मैं विशुद्ध ज्ञानस्वरूप परमात्मा ही हूँ। मुझमें भेद ज्ञान की दृष्टि है ही नहीं। अतः मैं किसी भी वस्तु को अपने से भिन्न कहना नहीं जानता। जीवित रहकर व्यवहार परायण होता हुआ भी जो परम शान्त है, उस ज्ञानी पुरुष की जो मुर्दे के समान स्थिति है, उसी को परमपद कहते हैं। जो बाहर-भीतर के साधनों से रहित, शान्त, अनन्त, साधनरूप और सम है, जिसे न सुख कहा जा सकता है न दुःख, जो 'अहं, भी नहीं है तथा 'यत्र नान्यत् पश्यति' इत्यादि श्रुति के द्वारा जिसके स्वरूप का निर्देश कराया गया है, वह कल्याणस्वरूप तत्त्व ही परम पद है। उसे मैं अपने से भिन्न नहीं समझता। वस्तुतः उसे दूसरा कोई नहीं जानता। लोकैषणा से विरक्त ज्ञानी पुरुष के द्वारा आत्मा में ज्ञातापन की भाँति उसका स्वयं ही अनुभव किया जाता है। उस परम पद-में न अहंता (मैं-पन) है न त्वत्त (तू-पन), न अहंता का अभाव है और न अन्यता ही। वह केवल निर्वाण स्वरूप विशुद्ध कल्याणमय कैवल्य ही है। इस चेतन जीवात्मा का चेत्य विषयों की ओर उन्मुख होना ही चित्त रूपता है, यही इसका संसार है और यही महान् कष्ट देने वाला बन्धन है। चेतन जीवात्मा का चेत्य विषयों की ओर उन्मुख न होना ही अचेत्यरूपता है। इसी को मोक्ष समझो। यही शान्त एवं अविनाशी परम पद है। जो दिशा और देश-काल आदि की सीमा से बँधा हुआ नहीं है, वह शान्त स्वरूप शान्तात्मा परमात्मा ही सर्वत्र विराजमान है, उसमें चेत्य (दृश्य) की सम्भावना नहीं है। फिर कौन, किसका और किस प्रकार चिन्तन करता है? ये जो मन-बुद्धि आदि हैं, ये सब अन्तर्मुख दशा में चैतन्य रूप ही हैं। मन-बुद्धि आदि शब्दों के अर्थ रूप से भाक्ति होने पर वे ही जड़रूप मानी गयी हैं। समस्त दृश्यों का बाध हो जाने पर जो विशुद्ध चैतन्यस्वरूप अवशिष्ट

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रह जाता है, उसमें और शून्य आकाश में क्या अन्तर है–इसे साधारण लोग नहीं जानते–विद्वान् ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। उनका कहना है, कि वह परमात्मा चिन्मय और निरतिशयानन्दस्वरूप है, इसलिये वाणी का विषय नहीं होता। जैसे अन्धकार में देखने का प्रयत्न करने से नेत्रों में कुछ सदसद्रूप आभास दीखता है, उसी प्रकार ब्रह्म में जो आभास परिलक्षित होता है, वही यह जगत है। 'मैं अज्ञानी हूँ' इस रूप में जीवों को अपने अज्ञान का बोध होता है, उससे सुरक्षित अज्ञानरूपी वायु का सहारा पाकर उनकी अविद्याग्नि प्रज्जवलित होती रहती है। फिर जब उन्हें 'मैं ब्रह्म हूँ' यह यथार्थ बोध होता है, तब वहीं वायु उस अविद्याग्नि को दुर्बल पाकर बुझा देती है।

अनावृत स्वप्रकाश निरतिशयानन्द रूप से स्थित हुए तत्त्वज्ञानी पुरुषों की संसार के भान से रहित तथा दुःखरूप क्षोभ से शून्य जो स्थिति है, उसी को मोक्ष कहते हैं और वही अविनाशी पद है। परमात्मज्ञान के साथ सांसारिक पदार्थों के ज्ञान से युक्त हो मनुष्य मुनि बन जाता है। परंतु जो परमात्मा के अज्ञान के साथ-साथ सांसारिक पदार्थों के ज्ञान से शून्य होता है, वह पशु एवं वृक्ष बन जाता है। जैसे सुषुप्तावस्था में स्वप्न का लय हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानस्वरूप परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होने पर उस तत्त्व ज्ञान के समाहित अन्तःकरण के भीतर सारे दृश्य-प्रपंच का लय हो जाता है। फिर तो केवल अपना परमात्मस्वरूप ही लक्षित होता है। जैसे आकाश में नीलिमा की प्रतीति भ्रममात्र ही है, उसी प्रकार कल्याणस्वरूप परमात्मा में पृथ्वी आदि पांचभौतिक जगत् की प्रतीति भ्रम के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जैसे आकाश नील आदि वर्णों से रहित निर्मल है, उसी प्रकार शिवस्वरूप परमात्मा भी दृश्य-प्रपंच से रहित एवं निर्मल है। जिस पुरुष की बुद्धि में यह निश्चय हो गया है कि यह सारा दृश्य-प्रपंच असत् (मिथ्या) ही है, वह समस्त विशुद्ध वासनाओं से युक्त होने पर भी उन वासनाओं से रहित है। सर्वव्यापी शुद्ध-बुद्ध परमात्मा में कर्तृत्व और भोक्तृत्व का होना असम्भव है; इसलिये यहाँ न दुःख है न सुख, न पुण्य है न पाप और न किसी का कुछ नष्ट ही हुआ है। जिस अहंकार में यह ममता बुद्धि होती है, वह भी दो चन्द्रमा और स्वप्न के नगर की भाँति असत् (मिथ्या) ही है; इसलिये सब कुछ निराकार एवं निराधार है। समस्त द्वैत से रहित तत्त्वज्ञ पुरुष व्यवहारपरायण हो अथवा काष्ठ या पाषाण के समान निश्चल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

होकर चुपचाप बैठा रहे, सभी अवस्थाओं में वह ब्रह्मस्वरूपता को ही प्राप्त है। रघुनन्दन ! जो ब्रह्मज्ञानी पुरुषों द्वारा पूर्णरूप से सेवित है, जिसे दूसरा कोई छीन नहीं सकता तथा जो ज्ञानस्वरूप, निर्मल, शिव, अजन्मा, अविनाशी, नित्यसिद्ध, सम, परमार्थ सत्य तथा शान्त ब्रह्मपद है, वही तुम हो। तुम उस परमपद में नित्य प्रतिष्ठित हो।

अहंभावना ही सबसे बड़ी अविद्या है, जो मोक्ष की प्राप्ति में रुकावट डालने वाली होती है। मूढ़ मनुष्य उस अविद्या के द्वारा ही जो मोक्ष का अन्वेषण करते हैं, वह उनकी पागलों की-सी चेष्टा है। अज्ञान से उत्पन्न होने वाली अहंता ही अज्ञान की सत्ता का पूर्ण परिचय देने वाली है; क्योंकि जो तत्त्वज्ञानी शान्त पुरुष है, उसमें ममता या अहंता नहीं रहती। अहंता का भली भाँति त्याग करके आकाश की भाँति निर्मल तथा मुक्त हुआ ज्ञानी पुरुष सदा के लिये निश्चिन्त हो जाता है; उसका शरीर रहे या न रहे, उसकी उपर्युक्त स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। जो तत्त्ववेत्ता पुरुष भीतर की मानसिक तरंगों से कभी क्षुब्ध नहीं होता, बाहर से भी अस्तंगत सूर्य की भाँति शान्त रहता है और जिसे सदा प्रसन्नता बनी रहती है, वह मुक्त कहलाता है। इष्ट और अनिष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होने पर भी वह सदा शान्त बना रहता है-हर्ष और शोक के वशीभूत नहीं होता। व्यवहार में संलग्न रहने पर भी द्वैत भाव का अनुभव नहीं करता तथा भीतर से पूर्ण परमानन्द में निमग्न रहता है। जैसे समुद्र में जलरूप आधार की सत्ता की नावों या जहाजों को क्रय-विक्रय की वस्तुओं का दुःखद भार वहन करने के लिये अवसर देती है, उसी प्रकार जीव और जगत् की जड़ सत्ता ही तृष्णा के पाश में बँधे हुए मनुष्यों को इस जगत् में केवल दुःख का भार वहन करने के लिये प्रेरित करती है। जो-जो वस्तु संकल्प से प्राप्त होती है, वह संकल्प से ही नष्ट भी हो जाती है। इसलिये जहाँ इस संकल्प की सम्भावना ही नहीं है, वहीं सत्य एवं अविनाशी पद है। विचार करने से जिन पुरुषों के सम्पूर्ण विशेष (भेदभाव) शान्त हो चुके हैं, उनके लिये केवल अहंता का नाश करने वाली मुक्ति का उदय होता है। उनका कुछ बिगड़ता नहीं। अज्ञानी पुरुषो ! मोक्ष की प्राप्ति के लिये भोगों के त्याग, विवेक-विचार तथा मन और इन्द्रियों के निग्रहरूप पुरुषार्थ-इन तीन के सिवा चौथी किसी वस्तु का उपयोग नहीं है। अतः अनात्म वस्तु का त्याग करके तुम

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

लोग शीघ्र अपने आत्मा की शरण में आ जाओ।

इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त

बाईसवाँ सर्ग

निर्वाण की स्थिति का सयुक्तिक वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुकुल भूषण राम ! ब्रह्म के अतिरिक्त न नाश है न अस्तित्व, न अनर्थ है न जन्म–मृत्यु, न आकाश है न शून्यता और न नानात्व ही है। अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं। जैसे मिथ्या अवभासित होने वाले संकल्पनगर का नाश किसी प्रकार सम्भव नहीं–क्योंकि वह तो मिथ्या है ही, फिर उसका विनाश कैसा, उसी तरह जगत् और अहंकार आदि भी असत् हैं, अतः उनके लिये 'नाश' शब्द का प्रयोग नहीं होता; क्योंकि असत् वस्तु स्वयं ही विद्यमान नहीं रहती। स्वप्नपुरुष की भाँति जिन अज्ञानियों की दृष्टि में यह संसार विद्यमान है, वे पुरुष तथा वह सृष्टि–सब–के–सब मृगतृष्णा की जलतरंग के समान मिथ्या ही हैं। यही कारण है कि जो लोग असत्पदार्थों को ही सत्–सा मानते हैं, उनकी उस मान्यता को हम लोग वन्ध्यापुत्र की वाणी की तरह निर्णयात्मक नहीं समझते। इसीलिये जल से परिपूर्ण महासागर की तरह तत्त्वज्ञानियों की पूर्णता कोई अपूर्व ही होती है–वे सदा चिदानन्द से परिपूर्ण रहते हैं; क्योंकि वे द्रष्टा और दृश्यांश के फेर में नहीं पड़ते। वे व्यवहार युक्त हों अथवा व्यवहार शून्य–किसी भी अवस्था में पर्वत की भाँति निश्चल और वायु शून्य स्थान में रखे हुए समप्रकाशयुक्त दीपक की तरह एकरस रहते हुए सदा अपने स्वरूप में ही स्थित रहते हैं।

श्रीराम ! अज्ञानी पुरुष तो इस जगत् में वासनारूप ही है और वह वासना तत्त्व दृष्टि से विचार करने पर ठहरती नहीं; परंतु कोई भी उस वासना के असली स्वरूप पर विचार नहीं करता, इसी कारण यह संसार उपस्थित हुआ है। वास्तव में तो जिस पुरुष को इस संसार का भ्रम है, वह असत् ही है और असत् पदार्थ तत्त्व दृष्टि से देखने पर मृगतृष्णा के जल की भाँति लक्षित होता नहीं; फिर किसी के लिये भी कौन–सा संसार कहाँ से आ गया। 'यह सारा दृश्य जगत् सद्ब्रह्म ही है' ऐसा स्पष्ट ज्ञान हो जाने पर कल्याण मय ब्रह्म रूप का उदय होता है। जिसे परम पद में विश्राम प्राप्त हो चुका है, ऐसे समदर्शी–तत्त्वज्ञानी के आचरण में शान्तरूपता अथवा राग–द्वेष शून्य व्यवहार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दोनों परिलक्षित होते हैं। अथवा जो निर्वाणरूप सप्तम भूमिका में पहुँच चुका है, उस ज्ञानी की शान्तरूपता ही अवशेष रह जाती है; क्योंकि वह तो वासनारहित मुनि को जाता है, फिर वह व्यवहार कैसे कर सकता है। परंतु जब तक उस ज्ञानी का निर्वाण (सप्तम भूमिका की प्राप्ति) सुदृढ़ नहीं हो जाता, तब तक वह राग-द्वेष और भय आदि से रहित हो व्यवहार करता है। तथा सप्तम भूमिका में सुदृढ़ रूप से स्थित हुए ज्ञानी का मन शान्त हो जाता है। उसके राग-द्वेष, भय, क्रोध आदि विकार सर्वथा नष्ट हो जाते हैं तथा वह मुनि होकर शिला न होते हुए भी शिला की तरह सदा निश्चलरूप से स्थित रहता है।

राघव ! आत्मा ही बाह्यता की भावना करने से बाह्य और आत्मत्व की भावना करने से आत्मरूप होता है; इसलिये परब्रह्म-तत्त्व में तत्-तत् भावना ही उसके बाह्य और आन्तर होने में कारण है। अन्तःकरण में जो जाग्रत-स्वप्नादि की विभ्रान्ति है, वही बाह्यता कही जाती है। वस्तुतः तो जैसे दूध को दो पात्रों में रख देने से उस दूध में कोई भेद नहीं होता, उसी तरह स्वप्न और जाग्रत में थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं है। उनमें जो जाग्रत् में स्थिरता और स्वप्न में अस्थिरता की प्रतीति होती है, वह तो केवल भ्रान्तिमात्र है। उसी तरह जाग्रत् में आधारता और स्वप्न में आधेयता-की प्रतीति भी जल और उसकी तरंग की भाँति भेदशून्य ही है। जैसे आत्मा के अन्यत्वज्ञान से स्वप्न काल के पदार्थों में भी अन्यता की प्रतीति होती है और आत्मैक्य का ज्ञान हो जाने पर उस आत्मा से भिन्न कुछ नहीं दीखता, उसी तरह जाग्रत्-काल में जब तक शुद्ध आत्मत्त्व का ज्ञान नहीं हो जाता, तभी तक पदार्थों में अन्यरूपता प्रतीत होती है। आत्मतत्त्व का बोध हो जाने पर तो सभी एकरूप-से ही दीखते हैं। परमात्मा जो कल्पनाओं से रहित तथा शान्त रूप है, उसकी जिस-जिस रूप में भावना की जाती है, वह उसी रूप में परिणत हो जाता है। स्वप्नादि के ज्ञान के भलीभाँति शान्त हो जाने पर परमात्मा का जो शुद्धरूप अवशिष्ठ रहता है, उसे 'वह है' न तो ऐसा ही कह सकते हैं और न 'वह नहीं है' ऐसा ही कह सकते हैं; अतः वह वाणी का विषय नहीं है।

वत्स राम ! चितिका जो बाह्य पदार्थों की ओर प्रसरण है, वह तो (अज्ञानयुक्त) अनुभव से ही सिद्ध है। जब विद्या से उस अनुभव का बाध हो जाता है, तब पुरुष को असत् पदार्थ का अनुभव नहीं होता। उस समय उसके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अनुभव में यह बात आती है कि जैसे बालक असत्य प्रेत का अनुभव करता है, वैसे ही मैं भी व्यर्थ ही अब तक असत् पदार्थ का अनुभव करता रहा। जब अपने अंदर 'यह मैं हूँ' ऐसा अनुभव होने लगता है, तब वह अहंभाव भी दुःख (बन्धन) का ही कारण होता है और जब अहंकार का अनुभव नहीं होता, तब वह मुक्ति का कारण बन जाता है; अतः बन्धन और मुक्ति तो अपने ही अधीन हैं। श्रीराम ! जिस पुरुष की वासना सुदृढ़ हो गयी है, वह जैसे संकल्प द्वारा रचित रूपा लोक और मानसिक व्याधियों का अनुभव करता है, उसी तरह असत् दुःख का भी स्वप्न द्रष्टा की तरह आश्रय ग्रहण करता है; परंतु जिसकी वासनाएँ क्षीण हो गयी हैं, उसे जैसे संकल्पशून्यरूपालोक और मानसिक व्याधियों का अनुभव नहीं होता, वैसे ही वह प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए दुःख का भी सोये हुए पुरुष की भाँति उपभोग नहीं करता । इस लिये जैसे देश, काल और क्रिया के सम्पर्क से पदार्थों में उत्पन्न हुई भावना पदार्थरूपता को प्राप्त होती है, वैसे ही वासना ही अत्यन्त सूक्ष्म होकर मुक्ति में कारण होती है। जैसे आकाश में उत्पन्न होने वाले मेघ और कुहरा आदि अत्यन्त सूक्ष्म हो जाने से उसी आकाश के रूप में परिणत हो जाते हैं, वैसे ही वासना अत्यन्त सूक्ष्म होकर मुक्ति के स्वरूप में परिणत हो जाती है।

आत्मा में जो यह जगत् आदि भासित होता है, वह 'मैं कौन हूँ ?' और 'यह कैसे उत्पन्न हुआ ?' इस प्रचार के विचार से ही शान्त हो जाता है। 'जब अहंता की सत्ता का अभाव ही मोक्ष है, तब इतने को ही लेकर मूढ़ता का आश्रय क्यों ग्रहण किया जाय ?' ऐसा ज्ञान सत्संग और विचार से शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। जैसे प्रकाश से अन्धकार का ओर दिन से रात्रि का विनाश हो जाता है, वैसे ही तत्त्व ज्ञानी के संग से अहंतारूपी बन्धन नष्ट हो जाता है।

रघुनन्दन ! जैसे आकाश में चाहे जितने घने बादल छा जाएँ और महासागर में तरंगे उठने लगें, किंतु उनसे आकाश तथा महासागर में किसी प्रकार की हानि अथवा वृद्धि नहीं होती, उसी प्रकार सम्पूर्ण संकल्पों से रहित ज्ञानी को इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में कुछ भी लाभ-हानि का अनुभव नहीं होता। समस्त विकारों से शून्य एवं परिपूर्ण-स्वरूप शान्त ब्रह्म का विचार कर लेने पर-परमात्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर यह सारा जगत्-प्रपंच मृगतृष्णा के जल की भाँति असत् सिद्ध हो जाता है। उस समय अहंता का भी विनाश

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हो जाता है; तब भला, उस ज्ञानी को संसार के मनन आदि का भ्रम कहाँ, कैसे और किस कारण से हो सकता है।

बाईसवाँ सर्ग समाप्त

तेईसवाँ सर्ग

भ्रान्ति कल्पना के निवर्तक उपाय

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-वत्स राम ! यदि सत्पुरुषों के समागम से विकास को प्राप्त हुई अपनी बुद्धिरूप पुरुषार्थ द्वारा पुरुष को तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई तो फिर उसके अतिरिक्त उसकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है। एकमात्र अहंता को छोड़कर दूसरी कोई अविद्या है ही नहीं। उसकी भावना न करने से जब उस अहंता का शमन हो जाता है, तब दूसरा कोई मोक्ष पाना शेष नहीं रह जाता अर्थात् अहंता का नाश ही मोक्ष है। पत्थर के सदृश निश्चल वृत्ति वाले जिस पुरुष के लिये यह सारा जगत् असत् होता हुआ भी सत् की तरह शान्त हो गया है, उस महात्मा को नमस्कार है। जिसका चित्त परब्रह्म में पूर्णतया लीन हो गया है, उसे पत्थर के सदृश बाहर का ज्ञान नहीं होता और भीतर चितिरूपता की भावना से उसकी संकल्प-शून्य-सी अवस्था हो जाती है, जिससे उसके लिये यह सारा दृश्य-प्रपंच शान्त हो जाता है।

श्रीराम ! प्राणियों के लिये दो व्याधियाँ बड़ी भयंकर हैं-एक तो यह लोक और दूसरा परलोक। क्योंकि इन्हीं दोनों से पीड़ित होकर सभी प्राणी भीषण दुःख भोगते हैं। इनमें जो अज्ञानी जीव हैं, वे इस लोक में व्याधिग्रस्त होने पर उसके निवारण के लिये भोगरूपी कुत्सित औषधों द्वारा जीवनपर्यन्त यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं; परंतु परलोकरूपी व्याधि के लिये वे कुछ भी चिकित्सा नहीं करते। तथा जो उत्तम पुरुष हैं, वे परलोकरूपी महाव्याधि की चिकित्सा के लिये अमृत-तुल्य शम, सत्संग और आत्मविचाररूप उपायों द्वारा प्रयत्न करते हैं। जो लोग परलोकरूपी व्याधि चिकित्सा के लिये सदा सावधान रहते हैं, वे मोक्षमार्ग की उत्कट इच्छा उत्पन्न होने पर अपनी शम शक्ति द्वारा विजयी होते हैं। जो पुरुष इस लोक में ही नरकरूपी व्याधि की चिकित्सा नहीं कर लेता, वह रोगग्रस्त होकर औषधरहित स्थान (नरक) में जाकर फिर क्या करेगा। इसलिये अज्ञानियों ! तुमलोग इहलोक की चिकित्सा में ही अपने जीवन को मत गँवा दो। इसी के साथ-साथ आत्मज्ञानरूपी औषधों द्वारा परलोक की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भी चिकित्सा कर लो। अरे ! यह आयु तो वायु के वेग से हिलते हुए पत्ते के ऊपर पड़े हुए छोटे-से जल-कण के समान क्षणभंगुर है, अतः पूर्ण प्रयत्नपूर्वक शीघ्र ही परलोकरूपी महाव्याधि की चिकित्सा में जुट जाओ; क्योंकि शीघ्र ही यत्नपूर्वक परलोकरूपी महाव्याधि चिकित्सा कर लेने पर इस लोक की व्याधि तत्काल ही अपने-आप नष्ट हो जाती है।

राघव ! जितने जन्तु हैं, वे सभी संविन्मात्र (आत्मा के ही स्वरूप) हैं और उस संवित् के संकल्प का जो विस्तार है, वही जगत् है। ऐसा यह सारा जगत् एक छोटे से परमाणु के भीतर सैकड़ों पर्वतों के विस्तार सहित विद्यमान है। आत्मचिति का जो प्रसरण है, वह बाह्य तथा आन्तर विषय है। उन विषयों का विस्तार चेतन-आकाश में ही अनुभव होता है, इसलिये जगत् का भ्रम कभी सत्य नहीं हो सकता। यदि मनुष्य अपने पुरुषार्थ के चमत्कार से भोगरूपी कीचड़ के समुद्र में फँसे हुए अपने आत्मा का उद्धार नहीं कर लेता तो फिर उसके उद्धार का दूसरा कोई उपाय नहीं है। जो मनुष्य अपने आत्मा को काबू में नहीं कर सका है, अतएव विषयभोगरूपी दलदल में फँसा है, वही मूढ़ सम्पूर्ण आपत्तियों का पात्र है। जैसे बाल्यावस्था जीवन की प्रथम सीढ़ी मानी जाती है, वैसे ही भोगों का सर्वथा त्याग, जो रागों से शान्ति प्रदान करने वाला है, मोक्ष का प्रथम सोपान है; परंतु जो अज्ञानी हैं, उनकी जीवन रूपी नदियाँ करुण-क्रन्दनों से युक्त होने के कारण अत्यन्त भयावनी होती हैं। उनमें बाह्यवृत्तियों से उत्पन्न अनेक प्रकार के विक्षोभरूपी कल्लोल साथ-साथ बहने वाली भँवरियाँ हैं। जैसे अज्ञान से दो चन्द्रमा, बाल-वेताल, मृगतृष्णा का जल और स्वप्न-संसार-ये सभी प्रकट होते हैं, वैसे ही अज्ञानियों के लिये जीव की बहिर्मुखता के कारण अनेक प्रकार के सर्ग उत्पन्न होते रहते हैं। संवित् की बहिर्मुखता के भ्रम से आकाश-मण्डल में (गन्धर्व नगर आदि) बहुत-से जगत् सत्-से अनुभूत होने लगते हैं; परंतु विचार करने पर वे सत्य नहीं ठहरते। संवित् का निर्वाण-बहिर्मुखता का न होना जगत् का अभाव है और संवित् का उन्मीलन जगत् है। वास्तव में तो न कुछ अंदर है न बाहर, जो कुछ है वह सर्वात्मक ब्रह्म ही है।

चिद्रूप, अजन्मा, अव्यक्त, एक अविनाशी, ईश्वर, स्वत्व और भावत्व से रहित ब्रह्म ही सर्वत्र व्याप्त है। वह आकाश से भी अत्यन्त शान्त है। जैसे आत्मा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

में स्वप्न का अनुभव भ्रान्ति है, वैसे ही ब्रह्मरूपी समुद्र में अविद्याजनित संसार रूपी तरंगें भी भ्रान्तिरूप ही हैं। वास्तव में तो परमात्मा में न स्वप्न है, न सृष्टि ही है। ब्रह्म एक ही है, उसमें न तो कोई आभास है, न चित्स्वरूप कोई दूसरा धर्म है और न जड़ता है। वह न सत् है, न असत् है; बल्कि वह सत्-असत् से विलक्षण सम, अविनाशी और द्वैत भाव से रहित है। पूर्वोक्त स्थिति के अनुसार आचरण करने वाले जिस सत्पुरुष को यथार्थ आत्मज्ञान उत्पन्न हो गया है, उसे मुनियों में श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे संकल्प-जनित नगर की सृष्टि पुनः उसका संकल्प न करने से नष्ट हो जाती है, वैसे ही विषयानुभव से उत्पन्न अहंकाररूप जगत् पुनः अनुभव न करने से चिद्ब्रह्म में लीन हो जाता है। वास्तव में तो यहाँ किसी भी पदार्थ का कोई स्वभाव है ही नहीं। ये जितनी अनुभूतियाँ हैं, वे सभी महाचितिरूप जल की द्रवस्वरूपा हैं। ये ही अनुभूतियाँ महाचेतनरूपी वायु के स्पन्दन हैं तथा इन्हीं को ब्रह्मरूपी आकाश की शून्यता भी जानना चाहिये। जैसे वायु और उसका स्पन्दन दोनों अभिन्न हैं, वैसे ही ब्रह्म और उसकी सृष्टि में भी कोई भेद नहीं है। परंतु अपने स्वरूप की भ्रान्ति हो जाने पर उनमें विभिन्नता प्रतीत होती है, यद्यपि वह स्वप्न में देखी गयी अपनी मृत्यु के समान असत्य है। जब तक ब्रह्म विचार स्पष्ट नहीं हो जाता, तभी तक यह भ्रान्ति रहती है; परंतु विचार स्पष्ट होते ही वह भ्रान्ति ब्रह्मरूपता को प्राप्त हो जाती है।

तेईसवाँ सर्ग समाप्त

चौबीसवाँ सर्ग

ब्रह्मा के स्वरूप का वर्णन

श्री वसिष्ठजी कहते हैं-रघुकुल भूषण राम ! तुम ऐसा समझो कि सुख के प्राप्त होने पर दुःख का और दुःख के प्राप्त होने पर सुख का नाश हो जाता है; अतः ये दोनों ही नाशवान् हैं और जिसका नाश नहीं होता, वह अविनाशी आत्मा है। बस, अब इस विषय में विशेष शास्त्रोपदेश करना व्यर्थ है। जिसके मन में इच्छाओं की परम्परा बनी हुई है, उसे सुख-दुःखादि अवश्य ही प्राप्त होते रहते हैं। इसलिये यदि उन सुखादि रोगों की भलीभाँति चिकित्सा करना अभिप्रेत है तो पहले इच्छा का ही परित्याग करना चाहिये। परमपद रूप परमात्मा में अहंकार और इस जगत् की भ्रान्ति है ही नहीं। वह तो शान्त,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

निरालम्ब, सर्वात्मक, अविनाशी मोक्षरूप है। वास्तव में तो न अहं है, न जगत् है; क्योंकि जो शान्त और अद्वितीय है, वह तो सर्वात्मक रूप है। ऐसी दशा में उसमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व कैसे और कहाँ से सम्भव हो सकते हैं। ज्ञान भी आत्मस्वरूप ही है, अतः जो कुछ दीखता है, वह सब तद्रूप ही है। इसलिये अहंकार सहित सारा जगत् परमात्मा से अभिन्न है। एक आत्मा ही जब अज्ञान के कारण अनेकरूपता को प्राप्त हुआ-सा दीखता है, तब वही संसार कहलाता है और वह संसार स्वयं असत् है, इसी कारण तत्त्वदृष्टि से विचार करने पर उसकी सत्ता उपलब्ध नहीं होती। जैसे प्रवहणशील होने के कारण सागर तरंगों के रूप में प्रतीत होता है, उसी तरह चिद्रूप होने के कारण यह ब्रह्म ही अपनी सत्ता से निर्मल जगत् के रूप में विकसित हुआ-सा जान पड़ता है। जैसे मेघाच्छादित आकाश में वृक्ष, हाथी, घोड़े और मृग आदि का आकार परिलक्षित होता है, वैसे ही अवयव एवं आकार रहित परब्रह्म में सृष्टि और अहंकार का रूप दीख पड़ता है। यह सारा जगत् परब्रह्म में उसका अवयव-सा प्रतीत होता है। रामभद्र ! उसकी उपमा यों समझो-जैसे वटवृक्ष और उसके बीज में कार्य-कारण भाव है, वैसी ही कार्य-कारणता जगत् और ब्रह्म में है। वस्तुतः तो न तुम लोग हो, न हमलोग हैं, न ये जगत् हैं और न आकाश आदि ही हैं; बल्कि सर्वोपद्रव शून्य अपरोक्ष ब्रह्म ही सर्वत्र अशेषरूप से वर्तमान है।

रघुकुल तिलक ! जैसे वायु और स्पन्दन में भेद-प्रतीति होती है, वैसे ही अद्वितीय ब्रह्म और जीवात्मा में भी अज्ञान से भेद प्रतीत होता है; अतः इस विषय में ऐसा समझना चाहिये कि चित् और अचित् का भेददर्शन ही संसार है तथा अद्वितीय ब्रह्म और जीवात्मा की एकता ही मोक्ष है। इस प्रकार यह सारा जगत् निर्विकार परब्रह्ममय है, अतः इसे भी निर्विकार, आदि-अन्तरहित और निरामय ही समझो। संकल्पजनित नगर के समान द्वैता द्वैत-विकार रूप यह जगत् जीव के अपने ही संकल्प से उत्पन्न होता है और अपने ही संकल्प से नष्ट भी हो जाता है। वस्तुतः इस जगत्-रूप ब्रह्म में कुछ भी उत्पन्न नहीं होता- ठीक वैसे ही, जैसे जल की तरंग का उठना वास्तव में उत्पन्न होना नहीं है और उसका नष्ट होना वास्तव में नाश नहीं है; क्योंकि दोनों अवस्थाओं में वह एकमात्र जल ही है।

रघुनन्दन ! क्षणमात्र ही एक देश से दूसरे अत्यन्त दूर देश में प्राप्त हुए

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

संवित् (ज्ञान) का उन दोनों देशों के मध्य में जो निर्मलरूप होता है, वही परब्रह्म परमात्मा का सर्वोत्कृष्ट रूप है। जीवन्मुक्तों की स्थिति तथा आचार के अनुसार व्यवहार करते हुए उस निराभास, सत्य तथा वासना और इच्छा से रहित चित्स्वरूप से सुमेरु गिरि की तरह कभी चलायमान न होना ही विद्या है तथा भलीभाँति विवेक-विचारपूर्वक अन्वेषण करने पर जिसकी उपलब्धि नहीं होती, वही अविद्या है। अविद्या का अभाव हो जाने पर क्या कहीं चिति और चेत्य का भेद सम्भव हो सकता है ? अर्थात् नहीं। और भेद का अभाव हो जाने पर फिर चिति अपने अंदर कैसे किसी को प्रकट कर सकेगी; इसलिये शान्ति-विषयशून्य चिन्मात्र स्थिति ही स्वतः प्रकट होती है। वास्तव में तो ब्रह्म और जगत् एक ही हैं, अज्ञान के कारण वे अनेक-से अर्थात् विभिन्न जान पड़ते हैं। अज्ञान से ही सर्वव्यापी, परिपूर्ण तथा शुद्ध ब्रह्म अपूर्ण एवं अशुद्ध-सा प्रतीत होता है। वही ब्रह्म अज्ञान से निर्विकार होते हुए विकारयुक्त, शान्त एवं समरूप होते हुए अशान्त एवं विषम, सत् होते हुए अदृश्य होने के कारण असत्, तद्रूप होते हुए अतद्रूप, विभाग रहित होते हुए विभाग वाला, जड़ता रहित होते हुए जड़तायुक्त, निर्विषय होते हुए विषयी, अवयवशून्य होते हुए सावयव, स्वप्रकाश होते हुए घनान्धकार और पुरातन होते हुए नूतन के समान प्रतीत होता है। वह परमाणु से भी अत्यन्त सूक्ष्म होकर जगत्-समूहों को अपने उदर में समेट लेने वाला है।

वत्स राम ! वह अनन्त और अपार होकर भी किसी एक स्थान पर नियतरूप से स्थित नहीं रहता तथा आकाश में भी वनकी कल्पना और पर्वत का निर्माण करने में तत्पर रहता है। (अर्थात् असम्भव को भी सम्भव कर सकता है।) वह सूक्ष्म पदार्थों में सबसे सूक्ष्म, स्थूल में सबसे स्थूल, गरिष्ठों में सबसे अधिक गरिष्ठ और श्रेष्ठों में सबसे बढ़कर श्रेष्ठ है तथा कर्ता, कर्म और कारण से रहित है। वह जगत् का उद्गमस्थान होकर भी नित्य अरण्य की भाँति शून्य है और असंख्य पर्वतों की कठोरता से युक्त होने पर भी आकाश के लवांश से भी कोमल है। वह प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक कालस्वरूप होकर प्रायः सबसे परे, प्राचीन होने पर भी कोमल और नवीन, प्रकाशस्वरूप होकर भी अन्धकार के सदृश मलिन और प्रलयकालीन तमस्वरूप होकर भी प्रकाशरूप से सर्वत्र व्याप्त है। वह प्रत्यक्ष होते हुए भी आँखों की पहुँच के बाहर, परोक्ष

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

होते हुए भी सामने उपस्थित, चिद्रूप होते हुए भी जड़ और जड़ होते हुए भी चिद्रूप है। वह ब्रह्म अनहंभावरूप होकर अहंभाव और अहंभावरूप होकर अनहंभाव तथा अन्यरूप होकर आत्मरूप और आत्मरूप होकर अन्यरूप-सा स्थित है। इस चिद्रूपी परिपूर्ण सागर के भीतर ये त्रिभुवनरूपी तरंगें, द्रवता ही जिनका स्वभाव है, स्फुरित-सी हो रही हैं। यह चिद्रूप परमदेव यद्यपि देश-काल आदि अवयवों से रहित है, तथापि रात-दिन असद्रूप जगत् का वैसे ही विस्तार करता रहता है, जैसे जल तरंगसमूह का। इस चिद्रूपी जल की जो द्रवता है वही जगत् कहलाता है। उस जगत् के संवित्-द्वारा उपलब्ध स्वादिष्ट रूप, रस आदि विषय ही अंग हैं और वह भुवनरूपी आवर्तों से युक्त है। इस उद्दीप्त चिति के प्रकाशित रहने पर सम्पूर्ण प्रकाशशील पदार्थों की श्री उसके सामने शान्त हो जाती है और पुनः उसी से उत्पन्न भी होती है, जैसे सूर्य आदि के तेज से उनका अपना प्रकाश। यह चिदाकाश रंगभूमि के समान है, इसमें नियति (ईश्वर का विधान) रूपी नर्तकी भुवन-रचनारूपी नाटक के विभ्रमों से युक्त होकर अनवरत कार्य में संलग्न हो रात-दिन नाचती रहती है। इस परब्रह्म परमात्मा का उन्मेष ही जगत् का सौन्दर्य है और निमेष ही प्रलय का सूचक है। वास्तव में तो वह उन्मेष और निमेष से रहित होकर अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है।

चौबीसवाँ सर्ग समाप्त

पच्चीसवाँ सर्ग

इच्छा का त्याग ही मुक्ति है

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुकुलभूषण राम ! जितने अनर्थस्वरूप सांसारिक पदार्थ हैं, वे सभी जल में आवर्त की भाँति भिन्न-भिन्न रूप धारण करके चमत्कार पैदा करते हैं अर्थात् इच्छाओं को उत्पन्न करके चित्त को मोह में डाल देते हैं; परंतु जैसे सभी लहरें जलस्वरूप ही हैं, वैसे ही सम्पूर्ण पदार्थ वस्तुतः नश्वर स्वभाव के ही हैं। जैसे बालक की चिन्ता से कल्पित यक्ष-पिशाच आदि का रूप उसके सामने आकाश में दीख पड़ता है; परंतु मुझ-जैसे ज्ञानी के लिये वह कुछ भी नहीं है, उसी तरह मेरी दृष्टि में तत्त्वतः यह विश्व कुछ नहीं है, परंतु अज्ञानी के चित्त में यही सत्य-सा प्रतीत होता है। यह विश्व पत्थर पर खुदी हुई पुतलियों की सेना की भाँति रूपालोक तथा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

बाह्य और आभ्यन्तर विषय से शून्य है, फिर इसमें विश्वता कैसी ? परंतु अज्ञानियों के लिये यह रूपालोक और मनन आदि से युक्त प्रतीत होता है। श्रीराम ! जगत् को जगद्रूप से जानना भ्रम है और इसे जगद्रूप से न जानना भ्रमशून्यता है। राघव ! त्वत्ता और अहंता आदि सारे विभ्रम-विलास शान्त, शिव तथा शुद्ध ब्रह्मरूप ही हैं, इसीलिये मुझे ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता-ठीक वैसे ही जैसे आकाश में कानन दृष्टिगोचर नहीं होता।

श्रीराम ! जिसकी चेष्टा प्रारब्धप्राप्त कर्मों में कठपुतली की तरह इच्छाशून्य तथा व्याकुलतारहित होती है, वही विश्रान्त मनवाला जीवन्मुक्त मुनि है। जीवन्मुक्त ज्ञानी को इस जगत् का जीवन बाँस की तरह बाहर-भीतर से शून्य, रसहीन और वासनारहित प्रतीत होता है। जिसकी इस दृश्य-प्रपंच में रुचि नहीं है और हृदय में जिसे चिन्मात्र अदृश्य ब्रह्म ही अच्छा लगता है, उसने मानो बाहर-भीतर से शान्ति प्राप्त कर ली और वह इस भवसागर से पार हो गया।

रघुनन्दन ! शास्त्रज्ञों का कहना है कि मन का इच्छा रहित हो जाना ही समाधि है; क्योंकि मन को जैसी शान्ति इच्छा का त्याग कर देने प्राप्त होती है, वैसी सैकड़ों उपदेशों से भी उपलब्ध नहीं होती। इच्छा की उत्पत्ति से जैसा दुःख प्राप्त होता है, वैसा दुःख तो नरक में भी नहीं मिलता; और इच्छा की शान्ति से जैसा सुख मिलता है, वैसे सुख का अनुभव तो ब्रह्मलोक में भी नहीं होता। इसीलिये समस्त शास्त्रों, तपस्याओं, यमों और नियमों का पर्यवसान इतने में ही है कि इच्छा मात्र को ही दुःखदायक चित्त कहते हैं और उस इच्छा की शान्ति ही मोक्ष कहलाता है। प्राणी के हृदय में जैसी-जैसी और जितनी-जितनी इच्छा उत्पन्न होती है, उतनी-उतनी ही उसके दुःखों के बीजों की मूँठ बढ़ती जाती है तथा विवेक-विचार द्वारा जैसे-जैसे उसकी इच्छा क्षीण होती जाती है, वैसे-वैसे ही उसके दुःखों की चिन्तारूपी विषूचिका शान्त होती जाती है। सांसारिक विषयों की इच्छा आसक्तिवश ज्यों-ज्यों घनीभूत होती जाती है, त्यों-त्यों दुःखों की चिन्तारूपी विषैली तरंगें बढ़ती जाती हैं। यदि अपने पौरुष-प्रयत्न के बल से इस इच्छारूपी व्याधि की चिकित्सा न की जा सकी तो मैं यह दृढ़तापूर्वक समझता हूँ कि इस व्याधि से छूटने के लिये दूसरी कोई औषध है ही नहीं। यदि एक ही साथ सम्पूर्ण इच्छाओं का पूर्णतया त्याग न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

किया जा सके तो धीरे-धीरे थोड़ा करके ही उसका त्याग करना चाहिये। रहना चाहिये इच्छात्याग के साधन में संलग्न ही; क्योंकि सन्मार्ग का पथिक दुःखभागी नहीं होता। जो नराधम अपनी इच्छाओं के क्षीण करने का प्रयत्न नहीं करता, वह मानों दिन-पर-दिन अपने-आपको अन्धकूप में फेंक रहा है। इच्छा ही दुःखों को जन्म देने वाली इस संसृतिरूपी बेल का बीज है। यदि उसे आत्मज्ञान रूपी अग्नि से भली भाँति जला दिया जाय तो यह पुनः अंकुरित नहीं होती।

रघुकुलभूषण राम ! इच्छामात्र ही संसार है और इच्छा का अवेदन-अभाव ही निर्वाण है। इसलिये निरर्थक नाना प्रकार के उलट-फेर में न पड़कर केवल ऐसा यत्न करना चाहिये कि इच्छा उत्पन्न ही न हो। जिसे अपनी बुद्धि से इच्छा का विनाश करना दुस्साध्य प्रतीत होता हो, उसके लिये गुरु का उपदेश और शास्त्र आदि निश्चय ही निरर्थक हैं। जैसे अपनी जन्म-भूमि जंगल में हरिणी की मृत्यु निश्चित है, वैसे ही नानाविध दुःखों का विस्तार करने वाली इच्छारूपी विष के विकार से युक्त इस जगत् में मनुष्यों की मृत्यु बिल्कुल निश्चित है। यदि मनुष्य इच्छा द्वारा बालकों-जैसा मूढ़ न बना दिया जाय तो उसे आत्मज्ञान के लिये बहुत थोड़ा ही प्रयत्न करना पड़े। इसलिये सब तरह से इच्छा को ही शान्त करना चाहिये; क्योंकि उसकी शान्ति से परम पद की प्राप्ति होती है। इच्छारहित हो जाना ही निर्वाण है और इच्छायुक्त होना ही बन्धन है; इसलिये यथाशक्ति इच्छा को जीतना चाहिये। भला, इतना करने में कौन-सी कठिनाई है ? जन्म, जरा और मृत्युरूप करंज और खैर के वृक्ष-समूहों का बीज इच्छा ही है, अतः उसे शमरूपी अग्नि से सदा भीतर-ही-भीतर जला डालना चाहिये। जहाँ-जहाँ इच्छा का अभाव है, वहाँ-वहाँ मुक्ति निश्चित ही है; अतः विवेक-वैराग्य आदि उपायों की प्राप्तिपर्यन्त अपनी शक्ति के अनुसार उत्पन्न हुई इच्छा का सर्वथा विनाश कर डालना चाहिये। इसी तरह जहाँ-जहाँ इच्छा का सम्बन्ध है, वहाँ-वहाँ पुण्य-पापमयी दुःखराशियों तथा विस्तृत पीड़ाओं से युक्त बन्धन-पाशों को उपस्थित ही समझो। ज्यों-ज्यों पुरुष की आन्तरिक इच्छा शान्त होती जाती है, त्यों-त्यों उसका मोक्ष के लिये कल्याणकारक साधन बढ़ता जाता है। विवेकहीन आत्मा की इच्छा को जो भली भाँति पूर्ण करना है, वही मानो संसाररूपी विष-वृक्ष को सींचना है।

पच्चीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

छब्बीसवाँ सर्ग

तत्त्वज्ञान हो जाने पर इच्छा उत्पन्न नहीं होती

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! यदि आत्मा के अतिरिक्त यहाँ कोई दूसरी वस्तु विद्यमान हो, तब तो इच्छापूर्वक उसे प्राप्त करने की चेष्टा की जाय; परंतु जब उसके सिवा दूसरी किसी वस्तु की सत्ता है ही नहीं, तब आत्मा से भिन्न किस पदार्थ की इच्छा कैसे की जाय ? वह चिदात्मा आकाशरूप है और स्वयं आकाश ही आकाशरूप विषय और उसका ज्ञाता है तथा जगत् का आभास भी आकाशस्वरूप ही है-ऐसी दशा में यहाँ इच्छा का विषय ही क्या है। जहाँ निर्वाण है, वहाँ दृश्य-प्रपंच आदि नहीं रहते और जहाँ दृश्य-प्रपंच वर्तमान है, वहाँ निर्वाण का रहना असम्भव है। इस प्रकार छाया और आतप की भाँति इन दोनों के परस्पर सहयोग का अनुभव नहीं होता। यदि ये दोनों एक साथ रहते तो परस्पर बाधित होने के कारण दोनों असत्य हो जाते और असत्य में निर्वाण रहता नहीं; क्योंकि निर्वाण का अनुभव अजर-अमर और दुःखरहित रूप से होता है। अधम प्राणियो ! दृश्य-प्रपंच तो आत्मा को बन्धन में डालने वाला है, अतः तुम लोग उसे भस्म क्यों नहीं कर डालते और स्पष्टरूप से स्फुरित होती हुई परमार्थ-वस्तु का दर्शन क्यों नहीं करते।

जब कार्य-कारणभाव आदि सब कुछ ब्रह्मरूप ही भासने लगता है तभी इस विस्तृत चिन्मात्रस्वरूप प्रत्यगात्मा में ब्रह्मता सिद्ध होती है अतः जो लोग इस एकमात्र चिदाकाशस्वरूप सर्वात्मक ब्रह्म के सर्वत्र व्याप्त रहते हुए ब्रह्मज्ञान के लिये अन्य साधनों का अन्वेषण करते फिरते हैं, उन मृगरूपी शिष्यों से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। जब न दुःख है न सुख है, जगत् भी शान्त और मंगलमय है तथा चिन्मात्रता से भिन्न दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं, तब इच्छा कहाँ से उत्पन्न हो सकती है। जैसे मिट्टी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, वैसे ही सदात्मक जगत् और अहंता आदि दृश्य-प्रपंच में ब्रह्म के सिवा और कुछ नहीं है।

श्रीरामजी ने पूछा-मुनीश्वर ! यदि ऐसी बात है तब तो इच्छा का उदय हो या न हो; क्योंकि वह भी तो ब्रह्मरूप ही ठहरी। ऐसी दशा में उसके विधिनिषेध से कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! आत्मतत्त्व का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इच्छा ब्रह्मरूप ही हो जाती है, उससे भिन्न नहीं रहती; अतः तुमने जैसा समझा है, वह बिल्कुल सत्य है; किंतु इस विषय में मेरी यह बात और सुनो। जब-जब आत्मज्ञान का उदय होता है, तब-तब इच्छा शान्त हो जाती है जैसे सूर्योदय होने पर रात्रि विलीन हो जाती है, वैसे ही आत्मज्ञान हो जाने पर इच्छा आदि सभी विकार शान्त हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों ज्ञान का उदय होता है, त्यों-त्यों द्वैत की शान्ति और वासना का विनाश होता जाता है। ऐसी स्थिति में भला, इच्छा कैसे उत्पन्न हो सकती है। सम्पूर्ण दृश्य पदार्थों से वैराग्य हो जाने के कारण जिसकी किसी विषय में इच्छा उत्पन्न होती ही नहीं, उस पुरुष की अविद्या शान्त हो जाती है और निर्मलमुक्ति का उदय हो जाता है। फिर तो उसका दृश्य-प्रपंचविषयक वैराग्य और अनुराग-दोनों नष्ट हो जाते हैं। उस समय उसका एकमात्र ऐसा स्वभाव ही हो जाता है कि उसे द्रष्टा और दृश्य की शोभा रुचती ही नहीं। ऐसी परिस्थिति में उस तत्त्वज्ञानी की इच्छा और अनिच्छा-दोनों ही ब्रह्मस्वरूप ही हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है अथवा तत्त्वज्ञानी में अवश्य ही इच्छा उत्पन्न ही नहीं होती। यदि किसी मनुष्य को तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो गयी तो उसकी इच्छा शान्त हो जाती है; क्योंकि प्रकाश और अन्धकार की तरह इच्छा और तत्त्वज्ञान--ये दोनों एक साथ रह ही नहीं सकते। और जिसकी सारी इच्छाएँ शान्त हो गयी हैं, उसको भला, कौन किस प्रयोजन के लिये क्या उपदेश दे सकता है। जो इच्छाओं का अत्यन्त क्षीण हो जाना, समस्त प्राणियों को आह्लादित करना अथवा आत्मानन्द का अनुभव है, वही तत्त्वज्ञान की प्राप्ति का लक्षण है। तत्त्वज्ञानी को जब किसी भी भोगपदार्थ में स्वाद का अनुभव नहीं होता, तब सारा दृश्य-प्रपंच उसे फीका लगने लगता है। उस समय उसकी इच्छा का प्रसार रुक जाता है और तभी उसे मुक्ति भी मिल जाती है। तत्त्वज्ञान हो जाने से जो एकता और अनेकता अर्थात् द्वैताद्वैत के प्रपंच से मुक्त होकर शान्त हो गया है, उसके इच्छाऔर अनिच्छा आदि सभी भाव शिवात्मक-परब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। उसका न इच्छा से अनिच्छा से, न सद्वस्तु से न असद्वस्तु से, न अपने से न पराये से, न जीवन से न मरण से-यों किसी से भी सरोकार नहीं रह जाता।

रघुवीर ! जिसे निर्वाण का तत्त्वज्ञान हो गया है, उसके हृदय में तो इच्छा उत्पन्न होती ही नहीं। यदि कदाचित् उसमें इच्छा-सी उत्पन्न हो भी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जाय तो वह शाश्वत ब्रह्मस्वरूप ही होती है। 'यह जगत् न दुःखरूप है न सुखरूप, बल्कि अज, शिवस्वरूप और शान्त है,-ऐसी भावना से जिसका अन्तःकरण शिला की भाँति सुदृढ़ हो गया है, उसे विद्वानलोग तत्त्वज्ञ कहते हैं। इस प्रकार पूर्ववर्णित परमात्मतत्त्व का निश्चय करके जो धीरात्मा योगी निरतिशयानन्दस्वरूप परमात्मा की भावना से विष को अमृतरूप में परिवर्तित करदेने की भाँति दुःख का सुखरूप में अनुभव करता है, वह प्रबुद्ध कहा जाता है। जगत् की सत्ता का अभाव समझ में आ जाने पर जब एकमात्र दृश्यानुभव रहित चिन्मय आकाश ही सर्वत्र व्याप्त दीखता है, तब सबमें समानरूप से रहने वाले, सौम्य, शान्त एवं आनन्दमय परमात्मा में स्थिति हो जाने पर जीव का अहंता का भ्रम मिट जाता है। यह जो कुछ चराचरात्मक जगत् दिखायी पड़ रहा है, वह शान्त चिदाकाशात्मक ब्रह्मरूप ही है। इसके सिवा और जो कुछ दीखता है, वह दूसरे के मनोराज्य के नगर की तरह असत् है। स्वप्न में देखे गये नगर और बालकद्वारा कल्पित प्रेत की तरह यह जो कुछ भी दीख रहा है, उसमें असत्यता के अतिरिक्त और क्या है अर्थात् वह निश्चय ही असत्य है। चूँकि सत्य ब्रह्म ही 'अहम्' 'इदम्' आदि रूप से असत्य-सा भासित होता है, इसलिये यह भ्रान्ति भ्रान्तिग्रस्त पुरुष के बिना ही स्फुरित होती है; अतएव वह असत्य है।

रामभद्र ! वास्तव में तो चाहे इच्छा हो या अनिच्छा, सृष्टि हो अथवा प्रलय; इससे यहाँ न तो किसी की कोई हानि है और न इससे कुछ लाभ ही है। ये जो इच्छा-अनिच्छा, सत्-असत्, भाव-अभाव और सुख-दुःख आदि की कल्पनाएँ हैं, इनमें से किसी का भी तत्त्वज्ञानी के चिदाकाश में उत्पन्न होना सम्भव नहीं है। विवेकद्वारा प्राप्त हुई शान्ति से तृप्त हुए जिस विवेक की इच्छाएँ दिन-पर-दिन क्षीण होती जाती हैं, उसी को मोक्ष का अधिकारी कहा जाता है। किंतु जिस अविवेकी का हृदय इच्छारूपी छुरी से विद्ध हो गया है, उसमें ऐसी भीषण वेदना होती है, जिसे ये मणि, मन्त्र और महौषध आदि भी मिटाने में समर्थ नहीं हो सकते। वस्तुतः तो इस परमात्मा में जगत् आदि कुछ भी पदार्थ न तो उत्पन्न होता है और नष्ट ही होता है; बल्कि निद्रागत स्वप्न की तरह केवल प्रतिभासित होता है। प्रतिभासमात्र होने के कारण पृथ्वी आदि कारणों सहित इस देह की भी सत्ता नहीं है, केवल चिन्मात्र ब्रह्म ही स्थित है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

रघुकुलतिलक ! योगी लोग ज्ञानरूप सिद्धौषध-चूर्ण के प्रयोग से आधे क्षण में ही जगत् को आकाशरूप में और आकाश को तीनों लोकों के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। जैसे आकाश में सिद्धसंकल्प द्वारा कल्पित असंख्य नगर गुप्तरूप से स्थित रहते हैं, वैसे ही अनन्त चिन्मय परब्रह्म के संकल्प में सहस्त्रों सृष्टियाँ अन्तर्हित रहती हैं। जैसे महासागर में उठी हुई विशाल लहरियाँ परस्पर संयुक्त होने पर भी एक-दूसरी से पृथक्-सी स्थित जान पड़ती हैं; परंतु वास्तव में वे जल से भिन्न नहीं हैं, वैसे ही महान् चेतन ब्रह्म में बहुत-सी बड़ी-बड़ी सृष्टियाँ परस्पर मिली हुई होने पर भी पृथक्-सी स्थित हैं। वास्तव में तो वे उससे पृथक् नहीं हैं। श्रीराम ! सारे भूत-प्राणी अविनाशी परम शिवस्वरूप ब्रह्म में स्थित हैं और उसी में ये सारी सृष्टियाँ भी आकाश में शून्यता के उल्लास की भाँति स्वच्छन्दरूप से स्थित हैं। राघव ! काल, उसके अन्तर्गत ब्रह्माण्ड-समूह, उसके भीतर चौदह भुवन, उन भुवनों में 'अहं' 'त्व' आदि भोक्ता, भोक्ताओं के भोगों के साधनभूत इन्द्रियसमूह, इन्द्रियों के विषय शब्द-स्पर्श आदि और अद्भुत भोग-यह सब कुछ एकमात्र शान्त, अज, अव्यय चिदाकाश ही है-यों निश्चय हो जाने पर राग आदि किसी भी विकार का उत्पन्न होना सम्भव नहीं है।

छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त

सत्ताईसवाँ सर्ग

चेतन ही जगत् है-इसका तथा तत्त्वज्ञानी और जगत् के स्वरूप का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! ब्रह्म का स्वरूप सबसे सूक्ष्म है, इसलिये जो-जो वस्तु जिस-जिस रूप में अत्यन्त अणुस्वरूप है, वह-वह उसी-उसी रूप में सूक्ष्मभूत ब्रह्मवस्तु है। ऐसी दशा में ब्रह्मवस्तु ही सर्वत्र वर्तमान है। जैसे घटादि पदार्थ अगल-बगल तथा ऊपर-नीचे सर्वत्र मिट्टी ही है, उससे भिन्न नहीं, वैसे ही इस जगत् को जिसने जिस रीति से परीक्षा करके देखा, उसे वस्तुतः यह ब्रह्मस्वरूप ही दीख पड़ा। जैसे सुवर्ण के भूषणादि सैकड़ों रूपों में परिवर्तित हो जाने पर भी उन रूपों में सुवर्णत्व ही वर्तमान रहता है, वह दूसरा कुछ नहीं हो जाता, वैसे ही शान्त ब्रह्म के अनेकों जगद्भाव तथा जीवभाव में परिणत होने पर भी वह उनमें अपने शान्तब्रह्मस्वरूप से ही स्थित रहता है।

राघव ! जिस महात्मा पुरुष की दृष्टि में सारा विश्व ही निराकार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चेतनाकाशरूप ब्रह्म में प्रतीत होता है, उस मनोव्यापारशून्य योगी को किसी निमित्त से किसी पदार्थ की इच्छा कैसे उत्पन्न हो सकती है ? जो पूर्णतया शान्त तथा विशेषरूप से इच्छाओं से रहित हो गया, उस सत्ता-असत्ता अर्थात् वैभव एवं दारिद्रय को समानरूप से देखने वाले ज्ञानी की महिमा का आकलन करने में कौन समर्थ हो सकता है। जो विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, आत्मप्रकाशसम्पन्न और चिदाकाशरूप हो गये हैं, उनका न कुछ बिगड़ता है और न कुछ बनता है; किंतु जो अज्ञानी है, उसके मृगतृष्णारूपी नदी के तट के समान भ्रान्त आत्मा में जन्म-मरण असत् होते हुए भी भ्रमवश सत्-से प्रतीत होते हैं। जब उनकी सम्यकरूप से परीक्षा कर ली जाती है, तब न तो भ्रान्ति रह जाती है, न परीक्षक रहते हैं और न जनम-मरण का ही नाम-निशान रह जाता है। उस समय केवल अविनाशी शान्त ब्रह्म ही रह जाता है। जो मैं हूँ, जो तुम हो, जो इच्छाएँ एवं दिशाएँ हैं, जो क्रिया, काल और आकाशादि हैं, तथा जो लोकालोक आदि पर्वत हैं, उन सबमें शिवस्वरूप चिदाकाश ब्रह्म ही व्याप्त है। इसी तरह जो बाह्य और आन्तर विषय हैं, जो भूत आदि तीनों काल हैं, जो जगत् है तथा जो जरा, मरण और पीड़ा आदि हैं, वे सभी महाचिदाकाशस्वरूप ब्रह्म ही हैं। जो वासनारहित हो गया है, जिसे वर्तमान भोग नीरस मालूम देते हैं और भावी भोगों की जिसे इच्छा नहीं है, ऐसे साधन के लिये सत्-शास्त्र के अतिरिक्त आत्मसुख की प्राप्ति का हेतु और क्या हो सकता है।

रघुनन्दन ! जिसे संसार को क्षीण कर देने वाले स्वाभाविक सत्य अर्थ का साक्षात्कार हो गया है, वह पुरुष संकल्परहित हो जाता है; क्योंकि वह संकल्प को आत्मा से पृथक् जानता ही नहीं, इसलिये यह संकल्पाभास असत् हैं। जिसके आवरण क्षीण हो गये हैं और जिसकी सारी इच्छाएँ शान्त हो गयी हैं, वह परमानन्दरूपी अमृत से परिपूर्ण हो जाता है और निरतिशयानन्द-स्वरूप ब्रह्म-सत्ता से ही सुशोभित होता है। जैसे पूर्णिमा के चन्द्रमा से सारा आकाश-मण्डल उद्दीप्त हो जाता है, वैसे ही जिसकी बुद्धि ज्ञानालोक से प्रकाशित है और जो समस्त संदेहरूपी घोर अन्धकारात्मक कुहासे को छिन्न-भिन्न कर देने के लिये वायु के समान है, उस पुरुष से सारा देश उद्भासित हो उठता है। विचारजन्य तत्त्वज्ञान से देखने पर जिसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, वह सदा के लिये सत्ताहीन है; इसलिये जगत् का रूप स्वरूपरहित है और ब्रह्म स्वयं अपने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ही रूप में स्थित है।

श्रीराम ! जैसे स्वप्नद्रष्टा पुरुषों को स्वप्न सत्–सा प्रतीत होता है, वैसे ही अज्ञानियों की दृष्टि में मेरा शरीर भी सत् ही है; परंतु मेरी दृष्टि में वह निश्चय ही उसी प्रकार असत् है, जैसे सुषुप्त पुरुष की दृष्टि में स्वप्न। उसके साथ जो मेरा व्यवहार होता है, वह स्व–स्वरूपस्थित परिब्रह्मस्वरूप ही है; परंतु वे जो कुछ देखते हैं, भले ही देखा करें, उनसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मैं अपने वसिष्ठरूप में तो कुछ नहीं हूँ, किंतु स्व–स्वरूप से परब्रह्म में स्थित हूँ। यह व्यापक ब्रह्मसत्ता मानो तुम्हारे ही लिये वसिष्ठरूप से प्रकट हुई है और मेरी यह वाणी भी ब्रह्मसत्तारूप ही है। जिसे प्रतिकूल दुःख आदि भी अनुकूल प्रतीत होते हैं, उस शुद्ध ब्रह्मस्वरूप तत्त्वज्ञानी के हृदय में न तो भोगों की इच्छा ही जाग्रत् होती है और न मोक्षेच्छा ही। मनुष्यों का जो यह बन्धन और मोक्ष का क्रम है, यह तो स्वभाव के ही अधीन है। यह संसार–पीड़ा तो मोह के कारण ही उत्पन्न हुई है। कैसा आश्चर्य है जो गौ के खुर में सागर का भ्रम हो रहा है। जब–जब ज्ञानरूप सूर्य अपने पूर्ण प्रकाश से स्थित होता है, तब–तब भोगरूपी अन्धकार का नाश हो जाता है और उसका अस्तित्व रहते हुए भी वह अनुभव में नहीं आता। यों भोगान्धकार के नष्ट हो जाने पर बुद्धि आदि कारणों का समूह अज्ञान की सत्ता से रहित हो जाता है और ब्रह्माकार वृत्ति के प्रकाश से उद्भासित हो उठता है। इसीलिये वह दीपक के प्रकाश की तरह ब्रह्मभूत होकर चारों ओर भासित होने लगता है।

सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त

अट्ठाईसवाँ सर्ग

जीवन्मुक्त के द्वारा जगत् के स्वरूप का ज्ञान

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! विषयभोग भवरूपी महान् रोग हैं, भाई–बन्धु आदि सुदृढ़ बन्धन हैं और धन–सम्पत्ति महान् अनर्थ के कारण हैं–यों समझकर अपने द्वारा आत्मा में ही शान्ति–लाभ करना चाहिये। जैसे सुषुप्ति–अवस्था में पड़े हुए पुरुष को स्वप्न का भान नहीं होता और स्वप्नद्रष्टा को सुषुप्तिका ज्ञान नहीं होता, वैसे ही ब्रह्मस्वरूप में स्थित पुरुष को जगत् का भान नहीं होता और जगज्जाल में फँसा हुआ ब्रह्मस्वरूप से अनभिज्ञ रहता है। परंतु जिसकी बुद्धि पूर्णतया शान्त हो गयी है तथा जो जीवन्मुक्त तत्त्वज्ञानी है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वह ब्रह्म और जगत् के प्रकाशमानरूप को वैसे ही जानता है, जैसे जाग्रत् और स्वप्नद्रष्टा को क्रमशः उनके रूप की जानकारी रहती है। तत्त्वज्ञानी को इस सम्पूर्ण जगत् के यथार्थ स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है, जिससे वह शरत्कालीन मेघ के समान शुद्धात्मा होकर भलीभाँति शान्त हो जाता है।

रामभद्र ! जैसे जहाँ सूर्य रहेंगे वहाँ प्रकाश का रहना अवश्यम्भावी उसी प्रकार जहाँ तत्त्वज्ञानमयी बुद्धि रहेगी, वहाँ विषयों से पूर्ण वैराग्य रहेगा ही यह जगद्रूपी चित्र जो कर्ता, कर्म और करण आदि सामग्रियों से रहित, द्रष्टा, दृश्य और दर्शन से शून्य तथा उपादेय पदार्थों से हीन है, दीवालरूपी आधार के बिना ही आविर्भूत हुआ है। तत्वज्ञान की प्राप्ति हो जाने से जाग्रत्-काल में जो राग और वासना से रहित सुषुप्ति-अवस्था प्राप्त होती है, उसे तत्त्वज्ञ पुरुष स्वभाव कहते हैं और उसमें परिनिष्ठित हो जाना मुक्ति कहलाती है। ऐसी निष्ठा प्राप्त हो जाने पर तत्त्वज्ञानी को कर्ता, कर्म और करण से हीन, द्रष्टा दृश्य और दर्शन से शून्य तथा बाह्य और आभ्यन्तर विषयों से रहित ब्रह्म जगद्रूप से स्थित जान पड़ता है अर्थात् जगत् ब्रह्मस्वरूप ही प्रतीत होता है। उस समय उस ज्ञानी को ऐसा लक्षित होता है कि प्रकाशमान वस्तु में प्रकाशमान वस्तु प्रकाशित हो रही है, पूर्ण में पूर्ण स्थित है और द्वैताद्वैत रहित प्रत्यगात्मा में द्वैताद्वैतशून्य ब्रह्म ही अखण्ड एकरसरूप से स्थित है। वस्तुतः तो ब्रह्म के सृष्टिरूप में स्थित होने पर भी आकाशमण्डल के सदृश शान्त एवं सत्यस्वरूप स्वयं परमात्मा ही अपने सत्यस्वरूप में शिला-जठर की भाँति अक्षुब्ध हुआ स्थित है। जैसे भविष्य में जिस नवीन नगर का निर्माण करना होता है, उसका नक्शा पहले से ही चित्त में वर्तमान रहता है, उसी तरह यह पूर्ण प्रकाशस्वरूप जगत् ब्रह्म में ही स्थित है। जैसे गन्धर्वनगर एवं तल-मलिनता आदि दोषों का बाध हो जाने पर आकाश अकस्मात् ही अपने शून्यस्वभाव से दीखने लगता है, उसी तरह तत्त्वज्ञान हो जाने पर जब सृष्टि उत्पत्ति-विनाश से रहित मिथ्या सिद्ध हो जाती है, तब हठात् आनन्दघन ब्रह्म ही विशेषरूप से भासित होने लगता है।

रघुकुलभूषण राम ! जैसे किसी सहायक की अपेक्षा किये बिना ही वायु में स्पन्दन होता है और जैसे सूर्य आदि की प्रभा का प्रसार होता है, वैसे ही यह जगत् परब्रह्म परमात्मा में स्थित है और उसी से प्रादुर्भूत होता है। जैसे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जल में द्रवत्व, आकाश में शून्यता और वायु में स्पन्दन ओतप्रोत है, वैसे ही परब्रह्म परमात्मा में अनिर्वचनीय विवर्तरूप यह जगत् है। महाचिद्रूप महाकाश में जो यह जगत् भासित होता है, वह चिद्रूप ही है, जो मणि में उसकी निर्मलता की तरह स्फुरित होता है। जैसे वायु और उसके स्पन्दन का भेद कथनमात्र है, वास्तविक नहीं, वैसे ही विश्व और विश्वेश्वर का भेद भी असत्‌रूप ही है। जो तीनों कालों में सत् है और जिसमें द्वैत की सम्भावना नहीं है, वह महाचिन्मात्रस्वरूप ब्रह्म ही विश्वरूप में भासता है। वास्तव में तो न विश्व ही सत् है और विश्व का स्वरूप ही। जो रूप ब्रह्म का है, वही रूप जगत् का है तथा जो रूप आकाश का है, वही रूप उसके गुण सारी शून्यता का है; फिर इनमें द्वैत-अद्वैत का होना असम्भव है। पत्थर पर खुदी हुई सेना में पाषाणत्व की तरह एकात्मा, सर्वव्यापक, निर्मल, चिन्मात्र, सर्वस्वरूप परब्रह्म परमात्मा के स्थित रहते कार्य-कारण की विचित्रता कहाँ और कैसे सम्भव हो सकती है तथा द्वैत के सम्भव न होनेके कारण आकाश में आकाशशून्यता कैसे हो सकेगी।

वत्स राम ! ज्ञान-प्राप्ति के लिये पूर्ण विवेकरूपी उपचार से यथाप्राप्त पूजन-सामग्री द्वारा बुद्धिपूर्वक स्वभावरूप परमेश्वर की पूजा करनी चाहिये; क्योंकि विचार, शम, सत्संग और त्यागरूपी पुष्पों द्वारा पूजित हुआ परमेश्वर तुरंत मोक्षरूपी फल प्रदान करता है। सज्जन शिरोमणे ! वह परमेश्वर तो अपना आत्मा ही है। एक मात्र यथार्थ अनुभवरूपी पूजन-सामग्री से पूजित होने पर, जो सर्वोत्तम मोक्ष-फल प्रदान करने वाला है, वह आत्मारूपी ईश्वर जहाँ वर्तमान है, वहाँ उसे छोड़कर भला, कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो किसी दूसरे का आश्रय ग्रहण करेगा। मनुष्य को अपने अंदर शमरूपी अमृत के सिंचन से विवेक को धीरे-धीरे-ऐसा बढ़ाना चाहिये, जिससे वह विषयों की भ्रान्ति से पुनः नष्ट न हो जाय। उसे चाहिये कि वह देह की सत्ता की अवहेलना करके उसमें स्थित तात्त्विक वस्तु का साक्षात्कार करे और लज्जा, भय, विषाद, ईर्ष्या, सुख और दुःख पर समानरूप से विजय प्राप्त करे।

राघव ! जैसे संकल्प की शान्ति हो जाने पर संकल्प-नगर सदा के लिये शान्त हो जाता है तथा जैसे जाग्रत् पुरुष के लिये स्वप्न नष्ट हो जाता है, वैसे ही आत्मज्ञानी की दृष्टि में यह साराजगत् सदा के लिये अस्तसा दीखपड़ता है। यदि कोई पुरुष अविद्या-स्वरूप जिस-किसी काल्पनिक उपदेश से 'मैं कृतार्थ हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

गया हूँ' यों अपने को मानने लगता है तो अज्ञान होने के कारण वह वास्तव में अकृतार्थ ही है। मूर्खता से विमोहित होने के कारण ही वह अपने को समझने लगता है, परंतु दूसरे ही क्षण जब उसे नानाप्रकार के कष्ट आ घेरते हैं, तब उसे अपनी अकृतार्थता का ज्ञान होता है। विद्वानों का मत है कि जो काल्पनिक उपाय है, वह क्षणभर में ही भाव, अभाव और इच्छा के विभ्रम विलास से दुःखदायी हो जाता है; अतः वह मोक्ष का उपाय नहीं है। जगद्भ्रम का पूर्णतया ज्ञान हो जाने पर जो वासना रहित स्थिति प्राप्त होती है, उसी को निर्वाण कहा जाता है। उसके प्राप्त होने पर सम्पूर्ण विषय स्वतः ही नीरस हो जाते हैं।

अठ्ठाईसवां सर्ग समाप्त

उनतीसवां सर्ग

जगत् की असारता

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुवीर ! जो अज्ञानरूपी ज्वर से मुक्त हो गया है और जिसका आत्मा ज्ञान प्राप्ति से शान्त हो गया है, उसका यही लक्षण है कि उसे फिर भोगरूपी जल रुचिकर नहीं लगता। जैसे स्वप्न में दृष्टिगोचर हुए पदार्थ जाग जाने पर उस स्वप्नद्रष्टा को न तो किसी प्रकार आनन्द देते हैं और न उसकी दृष्टि में उनकी सत्ता ही रहती है, उसी तरह 'यह मैं हूँ, इत्याकारक भ्रम में अनुभूत हुए पदार्थ तत्त्वज्ञानी के लिये न तो आनन्ददायक होते हैं और न अपना अस्तित्व ही रखते हैं। जैसे विभ्रम स्वरूप यक्ष और यक्ष नगर वास्तव में मिथ्या हैं, परंतु परस्पर सहयोगी होने के कारण वे सद्रूप से स्थित दीखते हैं, वैसे ही अहंता और जगत् भ्रमरूप ही हैं। वस्तुतः तो वे मिथ्या ही हैं। जैसे आवरण शून्य होने के कारण विभ्रमरूपी यक्ष जंगल में स्फुरित होते हैं, वैसे ही इन चौदह भुवनों का भी स्फुरण होता है, सत्ता की उत्पत्ति से शून्य यह विस्तृत दृश्य-प्रपंच द्रष्टात्मक ही है अथवा द्रष्टारूप नहीं भी है; क्योंकि परमार्थ चिद्रूप सत क्या कहीं तुच्छ दृश्यरूप से स्थापित किया जा सकता है ? अर्थात् कदापि नहीं। जैसे बसन्तऋतु का रसप्रवाह और वृक्ष और लताओं के रूप में दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही अपने स्वरूपमात्र परिपूर्ण देने वाली आत्मसंवित् ही सृष्टि है।

रघूद्वह ! यह जो जगत् का अभास है, वह विशुद्ध चिन्मात्र का वेदनरूप ही है; फिर इसमें एकत्व और द्वित्व की कल्पना कैसे हो सकती है; अतः तुम पूर्णरूप से निर्वाण में स्थित हो जाओ। सज्जनो ! तुम लोग चिन्मय आकाशरूप

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हो जाओ, परम रस निरतिशयानन्द का पान करो और निर्वाणानन्दस्वरूप नन्दनवन में निश्शंक होकर निवास करो। अरे भ्रान्त बुद्धि मनुष्यो ! तुमलोग संसाररूपी कानन की इन अत्यन्त शून्य मरुस्थलियों में मृगमरीचिका के पीछे भ्रान्त हुए हिरनों की तरह क्यों भटक रहे हो ? तुमलोगों की बुद्धि त्रिलोकीरूपी मृग-तृष्णा के जल की चकाचौंध में पड़कर अंधी हो गयी है और तुम्हारे हृदय को आशा ने अभिभूत कर लिया है, अतः तुमलोग व्यग्र होकर तृष्णा के पीछे मत दौड़ो। बाह्य और आन्तरिक भोगरूपी मृगतृष्णा के जल का पान करने वाले हिरनरूपी जीवो ! तुमलोग व्यर्थ ही परिश्रम करके अपनी आयु मत गँवाओ, मत गँवाओ। यह जगत गन्धर्व नगर के समान है। इसमें विवेक का अपहरण करने वाले महान् अहंकार से युक्त होकर तुम लोग अपना विनाश मत करो। सुखस्वरूप दीखने वाले सांसारिक विषय भोगों को दुःखरूप ही समझो। मनुष्यो ! ये मानव-देह वायु के झोंके से चंचल हुई पीपल वृक्ष की ऊपरी शाखा के पत्तों पर स्थित ओस की बूँदों के सदृश क्षणभंगुर हैं, अतः तुम लोग इन अन्धकार पूर्ण गर्भ शय्याओं पर शयन मत करो। आदि-अन्तरहित पारमार्थिक ब्रह्मभाव में लगतार शान्ताभाव से स्थित रहो। द्रष्टा-दृश्य आदि विरुद्ध स्वभावरूपी दोष से अपना विनाश मत कर डालो। यह संसार तो अज्ञानी की ही दृष्टि में सत्य है। वास्तव में तो इसमें कुछ भी सत्य नहीं है। 'यह मैं हूँ और मेरा है; इस प्रकार के अभिमानरूपी भ्रान्ति की सर्वथा शान्ति ही मुक्ति है और वह मुक्ति जिस-किसी भी प्रकार से स्थित योगी की अपनी सत्ता ही है।

रघुकुलतिलक राम ! जो संसार मार्ग में चलते-चलते थकावट चूर हो गया है, उस पथिक के लिये निर्वाणता, वासना शून्यता, त्रिविध तापशून्यता और उत्कृष्ट ज्ञान-ये शान्ति प्रदान करने करने वाले विश्राम स्थान हैं। यह जगत्रूपी पदार्थ परस्पर अनिर्वचनीय अर्थों से भरा हुआ है। इसे तत्त्वज्ञानी जैसा समझता है, वैसा मूर्ख नहीं जानते; और जैसा मूर्ख जानता है, वैसा तत्त्वज्ञानी नहीं समझते अर्थात् अज्ञानी के लिये यह दुःखमय है और ज्ञानी के लिये आनन्दमय। जीवन्मुक्त ज्ञानी के लिए भ्रान्ति की शान्ति हो जाने पर जगत् का स्वरूप भी नष्ट हो जाता है। उसकी दृष्टि में तो अपने स्वरूप में स्थित एकमात्र परब्रह्म परमात्मा ही विद्यमान दीखता है। जैसे खूब जले हुए घास-फूसों की भस्मराशि वायु के वेग से उड़कर न जाने कहाँ की कहाँ चली जाती है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥ तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥

वैसे ही सत्पुरुषों की संगति से आत्मस्वरूप में विश्राम प्राप्त हो जाने पर इस जगत् का अस्तित्व न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। क्योंकि जो समस्त प्राणियों की रात्रि के समान है, उस परमानन्द में संयमी पुरुष जागता रहता है और जिस संसार में प्राणी जागते रहते हैं, वह तत्त्वद्रष्टा ज्ञानी के लिये रात्रि के समान है। जैसे जन्मान्ध को रूप का अनुभव नहीं होता, वैसे ही ज्ञानी को जगत् का अनुभव नहीं होता है और यदि कदाचित् होता भी है तो वह भ्रम तुल्य एवं असद्रूप ही होता है। अज्ञानियों के लिये दुःखरूप से प्रसिद्ध जो तीनों लोक हैं, वे अज्ञानियों की ही दृष्टि में हैं, तत्त्वज्ञानी की दृष्टि में उनका अस्तित्व नहीं हैं; क्योंकि वे सत् नहीं हैं।

श्रीराम ! जैसे नदियों का जल जब तक समुद्र में नहीं मिल जाता, तब तक नदी, प्रवाह आदि सैकड़ों नाम-रूपों में व्यवहृत होता है, किन्तु जब वह समुद्र में मिलकर एकाकार हो जाता है, तब एकमात्र जल ही कहलाता है, वैसे ही बाह्य और अभ्यान्तररूप में जो अर्थों एवं अनर्थों का समुदाय स्फुरित होता है, वह व्यापक मन ही है; क्योंकि उसी से अर्थों का आभास होता है। जैसे जल और उसकी तरंग में कोई भेद नहीं है, वैसे ही मन और सांसारिक पदार्थों में भिन्नता नहीं हैं; क्योंकि पवन और उसके स्पन्दन की तरह इन दोनों में एक का बोध हो जाने पर दोनों का अभाव हो जाता है। इसलिये परमार्थतः इस असार संसार में सांसारिक पदार्थ और मन इन दोनों के एकरूप होने के कारण इनमें से एक की शान्ति होते ही निस्सदेह दोनों-के-दोनों साथ-ही-साथ तुरंत शांत हो जाते हैं।

संसार के सभी पदार्थ संकल्परूप ही हैं, इसलिये विवेकी पुरुष को उसकी कामना नहीं करनी चाहिये। मन भी संकल्परूप ही है, इसी कारण सम्यक् ज्ञान हो जाने से उन दोनों की शान्ति की जाती है। जैसे मिट्टी की मूर्ति में कोई पुरुष अज्ञानवश शत्रुता की कल्पना कर लेता है, किन्तु ज्यों की विवेक से उसे ज्ञात होता है कि यह मिट्टी है त्यों ही उसकी शत्रुता और भय-दोनों उस मूर्ति से निकल जाते हैं, वैसे ही ज्ञानी के अर्थ और मन-दोनों ही स्वतः नष्ट हो जाते हैं। जैसे पास ही सोये हुए पुरुष का स्वप्न और डरपोक बच्चे के समान दीखने वाला यक्ष असत् है, उसी तरह प्रारब्धानुसार प्राप्त होने वाले सुख-दुःखादि भोगों का साधनभूत जगत् संसारकाल, कालकृत जन्मादि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

विकार, उसका भोक्ता अज्ञानी और अज्ञानी के शब्दादि विषय ये सभी असत् हैं। जैसे धीर-वीर पुरुष की दृष्टि में पिशाच बुद्धि का अस्तित्व नहीं रहता, वैसे ही ज्ञानी की दृष्टि में अज्ञानी के जगत् की सत्ता नहीं रहती। अज्ञानी तो चिरकाल तक ज्ञानी को भी अज्ञ ही समझता है; क्योंकि उसकी दृष्टि में तो बन्ध्या भी पुत्र-पौत्रों के विस्तार द्वारा बढ़ती है, जो सर्वथा असम्भव हैं।

रामभद्र ! यह संसार तो मन से ही उत्पन्न होता है और परमात्मज्ञान से शान्त हो जाता है, परंतु मनुष्य सीपी में चाँदी के भ्रम की भाँति संसार भ्रम में पड़कर व्यर्थ ही कष्ट उठाता है। संसार के अभाव और परब्रह्म परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को यर्थाथ जान लेना ही ज्ञान है। निर्वाण से भिन्न 'अहम्' इत्याकारक भ्रमरूप जो सत्ता है, वह तो दुःख का ही कारण होती है। इस अहंकार का स्वरूप मृगतृष्णा के जल के सदृश असत् एवं शून्य है-ऐसा ज्ञान हो जाने पर अहंकार पूर्णतया शान्त हो जाता है। बोधस्वरूप परमात्मतत्त्व का ज्ञान न होने से यह अज्ञानी जीव देश-काल आदि सामग्री के बिना ही चित्तता को प्राप्त हो जाता है। वस्तुतः तो यह आत्मा एक ही है। यद्यपि शुद्ध चिदात्मा में अज्ञान आदि किसी का होना सम्भव नहीं हैं, तथापि अज्ञानावस्था में एक दूसरे के बोधन के लिये उसमें उसकी कल्पना कर ली जाती है। अतः तत्त्व ज्ञान के द्वारा मूलाज्ञान का उपशम हो जाने पर जब महानुभावों का अभिमान नष्ट होजाता है, तब वे स्व-स्वरूप में लीन हो जाते हैं। उन्हें निरतिशयानन्द की प्राप्ति हो जाती है, जिससे वे शान्त एवं विक्षेपरहित होकर निरन्तर सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही समाधिस्थ रहते हैं।

उन्नतीसवां सर्ग समाप्त

तीसवां सर्ग

समाधिरूपी कल्पद्रुम की उपयोगिता

श्रीरामजी ने कहा-मुनिवर ! अब आप समाधिरूपी वृक्ष के स्वरूप का, जो विवेकी पुरुष के जीवनोपयोगी फलों से सुशोभित, लताओं से परिवेष्टित, पुष्पों से सुरभित और मनरूपी मृग को विश्राम देने वाला है, क्रमशः वर्णन कीजिये।

श्रीवसिष्ठजी बोले-रघुनन्दन ! मैं उस समाधिरूपी वृक्ष का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। वह विवेकी पुरुषरूपी वन में उत्पन्न हुआ है और ऊपर को बढ़ता ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जा रहा है। पत्रों, पुष्पों और फलों से लदा हुआ वह वृक्ष विवेकीजनों को सर्वथा जीवन प्रदान करने वाला है। विद्वानों का कहना है कि दुःख के कारण अथवा स्वयं ही-जिस किसी भी प्रकार से इस संसाररूपी वन से उत्पन्न हुआ जो परम वैराग्य है, वही उस समाधिरूपी वृक्ष का बीज है और चित्त उस बीज के ऊगने के लिये उत्तम क्षेत्र है, जो शुभ कर्म-समूहरूपी हल से जोता गया है, रात-दिन शान्ति आदि जल से सींचा गया है और प्राणायामरूपी जल-प्रवाह से युक्त है। जब विवेकी-जनरूपी कानन में चित्तरूपी भूमि विवेक द्वारा परिष्कृत हो जाती है, तब संसार से वैराग्यरूप समाधि वृक्ष का बीज स्वयं ही जाकर उस भूमि में गिरता है। उस समय दृढ़ बुद्धि वाले पुरुष कोचाहिये कि अपने चित्तरूपी भूमि में गिरे हुए उस ध्यान-समाधि बीज को खेद रहित होकर यत्नपूर्वक सींचता रहे तथा कायिक, वाचिक और मानसिक तप एवं दान से, अमानित्व आदि गुणों से और तीर्थ स्थानों में निवासरूपी शान्तिमयी वृत्ति से उस बीज की यत्नपूर्वक रक्षा करता रहे। इस प्रकार सिंचन आदि के पश्चात् जब उस बीज में अंकुर निकल आये, तब उसकी रक्षा के लिये रखवाली करने में अत्यन्त निपुण संतोष नामक पुरुष को उसकी प्रिय पत्नी मुदिता के साथ रक्षकरूप में नियुक्त कर देना चाहिए। तत्पश्चात् उस अंकुर का विनाश कर डालने के लिये टूट पड़ने वाले पूर्व वासनाओं में स्थित आशारूपी विहगों, पुत्र-कलत्रादि के अनुरागरूपी पक्षियों और काम-गर्व आदि गीधों को उस रक्षक के द्वारा भगा देना चाहिए। फिर इस अंकुर के खेत से अत्यन्त कोमल सत्कर्मरूपी झाड़ुओं से रजोगुण को तथा अचिन्त्य-ब्रह्मरूपी आलोक प्रदान करने वाले विवेक रूपी सूर्य की धूप से तमोगुणरूपी अज्ञानान्धकार को साफकर देना चाहिए। उस अंकुर का विनाश कर देने के लिये उस पर तरंगों के समान चंचल एवं विनाशी सम्पत्तिरूपी नारियों तथा दुष्कृतरूपी मेघों द्वारा प्रेरित बज्र टूटे पड़ते हैं, इसलिये धैर्य, औदार्य, दया आदि मंत्रों तथा जप, स्नान, तप और दम आदि के सहयोग से प्रणवार्थ चिन्तनरूपी त्रिशूल के द्वारा उनका निवारण कर देना चाहिए। इस प्रकार जब उस ध्यान बीज की भलीभाँति रक्षा की जाती है, तब उससे विवेक नामक नवीन अंकुर उत्पन्न होता है,जो जन्म से ही उन्नतिशील और सौन्दर्यशाली होता है।

राघव ! तदनन्तर उस अंकुर से अपने-आप दो पत्ते निकलते हैं, जिनमें एक है 'शास्त्र-चिन्तन' और दूसरा है 'सत्पुरुषों का संग'। आगे चलकर जब

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

यह संतोषरूपी त्वचा से वेष्टित और वैराग्यरूप रस से अनुरंजित होता है, तब यह तना, दृढ़मूलता और समुन्नति को धारण करता है। इस प्रकार शास्त्र चिन्तनरूपी वर्षा के जल से आप्लावित होकर जब इसका हृदय वैराग्यरूपी रस से परिपुष्ट हो जाता है, तब यह अपनी आयु के थोड़े ही समय में परमोत्कृष्ट उन्नति को प्राप्त हो जाता है। धीरे-धीरे शास्त्रार्थ चिन्तन, सत्पुरुष समागम और वैराग्यरूपी रस से जब वह अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट हो जाता है, तब राग-द्वेषरूपी बंदरों द्वारा क्षुब्ध किये जाने पर वह जरा सा भी कम्पित नहीं होता है। तदनन्तर विज्ञान से अलंकृत आकार वाले उस वृक्ष से आत्म रस से सुशोभित तथा दूर देश तक विस्तार करने वाली ये स्फुटता (आत्मतत्त्व का स्पष्ट आविर्भाव), धीरता, निर्विकल्पता, समता, शान्तता, मैत्री, करुणा, कीर्ति औरआर्यता आदि लताएँ (शाखा-प्रशाखाएँ) उत्पन्न होती हैं यों गुणरूपी पत्तों तथा यशरूपी पुष्पों से लदी हुई इन लताओं से समृद्ध हुआ वह ध्यान समाधि-वृक्ष सन्यासी (अहंकारी-त्यागी) के लिये पारिजात-सा बन जाता है अर्थात् कल्पवृक्ष का काम करता है।

रामभद्र ! इस प्रकार जब वह उत्तम ज्ञानरूपी (समाधिरूपी) वृक्ष लता, पल्लव और पुष्पों से विभूषित हो जाता है, यशरूपी पुष्प गुच्छों से उसकी अद्भुत छटा दीखने लगती है, उसमें गुणरूपी पल्लव लहलहाने लगते हैं और उसकी आकृति प्रज्ञारूपी मंजरियों से सुशोभित हो जाती है, तब वैराग्य-रस को टपकाने वाला वह वृक्ष दिन-पर-दिन आगामी (मूलाज्ञान के उच्छेदक ब्रह्म साक्षात्काररूपी) ज्ञान का प्रदाता होता है। उस समय वह वर्षाकालीन मेघ की तरह सारी दिशाओं को शीतल कर देता है और सम्पूर्ण सांसारिक ताप को वैसे ही शान्त कर देता हैजैसे सूर्य के ताप को रात्रि में चन्द्रमा शान्त कर देता है। जैसे मेघों की घटा छाया पैदा कर देती है, वैसे ही वह वृक्ष उपशमरूपी छाया का विस्तार करता है। वह उपशम चित्त को ऐसा सुदृढ़ बनाता है, जैसे पूर्वी हवा बादल को घना कर देती है। वह आत्मज्ञान के मूलबन्ध को वैसे ही अपने-आप सुदृढ़ कर लेता है, जैसे कुलपर्वत अपने मूल को। तथा वह अपने ऊपर 'कैवल्य' नामक फल के उत्पन्न होने में सहायक शान्ति आदि मांगलिक पुष्प गुच्छों की रचना करता है। पुरुष के हृदय-कानन में जब प्रतिदिन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

छायावितान से संयुक्त विवेकरूपी कल्पवृक्ष वृद्धिगत होता रहता है, तब भूतल के त्रिविध तापों का हरण करने वाली बुद्धिरूपी लताउल्लसित हो उठती है और उससे तुषार गर्भ के समान मनोहर शीतलता प्रकट होती है।उसी छाया में मनरूपी मृग, जो अनेक जन्मों में भटकने वाला प्राचीन बटोही है और मार्ग में नानावादियों के कोलाहल से व्यग्र हो गया है, संसाराटवी में भटकते-भटकते थककर-यहाँ विश्राम पाकर सुख की साँस लेता है।

राघवेन्द्र ! सत्तामात्र ही जिसका आत्मा है, ऐसे पुरुषरूपी चमड़े का अपहरण करने के लिये काम आदि छः शत्रु उसके पीछे पड़े हैं और वह नाना प्रकार के असार शरीरादि-रूप कँटीली झाड़ियों में अपने को छिपाता फिरता है, जिससे उस का मुख छिन्न-भिन्न हो गया है। वासनारूपी वायु से प्रेरित होकर संसाराटवी में भटकता हुआ यह मनोमृग अहंतारूपी मृगमरीचिका की ओर सर्वदा दौड़ते रहने से अन्तःकरण की तृष्णारूपी विष के दाह से अत्यन्त व्याकुल हो गया है। बड़े-बड़े भागों में यह आदर बुद्धि रखने वाला है। इसी कारण दूर देश में उत्पन्न हुए हरे-हरे तृणरूपी विषयों के लिये दौड़ते रहने से इसका शरीर जर्जर हो गया है और पुत्र पौत्र के पालन की व्यग्रता से संतप्त होकर यह अनर्थरूपी गड्डे में जा गिरा है। सम्पत्तिरूपी लता में फँसकर जब यह लड़खड़ा कर गिर पड़ता है, उस समय प्राप्त हुए संकटों से इसका शरीर घायल हो जाता है और जब यह ताप-शान्ति के लिये तृष्णारूपी सुहावनी सरिता के निकट जाता है, तब हर्ष-शोक आदि तरंगों से आहत होकर दूर जा पड़ता है। फिर यह व्याधिरूपी दुष्ट व्याधों के भय से छूटने में ही लग जाता है। उस समय इसे दैव-प्रारब्ध की कुछ भी सम्भावना नहीं रहती, जिससे वह मानो व्याध आ पहुँचा है-इस प्रकार के भय से अपने आकार को संकुचित कर लेता है।

राजकुमार ! यह मनोमृग ज्ञानेन्द्रियों के अस्वाद के विषयभूत स्थानों से उत्पन्न दुःखरूपी बाणों से भयभीत, काम-क्रोधादि शत्रुओं के आक्रमण से व्यग्र और पत्थर प्रहार के सदृश दुःखानुभव के युक्त है। स्वर्ग-नरकरूपी ऊँचे-नीचे स्थानों में बारंबार चढ़ने और गिरने से यह अत्यन्त व्याकुल हो गया है। काम-क्रोधादि विकार-रूपी पत्थरों की निरन्तर चोट लगने से इसका शरीर चूर-चूर हो गया है। तृष्णारूपी सुन्दर लता कुंजों में प्रवेश करते-करते इसकी देह क्षत-विक्षत हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

गयी है। इससे परमात्मा की माया का कुछ भी ज्ञान नहीं है, इसलिये इसने अपनी बुद्धि से नाना प्रकार के व्यवहारों की कल्पना कर ली है। जिसे काबू में लाना अत्यन्त कठिन है, ऐसे कामरूपी गजेन्द्र की गर्जना से यह भयभीत हो गया है और इन्द्रियसमूहरूपी गाँव में पहुँचकर पुनः डर के मारे भागने में ही तत्पर है। विषयरूपी अजगरों के अत्यन्त विषैले फूत्कारों से मूर्च्छा आ गयी है। यह कामुक कामिनीरूपी भूमि में पहुँचकर प्रायः विषय रस से अत्यन्त मर्दित हो गया है। क्रोधरूपी दावानल से दग्ध हो जाने के कारण इसकी पीठ पर छाले पड़ गये हैं, जिसकी गरमीसे यह छटपटा रहा है और विषयों में बारंबार भ्रमण करने के कारण भीषण दुःखों की प्राप्ति से इसके भीतर भी जलन हो रही है। अपने आत्मा में संलग्न नाना प्रकार की अभिलाषाएँ ही मानो मच्छर हैं, जो इसे डँस जाने के लिये इसके पीछे पड़ गये हैं। लोभ से उत्पन्न मनोहर प्रमोदरूपी सियार बहुत दिनों से इसके पीछे दौड़ रहा है। एक तो यह यों ही अपने कर्म और कर्तृत्व के चक्कर में पड़कर उद्भ्रान्त हो गया है, ऊपर से दरिद्रतारूपी सिंह इसका पीछा कर रहा है। यह पुत्र-कलत्रादि में आसक्तिरूपी व्यामोह के कुहासे से अंधा हो गया है, जिससे इसका शरीर कपटरूपी पर्वतशिखर से लुढ़क कर गड्डे में गिर रहा है। मानरूपी सिंह की दहाड़ से इसका हृदय काँप उठा है, जिससे यह भयभीत हो गया है और प्रसिद्ध मृत्यु रूपी व्याघ्र के प्रहार करने पर अगस्त्य-पुष्प की तरह सुखपूर्वक विदीर्ण करने योग्य दीख रहा है। निर्जन वन में गर्वरूपी अजगर इसे शीघ्र ही निगल जाने के लिये ताक लगाये बैठा है। अनेक विध कामनाओं की सिद्धि के लिये यह जहाँ-तहाँ अपने यवांकुर-तुल्य दाँतों को छिपाता फिर रहा है अर्थात् दीनता प्रकट कर रहा है। युवावस्थारूपी प्रियतमा पत्नी ने क्षणभर मित्र-सा आलिंगन करके इसका परित्याग कर दिया है तथा झंझावात-सदृश कुपित हुई इन्द्रियों ने इसे नरकादि दुर्गम स्थानों में ले जाकर डाल दिया है। इस प्रकार यह मनोमृग जब जन्मान्तरार्जित पुण्य के उदय से कभी शमादि साधन से युक्त होकर इस पूर्वोक्त समाधि वृक्ष नीचे आ जाता है, तब वह वैसे ही विश्राम-सुख का अनुभव करता है जैसे रात के अन्धकार और शीत से पीड़ित प्राणी को सूर्योदय होने पर आनन्द प्राप्त होता है।

श्रोताओ ! आत्मज्ञान से शून्य मूर्ख लोग ताली, तमाल और मौलसिरी के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वृक्ष-गुल्मों में बने हुए विश्राम स्थानों मेंप्रचुर पुष्पों के विलासरूपी हासों के समान तुच्छ अनित्य भोगों में फँसे रहने के कारण जिस निरतिशयानन्द का नाम भी नहीं जान पाते, उस मोक्ष नामक परम आनन्द को तुम लोगों का अपना मनरूपी मृग इस समाधि-वृक्ष के नीचे आने से प्राप्त कर सकता है।

तीसवां सर्ग समाप्त

इकत्तीसवां सर्ग

परमानन्दस्वरूप की प्राप्ति

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-शत्रुसूदन राम ! इस प्रकार जब इस मनोमृग को उस समाधि वृक्ष की छाया में विश्राम-सुख का अनुभव होने लगता है, तब वह उसी से प्रेम करने लगता है, और किसी वृक्ष के नीचे नहीं जाता। तदनन्तर इतने समय के बाद वह विवेकपूर्ण समाधि-वृक्ष धीरे-धीरे अपने भीतर स्थित परमार्थिक आत्मस्वरूपभूत मोक्षफल को पूर्णरूप से प्रकट करता है। तब उस उत्तम वृक्ष के नीचे बैठा हुआ अपना यह मनोमृग उस ध्यानद्रुम की शाखाओं के अग्रभाग में लटकते हुए मोक्षरूपी पावन फल को देखता है। उस फल का आस्वादन करने के लिये विशाल अध्यवसाय से युक्त तथा जड़ दृश्य का अत्यन्त अभाव कर देने वाला विरक्त पुरुष ही उस वृक्ष पर चढ़ता है। उस उत्तम फल को प्राप्त करने की इच्छा से विवेकपूर्ण ध्यान-वृक्ष पर चढ़ा हुआ पुरुष पुरानी केंचुल का परित्याग करने वाले साँप की तरह अपने प्राक्तन संस्कारों का त्याग कर देता है। वह अपने को उस ऊँचे स्थान पर चढ़ा हुआ देखकर अट्टहास करने लगता है और विचारता है-'ओह ! इतने समय तक मैं कैसा दीन बना रहा।' उस समय वह करुणा आदि जिनका स्वरूप है, ऐसी उस वृक्ष की शाखाओं के मध्य में भ्रमण करता हुआ लोभरूपी सर्प को वश में करके सम्राट् की तरह सुशोभित होता है। न तो वह प्राप्त वस्तु की उपेक्षा करता है और न अप्राप्त की इच्छा; बल्कि सम्पूर्ण वृत्तियों में उसका अन्तःकरण चन्द्रमा की भाँति सौम्य एवं शीतल हो जाता है। उसकी दृष्टि में स्त्री, पुत्र, मित्र और धन-सम्पत्ति आदि सारे पदार्थ जन्मान्तर में प्राप्त हुए अथवा स्वप्न में उत्पन्न हुए के समान लगने लगते हैं। उन्मत्त की चेष्टा के समान जिसका आकार है तथा जो तरंगों की तरह क्षणभंगुर आधार वाली है, ऐसी संसाररूपी नदी की चालों को अपने सामने उपस्थित देखकर वह हँसता

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

है। उसमें लोकैषणा, दारैषणा आदि कोई भी एषणा नहीं रहती। अपूर्व पद में विश्रान्त होने के कारण वह जीता हुआ ही मृतक तुल्य हो जाता है। उसकी दृष्टि केवल शुद्ध-बोधस्वरूप सर्वोत्कृष्ट उस परमात्मज्ञानरूप फल पर ही लगी रहती है, जिससे वह परमोच्च स्थान पर आरूढ़ हो जाता है। संतोषरूपी अमृत से परिपुष्ट हुआ वह पुरुष अपनी पूर्वदशा का बारंबार स्मरण करके अनर्थस्वरूप अर्थों के (धनों के) नाश को जाने पर भी परम संतुष्ट रहता है।

रघुनन्दन ! इस प्रकार परमार्थरूप फल प्रदान करने वाली उस महापदवी पर गमन करता हुआ वह ज्ञानी पुरुष वाणी के अगोचर भूमिका-जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त हो जाता है। दैववश बिना प्रयत्न किये ही कहीं से अकस्मात् भोगों के प्राप्त हो जाने पर भी वह उनसे विरक्त ही रहता है। वह मौनी पुरुष सांसारिक वृत्तियों से उपराम, उन्मत्त की तरह आनन्दयुक्त और अंदर में परिपूर्ण मनवाला होकर किसी अनिर्वचनीय स्थिति को प्राप्त हो जाता है। वह योगी पुरुष आकाश की तरह समतायुक्त होकर सम्पूर्ण दृश्य-बुद्धि का परित्याग करके निरतिशयानन्द ब्रह्मभावरूप फल को ग्रहण करता है, उसी का आनन्द लेता है, उसी का अनुभव करता है और उसी से परितृप्त होता है। इस प्रकार जो लोकैषणा से विरक्त हो गया है, दारैषणा का त्याग कर चुका है और धनैषणा से पूर्णतया मुक्त हो गया है, वही उस परम पद में विश्राम पाता है। जिस पुरुष की दृश्य-पदार्थों में आत्यन्तिकी विरक्ति देखी जाती है, वही तत्त्वज्ञानी है; क्योंकि अज्ञानी में दृश्य का त्याग करने की सामर्थ्य ही नहीं है। आत्मनिष्ठ होनेके कारण जो मृग-तृष्णा से रहित हो गया है तथा तीनों एषणाओं का परित्याग कर चुका है, उस ज्ञानी का ध्यान इच्छा न रहते हुए भी अपने आप होता रहता है।

रघुवीर ! विषयों से जो आत्यन्तिक विरक्ति है, वही समाधि कहलाती है। जिसने उसका सम्पादन कर लिया, वह निश्चय ही मनुष्यरूप में परब्रह्म है, उसे हमारा प्रणाम है। जिसकी विषय-विरक्ति अत्यन्त सुदृढ़ हो गयी है, निस्संदेह उस के ध्यान को इन्द्र सहित देवता और असुर भंग करने में समर्थ नहीं हो सकते। बुद्धिमानो ! विश्व शब्द का अर्थ तो मूर्खों के लिये ही है, वह पण्डितों का विषय नहीं है; इसलिये जिस भूमानन्दब्रह्म में तत्त्वज्ञानी और मूर्ख तथा विश्व और विश्वेश का अभेदरूप से भान होता है, उसी में तुम लोग भी विश्राम

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करो। क्योंकि इस जगत् में मनन आदि भूमिकाओं में आरूढ़ होने की इच्छा वाले विवेकियों अथवा आत्मसाक्षात्कारादि भूमिकाओं में आरूढ़ हुए सिद्धान्तों से किसी ने भी पदार्थों में परमात्मा से अतिरिक्त सत्ता-असत्ता अथवा द्वैत-अद्वैत का निर्णय नहीं किया है।

इस निर्वाण की प्राप्ति के लिये तीन उपाय हैं-एक शास्त्रार्थ चिन्तन, दूसरा तत्त्वज्ञानियों की संगति और तीसरा ध्यान। इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। यद्यपि जगद्-भ्रान्ति निर्मूल है, तथापि जिस ज्ञान से मनुष्य का अज्ञान उसी प्रकार नहीं दूर होता, जैसे चित्रलिखित अग्नि से सर्दी नहीं मिटती। जैसे अज्ञानी के अज्ञान के कारण जगद्-भ्रम बढ़ता जाता है, वैसे ही तत्त्वज्ञानी के ज्ञान के प्रभाव से वह भ्रम नष्ट हो जाता है। तत्त्वज्ञानी के चित्त में जगत् की स्थिति और स्फुरणा चित्त-प्रकाशस्वरूप ही भासती है; क्योंकि बोध हो जाने पर ज्ञानी की दृष्टि में निस्सदेह न तो अहंकार रह जाता है और न जगत् की स्थिति ही रहती है। उसको तो परम प्रकाशस्वरूप जगत् की कोई अपूर्व ही स्थिति भासती है, परंतु जो पूर्ण ज्ञानी नहीं है, उसका चित्त सूखे और गीले काष्ठ की भाँति बोध और अबोध दोनों से संयुक्त रहता है। इन दोनों ज्ञान और अज्ञान में जो भाग प्रबल होता है, वह तद्रूप होकर ही रहता है; किन्तु तत्त्वज्ञानी जगत् के भाव-अभाव की सत्यता को बिल्कुल नहीं मानता।

इकत्तीसवां सर्ग समाप्त

बत्तीसवां सर्ग

मुक्ति के विभिन्न साधनों का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! जब परमार्थरूप फल का ज्ञान हो जाता है और मुक्ति की स्थिति दृढ़ हो जाती है, तब बोध भी अज्ञान का बाध हो जाने से शीघ्र ही असद्रूप और मनोमृग परमार्थरूप हो जाता है। उस समय उसकी पूर्वकाल की मृगता-विषयरूपी तृणों के अन्वेषण की स्वभावता-न जाने कहाँ विलुप्त हो जाती है और अनन्त परमात्मस्वरूप का प्रकाश करने वाली परमार्थ दशा ही शेष रह जाती है। मनस्ता-मनस्वभावता न मालूम कहाँ विलीन हो जाता है और निर्बाध, विभागरहित, सर्वव्यापक, पूर्ण, विशुद्ध, सद्रूपिणी परमानन्दमयता ही रह जाती है। उस समय परमार्थस्वरूपता को प्राप्त होकर मन न जाने कहाँ चला जाता है तथा वासना, कर्म, हर्ष, आदि भी कहाँ चले जाते

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama Prasad Collection
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

हैं-इसका कुछ भी पता नहीं चलता। जिसे सम्पूर्ण भोगों से विरक्ति हो गयी है, जिसकी इन्द्रिय-वृत्तियाँ पूर्णतया शान्त हो गयी हैं, सम्पूर्ण दृश्य जिसके लिये नीरस हो गया है, जो अपने आत्मा में ही रमण करने वाला है, जिसकी मनो-वृत्तियाँ क्रमशः नष्ट हो गयी हैं तथा जो बिना प्रयास के ही विश्रान्ति प्राप्त कर चुका है, ऐसे योगी की समाधि स्वतः ही सिद्ध हो जाती है; फिर इस विषय में विचार ही कौन चलावे।

विषयों से जो दृढ़ वैराग्य है, वही ध्यान कहलाता है और वही जब भलीभाँति परिपक्व हो जाता है, तब वज्र के समान सुदृढ़ अर्थात् वज्रध्यान हो जाता है। यह जो भोगों से वैराग्य है, यही अंकुरित होने पर ध्यान कहा जाता है और पीठ बन्धन से सुबद्ध होने पर उसी की समाधि संज्ञा होती है। जो दृश्य प्रपंच के स्वाद से मुक्त हो गया है और जिसे सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है, उस मुनि की तो अविराम निर्विकल्प समाधि लगी रहती है। जब भोग अच्छे नहीं लगते, तब सम्यग्ज्ञान का उदय होता है और उसे विषय भोग रुचिकर नहीं लगते, वह ज्ञानी कहा जाता है। जिस ज्ञानी को अपने स्वभाव में विश्राम प्राप्त हो चुका है, उसका स्वभाव भोगी कैसे हो सकता है; क्योंकि आत्म विरुद्ध स्वभाव ही भोग है। फिर उस स्वभाव के क्षीण हो जाने पर भोगिता कहाँ से और कैसे प्राप्त हो सकती है। श्रीराम ! साधक को चाहिये कि वह पहले वेदान्त श्रवण करे, फिर स्वाध्याय करे, तत्पश्चात् प्रणव आदि का जप करे। तदनन्तर समाधि में लीन हो समाधि से विरत होने पर वह थका हुआ साधक पुनः पूर्ववत् श्रवण, पाठ और जप का ही आश्रय ले।

राघवेन्द्र! जो संसार भार ढोते-ढोते अत्यन्त थक गया है और संकटों को झेलते-झेलते जिसका शरीर जर्जर हो गया है, अतएव विश्राम करना चाहता है, उसके उस विश्राम-क्रम को सुनो। जैसे पथिक यज्ञ-यूपों से दूर हट जाता है, वैसे ही ऐसा पुरुष अज्ञानियों को दूर से ही त्याग देता है और तत्त्वज्ञानियों का अनुगामी होकर स्नान, दान, तप और यज्ञ आदि का अनुष्ठान करता है तथा सदा परोपकार में तत्पर रहता है, जिससे 'परप्रज्ञानुग' कहा जाता है। सभी जनों का प्रिय तथा शास्त्रानुकूल पवित्र कर्मों का रसिक होता है और सभी के साथ सौम्य व्यवहार करता है। ऐसे पुरुष की नवीन संगति, जो नवनीत स्थली-मक्खन के समान स्वच्छ, स्नेहभरी, कोमल, मनोहर और सुस्वादु होती है, सम्पर्क में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

आने वाले जन को सुख प्रदान करती है। विवेकी पुरुष के चरित्र, जो चन्द्रमा के किरण समूह की तरह अत्यन्त शीतल और पवित्र होते हैं, सुनने वाले मनुष्य को पूर्णरूप से शीतल कर देते हैं।

सत्पुरुषों के संग से जैसी निर्भय शान्ति प्राप्त होती है, वैसी शान्ति राशि-राशि पुष्पों से भरे हुए उद्यान खंडों में भी नहीं मिलती। विवेकी पुरुषों की संगति मन्दाकिनी के जल की तरह लोगों के पापों का प्रक्षालन करके विशुद्धता प्रदान करती है। संसार-सागर से पार जाने की इच्छा वाले विरक्त विवेकी पुरुषों के समागम से मनुष्य का हृदय वैसे ही शीतल हो जाता है, जैसे हिम और पुष्पहारों से निर्मित घरों में निवास करने पर होता है। क्रमशः किये गये न्यायोचित निष्काम कर्म से बुद्धि विशुद्ध हो जाती है और बुद्धि के निर्मल होने पर जैसे स्वच्छ दर्पण प्रतिबिम्ब को तुरंत धारण कर लेता है, वैसे ही मनुष्य शास्त्रों के अभिप्राय को अपने अन्तःकरण में यथार्थरूप से ग्रहण कर लेता है। फिर विवेकी पुरुष के हृदय में शास्त्रार्थ रस से सुशोभित उत्तम प्रज्ञा उन्नति को प्राप्त होती है। जिसका आत्मा साधु-समागम से शुद्ध तथा शास्त्रार्थ-चिन्तन से परिमार्जित हो गया है, वह प्राज्ञ पुरुष परम शोभा पाता है। प्राज्ञ पुरुष शास्त्र और सत्पुरुषों के संग का अनुसरण करता है, जिससे इनमें अत्यन्त आसक्ति होकर इन्हीं का अनुभव होता रहता है। क्रमशः सज्जनता को प्राप्त करके वह शास्त्रार्थ की भावना से पूर्णतया भावित हो जाता है। फिर भोगों का तिरस्कार करके वह पिंजरे से छूटे हुए की तरह शोभा पाने लगता है। भोगों के पीछे दौड़ना बहुत बड़ा दुर्भाग्य है, इसलिये दिन-पर-दिन उसका त्याग करने वाले विवेकी पुरुष के द्वारा उसका कुल उसी प्रकार चमकने लगता है, जैसे चन्द्रमा से तारों का समूह।

राघव ! जिन्होंने तीनों लोकों को तृण-तुल्य समझ लिया है, उनकी प्रशंसा महात्मा लोग वैसे ही करते हैं, जैसे स्वर्गलोग में स्वर्गवासी कल्पवृक्ष का गुण गाते हैं ऐसा पुरुष भूतल पर उदित हुए चन्द्रमा के समान होता है, अतः जिनके नेत्र विस्मय से उत्फुल्ल हो गये हैं, ऐसे साधु-महात्मा सौहार्दवश उसका दर्शन करने के लिये आते हैं। भोगों के प्रति उसकी आदर बुद्धि सदा के लिये नष्ट हो जाती है। इसलिये न्याययुक्त भोगों के प्राप्त होने पर भी वह उनका आदर नहीं करता। तदनन्तर जैसे स्वास्थ्य चाहने वाला व्यक्ति वैद्य का आश्रय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji shaf me Nanaji Deshmukh Jammu Collection

ग्रहण करता है, उसी प्रकार सर्वोत्कृष्ट कल्याण की प्राप्ति के लिये वह स्वयं ही सत्संग करता है। उस सत्संग के परिणामस्वरूप उसकी बुद्धि परम उदार हो जाती है, जिससे वह अत्यन्त निर्मल जल वाले सरोवरों में प्रविष्ट हुए गजराज की तरह शास्त्रार्थ चिन्तन में निमग्न हो जाता है। जैसे सूर्यदेव अन्धकार पीड़ित प्राणी को अपने निकट आने पर अपने प्रकाश से पूर्ण कर देते हैं, वैसे ही सज्जन पुरुष अपने सम्पर्क में आए हुए मनुष्य को विपत्तियों से उबार कर दैवी सम्पत्तियों से युक्त कर देता है।

जो विवेकी है, उसकी बुद्धि पहले से ही दूसरे का धन ग्रहण करने से विरत रहती है; क्योंकि उसे प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए अपने ही धन से संतोष रहता है तथा पर-धन के ग्रहण से विरत एवं संतोषामृत से परिपूर्ण हुआ वह क्रमशः अपने स्वार्थों की भी उपेक्षा कर देना चाहता है। वह याचक को कण, पिण्याक (खली) और शाक आदि जो कुछ अपने पास मौजूद रहता है, वह सब दे देता है। यहाँ तक कि उसी अभ्यास योग से वह अपना मांस भी दे डालता है। विवेकी पुरुष को चाहिये कि पहले वह पर-धन के ग्रहण से यत्नपूर्वक विरत हो जाय। जब इसका पूर्णतया अभ्यास हो जाय, तब उसे विवेक बल से स्वार्थमात्र से आसक्ति हटा लेनी चाहिए।

श्रीराम ! जैसे सरोवर वर्षा के जल से ही भरता है, उसी तरह मनुष्य का अन्तःकरण संतोष से ही परिपूर्ण होता है। जैसे बसन्त ऋतु के आगमन से सुन्दर पुष्पों से लदे हुए वृक्षों से वन लहलहा उठता है, वैसे ही साधु पुरुष संतोष से ही गम्भीर, शीतल, मनोहर, प्रसन्न और रसशालिनी ओजस्विता को पाकर शोभित होने लगता है। किन्तु जो असंतुष्ट है और सदा धन के लिये लालायित रहता है, उसकी प्रकृति दीन हो जाती है और वह पादपीठ (खड़ाऊँ या पनही) की रगड़ से पिसे हुए कीड़े की भाँति चेष्टा करता रहता है तथा एक दुःख से दूसरे दुःख को प्राप्त होता रहता है।

जो धन के लोभी होते हैं, उनकी आकृति विकृत हो जाती है। उन्हें क्षुब्ध समुद्र में गिरे हुए तथा लहरों के थपेड़ों से व्याकुल हुए जीवों की भाँति कभी स्वस्थ स्थिति प्राप्त नहीं होती। अर्थ सम्पत्ति और नारी-ये दोनों ही उत्ताल-तरंगों की तरह क्षणविध्वंसी हैं और सर्प के फन की छत्रछाया के समान हैं, अतः कौन विद्वान् इनमें मन लगायेगा। धन के उपार्जन और रक्षण में जो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, उन्हें जानता हुआ भी जो मूढ़ धन की अभिलाषा करता है, वह मनुष्य होते हुए भी पशु-तुल्य है; अतः उसका स्पर्श तक नहीं करना चाहिए। जो संतोषरूपी हँसुआ से मन के बाह्यइन्द्रिय व्यापारों को और आन्तरिक संकल्प आदि को एक साथ ही काट डालता है, उसका क्षेत्र ज्ञानबीज की उत्पत्ति का स्थान हृदय-प्रकाशित हो उठता है। पुरुष को चाहिये कि पहले संसार से विरक्ति प्राप्त करे। वैराग्य हो जाने पर सत्पुरुषों का संग और शास्त्रों का अभ्यास करे। शास्त्रों के अर्थों की दृढ़ भावना करके भोगों से दूर रहे। तब कहीं उसे संतोष सुदृढ़ होता है। और उसकी दृढ़ता से परमार्थ तत्त्व की प्राप्ति होती है।

बत्तीसवां सर्ग समाप्त

तेतीसवां सर्ग

विवेकज्ञान सम्पन्न पुरुष महिमा

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुकुल भूषण राम ! जब संसार से विरक्ति सुदृढ़ हो जाती है, सत्पुरुषों का संग प्राप्त हो जाता है, बुद्धि द्वारा शास्त्रों-'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के अर्थ का ज्ञान हो जाता है, भोगों की तृष्णा नष्ट हो जाती है, विषय नीरस लगने लगते हैं, साधुता का उदय होजाता है, प्रकाशमय आत्मा प्रत्यक्ष हो जाता है तथा हृदय में आत्मोदय की पूर्ण भावना हो जाती है, उस समय विवेकी पुरुष उसी प्रकार धन की कामना नहीं करता, जैसे लोग अन्धकार को नहीं चाहते और जो सम्पत्ति उसके पास पहले से मौजूद रहती है, उसे वह सूखी एवं जूँठी पत्तल की तरह त्याग देता है। यद्यपि इन्द्रियों के भोगरूपी विषय बारंबार उसकी इन्द्रियों के सम्पर्क में आते हैं, तथापि उसे उनका अनुभव नहीं होता; क्योंकि उसका मन सर्वथा शान्त हो गया रहता है। अतः विवेकी पुरुष एकान्त स्थानों में, दिशाओं के छोरों में, सरोवरों में, काननों में, उद्यानों में, पुण्य-प्रदेशों में अथवा अपने ही घरों में, मित्रों की विलासपूर्ण क्रीड़ाओं में, रुचिर वाटिकाओं में, आयोजित भोजनादि व्यापारों में तथा शास्त्रों के तर्कपूर्ण विचारों में आसक्ति न होने के कारण वहाँ चिरकाल तक स्थित नहीं रहता है। यदि कहीं वह उन स्थानों में कुछ देर तक ठहर गया तो वहाँ भी वह तत्त्वज्ञ का ही अन्वेषण करता है; क्योंकि वह विवेकी, पूर्णशान्त, इन्द्रिय-निग्रही, स्वात्माराम, मौनी और एकमात्र विज्ञानस्वरूप ब्रह्म का ही कथन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

करने वाला होता है। इस प्रकार अभ्यास के बल से वह शान्त विवेकी पुरुष स्वयं ही परमपदस्वरूप परमात्मा में विश्राम प्राप्त कर लेता है।

राघव ! बोध के बिना न तो अर्थों की उपलब्धि हो सकती है और न पदार्थों के अभाव की ही सिद्धि होती है–ऐसी आन्तरिक अनुभूति का जो विषय है, उसे परमपद कहते हैं। एकमात्र बोध के साथ अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित होने के कारण जहाँ वस्तुतः बोधता है, न पदार्थ हैं और न पदार्थों का अभाव है, उसे तुम परमपद समझो जिन्हें परमात्मतत्त्व साक्षात्काररूप परमपद में विश्राम प्राप्त हो चुका है तथा जो मनोलय की अवस्था को पहुँच चुके हैं, ऐसे सज्जनों को विषय उसी प्रकार नहीं रुचते, जैसे हृदयहीन पत्थरों को दूध के स्वाद काअनुभवनहीं होता। जैसे दीपक अन्धकार का नाश कर देता है, वैसे ही निर्मल परमात्मपद में स्थित ज्ञानी पुरुष अपने हृदयस्थित अज्ञानरूपी अन्धकार को तथा बाहरी राग, द्वेष, भय आदि को दूर हटा देता है। जिसमें तमोगुण का सर्वथा अभाव है, जिसके सम्पूर्ण अंश रजोगुण से रहित हो गये हैं तथा जो सत्त्वगुण को भी लाँघ चुका है, वह मनुष्यरूप में सूर्य है; अतः उसे प्रणाम करना चाहिए। ये जितने चराचर जीव तथा भूत प्राणी हैं, वे सब–के–सब स्वेच्छानुसार उपहार–सामग्री प्रदान करके निरन्तर उसी आत्मा का पूजन करते हैं, इस प्रकार जब अनेक जन्मों तक यथाभिमत इच्छा से यह आत्मा पूजित होता है, तब अपने पुजारी पर प्रसन्न हो जाता है फिर तो प्रसन्न हुआ स्वयं देवाधिदेव महेश्वररूप आत्मा पूजक की शुभ कामना से उसे ज्ञान प्रदान करने के लिये अपने पावन दूत को तुरंत प्रेरित करता है।

श्रीरामजी ने पूछा–मुने ! परमेश्वररूप आत्मा किस दूत को प्रेरित करता है और वह दूत किस प्रकार ज्ञानोपदेश करता है–यह मुझे बतलाइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–रामभद्र ! आत्मा जिस दूत को प्रेरित करता है, उसका नाम विवेक है, वह सदा आनन्द देने वाला है। वह अधिकारी पुरुष के हृदयरूपी गुफा में वैसे ही स्थित हो जाता है, जैसे आकाश में चन्द्रमा। वही विवेक वासनायुक्त अज्ञानी जीव को ज्ञान प्रदान करता है और धीरे–धीरे इस संसार सागर से उद्धार कर देता है। यह ज्ञानरूप अन्तरात्मा ही सबसे बड़ा परमेश्वर है। वेद–सम्मत जो प्रणव है, वह इसी का बोधक शुभ नाम है। नर, नाग, सुर, असुर–सभी जप, होम, तप, दान, पाठ यज्ञ और कर्मकाण्ड द्वारा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

नित्य इसी को प्रसन्न करते हैं। चिन्मयकेकारण यही सर्वत्र विचरण करता है, जागता है और देखता है। इसलिये इसके आँख, कान, हाथ, पैर सर्वत्र व्याप्त हैं। यही चिदात्मा विवेक-दूत को उद्बुद्ध करके उसके द्वारा चित्तरूपी पिशाच को मारकर जीव को अपनी दिव्य अनिर्वचनीय स्थिति तक पहुँचा देता है इसलिये सम्पूर्ण संकल्प-विकल्पों को तथा अर्थ संकटों को छोड़कर अपने पुरुषार्थ से स्वयं ही उस चिदात्मा को प्रसन्न कर लेना चाहिए; क्योंकि इस संसाररूपी रात्रि के घने अन्धकार में, जिसमें मनरूपी पिशाच घूम रहा है और काम-क्रोधादि षड्ऊर्मिरूपी काली घटा छायी हुई है, अपना आत्मा की पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह सर्वत्र प्रकाश करता है।

यह संसार एक भीषण समुद्र के समान है। इसका भीतरी मरणरूपी अगाध भँवरों कल्लोलोंसे आकुल हो रहा है। यह तृष्णारूपी तरंगों से चंचल हो रहा है। इसे अपना मनरूपी प्रचण्ड वायु उद्वेलित कर रही है यह चराचर भूतरूप जल कणों से व्याप्त है और इन्द्रियरूपी मकरों से भरे रहने के कारण अत्यन्त गहन है। इस समुद्र को पार करने के लिए विवेक ही महान् जहाज है। इस प्रकार शास्त्रविहित अभीष्ट पूजन से सम्पन्न हुआ आत्मा पहले विवेकरूपी पावन दूत भेजकर सत्संग, शास्त्राभ्यास और परमार्थ वस्तु के उत्तम ज्ञान द्वारा जीव को अद्वितीय, निर्मल एवं सर्वोच्च पद तक पहुँचा देता है। राघवेन्द्र ! जिनका विवेक परिपुष्ट हो गया है और जिन्होंने वासनारूपी मल का परित्याग कर दिया है, उन महात्माओं के अन्दर कोई अपूर्व ही महत्ता उत्पन्न होती है। वस्तुतः भ्रान्ति के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो जाने से वासना अपने-आप निवृत्त हो जाती है। भला स्वप्न का स्वप्नरूप से ज्ञान होजाने पर उसमें सत्यत्व की भावना किसे हो सकती है। वासना का अभाव ही संसार का उपशमन है। वासना ही महाकाय यक्षिणी है, इसलिये बुद्धिमान् लोग इसका विनाश करने में तत्पर रहते हैं।

पूर्वाभ्यासवश पुरुषों की अज्ञान प्रयुक्त उन्मत्तता जैसे-जैसे उत्पन्न हुई रहती है, वैसे-वैसे ही वह ज्ञान के भली-भाँति अभ्यस्त होने से समयानुसार धीरे-धीरे विनष्ट भी हो जाती है। ज्ञानी पुरुष ज्ञानयज्ञ में दीक्षित होकर ध्यानरूपी यूप यज्ञ स्तम्भ को सुदृढ़रूप से गाड़ देता है और संसार की असत्ता के अनुभव द्वारा विश्व विजय करके सर्वस्व-त्यागरूप दक्षिणा लेकर सर्वोच्च

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

स्थान प्राप्त कर लेता है। उस समय चाहे अंगारों की वृष्टि हो प्रलयकाल की वायु चलने लगे अथवा भूतल उड़कर आकाश में चला जाय परन्तु ज्ञानी पुरुष अपने स्वरूप में ही समभाव से स्थित रहता है। पूर्ण वैराग्य से जिसका मन सर्वथा शान्त हो गया है और जिसने अपने मन को पूर्णतया निरुद्ध कर लिया है, ऐसा पुरुष सदा वज्र-तुल्य सुदृढ़ समाधि में ही स्थित रहता है। इसके अतिरिक्त उसकी दूसरी स्थिति नहीं होती; क्योंकि बाह्य पदार्थों से अत्यन्त वैराग्य हो जाने से मन जैसा पूर्णरूप से शान्त होता है, वैसा शान्त वह साधारण शास्त्राभ्यास, उपदेश, तप और इन्द्रिय निग्रह आदि से नहीं होता।

वासना से रहित हो जाने पर तो सभी जीव समान हैं, परंतु वासना की विषमता के कारण वे सूखे पत्ते की तरह उड़-उड़कर विभिन्न स्वर्ग-नरक आदि लोकों में गिरते हैं। इसलिये साधक को सबसे पहले परम पुरुषार्थ का अवलम्बन करके ध्यान में विघ्न करने वाली तन्द्रा को जीतना चाहिए। तत्पश्चात् बाह्य दृष्टि से ऊपरउठकर पूर्वजन्मार्जित वासना समूहरूपी संसार-पाश के सुदृढ़ पिंजड़े को तत्त्व-साक्षात्कार द्वारा शीघ्र ही तोड़कर चारों ओर से पूर्णानन्दैकरस ब्रह्मरूप से स्थित हो रहना चाहिए।

तेतीसवां सर्ग समाप्त

चौंतीसवां सर्ग

जीवों के सात रूप

श्रीरामजी ने कहा-भगवन् ! जैसे क्षीरसागर आदि सातों समुद्रों में क्षीर आदि के भेद से सात प्रकार के जल हैं, उसी प्रकार सात प्रकार के रूपों को धारण करने वाले जीवों के भेद को मेरी जानकारी के लिये आप वर्णन करने की कृपा करें।

श्रीवसिष्ठजी बोले-रघुनन्दन ! किसी प्राचीन कल्प के किसी जगत् में कहीं पर कुछ जीव सुषुप्ति अवस्था में स्थित थे। वे अपने प्राणयुक्त शरीरों के कारण जीवित ही थे। उनमें जो लोग स्वप्न देख रहे थे, उनके स्वप्न सदृश ही इस जगत् को समझना चाहिये और उन्हीं जीवों को 'स्वप्नजागर' कहा जाता है। उन सोये हुए जीवों का जो अपने-आप प्रकट हुआ स्वप्न प्रपंच है वही कभी-कभी जब हम लोगों का विषय बन जाता है, तब हम लोग उनके 'स्वप्ननर' कहलाते हैं। चिरकाल के पश्चात् जब उनका वह स्वप्न जाग्रत्रूप हो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जाता है तब उनके स्वप्न के वे जीव 'स्वप्न जाग्रत्' कहे जाते हैं। वास्तव में वे उनके स्वप्न में ही स्थित हैं। इस स्वप्न-प्रपंच के समाप्त होनेपर यदि ज्ञान हो गया, तब तो वे तत्त्वज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जाते हैं और यदि ज्ञान न हुआ तो गाढ़ निद्रा के वशीभूत होकर वे संकल्पानुसार उसी प्रकार के दूसरे शरीर धारण कर लेते हैं; क्योंकि कल्पनाभासरूपी आकाश की कहीं निरवकाशता नहीं रहती। चिरकाल के अभ्यास से जिन जीवों का जागराभिमान घनीभूत संकल्प में है तथा जिनके मन की चेष्टाएँ भी संकल्प में ही हैं, वे जीव 'संकल्प जागर' कहलाते हैं। वे संकल्प का उपशमन हो जाने पर पुनः पूर्ववत् अथवा उससे भी विलक्षण व्यवहार करने लगते हैं, अतः उनके शरीर में हमलोग 'संकल्प पुरुष' रूप से स्थित माने जाते हैं। जो विशाल आत्मा वाले प्रधान पुरुष ब्रह्मा के रूप से अवतीर्ण हुए हैं और पहले के उत्पत्ति विकासरूप स्वप्न से रहित हैं, वे 'केवलजागर' कहे गये हैं। पुनः वे ही जीव जब प्रौढ़ होकर जन्मान्तरों में जन्म धारण करते जाते हैं और जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति में विचरते रहते हैं, तब 'चिरजागर' कहलाते हैं। वे चिरजागर जीव ही जब पापरूप दुष्कर्मों के आवेश से जड़-स्थावररूप में प्रकट होते हैं और जाग्रत् अवस्था में घनीभूत अज्ञान से परिपूर्ण हो जाते हैं, तब 'घनजागर' कहे जाते हैं। जो शास्त्रार्थ चिन्तन और सत्संग के द्वारा उपदेश ग्रहण करके ज्ञान सम्पन्न हो गये हैं और जाग्रत् को भी स्वप्न सरीखे देखते हैं, वे 'जाग्रत्स्वप्न' कहलाते हैं। जिन्हें सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति हो गयी है और जो परमपद में विश्राम कर चुके हैं, तुरीय भूमिका को प्राप्त हुए वे जीव 'क्षीणजागर' कहे जाते हैं।

चौतीसवां सर्ग समाप्त

पैंतीसवां सर्ग

दृश्य जगत् की असत्ता

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! सृष्टि का कोई कारण नहीं हैं, इसीलिये न यह उत्पन्न होती है और न नष्ट।जैसा कारण होता है, वैसा ही कार्य उत्पन्न होता है। परंतु जब सृष्टि का कारण ही कल्पित एवं मिथ्या है, तब उससे होने वाला सृष्टिरूप कार्य भी कल्पित और मिथ्या ही सिद्ध होता है। जैसे प्रशान्त महासागर के भीतर लहर और भँवर आदि उससे अभिन्नरूप में ही स्थित हैं, उसी प्रकार क्षोभरहित परब्रह्म में जगत् और चित्त आदि स्थित हैं, जो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इस ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जैसे अपने भीतर बर्तनों को रखने वाला मिट्टी का लोंदा एकरूप से ही स्थित रहता है, उसी प्रकार अपने उदर में अनेक ब्रह्माण्ड भाण्ड को धारण करने वाला सर्वात्मा निर्मल ब्रह्म भी एक ही है। जैसे सुवर्ण अपने भीतर कटक, कुण्डल आदि अनेक नाम-रूपवाले आभूषणों को धारण करता है और उन सबके रूप में स्वयं ही स्थित होता है, उसी प्रकार सुवर्ण स्थानीय ब्रह्म ही दृश्य जगत् के रूप में स्थित है। ज्ञानी पुरुष स्वप्नकाल में स्वप्न को ही जाग्रत्-रूप जानते हैं' क्योंकि उन्होंने वासनाओं से व्यग्र मन को ग्रहण किया है और वे जाग्रत्काल में जाग्रत् को ही स्वप्न समझते हैं; क्योंकि उन्हें सत्यरूप आत्मा का बोध हो चुका है।

जैसे शरद् ऋतु में बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और पता लगाने पर मृगतृष्णा का जल मिथ्या सिद्ध होता है, उसी प्रकार बारंबार इन्द्रियों के सम्पर्क में आने पर भी यह दृश्य-प्रपंच तत्त्वज्ञान होते ही गल जाता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि में सोना, घी और इन्धन सब विलीन होकर एकरूप हो जाते हैं, वैसे ही विज्ञानकाल में जगत्, मन और द्रष्टा आदि सब एकमात्र ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाते हैं। जाग्रत् को स्वप्नवत् मिथ्या समझ लेने पर वह अपनी कठोरता या दृढ़ता को छोड़ देता है और आग से पिघले हुये सुवर्ण की भाँति अत्यन्त कोमल बन जाता है। तात्पर्य यह है कि उसके मिथ्यात्व का दृढ़ निश्चय हो जाता है, उसी प्रकार देशकालरूप निमित्त के बिना ही जाग्रत् और स्वप्न का निर्माण करके यथा स्थित बोधस्वरूप साक्षी चेतन आत्मा ही जगत् के रूप में घनीभाव को प्राप्त सा हो जाता है। इस प्रकार विचार के द्वारा जब जाग्रत् भी स्वप्नतुल्य सुकुमार मिथ्या सिद्ध हो जाता है, तब स्वतः क्षीण होने लगता है और उसके प्रति होने वाली वासना उसी प्रकार घटने लगती है, जैसे वर्षा का जल शरत्काल में क्षीण होने लगता है। विवेकी पुरुष की दृष्टि में अत्यन्त तुच्छता को प्राप्त हुई दृश्य-लक्ष्मी विद्यमान होनेपर भी रुचिकर नहीं लगती। स्वप्न भाँति उसे मिथ्या समझ लेने के कारण वह उसमें रस नहीं लेता है। महामते ! जैसे पास ही खड़े हुए पुरुषों के सामने दिखायी देने पर भी मृगतृष्णा का मिथ्या जल उनकी प्यास नहीं बुझा सकता, वैसे ही ये असत्य विषय किसी भी विवेकी पुरुष को कैसे रुचिकर प्रतीत हो सकते हैं ? श्रीराम ! जिसे असत्य समझ लिया गया, उसमें उपादेय बुद्धि कैसे रह सकती है ? भला कौन ऐसा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पुरुष है, जो स्वप्न को समझ लेने पर उसमें दीखे हुए सुवर्ण को लेने के लिये दौड़ता हो। जब दृश्य जगत् को स्वप्न के समान मिथ्या समझ लिया गया, तब उसके प्रति होने वाली आसक्ति दूर हो जाती है तथा द्रष्टा और दृश्य की दशाओं में जो चिज्जड़ ग्रन्थिरूप दोष प्राप्त हुआ है, उसका उच्छेद हो जाता है। गन्धर्वनगर के समान दीखने वाला जो भ्रान्तिरूप सम्पूर्ण जगत् है, वह अन्धकार के समान है। तत्त्वज्ञान होने पर सब ओर फैले हुए दीपक के प्रकाश के समान यह प्रकाशित हो उठता है और इसकी अन्धकाररूपता दूर हो जाती है। जैसे बादलों के हट जाने पर केवल स्वच्छ आकाश दिखायी देता है, उसी प्रकार जगत् की भ्रान्ति दूर हो जानेपर एक शुद्ध बुद्धि परब्रह्म परमात्मा का ही अनुभव होने लगता है।

पैंतीसवां सर्ग समाप्त

छत्तीसवां सर्ग

सृष्टि की असत्यता और एकमात्र अखण्ड ब्रह्मसत्ता का प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! यह जगत् मूढ़ पुरुष की दृष्टि में है; इसीलिये उसके मन में भी है। परंतु जो विवेकी पुरुष है, वह शास्त्र द्वारा निश्चित तथा पूर्वापर समन्वित अर्थ को ही देखता है और उसी को ग्रहण करता है। शास्त्रनिषद्ध वस्तु दृष्टि पथ में आजाय तो भी वह न तो उसकी ओर देखता है और न उसे ग्रहण ही करता है।

सभी प्रकारों से युक्त यह जो कुछ भी स्थावर जंगम जगत् दिखायी देता है, वह सब कल्प के अन्त में नष्ट हो जाता है। सृष्टि के पहले जो संसार की शोभा नष्ट हो चुकी थी, वही फिर आविर्भूत हुई है–इसका उल्लेख करना असम्भव है; क्योंकि नष्ट हुई वस्तु की फिर उत्पत्ति कैसे सम्भव हो सकती है ? यदि नष्ट की उत्पत्ति होती तब यह संदेह किया जा सकता था कि यह वही है या अन्य ? परंतु हम तो अनुभव का स्मरण करने वाले हैं; अतः नष्ट की उत्पत्ति कैसे स्वीकार कर सकते हैं ? जो वस्तु उपलब्ध होकर भी शून्य दशा को प्राप्त हो जाती है, वह नष्ट ही है; क्योंकि उपलब्ध का अदर्शन ही नाश है। यदि नाश की कोई और परिभाषा हो तो वह कैसी है, यह तुम्हीं बताओ। यदि कहें कि नष्ट हुई वस्तु ही फिर उत्पन्न हुई है तो ऐसी प्रतीति किसको होती है ? अतः जो वस्तु उत्पन्न है, उसका नाश अवश्य होता है। और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पुनः-पुनः दूसरे की ही उत्पत्ति या प्रवृत्ति होती है; यही कहना उचित है।

वृक्ष के बीच-बीच में जो स्कन्ध, शाखा, उपशाखा, पत्र, पुष्प तथा फलादिरूप अवयव हैं, उनमें समस्त वृक्ष शरीर को व्याप्त करके स्थित बीज-सत्ता तो अखंड एक रूप ही है। जब सर्वत्र एक ही सत्ता है, तब उसमें कार्य कारणभाव की कल्पना कैसे की जा सकती है ? विचार तथा अपने अनुभवरूप प्रमाण से यह सब शान्त, अनादि, अनन्त और आकाश के समान निर्मल केवल बोधस्वरूप परमात्मा ही है; क्योंकि सब कुछ परमात्मा का ही स्वरूप है। वह परमपदस्वरूप परमात्मा वाणी का अविषय, अव्यक्त, इन्द्रियातीत, नाम-रूप से रहित, सर्वभूतस्वरूप, शून्यमय तथा सत् एवं असत् भी है। वस्तुतः वह न वायु है, न आकाश है, न मन है न बुद्धि आदि है और न शून्यरूप ही है। वह कुछ न होकर भी सर्वस्वरूप है। कोई और ही (विलक्षण एवं अनिर्वचनीय) परम व्योम (चिन्मय आकाशरूप) है। उस परमपद में स्थित एवं समस्त कल्पनाओं से मुक्त तत्त्वज्ञानी ही उस परमात्म वस्तु का अनुभव करता है, दूसरे लोग तो केवल अभ्यास में लाये गये शास्त्रों के अनुसार ही उसका वर्णन करते हैं। वह परमात्मा न काल है, न मन है, न जीव है, न सत् है, न असत् है, न देश है, न दिशा है, न इनका मध्य है, न अन्त है, न बोध है और न अबोध ही है।

योगीलोग उस परमात्मपद को सर्वात्मक और समस्त पदार्थों से रहित देखते हैं। आदि-पद ज्ञानयोगी महात्माओं की दृष्टि में सर्वरूप, सर्वात्मक, सर्वार्थरहित और स्वार्थपरिपूर्ण है। जिसका अन्तःकरण स्वच्छ है, जो तत्त्वज्ञ एवं शान्त है और परम प्रकाश-स्वरूप परमात्मा को प्राप्त है, वही उसके स्वभाव को देख या समझ पाता है। जैसे सुवर्ण-पिण्ड के भीतर आभूषण तथा मुद्रा आदि का समूह कल्पित है, उसी प्रकार 'यह' 'तुम' और 'मैं' इत्यादि के रूप में प्रतीत होने वाला भूत, वर्तमान और भविष्यकाल के जगत् का भ्रम उस परमात्मा में कल्पना से ही स्थित हैं, वास्तव में नहीं। परब्रह्मरूपी काष्ठ स्तम्भ में यह त्रिलोकीरूपिणी पुतली यद्यपि खुदी हुई नहीं है तो भी प्रतीत हो रही है, साक्षीरूपी शिल्पी दृष्टि में समायी हुई है। खम्भे में तो खुदी हुई पुतलियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं, परंतु उस क्षोभरहित परब्रह्म परमात्मारूपी महासागर में बिना हुए ही ये सृष्टि की तरंगें दृष्टिगोचर हो रही हैं। नित्य निरतिशयानन्दमय जल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

से भरे हुए चैतन्यरूपी सरोवर में चिन्मय मेघों की अमृतमयी वर्षा के समान ये दृष्टिगत सृष्टियाँ भासित हो रही हैं। वह परमात्मा विभागशून्य-अखण्ड एकरस है तो भी उसमें ये सृष्टि-दृष्टियाँ विभागपूर्व स्थित हैं। ब्रह्म क्षोभरहित है तो भी उसमें ये क्षुभितसी देखी जाती हैं तथा वहपरमात्मा सच्चिदानन्दघन है, इसमें इन दृष्टिगत सृष्टियों का कहीं पता नहीं है तो भी ये उसके भीतर प्रतीत होती हैं।

छत्तीसवां सर्ग समाप्त

सैंतीसवां सर्ग

पूर्ण ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! उस शुद्ध बुद्ध परमात्मा में सृष्टि के कारणभूत मल, आकार, बीज, माया, मोह, और भ्रम आदि किसी का भी होना सम्भव नहीं है। वह केवल (अद्वितीय), शान्त, अत्यन्त निर्मल और आदि-अन्त से रहित है। वह इतना सूक्ष्म है कि उसके भीतर आकाश भी प्रस्तर के समान स्थूल कहा जा सकता है। जिसकी उत्पत्ति का कोई कारण नहीं है, उस दृश्य प्रपंच की सत्ता यहाँ कदापि सम्भव नहीं है तथा जो सदा स्वानुभवैकगम्य नित्य परमात्म वस्तु है, उसकी सत्ता का निराकरण करने की शक्ति किसमें है ? संसार ब्रह्मस्वरूप होने के कारण चैतन्यमय ही है। इसमें जो जड़ आकार की प्रतीति होती है, वह भ्रम से ही है। इसलिये सब कुछ एक, अजन्मा, शान्त, द्वैताद्वैत से रहित तथा निरामय ब्रह्म ही है। पूर्ण परब्रह्म परमात्मा से पूर्ण का ही विस्तार हो रहा है। पूर्ण में पूर्ण ही प्रतिष्ठित है। वह पूर्ण ब्रह्म शान्त, सम, उदय-अस्त से रहित, निराकार, अजन्मा, आकाश की भाँति व्यापक, विशुद्ध और अद्वितीय है। वह सर्वरूप है और सत्-असत् स्वरूप तथा एक होकर ही सदा उदित रहता है। सबका आदि वही है। मोक्ष उसका अपना ही स्वरूप है तथा वह उत्कृष्ट बोधरूप है।

'तू', 'मैं' और 'यह जगत्'-इत्यादि जो शब्द हैं, इनका अर्थ ही है और वह ब्रह्म ही विद्यमान है। वह ब्रह्म शान्त, सबमें समानरूप से ही प्रकाशित होने वाला तथा सत् है। वह पृथक् स्थित न होकर ही अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है। समुद्र, पर्वत, मेघ, पृथ्वी तथा विस्फोट आदि से युक्त होकर भी यह जगत् अजन्मा तथा काष्ठमौन के समान निष्क्रिय ब्रह्मरूप से ही स्थित है। उस ब्रह्म में न तो ज्ञातापन है न कर्तापन है, न जड़ता है और न भोक्तापन है, न शून्यता

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (L.E.S) Jammu Collection

है, न अर्थरूपता है और न आकाशरूपता ही है। वह प्रस्तर के भीतरी भाग की भाँति ठोस, सत्य, घन, अद्वितीय, जन्म आदि से रहित, सर्वव्यापी, सर्वरूप, शान्त, अनादि, अनन्त तथा विधि-निषेध रूपों में प्रतिपाद्य एकरूप ही है। मरना-जीना, सत्य-असत्य तथा शुभ-अशुभ जो कुछ भी है, वह सब एकमात्र जन्मरहित चेतनाकाशस्वरूप है। शान्तों में भी परम शान्त चेतनाकाशस्वरूप ब्रह्म का ही रूप यह जगत् है, जो आदि और अन्त में अव्यक्त तथा मध्यकाल में ही इस प्रकार व्यक्त होता है। जैसे जल ही लहर आदि के रूप में दृष्टि-गोचर होता है, उसी प्रकार ब्रह्म ही जगत्रूप में भासित होता है, जो उत्पन्न होता है और उत्पन्न है, वह कार्यरूप तथा जो उत्पन्न नहीं होता है और उत्पन्न नहीं है, वह कारणरूप भी उस चेतन परमात्मा से भिन्न नहीं है। अतः इस सृष्टि का कोई कारण नहीं है। जैसे प्रयत्न-पूर्वक खोज करने पर भी खरगोश के सींग का पता नहीं लग सकता, वैसे ही इस सृष्टि का कोई कारण नहीं उपलब्ध होता है।

श्रीरामजी पूछा-ब्रह्मन् ! जैसे वटबीज के भीतर भावी विशाल वृक्ष विद्यमान होता है, वैसे ही ज्ञानमयपरमाणु परमात्मा में यह सारी सृष्टि विद्यमान रहती है, ऐसा क्यों न मान लिया जाय ?

श्री वसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! जहाँ बीज है, वहाँ वटवृक्ष की विशाल शाखा हो सकती है; क्योंकि वह सहकारी कारणों से उत्पन्न होती और फैलती है; परंतु जब सम्पूर्ण भूतों का प्रलय हो जाता है, तब कौन-सा साकार बीज शेष रह जाता है और उसका सहकारी कारण भी क्या रहता है; जिसके सहयोग से जगत् की उत्पत्ति हो। जो शान्त परब्रह्म है, उसमें आकार की कल्पना ही क्या हो सकती है ? उसमें तो परमाणुत्व का भी योग नहीं होता, फिर बीजत्व कैसे आ सकता है ? इस प्रकार विचार करने पर बीजभूत कारण का होना जब सर्वथा असम्भव है, तब जगत् की सत्ता किस प्रकार, किस साधन से, किस निमित्त से, कहाँ और क्या हो सकती है; इसलिये जो ब्रह्मरूप परमतत्त्व है, वही अपने स्वरूपभूत संकल्प से यह जगत् बनकर स्थित है। यहाँ न तो कोई वस्तु उत्पन्न होती है और न उसका नाश ही होता है। जैसे आकाश में अवकाश और जल में द्रवत्व है, उसी प्रकार परमात्मा में आत्ममयी शुद्ध सृष्टि भिन्न-सी स्थित प्रतीत होती है।

सैंतीसवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshi Sharma (I.F.S) Jammu Collection

अड़तीसवां सर्ग

ब्रह्म में ही जगत् की कल्पना तथा जगत् का ब्रह्म से अभेद

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! उत्पत्ति विनाश, ग्रहण-त्याग, स्थूल-सूक्ष्म, चर-अचर आदि सभी पदार्थ सृष्टि के आरम्भकाल में उत्पन्न नहीं हुए थे; उत्पत्ति का कोई कारण नहीं था। जैसे नदियों की तरंग लेखा पहले की भाँति आज भी बह रही है, वैसे ही चेतन का प्रथम संकल्प ही कल्प के आदि से प्रलयपर्यन्त पदार्थों के स्वभाव का व्यवस्थापक है। पदार्थों की रचना दृष्टियों में ही प्रकट है। उनकी वास्तविक सत्ता नहीं है। जैसे जल-तरंगों की शोभा ही नदियों की रचना बन गयी है, उसी तरह चेतन आकाश में विद्यमान चैतन्यरूप बीज की सत्ता ही उसके भीतर सृष्टिरूपता को प्राप्त हो गयी है अर्थात् सृष्टि की सत्ता चेतन सत्ता से पृथक् नहीं है। सब प्रकार भेद-ज्ञान का निवारण होजाने पर पुरुष में जो एक शुद्ध ज्ञान का उदय होता है, तद्रूप ही वह बन जाता है; इसी से वह मुक्त कहा जाता है। अत्यन्त स्वच्छ चेतन आकाश में जो चैतन्य का निरन्तर प्रकाश होता है, उसी को जगत् नाम से कहा जाता है। इसलिये उसमें बन्धन और मोक्ष की दृष्टियाँ कैसे रह सकती हैं ? चेतन आकाश में जो यह 'जगत' नामक मलिनता प्रतीत हो रही है, पूर्वोक्तरूप से विचार करने पर यह निष्कलंक एवं निर्वाणरूप ब्रह्म ही सिद्ध होता है। कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ यह ब्रह्म व्याप्त न हो। यह जगत् अनेक रूप नहीं है, अपितु आकाश में शून्यत्व तथा समुद्र में द्रवत्व के समान ब्रह्म से अभिन्न है।

रघुनन्दन ! चिन्मय आकाश परब्रह्म परमात्मा में सर्वत्र और सदा सब कुछ स्थान संकोच के बिना भलीभाँति विद्यमान है। साथ ही वह सर्वथा स्वच्छ हैं अर्थात् वह अपनी मलिनता से ब्रह्म को दूषित नहीं करता है। वैसे ही, जैसे सम्पूर्ण आकाश में नीलरूप से भासित होनेवाली शून्यता अपने मल से मलिनता पैदा करके उसे दूषित नहीं करती। श्रीराम ! इस विषय में पाषाणाख्यान सुना रहा हूँ, सुनो-यह अविद्यारूपी रोग को दूर करने के लिये रसायन है। पूर्वकाल में मैंने जो कुछ देखा था, उसी का इस आख्यायिका में वर्णन है। यह विचित्र होने के साथ ही इस प्रसंग के अनुकूल है। एक समय की बात है, मैं जानने योग्य परमात्म तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लेने के कारण पूर्णकाम हो गया था इसलिये मेरे मन में यह इच्छा हुई कि घनीभूत भ्रम से भरे हुए इस लोक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

व्यवहार को छोड़ दूँ। तब ध्यान में एकतान होकर धीरे-धीरे दीर्घकालिक विश्राम के लिये सम्पूर्ण चंचलता का त्याग करके मैंने एकान्त स्थान में रहने की अभिलाषा की और शीघ्रतापूर्वक शान्ति की ओर अग्रसर होने लगा। उस समय मैं किसी देवता के स्थान में स्थित था और जगत् की विविध एवं क्षणभंगुर गतियों का अवलोकन कर रहा था। इतने में ही मैं यह सोचने लगा कि 'इस लोक की अवस्था बड़ी नीरस है। देखने में सुन्दर और परिणाम विनाशशील होने के कारण आपात रमणीय है, इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ कि यह कहीं किसी को किसी, भी कारण से और कभी भी सुख नहीं दे सकती। अतः कौन-सा ऐसा प्रदेश होगा, जो बिल्कुल सूना हो और जहाँ रहने से इन पाँचों बाह्य विषयों की वेदनाएँ अनुभव में न आवें ? मेरे विचार से तो यह आकाश ही, जो सब ओर से सूना होने के कारण विक्षेप के उपकरणों से रहित है, मेरी समाधि के लिये अधिक उपयोगी होगा। मैं इसके किसी दूरवर्ती कोने में उत्तम योगयुक्ति का आश्रय लेकर स्थित रहूँगा, आकाश के एक कोने में संकल्प से ही कुटी बनाकर उसके भीतर वज्र के भीतरी भाग के समान सुदृढ़ हो वासनारहित होकर निवास करूँगा।'

ऐसा सोचकर तलवार की धार के समान निर्मल आकाश में ज्यों ही मैं आगे बढ़ा, त्यों ही देखता हूँ कि इस आकाश का भी सारा अन्तःप्रान्त विक्षेप के कारणों से व्याप्त है। अनेक प्रकार के भूतगण यहाँ विचर रहे हैं। तब मैं आकाशवर्ती भूतगणोंको त्यागकर वहाँसे दूरातिदूर एकान्त स्थान में जा पहुँचा, जो अत्यन्त विस्तृत और सूना था। वहाँ बहुत धीमी-धीमी हवा चल रही थी। स्वप्न में भी भूतगण वहाँ नहीं पहुँच सकते थे। न तो वहाँ मंगल सूचक शुभ शकुन होते थे। और न उत्पात सूचक अपशकुन। तुम उस स्थान को संसारी पुरुषों के लिये अलभ्य समझो। उस शून्य प्रदेश में मैंने अपने संकल्प से ही एक कुटी का निर्माण किया। उसका भीतरी भाग स्वच्छ एवं विशद था। उसकी दीवारों में कहीं छेद नहीं थे इसलिये वह घनीभूत जान पड़ती थी तथा देखने में कमल कोश के समान सुन्दर लगती थी। फिर मैंने मन-ही-मन यही संकल्प किया कि यह कुटी समस्त भूतों के लिये अगम्य हो जाय। तत्पश्चात् मैं उन सब भूतों के लिये अगम्य कुटीर में प्रविष्ट हुआ। वहाँ पद्मासन लगाकर शान्तिचित्त हो मैंने अत्यन्त मौन धारण कर लिया। साथ ही यह निश्चय किया

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (RHS) Jammu Collection

कि सौ वर्ष के बाद ही मैं इस समाधि से उठूँगा। इसके बाद मैं निर्विकल्प समाधि में स्थित हो गया। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो मैंने निद्रा की मुद्रा धारण कर ली हो। मेरी बुद्धि में समता थी। मैं निर्मल आकाश के समान शुद्धभाव से अपनेस्वरूप में प्रतिष्ठित था ऐसा लगता था मानो आकाश से खोदकर मेरी प्रतिमा प्रकट की गयी हो। वह सौ वर्षों का समय मेरे लिये एक पल के समान व्यतीत हो गया; क्योंकि समाधि में चित्त को एकाग्र करने वाले पुरुष के लिये बहुत समय तक रहने वाली काल की गतियाँ भी थोड़ी हो जाती हैं। तदनन्तर अहंकाररूपी पिशाच इच्छारूपिणी पत्नी के साथ कहीं से मेरे पास आ धमका।

अड़तीसवां सर्ग समाप्त

उन्तालीसवां सर्ग

अहंकाररूपी पिशाच की शान्ति का उपाय

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीरामभद्र ! अज्ञानरूपी बालक ने अपने अन्तःकरण में अहंभावरूपी पिशाच की कल्पना कर ली है। जो वास्तव में है नहीं। जैसे हाथ में दीपक लेकर ढूँढ़ने वाले को अन्धकार का स्वरूप नहीं दिखायी देता, वैसे ही विचारशील पुरुष यदि देखे तो उसे अज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। अज्ञतारूपिणी पिशाची के स्वरूप पर विचार करते हुए जैसे-जैसे उसकी ओर देखा जाता है, वैसे-ही-वैसे वह छिपती जाती है। सृष्टि की सत्ता होनेपर ही अविद्या का अस्तित्व सम्भव हो सकता है, और किसी हेतु से नहीं। द्वितीय चन्द्रमा के होने पर ही दूसरा शशचिन्ह उपलब्ध हो सकता है। परंतु यह सृष्टि तो कभी उत्पन्न हुई ही नहीं। केवल अज्ञानियों के अनुभव में आती है। वास्तव में वह है नहीं। जैसे आकाश में कभी वृक्ष पैदा नहीं हुआ, उसी प्रकार सृष्टि का कोई कारण न होने से वह पूर्वकाल में ही उत्पन्न नहीं हुई थी। मनसहित छः इन्द्रियों से ज्ञात न होने वाला निराकार परब्रह्म मनसहित छः इन्द्रियों के विषयभूत साकार जगत् का वस्तुतः कारण कैसे हो सकता है ? कहते हैं बीजरूपी कारण से अंकुररूपी कार्य उत्पन्न होता है; परंतु जहाँ बीज ही नहीं है, वहाँ अंकुर कैसे हो सकता है ? कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति कदापि सम्भव नहीं है। आकाश में कब, किसने, कौन-सा वृक्ष स्पष्टरूप से देखा या पाया है। सदा समभाव रहनेवाला चेतनाकाशरूप ईश्वर ही अपने स्वरूप

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection

में सृष्टिरूप से स्फुरित हो रहा है। उसका स्वभाव ही सृष्टि के नाम से विख्यात है। अतः चिन्मय होने के कारण यह सृष्टि चैतन्यरूप ही है। सृष्टि के आरम्भ विषय ज्ञान शून्य जो शुद्ध एक अजन्मा अव्यय आदि और अन्त से शून्य परब्रह्म स्थित था, वही हमारे समक्ष सृष्टिरूप से विराजमान है। वास्तव में यहाँ सृष्टि नामकी कोई वस्तु है ही नहीं और न भूगोल तथा खगोल आदि ही है। सब कुछ शान्त, अवलम्बन शून्य, ब्रह्ममात्र ही है और ब्रह्म में ही स्थित है। भाव्य, भावक और भाव आदि भूमियों की जो निरन्तर उत्पत्ति है, वह सब स्वच्छ चिदाकाश ही स्वयं अपने आप में स्थित है। ऐसी अवस्था में कहाँ से सृष्टि हुई, कहाँ से अविद्या आयी और कहाँ अज्ञता एवं अहंकार आदि की स्थिति है ? सब शान्त, चिद्घन ब्रह्म ही तो है। इस प्रकार मैंने तुमसे अहंकार की शान्ति का उपाय बताया है। अहंभाव को यदि अच्छी तरह जान लिया जाय तो बालकल्पित पिशाच की भाँति वह स्वतः शान्त हो जाता है।

समस्त सृष्टियाँ ब्रह्म में ही कल्पित हैं–इस दृष्टि से परमात्मा ब्रह्म का कोई अणु अंश भी ऐसा नहीं है जो सृष्टियों से ठसाठस भरा हुआ न हो। परंतु वे सृष्टियाँ भी कहीं उपलब्ध नहीं होती हैं। वह सब कुछ परब्रह्मरूप आकाश ही है। सृष्टियों में कोई सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग भी ऐसा नहीं है, जो सदा ब्रह्मस्वरूप न हो। इसलिये ब्रह्म और सृष्टि इन नामों में ही उच्चारणमात्र का भेद है, इनसे प्रतिपादित होने वाली वस्तु में नहीं। सृष्टि ही परब्रह्म है और परब्रह्म ही सृष्टि है। अग्नि और सूर्य की उष्णताओं के समान इनमें तनिक भी भेद नहीं है। श्रीराम ! व्यवहार में लगे हुए ज्ञानी के लिए भी यह सब कुछ शान्त, एक, अनादि, अनन्त, स्वच्छ, निर्विकार, शिला के सदृश अत्यन्त घन और मौन ब्रह्मरूप ही है।

उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त

चालीसवाँ सर्ग

चेतनाकाश में असंख्य ब्रह्माण्डों का अवलोकन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–राघवेन्द्र ! तदनन्तर, (सौ वर्षों के पश्चात्) मैं ध्यान से जगा–समाधि से विरत हुआ। उस समय वहाँ मुझे एक मधुर ध्वनि सुनायी दी, जो बड़ी मनोरम थी, परंतु उसके पद और अक्षर अधिक स्पष्ट नहीं थे। वह ध्वनि पदार्थ और वाक्यार्थ का बोध करने में समर्थ नहीं थी।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (IPS) Jammu Collection

किसी नारी के कण्ठ से निकली हुई वाणी के समान उसमें स्वाभाविक कोमलता और मधुरता थी, स्वर में काफी लोच था, उच्च स्वर से उच्चारित न होने के कारण उस ध्वनि में गम्भीरता (दूर से सुनायी देने की योग्यता) नहीं थी। इस प्रकार उसके विषय में मैंने कुछ काल तक तर्क-वितर्क किया। वह आवाज़ ऐसी लगती थी, मानो भ्रमरों का गुंजारव हो रहा हो, तन्त्री के तार झंकृत होने लगे हों। वह न तो किसी बालक का रोदन था और न द्विज बालक के वेदाध्ययन का स्वर ही। कमलकोश में गुंजारव करने वाले भ्रमर की ध्वनि से वह आवाज मिलती-जुलती थी। उस शब्द को सुनकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। मैं दसों दिशाओं में दृष्टि फैलाकर वह शब्द करने वाले प्राणियों का अन्वेषण करने लगा। उस समय वहाँ मेरे हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ-'अहो ! आकाश का यह भाग लाखों योजन की दूरी लाँघकर बहुत ऊँचाई पर स्थित है। जिन मार्गों से सिद्ध पुरुष ही विचरण करते हैं, उनसे भी शून्य यह प्रदेश है। इसलिये इस एकान्त स्थान में ऐसे शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हो रही है ? मैं यत्नपूर्वक दृष्टिपात करने पर भी शब्द करने वाले को नहीं देख रहा हूँ। मेरे सामने यह जो अनन्त निर्मल आकाश है, सब ओर से सूना-ही-सूना दीख रहा है। प्रयत्नपूर्वक देखने पर भी यहाँ मुझे कोई प्राणी नहीं दीखता। अच्छा तो मैं अपने इस देहाकाश को ध्यान के द्वारा यहीं ज्यों-का-त्यों स्थापित करके चेतनाकाश स्वरूप होकर अत्याकृत आकाश के साथ उसी तरह एक हो जाता हूँ, जैसे जलबिंदु साधारण जल के साथ मिलकर एकरूप बन जाता है।'

यों सोचकर मैं इस शरीर का त्याग करने के लिये पद्मासन से बैठ गया और समाधि लगाने के लिय मैंने पुनः अपनी आँखें बंद कर लीं। तदनन्तर इन्द्रिय-सम्बन्धी बाह्य विषयों का तथा आन्तरिक विषयों का स्पर्श त्याग कर मैं एकमात्र संकल्परूप चित्ताकाश बन गया। इसके बाद क्रमशः उस चित्ताकाश को भी त्यागकर मैं बुद्धितत्व के स्थान में पहुँच गया। फिर उसे भी छोड़कर चेतनाकाशमय अपने वास्तविक स्वरूप में पहुँच गया। फिर तो चैतन्यमय महाकाश के साथ एक होकर मैं असीम और सर्वव्यापी बन गया। निराकार और निराधार रहकर समस्त पदार्थों का आधार बन गया। तब वहाँ मुझे झुंड-के-झुंड त्रैलोक्य, सैकड़ों, संसार तथा लाखों या असंख्य ब्रह्माण्ड दिखायी देने लगे। वे सब ब्रह्माण्ड एक दूसरे की दृष्टि में नहीं आते थे। वे नानाप्रकार के आचार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Library Jammu Collection
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

विचारों से सम्पन्न थे; परंतु एक दूसरे के लिये शून्यरूप ही थे। परम चेतनाकाश के कोष में स्थित हुए वे सब लोक शून्यता के जाल ही थे, यह किसी को ज्ञात नहीं था। वे सब-के-सब अज्ञानरूप दोष से युक्त प्रत्यगात्मा में अनादिकाल से ही कल्पित थे। चैतन्य के चमत्कार से चमत्कृत चेतनाकाश में सैकड़ों समुद्र, सूर्य, आकाश तथा मेरु आदि पर्वतों से युक्त स्वप्नजाल के समान वे लोकभासित होते थे तथा रजोगुण और तमोगुण से कलुषित जान पड़ते थे। वास्तव में कारणों की सत्ता न होने से कारणरहित पृथ्वी आदि का अनुभव तो भ्रमात्मक ही था। अतः ब्रह्मरूप अधिष्ठान की सत्ता लेकर ही वे सब जगत् विद्यमान थे। उस अधिष्ठान सत्ता को लेकर तो वे स्वरूपतः विद्यमान नहीं ही थे। मृगतृष्णा के जल-प्रवाह, दो चन्द्रमा की प्रतीति तथा आकाश की नीलिमा के समान वे लोक भ्रमरूप अनुभव से ही उत्पन्न हुए थे। अतः स्वरूपतः सत्य नहीं थे, परंतु सत्यरूप अधिष्ठान की सत्ता से सत्य जान पड़ते थे। परब्रह्मरूपी गूलर के वृक्ष में भोग आदि विचित्र रसों से परिपूर्ण ब्रह्माण्डरूपी फल लगे थे, जो हवा के झोंकों से झूम रहे थे। देवता, असुर और मनुष्य आदि प्राणी उन फलों के भीतर मच्छरों के समान प्रतीत होते थे। तुम, मैं और यह आदि अभिमानपूर्ण बुद्धि के बल से अत्यन्त दृढ़ बनाये गये वे सब लोक गीली मिट्टी द्वारा बने हुए उन खिलौनों के समान जान पड़ते थे, जो सूर्य की किरणों से सूखकर कड़े हो गये हों।

वास्तव में वे जगत् परमार्थ-चैतन्यरूप ही थे, तथापि उससे भिन्न के समान प्रतीत होते थे। अप्राप्त होकर भी प्राप्त-से जान पड़ते थे। तथा सदा असत् होकर ही सद्रूप-से भासित होते थे। आत्मारूपी सूर्य के तेल के भीतर वे केवल आभासरूप थे और वायु के स्पन्दन की भाँति स्वतः उत्पन्न हुए थे। श्रीराम ! उस समाधिकाल में मैंने अनन्त चेतनाकाश के भीतर अकारण ही उत्पन्न एवं विनष्ट होने वाले बहुत-से लोक देखे, जो तिमिर-रोग (रतौंधी) से युक्त आँखों वाले पुरुष के द्वारा देखे गये भ्रममात्र ही सिद्ध होते थे।

चालीसवाँ सर्ग समाप्त

इकतालीसवाँ सर्ग

विचित्र जगत का दर्शन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! तदनन्तर उपर्युक्तरूप से पूर्वोक्त शब्द

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

के कारण का विचार करता हुआ मैं आवरण रहित चेतनाकाश रूप होकर दीर्घकाल तक इधर-उधर भ्रमण करता रहा। इसके बाद वीणा की ध्वनि के समान वह शब्द मेरे कानों पड़ा। क्रमशः उसके पद स्पष्ट होने लगे। फिर मुझे यह मालूम हुआ कि किसी के द्वारा आर्या छन्द का पद गाया जा रहा है। फिर जहाँ से वह शब्द प्रकट हो रहा था, उस स्थान पर दृष्टि पड़ी। वहाँ मुझे एक स्त्री दिखायी दी, जो दूर नहीं थी। वह सुवर्ण-द्रव के समान गौरकान्ति से आकाश मण्डल को प्रकाशित कर रही थी। उसके गले के हार तथा शरीर के वस्त्र कुछ-कुछ हिल रहे थे। उसके नेत्रप्रान्त अलकावलियों से किंचित् आवृत हो रहे थे। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरी लक्ष्मी आ गयी हो। उसका मुख-मण्डल पूर्ण चन्द्रमा के समान मनोहर था। वह जब हँसती थी, तब फूलों के ढेर से झरते जान पड़ते थे। आकाश का कोश ही उसके रहने का घर था। उसका सौन्दर्य चन्द्रमा की किरणों को लज्जित कर रहा था। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो मोतियों के समूह से उसका निर्माण हुआ हो। वह कमनीय कान्तिमती नारी मेरा अनुसरण करने के लिये उद्यत जान पड़ती थी। मेरे पास खड़ी हो मधुर मुस्कान और उत्तम भाव-विलास से सुशोभित वह मनोहारिणी स्त्री स्वर से कोमल वाणी में बोली-

'मुने ! आपका अन्तःकरण उन राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोषों से सर्वथा शून्य है, जो असत् पुरुषों के ही हृदय में रहने योग्य हैं। आप संसार-सरिता में डूबकर मोहित होने वाले प्राणियों के आश्रयभूत तटवर्ती वृक्ष हैं; अतः मैं सब ओर से आपकी ही स्तुति करती हूँ।'

श्रीराम ! यह सुनकर मैंने उस मनोहर मुख एवं मधुर स्वरवाली स्त्री की ओर देखा और यह सोचकर कि 'यह तो स्त्री है, इससे मेरा क्या प्रयोजन है ?' उसकी अवहेलना करके मैं आगे बढ़ गया। तदनन्तर लोकसमूहों से युक्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I E S) Jammu Collection

माया दिखायी दी, उसे देखकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। फिर उसका भी अनादर करके मैं आकाश में विचरण करने को उद्यत हुआ। इसके बाद मैंने आकाश में स्थित हुई जगन्माया का निरीक्षण करने के लिये चेतनाकाशरूप से ज्यों ही चेष्टा की, त्यों ही वे सारे-के-सारे उग्र जगत् उसी तरह शून्यरूप हो गये जैसे स्वप्न, संकल्प (मनोराज्य) तथा कथा में वर्णित जगत् शून्यरूप होते हैं। इस प्रकार बताये गये वे सभी लोक परस्पर होने वाले प्रलयकाल के दृश्य को वैसे ही नहीं देखते या जान पाते हैं, जैसे एक ही घर में सोये हुए अनेक पुरुष एक दूसरे के स्वप्न में होने वाले रण-कोलाहल को नहीं सुनते हैं। श्रीराम ! चेतन में ही सब कुछ है, चेतन से ही सब कुछ, है, चेतन ही सब कुछ है और चारों ओर से चेतन-ही-चेतन है। सारी सत्ता चिन्मय तथा सद्रूप ही है। यही मैंने वहाँ पूर्णरूप से देखा। यह जो दृश्यों का दर्शन होता है, वह भ्रममात्र है, आकाश में उगे हुए वृक्ष की मंजरी है। सब कुछ चेतनाकाश का स्वरूप ही है-इस बात का मुझे वहाँ अनुभव हुआ। बुद्धि-रूप आकाश के साथ एकरूप होकर व्यापक, अनन्त एवं बोधस्वरूप हुए मैंने इसका अनुभव किया। सम्पूर्ण जगत् का यह बिछा हुआ जाल ब्रह्माकाश रूप ही है, दसों दिशाएँ ब्रह्माकाश ही हैं तथा कला, काल, देश, द्रव्य और क्रिया आदि भी ब्रह्माकाशरूप ही हैं। जो सब प्रकार के नाम और रूप से रहित, पाषाण की प्रतिमा के समान मौन और ज्योति-स्वरूप है, वही परब्रह्म परमात्मा यत्किंचित् नाम-रूपात्मक होकर जगत् कहलाता है। वहाँ समाधि काल में ऐसे लाखों जगत् भी अनुभव में आये थे, जिनमें चन्द्रमण्ड भी उष्ण थे और सूर्य भी शीतलता की मूर्ति जान पड़ते थे। श्रीराम ! कोई जगत् पाताल में गिर रहे थे, कितने ही आकाश में उड़ रहे थे और बहुत से सम्पूर्ण दिशाओं में भ्रान्तिपूर्ण पदों में प्रतिष्ठित थे। इस तरह चैतन्य समुद्र के चंचल बुदबुदों के रूप में दिखायी देने वाले उन असंख्य लोकों में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो मैंने न देखी हो।

श्रीरामजी ने पूछा-मुने ! महाकल्प के विनाशकाल में जब समस्त भूतों का समुदाय मूलप्रकृति में विलीन हो जाता है, तब पुनः किसको किस तरह सृष्टि का ज्ञान होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीरामभद्र ! महाप्रलय-काल में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश-इन सम्पूर्ण विशेष पदार्थों का विनाश हो जाने पर ब्रह्मा से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (IFS) Jammu Collection

लेकर स्थावर तक के सभी जीव-जगत् का अनुभव होता है, तब पुनः जिस प्रकार इस जगत् का अनुभव होता है, वह बताता हूँ, सुनो। महाप्रलय के पश्चात् जो ब्रह्म शेष रहता है, वह शब्दादि व्यवहार से वर्णन करने योग्य नहीं होता। उसे मुनिजन परमार्थ-चैतन्यघन कहते हैं। यह जगत् उसका हृदय है, अतः उससे भिन्न नहीं है। वही परमात्मदेव विनोदपूर्वक यह अनुभव करता है कि जगत् मेरा अपना स्वभाव और हृदय है। वास्तविकरूप से वह जगत् की सत्ता नहीं मानता है। इस प्रकार जब हम विचार करते हैं, तब जगत् नाम की कोई वस्तु नहीं पाते हैं। फिर क्या नष्ट होता है और क्या उत्पन्न। जैसे परम कारण परमात्मा अविनाशी है, वैसे ही उसका हृदय भी। महाकल्प आदि भी उसके अवयव ही हैं। अतः वे भी परमात्मा से भिन्न नहीं हैं। केवल अज्ञान ही यहाँ जगत् और परमात्मा में भेद की प्रतीति कराता है; परंतु विचारपूर्वक देखा जाय तो उस अज्ञान का भी कहीं पता नहीं लगता है। अतः एकमात्र सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सदा और सर्वत्र विराजमान है। जगत् उसकी उत्पत्ति तथा विनाश सर्वथा मिथ्या कल्पना हैं। इसलिये कभी कहीं किसी का कुछ भी न तो नष्ट होता है और न उत्पन्न ही होता है। यह जो दृश्य जगत् है, वह सब शान्त, अजन्मा, ब्रह्मरूप से ही स्थित है। यह अनादि जगज्जाल कभी उत्पन्न नहीं हुआ है। यहाँ इसके रूप में केवल ज्ञानस्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही है। इस प्रकार विचारदृष्टि से देखने पर अष्टसिद्धियों से युक्त ऐश्वर्य भी तृण के समान निस्सार ही सिद्ध होता है। ऐसा जानने वाला अधिकारी पुरुष अपने में ब्रह्मभाव का निश्चय करके अपने आत्मा में ही पूर्ण संतुष्ट रहता है।

इकतालीसवाँ सर्ग समाप्त

बयालीसवाँ सर्ग

चिदाकाशरूप से देखे गये जगतों की अपने से अभिन्नता

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-भगवन् ! उस समय आपने पक्षियों की भाँति आकाश में उड़ते हुए जो जगत-समूह का अवलोकन किया था, वह एक देश में स्थित होकर किया था या सम्पूर्ण चिदाकाशमय शरीर से ?

श्रीवसिष्ठजी बोले-रघुनन्दन ! उस समय तो मैं सर्वव्यापी, अनन्तात्मा चेतनाकाशरूप हो गया था, उस अवस्था में मेरा कहीं आना-जाना कैसे सम्भव

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (L.F.) Jammu Collection

हो सकता था ? न तो एक स्थान पर खड़े हुए पुरुष की भाँति ही स्थित था और न गतिशील ही था, इस प्रकार आत्मस्वरूप चिदाकाश में ही रहकर मैंने अपने इस अपरिच्छिन्न शरीर के द्वारा यह सारा जगत्समूह देखा था। जैसे शरीराभिमानी के रूप में स्थित होने पर मैं पैर लेकर मस्तक तक के अपने सभी अंगों को देखता हूँ, उसी प्रकार मैंने इन चर्मचक्षुओं के बिना भी चिन्मय नेत्र से सारे जगत्समुदाय का अवलोकन किया था। इस विषय में तुम्हारे लिये प्रमाण है, सपने में देखा हुआ संसार-विभ्रम; क्योंकि स्वप्न में जो दृश्य अनुभूत होता है, वह चेतनाकाश रूप ही है, उसके सिवा दूसरा कुछ नहीं है। जैसे वृक्ष अपने पत्र, पुष्प और फल आदि को देखता है, वैसे ही मैंने अपने ज्ञानरूपी नेत्र से सारे जगत् को देखा था। जैसे अवयवी अपने अवयवों को अपने में ही अभिन्नरूप से देखता है, उसी प्रकार मैंने इन समस्त सर्गों को अपने से अभिन्न ही देखा और समझा था। श्रीराम ! बोधस्वरूप आत्मा के साथ एकता को प्राप्त हुआ मैं आज इस समय भी उन विविध सर्गों को उसी तरह शरीर, आकाश, पर्वत, जल और स्थल में भी देख रहा हूँ।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! कमलनयन ! आप जब इस प्रकार अनुभव कर रहे थे, तब आर्याछन्द का पाठ करने वाली उस कान्तिमती नारी ने क्या किया ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! वह भी चिदाकाशरूप से ही आकाश में मेरे समीप विनयपूर्वक खड़ी थी और उसी आर्याछन्द का पाठ कर रही थी। उस समय वह देवांगना सी जान पड़ती थी। जैसे मेरा शरीर चिदाकाशमय था, उसी प्रकार उसका भी था। मैंने उस पूर्वशरीर से वैसी ललना कभी नहीं देखी थी। मेरा शरीर चेतन-आकाशमात्र था, वह भी चेतनाकाशमय रूप धारण किये हुए थी और सारा जगज्जाल भी उस समय वहाँ चिदाकाशरूप से ही स्थित था।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन् ! शरीर में स्थित जीभ, तालु, ओठ तथा प्राणों के प्रयत्नों से उत्पन्न हुए वर्णों द्वारा जो वाक्य सम्पन्न होता है, वह आकाश-शरीरधारिणी उस स्त्री के मुख से कैसे प्रकट हुआ ? विशुद्ध चेतनाकाशरूप आत्माओं को रूप का दर्शन और आभ्यन्तर मन का अनुभव होना कैसे सम्भव है ? उस समय आपने जो जगत् के दर्शन और सम्भाषण आदि व्यवहार किये थे, उनकी संगति कैसे लगती है ? आप इस विषय में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mohkfrji sharma (I.F.S) Jammu Collection

अपना यथार्थ निश्चय बताइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! जैसे स्वप्न में चिदाकाश ही बाह्य तथा आभ्यन्तर पदार्थों के रूप से उदित होता है वैसे ही मेरे उस समाधिकाल में भी यह सारा दृश्य प्रपंच चिदाकाशरूप से ही स्थित था। केवल वही दृश्य चिदाकाशरूप रहा हो, ऐसा बात नहीं है, किंतु ये जितने पदार्थ हमलोगों की बुद्धि के विषय हैं, ये सब-के-सब तथा यह सारा संसार भी स्वच्छ चिदाकाश रूप ही हैं। हमारे लिये जैसा वह था, वैसा ही सारा जगत् है। जैसे स्वप्न में पृथ्वी पर खेती आदि के रास्तों पर आने-जाने के तथा पर्वत-प्रासाद आदि के ऊपर शयन आदि के जो व्यवहार होते हैं, वे सब चिदाकाशरूप ही हैं, उसी तरह उस समय 'मैं', 'तुम', 'वह स्त्री' तथा 'वह' और 'यह' सब कुछ चिदाकाशरूप ही था। रघुनन्दन ! तदनन्तर जैसे स्वप्न में स्वप्नगत मनुष्यों के साथ व्यवहार-कार्य चलता है, उस समय उस स्त्री के साथ मेरा वार्तालाप व्यवहार भी उसी तरह आरम्भ हुआ। जैसे वह स्वप्न सदृश व्यवहार चिदाकाशरूप ही था, उसी प्रकार तुम मुझको, इस आत्मा को तथा जगत् को भी चिदाकाशरूप समझो।

बयालीसवाँ सर्ग समाप्त

तेतालीसवाँ सर्ग

स्वप्नजगत् की भी ब्रह्मरूपता एवं सत्यता

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-मुने ! मुख, जीभ आदि अवयवों से रहित एकमात्र संकल्परूप देह से आपका उस स्त्री के साथ सम्भाषण आदि व्यवहार कैसे हुआ ? उस दशा में आपने क च ट त प आदि वर्णों का कैसे उच्चारण किया ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! चिदाकाशस्वरूप तत्वज्ञानियों के संकल्पमय देह वाले मुख से, क च ट त प आदि वर्णों का किसी काल में भी वैसे ही उच्चारण नहीं होता, जैसे मृतकों के मुख से कोई अक्षर नहीं निकलता है। (स्वप्न की भाँति ही वहाँ भी हुआ।)

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-भगवन् जब यह जगत् स्वप्नरूप ही है, तब जाग्रत-रूप से कैसे स्थित है ? तथा असत्य होकर ही यह सत्य-सा कैसे हो गया ?

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! यह सब जगत् कैसे स्वप्नमय ही है, यह सुनो-स्वप्न के समान ही ये जगत् न तो आत्मा से भिन्नरूप हैं, न आत्मा के समान सत्यरूप हैं और न स्थिर ही हैं। ये सब-के-सब एकमात्र अनिर्वचनीय आत्मसत्ता से स्थित हैं। वे सब जगत् एक-दूसरे को किंचिन्मात्र भी नहीं देख पाते तथा कोठी के भीतर रखे गये जड़ बीजों की एक राशि की तरह भीतर-ही-भीतर सड़ गलकर नष्ट भी हो जाते हैं। नष्ट होकर भी वे चेतनरूप ही रहते हैं, सर्वथा शून्य नहीं हो जाते। वे आपस में एक-दूसरे को नहीं जानते। अज्ञान से उनका चेतनारूप ढक जाने के कारण निरन्तर सोये हुए के सदृश स्वप्न का अनुभव करते हैं। सोये हुए स्वप्नरूप जगज्जाल की व्यवस्था के अनुसार व्यवहार करने वाले जो राक्षस स्वप्न में स्वप्नगत देवताओं द्वारा मारे गये, वे अब भी उसी स्वप्न में स्थित हैं। श्रीराम ! बताओ तो सही, इस तरह जो स्वप्न में मारे गये, वे क्या करते हैं ? अज्ञान के कारण मुक्त नहीं हुए तथा चेतन होने के कारण पत्थर के सदृश भी स्थित न रहे। वे लोग पर्वत, सागर, पृथ्वी तथा अनेक जीव-जन्तुओं से भरे इस सम्पूर्ण दृश्य-प्रपंच को चिरकाल तक उसी तरह अनुभव करते हैं, जैसे हम लोग। (इसीलिये उनका अपना-अपना स्वप्न चिरकाल की अनुवृत्ति से हम लोगों की तरह जाग्रदवस्था रूप ही हो जाता है।) उनके कल्प और जगत् की स्थिति भी वैसी ही है, जैसी हमलोगों की है और हमलोगों के जगत् की स्थिति भी वैसी ही है जैसी उन लोगों की है। उनके स्वप्न के वे पुरुष अपने तथा अन्य पुरुष के भी अनुभव से सत्य ही हैं; क्योंकि अपनी तथा दूसरे की सत्ता का निमित्तभूत जो अधिष्ठानस्वरूप चेतन है, वह सर्वव्यापी होने के कारण सत्य एवं सम है। जैसे आत्मा में वे स्वप्न के पुरुष सत्य हैं, वैसे ही दूसरे पुरुष भी। जिनका प्रत्येक स्वप्न में मुझे अनुभव होता है, वे सत्य ही हैं। तुमने अपने स्वप्न में जो अनेक नगर तथा नागरिक देखे थे, वे सब वैसे ही अब भी स्थित हैं; क्योंकि सर्वव्यापी ब्रह्म सर्वस्वरूप है। भीत में, आकाश में, पाषाण में, जल में और स्थल में सर्वत्र भिन्न-भिन्न पदार्थों के अंदर चिन्मात्र परमात्मा ही विराजमान है; वही सम्पूर्ण विश्वरूप से स्थित है; अतः चिन्मात्र परमात्मा के सर्वव्यापी होने से जहाँ-तहाँ सर्वत्र ही जगत् हैं। इनकी संख्या यहाँ कैसे बतलायी जा सकती है ? तत्वज्ञानियों की दृष्टि में वह सारा जगत् परब्रह्म ही है; परंतु अज्ञानियों के मन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

में दृश्य-प्रपंच रूप से स्थित है।

तेतालीसवाँ सर्ग समाप्त

चौवालीसवाँ सर्ग

श्रीवसिष्ठजी के पूछने पर विद्याधरी के द्वारा अपने जीवन-वृत्तान्त का वर्णन, अपनी युवावस्था के व्यर्थ बीतने का उल्लेख

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! तदनन्तर मैंने उस सुन्दरी ललना से, जिसके नेत्र कमल-से विलसित, खिले हुए मालती-पुष्प के समान शोभा पाते थे, कौतुकपूर्वक पूछा-'कमलपुष्प के भीतरी भाग-केसर की-सी सुनहरी कान्तिवाली सुन्दरी ! तुम कौन हो ? मेरे पास किसलिये आयी हो ? किसकी पुत्री या पत्नी हो ? क्या चाहती हो ? कहाँ गयी थी ? और कहाँ की रहने वाली हो ?'

विद्याधरी ने कहा-मुने ! मैं अपना वृत्तान्त ठीक-ठीक बतला रही हूँ, सुनिये। यद्यपि परायी स्त्री के साथ एकान्त में वार्तालाप करना उचित नहीं है तथापि मैं बड़े कष्टों में हूँ और संकट से छुटकारा पाने के हेतु प्रार्थना करने के लिये आयी हूँ; अतः आप करुणावश मुझसे बिना किसी हिचक के मेरा समाचार पूछ सकते हैं। महर्षे ! परमोत्कृष्ट चिन्मय आकाश के किसी छोटे से कोने में आपका यह आश्रमरूपी विलक्षण संसार बसा हुआ है। इसमें पाताल, भूतल और स्वर्ग-ये तीन प्रकोष्ठ (बड़े-बड़े आँगन) हैं। वहाँ हिरण्यगर्भ ब्रह्मा के आकार में स्थित हुई माया ने कल्पना नामक एक कुमारी (गृह-स्वामिनी) का निर्माण किया है। इन तीनों में जो भूतल है, वह कंगन की-सी आकृति वाले द्वीपों और समुद्रों से घिरा हुआ है; अतः उनके रंगों से अनुरंजित हो ताम्रवर्ण का दिखायी देता है; साथ ही कुछ ऊँचा भी है। इस प्रकार यह भूतल उपर्युक्त कंगन से विभूषित जगलक्ष्मी की कलाई के समान जान पड़ता है। द्वीपों और समुद्रों के अन्त में चारों ओर से दस हजार योजनों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

तक सुवर्णमयी भूमि स्थित है। उसके अन्तिम छोरपर लोकालोक नाम से विख्यात पर्वत है, जो जगलक्ष्मी की ऊँची कलाई के समान चारों ओर से घेरे हुए है। उस लोकालोक-पर्वत के शिखरों पर रत्नमयी बड़ी-बड़ी शिलाएँ हैं, जो आकाश के समान निर्मल हैं। उन शिलाओं के बीच में लोकालोक पर्वत के उत्तर भाग में उसके पूर्ववर्ती शिखर की जो एक शिला है, उसके भीतर मैं निवास करती हूँ। उस शिला का त्वचा-भाग कभी क्षीण न होने वाले वज्रसार मणि के समान कठोर है। विधाता ने मुझे वहाँ बाँध रखा है और इस प्रकार विवश होकर मैं उस प्रस्तर-यन्त्र में वास कर रही हूँ। मुने ! मैं समझती हूँ कि उस शिला में रहते हुए मेरे असंख्य युग बीत गये। केवल मैं ही नहीं बँधी हूँ, मेरे पतिदेव भी उसके भीतर वैसे ही बँधे हैं, जैसे सायंकालिक कमलकोश में भ्रमर बँध जाता है। उस शिला के कोटर में, उसके संकीर्ण स्थान में पति के साथ रहकर मैंने दीर्घकाल तक सुख-दुःख का अनुभव किया है और उस अनुभव में मेरे असंख्य वर्षसमूह बीत गये हैं; किंतु अभी तक हम दोनों अपने एकमात्र दोष (कामना) के कारण मोक्ष नहीं पा रहे हैं। उसी तरह परस्पर ममता बाँधे हम दीर्घकाल से वहीं रहते हैं।

मुनीश्वर ! उस पाषाण के संकट में केवल हमीं दोनों नहीं बँधे हैं, हमारा सारा परिवार भी बँधा पड़ा है। उसमें बँधे हुए मेरे पति ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए हैं और प्राचीन काल के वृद्ध पुरुष हैं। यद्यपि वे सैकड़ों वर्षों से जी रहे हैं तथापि एक स्थान से दूसरे स्थान तक चल नहीं सकते। वे बचपन से ही ब्रह्मचारी हैं। वेदाध्ययन में तत्पर रहते और छात्रों को पढ़ाते हैं, किंतु आलसी हैं। एकान्त स्थान में अकेले ही बैठे रहते हैं। उनके बर्ताव में कुटिलता नहीं है। वे चपलता से कोसों दूर रहते हैं। वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ महर्षे ! मैं उन्हीं की भार्या हूँ; किंतु मुझमें एक व्यसन है। मैं उन पतिदेव के बिना पलभर भी देह धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। ब्रह्मन् मेरे पति ने मुझे पत्नीरूप में किस प्रकार प्राप्त किया और हम दोनों का यह स्वाभाविक स्नेह परस्पर किस प्रकार बढ़ा, यह बताती हूँ, सुनिये।

पहले की बात है, मेरे पति ने जन्म के पश्चात् बाल्यावस्था में ही किंचित् ज्ञान प्राप्त कर लिया और एक सत्पुरुष की भाँति अपने निर्मल गृह में वे रहने लगे। उन दिनों उन्होंने विचार किया कि मैं वेदों के स्वाध्याय में संलग्न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modkerji Shastra Prakash Jammu Collection

रहने वाला ब्राह्मण हूँ। मुझे अपने ही अनुरूप ऐसी भार्या कहाँ से प्राप्त हो सकती है, जो उत्तम जन्म के कारण शोभा पा रही हो ? इस प्रकार चिरकाल तक चिन्तन करके उन्होंने अपने कर्त्तव्य का निश्चय किया और स्वयं ही मेरे नाथ ने अनिन्द्य सौन्दर्य से युक्त अंगवाली मुझ नारी को मानसिक संकल्प से प्रकट किया। मानो चन्द्रदेव ने निर्मल चाँदनी प्रकट की हो। मन से उत्पन्न होने के कारण मैं उनकी मान सी भार्या हुई और जैसे वसंत ऋतु में मन्दार वृक्ष की उत्तम एवं सुन्दरी मंजरी बढ़ती है, उसी प्रकार मैं भी बढ़ने लगी। मैं निरन्तर लीला-विलास में ही निरत रहने लगी। मेरे नेत्र लीलापूर्ण तिरछी चितवन से देखने लगे। मुझे सदा गाना-बजाना ही प्रिय लगने लगा। भोगों से कभी मुझे तृप्ति नहीं होती थी। मेरा दिनोंदिन भोगों में अनुराग बढ़ता गया। आदरणीय महर्षे ! मेरे पतिदेव दीर्घसूत्री और स्वाध्यायशील होने के कारण तपस्या में ही लगे रहे। उन्होंने किसी तरह की भी अपेक्षा मन में लेकर मेरे साथ अब तक विवाह नहीं किया। इसलिये यौवनसम्पन्न तरुणी स्त्री मैं उन्हें प्राप्त न कर सकने के कारण व्यसन की आग से उसी प्रकार जलने लगी, जैसे कोई कमलिनी आग से झुलस रही हो। फूलों की वर्षा से हरी-भरी सारी उद्यानभूमियाँ मेरे लिये तपी हुई बालुका राशि से आच्छादित सूनी मरुभूमियों की भाँति दाहक प्रतीत होने लगीं। जो पदार्थ सुन्दर, उचित, स्वादु और मनोहर हैं, उन्हें देखकर मेरी ये आँखें आसुओं से भर आतीं। मैं रमणीय स्थान में रोती। जो स्थान न रम्य है न अरम्य-मध्यम कोटि का है, वहाँ मैं सौम्य हो जाती और जो असुन्दर स्थान है वहाँ मैं प्रसन्न रहती। न जाने मुझ दीना नारी की ऐसी अवस्था कैसे हो गयी ? भगवन् ! इस प्रकार मेरे नवीनयौवन के बहुतसे दिन व्यर्थ बीत गये।

चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त

पैंतालीसवाँ सर्ग

विद्याधरी का वैराग्य

विद्याधरी बोली-मुने ! तदनन्तर जैसे शरत्काल बीतने पर रसहीन हुए पल्लवों की लाली मिट जाती है, उसी प्रकार दीर्घकाल के पश्चात् मेरा वह अनुराग विराग के रूप में परिणत हो गया। मैं सोचने लगी-'मेरा स्वामी बूढ़ा होने के कारण एकान्तवास का रसिक, नीरस और स्नेहशून्य हो गया। यद्यपि उसकी बुद्धि में कुटिलता नहीं है, तो भी वह मेरी ओर से सदा मौन ही रहता

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sheema (Trust) Varanasi Collection.

है; अतः मैं समझती हूँ कि मेरे जीवन का कोई फल नहीं है, इसलिये अब इसे रखने से क्या लाभ। बचपन से ही विधवा हो जाना अच्छा है, मर जाना भी अच्छा है अथवा रोगों का आक्रमण तथा दूसरी-दूसरी विपत्तियों का टूट पड़ना भी अच्छा है; परंतु जिसका स्वभाव मन के अनुकूल न हो, ऐसे पति का मिलना अच्छा नहीं। उसी स्त्री का जीवन सफल है, जिसका पति सदा उसके अनुकूल चलता हो; वही धन-सम्पत्ति सार्थक है, जिसका साधु पुरुष उपयोग करते हैं तथा वही बुद्धि, वही साधुता और वही समदर्शिता उत्तम है, जो मधुर एवं उदार है। यदि पति और पत्नी एक-दूसरे के प्रति पूर्ण अनुराग रखते हों तो उनके मन को आधि-व्याधियाँ, विपत्ति-समूह तथा दुर्भिक्ष लाने वाले उपद्रव भी कष्ट नहीं पहुँचा सकते। जिन स्त्रियों के पति प्रतिकूल स्वभाव वाले हों अथवा जो स्त्रियाँ विधवा हो गयी हों, उनके लिये फूलों से भरी हुई पुष्प वाटिकाएँ तथा नन्दनवन की भूमियाँ भी मरुभूमि के समान दुःखद हो जाती हैं। संसार के सार पदार्थ स्त्रियों द्वारा स्वेच्छानुसार त्याग दिये जाते हैं, परंतु वे किसी भी दशा में पति को नहीं त्याग सकतीं।

मुनीश्वर ! अब मेरा वह पतिविषयक अनुराग वैसे ही विरागरूप में परिणत हो गया है, जैसे पाले की मारी या जलायी कमलिनी का राग क्रमशः नीरस हो जाता है। मुने ! अब मुझे समस्त पदार्थों के प्रति वैराग्य हो गया है, इसलिये मैं इस समय आपके उपदेश से अपनी मुक्ति चाहती हूँ। जिन्हें मनोवाछित वस्तुओं की प्राप्ति नहीं हुई, जिनकी बुद्धि परमात्मपद में विश्राम न पा सकी तथा जो मरणतुल्य दुःखों के प्रवाह में बहे जा रहे हैं, ऐसे लोगों के लिये जीने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। मेरे पतिदेव भी अब मोक्ष पाने के लिये ही दिन-रात चेष्टा करते रहते हैं। जैसे राजा किसी राजा की सहायता से दूसरे राजा पर विजय पाने के लिये सचेष्ट होता है, इसी प्रकार मेरे पति भी मन के द्वारा ही मन को जीतने के प्रयत्न में सावधानी के साथ लगे हुए हैं। ब्रह्मन् ! आप मेरे उन पति का और मेरा भी अज्ञान दूर करने के लिये न्याययुक्त वाणी द्वारा उपदेश देकर आत्मतत्व का ज्ञान कराइये। जब मेरे पति मेरी उपेक्षा करके ही परमात्म-तत्व के चिन्तन में लग गये, तब वैराग्य ने मेरे लिये संसार की स्थिति में नीरसता पैदा कर दी।

मैं संसार की वासना के आवेश से शून्य हूँ, इसलिये आकाश में विचरने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की शक्तिरूप सिद्धि प्रदान करने वाली 'खेचरी मुद्रा' नामक तीव्र एवं अभीष्ट धारणा को बाँधकर सुस्थिरचित्त हो गयी हूँ। उक्त धारणा के द्वारा आकाश में विचरने की शक्ति पाकर मैंने पुनः दूसरी धारणा का अभ्यास किया, जो सिद्ध पुरुषों का संग एवं उनके साथ सम्भाषणरूप फल देने वाली है। (इसीलिये आज यहाँ आकर आपके साथ वार्तालाप करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकी।) तत्पश्चात् मैं अपने निवासभूत ब्रह्माण्ड के पूर्वा पर भागघटित (नीचे-ऊपर के सम्पूर्ण) आकार को भलीभाँति देखने की इच्छा से तदाकार भावनामयी धारणा बाँधकर स्थित हुई। वह धारणा भी मेरे लिये सिद्ध हो गयी। फिर मैं अपने उस ब्रह्माण्ड के अंदर की सभी वस्तुओं को देखकर जब बाहर निकली, तब वह लोकालोक पर्वत की स्थूलशिला मुझे दिखायी दी। मेरे पतिदेव केवल शुद्ध वेदार्थ के एकान्तचिन्तन में ही लगे रहते हैं। उनकी सारी एषणाएँ दूर हो चुकी हैं। वे न तो किसी का आना जानते हैं न जाना-उन्हें न तो भूतकाल का पता रहता है, न वर्तमान और भविष्य का ही। अहो ! उनकी कैसी अद्भुत स्थिति है ! परंतु वे मेरे पति विद्वान होते हुए भी अब तक परमपद को प्राप्त न कर सके। अब वे और मैं दोनों ही परमपद को पाने की इच्छा रखते हैं। ब्रह्मन् ! आपको हमारी यह प्रार्थना सफल करनी चाहिये; क्योंकि महापुरुषों के पास आये हुए कोई भी याचक कभी विफल मनोरथ नहीं होते। दूसरों को मान देने वाले महर्षे ! मैं आकाशमण्डल में सिद्ध समूहों के बीच सदा घूमती रहती हूँ; परंतु यहाँ आपके सिवा दूसरे किसी ऐसे महात्मा को नहीं देखती, जो अज्ञान के गहन वन को दग्ध करने के लिये दावानल के तुल्य हो। ब्रह्मन् ! करुणासागर ! संत-महात्मा अकारण ही प्रार्थीजनो की मनोवांछना पूर्ण किया करते हैं, इसलिये आपकी शरण में आयी हुई मुझ अबला का आप तिरस्कार न करें। तत्वज्ञान का उपदेश देकर मुझे और मेरे पति को कृतार्थ करें।

पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त

छियालीसवाँ सर्ग

अभ्यास की महिमा का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! ब्रह्माण्ड के पूर्ववर्णित ऊर्ध्व आकाश में संकल्प द्वारा कल्पित आसन पर बैठे हुए मैंने, उसी आकाश में कल्पित आसन पर स्थित हुई वह नारी जब मेरे पूछने पर उपर्युक्त बातें कह चुकी, तब पुनः

Mookerji sharma-JK Sanskrit Sansthan Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

उससे प्रश्न किया-'बाले ! शिला के पेट में तुम जैसे देहधारियों की स्थिति कैसे हो सकती है ? उसमें हिलना-डुलना कैसे होता होगा ? तथा तुमने वहाँ किस लिये घर बनाया ?'

विद्याधरी बोली-मुने ! जैसे आप लोगों का यह संसार बहुत ही विस्तृत रूप से प्रकाशित हो रहा है, उसी प्रकार उस शिला के उदर में सृष्टि और संसार से युक्त हम लोगों का जगत् भी स्थित है। वहाँ भी यहाँ की भाँति ही देवता, असुर, गन्धर्व, पृथ्वी, पर्वत, पाताल, समुद्र, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य और चन्द्रमा आदि सब वस्तुएँ हैं।

मुने ! यदि आप मेरी बात को असम्भव समझते हों तो आइये, उस सृष्टि को अच्छी तरह देख लीजिये, मेरे साथ चलने के लिये कृपा कीजिये; क्योंकि बड़ेलोगों को आश्चर्ययुक्त वस्तुएँ देखने के लिये बड़ा कौतूहल होता है।

रघुनन्दन ! तब मैंनें 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी बात मान ली और शून्य (आकाश) रूप हो शून्यरूपधारिणी उस नारी के साथ शून्य आकाश में उसी तरह उड़ना आरम्भ किया, जैसे आँधी या बवंडर के साथ फूलों की सुगन्ध उड़ती है। तदनन्तर दूर तक का रास्ता तय करने के बाद आकाश की शून्यता को लाँघकर मैं उस नारी के साथ आकाशवर्ती भूतसमुदाय के पास जा पहुँचा। चिरकाल के बाद आकाश में प्राणियों के संचारमार्ग को पारकर मैं लोकालोक पर्वत के शिखर के ऊपर आकाश भाग में पहुँच गया, उस शिखर के पूर्वोत्तर भाग में स्थित चन्द्रतुल्य उज्ज्वल बादल के पीठभाग से नीचे उतरकर वह नारी मुझे उस ऊँची शिला के पास ले गयी, जो तपाये हुए सुवर्ण की जान पड़ती थी। मैंने उस शुभ्र शिला को जब अच्छी तरह देखना आरम्भ किया, तब उसमें वह जगत् मुझे नहीं दिखायी दिया। केवल वह सुवर्णमयी शिला ही अग्निलोक (सुमेरू) के उच्चतम तट की भाँति दृष्टिगोचर हुई। तब मैंने उस कान्तिमती नारी से पूछा-'तुम्हारी वह सृष्टि भूमि कहाँ है ? उस लोक के रुद्र, सूर्य, अग्नि और तारे आदि कहाँ हैं तथा भूर्भुवः आदि सातों भिन्न-भिन्न लोक कहाँ हैं ? समुद्र, आकाश और दिशाएँ कहाँ हैं ? प्राणियों के जन्म और नाश कहाँ हो रहे हैं ? बड़े-बड़े मेघों की घटाएँ कहाँ घिरी हुई हैं ? ताराओं की तड़क-भड़क से युक्त आकाश यहाँ कहाँ दिखायी देता है ? कहाँ हैं शैलशिखरों की वे श्रेणियाँ ? कहाँ हैं महासागरों की पंक्तियाँ ? कहाँ हैं मण्डलाकार सातों द्वीप

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

और कहाँ हैं तपाये हुए सुवर्ण के सदृश वह भूमि ? कार्य और कारण की कल्पनाएँ कहाँ हैं ? भूतों और उनके भवनों का भ्रम कहाँ हो रहा है ? कहाँ हैं विद्याधर और गन्धर्व ? कहाँ हैं मनुष्य, देवता और दानव तथा कहाँ हैं ऋषि, राजा और मुनि ? नीति-अनीति की रीतियाँ कहाँ चलती हैं ? हेमन्त ऋतु की पाँच पहर वाली रातें यहाँ कहाँ हो रही हैं ? स्वर्ग और नरक के भ्रम कहाँ हैं? पुण्य और पाप की गणना कहाँ हो रही है ? कला और काल की क्रीड़ाएँ कहाँ होती हैं ? देवताओं और असुरों में कहाँ वैर देखे जाते हैं तथा द्वेष और स्नेह की रीतियाँ कहाँ से उपलब्ध होती हैं ?' मेरे इस प्रकार पूछने पर शिला के समान निर्मल नेत्रवाली उस सुन्दरी ने आश्चर्यचकित दृष्टि से मेरी ओर देखकर इस प्रकार कहा।

विद्याधरी बोली-सर्वरूप ब्रह्मर्षे ! मैं भी अब पहले की भाँति अपने उस सम्पूर्ण जगत् को तो इस शिला के भीतर नहीं देख रही हूँ, परंतु मैंने जिन मनुष्य, गन्धर्व आदि का पहले वर्णन किया है, उन सबको दर्पण में स्थित प्रतिबिम्ब की भाँति इस शिला में प्रतिबिम्बित देखती हूँ। इस समय जो कुछ दीखता है, वह पहले देखे गये नगर से भिन्न-सा है। मुने ! मुझे जो उस जगत् का कुछ-कुछ दर्शन हो रहा है, उसमें नित्य का मेरा अनुभव ही कारण है । आपको यह अनुभव नहीं है, इसीलिये आपको उसका दर्शन नहीं हो रहा है। इसके सिवा चिरकाल तक हम लोगों में जो यह एक अद्वैत की चर्चा चलती रही है, उससे विशुद्ध आतिवाहिक (सूक्ष्म मनोमय) देह का विस्मरण हो गया है। इसके कारण भी आपको वह जगत् नहीं दीखता और मुझको स्फुटरूप से उसका दर्शन होता है। मैंने चिरकाल से जिसका अत्यन्त अभ्यास किया था, मेरा वह जगत् भी आकाश-लता के समान अदृश्य हो गया है; क्योंकि मैं स्पष्टरूप से उसे नहीं देख पा रही हूँ। नाथ ! हम दोनों में परस्पर दीर्घकाल तक जो सम्भाषण हुआ, उससे अपने अत्यन्त विशुद्ध एवं व्यापक स्वास्थ्य (धारणाभ्यास जनित मनोमय देहरूपता) का विस्मरण हो गया। प्रभो ! जो अभ्यासजनित संस्कार शुद्ध चेतन आकाश के रस से उद्बुद्ध होकर प्रकाशित होता है, उसी के आकार का आन्तरिक चित्त भी हो जाता है। बाल्यावस्था से लेकर अब तक वही वस्तुस्थिति देखी जाती है। भगवन् ! यह जो आपके साथ संवाद हुआ है, इसने अपने जगत् के निरन्तर अभ्यास के कारण जगत् के भ्रम

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mukesh Sharma (IAS) Jammu Collection

से युक्त हुई मुझको निश्चय ही वश में कर लिया। इसीलिये वह संस्कार लुप्त-सा हो गया। भूत और वर्तमान काल के दो भ्रमों से वर्तमान काल का भ्रम ही बलवान् होने के कारण विजयी हुआ।

मैं एक पाषाण-शिला में निवास करने वाली अबला हूँ, बाला एवं आपकी शिष्या हूँ; फिर भी मैं तो इस शिला के भीतर स्थित हुई सृष्टि को देखती हूँ और आप सर्वज्ञ होकर भी नहीं देखते। देखिये, यह अभ्यास का विस्तार कैसा आश्चर्यजनक है। अभ्यास से अज्ञानी भी धीरे-धीरे ज्ञानी हो जाता है, पर्वत भी चूर्ण हो जाता है और बाण अपने महान् लक्ष्य को भी बेध डालता है। देखिये, यह अभ्यास की प्रबलता कैसी है। मुने ! अभ्यास से कटु पदार्थ भी मन को प्रिय लगने लगता है-अभीष्ट वस्तु बन जाता है। अभ्यास से ही किसी को नीम अच्छा लगता है और किसी को मधु। निकट रहने का अभ्यास होने पर जो भाई-बन्धु नहीं है, वह भी भाई-बन्धु (आत्मीय) बन जाता है और दूर रहने के कारण बारंबार मिलने का अभ्यास न होने से भाई-बंधुओं का स्नेह भी घट जाता है। भावना के अभ्यास से ही यह आतिवाहिक शरीर भी, जो केवल विशुद्ध चेतनाकाशरूप है, आधिभौतिक बन जाता है। यह आधिभौतिक शरीर भी धारणा के अभ्यास की भावना से पक्षियों के समान आकाश में उड़ने की सिद्धि प्राप्त कर लेता है। देखिये, अभ्यास की कैसी महिमा है ! निरन्तर अभ्यास करने से दुस्साध्य पदार्थ भी सिद्ध (सुलभ) हो जाते हैं, शत्रु भी मित्र बन जाते हैं और विष भी अमृत हो जाते हैं। जिसने इष्ट वस्तु के लिये अभ्यास छोड़ दिया है, वह मनुष्यों में अधम है। वह कभी उस वस्तु को नहीं पाता-ठीक उसी तरह, जैसे बन्ध्या स्त्री अपने गर्भ से पुत्र नहीं पाती। जो नराधम अपनी अभीष्ट वस्तु के लिये अभ्यास (बारंबार प्रयत्न) नहीं करता, वह अनिष्ट वस्तु में ही रत रहता है; इसलिये वह अनिष्ट को ही प्राप्त होता है और एक नरक से दूसरे नरक में गिरता रहता है। जिससे संसार असार बन जाता है। पर विवेक का सेवन करने वाले जो श्रेष्ठ पुरुष आत्मा विचार नामक अभ्यास को नहीं छोड़ते, वे निश्चय ही इस बढ़ी-चढ़ी विस्तृत माया-नदी को पार कर जाते हैं। इष्ट वस्तु के लिये किया गया चिरकालिक अभ्यासरूपी सूर्य प्रजाजनों के समक्ष ऐसा प्रकाश फैलाता है, जिससे वे देहरूपी भूतल पर रहकर जन्म-मरण आदि सहस्त्रों अनर्थों को पैदा करने वाली

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

इन्द्रियरूपिणी रात्रि को नहीं देखते। बारबार किये जाने वाले प्रयत्न को अभ्यास कहते हैं, उसी का नाम पुरुषार्थ है। उसके बिना यहाँ कोई गति नहीं है। अपने विवेक से उत्पन्न हुए दृढ़ अभ्यास नामक अपने कर्म को यत्न कहते हैं। उसी से यहाँ सिद्धि प्राप्त होती है, और किसी उपाय से नहीं। इन्द्रियों पर विजय पाने में समर्थ वीरपुरुष के लिये अभ्यासरूपी सूर्य के तपते रहने पर भूमि में, जल में और आकाश में भी ऐसी कोई अभिलषित वस्तु नहीं है, जो सिद्ध नहीं हो सकती। भूमण्डल में तथा पर्वत की समस्त निर्जन गुफाओं में जितने भय के कारण हैं, वे सब अभ्यासशाली पुरुष के लिये अभयदायक बन जाते हैं।

छियालीसवाँ सर्ग समाप्त

सैतालीसवाँ सर्ग

आतिवाहिक शरीर में आधिभौतिकता के भ्रम का निराकरण

विद्याधरी ने कहा-अतः मुने ! अब हम दोनों निर्मल परमात्मा में सर्वबोधानुकूल समाधिरूप धारणा द्वारा अपने प्राचीन आतिवाहिक भाव का पुनः अभ्यास करें। ऐसा करने से ही इस शिला के भीतर का जगत् प्रकट होगा।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! उस पर्वत पर विद्याधरी ने जब यह युक्ति-युक्त बात कही, तब मैं पद्मासन लगाकर बैठ गया और समाधि में स्थित हो गया। उस समय सम्पूर्ण बाह्य पदार्थों की भावना का त्याग हो जाने पर चिन्मात्रस्वरूप होकर मैंने उस पूर्व के अर्थ की-आधिभौतिक देहादि की भावना एवं उसके संस्कार-मल का भी सर्वथा त्याग कर दिया। तत्पश्चात् चेतनाकाश रूपता को प्राप्त हो मैंने उसी तरह उत्तम दृष्टि प्राप्त कर ली, जैसे शरत्काल आने पर आकाश निर्मलता को धारण कर लेता है। तदनन्तर सत्यस्वरूप परमात्मा के सुदृढ़ ध्यानाभ्यास से मेरी देह में आधिभौतिकता की भ्रान्ति निश्चय ही दूर हो गयी तथा तत्काल ही उदय एवं अस्त से रहित होने पर भी नित्य उदित रहने वाली और अत्यन्त निर्मल महाचेतनाकाशरूपता प्रकट-सी हो गयी। इसके बाद जब मैं साक्षीरूप अपने ही निर्मल तेज से देखने लगा, तब वास्तव में मुझे न तो वह आकाश दीख पड़ा और न वह पाषाणशिला ही कहीं दिखायी दी। सब कुछ केवल परम तत्वमय ही दृष्टिगोचर हुआ। मैंने स्वरूपबोध के पहले कभी जिसकी आकृति शिलामयी देखी थी, बोध के पश्चात् उसे स्वच्छ चिद्घन ब्रह्माकाशरूप ही देखा, पृथ्वी आदि विकारों के रूप में उस

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सद्वस्तु को कहीं नहीं देखा। प्रिय श्रीराम ! यह जो वर्तमान-काल का दृश्य-प्रपंच मन को प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है, यह आधिभौतिक देह आदि की कल्पना द्वारा अत्यन्त असद्रूप से ही प्रकट हुआ है। अतः इसे तुम प्रत्यक्ष ही असत् समझो और उस योगिप्रत्यक्ष को ही मुख्य प्रत्यक्ष जानो; क्योंकि उसमें सद्रूप परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार होता है। अहो ! परमेश्वर की माया कैसी विचित्र है, जिससे प्राक्-प्रत्यक्ष में (अर्थात् पहले से ही जो प्रत्यक्ष है, उस साक्षी चेतन में) तो परोक्षता का निश्चय हो रहा है और इस परोक्ष मन में प्रत्यक्ष भाव की कल्पना आ गयी है। यद्यपि सुवर्ण से कड़ा बनता है-इसका सभी को अनुभव है, तथापि यह निश्चय है कि सुवर्ण कड़ा नहीं है। उसी प्रकार सूक्ष्मशरीर में आधिभौतिकता नहीं है। यह जीव विचार न करने के कारण भ्रम को यथार्थ और यथार्थ को भ्रम समझ रहा है। अहो ! यह कैसी मूढ़ता है। जैसे सीपी में चाँदी, मृगतृष्णा में जल और एक चन्द्रमा में दो चन्द्रमा की बुद्धि मिथ्या ही है, उसी प्रकार आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर में आधिभौतिकता (स्थूलरूपता) की बुद्धि भी माया से ही हो रही है, वह वास्तविक नहीं है। जो असत् है, उसे सत्य मान लिया गया है जो सत्य है उसे असत् समझ लिया गया है। अहो ! जीव के अविचार से उत्पन्न हुए इस मोह की कैसी महिमा है। जो आदि-प्रत्यक्ष (स्थूल शरीर) में ही सत्यबुद्धि करके स्थित है, वह मानो मृगतृष्णा का जल पीकर तृप्ति का अनुभव करता हुआ सुखपूर्वक बैठा है।

विषयों का जो सुख है, वह क्षणभंगुर है-इसका सबको बारंबार अनुभव होता है। इसलिये उस सुख को दुःखरूप ही कहा गया है तथा जो नित्य, अनादि और अनन्त आत्मसुख है, उसी को वास्तविक सुख बताया गया है। अज्ञानी की दृष्टि में यह जगद्रूप भ्रान्ति ही सत्यरूपता को प्राप्त हो गयी है। मदिरा पीकर मतवाले हुए पुरुष को ये सुस्थिर वृक्ष और पर्वत ही नाचते-से प्रतीत होते हैं। जो योगियों के प्रत्यक्ष अनुभव में आये हुए, सर्वत्र अप्रतिहत, अद्वैत बोधरूप, पूर्णानन्दैकरस चित्स्वरूप ब्रह्म की सत्ता प्रत्यक्ष होने पर भी दूसरे तुच्छ प्रत्यक्ष (नेत्र आदि इन्द्रियों से दीखने वाले रूप आदि) विषय को सत्य मानकर उसका आश्रय लेते हैं, वे महान् मूर्ख हैं। अपने आपको ही धोखा देने वाले उस तृणतुल्य अधम पुरुषों से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है।

सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अड़तालीसवाँ सर्ग

ब्रह्माजी का यथार्थ स्वरूप

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! तदनन्तर अबोध चेष्टा वाली वह विद्याधरी उस शिला के भीतर स्थित हुई सृष्टि में प्रविष्ट हुई। फिर मैं भी उसके साथ संकल्परूप होकर वहाँ जा पहुँचा। वह उद्यमशील तथा उत्कृष्ट शोभा से युक्त नारी उस जगत् के ब्रह्मलोक में पहुँचकर ब्रह्माजी के सामने बैठ गयी और बोली-'मुनिश्रेष्ठ ! ये ही मेरे पति हैं, जो मेरा पालन करते हैं। इन्होंने पूर्वकाल में मेरे साथ विवाह करने के लिये अपने मन के द्वारा मुझे उत्पन्न किया था। ये पुरातन पुरुष हैं और मैं भी अब जरावस्था को आ पहुँची हूँ। इन्होंने आज तक मेरे साथ विवाह नहीं किया, इसलिये मैं विरक्त हो गयी हूँ। इनको भी वैराग्य हो गया है। ये उस परम पद को प्राप्त करना चाहते हैं, जहाँ न कोई द्रष्टा है, न दृश्य है और न शून्य ही है। इसलिये मुनीश्वर ! आप मुझको और इनको भी तत्वज्ञान का उपदेश देकर उस परब्रह्म परमात्मा के पथ में लगा दीजिये, जो वैज्ञानिक प्रलय तक रहने वाली सारी सृष्टियों के मूल कारण हैं।'

मुझसे ऐसा कहकर वह उन ब्रह्माजी को जगाने के लिये इस प्रकार बोली-'नाथ ! ये मुनिनाथ वसिष्ठजी आज इस घर में पधारे हैं। ये मुनि दूसरे ब्रह्माण्डरूपी घर में रहने वाले ब्रह्माजी के पुत्र हैं। प्रभो ! गृहस्थ के घर पर आये हुए अतिथि के योग्य पूजा द्वारा आप इन गृहागत महर्षि का पूजन कीजिये। समाधि से उठिये और अर्घ्य, पाद्य देकर इन मुनीश्वर की पूजा कीजिये; क्योंकि आप-जैसे महात्माओं को महापुरुषों की पूजा से प्राप्त होने वाला महान् फल ही रुचता है।'

श्रीराम ! उस विद्याधरी के ऐसा कहने पर वे परम बुद्धिमान ब्रह्माजी समाधि से जाग उठे। नीति के ज्ञाता उन विद्वान् ब्रह्मा ने धीरे से अपनी आँखें खोलीं, मानो शिशिर ऋतु की समाप्ति होने पर वसन्त ऋतु ने पृथ्वी पर उत्पन्न हुए दो फूलों को विकसित कर दिया हो। उनके वे विभिन्न अंग धीरे-धीरे अपनी-अपनी सजगता (ज्ञानयुक्त चेष्टा) प्रकट करने लगे, मानो वसन्त ऋतु के नूतन पल्लव नूतन रस की अभिव्यक्ति कर रहे हों तदनन्तर देवताओं, सिद्धों और अप्सराओं के समुदाय चारों ओर से वहाँ उसी तरह आ पहुँचे, जैसे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

प्रातःकाल विकसित कमलों से सुशोभित सरोवर में झुंड-के-झुंड हंस आ गये हों। ब्रह्माजी ने सामने खड़े हुए मुझको और उस विलासशालिनी विद्याधरी को देखा। देखकर वे प्रणवपूर्वक स्वरसहित उच्चारित होने वाली सुन्दर वेदवाणी के समान मधुर वचन बोले।

उस दूसरे संसार के ब्रह्माजी ने कहा-मुने ! आपने हाथ पर रखे हुए आँवले के समान इस असार संसार के सारतत्व को देख और जान लिया है। आप ज्ञानरूपी अमृत की वर्षा करने वाले महामेघ हैं। आपका स्वागत है। महर्षे! इस समय आप इस अत्यन्त दूरवर्ती मार्ग पर आ पहुँचे हैं। बहुत दूर का रास्ता तय करने के कारण आप बहुत थक गये होंगे। यह आसन है, इस पर बैठिये।

उनके ऐसा कहने पर मैं बोला-'भगवन ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।' ऐसा कहता हुआ मैं उनकी दृष्टि के संकेत से दिखाये गये एक मणिमय पीठ पर बैठ गया। फिर तो देवता, ऋषि, गन्धर्व, मुनि और विद्याधरों द्वारा मेरी स्तुति की जाने लगी। इसके बाद पूजा, नमस्कार तथा अन्य समुचित नीतियुक्त व्यवहार सम्पादित हुए। दो घड़ी में जब सम्पूर्ण भूतगणों द्वारा किया गया प्रणाम-समारोह शान्त हुआ, तब उन ब्रह्माजी से मैंने कहा-"भूत, वर्तमान और भविष्य के स्वामी ब्रह्मदेव ! यह क्या बात है कि यह नारी मेरे पास गयी और कहने लगी कि 'आप अपने ज्ञानोपदेश से प्रयत्नपूर्वक हमें बोध की प्राप्ति कराइये ?' देव ! आप तो सम्पूर्ण भूतों के स्वामी तथा समस्त ज्ञानों में पारंगत हैं। जगत्पते ! बताइये, यह काममूढ़ा स्त्री आपके विषय में क्या कहती है। देव ! जब आपने इसे अपनी पत्नी बनाने के लिये ही उत्पन्न किया था, तब फिर इसे उस पद पर क्यों नहीं प्रतिष्ठित किया, इसको वैराग्य की ओर आप क्यों ले गये ?"

दूसरे जगत् के ब्रह्माजी बोले-मुने ! सुनिये, जैसी बात है, उसे आपके सामने ठीक-ठीक बता रहा हूँ; क्योंकि सत्पुरुषों के सामने सब बातें यथार्थ और पूर्णरूप से कहनी चाहिये। मुने ! वह जो शान्त, अजन्मा, अजर एवं अनिर्वचनीय परमार्थ सद्वस्तु ब्रह्म है, उसी को चेतन अथवा चित्तत्व कहते हैं। चैतन्य ही उसका एकमात्र स्वरूप है। उसी परमात्मा ने अपने स्वरूपभूत चैतन्य से मुझे प्रकट किया है। मैं चिदाकाशरूप ही हूँ और सदा अपने स्वरूप में ही स्थित रहता हूँ। जब सृष्टि उत्पन्न होकर यथावत् रूप से स्थित हो जाती है,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Kashmir Research Institute (KRS) Jammu Collection

तब मेरा व्यावहारिक नाम स्वयम्भू होता है। वास्तव में न तो मैं उत्पन्न होता हूँ और न कुछ देखता ही हूँ। मैं समस्त आवरणों से मुक्त रहकर चेतनाकाशरूप हो चेतनाकाश में ही स्थित हूँ। यह जो आप मेरे सामने हैं और मैं आपके सामने हूँ तथा हम लोगों में जो यह परस्पर सम्भाषण हो रहा है, यह वैसा ही है, जैसे समुद्र में एक तरंग के आगे दूसरी तरंग हो और स्वयं समुद्र ही उन तरंगों के घात प्रतिघात के रूप में शब्द कर रहा हो। इस विषय में मेरी ऐसी ही मान्यता है। इस प्रकार समुद्र से तरंगों की कल्पना के समान जिसने अपनी और दूसरे की दृष्टि से देखे जाने वाले भेद की किंचित् कल्पना कर ली है तथा कालवशात् अपने स्वरूप को भी किंचित् भुला देने के कारण जिसकी आकृति कुछ मलिन-सी हो गयी है, वह मैं चिदाभासमात्र ही हूँ। ऐसे रूप वाले मुझ अन्तःकरण में जो ममता और अहंता की वासना उदित हुई है, वह उस कुमारी स्त्री से भिन्न जो आप हैं, आपको अन्य-सी प्रतीत होती है और मुझे अनन्य-सी जान पड़ती है। वह वासना हम दोनों की दृष्टि से उदित (प्रकट) भी है और अनुदित (अप्रकट) भी। वस्तुतः मैं अविनाशिनी सत्तावाला हूँ; क्योंकि कभी मेरी उत्पत्ति नहीं हुई है। मैं आत्मरूप से अपने आप में ही स्थित हूँ। स्वभाव से ही मैं अच्युत, अपने आत्मा में रमण करने वाला तथा स्वयं ही सब कुछ करने में समर्थ हूँ। यह कुमारी स्त्री के रूप में जो सामने खड़ी है, वासना की अधिष्ठात्री देवी ही है। यह न तो मेरी गृहिणी और न गृहिणी बनाने के निमित्त मैंने इसका सत्कार ही किया है। अपनी वासना के आवेशवश इसके मन में यह भाव उत्पन्न हो गया कि 'मैं ब्रह्माजी की पत्नी हूँ।' इस भावना को लेकर यह स्वयं ही अत्यन्त दुःख उठा रही है और वह भी व्यर्थ। यही सारे जगत् के भीतर वासना बनकर बैठी हुई है।

अढ़तालीसवाँ सर्ग समाप्त

उनन्चासवाँ सर्ग

जगत् की परमात्मासत्ता से अभिन्नता का प्रतिपादन

अन्य जगत् के ब्रह्माजी कहते हैं-मुनिश्रेष्ठ ! (मैंने अपने संकल्प से कल्पित दो परार्ध वर्षों की आयु बिता दी) अब चिदाकाशरूप मैं निरतिशयानन्दस्वरूप, ब्रह्माकाशमयी परम कैवल्यरूपा स्थिति को प्राप्त करना चाहता हूँ, इसी से यहाँ मेरी वासना द्वारा रचे गये इस संसार में नित्य,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Library (LFB) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

नैमित्तिक, दैनन्दिन और आत्यन्तिक-ये चारों प्रकार के प्रलय उपस्थित हो गये हैं। मुनीश्वर ! इस महाप्रलयकाल में अब मैंने इसे त्यागदेने-इस वासना का मूलोच्छेद करके इसे अपनी सत्ता से गिरा देने के उद्योग का निश्चितरूप से आरम्भ कर दिया है, इसी से यह विरसता को प्राप्त अर्थात् विनाशोन्मुख हो गयी है। जब मैं चित्ताकाशरूपता को त्यागकर आदि-चेतनाकाशरूप महाकाश होने जा रहा हूँ, तब यहाँ महाप्रलय का आना और वासना का विनाश होना अवश्यम्भावी है। यही कारण है कि यह विरस होकर मेरे मार्ग की ओर दौड़ रही है। भला ऐसा कौन उदारबुद्धि प्राणी, जो अपने जन्मदाता का अनुसरण न करता हो ? आज यहाँ चारों युगों का जन्मदाता का अनुसरण न करता हो ? आज यहाँ चारों युगों का विनाश उपस्थित है। अन्तिम कल्प, अन्तिम मन्वन्तर तथा अन्तिम कलियुग की समाप्ति का समय आ गया है, इसलिये आज ही प्रजा, मनु, इन्द्र तथा देवताओं का यह अन्तकाल आ पहुँचा है। आज ही यह कल्प का अन्त, महाकल्प का अन्त, मेरी वासना का अन्त और मेरे देहाकाश का भी अन्त होने वाला है। ब्रह्मन् ! इसीलिये यह वासना अब क्षीण होने को उद्यत है। जब कमलों से भरा हुआ सरोवर ही सूख रहा हो, तब गन्धलेखा कहाँ ठहर सकती है ? केवल अभिमान ही जिसका शरीर है, ऐसी इस वासना को स्वभावतः स्वयं ही आत्मदर्शन की इच्छा होती । आत्मसाक्षात्कार के लिये किये गये धारणाभ्यास रूप योग से इसने अन्य ब्रह्माण्ड में जाकर वहाँ आपके जगत् का दर्शन किया, जहाँ धर्म आदि चारों वर्गों के अनुष्ठान में लगी हुई स्वतन्त्र प्रजा निवास करती है। आकाश में विचरती हुई इस विद्याधरी ने उसी सिद्धि की सामर्थ्य से लोकालोक-पर्वत के शिखर की शिला देखी, जो इसके अपने जगत् की आधारभूत है तथा हमारी दृष्टि में केवल आकाशरूप ही है। जिस जगतरूपी पर्वत पर यह जगत् है और जिसमें उसकी शिलारूपता है, वहाँ तथा हमारे जगत्-रूप पदार्थों में ऐसे-ऐसे अनेक दूसरे जगत् भी हैं। यह जगत्रूपी भ्रान्ति जिनकी समझ में आ गयी अर्थात् जिनकी दृष्टि में यह चेतनाकाश के साथ एकरूपता को प्राप्त हो गयी, वे कभी मोह में नहीं पड़ते हैं और शेष जितने लोग हैं, वे भ्रम के ही भागी होते हैं।

मुने ! इस विद्याधरी को वैराग्य के कारण उत्पन्न अपने मनोरथ को सिद्ध करने की इच्छा हुई। इसीलिये इसने अन्य बहुत-सी धारणाओं का अभ्यास

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करके उनके प्रभाव से आपका दर्शन प्राप्त किया। आदि-अन्त से रहित एवं अनामय विद्यारूपा ब्रह्म की चिन्मयी मायाशक्ति सब ओर व्याप्त है। इस जगत् में कोई भी कार्य न तो कभी उत्पन्न होते हैं और न नष्ट ही होते हैं। केवल चिति ही द्रव्य, काल और क्रिया के रूप में प्रकाशित हो तप रही है। ये जो देश, काल, क्रिया, द्रव्य, मन और बुद्धि आदि हैं, सब-के-सब चितिरूपी शिला के पुतले हैं। इनका न कभी उदय होता है और न अस्त ही। इस बात को आप अच्छी तरह समझ लें। यह चिच्छक्ति ही शिला का आकार धारण करके स्थित है। जैसे स्पन्दन वायु का स्वरूप है, उसी प्रकार सारा जगत्-समुदाय इस चिच्छक्ति का अभिन्न अंग ही है। यह जो चितिरूपा शिला है, आदि-अन्त से रहित है; किंतु भ्रम से सादि और सान्त बन जाती है। निराकार होती हुई भी साकार हो जगत्रूप अंगों से युक्त बनकर स्थित हो जाती है। जैसे महाकाश के भीतर दूसरे-दूसरे आकाश (घटाकाश, मठाकाश आदि) महाकाश की सत्ता से ही विद्यमान हैं, अपना पृथक, अस्तित्व नहीं रखते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत् शून्यरूप होते हुए भी शान्तस्वरूप सर्वव्यापी चेतनाकाश परमात्मा में उसी की सत्ता से सर्वत्र विद्यमान है। परंतु वे अपनी पृथक् सत्ता नहीं रखते हैं, इस दृष्टि से उनके विषय में 'हैं' और 'नहीं हैं'-ये दोनों बातें कही जा सकती हैं। मुनिवर वसिष्ठ ! अब आप यहाँ से अपने जगत् को जाइये और इस समय अपने पूर्व कल्पित एकान्तवर्ती आसन पर समाधि लगाकर परम शान्ति का अनुभव कीजिये। मेरे जो कल्पित बुद्धि आदि जागतिक पदार्थ हैं, वे प्रलय को प्राप्त हो परम अव्यक्त तत्व में मिल जायँ; क्योंकि इस समय हम परब्रह्म परमात्मपद को प्राप्त हो रहे हैं।

उनन्चासवाँ सर्ग समाप्त

पचासवाँ सर्ग

ब्रह्माण्ड के महाप्रलय का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! ऐसा कहकर वे भगवान् ब्रह्मा सम्पूर्ण ब्रह्मलोकवासियों के साथ पद्मासन लगाकर बैठ गये और फिर कभी न टूटने वाली समाधि में स्थित हो गये। उन्हीं का अनुसरण करती हुई वह वासना की अधिष्ठात्री देवी सती-साध्वी कुमारी विद्याधरी भी उन्हीं की भाँति ध्यानमग्न हो शान्त हो गयी। उसका कोई भी अंश (स्मृति-बीजभेद) शेष नहीं रह गया। वह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Library Collection

आकाशरूपिणी (शन्यस्वभावा) हो गयी। ब्रह्माजी का संकल्प धीरे-धीरे विरस होने लगा।

जिस समय उनके संकल्प में विरसता आयी, उसी क्षण में तुरंत ही पर्वत, द्वीप और समुद्रों सहित पृथ्वी की तृण, गुल्म, लता और धान आदि को उत्पन्न करने की सारी शक्ति धीरे-धीरे नष्ट होने लगी। जैसे हम लोगों के अंग सवेदन शक्ति के क्षीण होने पर नीरस हो जाते हैं, उसी प्रकार ब्रह्माजी की अंगभूता पृथ्वी की सवेदनशक्ति का उपसंहार होने से वह नीरसता को प्राप्त हो गयी। ब्रह्माजी के द्वारा उपेक्षित होने पर पृथ्वी आदि तथा असुर आदि-ये दो तरह के महाभूत सब ओर से क्षुब्ध हो उठे। चन्द्रमा, सूर्य, वायु, इन्द्र, अग्नि और यम-ये सब-के-सब महाप्रलय के कोलाहल से व्याकुल हो गये। उनका अधिकार एवं प्रभाव ब्रह्मलोक में मिल गया। वे अपने स्थान से नीचे गिरने लगे। भूकम्पों के कारण बड़े-बड़े पर्वत जोर-जोर से झूमने और झोंके खाने लगे, मानो वे झूला झूलने के सुख का अनुभव कर रहे हों। उनके ऊपर की वृक्षश्रेणियाँ कटकट शब्द के साथ टूट-टूटकर गिरने लगी। भूकम्प के कारण कैलास, मेरु और मन्दराचल की कन्दराएँ हिलने लगीं और कल्पवृक्षों से टूटकर लाल रंग के पुष्प गुच्छों की वर्षा होने लगी। रघुनन्दन ! लोकान्तर पर्वत, नगर, समुद्र और वनपर्यन्त सारा जगत् कल्पान्तकाल की उत्पात-वायु के झोंके से परस्पर टकराकर हताहत होते हुए प्राणियों के कोलाहल से व्याप्त एवं जीर्ण-शीर्ण हो गया, मानो रुद्रदेव के बाणों से दग्ध हुआ त्रिपुरनगर भरे हुए समुद्र में गिर रहा हो।

रघुनन्दन ! जब विराट्स्वरूप स्वयम्भू ब्रह्मा ने अपने प्राणों का आकर्षण एवं निरोध किया, तब वातस्कन्ध नाम से स्थित आकाशजन्मा वायु ने अपनी मर्यादा (ग्रह, नक्षत्र आदि को धारण करने की जिम्मेदारी) छोड़दी। ब्रह्माजी ने जब प्राणवायुरूप वातस्कन्ध का अपने भीतर उपसंहार करना आरम्भ किया, तब पूर्वोक्त मर्यादा को त्यागकर साम्यावस्था को पहुँचने के लिये वायु में क्षोभ उत्पन्न हुआ और उस क्षोभ के कारण निराधार होकर आकाशमण्डल से तारे टूट-टूटकर वैसे ही भूमि पर गिरने लगे, जैसे कहीं आग लगने पर यदि जोर से हवा चलती हो तो बड़े-बड़े लुआठे उड़ने और गिरने लगते हैं। उस समय आकाश से भूतल पर गिरते हुए तारे वृक्ष से झड़ते हुए फूलों के समान जान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama (Prof.) Jammu Collection

पड़ते थे। ब्रह्माजी का संकल्परूप ईंधन जब प्रलयोन्मुख हो गया, तब जैसे जलती हुई लपटें बुझ जाती हैं, वैसे ही सिद्धों की गतियाँ भी शान्त हो गयीं। अपनी शक्ति का नाश हो जाने पर प्रलय-वायु के वेग से पतली रुई के समान आकाश में उड़ते और भटकते हुए सिद्धसमुदाय मूक होकर नीचे गिरने लगे। भूकम्प से चंचल हुए देवगिरि सुमेरु के शिखर इन्द्रादि देवताओं के नगरों तथा कल्पवृक्षों के समूहों सहित धड़ाधड़ धराशायी होने लगे। रघुनन्दन ! पहले न तो कोई असत् वस्तु थी और न सत् ही; किंतु सभी विकारों से रहित एकमात्र चिन्मय परमाकाश ही था; जो अकेला ही सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त था। उसी परमाकाश ने अपने स्वरूप का परित्याग न करके निर्विकार रहते हुए ही अपनी आकाशता की अपने से भिन्न वस्तु के रूप में कल्पना की। उसे अपने से पृथक् चेत्य के रूप में जाना। चिद्रूप होने से वह चेतन कहा गया है। जैसे लोग संकल्पनगर को शून्य-रूप होते हुए भी साकार देखते हैं, वैसे ही अजन्मा परमात्मा शून्यरूप आकाश को ही देहरूप देखने लगा। आकाश में आकाश को ही अपना शरीर मानने लगा। श्रीराम ! इस प्रकार विचार करने से सिद्ध होता है कि ये जो ब्रह्मा हैं, वे ही यह वर्तमान जगत् बनकर स्थित हैं। विराट् ब्रह्मा का जो देह है, वही जगत् है संकल्पाकाशरूप ब्रह्माजी को जो भ्रम हुआ है, वही इस जगत् के रूप में भासित हो रहा है। और उसी को ब्रह्माण्ड कहा गया है। संकल्प से ही जिसकी कल्पना हुई है, वह यह सारा जगत् आकाशरूप ही है। वास्तव में न तो जगत् है और न कहीं त्वत्ता-मत्ता ('तुम' और 'मैं' के भाव) ही हैं। चिन्मात्र परब्रह्म परमात्मा स्वयं ही अद्वैत आत्माकाश में जगत् आदि रूप प्रकाश से प्रकाशित हो आस्वाद या अनुभव का विषय हो रहा है, जैसे वायु अपनी गतिशीलता के कारण अनुभव में आती रहती है। यह जगत् अद्वैतों को छोड़ देने पर कुछ है, ऐसा जान पड़ता है और द्वैत को त्याग देने पर कुछ भी नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है। वास्तव में जगत् को द्वैत और अद्वैत दोनों से रहित, शून्य, निर्मल और निरामय चेतनाकाश रूप ही समझो। राघवेन्द्र ! अनादि,नित्यानुभवरूप जो एकमात्र साक्षी चेतन है, वही दृश्य बनकर स्थित है। सत्यानुभवरूप परमात्मा में जो अनेक प्रकार के अज्ञान प्रतीत होते हैं, वे ही विचित्रभ्रम पैदा करके सुविस्तृत दृश्य जगत का महान् दृश्य उपस्थित करते हैं।

पचासवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Collection Jammu Collection
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

इक्यावनवाँ सर्ग

सूर्यों के उदय से जगत् के प्रलय का रोमांचकारी वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं--राघवेन्द्र ! ये विराट्रूपधारी विधाता समष्टि मनरूप होने के कारण स्वयं ही मन हैं, अतः इनके लिये दूसरे मन की आवश्यकता नहीं है। यही नहीं, ये विराट् पुरुष स्वयं ही इन्द्रियाँ हैं। अतः इन्हें दूसरी इन्द्रियों के उपभोग की आवश्यकता नहीं होती। इन्होंने ही तो अन्य सब शरीर में इन्द्रियों की सृष्टि की है। इन्द्रियसमुदाय इनकी कल्पनामात्र ही है। इन्द्रिय और चित्त में अवयवावयवीभाव सम्बन्ध है। इन्द्रियाँ अवयव हैं और चित्त अवयवी-इन दोनों का शरीर एक है, अतः इनमें थोड़ा-सा भी भेद नहीं है। पूर्णतः एकता है। संसार के जो कोई भी कार्य हैं, वे सब-के-सब उस विराट् पुरुष के ही हैं; क्योंकि ब्रह्मा के संकल्प ही विभिन्न व्यष्टि-वृत्ति से अपने में भेद का आरोप करके जगद्-व्यवहार के रूप में चल रहे हैं। उसी की सत्ता से अनन्ताकार जगत् की सत्ता है। और उसके संकल्प के उपसंहार से ही जगत् का संहार है। वायु और उसकी चेष्टा में जैसी एकता है, वैसी ही एकता या एकसत्ता ब्रह्मा और जगत् की भी है। जगत्, ब्रह्मा और विराट्- ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं। जगत् और ब्रह्मा शुद्ध चेतनाकाशरूप परमात्मा के संकल्पमात्र ही हैं।

रघुनन्दन ! मेरे सामने ब्रह्मलोक था। ब्रह्माजी ध्यानमग्न हो गये थे। मैंने धीरे-धीरे सम्पूर्ण दिशाओं में दृष्टि डाली। उस समय अपने सम्मुख देखा, मध्यान्ह-काल में तपते हुए सूर्य के अतिरिक्त पश्चिम दिशा में भी एक दूसरा सूर्य प्रकट हुआ, जो स्पष्ट दिखायी देता था। वह पश्चिम दिशा के मध्यभाग में दाह-सा उत्पन्न कर रहा था, मानो किसी पर्वत के ऊपर वहाँ की वनस्थली में दावानल प्रज्वलित हो उठा हो, आकाश में अग्निलोक प्रकट हो गया हो अथवा महासागर में बडवाग्नि उद्दीप्त हो उठी हो। फिर तो क्रमशः नैर्ऋत्यकोण, दक्षिण दिशा, अग्निकोण, पूर्वदिशा, ईशानकोण, उत्तर दिशा, वायव्य कोण तथा पश्चिम दिशा में भी एक-एक सूर्य प्रकाशित हो उठा। उन सबको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं विधाता की प्रतिकूलता पर विचार करने लगा। इतने में ही भूतल से शीघ्र ही एक सूर्य प्रकट हुआ, मानो समुद्र से बडवानल ऊपर को उठ गया हो। फिर दिशाओं के मध्यवर्ती आकाश में ग्यारहवाँ सूर्य उदित हुआ।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

दिशाओं के मध्यवर्ती सूर्य को ग्यारहवाँ कहा गया है, इससे सिद्ध होता है कि उसके ऊपर भी बारहवाँ सूर्य प्रकट हो चुका था। इस प्रकार एक भूतल पर, एक मध्य आकाश में और एक उससे भी ऊपर-तीन सूर्य एक के ऊपर एक के क्रम से दिखायी देते थे। इस तरह कुल मिलाकर बारह सूर्य प्रकट हुए थे। इनमें ग्यारहवाँ सूर्य भगवान् रुद्र का ही शरीर था और उसके भीतर तीन सूर्यों के रूप में मानो तीन नेत्र प्रकट हो गये थे। वह अकेला ही बारह सूर्यों के बराबर देदीप्यमान था। वह बारह सूर्यों का समुदाय-सा जान पड़ता था, जो सम्पूर्ण दिशाओं में प्रचण्ड दाह उत्पन्न कर रहा था। जैसे दावानल सूखे वन को जला देता है, वैसे ही वह समस्त जगत् को दग्ध करने लगा। इन सूर्यों के उदय होने से समस्त ब्रह्माण्डमण्डल को सुखा देने वाला ग्रीष्म ऋतु का भीषण दिन प्रकट हो गया था। कहीं भी उल्मुकों (लुआठों) समूह नहीं दिखायी देते थे। बिना अग्नि के ही अग्निदाह हो रहा था (अर्थात् सूर्य की प्रचण्ड किरणों से ही सब कुछ स्वाहा हो रहा था, लौकिक अग्नि नहीं दिखायी) देती थी। कमलनयन श्रीराम ! बिना अग्नि के ही होने वाले उस अग्निदाह से मेरे सारे अंग दावानल से झुलसे हुए की भाँति व्यथित हो उठे। तब मैं उस प्रदेश को छोड़कर बहुत दूर चला आया।

राघवेन्द्र ! वहाँ से मैंने दसों दिशाओं में उदित हो तपते हुए बारह सूर्यों के समुदाय को देखा, जिसके प्रचण्ड तेज से सातों विशाल महासागर काढ़े की भाँति खौल रहे थे और उनसे महान् खल-खल शब्द प्रकट हो रहा था। समस्त लोकों और नगरों के भीतरी भाग प्रचण्ड ज्वालाओं तथा अंगारों से भर गये थे। आग की लपटें लाल रंग के गाढ़े कपड़ों के समूह की भाँति दिखायी देती थीं, जिन्होंने सारे पर्वतों को सिन्दूरी रंग का बना दिया था। लोकपालों के जलते हुए बड़े-बड़े घरों में ज्वाला व्याप्त दिशारूपी वस्त्र सुस्थिर विद्युत की भाँति दीप्तिमान् दिखायी देते थे। नगरों के समूह कटकट और चटचट शब्द के कोलाहल से परिपूर्ण हो रहे थे। भूतल से शिला के समान घनीभूत दंडाकार धूम प्रकट करके वे बारह सूर्य समस्त भुवनों के निवास-मण्डप को मानो सहस्त्रों काँच के खम्भों से सुशोभित कर रहे थे। प्राणियों के निवासभूत नगरों के धराशायी होने और फटने से भयानक चटचट शब्द हो रहे थे। तारे टूट-टूटकर गिर रहे थे। सभी स्थानों में अपने-अपने घरों के भीतर ताप से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

जलते हुए जन-समुदाय इधर-उधर भाग रहे थे। चीखने-चिल्लाने के साथ मरे-पचे प्राणियों के दग्ध शरीरों से सम्पूर्ण दिशाओं में दुर्गन्ध फैल रही थी। समुद्र की तपी हुई जलराशि में राँधे जाते हुए जलचरों के समुदाय छटपटा रहे थे। सम्पूर्ण दिशाओं में फैली हुई आग से गाँवों और नगरों का सब कुछ स्वाहा हो गया था। वहाँ कोई रोने वाला भी नहीं रह गया था। दिग्गजों के शरीर दग्ध होकर फट गये थे। वे अपने दाँतों से दिगन्त पर्वतों को उठाये हुए ही जल गये थे। पर्वतों की गुफाओं में भरे हुए धूममण्डल उन सूर्यों के कुण्डल से जान पड़ते थे। धराशायी होते हुए पर्वतों से पिसकर कितने ही नगरों के समुदाय-चूर-चूर हो गये थे। गिरिराजों पर निवास करने वाले गजराजों को वे सूर्यमण्डल पच-पच की आवाज के साथ पका रहे थे। संताप से तप्त होकर उछलते हुए प्राणियों को देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो उनके निवासभूत समुद्रों और पर्वतों को भीषण ज्वर आ गया हो। उन सूर्यों के ताप से हृदय फट जाने के कारण निस्सार हुए विद्याधर और उनकी अंगनाएँ नीचे गिर रही थीं। कुछ लोग जोर-जोर से रोने-चिल्लाने के कारण थक गये थे और कुछ योगी लोग ब्रह्म रन्ध्र को फोड़कर ऊर्ध्वगति को प्राप्त हो अमर पद (मोक्ष) में प्रतिष्ठित हो चुके थे। स्वर्गलोक में जलती हुई ज्वालाओं द्वारा भूतल से लेकर पाताल तक का भाग खूब तप रहा था। सूखते हुए समुद्र में निरन्तर पकते हुए भयंकर जलचर उछलते और छटपटाते दिखायी देते थे। जलरूपी ईंधन न मिलने से मानो बडवानल उछलकर आकाश में चला गया था और वहाँ सहस्त्रों रूप धारण करके मानो गगनांगनाओं को पकड़कर नृत्य कर रहा था। महाप्रलय-काल का प्रचण्ड अनल ज्वालारूपी पलाश-पुष्प के समान लाल रंग वाले वस्त्र से सुशोभित हो नटराज की भाँति ताण्डव नृत्य-सा करने के लिये उद्यत हुआ था। उल्मुक ही मानो उसके लिये पुष्पहार थे। वेग से फटते हुए बाँस आदि के फट-फट शब्द मानो उसके पैरों की धमक थे। वह उद्भट भट की भाँति वीरोचित शब्द करता हुआ कालरूपी भुजाओं को ऊपर उठाये, धूमरूपी केश छिटकाये, जगतरूपी जीर्णकुटी में नृत्य कर रहा था। उस समय वनों के समूह, ग्राम, नगर मण्डल, द्वीप, दुर्ग, जंगल, स्थल, पृथ्वी के समस्त छिद्र, उसके ऊपर का महान् आकाश, दसों दिशाएँ, द्युलोक तथा उसके ऊपर का भाग-ये सब-के-सब जल रहे थे। गड्ढे, रहट, बाजार, हाट, अट्टालिका

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modaji Shodh Kendra, Jammu Collection

और नगर समूह से सुशोभित दिशाओं के तटप्रान्त, पर्वतों के शिखर, सिद्धों के समूह, पर्वत, सागर, सरोवर, तालाब, तलैया, नदी, देवता, असुर, मनुष्य, सर्प, तथा पुरुषसमूह रुद्रदेव के नेत्रों की सनसनाती हुई ज्वालाओं से दग्ध होरहे थे।

अनेक सूर्यों के उदय और अस्त आदि से विन्ध्याचल भी व्यथित हो उठा था। आकाश ज्वालारूपी कमलों से सुशोभित सरोवर के समान दिखायी देता था। धूमालाएँ भ्रमरावलियों का भ्रम उत्पन्न करती थीं। उस महाप्रलयकाल में छाती पीट-पीटकर रोती हुई जगत्लक्ष्मी के हृदयस्थल पर रखे हुए हाथ की कलाई में यह दग्ध हुई सोने के कंगन-सी जान पड़ती थी। समुद्र क्वाथ के समान दिखायी देते थे, फेन-राशि के विकास से पुष्ट हो रहे थे तथा सूर्य के प्रतिविम्बरूपी तिलक से अलंकृत अपने मुख पर तरंगरूपी हाथों से आघात करते हुए मानों (सिर पीट-पीटकर) रो रहे थे। सुवर्ण-द्रव, निकटवर्ती पर्वत, इन्द्र,कल्पवृक्ष, देवागार तथा गुहा-गृहों से युक्त सुन्दर आकारवाला सुमेरू पर्वत उस समय उसी तरह पिघल गया, जैसे कड़ी धूप होने पर बर्फ गल जाता है। बाहर-भीतर से शीतल एवं शुद्ध हिमवान् पर्वत उस प्रचण्ड प्रलयाग्नि से लाख के समान क्षण भर में पिघल गया। श्रीराम ! उस अवस्था में भी मलयपर्वत अपने निर्मल सौरभ को नहीं छोड़ सका था; क्योंकि उदारचेता महापुरुष विनाश के समय भी अपने उत्तम गुण का परित्याग नहीं करते हैं। महान् पुरुष स्वयं नष्ट होता हुआ भी दूसरों को आह्लाद ही प्रदान करता है। किसी को भी दुःख नहीं देता है। ठीक वैसे ही, जैसे चन्दन दग्ध होने पर भी जीवधारियों को आनन्द ही देता है। उत्तम वस्तु का कभी अवस्तुता (असत्ता या निकृष्ट अवस्था) को नहीं प्राप्त होती, जैसे सोना प्रलयाग्नि से दग्ध हो जाने पर भी सर्वथा नष्ट नहीं होता है।

इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त

बावनवाँ सर्ग

प्रलयकाल के मेघों द्वारा प्रलयाग्नि का बुझ जाना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जब भूमण्डल और पर्वत-समूह का विस्तार अंगार-राशि से भर गया, सर्वत्र ज्वालामालाओं का समूह छा गया और द्वादश सूर्यों का तेज सुस्पष्टरूप से प्रकाशित होने लगा; जब ब्रह्मरूपी प्रस्तररहित सरोवर में ज्वालारूपी दलों से सुशोभित एवं चिनगारीरूप केसरों एवं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modi Research Institute, Jammu Collection

उल्मुकों से युक्त प्रलयाग्निरूपी कमलिनी के वायुप्रधान सर्प एवंपर्वतरूप मूल पातालतक महान् अंगाररूपी कीचड़ में मग्न हो गये, तब आकाश को संचरण के योग्य देख मशक में पानी ढोने वाले के ऊँटों की सेना के समान कल्पान्तकालिक संवर्तक नामवाले मेघों के समूह जो काजल की भाँति काले थे, गर्जन-तर्जन करते हुए निकट आ गये। फिर तो वहाँ प्रबल प्रचण्डधार वृष्टि होने लगी। आकाश में वज्र की कठोर गड़गड़ाहट सुनायी देने लगी, मानो सारा ब्रह्माण्ड फूटा और फटा जा रहा हो। जैसे दावानल के प्रज्वलित होने पर सारे वन में भीषण लपटें छा जाती हैं, उसी प्रकार आकाशरूपी वन में विद्युत का प्रकाश छा जाने के कारण वह वर्षा बड़ी भयावनी जान पड़ती थी। पृथ्वी घटघट शब्द के साथ टूटने लगी, उसकी अंगारराशियाँ फूट-फूट कर बुझने लगीं लोक-लोकान्तर धराशायी होने लगे। अंगारयुक्त जगत्‌रूपी गेह में विलास करने वाली वह वृष्टि धरती की ज्वालारहित वाष्प-शोभा से सत्कृत हुई। उस शोभा ने प्रकट होकर मानो सखी की भाँति उसकी अगवानी की।

तदनन्तर जब पृथ्वी, जल,तेज और वायु-इन चारों महाभूतों में परम विक्षोभ उत्पन्न हो गया, तब उस महाप्रलय की बेला में तीनों लोक ऐसे जान पड़ते थे, मानो तमाल के वन उड़ रहे हों। सारी त्रिलोकी भस्म-मेघ, धूम-मेघ, महाकल्पान्तकारी-मेघ तथा ऊपर छाये हुए जलकणरूपी मेघ-इन पाँच प्रकार के मेघों से आच्छादित हो रही थी। आकाश में लगातार खम्भों के समान मोटी मूसलाधार वृष्टि हो रही थी, कल्पान्तकाल की आग को बुझा देने वाली उस अन्धाधुन्ध वर्षा से ढम-ढम की घनी घोर आवाज हो रही थी। उस समय सारे समुद्र नदियों के समूहों द्वारा, जिनमें गंगा एक छोटी तरंग-सी जान पड़ती थी, भरे जा रहे थे। आकाशवर्ती भयानक मेघों को परिपूर्ण कर रही थीं। पर्वतों का आधारपीठ भूतल जीर्ण-शीर्ण होकर खण्ड-खण्ड हो चुका था, इसलिये उन पर्वतों के तटप्रान्त गल गये थे। इधर उन्हें प्रलयकाल की वायु उड़ा रही थी। इस अवस्था में उन लुढ़कते हुए पर्वतों के गिरने से संसार के सारे समुद्र उनके द्वारा संकीर्ण-से हो रहे थे। समुद्र की तरंगों द्वारा ऊपर फेंके गये प्रस्तरखण्डों से बादलों को छिन्न-भिन्न कर देने वाली प्रलयवायु समुद्र की गर्जना के समान भीषण एवं गम्भीर घोष करती हुई त्रिलोकी की सारी दिशाओं के तटप्रान्त को नष्ट-भ्रष्ट किये देती थी। प्रचण्ड वायु के टकराने से पर्वत-समूहों की गुफाओं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

में जो भाँय-भाँय की आवाज उठ रही थी, उससे सारा संसार व्याप्त हो गया था। लोकपालों के नगर झोंके खा-खाकर चक्कर काटते हुए सब ओर गिर रहे थे। बड़े-बड़े पर्वतों के विस्तृत भाग नष्ट हो गये थे।

उस समय धूम और भस्म के बादल प्रकट होने लगे, पानी की बाढ़ से जनपद और नगरों के समूह धराशायी होने लगे। ऊँची-ऊँची तरगें उठने लगीं और भूतल तथा पर्वत डूबने लगे। भँवरों में पड़कर घर्घर-ध्वनि करने वाले और आपस में टकराकर एक दूसरे को विदीर्ण कर देने के लिये उद्यत ऊँचे-ऊँचे पर्वत समुद्र में बिखरे पत्तों के समान चक्कर काट रहे थे। घूमते हुए सैकड़ों धूकेतुओं के उत्पात उठ रहे थे। इससे इस जगत् की ओर देखना अत्यन्त कठिन हो गया था। सातवें पातालतक का सारा संसार अपने स्थान से च्युत हुए द्वीपों और सागरों सहित भूमण्डल के बड़े-बड़े खण्डों और लुढ़कते हुए अन्य पाताल-मण्डलों से पूर्ण सा जान पड़ता था। नीचे सातवें पाताल तक, मध्य में भूमण्डल एवंपर्वतों तक और ऊपर आकाश-मण्डलतक एकार्णव बना हुआ सारा जगत् प्रलय-वायु से परिपूर्ण हो रहा था।

बावनवाँ सर्ग समाप्त

तिरेपनवाँ सर्ग

बढ़ते हुए एकार्णव का तथा परिवार सहित ब्रह्मा के निर्वाण का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जब वायु, वर्षा, हिम और दूसरे-दूसरे उत्पातों के आगमन से भूमण्डल नष्ट-भ्रष्ट हो गया, तब समुद्र के जल का वेग इस तरह बढ़ने लगा जैसे कलियुग में राजा का वेग। वह एकार्णव आकाश-गंगा के प्रवाह में पड़ी हुई मेघधाराओं के गिरने से वेगपूर्वक बढ़ने लगा। तत्काल प्रकट हो मेरु और मन्दराचल के समान प्रकाशित होने वाली सहस्त्रों सरिताओं ने भी उसे बढ़ाने में योग दिया। इस प्रकार जल से भरे होने के कारण वह एकार्णव उच्चता के अभिमान से युक्त हो गया। उसने बड़े-बड़े पर्वतों को सूखे तिनकों के समान पकड़कर अपनी विस्तृत भँवरों में डाल दिया। वे वहीं चक्कर काटने लगे। उस एकार्णव ने ऊँची उठती हुई उत्तल तरंगों के अग्रभाग से सूर्यमण्डल को भी निगल लिया। प्रचण्ड वायु के द्वारा उत्पन्न किये गये अपूर्व जल-प्रवाहरूपी कुल-पर्वतों से युक्त हुआ वह महार्णव महान् घुर्घुर और भयानक घर्घर ध्वनि के साथ अपने विशाल वेग को बढ़ाता जा रहा था।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji shama (I.F.S) Jammu Collection

ब्रह्माण्ड-खण्डों के बारंबार एक-दूसरे से टकराने के कारण उसकी उद्धता बढ़ती जा रही थी और वह ऊपर-नीचे लाखों योजनों तक फैले हुए उच्चतम पदार्थों को भी आत्मसात् करता जा रहा था। पंखयुक्त पर्वतों के समान उठी हुई असंख्य तरंग समूहरूपी भुजाओं द्वारा वह महासागर पुष्कर और आवर्तक नामक कल्पान्तकारी मेघों का मानों आलिंगन कर रहा था। त्रिलोकी को अपना ग्रास बनाकर पूर्णतः तृप्त हो घर्घर स्वर में गीत-सा गा रहा था और उग्रपर्वतरूपी कंकणों से अलंकृत अपनी तरंगमयी भुजाओं को उठाकर नृत्य-सा करता जान पड़ता था। रघुनन्दन ! उस समय न तो आकाश था, न दिगन्त था, न नीचे का लोक था, न ऊपर का लोक था, न कोई भूतवर्ग था और न कहीं सृष्टि ही थी। सर्वत्र केवल जल-ही-जल दृष्टिगोचर होता था।

रघुनन्दन ! जब तपोलोकपर्यन्त सारा जगत् प्रलयकाल के एकार्णव में निमग्न हो गया, तब सत्यलोक के निकट आकाश में स्थित होकर मैंने महान् प्रकाश से युक्त ब्रह्मलोक पर उसी प्रकार दृष्टि डाली, जैसे सूर्य प्रातःकाल संसार पर अपनी प्रभा बिखेरता है। दृष्टि डालते ही समाधि में अविचलभाव से स्थित हुए परमेष्ठी ब्रह्मा अपने मुख्य-मुख्य परिवार के साथ दिखायी दिये, वे ऐसे जान पड़ते थे मानो पत्थर की बनी हुई प्रतिमा हों। वहाँ देवताओं तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियों का समुदाय भी बैठा था। शुक्र, बृहस्पति, इन्द्र, कुवेर, यम, सोम, वरुण, अग्नि तथा अन्य देवर्षि भी वहाँ देखने में आये। देव, गन्धर्व, सिद्ध और साध्यों के नायक भी वहाँ उपस्थित थे। वे सब-के सब पद्मासन लगाये इस तरह ध्यानमग्न होकर बैठे थे, मानो चित्र में अंकित किये गये हों। वे निष्प्राण के समान वहाँ चेष्टाशून्य होकर बैठे थे। तदनन्तर पूर्वोक्त बारह सूर्य भी उसी स्थान पर आये और उन्हीं लोगों की भाँति पद्मासन लगाकर ध्यान में मग्न हो गये। इसके बाद दो ही घड़ी में मैंने अपने सामने बैठे हुए ब्रह्माजी को इस अवस्था में देखा। वे ब्रह्म का चरम साक्षात्कार प्राप्त करके अविद्याकल्पित सारे प्रपंच का बाध हो जाने से निद्रारहित (प्रबोध को प्राप्त) हो गये थे। जैसे जगा हुआ पुरुष स्वप्न देखे गये पदार्थ समूह को बाधित और केवल अपने को ही अवशिष्ट देखता है, वैसे ही वे आत्मावशिष्ट दिखायी दिये। फिर, ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी के परिवार के जितने लोग थे, उन सबको मैंने वहाँ वैसे ही तिरोहित पाया, जैसे तत्त्वज्ञानी महापुरुषों की वासना तत्त्वज्ञान से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

वाधित होकर अदृश्य हो जाती है। जैसे स्वप्न से जगा हुआ पुरुष अपने सामने स्वप्नगत नगर को नहीं देखता है, वैसे ही मैंने वहाँ किसी को भी नहीं देखा। उस समय वह ब्रह्मलोक तथा उनका ब्रह्माण्ड, जो ब्रह्माजी के संकल्प से ही बना था, निर्जन वन-सा सूना हो गया। जैसे भूतल पर अकस्मात् कोई भयंकर दुर्घटना होने से कोई नगर सर्वथा नष्ट हो गया हो, वही दशा उस ब्रह्माण्ड की हुई थी। तदनन्तर आकाश में स्थित हुए मैंने ध्यान लगाकर यह जाना कि सभी लोग ब्रह्माजी के समान ही नाम-रूप का परित्याग करके निर्वाण-पद को प्राप्त हो गये हैं। वासना का लय हो जाने पर वे सब-के-सब अपने विशुद्ध ब्रह्मरूप में स्थित हो जाने के कारण अदृश्य हो गये थे। जैसे जगे हुए पुरुषों के स्वप्नलोक उनके स्वप्नरूप में ही लीन हो जाने से दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। जैसे स्वप्न में अपना शरीर आकाश में उड़ता दिखायी देता है, किंतु जागने पर वह वासना शान्त हो जाने के कारण कुछ भी नहीं दीखता है, इसी प्रकार जाग्रत्काल में भी वासना रहने पर ही शरीर दिखायी देता है। तत्वज्ञान के द्वारा वासना का सर्वथा क्षय हो जाने पर कुछ भी नहीं दिखायी देता। वासना का क्षय होने से द्रष्टा, दृश्य और दर्शनरूपी रोग शान्त हो जाता है, वासना की सत्ता रहने पर ही यह सृष्टिनामक पिशाची प्रकट होती है।

रघुनन्दन ! सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा को सृष्टि रचने की इच्छा उत्पन्न होती है। तदनन्तर पूर्वकाल की जगत् वासनाओं का जगद्रूप में उद्भव होता है। इसलिये वासना की शान्ति को निर्वाण समझना चाहिए और वासना की सत्ता को ही संसाररूपी भ्रम जानना चाहिये। चित्त की वृत्ति को जगाकर बहिर्मुख कर देने से बन्धन होता है। चित्तवृत्ति का जागरण ही संसाररूपी शिशु को प्रकट करने वाला गर्भाशय है। उससे उत्पन्न हुआ यह जगत् असत् होकर भी सत् के समान भासित होता है। चित्त के संकल्प का जाग्रत् होना ही बन्धन बताया गया है और उसे सुलाकर- आत्मा में लीन करके अपने चैतन्य-स्वरूप का अनुभव करना ही मोक्ष कहा गया है। रघुनन्दन ! बन्ध, मोक्ष आदि की सारी शंकाएँ छोड़कर निर्वाणरूप, वासनाशून्य, अनन्त, अनादि, विशुद्ध, केवल बोधस्वरूप, द्वैताद्वैत से रहित, परिपूर्ण ब्रह्मस्वरूप हुए आकाश के समान विशद् अन्तःकरण से युक्त, बन्धनमुक्त तथा शान्तभाव से स्थित रहना चाहिये।

तिरेपनवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चौवनवाँ सर्ग

ब्रह्मलोकवासियों तथा द्वादश सूर्यों का निर्वाण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! इस तरह ब्रह्मलोक के वे सभी निवासी, जैसे बत्ती जल जाने से दीपक बुझ जाते हैं, वैसे ही वासना का नाश होने से अदृश्य हो गये। ब्रह्माजी के ब्रह्मलीन हो जाने पर पूर्वोक्त बारह सूर्य अपनी प्रभा से प्रकाशित हो पृथ्वी आदि जगत् की भाँति उस ब्रह्मलोक को भी जलाने लगे। ब्रह्माजी के नगर को दग्ध करके उन्हीं की भाँति ध्यानपरायण हो वे भी तैलरहित दीपक की भाँति शान्त हो गये–निर्वाण–पद को प्राप्त हो गये। तदनन्तर जैसे रात में अन्धकार भूमण्डल को व्याप्त कर लेता है, वैसे ही उत्तल तरंगों से युक्त उस एकार्णव की बाढ़ ने विधाता के उस लोक को भी जल से आप्लावित कर दिया। इस प्रकार जब ब्रह्मलोकपर्यन्त वह सारा ब्रह्माण्ड एकार्णव के जल से परिपूर्ण हो गया, तब वे कल्पान्तकारी मेघ छिन्न–भिन्न हो उस जलराशि में विलीन हो गये।

इसी बीच में मैंने वहाँ एक भयंकर रूप देखा, जो आकाश के मध्यभाग से प्रकट हुआ था। उसे देखकर मैं कुछ डर गया। उसकी आकृति कल्पान्तकालिक जगत् के समान काली थी। उसने सारे आकाश को व्याप्त कर रखा था और देखने में ऐसा जान पड़ता था, मानो कल्पभर की सारी रातों का एकत्र संचित हुआ अन्धकार ही देह धारण करके खड़ा हो गया हो। वह प्रातःकाल के एक लाख सूर्यों का प्रकाशमान तेज अकेला ही धारण करता था। उसके तीन नेत्र थे, जो तीन सूर्यों के समान दिखायी देते थे और सुस्थिर विद्युत् समूह के समान भयंकर जान पड़ते थे। उन नेत्रों की प्रभा से उसका मुखमण्डल अत्यन्त देदीप्यमान दिखायी देता था। वह पुरुष अपने अंगों से ज्वालापुंज बिखेर रहा था। उसके पाँच मुख, दस भुजाएँ और प्रत्येक मुख में तीन–तीन नेत्र थे। उसने अपने हाथ में एक त्रिशूल ले रखा था। उस अनन्त आकाश में उसका वह विशाल शरीर व्याप्त था। वह पुरुष आगे की ओर बढ़ा आ रहा था। आकाश के समान विशाल और मेघ के समान श्याम शरीर को धारण करके वह खड़ा था। एकार्णव में डूबे हुए ब्रह्माण्ड से बाहर आकाश में उसकी स्थिति थी। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश हाथ–पैर आदि शरीर को धारण करके दृष्टिपथ में आ रहा हो। अपनी नासिका से निकली हुई

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Shanta (P) S. Jammu Collection

साँस के आने-जाने से वह उस एकार्णव को कम्पित किये दे रहा था। वह अपने बाहुदण्ड से क्षीरसागर को विक्षुब्ध कर देने वाले भगवान् विष्णु के समान जान पड़ता था। ऐसा लगता था मानो उस कल्पान्तकालीन महासागर की जलराशि ही पुरुषरूप धारण करके खड़ी हो गयी हो। अथवा जिसका कोई कारण नहीं, वह सबका कारणभूत अहंकार की मूर्तिमान् होकर आ गया हो या कुलपर्वतों का समूह ही अपने पंखसमूहों द्वारा उड़ने की लीला करता हुआ समस्त आकाश को परिपूर्ण करके ऊपर को उठ गया हो। उसके हाथ में त्रिशूल था और उसके तीन नेत्र थे। इन लक्षणों से मैंने पहचान लिया कि ये भगवान् रुद्र हैं। तब मैंने दूर से ही उन परमेश्वर को नमस्कार किया।

चौवनवाँ सर्ग समाप्त

पचपनवाँ सर्ग

ब्रह्माण्ड की चेतनाकाशरूपता

श्रीरामजी ने पूछा-मुने ! रुद्रदेव ने वैसा भयंकर रूप क्यों धारण किया था ? वे काले और विशालकाय क्यों हुए थे ? उनके पाँच मुख कौन-कौन और कैसे हैं ? वे कैसे और कौन-सी दस भुजाएँ धारण करके वहाँ उपस्थित हुए ? उनके तीन नेत्र कौन-कौन से थे ? उनका शरीर ऐसा भयंकर क्यों था ? वे अकेले क्यों थे ? वहाँ प्रकट होने में उनका प्रयोजन क्या था ? वे किससे प्रेरित होकर आये थे ? उन्होंने वहाँ क्या किया था ? और उनकी छाया कौन थी ? ये सब बातें मुझे बताइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! वे परमेश्वर वहाँ अहंकार के अभिमानीरूप से रुद्रनामधारी होकर प्रकट हुए थे। उस समय उनकी जो मूर्ति दिखायी दी थी, वह निर्मल आकाशरूपी ही थी। वे महातेजस्वी भगवान् रुद्र आकाशरूपधारी होने के कारण आकाश के समान ही श्यामवर्ण से युक्त दिखायी देते थे। चेतनाकाशमात्र ही उनका सारभूत स्वरूप है, इसलिये वे आकाशात्मा कहे गये हैं। सम्पूर्ण भूतों के आत्मा और सर्वव्यापी होने के कारण ही वे विशालकाय बताये गये हैं। उन अहंकाररूपी रुद्र की प्रत्येक शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, उन्हीं को ज्ञानी पुरुष उन रुद्रदेव के पाँच मुख बताते हैं। इसीलिये ज्ञानेन्द्रियाँ सब ओर से प्रकाशस्वभाव कही गयी हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) तथा उनके पाँच विषय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection

(बोलना, ग्रहण करना, विचरना, मलत्याग करना और विषय सुख की उपलब्धि करना) ये दस क्रमशः उनकी दाहिनी-बायीं भुजाएँ हैं। उस प्रलयकाल में सम्पूर्ण भूतों से परित्यक्त होकर आकाशमात्र रूपधारी वे रुद्रदेव एक क्षणतक वहाँ सबको विक्षुब्ध करते हुए-से स्थित रहते हैं। फिर कारणभूत अहंकार-शरीर से रहित हो परम शान्त हो जाते हैं। सत्व, रज और तम-ये तीन गुण; भूत, भविष्य और वर्तमान-ये तीन काल; चित्त, अहंकार और बुद्धि-ये त्रिविध अन्तःकरण; अ, उ और म्-ये प्रणव के तीन अक्षर तथा ऋक्, साम और यजुर्ष-ये तीन वेद ही उन भगवान् रुद्रदेव के नेत्ररूप से स्थित हैं। उन्होंने अपनी मुट्ठी में त्रिलोकीरूप त्रिशूल को धारण कर रखा है। उस समय समस्त भूतगणों में भी उनके सिवा दूसरा कोई स्थित नहीं था। इसलिये वे वहाँ अहंकारात्मक रुद्र के रूप में देहाभिमानी-से होकर खड़े थे।

श्रीराम ! तदनन्तर मैंने देखा, वे परमेश्वर वहाँ उद्यमपूर्वक श्वास-वायु के वेग से उस महासागर को पी जाने के कार्य में प्रवृत्त हुए। उनके फैले हुए मुख का भीतरी भाग ज्वालामालाओं से व्याप्त दिखायी देता था। उनकी श्वासवायु से आकृष्ट हुआ महासागर उनके भीतर उसी तरह समा गया, मानो वह बड़वानल में विलीन हो गया हो। अहंकारस्वरूप भगवान् रुद्र ही कल्पपर्यन्त बड़वानल होकर समुद्र में निवास करते हैं और उसका जल पीते रहते हैं। किंतु प्रलयकाल में वे सारे समुद्र को ही पी जाते हैं। जैसे जल पाताल में, साँप बिल में और पाँचों प्राणवायु प्राणियों के मुखाकाश में प्रविष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार वह सारा समुद्र वेगपूर्वक रुद्रदेव के मुख के भीतर एक ही क्षण में समा गया। उन श्यामरूपधारी रुद्र ने थोड़ी ही देर में उस जल को इस तरह पी लिया, जैसे सूर्य देव अन्धकार को और सत्पुरुषों का संग दोष समूह को पी जाता-नष्ट कर देता है। तत्पश्चात् ब्रह्मलोक से लेकर पाताल तक सारा स्थान धूलि, धूम, वायु, समुद्र तथा भूतगणों से रहित होकर शून्य, सम एवं शान्त आकाशमात्र रह गया। रघुनन्दन ! उस समय वहाँ आकाश के समान निर्मल तथा चेष्टारहित केवल ये चार पदार्थ ही दिखायी देते थे-एक तो वे नील गगन की सी आकृतिवाले भगवान् रुद्र ही दिखायी देते थे, जो आकाश के मध्यभाग में बिना किसी आधार के स्थित थे। दूसरा ब्रह्माण्ड-सदन का निचला भाग था, जो सातों पातालों से भी नीचे बहुत दूर दृष्टिगोचर होता था। वह पृथ्वी और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Meelfarji sharma (I.F.S) Jammu Collection

आकाश के तल-भाग-सा जान पड़ता था। तीसरा पदार्थ था, ब्रह्माण्डमण्डल के ऊपर का भाग, जहाँ अत्यन्त दूर होने के कारण दृष्टि नहीं पहुँचती थी; अतएव वह दुर्लक्ष्य आकाश के समान नीला जान पड़ता था। ब्रह्माण्ड के वे ऊर्ध्व और अधोभाग अत्यन्त दूर होने के कारण एक दूसरे से विलग थे। उन दोनों के बीच में जो अनादि, अनन्त और विस्तृत ब्रह्म के समान निर्मल आकाश था, उसी को उस समय मैंने चौथे पदार्थ के रूप में देखा था। इन चारों के सिवा दूसरी कोई वस्तु वहाँ मेरे देखने में नहीं आयी।

पार्थिव पदार्थों का वह भाग, जो ब्रह्माण्ड-कपाल कहलाता है, कमलदल के समान स्थित है। जल आदि वस्तुएँ आधाररूप से आश्रय लेने के लिये उसी की ओर दौड़ती हैं, जैसे बच्चे अपनी माँ की ओर दौड़े जाते हैं। जैसे प्यास से प्राणी जल की ओर भागे जाते हैं, उसी प्रकार वे जलादि पदार्थ ब्रह्माण्ड नामक महाशरीर के निकटतम भाग की ओर दौड़ते हैं। जैसे शरीर से जुड़े हुए हाथ-पैर आदि अवयव अपनी अत्यन्त दृढ़ संयोग की स्थिति को नहीं छोड़ते हैं, वैसे ही तैजस आदि पदार्थ, भीतर से ब्रह्माण्ड-शरीर ही आश्रय ले अपनी स्थिति को नहीं छोड़ते हैं।

इस ब्रह्माण्डखण्ड को यद्यपि किसी ने धारण नहीं किया है तथापि वह परमात्मा की अचिन्त्य धारणात्मिका शक्ति से अच्छी तरह धारित ही है। उसी के कारण यह पतनोन्मुख होने पर भी गिरता नहीं है। यह सारा जगत् आकार रहित होने पर भी स्वप्ननगर के समान साकार दिखायी देता है। जैसे चैतन्य शक्ति का प्रकाश होता है, वैसा ही यह जगत् भी स्थित है। जैसे आकाश में श्यामता और शून्यता है, जैसे वायु में गतिशीलता है, उसी तरह चेतनाकाश परमात्मा में यह जगत् स्थित है।

पचपनवाँ सर्ग समाप्त

छप्पनवाँ सर्ग

रुद्र की छायारूपिणी कालरात्रि के स्वरूप तथा ताण्डव-नृत्य का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! तदनन्तर उस समय उस महाकाश में मैंने देखा, भगवान् रुद्र मत्त-से होकर अकाण्ड ताण्डव में प्रवृत्त हो रहे हैं। उनकी आकृति बहुत दूरतक फैली हुई थी। उनका शरीर आकाश के समान ही व्यापक दिखायी देता था। उनका आकार बहुत बड़ा था। उन्हें देखकर ऐसा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

लगता था, मानो एकार्णव का जल ही तत्काल देह धारण करके खड़ा हो गया हो। इसके बाद मुझे दिखायी दिया कि उनके शरीर से छाया-सी निकल रही है, जो ताण्डव-नृत्य में उनका अनुकरण एवं अनुसरण करने वाली है। उस समय मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि द्वादश सूर्यों के विद्यमान न रहने पर जब आकाश में महान् अन्धकार छा रहा है, तब यह छाया कैसे स्थित हुई है ? मैं इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि वह तत्काल नृत्य करती हुई शीघ्रतापूर्वक उनके आगे जाकर खड़ी हो गयी। उसका शरीर भी बहुत विस्तृत था तथा वह भी अपने तीन नेत्रों से सुशोभित हो रही थी। उसका रंग घोर काला था। वह बहुत ही दुर्बल थी। उसके अंगों में नस-नाड़ियों के जाल सुस्पष्ट दिखायी देते थे। वह जरा से जर्जर हो रही थी। आकृति विशाल थी, मुख पर आग की ज्वालाएँ व्याप्त थीं। वन के चंचल पत्र-पुष्प आदि मुकुट बनकर उसके मस्तक की शोभा बढ़ाते थे। वह कोयले के समान काली थी मानो काली रात्रि ही उसका रूप धारण करके आ गयी हो, अन्धकारलक्ष्मी ही मूर्तिमती हो गयी हो। वह बहुत लंबी थी। उसका मुँह विकराल दिखायी देता था। वह इस तरह खड़ी थी मानो आकाश को नापने के लिये उद्यत हो। अपने बड़े-बड़े घुटनों और भुजाओं के भ्रमण से वह समस्त दिशाओं को मानों नाप लेना चाहती थी। वह ऐसी दुर्बल थी मानो बहुत काल तक उसे उपवास करना पड़ा हो। उसके विशाल शरीर में सर्वत्र गड्ढे- ही गड्ढे दीख रहे थे। वह काजल की सी काली और मेघमाला की भाँति वायु के वेग से चंचल जान पड़ती थी। जब वह बहुत बड़ी और दुर्बल होने के कारण खड़ी होने में भी असमर्थ हो गयी, तब विधाता ने मानो उसे नस-नाड़ियों की लंबी रस्सियों से बाँध दिया (जिससे वह अच्छी तरह खड़ी रह सके)। नस-नाड़ियों और अँतड़ियों की रस्सियों द्वारा उसके सिर और हाथ-पैर आदि सभी अंग इस तरह बँधे हुए दिखायी देते थे, मानो मूल से लेकर शाखाओं के अग्रभाग तक सूतों से बँधी हुई काँटेदार वृक्ष की झाड़ी हो। अनेक वर्णों के सूर्यादि देवताओं तथा दानवों के मस्तकरूपी कमलों के समूहों की माला उसके कण्ठ में शोभा दे रही थी। हवा से प्रज्वलित तथा निर्मल प्रभा से पूर्ण अग्नि की ज्वाला ही उसके लिये आँचल थी। उसके लंबे-लंबे कानों में नाग झूल रहे थे। उसने दो मनुष्यों की लाशों को कुण्डल के रूप में धारण कर रखा था। जैसे सूखी लौकी की लता में दो बड़े-बड़े

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mockup Digitized by Sarayu Trust Foundation Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

फल लटक रहे हों, उसी प्रकार उसकी छाती में कुछ-कुछ हिलते हुए काले रंग के दो स्तन दिखायी देते थे, जो बहुत बड़े होने के कारण जाँघ तक लटक रहे थे। उसके शरीर को देखकर मैंने यह अनुमान कर लिया कि यह वही कालरात्रि है, जिसके विषय में साधुपुरुषों ने यह निर्णय किया है कि 'ये भगवती काली हैं।' उसके तीन नेत्र आग की ज्वाला से परिपूर्ण थे। ललाटप्रान्त इन्द्रनील-मणि के समान चमक रहा था। उसकी दोनों ठोढ़ियाँ गहरी होने के कारण भयंकर जान पड़ती थीं। वात-स्कन्ध (प्रवह आदि वायु) रूपी तागों में पिरोयी हुई तारावलियाँ उसके कण्ठदेश में मुक्ताहार का काम दे रही थीं। वह वर्षा करने वाले कल्पान्तकाल के मेघों की भाँति शोभा पानेवाली भ्रमणशील भुजाओं द्वारा सम्पूर्ण दिङ्मण्डल को व्याप्त करके खड़ी थी। वे भुजाएँ अपने नखों की कान्ति बिखेर रही थीं। हिमालय और सुमेरु पर्वत उसके दोनों कानों में चाँदी और सोने की बालियाँ बनकर शोभा बढ़ा रहे थे। ब्रह्माण्डरूपी घुँघुरुओं से बनी हुई विशाल माला उसके कटिभाग में करधनी का काम दे रही थी। शिखर, वन और नगररूपी पुष्पगुच्छों से युक्त तथा पुराने नगर, वन, द्वीप और ग्रामरूपी कोमल पल्लवों से अलंकृत सातों कुलपर्वत उस भगवती काली के गले की पुष्पमालाएँ बने हुए थे।

श्रीराम ! उस देवी के अंगों में मैंने पुर, नगर, ऋतु, तीनों लोक, मास तथा दिन-रातरूपी फूलों की मालाएँ देखी थीं। उसके शरीर में व्यक्त रूप से स्थित नगर, ग्राम और पर्वत आदि मानो पुनर्जन्म पाने के आनन्द से उल्लसित हो उसके साथ-साथ नाच रहे थे। कभी-कभी वह नहीं नाचती थी तो भी पर्वत, वन और कानों सहित नाना आकारवाला सारा जगत् जो मरकर फिर लौटा था, नाचता था। वह कालरात्रि जब चतुराई के साथ नृत्य करने लगती थी, तब चन्द्रमा, सूर्य, दिन और रात उसके नखाग्र-भाग की रेखाओं के भीतर विद्यमान प्रभामें मिलकर घूमते हुए सुवर्ण-सूत्र के समान दीर्घाकार प्रतीत होते थे। जब भगवती कालरात्रि का ताण्डव-नृत्य होने लगता था, तब इन्द्र आदि देवता और असुर अपनी-अपनी अधिकार-प्रवृत्ति से और ही और बनकर वायु से उड़ाये गये मच्छरों के समान अथवा अस्थिर विद्युत् के समान आते-जाते दिखायी देते थे। भगवती के शरीर में जो सर्ग दिखायी देता था, उसमें सृष्टि-प्रलय, सुख-दुःख, भव-अभव, इच्छा-अनिच्छा, विधि-निषेध, जन्म-मरण एवं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Library, Sri Jammu College

भ्रम आदि विभिन्न प्रकार के भाव कभी सदा एक साथ और कभी पृथक-पृथक्रूप से सुशोभित होते थे। सम्पूर्ण कलाओं से युक्त देवी कालरात्रि चैतन्य-शक्तिरूपा जगन्मयी, अनन्त एवं विशाल आकाशकोश के सदृश विशुद्ध शरीरवाली है। वह देवी सूप, कुदाल, ओखली, चटाई, फाल, घट, पिटारी, मूसल, डोल या बाल्टी, बटलोई और खम्भे-इत्यादि वस्तुओं को भी फूल के समान मानकर उनकी माला धारण करके नृत्य करती थी।

छप्पनवाँ सर्ग समाप्त

सत्तावनवाँ सर्ग

रुद्र और काली आदि के रूप में चिन्मय परमात्मसत्ता की ही स्फूर्ति का प्रतिपादन तथा सच्चिदानन्दघन का विलास ही रुद्रदेव का नृत्य है-इसका कथन

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-भगवन् जब प्रलयकाल में सब कुछ नष्ट हो गया, तब वह देवी कालरात्रि अपने किस शरीर से नाच रही थी ? सूप, फाल, और घट आदि से (जो उस समय नष्ट हो चुके थे) उसका माला धारण करना क्या है ? यदि ये सब वस्तुएँ थीं ही तो फिर त्रिलोकी का नाश क्या हुआ ? और यदि त्रिलोकी नष्ट हो गयी थी तो काली के शरीर में इन सब वस्तुओं की स्थिति क्यों और कैसे सम्भव हुई ? निर्वाण को प्राप्त हुआ जगत् फिर आकर नाचने कैसे लगा ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! वास्तव में वह पुरुष था, न वह स्त्री थी, न वह नृत्य हुआ, न वे दोनों रुद्र और काली वैसे विशेषणों से युक्त ही थे। उनके आचार-व्यवहार भी वैसे नहीं थे और उनकी वे आकृतियाँ भी नहीं थी। जो कारणों का भी परम कारण है-वह अनादि, चिन्मय आकाशस्वरूप, अनन्त, शान्त, प्रकाशरूप, अविनाशी, सर्वव्यापी, सच्चिदानन्दघन, शिवस्वरूप साक्षात् ब्रह्म ही भैरव (रुद्र) के आकार में दिखायी देता था। जगत् का नाश हो जाने पर उस रुद्रदेव के रूप में स्थित हुआ वह चेतनाकाश स्वरूप परमात्मा ही था। चेतन होने के कारण वह परमात्मा अपने चैतन्यस्वभाव वैभव को छोड़कर नहीं रह सकता। जैसे सुवर्ण कटक-कुण्डल आदि के रूप में अवस्थित होता ही है, वह उन आकृतियों का सर्वथा त्याग करके नहीं रहता, उसी प्रकार परमात्मा भी लीला के लिये उमा, महेश्वर आदि सगुणरूप धारण करता ही है। वह अपने लीला-स्वभाव को सर्वथा छोड़ नहीं सकता। बुद्धिमान् ! तुम्हीं बताओ, सुवर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (P) Sri Jaipur Collection

कटक-कुण्डल आदि आकृतियों को क्यों नहीं धारण करेगा ? क्योंकि वह उसका स्वभाव है। इसी प्रकार ब्रह्म भी संकल्प द्वारा एक से अनेक रूप में प्रकट होता है, यह उसका श्रुतिप्रसिद्ध स्वभाव है। कोई भी पदार्थ अपने स्वभाव के बिना कैसे रह सकता है ?

रघुनन्दन ! जन्म, मरण, माया, मोह, मन्दता, अवस्तुता, वस्तुता, विवेक, बन्ध, मोक्ष, अशुभ, विद्या, अविद्या, निराकारता, साकारता, क्षणकाल, दीर्घकाल, सत्, असत्, सद्भाव, मूर्खता, पांडित्य, देश, काल, क्रिया, द्रव्य, कलना, केलि, कल्पना, रूप आदि विषयों का बाह्य इन्द्रियों द्वारा ग्रहण, उन्हीं विषयों का मनके द्वारा चिन्तन, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, तेज, जल, वायु, आकाश तथा पृथ्वी आदि के रूप में जो यह दृश्य-प्रपंच फैला हुआ है, यह सब शुद्ध निरामय चेतनाकाशरूप परमात्मा ही है। यह अपनी शुद्ध चिदाकाशरूप का परित्याग न करता हुआ ही सर्वस्वरूप होकर स्थित है। मैं ने जिस चिन्मय परमाकाश का वर्णन किया है, वह परमात्मा ही यहाँ शिव कहा गया है। यह सनातन पुरुष है। यही विष्णुरूप से स्थित होता है और यही पितामह ब्रह्मा है। यही चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, वायु, मेघ और महासागर है। यही भूत, भविष्य और वर्तमान काल है। जो वस्तु है और जो नहीं है, वह सब परमाकाशरूप परमात्मा ही है।

श्रीराम ! मैने जिस चिन्मय परमाकाशस्वरूप परमात्मा का वर्णन किया है, वही श्रुतियों में शिव कहा गया है और वही प्रलयकाल में रुद्र होकर नृत्य करता है। विद्वानों और पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ रघुनन्दन ! उस रुद्रदेव की जो आकृति बतायी गयी है, वह वास्तव में उसकी आकृति नहीं है। उस समय सच्चिदानन्दघनरूप आकाश ही उस आकार में स्फुरित होता है। तत्त्वदृष्टि से मैंने वह आकृति उस समय शान्त चेतनाकाशरूप ही देखी। मैंने ही उसे यथावत्रूप से जाना। दूसरा कोई पुरुष जो तत्त्वदृष्टि रहित है, उसे उस रूप में नहीं देखता है। जैसे सुवर्ण ही विभिन्न आकृतियों से सुशोभित होने वाले कटक कुण्डल आदि अलंकारों के रूप में स्थित होता है, वैसे ही सत्स्वरूप चेतन ब्रह्म ही अपने स्वभाव से रुद्ररूप धारण करके विराजमान होता है। जो चिद्घन परमात्मा का स्पन्द है, वही भगवान् शिव का स्पन्द (स्फुरण) है। वही हम लोगों के सामने वासनावश नृत्यरूप के रूप में प्रकाशित होता है। अतः प्रलयकाल में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

वे भगवान् शिव भयंकर आकृतिवाले रुद्र होकर जो वेगपूर्वक नृत्य करते हैं, उसे सच्चिदानन्दघन परमात्मा का अपना सहज विलास ही समझना चाहिए।

सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त

अट्ठावनाँ सर्ग

शिव और शक्ति के यथार्थ स्वरूप का विवेचन

श्रीरामजी ने पूछा–मुने ! अब यह बताइये कि जो काली नृत्य करती है, उसका क्या स्वरूप है ? तथा वह जिन सूप, फाल, कुदाल, और मूसल आदि वस्तुओं की माला धारण करती है, उनका स्वरूप क्या है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–श्रीराम ! वे जो भैरव या रुद्र बताये गये हैं, उन्ही को चेतनाकाश–स्वरूप शिव कहते हैं। उनकी जो मनोमयी स्पन्दशक्ति है, उसे काली समझो। वह शिव से भिन्न नहीं है। जैसे वायु और उसकी गति–शक्ति एक हैं, जैसे अग्नि और उसकी उष्णता या दाहक–शक्ति एक ही हैं, वैसे ही सच्चिदानन्दघन शिव और उनकी स्पन्दशक्ति (क्रियाशक्ति) रूपा माया दोनों सदा एक ही हैं। जैसे गतिशक्ति से अग्नि ही लक्षित होते हैं, उसी प्रकार अपनी स्पन्दशक्ति के द्वारा निर्मल चिदानन्दघन शान्तस्वरूप शिव का ही प्रतिपादन होता है। स्पन्दन या मायाशक्ति के द्वारा ही शिव लक्षित होते हैं, अन्यथा नहीं शिव को ब्रह्म ही समझना चाहिये। उस शान्तस्वरूप शिव का वर्णन बड़े–बड़े वाणीविशारद् भी नहीं कर सकते। मायामयी जो स्पन्दनशक्ति है, वही ब्रह्मस्वरूप शिवकी इच्छा कही जाती है। वह इच्छा इस दृश्याभासरूप जगत् का उसी तरह विस्तार करती है, जैसे साकार पुरुष की इच्छा काल्पनिक नगर का निर्माण करती है। इस प्रकार शिव की इच्छा ही कार्य करती है। निराकार ब्रह्म शिव की वह मायामयी स्पन्दनशक्तिरूप इच्छा ही इस सम्पूर्ण दृश्यजगत् का निर्माण किया करती है। वही अपने अन्तर्गत चिदाभास के द्वारा उद्दीप्त होकर जीव–चैतन्य अथवा चितिशक्ति कही गयी है। वही जीने की इच्छा वाले प्राणियों का जीवन है। वह स्वयं ही जगत् के रूप में परिणत होने के कारण समस्त सृष्टि की प्रकृति (उपादान) है। दृश्याभासों में अनुभूत होने वाले उत्पाद्य, आप्य, संस्कार्य और विकार्यरूपी चार प्रकार के फलों का सम्पादन करने के कारण वही क्रिया भी कहलाती है। ब्रह्माण्डरूप धारण करनेवाली वह शक्ति या काली प्रलयकाल में जब समुद्र आदि के जल से भीगी होती है, तब बड़वाग्नि की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

शिखा के समान तपने वाले ग्रीष्मऋतु के प्रचण्ड सूर्य आदि की ज्योतियों से सुखायी जाती है; इसलिये उसे 'शुष्का' भी कहते हैं। दुष्टों पर स्वभावतः अत्यन्त क्रोध करने के कारण वह 'चण्डिका' कही गयी है। उसकी अंगकान्ति उत्पल-नील कमल के समान है; इसलिये उसका नाम 'उत्पला' भी है। एकमात्र जय में प्रतिष्ठित होने के कारण उसे 'जया' कहा गया है। सिद्धियों का आश्रय होने से वह 'सिद्धा' कही गयी है। चूँकि जया है, इसलिये 'जयन्ती' भी है। विजय का आधारभूत होने से उसे 'विजया' कहा गया है। अत्यन्त पराक्रम के कारण वह 'अपराजिता' नाम से प्रसिद्ध है। उसका निग्रह करना किसी के लिये भी दुष्कर कार्य है, अतः उसका नाम 'दुर्गा' है। ओंकार की सारभूता शक्ति होने से वह 'उमा' कही गयी है। अपने मन्त्र का गान या जप करने वालों के लिये त्राणकारक तथा परमपुरुषार्थरूप होने के कारण उस देवी का नाम 'गायत्री' है। जगत् के प्रसव की भूमि होने से उस जगज्जननी का नाम 'सावित्री' है। स्वर्ग और अपवर्ग के साधनभूत कर्म, उपासना एवं ज्ञानमयी दृष्टियों का प्रसार करने के कारण उस देवी को 'सरस्वती' कहा गया है। पार्वतीरूप में उस देवी के अंग और शरीर अत्यन्त गौर हैं, इसलिये वह 'गौरी' कहलाती है। वह महादेवजी के आधे शरीर में संयुक्त है (अतएव भगवान् शिव को 'अर्धनारीश्वर कहते हैं)। सुप्त और जाग्रत जितने भी त्रिभुवन के प्राणी हैं, उनके हृदय में नित्य-निरन्तर अकारादि मात्राओं से रहित शब्द ब्रह्म (प्रणव) के नाम का उच्चारण होता रहता है। वह नाद अर्धमात्रास्वरूप होने से 'इन्दुकला' कहलाता है। वह इन्दुकला ही 'उमा' है। शिव और शिवा (रुद्र और काली) दोनों ही आकाशरूप हैं। अतः उनका शरीर काला दिखायी देता है (इसीलिये उन्हें कालभैरव और काली कहते हैं)।

स्पन्दन (स्फुरण) मात्र ही जिसका एक स्वरूप है, वह भगवती काली 'क्रियाशक्ति' है। वही 'दान दे', 'स्नान करे' और 'अग्नि में आहुति दे' इत्यादि विधि वाक्यों द्वारा विहित दान, स्नान और यज्ञ आदि श्रेष्ठ शरीर धारण करती है। वास्तव में वह अनादि, अनन्त चिति-शक्ति है और अपनी इच्छा से ही अपने में सम्पूर्ण वैदिक क्रियारूप से प्रकाशित होती है। वह आकाशरूपिणी है। वही स्पन्दन (स्फुरण) रूप धर्मवाली कान्तिमती दृश्यलक्ष्मी के रूप में प्रकट होती है। उस काली देवी के जो नाना प्रकार के अभिनय और नृत्य हैं, वे ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ब्रह्माजी की सृष्टि में ये जन्म, जरा और मरण की रीतियाँ हैं। वह नील कमलिनी के समान कान्तिवाली होने के कारण 'काली' कहलाती है। वही 'क्रियाशक्ति' एवं 'ब्रह्माण्डकालिका' कही गयी है। वह अपने ही अवयवभूत इस दृश्य-लक्ष्मी को हृदय में धारण करती है।

रघुनन्दन ! जैसे शून्यता आकाश का अंग है, गतिशीलता वायु का अंग है, चाँदनी में खिलनेवाले कुमुद आदि पुष्प चाँदनी के अंग हैं, उसी तरह क्रिया एवं दृश्य-जगत् चितिशक्ति के अंग हैं। वास्तव में उसका स्वरूप शिव, शान्त, आयासरहित, अविनाशी एवं निर्मल समझना चाहिये। उसमें थोड़ी-सी भी निश्चलता या चेष्टाशीलता नहीं है। इसलिये चितिशक्ति के खजाने में मौजूद सारी सृष्टिपरम्पराएँ आत्मा की सत्यता के कारण ही सत्य प्रतीत होती हैं। वह भी उसी को, जो उनकी भावना करता है। दूसरे के लिये वे सब-की-सब असत्य ही हैं। भूत, भविष्यत् और वर्तमान के जितने भी संकल्प तथा स्वप्न के नगर समूह हैं, वे सब सत्य ही हैं, अन्यथा वह परब्रह्म सर्वरूप है, यह कथन कैसे ठीक हो सकता है ? अन्य देशों में स्थित जो पर्वत, ग्रास आदि हैं, वे वहाँ जाने से दूसरे को भी उपलब्ध होते हैं, उसी तरह कोई योगसिद्ध पुरुष यदि परकायप्रवेश-सिद्धि के द्वारा स्वप्नद्रष्टा के हृदय में जाकर उसका मनरूप होकर देखता है तो वह उसके स्वप्नगत पदार्थों को उपलब्ध कर सकता है। जैसे गाढ़ निद्रा में सोये हुए पुरुष को उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख दिया जाय तो भी उसके शरीर के लुढ़के होने पर भी उसका स्वप्नगत नगर नहीं लुढ़कता है, वैसे ही नृत्य करती हुई कालरात्रि के शरीर के चालित होने पर भी उसके भीतर सोया हुआ जगत् न तो चालित होता और न लोटता है। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब होता है, उसी तरह काली के शरीर में जगत् की स्थिति है।

अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त

उनसठवाँ सर्ग

प्रकृतिरूपा कालरात्रि के परमतत्त्व शिव में लीन होने का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जो तत्त्वज्ञ नहीं है, उसकी दृष्टि में वह चितिशक्ति ही क्रिया-रूप है। वह अनामय (निर्विकार) है तथापि स्वभाव से ही नृत्य करती है। उस क्रिया-रूपा चिति-शक्ति के कुदाल और पिटारी आदि आभूषण हैं। जैसे वायु की गति या चेष्टा वायु से भिन्न नहीं है, वैसे ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Digitized by Jammu Collection

शिवस्वरूप परमात्मा की इच्छा-स्वरूपा वह कालरात्रि उससे भिन्न नहीं है। जैसे वायु के भीतर की चेष्टा वायुरूप ही है; अतएव उसे चेष्टा नहीं भी कह सकते हैं, वैसे ही शिव की इच्छा शिव के स्वरूप से भिन्न नहीं है, अतएव शिवरूप ही है। इसीलिये वह अनिच्छा ही है। इस दृष्टि से शिव में इच्छा का अभाव है।

वह कालरात्रि जब उस महाकाश में नृत्य कर रही थी, उस समय उसने प्रेमावेशवश स्वयं अपने आवरणकारी अंश को हटाकर निकटवर्ती शिव का वैसे ही स्पर्श कर लिया, जैसे समुद्र जल की रेखा अपने नाश के लिये ही बड़वानल का स्पर्श कर लेती है। परम कारणरूप शिव का स्पर्श होते ही वह कालरात्रि धीरे-धीरे क्षीण होकर अव्यक्त भावको प्राप्त होने लगी। पहले तो वह अपने विशाल आकार का परित्याग करके वर्तताकार बन गयी। फिर नगराकार होकर विचित्र कल्पना-रूप पल्लव से सुशोभित वृक्ष के समान सुन्दरी बन गयी। इसके बाद उस आकार को भी छोड़कर वह व्योमाकार हो शिव के ही स्वरूप में वैसे ही प्रविष्ट हो गयी, जैसे नदी अपने वेग को शान्त करके महासागर में मिल जाती है। तदनन्तर शिवा से रहित हो वे शिवस्वरूप परमात्मा एकाकी शिवरूप में ही शेष रह गये। उस पूर्ववर्णित आकाश में वे सर्वसंहारकारी रुद्र सारे उपद्रवों की शान्ति होने पर अकेले शान्तभाव से स्थित हुए।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन् ! शिवजी का स्पर्श प्राप्त होते ही वह परमेश्वरी शिवा क्यों शान्त हो गयी ? यह मुझे यथार्थरूप से बताइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! वह शिवा परमेश्वर शिव की इच्छारूपा प्रकृति कही गयी है। वही जगन्माया के नाम से विख्यात है। वह परमेश्वर शिव की स्वाभाविक स्पन्द-शक्ति है। वे परमेश्वर प्रकृति से परे पुरुष कहे गये हैं। वायु भी उन्हीं का स्वरूप है। वे शिवरूप-धारी शान्त परमात्मा शरत्काल के आकाशकी भाँति निर्मल एवं परम शान्तिमान् हैं। स्पन्दन (स्फुरणा या चेष्टा) मात्र ही जिसका स्वरूप है, वह परमेश्वर की इच्छारूपा चिति-शक्ति भ्रमरूपिणी प्रकृति है। वह तभी तक इस संसार में भ्रमण करती है, जबतक कि नित्यतृप्त, निर्विकार, अजर, अनादि, अनन्त एवं अद्वैत परमात्मा शिव का साक्षात्कार नहीं कर लेती। यह प्रकृति एकमात्र चैतन्यधर्मिणी है। अतः उसे चिति-शक्ति ही समझना चाहिये। यह चिति देवी जब शिव का स्पर्श करती है, तब पूर्णतः शिवस्वरूप ही हो जाती है। जैसे नदी समुद्र का स्पर्श करते ही अपने नाम और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (IAS) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

रूप को त्यागकर उसके भीतर समा जाती है, वैसे ही प्रकृति पुरुष का स्पर्श प्राप्त हो अपनी प्रकृति-रूपता का परित्याग कर देती है। उस समय प्रकृति चिति-निर्वाण-रूप परम पद को प्राप्त हो तद्रूप बन जाती है, जैसे नदी समुद्र में मिलकर समुद्ररूप हो जाती है। रघुनन्दन ! वह चिति शक्ति तभीतक मोहवश इन व्याकुल सृष्टिपरम्पराओं और उनकी जन्म आदि दशाओं में भ्रमण करती रहती है, जब तक कि परब्रह्म परमात्मा का दर्शन नहीं कर लेती। उनका दर्शन कर लेने पर वह तत्काल उन्हीं में समा जाती है।

उनसठवाँ सर्ग समाप्त

साठवाँ सर्ग

पृथ्वी की धारणा के द्वारा पार्थिव जगत् का अनुभव

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! जब मैं खड़ा-खड़ा वह सब देख रहा था, तब मुझे दिखायी दिया कि वे भगवान् रुद्र तथा ब्रह्माण्ड के वे दोनों खण्ड या कपाल चित्र-लिखित के समान निश्चेष्ट हैं। तदनन्तर एक ही मुहूर्त में आकाश के बीच रुद्रदेव ने ब्रह्माण्ड के उन दोनों खण्डों को अपनी सूर्यरूपिणी दृष्टि से उसी तरह देखा, जैसे द्युलोक और भूलोक को देख रहे हों। फिर पलक मारते-मारते उन दोनों ब्रह्माण्डखण्डों को अपनी श्वासवायु के द्वारा खींचकर उन्होंने पाताल-गुफा के समान मुँह में डाल लिया। इस प्रकार ब्रह्माण्डखण्डरूपी दुग्धसार तथा मिष्ठान्नराशि को अपना ग्रास बनाकर वे भगवान् रुद्र उस समस्त आकाश में चिदाकाशरूप होकर अकेले ही रह गये। तदनन्तर वे एक ही मुहूर्त में बादल के समान हल्के और छोटे हो गये। फिर छड़ी के समान और उसके बाद बित्तेभर के हो गये। तत्पश्चात् जिन्हें वैसे विशाल रूप में देखा गया था, वे रुद्र मुझे काँच के टुकड़े की एक कणिका के समान दिखायी दिये। इसके बाद मैंने आकाश से दिव्यदृष्टिद्वारा देखा, वे परमाणु के बराबर हो गये थे। परमाणुरूप होने के पश्चात् वे अदृश्य हो गये इस तरह भरे-पूरे जगत् से लेकर रुद्र-शरीर तक वह सारा महान् आरम्भ मेरे देखते-देखते शरत्काल के मेघखण्ड की भाँति विलीन हो गया। श्रीराम ! जैसे भूखा हिरन छोटे से पत्ते को निगल जाता है, उसी प्रकार भगवान् रुद्र ने जब इस प्रकार आवरणों सहित समस्त ब्रह्माण्ड को उदरस्थ कर लिया, तब दृश्यरूपी मल से रहित केवल चेतनाकाश-रूप शान्त परब्रह्म परमात्मा ही शेष रह गया।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Jhanna (HF S) Jammu Collection

उसका न कहीं आदि है न अन्त। चिन्मय आकाशमात्र ही उसका स्वरूप है। रघुनन्दन ! इस तरह मैंने पाषाणखण्ड के कोटर में दर्पण में दीखनेवाले प्रतिबिम्ब की भाँति उस महान् विभ्रमरूप ब्रह्माण्ड एवं उसके महाप्रलय का दृश्य देखा था।

तदनन्तर उस विद्याधरी का, उस शिला का तथा उस संसारभ्रम का स्मरण करके में वैसे ही आश्चर्यचकित हो गया, जैसे कोई गाँव का रहने वाला गँवार पहले-पहले राजद्वार पहुँचकर विस्मय से विमुग्ध हो जाता है। इसके बाद मैंने पुनः उस सुवर्णशिला को ध्यान से देखना आरम्भ किया। फिर तो मुझे काली के शरीर में स्थित हुए संसार की भाँति उसमें सर्वत्र नूतन सर्ग दृष्टिगोचर होने लगे। वह घनीभूत मण्डलाकार सुवर्णमयी विस्तृत पाषाणशिला एकरूप में ही स्थित थी और संध्याकाल के मेघ की भाँति परम सुन्दर दिखायी देती थी। इसके बाद मैंने आश्चर्यचकित हो उस शिला के दूसरे भाग के विषय में भी उसी परादृष्टि से विचार करना आरम्भ किया। विचार करते-करते देखता हूँ तो उस शिला का दूसरा भाग भी उसी तरह जगत् के आरम्भ से ठसाठस भरा हुआ है। वहाँ पूर्ववत् एक छिद्र (आकाश) में नाना पदार्थों से सुन्दर संसार बसा हुआ था। उस शिला के जिस-जिस प्रदेश को मैंने देखा, वहाँ-वहाँ दर्पण में प्रतिबिम्ब की भाँति मुझे निर्मल जगत् का दर्शन हुआ। रघुनन्दन तदनन्तर चेतनाकाशस्वरूप निर्विकार अनन्त एवं सर्वव्यापी ब्रह्मरूप से स्थित हुए मैंने जब समाहित-चित्त होकर देखा तो अपने शरीर के भीतर ही मुझे सृष्टिरूपी वृक्ष एक अंकुर के रूप में स्थित दिखायी दिया। जैसे डेहरी के भीतर रखा हुआ बीज वर्षा के जल से भीग जाने पर अंकुरित हो जाता है, उसी प्रकार मेरे भीतर सृष्टि-बीच अंकुरित हुआ था। जैसे बीज के भीतर विद्यमान अंकुर सींचने से विकसति हो ऊपर की ओर निकल आता है, उसी प्रकार मूर्त, अमूर्त, जड़ और चेतन सभी वस्तुओं में जगत् विद्यमान है। जैसे सुषुप्तावस्था से स्वप्नावस्था को प्राप्त हुए चिन्मात्र पुरुष की अपनी ही चेतना से स्वप्नजगत् की दृश्य-लक्ष्मी का विकास होता है अथवा जैसे स्वप्नावस्था के हट जाने पर जगे हुए पुरुष के समक्ष जाग्रत्-काल का दृश्य-प्रपंच विकास को प्राप्त होता है, उसी तरह जिसने सृष्टि के आरम्भ में अपने स्वरूप का पृथक् रूप से अनुभव किया है, ऐसे आत्मा में इस सृष्टि का उदय होता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (Lucknow) Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

हृदयाकाश में उदित हुआ यह सर्ग चेतनाकाश से पृथक् नहीं है।

तदनन्तर पृथ्वी की धारणा से युक्त होकर मैं ध्यान करने लगा। पृथ्वी की धारणा करनेपर उसके अभिमानी जीव की स्वरूपता प्राप्त करके मैं द्वीप, पर्वत, तृण और वृक्षादिरूपी देह से युक्त हो वहाँ के जगत् का अनुभव करने लगा। मैं सम्पूर्ण भूमण्डल बन गया। नानाप्रकार के वन और वृक्ष मेरे शरीर के रोम हो गये। नाना प्रकार की रत्नावलियाँ मेरे शरीर में व्याप्त थीं और अनेकानेक नगर मेरे लिये आभूषण का काम दे रहे थे। पृथ्वी का रूप धारण करके मैं नदी, वन, समुद्र, दिगन्त, पर्वत तथा द्वीप नामक प्राणियों के भोग्यस्थलों और जंगल-समूहों से व्याप्त हो गया। नाना प्रकार के पदार्थों की श्रेणियों से भरे हुए अनेकानेक मण्डलकोश मुझमें दृष्टिगोचर होने लगे तथा मैं लता, सरोवर, सरिता और कमलसमूहों से सुशोभित होने लगा।

साठवाँ सर्ग समाप्त

इकसठवाँ सर्ग

जल और तेजस्-तत्त्व की धारणा से प्राप्त अनुभव

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन् ! अब यह बताइये कि उस समय आपने विभिन्न भूभागों के भीतर कहीं ब्रह्माण्डों के दर्शन किये थे या नहीं ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! पहले शिला में जैसे सम्पूर्ण जगत् देखा गया था, वैसे ही उस समय भूमण्डल के सभी स्थानों में मुझे जगत् का जाल-सा बिछा हुआ दिखायी दिया। वह सारा दृश्यमय प्रपंच द्वैतमय होता हुआ भी वास्तव में शान्त अद्वैत ही है। सभी स्थानों में जगत् है और सर्वत्र सबके आधाररूप से ब्रह्म विराजमान है। अतः सब कुछ परम शान्त चिदाकाश स्वरूप ब्रह्म ही है और सभी अनेक प्रकार के आरम्भों से परिपूर्ण है। रघुनन्दन ! यद्यपि यह दृश्य 'सत्' और 'अहम्' इत्यादि रूप से अनुभव में आता है, तथापि उसका अस्तित्व परमार्थ-दशा में है ही नहीं और यदि है तो वह सब अजन्मा-निर्विकार ब्रह्म ही है।

मैंने धारणा द्वारा पृथ्वी का रूप धारण करके जैसे वहाँ नाना प्रकार के जगत् देखे थे, वैसे ही जलतत्त्व की धारणा से जलरूप होकर वहाँ भी वैसे ही जगत् का दर्शन किया। जैसे काट-छाँटकर स्वच्छ किये गये इन्द्रनीलमणि के समान नील वर्णवाले भगवान् विष्णु शेषनाग के अंगों पर भगवती लक्ष्मी जी के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

साथ विश्राम करते हैं, उसी प्रकार श्याम-शरीरवाले मैंने भी बादलों के आसनों पर विद्युन्मयी वनिता के साथ विश्राम किया। रसरूप होने के कारण मैंने जिह्वासम्बन्धी एक-एक अणु के साथ रहकर उत्तम अनुभव प्राप्त किया, जिसे मैं अपने शरीर का नहीं, केवल ज्ञानरूप आत्मा का ही अनुभव मानता हूँ। जलकण का रूप धारण करके हवा के रथपर चढ़कर मैंने आकाश की निर्मल गलियों में सुगन्ध की भाँति विचरण किया। जल की समता प्राप्त करा देने वाली उस जलमयी धारणा के द्वारा अजड़ होकर भी जड़ (जल) सा बनकर तथा समस्त पदार्थों के भीतर ज्ञातारूप से रहता हुआ भी दूसरों के द्वारा अज्ञात होकर रहा।

रघुनन्दन ! तत्पश्चात् मैं तेजस्तत्व की बढ़ी हुई धारणा के द्वारा चन्द्रमा, सूर्य, तारा और अग्नि आदि विचित्र अवयवों से युक्त तेज बन गया। तेज के सदा सत्व-प्रधान होने कारण मैं प्रकाशरूप बनकर चमक उठा। संसार में जितने भी रूप हैं, वे सब प्रकाश के ही अंग हैं। अतः सदा प्रकाश की गोद में शयन करने वाले शुक्ल, कृष्ण और अरुण आदि समस्त वर्णों का मैं स्वरूपदाता पिता हो गया। अपने तेजः स्वरूप से मैं दिग्वधुओं के लिये स्वच्छ दर्पण बन गया। रात्रिरूपी कुहरे को नष्ट करने के लिये वायु स्वरूप हो गया। चन्द्रमा, सूर्य और अग्निका तो जीवन सर्वस्व ही था। मैं स्वर्गलोक के लिये कुंकुम का आलेप बन गया। मैं तेज बनकर सुवर्ण आदि में सुन्दर वर्ण (रंग) बन गया, मनुष्य आदि में पराक्रम हो गया, रत्न आदि में चकाचौंध पैदा करनेवाली कान्ति बन गया और वर्षाऋतु में विद्युत् का प्रकाश हो गया। तेज की धारणा से तेजोमय होकर मैं उन वृत्र आदि असुरों के मस्तकपर वज्र का प्रहार बन गया, जो अपने थप्पड़ से शत्रुओं का सिर फोड़ डालते थे। साथ ही सिंह आदि के हृदय में पराक्रम बनकर बैठ गया। रणांगण में निर्भय विचरण करानेवाला जो उद्भट पराक्रम वीरपुरुषों के भीतर प्रसिद्ध है, वह भी मैं ही बन गया। वह भी साधारण पराक्रम नहीं, अपितु जो कठोर लोहकवचों को तोड़ने वाले खंगों के परस्पर आघातों से उत्पन्न हुई टंकारध्वनि से अत्यन्त पटु तथा महान् आडम्बर से युक्त हो। सूर्यस्वरूप होकर मैंने दसों दिशाओं में फैले हुए किरणरूपी हाथों से जगत्रूपी पक्षी को, जिसके बड़े-बड़े पर्वत अंग थे, पकड़ लिया। उस समय मुझको यह सारा भूतल एक छोटे से गाँव के समान दिखायी दिया। चन्द्रमा के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

रूप में प्रकट होने पर मेरा आकार अमृत से भरी हुई झील के समान हो गया। मैं द्युलोकरूपी सुन्दरी का मुख बन गया। निशारूपिणी निशाचारी के हास्य-सा लगने लगा और रात्रि में यत्र-तत्र प्रवेश करने वाले पुरुषों के लिये प्रकाश-दीप का काम देने लगा। मैंने अग्नि बनकर दावानल की ऐसी ज्वाला फैलायी, जिससे लकड़ियों का तत्काल विदारण हो जाता था और मेरी दुर्निवार दीप्ति बढ़ जाती थी। बड़े-बड़े काष्ठों के फूटने और फटने से अत्यन्त कठोर शब्द उत्पन्न होते थे। यज्ञाग्नि बनकर मैंने हविष्यादि का भी कल्याणकारी कार्य सम्पन्न किया। कहीं लोहार आदि की प्रयोगशालाओं में मैंने तप्त लोहपिण्ड आदि में रहकर हथौड़े आदि से ताड़ित होने पर उन ताड़नकर्ताओं को जलाने के लिये आग की चिनगारियाँ प्रकट की थीं।

श्रीरामजी ने पूछा-मानदाता मुने ! उस अवस्था में आपको सुख का अनुभव हुआ या दुःख का ? यह मुझे मेरी जानकारी के लिये बताइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! जैसे सोया हुआ पुरुष चेतन होता हुआ भी जड़ता का अनुभव करता है, वैसे ही चेतनाकाश अपने संकल्प से दृश्यभाव को प्राप्त होकर जड़ता का सा अनुभव करता है। जब ब्रह्म अपने को पृथ्वी आदि के रूप में समझता है, तब सुप्त की भाँति जड़-सा बनकर स्थित रहता है। इसका जो सच्चिदानन्दात्मक यथार्थ स्वभाव है, उसका कभी अन्यथाभाव नहीं होता।

इकसठवाँ सर्ग समाप्त

बासठवाँ सर्ग

धारणा द्वारा वायुरूप से स्थित हुए वसिष्ठजी का अनुभव

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! तदनन्तर मैं जगत् को देखने के कौतूहल से धीर-चित्तवृत्ति के द्वारा वायुमयी विस्तृत धारणा करके वायुरूप हो गया और लतावल्लरीरूपिणी ललनाओं को नचाने लगा। कमल, उत्पल और कुन्द आदि पुष्पसमूहों की सुगन्ध का संचय करके उसकी रक्षा करने लगा। नन्दनवन में मेरा आना-जाना अत्यन्त मधुर और उदार होता था; क्योंकि वहाँ बड़ी मधुर सुगन्ध सुलभ होती थी। चन्द्रमण्डल में जो श्रेष्ठ अमृत है, उसका चिरकालतक उपभोग करके पूर्णरूप से घिरे हुए मेघों की घटारूप शय्यापर सोकर तथा कमलवनों को कम्पित करके मैं प्राणियों के श्रम का निवारण किया

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

करता था। आकाशरूपी पुष्प का मैं ही सौरभ था। अतएव उसके गुणभूत सभी शब्दों का मैं सहोदर भाई बनगया। प्राणियों के अंगों और उपांगों में प्रेरक बनकर उनकी नाड़ीरूप नालियों में जल सा हो गया था। मैं सुगन्धरूपी रत्नों का लुटेरा, विमानरूपी नगरों की आधारभूमि, दाहरूपी अन्धकार का निवारण करने के लिये चन्द्रमा तथा शीतरूपी चन्द्रमा की उत्पत्ति के लिये क्षीरसागर था। एक ही क्षण में मैं समस्त पर्वतों को उखाड़ कर फेंकने में समर्थ था। वायुरूप बनकर मैंने छः प्रकार की क्रियाएँ करते-करते प्रलय पर्यन्त कभी भी विश्राम नहीं लिया। मेरे वे छः कर्म इस प्रकार थे। हिम और घी आदि को जमा देना-उसका पिण्ड बनाना, कीचड़ आदि को सुखाना, मेघ आदि को धारण करना, तृण आदि में हलचल पैदा करना, सुगन्ध को इधर-उधर ले जाना तथा ताप हर लेना।

श्रीराम ! इस प्रकार उस समय पृथ्वी आदि पाँच भूतों का रूप धारण करके मैंने उस त्रिलोकीरूप कमल के उदर में भली भाँति विहार किया। पृथ्वी, जल, वायु और तेज के समूहरूप वृक्षों के शरीर में निवास करते हुए मैंने मूल-चाल के द्वारा पृथ्वी का रस पीया और उसके स्वाद का अनुभव किया। अमृत से पूर्ण घनीभूत अंगवाले तथा चन्दन-द्रव के समान शीतलता आदि गुणों से सुषोभित चन्द्रविम्बों पर जो बर्फ की बनी हुई शय्याओं के समान थे, मैंने अच्छी तरह लोट-पोट किया है। उपभोग के बाद बचा हुआ पुष्परस भ्रमर को देते हुए मैंने सभी दिशाओं और सभी ऋतुओं में समस्त वनसमूहों के भीतर नाना प्रकार की सुगन्धों से परिपूर्ण पुष्पराशियों का अच्छी तरह सेवन किया है। कुमुद, कल्हार और कमलों से पूर्ण नलिनी-वन में मैंने मधुर बोली बोलने वाली हंसियों के साथ लीला-पूर्वक कोमल कलकल नाद किया है। रघुनन्दन ! मेरी कृपा से प्रसन्न हुए सूर्य आदि देवताओं ने शरीर से कृष्ण, रक्त, श्वेत, अश्वेत, पीत एवं हरित वर्णों से हरे वृक्षों की भाँति मेरे शरीर में स्थिति प्राप्त की थी। समुद्रों से घिरी हुई तथा सात द्वीपों के कारण मानो सात रूप धरनेवाली इस भूमि को मैंने अपनी कलाई में कंगन की भाँति धारण कर लिया था। श्रीराम ! समस्त ब्रह्माण्डरूप होने के कारण यद्यपि सारे पाताल मेरे चरण बन गये थे, मैं भूतल को उदर के रूप में धारण कर रहा था और आकाश मेरा मस्तक था, तथापि मैंने अपनी परम सूक्ष्म चिन्मात्रस्वरूपता का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookesh sharma (I F S) Jammu Collection

कभी त्याग नहीं किया था। इस प्रकार चिदाकाशरूप से स्थित हुए मैंने भूमि, जल, अग्नि और वायु का स्वरूप धारण किया। जैसे प्रसिद्ध चिति–शक्ति स्वयं ही स्वप्न में नगर आदि का रूप धारण करती है, उसी प्रकार मेरे द्वारा भूमि आदि का स्वरूप–धारण माया शक्ति का विस्तार ही था।

बासठवाँ सर्ग समाप्त

तिरेसठवाँ सर्ग

वैराग्यपूर्ण जीवन का वृत्तान्त

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! इस प्रकार धारणा द्वारा सिद्ध पृथ्वी आदि के रूप से जगत् शरीर का अवलोकन करने के बाद पूर्वोक्त कौतुकदर्शन के संकल्प और प्रयत्न से निवृत्त हो मैं पुनः पहले के समाधि स्थान आकाश–कुटीर के प्रदेश की ओर लौट आया। वहाँ आने पर देखता हूँ कि मेरा अपना शरीर कहीं भी स्थित नहीं दिखायी देता है। वहाँ अपने सामने बैठे हुए किसी दूसरे ही सिद्धपुरुष को मैं देख रहा हूँ, जो अकेला है। वह सिद्ध समाधिनिष्ठ होकर बैठा था और अभीष्ट परम पद को प्राप्त हो चुका था। उसने पद्मासन बाँध रखा था। वह परम शान्त था और समाधि में चित्त के स्थिर हो जाने से उसका शरीर हिलता–डुलता नहीं था। भस्मनिर्मित त्रिपुण्ड की रेखाओं से युक्त, सौम्य तथा समान विस्तारवाले कंधों से उसकी ग्रीवा बड़ी सुन्दर दिखायी देती थी। उसका मन उदार ब्रह्मतत्त्व में विश्राम ले रहा था। इसलिये उसका शरीर सुस्थिर और मुख अत्यन्त प्रसन्न था। उस प्रसन्न मुख से सुशोभित उसके मस्तक की जो निश्चल अवस्था थी, उसके कारण वह सिद्ध बड़ा सुन्दर दिखायी देता था। नाभि के निकट उत्तानभाव से रखे हुए उसके दोनों हाथों की शोभा दो प्रफुल्ल कमलों की शोभा के समान जान पड़ती थी। उन हाथों की शोभा के रूप में मानो हृदय–कमल के प्रकाश ही बाहर प्रकट हो गये हों–ऐसा जान पड़ता था। उन कर–कमलों की प्रभा से यह सिद्धपुरुष प्रकाशित हो रहा था। उसके दोनों नेत्रों की पलकें बंद थीं। उसकी बाह्येन्द्रियों के सारे व्यापार क्षीण हो गये थे। विक्षोभ से रहित तथा पूर्णरूप से शान्त, अन्तःकरणरूपिणी गुफा को उसने अपनी घोर मनोवृत्ति के द्वारा इस तरह धारण कर रखा था, मानो समस्त उत्पातों से रहित शान्त आकाश को धारण किया हो। उस कुटी में जब मैंने अपना शरीर नहीं देखा और सामने उस मुनि को

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

देखा, तब मैंने अपने शुद्ध चित्त के द्वारा वहाँ यों विचार किया।

"जान पड़ता है ये कोई महान् सिद्ध महात्मा हैं, जो मेरी ही तरह सोच-विचारकर एकान्त महाकाश में विश्राम लेने की इच्छा से इस दिगन्त में आ पहुँचे हैं। 'मैं समाधि के योग्य एकान्त स्थान पा जाऊँ', इस चिन्ता में ही पड़कर ये सत्यसंकल्पशाली महात्मा इधर आये हैं और इन्हें यह कुटी दिखायी दी है। उसके बाद दीर्घकालतक जब मैं नहीं लौटा हूँ, तब मेरे पुनः आगमन की बात इनके ध्यान में नहीं आयी है और इन्होंने शवरूप में पड़े हुए मेरे शरीर को यहाँ से हटाकर स्वयं इस कुटिया में आसन जमा लिया है। मेरा वह शरीर तो अब नष्ट हो गया। अतः अब इस आतिवाहिक देह से ही मैं अपने सप्तर्षिलोक को चलूँ"-ऐसा निश्चय कर मैं ज्यों ही वहाँ से चलने को उद्यत हुआ, त्यों ही मेरे पूर्वसंकल्प का क्षय हो जाने से वह कुटी अदृश्य हो गयी और वहाँ केवल आकाशमण्डल रह गया। फिर तो समाधि में स्थित हुए वे सिद्धबाबा निराधार होकर नीचे की ओर गिरने लगे।

मैंने पहले यह संकल्प किया था कि जब तक मैं यहाँ रहूँ, तबतक यह कुटी भी रहे, परंतु अब वह संकल्प क्षीण हो जाने से कुटिया नष्ट हो गयी और सिद्ध महात्मा क्षणभर में वहाँ से गिर पड़े। तब सुजनता या कौतुकवश मैं उन गिरते हुए सिद्ध के साथ उस मनोमय (अतिवाहिक) शरीर से ही आकाश से भूतल की ओर चला। गिरते समय उनका पैर पूर्ववत् पृथ्वी से जा लगा और मस्तक ऊपर की ओर ही उठा रहा। वे पद्मासन लगाये हुए ही वहाँ गिरे थे। उनके प्राण ने अपान वायु को ऊपर की ओर खींच रखा था। इसलिये वे पहले जिस प्रकार बैठे थे, उसी अवस्था में आकाश से नीचे आ गये। वे सिद्धपुरुष इतने ऊँचे से गिरने पर भी समाधि से जगे नहीं; क्योंकि चित्त के परमात्मा में दृढतापूर्वक लगे रहने के कारण वे अचेतन-से हो रहे थे। साथ ही उनका कोई अंग भी भंग नहीं हुआ; क्योंकि वे योग के प्रभाव से रुई के ढेर की भाँति बहुत ही हल्के बन गये थे। तब मैंने उन्हें समाधि से जगाने के लिये प्रयत्न आरम्भ किया और बादल का रूप धारण करके आकाश में गर्जन-तर्जन के साथ वर्षा आरम्भ कर दी। ओले और वज्र गिरने लगे। जैसे बादल या वर्षा मोर को जगाती है, उसी प्रकार मैंने अपने बुद्धि कौशल से उस दिगन्त में उन सिद्धपुरुष को जगाया। समाधि से जागने के बाद उनके समस्त अंगों की शोभा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.E.S) Jammu Collection

प्रकाशित होने लगी और उनके नेत्र भी विकसित हो उठे। उस समय वे ऐसे लगते थे, मानो वर्षाकाल में धारावाहिक वृष्टि से विकसित हुआ कमलों का वन हो। समाधि से जागने पर मैंने उनसे शुद्ध भाव से पूछा–'मुनीश्वर ! आप कहाँ हैं और यह क्या कर रहे हैं ? आप कौन हैं ? इतनी दूरी से आप नीचे गिरे हैं, फिर भी आप अपने चित्त में उसका अनुभव क्यों नहीं कर रहे हैं' ? मेरे इस प्रकार पूछने पर उन्होंने मेरी ओर देखा। फिर अपनी पूर्वगति का स्मरण करके वे मुझसे उसी तरह सुन्दर वचन बोले, जैसे चातक मेघ से बोलता है।

सिद्ध ने कहा–ब्रह्मन् ! जब तक मैं अपने वृत्तान्त का स्मरण न कर लूँ तब तक आप मेरे उत्तर के लिये प्रतीक्षा कीजिये। मैं आपसे अपना सारा पिछला वृतान्त कहूँगा।

इतना कहकर उन्होंने अपने पूर्व वृतान्त को शीघ्र ही स्मरण कर लिया। इसके बाद वे चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल एवं मनोहर वाणी में मुझसे बोले।

सिद्ध ने कहा–ब्रह्मन् ! इस समय मैंने आपको पहचान लिया है। अतः प्रणाम करता हूँ। अब तक ऐसा न करने से मेरे द्वारा जो अपराध बन गया है, इसे आप क्षमा करें; क्योंकि क्षमा सत्पुरुषों का स्वभाव है। मुने ! जैसे कमलों में भौंरा भ्रमण करता है, उसी प्रकार मैंने सुदीर्घकालतक भोगरूपी सुगन्ध से पूर्ण मोहकारक देवोद्यान–भूमियों में चिरकालतक भ्रमण किया है। तदनन्तर चित्तरूपी जल–तरंगों के हिलोरों से युक्त दृश्य रूपिणी नहीं मैं उसके मण्डलाकार आवर्तों (भँवरों) द्वारा निरन्तर बहाये जाते हुए मैंने दीर्घकाल के बाद विवेक का आविर्भाव होनेपर संसार से उद्विग्न हो इस तरह विचार किया–'अहो ! इस संसार में शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्धमात्र को छोड़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है; अतः इतने ही मात्र में–ऐसे तुच्छ विषय भोग में मैं क्यों रमण करूँ। कामरूप मोह को ही देने वाली हैं तथा राग सरस पुरुष को भी विरसता प्रदान करने वाले हैं; इन में लोटने वाला कौन पुरुष नष्ट नहीं हुआ ? इस शरीर में शीघ्र प्राप्त होने वाली जीर्ण–शीर्ण वृद्धावस्था एक विशाल बगुली के समान है। वह यही सोचती रहती है कि मैंने इस जीवनरूपी कीचड़ या सेवार में बहुत बड़ी मछली पा ली है। इसी भाव से वह इस शरीर को तत्काल उदरस्थ कर लेना चाहती है। यह शरीर समुद्र में दीखने वाले बुलबुले

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

के समान शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाला है। यह सामने स्फुरित होता हुआ ही सहसा दीपशिखा के समान बुझकर अदृश्य हो जाता है।

'यह जीवन एक महानदी है। इसमें नाना प्रकार के विक्षेप बड़ी-बड़ी लहरों के समान हैं। कालचक्र ही इसमें भँवरें बनकर उठता है। जन्म और मरण ही इसके दो ऊँचे और विशाल तट हैं तथा इसमें सुख-दुःख की छोटी-छोटी तरगें उठती रहती हैं। यौवन का उल्लास ही इसकी कीचड़ है। वृद्धावस्था के सफेद केश ही इसके धवल फेन हैं। कभी काकतालीय संयोग से इसमें सुख के बुद्बुदे भी उठ जाते हैं। व्यवहार ही इसके महाप्रवाह की रेखा है। इसमें नाना प्रकार के जड़-रव (मूर्खों के कोलाहल) ही जल-रव (जल की ध्वनि) हैं। राग-द्वेषरूपी बादल इसे बढ़ाते रहते हैं तथा भूतल पर इसका शरीर सदा ही चंचल रहता है। लोभ और मोह के महान आवर्त इसमें उठते रहते हैं। पात और उत्पात से इसमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार यह जीवन नामक नदी शब्द मात्र से तो अत्यन्त शीतल है; परंतु वास्तव में त्रिविध तापों से अत्यन्त संतप्त रहा करती है। यह महान् खेद का विषय है। संसार रूपी नदी के जलस्थानीय जो इष्ट, मित्र, पुत्र आदि के समागम और धन हैं, उनमें पहले-पहले के तो चले जाते हैं और नये-नये आते रहते हैं। (इस प्रकार यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं है।) यहाँ जो पदार्थ प्राप्त हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। अतः उन क्षणभंगुर पदार्थों से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। जब प्राप्त हुई वस्तुओं की यह दशा है, तब जो नये पदार्थ प्राप्त होते हैं, उन पर भी यहाँ कैसे आस्था हो सकती है ? संसार में जितनी नदियाँ हैं, उन सबका जल उद्गम स्थान से आता और समुद्र की ओर जाता रहता है। परंतु इस शरीररूपी नदी का जो आयुरूपी जल है, वह केवल जाता ही है, फिर आता नहीं। भयंकर शत्रुभूत विषयरूपी चतुर चोर चारों ओर विचरते रहते हैं, वे विवेकरूपी सारा धन हर ले जाते हैं। अतः मुझे निरन्तर जागते रहना चाहिये। यहाँ मैं सो कैसे रहा हूँ ? आज यह हुआ, कल यह होगा, यह इसका है और यह मेरा है-इस प्रकार संकल्प-विकल्प करता हुआ मनुष्य बीती हुई आयु और आयी हुई मौत को नहीं जान पाता है। यह कैसी आश्चर्य की बात है ! खूब खा-पी लिया, अनन्त वनभूमियों में विचरण कर लिया और बहुत-से सुख-दुःख भी देख लिये। अब यहाँ और क्या करना या पाना शेष रह गया है ? मैंने ऊँचे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Collection (Jammu Collection)

शिखरों वाले मेरुपर्वत की उद्यान-भूमियों में अच्छी तरह भ्रमण किया। लोकपालों के श्रेष्ठ स्वाभाविक सुख प्राप्त हुआ ?

'धन, मित्र, सुख और भाई-बन्धु कोई भी कालग्रस्त मनुष्य की रक्षा नहीं कर सकते। मनुष्य का जीवन धूलिराशि के समान अस्थिर है, उसकी स्थिति सुदृढ़ नहीं है। जैसे पर्वतशिखरों पर गिरा हुआ वर्षा का जल प्रतिक्षण व्यर्थ नष्ट होता है, वैसे ही भीतर से विषयों में आसक्त मनुष्य क्षण-क्षण में क्षीण हो अन्त में पुरुषार्थशून्य रहकर ही अस्त (मृत्यु को प्राप्त) हो जाता है। कोई भी भोग मेरे मन को नहीं लुभा पा रहे हैं। यहाँ के वैभव भी मुझे सुन्दर नहीं लगते हैं। यह जीवन भी मदमत्त युवती के कटाक्षपात की भाँति चंचल एवं क्षणभंगुर है। मुने ! यहाँ किसको, किस तरह और किस उपाय से आश्वासन प्राप्त हो। पापिनी मृत्यु आज या कल मस्तक पर पैर रख ही देगी अथवा माथे पर विपत्ति का पहाड़ डाल ही देगी। यह शरीर एक दिन पत्ते के समान झड़ जाने वाला है। जीवन की स्थिति भी जीर्ण-शीर्ण ही है। बुद्धि अधीरता से ग्रस्त है और विषयों के रस नीरस हो गये हैं। नीरस विषय और उनके मनोरथ मेरी विस्तृत आयु को ले बीते। इनके मेरे लिये कोई चमत्कारजनक पुरुषार्थ नहीं सिद्ध हुआ। आज मेरा मोह मन्द पड़ गया है। इस शरीर का इस जगत् में कोई उपयोग नहीं है। विषयों में आस्था या आसक्ति न करना ही ऊँची स्थिति है और जीवन के प्रति आस्था रखना ही सबसे अधम अवस्था है। अहो ! यह सम्पत्ति क्या मिली, विपत्ति ही सिर पर आ पड़ी है, जो भारी मोह में डालने वाली है। विवेकी पुरुष को सदा ऐसा ही मानना चाहिये और इस संसार में कभी आसक्त नहीं होना चाहिये। जैसे समुद्रपत्नी सरिताएँ भूतल पर अपने शरीर को आन्दोलित करती हुई समुद्र की ओर दौड़ रही हैं, उसी प्रकार जनता विषयों की ओर दौड़ी जा रही है। यहाँ आयु ही उत्पात-वायु है। मित्र ही बड़े भारी शत्रु हैं। बन्धु ही बन्धन हैं और धन ही बड़ी भारी मौत है। सुख ही अत्यन्त दुःख है। सम्पत्तियाँ ही भारी विपत्तियाँ हैं। भोग ही संसार के महान् रोग हैं तथा रति ही भारी अरति (दुःख) है। सारी सम्पत्तियाँ आपत्तियाँ हैं। यहाँ का सुख केवल दुःख देने के लिये है और जीवन भी मृत्यु की धरोहर है। अहो ! यह माया का विस्तार कितना दुःखद है ? विषय सेवनरूप जो भोग हैं, उन्हें सर्पों का फन ही समझना चाहिये; क्योंकि वे थोड़ा सा भी स्पर्श होने पर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modi Research Institute (UF S) Jammu Collection

डँस ही लेते हैं। किंतु विचार दृष्टि से देखने पर प्रति तृष्णा बाँधे बैठे हैं, उन लोगों का उसी तरह पग-पग पर अपमान होता है, जैसे बन्धन स्तम्भ में बँधे हुए जंगली हाथियों का हुआ करता है।

'सम्पत्तियाँ और युवती स्त्रियाँ ये तरंगों की गोद के समान क्षणभंगुर हैं। इतना ही नहीं, वे सर्प के फन की छाया हैं। कौन विवेकी पुरुष उनमें आसक्त होगा ? जो आरम्भ में रमणीय प्रतीत होने वाले किंतु अन्त में अत्यन्त नीरस सिद्ध होने वाले विषयभोगों में रमते हैं, वे नरकों में ही गिरते हैं। धन राग-द्वेषादि द्वन्द्व दोषों से आक्रान्त हैं। उनका उपार्जन करना भी अत्यन्त कठिन होता है तथा प्राप्त हो जाने पर भी वे स्थिर नहीं रहते हैं। अतः वे अधम पुरुषों के लिये ही सेवन करने योग्य हैं। जो आरम्भ में मधुर लगती है, परंतु अन्त में दुःखही देने वाली है, वह लक्ष्मी (लौकिक सम्पत्ति) जगत् को मोह में ही डालती है। उसका विलास क्षणभर के लिये ही होता है। कोई महान्-से-महान् पुरुष क्यों न हों, उनके जीवन में भी एक दिन मृत्यु अवश्य उपस्थित होगी। देह धारियों की आयु शाखाके अग्रभाग में लटकी हुई ओस की बूँद के समान शीघ्र ही नष्ट होने वाली है। जरा अवस्था को प्राप्त होते हुए पुरुष के केश पक जाते हैं, दाँत भी टूट जाते हैं। उसकी ओर वस्तुएँ भी जीर्ण होकर क्षीण हो जाती हैं। परंतु एकमात्र तृष्णा ही ऐसी है जो जीर्ण नहीं होती है वह नित्य नयी ही बनी रहती है। हाथ की अंजलि में रखे हुए जल की भाँति यह जीवन शीघ्र ही स्खलित जो जाता है। वह नदी के प्रवाह की भाँति चला जाता है और लौटता नहीं है। इस जो रमणीय जान पड़ते हैं, उन पदार्थों में मैंने अरमणीयता देखी है। स्थिर वस्तुओं में भी अस्थिरता का दर्शन किया है और सत्य दीखने वाले पदार्थों में भी मुझे असत्यता दिखायी दी है। इसीलिये मैं यहाँ से विरक्त हो उठा हूँ। मन के सर्वथा वासनाशून्य हो जाने पर जब परमात्मा में विश्रान्ति प्राप्त होती है, उस समय जो आनन्द मिलता है, वह पाताल, भूतल और स्वर्ग के भी किन्हीं भोगों में नहीं मिल सकता।'

मुने ! इस तरह दीर्घकाल तक विचार करने से अब अहंकारशून्य हो मैंने अपनी बुद्धि के द्वारा स्वर्ग और अपवर्ग से भी विरक्ति प्राप्त की है। इस कारण मैं भी आपकी ही भाँति चिरकाल तक एकान्त में विश्राम के लिये आकाश के इस स्थान तक आया और यहाँ मुझे आपकी कुटी दिखायी दी। आपकी ही यह

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

कुटी है और आप पुनः यहाँ पधारेंगे, यह बात उस समय मैंने नहीं सोची थी यह सब तो मुझे आज ही ज्ञात हुआ है। उस समय तो अनुमान से मैंने यही जाना था कि यह कोई सिद्धपुरुष था जो यहाँ अपना शरीर त्यागकर निर्वाण पद को प्राप्त हो गया है। भगवन् ! यही मेरा वृत्तान्त है और यह मैं आपके सामने उपस्थित हूँ। मैंने सब बातें आपको बता दीं। अब आप जैसे उचित समझें करें।

तिरेसठवाँ सर्ग समाप्त

चौसठवाँ सर्ग

वसिष्ठजी का मनोमय देह से सिद्धादि लोकों में भ्रमण करना

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! तत्पश्चात मैंने सिद्ध से इस प्रकार कहा–'महात्मन् ! मैंने भी तो आपके विषय में कोई विचार नहीं किया, इसी से उस कुटी को आकाश में स्थिर नहीं कर दिया। उसे स्थिर कर दिया होता तो आपकी स्थिति भी सुस्थिर हो गयी होती। आप को इस प्रकार नीचे नहीं गिरना पड़ता (अतः हम दोनों से परस्पर अपराध हुए हैं, इसलिये दोनों ही दोनों को क्षमा कर दें)। उठिये, अब हम दोनों सिद्ध लोकों में चलकर पूर्ववत् निवास करें।' तदनन्तर हम दोनों गुलेल से फेंके गये दो पत्थर की गोलियों के समान एक साथ ही तीव्र गति से आकाश में उड़े। उस समय हमारी स्थिति दो तारों के समान हो रही थी। ऊपर जाकर हम दोनों ने एक दूसरे को प्रणामपूर्वक विदा किया। फिर वे सिद्ध महात्मा अपने अभीष्ट स्थान को चले गये और मैं अपने अभीष्ट स्थान में आ गया।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा–भगवन् ! आपका वह शरीर तो पृथ्वी पर गिरकर धूल के परमाणुओं में मिल गया होगा ! फिर आप किस शरीर से सिद्ध लोकों में विचरे ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–श्रीराम ! हाँ, मुझे याद आ गया। उसके बाद का मेरा वृत्तान्त सुनो। जगत्‌रूपी गृह में, सिद्धों के समूहों में तथा लोकपालों की पुरियों में भ्रमण करते हुए मुझ वसिष्ठ की आत्मकथा इस प्रकार है–एक दिन मैं इन्द्रपुरी में गया, परंतु वहाँ स्थूल शरीर से रहित हो आतिवाहिक (सूक्ष्म) देह से गये हुए मुझको न तो किसी ने देखा और न पहचाना ही। मन का मनन ही एकमात्र मेरा स्वरूप था। मैं पृथ्वी आदि से सर्वथा रहित था। संकल्प–कल्पित पुरुष की भाँति मेरा कोई दृश्य आकार नहीं था। मुझसे किसी का स्पर्श न होने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के कारण मैं घटपट आदि पदार्थों का अवरोधक नहीं था। जगत् के पदार्थ समुदाय भी मुझे कहीं आने-जाने से रोक नहीं पाते थे। मैं अपने अनुभवों की ओर उन्मुख था अर्थात् अपना अनुभव ही मेरा शरीर था तथा अपने समान स्थिति वाले मनोमय पुरुषों के साथ ही मैं व्यवहार करता था।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-भगवन् ! यदि देहरहित एवं आकाश स्वरूप होने के कारण आप किसी को दिखायी नहीं देते थे तो उस सिद्ध ने आपको उस सुवर्णमयी भूमि में कैसे देखा था ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! मुझ-जैसा ज्ञानयोग से सिद्ध हुआ पुरुष संकल्पकल्पित पदार्थों का जिस तरह अवलोकन करता है, उस तरह असंकल्पित पदार्थों को नहीं ग्रहण करता; क्योंकि उसका शरीर सत्य संकल्पमय होता है। निर्मल अन्तःकरण वाला सूक्ष्म शरीरधारी पुरुष भी लौकिक व्यवहारों में मग्न होने पर क्षणभर में ही अपना सूक्ष्म शरीर भूल जाता है। उस समय मैंने यह संकल्प किया था कि यह सिद्धपुरुष मुझे देखे। इसलिये उसने मुझे देखा; क्योंकि वह मेरे संकल्पित अर्थ का भाजन था। परस्पर सिद्ध एवं विरुद्ध मनोरथ वाले दो सिद्धों में जो अधिक शुद्ध अन्तःकरण वाला और पुरुषोचित प्रयत्न से युक्त होता है, वही अपने अभीष्ट-साधन में विजयी होता है। जब मैं सिद्धसमूहों तथा लोकपालों की पुरियों में भ्रमण कर रहा था, उस समय व्यवहार-समूहों के प्राप्त होने से मुझे अपनी आतिवाहिकता विस्मृत हो गयी थी-मैं अपने सूक्ष्म शरीर को भूल गया था। जब ऐसी स्थिति आ गयी, तब मैं उस महाकाश में दूसरों के साथ व्यवहार करने में प्रवृत्त हुआ। परंतु मेरा रूप ऐसा चंचल था कि वहाँ मुझे कोई देख नहीं पाता था। उस समय न तो मुझे सूर्य, चन्द्रमा तथा इन्द्र आदि देख पाते थे और न देवता, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर एवं अप्सराओं की ही मुझ पर दृष्टि पड़ती थी। वे लोग मेरी बात तक नहीं सुन पाते थे। यह सब सोचकर किसी के हाथ बिके हुए सत्पुरुष की भाँति मैं मोह में पड़ गया-किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। इसके बाद मैंने सोचा, 'मैं तो सत्यकाम हूँ। जो भी संकल्प करूँगा- सत्य होगा', यह बात ध्यान में आते ही मैंने संकल्प किया-'ये देवतालोग मुझे देखें'। ऐसा संकल्प होते ही उस देवलोक में मेरे सामने रहने वाले सभी देवता मुझे तत्काल देखने लगे, जैसे नगर में आये हुए इन्द्रजालमय देवताओं के घरों में मेरा सब व्यवहार चलने लगा। मैं अपने यथोचित आचार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji shefmeh Library Jammu Collection

अपने यथोचित आचार का पालन करता हुआ निःसंकोच वहाँ रहने लगा। जिन लोगों को मेरे वृत्तान्त का ज्ञान नहीं था, उनमें से जिन्होंने सर्वप्रथम मुझे अपने आँगन में आविर्भूत हुआ देखा, उन लोगों ने पृथ्वी से ही मेरी उत्पत्ति की कल्पना करके मुझे 'पार्थिव वसिष्ठ' कहा-फिर इसी नाम से लोक में मेरी प्रसिद्धि हुई। जो लोग आकाश में रहते थे, उनमें से जिन महानुभावों ने मुझे आकाश में भगवान् सूर्यदेव की किरणों से प्रकट हुआ देखा, उन्होंने लोक में 'तैजस् वसिष्ठ' नाम देकर मुझे प्रसिद्ध किया तथा जिन आकाशवासी सिद्धों ने वायु से मेरा प्राकट्य देखा, उन्होंने मुझे 'बात वसिष्ठ' की संज्ञा दी तथा जिन मुनीश्वरों ने मुझे जल से उठते देखा, उन्होंने मुझे 'वारिवसिष्ठ' नाम दिया। इस प्रकार दृष्टिभेद से मेरी यह जन्म परम्परा कल्पित हुई है। तभी से लोक में कहीं पार्थिव, कहीं जलमय, कहीं तैजस् और कहीं पर मारूत वसिष्ठ नाम से विख्यात हुआ।

इस तरह कहीं आकाश आदि पंचभूतरूप से स्फुरित होने पर भी मैं एकमात्र चिन्मय स्वभाव वाला निराकार, चेतनाकाश रूप परब्रह्म ही हूँ तथा तुम लोगों के बीच उपदेश आदि व्यवहार की सिद्धि के लिये स्थूल आकार से युक्त भी दिखायी देता हूँ। जैसे जीवन्मुक्त तत्वज्ञानी पुरुष सारा व्यवहार करता हुआ भी ब्रह्मकाश रूप से ही स्थित रहता है, उसी तरह विदेह मुक्त भी ब्रह्मरूप से ही स्थित होता है। किंतु जिस पुरुष की बुद्धि संसार वासनावश देह और इन्द्रिय के द्वारा भोगने योग्य अयोग्य वस्तु- विषयभोग में आसक्त होती है तथा जिसके मन में कभी मोक्ष की आकांक्षा नहीं जाग्रत् होती, वह मन्दबुद्धि मानव मनुष्य नहीं, कुत्ता अथवा कीड़ा है (क्योंकि वह भोगरूपी गन्दी चीज को पसंद करता है, मनुष्य तो वही है जो मोक्ष के लिये प्रयत्नशील है)। श्रीराम ! चित्त का सर्वथा शान्त एवं शीतल होना मोक्ष है तथा उसका संतप्त होना ही बन्धन है। ऐसे मोक्ष में भी लोगों की रुचि नहीं हो रही है। अहो ! यह संसार कितना मूढ़ है ? यह मानव-समुदाय स्वभाव से ही विषयों के वशीभूत है। इसीलिये एक दूसरे की स्त्री और धन का अपहरण करने के लिये लोलुप हो रहा है। जब वह मुमुक्षु होकर शास्त्रों के अर्थ का विचार करता है, तब यथार्थ दृष्टि (तत्व-साक्षात्कार) प्राप्त करके सदा के लिये सुखी हो जाता है।

चौसठवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पैंसठवाँ सर्ग

ब्रह्मरूपता का प्रतिपादन

श्रीवाल्मीकि जी कहते हैं-भरद्वाज ! जब वसिष्ठ मुनि इतना उपदेश दे चुके, तब वह दिन बीत गया। भगवान् सूर्य अस्ताचल को चले गये। इधर उस राजसभा के लोग सायंकालिक कृत्य के हेतु स्नान करने के लिये मुनिवर वसिष्ठ को नमस्कार करके उठ गये तथा रात बीतने पर सूर्यदेव की किरणों के उदय के साथ ही फिर उस सभा में लौट आये।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-कर्तव्य का ज्ञान रखने वाले रघुनन्दन ! यह मैंने तुमसे पाषाणोपाख्यान कहा। इस आख्यायिका से जो विज्ञान दृष्टि प्राप्त होती है, उससे यही समझना चाहिये कि सारी सृष्टियाँ चेतनाकाश में ही स्थित हैं। हाँ जो कुछ भी दीखता है, उसे चिन्मय ब्रह्म ही समझना चाहिये। जैसे स्वप्न-दर्शन के समय जो नगर प्रकट होता है, वह अपने चिन्मय स्वरूप से कदापि भिन्न नहीं है। वस्तुतः यह सृष्टि नहीं है, एकमात्र चैतन्य शक्ति ही विराज रही है। जैसे सोने के आभूषणों में सोना ही सत्य है, अंगूठी आदि के नाम और आकार नहीं। जैसे स्वप्न में निर्विकार चिति शक्ति ही पर्वत के रूप में प्रकाशित होती है, उसी तरह निराकार ब्रह्म ही सृष्टि के रूप में भासित हो रहा है। ब्रह्म के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यह सारा दृश्य चिन्मय आकाशरूप, अनन्त, अजन्मा और अविनाशी ब्रह्म ही है। वस्तुतः सहस्त्रों महाकल्पों में भी न तो यह उत्पन्न होता है और न इसका नाश ही होता है। पुरुष चेतनाकाशरूप ही है। यह जो आप पुरुषोत्तम बैठे हैं, चेतनाकाशरूप ही हैं। मैं भी अजर-अमर चेतनाकाश ही हूँ और ये तीनों लोक चेतनाकाश ही हैं। 'मैं अद्वितीय चिन्मात्र ब्रह्म ही हूँ। ये शरीर आदि मेरे नहीं हैं।' जब ऐसा बोध प्राप्त हो जाता है, तब जन्म-मरण आदि अनर्थ कहाँ रह सकते हैं ? मैं 'चिन्मात्र निर्मल ब्रह्म हूँ।' इस आत्मानुभव को जो स्वयं ही कुतर्कों द्वारा खण्डित करते हैं, वे आत्महत्यारे हैं। उन्हें विपत्तियों के महासागर में डूबना पड़ता है। 'मैं आकाश से भी स्वच्छ, नित्य अनन्त एवं निर्विकार चेतन हूँ, ऐसी दशा में क्या मेरा जीना, क्या मरना अथवा क्या सुख-दुःख भोगना है ? मैं परमाकाशस्वरूप चेतन ब्रह्म हूँ। ये शरीर आदि मेरे कौन होते हैं ?' इस तरह विद्वानों के द्वारा अन्तःकरण में किये गये अनुभव का जो कुतर्कों द्वारा अपलाप या खण्डन करता है, वह पुरुष

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mukesh Sharma (IAS) Jammu Collection

आत्मघाती है। उसे बारंबार धिक्कार है। 'मैं स्वच्छ चेतनाकाश हूँ।' जिस पुरुष का यह स्पष्ट अनुभव नष्ट हो गया हो, उसे विद्वान पुरुष जीवित शव समझते हैं अर्थात् वह जीता हुआ भी मुर्दे के समान है। 'मैं ज्ञानस्वरूप परब्रह्म परमात्मा हूँ। देह और इन्द्रियाँ मेरी कौन होती हैं।' इस प्रकार अपरोक्ष ज्ञान के द्वारा जिसने आत्मा को उपलब्ध कर लिया है, अविद्या आदि मलों से रहित उस विशुद्ध पुरुष को मृत्यु आदि आपदाएँ विमोहित नहीं कर पातीं। जो शुद्ध चिन्मय परमात्मा का आश्रय लेकर सुस्थिर हो गया है, उस महापुरुष को मानसिक चिन्ताएँ उसी तरह मोहित नहीं कर पाती हैं, जैसे महान् पत्थर को तुच्छ बाण। जिन पुरुषों ने अपने चिन्मय स्वभाव को भुलाकर नश्वर शरीर पर ही आस्था बाँध रखी है, उन्होंने वास्तव में सुवर्ण को त्यागकर भस्म को ही सोना मानकर ग्रहण किया है। 'मैं देहरूप ही हूँ' इस भावना से पुरुष के बल, बुद्धि और तेज का नाश हो जाता है तथा 'मैं चेतन आत्मा हूँ' इस दृढ़ निश्चय से उसके बल, बुद्धि और तेज की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। 'मैं न तो छेदा जाता हूँ और न जलाया ही जाता हूँ; क्योंकि मैं वज्र के समान सुदृढ़ चिन्मय परमात्मा हूँ। मेरी अपने चिन्मय स्वरूप में ही नित्य स्थिति है। मैं देहाभिमानी नहीं हूँ।' जिस पुरुष को ऐसा निश्चय हो गया है, उसके लिये यमराज भी तृण के समान तुच्छ है। चेतन पुरुष इस जगत् में जिस-जिस वस्तु को जिस रूप से देखता या समझता है, उस वस्तु का उसी रूप से अनुभव करने लग जाता है। यह अनुभवसिद्ध बात है। इसलिये ये सब पदार्थ विषामृत (विष को अमृत) दृष्टि से देखे गये के समान स्थित हैं। अतः कोई भी वस्तु चेतन आत्मा से भिन्न नहीं है, यह बात पूर्णतः सिद्ध हो चुकी है।

पैसठवाँ सर्ग समाप्त

छियासठवाँ सर्ग

परमपद के विषय में विभिन्न मतवादियों के कथन की सत्यता

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! 'यह जगत् परमात्मा का स्वप्न है, इसलिये चिन्मय है, ब्रह्माकाशरूप है, अतः सब कुछ ब्रह्म ही है।' इस दृष्टि से सबको सत्य जगत् का ही अनुभव होता है, असत्य का नहीं। 'पुरुष चिन्मय एवं अकर्ता है। अव्यक्त प्रकृति से महत्तत्व आदि के क्रम से इस जगत् की उत्पत्ति होती है।' ऐसी दृष्टि रखने वाले आचार्य महानुभावों के मत को भी सत्य ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

समझना चाहिये; क्योंकि इस भाव का चिन्तन करने से ऐसा ही अनुभव होता है। 'यह सारा दृश्य ब्रह्म का विवर्त है-ब्रह्म ही इस दृश्यजगत् के रूप में भासित हो रहा है' ऐसी बातें कहने वाले महापुरुषों का मत भी सत्य ही है; क्योंकि इस तरह आलोचना करने पर इसी रूप में समस्त पदार्थों का अनुभव होता है। इसी प्रकार जो लोग 'सम्पूर्ण जगत् को परमाणुओं का समूहरूप' ही मानते हैं, उनका वह मत भी सत्य ही है; क्योंकि उन्हें जिस-जिस पदार्थ के विषय में जैसा-जैसा अनुभव हुआ, उस-उस अनुभव के अनुसार की गयी उनकी कल्पना भी ठीक ही है। 'इस लोक या परलोक में जो कुछ जैसा देखा गया है, वह वैसा ही है। उसे न सत् कह सकते हैं, न असत्। वास्तविक तत्व इन दोनों से विलक्षण एवं अनिर्वचनीय है।' इस तरह का जो प्रौढ़ आध्यात्मिक मत है, वह भी सत्य ही है; क्योंकि वे वैसा ही अनुभव करते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि 'बाह्य- पृथ्वी आदि चार भूतों का समुदाय ही जगत् है। इससे भिन्न अन्तर्यामी आत्मा की सत्ता नहीं है।' ऐसा कहने वाले जो नास्तिक हैं, परंतु वे भी अपनी दृष्टि से ठीक ही कहते हैं; क्योंकि वे इन्द्रियातीत आत्मा को अपने स्थूल देह में ही ढूँढ़ते हैं, परंतु उसे पाते नहीं हैं। क्षणिक विज्ञानवादी जो प्रत्येक पदार्थ को क्षणभंगुर बताते हैं, उनका वह मत भी युक्ति संगत ही है; क्योंकि सभी पदार्थों का निरन्तर परिवर्तन एवं उलटफेर देखने में आता है।

परमपद सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त है। इसलिये उसके विषय में जो जैसा कहता है, वह सभी सम्भव है। 'जैसे घड़े के भीतर बंद हुआ गौरैया घड़े का मुँह खोल देने पर उड़कर बाहर चला जाता है, वैसे ही देह के भीतर बंद और देह के बराबर आकारवाला जीव कर्मक्षय हो जाने पर उड़कर परलोक में चला जाता है।' इस मत को मानने वाले लोगों की कल्पना भी उनके मतानुसार ठीक है। इसी तरह म्लेच्छों का यह मत है कि 'जीव देह के बराबर ही बड़ा है। उसे ईश्वर ने उत्पन्न किया है। जहाँ शरीर गाड़ा जाता है, वह वहीं रहता है। ईश्वर कालान्तर में उसके विषय में विचार करते हैं। तब उन्हीं की इच्छा से उसकी मुक्ति होती है अथवा वह स्वर्ग या नरक में डाला जाता है।' आत्मसिद्धि के लिये की हुई म्लेच्छों की यह कल्पना उनके भाव के अनुसार ठीक कही जा सकती है और उनके देशों में वह दूषित नहीं मानी जाती है। जो संत महात्मा हैं, वे 'ब्राह्मण, अग्नि, विष, अमृत, मरण और जन्म आदि में भी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji shama (IeF.S) Jammu Collection

समभाव' रखते हैं। यह भी ठीक ही है; क्योंकि विभिन्न विचारधारा के विद्वानों का जो मत है, वह सब सर्वात्मा ब्रह्म से भिन्न नहीं है। इसलिये अपने-अपने मत के अनुसार साधन करने पर उन्हें तदनुसार सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है। आस्तिकों के मत में 'जैसे यह लोक है, वैसे परलोक भी है। अतः पारलौकिक लाभ के लिये किये गये तीर्थ-स्नान और अग्निहोत्र आदि निष्फल नहीं हैं।' ऐसी जो उनकी भावित भावना है, उसे सत्य ही समझना चाहिये। 'यह जगत् न तो शून्य है और न अशून्य ही है, किंतु अनिर्वचनीय है' इस प्रकार मानने वाले वादियों का मत भी असत्य नहीं है; क्योंकि सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की जो माया शक्ति है, वह न तो शून्य रूप है और न सत्य ही है, किंतु उसे अनिर्वचनीय समझना चाहिये। इसलिये जो अपने जिस निश्चय में दृढ़तापूर्वक स्थित है, वह यदि बालोचित चपलता या मूढ़ता के कारण उस निश्चय से हटे नहीं तो उसका फल अवश्य पाता है।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि सबसे पहले श्रेष्ठ वस्तु के विषय में विद्वानों के साथ विचार कर ले, विचार के बाद जो निश्चित सिद्धान्त स्थापित हो, उसी को ग्रहण करे। दूसरे जैसे-तैसे निश्चय को नहीं ग्रहण करना चाहिये। शास्त्रों के स्वाध्याय और सद्व्यवहार की दृष्टि से जिस देश में जो भी उत्तम बुद्धि से युक्त हो, उस देश में वही विद्वान् या पण्डित है। अतः सद्ज्ञान की प्राप्ति के लिये उसी का आश्रय लेना चाहिये। उत्तम शास्त्र के अनुसार व्यवहार करने वाले तथा तत्वज्ञान के लिये परस्पर वाद-विवाद करने वाले सत्पुरुषों में जो सबको आल्हाद प्रदान करने वाला और अनिन्दनीय हो, वही श्रेष्ठ है। अतः उसी का आश्रय लेना चाहिये। रघुनन्दन ! प्रत्येक जाति में कुछ ऐसे नामी विद्वान् होते हैं, जिनके सूर्यतुल्य प्रकाश से दिन प्रकाशित एवं सार्थक होते हैं। जो मूढ़ हैं, वे सभी मोहरूपी महासागर में संसार चक्र के आवर्तन-प्रत्यावर्तन से ऊपर नीचे होते हुए तृण के समान बहते रहते हैं

छियासठवाँ सर्ग समाप्त

सढ़सठवाँ सर्ग

तत्वज्ञानी संतों के शील-स्वभाव का वर्णन तथा सत्संग का महत्व

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! जो विवेकी पुरुष संसार से विरक्त हो परमपद परब्रह्म परमात्मा में विश्राम कर रहे हैं, उनके लोभ, मोह आदि शत्रु

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma Archives (RMS) Jammu Collection

स्वतः नष्ट हो जाते हैं। वे तत्वज्ञानी महात्मा न कोई अनुकूल वस्तु पाकर हर्षित होते हैं, न किसी के प्रतिकूल बर्ताव से कुपित होते हैं। न आवेश में आते हैं, न आहार का संग्रह करते हैं, न लोगों से उद्विग्न होते हैं और न स्वयं ही लोगों को उद्वेग में डालते हैं। वे किसी भी बुरी-अच्छी कामना से हठपूर्वक कष्टसाध्य वैदिक कर्मों के अनुष्ठान में नहीं प्रवृत्त होते हैं। उनका आचरण मनोरम और मधुर होता है। ये प्रिय और कोमल वचन बोलते हैं। चन्द्रमा की किरणों के समान अपने संग से अन्तःकरण में आह्लाद प्रदान करते हैं। कर्त्तव्यों का विवेचन करते और क्षणभर में ही विवाद का निर्णय कर देते हैं। उनका आचरण दूसरों को उद्वेग में डालने वाला नहीं होता है। वे सबके प्रति बन्धुभाव रखते हैं और बुद्धिमानों के समान समुचित बर्ताव करते हैं। बाहर से उनका आचरण सबके समान ही होता है, किंतु भीतर से वे सर्वथा शीतल होते हैं। तत्वज्ञानी महात्मा शास्त्रों के अर्थों में बड़ा रस लेते हैं। जगत् में क्या उत्तम, अधम अथवा भला-बुरा है, इसका वे अच्छी तरह ज्ञान रखते हैं तथा प्रारब्धवश जो कुछ प्राप्त हो जाय, उसका अनुसरण करते हैं। लोक और शास्त्र के विरुद्ध कार्यों से वे सदा विरत रहते हैं। सज्जनों के बीच रहने या सत्संग करने के रसिक होते हैं। घर पर आये हुए याचकरूपी भ्रमर का वे प्रफुल्ल कमलों के समान अपने ज्ञान का अनावृत सुगंध फैलाकर तथा उत्तम आश्रय एवं सुखद भोजन देकर आदर-सत्कार करते हैं। जनता को अपनी ओर खींचते हैं और लोगों के पाप-ताप हर लेते हैं। वर्षाकाल के मेघों की भाँति वे स्निग्ध एवं शीतल होते हैं। धीर स्वभाव वाले ज्ञानी पुरुष राजाओं के नाशक और देश को छिन्न-भिन्न करने वाले व्यापक जन-क्षोभ को उसी प्रकार रोक देते हैं, जैसे पर्वत भूकम्प को।

ज्ञानी पुरुष चन्द्रमण्डल के समान सुन्दर अंग वाली गुणशालिनी पत्नी के समान विपत्ति काल में उत्साह एवं धैर्य प्रदान करते हैं और सम्पत्ति के समय सुख पहुँचाते हैं। साधु पुरुष वैशाख मास या वसन्त के समान अपने सुयशरूपी पुष्प से सम्पूर्ण दिशाओं को निर्मल बनाते, उत्तम फल की प्राप्ति में कारण बनते और कोकिल के समान मीठी वाणी बोलते हैं। आपदाओं में, बुद्धिनाश के अवसरों पर, भूख-प्यास, शोक-मोह तथा जरा-मरण-इन छः ऊर्मियों के प्राप्त होने पर, व्याकुलता की दशा में तथा घोर संकट आने पर साधु पुरुष ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modherji Sharma (I.F.S) Jammu Collection

सत्पुरुषों के आश्रयदाता होते हैं। काल-सर्प से भरे हुए अत्यन्त भयंकर संसार-सागर को सत्संगरूपी जहाज के बिना दूसरी किसी नौका से पार नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त उत्तम गुणों में से एक भी गुण जिसमें उपलब्ध हो, उसके उसी गुण को सामने रखकर उसमें दीखने वाले सब दोषों की उपेक्षा करके उसका आश्रय लेना चाहिये। सारे कामों को छोड़कर सत्पुरुषों का संग करे; क्योंकि यह सत्संगरूपी कर्म निर्बाध रूप से इहलोक और परलोक दोनों का साधक होता है। किसी समय कहीं भी सत्पुरुष से अधिक दूर नहीं रहना चाहिये। विनय युक्त बर्ताव करते हुए सदा साधु पुरुषों का सेवन करना चाहिये; क्योंकि सत् पुरुष के समीप जाने वाले मनुष्य का उसके शान्ति आदि प्रसरणशील उत्तम गुण अनायास ही स्पर्श करते हैं, जैसे सुगन्धित पुष्प वाले वृक्ष के निकट जाने से उसके पुष्प-पराग बिना यत्न के ही सुलभ हो जाते हैं।

सढ़सठवाँ सर्ग समाप्त

अढ़सठवाँ सर्ग

सत् का विवेचन और देहात्मवादियों के मत का निराकरण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जो वस्तु शास्त्रीय विचार से उपलब्ध होती है तथा जिसकी सत्ता हेतुओं और युक्तियों द्वारा सिद्ध है, वही सत् कही गयी है। शेष सभी वस्तुएँ प्रतीतिमात्र हैं। जो तीनों कालों में कभी हुई ही नहीं, वह वस्तु सत् कैसे हो सकती है ? मूर्ख की दृष्टि में इस संसार का जैसा स्वरूप है, उसे वही जानता है। हमलोगों को उसका अनुभव नहीं है। मृगतृष्णा की नदी के जल में जो मछली रहती है, वही उसकी मिथ्या चंचल लहरों के आवर्तन-प्रत्यावर्तन को जानती होगी। तत्वज्ञानी की दृष्टि में तो केवल एकमात्र चेतनाकाश ही बाहरभीतर, तुम-मैं इत्यादि सबकुछ बनकर प्रकाशित हो रहा है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! जिन लोगों का यह पक्ष (मत) है कि 'जब तक जीवे, तब तक सुख से जीवे, मृत्यु अप्रत्यक्ष नहीं है। जो शरीर जलकर भस्म होकर बुझ गया, उसका पुनः आगमन कहाँ से हो सकता है ?' उनके लिये इस संसार में दुःख-शान्ति का क्या उपाय है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! संवित् का जो-जो निश्चय होता है, वह अपने भीतर अखण्डरूप से उसी का अनुभव करती है। इस बात का सब लोगों को प्रत्यक्ष अनुभव है। अन्तःकरण में नित्य-निरन्तर जैसी बुद्धि का उदय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha (I.F.S) Jammu Collection

होता है, मनुष्य वैसा ही हो जाता है। यदि संवित् के बोध से पुरुष दुखी हुआ है तो जब तक यह विरुद्ध बोध रहेगा, तब तक जीव दुःखमय बना रहेगा। यह जगत् सच्चिदानन्दरूप ब्रह्माकाश का स्फुरणमात्र ही है, ऐसी भावना दृढ़ हो जाय तो वह दुःख का बोध कैसे हो सकेगा ? जो जगत् वस्तुतः कूटस्थ अद्वितीय चेतनाकाशरूप है, उस जगत् से किस को कैसे दुःख का बोध हो सकता है। जीव की जैसी दृढ़ भावना होती है, उसी के अनुसार वह सुखी या दुःखी होता है, ऐसा निश्चय है। जिनके मत में चेतन से शरीरों की कल्पना हुई है, वे श्रेष्ठ पुरुष वन्दनीय हैं; परंतु जिनके मत में शरीर से चेतन की उत्पत्ति होती है, उन नराधमों से बाततक नहीं करनी चाहिये।

अढ़सठवाँ सर्ग समाप्त

उनहत्तरवाँ सर्ग

सबकी चिन्मात्ररूपता का निरूपण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! चिन्मात्र ही पुरुष है, वही इस प्रकार नाना रूपों में अवस्थित है। उस चिन्मात्र परम पुरुष परमात्मा के सिवा दूसरी किस वस्तु की सत्ता यहाँ सम्भव हो सकती है ? मेरे सारे अंग चूर-चूर होकर परमाणु के तुल्य हो जायँ अथवा बढ़कर सुमेरुपर्वत के समान विशाल हो जायँ, इससे मेरी क्या क्षति हुई अथवा क्या वृद्धि हुई ? क्योंकि मेरा वास्तविक स्वरूप तो सच्चिदानन्दमय है। हमारे पितामह आदि के शरीर मर गये, किंतु उनका चैतन्य तो नहीं मरा है। यदि वह भी मर जाता तो मृत आत्मा वाले उनका तथा हम लोगों का फिर जन्म नहीं होता। किंतु पुरुष अविनाशी चिन्मय ही है। वह आकाश के समान नित्य है। उसका कभी नाश नहीं होता है 'मैं नष्ट होता हूँ या मरता हूँ' इस तरह का जो शोक है, वह सर्वथा व्यर्थ है। इसलिये न तो मरण दुःखरूप है और न जीवित रहना सुखरूप। यह सब कुछ नहीं है। केवल अनन्त चेतन परमात्मा ही इस तरह स्फुरित हो रहा है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! आदि और अन्त से रहित परम तत्व परमात्मा का भलीभाँति ज्ञान हो जाने पर उत्तम पुरुष कैसा-किन-किन लक्षणों से सम्पन्न हो जाता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! जिसे ज्ञेय वस्तु परमात्मा का भलीभाँति ज्ञान हो गया है, ऐसा जीवन्मुक्त श्रेष्ठ पुरुष कैसा होता है तथा वह जीवनपर्यन्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LTB) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

कैसे स्वभाव से युक्त हो किस आचार का पालन करता रहता है, यह बताया जाता है, सुनो। ऐसा पुरुष यदि जंगल में रहता हो तो वहाँ पत्थर भी उसके मित्र हो जाते हैं। वन के वृक्ष बन्धु-बान्धव और वन्य मृगों के बच्चे उसके स्वजन बन जाते हैं। यदि वह विशाल राज्य में रहता हो तो वहाँ जनसमुदाय से भरा हुआ स्थान भी उसके लिये शून्य-सा ही हो जाता है। विपत्तियाँ बड़ी भारी सम्पत्तियाँ हो जाती हैं और नाना प्रकार के व्यसन ही उसके लिये सुन्दर उत्सव बन जाते हैं। उसके लिये असमाधि भी समाधि है। दुःख भी महान् सुख ही है। वाणी का व्यवहार भी मौन है और कर्म भी अकर्म ही है। वह जाग्रत-अवस्था में रहकर भी सुषुप्ति में ही स्थित है (क्योंकि निर्विकल्प आत्मा में उसकी सुदृढ़ स्थिति है)। वह जीवित रहता हुआ भी देहाभिमान से शून्य होने के कारण मृत के तुल्य है। वह समस्त आचार-व्यवहार का पालन करता है, तो भी कर्तृत्व के अभिमान से रहित होने के कारण कुछ भी नहीं करता है। वह रसिक होकर भी अत्यन्त विरक्त है। करुणारहित होकर भी सबको अपना बन्धु मानकर सबके प्रति स्नेह रखता है। निर्दय होकर भी अत्यन्त करुणा से भरा हुआ है। और स्वयं तृष्णा से शून्य होकर भी पराये हित के लिये तृष्णा रखता है। उसके आचार का सभी अभिनन्दन करते हैं तथापि वह सभी आचारों से बहिष्कृत है। शोक, भय और आयास से शून्य होने पर भी वह दूसरों का दुःख देखकर शोकयुक्त-सा दिखायी देता है। उस पुरुष से जगत् के प्राणियों को कभी उद्वेग नहीं प्राप्त होता तथा वह भी उनसे कभी उद्विग नहीं होता। संसार में (ब्रह्मानन्द का) रसिक होकर भी वह संसारी मनुष्यों से अत्यन्त विरक्त होता है। वह प्राप्त हुई वस्तु का न तो अभिनन्दन करता है और न अप्राप्त वस्तु की अभिलाषा ही। अनुकूल और प्रतिकूल पदार्थ का अनुभव होने पर भी वह हर्ष और विषाद में नहीं पड़ता। वह दुखी पुरुष के पास दुखियों की ही चर्चा करता है, सुखी के पास सुख की ही कथा कहता है और स्वयं सभी अवस्थाओं में हार्दिक दुःख-सुख से पराजित न होकर सदा एक-सा स्थित रहता है। शास्त्रविहित शुभकर्म से भिन्न दूसरा कोई निषिद्ध कर्म उसे किंचिन्मात्र भी अच्छा नहीं लगता। महात्मा पुरुषों का यह स्वभाव ही है कि वे शास्त्रविपरीत चेष्टा कभी नहीं करते हैं।

जीवन्मुक्त महात्मा न तो कहीं आसक्त होता है और न किसी-से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection

अकस्मात् विरक्त ही होता है। वह धन के लिये याचक होकर नहीं घूमता है और भीतर से वीतराग होकर भी ऊपर से रागयुक्त-सा जान पड़ता है। शास्त्र के अनुसार व्यवहार करते हुए क्रमशः जो सुख-दुःख प्राप्त होते हैं, उनसे वस्तुतः वह अछूता रहता है तो भी उनका स्पर्श-सा करता जान पड़ता है। वह उन सुख-दुःखों से हर्ष और विषाद के वशीभूत नहीं होता। अवश्य ज्ञानी महात्मा दूसरों के सुख से प्रसन्न और दूसरों के ही दुःख से दुखी देखे जाते हैं, परंतु वे भीतर से अपने समतापूर्ण स्वभाव का परित्याग कभी नहीं करते; क्योंकि वे संसाररूपी नाट्यशाला के नट हैं। अपने कहे जाने वाले पुत्र आदि जितने पदार्थ समूह हैं, वे सब वस्तुतः पानी के बुलबुलों के समान मिथ्या हैं। अतः तत्वदर्शी महात्मा का उनके प्रति (मोहरूप) स्नेह नहीं होता है। पर वह ज्ञानी महात्मा स्नेहरहित होने पर भी घनीभूत स्नेह से आर्द्र हृदय वाले पुरुष की भाँति यथायोग्य वात्सल्य-वृत्ति का दर्शन कराता हुआ व्यवहार करता है। वह बाहर से समस्त शिष्टाचारों के पालन में संलग्न रहकर भी भीतर सर्वथा शान्त बना रहता है। उसके अन्तःकरण में किसी प्रकार का आवेश नहीं होता तो भी बाहर से कभी-कभी आविष्ट-सा दिखायी देता है।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-मुनीश्वर ! अश्व के सदृश ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए कलुषित चित्त वाले दम्भी मनुष्य भी तो झूठमूठ में अपनी तपस्या की दृढ़ता दिखलाने के लिये ऐसे लक्षणों से युक्त हो सकते हैं। फिर, कौन सच्चे महात्मा हैं और कौन दम्भी, इसे कौन जान सकता है ?

उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

सत्तरवाँ सर्ग

ज्ञानी महात्मा के लक्षणों का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! ये लक्षण सत्य हों या असत्य, किंतु ऐसे लक्षणों से युक्त स्वरूप का होना हर हालत में अच्छा ही है (इन लक्षणों से सम्पन्न पुरुष दम्भी हो तो भी आदरणीय ही है)। जो वेदार्थ-तत्व-परमात्मा के ज्ञाता हैं, उनमें तो ये गुणसमूह स्वाभाविक अनुभव के बल से ही प्रतिष्ठित रहते हैं। वे जीवन्मुक्त पुरुष वीतराग तथा क्रिया के फलों में आसक्ति से शून्य होते हुए ही रागयुक्त पुरुषों के समान चेष्टा करते हैं। वे दुखियों को देखकर सहसा करुणा से भर जाते हैं। चित्तरूपी दर्पण में प्रतिविम्बित हुए समस्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

दृश्यप्रपंच को कपटभूमि के समान असत् माना जाता है, वैसे ही वे इस जगत को असत् समझते हैं।

जिन्हें ज्ञेय पदार्थ–परमात्मा का भलीभाँति ज्ञान हो चुका है और जो उन ज्ञानी महात्माओं के समान ही पवित्र अन्तःकरण वाले हैं, वे ही उन महात्माओं के महत्व को ठीक–ठीक जान पाते हैं, जैसे साँप के पदचिन्हों को साँप ही समझ पाते हैं। श्रेष्ठ पुरुष तो अपने सर्वोत्तम भाव को छिपाये फिरते हैं। भला, गाँव और नगरों के धनों से जिसका खरीदा जाना असम्भव है, ऐसी कौन–सी चिन्तामणि बाजार में बिकने के लिये आती है ? उन तत्वज्ञानी महात्माओं का भाव अपने गुणों को छिपाये रखने में ही होता है, दूसरों के सामने प्रदर्शन करने में नहीं; क्योंकि वे वासना से शून्य, द्वैतहीन एवं अभिमान से रहित होते हैं। श्रीराम ! उन महात्माओं को एकान्तसेवन, असम्मान, बुरी स्थिति तथा साधारण लोगों द्वारा की गयी अवहेलना–ये सब चीजें जैसा सुख पहुँचाती हैं, वैसा सुख उन्हें बड़ी–बड़ी समृद्धियाँ भी नहीं दे सकतीं।

तत्वज्ञान का सारभूत जो निरतिशय आनन्द है, वह एकमात्र अपने अनुभव से ही जानने योग्य है, उसे दूसरे को दिखाया नहीं जा सकता। तत्वज्ञ पुरुष भी उसे नहीं देखता, केवल स्वप्रकाशरूप से उसका अनुभव करता है। 'लोग मेरे इस गुण को जानें और मेरी पूजा करें' ऐसी इच्छा अहंकारियों को ही होती है। जिनका चित्त अहंकार से मुक्त है, उनके भीतर ऐसी इच्छा का उदय नहीं होता है। रघुनन्दन ! आकाश में गमन आदि जो क्रियाफल हैं, वे तो मन्त्र और औषध के प्रभाव से अज्ञानियों के लिये भी सिद्ध (सुलभ) हो जाते हैं। कोई ज्ञानी हो या अज्ञानी, जो लक्ष्यसिद्धि के लिये जैसा क्लेश सहन करने में समर्थ हो, वह वैसा ही फल कर्मानुसार अवश्य प्राप्त कर लेता है। चन्दन की सुगन्ध की भाँति विहित और निषिद्ध कर्मों का फल सभी के हृदय में अपूर्व रूप से विद्यमान है। समय पाकर प्रकट हुए उस फल को उसका अधिकारी जीव अवश्य पाता है। 'यह आकाशगमन आदि फल कुछ भी नहीं है–अत्यन्त तुच्छ है अथवा मन का भ्रममात्र है, या अधिष्ठानभूत चिदाकाशमात्र है'–जिसे ऐसा ज्ञान हो गया है, वह वासनाशून्य तत्वज्ञ पुरुष कर्म की बवंडर रूप उन मन्त्रौषधि–साध्य क्रियाओं का साधन कैसे करेगा ? उस महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

करने से ही। किसी भी प्राणी में उसका किंचिन्मात्र भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता। इस पृथ्वी पर, स्वर्ग में अथवा देवताओं के यहाँ भी कहीं कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो उस उदारचेता परमात्म ज्ञानी को लुभा सके। जिसके लिये सारा संसार ही तिनके के समान तुच्छ हो गया है, जिसमें रजोगुण का लेश भी नहीं है, उस ज्ञानी महात्मा के लिये एकमात्र परमात्मा से भिन्न दूसरी कौन-सी वस्तु उपादेय हो सकती है ?

लोकसंग्रह के लिये जिसने जगत् के व्यवहारों का पूर्ण रूप से निर्वाह किया है, जिसका हृदय परिपूर्ण (निष्काम) है, वह मननशील जीवन्मुक्त पुरुष अपने स्वरूप में ज्यों-का-त्यों स्थिर रहकर यथाप्राप्त विशष्टाचार का अनुसरण करता है। जो भीतर से नित्य शान्त और मौनी है तथा जिसकी मनोभूमि सत्वगुणमय हो गयी है, वह महात्मा भरे हुए महासागर के समान सब ओर से पूर्ण होता है तथा उसका आशय गम्भीर होने के साथ ही सुस्पष्ट होता है। तत्वज्ञानी पुरुष अमृत से भरे हुए सरोवर के समान अपने आत्मा में स्वयं ही आनन्द की हिलोरें लेता है तथा निर्मल एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान दूसरों को भी आह्लाद प्रदान करता है।

'यह सारा विश्व भ्रममात्र है, मिथ्या इन्द्रजाल है'-ऐसे दृढ़ निश्चय के कारण ज्ञानी पुरुष इच्छाओं से सर्वथा रहित हो जाता है। ज्ञानी महात्मा अपने शरीर के सर्दी-गरमी आदि दुःखों को भी इस तरह अवहेलनापूर्वक देखता है, मानो वे दूसरे के शरीर में हों। केवल परहित के लिये फल-फूल धारण करने वाली लता के समान धीर वृत्ति से करुणा के कारण उदार वृत्ति से वह महात्मा दुखी प्राणियों का परिपालन करता है। वह संसार से विरक्त होकर ऐसी सारभूत स्थिति को अपनाता है, जिसमें जलमात्र ग्रहण करके भी संतोष माना जाता है। साधारण लोगों के समान यथाप्राप्त व्यवहार का सम्पादन करता हुआ वह महात्मा चराचर भूतों के ऊपर (परब्रह्म परमात्मा में) ही स्थित होता है।

कोई महात्मा पर्वत की गुफा को ही घर मानकर उसमें रहता है। कोई पवित्र आश्रम में निवास करता है। कोई गृहस्थाश्रमी होता है और कोई प्रायः इधर-उधर घूमता रहता है। कोई भिक्षाचर्या से निर्वाह करता है, कोई एकान्त में बैठकर तपस्या करता है, कोई मौनव्रत धारण किये रहता है, कोई परमात्मा के ध्यान में संलग्न होता है, कोई प्रख्यात पण्डित होता है, कोई श्रुतियों का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (L.E.S) Jammu Coll

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

श्रोता होता है, कोई राजा, कोई ब्राह्मण और कोई मूढ़ के समान स्थित रहता है, कोई सिद्धि गुटिका, अंजन और खड़ग आदि से सिद्ध होकर आकाशगामी बना रहता है, कोई शिल्पकला से जीवन निर्वाह करता है, कोई पामर के समान रूप धारण किये रहता है। कोई सारे वैदिक आचारों का परित्याग कर देता है तो कोई कर्मकाण्डियों का सरदार बना रहता है, किसी का चरित्र उन्मत्तों के समान होता है और कोई सन्यास-मार्ग का आश्रय लेता है।

शरीर आदि और चित्त आदि कुछ भी पुरुष का स्वरूप नहीं है। केवल चेतन-तत्व ही पुरुष है। उसका कभी नाश नहीं होता है। यह आत्मा अच्छेद्य है-इसे कोई काट नहीं सकता। यह अदाह्य है-इसे कोई जला नहीं सकता। यह अक्लेद्य है-इसे कोई पानी से भिगो या गला नहीं सकता। यह अशोष्य है-इसे कोई सुखा नहीं सकता। यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है। तत्वज्ञ पुरुष पाताल में समा जाय, आकाश को लाँघकर उसके ऊपर चला जाय अथवा सम्पूर्ण दिशाओं में वेगपूर्वक भ्रमण करे, जिससे पर्वत आदि से टकराकर वह पिस जाय या चूर-चूर हो जाय, परंतु उसका जो चिन्मात्र स्वरूप है वह अजर-अमर बना रहता है, वह कभी नष्ट नहीं होता; क्योंकि वह आकाश के समान अनन्त सदा शान्त, अजन्मा और कल्याणमय परमात्मस्वरूप ही है।

सत्तरवाँ सर्ग समाप्त

इकहत्तरवाँ सर्ग

वैराग्य और आत्मबोध के लिये प्रेरणा

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! शम, दम आदि साधन से सम्पन्न पुरुष को चाहिये कि वह उद्वेग छोड़कर प्रतिदिन गुरु-शुश्रूषा आदि नियमपूर्वक करता हुआ इस महारामायण नामक शास्त्र का विचार करे। यह शास्त्र इहलोक और परलोक दोनों के लिये हितकर तथा कल्याणकारी है। आप सब सभासद् भाँति-भाँति की असम्भावना एवं विपरीत भावना आदि को अपने हृदय में स्थान दिये हुए हैं। इसलिये मिल-जुलकर अभ्यास न करने से आप लोगों का जाना हुआ भी यह आत्मज्ञान भूल जाने के कारण अनजाना-सा हो रहा है। जो जिस वस्तु को चाहता है, वह उसके लिये यत्न करता है। वह यदि थककर उस प्रयत्न से निवृत्त न हो जाय तो अपनी अभीष्ट वस्तु को अवश्य प्राप्त कर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेता है। इस शास्त्र के सिवा कल्याण का सर्वश्रेष्ठ साधन आज तक न तो हुआ है और न आगे होगा ही। इसलिये परम बोध की प्राप्ति के लिये इसी का बारंबार विचार एवं मनन करना चाहिये। इस शास्त्र का भलीभाँति विचार करके स्थित हुए पुरुष को स्वयं ही उत्तम परमात्म तत्व का बोध एवं अनुभव होने लगता है। वरदान और शाप की भाँति यह विलम्ब से अपना फल नहीं प्रकट करता। यह परमात्मबोध संसार-मार्ग के श्रम को हर लेने वाला है। जो न तो पिता ने, न माता ने और शुभ कर्मों ने ही अब तक सिद्ध किया है, वही आपका परम कल्याण यह महारामायण-शास्त्र तत्काल सिद्ध कर देगा, यदि आप अभ्यासपूर्वक इसे भलीभाँति जान लें। साधुशिरोमणे ! यह संसार-बन्धनमयी विषूचिका (हैजा) बड़ी भयंकर है और दीर्घकाल तक टिकी रहने वाली है। आत्मज्ञान के सिवा दूसरी किसी दवा से यह कभी शान्त नहीं होती।

मनुष्यो ! आपात मधुर, शून्य एवं निस्सार विषयों का आस्वादन करते हुए तुम लोग खाली हवा चाटने वाले सर्पों के समान आकाशरूपी अनन्त संसार की ओर पैर न बढ़ाओ। बड़े कष्ट की बात है कि तुम्हारे दिन केवल लौकिक व्यवहार में ही इस तरह बीत रहे हैं कि वे कब आये और कब गये, इसका तुम्हें पता ही नहीं लगता। इन्हीं बीतते हुए दिनों के द्वारा तुम लोग केवल अपनी मौत की राह देख रहे हो। लोगो ! तुम मान और मोह से रहित होकर तत्वज्ञान के द्वारा उत्तम मोक्ष-पद को प्राप्त करो। अधम संसार-गति में न पड़ो। आत्मज्ञान के द्वारा बड़ी-से-बड़ी आपत्तियों का मूलोच्छेद कर दिया जाता है। जो आज ही मरणरूपी आपत्ति से बचने का उपाय नहीं करता है, वह मूढ़ रुग्णावस्था में, जब मौत सिर पर सवार हो जायगी, तब क्या करेगा ?

आदरणीय सभासदो ! मैं न तो मनुष्य हूँ, न गन्धर्व हूँ, न देवता हूँ, न राक्षस ही हूँ, अपितु आप लोगों का सूक्ष्म संविद्रूप विशुद्ध आत्मा हूँ और इस प्रकार उपदेश देने के लिये यहाँ बैठा हूँ। आप लोग भी शुद्ध चैतन्यमात्र ही हैं। अत्यन्त निर्मल चिन्मात्रस्वरूप मैं आप लोगों के पुण्य से ही यहाँ उपस्थित हूँ। आपकी आत्मा से भिन्न नहीं हूँ। जब तक मौत के काले दिन नहीं आ रहे हैं, तब तक सब वस्तुओं में वैराग्यरूपी पहला सार पदार्थ समेटकर रख लो। जो इस शरीर में रहते हुए ही नरकरूपी रोग की चिकित्सा नहीं कर लेता, वह औषधशून्य प्रदेश (परलोक) में पहुँचकर उस रोग से पीड़ित होने पर क्या

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (Ex. Sr. Journ.) Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

करेगा ? जब तक समस्त पदार्थों की ओर से वैराग्य नहीं प्राप्त होता, तब तक उन पदार्थों की वासना क्षीण नहीं होती है। महामते ! आत्मा का पूर्णरूप उद्धार करने के लिये वासना को क्षीण करने के सिवा दूसरा कोई उपाय कभी सफल नहीं होता। पदार्थों की सत्ता होती है, तभी उनमें अनुकूलता बुद्धि होने से वासना होती है। किंतु ये पदार्थ तो खरगोश के सींग आदि की भाँति हैं ही नहीं। (फिर उनमें वासना बनी हरने का क्या कारण है ?) जगत् के सभी पदार्थ तभी तक मनोहर प्रतीत होते हैं, जब तक कि उनके स्वरूप पर सम्यक् विचार नहीं किया जाता। विचार करने पर उनकी सत्ता ही सिद्ध नहीं होती। अतः वे जीर्ण-शीर्ण होकर न जाने कहाँ विलीन हो जाते हैं।

इकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

बहत्तरवाँ सर्ग

मोक्ष के स्वरूप तथा जाग्रत और स्वप्न की समता

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-निर्मल आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर जो लौकिक दुःख और सुख से रहित अक्षय परमानन्दरूपता प्राप्त होती है, वही मोक्ष है। वह शरीर के रहने या न रहने पर भी समान रूप से ही उपलब्ध होता है। उसी मोक्ष-सुख में सबका पूर्ण विश्राम हो।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा-स्वप्न और जाग्रत-दोनों एक समान कैसे हो सकते हैं ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! स्वप्न देखने वाला पुरुष स्वप्न में संसार में स्वप्नगत बन्धुजनों के साथ विहार करने के पश्चात् वहाँ मृत्यु को प्राप्त होता है। स्वप्न शरीर की निवृत्ति ही स्वप्नद्रष्टा की मृत्यु है। स्वप्न-संसार में मरकर जीव जब स्वप्नगत प्राणियों से वियुक्त होता है, तब इस जाग्रत्-संसार में जागता है और निद्रा से मुक्त कहलाता है। जो स्वप्न का द्रष्टा है, वह स्वप्न-संसार में अनेकानेक सुख-दुःख दशाओं का, मोह का तथा रात और दिन के उलट-फेर का अनुभव करके वहाँ मरता-स्वप्न शरीर का त्याग करता है। फिर निद्रा टूट जाने के कारण निद्रा के अन्त में वह यहाँ शयन स्थान में मानो नया जन्म लेता है और जाग्रत-शरीर से सम्बद्ध होता है। तदनन्तर 'ये स्वप्न में देखे गये बन्धु-बान्धव सत्य नहीं थे' इस विश्वास से युक्त होता है। जैसे स्वप्न देखने वाला पुरुष स्वप्न के संसार में मृत्यु को प्राप्त होकर अर्थात् स्वप्न शरीर का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (P. S.) Jammu Collection

त्याग करके दूसरे जाग्रन्मय स्वप्न को देखने के लिये पुनः जन्म लेता या जाग्रत-शरीर से सम्बद्ध होता है, उसी तरह जाग्रन्मय स्वप्न देखने वाला पुरुष जाग्रत् संसार में मृत्यु को प्राप्त होकर दूसरे जाग्रन्मय स्वप्न को देखने के लिये पुनर्जन्म ग्रहण करता है। जैसे एक जाग्रत में मरकर दूसरे जाग्रत् में उत्पन्न हुआ पुरुष पूर्व जाग्रत प्रपंच के विषय में 'वह स्वप्न एवं असत् था' ऐसी प्रतीति को नहीं प्राप्त होता, उसी तरह एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न को प्राप्त हुआ पुरुष बाद वाले स्वप्न में स्वप्न की प्रतीति को नहीं प्राप्त होता, वरं जाग्रत की ही प्रतीति ग्रहण करता है। यह उसकी बुद्धि की मूढ़ता का ही परिणाम है। जैसे बाद वाले स्वप्न में जाग्रत् की प्रतीति भ्रममात्र ही है, वैसे ही पूर्व-जाग्रत् को स्वप्न और असत् न समझना भी मूढ़ता ही है। स्वप्नद्रष्टा पुरुष स्वप्न में भी फिर अन्य स्वप्न-दर्शन का अनुभव करता हुआ उस स्वप्न को ही जाग्रत रूप से ग्रहण करता है। इस प्रकार जाग्रत् और स्वप्न नाम की दो अवस्थाओं में जीव न तो स्वतः उत्पन्न होता है और न मरता ही है। किंतु उन-उन जाग्रत् और स्वप्न के शरीरों में अभिमान् करता और छोड़ता है। यही उसका जन्म लेना और मरना है। स्वप्न-द्रष्टा जीव स्वप्न में मरकर इस जागरण अवस्था में जागा हुआ कहलाता है और इस जाग्रत में मरा हुआ जीव अन्यत्र जाग्रतरूप स्वप्न में जागा हुआ कहा जाता है (इस तरह स्वप्न और जाग्रत् की समता ही सिद्धि होती है)। एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न में स्थिति होने पर दूसरा स्वप्न ही पहले स्वप्न की अपेक्षा वर्तमान होने से जाग्रत समझा जाता है। इसी प्रकार जाग्रत् में मरकर दूसरे जाग्रतरूप स्वप्न में जगे हुए पुरुष के लिये पहली जाग्रदवस्था अवश्य ही स्वप्न हो जाती है। इस दृष्टि से जाग्रत् और स्वप्न-दोनों ही अतीत घटना के समान हैं। वर्तमान काल में दोनों में से किसी की भी सत्ता नहीं है। इस कारण वे परस्पर एक दूसरे के उपमान और उपमेय बने हुए हैं। वर्तमान अवस्थाओं में तो स्वप्न भी जाग्रत् के समान ही प्रतीत होता है और बीता हुआ जाग्रत् भी स्वप्न के समान ही है। वास्तव में दोनों ही असत् हैं। केवल चिदाकाश ही स्वप्न और जाग्रत के रूप में स्फुरित होता है। सौभाग्यशाली रघुनन्दन ! जैसे स्वप्न में दीखने वाले नगर, पर्वत और गृह आदि चिन्मय आकाश ही हैं, उसी तरह जाग्रत् में भी ये नगर, पर्वत आदि चिदाकाशमय ही हैं। स्वप्न और जाग्रत्-दोनों अन्त में विकल्प शून्य, शान्त, अनन्त, एक चिन्मात्र ही शेष रह जाते हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mrs. Kusum Sharma (I.A.S) Jammu Collection

इस प्रकार तत्व के विषय में वादियों का विवाद व्यर्थ है।

बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

तिहत्तरवाँ सर्ग

चिदाकाश के स्वरूप का प्रतिपादन तथा जगत् की चिदाकाश-रूपता का वर्णन

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा–ब्रह्मन ! चेतनाकाश रूप जो परब्रह्म है, वह कैसा है ? यह कृपापूर्वक फिर बताइये। आपके मुखारविन्द से इस अमृतमय उपदेश को सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–रघुनन्दन ! जैसे समान रूपरंगवाले दो जुड़वें भाइयों के व्यवहार के लिये दो पृथक नाम रखे जाते हैं, वैसे ही अखण्ड सच्चिदानन्दघन स्फटिक शिला में प्रतिविम्ब की भाँति स्थित हुए जो दो प्रपंच हैं, उनके व्यवहार के लिये दो नाम रख दिये गये हैं–जाग्रत और स्वप्न। जैसे दो जलों में भेद नहीं होता, उसी प्रकार इन जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओं में भी वास्तविक भेद नहीं है; क्योंकि वे दोनों ही एक, निर्मल चिन्मात्र आकाशरूप ही हैं। जिसमें सब कुछ लीन होता है, जिससे सबका प्रादुर्भाव होता है, जो सर्वरूप है, जो सब ओर व्याप्त है तथा जो नित्य सर्वमय है, उस परब्रह्म परमात्मा को ही चेतनाकाश या चिदाकाश कहते हैं। स्वर्ग में, भूतल में, बाहर–भीतर तथा दूसरे में जो सम नामक ज्योतिः स्वरूप परमतत्व प्रकाशित हो रहा है, वह चिदाकाश कहलाता है। सम्पूर्ण विश्व जिसका अंग है, जिस नित्य सर्वव्यापी परमात्मा में यह मूर्त और अमूर्त जगत् उसी तरह प्रकट है, जैसे मजबूत तागे में माला, उसी को चिदाकाश कहते हैं। सुषुप्ति और प्रलयरूप निद्रा की निवृत्ति होने पर जिससे विश्व प्रकट होता है और जिसकी विक्षेपशक्ति के शान्त होने पर उसका लय हो जाता है, उस परब्रह्म परमात्मा को चिदाकाश कहते हैं। जिसके उन्मेष और निमेष से (पलकों के उठाने और गिराने से) जगत् की सत्ता के लय और उदय होते हैं, जो स्वानुभवरूप होकर अपने हृदय में स्थित है, उसे चेतनाकाश समझना चाहिये। श्रुति ने 'यह नहीं, यह नहीं' इस प्रकार निषेध मुख से सबका निराकरण करके जिसे उस निषेध की अवधि बताकर उसके तटस्थ लक्षण का सर्वथा निर्णय कर दिया है तथा जो सदा सब कुछ होकर भी वस्तुतः कुछ नहीं है, वह सर्वाधार परमात्मा चिदाकाश कहलाता

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (K.K.S) Jammu Collection

है। बाह्य और आभ्यन्तर विषयों से युक्त यह इस तरह दृष्टिगोचर होने वाला सारा विश्व जैसा है, उसी रूप में चेतनाकाशमय ही है। अतः इन्द्रियों से विषयों का अनुभव करते हुए भी अन्तःकरण को वासनाशून्य रखकर तत्वज्ञान द्वारा शुद्ध-बुद्ध एकमात्र सच्चिदानन्दघनरूप हो सुषुप्ति की भाँति स्थित रहना चाहिये। वासना शून्य शान्तचित्त हो जीवित रहते हुए भी पाषाण के समान मौन धारण कर सच्चिदानन्दघन परमात्मा में निमग्न रहते हुए ही बोलना, चलना और खाना-पीना चाहिये।

पृथ्वी आदि से रहित जो स्वप्न-जगत् है और पृथ्वी आदि से युक्त जो जाग्रतकाल का जगत् है-ये दोनों ही प्रकार के जगत् चिदाकाशरूप हैं। जैसे स्वप्न आदि अवस्थाओं में केवल चिन्मयमणि (आत्मा) ही विभिन्न वस्तुओं के रूप में भासित होती है, उसी प्रकार इस जाग्रत्कालिक दृश्यप्रपंच के रूप में केवल चिदाकाश ही स्फुरित हो रहा है। इस चिदाकाश का जो स्वानुभवैकगम्य निराकार रूप है, वही भूतल आदि के रूप से दृश्य नाम धारण करके प्रतीति का विषय हो रहा है।

तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

चौहत्तरवाँ सर्ग

राजा विपश्चित् के शत्रुओं के आक्रमण से राजपरिवार और प्रजा में घबराहट

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! इस भूतल आदि के रूप से दृश्य की प्रतीति होना ही अविद्या है। जिन अज्ञानियों के अन्तःकरण में अविद्या विद्यमान रहती है, उनकी उस अविद्या का (ज्ञान के बिना) कोई अन्त नहीं है, जिस प्रकार ब्रह्म का कोई अन्त नहीं है। इस विषय मैं तुम्हें एक कथा कहता हूँ, सुनो। लोकालोक पर्वत की किसी स्वर्णमयी-सी शिला के भीतर विद्यमान चिदाकाश के एक कोने में किसी प्रदेश के अन्तर्गत एक त्रिलोकी बसी हुई है, जो इसी त्रैलोक्य के समान है और वहाँ भी यहीं की व्यवस्था के अनुसार देश, काल आदि की मर्यादा नियत है। वहाँ जम्बू द्वीप नामक एक भूभाग है, जो सम्पूर्ण भूमण्डल का भूषणरूप है। वहाँ की समतल भूमि पर जहाँ गमनागमनादि व्यवहार सुगमतापूर्वक होते हैं, एक नगरी थी, जिसका नाम था ततमिति। उस नगरी में विपश्चित् नाम से विख्यात कोई राजा थे, जो अपनी विद्वता के कारण श्रेष्ठ सभासदों से सुशोभित अपनी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

राजसभा में विशेष शोभा पाते थे। राजा विपश्चित् बड़े स्वाभिमानी नरेश थे। उनकी बुद्धि सदा ब्राह्मणों के हित-चिन्तन में लगी रहती थी।

इसीलिये वे देवताओं में ब्राह्मण स्वरूप अग्निदेव का ही भक्तिपूर्वक पूजन करते थे। अग्नि के सिवा दूसरे किसी देवता को वे नहीं मानते थे। राजा विपश्चित् मन्त्रियों में चार प्रधान थे, जो चारों दिशाओं में स्थित चार महासागरों के समान मर्यादा-पालन के लिये नियुक्त थे। समुद्र मत्स्यों और मगरों के समूह से युक्त होते हैं तो वे मन्त्री हाथी और घोड़ों के समुदाय से सम्पन्न थे। समुद्रों में आवर्ती (भँवरों) का व्यूह होता है तो इनके मन्त्री लोग सैनिकों के चक्रव्यूह से युक्त थे। समुद्र तरंगमालाओं से व्याप्त होते हैं तो मन्त्री लोग सैनिकों की श्रेणियों से घिरे हुए थे। समुद्रों में निष्कम्प पर्वतों के बल की अधिकता होती है तो ये मन्त्रीलोग अडिग सैनिकों की शक्ति से सर्वथा बढ़े-चढ़े थे।

एक दिन उनके पास पूर्वदिशा से एक चतुर गुप्तचर आया। उसने एकान्त में राजा से मिलकर यह बड़ी भयंकर बात सुनायी-महाराज ! पूर्वदिशा के सामन्त की ज्वर से मृत्यु हो गयी है, मानो वे शत्रु विजयी आपकी आज्ञा पाकर यमराज को जीतने के लिये गये हैं। उनके मरने के बाद आपके दूसरे सामन्त दक्षिण देश के नायक सब ओर से पूर्व और दक्षिण दिशा को जीतने के लिये आगे बढ़े, परंतु शत्रु ने पूर्व और पश्चिम की सेनाओं द्वारा आक्रमण करके उन्हें भी मार डाला। उनके मरने पर आपके तीसरे सामन्त जो पश्चिम दिशा के शासक थे, अपनी सेना दक्षिण और पूर्व दिशाओं को शत्रुओं से छुड़ाने के लिये प्रस्थित हुए, इतने में ही शत्रुओं ने पूर्व और दक्षिणदेश के राजाओं के साथ मिलकर बीच रास्ते में ही युद्ध करके उन्हें भी स्वर्गलोक में पहुँचा दिया।'

वह गुप्तचर इस प्रकार कह ही रहा था कि एक दूसरा गुप्तचर प्रलय काल के जल-प्रवाह की भाँति राजमहल में प्रविष्ट हुआ। वह बड़ी उतावली के साथ आया था और अत्यन्त पीड़ित जान पड़ता था।

उस नये गुप्तचर ने कहा-देव ! उत्तरदिशा के सेनाध्यक्ष पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया है। वे बाँध टूटने पर वेग से बहने वाले जल-प्रवाह की भाँति सेना-सहित इधर ही आ रहे हैं।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! यह सुनकर राजा ने अब समय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu Collection

बिताना व्यर्थ समझा और अपने सुन्दर महल से बाहर निकलते हुए इस प्रकार कहा-'सामन्त-नरेशों और मन्त्रियों को कवच आदि से सुसज्जित करके शीघ्र बुलाया जाय, शस्त्रागार खोल दिये जायँ, भयानक अस्त्र-शस्त्र बाँटे जायँ, समस्त योद्धा अपने-अपने शरीर में कवच बाँध लें, पैदल सैनिक शीघ्र तैयार होकर आ जायँ, सेनाओं की तुरंत गणना की जाय, श्रेष्ठ सैनिकों को प्रोत्साहित किया जाय, सेनापतियों की नियुक्ति हो और सब ओर गुप्तचर भेजे जायँ।'

राजा विपश्चित् रोषावेश में भरे थे। वे बड़ी उतावली के साथ जब इस प्रकार आज्ञा दे रहे थे, उसी समय द्वारपाल भीतर आकर महाराज को प्रणाम करके घबराये हुए स्वर में बोला।

द्वारपाल ने कहा-देव ! उत्तर दिशा के सेनापति दरवाजे पर खड़े हैं और जैसे कमल सूर्य के दर्शन की इच्छा करता है, उसी प्रकार वे राजाधिराज महाराज का दर्शन चाहते हैं।

राजा बोले-द्वारपाल ! जल्दी जाओ। पहले सेनापति को ही भीतर ले आओ। उनसे सब वृत्तान्त सुनकर मैं यह जान सकूँगा कि दिगन्तों में कैसी घटना घटित हुई है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-राघव ! राजा के इस प्रकार आदेश देने पर द्वारपाल ने सेनापति को तत्काल भीतर भेजा। राजा ने देखा, उत्तर दिशा के नायक सामने खड़े होकर मुझे प्रणाम कर रहे हैं। इनका सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया है। प्रत्येक अंग में बाण धँसे हुए हैं, जोर-जोर से साँस चल रही है, मुँह से खून निकल रहा है, निर्बल होने पर ही ये शत्रु से पराजित हुए हैं। सेनापति ने लगातार साँस लेते हुए भी धैर्यपूर्वक अपने शरीर की व्यथा को सहन करके महाराज को प्रणाम किया और शीघ्रता पूर्वक इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

सेनाध्यक्ष बोले-देव ! आपके तीन दिशाओं के सामन्त बहुत बड़ी सेना के साथ मानो आपकी आज्ञा से ही यमराज को जीतने के लिये यमलोक को चले गये। तदनन्तर उनके देशों की रक्षा आदि करने में मुझे असमर्थ समझकर बहुत से भूपाल मेरा पीछा करते हुए बलपूर्वक यहाँ आ पहुँचे हैं। महाराज के इस राज्य में शत्रुओं की बहुत बड़ी सेना आ गयी है। अब जो कर्त्तव्य प्राप्त है, उसे कीजिये। शत्रुओं को मार भगाइये। महाराज के लिये किसी पर भी विजय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshi Jammu Collection

पाना कठिन नहीं है।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! युद्धस्थल में क्षत-विक्षत होने से अत्यन्त पीड़ित हुए उत्तर दिशा के सेनानायक जिस समय उपर्युक्त बातें कह रहे थे, उसी समय सहसा दूसरा पुरुष भीतर आकर यों बोला-'नरेश्वर ! इस मण्डल के बहुत-से लोग पीपल के पत्ते की तरह काँप रहे हैं। चारों ओर शत्रुओं की बड़ी सेनाएँ खड़ी हैं। जैसे लोकालोक पर्वत के तट सारी वसुधा को घेरे हुए हैं, वैसे ही हमारे शत्रुओं ने इस भूमि को घेर लिया है। उनके हाथों में चक्र, गदा, प्रास और भालों के समूह चमक रहे हैं। पताकाओं, अस्त्र-शस्त्रों, अन्य चपल सामग्रियों से तथा योद्धाओं से युक्त रथ इधर-उधर दौड़ रहे हैं। वे उड़ने वाले त्रिपुर समूहों के समान जान पड़ते हैं।'

यों कहकर प्रणाम करके वह पुरुष तुरंत लौट गया, मानो समुद्र की लहर कोलाहल करके शान्त हो गयी हो। राजा के महल में खलबली मच गयी। उसकी दशा प्रचण्ड आँधी से व्याप्त हुए विशाल वन के समान हो गयी थी। मन्त्री, राजा, योद्धा, आज्ञाकारी सेवक, हाथी, घोड़े, रथ, स्त्रियाँ, परिचारकवर्ग और नागरिकों के समुदाय सभी घबराये हुए थे। सबने भय के कारण आत्म-रक्षा के लिये अपने हाथों में हथियार उठा लिये थे।

चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

पिचहत्तरवाँ सर्ग

राजा विपश्चित् का अग्निदेव को संतुष्ट करना

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं-रघुनन्दन ! इसी बीच में जिनके अन्तरिक्ष लोक पर दैत्यों ने आक्रमण किया हो, उन देवराज इन्द्र के समीप जैसे मुनि आते हैं, उसी प्रकार राजा विपश्चित् के पास उनके अन्य सब मन्त्री आये और इस प्रकार बोले-'देव ! हमने यही निर्णय किया है कि अब हमारे शत्रु साम, दान और भेद-इन तीनों उपायों द्वारा वश में किये जाने योग्य नहीं रह गये हैं। इसलिये उन पर दण्ड का ही प्रयोग कीजिये।

राजा बोले-अच्छा, अब आपलोग शीघ्र ही युद्ध के लिये जाइये और नगर रक्षा एवं व्यूह रचना (मोर्चाबंदी) की व्यवस्था कीजिये। मैं स्नान करके अग्निदेव का पूजन करने के पश्चात् समरांगण में आऊँगा।

ऐसा कहकर राजा ने गंगाजल से भरे हुए घड़ों द्वारा स्नान किया।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तत्पश्चात् वे अग्निशाला में गये। वहाँ शास्त्रीय विधि से अग्निदेव का आदरपूर्वक पूजन करके उन्होंने इस प्रकार विचार किया-'मैं विजय प्रदान करने वाले देवता अग्नि को यहीं अपने मस्तक की आहुति दे दूँ।'

ऐसा निश्चय करके राजा बोले-देवेश्वर अग्निदेव ! मेरा यह मस्तक आपको आहुति के रूप में समर्पित है।

आज मेरे द्वारा यह अपूर्व पुरोडाश दिया जा रहा है। भगवन् ! यदि मेरे द्वारा दी हुई मस्तक की इस आहुति से आप संतुष्ट हों तो आपके इस कुण्ड से मेरे चार शरीर प्रकट हों। वे चारों भगवान् नारायण की चार भुजाओं के समान बलवान् और शोभा से दीप्तिमान् हों। उन चार शरीरों द्वारा मैं चारों ही दिशाओं में बिना किसी विघ्न बाधा के शत्रुओं का वध करूँ। प्रभो ! मेरे मन में आपके दर्शन की इच्छा है; अतः आप मुझे दर्शन देने की भी कृपा करें।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! ऐसा कहकर उन महीपाल ने तलवार हाथ में लेकर अपने मस्तक को उसी प्रकार शीघ्र काट डाला, जैसे किसी बालक ने खेल-खेल में ही कुछ हिलते हुए कमल को तोड़ लिया हो। फिर उन्होंने अग्निदेव के उद्देश्य से कटे हुए उस मस्तक की ज्यों ही आहुति दी, त्यों ही वे नरेश अपने शरीर के साथ ही अग्नि में गिर पड़े। उस शरीर को अपना आहार बनाकर अग्निदेव ने उसे चौगुना करके उन्हें लौटा दिया। सच है, महापुरुषों के उपयोग में आयी हुई वस्तु तत्काल ही वृद्धि को प्राप्त होजाती है।

तदनन्तर वे पृथ्वीनाथ चार शरीर धारण करके अग्निकुण्ड से बाहर निकले। उस समय वे तेजःपुंज से प्रज्वलित हो रहे थे। और क्षीरसागर से प्रकट हुए तेजस्वी नारायणदेव के समान जान पड़ते थे। राजा के वे चारों शरीर सूर्य की-सी प्रभा से प्रकाशित हो रहे थे और साथ ही उत्पन्न हुए उत्तम मुकुट, आभूषण, अस्त्र-शस्त्र एवं वस्त्रों से सम्पन्न थे। कवच, शिरस्त्राण, किरीट-रत्न, कंकड़, बाजूबंद, हार और बड़े-बड़े कुण्डल के साथ ही वे चारों शरीर प्रकट हुए थे। वे सबकी रक्षा करने में समर्थ और उच्च आशय वाले थे। सबकी आकृति एक-सी थी। वे समान अवयवों से सुशोभित थे और सब-के-सब चंचल उच्चैःश्रवा के समान उत्तम अश्वों पर आरूढ़ थे। उन सबके पास सुनहरे बाणों से भरे हुए तरकस थे। वे चारों महामनस्वी थे। और सभी एक समान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

डोरी वाले धनुष लिये हुए थे। उन सबके शरीरों में सर्वथा समानता थी और वे सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न थे। वे पुरुष जिस हाथी, रथ और पर सवार होते थे, वह शत्रुओं द्वारा प्रयुक्त मन्त्र, तन्त्र, औषधि, यन्त्र तथा अस्त्र-शस्त्र आदि दोषों का लक्ष्य नहीं होता था। वे चारों चन्द्रमा की प्रभा के समान अपनी हास्य-छटा से चारों ओर प्रकाश बिखेरते थे और आहुति पाकर प्रज्वलित हुए अग्निदेव से सुन्दर विग्रहधारी चार विष्णु, चार समुद्र अथवा चार वेदों के समान प्रकट थे।

पिचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

छियत्तरवाँ सर्ग

विपश्चितों का शत्रुओं के साथ युद्ध

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी ! तदनन्तर नगर के समीप पहुँचे हुए शत्रुओं के साथ चारों दिशाओं में बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया। चारों विपश्चित् चारों ओर शत्रुओं से लोहा लेने के लिये चतुरंगिणी सेना के साथ समरांगण में जा पहुँचे। उन्होंने शत्रुओं की सेना को समुद्र के समान उमड़ती देख उसे पी जाने का विचार किया और सब ओर वायव्यास्त्र का संधान किया, उसके साथ ही पर्जन्यास्त्र को भी छोड़ा। फिर तो उनके भीषण धनुषों से बाण आदि अस्त्रों की नदियाँ बहने लगीं। साथ ही तलवार आदि की वर्षा होने लगी। उस महान् युद्ध में शत्रुओं की सेना का घोर संहार हुआ।

समस्त सैनिक, जो मरने से बच गये थे, भागने लगे। वे चारों विनश्चित् इस तरह भागते हुए शत्रुओं की सेना का पीछा करते-करते बहुत दूर चले गये। सम्पूर्ण शक्तियों से परिपूर्ण एकमात्र चेतन परमेश्वर से प्रेरित हो समान अभिप्राय वाले उन चारों वीरों ने सम्पूर्ण दिशाओं में विजय प्राप्त कर ली। जैसे नदियों के प्रवाह समुद्र तक जाते हैं, वैसे ही उन्होंने समुद्र के किनारे तक शत्रुओं का पीछा किया। दूर तक बिना विश्राम किये चलते रहने से विनश्चित् के सैनिकों के जीवन-निर्वाह और युद्ध आदि के सारे साधन प्रतिदिन छोटी-छोटी नदियों के जल की भाँति क्षीण होते गये। उनके शत्रुओं का भी यही हाल हुआ। प्रतिदिन दौड़ते हुए उनकी और शत्रुओं की सारी सेनाएँ मुमुक्षुओं के पुण्य और पाप की भाँति निरन्तर नष्ट होने लगीं। जब सारे सैनिक नष्ट हो गये, तब उनके वे दिव्यास्त्र सफल होकर आकाश में ही शान्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshi sharma (I.F.S) Jammu Collection

हो गये, जैसे जलाने योग्य ईंधन आदि का अभाव हो जाने पर आग की ज्वालाएँ स्वयं ही बुझ जाती हैं। म्यानों, तरकसों तथा रथ, घोड़े, हाथी और वृक्षसमुदाय आदि स्थानों में पड़े हुए अस्त्र-शस्त्र सायंकाल घोंसलों में छिपकर नींद लेने वाले पक्षियों के समान निश्चेष्ट हो गये। उस समय शून्यतारूपी जल से भरा हुआ निर्मल आकाश बढ़े हुए विस्तृत एकार्णव के समान जान पड़ता था। उसके अस्त्र-शस्त्र रूपी जल-जन्तु मानो शान्त होकर कीचड़ में विलीन हो गये थे। बाणरूपी जलकणों की वर्षा के कारण फैला हुआ कुहरा वहाँ से हट गया था, चक्ररूपी सैकड़ों आवर्त अब नहीं उठते थे। वहाँ निर्मल सौम्यता विराज रही थी। बादलों के वेगपूर्वक वर्षा करने से उत्तुंग तरंगों की भाँति ऊँची-ऊँची जलधाराएँ शान्त हो चुकी थीं। नक्षत्ररूपी रत्नराशि अंदर छिप गयी थी और सूर्य रूपी बडवानल उसके एक देश में विद्यमान था। सूर्य आदि के विस्तृत प्रकाश से युक्त, गम्भीर एवं प्रभापूर्ण, धूलरहित वह स्वच्छ आकाश महात्माओं के रजोगुण रहित, आत्म प्रकाश से पूर्ण, गम्भीर एवं प्रसन्न मन की भाँति शोभा पा रहा था। उन चारों विपश्चितों ने चारों समुद्रों को आकाश के छोटे भाइयों के समान देखा, जो विमल, विस्तृत एवं सम्पूर्ण दिशाओं को परिपूर्ण करके स्थित थे। ऊँची-ऊँची तरंगें, जिनमें जल-जन्तु भी ऊपर को उठ जाते थे, इस तरह नीचे गिरती थीं, मानो आकाश के टुकड़े-टुकड़े होकर नीचे गिर रहे हों। अपनी उठती हुई तरंगों द्वारा अगवानी-सी करते हुए क्षारसमुद्र के विशाल तट पर जब विपश्चित् की सेना पहुँची, तब उन्हें अपने सामने गगनचुम्बी पर्वत के शिखर पर भ्रमरों के समान काली वनपंक्ति शोभा पाती दिखायी दी, जो इलायची, लौंग, मौलसिरी, आँवला, तमाल, हिंताल और ताड़ के पत्तों के ताण्डव-नृत्य से विभक्त सी जान पड़ती थी।

छिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त

सतत्तरवाँ सर्ग

अन्योक्तियों द्वारा विशेष अभिप्राय

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-हे रामजी ! तदनन्तर वहाँ पार्श्ववर्ती मन्त्री आदि ने उन चारों विपश्चितों को उस समय भिन्न-भिन्न वन, वृक्ष, समुद्र, पर्वत, ग्राम, मेघ और वनचर दिखाये।

तत्पश्चात् उन अनुचरों ने कहा-देव ! देखिये, यहाँ युद्ध में लगे हुए

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (IT-S) Collection Orissa

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

सीमाप्रान्त के राजाओं के अस्त्र-शस्त्रों की राशियाँ चमचमा रही हैं और इनकी चतुरंगिणी सेनाएँ इधर-उधर विचर रही हैं। देखिये, देखिये, युद्ध में वीरों द्वारा सम्मुख मारे गये सहस्त्रों वीरों को विमानों पर चढ़ा-चढ़ाकर स्वर्गीय अप्सराएँ उन विमानों द्वारा आकाश में लिये जा रही हैं। जो युद्ध में सामने आये हुए योद्धा को धर्म के अनुकूल चलते हुए योग्य अवस्था में वध करता है, वही शूरवीर तथा स्वर्ग का अधिकारी है, दूसरा नहीं। महाराज ! देखिये, आकाश प्रबल मेघरूपी महासागर से भरा हुआ है। उधर दृष्टिपात कीजिये, उसने चंचल तारों के विशाल हार पहन रखे हैं। यह देखिये, इधर घने अन्धकार के समान वह नीला दिखायी देता है। उधर दृष्टि डालिये, वह चन्द्रमा की उज्जवल किरणों से धोया हुआ-सा जान पड़ता है। आकाश यद्यपि जगत् के सम्पूर्ण दोषों से पूर्ण है, फिर भी वह सदा ही अविकारी रहता है। मैं समझता हूँ इस आकाश को तत्वज्ञानी पुरुष की भाँति सर्वानर्थ शून्यता का सुख प्राप्त है। धूम, बादल, धूल, अन्धकार, सूर्य, चन्द्रमा, संध्या, तारावृन्द, विमान, गरुड़, पर्वत, देवता और असुर-इन सबके क्षोभ आकाश में ही होते हैं तो भी उनसे प्रभावित होकर यह अपने स्वभाव (निर्विकारता एवं शान्ति) का कभी त्याग नहीं करता। अहो ! जिसका आशय महान् है, उसकी स्थिति अत्यन्त उन्नत एवं विचित्र दिखायी देती है।

यह जो त्रिभुवनरूपी भवन है, इसमें काल और क्रिया-ये दो दम्पत्ति चिरकाल से रहते और इसकी रक्षा करते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे माली और मालिन फूलों से भरे हुए उपवन में रहते और उसकी देखभाल करते हैं। यद्यपि काल और क्रिया के द्वारा इस त्रिभुवन-भवन की रक्षा नहीं होती, अपितु प्रतिदिन इनके द्वारा इसके नाश की ही व्यवस्था होती रहती है तथापि आज तक नष्ट नहीं हो रहा है, यह कैसी आश्चर्यजनक माया है।

मालूम होता है आकाश वृक्ष आदि की अधिक उन्नति को रोकता है-उन्हें बहुत ऊँचा नहीं बढ़ने देता। यदि कहें कि आकाश में कोई निरोधक व्यापार है ही नहीं, फिर वह किसी की उन्नति के अवरोध का कर्त्ता कैसे हो सकता है तो वह ठीक नहीं है। यद्यपि आकाश अकर्त्ता ही है, तथापि महान् है और महान् में उसकी महिमा से ही कर्तुत्व का उदय हो जाता है। जहाँ लाखों जगत् उत्पन्न और विलीन होते हैं, उस आकाश को शून्य कहा जाता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (NFIS) Jammu Collection

शून्यतावादी के इस प्रौढ़ पाण्डित्य को धिक्कार है। समस्त प्राणी आकाश से ही उत्पन्न होते, आकाश में ही स्थिर रहते और आकाश में ही विलीन होते हैं। इसलिये शास्त्रसिद्ध ईश्वर का लक्षण आकाश में घटित होने के कारण वह ईश्वररूप ही है। जिसमें इस जगत्‌रूपी भ्रम का उदय और अस्त होता है, जो असीम होने के कारण समस्त वस्तुओं को अपने शरीर में धारण करता है और त्रिलोकीरूपी मणियों का सुविस्तृत आधार है, वह महाकाश चित्स्वरूप है और परब्रह्म ही है; ऐसा मेरा विश्वास है।

देखिये, यहाँ सुबेल पर्वत के शिखर पर निर्मल कान्तिवाली एक सुवर्णमयी शिला है, जो सारी-की-सारी सूर्य की किरणों के पड़ने से अपनी प्रभा से इस तरह उदभासित हो रही है, मानो तट तक आने वाली समुद्र की चंचल लहरों से फेंका गया बडवानल का कोई कण प्रकाशित हो रहा हो। इस पर्वतीय ग्राम की गौओं के झुंड में तुरंत खिली हुई कालिकाओं के दलों के भीतर छिपे-छिपे गुंजारव करने वाले मदान्ध भ्रमरों के दर्शन से उद्दीपित कामनावाले गिरि-गहरनिवासी पामर लोगों को भी जो आनन्द प्राप्त होता है, वह नन्दनवन में विहार करने वाले देवताओं को भी सुलभ नहीं है। इस पर्वतराज के जंगलों में बसे हुए ये गाँव अपनी शोभा और महत्ता से चन्द्रमा को भी पराजित कर रहे हैं। जिनके एक बगल में प्रकाशित मनोहर चन्द्रमण्डल मण्डन (आभूषण) का काम दे रहा है और दूसरी बगल में जल के भार से भारी हुए मेघरूपी गजराज विश्राम करते हैं; ऐसे पर्वत-तटों पर बसे हुए इन गाँवों में जो विलासलक्ष्मी होती है, वह ब्रह्माजी के वैभवशाली राज्यों में भी कहाँ सुलभ है ?

देखिये, स्फटिक मणि के खम्भों की राशियों के समान सुरम्य एवं मोटी धार से गिरने वाले निर्झर-सलिल से सुशोभित इस ग्रामगुफा में ये मोरनियाँ कैसा नृत्य कर रही हैं। जहाँ निर्झरों से झरते हुए जल का कलकल नाद फैल रहा है, ऐसे इस पर्वतीय ग्राम के कुंजों में विलासिनी मयूरियाँ और फूलों के भार से झुकी हुई लताएँ भी नाच रही हैं।

(अब मेघ के व्याज से किसी ऐसे दाता को लक्ष्य करके निम्नांकित बात कही जाती है, जो दान करते समय पात्रापात्र और गुण-अवगुण का विचार न करता हो, इसे अन्योक्ति कहते हैं-) मेघ ! तुम्हारा शील-स्वभाव श्रीमानों के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.F.S) Jammu Collection

समान है, आशय (हृदय) महान् (उदार) है। तुम आतप (संताप) को हर लेते हो। तुम्हारी आकृति से ही उच्चता और गम्भीरता व्यक्त होती है। तुम पर्वतों (अथवा राजाओं) के शिरोभूषण हो और भूतल के लिये रस के एकमात्र आधार हो। इस प्रकार तुममें बहुत से गुण हैं, परंतु यह एक ही बात हमारे हृदय को छेदे डालती है कि तुम हर्ष से वर्षा (दान) करते समय ऊसर भूमियों में, ताल-तलैयों में और वहाँ के कटीले वृक्षों में भी उसी तरह जल का विभाजन करते हो, जैसा सुन्दर उपजाऊ खेतों में किया करते हो। (योग्यता-अयोग्यता का कोई विचार नहीं करते हो)।

(अब दान देने के पूर्व दान लेने वालों के प्रति कठोर और कटुवचन सुनाने वाले दाता को लक्ष्य करके निम्नांकित बात कही जाती है, यह भी मेघान्योक्ति ही है-) जलद ! तुम प्रतिदिन समुद्र और गंगा आदि उत्तम तीर्थों की जलराशि से स्नान करते हो, ऊँचे स्थान पर बैठे हो, शुद्ध होकर वनभूमि में निवास करते और मुनियों के समान मौनव्रत का आश्रय लेते हो। यद्यपि शरत्-काल में सब कुछ लुटाकर तुम खाली हो जाते हो तो भी तुम्हारे शरीर पर अत्यन्त उत्तम उज्जवल कान्ति ही लक्षित होती है। परंतु ऐसे होकर भी जो तुम जलदान के लिये ऊपर उठकर बिजली के साथ वज्र की गड़गड़ाहट पैदा करते हो, यह क्या है ? तुम्हारा ऐसा तुच्छ आचरण क्यों होता है ?

अयोग्य स्थान में पड़ जाने पर सारी अच्छी वस्तु भी बुरी हो जाती है। देखो न, मेघरूपी दूषित स्थान को पाकर श्वेत जल भी काला हो गया है। अहो! मेघ ने जल की वर्षा की ओर उस जल से सारी पृथ्वी आप्लावित हो गयी। जैसे धनाढ्य पुरुष अपने दीन-दुखी प्रेमी को धन-दौलत से पुष्ट करते हैं, उसी प्रकार जल ने भूतल की मुर्झायी हुई खेती को हरी-भरी एवं पुष्ट कर दिया। यह कितने हर्ष की बात है।

(शूरवीर और कायर में अन्तर बताने वाली अन्योक्ति-) सिंह और कुत्ता दोनों में समानरूप से पशुता विद्यमान है। दोनों पशु जाति के ही जीव हैं परंतु मेघगर्जन आदि से होने वाले कोलाहल को सिंह और ही प्रकार से सहता है और कुत्ता और ही प्रकार से। सिंह उस कोलाहल को सुनकर मन में क्षोभ या भय का अनुभव नहीं करता। वह उपेक्षा से आँखें बंद करके सहन करता है। परंतु कुत्ता मेघ-गर्जन को सुनकर मन-ही-मन भय से काँप उठता है और भय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (HP) Jammu Collection

से ही आँखें बंद करके उस कोलाहल को सहन करता है।

(कुत्ते-जैसे स्वभाव वाले मनुष्य को लक्ष्य करके कही गयी अन्योक्ति-) सदा अपवित्र रहने वाले कुत्ते ! तू अपने प्रियजनों (सजातीय कुत्तों) के ही निकट आने पर भों-भों किया करता है। तेरा सारा समय गली-कूचों में मारे-मारे फिरने में ही व्यतीत होता है। मालूम होता है तुझे अपनी चित्तवृत्ति के ही अनुरूप मानकर किसी मूर्ख ने तुझको अपने इन दुर्गुणों की शिक्षा दे दी है। जीव के कर्मों की विषमतावश विषम जगत् की रचना करने वाले विधाता ने अपनी पुत्री देवशुनी सरमा के पुत्र रूप अपने दौहित्र कुत्ते में उसके अनुरूप सभी धर्मों का एकत्र दर्शन कराने के लिये निम्नाकिंत सब बातें एक साथ ही रच डालीं। वे सब बातें इस प्रकार हैं-अपने ही बनाये हुए कूड़े-करकट के अपवित्र गड्डे में रहना, गूह और पीब खाना, जहाँ सबकी दृष्टि पड़ती हो, ऐसी सड़कों या खुली जगहों में कुत्सित मैथुन की इच्छा तथा सबसे निन्दनीय शरीर। इन सबको विधाता ने कुत्तों के ही हवाले कर दिया।

किसी ने कुत्ते से पूछा-'तुझसे बढ़कर नीच कौन है ?' ऐसा प्रश्न करने वाले कुत्ते ने हँसकर कहा-'जो मूर्खता (अज्ञान), अपवित्र देहादि का अभिमान तथा अन्धता (विचाररूपी दृष्टि से वंचित होना)-इन दुर्गुणों का एवं अशुभ वस्तु का सेवन करता है, वह मुझसे भी अधिक नीच है।' प्रश्न करने वाले ने फिर पूछा-'तुझमें कौन-से ऐसे गुण हैं, जिसके कारण तुझे मूर्ख से अच्छा समझा जाय ?' कुत्ते ने उत्तर दिया-'शूरता, स्वाभाविक स्वामिभक्ति और धृति (थोड़े में ही संतोष कर लेने की क्षमता)-ये सुन्दर गुण जो मुझमें हैं, लाखों प्रयत्न करके ढूँढ़ने पर भी मूर्ख के पास नहीं पाये जा सकते।' कुत्ता सदा अपवित्र विष्ठा के ढेर में ही सदा रमता है, नेवले, चूहे आदि जीवित प्राणियों को भी चुपचाप खा जा है और निर्बल बकरी के बच्चे आदि को भी बिना किसी अपराध के ही काट खाता है तथा कुतिया के साथ मैथुन में प्रवृत्त होने पर सब लोग आकर उसे ढेले मारते हैं। विधाता ने संसार में बेचारे असमर्थ कुत्ते को जन्मभर दुःख भोगने के लिये ही रचा है।

(कोई अनुचर शिवलिंग पर बैठे हुए कौए की ओर राजा का ध्यान आकृष्ट करता हुआ कहता है-) शिवलिंग के ऊपर बैठकर काँव-काँव करता हुआ यह कौआ अपने आप को ही दृष्टान्तरूप से दिखाकर कहता है-'लोगो !

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Shakha (I.K.S) Jammu Collection

अधोगति में डालने वाले जितने पातक हैं, उन सबमें श्रेष्ठ है शिव-सम्पत्ति का उपभोग। इस माहन् पातक में स्थित हुए मुझ कौए को प्रत्यक्ष देखो।'

नीच कौए ! तू सदा कानों को कटु प्रतीत होने वाली काँव-काँव की आवाज किया करता है और इसके द्वारा तूने मीठी बोली बोलने वाले हंस आदि के गुणों को कवलित कर लिया है-मिटा दिया है। अब सरोवर के भीतर कीचड़ में घूमता हुआ जो तू अपनी कठोरबोली से भ्रमरों के मधुर गुंजारव को छिपाये देता है, यह मेरे सिर पर बाणों के प्रहार की-सी वेदना पैदा करता है।

कौआ सरोवर में आने पर भी जो नरकसमूह (गन्दी चीजों) को ही खाता है और कमल की नाल को छोड़ देता है, इस विषय में आपको कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये। जिसको जिस वस्तु के खाने का अभ्यास है, उसे सदा वही स्वादिष्ट प्रतीत होती है।

नाना प्रकार के वन-पुष्पों के केसर लग जाने से कौए का शरीर सफेद-सा दिखायी देने लगा। इतने से ही लोगों ने उसे हंस समझ लिया; किंतु जब उसने सड़े-गले कीड़ों मकोड़ों को निगलना आरम्भ किया, तब उसका असली रूप पहचान में आ गया-सबने जान लिया कि यह कौआ है।

कौओं के झुंड में बैठा हुआ कोकिल मौन, चेष्टा, विहार, रूप-रंग और आकार-प्रकार कौओं के साथ पूरी समानता रखने पर भी मीठी बोली के द्वारा दूर से ही पहचान लिया जाता है कि यह कौआ नहीं, रुचिर कान्तिवाला कोकिल है-ठीक उसी तरह, जैसे मूर्खों के बीच में बैठे हुए पण्डित की पहचान हो जाती है। अपनी आकृति से ही भव्य गुणों को सूचित करने वाले सभी पुरुष अनुरूप आन्तरिक चमत्कार से ही विख्यात हो जाते हैं।

भैया कोकिल ! इस समय यह मधुर कलरव करने से कोई लाभ नहीं। इससे तुम्हारा बहुमूल्य गुण नहीं प्रकट हो रहा है। किसी विशाल वृक्ष की कन्दरा के भीतर जीर्ण-शीर्ण पत्तों से ढके हुए खोखले में चुपचाप बैठे रहो। यह कर्ण-कटु काँव-काँव की रट लगाने वाले कौओं से भरा हुआ शिशिर का समय है। सखे ! इस समय यह वसन्त का उत्सव नहीं है।

यह कोयल का बच्चा अपनी माता काकी को छोड़कर जो चला गया, यह एक आश्चर्य की बात है। फिर यह काकी माँ, जो इस बच्चे को चोंच और पंजों से मार रही है, यह दूसरा आश्चर्य है। मैं इन बातों पर क्षणभर ज्यों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shyama (I.E.S.) Jammu Collection

ही सोच-विचार करने लगा, त्यों ही यह कोयल का बच्चा भी अपनी माँ के समान बढ़ने के लिये उत्साह से सम्पन्न हो गया। यह तीसरा आश्चर्य दृष्टिगोचर हुआ। वास्तव में स्वभाव-सुभग भाग्यशाली पुरुष जिस दिशा में आता है, वही उसके लिये माहात्म्यदायिनी बन जाती है

सतत्तरवाँ सर्ग समाप्त

अठहत्तरवां सर्ग

सरोवर, भ्रमर और हंसविषयक अन्योक्तियाँ

विपश्चित् सहचरों ने कहा-राजन्! देखिये, यहाँ सामने पर्वत के शिखर पर जो सुन्दर सरोवर है, उसमें कल्हार, कमल और उत्पलों की नाल के लिये ललकते हुए विचित्र कलरव करने वाले हंस आदि पक्षी सब ओर फैले हुए हैं। इससे वह सरोवर ऐसा जान पड़ता है, मानो नक्षत्र सहित आकाश ही उसमें प्रतिविम्बित हो रहा है। यह सरोवर इस पृथ्वी पर कमलासन ब्रह्माजी का गृह सा जान पड़ता है। इसमें जो सहस्त्र कमल खिले हुए हैं उनकी नालें बहुत ऊपर तक उठी हुई हैं और उनके कोश स्थलों में सुन्दर शोभा का भार लिये राजहंस बैठे हुए हैं (ब्रह्मलोक में भी यही विशेषता है)। इसके सिवा ब्रह्माजी के भवन में भ्रमरों के समान काली इन्द्रनीलमणि की चौकी पर ब्राह्मण लोग विराजमान होते हैं। इस सरोवर में काले-काले भौंरे ही इन्द्र नीलमणि की चौकी हैं। उनसे संयुक्त फूलों पर बैठे हुए पक्षियों के समूह ही ब्राह्मण-वृन्द का स्थान ग्रहण किये हुए हैं।

पवित्र-हृदय के समान निर्मल कमलों से भरा हुआ और हृदय को अत्यन्त आल्हाद प्रदान करने वाला यह स्वादिष्ट जल से परिपूर्ण सरोवर सत्संग के समान सुशोभित होता है। सत्संग भी हृदयारविन्द को पवित्र करने वाला, मन को आनन्द देने वाला, अत्यन्त सरस और मधुर होता है। हेमन्त ऋतु में सरस सारसों से युक्त यह सरोवर कुहासे से ढक जाने के कारण कुछ-कुछ दिखायी देता है। बर्फ से ढके रहने के कारण इसकी श्यामता दूर हो गयी है। यह सफेद-सा दीखने लगा है। अतएव बर्फ के बादल सा जान पड़ता है। इसके जल बिन्दुओं को छूकर बहने वालीं वायु बड़ी कठोर जान पड़ती हैं।

राजन ! जैसे यह दृश्यजगत् ब्रह्म से भिन्न नहीं है-विकार आदि से रहित ब्रह्मरूप ही है, तथापि ब्रह्म से पृथक सा प्रतीत होता है, उसी तरह इस जल में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shamsha (Trust) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

जो तरंग आदि हैं, वे जल से भिन्न नहीं हैं तो भी उससे पृथक् से स्थित हैं। हाय ! अपने ही जल से बहाये जाकर चक्राकार भँवर प्रकट करने वाले इन जलाशयों की एक के बाद दूसरी के क्रम से उठने वाली तरंग परम्परा बड़ी विषम है। (इसका दूसरा अर्थ यों समझना चाहिए) जिनका अन्तःकरण जड़ या मूढ़ है, वे अपने ही अज्ञान से संसार के प्रवाह में बहते हैं और अपने लिये शुभाशुभ कर्मों के चक्र का निर्माण करते हैं। उनके मनोरथरूपी तरंगों की परम्परा संकट में डालने वाली होती है।

जल में उत्पन्न होने वाले कमल, उत्पल आदि के संसर्ग से जीर्ण हुए सरोवर की उपमा विविध जड़ योनियों के सम्बन्ध से जर्जर हुए देहधारी जीव के मन से दी जाती है। सरोवर में कमल आदि की तथा मन में भिन्न-भिन्न योनियों के शरीरों की जर्जर-दशापर्यन्त जो तरगें (विषय-भोगों की अभिलाषाएँ) उठती हैं, उनके वेग से व्याप्त इच्छा-द्वेष आदि वृत्तियों के परिवर्तन की भाँति जो असंख्य कमल प्रकट होते हैं, उन्हें कौन गिन सकता है ?

अहो ! जड़ अथवा जल के संगम का कैसा विचित्र प्रभाव है कि मुकुलावस्था में कमल भी अपने सौन्दर्य, सौगन्ध और माधुर्यादि गुणों की दोषों की तरह गले के भीतर छिपाये रखता है तथा कुरु काँटों को सबके सामने प्रकट करके दिखाता है (यह कुसंगति का फल है)। जो गुण कमल के तन्तुओं की भाँति छिद्रयुक्त (सदोष), कमजोर, सूक्ष्म, छिपाये हुए, जड़ता से संयुक्त और अधिक होने पर भी सारहीन हों, उनसे कोई लाभ नहीं है।

भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल मेंविराजमान, सौन्दर्य-माधुर्य देवी भगवती लक्ष्मी भी शोभा के लिये ही हाथ में कमल धारण करती हैं; कमल की इससे बढ़कर प्रशंसा और क्या हो सकती है ? जो भ्रमर कमलों के मधुर मकरन्द के मद और आमोद से मतवाले हो उन्हीं कमलों पर गुंजार करते हैं, वे अन्य फूलों के रसास्वादन से संतुष्ट हुए दूसरे भौरों का मानो उपहास करते हैं।

अरे भ्रमर ! तू नाना प्रकार के फूलों के रस का आस्वादन करता हुआ समस्त पर्वतों के लता कुंजों में जो प्रतिदिन चक्कर लगाता रहता है, उससे आज तक संतुष्ट क्यों नहीं हो रहा है ? जान पड़ता है तेरा हृदय शुद्ध नहीं, दूषित है। मालूम होता है अब तक तुझे वनों से सारतत्त्व नहीं प्राप्त हुआ (तभी तो तुझ में असंतोष बना रहता है)।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

मधुप ! तू कमलकुल के मकरन्द का आस्वादन करने में प्रवीण है; अतः कमलों से भरे हुए सरोवर में ही चला जा। मकरन्द से पुष्ट हुए अपने इस शरीर को बेरों की झाड़ियों में इनके कण्टकरूपी आरों में विदीर्ण न कर।

हंस ! तुम जलकाक, बगुले और कौए आदि हिंसक जन्तुओं से भरे हुए इस तालाब में सदा अकेले न रहा करो। आपत्तिकाल में भी समान शील, अवस्था और भाषा वाले स्वजन वर्ग के साथ रहना ही अच्छा फल देने वाला होता है।

अठहत्तरवां सर्ग समाप्त

उन्यासीवां सर्ग

बगुले, जलकाक, मोर और चातक से सम्बन्ध रखने वाली अन्योक्तियाँ

अब राजा के सहचर सहचरियों ने कहा-राजन् ! देखिये, बगुला प्रायः गुणहीन होता है, तो भी इसमें एक गुण अवश्य है, यह 'प्रावृट्-प्रावृट्' कहकर सदा वर्षाकाल का स्मरण दिलाता है।

ओ बगुले ! तालाब में बैठने पर तू अपनी सफेद पाँखों से हंस सा ही जान पड़ता है, परंतु मेरी एक सलाह मान ले-जलकाकों के साथ मैत्री, प्राणि वध की क्रूरता और कर्णकटु वाणी-इन दोषों को त्यागकर तू स्पष्ट रूप से हंस बन जा। (तू अपने में रूप-रंग के साथ गुण भी हंसों के ही संचित कर।)

'इस तरह स्वार्थ के लिए लोगों का गला घोंटा जाता है' इस बात को अपने व्यवहार से दिखाता हुआ मद्गु (जलकाक) मेरा गुरु बन गया है-ऐसा कहकर दुष्ट लोग उसकी प्रशंसा करते हैं।

गर्दन ऊँची किये और सुन्दर सफेद पंख फैलाये बगुले को आकाश में उड़ता देख लोगों ने जाना कि यहाँ हंस ही आ गया, किन्तु जब वह तलैया में उतर कर कीचड़ भरे जल से मछली पकड़ने लगा तो सब लोगों को निश्चय हो गया कि यह बगुला ही है। जो बहुत समय तक अपनी अत्यन्त चपलता का परिचय दे चुके थे, वे ही बगुले जब मछलियों को पकड़ने के लिये तपस्या का ढोंग रचने लगे-तपस्वी की तरह ध्यान लगाकर बैठे; तब वहाँ इसी स्वभाव वाले धूर्तों को अन्धकार की प्रतीक्षा में ध्यान लगाकर बैठा देख तट पर खड़ी हुई एक चतुर नारी को बड़ा विस्मय हुआ।

बगुला, जलकाक और अन्यान्य हिंसक जलजन्तु सदा एक ही स्थान में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

रहते हैं तो भी मूर्ख और विद्वानों की बुद्धि समान इनकी बुद्धि का एक-दूसरे से मेल नहीं है।

वह देखिये, खंजन की चोंच में पड़ा हुआ कीट किटकिटा रहा है। यह उसके पूर्वसंचित पाप या दुर्भाग्य की पताका है जो ऊँचेस्थान में फहरा रही है।

मोर का हृदय ऊँचा और उदार होता है। वह जब इन्द्र से जल की याचना करता है, तब इन्द्र उसके उसी गुण से संतुष्ट होकर वर्षा द्वारा सारी पृथ्वी को जल से भर देते हैं।

ये मोर स्तन पीने वाले बच्चों की तरह मेघों का अनुसरण करते हैं इससे यह अनुमान होता है कि मलिन का पुत्र मलिन ही होता है।

सत्पुरुषों के हृदय की भाँति निर्मल महान् सरोवरों को छोड़कर मोर मेघ का थूका हुआ पानी क्यों पीता है ? मेरी समझ में इसका एक ही कारण है, स्वाभिमानी मयूर किसी के सामने सिर झुकाना नहीं चाहता। मेघ का पानी पीते समय उसका सिर ऊँचा रहेगा; किन्तु सरोवर का जल पीते समय उसके सामने नतमस्तक होने का भय है।

राजन् ! देखिये, जिनके पंखरूपी मेघ सुशोभित हो रहे हैं तथा जो अपने पंखों के कान्तिमान् चन्द्र चिन्ह को कम्पित कर रहे हैं, वे मोर वर्षा ऋतु के बच्चों की भाँति नाच रहे हैं।

चकित चातक ! तुम गरम में वन प्रान्त के भीतर सूखे वृक्ष के खोंखले में रहने का जो आग्रह दिखा रहे हो, इससे तुम्हारा अतयन्त अभिमान सूचित हो रहा है। यह अभिमान दावानल में जल जाने की सम्भावना से दूषित है, अतः तुम्हारे लिये सुखद नहीं हो सकता। भैया ! मेरी सलाह मानो तो कदली-वन के निकटवर्ती शीतल हरित तिनकों को चरो, नहरों के पानी पीओ और कदली-वन में विश्राम करो। (मेघ से बरसते हुए जल के सिवा दूसरे किसी जल को नहीं पीऊँगा, इस दुराग्रह को छोड़ दो।)

ओ मयूर ! यह समुद्र की जलराशि से भरे हुए पेट वाला और आकाश में ऊपर उठने की इच्छा वाला जलधर (मेघ) नहीं है। दावानल से जले हुए वन वृक्षों के खोंखले के अग्रभाग से प्रकट होने वाली धूम माला का मण्डल है, जो इस पर्वत से अभी-अभी ऊपर को उठा है।

उन्यासीवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अस्सीवां सर्ग

विपश्चितों का अग्नि से वरदान प्राप्त

सहचर कहते हैं-राजन् ! यहाँ पुष्प-परागों से विभूषित नाना प्रकार की वायु बह रही है, जो केले की कलियों के स्वच्छ गुच्छ को विकसित करने में विशेष निपुण है।

यह ताड़ का पेड़ खम्भे की तरह सीधा खड़ा है; अतः इस पर किसी का चढ़ना कठिन है। इसीलिये यह किसी याचक को किन्चित मात्र भी न तो फल देता है और न पत्ता ही। इसकी यह ऊँची आकृति भी याचकों की अभिलाषा को पूर्ण न कर सकने के कारण रूपहीन ही है-शोभा नहीं पाती है।

राजन् ! जो गुणहीन जड़ (वृक्ष अथवा उदारता आदि गुणों से रहित मूर्ख) हैं, उनके लिये राग (श्रृंगार) ही शोभावर्द्धक होता है। वह फूला हुआ पलाश का पेड़ राग-फूलों के श्रृंगार से ही वन में राजा की भाँति सुशोभित होता है।

भैया ! आओ, मैंने कुछ और ही समझा था; परंतु यह कनेर है, विकार का ही भाजन है। इसे देख मन में यह सोचकर विषाद होता है कि कहाँ से कहाँ मैं इसके पास आ गया। इसमें सुगन्ध तो नाममात्र को नहीं है। गुणहीन जन्तु की भाँति इसका अनुसरण करने से क्या लाभ होगा ?

पृथ्वीनाथ ! देखिये, कल्प वृक्षों के वन की शीतल छाया में विश्राम करते हुए ये सिद्ध और विद्याधररूप पथिक वीणा आदि वाद्यों के साथ गीत गा रहे हैं। देखिये न, वन में इस कल्पवृक्ष के एक-एक पत्ते पर देव सुन्दरियाँ विश्राम करती, गाती और हँसती हैं ?

उदार बुद्धि वाले ! ये सिद्ध, विद्याधर आदि नन्दनवन में भी वैसा आनन्द नहीं पाते हैं, जैसा कि इन शुद्ध, शान्त, नीरव वनस्थलियों में पाते हैं। ये रमणीय और निर्जन वनस्थलियाँ मुनि के विरागी चित्त और विषयी के रागी हृदय को समानरूप से आनन्द प्रदान करती हैं।

देखिये, खिले हुए चम्पा के वन जब हवा से हिलते हैं, तब जलते हुए पर्वतों के समान जान पड़ते हैं। उस अवस्था में वहाँ से दूर मँडराते हुए भ्रमर और छाये हुए मेघ धूममाला के समान प्रतीत होते हैं।

महाराज ! देखिये, क्षार समुद्र के तट का यह भूभाग उपहार हाथ में लेकर आये हुए राजाओं से भर गया है और उन सबका कोलाहल यहाँ व्याप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I F S) Jammu Collection

हो गया है, जो बड़ा भला मालूम होता है।

देव ! पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर के क्षार सागर तक इस जम्बूद्वीप में जो नरेश इस भयंकर युद्ध से जीवित बचे गये हैं, उन सब के मस्तक पर अपने चरण रखने का अनुग्रह कीजिये तथा भिन्न-भिन्न जनपदों के भूभाग की प्रत्येक दिशा में चिरकालिक रक्षा के लिये नीतिशास्त्र के अनुसार क्षमा पूर्वक योग्य व्यक्तियों को शान्त चित्त से शासन-व्यवस्था का अधिकार दीजिये। तत्पश्चात् अस्त्र-शस्त्र और अनुपम सेनाओं का बँटवारा कर दीजिये।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! तदनन्तर उन चारों विपश्चितों ने समुद्रतट की भूमि पर बैठकर राज्य का यह सारा प्रयोजन (मण्डल की सीमा बाँधने आदि का कार्य) सिद्ध किया। इतने में ही मेघमाला के समान काली रात आयी और सब ओर फैल गयी। तत्पश्चात् वे सभी विपश्चित् जो दिन का कार्य पूरा कर चुके थे, सोने के लिये अपनी शय्याओं पर आरूढ़ हुए। वे नदियों के प्रवाह की भाँति बहुत दूर समुद्र तक चले आये थे। इसलिये मन-ही-मन आश्चर्य से चकित हो इस प्रकार विचार करने लगे-'यह सब ओर फैली हुई दृश्य-जगत् की शोभा कितनी विस्तृत होगी ? इस जम्बूद्वीप के बाद खारे पानी का समुद्र है। उसके बाद प्लक्षद्वीप की भूमि है। तत्पश्चात् क्षार समुद्र से दुगुना बड़ा इक्षुरस का समुद्र है। उसके बाद कुशद्वीप है। तदनन्तर सुराका सागर है। इसी प्रकार क्रम से सात समुद्र और सात द्वीपों के बाद अन्त में क्या होगा ? फिर उसके बाद भी क्या होगा ? यह दृश्यरूपिणी माया न जाने कितनी बड़ी और कैसी होगी। इसलिये हमलोग भगवान् अग्निदेव से प्रार्थना करें। उनके वरदान से हम अनायास ही इन सम्पूर्ण दिशाओं का अन्तिम सीमा तक अवलोकन कर सकेंगे।' ऐसा सोचकर यथास्थान बैठे हुए वे सब विपश्चित एक साथ ही भगवान् अग्नि का आवाहन करने लगे। तब भगवान् अग्निदेव इन चारों के समक्ष साकार होकर प्रकट हुए और बोले-'पुत्र ! मुझ से वर माँगो।'

विपश्चित् बोले-देव ! सुरेश्वर ! पंचभूतात्मक दृश्य जगत् का अन्त देखना चाहते हैं, जहाँ तक इस देह से जाना सम्भव हो सके, वहाँ तक इस देह से, जहाँ यह न जा सके वहाँ मंत्र के प्रभाव से संस्कार युक्त किये गये इसी शरीर से, तथा जहाँ इस संस्कारयुक्त शरीर की भी गति न हो सके, वहाँ मन से जाकर हम दृश्य जगत का अन्त देखें। जो जिस रूप में मन से प्रत्यक्ष होने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharada (S) Trust Collection

योग्य तथा जानने योग्य हो उन सभी पंच भूतात्मक पदार्थों का हम दर्शन कर सकें-यह उत्तम वर आप हमें दें। प्रभो ! सिद्ध योगी अपने योग के प्रभाव से जहाँ तक जा सकते हों, वहाँ तक का मार्ग हम इसी शरीर से तै करें। जहाँ योगियों की भी पहुँच न हो, उस अगम्य दृश्य को हम मन से ही देखें। सिद्ध योगियों के गम्य मार्ग पर चलते समय हमारी मृत्यु न हो तथा जिस मार्ग में देह का रहना सम्भव न हो, वहाँ हमारा मन ही यात्रा करे।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! उनके इस प्रकार वर माँगने पर 'ऐसा ही होगा' यों कहकर अग्नि देव सहसा एक ही क्षण में अदृश्य हो गये। मानो बड़वानलरूप से समुद्र में जाने के लिये उन्हें जल्दी लग रही हो। इस तरह वर देकर अग्निदेव चले गये। तत्पश्चात् रात्रि आयी और कुछ देर ठहरकर वह भी चली गयी। इसके बाद सूर्यदेव आये। साथ ही उन विपश्चितों के हृदय में विशाल समुद्र को लाँघने की इच्छा भी आयी।

अस्सीवां सर्ग समाप्त

इक्यासीवां सर्ग

चारों विपश्चितों का समुद्र में प्रवेश और प्रत्येक दिशा में उनकी पृथक्-पृथक् यात्रा का वर्णन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम ! तत्पश्चात् प्रातःकाल मुख्य-मुख्य मंत्रियों के मना करने पर भी वे चारों विपश्चित् हठपूर्वक नीति शास्त्र के अनुसार पृथ्वी के राज्यविभाग और उनके शासन की भलीभाँति पूरी व्यवस्था करके दिगन्त के दर्शन की अतिशय उत्कण्ठा से भर गये, मानो उनके शरीर पर किसी ग्रह का आवेश हो गया हो। उस समय उनका सारा परिवार रोते हुए मुख से करुणक्रन्दन कर रहा था। उन चारों ने उन्हें ऐसा करने से रोका और स्वयं आसक्ति शून्य होने के कारण अभिमान, ईर्ष्या, लोभ, शत्रुओं के पराभव की इच्छा, राज्य, स्त्री एवं पुत्र आदि को त्याग कर वे यह कहते हुए चल दिये कि 'हमलोग समुद्र के पार जा दिगन्त का दर्शन करके अभी क्षण में लौटे आ रहे हैं।'

अग्निदेव की प्रसन्नता से प्राप्त मंत्र की शक्ति से पाँचों भूतों पर विजय प्राप्त करके वे उत्तम सिद्ध हो गये थे। अतः उस समय उन्होंने पैदल ही समुद्र में प्रवेश किया। वे चारों विपश्चित् प्रत्येक दिशा में समुद्र के भीतर प्रविष्ट होकर स्थल की ही भाँति जल में भी पैरों से ही चलने लगे। जल के भीतर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Nanaji Deshmukh Library, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha Collection

भूपृष्ठ की भाँति तरंग समूहों पर पैर रखकर अकेले ही अकेले जाने को उद्यत वे चारों विपश्चित् अपनी सेना से बहुत दूर निकल गये। वे एक-एक पग चलकर जब महासागरों में प्रवेश करने लगे, तब तट पर खड़े हुए उनके सम्बन्धी उन्हें तब तक देखते रहे, जब तक कि वे शरत्काल के आकाश में प्रविष्ट हुए मेघ खण्डों के समान अदृश्य नहीं हो गये। यद्यपि उन्हें चंचल गजराजों के समान उठी हुई तरंगमालाओं से टकराना पड़ता था, तथापि वे तटपर बने हुए पथरीले परकोटों के समान अपना धैर्य नहीं छोड़ते थे। वे चारों विपश्चित् समुद्र की जलराशि में आगे बढ़ने लगे। जल के मगर उनके सहचर (साथी) थे। वे शौर्य सम्पन्न नाकों और केकड़ों से व्याप्त भँवरों में चारों से ओर से घिर जाते थे। बीच में जाने पर बहुसंख्यक मेघों के समान रूपवाली और व्यक्ताव्यक्त किरण राशि से सुशोभित होनेवाली भ्रान्त मुक्तामणियों तथा वृक्षों की लता के समान दीखने वाली जलमय तरंगों के जलकणरूपी फूलों द्वारा वे पग-पग पर अपने शरीर को विभूषित एवं सुशोभित करते जा रहे थे।

उन चारों विपश्चित् में से जो पश्चिम दिशा का अन्त देखने के लिये प्रस्थित हुआ था, वह अपने को अमर मानने वाले एक मत्स्य के द्वारा निगल लिया गया। वह मत्स्य मत्स्यावतारधारी भगवान् विष्णु के कुल में उत्पन्न हुआ था और उसका वेग झेलम की प्रखर धार में बहने वाली नौका के समान तीव्र था। किन्तु उस मत्स्य के लिये उस राजा को पचाना बड़ा कठिन काम था। इसलिये क्षीरसागर में पहुँचकर उसने उसे उगल दिया; तब वह क्षीरसागर को लाँघकर दूर दिगन्त में चला गया।

दक्षिण दिशा का अन्त देखने के लिये चला हुआ विपश्चित् जब इक्षुरस के समुद्र में पहुँचा, तब उसके तटवर्ती यक्ष नगर में निवास करने वाली एक यक्षिणी ने, जो वशीकरण विद्या में अत्यन्त निपुण थी, उसे देखा। देखकर अपने विद्या के बल से आकृष्ट करके उसे अपना प्रेमी बना लिया।

पूर्व दिशा की चरम सीमा देखने के लिये आगे बढ़ा हुआ विपश्चित् जब गंगाजी के मुहाने पर पहुँचा, तब उसने एक मगर पर आक्रमण किया, जो उसे निगल जाने के लिये उद्यत था। उसने उस मगर को गंगा में खींचकर चीर डाला, तब गंगा ने विपश्चित् को पीछे लौटाकर कान्यकुब्ज नगर में छोड़ दिया।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उत्तर दिशा का अन्त देखने के लिये चले हुए विपश्चित् ने उत्तर कुरुदेश में श्रीउमा-महेश्वर की आराधना करके अणिमा आदि सिद्धियों को प्राप्त कर लिया। उस सिद्धि के कारण दिगन्त में मरण का भय उसे बाधा नहीं पहुँचाता था मार्ग में कितने ही मगर और जल हस्ती उसे निगलते और उगलते गये, किन्तु उस सिद्धि के प्रभाव से ही उसके शरीर को कोई क्षति नहीं पहुँची। वह बहुत से द्वीप-द्वीपान्तरों और कुल पर्वतों को लाँघता हुआ आगे बढ़ गया।

पश्चिम दिशा में गये हुए विपश्चित को, जिसकी अंगकान्ति कुश के ही समान थी, कुशद्वीप में पक्षिराज गरुड़ ने अपनी पीठ पर बिठा लिया और बड़े वेग से अनेक समुद्रों के पार पहुँचा दिया।

पूर्व दिशा वाला विपश्चित् कान्यकुब्ज देश से चलकर जब क्रौन्चदीप के एक पर्वत पर गया, तब वहाँ वन के भीतर रहने वाला कोई राक्षस उसे निगल गया। परंतु उस राजा ने राक्षस की अँतड़ियों को काटकर उसके वक्षःस्थल को विदीर्ण कर दिया।

दक्षिण दिशा की ओर गया हुआ विपश्चित् दक्ष के शाप से क्षणभर में यक्ष हो गया। फिर सौ वर्षों के बाद शाकद्वीप में उसे उस शाप से छुटकारा मिला।

उत्तर दिशा का यात्री विपश्चित् छोटे-बड़े नाले और समुद्रों को बड़े वेग से लाँघता हुआ स्वादिष्ट जल वाले महासागर के उस पार सुप्रसिद्ध सुवर्णमयी भूमि में जा पहुँचा, किन्तु वहाँएक सिद्ध शाप से शिला हो गया। तदनन्तर सौ वर्ष के बाद अग्निदेव के अनुग्रह से उस सिद्ध ने विपश्चित् को शाप से मुक्त कर दिया। इससे वह बहुत प्रसन्न हुआ।

पूर्व का यात्री विपश्चित् आठ वर्षों तक नारियल के वृक्षों से भरे हुए एक देश के निवासियों का राजा होकर रहा। वह बड़ा धर्मात्मा था। इसलिये उसे वहाँ अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी। वह नारियल के फलों से जीवन निर्वाह करने लगा। मेरुपर्वत के उत्तर एक कल्पवृक्ष का वन था, जिसमें एक अप्सरा के साथ उसने दस वर्षों तक निवास किया।

पश्चिम जाने वाला विपश्चित पक्षियों पर विश्वास जमाने, उन्हें वश में कर लेने की विद्या का मर्मज्ञ था (अतएव पहले गरुड़ ने उसे पीठ पर बिठाकर समुद्र के पार पहुँचा दिया था)। फिर वह शाल्मलिद्वीप के सुविख्यात सेमल के वृक्ष पर एक मादा पक्षी के घोंसले में उसके साथ क्रीड़ा करता हुआ कई वर्षों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

तक रहा। फिर कोमल लता वल्लरियों से अलंकृत मन्दराचल पर मन्दारवृक्षों के निकुंज भवन में मन्दरी नामवाली एक किन्नरी ने विपश्चित् की एक दिन सेवा की। तत्पश्चात् पूर्व दिशा के विपश्चित् ने क्षीरसागर-तटवर्ती वन के भीतर कल्पवृक्षों में नन्दनवन की देवियों अप्सराओं के साथ कामासक्त होकर सत्तर वर्ष व्यतीत किये।

इक्यासीवां सर्ग समाप्त

बयासीवां सर्ग

विपश्चितों के विहार का तथा जीवन्मुक्तों की सर्वात्मरूप स्थिति का वर्णन

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! जब वे सभी विपश्चित् एक चैतन्यमय थे और उन शरीर भी एक ही था, तब शरीर एक होते हुए उनकी इच्छाएँ विभिन्न कैसे हो गयीं ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-राघवेन्द्र ! जैसे स्वप्नावस्था में चित्त स्वयं अपने में ही स्वप्न-दृष्ट पदार्थों के रूप में नाना प्रकार का हो जाता है, उसी तरह एक चैतन्य घनाकाश सर्वव्यापी अखण्ड होते हुए भी मायावश भिन्न-सा बन जाता है। इसलिये जिस विपश्चित् के समक्ष जो वस्तु आयी, वह उसी में तन्मयता को प्राप्त होकर उसी के वश में हो गया। एक देश में स्थित रहते हुए भी योगी सर्वत्र व्याप्त होकर तीनों कालों में सब काम करते और सब पदार्थों का अनुभव करते हैं। दसों दिशाओं में स्थित वे विपश्चित् यद्यपि वास्तव में एक चैतन्यमय थे, तथापि उन्होंने अज्ञानवश वैसा ही व्यवहार किया, जिससे उन्हें सुख-दुख आदि की प्राप्ति हुई। जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने भूमि पर शयन किया, द्वीप-द्वीपान्तरों में सुख-दुःख का उपभोग किया, वन-श्रेणियों में बिहार किया, मरुस्थलों की यात्रा की, पर्वतमालाओं में निवास किया, सागर-कुक्षियों में भ्रमण किया, अनेक द्वीपों में विश्राम किया, मेघमालाओं से आच्छादित पर्वतशिखरों पर गुप्तरूप से वास किया, सागरमालाओं में जन्म धारण किया तथा आँधियों में, जल तरंगों में पर्वतों और समुद्रों के तटों पर एवं नगरों में विविध क्रीड़ाएँ कीं।

श्रीरामजी ने पूछा- भगवन् ! एक देश में स्थित रहते हुए भी योगी लोग चारों ओर व्याप्त होकर तीनों कालों में सम्पूर्ण कार्य कैसे करते हैं ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! इस जगत् में अज्ञानियों की दृष्टि में जो स्थूल वस्तु है, उससे हम ज्ञानियों का कोई प्रयोजन नहीं है; किन्तु ज्ञानियों की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (IPS) Jammu Collection

दृष्टि से जो चिन्मात्र वस्तु है, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। तत्त्वज्ञों की दृष्टि से चिन्मात्र सत्ता सामान्य के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। दृश्य के अत्यन्ताभाव का ज्ञान होने पर सृष्टि और प्रलय की दृष्टि का विनाश होने के पश्चात् चिन्मात्र सत्ता सामान्य में निरन्तर विश्राम को प्राप्त हुए सर्वेश्वर यहाँ सर्वदा सर्वत्व और सर्वात्मत्व ही वर्तमान है। ऐसी दशा में भला बताओ तो सही, कौन कैसे कहाँ कब और क्यों कर उसका निरोध कर सकता है ? वह सर्वव्यापी सर्वात्मा जब जहाँ जिस रूप में प्रकट होना चाहता है, तब वहाँ उसी रूप में प्रकट हो जाता है; क्योंकि उस सर्वात्मा में कौन-सी वस्तु नहीं ? तुम ऐसा समझो कि अतीत, वर्तमान आदि भविष्य, स्थूल-सूक्ष्म, दूर-निकट तथा निमेष और कल्प आदि जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब-की-सब अपने स्वरूप का त्याग किये बिना ही सत्ता सामान्य स्वरूप सर्वात्मा में सर्वदा ही वर्तमान हैं। किन्तु वास्तव में माया उल्लास को प्राप्त हुआ यह दृश्य-प्रपंच न उत्पन्न हुआ है और न निरुद्ध हुआ है; बल्कि ज्यों का त्यों स्थित है।

महाबाहु श्रीराम ! वे विपश्चित् पूर्णतया प्रबुद्ध नहीं थे, बल्कि बोध दृष्टि के मध्य में वे दोलायमान से स्थित थे। उन अर्ध प्रबुद्ध विपश्चितों में चारों ओर से नित्य मोक्ष तथा बन्धन के लक्षण दृष्टिगोचर होते थे उस पूर्वोक्त संशयग्रस्त धारणा से युक्त होने के कारणवे विपश्चित् परब्रह्म-प्राप्त योगी न थे, किन्तु धारणा से प्राप्त हुए सिद्धि वाले धारणा-योगी थे। राजीवलोचन राम ! जिन्हें परम ज्ञान की प्राप्ति हो गयी है तथा जिनमें अविद्या का लेशमात्र भी नहीं है, वे विपश्चित् यदि ऐसे ज्ञानयोगी होते तो क्या वे अविद्या की ओर दृष्टिपात करते ? वे तो अग्नि देव के वरदान से सिद्धि प्राप्त धारणा-योगी थे। उनमें अविद्या वर्तमान थी, इसी कारण आत्म विचारहीन थे। जीवन्मुक्तों का भी शरीर देहधर्म से युक्त रहता है; किन्तु उस शरीर के भीतर जो उनका चित्त है वह अचल ही रहता है अर्थात् उसमें देहधर्म नहीं व्याप्त होते । अतः जीवन्मुक्त पुरुष के शरीर को चाहे टुकड़े-टुकड़े करके काट डाला जाय अथवा उसे राज सिंहासन पर बैठाया जाय- इस प्रकार की रोने और हँसने की दोनों अवस्थाओं में उसे न तो कुछ दुःख का अनुभव होता है और न सुख का ही। जीवन्मुक्त पुरुषों का शरीर आदि आत्मस्वभाव कभी पृथक् नहीं है। इसीलिये जीवन्मुक्त पुरुष मरा हुआ भी मरता नहीं, रोता हुआ भी रोता नहीं और हँसता हुआ भी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।
Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हँसता नहीं अर्थात् वह मरणादि अवस्थओं में हर्ष शोक से युक्त नहीं होता। तथापि व्यवहारकाल में अज्ञानी और ज्ञानी जीवन्मुक्त के आचरण प्रायः एक से ही होते हैं। प्रहलाद, बलि, वृत्र आदि यद्यपि वीतराग जीवन्मुक्त ही थे पर उनके व्यवहार रागियों के से होते थे। हाँ, बन्धन तथा मोक्ष का कारण तो वासना शून्यता ही है।

बयासीवां सर्ग समाप्त

तिरासीवां सर्ग

मरे हुए विपश्चितों के संसार भ्रमण का वर्णन

श्रीरामजीन ने पूछा–मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर वे विपश्चित् उन दिगन्तों में तथा द्वीपों, सागरों काननों और पर्वत–भूमियों में जाकर क्या करते हुये निवास करते रहे ?

श्रीवसिष्ठजीने कहा–वत्स राम ! उनमें से एक विपश्चित् क्रौन्चद्वीप के सीमा–भूत पर्वत के पश्चिमी तटपर एक हाथी द्वारा दाँतों एवं गण्ड स्थलों से उस पर्वत की शिला पर कमल की तरह पीस डाला गया। दूसरे विपश्चित् को जिसका शरीर क्षत–विक्षत हो गया था, एक राक्षस ने आकाश मार्ग से ले जाकर समुद्रवर्ती बडवानल में झोंक दिया, जिससे वह वहीं जलकर भस्म हो गया। तीसरे को एक विद्याधर इन्द्र सभा में ले गया। वहाँ उसने इन्द्र को प्रणाम नहीं किया, जिससे इन्द्र ने कुपित होकर उसे शाप दे दिया। उस शाप से वह जलकर भस्म हो गया। चौथा कुशद्वीप की सीमा पर स्थित पर्वत की तलहटी में बहने वाली नदी के कछार में बड़ी सावधानी से जा रहा था, परंतु किसी महाबली मगर ने उसके आठ टुकड़े कर दिये, जिससे वह मर गया। इस प्रकार वे चारों भूपाल (विपश्चित्) दिगन्तों में जाकर मृत्यु को प्राप्त हो गये। मृत्यु के पश्चात् उन विपश्चितों की संवित् ने पूर्वसंस्कारवश आकाशात्मा बनकर आकाश में ही पृथ्वी मण्डल का अनुभव ही जिसकी आकृति है, उस अविद्या की निष्ठा–इयत्ता को देखने के लिये वे द्वीप–द्वीपान्तरों में भटकते रहे।

राघव ! उनमें जो विपश्चित् पश्चिम दिशा की ओर चला था, वह सातों द्वीपों तथा सातों महासागरों को लाँघकर घनभूमि (पूर्वोक्त स्वर्णमयी भूमि) में जा पहुँचा। वहाँ उसे भगवान् जनार्दन के दर्शन हुए। फिर उन्हीं भगवान् से अनुपम ज्ञान (ब्रह्मविद्या) प्राप्त करके वह उसी स्थान में पाँच वर्ष तक समाधिस्थ हुआ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

बैठा रहा। तदनन्तर वह देह का परित्याग करके निर्वाण को प्राप्त हो गया। पूर्व दिशा में गया हुआ विपश्चित् पूर्णमा के चन्द्रमण्डल के निकट अपने शरीर को स्थापित करके उसमें चन्द्रत्व की भावना करता रहा। चिरकाल के बाद जब उसका पूर्व शरीर नष्ट हो गया, तब वह चन्द्रलोक में स्थित हो गया। राजकुमार राम ! दक्षिण दिशागामी विपश्चित् शाल्मलिद्वीप में जाकर अपने शत्रुओं की जड़ उखाड़ करके आज भी वहाँ राज्य कर रहा है। और उत्तर दिशा को प्रस्थान करने वाला विपश्चित् सप्तमाम्बुद्धि-स्वादूदक-सागर में जा पहुँचा, जिसमें चंचल एवं विशाल तरंगें किलोल कर रही थीं। हवाँ उसने एक मगर के पेट में एक हजार वर्ष तक निवास किया। उस समय वह उसी मगर के पेट का मांस खाकर जीवन निर्वाह करता था। इस प्रकार जब वह मगरराज मर गया, तब वह उसके पेट से निकल कर दूसरे मगर की तरह समुद्र से बाहर आया। तदनन्तर हिम के समान स्वच्छ जल से भरे हुए उस सागर की अस्सी हजार योजन की विस्तार वाली घनी भूमि को लाँघकर वह दस हजार योजन के विस्तार वाले एक विशाल मैदान में जा पहुँचा, जिसकी भूमि स्वर्णमयी थी और मध्य भाग बहुत बड़ा था। उसमें देवता लोग बिहार करते थे। वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। उस भूमि में देवगणों के मध्य मरनेसे उस विपश्चित् को उसी प्रकार उत्तम देवत्व की प्राप्ति हो गयी, जैसे अग्नि के बीच पड़ा हुआ काष्ठ क्षणभर में ही अग्निरूप हो जाता है। फिर वह एक प्रधान देवता होकर उस लोकालोक पर्वत पर गया, जो भूमण्डलरूपी वृक्ष का थाला-सा स्थित है।

रामभद्र ! उसका दिगन्तदर्शनरूपी पूर्व संस्कार उसे पूर्णतया अभ्यस्त था ही, अतः वह उस उत्कृष्ट निश्चय से प्रेरित होकर ज्यों ही आगे बढ़ा, त्यों ही उस लोकालोक गिरि के शिखर से अन्धकारमय गर्त में जा गिरा। वहाँ उसने देखा कि पर्वत-शिखर-सरीखे विशालकाय मांसभक्षी पक्षी उसके उस देव शरीर को नोच-नोचकर खा रहे हैं और पूर्व चिन्तित दिगन्त दर्शन के कार्य में उसका मनोमय शरीर ही प्रसार कर रहा है; क्योंकि जहाँ उसकी मृत्यु हुई थी, वह प्रदेश परमपावन था। इसी कारण उस निर्मल हृदय वाले विपश्चित् को अपने सूक्ष्म शरीर में अधिभौतिकता का बोध तो नहीं हुआ, परंतु मन के व्यापार से रहित शान्त स्थितिरूप उत्तम बोध की प्राप्ति नहीं हुई। उसे तो आतिवाहिक शरीर का ही विशेषरूप से ज्ञान था, इसीकारण उसने अपने मन को आगे बढ़ते

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हुए देखा। अतिवाहिक के ज्ञान से उसे गर्भवास–तुल्य अन्धकार दीख पड़ा। उस अन्धकार की समाप्ति पर ब्रह्माण्ड कटाहरूपी भूखण्ड दृष्टिगोचर हुआ, जो वज्र सदृश सारवान्, स्वर्णमय और करोड़ों योजन विस्तार वाला है। उसके बाद उसे उस भूखण्ड से आठ गुना विस्तार वाला जल मिला, जो ब्रह्माण्ड कटाह की भूमि के समान समुद्र की पीठ की भाँति स्थित था। उसे पारकरने के बाद वह एक तेजयुक्त स्थान में जा पहुँचा, जो प्रलयाग्नि की घनीभूत लपटों के पिण्डभूत कोटर के समान चमकीला था और जहाँ बहुत से सूर्य अपना प्रकाश फैला रहे थे, जिससे वह अत्यन्त भीषण लग रहा था। उस तैजस आवरण में वह दाह–शोक आदि से रहित मनोमय देह से विचरण कर रहा था। इतने में उसे ऐसा अभास हुआ कि वह वायुरूप आवरण में पहुँचा। उस समय उसे यह ज्ञात हुआ कि मेरा सूक्ष्म आत्मा ही ले जाया जा रहा है और वह चित्तमात्र आत्मा किस प्रकार ले जाया जा रहा है–यह भी मालूम हुआ। ऐसे ज्ञान के बल से उस धीरात्मा ने उस वायुसागर को पार किया। उसके बाद वह उससे भी दस गुने विस्तृत शून्य स्थान में जा पहुँचा। उसे लाँघकर वह असीम महान् आकाश में प्रविष्ट हुआ। जिसमें सब कुछ विलीन होता है, जिससे सब कुछ अविर्भूत होता है तथा जो कुछ नहीं है और सब कुछ है, उस महान् आकाश में मनोयन देह से भ्रमण करता हुआ वह बहुत दूर चला गया। वहाँ उसने पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा जगत् देखा। फिर संसार की रचनाएँ, सृष्टियाँ और दिशाएँ दृष्टिगोचर हुई। तत्पश्चात् पर्वत, आकाश, देवता मनुष्य और पंच महाभूतों के अन्त में घनीभूत आकाश दीख पड़ा। पुनः जगत् दिशाएँ, आकाश और दूसरी अव्यवस्थित सृष्टियाँ परिलक्षित हुई। यों दीर्घकाल से बिहार करता हुआ वह आज भी वहाँ स्थित है। चिरकाल से अभ्यस्त हुए अपने जगत्–सत्यतारूप निश्चय से वह विरत नहीं हो रहा है; क्योंकि अविद्या का अन्त तो है नहीं, किन्तु जब उसकी सत्यता जान ली जाती है, तब वह भी ब्रह्मरूप हो जाती है। वास्तव में तो पूर्णात्मा ब्रह्म में अविद्या है ही नहीं। यह दृश्य है, यह अविद्या है, यह तो उसकी कल्पना है। राघव ! वह विपश्चित् आज भी तत्वज्ञान न होने के कारण उन पूर्व दृष्टि स्थानों में ही तथा उन्हीं सदृश अन्य सृष्टियों तथा वनखण्डों में चिरकाल से दूर–से–दूर बारंबार भ्रमण कर रहा है।

तिरासीवां सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

चौरासीवाँ सर्ग

मृगरूप में श्रीरामचन्द्रजी को प्राप्त हुए एक विपश्चित् का राजसभा में लाया जाना

श्रीरामजी ने पूछा-मुनिश्रेष्ठ ! अब यह बतलाइये कि एक विपश्चित् तो भगवत्कृपा से मुक्त हो गया और दूसरा अभी तक अविद्या में भ्रमण कर रहा है। शेष चन्द्रलोक और शाल्मलिद्वीप में निरुद्ध हुए उन दोनों विपश्चितों की फिर क्या दशा हुई ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! उन दोनों विपश्चितों में से एक चिरकाल से अभ्यस्त हुई वासनाओं के वशीभूत होकर अनेक प्रकार के शरीरों से द्वीप-द्वीपान्तरों में भ्रमण करता हुआ उत्तर-दिग्वर्ती विपश्चित् की ही गति को प्राप्त हुआ। उसी की तरह परमाकाशरूपी खोखले में क्रमशः ब्रह्माण्ड के आवरणों को परित्याग करके लाखों सृष्टियों को देखता हुआ वह आज भी उसी तरह स्थित है। उन दोनों में से जो दूसरा था, उसकी चन्द्रमा के निकट अपने शरीर को रखकर अभ्यास करने के कारण चन्द्रमृग में पूर्णतया आसक्ति हो गयी, जिससे वह प्रतिमास-चन्द्रमा के साथ भ्रमण करने वाली देहों से युक्त हो गया। तत्पश्चात् उनका परित्याग करके वह पर्वत पर मृगरूप में स्थित है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! चारों विपश्चितों की एक ही वासना थी, फिर वह उत्तम-अधम फल प्रदान करने वाली भिन्न-भिन्न कैसे हो गयी ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुवीर ! प्राणी की भली भाँति अभ्यस्त हुई वासना देश, काल और क्रिया के वश से कोमल और अत्यन्त परिपाकवश दृढ़मूल होती है। उनमें जो कोमल है, वह अन्यरूपता को प्राप्त होती है, किंतु जो बद्धमूल है, उसमें शीघ्र अन्यरूपता नहीं होती। देश, काल और क्रिया आदि की जो एकता है, वही वासना की एकता है। उन दोनों में भिन्नता आ जाने पर जो बलवती होती है, उसी की विजय होती है। इस प्रकार वे विपश्चित् एक साथ उत्पन्न होकर शरीर-भेद से चार रूपों में हो गये। उनमें से आदि के दो को अविद्या ने आकृष्ट कर लिया, एक वासना के वशीभूत होकर मृग बन गया और एक की मुक्ति हो गयी।

श्रीराम ! इस प्रकार उन विपश्चितों का सारा वृतान्त मैंने स्पष्टरूप से तुम्हें कह सुनाया। यह अविद्या कारण-ब्रह्म की भाँति अनन्त ही है; क्योंकि वह तत्स्वरूप ही है। यों वे अज्ञानी विपश्चित् उस ब्रह्माण्ड-मण्डप के अंदर भटकते

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.F.S) Jammu Collection

रहे, परंतु उन्हें अविद्या का ओर-छोर नहीं मिला। यह अनन्तरूपा अविद्या ब्रह्मरूप ही है; क्योंकि वह ब्रह्ममयी है। इसीलिये जब तक इसका यथार्थ ज्ञान नहीं हो जाता, तभीतक इसकी सत्ता है; तत्त्वज्ञान हो जानेपर तो इसका अस्तित्व ही मिट जाता है। इसी कारण वे विपश्चित् परब्रह्मकाश में अत्यन्त दूर पहुँचकर अविद्याद्वारा कल्पित कतिपय अन्य संसार-रूपों में भटकते रहे। उनमें से एक मुक्त हो गया, एक मृग बन गया। शेष दो अपने प्राक्तन प्रबल संस्कार के वशीभूत होकर आज भी कहीं भटक रहे हैं।

श्रीरामजी ने पूछा-मुनिवर ! यह तो आपने हमारे लिये महान् आश्चर्यजनक वृत्तान्त सुनाया है। मेरे ऊपर आपकी विशेष अनुकम्पा है। अच्छा, अब यह बतलाने की कृपा कीजिये कि वे विपश्चित् जिन लोकों में उत्पन्न हुए थे, वे यहाँ से कितनी दूर हैं और वे कितनी दूर पर कैसे लोकों में भ्रमण कर रहे हैं ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! वे दोनों विपश्चित् जिन लोकों में स्थित हैं, वे लोक प्रयत्नपूर्वक विचार करने पर भी मेरी बुद्धि के विषय नहीं हुए। हाँ, मृगयोनि को प्राप्त हुआ तीसरा विपश्चित् जिस लोक में स्थित है, वह संसार सम्भवतः हमारी बुद्धि में है। वह विपश्चित्, जिसकी बुद्धि तब तक के संसार-भ्रमण से खिन्न नहीं हुई थी, भ्रान्तिवश बहुत-से लोकों में भ्रमण करके उस ब्रह्माण्ड में किसी पर्वत की कन्दरा में मृगयोनि में उत्पन्न हुआ।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! यदि ऐसी बात है तो यह बतलाइये कि वह किस दिशा में, किस मण्डल में, किस पर्वत पर, किस वन में मृगरूप से स्थित है ? वहाँ वह क्या करता है ? शस्यश्यामला भूमि में निवास करता हुआ कैसे दूब चरता है ? बुढ़ापे के समान शिथिल ज्ञानवाला वह अपने उस उत्कृष्ट विपश्चित्-जन्म का कब स्मरण करेगा ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! त्रिगर्तराज ने जिस क्रीड़ामृग को तुम्हें भेंटरूप में प्रदान किया है और जो तुम्हारे क्रीड़ामृगार (अजायबघर) में विद्यमान है, उसी को तुम वह विपश्चित् समझो। तब श्रीरघुनाथजी की आज्ञा से बालाकों द्वारा लाया गया वह मनोहर मृग उस विशाल राजसभा में प्रविष्ट हुआ। फिर तो सभी सभासद् टकटकी लगाकर उसकी ओर देखने लगे। वह शरीर से तगड़ा था और उसका चेहरा भी प्रसन्न था। वह अपने शरीर की चित्तियों से तारारूपी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बिन्दुओं से युक्त आकाश की विडम्बना कर रहा था, नीलकमलरूपी नेत्रों को बारंबार गिराने से सुन्दरी नायिकाओं के चंचल कटाक्षों का तिरस्कार कर रहा था। उसके दर्शन के लिये लालायित हुई सभा का अनादर करने वाले अपने मनोऽभिराम चकित कटाक्षों से खम्भों में जड़ी हुई मरकतमणि की नीली कान्ति को तृण समझकर उसे खाने की इच्छा से वह चंचलतापूर्वक इधर-उधर दौड़ लगा रहा था, क्षणभर में अपने कान, नेत्र और गर्दन को ऊपर उठा लेता और फिर तुरंत ही नीचे कर लेता-यों अपनी चपलता से सभासदों को कौतूहल में डाल रहा था। इस प्रकार राजा, मुनि और मंत्रियों सहित सभी लोग उस मृग को देखकर 'भगवान् की माया अनन्त है' यों कहते हुए बहुत देर तक आश्चर्य में डूबे रहे।

चौरासीवाँ सर्ग समाप्त

पिच्चासीवाँ सर्ग

मृग के विपश्चित्-देह की प्राप्ति का वर्णन

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! तदनन्तर श्रीराम ने वसिष्ठजी से पूछा-'मुने ! किस उपाय द्वारा प्राक्तन विपश्चित्-देह की प्राप्ति होकर इस विपश्चित् के दुःख का अन्त होगा ?'

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रामभद्र ! जैसे आग में डाल देने से सुवर्ण अपने निर्मलरूप को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार इस विपश्चित् के लिये भी अग्नि ही शरण है। उसमें प्रवेश करने से यह मृग अपने पूर्व विपश्चित्-देह को प्राप्त हो जायगा। यह सब मैं अभी करता हूँ और तुम लोगों को कौतुक दिखलाता हूँ। यह मृग अभी तुम लोगों के सामने आग में प्रवेश करेगा।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! उत्तम विचार वाले मुनिवर श्रीवसिष्ठ ने वहाँ यों कहकर अपने कमण्डलु के जल से विधिपूर्वक आचमन करके ईंधनरहित ज्वालापुंजस्वरूप अग्नि का ध्यान किया। उनके ध्यान करते ही सभा के मध्यभाग से अग्नि की लपटें लपलपाने लगीं। उन ज्वालाओं का आकार अंगार से रहित था, उनमें ईंधन का भी सम्पर्क नहीं था; धूम और कज्जल का तो नाम-निशान नहीं था। वे निर्मल ज्वालाएँ धक्-धक् करके धधक रही थीं। उनकी परम मनोहर कान्ति फैल रही थी और वे स्वर्ण-मन्दिर सी सुन्दर लग रही थीं। खिले हुए पलाश का-सा तो उनका आकार था और वे संध्याकालीन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (LESP) Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेघ की-सी रंगवाली प्रकट हुई थीं। उस ज्वालासमूह को देखकर सभासद्गण तो दूर हट गये थे, परंतु पूर्वजन्म के भक्तिभाव से आदरसहित देखते हुए उस मृग को उनके दर्शन से परमहर्ष हुआ। उस अग्नि का अवलोकन करने से उस मृग का पाप क्षीण हो गया और उस अग्नि में प्रवेश करने के लिये उसकी इच्छा जाग्रत् हो उठी। फिर तो वह तुरंत सिंह की तरह उछलकर दूर तक पीछे हट गया। इसी बीच में मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ध्यानमग्न होकर विचार करने लगे और अपने दृष्टिपातों से मृग का पाप नष्ट करते हुए अग्निदेव से यों बोले-'ऐश्वर्यशाली हव्यवाहन ! इस मनोहर मृग की पूर्वजन्म की भक्ति का स्मरण करके इस पर कृपा कीजिये और इसे विपश्चित् बना दीजिये।' राजसभा में वसिष्ठ मुनि के यों करने पर वह मृग दूर से दौड़कर उसी प्रकार अग्नि में प्रवेश कर गया, जैसे वेगपूर्वक छोड़ा गया बाण अपने लक्ष्य में प्रविष्ट हो जाता है। उस ज्वालासमूह में प्रविष्ट हुए उस मृग का शरीर दर्पण में प्रतिविम्ब की भाँति संध्याकालीन मेघ में विश्रान्त हुआ-सा स्पष्ट दीख रहा था। तदनन्तर सभासदों के देखते-देखते ही वह मृग ज्वालाओं के बीच में मनुष्य के रूप को प्राप्त हो गया। ज्वालाओं के अंदर वह पुण्याकृति पुरुष दिखायी पड़ा। वह स्वर्ण-सा कान्तिमान् था। उसके अंग-प्रत्यंग कमनीय थे, जिनसे वह बड़ा ही सुन्दर लग रहा था।

तदुपरान्त वह ज्वालापुंज वायु के झोंके से बुझे हुए दीपक के समान उस सभा के मध्य से ऐसे अदृश्य हुआ, जैसे आकाश से सायंकाल के मेघ विलीन हो जाते हैं। फिर तो वहाँ देवालय की दीवालों के टूट जाने पर उसके मध्य स्थित देव-प्रतिमा के समान तथा परदे के अंदर से बाहर निकले हुए नट की तरह केवल वह पुरुष ही खड़ा रह गया। वह परम शान्त था। उसके गले में रुद्राक्ष की माला शोभा पा रही थी, कंधे पर स्वर्णमय यज्ञोपवीत लटक रहा था और शरीर अग्नितप से निर्मल हुए वस्त्रों से आच्छादित था। इस प्रकार वह तुरंत ही उदित हुए चन्द्रमा के समान भला लग रहा था। सूर्य की प्रभा-सरीखा वह परमोत्कृष्ट आभा से युक्त था। उसके शरीर की कान्ति देखकर सभासदों के मुख से बराबर निकल पड़ा-'अहो ! कैसी अद्भुत भा (शोभा) है !' इसलिये वह 'भास' नाम से विख्यात हुआ। तत्पश्चात् वह भास वहीं ध्यानमग्न होकर बैठ गया और मन-ही-मन अपने पूर्वजन्मों के सम्पूर्ण वृत्तान्तों का स्मरण करने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

लगा। उस समय सारे सभासद् आश्चर्यचकित होकर चुपचाप बैठे थे। तब तक भास दो ही घड़ी में अपने सम्पूर्ण वृत्तान्तों का स्मरण करके उन पूर्वजन्मों की स्मृति से लौट आया और उसका ध्यान भंग हो गया। उसने उठकर क्रमशः सारी सभा पर दृष्टिपात किया। फिर हर्षपूर्वक वसिष्ठजी के निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया और यों कहने लगा-'ब्रह्मन् ! आप ज्ञान-सूर्यरूपी प्राण प्रदान करने वाले हैं, आपको मेरा प्रणाम है।' तब वसिष्ठजी भी उसके सिर पर हाथ फेरते हुए यों बोले-'राजन् ! चिरकाल के बाद आज तुम्हारी अविद्या का सर्वथा विनाश हो जाय।' तदनन्तर जब वह 'श्रीरामजी की जय हो' यों कहता हुआ उनके चरणों में प्रणाम कर रहा था, उसी समय राजा दशरथ अपने आसन से कुछ उठकर उससे हँसते हुए-से बोले।

श्रीदशरथजी ने कहा-भो राजन् ! आपका स्वागत है। आप अनेक जन्मरूपी संसार में भ्रमण करने से थक गये हैं। अतः आइये, यहाँ इस आसन पर विराजिये और विश्राम कीजिये।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! महाराज दशरथ के यों कहने पर वह भास नामक विपश्चित् विश्वामित्र आदि सभी मुनियों को प्रणाम करके आसन पर बैठ गया।

तब श्रीदशरथजी बोले-अहो ! खेद है, जैसे जंगली हाथी आलान में बँधे रहने के कारण दुःख भोगता है, उसी तरह इस विपश्चित् ने भी चिरकालतक अविद्या के वशीभूत होकर दुःख का अनुभव किया है। अहो ! अज्ञान से उत्पन्न हुई दुर्दृष्टि की कैसी विषम गति है ! यह आकाश में ही अनेक सृष्टियों के आडम्बर-भ्रम का दर्शन कराती है। यह कम आश्चर्य का विषय नहीं है, जो सर्वव्यापक आत्मा में ये कितने संसार फैले हुए हैं, जिनमें यह विपश्चित् चिरकालतक भ्रमण करता रहा। अहो ! अपने स्वभावरूप विभव से सम्पन्न इस चेतन आत्मा के संकल्प की, जो वस्तुतः शून्य है, कैसी अद्भुत महिमा है। यह शून्य होते हुए भी परमात्मघनरूपी आकाश के अंदर इस प्रकार के अनेकों जगत् के रूप में प्रतीत होता है। तदनन्तर श्रीविश्वामित्रजी के द्वारा पूछे जाने पर विपश्चित् भास ने अपने देखे हुए विभिन्न दृश्यों, स्थानों, लोकों तथा प्राणियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

पिच्चासीवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

छियासीवाँ सर्ग

प्राणियों की उत्पत्ति के दो भेद

उपर्युक्त प्रसंग में ही विपश्चित् भास ने आकाश से एक विशाल शव के गिरने की कथा सुनायी। तदनन्तर अग्निदेव के साथ हुए अपने संवाद की चर्चा करते हुए भास ने कहा कि मेरे पूछने पर अग्निदेवता ने शव का आदि से अन्त तक पूरा वृत्तान्त मुझे सुनाया और यह कहा कि 'वह शव मच्छर की योनि को प्राप्त हुआ था। उस अतिक्षुद्र शरीर वाले स्वेदज मच्छर की आयु केवल दो ही दिनों की हुई। उसका शरीर इतना हल्का था कि वह फूँक मारने से ही उड़ जाता था।' इस बात को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई, तब उन्होंने श्रीवसिष्ठजी से पूछा–प्रभावशाली गुरुदेव ! इस जगत् में क्या समस्त प्राणियों की उत्पत्ति योनि से ही होती है अथवा अन्य किसी प्रकार से भी सम्भव है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–रघुनन्दन ! ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त समस्त प्राणियों की उत्पत्ति दो प्रकार से होती है–एक ब्रह्ममय और दूसरी भ्रान्तिज। उन दोनों का वर्णन करता हूँ, सुनो। पूर्वजन्म के अनुभव से बद्धमूल हुए शरीरतादात्म्य के भ्रमवश प्राणियों की जो उत्पत्ति होती है, वह भ्रान्तिज कही जाती है; क्योंकि वह दृश्य के संग से होती है। नित्यमुक्त ब्रह्मा को कभी भी जगद्–भ्रान्ति तो होती नहीं, फिर भी वह सृष्टि के आदि में चतुर्विध जीवरूप से जो स्वयं अपने संकल्प से उत्पन्न होता है, उसका वह जन्म ब्रह्ममय कहा जाता है। वह योनिज नहीं होता, श्रीराम ! उस मच्छर ने जगद्भ्रान्तिवश जन्म धारण किया था। वह ब्रह्म–विवर्त से नहीं उत्पन्न हुआ था। अब (अग्नि के द्वारा कहा गया) उसका अगला वृत्तान्त विपश्चित् से सुनो।

(अग्नि ने आगे कहा–) उसने पृथ्वी पर ईख के झुरमुटों में हरी–हरी घासों पर तथा मूँज–कास आदि के अंबारों में गूँजते हुए दूसरे मच्छरों के साथ स्वयं ही गूँजते एवं क्रीड़ा करते हुए अपनी आयु का आधा दिन पूरा–का–पूरा भोग–विलास में व्यतीत कर दिया। फिर वह बाल–लीलावश अपनी पत्नी मच्छरी के साथ हरी–हरी घासों के मध्यभागरूपी हिंडोले में बहुत देर तक झूला झूलता रहा। झूले के परिश्रम से थककर जब वह वहीं कहीं विश्राम कर रहा था, तब तक हरिण के खुराग्ररूपी पर्वत के गिरने से चकनाचूर हो गया।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Moorthi Sharma (I.F.S) Jammu Collection

प्राणत्याग करते समय उसकी दृष्टि हरिण के मुख पर लगी थी, इसलिये पूर्व भावना के अनुसार बाह्य और आभ्यन्तर इन्द्रियों का ग्रहण करके वह मृगयोनि में पैदा हुआ। वह हरिण वन में घूम रहा था कि एक व्याध ने उसे अपने धनुष द्वारा मार डाला। मरने समय उसकी दृष्टि व्याध के मुखपर पड़ी थी, इसलिये अगले जन्म में वह व्याध होकर पैदा हुआ। वह व्याध अनेक वनों में घूमता-घामता किसी मुनि के तपोवन में जा पहुँचा। वहाँ वह विश्राम कर रहा था कि उसकी मुनि से भेंट हो गयी। तब मुनि उसे ज्ञानोपदेश करने लगे-

'रे व्याध ! तू क्यों भ्रम में पड़ा है। इस क्षणभंगुर संसार में अपने दीर्घ-कालव्यापी दुःख के लिये धनुष से इन मृगों को क्यों मारता है ? अहिंसा-अभयदान आदि शास्त्रमर्यादा का पालन क्यों नहीं करता ? अरे पुत्र ! वायु से टकराये हुए मेघमण्डल में लटकते हुए जल की बूँद की भाँति आयु विनाशी है। भोग बादलों की घटा के मध्य कौंधनेवाली बिजली की तरह चंचल हैं। जवानी के भोग-विलास जल के वेग के समान चपल हैं। शरीर क्षणविध्वंसी है; अतः इस संसार से भयभीत होकर तू निर्वाण की ही खोज कर।'

तब व्याध ने पूछा-मुनिराज ! यदि ऐसी बात है तो बताइये कि दुःख का पूर्णतया विनाश करने के लिये जो न कठोर हो और न कोमल हो-ऐसा कौन सा व्यवहारक्रम हो सकता है ?

मुनि ने कहा-व्याध ! तू इसी समय बाणों सहित इस धनुष को सदा के लिये त्याग दे और मुनि के-से आचरण का आश्रय लेकर दुःखरहित हो यहीं निवास कर।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रामभद्र ! उक्त मुनि के यों उपदेश देने पर उसने धनुष और बाणों का परित्याग करके मुनियों का सा आचरण अपना लिया। फिर बिना माँगे जो कुछ मिल जाता था, उसी पर जीवन-निर्वाह करते हुए वह वहीं रहने लगा। कुछ दिनों में सारासार की विवेकशीलता ने उस मौनी के मन में उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे पुष्प गन्ध द्वारा मनुष्यों के हृदय में अपना स्थान बना लेता है।

तदनन्तर व्याध द्वारा किये गये प्रश्न के उत्तर में मुनि ने धारणा के अभ्यास के परकाय-प्रवेश द्वारा देखे गये स्वप्न का, दो जीवों के सम्मेलन से दुगुने विश्वदर्शन का, एकता होने पर एक विश्व के दीखने का, विस्तारपूर्वक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Jhanjhunwala Jammu Collection

प्रलयदर्शन का, प्रलय सागर के हटने, गाँव में ब्राह्मणरूप में स्थित, दूसरे के शरीर से बाहर निकलने आदि का वर्णन करने के पश्चात् कहा।

मुनि बोले-व्याध ! सृष्टि की उत्पत्ति का वस्तुतः कोई कारण नहीं है। अतः उसकी उत्पत्ति का अभाव स्पष्ट है। इसलिये सृष्टि शब्द और उसका अर्थ दोनों ही सर्वथा नहीं हैं। ऐसी स्थिति में कहाँ शरीर है, कहाँ हृदय है, कहाँ स्वप्न है, कहाँ जल आदि है, कहाँ ज्ञान है, कहाँ अज्ञान है और कहाँ जन्म-मरण आदि है ? वास्तव में तो वह निर्मल चिन्मात्र ही है, जिसकी अपेक्षा आकाश अत्यन्त सूक्ष्म होते हुए भी उसी प्रकार स्थूल लगता है जैसे परमाणुओं के निकट पर्वत। वह चिदाकाश अपने आकाशरूप शरीर के विषय में स्वभावतः जो कुछ संकल्प करता है, उससे वह अपने को जगद्रूप से जानता है। जैसे स्वप्न में केवल चेतन जीव ही नगररूप से प्रतीत होता है, वास्तव में वहाँ नगर आदि कुछ भी नहीं है, वैसे ही आत्माकाश में शान्त, अखण्ड, अप्रत्यक्ष चिन्मात्र ही जगद्रूप से भासित होता है। जैसे नेत्रों में तिमिर रोग हो जाने से प्रकाशमय आकाश में धुआँ सा दीख पड़ता है, उसी तरह चिद्रूपी दृष्टि में अज्ञानरूपी तिमिर रोग के कारण जगत् का भान होता है। परंतु वस्तुतः न भान है न अभान, न प्रातिभासिक जगत् है न व्यावहारिक तथा भूताकाश भी नहीं है; बल्कि केवल निराकार, अनादि, अनन्त, अद्वितीय चिदाकाश ही है। जिस हेतु से कारण के बिना स्वप्न में केवल शुद्ध द्रष्टा ही भासित होता है, उसी हेतु से जाग्रत् में भी कारण का अभाव है और उसमें न द्रष्टा है न दर्शन। जैसे एक काल सृष्टि और प्रलय-दोनों रूपों में व्याप्त है अथवा बीज अंकुर से लेकर पुष्प-फलपर्यन्त सभी अवस्थाओं में वर्तमान है, उसी प्रकार ब्रह्म सर्वव्यापी है। जो एक की दृष्टि में महान् दीवालरूप है, वही दूसरे की दृष्टि में निर्मल आकाश-सा दीखता है। यह बात स्थिर-स्वप्न, संकल्प और भ्रम आदि अवस्थाओं में देखी गयी है। जैसे आत्मा एक निर्मल चिदाकाशस्वरूप होकर स्वप्न में जाग्रत् की तरह प्रतीत होता है, उसी तरह जाग्रन्मय स्वप्न में भी भासित होता है। दोनों अवस्थाओं में उसकी जरा-सी भी अन्यथाप्रतीति नहीं होती। अतः व्याध ! समस्त मनोव्यापार का त्याग कर देने पर तुम जैसा रहते हो, वही तुम्हारा निरामय स्वरूप है, तुम वस्तुतः बाहर-भीतर सर्वत्र अनन्त आत्मारूप से निरन्तर स्थित हो।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.F.S) Jammu Collection

ब्रह्मा आदि जो स्वयंभू अपने-आप उत्पन्न होने वाले हैं, वे सृष्टि के आदि में स्वयं ही प्रकट होते हैं; क्योंकि उनके शरीर ज्ञानमात्रस्वरूप होते हैं। अतः उनके जन्म और कर्म नहीं होते। उनकी दृष्टि में न संसार है, न द्वैत है और न कल्पनाएँ हैं। विशुद्ध ज्ञानस्वरूप शरीरवाले वे सदा सर्वात्मारूप से स्थित रहते हैं। सृष्टि के आरम्भकाल में जैसे परब्रह्मस्वरूप ब्रह्मा आदि प्रकट होते हैं, उसी तरह सैकड़ों-हजारों दूसरे जीव भी प्रकट होते हैं; किंतु जो अज्ञानी हैं, वे अपने को ब्रह्म से भिन्न मानते हैं। वे असात्त्विक जीव इस जड़ दृश्यमय द्वैत प्रपंच को सत्य समझकर ही पहले मृत्यु को प्राप्त हुए थे। अतः अब उनका कर्म सहित पुनः जन्म दिखायी देता है; क्योंकि उन्होंने स्वयं ही अचेतन देहात्मरूप होकर अवस्तु का आश्रय ग्रहण किया है। सर्वात्मरूप चेतन की निर्मलता स्वाभाविक है। नित्य ब्रह्म स्व-स्वभाव में ही स्थित है। जिसे वह परमात्मस्वरूप ज्ञात हो गया है, उसका वह कर्म नष्ट हो जाता है। तब जिसका अस्तित्व ही नहीं है, उसके विनाश में कठिनाई ही कौन-सी है। जब तक पाण्डित्य की-परमात्मस्वरूप के ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो जाती, तभी तक माया संसारभय को उत्पन्न करने में समर्थ होती है। पाण्डित्य वही है, जिससे पुनः इस संसारचक्र में पतन नहीं होता। इसलिये विशुद्ध ज्ञान से भरपूर उस पाण्डित्य की प्राप्ति के लिये अविराम प्रयत्न करना चाहिये। इसके सिवा अन्य किसी उपाय से तुम्हारा यह संसार-भय नष्ट नहीं हो सकता।

छियासीवाँ सर्ग समाप्त

सतासीवाँ सर्ग

चित् ही जगत् है

मुनि बोले-व्याध ! जो परमधामरूपी गन्तव्य स्थान के मार्ग के ज्ञाता हैं तथा जिन्हें आत्मज्ञान का पूर्णबोध है, ऐसे पण्डित जिस गति को प्राप्त होते हैं, उसके सामने इन्द्र का ऐश्वर्य जीर्ण-शीर्ण तृण के समान तुच्छ है। मुझे तो पाताल, भूतल और स्वर्गलोक में कहीं भी ऐसा सुख अथवा ऐश्वर्य नहीं दीख रहा है, जो पाण्डित्य से बढ़कर हो। जैसे ज्ञान हो जाने से माला में सर्प की भ्रान्ति तुरंत मिट जाती है, वैसे ही ज्ञानी की दृष्टि में यह अविद्यात्मक दृश्य-प्रपंच क्षणमात्र में ब्रह्मरूप में परिणत हो जाता है। ब्रह्म का जो प्रतिभास है, वही यह जगत् कहा जाता है। इसी कारण ये पृथ्वी आदि प्रपंचभूत कहाँ हैं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और इनका कारण कहाँ है अर्थात् जगत् की उत्पत्ति में इन कारणों की अपेक्षा नहीं है। जैसे स्वप्नद्रष्टा को स्वप्न में दीखने वाले मुनष्यों की स्थिति काल्पनिक है, वास्तविक नहीं है, उसी तरह जाग्रतस्वरूप स्वप्न में दीखनेवाले मनुष्यों की स्थिति भी पूर्वकामना के अनुसार कल्पित हैं, यथार्थ नहीं हैं।

व्याध ! जैसे स्वप्नावस्था में तुम्हारे अन्तःकरण के संकल्प में नगर दीखता है, वैसे ही ब्रह्म के संकल्प में यह सृष्टि वर्तमान है और जैसी कार्यकारणता तुम्हारे स्वप्नकाल में कही गयी है, वैसी ही कार्यकारणता यहाँ भी है। यद्यपि यह सम्पूर्ण जगत् असत् है, तथापि स्वप्न की तरह इसका अनुभव होता है। यदि 'जगत् नहीं है' यों कहा जाय तो पूर्ण चेतन ही इस रूप में विकसित होता है। जैसे हमलोगों का यह जगत् है, वैसे ही आकाश में अन्य प्राणियों के लाखों जगत् हैं; परंतु उनकी परस्पर अनुभूति नहीं होती। सरोवर, सागर और कूप में पृथक्-पृथक् निवास करने वाले मेढकों को अपने-अपने निवासस्थान का ही अनुभव रहता है, उन्हें परसपर एक-दूसरे के दृश्यादि का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। जैसे एक ही घर में सैकड़ों मनुष्यों के सैकड़ों स्वप्न-नगर होते हैं उसी प्रकार आकाश में बहुत-से जगत् भासित होते हैं; परंतु अज्ञानियों के अनुभव में आने से ही उन आकाशीय जगतों की सत्ता है और ज्ञानियों के अनुभव का विषय न होने से वे असत् हैं। जैसे एक घर में सैकड़ों मनुष्यों के सैकड़ों स्वप्न-नगर विकसित होते हैं और नहीं भी होते, उसी तरह आकाश में जगत् है और नहीं भी है। यह भुवन चिन्मात्र में स्थित है। 'त्वम्', 'अहम्' आदि रूप जगत् भी चिन्मय है। इस न्याय से उत्पन्न न होता हुआ भी जगत् परमाणु के अंदर तक चला जाता है अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है। मैं परमाणुरूप हूँ, अतः समस्त जगत् के आकार में स्थित हूँ। इसी कारण मैं सर्वत्र यहाँ तक कि परमाणु के अंदर भी विद्यमान हूँ। मेरे अन्तरात्मा में तीनों लोकों का जैसा रूप विकसित होता है, वैसा बाहर नहीं होता; क्योंकि कहीं भी किसी ने उसे देखा नहीं है। स्वप्न अथवा जाग्रत् में जब-जब अथवा जहाँ-जहाँ जगत् का जो भान होता है, वह बाह्य एवं आभ्यन्तर सहित समस्त दृश्य चेतन आत्मा का भान ही है। जब स्वप्न में प्राणी का विस्तृत जगत भासित होता है, तब वह चिदगुणस्वरूप आत्मा का ही भान होता है औरवह स्वप्न-स्थानरूप से होता है।

सतासीवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

अठासीवाँ सर्ग

मुनि का व्याध के प्रति बहुत-से प्राणियों को एक साथ सुख-दुःख की प्राप्ति के निमित्त का निरूपण करना

इस प्रकार स्वप्न, सुषुप्ति आदि के भेदों का वर्णन करके मुनि ने पुनः कहा-'व्याध ! यद्यपि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय स्वरूपवाला आत्मा आकाररहित होकर भी सर्वाकार है, कल्पनाओं से शून्य होते हुए भी सृष्टिरूपी शरीर धारण करने वाला है और शून्यरूप दृश्यात्मक चित्त-शरीर से शून्याकाश को व्याप्त करके स्थित है, तथापि यह आकाशात्मक चिन्मात्र अपने शुद्ध चिदाकाशस्वरूप से कभी भी तनिक भी भिन्न नहीं है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, लोकान्तर और मेघ आदि भूत-भौतिक पदार्थों सहित यह दृश्य जगत् सृष्टि के आदि में भी कारण का अनुभव न होने से केवल चिदात्मक ही है। वास्तव में यह नामरूप से रहित और बोधस्वरूप ही है; क्योंकि अतन्तोगत्वा मनोलय हो जाने पर यह सारा-का-सारा शुद्ध ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही रह जाता है, कोई अन्य वस्तु नहीं।'

व्याध ने पूछा-मुने ! प्रलय आदि सैकड़ों महावृत्तान्तों से जिसकी अनेकों सृष्टियाँ समाप्त हो चुकी हैं, ऐसे आपका उन-उन लोगों में कैसा वृत्तान्त घटित हुआ था, उसका रहस्य बतलाइये।

मुनि ने कहा-सदाचार की स्पृहा रखनेवाले साधुस्वभाव व्याध ! स्वप्नगत किसी प्राणी के आज में स्थित होने पर उस प्राणी के हृदयस्थित ओज में जो अपूर्व वृत्तान्त घटित हुआ, उसे सुनो। उस समय वहाँ मेरा आत्मज्ञान सम्बन्धी सारा चमत्कार विस्मृत हो गया और वर्ष ऋतुरूप काल धीरे-धीरे व्यतीत होने लगा। मेरा आत्म-चिन्तन छूट गया और बुद्धि पुत्र-कलत्र आदि में अनुरक्त हो गयी। इस प्रकार उस गृहस्थाश्रम में रहते मेरे सोलह वर्ष बीत गये। तदनन्तर किसी समय एक सम्मान्य विद्वान् मुनि अतिथिरूप से मेरे घर पधारे। वे मननशील तथा अगाध ज्ञानसम्पन्न थे। उनकी तपस्या बड़ी उग्र थी। मैंने उनका भली भाँति आदर-सत्कार किया। तात ! जब वे भोजन करके संतुष्ट हो आसन पर शयन करने लगे, तब मैंने जनता के सुख-दुःख के क्रम का विचार करके उनसे यों प्रश्न किया-भगवन् ! चूँकि आप महाज्ञानी हैं। जगत् की सारी गतिविधियाँ आपको विदित हैं। आपमें क्रोध तो लेशमात्र भी नहीं दीखता तथा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

सुख में आपकी तनिक भी आसक्ति नहीं है; अतः यह बताने की कृपा कीजिये कि जैसे शरत्काल में फलार्थी पुरुषों को धान आदि की प्राप्ति होती है, वैसे ही कर्मशील जीवों के अपने शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। तो क्या ये सारी प्रजाएँ एक साथ ही अशुभ कर्म करतीं हैं, जिनके फलस्वरूप दुर्भिक्षादि सभी दोष इन्हें एक साथ ही प्राप्त होते हैं ? यदि दुर्भिक्ष एवं अनावृष्टि आदि उपद्रव सबके लिये एक-से ही होते हैं तो इसका क्या रहस्य है तथा किस-किसके दुष्कर्म समान होते हैं ?' मेरा यह प्रश्न सुनकर वे मुनि मेरी ओर देखकर मुसकराये और अमृत प्रवाह की तरह सुन्दर एवं प्रशंसनीय वचन बोले-साधो ! यह तो बतलाओ, अन्तःकरण के पूर्णतया विवेकसम्पन्न होने पर इस दृश्य का जो सत् या असत्रूप कारण है, उसे किससे जानते हो। तुम कौन हो और इस जगत् में कहाँ स्थित हो-यों अपने आत्मा का पूर्णरूप से स्मरण करो। मैं कहाँ हूँ ? यह दृश्य कया है ? क्या सार है ? क्या असार है ? यह सब स्वप्नमात्र ही प्रतीत होता है। इसे तुम क्यों नहीं समझते हो ? मैं तुम्हारे लिये स्वप्न-पुरुष हूँ और तुम मेरे लिये स्वप्न-पुरुष के तुल्य हो। यह जगत् निराकार अनिर्वचनीय अनादि और कल्पनारहित है। यह चिन्मात्ररूपी काँच की चमक के समान स्थित है। इस सर्वव्यापक चिन्मात्र का स्वाभाविक रूप ही ऐसा है कि यह जहाँ जैसा समझता हे, वहाँ वैसा ही हो जाता है। जब यह वस्तुओं के सकारणत्व की कल्पना करता है, तब सब कुछ सकारण है और जब अकारणत्व की कल्पना करता है, तब सभी कुछ अकारण है। साधुपुरुष ! जैसे बहुत-से वृक्षों पर एक साथ बिजली गिरती है, वैसे ही कुछ प्राणियों के कतिपय दुष्कर्म रहने पर एक साथ ही दुःख आदि के पहाड़ टूट पड़ते हैं। कर्मों का फल भोगना पड़ता है, परंतु जब वह कर्मों की कल्पना से उन्मुक्त हो जाता है, तब उसे कर्मफल का भोग नहीं प्राप्त होता। स्वप्नमय नगर की भाँति इस जगत् में सहकारी कारण आदि कोई भी कारण नहीं है। इसलिये वह अनादि, चेतन, अजर, मंगलमय परब्रह्म ही है। यह स्वप्नवत् जगद्भ्रम कोई बिना कारण के प्रतीत होता है और कोई कारण के साथ। वास्तव में तो यह मिथ्या ही है।

महामते ! ये सारी सृष्टियाँ पहले से इसी तरह अकारण ही प्रवृत होती आ रही हैं। जैसे आकाश में देर तक देखते रहने से नेत्रों के सामने चक्राकार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

गोले दीखने लगते हैं, वैसे ही जगत् के ढेर-की-ढेर सृष्टियाँ चक्कर काटती रहती हैं। चित्-शक्ति ने ही अपने में 'मैं ही अमुक हूँ' यों जिस-जिस भानात्मक रूप की स्वतः कल्पना की, वह आज भी वैसा ही स्थित है। पुनः वही चित् उससे भी उत्कृष्ट दूसरे महान् यत्न से उसे अन्यथा करने में भी समर्थ है। विद्वान द्वारा जहाँ कारण की कल्पना की जाती है, वहाँ तो कारण की सारता रहती है और जहाँ उसकी कल्पना नहीं की जाती, वहाँ कारणहीनता ही है। यह विस्तृत जगत् पहले बवंडर की तरह असत् ही आभासित हुआ और उस समय जैसा भान हुआ वैसा ही आज भी स्थित है। कुछ लोग अपना शुभ-अशुभ पुण्य-पापरूप कर्म मिला-जुला कर करते हैं, अतः उन्हें उनका फल भी उसी तरह सम्मिश्रित रूप में मिलता है।

अठासीवाँ सर्ग समाप्त

नवासीवाँ सर्ग

मुनि के उपदेश से आत्मज्ञान की प्राप्ति

मुनि ने कहा-व्याध ! उस समय उन मुनि ने इस प्रकार की युक्ति से मुझे ऐसा ज्ञानोपदेश किया, जिससे तत्काल ही ज्ञेय-तत्त्व मेरी बुद्धि में बैठ गया। जिन मुनि ने यह चन्द्रोदय के समान मनोहर वचन कहा था, वे ही ये मुनिवर तुम्हारे बगल में बैठे हैं। (उक्त मुनि को दिखाकर कहा) उनकी ओर दृष्टिपात करो। ये मूर्तिमान् यज्ञ के समान हैं। इन्हें दृश्य के पूर्वापर का पूर्ण ज्ञान है। ये ही मेरे अज्ञान का विनाश करने वाले हैं। यद्यपि मैंने इनसे कहने के लिये प्रार्थना नहीं की थी, तथापि इन्होंने ही मुझसे यह बात कही थी।

अग्नि बोले-विपश्चित् ! उन मुनि की यह बात सुनकर वह व्याध उस समय विचारने लगा कि यह स्वप्नसृष्टि प्रत्यक्ष कैसे हो गयी। यों सोचकर उसे महान् विस्मय हुआ।

तब व्याध ने कहा-मुने ! भव-ताप का अपहरण करने वाले आपने अभी-अभी जो बात मुझसे कही है, वह तो महान् आश्चर्यजनक है और मेरे मन में बैठ रही है। मुनिवर ! स्वप्न में जिनका आपने अपने उपदेशकरूप से वर्णन किया था, उन्हीं की जाग्रत् में प्रत्यक्षता बतला रहे हैं और मैं भी उन्हें प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। इसीलिये मैं इसे परम विस्मय की बात मानता हूँ।

मुनि बोले-महाभाग व्याध ! तदनन्तर यहाँ मेरी कौन-सी विस्मयजनक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

घटना घटी, उसका मैं संक्षेप में वर्णन करता हूँ; सुनो। सहसा उतावली मत करो। तुम्हारे समीप बैठे हुए इन मुनिवर ने उस समय वहाँ मुझे ज्ञानोपदेश करने के लिये वैसा वर्णन किया था और मैं उन महात्मा की उस वाणी से तुरंत ज्ञानसम्पन्न हो गया। तत्पश्चात् उनकी वाणी के प्रभाव से मुझे अपने पहले के अनादिसिद्ध सन्मात्ररूप निर्मल स्वभाव का स्मरण हो आया, फिर तो मेरे हृदय में यह भावना जाग उठी कि मैं ही वह मुनि था। ऐसा ध्यान आते ही प्रचुर आश्चर्यवश स्नान किये हुए की तरह मेरा हृदय आर्द्र हो गया। मैं विषय-भोग की आसक्ति से इस अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ-ठीक उसी तरह जैसे अज्ञानी पथिक मार्ग के परिश्रम से पीड़ित होकर जल के लिये मिथ्याभूत मृग तृष्णा के पीछे दौड़ता है। अहो ! आश्चर्य है, बढ़ते हुए इस मिथ्याज्ञान ने, जो सर्वार्थशून्य है, मुझे यह किस दशा को पहुँचा दिया। वास्तव में तो न मैं हूँ, न यह स्त्री है, न यह घर है, फिर भी सत्-सा प्रतीत होता है। यह महान् आश्चर्य है। अच्छा, अब इस विषय में मुझे क्या करना चाहिये। मेरे अंदर बन्धन को तोड़ डालने में समर्थ जो ब्रह्माकार वृत्तिरूप अंकुर है, वह भी काट डालने योग्य है, अतः तब तक मैं उसी का परित्याग करता हूँ। यों सोच-विचारकर मैंने वहाँ उन मुनि से इस प्रकार कहा-'मुनीश्वर ! मैं अपने आश्रमस्थित मुनि-शरीर तथा जिस शरीर को देखने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ, उसका भी निरीक्षण करने के लिये जाता हूँ।'

यह सुनकर वे मुनिवर उस समय ठठाकर हँस पड़े और मुझसे कहने लगे-'वे दोनों शरीर अब हैं कहाँ। वे तो बहुत दूर चले गये। अथवा वृत्तान्तज्ञ ! तुम स्वयं ही जाओ और उस वृत्तान्त को देखो। वहाँ घटित हुई घटना को जब तुम देख लोगे, तब स्वयं ही जान जाओगे।' मुनि के यों कहने पर मैंने अपने उस प्राक्तन मुनि-शरीर का स्मरण करके वहाँ जाने की इच्छा से इस स्वप्नकल्पित रूप का परित्याग कर दिया और चिदात्मारूप अपने जीव को प्राण के द्वारभूत पवन से संयुक्त कर दिया। चलते समय मैंने उन मुनि से कहा-'मुने ! अपने प्राक्तन शरीर का अवलोकन करके जब तक मैं लौटता हूँ, तब तक आपको यहीं बैठे रहना चाहिये।' यों कहकर मैं वायु में प्रविष्ट हुआ। तदनन्तर मैं बड़ी उतावली के साथ उस वायुरूपी रथपर आरूढ़ होकर पुष्प की सुगन्ध की तरह उस अनन्त आकाश में जाकर चिरकालतक भ्रमण करता रहा।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection

परंतु बहुत देर तक भटकते रहने पर भी मुझे वहाँ से निकलने के लिये उस प्राणी के गले का छिद्र आदि कोई मार्ग प्राप्त नहीं हुआ। तब मैंने मुनि के पास जाकर उनसे पूछा-'मुनिराज ! यद्यपि मैं स्थावरपर्यन्त अपने विस्तृत संसार मण्डल में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा, तथापि मुझे वह गले का छिद्र नहीं प्राप्त हुआ-इसका क्या कारण है ?' मेरे यों प्रश्न करने पर वे महाशय मुनि बोले-'कमलनयन ! तुम उस शरीर वृत्तान्त को (उपदेश किये गये बिना ही) स्वयं अपनी बुद्धि से कैसे जान गये। यदि योग से एकाग्र हुई बुद्धि के द्वारा तुम स्वयं ही इसका अवलोकन करते हो तब तो हाथपर रखे हुए कमल की तरह तुम्हें उसका पूर्णतया ज्ञान है ही। तथपि यदि मेरे मुख से सुनने की इच्छा है तो मैं उस यथाघटित वृत्तान्त का पूर्णरूप से वर्णन करता हूँ, सुनो-

'तुम अपने को जैसा समझते हो, वैसे व्यष्टि जीवरूप नहीं हो। तुम तो समस्त प्राणियों के तपरूपी कमल के लिये सूर्यरूप, कल्याणरूपी कमलों की खान और भगवान् श्रीहरि के नाभिकमल की कर्णिका अर्थात् हिरण्यगर्भ हो। वही तुम किसी समय व्यष्टिभावरूप स्वप्न देखने की इच्छा से तपस्या में स्थित होकर उस पुष्ट हुई बुद्धि द्वारा किसी प्राणी के हृदय में प्रविष्ट हुए। जिस हृदय में तुमने प्रवेश किया था, वहाँ पृथ्वी और स्वर्गलोक जिसका उदर है, उस विस्तृत त्रिलोकी को देखा था। इस प्रकार यद्यपि तुम वहाँ बड़ी देर तक स्वप्न देखने में व्यग्र थे, तथापि तुम्हारे शरीर में तथा महावन में सोये हुए उस जीव के शरीर में जिसमें तुम स्थित थे, आग लग गयी। फिर तो धुँए से धूमिल हुए मेघरूपी वस्त्रों से आच्छादित आकाश चँदोवा सा मालूम पड़ने लगा। अलातचक्र-सी उड़ती हुई बड़ी-बड़ी चिनगारियाँ सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल-सी जान पड़ने लगीं। उस अग्नि ने जले मेघों पर भस्मपूर्ण धुँए के मेघरूपी कम्बलों द्वारा आकाश को ऐसा आच्छादित कर दिया था मानो वे नीले आकाशदल की रक्षा कर रहे हों। दूर देश में स्थित लोगों ने उसे एक जगह स्थिर हुई बिजली सा देखा। उसकी प्रभा से आकाश पिघले हुए स्वर्ण-रस से अनुलिप्त फर्श-सा लग रहा था। उसकी दीप्तिमती चिनगारियाँ उड़-उड़ कर आकाश में पहुँच रही थीं, जो ताराओं की संख्या को दुगुनी बना रहीं थी। वह वक्षःस्थल में स्थित ज्वालारूपी बालवनिताओं के कटाक्षों से आनन्द-प्रदान कर रही थी। उस दावाग्नि ने, जो प्रलयाग्नि के समान भीषण थी तथा वेगपूर्वक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Jhavery (F.S) Collection

रेंगते हुए सर्प की तरह चारों ओर फैल रही थी, तुम्हारे आश्रम के साथ-साथ तुम्हारे तथा उस प्राणी के शरीर को भी जलाकर भस्म कर दिया।'

नवासीवाँ सर्ग समाप्त

नब्बेवाँ सर्ग

अग्नि का शान्त होना

व्याध ने पूछा-मुने ! वहाँ उस अग्निदाह की उत्पत्ति का प्रधान कारण क्या है तथा वह वन और आपके वे शिष्य-सब-के-सब एक साथ ही कैसे नष्ट हो गये ?

मुनि ने कहा-व्याध ! जैसे संकल्प आदि के विनाश और उदय में संकल्पकर्ता के मन का स्पन्दन ही कारण है, वैसे ही त्रिजगत् का संकल्प करने वाले विधाता का मनःस्पन्द ही त्रिजगत् है और वही तुरंत उसके विनाश और उदय का कारण है। चूँकि ब्रह्मा का संकल्पनगर ही जगत् है, इसलिये उनके मन का स्पन्दन ही इस संसार में प्रजाओं की उन्नति, क्षय, क्षोभ, वृष्टि और अवृष्टि आदि का कारण है। ब्रह्मा का मानसिक संकल्प इस त्रिलोकी का कारण है, अतः यह त्रिलोकी कल्पित है। विद्वानों की निर्मल दृष्टि में चिदाकाश में चिदाकाश की ही शोभा विकसित होती है, किंतु जो मूर्ख हैं, उनकी दृष्टि में वह जैसी अथवा जिस प्रकार की भासती है, तन्मयी ही है। वास्तव में तो वह सत् नहीं है।

समागत मुनि ने कहा-मुने ! वहाँ उस अग्नि ने दोनों शरीर, आश्रम, नगर, वे घर और वे वृक्ष आदि सबको सूखे तिनके के समान शीघ्र ही जलाकर राख का ढेर बना दिया तथा अत्यन्त दाह के कारण जिसकी बड़ी-बड़ी शिलाएँ फट गयी थीं, ऐसे तुम्हारे उस आश्रम में सोये पड़े हुए वे दोनों शरीर भस्म हो गये। इस प्रकार सम्पूर्ण वन को पूर्णरूप से जलाकर वह आग धीरे-धीरे उसी प्रकार शान्त हो गयी, जैसे समुद्र के जल को पीकर अगस्त्यजी शान्त हो गये थे। तत्पश्चात वह अग्नि अदृश्य हो गयी। उस अग्नि के अदृश्य हो जाने पर वायु उस सम्पूर्ण भस्मराशि को, जो पहले हवा के लगने से उद्दीप्त होकर फिर शीतल हो गयी थी, पुष्पराशि की भाँति कण-कण करके उड़ा ले गयी। इससे अब पता ही नहीं चलता कि वह आश्रम कहाँ था और वे दोनों शरीर कहाँ चले गये तथा जो पेटी की तरह बहुत-से लोगों का निवास स्थान था,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookshbhavan Jammu (J&K) Collection

वह नगर जाग्रत्पुरुष के स्वप्ननगर की तरह कहाँ विलीन हो गया। इस प्रकार जब तुम्हारे तथा उस प्राणी शरीर का अभाव हो गया, उस समय तुम स्वप्न के भ्रम से ग्रस्त थे, परंतु इस समय तुम्हारी संवित् ही स्फुरित हो रही है। इसलिये कहाँ बाहर निकलने का द्वारभूत उस प्राणी के गले का छिद्र और कहाँ तुम्हारा वह विराट् आत्मा अर्थात् दोनों में महान् अन्तर है; क्योंकि ओजसहित जले हुए उस प्राणी का ओजसहित शरीर भी तो जल गया था। मुने ! इसी कारण तुम्हें वे दोनों शरीर प्राप्त नहीं हुए हैं, ऐसे स्वप्न-संसाररूपी जाग्रत्-अवस्था में स्थित हो। सुव्रत ! इस प्रकार तुम्हारा यह स्वप्न ही जाग्रद्भाव को प्राप्त हो गया है और हम सब लोग तुम्हारे स्वप्नपुरुष हो गये हैं। यों तुम हमारे स्वप्नपुरुष हो और हम लोग तुम्हारे स्वप्नपुरुष हैं, किंतु यह चिदाकाशरूप आत्मा सर्वदा अपने स्वभाव में ही स्थित है। स्वप्नपुरुष होते हुए जब से तुम्हें 'मैं जाग्रत्पुरुष हूँ' ऐसी प्रतीति हुई, तब से तुम जाग्रत्पुरुष बनकर पूर्णरूप से गृहस्थाश्रम में स्थित हो। तात ! इस प्रकार वहाँ जैसी घटना घटी थी, वह सारा प्रसंग मैंने तुम्हें पूर्णरूप से सुना दिया। अब यदि तुम्हें मेरे कथन में संदेह हो तो तुम स्वयं ही ध्यानद्वारा इस अनुभूत दृश्य को देख सकते हो। इस प्रकार जो आदि और मध्य से रहित है, जिसका रूप अनन्त है तथा शरीर अपनी विकसनशक्ति के उत्कर्ष से चंचल हो रहा है, ऐसा यह संविद्घन (ज्ञानस्वरूप) चिन्मयात्मा ही स्वयं अपने आप में अनेक शुभाशुभ सृष्टियों के रूप में आकाश में फैले हुए सूर्य के सुनहले घाम की तरह विकसित होता है।

नब्बेवाँ सर्ग समाप्त

इक्यानवेवाँ सर्ग

जीवन्मुक्त ज्ञानी के स्वरूप का वर्णन तथा अभ्यास की प्रशंसा

समागत मुनि ने कहा-मुने ! उस प्राणी के शरीर तथा मेरे शरीर आदि का वास्तव में अस्तित्व न होने के कारण यह सब आदि-अन्त रहित चिदाकाश ही है। इस का रूपकर्ता, कर्म और करण से हीन, क्रमशून्य चिद्घन है। ये घट, पट और अवट आदि चिदाकाश के विकास हैं, अतः ये स्पष्ट आकारवाले कहाँ से हो गये। वस्तुतः यह चिन्मात्र का भी विकास नहीं है, बल्कि केवल चिन्मात्राकाश ही है; फिर उसका कैसा और क्या विकास। क्या कहीं आकाश का विकास होता है ? भला, शून्य वस्तु कैसे विकसित होगी।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0. Jammu Collection

चिन्मात्र का विकास महान् चिद्घनरूप शुद्ध ब्रह्म है। वही जगत् की तरह अवभासित हो रहा है। ऐसी दशा में दृश्य कहाँ और द्रष्टापन तो फिर आ ही कहाँ से सकता है ? अतः जो कालतः आदि-अन्तशून्य, देशतः आदि-मध्यहीन, वस्तुतः अद्वितीय, कारण, कार्य और तद्धीन प्राणियों से परे, सत्तामय, भुवन, शैल और दिगन्तों के कारण नाना-अनानारूप, अप्रमेय, सर्वव्यापक चेतन है, वही सब कुछ है।

मुनि बोले-व्याध ! ऐसा निर्णय करके मैं इस दृश्य में स्थित हूँ मेरा संताप और राग नष्ट हो गया है। मैं आशंका और अहंकार से शून्य होकर निर्वाणस्वरूप हो गया हूँ। न मेरा कोई आधार है और न मैं ही किसी का आधार हूँ। मैं मान और आश्रय से रहित होकर अपने चित्-स्वभाव में स्थित हूँ तथा सर्वथा शान्त होकर सृष्टिरूप से प्रकट हूँ। मैं शान्ति-लाभ कर रहा हूँ, चारों ओर से निर्वाण-सुख में निमग्न हूँ और केवल आत्मसुख में स्थित हूँ। मैं विधि-निषेध से परे हो गया हूँ। अब मेरे लिये न कुछ बाह्य है न आन्तर। इस प्रकार मैं यहाँ यथाप्राप्त स्थिति के अनुसार निवास करता हूँ। तुम तो आज सहसा मेरे सामने आ गये हो।

व्याध ने कहा-मुनिवर ! यदि ऐसी बात है तो मैं, आप और ये समस्त देवता आदि सबके सब परस्पर एक-दूसरे के सत्-असत्-स्वरूप स्वप्नपुरुष हो जायँगे।

मुनि बोले-व्याध ! तुम्हारा कथन ठीक है; क्योंकि यह सब-का-सब परस्पर स्वप्न के समान स्थित है तथा अपने में एक-दूसरे का सत्-असत् सा अनुभव होता है। जिसने दृश्य को जैसा समझा है, उसे तदनुकूल ही उसका अनुभव होता है। वह दृश्य वस्तु अनेक है और एक भी है। (अज्ञानियों के लिये अनेक है, किंतु जो तत्त्वज्ञानी हैं, उनके लिये) जाग्रत्-काल में वह स्वप्न नगर के समान तथा पहले न देखे हुए दूर देश में स्थित दृश्यमान नगर के सदृश प्रतीतिमात्र ही है; अतः वह न एक है, न सत् है, न असत् है और न सत्-असत् ही है। लुब्धक ! इस प्रकार मैंने तुमसे सब कुछ वर्णन कर दिया। मेरे निरन्तर ज्ञानोपदेश करते रहने से तुम ज्ञानसम्पन्न हो गये हो। यों तो तुम स्वयं ही ज्ञानवान् हो और सब कुछ जानते हो; अतः तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो। प्राज्ञ ! यह ज्ञान अभ्यासद्वारा परिपक्व हुए बिना मन के अंदर वैसे ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shama Prasad Jain Kosha Collection

नहीं प्रवेश करता, जैसे कमण्डलु आदि के आकार में परिणत हुए बिना काष्ठ में जल नहीं टिक सकता। एकमात्र गुरु और शास्त्र के सेवनरूपी अभ्यास से बोध में विश्राम प्राप्त होने पर जब द्वैत और अद्वैत की दृष्टि शान्त हो जाती है, तब चित्त निर्वाण कहलाता है। जो अभिमान और मोह से रहित हैं, जिन्होंने संगदोष-आसक्ति पर विजय प्राप्त कर ली है, जो नित्य अध्यात्म-ज्ञान में लीन रहते हैं, जिनकी कामनाएँ पूर्णरूप से निवृत्त हो गयी हैं तथा जो सुख दुःखसंज्ञक द्वन्द्वों से विमुक्त हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष ही परमात्मा के उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं।

यह सुनकर वह अपने व्याध-कर्म का परित्याग करके मुनियों के साथ रहकर तपस्या करने को उद्यत हो गया। फिर तो उसने उन्हीं मुनियों के साथ उन-उन भावनाओं से भावित होकर सदा उसी लोक में निवास करते हुए अनेकों सहस्त्र वर्षों तक अत्यन्त घोर तपस्या की। अपने तपः-काल में ही उसने उन मुनि से पुनः पूछा-'मुनिवर ! मुझे आत्मविश्रान्ति कब प्राप्त होगी ?' तब मुनि ने कहा-व्याध ! मैंने तुम्हें जिस ज्ञान का उपदेश दिया था, वह तुम्हारे हृदय के अंदर मौजूद तो है, किंतु वह पुरानी लकड़ी के अंदर स्थित थोड़ी-सी अग्नि के समान बलहीन है, इसलिये जिसे जला डालना उचित है, उस दृश्य पर आक्रमण करने में असमर्थ है। अभ्यास की कमी के कारण अभी तुम्हें कल्याणप्रद ज्ञान में विश्राम की प्राप्ति नहीं हुई है। कुछ काल के पश्चात् अभ्यास के सुदृढ़ हो जाने पर तुम्हें पूर्ण विश्राम प्राप्त हो जायगा।

इक्यानवेवाँ सर्ग समाप्त

बानवेवाँ सर्ग

आत्मतत्त्व का निरूपण

तदनन्तर मुनि ने भविष्य में व्याध के तप करके ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करने, उसकी काया की वृद्धि होने, मृत्यु को प्राप्त होने, फिर राजा सिंधु बनकर मन्त्री के मुख से तत्त्व सुनने की बात का सविस्तार वर्णन करके कहा-'व्याध ! मैंने भविष्य में होने वाली सारी घटनाओं का अतीत की तरह तुमसे वर्णन कर दिया। अब इस समय तुम्हारी जैसे इच्छा हो, वैसा भली-भाँति सोच-समझकर करो।'

अग्नि ने कहा-विपश्चित् ! मुनि का पूर्वोक्त वचन सुनकर व्याध का

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Jhaveri (I F Jain) Collection

चित्त विस्मय से पूर्ण हो गया। वह क्षणभर तक ठगा-सा खड़ा रहा। फिर तुरंत वह तथा वे मुनि स्नान करने के लिये चले गये। इस प्रकार अकारण ही सुहृद् बने हुए वे दोनों व्याध और महामुनि शास्त्र-चिन्तन करते हुए वहाँ तपस्या करने लगे। तदनन्तर थोड़े ही समय में मुनि को निर्वाण की प्राप्ति हो गयी। वे आयु के अवसान में अपने पाञ्चभौतिक शरीर का त्याग करके परमपद में लीन हो गये। उधर व्याध चिरकालतक तपस्या करता रहा। जब सैकड़ों युग बीत गये, तब उसकी कामना पूर्ण करने के लिये पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा वहाँ आये। बेचारा व्याध अपनी वासना के आवेश को निवारण करने में समर्थ न हो सका; अतः मुनिद्वारा पहले ही बनायी हुई अपने वर की व्यर्थता को जानते हुए भी उसने ब्रह्माजी से वही वर माँगा। तब ब्रह्माजी 'एवमस्तु-ऐसा ही हो' यों कहकर अपनी अभीष्ट दिशा की ओर चले गये और वह व्याध अपनी तपस्या का फल भोगने के लिये पक्षी की तरह आकाश की ओर उड़ चला। वहाँ गरुड़ के सदृश महान् वेग से ऊपर-नीचे टेढ़ी-मेढ़ी अनेक उड़ानें भरता हुआ आकाश को पूर्ण-सा करने लगा। यों करते-करते उसका बहुत-सा समय बीत गया। इतने लंबे समय के बीतने के पश्चात भी जब उसके अविद्या-भ्रम का अन्त नहीं आया, तब उस विषय से उसे वैराग्य हो गया। तदनन्तर वैराग्य हो जाने के कारण उसने आकाश में ही प्राणों का विरेचन करने वाली योगधारणा बाँधकर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया और उसका शरीर मुर्दा-सा होकर नीचे की ओर लटक गया। उसका प्राणवायुसमन्वित चित्त तो उस अव्यक्ताकाश में ही राजा विदूरथ की शत्रुरूपा पूर्वोक्त सिन्धुता को प्राप्त हो गया। (अर्थात् पूर्वोक्त राजा विदूरथ के शत्रु राजा सिन्धु का रूप धारण कर लिया) जो सारे भूमण्डल का पालन करने वाली थी तथा वह शरीर सैंकड़ों मेरुका-सा विशालकाल होकर महाशव के रूप में परिणत हो गया। फिर तो दूसरी पृथ्वी के सदृश वह विशाल शव अशनि एवं वज्र के गिरनेका-सा शब्द करता हुआ आकाश से भूतल पर गिर पड़ा।

विपश्चितों में श्रेष्ठ पुरुष ! इस प्रकार मैंने तुमसे उस महाशव का वर्णन कर दिया। जिस भूमण्डलरूप जगत् में वह शव गिरा था, वही यह जगत् है जो हमलोगों के सवप्ननगर के सदृश स्फुरित हुआ है।

भो श्रेष्ठ विपश्चित् ! साधुशिरोमणे ! तुम पुनः प्रकृत व्यवहार के समान

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

स्थिर भूमण्डल में अपनी अभीष्ट दिशा को चले जाओ। गतिकोविद ! प्रजावर्ग के स्वामी इन्द्र स्वर्गलोक में अपने सौवें यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहते हैं। उन्होंने मन्त्रद्वारा मुझे आमन्त्रित किया है, अतः मैं तो वहाँ जाता हूँ।

भास बोले-राजन ! यह कहकर भगवान् अग्नि अपने स्वरूप से तो वहीं अन्तर्धान हो गये, परंतु अग्निरूप से वे निर्मल आकाश में बिजली की अग्नि की तरह जाते हुए दीख पड़े तथा मैं भी चित्तद्वारा अपनी प्राक्तन अविद्या के संस्कारों को वहन करता हुआ पुनः स्वयं अपने दिगन्तगमनरूप कर्म का निर्णय करने के लिये आकाश में भ्रमण करता हुआ स्थित रहा। उस समय आकाश में मुझे फिर अगणित जगत् दृष्टिगोचर हुए। उनकी रूपरेखाएँ भिन्न-भिन्न थीं तथा उनके आचार-विचार भी अनेक तरह के थे। भूपाल ! उन लोकों में कहीं बहुत-से प्राणी एकीभूत हो गये थे, जिससे उनके अंग छत्ते-सरीखे भासित होते थे। उनमें चेतना थी। वे मन्दगति से चलते थे और दर्शकों के हृदयों को हर लेते थे। ऐसे बहुत से प्राणी मुझे आकाश में दृष्टिगोचर हुए। इस प्रकार मैं चिरकाल तक देखता रहा, किंतु स्वप्नकालिक मनोमात्र देह होने के कारण उनका विनाश होते हुए तो देखा; परंतु मुझे अविद्या का अन्त नहीं दीख पड़ा। तब मैं उस दृश्यवर्ग से उद्विग्न हो गया और किसी एकान्त स्थान में जाकर मोक्षसिद्धि के लिये तपस्या करने को उद्यत हुआ।

उसी समय इन्द्र ने मुझसे कहा-'विपश्चित् ! चित्तकाश में तुम्हारे लिये दूसरी मृगयोनि उपस्थित है; क्योंकि तुम्हारी यह चित्-शक्ति चिरकाल तक मृग योनि में ही संसरण करना चाहती है। इस प्रकार मैंने तुम्हारे अवश्यम्भावी वृत्तान्त को देख लिया है। तुम मृगयोनि में उत्पन्न होकर राजा दशरथ की उस महापुण्यस्वरूपा सभा में पहुँचोगे। वहाँ मेरे द्वारा कहा हुआ सारा-का-सारा ज्ञान तुम्हारी समझ में आ जायगा। इसलिये अब तुम संसार से खिन्न होकर भूतल पर मृगयोनि में जन्म धारण करो। वहाँ तुम्हें इस सम्पूर्ण कल्पित आत्मवृत्तान्त का पूर्णरूप से स्मरण होगा। पुनः जब मृगयोनि से मुक्त हो जाओगे, तब तुम्हें पुरुष की प्राप्ति होगी। उस समय जब ज्ञानाग्नि द्वारा तुम्हारा शरीर दग्ध हो जायगा, तब तुम्हारा हृदयस्थ आत्मज्ञान स्फुरित होगा। उस आत्मज्ञान के स्फुरण से तुम उस अविद्या नामक भ्रान्ति को, जो चिरकाल से तुम्हारे हृदय में स्थित है, त्यागकर स्पन्दरहित वायु के समान उत्तम निर्वाण को प्राप्त हो जाओगे।'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

देवराज इन्द्र के यों कहने पर उसी समय 'इस वन में मैं यह मृग हूँ' ऐसी मेरी निश्चित प्रतिभा उद्भूत हुई। तभी से मैं उसी श्रेष्ठ पर्वत पर मन्दार-वन के भीतरी कोने में तृण और दूर्वाकुरों का आहार करने वाला मृग हो गया। रघूद्वह ! तदनन्तर एक समय सीमावर्ती एक सामन्त शिकार खेलने के लिये वहाँ आया। उसे देखकर मैं भयभीत हो गया और छलाँग मारकर भागा; परंतु उसने आक्रमण करके मुझे पकड़ लिया और घर ले जाकर तीन दिन तक वहाँ रखा। तत्पश्चात् वह तुम्हारे मनोविनोद के लिये मुझको यहाँ ले आया। निष्पाप राम ! यों मैंने अपनी सारी आत्मकथा का, जो संसार की माया के समान तथा नाना प्रकार के आश्चर्यरूपी रस से पगी है, तुमसे वर्णन कर दिया। इस प्रकार नाना प्रकार की शाखा-प्रशाखाओं के विस्तार से युक्त वह अविद्या अनन्त है। यह आत्मज्ञान के अतिरिक्त और किसी भी उपाय से शान्त नहीं हो सकती।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! जब वह विपश्चित् वहाँ इतना कहकर चुप हो गया, तब उसी क्षण प्रशंसनीय बुद्धिवाले श्रीराम उससे यों बोले।

श्रीरामजी ने पूछा-प्रभो ! यदि दूसरे का संकल्पभूत मृग अपने आत्मा में दृष्टिगोचर हुआ है तो इससे सिद्ध हुआ कि इसी प्रकार असंकल्प पुरुष दूसरे के संकल्परूप सृष्टि में वस्तुएँ देख सकता है। परंतु यह कैसे सम्भव होगा-इसे बतलाने की कृपा कीजिये।

विपश्चित ने कहा-राघव ! पहले जिस जगत् के भूतल पर वह महाशव गिरा था, उसी भूमि पर इन्द्र यज्ञ के गर्व से गर्वीले होकर विचरण कर रहे थे। वहीं आकाश में महर्षि दुर्वासा ध्यानमग्न होकर बैठे थे। इन्द्र को यह पता नहीं था कि ये मुनि हैं। उन्होंने अज्ञानवश मुर्दा समझकर उन्हें पैर से ठोकर मार दी। इससे महर्षि दुर्वासा कुपित हो गये और इन्द्र को शाप देते हुए बोले- 'देवराज ! तुम जिस भूतल पर जाना चाहते हो, तुम्हारे उस अवनितल को ब्रह्माण्ड के समान विशाल एवं महाभयंकर शव शीघ्र ही चूर-चूर कर देगा। मुर्दा समझकर जो तुमने मेरा अतिक्रमण किया है, इस कारण मेरे शाप से तुम शीघ्र ही उस पृथ्वी को प्राप्त होओगे।' वस्तुतः तो एक (व्यावहारिक) जगत् न सत् है और न दूसरा (कल्पित) जगत् असत् ही है, क्योंकि ये दोनों, जैसी प्रतिभा उदित होती है, तदनुकूल प्रतीत होते हैं। इसलिये इनमें किसे सत् कहा जाय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अथवा किसे असत् कहा जाय। अथवा राघव ! इस प्रसंग में मैं तुम्हें एक दूसरी युक्ति बतलाता हूँ, जिससे बात स्पष्टरूप से समझ में आ जायगी, उसे सुनो। महाभाग ! जिसमें सब कुछ है, जिससे सबकी उत्पत्ति हुई है, जो स्वयं सर्वात्मक एवं सर्वव्यापक है, उस ब्रह्म में सभी कुछ सम्भव है। इसीलिये सर्वात्मा में संकल्पजनित पदार्थ परस्पर मिलते हैं-यह बात अवगत होती है, क्योंकि लोक में भी देखा जाता है कि जहाँ छाया रहती है, वहीं धूप भी रहती है। ऐसा सम्भव न हो तो उसे सर्वात्मता की प्राप्ति ही कैसे होगा ? इसलिये सर्वात्मा में संकल्पनगर परस्पर नहीं मिलते हैं-यह भी सत् है और परस्पर मिलते हैं-यही सत् है इस प्रकार जो सत्य नहीं है, उसका अस्तित्व नहीं है और जो मिथ्या नहीं है, वह भी नहीं है; क्योंकि सर्वात्मा में सब कुछ सर्वत्र सर्वथा एवं सर्वदा वर्तमान है।

रघुनन्दन ! यह ब्रह्मसत्ता ऐसी है, जो स्वयं ही अपने से अपना सृजन करती है तथा उसी के प्रभाव से अविद्या सादि एवं अनादिरूप से अनुभूत होती है। इस ज्ञानदृष्टि से सभी कुछ क्षणभर में ही प्रमाणभूत हो जाता है और अन्य दृष्टि से ऐसा नहीं होता, इसीलिये विद्वान् लोग ज्ञानदृष्टिसिद्ध वस्तु को ही सारभूत मानते हैं। पूर्ण दृष्टि होने पर ज्ञानता तथा अज्ञानता एवं सत् और असत् की स्थिति का कुछ भी भेद नहीं है; क्योंकि सत्य ब्रह्म में सत और असत्-दोनों एक-से हैं, इसलिये सब कुछ काष्ठवत् मौन अर्थात् चिद्रूप ही है। जो दृश्य है, वह अनन्त है, वही ब्रह्मता है और वही परमपद है, इसलिये यह सब कुछ चिदाकाशमयी सर्ग श्री भी सृष्टि के आदि में स्वप्न-तुल्य शान्त ब्रह्मस्वरूप ही है-यह स्वतः सिद्ध हो जाता है।

बानवेवाँ सर्ग समाप्त

तिरानवेवाँ सर्ग

जितेन्द्रिय की प्रशंसा और इन्द्रियों पर विजय पाने की युक्तियाँ

श्रीवाल्मीकि जी कहते हैं-भारद्वाज ! विपश्चित् यह कह ही रहा था कि सूर्यदेव मानो उस वृत्तान्त का अवेक्षण करने के लिये अपने दूर तक फैले हुए किरणरूपी पादों से दूसरे लोक को चले गये। तब दिन का अन्त सूचित करने वाला नगाड़ा अपने शब्द से दसों दिशाओं को पूर्ण करता हुआ-सा उसी प्रकार बज उठा मानो संतुष्ट हुई दिशाओं से जय-जयकार की ध्वनि आ रही हो।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshagnanmandir Trust Jammu Collection

इधर महाराज दशरथ विपश्चित् को अपने राज्य के अनुरूप क्रमशः गृह, स्त्री और धन आदि विभव प्रदान करने के लिये आदेश देते हुए सिंहासन से उठ पड़े। फिर तो राजा दशरथ, श्रीराम और वसिष्ठ आदि सभी सभासदों ने परस्पर क्रमानुसार एक-दूसरे को प्रणाम आदि के द्वारा सत्कार किया और फिर सभा विसर्जित करके वे अपने-अपने निवास-स्थान को चले गये। वहाँ उन्होंने स्नान-संध्या आदि नित्यकर्म से निवृत्त होकर भोजन किया और रात बिताकर प्रातःकाल वे पुनः सभा में आ गये। फिर तो वह सभा पहले के ही तरह पूर्णरूप से स्थित हो गयी। तदनन्तर जैसे चन्द्रमा अपनी किरणों से अमृत की वर्षा करता है, वैसे ही मुनिवर ने अपने मुखरूपी किरणों से आह्लाद उगलते हुए उस यथाप्रस्तुत कथा का क्रमशः वर्णन करना आरम्भ किया।

राजन् ! यह अविद्या नहीं है। यह असत् होती हुई सत्-सी स्थित है। उपर्युक्त प्रकार का महान् प्रयत्न करने पर भी विपश्चित् उसका निर्णय नहीं कर सका। इस प्रकार जब तक इस अविद्या का पूर्णतया ज्ञान नहीं हो जाता तभी तक यह अनन्त प्रतीत होती है; किंतु पूर्णरूप से जान लिये जाने पर तो मृगतृष्णा-नदी के समान इसका अस्तित्व ही मिट जाता है।

श्रीरामजी ने पूछा-गुरुदेव ! भास द्वारा वर्णित मुनि और व्याध का जो सुख-दुःखादि नाना दशाओं से युक्त वृत्तान्त है, यह क्या किसी कारणान्तर से घटित हुआ था या स्वभावज है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! यह अपना आत्मा परमात्मारूप महासागर है। इसमें इसी प्रकार के शून्यात्मक प्रतिभारूप आवर्त निरन्तर अपने-आप स्वाभाविक ही उठते रहते हैं।

श्रीराम ! सत्य वस्तु में 'यह जाग्रत् है, यह स्वप्न है' इस प्रकार जो भिन्नता प्रतीत होती है, उसका उन दोनों की समानरूपता का पूर्णरूप से अनुभव हो जाने पर विनाश हो जाता है। जो जाग्रत् है, वही स्वप्न है और जो स्वप्न है, वही जाग्रत् है; क्योंकि कालान्तर में 'निश्चय ही यह ऐसा नहीं है' ऐसी बाध-बुद्धि दोनों में समान होती है। जैसे जीवनपर्यन्त नियमरहित सैकड़ों स्वप्न होते हैं, उसी तरह निर्वाणरहित महान् अज्ञान में सैकड़ों जाग्रत भी होते हैं। जैसे लोग उत्पन्न होकर नष्ट होने वाले बहुत से स्वप्नों का स्मरण करते हैं वैसे ही पूर्वजन्म की स्मृति कराने वाले योग से सम्पन्न प्रबुद्ध पुरुषों को सैकड़ों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshi Gharma (I.F.S) Jammu Collection

जन्मों का भी स्मरण होता है। जैसे दृश्य और जगत्-दोनों नित्य ही एकार्थक हैं, वैसे ही जाग्रत और स्वप्न-ये दोनों शब्द भी एकार्थक कहे जाते हैं।

रघुकुलभूषण राम ! जैसे तरंगें नदी के जल में द्रवरूप से स्थित हैं, उसी तरह सृष्टिरूपी लहरें चित्स्वभाव (चेतन का संकल्प) होने के कारण चेतन में ही स्थित हैं। यह चित् की छाया ही 'जगत्' नाम से प्रस्फुरित होती है। यह आकाररहित होते हुए भी मूर्तिमती सी होकर द्रव्य की छाया के समान व्याप्त है। आत्मा ही अपना बन्धु है और आत्मा ही अपना शत्रु है। यदि आत्मा द्वारा आत्मा की रक्षा न की गयी तो फिर उसकी रक्षा का दूसरा कोई उपाय नहीं है। जीव की बाल्यावस्था को ज्ञानहीन होने के कारण पशुता-सी और वृद्धावस्था को मृत्यु-तुल्य ही समझना चाहिये। यदि विवेकसम्पन्न हो तो युवावस्था ही उसका जीवन है। इस संसार को, जो बिजली के कौंधने के समान चंचल है, प्राप्त होकर सत्-शास्त्र-चिन्तन एवं सत्पुरुषों के संग द्वारा अज्ञानरूपी कीचड़ से आत्मा का उद्धार करना चाहिये। अहो ! खेद है। ये मनुष्य कैसे क्रूर हैं, जो कीचड़ में फँसे हुए अपने आत्मा का भी उद्धार नहीं कर रहे हैं। भला, इनकी क्या गति होगी। जैसे मिट्टी की बनी हुई वेताल-सभा उसके रहस्य से अनभिज्ञ ग्रामीण पुरुष को भय आदि दुःख प्रदान करने वाली होती है, किंतु जिसे उसके यथार्थ रहस्य का यों ज्ञान हो गया है कि यह मृन्मयी ही है, उसके लिये वह दुःखदायिनी नहीं होती, वैसे ही यह ब्रह्ममयी दृश्यलक्ष्मी अज्ञानी को भयादि क्लेश पहुँचाती है; किन्तु 'यह दृश्य ब्रह्म ही है' यों यथार्थ ज्ञान हो जाने पर वह कष्टदायिनी नहीं होती। इस दृश्य के तत्त्व का परिज्ञान हो जाने से यह अशान्त होता हुआ भी शान्त तथा स्थित होता हुआ भी विलीन हो जाता है और दृश्यमान होता हुआ भी दिखायी नहीं पड़ता। जैसे अपने स्वप्नकाल में स्पष्टरूप से अनुभव में आया हुआ भी स्वप्न-जगत् उसका पूर्ण ज्ञान हो जाने से अथवा जाग जाने से असत्य ही हो जाता है, वैसे ही चिदाकाश में अनुभूयमान अतएव सत्य-सी स्थित हुई भी यह सृष्टि तत्त्व ज्ञान हो जाने से केवल शून्यरूप ही अवशिष्ट रह जाती है।

श्रीरामजी ने पूछा-मुनिवर ! जब इन्द्रियों पर विजय पाये बिना इस अज्ञान का उपशमन नहीं होता, तब मुझे यह बतलाने की कृपा कीजिये कि इन इन्द्रियों को कैसे जीता जा सकता है ?

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Charmaji (S) Jammu. Collection

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–राघवेन्द्र ! जैसे मन्द दृष्टिवाले पुरुष के लिये सूक्ष्म पदार्थ के निरीक्षण में दीपक उपयोगी नहीं होता, उसी तरह प्रचुर भोगों में आसक्त, भौतिक पुरुषार्थ सम्पादन में संलग्न, जीविकोपार्जन में दत्तचित्त तथा इन्द्रियजय-विहीन पुरुष के लिये केवल शास्त्रादि साधन उपयोगी नहीं होते। इसलिये तुम इन्द्रियजय में निमित्तभूत इस युक्ति को अविकल रूप से श्रवण करो। इस युक्ति के आश्रय से अपने प्रयत्न द्वारा सम्पादित थोड़ी सी भी साधन सम्पत्ति सुखपूर्वक सिद्धि को प्राप्त हो जाती है। इस इन्द्रियरूपी सेना का चित्त ही सेनापति है, अतः उसपर विजय पा लेने से इन्द्रियों पर स्वतः विजय प्राप्त हो जाती है–ठीक उसी तरह, जैसे जूते से सुरक्षित पैरवाले पुरुष के लिये सारी पृथ्वी ही चर्माच्छादित-सी हो जाती है। जो चित्तावच्छिन्न चेतन जीव को संविदाकाशरूप(ज्ञानस्वरूप) ब्रह्म में एकीभूत करके अपने स्वरूप में स्थित है, उस पुरुष का मन शारदीय कुहरे की तरह स्वयं ही शान्त हो जाता है। जिसने निरन्तर अपने संवेदन (ज्ञान) रूपी प्रयत्न के द्वारा चित्तवृत्ति को विषयरूपी मांस से हटा लिया है, उसे तत्त्वज्ञानियों का स्वराज्य पद प्राप्त हुआ ही समझिये। जो स्वधर्म विरुद्ध कार्यों में आत्मप्रवृत्तिका त्याग करके शम और संतोष का उपार्जन करता हुआ स्थित है, वही तिजेन्द्रिय है। जिसका मन अपने अंदर आत्मरसिकता और बाहर नीरसता का अभ्यास करने में उद्विग्न नहीं होता, उसका मन शान्त हो जाता है। प्रयत्नपूर्वक भली भाँति निरोध कर देने से मन अपने आश्रय स्थान (विषयानुधावनरूप दुर्व्यसन) का त्याग कर देता है और जब वह चंचलता से निर्मुक्त हो जाता है तब विवेक की ओर मुड़ता है। विवेकसम्पन्न मन उदारात्मा और विजितेन्द्रिय कहा जाता है। फिर वह भवसागर में वासनारूपी तरंगों के वेग से विमोहित नहीं होता। इस प्रकार जितेन्द्रिय होकर वह साधु-समागम और सत्शास्त्रों के अनुशीलन से जगत् को यथार्थरूप से सत्यब्रह्मस्वरूप देखने लगता है। उस सत्यब्रह्म के अवलोकन से संसारभ्रम उसी प्रकार शान्त हो जाता है, जैसे जल का ज्ञान हो जाने पर मरुस्थल में प्रतीत होने वाली जल की भ्रान्ति मिट जाती है। चेत्यभिन्न चिन्मात्र ही यह जगद्रूप से स्थित है–ऐसा सत्य बोध जिसे प्राप्त हो गया है, उसे बन्ध मोक्ष की दृष्टि कहाँ से प्राप्त हो सकती है ? 'अहं' 'त्वं' आदिरूप यह जगत् अविद्यामात्र ही है। यह मिथ्या होने के कारण शान्त अतएव केवल शून्यस्वरूपवाला है और चिदाकाश में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection

ही स्थित है।

रघुनन्दन ! जिनका चित्त उस ब्रह्म में रम गया है और प्राण उसी में लीन हो गये हैं, वे परस्पर ज्ञानोपदेश करते तथा ब्रह्मविषयक चर्चा करते हुए संतुष्ट होते हैं और आनन्द मनाते हैं। इस प्रकार निरन्तर परमात्मा में युक्तचित्तवाले तथा प्रेमपूर्वक भजन करने वाले योगियों को उस बुद्धियोग की प्राप्ति होती है, जिससे वे उस परमपद को प्राप्त हो जाते हैं। जब तृणमात्र के संरक्षण में भी यत्नपूर्वक किया गया साधन ही उपकारी होता है, तब भला, त्रिलोक समूह का संरक्षण यत्न के बिना कैसे सिद्ध हो सकता है। मन का अंकुररूप जो राज्यादि सुख है, वह क्या कोई सुख है ? अर्थात् वह तो अत्यन्त ही तुच्छ है; क्योंकि तत्त्वज्ञान में पूर्णतया विश्राम प्राप्त हो जाने पर देवराज का पद भी तृणवत् लगने लगता है। जैसे दृश्य-प्रपंच में रत पुरुष सुप्तावस्था अथवा जाग्रदवस्था में दृश्य को ही देखते हैं, वैसे ही दृश्य से विरक्त हुए शान्त ज्ञानी महात्मा उस परमपदरूप परमात्मा को ही देखते हैं। श्रीराम ! इस परमपद को तुम महान् अभ्यासरूपी वृक्ष का फल समझो। यह बिना घोर प्रयत्न किये कभी सिद्ध नहीं हो सकता। यदि अज्ञानी भी मेरे द्वारा कहे गये इस शास्त्र का बारंबार आवृत्तिद्वारा आस्वादन करे, श्रवण करे अथवा वर्णन करे तो वह तत्त्वज्ञानी हो सकता है। विचारपूर्वक मनन किये गये इस उत्तम शास्त्र से जो ज्ञान उत्पन्न होते हैं, उन ज्ञानों से अन्य शास्त्र भी उसी प्रकार रुचिकर लगने लगते हैं, जैसे नमक से व्यंजन। तत्त्वज्ञों का विषयभूत जो परम ब्रह्म है, वह सभी अवस्थाओं में भेदादि मल से रहित सदा एकरस ही रहता है। उसमें कभी किंचिन्मात्र भी द्वैतादि मल का अस्तित्व नहीं रहता। चिदाकाश में जो यह जगत् स्फुरित होता है, वह चिदाकाश का स्वभाव है, जो सूर्य की प्रभा के समान इस चिदाकाश में ही विकसित होता है।

तिरानवेवाँ सर्ग समाप्त

चौरानवेवाँ सर्ग

दृश्यजगत् की चैतन्यरूपता

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! चिन्मय परमात्मा ही इस दृश्यप्रपंच के रूप में फैला हुआ है। इसलिये ये घट, गड्ढे और पट आदि सब पदार्थ वस्तुतः शुद्ध चैतन्यरूप ही हैं। जैसे स्वप्न में शुद्ध चेतना ही घट-पटादि पदार्थों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I.F.S.) Jammu Collection

के रूप में भासित होती है और जैसे जल ही तरंगरूप में प्रतीत होता है, वैसे ही विशुद्ध चेतन-तत्त्व ही इस दृश्यरूप में प्रकाशित हो रहा है। तत्त्वज्ञ पुरुष घट-पट आदि समस्त भौतिक पदार्थों को ब्रह्मघन, चैतन्यघन, परमार्थघन और शान्तस्वरूप एकरस आनन्दघन का ही प्रसार मानते हैं।

श्रीराम ! आत्मख्याति, असत्ख्याति, अख्याति और अन्यथाख्याति-ये जो शब्दार्थ-दृष्टियाँ हैं, तत्त्वज्ञानी पुरुष के लिये खरगोश के सींग की भाँति असत् हैं। इनमें से कोई कभी भी सम्भव नहीं है। केवल चेष्टशून्य, शान्तस्वरूप, व्यावहारिक नाम आदि से रहित, ज्ञाता (साक्षी) परमात्मा ही सर्वत्र विराजमान हैं। वह जो चिन्मय प्रकाश के स्फुरण से आकाशस्वरूप शरीर (मूर्त जगत्), जो कि बिना दीवाल के चित्र-सा पदार्थों की सत्तामात्र है, प्रतीत होता है; वास्तव में अविनाशी ही है। जैसे जल में तरंगें होती हैं, उसी प्रकार शान्तस्वरूप परमात्मा में सदा और सर्वत्र वह जगत् चिन्मयरूप से ही विद्यमान है। जगत् जिस रूप में प्रतीत हो रहा है, वैसा ही प्रतीत होता हुआ भी चेतनाकाशरूप होने के कारण न सर्वथा असत् है और न सत् ही है। सारा दृश्य कुछ है और नहीं भी है। सर्वथा अनिर्वचनीय है। जिस रूप में इस जगत् की स्थित है, ऐसा ही इसका रूप है, या ऐसा नहीं है, यह सत् है या असत् है-संसारचक्र के विषय में उठने वाले इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर-जगत का यथार्थ स्वरूप तत्त्वज्ञानी महात्मा ही जानता है, दूसरा नहीं। रघुनन्दन ! चिन्मय आकाश में ही जो चिन्मय आकाश का स्फुरण हो रहा है, उसी ने उसी को जगत् समझा है। तत्त्वज्ञान होने के पश्चात् वह जगत् कहाँ टिक पाता है ? पूर्णपरब्रह्म परमात्मा से ही यह पूर्ण ब्रह्ममय जगत् उसके प्रकट न करने पर भी प्रकट हुआ-सा प्रतीत होता है। यह प्रतीति भी ज्ञानस्वरूप परमात्मा ही है। जो स्वयं मेरे अनुभव में आ रहा है, उस आत्मतत्त्व को इस प्रकार अत्यन्त विशदरूप से बारंबार उच्चस्वर से प्रकट कर रहा हूँ, तो भी कुछ मन्दाधिकारी लोगों के भीतर जो मूढ़ता घर किये बैठी है, वह स्वप्न-तुल्य जगत् में 'यह जाग्रत् सत्य ही है' ऐसे विश्वास का आज भी त्याग नहीं कर रही है। यह महान् खेद का विषय है। जो समझदार होने के कारण तत्त्वज्ञान का अधिकारी है, वह भी उस भ्रान्त धारणा को शीघ्र नहीं छोड़ रहा है। यह कैसा मोह है !

चौरानवेवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

पिच्चानवेवाँ सर्ग

जीवन्मुक्त तथा परमात्मा में विश्रान्त पुरुष के लक्षण

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! जिसकी बुद्धि अन्तर्मुखी है-आत्मस्वरूप परमात्मा में लगी हुई है तथा जिसे सुख के साधन सुख और दुःख के साधन दुःख नहीं दे पाते हैं, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जैसे अज्ञानियों की चित्तवृत्ति सब ओर फैले हुए विषयभोगों में आसक्त हो उनसे दूर नहीं हटती है, वैसे ही सच्चिदानन्दघन परमात्मा में अविचल निष्ठा रखने वाले जिस तत्त्वज्ञानी पुरुष की विवेकशालिनी बुद्धि वहाँ से विचलित नहीं होती, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जिसका चित्त अपनी चपलता छोड़कर चिन्मात्रस्वरूप परमात्मा में विश्राम लेकर वहीं रम गया है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। जिसका मन परमात्मा में विश्राम लेने के पश्चात् फिर वहाँ से हटकर इस दृश्यजगत् में नहीं रमता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

जो विशुद्ध बोधस्वरूप ज्ञानी महात्मा एकमात्र चेतनाकाशमय परमात्मा के चिन्तन में अनायास ही दृढ़तापूर्वक संलग्न होने के कारण किसी लौकिक सुख का अनुभव नहीं करता है, वह परमात्मा में विश्रान्त कहलाता है। जिसके सभी पदार्थों के विषय में सारे संदेह विवेकद्वारा वास्तव में नष्ट हो गये हैं, वह परमपद-स्वरूप परमात्मा में विश्रान्त कहलाता है। व्यवहार में लगे होने पर भी जिसके मन में कहीं किसी भी पदार्थ के प्रति अनुराग या आसक्ति नहीं है, वह परमात्मा में विश्रान्त कहलाता है। जो प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाय, उसी से निर्वाह करता है तथा जिसके सभी कार्य कामना और संकल्प से शून्य होते हैं, वह परमात्मा में विश्रान्त कहा गया है। जिस महापुरुष ने विश्रामशून्य,आधार रहित तथा लंबे संसारमार्ग में उसकी चिन्मात्ररूपता का साक्षात्कार करके आत्मा में विश्राम पा लिया है, उसकी सर्वत्र विजय है। जन्म-जरा आदि सांसारिक दुःख से ऊपर उठ कर भवसागर के पार पहुँचा हुआ श्रेष्ठ ज्ञानी महात्मा परम विश्रान्ति-सुख का अनुभव करता हुआ आत्मा में प्रतिष्ठित होता है। सारे जगत् का अभाव करके परमपूर्णता को प्राप्त हुआ आत्मज्ञानी पुरुष खूब छककर ब्रह्मानन्दमय अमृत का पान करता और सुख से सोता है; कैसी अद्भुत बात है ? आत्मज्ञानी पुरुष विषयानन्द के अभाव में भी निरतिशय ब्रह्मानन्द पाकर महान् आनन्द में विमग्न हो जाता है, अविनाशी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshji Jammu Samuh Collection.
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

अद्वैत सुख का अनुभव करता है तथा दूसरे प्रकाशों से प्रकाशित न होने वाले परमात्मा के महान् प्रकाश से सम्पन्न हो सुख से सोता है; यह कैसी विलक्षण स्थित है ? जिसके काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि रूप अन्धकार का नाश हो गया है, जो परमात्मा के महान् प्रकाश का रसिक बन गया है तथा केवल अमूर्त आनन्दरस में ही आस्वाद का अनुभव करता है, वह आत्मज्ञानी पुरुष ही सुख से सोता है; यह कितनी अद्भुत बात है ? आत्मज्ञानी पुरुष का जो सुखपूर्वक शयन है, उसमें अनन्त दुःखों के अनुभव के विषय में वह विरत होता है और वर्णाश्रमोचित व्यवहार में लोकसंग्रह के लिये वह लगा रहता है-उससे विरत नहीं होता। ब्रह्म पदार्थों में उसकी आसक्ति नहीं होती है तथा वह आन्तरिक सुख का निरन्तर अनुभव करता रहता है। जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा स्थूल से भी स्थूल है, उस आत्मा को चिदाकाशरूपी शय्या पर सुलाकर आत्मज्ञानी पुरुष अपूर्व सुख से सोता है। इस हमारे जगत् को अपने आत्मस्वरूप चेतनाकाश के एक कोने में स्वप्न के समान देखता हुआ वह विशद चिदाकाशस्वरूप आत्मज्ञानी पुरुष सुख से सोता है। लोकपरम्परा के अनुसार प्राप्त व्यवहाररूप मनोरम तृण राशि से निर्मित चटाई पर विश्राम को प्राप्त हुआ आत्मज्ञानी पुरुष सुखपूर्वक सोता है।

पिच्चानवेवाँ सर्ग समाप्त

छियानवेवाँ सर्ग

तत्त्वज्ञानी की स्थिति

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! जीवन्मुक्त पुरुष का मित्र कौन है जिसके साथ वह क्रीड़ा करता है ? उसकी क्रीड़ा का क्या स्वभाव है ? अपने आत्म स्वरूप में अवस्थिति ही उसकी क्रीड़ा है अथवा रमणीय भोगस्थानों में विहार करने से जो प्रसन्नता प्राप्त होती है, उसी को वह अपनी क्रीड़ा समझता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! जो अपना परम्परा प्राप्त सहज कर्म है, जो लोकसंग्रह के लिये किया जाने वाला अपना शास्त्रीय कर्म है तथा जो प्रयत्न से अभ्यास में लाया गया सत्-शास्त्रों का अभ्यास, विचार, सत्संग, शम, दम, तितिक्षा, उपरति, शौच, संतोष, ईश्वर-ध्यान और संयम आदि अपना कर्म है-ये तीनों प्रकार के कर्म, जो निन्द्य या निषिद्ध नहीं हैं, वास्तव में एक ही हैं। केवल उपाधिभेद से तीन नामों द्वारा कहे गये हैं। वह एकमात्र त्रिविध कर्म ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जीवन्मुक्त पुरुष का स्वाभाविक मित्र है। वह मित्र पिता के समान आश्वासन देने वाला, स्त्री के समान लज्जा द्वारा अकर्तव्य से रोकने वाला तथा जिनका निवारण करना कठिन है, ऐसे संकटों में भी सदा साथ देने वाला है। उसके सेवन में किसी प्रकार की शंका के लिये स्थान नहीं है। वह परमानन्द की सिद्धि में पूर्ण सहायक है तथा क्रोध के अवसरों पर भी कोपरहित होने के कारण सान्त्वनारूप अमृत प्रदान करने वाला है। ऐसे स्वकर्म नामक अपने सस्त्रीक मित्र के साथ वह जीवन्मुक्त पुरुष स्वभाव से ही रमता है, किसी दूसरे से प्रेरित होकर नहीं।

श्रीरामजी ने पूछा-मुनीश्वर ! उसके इस मित्र की स्त्री और पुत्र आदि कौन हैं तथा उनका स्वरूप क्या है ? उनमें कौन-कौन से गुण हैं ? यह संक्षेप से ही मुझे बताइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-महामते ! इस स्वकर्म नामक मित्र के 'स्नान', 'दान' और 'ध्यान' नामवाले चार महात्मा पुत्र हैं। उनके सद्गुणों से सारी प्रजा उनमें भलीभाँति अनुरक्त रहती है। इसकी पत्नी का नाम 'समता' है, जोग इसे बहुत प्रिय है। वह सदा अपने प्रियतम की हृदयवल्लभा होकर रहती है। चन्द्रलेखा के समान दर्शन मात्र से ही लोगों को आह्लाद प्रदान करती है सदा संतुष्ट रहती और प्रियतम में अनुराग रखती है। करुणा के कारण सब ओर अपना वैभव बाँटती रहती है। चित्त को चुरा लेने वाली और आनन्द की जननी है। सदा पति के साथ रहती और कभी अलग नहीं होती है। साधो ! जो सदा धैर्य और धर्म में लगायी जाती है, वह 'बुद्धि' ही इस समता रानी की प्रतीहारी (द्वारपालिका) है। वह सदा उसके सामने विनम्र रहकर उसे सुख देने में तत्पर रहती है। वह उस धर्म-धुरन्धर धन्यभागी धीर पुरुष के आगे-आगे दौड़ती है। इस महातेजस्वी राजा के मित्र की दूसरी स्त्री 'मैत्री' है जो राज्य पर बढ़े हुए शत्रुओं को पराजित करने के लिये राजा को उचित मन्त्रणा प्रदान करती है। वह सदा 'समता' के साथ राजा के कंधे से कंधा भिड़ाकर चलती है। इसके सिवा इन माननीय नरेश को आर्य मार्यादारूपी समस्त कार्यों के विषय में बड़ी चतुराई के साथ उपदेश देनेवाली आचार्यस्वरूपा 'सत्यता' इसका स्वार्थ सिद्ध करनेवाली धनाध्यक्षा है। इस तरह के उत्तम परिवारवाले मित्र एवं मंत्रीरूप अपने कर्म के साथ सर्वत्र व्यवहार निर्वाह करता हुआ जीवन्मुक्त पुरुष न तो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookanji sharma (I F S) Jammu Collection

लौकिक लाभ में हर्ष मानता है और न हानि होने पर कुपित ही होता है। निर्वाण मोक्ष में मन लगाये रहने वाला वह मननशील मुनि युद्धादि व्यवहार में तत्पर होने पर भी त्रिलिखित योद्धा की भाँति ज्यों-का-त्यों ही निर्लेप स्थित रहता है। निरर्थक वादविवादों में वह पत्थर की प्रतिमा की भाँति मूक बना रहता है। बेमतलब की बातों को सुनने में वह परले सिरे का बहरा बना रहता है। लोकाचार के विरुद्ध सभी कर्मों में मुर्दे के समान निश्चेष्ट होता है और सदाचार का विवेचन करते समय वह सहस्त्र जिव्हावाले वासुकि एवं देवगुरु बृहस्पति के समान वक्ता बन जाता है। उसकी वाणी से सदा पवित्र चर्चा ही प्रकट होती है। अपने या दूसरों के कुटिलतापूर्ण दोषों को वह शीघ्र ही ताड़ लेता है। वस्तुविषयक अत्यन्त दुरूह संदेह का भी पलक मारते-मारते निर्णय करके शीघ्र ही उसके स्वरूप का विवेचन कर देता है। उसकी दृष्टि में समता और हृदय में उदारता होती है। वह दानवीर होने के कारण सबको यथायोग्य धन वितरण करता है। उसका स्वभाव कोमल, स्नेहमय और मधुर होता है। वह सुन्दर एवं पुण्यकीर्ति होता है। जिनकी बुद्धि प्रबुद्ध-तत्त्वज्ञान के प्रकाश से आलोकित है। वे प्रयत्न से ऐसे नहीं बनते हैं। जैसे चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि आदि कभी दूसरे की प्रेरणा से प्रकाशित नहीं होते, वह प्रकाश उनका स्वाभावित गुण होता है, वैसे ही जीवन्मुक्त पुरुषों का यह स्वभावसिद्ध गुण बताया गया है।

शान्त तत्त्वज्ञानी पुरूष चलते-फिरते, खड़े होते, जागते और सोते समय भी सदा एकमात्र सच्चिदानन्द परमात्मा में समाहित रहता है। जो भेद में भी उभेदनिष्ठ है, दुःख में भी सुखमयी स्थितिवाला है और वाह्य संसार में रहकर भी अन्तर्मुख होने के कारण संसार में नहीं है। ऐसे ज्ञानी महात्मा के लिये दूसरा कौन-सा कर्तव्य या प्राप्तव्य शेष रह जाता है ? बाहर के कार्य-व्यवहार करता-हुआ भी तत्त्वज्ञ हृदय से न तो कुछ त्याग करता है और न ग्रहण ही करता है। वह सदा अकार्य नित्य परब्रह्म परमात्मा में ही स्थित है। ज्ञानी पुरूष अज्ञान के आवरण से मुक्त होता है। उसका अन्तःकरण सदा शान्ति और आनन्द का ही अनुभव करता है। उसके शत्रु-मित्रादि-विषयक विकल्प नष्ट हो जाते हैं। उसमें आत्मसुखस्वरूप सार वस्तु की ही प्रचुरता होती है तथा वह सदा परम शान्तिरूप अमृत से तृप्त रहता है। चारों ओर सुन्दर जगत् के रूप

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

में यह परब्रह्म ही स्फुरित हो रहा है। वह स्फुरण और अस्फुरण (सृष्टि और प्रलय काल) में भी अपने निर्विकार स्वरूप में ही अकेला स्थित रहता है। दृश्य प्रपंच के रूप में भासित होकर भी निर्मल, प्रशान्त चेतनाकाशरूप ही है। परंतु अज्ञानियों की दृष्टि में अनादिकाल से प्रलय और सृष्टि के उदयरूप से ही उदित है।

अज्ञ जनता के निश्चय को छोड़कर तत्त्वज्ञानी पुरुष की दृष्टि में ज्यों-का-त्यों स्थित हुआ यह जगत् सदा निर्विकार ब्रह्मरूप ही है। यदि तरंग चेतन हो और वह युक्ति से यह समझ ले कि मैं तरंग नहीं, जल ही हूँ तो उसकी तरंगता कैसे रह सकती है ? वेदान्तियों, जैनियों, सांख्यवादियों, बौद्धवादियों आदि आचार्यों, पाशुपतों तथा वैष्णव आदि आगमों ने भलीभाँति से प्रतिपादन करके जो-जो दृष्टिकोण उपस्थित किये हैं, उन सबके रूप में भी हमारा प्रतिपाद्य ब्रह्म ही स्फुरित हो रहा है। उन्होंने अपनी-अपनी दृष्टि से विभिन्न नामों द्वारा उस ब्रह्म का ही प्रतिपादन किया है। उन वादियों के अपने-अपने निश्चय के अनुसार पारलौकिक, ऐहलौकिक सुखरूप सारे फलों के रूप में वह ब्रह्म ही उपलब्ध होता है। ब्रह्म की ऐसी ही महिमा है; क्योंकि उसका स्वरूप सर्वात्मक है।

छियानवेवाँ सर्ग समाप्त

सत्तानवेवाँ सर्ग

निर्वाण अथवा परमपद का स्वरूप

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! सृष्टियाँ ब्रह्मरूपी समुद्र की तरंग हैं। उनमें चैतन्य ही जल है। जीवन्मुक्तों के अनुभव में आनेवाला वह चिन्मय जगत् अज्ञानियों के दुःखमय जगत् से भिन्न है। वह सच्चिदानन्दमयी दूसरी ही सृष्टि है। उसमें द्वैत और एकत्व आदि के दुःखमय भेद किस निमित्त से रह सकते हैं ? दृश्य का अत्यन्ताभावरूप जो बोध है, उसी को परमपद कहा गया है। वही ब्रह्म है और 'वह ब्रह्म मैं हूँ' इस प्रकार का ज्ञान मोक्ष है। ब्रह्म ही सब कुछ है। (क्योंकि 'तत्सर्वमभवत्' इस श्रुति से यही बात सिद्ध होती है) तथा वह कुछ भी नहीं है। (क्योंकि 'नेति-नेति' कहकर श्रुति ने इसी का समर्थन किया है)। रघुनन्दन ! ज्ञानी पुरुष ब्रह्म को इसी रूप में जानता है। सम्यक् ज्ञान से परम निर्वाणरूप मोक्ष की प्राप्ति बतायी गयी है। उसमें ज्यों-का-त्यों स्थित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

हुआ यह सारा विश्व अत्यन्त प्रलय को प्राप्त हो जाता है। वहाँ न अनेकत्व है, न एकत्व; न कुछ है, न कोई है। वह समस्त सदसद्भावों की सीमा का अन्त कहा गया है। जहाँ दृश्य की सत्ता अत्यन्त असम्भव है, जो शुद्ध बोध का उदयरूप है, जहाँ समस्त विक्षेपों का अभाव हो जाता है तथा जो निरतिशयानन्दरूप से स्थित और परम शान्त है, उस चिन्मय परमात्मा को ही परमपद समझना चाहिये।

यह परमात्मा जब तक अज्ञात रहता है, तभी तक अविद्यारूप मल की स्थिति है। इसका यथार्थ ज्ञान हो जाने पर सब कुछ विशुद्ध परब्रह्म ही है, यह अचल निश्चय हो जाता है। जो अनादि, अनन्त चिन्मय परमाकाशरूप है, उस परमात्मा में मल कहाँ से हो सकता है (क्योंकि ज्ञान होते ही अविद्यारूपी मल धुल जाता है)। प्रिय श्रीराम ! विचारदृष्टि से देखा जाय तो कुछ भी स्फुरित नहीं होता है; क्योंकि यह परम चेतन तो अत्यन्त विशुद्ध कहा गया है। जो एकमात्र सच्चिदानन्दमय है, उसका अपनेआप में कल्पित संकल्प ही इसदृश्य-प्रपंच के रूप में फैला हुआ है। वास्तव में तो परब्रह्म में न पृथ्वी आदि भूत हैं, न शरीर है और न चैतन्य से भिन्न दूसरा ही कोई दृश्यभाव है; किंतु एकमात्र चिन्मय परमात्मा ही अपने संकल्पद्वारा समष्टि मनोरूप होकर जगत् के आकार में बारंबार स्फुरित हो रहा है। विचारदृष्टि से देखने पर यह जगत् का स्फुरण भी कुछ नहीं है। केवल सच्चिदानन्दघन ही स्वयं अपने स्वरूप में भासित हो रहा है। जहाँ से वाणी लौट आती है, उस निरतिशयानन्दमय परमपद की प्राप्ति से तूष्णीम्भाव-स्वरूपभूत निश्चलता ही शेष रहती है (वह निश्चलता व्यवहारकाल में भी नहीं हटती है)। जीवन्मुक्त पुरुष संसार के व्यवहार में तत्पर रहता हुआ भी शुद्ध चिदाकाशरूप ही होता है और उसी रूप में वह मूकवत् स्थित रहता है। ज्ञानवानों में श्रेष्ठ रघुनन्दन ! चिदाकाश, ब्रह्म, चिन्मात्र, आत्मा, चिति महान् और परमात्मा-इन सब शब्दों को पर्यायवाची (समानार्थक) ही समझना चाहिये। ब्रह्म नेत्र की भाँति उन्मेष और निमेषरूप है अथवा वायु के समान स्पन्द और अस्पन्दरूप है। उसका जैसा प्रलयरूप निमेष है, वैसा ही सृष्टिरूप उन्मेष भी है। इन्हीं के नाम जगत् है। उसने आँखें खोलीं तो संसार की सृष्टि हो गयी और आँखें बन्द कीं तो जगत् का प्रलय हो गया। परंतु वह परमात्मा निमेष और उन्मेष-दोनों अवस्थाओं में एकरूप ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookshi Nirvana (Prakaran) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

रहता है। सौम्य रघुनन्दन ! इस कारण यह सम्पूर्ण जगत् जिस रूप में स्थित है, इसी रूप में इसे शान्त, अजन्मा, अजर, सभी अवस्थाओं में सम और चिदाकाशरूप ही समझना चाहिये। जिसका चित्त जिस वस्तु में रस लेता है, उसका वह चित्त वैसा ही हो जाता है। अतः एकमात्र परब्रह्म परमात्मा रसिक हुआ जो ज्ञानी का मन है, वह ब्रह्म भाव को ही प्राप्त हो जाता है और जिसका मन जिसमें रस पाता है, उसने उसी को सत् समझा है। जिसकी ज्ञानदृष्टि में दृश्य-अदृश्य, सत्-असत् तथा मूर्त-अमूर्त सब कुछ ब्रह्म ही है, उसकी दृष्टि में यहाँ अथवा और कहीं भी न तो कर्ता भोक्ता जीव की सत्ता है और न उसका अभाव ही है(क्योंकि एकमात्र वही ब्रह्मरूप से शेष रह जाता है)।

सहस्त्रों वादी मिलकर भी सत् से अतिरिक्त वस्तु की सत्ता का उपपादन नहीं कर सकते तथा उससे भिन्न जगत् का कोई यथार्थ कारण नहीं उपलब्ध होता। इसलिये स्वतः यह बात सिद्ध हो गयी कि आदिकाल से ही चिदाकाश अपने आपको ही दृश्यरूप से देखता है।

जैसे स्वप्न में 'स्वयं चिन्मय जीवात्मा ही स्वप्न जगत् के रूप से भासित होता है, वैसे ही यहाँ सृष्टि के आरम्भ में चिदाकाश के सिवा इस दृश्य का अन्य कोई कारण नहीं पाया जाता।

सत्तानवेवाँ सर्ग समाप्त

अठ्ठानवेवाँ सर्ग

सृष्टि की ब्रह्मरूपता का प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! तत्त्वज्ञानी की दृष्टि में कोई अज्ञानी है ही नहीं(वह एकमात्र ब्रह्म के सिवा दूसरी किसी वस्तु को देखता ही नहीं है)। अतः जिसका अस्तित्व ही नहीं है, ऐसे आकाश-वृक्ष के सदृश अज्ञानी के विषय में विचार करना कैसा होगा ? अज्ञान का बोधस्वरूप आत्मा के ही भीतर मानहोता है; अतः वही उसका अधिष्ठान है। जगत् अज्ञान का अंग है, अतः अज्ञानरूप ही है। जैसे स्वप्न और सुषुप्ति-दोनों निद्रा के अन्तर्गत होने से निद्रा के ही अंग हैं; इसलिये उन्हें केवल निद्रारूप ही कहा जा सकता है, वैसे ही जगत् का स्वरूप भी अपने अधिष्ठानभूत चिन्मय परमात्मा से भिन्न नहीं है। जैसे शुद्ध जलराशि में लहर, भँवर और द्रवता आदि के रूप में जल ही प्रतीत होता है, वैसे ही ब्रह्म में सर्ग नामक ब्रह्म ही भासित होता है। जैसे निर्मल वायु

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Jammu.

में स्पन्दन, आवर्त और विवर्त आदि की प्रतीति होती है, वैसे ही ब्रह्मरूपी वायु में सृष्टिरूपी स्पन्दन भासित होता है। जैसे महाकाश में अनन्तता, छिद्रता और शून्यता आदि धर्म आकाशरूप ही हैं, उससे भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार सृष्टि भी परात्पर ब्रह्मरूप ही है। जैसे निद्रा आदि में स्पष्टरूप से उपलब्ध होने पर भी ये सारे स्वप्नगत पदार्थ असन्मय ही हैं, उसी प्रकार ये सृष्टि के पदार्थ भी हैं, स्वतः इनकी सत्ता नहीं है। परंतु सत्स्वरूप परमात्मा में उपलब्ध होने के कारण उससे अभिन्न ही हैं। जैसे निद्राकाल में मनुष्य एक स्वप्न में स्थित होता है, वैसे ही अजन्मा परमात्मा अपनी सत्ता में ही एक सर्ग से दूसरे सर्ग के रूप में स्थित होते हैं। जैसे साम्प्रतिक सर्वदर्शनरूप परमात्मा में घट-पट आदि शब्द और उनके अर्थ स्थित हैं, उसी प्रकार अद्वितीय महाचैतन्यरूप परमात्मा में भूत और भविष्य काल की सारी सृष्टियाँ स्थित हैं। जैसे परमात्मा में ही सृष्टिरूप परमात्मा का मान होता है, वैसे ही चिति में ही चिन्मय शब्द और उनके अर्थभूत सर्गों का चिति के द्वारा ही मान होता है।

इस जगत् में न कोई आकृति है, न संसार है, न संसार का अभावरूप मोक्ष है, न जन्म है, न नाश है, न सत्ता (भावविकार) है और न असत्ता ही है। केवल परम शान्त ब्रह्म का ही अपने आप में स्फुरण होता है अथवा यहाँ ब्रह्म से भिन्न किसी प्रकार का स्फुरण भी नहीं है। यद्यपि ब्रह्म अनेकानेक सृष्टिरूपी पुतलियों के समुदाय से भरा हुआ है, तथापि वस्तुतः उसमें जगत्रूपी लताएँ, उनकी चोटियाँ, जड़ें, उनकी रचनाएँ और उनकी जड़ों का भूमि में प्रवेश-ये सब अलभ्य हैं। वह आदि-अन्त से रहित है, काल के द्वारा भी उसके जन्म और नाश होते तथा वह पूर्णरूप से विशुद्ध एवं सच्चिदानन्दघन है। चिन्मय प्रकाशरूप परमार्थाकाश ही, जो सब पदार्थों से रहित है, स्वप्न की भाँति द्रष्टा, दृश्य और दर्शन रूप से प्रतीत हो रहा है। इसलिये यह जगत् एकमात्र चेतनाकाश ही है। आकाश में भ्रमवश होने वाली वृक्ष समूहों की स्फुरणा के समान ब्रह्मरूपी समुद्र में जो नाम-रूपात्मक जल कणों का स्फुरण हो रहा है, वही यह सृष्टि है। आकाश में जो वृक्ष समूह की प्रतीति होती है, वह तो आकाश से भिन्न-सी लगती है; क्योंकि उसमें आकाश की शून्यता नहीं दिखायी देती। परंतु परब्रह्मरूपी महासागर में जो सृष्टिरूपी जलबिन्दु विद्यमान हैं, वे उससे किंचिन्मात्र भी भिन्न नहीं हैं।

अठ्ठानवेवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (IFS) Jammu Collection

निन्यानवेवाँ सर्ग

संशय की निवृत्ति तथा तत्त्वज्ञान की प्राप्ति

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-भगवन् ! मेरे मन में एक सन्देह है, आप उसका निवारण कीजिये। एक दिन की बात है, मैं विद्यामन्दिर के भीतर विद्वानों की सभा में बैठा था। उसी समय विदेह जनपद से वहाँ एक श्रेष्ठ तपस्वी श्रीसम्पन्न विद्वान् ब्राह्मण आया। आकर उसने उस ब्राह्मणसभा को प्रणाम किया। फिर जब वह एक आसन पर बैठा, तब मैंने भी उठकर उसे प्रणाम किया और पूछा-'ब्रह्मन् ! आप लंबा रास्ता तै करके आये हैं; इसलिये थक गये होंगे। किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिये यत्नशील-से दिखायी देते हैं। बताइये, आज कहाँ से आपका शुभागमन हुआ है ?

ब्राह्मण ने कहा-महाभाग ! आपका कहना ठीक है। मैं अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये विशेष प्रयत्नशील हूँ। यहाँ जिस प्रयोजन से आया हूँ, उसे भी सुन लीजिये। मैं विदेह देश का ब्राह्मण हूँ और विद्याध्ययन कर चुका हूँ। मेरे दाँत कुन्द के फूल की भाँति उज्ज्वल हैं; इसलिये मुझे लोक 'कुन्ददन्त' कहते हैं। एक दिन मेरे मन में संसार से वैराग्य हुआ और मैं भ्रमजनित क्लेश की शान्ति के लिये देवताओं, ब्राह्मणों तथा मुनीश्वरों के स्थानों में भ्रमण करने लगा। तब श्रीपर्वत पर एक तपस्वी से भेंट होने पर वे मुझे गौरी-आश्रम में स्थित वृद्ध तपस्वी के पास ले गये। वृद्ध तपस्वी ने श्रीपर्वतवासी तपस्वीकी, उनके सात भाईयों की, उन सबके तप की, वरदान और शाप की एवं घर के अंदर ही उन सातों के सप्तद्वीपाधिपति होकर अन्त में प्रलय-काल में विलीन होने की बातें बतायीं। तदनन्तर उन आठवें अपने मित्र तपस्वी की मृत्यु से दुखी हुआ मैं उन कदम्ब वृक्ष के नीचे रहने वाले तपस्वी के पास गया। वे तीन मास प्रतीक्षा करने के बाद समाधि से विरत हुए। तब मैंने नम्रतापूर्वक उनके सामने अपना प्रश्न उपस्थित किया। इस पर वे इस प्रकार बोले-निष्पाप ब्राह्मण ! मैं समाधि से विरत होकर एक क्षण भी नहीं रह सकता; अतः शीघ्र ही बड़ी उतावली के साथ मैं फिर समाधि में ही प्रवेश करूँगा। इस समय मेरा वास्तविक उपदेश भी अभ्यास के बिना तुम्हें नहीं लगेगा। इसलिये दूसरी युक्ति सुनो और वैसा ही करो। अयोध्या नाम से प्रसिद्ध जो पुरी है, वहाँ दशरथ नामक राजा राज्य करते हैं। उनके पुत्र श्रीराम नाम से विख्यात हैं। तुम उन्हीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के पास चले जाओ। उनके कुलगुरु मुनिवर वसिष्ठ सभा के मोक्ष के उपाय की दिव्य कथा कहेंगे। ब्रह्मन् ! चिरकाल तक उस कथा को सुनकर तुम भी मेरी ही भाँति पावन परमपद में विश्राम प्राप्त करोगे।

ऐसा कहकर वे तापस मुनि समाधिरूपी अमृत के महासागर में निमग्न हो गये और मैं इस देश में आपके पास आया हूँ।

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं–गुरुदेव ! वही यह कुन्ददन्त नामक द्विज है, जिसने मेरे पास बैठकर यहाँ मोक्षोपाय नामक इस सम्पूर्ण संहिता को सुना है। आप इससे पूछिये। इसका संशय निवृत्त हुआ या नहीं।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं–भरद्वाज ! श्री रघुनाथजी के ऐसा कहने पर वक्ताओं में श्रेष्ठ मुनिवरवसिष्ठ ने कुन्ददन्त की ओर देखकर पूछा–'निष्पाप विप्रवर कुन्ददन्त ! कहो, क्या तुमने मेरे इस उत्तम मोक्षदायक उपदेश को सुनकर ज्ञेय तत्त्व को जाना ?'

कुन्ददन्त बोला–भगवन् ! समस्त संशयों का विनाश करने वाला मेरा चित्त ही इस समय मेरी विजय का सूचक है। मेरे सारे संदेहों की निवृत्ति हो गयी और मैंने अवश्य जानने के योग्य अखण्ड ब्रह्मतत्त्व को जान लिया। विशुद्ध ज्ञेय तत्त्व का मुझे ज्ञान हो गया। मैंने क्षयरहित द्रष्टव्य वस्तु का दर्शन कर लिया और पाने योग्य सब कुछ मैं पा गया। इस समय ब्रह्मरूप परमपद में विश्राम कर रहा हूँ। मैंने आपके मुख से सुनकर चिन्मय परमात्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया। यह जो कुछ दिखायी देता है, सब परमार्थ सच्चिदानन्दघन रूपी मेघ है, जो चिन्मय आकाश में अपने से अभिन्न जगत् के रूप में छाया है। सर्वात्मक होने के कारण सर्वरूपी सर्वव्यापी परमात्मा का सर्वत्र, सदा सबके द्वारा और सब कुछ होना पूर्णरूप से सम्भव है। सरसों के एक दाने के छिद्र के भीतर असंख्य ब्रह्माण्डों का किस प्रकार होना सम्भव है और किस प्रकार उनका होना कदापि सम्भव नहीं है, यह सब मैंने पूर्णरूप से समझ लिया। जो-जो वस्तु जब जिस रूप में यहाँ भासित होती है और सम्पूर्ण प्राणियों के अनुभव में आती है, वह-वह उस समय उस रूप में केवल सर्वघन परमात्मा ही है। इस तरह विचार करने से सिद्ध हो जाता है कि सब कुछ आदि-अन्त से रहित एक नित्य विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही है।

निन्यानवेवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (HPS) Jammu Collection

सौवाँ सर्ग

सब कुछ ब्रह्म है, जगत् वस्तुतः असत् है

श्रीवाल्मीकि कहते हैं-भरद्वाज ! कुन्ददन्त के इस प्रकार कहने पर प्रशंसनीय महात्मा भगवान् वसिष्ठ मुनि ने यह परमार्थोचित वचन कहा।

श्रीवसिष्ठजी बोले-हर्ष की बात है कि महात्मा कुन्ददन्त को शास्त्रश्रवण से विज्ञानानन्दघन परमात्मा में विश्राम प्राप्त हो चुका है। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही है-इस तत्त्व को ये हाथपर रखे हुए आँवले की तरह देख रहे हैं।निश्चय ही भ्रममात्र जिसका स्वरूप है, ऐसा यह विश्व इन्हें अजन्मा ब्रह्म ज्ञात होने लगा है। भ्रान्ति इनके लिये ब्रह्मरूप ही हो गयी है। वही ब्रह्म जो शान्त, एक और निर्विकार है, जो जैसे, जिसके द्वारा, जहाँ, जिस प्रकार का, जितना, जब और जिस हेतु से है, वह वैसे उसके द्वारा, वहाँ, उस प्रकार का, उतना, उस काल में और उसी हेतु से कल्याणमय, शान्त, जन्मादिरहित, मौन, अमौन, अजर, सर्वव्यापी, सुशून्य, आदि-अन्त से रहित एवं अक्षय ब्रह्म ही है। व्यवहार में ब्रह्म स्वयं दृश्य, स्वयं द्रष्टा, स्वयं चेतन, स्वयं जड़, स्वयं सब कुछ और स्वयं कुछ भी नहीं है। वास्तव में वह सच्चिदानन्द परमात्मा अपने आपमें ही स्थित है। दृश्यजगत् ही परब्रह्म है और परब्रह्म ही दृश्यजगत् है। यह न तो शान्त है, न अशान्त है; न निराकार है और न साकार ही है।

जैसे जागने पर स्वप्न आदि निराकार भासित होते हैं, वैसे ही ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाने पर यह शरीर भी निराकार ही प्रतीत होता है। चैतन्यमात्र ही इसका स्वरूप है। यह स्वप्न की भाँति अनुभव में आने पर भी असत् ही है। ये भ्रमवश दिखायी देने वाले सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि भाव वास्तव में नहीं हैं। जैसे चित्रलिखित चित्रवधू चित्र से अतिरिक्त नहीं है, वैसे ही यह दृश्यमान जगत् परमात्मा से भिन्न नहीं है। जैसे चित्रकार द्वारा बनायी जानेवाली चित्रगत सेना बुद्धिस्थ चित्र से भिन्न नहीं है, वैसे ही सृष्टा की चित्तता-दशा में मूर्त सृष्टि नाना रूपों में प्रतीत होती हुई भी उससे भिन्न न होने के कारण नानात्व से रहित है।

रघुनन्दन ! जैसे समुद्र में जलराशि का स्फुरण होने पर ही उसमें भँवर उठते हैं, उसी प्रकार विशुद्ध चिदाकाश का अपने सत्यसंकल्प के अनुसार जो स्फुरण है, उसी को जगत् कहते हैं। परमात्म चैतन्य में समुद्र में जलराशि की

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

भाँति वस्तुतः चिदात्मक जगत्–भावों का जो अकस्मात् भान होता है, उसे मनीषी पुरुष संकल्प आदि नाम देते हैं। काल से, अभ्यासयोग से, विचार से, समभाव से, जातिकी सात्त्विकता से और अन्तःकरण के सात्त्विक एवं निर्मल होने से साम्यग्ज्ञान सम्पन्न यथार्थदर्शी तत्त्वज्ञ पुरुष की बुद्धि द्वैत और अद्वैत से रहित चिन्मात्रस्वरूप हो जाती है। चिदाकाशरूप परमात्मा चिदाकाश में ही स्फुरित होने वाले अपने इस रूप को द्रष्टा–दृश्यरूप जगत् को देखता हुआ सदा साक्षीरूप से प्रकाशित होता है। वह उससे भिन्न नहीं है। एक चेतनसत्ता के उपजीवी जोने से द्रष्टा और दृश्य दोनों एक हैं; क्योंकि चिदाकाश सर्वव्यापी है। जैसे शून्यत्त्व और आकाश में कोई भेद नहीं है, उसी तरह जगत् और ब्रह्म में भी भेद नहीं है।

श्रीराम ! सृष्टि के आरम्भकाल में परमात्मा के मन में प्रकृतिसहित विलीन हुए प्राणियों के पूर्वकृत कर्म वासना नुसार जो कुछ नियम रूप से भान हुआ, वह जैसा था और जिस प्रकार के कार्य–कारणभाव से स्थित था, वह आज भी उसी रूप में स्थित है और वही जगत् कहलाता है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा को जिस–जिसका जैसे संकल्प होता है, वह–वह उसी रूप में हो जाता है। सत्यसंकल्प परमात्मा की (अनुभूति) साररूप है। अतः उसे जिस वस्तु का भान हुआ, वह अभानरूप कैसे हो सकता है ?

रघुनन्दन ! चेतन जीव की जो उत्पत्ति बतायी गयी है, उसका अभिप्राय इतना ही है कि जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है, यह बात समझ में आ जाय। जीव की उत्पत्ति वास्तविक है, यह बताना अभीष्ट नहीं है। वस्तुतः चेतनस्वरूप जीव चिन्मय परब्रह्म परमात्मा का अंश है; इसलिये कृत्रिम नहीं है। किंतु अज्ञान से चेत्य अर्थात् दृश्य जगत् की ओर उन्मुख हो जाने के कारण ही वह जीव शब्द से कहा जाता है। जीवन से अर्थात् प्राण और कर्मेन्द्रियों को धारण करने से तथा चेतन अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों को धारण करने से वह जीव कहलाता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस यथार्थ आत्मस्वरूप को भूलकर चिन्मय जीवात्मा जब यह देखने लगता है कि मैं यह मनुष्य आदि शरीर हूँ और यह पृथ्वी आदि मेरा आधार है, तब वह उसी में दृढ़ आस्था बाँध लेता है। असत्य में सत्यबुद्धि करके ही जीव भावनावश बँध जाता है और अपने भीतर बारंबार भावना एवं नानात्व का अनुसरण करने लगता है। जो जिसमें अत्यन्त आसक्त होगा, वह उसे क्यों न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshagnana Trust (LTF) Jammu Collection

देखेगा ? जगत् की जो भ्रान्ति हो रही है, वह असत्य ही है, तो भी भावना के कारण इस प्रकार प्रौढ़ता को प्राप्त हो गयी है। सबके कारण भूत सनातन ब्रह्म से भिन्न दूसरा कोई जगत् का कारण नहीं है। वह कारण भी कार्यता के बिना सम्भव नहीं है और निर्विकार कूटस्थ सच्चिदानन्दघन अद्वितीय ब्रह्म में कार्यता और कारणता आदि का होना कदापि सम्भव नहीं है। इसलिये इस जगत् की प्रतीति अज्ञान के कारण ही हो रही है।

सौवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ एकवाँ सर्ग

श्रीरामजी के विविध प्रश्न और श्रीवसिष्ठजी के द्वारा उनके उत्तर

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन! ज्ञान की ज्ञेयतापत्ति अर्थात् जो ज्ञानस्वरूप है, उसे ज्ञेय-जड़ दृश्य समझ लेना ही बन्धन है और उस ज्ञेयता-जड़ दृश्यबुद्धि का सर्वथा निवारण ही मोक्ष कहलता है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन्! ज्ञान की ज्ञेयता-बुद्धि का निवारण कैसे होता है ? उस ज्ञेयता-बुद्धि का सर्वथा निवारण हो जाने पर यहाँ बन्धताबुद्धि कैसे निवृत्त होती है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-शम, दम आदि साधनों से युक्त सच्चिदानन्द परमात्मा का सम्यग्ज्ञानरूप प्रबोध प्राप्त होने से भ्रान्ति-बुद्धि दूर हो जाती है। उस भ्रान्ति-बुद्धि के दूर हो जाने पर इस प्रकार ज्ञेयता-जड़ दृश्यबुद्धि की अत्यन्ताभावरूपा परम शान्तिमयी स्वरूभूता निराकार मुक्ति प्राप्त होती है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! कैवल्य बोधरूप सम्यग्ज्ञान क्या कहलाता है, जिसकी पूर्णरूप से प्राप्ति हो जाने पर यह जीव छुटकारा पा जाता है ?

श्रीवसिष्ठ ने कहा-श्रीराम ! सबका अधिष्ठानभूत जो चिन्मात्र ज्ञान है, वह त्रिकाल में भी ज्ञेयरूप नहीं हो सकता। वह केवल अव्यय ज्ञान अवर्णनीय है। इस प्रकार जो आन्तरिक बोध, उसे सम्यग्ज्ञान कहा गया है।

श्रीरामजी ने पूछा-ज्ञानस्वरूप चिन्मय परमात्मा के अंदर उससे भिन्न ज्ञेयता क्या है ? यह बताइये, साथ ही इस बात पर भी प्रकाश डालिये कि 'ज्ञान' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे करनी चाहिये। अवबोधनार्थक 'ज्ञा' धातु से भाव में ल्युट् प्रत्यय होने पर ज्ञान शब्द बनता है या कारण में प्रत्यय होने पर ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! बोधमात्र ही ज्ञान है। अतः यहाँ भाव

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Collection (F.G.)

साधनमात्र ज्ञान को ही ग्रहण किया गया है अर्थात् भाव में प्रत्यय करने से जो ज्ञान शब्द बनता है, वही यहाँ अभीष्ट है। ज्ञान और ज्ञेय में कोई भेद नहीं है, जैसे पवन और स्पन्दन में (वायु और उसकी गतिशीलता में) भेद नहीं होता है।

श्रीरामजी ने पूछा–यदि ऐसी बात है तो यह ज्ञान, ज्ञेय आदि का भ्रम जो खरगोश के सींग की भाँति मिथ्या ही है, तीनों कालों में व्यवहार के योग्य कैसे सिद्ध होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–बाह्य पदार्थों के भ्रम से ही यहाँ भ्रमबुद्धि उत्पन्न हुई है, ऐसा जानना चाहिये। वास्तव में किसी भी वाह्य अथवा आभ्यन्तरिक पदार्थ का अस्तित्व सम्भव नहीं है। इसलिये ज्ञान और ज्ञेय आदि का भेद भ्रम मिथ्या ही है।(स्वप्नकाल में अथवा भ्रान्तिज्ञान में सहस्त्रों असत् पदार्थ व्यवहार में आते हैं। अतः यह ज्ञान और ज्ञेय आदि का भ्रम असत्य होने पर भी इसका अज्ञानियों के व्यवहार में आना असम्भव नहीं है।)

श्रीरामजी ने पूछा–मुने ! तुम, मैं आदि जो यह प्रत्यक्ष दृश्यपदार्थ, जो भूत आदिरूप से अनुभव में आता है, वह है ही नहीं, यह कैसे समझा जाय ? कृपया मुझे बताइये।

श्रीवसिष्ठ ने कहा–निष्पाप रघुनन्दन ! सृष्टि के आरम्भकाल में विराट् पुरुष ब्रह्मा आदि के रूप में कोई भी पदार्थ उत्पन्न ही नहीं हुआ। इसलिये किसी ज्ञेय अथवा दृश्य वस्तु की सत्ता सम्भव ही नहीं है।

श्रीरामजी ने पूछा–मुने ! भूत, भविष्य और वर्तमान काल में होने वाला जो यह जगत् का दर्शन है, जिसका प्रतिदिन सबको अनुभव हो रहा है, इसके होते हुए आप यह कैसे कह सकते हैं कि यह जगत् कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ; इसलिये कभी किसी को इसका दर्शन भी नहीं हुआ।

श्रीवसिष्ठ जी ने कहा–श्रीराम ! स्वप्न के पदार्थ, मृगतृष्णा का जल तथा संकल्पित पदार्थ–ये सब न तो कभी उत्पन्न हुए और न वास्तव में कभी देखे गये। फिर भी, भ्रमवश इनकी प्रतीति हो जाती है। इसी तरह मैं, तुम आदि रूप जो जगत् है, यह न कभी उत्पन्न हुआ और न तत्त्वदृष्टि से देखने पर कभी उपलब्ध ही हुआ। इसलिये सर्वथा मिथ्या है, तथापि भ्रमवश इसकी प्रतीति होती है।

श्रीरामजी ने पूछा–भगवन् ! मैं, तुम, यह इत्यादिरूप से पूर्णतः अनुभव

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

में आनेवाला यह जगत् सृष्टि के आदि में उत्पन्न ही नहीं हुआ, यह कैसे समझा जाय ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! कारण से ही कार्य उत्पन्न होता है, अन्यथा नहीं। यह एक निश्चित सिद्धान्त है। प्रलयकाल में तीनों लोकों का जो पूर्णः लय हो गया, तब पुनः इसकी उत्पत्ति के लिये कोई कारण ही नहीं रह गया था (कारण न होने से सृष्टि हुई ही नहीं, इसलिये जो कुछ दीखता है, सब मिथ्या प्रतीति मात्र है)।

श्रीरामजी ने पूछा-मुने ! महाप्रलय हो जाने पर जो अजन्मा, अविनाशी परब्रह्म अवशिष्ट रह गया, वही नूतन सृष्टि की उत्पत्ति का कारण कैसे नहीं हो सकता ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! कारण में जो कार्य सत्‌रूप से विद्यमान है, वही उससे प्रकट होता है, जो उसमें है ही नहीं, वह कैसे प्रकट हो सकता है। क्या कभी घट से पट की उत्पत्ति होती है ? कभी नहीं।

श्रीरामजी ने कहा-महाप्रलय आने पर जगत् सूक्ष्मरूप से ब्रह्म में रहता है। वही सृष्टि के समय पुनः उससे प्रकट हो जाता है।

श्रीवसिष्ठजी बोले-परम बुद्धिमान् निष्पाप रघुनन्दन ! महाप्रलय के अन्त तक उस ब्रह्म में जगत् की सत्ता का किसने अनुभव किया है तथा उसकी वह सत्ता वहाँ किस रूप में रहती है ?

श्रीरामजी ने कहा-ब्रह्म में जगत् की सत्ता उस समय ज्ञानस्वरूपा ही होती है और ज्ञानियों के अनुभव में भी आती है। अतः वह प्राकृत आकाश के समान शून्यरूप तो नहीं होती। इसलिये उस सत्ता को असत् नहीं कहा जा सकता।

श्रीवसिष्ठजी बोले-महाबाहो ! यदि ऐसी बात है तो वह ज्ञान ही तीनों लोकों का स्वरूप है। किंतु जो विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है, उसके जन्म और मरण कैसे हो सकते हैं ?

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन् यदि इस प्रकार सृष्टि उस ब्रह्म में स्थित नहीं है तो यह भ्रान्ति कहाँ से और कैसे आ गयी ? यह मुझे बताइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! कार्य-कारणता का अभाव होने से ही ब्रह्म में न सृष्टि है न प्रलय। यह जो जगत् भासित होता है, वह जिसको और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mohan Krishna Sharma (IAS) Jammu Collection

जिस रूप में भास रहा है। वह सब ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूपी त्रिपुटी केवल आत्मा ही है।

श्रीरामजी ने पूछा–यह बात तो असंगत–सी लगती है। जो यन्त्र का चालक चेतन है, वह जड़ यन्त्ररूप कैसे हो सकता है ? द्रष्टा ईश्वर स्वयं ही दृश्य कैसे बन सकता है ? काठ दाहक बनकर अग्नि को जला दे, क्या यह कभी सम्भव है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–रघुनन्दन ! द्रष्टा दृश्यभाव को नहीं प्राप्त होता; क्योंकि दृश्य की सत्ता ही नहीं है। केवल द्रष्टा ही प्रकाशित होता है, जो एकमात्र सच्चिदानन्दघनस्वरूप एवं सर्वात्मा है।

श्रीरामजी ने पूछा–भगवन् ! तब सृष्टि के आदि में अनादि, अनन्त, शुद्ध चिन्मय ब्रह्म ही जगत् का संकल्प करता है। इसी से इस जगत् का भान होता है। यदि ऐसा न होता तो चेत्य जगत् का प्राकट्य कैसे हो सकता था ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–किसी भी चेत्य की उत्पत्ति सम्भव नहीं है; क्योंकि उसका कोई कारण ही नहीं है। चेत्य के अत्यन्त अभाव के ही कारण चेतन की नित्यमुक्तता और अवर्णनीयता सिद्ध होती है।

श्रीरामजी ने पूछा–यदि ऐसी बात है तो ये अहंता आदि चेत्य कैसे और कहाँ से उत्पन्न हुए हैं, जगत् का भान कैसे होता है और स्पन्दन आदि का अनुभव क्यों होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–श्रीराम ! मैं पहले ही बता चुका हूँ कि कारण ही सत्ता न होने से आदिकाल में ही किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हुई थी। ऐसी दशा में चेत्य कहाँ से होगा ? इसलिये सब कुछ शान्तस्वरूप परब्रह्म ही है। सृष्टि की प्रतीति केवल भ्रममात्र है।

श्रीरामजी ने पूछा–मुने ! जो वाणी की पहुँच से बाहर है, चेत्य और चलन आदि से रहित है, सदा स्वप्रकाश और निर्मल है, उस नित्यमुक्त परब्रह्म में किसको किस निमित्त से और कैसा भ्रम हो सकता है (जब ब्रह्म के सिवा दूसरा कोई है ही नहीं और वह नित्यमुक्त ज्ञानस्वरूप है तो उसमें किसको और कैसे भ्रम हो सकता है ? फिर यह जगत् नामक भ्रम क्या बला है ?) इसका उत्तर मुझे दीजिये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा–श्रीराम ! सृष्टिरूप भ्रम का कोई कारण नहीं है;

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshi Deshmukh (I.F.S) Jammu Collection

इसलिये यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि उसकी सत्ता त्रिकाल में भी नहीं है। तुम, मैं यदि सब कुछ एकमात्र शान्तस्वरूप निर्विकार ब्रह्म ही है।

श्रीरामजी ने पूछा-मुने ! फिर तो देश, काल, क्रिया, द्रव्य, भेद, संकल्प, और चित्त सभी वस्तुओं की उत्पत्ति असम्भव ही है, फिर इन सबकी सत्ता कैसे उपस्थित हो गयी ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! देश, काल, क्रिया, द्रव्य, भेद, संकल्प और चित्त इन सबकी सत्ता अज्ञानमात्र ही है। अज्ञान से भिन्न इनकी सत्ता न है, न पहले कभी थी।

एकसौ एकवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ दोवाँ सर्ग

आत्मबोध

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! तत्त्वदृष्टि से कारण के अभाव में द्वैत और एकत्व की सम्भावना ही नहीं रह जाती। फिर न कोई बोध्य रह जाता है न बोधक। बोध्य-बोधक के अभाव में बोध का होना भी कैसे सम्भव होगा ? (जिसका बोध होता है वह कर्म कारक तो होना ही चाहिये। कर्म मानने पर द्वैत की आपत्ति होती है और कर्म न मानने पर बोध किस वस्तु का हो, यह प्रश्न खड़ा हो जाता है।)

श्रीवसिष्ठ जी ने कहा-रघुनन्दन ! अज्ञानी जीव ही बोध के द्वारा अपने अज्ञानविनाशरूप फल का आश्रय होकर आत्मबोधता (बोधकर्मता) को प्राप्त होता है। इसी से बोध शब्द भी बोध्यता (बोधरूप फलवाली सकर्मकता) को प्राप्त होता है। ये सब बातें अज्ञानियों को समझाने के लिये ही कहने योग्य हैं। हम जैसे जीवन्मुक्तों के लिये नहीं (जीवन्मुक्त पुरुष तो ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूपी त्रिपुटी से रहित हो शुद्ध ज्ञानस्वरूप हो जाता है। उसके लिये बोध की सकर्मता का निरूपण अनावश्यक हो जाता है)।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! 'मैं जीवन्मुक्त हूँ' ऐसा अनुभव होने से यह सिद्ध है कि बोध ही अहंतारूप परिणाम को प्राप्त होता है। यह बोध अहंभाव को प्राप्त हुआ तो यथार्थ बोध नहीं रह गया। उसमें भिन्नता आ गयी। अनन्त, जल से भी बढ़कर निर्मल, चिन्मय, परमात्मस्वरूप आप जैसे जीवन्मुक्त पुरुषों में यह बोधभिन्न अहंता कैसे सम्भव होती है ?

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Sharma (IFS) Jammu Collection

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! बोधस्वरूप जीवन्मुक्त की स्वरूपभूता जो बोधता है, वही उसमें विशुद्ध अहंता कहलाती है। तत्त्वज्ञानी का मैं और तुम भी उसके स्वरूपभूत ज्ञान से भिन्न नहीं है। उसमें जो द्वैतरूप व्यवहार देखा जाता है, वह वायु और उसके स्पन्दन भाँति अद्वैतरूप ही है।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन् ! संसार को स्वप्न की भाँति मिथ्या समझ लेने मात्र से कौन सा अभीष्ट फल सिद्ध होता है ? स्वप्न आदि में पदार्थों की साकारता कैसे शान्त होती है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! अध्यात्मशास्त्र के पूर्वापर के विवेकपूर्वक विचार से ज्ञानोदय होने पर पदार्थों में साकारता या स्थूलता की भावना शान्त हो जाती है। वे सब-के-सब चिन्मय ब्रह्मरूप ही हैं, ऐसा अटल निश्चय हो जाता है। इसी तरह स्वप्न के पदार्थों में भी (जागने पर) स्थूलता की भावना निवृत्त हो जाती है।

श्रीरामजी ने पूछा-जिसकी भावना स्थूलता को छोड़कर अत्यन्त सूक्ष्मता को प्राप्त हो गयी है, वह जगत् को कैसा देखता है ? उसका यह संसार भ्रम कैसे शान्त होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-वासना के क्षीण हो जाने पर पुरुष जगत् को उजड़ा हुआ, असत् के सदृश, आकाश में दीखने वाले गन्धर्वनगर के समान और वर्षा द्वारा मिटाये गये चित्र के तुल्य देखता है।

श्रीरामजी ने पूछा-मुने ! वासना के क्षीण हो जाने पर जिसके लिये जगत् की स्थिति स्वप्न के तुल्य हो जाती है, उस पुरूष की जागतिक पदार्थों के विषय में जब स्थूलता की भावना मिट जाती है, तब फिर क्या होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! जिसकी दृष्टि में जगत् केवल संकल्परूप है, उस पुरुष की वह अति सूक्ष्म वासना भी उत्तरोत्तर क्रम से विलीन हो जाती है। इस तरह वासना शून्य होकर वह शीघ्र ही निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! जो अनेक जन्मों से बद्धमूल अनेक शाखा-प्रशाखाओं से सुशोभित तथा जन्म-मरणरूपी बन्धन में डालने वाली है, वह घोर वासना किस उपाय से पूर्णतः शान्त हो जाती है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! यथार्थ तत्त्वज्ञान से जब यह भ्रममात्र

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshi Sharma (I.F.S) Jammu Collection

दृश्यचक्र स्थूलरूपता से रहित अनुभूत हो जाता है, तब क्रमशः उसकी वासना का क्षय होने लगता है।

श्रीरामजी ने पूछा-मुने ! जब दृश्यचक्र स्थूलाकारता से रहित अनुभूत हो जाता है, तब और क्या होता है ? पूर्ण शान्ति कैसे होती है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! स्थूलाकारता का भ्रम मिट जाने पर जब जगत् की केवल चित्तमात्ररूपता अवगत हो जाती है और चित्तवृत्तियों के निरोध से जगत् में गौरवबुद्धि नहीं रहती है, तब जगत के प्रति होने वाली आस्था शान्त हो जाती है।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन् ! चित्त कैसा है ? उसका विचार कैसे किया जाता है ? और उसके स्वरूप का भलीभाँति विचार कर लेने पर क्या होता है ? यह बताइये।

श्रीवसिष्ठजी नेकहा-रघुनन्दन ! चेतन का चेतनीय विषयों की ओर उन्मुख होना ही चित्त कहलाता है। इस समय जो चर्चा चल रही है। यही इसका विचार है। इससे इसकी वासना शान्त हो जाती है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! चित्त के रहते हुए चेतन का अचेत्य परमात्मा की ओर उन्मुख होना कितनी देर के लिये सम्भव हो सकेगा ? (क्योंकि चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर ही परमात्मा में अटल स्थिति हो पाती है) अतः यह बताइये कि निर्वाण पद प्रदान करने वाली जो चित्त की अचित्तता है, उसका उदय कैसे हो सकता है ? (दूसरे शब्दों में चित्त के नाश का ही उपाय बताने की कृपा करें।)

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! जब चेत्य जगत् की उत्पत्ति सम्भव ही नहीं है, तब चितिशक्ति जीवात्मा कैसे और कहाँ से उसका चिन्तन या अनुभव करेगा ? चेत्य की सत्ता न होने से चित्त की सत्ता भी चिरकाल से ही नहीं है। फिर किस के नाश का उपाय बताया जाय ?

श्रीरामजी ने पूछा-जिस चेत्य का सबोंको अनुभव होता है, उसका होना कैसे सम्भव नहीं है ? जिसका अनुभव हो रहा है, उसका इस तरह अपलाप, उसकी सत्ता को अस्वीकार कैसे किया जा रहा है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-अज्ञानी की दृष्टि में जो जगत् का स्वरूप है, वह सत्य नहीं है और ज्ञानी की दृष्टि में उसका जैसा स्वरूप है, वह अद्वितीय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Collection

ब्रह्ममय होने के कारण वाणी का विषय नहीं है। (अतः यहाँ अज्ञानियों के ही जगत् की सत्ता का निराकरण किया गया है।)

एकसौ दोवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ तीनवाँ सर्ग

तत्त्वज्ञानी निरूपण

श्रीरामजी ने पूछा-मुने ! अज्ञानियों का त्रैलोक्य कैसा है और सत्य कैसे नहीं है तथा तत्वज्ञानियों का जगत् जैसा है, वह वाणी का विषय कैसे नहीं हो सकता ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-अज्ञानियों का जो जगत् है, वह आदि-अन्त से युक्त तथा द्वैतरूप है। परंतु तत्त्व ज्ञानियों की दृष्टि में वह नहीं है। उनकी दृष्टि में जगत् की सत्ता सम्भव ही नहीं है; क्योंकि आदिकाल से ही कभी उसकी उत्पत्ति नहीं हुई।

श्रीरामजी ने पूछा-मुने ! जो आदिकाल से ही उत्पन्न नहीं हुआ, उसकी सत्ता कभी सम्भव नहीं है। वह असद्रूप और आभासशून्य है। यदि जगत् का भी यही स्वरूप है तो उसका अनुभव कैसे हो रहा है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! जाग्रत्-जगत् स्वप्न-जगत् के समान असत् होता हुआ ही सत् के तुल्य प्रतीत हो रहा है। इसकी कभी उत्पत्ति नहीं हुई; क्योंकि उत्पत्ति का कोई कारण नहीं है। यह स्वप्न के तुल्य प्रकट होकर अर्थ-क्रियाकारी भी प्रतीत होता है।

श्रीरामजी ने पूछा-भगवन् ! स्वप्न आदि में और संकल्प एवं मनोरथ आदि में जो दृश्य का अनुभव होता है, वह जाग्रत् व्यवहार के अनुभव से उत्पन्न जाग्रत्रूप संस्कार से होता है। किंतु यह जाग्रत् किससे अनुभव में आता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-श्रीराम ! यदि जाग्रत् के संस्कार से ही स्वप्न का भान होता है तो सपने में गिरा हुआ अपना घर कैसे प्रातः काल जागने पर सुरक्षितरूप से उपलब्ध होता है।

श्रीरामजी बोले-भगवन् ! जाग्रत्-पदार्थ का स्वप्न में भान नहीं होता; किंतु अन्य पदार्थ ही स्वप्न में भासित होता है। वह अन्य पदार्थ ब्रह्म ही है, यह बात मेरी समझ में आ गयी। अब इतना ही पूछना शेष है कि वह अन्य

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

पदार्थरूप ब्रह्म अपूर्व जगत् के रूप में कैसे भासित होता है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! सब कुछ अपूर्व सा ही भासित होता हो, ऐसा नियम नहीं है। कोई पदार्थ जिसका पहले अनुभव नहीं हुआ है, चित्त में अपूर्व प्रतीत होता है और कोई जिसका पहले अनुभव हो चुका है, अपूर्व नहीं प्रतीत होता। वह अनुभव सृष्टि के आदि, अन्त और मध्य में किये हुए अभ्यास के अनुसार ही भासित होता है।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! इस तरह आपके उपदेश से यह बात तो समझ में आ गयी कि जाग्रत्-जगत् भी स्वप्न के समान ही है। किंतु यह स्वप्न-तुल्य प्रतीत होनेवाला जगत्रूपी यक्ष भी क्रूर ग्रह की भाँति कष्ट देता है। अतः किस प्रकार इस रोग की चिकित्सा की जाय ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! यह जो संसाररूपी स्वप्न है, इसका क्या कारण हो सकता है ? कार्य से कारण भिन्न नहीं है, यह बात सर्वत्र देखी गयी है। इस प्रकार इस विषय में विचार करो।

श्रीरामजी बोले-स्वप्न की उपलब्धि का कारण है चित्त। इसलिये स्वप्न-जगत् चित्तरूप ही है। इसी प्रकार आप के विचार से यह जाग्रत-जगत् भी जो आदि अन्त से रहित और असार है, चित्तरूप ही है। इस निश्चय से जगत्रूपी रोग की चिकित्सा स्वतः सिद्ध है।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-महामते ! मैं कह चुका हूँ कि चेतन का चेत्य की ओर उन्मुख होना ही चित्त है। इस दृष्टि से चित्त महान् चैतन्यघन ही है। वही जगत् के आकार में स्थित है। अतः सिद्ध हुआ कि स्वप्न, जाग्रत् आदि कुछ भी चिन्मय ब्रह्म से भिन्न नहीं है; क्योंकि आदिकाल से ही यह जगत् कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ है। इसलिये यह सारा दृश्यमान प्रपंच अजर-अमर, शान्त, अजन्मा एवं अखण्ड सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है।

श्रीरामचन्द्रजी बोले-भगवन् ! आपके सदुपदेश से मैं यह मानता हूँ कि जीवात्मा को भ्रान्ति के कारण द्रष्टापन और भोक्तापन के साथ सृष्टि के जन्म-नाश आदि सारे भ्रम परमपद-स्वरूप परब्रह्म में प्रतीत हो रहे हैं।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-राघवेन्द्र ! जो रस से भी रसतत्त्व के ज्ञाता हैं-सार से भी सार वस्तु को मथकर निकालने और जानने में समर्थ हैं, ऐसे विद्वानों की विचार-व्यापार से युक्त जो कोई नवीन दृष्टि है, वह पहली है तथा समस्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Maharshi Vasishtha Jammu Collection
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

विचारों और शास्त्रों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन के परिपाक से परिनिष्ठित जो परम तत्त्वरूप अर्थ है,उसका अपरोक्ष अनुभव कराने वाली जो तत्त्वज्ञानी जीवन्मुक्त महात्माओं की दृष्टि है। वह दूसरी है। उन्हीं दो दृष्टियों का अवलम्बन करके मैंने सम्पूर्ण विश्व के स्वरूप पर तब तक के लिये इस प्रकार विचार किया और विचार करना आवश्यक समझा है, जब तक कि यह बोध न हो जाय कि जितनी भी दृष्टियाँ और उनके द्रष्टा के द्रष्टापन हैं, वे सब त्रिकाल में भी नहीं है। सारा जगत् असत् है-शून्य है। उसकी प्रतीति भ्रममात्र है। वस्तुतः तो न कोई शून्यता है और न भ्रम ही है। नित्य निरन्तर, सर्वत्र एकमात्र अपरोक्ष परमानन्दस्वरूप परब्रह्म ही विराजमान है।

एकसौ तीनवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ चारवाँ सर्ग

अज्ञान से ब्रह्म का ही जगत्रूप से भान होता है

श्रीरामजी बोले-मुनिश्रेष्ठ ! यदि ऐसी बात है तब तो यह सारा जगत् सदा सर्वपदार्थरूप परमार्थमय ब्रह्म ही है, जो न कभी उत्पन्न होता है और न कभी नष्ट ही होता है। जगत् की प्रतीति के रूप में यह भ्रान्ति ही भासित हो रही है। तात्त्विक दृष्टि से तो यह भ्रान्ति भी नहीं है, केवल परब्रह्म की ही सत्ता है।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! दृश्य की उत्पत्ति सम्भव न होने के कारण न द्रष्टा है और न दृश्य ही है। द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि की त्रिपुटी कुछ नहीं है। केवल निर्विकार चिदाकाश ही है। जैसे स्वप्न आदि में एक ही पुरुष द्रष्टा, दृश्य और दर्शन की त्रिपुटीरूप होता है, वैसे ही जाग्रत् में भी एकमात्र वह जीवात्मा ही स्वयं द्रष्टा, दृश्य और दर्शन की त्रिपुटी को धारण करके विराजमान होता है। अतः भासने योग्य पदार्थ, मान तथा भासक स्वयं प्रकाशचेतन ही है, सर्ग आदि में सृष्टि के तुल्य स्फुरित होता हुआ वह स्वयं ही प्रकाशित होता है। अज्ञानी लोगों को यह सृष्टि भले ही आश्चर्य के तुल्य प्रतीत हो परंतु ज्ञानी महात्माओं की दृष्टि में तो यह स्वभावभूत ब्रह्मरूप ही है। सृष्टि के आदि में जब कि एक विशुद्ध चेतन ही विद्यमान है, तब उसमें संसार की उत्पत्ति का क्या कारण हो सकता है ? दृश्य की सत्ता किसी तरह भी सम्भव न हो सकने के कारण केवल ब्रह्म ही जगत्रूप से भासित हो रहा है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Jharmukh (Prof.) Collection

इस तरह चिदाकाशस्वरूप परमात्मा ही सृष्टि के आरम्भ में सृष्टिरूप से स्फुरित होता है। अतः यह जो जगत् है, परमात्मा ही है। शून्यता और आकाश के भेद की कल्पना के समान जगत् और ब्रह्म के भेद की कल्पना भी अज्ञानमात्र ही है। श्रीराम ! इस तत्त्व को समझ लेने पर भी जबतक यह सुन्दर अनुभव से युक्त एवं दृढ़ न हो जाय, तब तक साधक को पाषाण की भाँति मौन एवं निर्विकल्प होकर एकमात्र परमात्मा में ही स्थित रहना चाहिये। जिन विषय भोगों को बारबार भोगकर परम वैराग्य के कारण त्याग दिया गया है, उन्हें अज्ञानी पुरुषों के कहने पर भी ग्रहण नहीं करना चाहिये।

एकसौ चारवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ पाँचवाँ सर्ग

ज्ञानी महात्मा की स्थिति

श्रीरामचन्द्रजी बोले-मुने ! यहाँ सब कुछ शान्त, आलम्बनरहित, विज्ञानस्वरूप, अनन्त, रागशून्य, कल्पनारहित एवं विशुद्ध अद्वितीय सच्चिदानन्द घन परब्रह्म ही है। उसके अतिरिक्त न यह दृश्य है, न द्रष्टा है, न सृष्टि है, न जगत् है, और न जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति आदि ही है। यह जो कुछ दीखता है, वह सब असत् ही है। मुने ! इस भ्रान्ति की उत्पत्ति कहाँ से होती है ? इस बात का विचार करना भी उचित नहीं है; क्योंकि भ्रान्ति के अभाव का अनुभव हो जाने पर भ्रान्ति रहती ही नहीं, तब उसके कारण का विचार करना कहाँ तक संगत हो सकता है ? निर्विकार एवं ज्ञानस्वरूप परब्रह्म में भ्रान्ति हो ही नहीं सकती। यह जो भ्रान्तिरूपता का ज्ञान है, वह भी ब्रह्म ही है। ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जैसे मृगतृष्णा में जल का, गन्धर्वनगर का और नेत्रदोष के कारण उत्पन्न दो चन्द्रमा का भ्रम विचार से उपलब्ध नहीं होता, उसी प्रकार अविद्या नामक भ्रम की भी विचार से उपलब्धि नहीं होती। मुने ! वह भ्रान्ति कहाँ से आयी और क्यों आयी, यह प्रश्न भी यहाँ शोभा नहीं पाता है; क्योंकि जो वस्तु है, उसी पर विचार करने से लाभ होता है। जो है ही नहीं उस पर विचार करने से क्या लाभ होगा ? इसलिये कभी कोई भ्रान्ति सम्भव नहीं है। यह आवरणरहित नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही सब ओर व्याप्त है। आज यहाँ जो कुछ भी जगत् भासित होता है, यह परब्रह्म ही है। निरतिशय आनन्द से परिपूर्ण परब्रह्म में यह पूर्ण परब्रह्म ही विराज रहा है। जन्मरहित,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (Late S) Jammu Collection

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

अमर, इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने के अयोग्य, श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा सेवित, निर्विकार तथा सब ओर से निर्दोष परमपदरूप परमात्मा ही सब ओर परिपूर्ण हो रहा है। वही 'अहम्' (मैं) पद से कहा गया है। फिर भी वह अहंकार से सर्वथा रहित है। अनेक रूप से प्रतीत होने पर भी वह एक है तथा विशुद्ध एवं सदा प्रकाशमान है।

आदि, मध्य और अन्त से रहित जिस परमपद को देवता तथा ऋषि भी नहीं जानते हैं, वही यह सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है। कहाँ है जगत् और कहाँ उसकी दृश्यता ? द्वैत और अद्वैत की भावना को उभाड़ने वाले जो वाक्य संदेह और भ्रम हैं, उनसे हमारा क्या प्रयोजन है ? वास्तव में सबका आदि, अनामयस्वरूप एक परमशान्त ब्रह्म ही परिपूर्ण है। अपरिच्छिन्न उदयवाले-सर्वव्यापी इस परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर अज्ञानी की दृष्टि में स्फुरित होने वाला संसाररूपी पिशाच तत्त्व की दृष्टि में नष्ट हो जाता है। वह जड़ की भाँति व्यवहार में लगा हो तो भी उस ज्ञानी की पूर्व की भेद बुद्धि उसी तरह गल जाती है, जैसे जल के भीतर लहर नष्ट हो जाती है। यहाँ वास्तव में न तो अज्ञान है, न भ्रम है, न दुःख है और न सुख का उदय ही है। विद्या-अविद्या, सुख-दुःख-सब कुछ निर्मल ब्रह्म ही है। जितना और जो भी यहाँ है, वह सब विशुद्ध सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है। ब्रह्मन् ! वह ब्रह्म मैं ही हूँ। सदा ही सब कुछ एकमात्र मैं ही हूँ। मेरा कहीं अन्त नहीं है। मैं परम शान्त हूँ, सब कुछ हूँ, अथवा कुछ नहीं हूँ। एकमात्र सत्-स्वरूप ही हूँ अथवा वह भी नहीं हूँ, मैं ही परम आश्चर्यरूप निर्वाण नामक परमशान्ति-स्वरूप हूँ।

एक सौ पाँचवाँ सर्ग समाप्त

एक सौ छटवाँ सर्ग

शान्त एवं संकल्पशून्य स्थिति का वर्णन

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं-मुने ! जिसको बोध प्राप्त हो गया है, वह ध्यानस्थ महात्मा केवल अपने चित्स्वभाव में स्थित रहता है। वह न कुछ ग्रहण करता है और न कुछ त्याग ही करता है। समाधि या ध्यान से उठने पर भी वह सदा जैसे का तैसा अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है, जैसे दीपक प्रकाश फैलाता हुआ भी कुछ करता नहीं है, वैसे ही ज्ञानी सब कुछ देखता हुआ भी निष्क्रिय बना रहता है। वह मन के मनन से युक्त होने पर भी कहीं आसक्त न

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modern Jammu Collection

होने के कारण वास्तव में मन, अभिमान और मनन से रहित ही है। उस योगी को समाधि से उठने पर विश्वरूप नामक, और समाधिकाल में ब्रह्म नामक चिन्मात्रस्वरूप परमार्थ सत्य का ही सर्वत्र दर्शन होता है। उसे सृष्टि और संहार सब चिन्मात्र ही प्रतीत होते हैं। संसार त्रिविध तापों से अत्यन्त संतप्त है और निर्वाण अत्यन्त शीतल है (क्योंकि उसमें समस्त तापों की शान्ति हो जाती है) वास्तव में अत्यन्त शीतल निर्वाण ही शाश्वत् है। यह तप्त संसार तो तीनों कालों में है ही नहीं। जैसे स्वप्न में अपने भाई-बन्धु के मरने या जीने पर भी स्वप्न से जगे हुए पुरुष की उस स्वप्नगत वृतान्त में सत्यता-बुद्धि नहीं होती (अतएव उसे वहाँ की घटना से हर्ष और शोक नहीं होते हैं)। वैसे ही तत्त्वज्ञानी पुरुष की दृश्य पदार्थों में सत्यता-बुद्धि नहीं होती (इसलिये अनुकूल-प्रतिकूल घटनाओं से उसे हर्ष शोक का अनुभव नहीं होता।) भगवन् ! सम्यक् ज्ञान होने पर देह से सम्बन्ध रखनेवाले भोगपदार्थों और उनकी प्राप्ति के उपायों से ज्ञानी को उसी तरह सर्वथा विरक्ति रहती है, जैसे स्वप्न से जगे हुए पुरुष की स्वप्नगत पदार्थों में ममता और आसक्ति नहीं रहती। वैराग्य से बोध की और बोध से वैराग्य की वृद्धि होती है। वे दीवाल और प्रकाश के समान एक-दूसरे से अभिव्यक्त होते हैं। अन्धकार में दीपक जलाने से दीवाल अभिव्यक्त होती है। जिस बोध से वैराग्य सम्पन्न होता है, वस्तुतः उसी का नाम बोध है। जिससे धन-स्त्री, पुत्र आदि की सुख-सुविधा-बुद्धि पहले से भी बढ़ जाती हो, वह बोध या बुद्धिमानी के रूप से जड़ता ही स्थित है। बोध का बोधत्व इतना ही है कि उससे वैराग्य की वृद्धि हुई अर्थात् वैराग्य होने से ही बोध सार्थक समझा जाता है। जिस पुरुष में वैराग्य नहीं है, उसकी विद्वत्ता भी मूर्खता ही है। बोध और वैराग्यरूपी उत्कृष्ट सम्पत्ति ही मोक्ष कहलाती है। उस मोक्षरूप अनन्त शान्तपद में स्थित हुए पुरुष को कभी शोक नहीं करना पड़ता। जो सदा अपने आत्मा में ही रम रहा है, शान्त, विरक्त एवं अहंकाररहित हो गया है, उस ज्ञानी पुरुष की आकाश के समान संकल्प-रहित एवं निर्मल स्थिति हो जाती है। सहस्त्र-सहस्त्र प्रयत्न-शील पुरुषों में से कोई बिरला ही ऐसा बलवान् और उत्साही होता है, जो उठकर वासनाजाल को उसी तरह छिन्न-भिन्न कर देता है, जैसे कोई-कोई सिंह पिंजड़े को तोड़ डालता है। जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, उस पुरुष के भीतर वासनाशून्य भाव प्रकट होने पर उसे यह सुदृढ़ बोध

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

प्राप्त हो जाता है कि सारा दृश्य ब्रह्म ही है। इससे उसकी बुद्धि एकमात्र निर्वाणरूप परब्रह्म में ही सुस्थिर हो जाती है। तत्पश्चात् उसमें मोक्ष नामक अनन्त शान्ति का उदय होता है।

एकसौ छटवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ सातवाँ सर्ग

जगत् की असत्ता एवं 'सर्व ब्रह्म' के सिद्धान्त का प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं–रघुनन्दन ! ज्ञानवान् पुरुष की समाधि–अवस्था में अथवा व्यवहार में जो शिला के समान घनीभूत निश्चल स्थिति है, वह निर्मल मुक्ति कहलाती है। राघव ! पाप और दुःख कानिवारण करने वाले उस मोक्ष पद में स्थित होकर हम लोग समाधि और व्यवहार में भी इसी तरह समभाव से रहते हैं।

श्रीराम बोले–ब्रह्मन् ! जैसे मृगतृष्णा में जल, समुद्र आदि के जल में तरंग और भँवर, सुवर्ण में कटक कुण्डल आदि आभूषण तथा स्वप्न और संकल्प में पर्वत ये सब बिना हुए ही प्रतीत होते हैं, वैसे ब्रह्म में यह जगत् कभी उत्पन्न नहीं हुआ, कभी प्रकाश में नहीं आया। उसका आरम्भ भी नहीं हुआ और उसमें कोई आकार भी नहीं है। इस प्रकार सर्वथा असत् होकर भी वह अज्ञानियों को भासित होता है। पहले ही यह कुछ भी कभी उत्पन्न नहीं हुआ; क्योंकि इसकी उत्पत्ति का कोई कारण नहीं है। इसलिये वन्ध्यापुत्र के समान इस जगत् की सत्ता केवल काल्पनिक है। कल्पना के सिवा और किसी रूप में इसकी सत्ता नहीं है। इस जगत्–भ्रान्ति का कारण ही क्या है, जिससे यह प्रकट होती ? कारण के बिना किसी भी कार्य का होना कहीं भी सम्भव नहीं है। वस्तुतः निर्विकार, अजर, अमर ब्रह्म भी इसका कारण नहीं हो सकता; क्योंकि पूर्वावस्था का क्षय हुए बिना कोई भी वस्तु यहाँ कहीं भी सविकार नहीं हो सकती। यदि वाणी का अविषय ब्रह्म ही कारणरूप से विद्यमान है तो कहाँ, किसको और किस प्रकार जगत् शब्द के अर्थ की प्रतीतियाँ होंगी। वास्तव में यह जगत् आकाश के समान निर्मल, शिला के समान घनीभूत और पाषाण के समान मौन, शान्त, अक्षय ब्रह्म ही है। यह परम समस्वरूप, एक, अनादि, अनन्त, शान्त ब्रह्म, महाकाश ही है। इसमें जगत् की बात ही कहाँ है ? जैसे जल में लहरों के उठने और शान्त होने से जल में भिन्नता नहीं आती, उसी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshamarg Foundation Jammu Collection

प्रकार ब्रह्म में सृष्टि और प्रलय से भी कोई भिन्नता नहीं आती। सारासार-तत्त्व के ज्ञाता कोई महात्मा पुरुष इस विशुद्ध परमपद में उसी तरह एकता को प्राप्त हो जाते हैं, जैसे जल की बूँद जलराशि में मिलकर एक हो जाती है। परमब्रह्म परमात्मा में परब्रह्मस्वरूप ही जो अपर जगत्-भासित होता है, वह विचार करने से परब्रह्म ही सिद्ध होता है; क्योंकि निर्मल, शान्त, परब्रह्म में जगत् और उनके व्यवहारों का होना सम्भव नहीं है।

श्रीवसिष्ठजी ने पूछा-रघुनन्दन ! यदि ऐसा मान ले कि यह दृश्य जगत कारणभूत ब्रह्म में उसी प्रकार स्थित है, जैसे बीज में अंकुर तो यहाँ सृष्टि आदि की सत्ता कैसे नहीं सिद्ध हो सकती ?

श्रीराम ने कहा-मुने ! बीज में अंकुर यदि अंकुरणरूप से ही रहता है तो उसमें ढूँढ़ने पर मिलता है। किन्तु बीज को फोड़कर देखने पर वह दिखायी नहीं देता है। यदि कहीं बीज के भीतर अवयवों की सूक्ष्म सत्ता है तो वह तो बीज ही है, अंकुर नहीं है। ब्रह्म के भीतर भी जगत् की सत्ता इसी तरह सिद्ध नहीं होती। जो जगत-सत्ता उपलब्ध होती है, वह यदि सूक्ष्मरूप से ब्रह्म में हो तो वह नित्य ब्रह्म ही है; क्योंकि ब्रह्म अविकारी है। अतः ब्रह्म से भिन्न जगत् की सत्ता कदापि सिद्ध नहीं होती है। यह जो कोई अनिर्वचनीय जगत् दीखता है, तत्त्वज्ञान हो जाने पर अनुभव में ही नहीं आता है। अज्ञानावस्था में भी प्रतीत होने के कारण सत्ता और वस्तुतः असत्ता से परिपुष्ट यह जगत् स्वानुभवैकगम्य होने से अनिर्वचनीय ही है। सारा प्रपंच परम शान्त, निष्क्रिय, अखण्ड, अभासशून्य, अनादि, अनन्त एवं स्वयं प्रकाश ब्रह्म ही है। मुझे अपने उस परमात्मस्वरूप का यथार्थ अनुभव है, जो जन्म और मृत्यु से रहित, शान्त, अनादि, अनन्त, महान् उपाधिशून्य और निराकार है। जो संवित्(चित्तवृत्ति) भीतर स्फुरित होती है, वही वाक्यरूप में बाहर प्रकट होती है। जैसे जो बीज भूमि में बोया गया है, वही अंकुरणरूप से प्रकट होता है। यह जगत् अज्ञानी की दृष्टि में सत्य है और ज्ञानवान् की दृष्टि में मिथ्या। जो उसे ब्रह्मरूप में देखता है, उसके लिये ब्रह्म है तथा जो शान्त महात्मा पुरुष हैं, उनके लिये यह शान्त होकर अन्त में शून्यरूप ही रह जाता है। ब्रह्मन् ! मैं चिदाकाश हूँ। आप चिदाकाश हैं। चित् चिदाकाश है। जगत् चिदाकाश है और चिदाकाश स्वयं चिदाकाश है। आप एकमात्र चिदाकाश भाव को प्राप्त हो एकाकाशरूपता में ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection
तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।। तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ।।

स्थित हैं। गुरुदेव ! आप मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं और ब्रह्माकाशभाव में ही स्थित हैं। मैं अपने आकाशतुल्य विशुद्ध स्वरूपानुभव के द्वारा सर्वात्मक चिदाकाश-सदृश आपको ज्ञेय, पूर्णानन्द ब्रह्म से अभिन्न जानकार प्रणाम करता हूँ। वास्तव में चित्-स्वरूप होने के कारण ही यह जगत् बिना किसी कारण के ही उसमें उत्पन्न और विलीन होता-सा भासित होता है। अतः यह निर्मल परमाकाशरूप ही है। सम्पूर्ण शास्त्रीय युक्तियों तथा समस्त पदों से अतीत जो निर्द्वन्द्व ब्रह्मपद है, उसी को पाकर आप ब्रह्माकाशस्वरूप हो गये हैं। समस्त शास्त्रों के अर्थों से परे, चिन्ह अथवा आकार से रहित, नामरूप से हीन, अनुभवस्वरूप, शुद्ध, चिन्मय, एक, अजन्मा एवं सबका आदि निर्मल चिदाकाश ही यहाँ विराजमान है। उसमें किसी प्रकार के नाम की कल्पना के लिये स्थान नहीं है। उस ब्रह्म में मल की आशंका ही व्यर्थ है- वह नित्य निर्मल सच्चिदानन्दघन है।

एकसौ सातवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ आठवाँ सर्ग

कीरकोपाख्यान

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-दूसरों को मान देने वाले गुरुदेव ! जो यह सत्स्वरूप ब्रह्म केवल अपने अनुभव से ही जानने योग्य है, बड़े-बड़े महापुरुषों की वाणी भी इसका यथार्थ निरूपण नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था में समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित जो परम ज्ञेय ब्रह्म स्वयं प्रकाशरूप है तथा जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओं से अतीत तुरीयरूप से उपलब्ध होता है, वह अत्यन्त दुर्गम (दुर्बोध) हो गया है (क्योंकि गुरु और शास्त्र आदि जाग्रत् अवस्था के ही अन्तर्गत हैं। उनसे) उस तुरीय पद का ज्ञान होना कठिन है। विकल्परूपी सारवाले शब्द अर्थरूप शास्त्रों से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। फिर भ्रान्तिरूप अनर्थपरम्परा की प्राप्ति के लिये गुरु, शास्त्र आदि की कल्पना क्यों की गयी है ?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-राघवेन्द्र ! गुरु और शास्त्र आदि जिस प्रकार उत्तम बोध के प्रति कारण होते हैं, वह संक्षेप से बताता हूँ, सुनो-कभी की बात है, कीरक देश में कुछ ऐसे लोग थे, जो बहँगी ढोकर जीवन निर्वाह करते थे। वे चिरकाल से दरिद्रता एवं दुर्भाग्य का सामना करते थे। दुःख से वे इस तरह सूख गये थे, जैसे ग्रीष्म की प्रचण्ड धूप से पुराने पेड़ सूख जाते हैं। वे चिथड़ों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

की गुदड़ी सीकर उसे ओढ़ते थे। दुरन्त दरिद्रता के कारण उनका मुँह उदास और हृदय दुखी रहता था। जैसे तालाब का पानी निकल जाने से कमल सूखने लगते हैं, उसी तरह वे भी क्षीण हो रहे थे। अपनी दुर्गति से संतप्त होकर उन लोगों ने अजीविका के लिये विचार किया कि हम लोग किसी युक्ति से अपना पेट भर सकते हैं। इस विषय पर विधिपूर्वक सोच-विचारकर वे इस निश्चय पर पहुँचे कि हम लोग दिन भर सुबह से शाम तक लकड़ी का बोझा ढोयेंगे और उसी को बेचकर जीविका चलायेंगे। ऐसा निश्चय करके वे लकड़ी लाने के लिये वन के भीतर गये। वे जिस किसी युक्ति से जीविका चलाते थे, वही आपत्ति में पड़ जाती थी। वे जिस दिन जो कमाते, उसी दिन वह खा जाते थे। इस तरह प्रतिदिन जंगल में जाकर वहाँ से लकड़ी लाने और उसे बेचकर किसी तरह जीवननिर्वाह करने लगे। जिस वन के भीतर वे जाते थे, उसमें गुप्त और प्रकटरूप से सब प्रकार के रत्न, उत्तमोत्तम काष्ठ और सुवर्ण भी थे। उन बोझ ढोने वाले लकड़हारों में से कुछ लोग कुछ ही दिनों में उन सुवर्णों और रत्नों को भी पा गये। मानद ! कुछ कीरकनिवासी चन्दन की लकड़ियाँ, कुछ अच्छे अच्छे फूल और फल-ला-लाकर बेचते और चिरकाल तक उनसे जीविका चलाते रहे। कुछ खोटी बुद्धिवाले भाग्यहीन लोग, जो वन की गलियों में घूम-घूमकर जीविका चलाने वाले थे, कभी अच्छी चीजों को न पाकर खराब लकड़ियाँ ही लाते और उन्हें बेचकर जीवन निर्वाह करते थे। लकड़ी लाने के लिये उद्यत रहने वाले वे सब लोग एक बार एक महान् जंगल में पहुँच गये। वहाँ कुछ लोग उत्तमोत्तम रत्न आदि पाकर दरिद्रतारूपी ज्वर से शीघ्र ही मुक्त हो गये। एक दिन उस वन के एक प्रदेश से एक लकड़हारे को चिन्तामणि नामक मणि प्राप्त हो गयी। उस चिन्तामणि से उन्हें सारे धन-वैभव मिल गये। और वे सभी वहाँ परम सुखी हो बड़े आनन्द से रहने लगे। लकड़ी लाने के लिये उद्यत होकर वे वन में जाते थे, किन्तु सौभाग्यवश उन्हें सम्पूर्ण मनोवांच्छित पदार्थों को देने वाली मणि मिल गयी और वे स्वर्ग के देवताओं की भाँति निर्द्वन्द्व हो सुख से रहने लगे। लकड़ी के लिये किये गये उद्योग से ही बहुमूल्य चिन्तामणि पाकर वे उसके द्वारा समस्त धन- वैभव के सार-सर्वस्व से सम्पन्न हो महान् बन गये। उनके दरिद्रताजनित भय, मोह, विषाद और दुःख सदा के लिये मिट गये और वे मन-ही-मन आनन्द में मग्न रहकर दूसरी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

लाभ-हानि के विषय में समता को प्राप्त हो गये।

एकसौ आठवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ नवाँ सर्ग

आत्मज्ञान की प्राप्ति में शास्त्र एवं गुरूपदेश आदि को कारण बताना

श्रीरामचन्द्र जी बोले—दूसरों को मान देने वाले मुनिश्रेष्ठ ! ऐसी कृपा कीजिये जिससे बहँगी ढोने वाले उन कीरकों के इस प्रसंग का तात्पर्य भली-भाँति समझ में आ जाय और कोई संदेह न रह जाय।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा—महातपस्वी श्रीराम ! ये जो भूमण्डल के मनुष्य हैं, ये ही वे बहँगी ढोने वाले कीरक हैं और उनका जो दारिद्र्यजनित दुःख था, वह इन मनुष्यों का महान् अज्ञान है। जो महान् वन बताया गया है, वह सद्गुरु, सत्-शास्त्र आदि का क्रम है। वे जो आहार जुटाने के लिये उद्योगशील थे, उसके द्वारा इन भोगार्थी मनुष्यों की ओर संकेत किया गया है। अत्यन्त कृपण मनुष्य अन्य सब कार्यों की उपेक्षा करके मुझे भोगराशियाँ प्राप्त हों, इस उद्देश्य से शास्त्र आदि में—उनके बताये हुए उपायों में प्रवृत्त होता है। भोगपरवश होकर भोग सामग्री लिये ही शास्त्रों में प्रवृत्त होने पर भी जीव क्रमशः अभ्यास करके अपने लिये परम अभीष्ट आदिपद (परब्रह्म परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है। जैसे लकड़ी के लिये उद्यत हुए भारवाहक को मणि प्राप्त हो गयी, वैसे ही भोग-संग्रह के लिये शास्त्र में प्रवृत्त हुए मनुष्य भी निष्काम भाव से शास्त्रोक्त साधनों का अनुष्ठान करके परमपद को प्राप्त कर लेते हैं। कोई-कोई यह सोचकर कि 'देखूँ' तो शास्त्र और विवेक-विचार से क्या लाभ होता है' यों सन्देहयुक्त कौतूहलवश शास्त्रों में प्रवृत्त होता है। फिर तदनुकूल साधन करके उत्तम पद को प्राप्त कर लेता है। जिसे परब्रह्मरूप उत्तम तत्त्व का साक्षात्कार नहीं हुआ, वह पुरुष धन और भोग के लिये सदेहपूर्वक शास्त्र आदि में प्रवृत्त होता है (जब उसे अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होने से शास्त्र-आदि पर पूरा विश्वास हो जाता है, तब तदनुकूल पारमार्थिक साधनों का आश्रय लेकर) वह उस परमपद को प्राप्त कर लेता है। लोग अपनी वासना के अनुसार किसी और ही प्रकार के फल की आशा से शास्त्रोक्त साधनों में प्रवृत्त होते हैं, परन्तु बहँगी ढोने वाले कीरकों को जैसे मणि मिल गयी, वैसे ही उन्हें भी और ही उत्कृष्ट फल (मोक्ष) की प्राप्ति हो जाती है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

जो स्वभाव से ही निरन्तर परोपकार में लग रहता है, वह साधु कहा गया है। उसकी चेष्टा, उसका आचार-व्यवहार सबके लिये प्रमाण होता है। साधु पुरुषों के सदाचार से प्रेरित होकर ही अज्ञानी लोग शास्त्रोक्त फल में संदेह रहते हुए भी भोगप्राप्ति की आशा से शास्त्र आदि में प्रवृत्त होते हैं। भोग के लिये शास्त्रोक्त कर्म में प्रवृत्त हुआ पुरुष उससे भोग और मोक्ष दोनों पदार्थ प्राप्त कर लेता है, जैसे लकड़ी की इच्छा वाले कीरक को वन से चिन्तामणि प्राप्त हो गयी थी। जिस प्रकार वन से किसी को चन्दन-काष्ठ, किसी को साधारण रत्न और किसी को चिन्तामणि मिल जाती है, उसी प्रकार शास्त्र से कोई काम, कोई अर्थ, कोई धर्म, कोई धर्म-अर्थ-काम तीनों और कोई सम्पूर्ण मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं रघुनन्दन ! शास्त्र आदि में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का ही मुख्यरूप से उपदेश है। ब्रह्म की प्राप्ति तो वाणी का विषय ही नहीं है। इसलिये ब्रह्म का निरूपण करने वाले शास्त्रों में भी पद और वाक्यों की मुख्य वृत्ति से उसका निरूपण सम्भव नहीं हो सका है। जैसे वसन्त आदि ऋतुओं की शोभा उनके लाये हुए फूल, फल और पल्लव आदि की उत्पत्ति से सूचित होती हुई स्वयं अपने अनुभव से ही प्रतीत होती है, उसी प्रकार ब्रह्म की प्राप्ति शास्त्र के सम्पूर्ण वाक्यार्थों से व्यंजनावृत्ति द्वारा ध्वनित होती हुई केवल अपने अनुभव से ही जानी जाती है। जैसे सुन्दरी युवती में मणि, दर्पण और चन्द्रमा आदि सबसे बढ़कर स्वच्छ लावण्य उपलब्ध होता है, वैसे ही यद्यपि शास्त्र में धर्म आदि तीनों वर्गों से उत्कृष्ट ब्रह्मज्ञान विद्यमान है, तथापि समस्त पदों से परे जो परम बोध है, वह अश्रद्धालु मनुष्य को न तो शास्त्र से, न गुरु के उपदेश-वाक्य से, न दान से और न ईश्वर के पूजन से ही प्राप्त होता है। रघुनन्दन ! ये शास्त्र आदि यद्यपि अश्रद्धालु को ब्रह्म प्राप्ति कराने में कारण नहीं हैं, तथापि श्रद्धालु को एकमात्र परमात्मा में विश्राम प्राप्त कराने के पूर्णतः कारण बन जाते हैं। कैसे ? सो बताया जाता है, सुनो। शास्त्र का बारंबार अभ्यास करने से श्रद्धालु का चित्त विशुद्ध हो जाता है, तब वह अनायास शीघ्र ही उस पावन परमपद का साक्षात्कार कर लेता है। सत्शास्त्र से अविद्या का सात्त्विक भाग उन्नत बनाया जाता है और उस सात्त्विक भाग से इसका तामसिक भाग क्षीण हो जाता है। सत्-शास्त्ररूपी उत्कृष्ट जल से अविद्याजनित मल को धोनेवाला पुरुष अचिन्त्य वस्तु-शक्ति के प्रभाव से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (CP S) Jammu Collection

परम शुद्धि को प्राप्त कर लेता है। जैसे ईख के रस से अपने ही अनुभव से स्वादिष्ट माधुर्य की उपलब्धि होती है, उसी प्रकार सत्-शास्त्र और सद्गुरु के उपदेशरूप उपाय से 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यार्थ का साररूप आत्मज्ञान प्राप्त होता है। जैसे आकाश में आलोक के सब ओर फैले रहने पर भी प्रभा और दीवाल के संग से ही वह सुस्पष्टरूप से अनुभव में आता है, उसी प्रकार महावाक्य के श्रवण और उसके अधिकारी पुरुष के योग से ही आत्मज्ञान का अपरोक्ष अनुभव होता है। वही शास्त्रश्रवण सफल है, जिससे ज्ञान प्राप्त होता है, वही ज्ञान सफल है, जिससे समता प्राप्त होती है और वही समता सफल है, जिसके जाग्रत् होने पर जाग्रत् में भी सुषुप्ति की भाँति परमात्मा के स्वरूप में निर्विकल्प स्थिति हो जाती है। इस प्रकार यह सब कुछ सत-शास्त्र एवं सद्गुरु के उपदेश आदि से प्राप्त हो जाता है। इसलिये पूरा प्रयत्न करके सत्-शास्त्र आदि का अभ्यास करना चाहये। श्रीराम ! शास्त्रों-के अर्थ का विचार करने से, गुरुजनों के उपदेश वाक्य से, सत्संग से, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-शरण- इन नियमों के पालन से और मन एवं इन्द्रियों को वश में करने से वह सम्पूर्ण विश्वपद से अतीत, सर्वेश्वर, सबका आदि, अनादि एवं सच्चिदानन्दमय परमपद प्राप्त होता है।

एकसौ नववाँ सर्ग समाप्त

एकसौ दसवाँ सर्ग

श्रीवसिष्ठजी के द्वारा समता एवं समदर्शिता की भूरि-भूरि प्रशंसा

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुकुलतिलक राम ! बोध की दृढ़ता के लिये मैं पुनः कुछ बातें बता रहा हूँ, सुनो। जो बात बार-बार कही जाती है, वह अज्ञानी के हृदय में निश्चय ही बैठ जाती है। रघुनन्दन ! पहले मैंने स्थिति-प्रकरण का वर्णन किया था, जिससे यह बात भली भाँति समझ में आ जाती है कि इस प्रकार उत्पन्न हुआ जगत् केवल भ्रममात्र है। तत्पश्चात् उपशम की युक्तियों द्वारा यह बात बतायी गयी थी कि इस जगत् में उत्पन्न हुए प्रत्येक पुरुष को उत्कृष्ट उपशम के गुण से गौरवशाली होना चाहिये। उपशम प्रकरण में कहे गये उपशम के क्रमिक साधनों द्वारा मनुष्य को अत्यन्त उपशान्त होकर यहाँ संतापरहित हो जाना चाहिये। जिसने प्राप्तव्य वस्तु को प्राप्त कर लिया है, उस तत्त्वज्ञानी का सांसारिक व्यवहारों में कैसे रहना चाहिये, यह थोड़ी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सी बात मेरे मुँह से तुम्हें और सुननी है। जगत् में जन्म पाकर मनुष्य को बाल्यावस्था में ही जगत् की इस वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करके यहाँ चिन्तारहित होकर रहना चाहिये। निष्पाप श्रीराम ! जो सबके साथ सौहार्द (मैत्री) को जन्म देने वाली है और सबको आश्वासन प्रदान करती है, उस समता का पूर्णरूप से आश्रय लेकर संसार में विचरण करना चाहिये। समतारूपिणी सुन्दर लता का फल परम पवित्र होता है, जो सम्पूर्ण साधन-सम्पत्तियों से युक्त होने के कारण सुन्दर तथा समग्र सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है। रघुनन्दन ! जिनकी समग्र चेष्टाएँ समता के कारण सुन्दर होती हैं तथा जो न्याय से प्राप्त वर्णाश्रम व्यवहार में लगे रहते हैं, उन महापुरुषों की सेवा में यह सारी सांसारिक विभूति सेविका की भाँति उपस्थित हो जाती है। समता से जो सार भूत अक्षय सुख प्राप्त होता है, वह न तो राज्य से मिल सकता है और न प्रेयसीजनों के समागमन से ही सुलभ हो सकता है। राघवेन्द्र! तुम समता को सम्पूर्ण द्वन्द्वों की शान्ति की चरम सीमा, रोषावेश तथा संशयरूपी रोग का नाश करने वाली और सम्पूर्ण दुःखरूपी आतप (धूप) के ताप से बचाने के लिये मेघ समझो। जो समतारूपी अमृत से ओतप्रोत है, उसके लिये सारे शत्रु तीनों लोकों में दुर्लभ है। प्रबुद्ध हुए अपने चित्तरूपी चन्द्रमा के सारभूत अमृत से भी बढ़े-चढ़े साम्य का अनुभव करते हुए ही जनक आदि समस्त तत्त्वज्ञ जीवन निर्वाह करते हैं। समता का अभ्यास करने वाले जीव का क्रोध, लोभ आदि अपना दोष भी शान्ति एवं उदारता के रूप में परिणत होकर गुण बन जाता है, दुःख भी नित्य सुख होजाता है और मृत्यु जीवन बनजाती है।

समतारूपी सौन्दर्य से सुन्दर लगनेवाले महात्मा पुरुष को योगशास्त्र वर्णित सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापात्मा के प्रति क्रम से मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षारूपिणी महिलाएँ सदा गले लगाती हैं। उसके प्रति वे आसक्त भी रहती हैं। समता से युक्त पुरुष सदा अभ्युदयशील होता है। समतायुक्त पुरुष के चित्त में कभी चिन्ता का उदय नहीं होता तथा इस जगत् में ऐसी कोई सम्पत्तियाँ नहीं हैं, जो समता सम्पन्न पुरुष को प्राप्त न हुई हों। जो अपने और पराये सभी के कार्यों में समभाव रखने वाला है, साधुस्वभाव (अपराधियों को भी क्षमा करने वाला) है, जिसका सबके प्रति उत्तम व्यवहार है तथा जो चिन्तामणि के समान उदार है, ऐसे पुरुष को मनुष्य और देवता सभी चाहते हैं। श्रीराम ! जो

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सदाचार सम्पन्न और सबका हित करनेवाला है, अत्यन्त प्रसन्न रहता है तथा जिसका चित्त सबके प्रति समान है, ऐसे मनुष्य को न तो आग जलाती है और न जल ही डुबाता या गलाता है। जो पुरुष आनन्द और उद्वेग से रहित होकर जो कार्य जैसे होना चाहिये, उसे उसी तरह करता है तथा सबको समान दृष्टि से देखता है, उसकी तुलना करने में कौन समर्थ हो सकता है ? सदाचारसम्पन्न और सबका हित करने वाले तत्त्वज्ञ पुरुष पर मित्र, बन्धु, शत्रु, राजा, व्यवहारपरायण मनुष्य तथा बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोग भी विश्वास करते हैं। तत्त्वज्ञानसम्पन्न समदर्शी पुरुष अपने न्याय प्राप्त स्वाभाविक कर्म की परम्पराओं में लगे हुए न तो अनिष्ट की प्राप्ति से भागते हैं और न इष्ट की प्राप्ति से सन्तुष्ट होते हैं समता से प्रसन्नचित्त वाले महात्मा पुरुष समस्त देवताओं द्वारा पूजे जाते हैं। समदर्शी पुरुष जो कुछ करता है, जो भोजन करता है न्याय प्राप्त होने से जिस पर आक्रमण करता है और अनुचित जानकर जिसकी निन्दा करता है, उसके उन सब कार्यों की सारी जनता सदा प्रशंसा करती है। समदर्शी पुरुष द्वारा किया गया कार्य शुभ दिखायी दे या अशुभ, देर से पूरा हुआ हो या आज ही तत्काल हो गया हो, उसे सब लोग उत्तम मानकर उसका अभिनन्दन करते हैं। लगातार बड़े भयानक सुख-दुःख उपस्थित हों तो भी समदर्शी पुरुष उनसे थोड़ा-सा भी उद्विग्न नहीं होते हैं। राजा शिबिने अपनी इस समदर्शिता के ही कारण शरण में आये हुए कबूतर की रक्षा के लिये प्रसन्नचित्त से अपना शरीर काटकर निकाला हुआ मांस दे दिया था। प्रिय रघुनन्दन ! समतायुक्त हृदयवाले एक भूपाल (शिखिध्वज) प्राणों से भी बढ़कर प्रियतमा भार्या को अपने सामने ही परपुरुष के द्वारा आक्रान्त हुई देख क्षुब्ध नहीं हुए थे। त्रिगर्त देश के राजा ने सैकड़ों मनोरथों से प्राप्त हुए इकलौते पुत्र को, जो दाव में हारा गया था, अपनी समबुद्धि के ही कारण बिना किसी घबराहट के राक्षस के हाथ में सौंप दिया। राजाओं में श्रेष्ठ भूपाल जनक उत्सव के लिये सजायी गयी अपनी मिथिलानगरी में आग लग जाने पर समभाव से ही उसे देखते रहे (उनके मन में विषाद नहीं हुआ)। समदर्शी शाल्वराज ने न्यायतः बेचे गये अपने ही पुत्रक को कमलदल की भाँति तत्काल काट डाला था। सौवीर नरेश ने कुन्दपुष्पों की राशि के समान कान्तिमान् तथा श्वेतपर्वत के समान सुशोभित ऐरावत हाथी को, जो उन्होंने इन्द्र से जीता था, यज्ञ में ऋत्विजों के कहने से

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सूखे तिनके की भाँति त्याग दिया—चन्द्र को वापस लौटा दिया। ऐसा उन्होंने अपनी समतायुक्त बुद्धि से ही प्रेरित होकर किया था। समबुद्धि से ही अपनी जीविका के लिये काम-धंधा करने वाले कुण्डप नामक एक चाण्डाल ने एक गौ को मजदूरी में लेने की शर्त ठहराकर एक ब्राह्मण की पाँच गौओं को, जो कीचड़ में फँस गयी थी, निकाला और मजदूरी में मिली हुई उस एक गाय को पुष्करतीर्थ में उसी ब्राह्मण के हाथों में दान कर दिया था। इससे तत्काल आये हुए विमान पर चढ़कर वह देवलोक को चला गया। समता का भरपूर अभ्यास करने वाले कदम्बवनवासी एक राक्षस ने समस्त प्राणियों का विनाश करने वाली अपनी राक्षसी वृत्ति का त्याग कर दिया। बालचन्द्रमा के समान सुन्दर जड़भरत ने अपनी समबुद्धिता के कारण ही भिक्षा में मिले हुए आग के अंगारे को गुड़ के लड्डू की भाँति खा लिया था। ऋषि-मुनि और सिद्ध, जो देवताओं द्वारा सम्मानित हुए हैं, वे व्रत एवं तपस्या की समृद्धि का संचय करते समय समदर्शिता के ही कारण उद्विग्न नहीं हुए थे। रन्तिदेव आदि राजा तथा धर्मव्याध आदि दूसरे साधारण मनुष्य की समदर्शिता का दृढ़ अभ्यास करने से महापुरुषों के भी पूजनीय हो गये थे। इहलोक और परलोक में सुख की सिद्धि के लिये और मोक्ष रूप पुरुषार्थ में प्रवृत्ति के लिये भी उत्तम बुद्धिवाले पुरुष सदा समदर्शिता से ही व्यवहार करते हैं। किसी को भी किसी तरह की पीड़ा न देता हुआ पुरुष न मरण की इच्छा करे न जीवन की। न्याय से जो कर्तव्य प्राप्त हो जाय, उसका समतापूर्वक आचरण करता हुआ विचरे। जो समतावश गुण और दोषों को एक-सा जानता है, जिसकी दृष्टि में सुख-दुःख और छोटे-बड़े समान हैं, जो मान और अपमान को एक-सा समझता है और प्राप्त व्यवहारों का भी सुचारुरूप से सम्पादन करके पवित्र हो गया है। समता से सुशोभित होने वाला वह पुरुष सर्वत्र निर्द्वन्द्वभाव से विचरण करता है।

एकसौ दसवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ ग्यारहवाँ सर्ग

जीवन्मुक्त पुरुषों की स्वभावतः सत्कर्मों में ही प्रवृत्ति का प्रतिपादन

श्रीराम ने पूछा—मुने! जीवन्मुक्त पुरुष सदा एकमात्र ज्ञान में ही स्थित रहते और आत्मा में ही रमते हैं। ऐसी दशा में वे कर्मों का परित्याग क्यों नहीं कर देते हैं? क्योंकि उन्हें कर्म से कोई प्रयोजन नहीं है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Moolchand Sharma (IFS) Jammu Collection

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! जिसकी हेय दृष्टि और उपादेय दृष्टि अर्थात् अमुक कर्म त्याज्य है और अमुक ग्राह्य है-ये दोनों दृष्टियाँ क्षीण हो गयी हैं, उसे कर्म का त्याग करने से क्या प्रयोजन है ? अथवा कर्म का आश्रय लेने की भी क्या आवश्यकता है ? ज्ञानी के लिये इस जगत् में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो उद्वेगकारक होने के कारण त्याज्य हो अथवा ऐसा कर्म भी नहीं है, जो तत्त्वज्ञ के लिये अवश्य करने योग्य होने से उपादेय हो। तत्त्वज्ञ पुरुष को न तो कर्मों के त्याग से कोई प्रयोजन है और न कर्मों का आश्रय लेने से। इसलिये वर्ण और आश्रम के अनुसार जो कर्म जैसे होता आ रहा है, उसे वह उसी प्रकार करता रहता है। श्रीराम ! जब तक आयु है, तब तक यह शरीर निश्चितरूप से चेष्टा करता रहता है, अतः वह शान्तभाव से यथाप्राप्त चेष्टा करे। उसका त्याग करने की क्या आवश्यकता है ? श्रीराम ! सदा निर्विकार रहने वाली समतायुक्त निर्मल बुद्धि से जो कर्म जैसे किया जाता है, वह सदा निर्दोष ही होता है।

इस भूतलपर कितने ही गृहस्थ जीवन्मुक्त हैं, जो असंग बुद्धि से यथाप्राप्त वर्णाश्रम-धर्म का अनुसरण करते हैं। उनके सिवा दूसरे राजा जनक-जैसे तत्त्वज्ञ राजर्षि तथा अन्य वीतराग पुरुष भी हैं, जो अनासक्तचित्त एवं चिन्तारहित होकर तुम्हारे सदृश राज्य करते हैं कुछ लोग वर्ण और आश्रम के अनुसार प्राप्त वेदोक्त व्यवहार का अनुसरण करते हुए सदा अग्निहोत्र में लगे रहते हैं और प्रपंच-महायज्ञों से अवशिष्ट अमृतमय अन्न का भोजन करते हैं। चारों वर्णों में से कुछ लोग सदा ध्यान और देव-पूजन आदि स्वकर्म का अनुष्ठान करते हुए नाना प्रकार की चेष्टाओं एवं प्रयत्नों में लगे रहते हैं। कुछ महान् आशयवाले महापुरुष अपने अन्तःकरण में सम्पूर्ण फलों की आसक्तियों का त्याग कर सब प्रकार के नित्य-नैमित्तिक कर्म करते हुए तत्त्वज्ञानी होकर भी अज्ञानी की भाँति स्थित रहते हैं। कुछ लोग उन सूनी वनस्थलियों में ध्यान लगाते हैं, जहाँ सपने में भी मनुष्यों के दर्शन नहीं होते और भोले-भाले मृग छौने भरे रहते हैं। कुछ लोग उन पुण्यतीर्थों, आश्रमों या देवालयों में रहते हैं, जो पुण्य की वृद्धि करने वाले हैं, जहाँ सदा पुण्यात्मा पुरुष निवास करते हैं तथा जहाँ का सदाचार मन और इन्द्रियों के निग्रह से सुशोभित होता है। कुछ समता पूर्ण हृदय वाले पुरुष राग-द्वेष का परित्याग करने के लिये शत्रु-मित्रों से

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

मरे हुए अपने देश को छोड़कर अन्य देश में चले जाते हैं और वहाँ आश्रम बनाकर रहने लगते हैं। कितने ही विद्वान् संसार-बन्धन का उच्छेद करने के लिये एक वन से दूसरे वन में, एक गाँव से दूसरे गाँव में, एक स्थान से दूसरे स्थान में तथा पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमते फिरते हैं। महापुरी वाराणसी में, परम पावन तीर्थराज प्रयाग में, श्रीपर्वतपर, सिद्धपुर में, बदरिकाश्रम में, परमपुण्यमय शालग्राम तीर्थ में, कलापग्राम की गुफा में, पुण्यमयी मथुरापुरी में, कालंजर पर्वत पर, महेन्द्र वन की झाड़ियों में, गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर, दर्दुर पर्वत की चोटियों पर, सह्य गिरि के भूभागों में, विन्ध्यगिरि के कछारों में, मलय पर्वत के मध्य भाग में, कैलास के वनसमूहों में तथा ऋक्षवान् पर्वत की गुफाओं में-इन सबमें, अन्य पर्वतों पर एवं अन्यान्य वनों और आश्रमों में अनेक बहुदर्शी तपस्वी रहते हैं। इनमें से कुछ लोगों ने विधिपूर्वक संन्यास लेकर अपने पूर्व-आश्रम के कर्मों का त्याग कर दिया है। कोई क्रमशः ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों में स्थित हैं। किन्हीं की बुद्धि तत्त्वज्ञान से प्रबुद्ध है और कितने ही नित्य उन्मत्तों-सी चेष्टा करते हैं। कोई स्वदेश से दूर चले गये हैं। कितने ही अपना घर-द्वार छोड़ चुके हैं। कुछ लोग एक ही स्थान पर प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं और कुछ लोग रमते राम होकर भ्रमण करते हैं। महामते ! आकाश और पाताल में निवास करने वाले इन देवता, दैत्य आदि महापुरुषों में से किन्हीं की बुद्धि प्रबुद्ध होती है, वे लोक-रहस्य के ज्ञाता, सम्यग्ज्ञान से निर्मल तथा निर्गुण-सगुण तत्त्व का साक्षात्कार किये होते हैं। कुछ लोगों की बुद्धि सर्वथा प्रबुद्ध नहीं होती है, इसलिये उनका चित्त संशय के झूले में झूलता रहता है। वे पापाचार से निवृत्त होकर सत्पुरुषों का अनुसरण करते हैं। कुछ लोगों की बुद्धि आधी प्रबुद्ध होती है, वे ज्ञान के अभिमान में आकर शास्त्रोक्त कर्म और आचार को त्याग देते हैं और लोक परलोक दोनों से भ्रष्ट हो जाते हैं।

श्रीराम ! इस प्रकार इस जनसमुदाय में जन्म-मरणरूप संसार से छुटकारा पाने की इच्छा वाले बहुत से लोग नाना प्रकार से व्यवहार करते हुए स्थित हैं। उनकी दृष्टियाँ बहुविध प्रारब्ध-भोग अनुकूल होती हैं। संसार-सागर से पार होने में न तो वनवास कारण है, न अपने देश में ही रहना कारण है और न कष्टसाध्य तपस्या ही कारण है। कर्मका परित्याग करना अथवा कर्मों का आश्रय लेना भी संसार की निवृत्ति में कारण नहीं है। सत्कर्मों के आचरणों

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

से जो ख्याति-लाभ और ऐश्वर्य आदि विचित्र फलसमूह प्राप्त होते हैं, वे भी संसार-बन्धन से छुटकारा दिलाने में कारण नहीं है। संसार-सागर से उद्धार पाने के लिये तो एकमात्र अपने वास्तविकस्वरूप में स्थिति ही कारण है। जिसका मन कहीं भी आसक्त नहीं है, वह भवसागर से पार जाता है। जिसका मन आसक्ति से रहित है, वह मुनि नित्य शुभ कर्मों का अनुष्ठान और अशुभ कर्मों का त्याग करता हुआ फिर संसार-बन्धन में नहीं आता। जिसकी बुद्धि खोटी-विषयों में आसक्त है, जिसने अपने मन को विषयों में खुला छोड़ रखा है, वह शठ संसार-समुद्र में डूबता ही है। जिसकी बुद्धि ने विषयों में रसानुभव किया है, उसकी वह बुद्धि दुःख देने वाली है। शहद के घड़े में घुसी हुई मक्खी की तरह उसे न तो वहाँ से हटाया जा सकता है और न मारा ही जा सकता है। काकतालीय संयोग से कदाचित् मोक्ष की सिद्धि के लिये अपने चित्त की स्वयं ही परमात्मसाक्षात्कार की ओर प्रवृत्ति हो जाती है। परमात्मा का साक्षात्कार होने पर तत्त्व की उपलब्धि करके निर्मलता को प्राप्त हुआ चित्त निर्द्वन्द्व, अनासक्त एवं निर्विकार ब्रह्म ही हो जाता है।

महात्मन् ! रघुनन्दन ! तुम स्वभाव से ही परमार्थस्वरूप और राग आदि दोष से रहित हो। तुम्हारी बुद्धि सम है। तुम्हारा स्वरूपानुभव नित्य उदित है। तुम महात्मा हो। अतः शोक और शंका से रहित एकाकी रहे। जन्म और मरण से मुक्त जो पावन परमपद है, वह तुम्हीं हो। विशुद्ध चिन्मय ब्रह्मरूप जगत् में प्रकृति, मल, विकार, उपाधि, उपाधिका बोध आदि कहीं किंचिन्मात्र भी नहीं हैं। सुस्पष्टरूप से नित्य चैतन्यधाम ब्रह्म ही विराज रहा है। 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ' ऐसा समझकर निःशंकभाव से एकाकी रहो।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! जब मुनीश्वर वसिष्ठजी ऐसा उपदेश दे चुके, तब उस सभा के सभी सदस्य समस्त एषणाओं से रहित और ध्यान में एकाग्र हो अपनी निर्मल बुद्धि के द्वारा ब्रह्मपद को प्राप्त हो गये। साथ ही वे मुनि भी मौन हो ब्रह्मानन्द के सहज अपरोक्ष अनुभूति में प्रवृत्त हो गये। ठीक उसी तरह, जैसे कमलों की राशि में गुनगुनाता हुआ भ्रमर चुप होकर मकरन्द का पान करने लगा हो।

एकसौ ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

सर्वाशी च जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः । स जीवति यो बन्धुकार्योद्यतः ॥ सर्वाशी च जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः । स जीवति यो बन्धुकार्योद्यतः ॥

एकसौ बारहवाँ सर्ग

सिद्धों और सभासदों द्वारा श्री वसिष्ठजी को साधुवाद

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! निर्वाणसम्बन्धी वाक्यसंदर्भ (उपदेश) की समाप्ति होने पर मुनीश्वर वसिष्ठजी ने जब क्रमशः प्राप्त हुए अन्तिम वाक्य का विराम कर दिया, जब समस्त सभासद् तथा आकाशचारी देवता भी मुनि के वचनों के श्रवण से शान्त एवं विशुद्ध मनोवृत्ति से युक्त होकर निर्विकल्प समाधि के समान ब्रह्मैकरसता को प्राप्त हो गये तथा जब शास्त्रज्ञान से सुशोभित होने वाले उन सब लोगों का अन्तरात्मा सत्त्व की पराकाष्ठा को पहुँचकर परम पावन हो गया, तब गगनगुफा में वास करने वाले सिद्धों के मुख से शीघ्र ही ऐसा साधुवाद निकला, जो आकाश में गूँज उठा। इसी तरह सभा में बैठे हुए भावितात्मा मुनि विश्वामित्र आदि के द्वारा उच्चस्वर से दिये गये साधुवाद की ध्वनि की वहाँ गूँजने लगी। इन सबसे ऐसा महान् कोलाहल प्रकट हुआ, जिसने सम्पूर्ण दिशाओं को भर दिया। वह कोलाहल वायुपूरित छिद्रवाले कीचकों की मुरली-जैसी ध्वनि के समान मधुर था। सिद्धों के साधुवाद के साथ ही देवताओं की दुन्दुभियाँ भी बजने लगीं, जिनकी प्रतिध्वनि से समस्त पर्वत व्याप्त हो गये। देवताओं की दुन्दुभियों के बजने के साथ ही दिशाओं की ओर से फूलों की वर्षा होने लगी, जो हिम की धारावाहिक वृष्टि के समान मनोहर जान पड़ती थी। उसने सम्पूर्ण दिङ्मण्डल को आच्छादित कर दिया। साधुवाद के शब्दों के साथ देववाद्यों की ध्वनि तथा पुष्प वृष्टि के घोष का वह मिलित शब्द-समुदाय वहाँ बड़ी शोभा पाने लगा। सारा भुवन भारी कोलाहल से भरकर अद्भुत शोभा पाने लगा। उत्सव से भरवाला हो उठा। देवताओं और चारणों से भर गया तथा भाँति-भाँति के फूलों से अलंकृत होकर राजभवन के समान ही शोभा पाने लगा। धीरे-धीरे दुन्दुभियों की तुमुल ध्वनि, सिद्धसमूहों के साधुवादजनित कोलाहल और पुष्परासियाँ एक साथ ही द्युलोक और भूलोक के अन्तराल में उसी तरह फैलने लगीं, जैसे सागर में उठी हुई उत्तल तरंगें तटवर्ती पर्वत के पास पहुँच जाती हैं। देवताओं का वह कोलाहलपूर्ण समारम्भ जब क्षणभर में शान्त हो गया, तब सिद्धों के ये वचन कानों में सुनायी देने लगे।

सिद्ध बोले-कल्पपर्यन्त सिद्धपुरुषों की अनेकानेक सभाओं में मोक्ष के उपायों की सहस्त्रों बार व्याख्याएँ हुईं और सुनी गयीं, परंतु उनमें जो मोक्ष के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उपाय बताये गये, वे कोई भी ऐसे नहीं थे। मुनि के इस वाक्य-विलास से-इस महारामायण के श्रद्धाप्रेमपूर्वक श्रवण से तिर्यग्योनि के जीव, स्त्रियाँ, बालक और सर्प भी परमानन्द को प्राप्त हुए हैं, इसमें संशय नहीं है। वसिष्ठजी ने नाना प्रकार के दृष्टान्तों, हेतुओं और युक्तियोंद्वारा जैसे श्रीरामचन्द्रजी के प्रति परमात्मतत्त्व के ज्ञान का वर्णन किया है, वैसे ये साक्षात् अपनी धर्मपत्नी अरुन्धतीजी के प्रति भी करते हैं या नहीं, इसमें संशय है। मुनिवर्णित मोक्ष उपाय के अनुष्ठान से तिर्यग्योनि के जीव भी दुःख-शोक से मुक्त हो गये हैं। फिर इस भूतलपर कौन से ऐसे मनुष्य हैं, जो इसके अनुष्ठान से मुक्त न होंगे। हम लोग अपने कानों की अंजलि से इस ज्ञानामृत का पान करके परम उत्कृष्ट बोध-श्री को प्राप्त हुए हैं। हमारी सिद्धियाँ पूर्ण तथा नवीन हो गयी हैं।

सिद्धों की इस बात को सुनते हुए वहाँ के लोगों ने आश्चर्य से चकित नेत्र होकर देखा कि सभा की भूमि कमल, पारिभद्र, पारिजात, संतानक और हरिचन्दन आदि फूलों की धारावाहिक वर्षा से भर गयी है। फूलों के भार से वहाँ का विशाल चँदोवा इस तरह लटक रहा था, मानों जल से भारा हुआ बादल नीचे झुक आया हो। इस प्रकार उस सभा की अपूर्व शोभा का दर्शन करते हुए सभासदों ने उस समय के अनुरूप भूरि-भूरि प्रशंसापूर्ण साधुवाद देकर सर्वथा उद्यत हो सम्पूर्ण इन्द्रियों के द्वारा साष्टांग प्रणाम करके नमस्कारयुक्त कुसुमांजलि से वसिष्ठजी का पूजन किया। सभा में आये हुए राजाओं की प्रणामपरम्परा जब कुछ शान्त हुई, तब हाथ में अर्घ्यपात्र लेकर राजा दशरथ ने मुनि की पूजा करते हुए कहा-

राजा दशरथ बोले-अरुन्धतीनाथ ! गुरुदेव ! आपके सदुपदेश से प्राप्त हुए बोधस्वरूप, क्षय-वृद्धिरहित, सर्वोत्कृष्ट निरतिशयानन्दमय आत्मवस्तु से मेरे भीतर परम पूर्णता प्रकट हो गयी है। ब्रह्मन् ! इस भूतलपर तथा स्वर्ग में देवताओं के यहाँ भी ऐसी कोई महत्वपूर्ण वस्तु नहीं है, जो आप पूज्य महापुरुष को कभी पूजन के रूप में प्राप्त न हुई हो, तथापि मैं अपने लिये अवश्यकर्तव्य इस गुरुपूजन की विधि को सफल बनाने के लिये अवसर के अनुरूप कुछ प्रार्थना करता हूँ। आप क्षमा करेंगे। मैं पत्नियोंसहित अपने इस शरीर से, लौकिक और पारलौकिक सुख के लिये संचित किये गये शुभ कर्म से तथा समस्त भृत्यों और सामन्तोंसहित इस विशाल राज्य से आपकी पूजा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mokshagundam Jayaram (S) Collection

करता हूँ। प्रभो ! ये सारी वस्तुएँ निजी आश्रम की भाँति ही आपके अधीन हैं। आप अपनी अभीष्ट इच्छा के अनुसार मुझे अपनी आज्ञा के पालन में नियुक्त करें।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-भूपाल ! हम ब्राह्मणलोग प्रणाममात्र से ही संतुष्ट हैं। केवल प्रणाम से ही हम प्रसन्न हो जाते हैं। वह प्रणाम आपने किया ही है। राज्य का पालन करना आप ही जानते हैं, यह आपको ही शोभा देता है। अतः यह सब राज्य यहाँ आपके ही अधिकार में रहे। ब्राह्मण कहाँ भूमण्डल के पालन का भार उठाते हैं ?

राजा दशरथ बोले-मुने ! आपके इस गौरवपूर्ण उपदेश के सामने यह राज्य है ही कितना ! इस तुच्छ वस्तु को अर्पित करते हुए हम विशेष लज्जित हो रहे हैं। अतः भगवन् आप जैसा उचित समझें वही करें।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! जब महाराज दशरथ इस प्रकार कह चुके, तब श्रीराम उन महागुरु के चरणारविन्दों में पुष्पांजलि अर्पित करने के लिये उनके सामने खड़े हुए और नतमस्तक होकर बोले-'ब्रह्मन् ! आपने महाराज को निरुत्तर कर दिया है। प्रभो ! मेरे पास तो प्रणाम के सिवा दूसरी कोई सार वस्तु है ही नहीं। अतः मैं यही लेकर आपके इन दोनों चरणों की वन्दना करता हूँ' यों कहकर श्रीराम ने गुरु के चरणों में मस्तक रखकर वन्दना की और अपनी अंजलि के फूल उसी प्रकार चढ़ाये, जैसे वन पर्वत के चरणप्रान्त में अपने पल्लवों से ओस के कण समर्पित करता है। उस समय उनके दोनों नेत्र आनन्द के आँसुओं से भरे हुए थे। व्यवहारनीति के ज्ञाता रघुवीर ने बड़ी भक्ति के साथ गुरुदेव को बारंबार प्रणाम किया। शत्रुघ्न, लक्ष्मण तथा उन्हीं की तुलना में आनेवाले जो श्रीराम के दूसरे-दूसरे सखा निकट खड़े थे, उन सबने भी उन्हीं की भाँति शीघ्रतापूर्वक उन मुनीश्वर को प्रणाम किया। दूर खड़े हुए राजाओं, राजकुमारों और मुनियों ने दूर से ही पुष्पांजलि समर्पण एवं प्रणाम करते हुए वसिष्ठजी की वन्दना की। उस अवसर पर वहाँ की गयी पुष्पांजलियों की वर्षा से आच्छादित मुनिवर वसिष्ठजी उसी तरह दिखायी नहीं देते थे, जैसे हिम की वृष्टि से आच्छन्न हो गिरिराज हिमालय दिखायी नहीं देता है।

जब सिद्धों की बातें बंद हुई, नगाड़ों की गड़गड़ाहट शान्त हुई, आकाश

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

तत्रैवाये हि जीवन्ति जीवन्ति सुकृतिनस्तु ते जीवन्ति मनो यस्य मनसैवोपजीवति ॥ कर्मणैव हि जीवन्ति जीवन्ति सुकृतिनस्तु ते जीवन्ति मनो यस्य मनसैवोपजीवति ॥

से फूलों की वर्षा थम गयी और सभा का कोलाहल कम हो गया तथा प्रणाम करने के अनन्तर श्रीराम आदि के साथ पूजा करने वाले सभासद् जब शान्त वायुवाले मेघ की भाँति सौम्यभाव को प्राप्त हो गये, तब सबका साधुवाद सुनते हुए अनिन्द्यात्मा मुनिनायक वसिष्ठ विश्वामित्र आदि को सम्बोधित करके मधुरवाणी में बोले—'गाधिकुलकमल मुनिवर विश्वामित्र, वामदेव, निमि, क्रतु, भरद्वाज, पुलस्त्य, अत्रि, धृष्टि, नारद, शाण्डिलि, भास, भृगु, भारण्ड, वत्स और वात्स्यायन आदि मुनियो ! आप लोगों ने जो मेरा यह तुच्छ भाषण सुना है, इसमें जो कोई बात स्पष्ट नहीं कही गयी हो, दूषित अर्थ से युक्त हो अथवा निरर्थक हो, उसे इस समय कृपा करके आप मुझे बतावें।'

सभासद् बोले—ब्रह्मन् ! एकमात्र परमार्थ-तत्त्व से सुशोभित होने वाले आपके वचन में कोई दूषित या अनुचित अर्थ होगा, यह आज नयी बात हमारे सुनने में आयी है। अनन्त जन्मदोष से हमारा जो पाप या मल संचित था, उसे आपने आज यहाँ उसी तरह धो डाला है, जैसे आग सुवर्ण के दोष को दग्ध कर देती है। प्रभो ! जैसे आकाश में फैली हुई शीतल चन्द्रमा की दीप्ति से कुमुद विकसित होते हैं, उसी तरह परब्रह्म की व्याख्या करने वाली और परमानन्दमयी शीतल वाणी द्वारा हम सब लोग विकास को प्राप्त हुए हैं। समस्त प्राणियों को महान् बोध प्रदान करने वाले, एकमात्र गुरु आप मुनिनायक को ये हम सब लोग प्रणाम करते हैं।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—तदनन्तर उन सबने पुनः मेघ की गर्जना के समान गम्भीर तथा ऊँची आवाज में एक साथ 'आप मुनिनाथ को नमस्कार है' यह कहकर आकाश से सिद्धों द्वारा छोड़े गये नवीन पुष्पाञ्जलि-समूहों से वसिष्ठजी को उसी तरह आच्छादित कर दिया, जैसे बादल हिम की वर्षा से पर्वत को ढक देते हैं। इसी प्रकार रघुनाथजी के अवतार का वृत्तान्त जानने वाले उन सिद्धों ने राजा दशरथ की तथा चार स्वरूपों में प्रकट हुए लक्ष्मीपति नारायण के अवतार श्रीराम की भी प्रशंसा की।

सिद्ध बोले—हमलोग चार स्वरूपों में प्रकट हुए भाइयों सहित नित्यमुक्त राजकुमार श्री राम को, जो दूसरे नारायण के समान विराज रहे हैं, नमस्कार करते हैं। चारों समुद्र जिसके लिये खाई के समान हैं, उस सम्पूर्ण भूमण्डल के पालक तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमानकाल में भी कभी नष्ट न होने वाले

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

राजचिन्हों से सुशोभित महाराज दशरथ को भी हम सिर झुकाते हैं। मुनिसेना के स्वामी, भूमण्डल के पालक, भगवान् भास्कर के समान भूरि तेजस्वी एवं उत्तम यश से सम्पन्न मुनिवर वसिष्ठ को तथा तपोनिधि विश्वामित्र को भी हम प्रणाम करते हैं; क्योंकि इन्हीं के प्रभाव से हम सबने भ्रान्ति के विस्तार को भगानेवाली इस परम उत्तम ज्ञानयुक्ति को सुना है।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-ऐसा कहकर आकाश से सिद्धों ने पुनः फूलों की वर्षा की और प्रसन्नचित्त होकर पुनः चुपचाप सभा में बैठ गये। इसी प्रकार आकाशगामी सिद्धों ने वहाँ उपस्थित हुए जनसमुदाय की पुनः प्रशंसा की तथा सभासदों ने भी प्रचुर स्तुति करते हुए वहाँ उन सब सिद्धों का पूजन किया। आकाश में विचरनेवाले मुनीश्वरों, महर्षियों एवं देवताओं ने और पृथ्वी पर विचरने वाले ब्राह्मणों तथा राजाओं ने भी पुष्पयुक्त अर्घ्यदान साथ उच्चवाणी द्वारा वेगपूर्वक वहाँ उपस्थित जनसमुदाय की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

एकसौ बारहवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ तेरहवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा अपनी कृतार्थता का प्रकाशन

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-तदनन्तर सभा में धीरे-धीरे साधुवाद की ध्वनि शान्त हो गयी, ज्ञानोपदेश पाकर राजालोग अत्यन्त उल्लसित-से दिखायी देने लगे। सब लोगों का संसारभ्रम दूर हो गया और सभी लोग सत्य का अनुसरण करने वाले चित्त के द्वारा अपने पूर्व चरित्र का, जो अज्ञान से कलुषित था, स्वयं ही उपहास करने लगे। सभा में बैठे हुए विवेकी पुरुष चित्तवृत्ति को अन्तर्मुखी करके ज्ञानस्वरूप सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के अनुभव में तत्पर हो ध्यानमग्न की भाँति परम शान्त हो गये। भाइयों सहित श्रीरामचन्द्रजी गुरु के आगे उन्हीं के दीप्तिमान् मुखपर दृष्टि लगाये हाथ जोड़े पद्मासन बाँधे बैठ गये तथा महाराज दशरथ ध्यानस्थ से होकर अपने भीतर आदि, मध्य और अन्त में पवित्रता बढ़ाने वाली जीवन्मुक्त की अलौकिक स्थिति का अनुभव करने लगे। उस समय लोगों के मनोरथ का आदर करते हुए मुनिवर वसिष्ठजी अपने भक्त राजा आदि के द्वारा की जानेवाली पूजा ग्रहण करने के लिये क्षणभर चुपचाप बैठे रहकर फिर शान्त वाणी में बोले-'कमलनयन श्रीराम ! तुम रघुकुल के आकाश में चन्द्रमा के समान प्रकाशित हो रहे हो। बताओ, अब अपनी इच्छा

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Sharma (I F S) Jammu Collection

के अनुसार और क्या सुनना चाहते हो ? आज कैसी स्थिति का तुम स्वयं अनुभव करते हो ? यह स्पष्ट रूप से कहो। मुनिवर वसिष्ठ के इस प्रकार आदेश देने पर राजकुमार श्रीराम गुरुदेव के मुख की ओर देखते हुए शान्त, मधुर एवं सुस्पष्ट वाणी में बोले-

श्रीराम ने कहा-प्रभो ! मैं आपके कृपाप्रसाद से परम निर्मल हूँ। मुने ! मैं अपने-आप में ही विश्राम सुखका अनुभव करता हूँ। बाह्य इन्द्रियों की दृष्टि से परे हूँ। मन की भी मुझतक पहुँच होनी कठिन है। मैं सर्वथा निर्विकार हूँ। जैसे आकाश को मुट्ठियों से नहीं बाँधा जा सकता, उसी प्रकार आशाएँ मुझे बाँध नहीं सकती हैं। जैसे सुगन्ध वृक्षगत पुष्प से ऊपर उठकर आकाश में पहुँचकर उस पुष्प से परे हो जाती है, उसी प्रकार मैं देहातीत और सर्वत्र समभाव से स्थित हूँ। जैसे अप्रबुद्ध और प्रबुद्ध सभी राजा बहुत काम धन्धेवाले राज्यों में सुखपूर्वक विचरते हैं, उसी प्रकार मैं हर्ष, विषाद और आशा से रहित, स्थिर, एक तथा समतापूर्ण दृष्टि से सम्पन्न एवं आत्मनिष्ठ होने के कारण सर्वत्र निःशंक होकर विचरता हूँ। प्रभो ! मैं सर्वोपरि सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ। मुझमें विषयसुख की बिल्कुल इच्छा नहीं है। मुझे अपनी इच्छा के अनुसार आज्ञापालन के कार्य में नियुक्त कीजिये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! जैसे आकाश शान्त आकाश में विश्राम प्राप्त करता है, उसी प्रकार तुम्हें अत्यन्त सम एवं शीतल आत्मा में पूर्ण विश्राम प्राप्त है। वत्स ! बड़े सौभाग्य की बात है कि ज्ञानस्वरूप तुमने अपने बोध के द्वारा रघुकुल की भूत, भविष्य और वर्तमान परम्परा को पवित्र कर दिया है। राघवेन्द्र ! अब तुम मुनीश्वर विश्वामित्रजी की याचना पूर्ण करके पिता के साथ इस पृथ्वी का पालन करते हुए सुख से रहो। सौभाग्यशाली राजकुमार! तुम-जैसे महापुरुष के साथ रहकर पुत्र, भृत्य, बन्धु-बान्धव, पैदल, रथ, हाथी और अश्वमण्डल सहित समस्त रघुवंशी शरीर से नीरोग, मन से निर्भय तथा घरों में सुस्थिर लक्ष्मी से सम्पन्न हो सदा अभ्युदयशाली बने रहें।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-सभा में वसिष्ठजी की यह बात सुनकर सब राजा तथा अन्य लोग अमृत की धारा से सींचे हुए की भाँति मन में अत्यन्त शीतलता एवं शान्ति का अनुभव करने लगे। कमलनयन श्रीराम अपने मनोहर मुखचन्द्र से उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जैसे सुधा भरे चारुचन्द्रमा के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

उदय से सम्पूर्ण क्षीरसागर उल्लसित हो उठता है। तत्त्वज्ञानविशारद वामदेव आदि मुनि बड़े आदर से बोले-'अहो ! भगवान् वसिष्ठ ने अद्भुत ज्ञान का वर्णन किया'। शान्त अन्तःकरण वाले राजा दशरथ भी प्रसन्नता से प्रकाशित हो रहे थे। उनके सारे अंग संतोष से ही हृष्ट-पुष्ट हो गये थे। उन पर ज्ञान की नयी दीप्ति छा रही थी।

तत्पश्चात् श्रीराम बोले-मुने ! मैं ऐसे परमानन्द में सदा निमग्न हूँ, जिसके प्राप्त होने पर फिर किसी को कभी खेद नहीं हो सकता। मैं चिरसुखी हूँ। सदा उदित हूँ एवं सनातन पुरुषार्थस्वरूप हूँ।

एकसौ तेरहवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ चौदहवाँ सर्ग

श्रीराम का गुरु के समक्ष अपनी कृतकृत्यता प्रकट करना

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! जब इस प्रकार मुनिवर वसिष्ठ तथा श्रीरामचन्द्रजी परस्पर विचार कर रहे थे, उस समय मानो उन दोनों का संवाद सुनने के लिये भगवान् भास्कर आकाश के मध्यभाग में आ पहुँचे। तुरंत ही सम्पूर्ण दिशाओं में पदार्थसमूहों को प्रकाशित करने के लिये श्रीराम की महामति के समान धूप तेज हो गयी। कमलों से भरे हुए सरोवर उस सभा में बैठे हुए हृदयकमल के खिल जाने से विकसित आकार से सुशोभित राजाओं के समान बड़ी शोभा पाने लगे। इतने ही में मध्याह्न काल की सूचना देने वाले शंख, मुखों की स्निग्ध उद्दाम वायु से पूरित हो प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु से व्याप्त हुए महासागरों के समान गम्भीर घोष करते हुए बज उठे। उस समय निदाघ की ज्वाला को शान्त करने के लिये सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा छिड़के गये कर्पूरमिश्रित जल से वहाँ नूतन जलदमाला सी छा गयी। फिर महाराज दशरथ समस्त सामन्तों, भूपालों, परिजनों एवं अंगरक्षक सेवकों आदि के साथ सभा से उठे। मुनिवर वसिष्ठ, श्रीराम तथा संसद् के अन्य सदस्य भी उठ गये। राजा, राजकुमार, मन्त्री और मुनि परस्पर एक-दूसरे से सम्मानित हो बड़ी ही प्रसन्नता के साथ अपने-अपने निवासस्थान को गये। तत्पश्चात् जब मध्याह्नकाल के वाद्यों की ध्वनि दीवालों से टकराकर प्रतिध्वनित हुई तब वाक्यप्रयोग में निपुण मुनिवर वसिष्ठ ने यह बात कही-'रघुनन्दन ! तुमने सुनने योग्य सब बातें सुन लीं, ज्ञेय तत्त्वोपदेश को पूर्णरूप से जान लिया। अब तुम्हारे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shamma (I F S) Jammu Collection

लिये दूसरी कोई जाननेयोग्य उत्तम बात शेष नहीं है। जैसा मैंने तुम्हें उपदेश दिया है, जैसा तुम शास्त्रों से देखते हो और जैसा स्वयं अनुभव करते हो, उन सबकी एकवाक्यता कर लो। महामते ! अब समयोचित कार्य करने के लिये उठो। हमलोग भी स्नान करने के लिये जा रहे हैं। यह हमारे मध्याह्नकालिक उपासना का समय व्यतीत हो रहा है। भद्र ! यदि तुम्हें कोई और शुभ प्रश्न पूछना हो तो उसे कल प्रातःकाल पुनः पूछ लेना।'

मुनिनाथ वसिष्ठ के ऐसा कहने पर धर्मात्मा राजा दशरथ ने उस सभा में आये हुए समस्त साधुपुरुषों, मुनियों, ब्राह्मणों, राजाओं तथा आकाशचारी देवताओं का भी वसिष्ठ आदि की बतायी हुई विधि से श्रीराम के साथ पूजन किया। मणियों और मुक्ताओं की राशियाँ भेंट कीं, दिव्य पुष्प अर्पण किये, नाना प्रकार के रत्न प्रदान किये, मोतियों के हार समर्पित किये, प्रेमपूर्वक प्रणाम किया, धन दिया, वस्त्र, आसन, अन्नपान, सुवर्ण, भूमि, धूप, गन्ध और पुष्पमालाएँ प्रदान कीं। इस प्रकार उन प्रशंसनीय भूपाल ने शास्त्रोक्त रीति से उन सभी का पूजन किया। तदनन्तर दूसरों को मान देने वाले वे नरेश वसिष्ठ आदि देवर्षियों तथा सभासदों के साथ उस सभा से उसी प्रकार उठे, जैसे सायंकाल चन्द्रमा आकाश से उदित होते हैं। मधुरवाणी बोलने वाले वे दशरथ आदि सब राजा और साधु-मुनि एक दूसरे से सम्मानित हो परस्पर विदा ले स्नेहयुक्त संतुष्ट हृदय से अपने-अपने आश्रमों को गये, मानो सातों लोकों के निवासी देवता इन्द्रपुरी से अपने-अपने धाम में जा रहे हों। एक दूसरे का क्रमशः प्रेमपूर्वक समादर करके सब विदा ले अपने-अपने घर में आये और दिन के आवश्यक कार्य में लग गये। वसिष्ठ आदि समस्त मुनियों तथा दशरथ आदि राजाओं ने दिन के आवश्यक कार्य पूर्ण किये। जब वे सब लोग न्याय से प्राप्त दैनिक कार्य सम्पन्न कर चुके, तब आकाशपथिक सूर्यदेव क्रमशः आगे बढ़ते हुए अस्ताचल को जा पहुँचे। महामति श्रीराम तथा अन्य लोग रात में भी वैसी ही ज्ञान-चर्चा करते रहे, इसलिये उनकी वह रात शीघ्र ही व्यतीत हो गयी। फिर अन्धकाररूपी धूल और तारारूपी पुष्पराशियों के कूड़े-करकट को हटाकर जगतरूपी भवन को घर की तरह साफ-सुथरा बनाते हुए सूर्यदेव का शुभागमन हुआ। तत्पश्चात् राजा, राजकुमार, मन्त्री और वसिष्ठ आदि मुनि फिर राजा दशरथ की सभा में आये उस समय जब दशरथ आदि नरेश और सुमन्त्र

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

आदि सचिव आसन पर विराजमान मुनिवर वसिष्ठ की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे, कमलनयन बुद्धिमान् श्रीराम गुरु और पिता के सामने उपस्थित हो कोमल वाणी में इस प्रकार बोले-

श्रीराम ने कहा-ब्रह्मन् ! आप जैसा कहते हैं, वैसा ही मैं भी मानता हूँ कि मेरी बुद्धि कृतकृत्य हो रही है। मैं परम निर्वाणस्वरूप एवं शान्त हूँ। मुझे किसी बात की आकांक्षा नहीं है। जो कुछ कहने योग्य बात थी, आपने कह दी और मैंने ज्ञेय तत्व को भलीभाँति जान लिया। अब कृतकृत्य को प्राप्त हुई आपकी यह वाणी विश्राम करे।

एकसौ चौदहवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ पन्द्रहवाँ सर्ग

सबकी चिदाकाशरूपता का प्रतिपादन

श्री वसिष्ठजी बोले-महाबाहो ! तुम फिर मेरी उत्तम बात सुनो, क्योंकि जैसे दर्पण बारंबार पोंछने या परिमार्जित करने पर अधिक स्वच्छ एवं शोभित होता है, उसी प्रकार बारंबार चर्चा होने से भ्रम का निवारण होता है, जिससे बोध शुद्ध होकर निखर उठता है। रूप और नाम-दो ही प्रकार के दृश्य हैं। इनमें पहला अर्थ है और दूसरा शब्द-दोनों ही भ्रम हैं और इनका मार्जन आवश्यक है। अर्थ क्या है ? भ्रम को समझने का एक संकेत। अर्थकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। एक वस्तु को समझने के लिये अनेक शब्द प्रयुक्त होते हैं, उन सबके अर्थ पृथक-पृथक् होने पर भी उनसे अनेक वस्तुओं की उपलब्धि नहीं होती। इस तरह अर्थ-भ्रम का परिमार्जन हुआ। अर्थ बिना शब्द जल के कलकल नाद की भाँति निरर्थक है, अतः वह शब्दता को छोड़कर अर्थरूपता को प्राप्त होता है; इस तरह अर्थभ्रम के मार्जन के साथ शब्द-भ्रम का मार्जन भी हो जाता है। वास्तव में यह दृश्य स्वप्न की भाँति चेतन का संकल्प मात्र है। जगत् की उत्पत्ति कब और कहाँ हुई है ? जब जाग्रत् ही मिथ्या है, तब स्वप्न की क्या बात है ! क्योंकि जाग्रत् ही संस्कार द्वारा स्वप्नदृष्ट पदार्थ बनकर स्मरण के समान अपने अर्थभूत वस्तु से शून्य होकर सामने आता है। इसलिये वह चेतन का संकल्पमात्र होकर दूसरे आकार में विस्तार को प्राप्त हुआ है। जैसे मुझमें स्वप्न-जगत्रूप निर्मल चिदाकाश रूपवान् होता हुआ भी रूपरहित है, उसी प्रकार यह त्रिभुवन भी साकार दीखता हुआ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Collection (E.G.) Jammu. Contribution

भी निराकार ही है।

श्रीराम ने कहा-ब्रह्मन् ! इस प्रकार विचार करने से न तो कुछ उत्पन्न हुआ है और न कुछ नष्ट ही हुआ है। यह जगत् जैसे का तैसा चिन्मय ब्रह्म है और अपने आप में ही स्थित है। जैसे द्रव ही जल है, उसी तरह चेतन में स्फुरण नामक जो स्वरूप का विस्तार है, वही यह जगत् कहा गया है। सम्यग्दर्शन से जिसकी बुद्धि प्रबुद्ध हो गयी है, उसकी दृष्टि में यह जो जगत् का भान है, वह अभानरूप ही है। वास्तव में सब कुछ शून्य चिदाकाश ही है और वही परमार्थ है। अज्ञानी की बुद्धि में यह जगत् जैसा भी प्रतीत होता हो, होता रहे, उस पर हमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

श्रीवसिष्ठजी बोले-रघुनन्दन ! तुमने इस विषय को जैसा समझा है और आगमों ने भी जैसा इसका वर्णन किया है, वह सब ज्यों-का-त्यों ठीक है। अब बताओ, हम यहाँ और क्या वर्णन करें ?

श्रीराम ने पूछा-ब्रह्मन् ! बताइये, यह चिन्मय महाकाश ब्रह्माण्ड के रूप में कैसे परिणत हो गया ? इस ब्रह्माण्ड की विशालता कितनी है और यह कब तक रहेगा ?

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-निष्पाप रघुनन्दन ! जिसका बिना किसी कारण के भान होता है, उसका वह भान कुछ भी नहीं है। वास्तव में परमार्थस्वरूप ब्रह्म ही उस रूप में दीखता हुआ अपने परमार्थस्वरूप से ही स्थित है। महामते ! इस विषय में कभी किसी ने अपने उत्तम बोध की पुष्टि के लिये मुझसे एक महान् प्रश्न किया था। त्रिलोकी में जिसकी बड़ी ख्याति है और जो दोनों ओर से दो समुद्रों द्वारा घिरा हुआ है, वह कुशद्वीप इसी भूतल पर स्थित सात महाद्वीपों में से एक है। वह भूमण्डल को कंगन के आकार में घेरकर बसा हुआ है। वहाँ पूर्वोत्तर दिशा में इलावती नाम से प्रसिद्ध एक सुवर्णमयी-सी नगरी है। उस नगरी के पूर्वभाग में एक राजा थे, जिनका नाम प्रज्ञप्ति था। जगत् के सारे प्राणी उनमें अनुरक्त थे। वे इस सृष्टि में दूसरे इन्द्र के समान प्रतिष्ठित थे। एक समय किसी कारणवश मैं प्रलयकाल में आकाश से गिरे हुए सूर्य की भाँति उस राजा के समीप जा पहुँचा। उसने पुष्प, अर्घ्य और आचमनीय आदि के द्वारा मेरी पूजा की और पास बैठकर मुझसे बहुत से प्रश्न किये।

एकसौ पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

एकसौ सोलहवाँ सर्ग

यह जगत् ब्रह्म का संकल्प होने से ब्रह्म ही है

राजा के प्रश्नों के उत्तर में मैंने कहा-राजन् ! मैं तुमसे स्पष्ट शब्दों में तत्त्वज्ञान की बात रहा हूँ, जिससे तुम्हारे सारे संदेह पूर्णतः निर्मूल हो जायँगे। पहले यह समझ लो कि जगत् के सारे पदार्थ सदा ही असत् हैं और सदा ही ये सत् भी हैं; क्योंकि इनकी स्थिति कल्पना के अनुसार है। जहाँ अमुक वस्तु इस रूप में ही है, ऐसी निश्चित बुद्धि होती है, वहाँ वह पदार्थ वैसा ही होता है, फिर वह सत् हो या असत्। इस विषय में आग्रह नहीं है। जैसे स्वप्न में स्वप्नद्रष्टा चिदात्मा ही स्वप्नगत जगत के आकार में भासित होता है, उसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में समस्त कारणों का अभाव होने से चिदाकाश ही इस जाग्रत-जगत् के आकार में भासित होता है। इसलिये इस जाग्रत्कालिक जगत् में स्वप्नजगत् से भिन्नता क्या है ? इस प्रकार विशुद्ध ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही इस जगत् के रूप में भासित होता है, इसलिये इस जगत् में ब्रह्म से भिन्नता क्या रही ? इस प्रकार निर्विकार परब्रह्म परमात्मा की ही जगत् के रूप में स्थिति होने के कारण जगत् विशुद्ध ब्रह्म ही है। लोक, वेद और महान् शास्त्रों द्वारा पूर्वापर विचार करके मैंने यही अनुभव किया है और इस अनुभूति-ज्ञान को ही यहाँ प्रकट किया है। समस्त भूतों में नित्य चिदात्मा ही सत्तरूप से सर्वत्र परिपूर्ण है-इस बात को महात्मा पुरुषों ने भी बारंबार कहा है, तथापि जगत् की नित्य चैतन्यरूपता का अपलाप (निराकरण) करके जो मूढ़ मनुष्य अन्धकारपूर्ण कूप में रहने वाले मेढ़कों के समान व्यर्थ ही टर्र-टर्र करते हैं; आपाततः वर्तमान नाम-रूप के अनुभव को ही प्रमाण मानकर यह कहते हैं कि संवित् या चेतनता कोई नित्यवस्तु नहीं है। वह शरीर से ही प्रकट होती है; इसलिये शरीर ही उसका कारण है। दूसरे शब्दों में उनका कहना है कि जड़ से ही चैतन्य की अभिव्यक्ति हुई है। ऐसी भ्रान्त धारणा से जो लोग मोह में पड़े हुए हैं, वे उन्मत्त हैं-पागल हैं और मूर्ख हैं। ऐसे लोग हमलोगों की ज्ञानचर्चा में भाग लेने योग्य नहीं हैं। जिनका मस्तिष्क ठीक है, उनमें और पागलों में क्या बातचीत हो सकती है ? वैसे ही मूर्खों और तत्त्वज्ञानियों में संलाप होना कैसे सम्भव है ? जिस विद्वत्कथा के सारे संदेहों का निवारण न हो जाय, वह तीनों लोकों में कहीं भी क्यों न हुई हो, उसे मूर्खों-कथा ही समझना चाहिये।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

राजन् ! प्रजाजनों को अपने घर में रहते हुए भी सम्बन्धशून्य आकाररहित और दूर देश में घटित वृत्तान्तों द्वारा जिस प्रकार शुभाशुभ फल की प्राप्ति होती है, उसे बताता हूँ, सुनो-ब्रह्म ही अज्ञानवश दृश्य समझ लिया गया है, इसलिये दृश्य के रूप में प्रतीत होता है और जब उसकी ब्रह्मस्वरूपता का बोध हो जाता है, तब यह सम्पूर्ण दृश्य ब्रह्म ही है, ऐसा अनुभव होने लगता है। इसलिये यह जगत् ब्रह्मसंकल्पनगर के रूप में स्थित है। संकल्पनगर में जब जिस-जिस वस्तु के विषय में जैसा संकल्प किया जाता है, वह-वह वस्तु उस समय वैसी ही आकृति धारण करके अनुभव में आने लगती है। जैसे तुम्हारे इस संकल्पगृह में जो यह प्रजा है, वह तुम्हारे संकल्प के अनुसार बनी है, उसी तरह ब्रह्म के संकल्प से सम्पन्न हुए जगत् में यह प्रजा ब्रह्म के संकल्प के अनुसार ही होती है। अपने इस संकल्पनगर में जैसा तुमने चाहा है, वैसा सब कुछ यहाँ स्थित है और आगे जैसा संकल्प करोगे, वैसा ही सब कुछ देखोगे।

राजन् ! चिदाकाश के संकल्प-नगर के भीतर स्थित हुए इस दृश्यजगत् का ऐसा स्वभाव ही है कि यह कभी प्रकट होता है, कभी लुप्त हो जाता है और फिर क्षण भर में ही प्रकट हो जाता है। बालकों के संकल्प-नगर के समान तथा आकाश में स्थित केशों के वर्तुलाकार गोले आदि की भाँति ये सत्-असत् रूप असंख्य सर्ग चेतनाकाशमय परमात्मा में भासित होते हैं। तुम एक संकल्प नगर का निर्माण करके दूसरे संकल्प के वशीभूत हो स्वयं ही उसी क्षण उसका विनाश कर डालते हो। यह जैसे तुम्हारा अपना स्वभाव है, वैसे ही चिदाकाश के संकल्प नगर में जो उन्मज्जन-निमज्जन-उन्मेष-निमेष होते हैं, वह ब्रह्म के स्वभाव का निर्मल विकास ही है, ऐसा समझो। इसलिये चैतन्यघन, अनादि-अनन्त ब्रह्माकाश ही त्रिलोकाकाश बना हुआ है। इस कारण वह आज जो कुछ भी करता और सोचता है, वह सब उस आवरणरहित ब्रह्म परमात्मा के सत्यसंकल्प से सैकड़ों योजन दूर और अनेक युगों के व्यवधान के बाद भी समीप और वर्तमान काल में किये गये कर्म की भाँति अपना फल प्रकट करने वाला होता है। देशान्तर और कालान्तर में भी जो आवरणशून्य एकमात्र आत्मा है, उसमें देश और काल दोनों का सदा सान्निध्य रहता है; इसलिये कौन सा ऐसा कर्म और फल है, जिसे वह न जानता हो। जैसे चमकती हुई मणि में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

अपनी कान्ति से ही दीप्तिविशेष के अविर्भाव-तिरोभाव का अनुभव होता है, उसी प्रकार चिदाकाशरूपी मणि में जगतों के सृष्टि, प्रलय और विविध फलभोगरूप परिवर्तन अनुभूत होते हैं। शास्त्र के विधि और निषेधसम्बन्धी वचनों का प्रयोजन है लोकमर्यादा की रक्षा। वह सर्वव्यापी ब्रह्म के संकल्प में स्थित है, इसलिये परलोक में भी जीव को फल की प्राप्ति कराने वाली होती है। ब्रह्म न कभी उदित होता है, न अस्त। जैसे द्रष्टा, दृश्य आदि की कल्पना से युक्त जो तुम्हारा कल्पना-नगर है, वह स्वयं तुम हो, उसी प्रकार ब्रह्म के संकल्प से प्रकट हुआ जगत् स्वयं ब्रह्म ही है। जब वह जगत् के रूप में भासित होता है, उस समय 'जगत् की सृष्टि हुई,' ऐसा कहा जाता है; परंतु यह केवल कहने के लिये है, वास्तव में ऐसी बात नहीं है।

चिद्घन परमात्मा का यह सुस्पष्ट स्वभाव ही है कि वह जिस-जिस का संकल्प करता है, तत्काल ही वे पदार्थ वहाँ अवयवोंसहित प्रकट हो जाते हैं। संकल्प-कल्पित पदार्थ स्वभाववश नानारूप से स्थित होने पर भी परब्रह्म में चिन्मयरूप से भासित होते हैं तथा स्वभावतः अनेक आकार वाले होने पर भी उनका सार-तत्त्व एक ही होता है अर्थात् वे सद्रूप से एक ही होते हैं। इस प्रकार आदि, मध्य और अन्त से रहित, अनन्त शक्तिशाली ब्रह्म किंचित्-अकिंचित् तथा सत्-असत् दोनों रूपों से स्थित है। वह सर्वात्मक है, इसलिये प्राणियों में और तृण-गुल्म तथा पेड़-पौधे आदि में, जहाँ पर जो वस्तु जैसे और जिस स्वभाव से स्थित है, वहाँ पर वैसे स्वभाव से युक्त होकर वह स्वयं ही विराजमान है।

राजन् ! संकल्प-नगररूप इस जगत् में जो असम्भव हो ऐसी कोई बात नहीं है। वह जगत् अपने संकल्पकर्ता इस चिदात्मा परब्रह्म से भिन्न नहीं है। इसलिये तुम सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्म ही समझो।

एकसौ सोलहवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ सत्रहवाँ सर्ग

राजा प्रज्ञप्ति के प्रश्नों पर श्रीवसिष्ठजी का विचार एवं निर्णय

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-राजन् ! यदि ध्यान करने वाला उपासक आत्मज्ञान के सुख की अनुभूति से वंचित होने के कारण यही चिन्तन करे कि 'मैं इस चन्द्रमा में ही प्रवेश करूँ' तो वह इसी में प्रवेश करता है। 'मैं चन्द्रमामण्डल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥ सर्वोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥
Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

के सुख से सम्पन्न होकर चन्द्रमा में प्रवेश करूँ' ऐसा चिन्तन करने वाला उपासक वैसे ही सुख का भागी होता है, यह निश्चय है। यह उपासक दृढ़ निश्चय के साथ जैसे स्वभाव का ध्यान करता है, उसकी अक्षय चेतना वैसे ही स्वभाव का अनुभव करती है। जैसे सभी ध्यानकर्ताओं को अपने-अपने संकल्प के अनुसार पृथक-पृथक चन्द्रत्व का अनुभव होता है, वैसे ही स्त्रीचिन्तन करने वाले पुरुषों को अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार अलग-अलग काल्पनिक स्त्रीलाभ की प्रतीति होती है। जो घर से बाहर न निकलकर भी सातों द्वीपों का राजा बना बैठा है, उसका वह कल्पनासिद्ध साम्राज्य उसके घर में ही चिदाकाश के भीतर भासित होता है।

राजन् ! दान, श्राद्ध, तप और जप आदि अमूर्त कर्मों का परलोक में जो मूर्तिमान् फल प्रकट होता है, वह कैसे सम्भव है, यह बताया जाता है, सुनो। उनकी बुद्धि उन दान आदि सत्कर्मों के संस्कार से भावित होती है। अतः वे परलोक में अमूर्त रहकर ही मूर्तिमान् फल को देखते और अनुभव करते हैं। वह फल चिन्मय स्वरूप से ही अनुभव में आता है। मन और ज्ञानेन्द्रियों से वेदना और अवेदनाकार भ्रान्ति होती है। इस भ्रान्ति के द्वारा विषयप्राप्ति के लिये वह चिन्मय जीव मनसहित कर्मेन्द्रियों से प्रेरित हो सचेष्ट एवं निश्चेष्ट होता है। फिर उस भ्रान्ति की निवृत्ति होने पर वह निर्मल, शान्त, चिन्मय आत्मा ही शेष रहता है। इस लोक में किये गये दान से परलोक में चिन्मय संकल्परूप भिन्न-भिन्न फल की प्राप्ति होती है। उसे संकल्पस्वरूप जीव प्राप्त करता है। ऐसा विद्वानों का कहना है। फिर वह फल परलोक में क्यों न मिले। इस कल्पनामय संसार में अकृत्रिम संकल्प ही चिन्मय फलरूप होकर चारों ओर उपलब्ध होता है। भले ही वह दान न करने के कारण दारिद्र्यजनित दुःख के रूप में प्राप्त हुआ हो अथवा दान करने से ऐश्वर्य भोग के रूप में उपलब्ध हुआ हो। वह सब का सब होता है चिन्मय ही। राजन् ! तुमने जैसा पूछा था, उसके अनुसार यह सब मैंने बता दिया। यह सारा जगत् आकारशून्य तथा चिन्मय ब्रह्म का संकल्पमात्र है।

एकसौ सत्रहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

एकसौ अठारहवाँ सर्ग

सिद्ध आदि के लोकों की संकल्परूपता बताते हुए इस जगत् को भी वैसा ही बताना और ब्रह्म में अहम्भाव का स्फुरण ही हिरण्यगर्भ है, उसका संकल्प होने के कारण त्रिलोकी भी ब्रह्म ही है-इसका प्रतिपादन

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-रघुनन्दन ! इलावती नगरी में बैठकर राजा प्रज्ञप्ति पर अनुग्रह करने का जो मेरा प्रयोजन था, उसे पूरा करके उस राजा द्वारा सम्मानित मैंने स्वर्ग लोक में जाने के लिये आकाशमार्ग का आश्रय लिया।

श्रीरामजी ने पूछा-ब्रह्मन् ! सिद्ध, साध्य, यम, ब्रह्मा, विद्याधर और देवताओं के लोक तथा वहाँ के निवासी कैसे दिखायी देते हैं ? यह मुझे बताइये।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा-रघुनन्दन ! सिद्ध, साध्य, यम, ब्रह्मा, विद्याधर, देवताओं तथा अपूर्व महात्मा प्राणियों के लोकों को यदि तुम विशेष धारणाओं द्वारा देखने का प्रयत्न करो तो प्रतिरात, प्रतिदिन, आगे, पीछे, ऊपर और नीचे देख सकते हो और न देखना चाहो तो नहीं देख सकते हो। जैसे सिद्धों के ये कल्पनालोक हैं, उसी तरह हमारा यह लोक भी काल्पनिक ही है।

सिद्धों ने लोकों की रचना करके अपने संकल्प से उन सबको स्थिर कर लिया है। सारा जगत् सदा निराकार निर्विकार शान्तस्वरूप चिदाकाश ही है। जिसने जैसा दृढ़ निश्चय किया, उसकी दृष्टि में यह वैसा ही प्रतीत होता है। उससे भिन्न प्रकार का नहीं। जो वस्तु दृढ़ निश्चय से प्रकाशित होती है, वह चिन्मय स्वभाव से युक्त होने के कारण प्रकाशरूप से ही भासित दिखायी देती है। किंतु यह विश्व किसी को दृढ़ निश्चयपूर्वक विदित नहीं है; इसलिये स्वभावतः चित्सत्ता और स्फूर्ति की व्याप्ति नहीं है। इसलिये यह सब शून्य और निराकार है। ब्रह्म जैसा पहले था, ठीक वैसा ही अब भी है। उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं आता।

रघुनन्दन ! तुम तो समस्त दृश्य पदार्थों से मुक्त, सब ओर प्रकाशमान, सर्वस्वरूप, निर्मलस्वभाव, आत्मनिष्ठ, निरतिशय आनन्दमय, परमशान्तचित्त, आकाश के समान मनोहर एवं तृष्णारहित हो। अब तुम धर्म के अनुसार राज्य का पालन करो।

एकसौ अठारहवाँ सर्ग समाप्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S.) Jammu Collection

एकसौ उन्नीसवाँ सर्ग

सभासदों का कृतार्थता-प्रकाशन

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! महामुनि वसिष्ठजी जब इतना कह चुके, तब तत्काल ही आकाश से वर्षा करने के लिये जल से भरे हुए मेघ के समान गम्भीर घोष के साथ देवताओं की दुन्दुभियाँ बज उठीं। भूतलपर हिम की वर्षा के समान दिव्य पुष्पों की वृष्टि होने लगी, जिससे समस्त दिग्वधुओं के मुख पर उज्ज्वल कान्ति से सुशोभित कर दिये। उस सभा में यथास्थान नीचे बैठे हुए समस्त सभासदों ने दिव्य पुष्प लेकर वसिष्ठजी के चरणों में पुष्पांजलि अर्पित की और सबने सब प्रकार से दुःख शोक को त्याग दिया।

तत्पश्चात राजा दशरथ बोले-भगवन् ! आपके उपदेश से हमारी आत्मा परमपद में सुखपूर्वक प्रवेश पाने के योग्य हो गयी है। हम संसाररूपी अत्यन्त विस्तृत एवं दुर्गम मार्ग पर चिरकाल से चलते रहने के कारण थक गये थे। परंतु आज आपकी उपदेश-वाणी से शुद्ध हो उस परमपद में उसी तरह विश्राम का सुख उठा रहे हैं, जैसे शरत्काल के उज्ज्वल मेघ हिमालय आदि पर्वत पर विश्राम करते हैं। पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये अवश्य करने योग्य कर्मों की अवधि आज पूरी हो गयी-हम लोग कृतकृत्य हो गये। हमने आपत्तियों की चरम सीमा देख ली-अब इनसे पिण्ड छूट गया; क्योंकि हमें ज्ञेय-तत्त्व का सम्पूर्ण रूप से ज्ञान हो गया और हम परमपद में विश्राम पा रहे हैं।

श्रीरामजी बोले-मुनीश्वर ! आपकी वाणी सुनकर इतना सुख मिल रहा था, मानो अमृत का अभिषेक प्राप्त हो रहा हो। उसे बारंबार याद करके मैं परम पूजित और शान्त होने पर भी रह-रह कर हर्षित सा हो उठता हूँ। अब मुझे न तो कोई कर्म से प्रयोजन है और न उसे न करने (छोड़ने) से ही। मैं जैसे हूँ, उसी तरह निश्चिन्त हूँ। आपके उस उपदेश-वचन से विश्राम-सुख का जैसा उपाय प्राप्त हुआ है, वैसा दूसरा कौन होगा, दूसरी दृष्टि भी कैसी होगी ? अहो ! हमें विश्रामसुख की असीम विस्तार-वाली भूमि प्राप्त हो गयी है। आपकी कृपा के बिना मनुष्य इस ज्ञान दृष्टि को कैसे जान सकता है ? भला, पुल या जहाज के बिना बालक समुद्र को कैसे पार कर सकता है ?

लक्ष्मणजी बोले-आज मुनिवर वसिष्ठजी की वाणी से जो बोध प्राप्त हुआ है, वह अनन्त जन्म-जन्मान्तरों से बढ़ी हुई दुर्वासनाओं के कारण उत्पन्न होने

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I.F.S) Jammu Collection

वाले संशयों का नाशक है तथा जन्म-जन्मान्तरों से संचित किये गये सैकड़ों पुण्यों के उत्तम फल को प्रकट करने वाला है। इस बोध से विचार के लिये उद्यत हुए मेरे मन में आज पूर्ण चन्द्रमा के समान आह्लाद प्रदान करने वाला परमात्मप्रकाश उदित हो गया है। ऐसी निरतिशयानन्द प्रकाशरूप आत्मदृष्टि के प्रत्यक्ष दिखायी देने पर भी लोग अपने दुर्भाग्य के कारण सैकड़ों दोषपूर्ण दशाओं द्वारा दुःख की आग से सूखे काठ की भाँति जलाये जा रहे हैं। यह महान् आश्चर्य है।

श्रीविश्वामित्रजी ने कहा-अहो ! हमारे लिये बड़े हर्ष की बात है कि वसिष्ठ मुनि के मुख से हमें यह परम पवित्र महान् ज्ञान सुनने को मिला, जिससे हमलोग सहस्त्रों बार गंगा में स्नान किये हुए के समान अत्यन्त पवित्र होकर बैठे हैं।

नारदजी ने कहा-मैंने ब्रह्मलोक में, स्वर्ग में और भूतलपर भी आज से पहले जिसे नहीं सुना था, उस परम तत्त्वज्ञान को सुनकर मेरे दोनों कान पवित्र हो गये।

शत्रुघ्न ने कहा-भगवन् ! आपके उपदेश से मैं परमानन्द में निमग्न हूँ। शान्त हूँ। परमपद को प्राप्त हो गया हूँ और सदा के लिये परिपूर्ण हूँ। केवल सुखस्वरूप से स्थित हो गया हूँ।

राजादशरथ बोले-हमारे अनेक जन्मों के संचित पुण्य से ही इन धीर मुनीश्वर ने हमको उस परम उत्तम ज्ञान का उपदेश दिया, जिससे हम सभी परम पवित्र हो गये।

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-भरद्वाज ! जब राजा के साथ समस्त सभासद वहाँ इस तरह की बातें कह रहे थे, उस समय महर्षि वसिष्ठ ज्ञान से पवित्र हुई वाणी द्वारा यों बोले-'राजन् ! रघुकुलचन्द्र ! अब मैं जो कहता हूँ, उसे करो। इतिहास कथा सुनने के पश्चात् ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। इसलिये आज इन ब्राह्मणसमूहों को सब प्रकार की मनोवाञ्छित वस्तुएँ देकर इनकी अभिलाषा पूर्ण करो। इससे तुम्हें वेदार्थतुल्य इस महारामायण के श्रवण का पूरा-पूरा तथा अक्षय फल प्राप्त होगा। मोक्ष की उपायभूत कथा-वस्तु की समाप्ति होने पर एक तुच्छ एवं दरिद्र मनुष्य को भी अपनी शक्ति के अनुसार

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Modkari Sharma (FFS) Jammu Collection

ब्राह्मण का पूजन करना चाहिये। फिर आप-जैसे महाराज के लिये तो कहना ही क्या है ?

मुनिका यह वचन सुनकर रजा दशरथ ने सहस्त्रों वेदवादी ब्राह्मणों को दूत भेजकर बुलवाया। मथुरा में, सुराष्ट्र देश में तथा गौड़ देश में जो ब्राह्मण निवास करते थे, उनके कुलों से ब्राह्मणों को बुलवाकर उन सबका पूजन किया। अधिक-से-अधिक ज्ञान-विज्ञान वाले ब्राह्मणों को प्रधानता देते हुए भूपाल ने दस हजार ब्राह्मणों को भोजन कराया और उन्हें उनकी रुचि के अनुसार भोजन कराने के पश्चात् दान दक्षिणा भी दी। इस तरह ब्राह्मणों का पूजन करके देवताओं, पितरों, राजाओं, पुरवासियों, मन्त्रियों, सेवकों, दीन-दुखियों तथा अन्धों को भी भोजन एवं दान-मान से संतुष्ट किया। इस प्रकार संसार की सीमा के अन्त में पहुँचे हुए राजा दशरथ ने उस दिन बड़ा भारी उत्सव किया। महाराज दशरथ अविनाशी परमपद को प्राप्त हो चुके थे। बोधरूपी सूर्य के उदय से संसाररूपी रात्रि का अन्त हो गया था। इसलिये वे बड़े हर्ष से लगातार सात दिनों तक महान् उत्सव मनाते रहे जिसमें दान, भोजन तथा धन-वितरण-का कार्यक्रम निरन्तर चलता रहा।

एकसौ उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ बीसवाँ सर्ग

इस ग्रन्थ की महिमा

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं-मेरे शिष्यशिरोमणि परम बुद्धिमान् भरद्वाज ! इसी प्रकार तुम भी इसी कमनीय तथा निर्मल ब्रह्मात्मदृष्टि का दृढ़तापूर्वक अवलम्बन करके वीतराग संदेहशून्य शान्तचित्त जीवन्मुक्त होकर सुख से रहो। निष्पाप भरद्वाज ! इस ज्ञान का आश्रय ले तुम्हारी बुद्धि यदि आसक्तिशून्य रही तो घने मोहान्धकार में पड़ने और मूढ़ होने पर भी नष्ट नहीं होगी। बेटा भरद्वाज ! तुम्हारी बुद्धि तो स्वाभाविक ही आसक्ति के बन्धन से मुक्त है। परंतु आज इस मोक्ष संहिता को सुनकर तुम वास्तव में मुक्ततर हो गये-सर्वश्रेष्ठ जीवन्मुक्त हो गये। इन पवित्र तथा ब्रह्मका प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करने वाले मोक्षोपायों का यदि कोई बालक भी श्रवण कर ले तो वह तत्त्वज्ञानी हो सकता है। फिर तुम जैसे महात्मा पुरुष के लिये तो कहना ही क्या है ? सत्पुरुषों की नीति (शिक्षा) से, उनकी उत्तम सेवा से, उनके सामने प्रश्न करने से तथा उनकी उदारतापूर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

ज्ञानचर्चा में भाग लेने से प्रमादशून्य श्रेष्ठ बुद्धिवाले अधिकारी पुरुष उसी प्रकार ज्ञेय आत्मतत्त्व को जान लेते हैं, जैसे श्रीवसिष्ठजी के संग से श्री राम आदि ने जाना था। तृष्णारूपी चर्ममयी रस्सी से दृढ़तापूर्वक बँधी हुई अज्ञानी के हृदय में जो देह और इन्द्रिय आदि के प्रति तादात्म्याध्यासरूप तथा पुत्र-कलत्रादि के प्रति ममतारूप ग्रन्थियाँ बद्धमूल हो गयी हैं, वे सब इस मोक्षशास्त्र की कथाओं पर विचार करते रहने से सर्वथा खुलकर एकरसता को प्राप्त हो जाती हैं। बेटा ! दूसरी बहुत-सी बातें कहने से क्या लाभ ? इतना ही जान लो कि जो लोग इन महामहिमाशाली मोक्षोपायों का ज्ञान प्राप्त करेंगे, वे तत्त्व वेत्ताओं में श्रेष्ठतम होकर फिर कभी संसारबन्धन में नहीं पड़ेंगे। जो सत्पुरुष इस ग्रन्थ को बहुश्रुत विद्वान् के सामने स्वयं भली भाँति विचारकर इसे पूर्णतः समझ लेने के पश्चात् स्वयं भी सुनने की इच्छा वाले लोगों को उपदेश देंगे, वे पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होंगे। उन्हें दूसरे वचनों का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता है ? जो अर्थानुसंधान की अपेक्षा न रखकर केवल इसका पारायण करेंगे अथवा जो इस पुस्तक को लिखेंगे तथा जो उत्तम तीर्थक्षेत्र में व्याख्यानकुशल श्रेष्ठ वक्ता को इसकी कथा कहने के लिये नियुक्त करेंगे, वे यदि सकामभाववाले होंगे तो राजसूययज्ञ के फल से युक्त हो बारंबार स्वर्गलोक में जायँगे और यदि निष्काम होकर उक्त कार्य करेंगे तो उत्तम कुल में जन्म तथा सद्गुरु के मुखारविन्द से सत्-शास्त्र के श्रवण का सुयोग पाकर तीसरे जन्म में उसी तरह मोक्ष प्राप्त कर लेंगे, जैसे पुण्यवान् पुरुष धन-सम्पत्ति को पा लेते हैं। पूर्वकाल में अचिन्त्यरूपवाले ब्रह्माजी ने मेरे द्वारा रचित इस ग्रन्थ पर पूर्ण विचार करके यह बात कही थी कि 'इसमें सत्यस्वरूप ब्रह्म का निर्वचन होने के कारण यह मोक्षमयी उत्तम संहिता है।' उन महर्षि की यह वाणी असत्य नहीं हो सकती। मोक्षोपाय नामक कथात्मक प्रबन्धरूप इस महारामायण की कथा समाप्त होने पर उत्तम बुद्धिवाले श्रोता को चाहिये कि वह वक्ता को प्रयत्नपूर्वक सुन्दर भवन देकर अभीष्ट अन्न-पान के दान से ब्राह्मणों का पूजन करे। इतना ही नहीं, उन सबको यथाशक्ति मनोवाञ्छित धन की दक्षिणा आदि भी देनी चाहिये। भरद्वाज ! तुम्हें बोध प्रदान करने के लिये मैंने सैकड़ों कथा-क्रमों से विशाल कलेवर हुए इस निर्मल, दृष्टान्तों और युक्तियों से सम्पन्न तथा ब्रह्मतत्व की विस्तृत व्याख्या से युक्त महारामायण शास्त्र को श्रवण कराया है। इसे सुनकर जीते-जी ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerjishama (LFS) Jammu Collection

समस्त बन्धनों से मुक्त होकर ज्ञान, तपस्या और कर्म के फल से युक्त अक्षय सम्पत्ति प्राप्त करके सदा के लिये पूर्ण परमानन्द में निमग्न हो जाओ।

एकसौ बीसवाँ सर्ग समाप्त

एकसौ इक्कीसवाँ सर्ग

ब्रह्म को एवं ब्रह्मभूत वसिष्ठजी को नमस्कार

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं-राजन् ! वसिष्ठजी का श्रीराम आदि के प्रति दिया हुआ यह सदुपदेश मैंने तुमसे कहा-इस ग्रन्थ में बताये हुए तत्त्वमार्ग से चलकर तुम निश्चय ही उस परमपद को प्राप्त कर लोगे।

राजा अरिष्टनेमि ने कहा-भगवन् ! आपकी यह दृष्टि संसार-बन्धन का विनाश करने वाली है, जिसके पढ़ते ही मैं संसार-सागर से पार हो गया।

देवदूत बोला-देवांगने ! ऐसा कहकर आश्चर्य से चकित नेत्र वाले राजा अरिष्टनेमि मुझसे स्नेहयुक्त मधुर वाणी में बोले-

'देवदूत ! आपको नमस्कार है। प्रभो ! आपका भला हो। सत्पुरुषों की मैत्री सात पग साथ चलने से ही हो जाती है, ऐसा कहा गया है। उसे आपने सत्य कर दिखाया। अब आप देवराज के भवन को लौट जाइये। आपका कल्याण हो। मैं इस मोक्षशास्त्र की कथा के श्रवण से परम संतुष्ट एवं आनन्दमग्न हो गया हूँ। मैंने जो कुछ सुना है उसका चिन्तन करता हुआ अब यहीं रहूँगा। मेरी सारी चिन्ता दूर हो चुकी है।'

भद्रे ! राजा अरिष्टनेमि के ऐसा कहने पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जिसे मैंने पहले कभी नहीं सुना था, वह ज्ञान का सारभूत तत्त्व मुझे सुनने को मिला है। उसी से मेरा अन्तःकरण इस समय अत्यन्त आनन्दमग्न हो गया है। अमृत पीकर छके हुए पुरुष की भाँति मैं पूर्णतः तृप्ति का अनुभव कर रहा हूँ। तदनन्तर वाल्मीकिजी से विदा ले मैं यहाँ तुम्हारे निकट मानो तुम्हें उपदेश देने के लिये ही चला आया था। निष्पाप देवांगने ! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें कह सुनाया। अब मैं यहाँ से इन्द्रभवन को जाऊँगा।

अप्सरा बोली-महाभाग देवदूत ! आपको नमस्कार है। आपने मुझे जो तत्त्वज्ञान सुनाया है, उससे मुझे बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। मैं कृतार्थ हो गयी। मेरा सारा शोक जाता रहा। अब मैं सदा निश्चिन्त रहूँगी। आपका कल्याण हो। आप अपनी इच्छा के अनुसार देवराज इन्द्र के समीप जाइये।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerjisharma(I F S) Jammu Collection

अग्निवेश्य ने कहा-वत्स कारुण्य ! तदनन्तर वह सुरुचि नाम वाली श्रेष्ठ अप्सरा गन्धमादन के समीपवर्ती हिमालय के शिखर पर बैठकर देवदूत के मुख से सुने हुए उसी तत्वज्ञान का चिन्तन करने लगी। बेटा ! क्या तुमने वसिष्ठजी का उपदेशरूप यह महारामायण शास्त्र सुना ? (मोक्ष का साधन कर्म है या कर्मत्याग, ऐसा जो तुम्हारा संदेह था, क्या वह दूर हो गया ?) उस समस्त उपदेश पर पूर्णतः विचार और निश्चय करके तुम जैसा चाहो, वैसा करो।

कारुण्य बोला-भगवन् ! इस समय तत्वज्ञान होने से मेरी स्मृति, वाणी और दृष्टि-सत्ता सभी निर्विषय हो गये हैं। तात्पर्य यह कि अब मेरे लिये इस लोक में न तो कुछ स्मरणीय रहा, न वर्णनीय रहा और न दर्शनीय ही रह गया। ठीक वैसे ही, जैसे स्वप्न और वन्ध्यापुत्र के विषय में स्मृति, वाणी और दृष्टि के लिये कोई आधार नहीं रह जाता है। मेरे लिये सारी सांसारिक स्थिति वैसी ही हो गयी है, जैसी निर्जल मरुप्रदेश में मरीचिका की। अर्थात् जैसे मृग तृष्णा का जल मिथ्या है, उसी तरह यह दृश्यप्रपंच भी मेरे लिये असत् हो गया है। अब मुझे न कर्म करने से कोई प्रयोजन है और न कर्म न करने से ही कोई प्रयोजन है; क्योंकि मैं कृतार्थ हो गया, तथापि लोकसंग्रह के लिये न्यायतः प्राप्त कर्म करता रहूँगा। हठात् कर्म छोड़ देने के लिये भी क्या आग्रह है।

अगस्ति बोले-सुतीक्ष्ण ! ऐसा कहकर अग्निवेश का विद्वान पुत्र कारुण्य, जो कृतकृत्य हो चुका था, वर्ण और आश्रम के अनुसार प्राप्त हुए कर्म का समय-समय पर यथोचित रीति से अनुष्ठान करने लगा। अतः सुतीक्ष्ण ! मोक्ष का साधन ज्ञान है या कर्म-ऐसा संशय नहीं करना चाहिये। संशय करने से जीव परम पुरुषार्थरूपी स्वार्थ से भ्रष्ट हो जाता है। संशयात्मा का विनाश हो जाता है।

अगस्ति मुनि का यह वचन अनेक अर्थों में एकता का बोध कराने वाला था। इसे सुनकर सुतीक्ष्ण ने गुरुदेव को प्रणाम किया और उनके निकट विनयपूर्वक कहा-भगवन् ! आपकी कृपा से मेरा अज्ञान और उसका कार्यरूप जगत् नष्ट हो गया। मुझे सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो गयी। जैसे दीपक रहने पर उसके प्रकाश के सहारे नट, नर्तक आदि रंगमंच पर नृत्य-अभिनय आदि क्रियाएँ करते हैं, उसी तरह जिस साक्षी स्वयं ज्योति नित्य प्रकाश परमात्मा के निष्क्रियरूप से स्थित होने पर ही सब सचेष्ट मूर्तियाँ अपनी-अपनी चेष्टाओं में प्रवृत्त होती हैं तथा जैसे सुवर्ण ही कंगन, बाजूबंद, केयूर और नूपुरों के रूप में

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji Shama (I.P.S) Jammu Collection

स्फुरित होता है एवं जैसे जल में तरंगमालाएँ प्रकट होती हैं, उसी तरह जिससे यह सम्पूर्ण दृश्य स्फुरित होता है, वह परब्रह्म परमात्मा ही यह सम्पूर्ण जगत् है। उस पूर्ण ब्रह्म में ही यह पूर्ण ब्रह्मरूप जगत् स्थित है। ऐसा विचारकर मेरे समक्ष वर्ण और आश्रम के अनुसार जैसा व्यवहार प्राप्त होता है, उस व्यवहार का अनुसरण करता हूँ। संत-महात्माओं के वचन का कौन उल्लंघन कर सकता है। भगवन् ! मैं आपके प्रसाद से ज्ञेय-तत्व का ज्ञान प्राप्त करके कृतार्थ हो गया हूँ। गुरुदेव ! आपको नमस्कार है। मैं आपके चरणों में भूमि पर दण्डवत् पड़ा हूँ। गुरु का कौन-सा प्रत्युपकार करके शिष्य उनके ऋण से उऋण हो सकते हैं? इसलिये शिष्यों को चाहिये कि वे अपने आपको मन, वाणी और शरीर द्वारा गुरु की सेवा में समर्पित कर दें। यही उनका गुरु के ऋण से उद्धार है, दूसरे किसी कर्म से वे उद्धार नहीं पा सकते। स्वामिन् ! मैं आपके कृपाप्रसाद से भवसागर से पार हो गया हूँ और अपने पूर्ण परमानन्द से सम्पूर्ण जगज्जाल को मैंने पूरित कर दिया है। अब मैं संशयरहित हो गया हूँ। 'यह सारा जगत् ब्रह्म ही है, क्योंकि यह ब्रह्म से ही उत्पन्न होता, ब्रह्म में ही लीन होता और ब्रह्म से ही जीवन-धारण करता है'-इस प्रकार सामवेद में श्रुति के द्वारा जिसका सुस्पष्ट वर्णन किया गया है, उस सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है। जो ब्रह्मानन्दस्वरूप अथवा ज्ञानोपदेश द्वारा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति कराने वाले, परम सुखद, अद्वितीय ज्ञानमूर्ति, द्वन्द्वों से रहित, आकाश सदृश निर्मल, 'तत्वमसि' आदि वेदान्त महावाक्यों के लक्ष्यार्थरूप, एक, नित्य, निर्मल, निश्चल, सम्पूर्ण बुद्धि-वृत्तियों के साक्षी, समस्त भावों से परे तथा तीनों गुणों से रहित हैं, उन पर ब्रह्मस्वरूप श्रीवसिष्ठजी को हम नमस्कार करते हैं।

एक सौ इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त

निर्वाण-प्रकरण उत्तरार्ध सम्पूर्ण

योगवासिष्ठ सम्पूर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I-F S) Jammu Collection

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Mookerji sharma (I F S) Jammu Collection

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha